विशेष—यदि काव्य मे किसी एकपद का अर्थ लगाने के लिये पहले या पीछे के दो तीन पदो तक जाना पड़े, अथवा उनके साथ उसका अन्वय करना पड़े, तो वह भी 'क्लिष्टत्व' दोष माना जाता है ।

क्लिष्टवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० क्लिष्टवर्त्मन्] आँख का एक रोग, जिसमें पलक मे लाली और पीडा होती है । इस रोग में प्राय अस्त्र-चिकित्सा कराने की आवश्यकता हुआ करती है ।

क्लिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतजलि के अनुसार वे चित्तवृत्तियाँ जिनसे आत्मा को कष्ट पहुँचता हो ।

क्लिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पीडा । व्यथा । दु:ख । कष्ट । २. तीमारदारी । सेवा [को०] ।

क्लीत-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कीड़ों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति मल मूत्र और सडी लाश आदि से होती है और जिनके काटने से पित्त कुपित होता है ।

क्लीतक—संज्ञा पुं० [सं०] मुलहठी । जेठी मधु [को०] ।

क्लीतकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पेड़ ।

क्लीतनक-संज्ञा पुं० [सं०] १ मधूलिका । मुलेठी । २ अतिरसा [को०] ।

क्लीव—वि० पुं० [सं०] दे० 'क्लीव' ।

क्लीवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्लीवता' ।

क्लीवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्लीवत्व' ।

क्लीव—वि० पुं० [सं०] १ षंढ । नपुसक । नामर्द । २ डरपोक । कायर । कमहिम्मत । ३ नीच । अधम (को०) । ४ सुस्त । आलसी (को०) । ५ व्याकरण मे नपुसक लिंग का ।

क्लीवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्लीव का भाव । वि० दे० 'नपुसकता' ।

क्लीवत्व संज्ञा पुं० [सं०] नपुसकता । हिजड़ापन । नामर्दी ।

क्लृप्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुकर्रर लगान या महसूल । नियत कर ।

विशेष—नदियो के किनारे जो गाँव होते थे । उनको चद्रगुप्त के समय मे स्थिर तथा नियत कर देना पड़ता था ।

२ उपस्थित । तैयार । कृत (को०) । ३. सज्जित । शृंगारित (को०) । ४ कटा हुआ । कृंतित (को०) । ५ निश्चित [को०] ।

क्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ ओदापन । गीलापन । आर्द्रता । २. पसीना । ३. दु ख । कष्ट (को०) । ४ घाव या फोड़े का स्राव । मवाद । पीब (को०) ।

क्लेदक¹-वि० [सं०] १ पसीना लानेवाला । २ गीला या नम करनेवाला ।

क्लेदक²—संज्ञा पुं० शरीर मे एक प्रकार का कफ जिससे पसीना उत्पन्न होता है । क्लेदन । २ शरीर में की दस प्रकार की अग्नियों मे से एक ।

क्लेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर मे पाँच प्रकार की श्लेष्माओं मे से एक । यह आमाशय मे उत्पन्न होती, वहीं रहती और भोजन पचाती है । शेष चारों श्लेष्माएँ भी इसी की सहायता से काम करती हैं । २ पसीना लाने का कार्य ।

क्लेदु—संज्ञा पुं० [सं०] १ चद्र । २ सनिपात ।

क्लेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. दु ख । कष्ट । व्यथा । वेदना ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—देना ।—पाना ।—भोगना ।—सहना ।

विशेष—योग शास्त्रानुसार क्लेश के पाँच भेद हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश । बौद्ध शास्त्रानुसार क्लेश दस हैं—लोभ द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, चिकित्सा, स्थिति, उद्धत्य, अह्रीक और अनुताप ।

२ झगड़ा । लड़ाई । टटा । जैसे,—दिन रात क्लेश करना अच्छा नहीं ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।—रखना ।

क्लेशक, क्लेशकर—वि० [सं०] कष्ट पहुँचानेवाला । दुखदायी [को०] ।

क्लेशक्षम—वि० [सं०] कष्ट, दुख सहने मे समर्थ [को०] ।

क्लेशित—वि० [सं०] जिसे क्लेश हो । दुःखित । पीडित ।

क्लेशी—वि० [सं० क्लेशिन्] १ क्लेशकर । दु:खद । २ आहत करनेवाला । चोट पहुँचानेवाला [को०] ।

क्लेष्टा—वि० [सं० क्लेष्ट] कष्ट देनेवाला । क्लेशकर ।

क्लेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश' ।

क्लैब्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्लीवता । नपुंसकता । हिजड़ापन । वि० दे० 'नपुसकता' ।

क्लोम—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी ओर का फेफड़ा । फुफ्फुस । २ प्यास । पिपासा ।—माधव०, पृ० १७१ ।

क्लोमस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] हृदय का वह स्थान जहाँ प्यास उत्पन्न होती है ।—माधव०, पृ० १०५ ।

क्लोरोफार्म—संज्ञा पुं० [अ० क्लोरोफॉर्म] एक प्रसिद्ध तरल ओषधि जिसमे एक विचित्र मीठी गध होती है ।

विशेष—इसका मुख्य उपयोग ऐसे रोगियो को अचेत करने के लिये होता है, जिनके शरीर पर भारी अस्त्रचिकित्सा या इसी प्रकार की शरीर को बहुत अधिक वेदना पहुँचानेवाली कोई और चिकित्सा की जाती है । इसे सूँघते ही पहले कुछ हलका सा नशा होता है और थोड़ी देर मे मनुष्य बिलकुल अचेत हो जाता है और गाढ़ी निद्रा में सोया हुआ मालूम होता है । यदि मात्रा अधिक हो जाय, तो मनुष्य मर भी सकता है । यह देखने मे स्वच्छ जल की तरह और भारी होता है और यदि खुला छोड़ दिया जाय, तो शीघ्र उड़ जाता है । इसका स्वाद बहुत मीठा और भला मालूम होता है । खुले स्थान या प्रकाश में रखने से इसमें विकार उत्पन्न हो जाता है ।

मुहा०—क्लोरोफार्म देना = क्लोरोफार्म सुँघाना ।

क्वगु—संज्ञा पुं० [सं० क्वङ्गु] प्रियंगु । कँगनी [को०] ।

क्व—क्रि० वि० [सं०] कहाँ [को०] ।

क्वचित्-क्रि० वि० [सं०] कोई ही । शायद ही कोई । बहुत कम ।

क्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वीणा का शब्द । २ घुँघरू का शब्द । ३ ध्वनि । आवाज (को०) ।

क्वणन—संज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द । ध्वनि । २ किसी वाद्य या घुँघरू, आभूषण आदि की ध्वनि । ३ मिट्टी का छोटा पात्र [को०] ।

क्वणित¹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्वणन' ।

क्वणित²—वि० [सं०] झंकृत । ध्वनित । शब्दायमान । उ०—कंकण क्वणित रणित नूपुर थे, हिलते थे छाती पर हार ।—कामायनी, पृ० ११ ।

क्वथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्वाथ' ।

क्वथन—संज्ञा पुं० [सं०] काढ़ा पकाना । उबालना (को०) ।

क्वथित—वि० [सं०] १. उबाला हुआ । औटाया हुआ । २. गरम । उष्ण (को०) ।

क्वथिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वैद्यक में एक प्रकार का रसा जो घी में भूनी हुई हल्दी को दूध में पकाने से बनता है । यह बहुत पाचक होता है । २ एक प्रकार का आसव जो शहद से बनता है ।

क्वाँचर¹—संज्ञा पुं० [सं० कुचर] वह बैल जो काम करते करते बैठ जाय । गरियार बैल ।

क्वाँचर²—वि० दुर्बल । कमजोर ।

क्वाँरटाइन-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ प्लेग या दूसरी छूतवाली बीमारी के दिनों में रेल या जहाज के यात्री कुछ दिनों के लिये सरकार की ओर से रोककर रखे जाते हैं ।

क्वाँरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुआर' ।

क्वाँरा—वि० [हिं०] दे० क्वारा' ।

क्वाँरापन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'क्वारापन' ।

क्वाचित्क—वि० [सं०] बहुत कम होने या मिलनेवाला । विरल । अल्पप्राप्य (को०) ।

क्वाड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'क्वाड्रेट' ।

क्वाड्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] छापे में सीसे का ढला हुआ चौकोर टुकड़ा जो कपोज करने में खाली लाइन आदि भरने के काम में आता है । वह स्पेस से बड़ा और कोटेशन से छोटा होता है । इसकी चौड़ाई टाइप के बराबर और लंबाई १ एम से ८ एम तक होती है । क्वाड ।

क्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्वण' (को०) ।

क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में उबालकर ओषधियों का निकाला हुआ गाढा रस । काढ़ा । जोशांदा ।

विशेष—जिस ओषधि का क्वाथ बनाना हो उसे एक पल लेकर सोलह पल पानी में भिगोकर मिट्टी के बरतन में आग पर चढ़ा देते हैं, और जब उसका आठवाँ अंश बाकी रह जाता है, तब उतार लेते हैं । यदि ओषधि अधिक और तौल में एक कुडव तक हो, तो उसमें आठगुना जल और यदि एक कुडव से अधिक हो, तो उसमें चौगुना जल देना चाहिए और क्रम से, आधा और तीन चौथाई बच रहने पर उतार लेना चाहिए ।

२ व्यसन । ३. बहुत अधिक दुःख ।

क्वाथोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] रसौत ।

क्वान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्वाण] दे० 'क्वण' ।

क्वार—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] १. आश्विन का महीना । २ दे० 'क्वारा' ।

क्वारछल—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, हिं० क्वारा+छल] क्वारापन ।

मुहा०—क्वारछल उतारना = प्रथम समागम करना ।

क्वारपत— संज्ञा पुं० [हिं० क्वार+पत] दे० 'क्वारछल' या 'क्वारपन' ।

क्वारपन—संज्ञा पुं० [हिं० क्वारा+पन (प्रत्य०)] क्वारापन । कुमारपन । क्वारा का भाव ।

मुहा०—क्वारपन उतरना = विवाह होना । क्वारपन उतारना = प्रथम समागम करना । ब्रह्मचर्य खोना ।

क्वारा—संज्ञा पुं० वि० [सं० कुमार] [वि० स्त्री० क्वारी] जिसका विवाह न हुआ हो । कुआरा । बिन ब्याहा । उ०—सखि ! यही जगत की चाल जिती है क्वारी । उनके सब ही विधि मात पिता अधिकारी ।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६८६ ।

क्वारापन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'क्वारपन' ।

क्वार्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १ बस्ती । टोला । बाड़ा । जैसे,—कुनियों का क्वार्टर । २ अफसरों और कर्मचारियों के रहने की जगह । जैसे,—रेलवे क्वार्टर । ३ वह स्थान जहाँ पर पलटन ने डेरा डाला हो । डेरा । छावनी । मुकाम ४. चौथाई भाग । चतुर्थ अंश । चौथा हिस्सा (को०) । ५ एक तौल जो २८ पौंड की होती है (को०) ।

क्वार्टर मास्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १ एक फौजी अफसर जिसका पद लेफ्टनेंट के बराबर समझा जाता है और जिसका काम सैनिकों के लिये स्थान, भोजन और वस्त्र आदि आवश्यक सामग्री का प्रबंध करना होता है । २. जहाज का एक अफसर जो रंगीन झंडी, लालटेन या अन्य सकेत दिखलाकर मल्लाहों को जहाज चलाने में सहायता देता और उन्हें समुद्र की गहराई और दिशा आदि बतलाता है । कोट मास्टर ।

क्वासि—वाक्य [सं० क्व+असि] तू कहाँ है ? तू किस स्थान पर है ? उ०—गद्गद सुर पुलकित विरहानल स्रवत विलोचन नीर । क्वासि क्वासि वृषभानुनंदिनी विलपत विपिन अधीर ।—सूर (शब्द०) ।

क्विनाइन—संज्ञा पुं० [अं०] कुनैन ।

क्विल—संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट पक्षियों के डैनों का पर जो लिखने के लिये कलम बनाने के काम में आता है ।

क्वीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] महारानी । राजमहिषी । मलका ।

क्वेश्चन—संज्ञा पुं० [अं०] प्रश्न । सवाल ।

यौ०—क्वेश्चन पेपर ।

क्वेश्चनपेपर—संज्ञा पुं० [अं०] वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें परीक्षार्थियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों । परीक्षा-पत्र । प्रश्नपत्र ।

क्वैला—संज्ञा पुं० [हिं० कोयला] दे० 'कोयला' । उ०—तू भी मुझे जलाकर क्वैला कर दे—हाय रे ईश्वर !—श्यामा०, पृ० ७१ ।

क्वैलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोइलारी' ।

क्वैलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल, हिं० कोयल, कोइल+इया (प्रत्य०)] दे० 'कोयल' । उ०—बहु दादुर मोर निनद मच्यो तरु क्वैलिया हू करि सोर रही ।—मोहन०, पृ० ७७ ।

क्रोडपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी पुस्तक या समाचारपत्र में उसकी पूर्ति के लिये ऊपर से लगाया जाय। अतिरिक्त पत्र। पूरक। जमीमा।

क्रोडपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया। कटेरी।

क्रोडपाद—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुवा [को०]।

क्रोडाक, क्रोडाङ्घ्रि—संज्ञा पुं० [सं० क्रोडाङ्क, क्रोडाङ्घ्रि] दे० 'क्रोडपाद'।

क्रोडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराही। सूकरी [को०]।

क्रोडीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] आलिंगन करना। छाती से लगाना [को०]

क्रोडीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गैंडा' [को०]।

क्रोडेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोथा।

क्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ चित्त का वह तीव्र उद्वेग जो किसी अनुचित और हानिकारक कार्य को होते हुए देखकर उत्पन्न होता है और जिसमें उस हानिकारक कार्य करनेवाले से बदला लेने की इच्छा होती है। कोप। रोष। गुस्सा।

विशेष—वैशेषिक मे क्रोध को द्वेष का एक भेद माना है और उसे द्रोह आदि की अपेक्षा शीघ्र नष्ट हो जानेवाला कहा है। भगवद्गीता के अनुसार जो अभिलाषा पूरी नहीं होती है, वही रजोगुण के कारण बदलकर 'क्रोध' बन जाती है। पुराणानुसार यह शरीरस्थ दुष्ट शत्रुओं में से एक है। साहित्य मे इसे रौद्र रस का स्थायी भाव माना है।

पर्या०—अमर्ष। प्रतिघ। भीम। क्रुधा। रुषा। क्रुत।

२ साठ संवत्सरों मे से उनसठवाँ संवत्सर। इस संवत्सर मे आकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है।—(ज्योतिष)।

क्रोधकृत ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो क्रोध मे आकर किसी का धन नष्ट कर देने के कारण लेना पड़ा हो।

क्रोधज—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध से उत्पन्न, मोह।

क्रोधन[1]—वि० [सं०] क्रोधी। गुस्सैल। कोप करनेवाला।

क्रोधन[2]—संज्ञा पुं० १ कोप करना। गुस्साना। २ कौशिक के एक पुत्र का नाम जो गर्ग मुनि के शिष्य थे। ३ अयुत के पुत्र और देवातिथि के पिता का नाम। ४ क्रोध नामक संवत्सर।

क्रोधना—वि० स्त्री० [सं०] क्रोधी स्वभाववाली। कर्कशा। वामा [को०]।

क्रोधभवन—संज्ञा पुं० [सं०] कोपभवन।

क्रोधमूर्छित—वि० [सं०] क्रोध के कारण विवेक खो देनेवाला। क्रोध से पागल। आपे से बाहर।

क्रोधवंत—वि० [हिं० क्रोध+वंत=वाला] गुस्से मे भरा हुआ। कुपित। उ०—माडव्य धर्मराज पै आयो। क्रोधवंत यह वचन सुनायो।—सूर (शब्द०)।

क्रोधवश[1]—क्रि० वि० [सं०] क्रोधवशात्। क्रोध मे। जैसे,—उसने क्रोधवश ऐसा कहा।

क्रोधवश[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक राक्षस का नाम। २ काद्रवेय नामक साँपों में से एक।

क्रोधवशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या और कश्यप प्रजापति की आठ पत्नियों में से एक।

क्रोधहा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोधहन्] विष्णु का एक नाम [को०]।

क्रोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या [को०]।

क्रोधालु—वि० [सं०] क्रोधी। गुस्सैल [को०]।

क्रोधित(ए)—वि० [हिं० क्रोध] कुपित। क्रुद्ध। क्रोधयुक्त।

क्रोधी[1]—वि० [सं० क्रोधिन्] [स्त्री० क्रोधिनी] क्रोध करनेवाला। गुस्सावर।

क्रोधी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोध नामक संवत्सर। २ महिष। भैंसा (को०)। ३. कुत्ता। श्वान (को०)। ४ गैंडा। गेंडा (को०)।

क्रोधी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में गंधार स्वर की दो श्रुतियों में से अंतिम श्रुति।

क्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोस। २ चिल्लाना। चीख। कोलाहल (को०)। ३ रोना। रुदन (को०)। ४ अट्ठाईस मिनट का समय (को०)।

क्रोशताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा आनद्ध बाजा जिसे ढाक कहते हैं।

क्रोशन—संज्ञा पुं० [सं०] चीख। चिल्लाहट। चिल्लाना [को०]।

क्रोशस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० क्रोश+स्तम्भ] सड़क के किनारे एक एक कोस की दूरी पर गाड़ा गया वह पत्थर जिसपर किसी स्थान से दूरी का परिमाण अंकित रहता है (अं० माइल स्टोन)। उ०—यदि प्रेमचंद का कथा साहित्य ही क्रोशस्तंभ हो, तो अच्छा होगा।—प्रेम०, और गोर्की, पृ० २०६।

क्रोशिया—संज्ञा पुं० [अं० क्रोचेट] लोहे, प्लास्टिक आदि की बनी वह सलाई जिससे गंजी, मोजा, स्वेटर आदि बुना जाता है।

क्रोष्टा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोष्टृ] शृगाल। स्यार [को०]।

क्रोष्टु, क्रोष्टुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रोष्टा' [को०]।

क्रोष्टुफल—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी का फल [को०]।

क्रोष्टुमेखला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णिका [को०]।

क्रोष्टुशिर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रोष्टुशीर्षक'।

क्रोष्टुशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें वात के कारण घुटनों में पीड़ा और सूजन होती है।

क्रोष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्यारिन। शृगाली। २ कृष्णभूमिकूष्माड। ३ कृष्णविदारी। ४ लागली [को०]।

क्रौंच—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] १ करांकुल नामक पक्षी। २ हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत का नाम जो पुराणानुसार मैनाक का पुत्र है। ३ पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक।

विशेष—विष्णुपुराण के अनुसार यह द्वीप दधिमंडोद समुद्र से घिरा हुआ है और द्युतिमान् नामक राजा यहाँ का अधिपति था। पर भागवत के अनुसार यह क्षीरसागर से घिरा हुआ है और प्रियव्रत का पुत्र घृतपृष्ठ इसका राजा था। इस द्वीप के सात खंड या वर्ष हैं और प्रत्येक वर्ष में एक नदी और एक पहाड़ है।

४. एक राक्षस का नाम जो मय दानव का पुत्र था और जिसे क्रौंच द्वीप मे स्कंद भगवान् ने मारा था।

यौ०—क्रौंचदारण, क्रौंचरिपु, क्रौंचशत्रु, क्रौंचसूदन=(१) कार्तिकेय। (२) परशुराम।

५ मुहूर्तों की एक ध्वजा। ६ एक प्रकार का अस्त्र। उ०—अग्नि अस्त्र अरु पर्वतास्त्र पुनि त्यों पवनास्त्र प्रमाथी। शिर अस्त्र क्रौंच अस्त्रहु पुनि लेहु लषण के साथी —रघुराज(शब्द०)। ७ एकवर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण,मगण सगण, मगण, चार नगण अंत में एक गुरु (SII SSS IIS SII III III III III S) होता है। जैसे—भूमि सुभौना चोगुन राजै वसति सुमतियुत जहँ नर अब ती। शील सनेहा और नय विद्या लखि तिन कर मन हरषत धरती। पूत जहाँ है मानत माता जनकसहित नित अरचन करि कै। नारि सुशीला क्रौंच समाना पति वचननि सुन तिय तन धरि कै।

क्रौंचपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रौञ्चपदी] एक तीर्थ का नाम।

क्रौंचरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चरन्ध्र] हिमालय पर्वत की एक घाटी का नाम।

विशेष—पुराणानुसार परशुराम ने क्रौंच पर्वत को एक तीर से छेदकर यह घाटी बनाई थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि हंस इसी मार्ग से मानसरोवर जाते और वहाँ से आते हैं।

क्रौंचादन—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चादन] कमलनाल।

क्रौंचादनी संज्ञा स्त्री० [सं० क्रौञ्चादनी] कमलगट्टा। कमल का बीज [को०]।

क्रौंचाराति, क्रौंचारि—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चाराति, क्रौञ्चारि] १. कार्तिकेय। २ परशुराम [को०]।

क्रौंचारुण—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चारुण] एक प्रकार की व्यूहरचना।

क्रौंची—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रौञ्ची] १ कश्यप ऋषि की ताम्रा नामक पत्नी से उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक। उलूक आदि पक्षियों की माता थी। २ मादा कराकुल [को०]।

क्रौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्रूरता। हृदयहीनता। [को०]।

क्रौशशतिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सौ कोस चलनेवाला संन्यासी। २ वह व्यक्ति (भिक्षक) जिससे सौ कोस दूर से आकर मिला जाय [को०]।

क्लब—संज्ञा पुं० [अं०] साहित्य, विज्ञान, राजनीति आदि सार्वजनिक विषयों पर विचार करने अथवा आमोद प्रमोद के लिये संगठित की हुई कुछ लोगों की समिति।

क्लम—संज्ञा पुं० [सं०] थकावट। श्रांति। क्लांति।

क्लमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ आयास। परिश्रम। मिहनत। २ अधिक परिश्रम या आलस्य के कारण शरीर की थकावट या शिथिलता।

क्लमथु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्लमथ'।

क्लर्क—संज्ञा पुं० [अं० क्लार्क] किसी कार्यालय का वह कर्मचारी जो पत्र व्यवहार करने, नकल करने तथा हिसाब आदि रखने का काम करता हो। मुंशी। लेखिया। मुहर्रिर।

क्लर्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्लर्क+ई (प्रत्य०)] क्लर्क का काम। लेखक का काम।

क्लांत—वि० [सं० क्लान्त] १. थका हुआ। श्रांत। २. म्लान। मुरझाया हुआ (को०)। ३. क्षीणकाय। दुबला पतला [को०]

क्लांति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्लान्ति] १. परिश्रम। २. थकावट। उ०—सरयू क्या क्लांति पा रही, अब भी सागर ओर जा रही। साकेत, पृ० ३२४।

क्लाउन—संज्ञा पुं० [अं०] सरकस आदि का मसखरा।

क्लाक—संज्ञा स्त्री० [अं० क्लॉक] बड़ी घड़ी जो लकड़ी आदि के चौखटों में जड़ी होती है। यह प्राय लंगर के सहारे चलती और घंटे आदि बजाती है। घरमघड़ी।

क्लाक टावर—संज्ञा पुं० [अं०] वह मीनार जिसमें सर्वसाधारण को समय बतलाने के लिये बड़ी घड़ी लगी रहती है। घंटाघर।

क्लारनेट—संज्ञा पुं० [अं० क्लैरिअनिट] एक प्रकार का अंग्रेजी बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। यह शहनाई के आकार और प्रकार का, पर उससे कुछ अधिक लंबा होता है।

क्लारेट—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की विलायती शराब जो लाल रंग की होती है।

क्लास—संज्ञा पुं० [अं०] कक्षा। श्रेणी। दरजा। जमाअत।

क्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। तर। गीला।

यौ०—क्लिन्नाक्ष = गीली आँखवाला। चौंधियाई आँखवाला।

क्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] क्लिष्टवर्त्म नामक आँख का रोग।

क्लिन्नहृद्—वि० [सं०] आर्द्रहृदय। दयालु [को०]।

क्लिप—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कमानी जो चिट्ठियों, कागजों आदि को एकत्र करके उनमें इसलिये लगा दी जाती है कि जिसमें वे इधर उधर न हो जायँ। यह सादी, पंजे के आकार की तथा और कई तरह की होती है। पंजा। चुटकी।

क्लिशित—वि० [सं०] जिसे बहुत क्लेश हुआ हो।

क्लिष्ट—वि० [सं०] १. क्लेशयुक्त। क्लिशित। दुखी। दुख से पीडित। २. बेमेल (बात)। पूर्वापरविरुद्ध (वाक्य)। ३. कठिन। मुश्किल। जैसे—क्लिष्ट भाषा। क्लिष्ट शब्द। ४. जो कठिनता से सिद्ध हो। खींच तान का। जैसे,—क्लिष्ट कल्पना। ५. मुरझाया हुआ। म्लान (को०)। ६. क्षतियुक्त (को०)। ७ शर्मिंदा किया हुआ (को०)।

यौ०—क्लिष्टवर्त्म।

क्लिष्टघात—संज्ञा पुं० [सं०] साँसत से मारना। तकलीफ देकर मारना [को०]।

क्लिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्लिष्ट का भाव। २ दे० 'क्लिष्टत्व'।

क्लिष्टत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्लिष्ट का भाव। कठिनता। क्लिष्टता। २ अलंकार शास्त्र के अनुसार काव्य का वह दोष जिसके कारण उसका भाव समझने में कठिनता हो। जैसे—ग्रहपति सुतहित अनुचर को सुत जारत रहत हमेस।—सूर (शब्द०)। यहाँ कवि ने सीधे यह न कहकर कि 'काम सदा जलाया करता है,' कहा है—ग्रहपति सूर्य के पुत्र सुग्रीव उनके हित (मित्र) रामचंद्र, उनके अनुचर हनुमान और उनका पुत्र मकरध्वज (काम) सदा जलाया करता है।

क्रिस्तानी—वि० [हिं० क्रिस्तान+ई (प्रत्य०)] १ ईसाइयों का। २ ईसाई मत के अनुसार।

क्रीखी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'। उ०—जैसे क्रीखी करै किसाना। निस शसन तेहि ततु समाना।—सं० दरिया, पृ० ६०।

क्रीज—संज्ञा स्त्री० [अं० क्रीज] १ इस्तरी करके कपड़े पर छोड़ा हुआ निशान। लोहा करते समय पतलून मे पड़ी हुई धारी। उ०—कहीं से बाल बराबर भी क्रीज बिगड़ने नहीं पाई थी।—सन्यासी, पृ० ३५७। २. क्रिकेट के खेल में वह निशान किया हुआ स्थान जिसके अंदर बल्लेवाला खेलता है। यदि खिलाड़ी उसके बाहर हो और गेंद स्टप पर लग जाय तो खिलाड़ी आउट हो जाता है। ३ सिकुड़न।

क्रीट(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० किरीट] किरीट नाम का शिरोभूषण। उ०—क्रीट मुकुट शोभा बनी शुभ अंग बनी बनमाल। सूरदास प्रभु गोकुल जनमे मोहन मदन गोपाल।—सूर (शब्द०)।

क्रीटधर(पु)-वि० [सं० किरीटधर] किरीट धारण करनेवाला (कृष्ण)। उ०—कान्हा कूरम कृपानिधि, केसव कृश्व कृपाल। कुंजबिहारी क्रीटधर, कंसासुर को काल।—दया०, पृ० १८।

क्रीड—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेल। क्रीड़ा। २ परिहास। मनोविनोद [को०]।

क्रीडक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेलनेवाला। खिलाड़ी। २ द्वाररक्षक। द्वारपाल [को०]।

क्रीडन—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेल। क्रीड़ा। २ खिलौना। खेलने की वस्तु [को०]।

क्रीडनक—संज्ञा पुं० [सं०] खिलौना [को०]।

क्रीडनीय, क्रीडनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रीडक'।

क्रीडा—संज्ञा स्त्री०[सं० क्रीडा] १ कल्लोल। केलि। आमोद प्रमोद। खेलकूद। २. ताल के सात मुख्य भेदों में से एक जिस ताल में केवल एक प्लुत हो, उसे क्रीड़ा ताल कहते हैं।—(संगीत)। ३ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे यगण और एक गुरु (।ऽऽ,ऽ) होता है। उ०—सुगो चारो। हरी तारो। करै क्रीडा। रखो व्रीडा।

क्रीडाकानन—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडा कानन] दे० 'क्रीड़ावन' [को०]।

क्रीड़ाकूट—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडा+कूट=पर्वत] दे० क्रीड़ाशैल'। उ०—बने मनोहर क्रीड़ाकूट विचित्र ये।—करुणा०, पृ० ३।

क्रीड़ाकोप—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडाकोप] खेल में रूठना। बनावटी गुस्सा [को०]।

क्रीड़ागिरि—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडागिरि] दे० 'क्रीड़ाशैल'। उ०—क्रीड़ागिरि ते अलिन की अवली चली प्रकाश।—केशव (शब्द०)।

क्रीड़ागृह—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडागृह] केलिमंदिर [को०]।

क्रीडाचक्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडाचक्र] छह यगण का एक वृत्त जिसका दूसरा नाम महामोदकारी वृत्त है। उ०—यचो यो यशोदा जु को लाडिला जो कलापूर्णधारी। जिन्हीं भक्त गावैं सदा चित्त लावै खरारी पुकारी। यही पूर्वगो सबै लालसा तो लला देवकी को। करै ताप जाको महामोदकरी सबै काम्य नीको।

क्रीडानारी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडानारी] वारवनिता। वेश्या [को०]।

क्रीड़ा भांड—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडा+भाण्ड] क्रीड़ा की वस्तु। खिलौना। उ०—जो देखियत यह विस्व पसारो। सो सब क्रीड़ा भांड तुम्हारो।—नंद ग्रं०, पृ० २८२।

क्रीडामृग—संज्ञा पुं०[सं०क्रीडामृग] खेल के लिये पाला हुआ हरिन [को०]।

क्रीडारत—वि० [सं० क्रीडारत] खेल मे लगा हुआ। खिलवाड़ मे मग्न। उ०—उमड सृष्टि के अंतहीन अंबर से घर से क्रीडरत बालक से।—अपरा०, पृ० ३३।

क्रीडारत्न—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडारत्न] रति कार्य। मैथुन क्रिया [को०]।

क्रीडारथ—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडारथ] फूलों का रथ।

क्रीडावन—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडावन] पाई बाग। नजर बाग।

क्रीड़ाशैल—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडाशैल] बनावटी पर्वत। नकली पर्वत।

क्रीडित—संज्ञा पुं० [सं० क्रीडित] १ खेल। क्रीड़ा। २ वह जो खेल चुका हो। खेला हुआ [को०]।

क्रीत[1]—वि० [सं०] क्रय किया हुआ। खरीदा या मोल लिया हुआ।

क्रीत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों मे से एक जो मोल लिया गया हो। क्रीतक। २ पंद्रह प्रकार के दासों में से एक जो मोल लिया गया हो।

क्रीत[3](पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] यश। कीर्ति। सुनाम। उ०—महाराज मोता कहूँ क्रीता सुणे नीता सूर।—रघु० रू०, पृ० १४५।

क्रीतक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक, जो माता पिता को धन देकर उनसे खरीदा गया हो। विशेष—ऐसे पुत्र का केवल अपने मोल लेनेवाले की संपत्ति के अतिरिक्त पैतृक संपत्ति पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता। आजकल इस प्रकार का पुत्र बनाने का अधिकार नहीं।

क्रीतक[2]—वि० खरीद करने से प्राप्त। क्रय से प्राप्त [को०]।

क्रीतदास—संज्ञा पुं० [सं० क्रीत+दास] खरीदा हुआ दास। गुलाम। उ०—भाइयों के शेर और क्रीतदास तुर्कों के।—अपरा, पृ० ६४।

क्रीतानुशय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार अठारह प्रकार के विवादों मे से एक। जब कोई मनुष्य किसी चीज को मोल लेने के बाद, नियमों के विरुद्ध, उसे फेरना चाहता है, तो उस समय जो विवाद उपस्थित होता है, उसे क्रीतानुशय कहते हैं।

क्रीतारथ(पु)—वि० [सं० कृतार्थ] दे० 'कृतार्थ'। उ०—रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीन्हेउ। मोर जन्म हरि आजु क्रीतारथ कीन्हेउ।—अकबरी०, पृ० ३३९।

क्रीन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० किरण] दे० 'किरण'। उ०—महा मोह तम पुंज अपारा। वचन तुम्हार क्रीन रविधारा।—कबीर सा०, पृ० ५२०।

क्रील(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा] दे० 'क्रीडा'। उ०—तरु पत्ता गत्ता निय वसन करि सुनि ब्रह्मा सकर हस्यौ। तिन टेर बेर बसी बजिय रास क्रील मायर रस्यौ।—पृ० रा०, २। ३५४।

क्रीलना ⓤ—क्रि० अ० [देश०] खेलना। क्रीड़ा करना।

क्रीला ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा] दे० 'क्रीड़ा' उ०—सुखसागर क्रीला करैं, पूरण परिमिति नाहिं।—दादू०, पृ० ५८२।

क्रुद्ध—वि० [सं०] १ कोपयुक्त। क्रोध में भरा हुआ। २ क्रूर। निर्दय [को०]।

क्रुमुक—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

क्रुश्वा—संज्ञा पुं० [सं० क्रुश्वन्] शृगाल। सियार। गीदड़।

क्रुष्ट[1]—वि० [सं०] १ आहूत। पुकारा या बुलाया हुआ। २ तिरस्कृत। कोसा हुआ। अपमानित [को०]।

क्रुष्ट[2]—संज्ञा पुं० १ चीखना। चिल्लाना। २ रुदन। रोना। ३. शोर गुल। आवाज [को०]।

क्रुजर—संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाला सशस्त्र या हथियारबंद जहाज जिसका काम अपने देश के जहाजों की रक्षा करना और शत्रु के जहाजों को नष्ट करना या लूटना है। यह युद्ध के अवसर पर भी काम आता है। रक्षक जहाज।

क्रूर[1]—वि० [सं०] [स्त्री० क्रूरा] १. परपीड़क। दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाला। २. निष्ठुर। निर्दय। जालिम। ३ कठिन। ४ तीक्ष्ण। तीखा। ५ उष्ण। गरम। ६. नीच। बुरा। खराब। ७. घोर।—(डिं०)। ८ अपक्व। कच्चा (को०)। ९. घायल। आहत (को०)। १० खूनी। हिंसक (को०)। ११. ठोस। कड़ा (को०)।

क्रूर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पका हुआ चावल। भात। २ लाल कनेर। ३ बाज पक्षी। ४ सफेद चील। कंक। ५ भूनाकुश। गात्र-जुवां। ६. ज्योतिष में विषम (पहली, तीसरी, पाँचवीं, सातवीं, नवीं और ग्यारहवीं) राशियाँ। ७. रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु ये पाँच ग्रह जिन्हें पापग्रह भी कहते हैं।

विशेष—जिस राशि में कोई पापग्रह हो उसमें यदि कोई शुभग्रह आ जाय, तो वह भी क्रूर कहलाता है। पाराशर के मत से लग्न से तीसरे, छठे या ग्यारहवें घर का स्वामी—चाहे जो ग्रह हो—क्रूर या पापग्रह कहलाता है। क्रूरग्रहयुक्त तिथि या नक्षत्र में यात्रा या विवाह आदि शुभ कर्म वर्जित है।

८ वध। हत्या (को०)। ९. आघात। घाव। चोट (को०)। १०. एक प्रकार का घोड़ा जो अशुभ माना गया है (को०)। ११ क्रूरता। निर्दयता। १२. भीषण आकृति या रूप (को०)।

क्रूरकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० क्रूरकर्मन्] १ क्रूर काम करनेवाला। २ तितलौकी का पेड़। ३. सूरजमुखी। अर्कपुष्पी।

क्रूरकोष्ठ—वि० [सं०] जिसका कोठा बहुत कड़ा हो। जिसका पेट कड़ी दस्तावर दवाओं से भी साफ न हो।

क्रूरगंध—संज्ञा पुं० [सं० क्रूरगन्ध] गंधक।

क्रूरग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रूर' ६ और ७।

क्रूरचरित—वि० [सं०] निर्दय। क्रूरकर्मा [को०]।

क्रूरचेष्टित—वि० [सं०] दे० 'क्रूरचरित' [को०]।

क्रूरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निष्ठुरता। निर्दयता। कठोरता। २. दुष्टता।

क्रूरदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रूरदन्ती] दुर्गा का एक नाम।

क्रूरदृक्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शनिग्रह। २. मंगल ग्रह।

क्रूरदृक्[2]—वि० १ दुष्ट। खल। २. बुरी दृष्टिवाला (को०)।

क्रूरधूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण धत्तूर। काला धतूरा [को०]।

क्रूररव—संज्ञा पुं० [सं०] स्यार। शृगाल [को०]।

क्रूररावी—संज्ञा पुं० [सं० क्रूरराविन्] द्रोण काक। डोम कौआ [को०]।

क्रूरलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह [को०]।

क्रूरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाल फूल की गदहपूर्ना। २. कौड़ी।

क्रूरा[2]—वि० स्त्री० क्रूर स्वभाववाली।

क्रूराकृति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रावण। दशमुख [को०]।

क्रूराकृति[2]—वि० डरावने रूपवाला [को०]।

क्रूराचार—वि० [सं०] निर्दय आचरणवाला [को०]।

क्रूरात्मा[1]—वि० [सं० क्रूरात्मन्] दुष्ट प्रकृति का। दुष्टस्वभाववाला।

क्रूरात्मा[2]—संज्ञा पुं० शनिग्रह।

क्रूराशय—वि० [सं०] १. निर्दय या कठोर स्वभाव का। २. भयंकर जीवों से युक्त (नदी, नद आदि) [को०]।

क्रूस—संज्ञा पुं० [अं० क्रास] ईसाइयों का एक प्रकार का धर्मचिह्न जिसका आकार त्रिशूल से मिलता जुलता होता है और जिसमें दो रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई होती हैं। यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—†, †, ×। सलीब।

विशेष—इस चिह्न का अभिप्राय उस सूली से है, जो ईसा के मारने के लिये खड़ी की गई थी और जिसका आकार † था। उन दिनों रोमन लोग इसी प्रकार की सूली पर अपराधियों को चढ़ाते थे।

क्रेडिट—संज्ञा पुं० [अं०] बाजार में वह मान मर्यादा जिसके कारण मनुष्य लेना देन कर सकता हो। साख। जैसे,—बाजार में अब उनका कोई क्रेडिट नहीं रहा, अब वे एक पैसे का भी माल नहीं ले सकते।

क्रेता—संज्ञा पुं० [सं० क्रेतृ] खरीदनेवाला। मोल लेनेवाला। खरीददार।

क्रेतृघसर्ष—संज्ञा पुं० [सं० क्रेतृसङ्घर्ष] खरीदनेवालों की चढ़ा ऊपरी।—[को०]।

क्रेय—वि० [सं०] खरीदने लायक [को०]।

क्रैडिन—संज्ञा पुं० [सं०] साकमेध यज्ञ का एक हवि जो मरुत देवता के उद्देश्य से दिया जाता है।

क्रैडिनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

क्रौंच—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] क्रौंच पर्वत।

क्रोड[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आलिंगन में दोनों बाँहों के बीच का

क्रित (५)—संज्ञा पुं० [सं० कृत्य] दे० 'कृत्य'। उ०—पति हित जो त्रिय क्रत मान मुक्के सु मोह धर।—पृ० रा० २।४१३।

क्रिम—संज्ञा पुं० [सं० क्रिमि] दे० 'क्रिमि'। उ०—जे गुरुधन हरता संसारा। क्रिम कूप महँ परत निहारा।—कबीर सा०, पृ० ४६५।

क्रिमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीड़ा। कीट। २ पेट का एक रोग।
विशेष—दे० 'कृमि'।

क्रिमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्रिमि' [को०]।

क्रिमिकोंड—संज्ञा पुं० [सं० क्रिमिकोण्ड] चोल देश के एक राजा का नाम।
विशेष—यह कट्टर शैव था और इसने अपने देश के सब पंडितों से लिखवा लिया था कि शिव सर्वोत्कृष्ट देवता हैं। इसने रामानुज स्वामी को कैद भी करना चाहा था, पर सफलता नहीं हुई।

क्रिमिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमराजी [को०]।

क्रिमिज—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु। अगर [को०]।

क्रिमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

क्रिमिनल—वि० [अं०] अपराधी।

क्रिमिनल इनवस्टिगेशन डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप सी० आई० डी०] सरकार का वह विभाग या महकमा जो अपराधों का गुप्त रूप से अनुसंधान करता है। भेदिया विभाग। खुफिया महकमा। भेदिया पुलिस। खुफिया पुलिस। सी० आई० डी०।

क्रिमिनल प्रोसीजर कोड—संज्ञा पुं० [अं०] अपराध और दंड संबंधी विधानों का संग्रह। दंडविधान। जाब्ता फौजदारी।

क्रिमिभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

क्रिमिशैल—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बाँबी [को०]।

क्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] मेष राशि।

क्रियमाण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो किया जा रहा हो। वह जो हो रहा हो। २ कर्म के चार भेदों में से एक। वि० दे० 'कर्म'।

क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी प्रकार का व्यापार। किसी काम का होना या किया जाना। कर्म। २ प्रयत्न। चेष्टा। हिलना डोलना ३ अनुष्ठान। आरंभ। ४ व्याकरण का वह अंग, जिससे किसी व्यापार का करना या कराना पाया जाय। जैसे, आना, जाना, मारना इत्यादि। ५ शौच आदि कर्म। नित्यकर्म। स्नान, संध्या तर्पण आदि कृत्य। उ०—प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोद प्रेम मन माहीं।—तुलसी (शब्द०)। ६ श्राद्ध आदि प्रेतकर्म। उ०—अविरल भगति माँगि वर गीध गयउ हरिधाम। तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्हीं रामा।—तुलसी (शब्द०)।
यौ०—क्रिया कर्म = मृतक कर्म। अंत्येष्टि क्रिया।
७ प्रायश्चित्त आदि कर्म। ८ उपाय। उपचार। चिकित्सा। ९ न्याय या विचार का साधन। मुकदमे की कारवाई। १० अध्यापन। शिक्षण (को०)। ११ किसी कथा पर आधिपत्य या उसका भाग (को०)। १२ चालचलन। व्यवहार (को०)। १३ कार्य की विधि (को०)। १४ कोई भी साहित्यिक रचना (को०)।

क्रियाकलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ शास्त्रानुसार विहित आचार या कर्म। २ किसी व्यवसाय का समस्त विवरण [को०]।

क्रियाकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोगनिदान की एक विशेष पद्धति। चिकित्सा का प्रकारविशेष। २ रोगनिर्णय। ३ काव्यरचना की विधि [को०]।

क्रियाकांड—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाकाण्ड] वह शास्त्र जिसमें यज्ञादि का विधान हो। कर्मकांड।

क्रियाकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य करनेवाला व्यक्ति। २ नि[illegible]रंभ करनेवाला छात्र। ३ इकरारनामा [को०]।

क्रियाक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कार्यक्रम। कार्य करने का ढंग। उ०—दादा भाई के क्रियाक्रम को भी जानते थे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३२०।

क्रियाचतुर—संज्ञा पुं० [सं०] शृंगार रस में नायक का एक भेद। वह नायक जो क्रिया या बात में चतुर हो, और उसकी सहायता से प्रीतिकार्य साधे। उ०—करै क्रिया चातुरी जो नायक रसलीन। क्रियाचतुर ताको कहत कवि 'मतिराम' प्रवीन।—मति० ग्रं०, पृ० ३२८।

क्रियाचार—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और आचरण। अनेक प्रकार के काम। उ०—पावन संस्कारों के द्युतिज, ये क्रियाचार करते निश्चित।—ग्राम्या, पृ० ३३।

क्रियातंत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रियातन्त्र] १ तंत्र के चार सोपानों में से एक। २ युद्ध [को०]।

क्रियातिपत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रस्तुत से भिन्न कल्पना करके विषय का वर्णन किया जाय। जैसे,—सजनी यदि सहस्र दृग धरिहै। तुव सुंदरता निर्णय करिहै।
विशेष—कुछ लोग इसे अतिशयोक्ति का एक भेद और कुछ लोग संभावना अलंकार के अंतर्गत मानते हैं। व्याकरण शास्त्र में भी यह शब्द प्रयुक्त है।

क्रियात्मक—वि० [सं०] व्यावहारिक। उ०—हिंदी के ये सदा से परम भक्त रहे हैं और जिन जिन संस्थाओं में ये रहे उन सब में ही हिंदी की प्रगति क्रियात्मक रूप से करते रहे हैं।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १२।

क्रियाद्वेषी—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाद्वेषिन्] धर्मशास्त्र में वह प्रतिवादी जो साक्षी और प्रमाण आदि को न माने।
विशेष—ऐसा प्रतिवादी पाँच प्रकार के हीन प्रतिवादियों में माना गया है।

क्रियानिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] गवाही। साक्षी [को०]।

क्रियानिष्ठ—वि० [सं०] स्नान, संध्या, तर्पण आदि नित्यकर्म करनेवाला।

क्रियापथ—संज्ञा पुं० [सं० क्रिया + पथ] कर्मकांड। उ०—क्रियापथ श्रुति ने जो भाष्यो सो सब असुर मिटायो। बृहद्भानु ह्वै कै हरि प्रगटे क्षण में फिरि प्रगटायो।—सूर (शब्द०)।

क्रियापटु—वि० [सं०] कार्यकुशल। काम में दक्ष [को०]।

क्रियापथ—संज्ञा पुं० [सं०] औषधोपचार की रीति। दवा करने का ढंग [को०]।

क्रियापद—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में क्रिया अथवा क्रियावाचक शब्द० [को०]।

क्रियापर—वि० [सं०] कर्तव्यनिष्ठ।

क्रियापवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] क्रिया की पूर्ति। कार्य की समाप्ति [को०]।

क्रियापाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ शैव दर्शन के अनुसार विद्यापाद आदि चार पादों में से दूसरा पाद, जिसमें दीक्षा विधि का अंग और उपांग सहित प्रदर्शन हो। २. धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहार (मुकदमे) के चार पादों या विभागों में से एक, जिसमें वादी के कथन और प्रतिवादी के उत्तर लिखाने के उपरांत वादी अपने कथन या दावे के प्रमाण आदि उपस्थित करता है। वि० दे० 'व्यवहार'।

क्रियाफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदांत की परिभाषा में कर्म के चार फल या परिणाम, अर्थात् उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और संस्कृति।
विशेष—मीमांसा के गुणकर्म या उसके फल के भी ये ही चार भेद किए गए हैं।

क्रियाब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं० क्रियाब्रह्मन्] ब्रह्म का वह रूप जो विश्व के सभी कर्मों का संपादन करता है।

क्रियाभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार किसी दूसरे का खेत इस शर्त पर जोतने के लिये लेना कि उसमें जो अनाज उत्पन्न हो, वह खेत का मालिक और जोतनेवाला दोनों आधा बाँट लें। अधिया।

क्रियामातृका दोष—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें उन्हें जन्म के दसवें दिन, मास या वर्ष ज्वर, कंप और अधिक मल मूत्र होता है।

क्रियामाधुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु अथवा कला का निर्माणगत सौंदर्य [को०]।

क्रियायोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुराणों के अनुसार देवताओं की पूजा करना और मंदिर आदि बनवाना। २ क्रिया के साथ संबंध ३ तरकीब और साधन का प्रयोग।

क्रियार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वेद में यज्ञादि कर्म का प्रतिपादक विधि-वाक्य।
विशेष—मीमांसा ने ऐसे ही वाक्य को प्रमाण माना है।

क्रियार्थकसंज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह संज्ञा जो किसी क्रिया का भी काम देती है।

क्रियालक्षण योग—संज्ञा पुं० [सं०] जप और ध्यानादि द्वारा आत्मा और ईश्वर का संबंध स्थापित करना।

क्रियालोप—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदू धर्म में विहित प्रमुख संस्कारों या नित्यनैमित्तिक कर्मों का त्याग [को०]।

क्रियावसन्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह वादी जो साक्षी या प्रमाण न देने के कारण हार जाय।

क्रियावाचक—वि० [सं०] क्रिया का बोध करानेवाला। क्रियार्थक [को०]।

क्रियावाची—वि० [सं० क्रियावाचिन्] दे० 'क्रियावाचक' [को०]।

क्रियावाद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान, कर्म और उपासना नामक तीन वैदिक कांडों में से कर्मकांड को मान्यता प्रदान करना। कर्मवाद। कर्म को प्रधानता देनेवाला सिद्धांत। उ०—क्रियावाद वह मत है जिसके अनुसार आत्मा कर्मों से प्रभावित होती है।—हिंदु० सभ्यता०, पृ० २२७।

क्रियावादी—संज्ञा पुं० [सं० क्रियावादिन] वादी अभियोक्ता [को०]।

क्रियावान्—वि० [सं०] कर्मप्रवृत्त। कर्मनिष्ठ। कर्मठ।

क्रियावाही—वि० [सं० क्रिया + वाही] कर्म का वहन करनेवाला। कर्म का भार उठानेवाला। उ०—वास्तव में, इतिहास तो मानवी क्रियावाही समर्थताओं तथा उनसे उद्भूत कारनामों का, मानसिक शक्तियों से जनित विविध घटनाओं का एवं विकासक्रम के मूल में संयोजित विशेष प्रवृत्तियों का पुंजीभूत आलेखन है।—आ० भा०, पृ० ३५।

क्रियाविदग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो नायक पर किसी क्रिया द्वारा अपना भाव प्रकट करे।

क्रियाविशेषण—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह शब्द जिससे क्रिया के किसी विशेष काल, भाव या रीति आदि का बोध हो। जैसे, अब, तब, यहाँ, वहाँ, क्रमश, अचानक इत्यादि। जैसे,—(क) वह धीरे धीरे चलता है। (ख) वह अब जायगा।

क्रियाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ब्रह्मांड की सृष्टि का होना माना जाता है। सांख्य में इसी को प्रकृति और वेदांत में माया कहा है।

क्रियाशील—वि० [सं०] क्रियावान्। कर्मठ। कर्मनिष्ठ [को०]।

क्रियाशून्य—वि० [सं०] कर्महीन।

क्रियासंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रियासङ्क्रान्ति] ज्ञानदान। शिक्षण [को०]।

क्रियास्नान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार स्नान की एक विधि, जिसके अनुसार स्नान करने से तीर्थस्थान का फल होता है।

क्रियेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रियेन्द्रिय] कर्मेंद्रिय [को०]।

क्रिश्चन—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] दे० 'क्रिस्तान'। उ०—घरवालों का कौतूहल बढ़ चला। इस समय काशी में जोरों से लोग क्रिश्चन बन रहे थे।—काले०, पृ० ६४।

क्रिसन दीपायन (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णद्वैपायन] वेदव्यास। उ०—बालमीक रिषिराज क्रिसन दीपायन धारिय। कोटि जनम समवै तोय हरि नाम अपारिय।—पृ० रा०, २।५८६।

क्रिसान (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु] दे० 'कृशानु' उ०—मग्गे सुदति पंतिय विरूर। पलकंत मद्दु मद भरत भूर। धजनेज चमर वंवर विनान। मन हु कि पव्व पल्लव क्रिसान।—पृ० रा०, १।६२४।

क्रिस्टल—संज्ञा पुं० [अं०] १. स्फटिक। बिल्लौर। २ ओले आदि का जमा हुआ रवादार टुकड़ा। कलम।

क्रिस्तान—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] ईसा के मत पर चलनेवाला। ईसाई।

क्रमविकास—संज्ञा पुं० [सं०] धीरे धीरे होनेवाला विकास। क्रमश उन्नति [को०]।

क्रमश—क्रि० वि० [सं० क्रमशस्] १ क्रम से। सिलसिलेवार। २ धीरे धीरे। थोड़ा थोड़ा करके।

क्रमसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रम को व्यक्त करनेवाली संख्या या सिलसिला।

क्रमसंन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वह संन्यास जो क्रम से अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ आश्रम मे रह चुकने के बाद लिया जाय।

क्रमांक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमाङ्क] दे० 'क्रमसंख्या'।

क्रमागत—वि० [सं०] १ क्रमश किसी रूप को प्राप्त। जो धीरे धीरे होता आया हो। २ जो सदा से होता आया हो। परंपरागत।

क्रमानुकूल—क्रि० वि० [सं०] श्रेणी के अनुसार। नियमानुसार। क्रम के अनुसार। क्रम से। सिलसिलेवार।

क्रमानुयायी—वि० [सं० क्रमानुयायिन्] उत्तरवर्ती। परंपराप्राप्त। उ०—चंद्रसेन का उत्तराधिकारी कीर्तिसिंह और क्रमानुयायी रामसिंह (दूसरा) हुआ।—राज०, पृ० ११८३।

क्रमानुसार—क्रि० वि० [सं०] क्रमश। क्रमानुकूल।

क्रमान्वय—क्रि० वि० [सं०] क्रम से। एक के बाद एक।

क्रमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीड़ा। कृमि। २. पेट का एक रोग जिसमें आँतो मे छोटे छोटे सफेद कीड़े पैदा हो जाते हैं। इन कीड़ों को चुन्ना या चुनूना कहते हैं।

क्रमिक—क्रि० वि० [सं०] १ क्रमयुक्त। क्रमागत। २ परंपरागत।

क्रमिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रमिक+ता] क्रमबद्ध होने की स्थिति। उ०—इस क्रमिकता और परिच्छिन्नता के कारण इसमें प्रेम तत्व अधिक गाढ़ और मानदमूलक होता है।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६३७।

क्रमी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि'। उ०—किल भिसटा भसमी क्रमी, इण नर तन सुं थाय।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ४६।

क्रमु—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुपारी का वृक्ष [को०]।

क्रमुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुपारी का पेड़। उ०—घर घर तोरण विमल पता के कंचन कुंभ धराए। क्रमुक रंभ के खंभ विराजत पथ जल सुरभि सिंचाए।—रघुराज (शब्द०)। २ नागरमोथा। ३ कपास का फल। ४ शहतूत का पेड़। ५ पठानी लोध। ६ एक प्राचीन देश का नाम।

क्रमुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी का पेड़ [को०]।

क्रमेल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रमेलक'।

क्रमेलक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट। शुतुर। उ०—मनहुँ क्रमेलक पीठ पै धरयो गोल घटा लसत।—रस०, पृ० ४९।

क्रमोद्वेग—संज्ञा पुं० [सं०] बलीवर्द। वृषभ। बैल [को०]।

क्रम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्म > क्रम(पु)] दे० 'कर्म'। उ०—सब सौति कह्यो दुप सुनहु तुम्म। राजन्न तनय हम सों न क्रम्म।—पृ० रा० १।३७५।

क्रय—संज्ञा पुं० [सं०] मोल लेने की क्रिया। खरीदने का काम। खरीद। क्रयण।

यौ०—क्रयक्रीत = खरीदा या मोल लिया हुआ। क्रयलेख्य = विक्रय पत्र। बैनामा। दानपत्र। क्रयविक्रय = खरीदने और बेचने की क्रिया। व्यापार। क्रयविक्रयिक = व्यापारी। सौदागर।

क्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] खरीद। क्रय। खरीदना [को०]।

क्रयलेख्यपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पदार्थ के क्रय विक्रय संबंधी पत्र।—(शुक्रनीति)।

क्रयविक्रयानुशय—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार अठारह प्रकार के विवादों मे से एक।

विशेष—दे० 'क्रीतानुशय'।

क्रयारोह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ खरीदने बेचने का काम होता है। हाट। बाजार। मंडी।

क्रयिक—वि० पुं० [सं०] १ व्यापारी। बेचनेवाला। २ खरीदनेवाला [को०]।

क्रयिम संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह कर या टैक्स जो माल खरीद या बिक्री पर लिया जाय।

क्रयी—संज्ञा पुं० [सं० क्रयिन्] मोल लेनेवाला। खरीदनेवाला।

क्रयोपघात—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पदार्थ के खरीदने को रोकना। पदार्थ के क्रय मे रुकावटें डालना।

क्रय्य—वि० [सं०] जो बिक्री के लिये रखा जाय। जो चीज बेचने के लिये हो।

क्रवान(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] कृपाण। तलवार। उ०—चल विचलसान नीसान मुख गहि क्रवान कर मे कढ़िय।—सुजान०, पृ० २०।

क्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मास। गोश्त।

क्रव्याद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मास खानेवाला। वह जो मास खाता हो। जैसे, राक्षस, गिद्ध, सिंह आदि। उ०—लंका के क्रव्याद वहाँ आकर चरते थे।—साकेत, पृ० ४१६। २ वह आग जिससे शव जलाया जाता है। चिता की आग।

क्रशित—वि० [सं०] दुर्बल। क्षीणकाय [को०]।

क्रशिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुबलापन। क्षीणता [को०]।

क्रस[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'। उ०—ज्यों क्रस भजे तन गलै घण गोलक तन लग्ग।—रा० रू० पृ० १०२।

क्रस[2](पु)—वि० [सं० कृश] दुर्बल। कृश। उ०—तहाँ सु अंबतर रिष्य इक क्रस तन अंग सरंग। दव दद्धौ जजु द्रुम कोइ, कै कोइ भूत भुअंग।—पृ० रा०, ६।१७।

क्रसान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु] दे० कृशानु'। उ०—वियो सदय सुण निज युई, टीटम हूत क्र ान। उणरा बान उबारिया महामंत्र जस मान।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ५१।

क्रसोदर(पु)—वि० [सं० कृशोदर] दे० 'कृशोदर'। उ०—लौद लचीली लौं लचति घालत नहिं सकुचात। लगि जैहैं वोदर लला वहै क्रसोदर गात।—स० सप्तक, पृ० २४३।

क्रस्न(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'।—अनेकार्थ०, पृ० ९१।

क्रस्नफला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णफला] काली मिर्च। गोल मिर्च। अनेकार्थ०, पृ० ८०।

क्रांत[1]— वि० [सं० क्रान्त] १ जिसे कोई वस्तु ऊपर से आकार छेंके हो। जिसे कोई वस्तु ऊपर से छोपे हो। दबा या ढका हुआ। २ जिसपर आक्रमण हुआ हो। ग्रस्त। उ०—महाबली विक्रम विक्रांत क्रांत मदर गिरि कीन्हे।—रघुराज (शब्द०)।
यौ०—भाराक्रांत।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
३. आगे बढ़ा हुआ। अतीत।
यौ०—सीमाक्रांत।
क्रि० प्र०—करना —होना।
४ गत। गया हुआ (को०)।

क्रांत[2]—संज्ञा पुं० १. घोड़ा। २. पैर। ३. कदम। डग (को०)। ४. जाना। गमन। चलना (को०)। ५ किसी ग्रह के साथ चंद्र का योग होना (को०)।

क्रांतदर्शी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्तदर्शिन्] १ ईश्वर। परमेश्वर। २ त्रिकालदर्शी। सर्वज्ञ।

क्रांति[1]— संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्ति] १ डग भरने की क्रिया। कदम रखना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन। गति। २. खगोल में वह कल्पित वृत्त, जिसपर सूर्य पृथ्वी के चारो ओर घूमता जान पड़ता है।
पर्या०—अपमंडल। अपवृत्त। अपक्रम। अपम।
यौ०—क्रांतिक्षेत्र। क्रांतिज्या। क्रांतिपात। क्रांतिभग। क्रांतिमंडल। क्रांतिमाला। क्रांतिवलय। क्रांतिवृत्त।
३ खगोलीय नाडीमंडल से किसी नक्षत्र की दूरी। ४ एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन। फेरफार। उलट फेर। जैसे, राज्यक्रांति।

क्रांति(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्ति] शोभा। तेजस्विता। उ०—(क) कहा क्रांति छवि बरनो बरनत बरनि न जाय।—कबीर श०, भा० ४. पृ० २६ (ख) षोडश भान हंस की क्रांती। अमर चीर पहिरै बहु भाँती।—कबीर सा०, पृ० १००२।

क्रांतिकक्ष—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिकक्ष] दे० 'क्रांतिवृत्त'।

क्रांतिकारी[1]—वि० [सं० क्रान्तिकारिन्] किसी व्यवस्था मे उलट फेर या परिवर्तन करनेवाला। इनकलाब लानेवाला।

क्रांतिकारी[2]—संज्ञा पुं० सत्ता को उलट देने का प्रयास करनेवाला व्यक्ति। उ०—क्रांतिकारियों को यह ज्ञात हो जाता कि जो कुछ वे कर रहे थे उसमे उन्हें गांधी जी का समर्थन प्राप्त न था।—भारतीय०, १९८।

क्रांतिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिक्षेत्र] गणित मे वह क्षेत्र जो क्रांति निकालने के लिये बनाया जाय।

क्रांतिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्तिज्या] क्रांतिवृत्त क्षेत्र मे अक्षक्षेत्र का एक अंग। वि० दे० 'ज्या'।

क्रांतिपात—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिपात] वे बिंदु जिनपर क्रांतिवलय और खगोलीय विषुवत की रेखाएँ एक दूसरी को काटती हैं।
विशेष—जब इन बिंदुओं पर पृथ्वी आती है, तब रात और दिन बराबर होते हैं।

क्रांतिभाग—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिभाग] खगोलीय नाडीमंडल से क्रांतिमंडल के किसी बिंदु की दूरी।

क्रांतिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिमण्डल] वह वृत्त जिसपर सूर्य पृथ्वी के चारो ओर घूमता हुआ जान पड़ता है। उ०—विषुव और क्रांतिमंडल के मिलन को क्रांतिपात कहते हैं।—बृहत्०, पृ० ६।

क्रांतिवलय—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिवलय] दे० 'क्रांतिवृत्त' (को०)।

क्रांतिवृत्त — संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिवृत्त] सूर्य का मार्ग।

क्रांतिसाम्य—संज्ञा पुं० [सं० क्रान्तिसाम्य] ज्योतिष मे ग्रहों की तुल्यक्रांति।
विशेष—यद्यपि सब ग्रहों की तुल्यक्रांति होती है, तथापि सूर्य और चंद्र के क्रांतिसाम्य मे मंगलकार्य वर्जित है।

क्राइस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] ईसा मसीह।

क्राउन—संज्ञा पुं० [अं०] १ राजमुकुट। ताज। २ राजा। सम्राट्। शाह। सुल्तान ३ राज्य। ४ छापने के कागज की एक नाप जो १५ इंच चौडी और २० इंच लंबी होती है।
यौ०—डबल क्राउन = क्राउन से दूना। ३० इंच लंबा और २० इंच चौड़ा।—(छापाखाना)।

क्राउन कालोनी—संज्ञा पुं० [अं०] वह कालोनी या उपनिवेश जो किसी राज्य या साम्राज्य के अधीन हो। राज्य या साम्राज्यांतर्गत उपनिवेश।

क्राउन प्रिंस—संज्ञा पुं० [अं०] किसी स्वतंत्र राज्य का राजसिंहासन का उत्तराधिकारी। युवराज। जैसे,—अफगानिस्तान के क्राउन प्रिंस।

क्राकचिक—संज्ञा पुं० [सं०] आरे से लकड़ी चीरनेवाला आराकश (को०)।

क्राथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करना २. एक नाग का नाम। ३ एक बंदर का नाम जिसने राम-रावण-युद्ध में सेनापति का काम किया था। ४. एक राजा का नाम जो राहुग्रह के अवतार माने जाते हैं। उ०—चल्यो क्राथ नरनाथ माथ पर मुकुट मनोहर।—गोपाल (शब्द०)। ५ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रायक क्रायिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारी। व्यवसायी। २. खरीददार। ग्राहक (को०)।

क्राल(पु)—वि० [सं० कराल] भयंकर। भयावह। उ०—क्राल क्रान की नाहीं सारा। ऊँचे कवच सीस जमु मारा।—प्राण०, पृ० २१०।

क्रिकेट— संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का अंगरेजी ढंग का गेंद का खेल, जो ग्यारह ग्यारह आदमियों के दो दल मे खेला जाता है। गेंद। बल्ला।
यौ०—क्रिकेट बैट—क्रिकेट खेलने का बल्ला।

क्रिचयन—संज्ञा पुं० [सं० कृच्छ्र चान्द्रायण] चांद्रायण व्रत।

क्रिछ(पु)[1]—वि० [सं० कृच्छ्र] दे० कृच्छ्र'। उ०—देवित' क्राड़ कथा सो, प्रान होत जो हाथ। बाज प्रान मन बल्लन, प्रान क्रिछ क्रिछ साथ।—इंद्रा०, पृ० १६०।

खूब ? धन्य हो ? (२) ऐसी विलक्षण बात क्यों न कहोगे ? छि !—(व्यंग्य)।

२ Ⓟ किस भाँति ? किस प्रकार ? कैसे ? उ०—क्यों बसिए क्यों निबहिए, नीति नेह पुर नाहिं। लगा लगी लोयन करैं, नाहक मन बँध जाहिं।—बिहारी (शब्द०)।

क्योड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० केवडा] दे० 'केवड़ा'। उ०—अब तुम जाय घरो श्रौतारा। क्योड़ा केतकी नाम तुम्हारा।—कबीर सा० पृ०, ३१।

क्योनारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोइल री'।

क्यों Ⓟ—क्रि० वि० [हिं० क्यों] किसी प्रकार। उ०—क्यौं हू लुकत न लाज निगोड़ी दिवस सुप्रेम उरँधु।—नद ग्र ०, पृ० ३८८।

क्रंत Ⓟ—वि० [सं० कान्त] सुंदर। मनोहर। उ०—बहुरूपी रूपन बनि आवहिं। क्रत गीत असमजस गावहिं।—प० रासो, पृ० २३।

क्रंति Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रान्ति] दे० 'काति'। उ०— तप्यो हेम ज्यौं देह की क्रंति सोहै। सुजोती रवी कोटि दिव्यंत मोहैं।—पृ० रा०, २। १६०।

क्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० क्रन्दन] १, रोना। विलाप। २. युद्ध के समय वीरो का आह्वान। ३ गर्जन। उ०—प्यारी अक दूरि रही ऐसें, जैसे केहरि क्रंदन सुनि मृगछौनी।—नंद० ग्र ०, पृ० ३७३। ४ मार्जार। बिडाल।

क्रंदित¹—वि० [सं० क्रन्दित] १ ललकारा हुआ। आह्वान किया हुआ। २ रुदित। रोया हुआ [को०]।

क्रंदित²—संज्ञा पुं० १ रोदन। विलाप। २ ललकार। चुनौती [को०]।

क्रकच—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योतिष मे एक योग जो उस समय पड़ता है जब वार और तिथि की संख्या का जोड़ १३ होता है।

विशेष—इसकी गणना के लिये रविवार को पहला, सोमवार को दूसरा मगल को तीसरा और इसी प्रकार शनिवार को सातवाँ दिन मानते और उसी दिन को संख्या को तिथि की संख्या मे जोडते हैं। जैसे, यदि शुक्रवार को सप्तमी, वृहस्पति को अष्टमी बुध को नवमी या रवि को द्वादशी हो, तो क्रकच योग होता है। इस योग मे कोई शुभ कार्य करना वर्जित है।

२. करीत का पेड़। ३ आरा। करवत। ४ एक प्रकार का बाजा। ५ एक नरक का नाम। ३ गणित मे एक प्रकार की क्रिया जिसके अनुसार लकड़ी के तख्ते चीरने की मजदूरी स्थिर की जाती है।

यौ०—क्रकचच्छद = केतक वृक्ष। क्रकचपत्र = सागौन वृक्ष। क्रकचपृष्ठी = कवई नाम की मछली।

क्रकचपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिरगिट। २ छिपकली [को०]।

क्रकचव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियो के ढेर को गिनने का एक प्रकार [को०]।

क्रकचा—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी।

क्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ करील का पेड़। २ किलकिला नाम की चिड़िया। ३ केकड़ा। ४ आरा। करवत। ५ दरिद्र। ६. रोग (को०)।

क्रकरट—संज्ञा पुं० [सं०] भरत नामक पक्षी [को०]।

क्रकुच्छंद—संज्ञा पुं० [सं० क्रकुच्छन्द] भद्रकल्प के पाँच बुद्धों मे से पहले बुद्ध।

क्रक्कस Ⓟ†—वि० [सं० कर्कश] कठोर। दृढ। उ०—सुनि साहाब वजीर बोलि बल की अप्पानौ। क्रक्कस कर तें पर कमान तानी लगि कानौ।—पृ० रा०, १२। १४८।

क्रतत Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कृतान्त] कृतांत। काल। उ०—हुवँ कि हाक हुक्कय, तवँ क्रतत तक्किय।—रा० रू०, पृ० ८४।

क्रत Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० कृत] किया हुआ कार्य। कीर्ति। उ०— जग मैं वश उग्र गुण जोई। क्रत रवि वंश समो नह कोई।—रा० रू०, पृ० ८।

क्रतक—संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव के पुत्र का नाम।

क्रतयुग—संज्ञा पुं० [सं० कृतयुग] सत्य युग। प्रथम युग। उ०— यज्ञ क्रतयुग से भी पहले चलते थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ३००।

क्रतु—संज्ञा पुं० [सं०] १ निश्चय। सकल्प २ इच्छा। अभिलाषा। ३ विवेक। प्रज्ञा। ४ इंद्रिय। ५ जीव। ६ विष्णु। ७. यज्ञ विशेषत अश्वमेघ।

यौ०—क्रतुपति = विष्णु। क्रतुपशु = घोडा। क्रतुफल = यज्ञ का फल, स्वर्ग आदि।

८ आषाढ़ (प्राय यज्ञ इसी महीने मे होते हैं)। ९. ब्रह्मा के एक मानस पुत्र।

विशेष—ये सप्त ऋषियो में से एक हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हाथ से हुई थी। इनका विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या क्रिया के साथ हुआ था, जिसके गर्भ से साठ हजार बालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए थे।

१० विश्वदेवा मे से एक। ११ कृष्ण के एक पुत्र का नाम। १२. प्लक्षद्वीप की एक नदी का नाम।

क्रतुद्रुह—संज्ञा पुं० [सं०] असुर। दैत्य [को०]।

क्रतुध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट करनेवाले, शिव।

क्रतुपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ करनेवाला व्यक्ति। २ शिव [को०]।

क्रतुपशु—संज्ञा पुं० [सं०] घोडा। अश्व।

क्रतुपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञपुरुष'।

क्रतुफल—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का उद्देश्य या लक्ष्य [को०]।

क्रतुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० क्रतुभुज] वह पदार्थ जो यज्ञ मे देवताओ को अर्पण किया जाता है।

क्रतुभुज—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर।

क्रतुयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी।

क्रतुराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजसुय यज्ञ २. अश्वमेघ यज्ञ (को०)।

क्रतुविक्रयी—संज्ञा पुं० [सं०] धन लेकर यज्ञ का फल बेचनेवाला।

क्रतुस्थला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा जिसका नाम यजुर्वेद मे आया है। पुराणानुसार यह चैत्र मे सूर्य के रथ पर रहती है।

क्रतूत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ [को०]।

क्रतवर्य—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों अर्थवाद और विधान जो पुरुषार्थ की भाँति कर्ता की इच्छा के अनुसार नहीं, बल्कि शास्त्र के नियम से अनुकूल होता है। जैसे—पौर्णमास आदि यज्ञों में फल की लिप्सा या अपनी इच्छा से प्रवृत्ति होती है और इस यज्ञ या उसकी फलविधि को पुरुषार्थ कहते हैं। पर उसमें प्रवृत्त होने पर वत्सापाकरण, गोदोहन और उपवास आदि यज्ञ के अंग प्रयंग संबंधी कर्मों को शास्त्र की विधि और अर्थवाद के अनुकूल ही करना पड़ता है। इसी विधि और अर्थवाद को क्रत्वर्य कहते हैं। संपूर्ण यज्ञ जिस निमित्त किया जाय, वह फलविधि है, और यज्ञ का एक एक अंग, जिस प्रयोजन से किया जाय, वह अर्थवाद है।

क्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ विदर्भ नामक राजा का एक पुत्र और कैशिक का भाई। २ कंद का एक गण। ३ एक असुर का नाम।

क्रथकैशिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रथ और कैशिक का वंश। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

क्रथन—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवयोनि। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ३ वध। हत्या। ४. काटना (को०)।

क्रथनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सफेद मगर। २ ऊँट।

क्रद्दम—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम] दे० 'कर्दम'।

क्रन्न¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] कान। उ०—करपि मुट्ठि कम्मान तानि क्रन्न वान छनकिय।—पृ० रा० १।६३६।

क्रन्न²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किरण] किरण। कर। रश्मि। उ०—नाछिन्न छिपिग ससि क्रन्न प्रताप। उज्जास आप घन मार चाप।—पृ० रा०, २।३६५।

क्रन्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० क्रन्न] दे० 'कर्ण'। उ०—कहै व्यास सभरी क्रन्न इह उत्त प्रमान। कि जानै कि होइघरी इक घट्टन जान।—पृ० रा०, १।७०२।

क्रप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दयालु। २ कृपाचार्य।

क्रपण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृपण] कृपण। कंजूस। उ०—अैसे धीर वीर वोले, जिण सूं सूर वीर रीझे। कातर क्रपण प्राण आतुर ह्वै छीजे।—रा० रू०, पृ० ११७।

क्रपा†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'।

क्रपानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाणी] दे० 'कृपाणी'। उ०—सुनी कान वानी क्रपानी ग्रहाए।—पृ० रासो, पृ० ४८।

क्रपैनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाणी] दे० कृपाणी। (छोटी) तलवार। २ कतरनी। कैंची। कल्पनी। उ०—तुही मध्य वाँरानसी मोक्ष दैनी। कली काल दुर्पं कटन्न क्रपैनी।—पृ० रा०, १।१६७।

क्रम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर रखने की क्रिया। डग भरने की क्रिया। २ वस्तुओं या कार्यो के परस्पर आगे पीछे आदि होने का नियम। पूर्वापर संबंधी व्यवस्था। शैली। प्रणाली। तरतीब। सिलसिला। जैसे—(क) इन पौधों को किस क्रम में लगाओगे? (ख) इन शब्दों का क्रम ठीक नहीं है।

मुहा०—क्रम से=क्रमानुसार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

३ किसी कार्य के एक अंग को पूरा करने के उपरांत दूसरे अंग को पूरा करने का नियम। कार्य को उचित रूप से धीरे धीरे करने की प्रणाली।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—क्रम क्रम करके=धीरे धीरे। शनैः शनैः। उ०—जो कोउ दूरि चलन को करै। क्रम क्रम करि डग डग पग धरै।—सूर (शब्द०) क्रम से, क्रम क्रम से=धीरे धीरे।

४. वेदपाठ की प्रणाली जो दो प्रकार की है—प्रकृति रूप और विकृत रूप। प्रकृति रूप के दो भेद हैं—रूढ़ और योग। जैसे—'अग्निमीलपुरोहितम्' इस प्रकार का पाठ रूढ़ और 'अग्निम् ईळे पुरोहितम्' इस प्रकार का पाठ योग कहलाएगा। विकृत रूप के आठ भेद हैं—जटा, माला, शिख, लेखा ध्वज, दंड, रथ और घन। उ०—पढ़न लग्यो जैसा तब वेदा। पद-क्रम जठा क्रमहु बिन खेदा।—रघुराज (शब्द०)।

५. किसी कृत्य के पीछे कौन सा कृत्य करना चाहिए इसकी व्यवस्था। वैदिक विधान। कल्प। ६. आक्रमण। ७ वामन का एक नाम जिन्होंने पृथ्वी को तीन डगों में नापा था। ८ वह काव्यालंकार जिसमें प्रथमोक्त वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय। इसे संख्यालकार भी कहते हैं। जैसे—नूतन घन हिम कनक कांतिधर। खगपति वृष मराल वाहन वर। सरितपति गिरि सरसिज आलय। हरिहर विधि जगत्रय प्रतिपालय।

क्रमक¹—वि० [सं०] १ व्यवस्थित। क्रमबद्ध। २ आगे जानेवाला। अग्रगामी। [को०]।

क्रमक²—संज्ञा पुं० १ क्रमानुसार नियमित अध्ययन करनेवाला छात्र। २ वेदमंत्रों के क्रमपाठ की पद्धति को जाननेवाला [को०]।

क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर। पाँव। २ पारे के अठारह संस्कारों में से एक। ३. घोड़ा। अश्व (को०)। ४. उल्लंघन (को०)। ५ पग रखना। कदम रखना (को०)।

क्रमत—क्रि० वि० [सं० क्रमतस्] दे० 'क्रमश.' [को०]।

क्रमदंडक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमदण्डक] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमनाँ(पु)—क्रि० वि० [सं० कर्मणा] कर्म से। क्रिया द्वारा। व्यवहारत। उ०—भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुख्ख अपार। मनसा वाचा क्रमनाँ कबीर सुमिरण सार।—कबीर ग्रं०, पृ० ५।

क्रमनासा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मनाशा] दे० 'कर्मनाशा'।

क्रमपद—संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार जिसमें संहिता और पाद दोनों को मिलाकर पाठ करते हैं।

क्रमपूरक—संज्ञा पुं० [सं०] वकुल वृक्ष। मौलसिरी का पेड़।

क्रमबद्ध—वि० [सं०] क्रमानुसार व्यवस्थित। क्रमयुक्त [को०]।

क्रमभंग—संज्ञा पुं० [सं० क्रमभङ्ग] क्रम या सिलसिला टूट जाना [को०]।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चंडिका। २. राजा कुशिक की पोती और ऋचीक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। ३ कोसी नाम की नदी।

विशेष—दे० 'कोसी'।

४ *एक रागिनी। हनुमत के मत से यह मालकोश राग की आठ* भार्याओं में से एक है। कोई कोई इसे पूरिया या अजयपाल आदि के संयोग से उत्पन्न संकर रागिनी भी मानते हैं। ५.काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति। जहाँ करुण, हास्य और शृंगार रस का वर्णन हो और सरल वर्ण आवें उसे कौशिकी वृत्ति कहते हैं। दे० 'कैशिकी'।

कौशिकी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कौशिकी + का० हड़ा] एक संकर राग जो कौशिकी और कान्हड़े के योग से बनता है। इसमें सब स्वर कोमल लगते हैं।

कौशिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि।

कौशिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या'। उ०—कौशिल्या तप कर्म जो करिया। कारण कर्म राम औतरिया।—कबीर सा० पृ० ९६०।

कौशीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौषीतकी'।

कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अनाज जो कोश में उत्पन्न होते हैं। जैसे तिल आदि।

कौशीभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के पहले पहर में गाया जानेवाला एक राग [को०]।

कौशील—संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रधार। नट।

कौशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] नट या अभिनेता का कार्य [को०]।

कौशेय¹—वि० [सं०] रेशमी। रेशम का। उ०—सिकुड़न कौशेय वसन की थी विश्वसुंदरी तन पर या मादन मृदुतम कंपन छायी संपूर्ण सृजन पर।—कामायनी, पृ० २६३।

कौशेय²—संज्ञा पुं० १ रेशमी वस्त्र। २ रेशम।

कौश्माडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौश्माण्डी] वेदों की ३४ पवित्र करनेवाली ऋचाओं से से एक।

कौषारव—संज्ञा पुं० [सं०] कुषारु मुनि के पुत्र मैत्रेय।

कौषिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशिकी'।

कौषिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक देवी।

विशेष—इनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी। इनके दस हाथ हैं और इनका वाहन सिंह है। इनकी आठ सखियाँ हैं जो सदा इनके साथ रहती हैं।

२.दे० 'कौशिकी'।

कौषीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १.कुषीतक ऋषि के पुत्र और ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक। २.ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण।

कौषीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.अगस्त्य मुनि की पत्नी का नाम। २ ऋग्वेद की शाखा। ३ ऋग्वेद के अंतर्गत एक ब्राह्मण या उपनिषद्।

कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशीधान्य' [को०]।

कौषेय¹—वि० [सं०] रेशम से संबंध रखनेवाला। रेशम का। रेशमी।

कौषेय²—संज्ञा पुं० रेशम का बना हुआ वस्त्र। रेशमी कपड़ा।

कौष्ठेयक—संज्ञा पुं० [सं०] वे कर या टैक्स जो खजाने तथा वस्तु-भंडार को पूर्ण करने के लिये जनता से समय समय पर लिए जायँ।

कौसर—संज्ञा पुं० [अ०] स्वर्ग का एक कुंड या हौज। उ०—हूर एक कतरा उसका है गोहर मिसाल। के गोहर तो क्या बल्के कौसर मिसाल।—दक्खिनी०, पृ० २१४।

कौसल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौशल] दे० 'कौशल'।

कौसल्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या'।

यौ०—कौसल्यानंदन = राम।

कौसिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] दे० 'कौशिक'।

कौसिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का संकर राग (संगीत)।

कौसिला(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या'। उ०—कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहि कौसिला देव।—मानस, २।१९।

कौसीद—वि० [सं०] सूदखोर। ब्याज लेनेवाला [को०]।

कौसीद्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूदखोरी। ब्याज लेने की वृत्ति। २.आलस्य। अकर्मण्यता। [को०]।

कौसीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपिशीर्ष] कंगूर। गुंबद। उ०—(क) सोवारी रहटघाट कौसीस मकोर पुरविन्यास कथा कहुओ का—कीर्ति०, पृ० १८। (ख) कवन कोट जरे कौसीसा।—पदमावत, पृ० ४०१६।

कौसुंभ¹—वि० [सं० कौसुम्भ] कुसुंभ पुष्प का। कुसुंभरंजित। कुसुंभयुक्त [को०]।

कौसुंभ²—संज्ञा पुं० १ जंगली कुसुम। वनकुसुम। २.एक प्रकार का साग जो बहुत कोमल होता है।

कौसुम¹—वि० [सं०] १ कुसुम निर्मित। पुष्प संबंधी [को०]।

कौसुम²—संज्ञा पुं० १.पराग २ पीतल या जस्ते के भस्म से निर्मित एक अंजन। पुष्पांजन। कुसुमांजन [को०]।

कौसुरुविंद—संज्ञा पुं० [सं० कौसुरुविन्द] एक प्रकार का यज्ञ जो दस रातों में होता है।

कौसृतिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाजीगर। जादूगर। ठग। छली। बदमाश। [को०]।

कौसेय, कौसेव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौशेय] रेशमी वस्त्र। कौशेय, उ०—स्त्री निकेत समस्याम पीत कौसेव देय दुति। धूमकेत बर जलद काम उद्दित सु कोट रति।—पृ० रा, २।४१।

कौस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १, पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र मथने के समय निकला था और जिसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं। २ तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा। ३. घोड़े की गर्दन के बाल (को०) ४ एक प्रकार का तेल (को०)।

कौह—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष।

कौहर†—संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन।

कौहा—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० कौवा] वह लकड़ी जो बँड़ेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है। बहुँवाँ। कौवा।

क्या¹—सर्व० [सं० किम्] एक प्रश्नवाचक शब्द जो उपस्थित या अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है। उस वस्तु को सूचित करने का शब्द, जिसे पूछना रहता है। कौन वस्तु ? कौन

बात ? जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ में क्या है ? (ख) तुम क्या करने आए थे ?

मुहा०—क्या उखाड़ना = कुछ न कर सकना । कुछ हानि न पहुँचा सकना ।—(बाजारू) । क्या कहना है ? = (१) प्रशंसासूचक) धन्य । साधु साधु । शाबाश । वाह वा । बहुत अच्छा है । बहुत बढ़िया है । (२) (व्यंग्य) प्रशंसा के योग्य नहीं है । बहुत बुरा है । बहुत अनुचित है । बिलकुल ठीक नहीं है । जैसे,—पहला व्यक्ति—वह बहुत अच्छा लिखता है । दूसरा व्यक्ति—क्या कहना है ! क्या खूब = दे० 'क्या कहना है' । क्या क्या = सब कुछ । बहुत कुछ । क्या कुछ क्या क्या कुछ = सब कुछ । बहुत कुछ । बहुत सी वस्तुएँ । बहुत सी बातें । जैसे—(क) उसने क्या क्या कुछ नहीं दिया ? (ख) तुमने क्या क्या कुछ नहीं कह डाला । क्या यह और क्या वह = (१) जैसा यह, वैसा वह । दोनों बराबर हैं । जैसे,—(क) उसके लिये क्या अँधेरा और क्या उजाला । (ख) उसका क्या रहना और क्या न रहना । (२) जब इसी को हम कुछ नहीं समझते, तब उसको क्या समझते हैं । दोनों तुच्छ हैं । जैसे,—क्या भेड़, क्या भेड़ की लात ! यह क्या करते हो ? = (आश्चर्य और खेदसूचक) यह ठीक नहीं करते । यह बुरा करते हो । यह विलक्षण कार्य करते हो । यह क्या किया ? = दे० 'यह क्या करते हो ?' (किसी की) क्या चलाते हो = क्या प्रसंग लाते हो ? क्या चर्चा करते हो ? बात ही कुछ और है । दशा ही भिन्न है । बराबरी नहीं कर सकते । जैसे,—उनकी क्या चलाते हो ? वे अमीर हैं चाहे दस घोड़े रखें । क्या चीज है ? = नाचीज है । तुच्छ है । (किसी की) क्या चलाई = दे० 'क्या चलाते हो ।' क्या जाता है ? = क्या नुकसान होता है ? कौन सा हर्ज होता है ? कुछ हानि नहीं । जैसे,—जरा कह देना, तुम्हारा क्या जाता है ? क्या जाने = कुछ नहीं जानते । ज्ञात नहीं । मालूम नहीं । जैसे,—क्या जाने वह कहाँ गया है ? क्या आती दुनिया देखी ? = क्या कारण हुआ (जो स्वभावविरुद्ध कार्य किया ?) । क्या नाम ! = नाम स्मरण नहीं आता ।—(जब बातचीत करते समय कोई बात याद नहीं आती, तब इस वाक्य को बीच में बोलकर रुक जाते हैं । जैसे—तुम्हारे साथ उस दिन वही—क्या नाम ?—मथुराप्रसाद थे न ?) । क्या पड़ना = क्या आवश्यकता होना । कुछ जरूरत न होना । कुछ गरज न होना । जैसे,—हमें क्या पड़ी है जो हम पूछने जाँय ? क्या पूछना है ? = दे० 'क्या कहना है' । क्या हुआ ? = क्या हर्ज है । कुछ हर्ज नहीं है । कुछ परवा नहीं है । क्या बात क्या बात है ! = दे० 'क्या कहना है' । क्या से क्या हो गया = बिलकुल बदल गया । और ही दशा हो गई । क्या समझने या गिनते हैं ? = कुछ नहीं समझते । तुच्छ समझते हैं । तो फिर क्या है ! = तो और किसी बात की आवश्यकता नहीं । तो सब पूरा है । तो सब ठीक है । तो बड़ी अच्छी बात है । जैसे—वे आ जायँ, तो फिर क्या बात है ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द सर्वनाम है, तथापि इसमें विभक्ति नहीं लगती । इसी से वस्तु की जिज्ञासा के लिये दो सर्वनाम हैं—'कौन' और 'क्या' । 'कौन' में विभक्ति लग सकती है, क्या' में नहीं । 'क्या' के आगे संज्ञा आने से वह विशेषणवत् हो जाता है । जैसे,—क्या वस्तु ? इस शब्द के आगे अधिकतर वस्तु, पदार्थ, चीज आदि सामान्य शब्द विशेष्य रूप से आते हैं, विशेष जाति या व्यक्तिबोधक नहीं ।

क्या[2]—वि० १. कितना ? किस कदर ? जैसे,—इस काम में तुम्हारा क्या खर्च पड़ा ? २. बहुत अधिक । बहुतायत से । इतना अधिक ऐसा । जैसे,—(क) क्या पानी बरसा कि सब तराबोर हो गए । (ख) क्या भीड़ थी कि तिल रखने को जगह न थी । ३ कैसा । किस प्रकार का । विलक्षण ढंग का । अपूर्व । विचित्र । जैसे,—(क) वह भी क्या आदमी है । (ख) क्या क्या लोग हैं । ४ बहुत अच्छा । बहुत उत्तम । कैसा उत्तम । जैसे,—बाबू साहब भी क्या आदमी हैं कि जो मिलता है, प्रसन्न हो जाता है ।

क्या[3]—क्रि० वि० १ क्यों ? किसलिये ? किस कारण ? जैसे,—(क) तुम मुझसे क्या कहते हो । मैं कुछ नहीं कर सकता । (ख) अब हम वहाँ क्या जायँ ।

मुहा०—ऐसा क्या = ऐसा क्यों ? इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या आए, क्या चले ? = बहुत जल्दी जा रहे हो । अभी थोड़ा और बैठो । (जब कोई किसी के यहाँ आता है और जल्दी जाना चाहता है, तब उसके प्रति यह कहा जाता है) ।

२ नहीं । जैसे,—जब उसमें दम ही नहीं तो क्या चलेगा ।

क्या[4]—अव्य० केवल प्रश्नसूचक शब्द । जैसे,—क्या वह चला गया ?

मुहा०—क्या आग में डालूँ = इस वस्तु को लेकर क्या करूँ ? यह मेरे किस काम का है ।—(स्त्रियाँ खिझलाकर ऐसा बोल देती हैं) ।

क्यार[1]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० केदार] आलवाल । थाला । थाँवला । उ०—(क) भुगति भूमि किय क्यार, बेद सिंचिय जल पूरन ।—पृ०, रा०, १ । ४ । (ख) सब विधि भरत मनोरथ क्यार । ब्रज पावस नित दरसत प्यार ।—घनानंद, पृ० १८८ ।

क्यार[2]†—प्रत्य० [अव०] अवध की संबंध कारक की विभक्ति । का ।

क्यारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कियारी] दे० 'कियारी' ।

क्यों—क्रि० वि० [सं० किम्] १. किसी व्यापार या घटना के कारण की जिज्ञासा करने का शब्द । किस कारण ? किस निमित्त ? किसलिये ? किस वास्ते ? जैसे,—तुम वहाँ क्यों जा रहे हो ?

यौ०—क्योंकि = इसलिये कि । इस कारण कि । जैसे,—अब यहाँ से जाओ, क्योंकि वह आता होगा ।

मुहा०—क्योंकर = किस प्रकार ? कैसे ? जैसे,—मैं यहाँ क्योंकर रह सकता हूँ ? उ०—हम क्यों कर उसको बुरा कहें ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३ । क्यों नहीं ! = (१) ऐसा ही है । ठीक कहते हो । निःसंदेह । बेशक ।—(किसी बात के समर्थन में) । (२) हाँ । जरूर ।—(स्वीकार में) । जैसे,—प्रश्न—तुम वहाँ जाओगे ? उत्तर क्यों नहीं ! (३) ऐसा नहीं है । ठीक नहीं करते हो ।—(व्यंग) । (४) कभी नहीं । मैं ऐसा नहीं कर सकता ।—(व्यंग्य) । क्यों न हो = (१) तुम ऐसे महानुभाव से ऐसा उत्तम कार्य क्यों न हो ? वाह वा ! क्या

कौलाचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौलाचारी] कौल संप्रदाय का आचार। वाममार्ग [को०]।

कौलालक¹—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का पात्र [को०]।

कौलालक²—वि० कुम्हार का बनाया। कुम्हार संबंधी [को०]।

कौलिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुलाहा। २ पाखंडी या ढोंगी आदमी। ३ कौल संप्रदाय मे दीक्षित व्यक्ति। वाममार्गी। शक्ति का उपासक। उ०—तू है बकरा मैं हूँ कौलिक।—कुकुर०, पृ० ५।

कौलिक²—वि० कुल से संबंधित। परंपरा से चला आता हुआ।

कौलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बबूल जो बरार मे होता है।

कौलीन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौल मत को माननेवाला। २ भिखारिन का पुत्र। ३ पशुओं (हाथी, भेड़ा, भैंसा आदि) का द्वंद्व युद्ध। ४ तीतरों, मुरगों की लड़ाई। ५. युद्ध। संग्राम। ६ कुलीनता। ७ कलंक। अपवाद। तोहमत। ८ जननेंद्रिय। गुप्तांग [को०]।

कौलीन²—वि० १ ऊँचे खानदान का। खानदानी। कुलीन। २ वंशपरंपरागत [को०]।

कौलीन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीनता। खानदानीपन [को०]।

कौलीय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों की एक प्राचीन जाति जिसका उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में आया है।

कौलेज—संज्ञा पुं० [अं० कालेज] दे० 'कालिज'।

कौलेणा‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कमल'। उ०—रहे निमाणा समको रेणा। रहे अलेप ज्यों जल कौलेणा।—प्राण०, पृ० १८८।

कौलेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती जो सिंहल के मयूर ग्राम की समीपवर्ती नदी में मिलता था [को०]।

कौलेयक¹—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। श्वान। कुक्कुर। उ०—शाबर भाष्य के निर्णयाधिकरण मे चर्चा है कि कुछ कौलेयक (कुत्ते) प्रतिमास की कृष्ण प्रतिपदा चतुर्दशी को उपवास करते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

कौलेयक²—वि० कुलीन। उच्च कुलवाला। अच्छे वंश में उत्पन्न [को०]।

कौलो—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौलव'।

कौलौं‡—क्रि० वि० [हिं० कब+लौं] कबतक। किस अवधि तक। उ०—अब तो दया हि कीजे छिन छिन में तन जो छीजै। बिन बोले कौलों रीजै दरसन तु एहि दीजै।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४३।

कौल्य—वि० [सं०] १ कौल मतावलंबी। २. ऊँचे कुल का। कुलीन [को०]।

कौवल—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का फल। बदरीफल [को०]।

कौवा—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० काओ] [स्त्री० कौवी (क्व०)] १ एक प्रसिद्ध पक्षी जो संसार के प्राय सभी भागों में पाया जाता है। काक। काग।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं, पर भारत मे प्राय दो ही प्रकार के कौवे पाए जाते हैं। साधारण कौवा आकार मे डेढ़ बालिश्त होता है। इसकी चोंच लंबी और कड़ी होती है और पैर मजबूत होते हैं। इसका धड़ या अगला भाग खाकी और पीछे का भाग काला होता है। इसकी नाक ठीक मध्य मे नहीं होती, कुछ किनारे हटकर होती है। यह प्राय वृक्षों की टहनियों पर घोसला बनाता है। यह बैसाख से भादों तक अंडा देता है, जिनकी संख्या ४ से ६ तक होती है। कहते हैं, यह अपने जीवन मे केवल एक बार अंडे देता है। अंडे का रंग हरा होता है और उसपर काले दाग होते हैं। कोयल भी अपने अंडे इसी के घोसले मे रख जाती है, पर जब उसमे से बच्चा निकलता है, तब यह उसे अपने घोसले से निकाल देता है। दूसरे प्रकार का कौवा आकार मे बड़ा और प्राय एक हाथ लंबा होता है। इसका सर्वांग बिल्कुल काला होता है। इस जाति के कौवे आपस में बहुत लड़ते और प्राय एक दूसरे को मार डालते हैं। यह पूस से फागुन तक अंडे देता है। इसे डोम कौवा कहते हैं। शेष सब बातों मे यह प्राय साधारण कौवे से मिलता जुलता होता है। दोनों प्रकार के कौवे बहुत धूर्त होते हैं और प्राय किसी ऐसे स्थान पर जहाँ जरा भी भय की आशंका हो, नहीं जाते। पर शहरों और गाँवों मे रहनेवाले कौवे बहुत ढीठ होते हैं। साधारण कौवे जबतक अंडे देने की आवश्यकता न हो, घोसला नहीं बनाते। कौवे दिन के समय भोजन आदि के लिये अपने रहने के स्थान से १०-१२ कोस दूर तक निकल जाते हैं। यह प्राय सभी खाद्य और अखाद्य पदार्थ खा जाते हैं। लोग कहते हैं कि इसकी केवल एक ही पुतली होती है जो आवश्यकतानुसार दोनों आँखों मे घूमा करती है। यह बहुत जोर से काँव काँव शब्द करता है, जो बड़ा अप्रिय होता है। इसका मांस बहुत निकृष्ट होता है और मनुष्य या पशु पक्षियों के खाने योग्य नहीं होता।

यौ०—कौवा गुहार या कौवारोर=बहुत अधिक बकबक। बहुत जोर जोर से और व्यर्थ बोलना। कागारोल।

मुहा०—कौवा गुहार मे पड़ना या फँसना=हुल्लड़ या शोर मे पड़ना। बहुत बोलनेवालों के बीच में फँसना। कौवे उड़ाना=व्यर्थ या अनावश्यक कार्य करना।

२ बहुत धूर्त मनुष्य। काइयाँ। ३ वह लकड़ी जो बँडेरी के सहारे के लिये लगाई जाती है। कौड़ा। बहुँवाँ। ४ एक प्रकार का सरकंडे का खिलौना। ५ गले के अंदर तालू के झालर के बीच का लटकता हुआ मांस का टुकड़ा। घाँटी। लगर। ललरी।

मुहा०—कौवा उठाना=बढ़ी या अधिक लटकी हुई घंटी को दबाकर यथास्थान करना।

विशेष—कभी कभी कौवा अधिक लटककर जीभ तक आ पहुँचता है, जिससे कुछ दर्द और खाने पीने मे बहुत कष्ट होता है। यह दशा बाल्यावस्था मे अधिक और उसके बाद कम होती है।

६ कनकुटकी नाम का पेड़, जिसकी राल दवा और रँगाई के काम आती है। ७. एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है। कंकत्रोट। जलव्यय।

कौवाठोंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी] एक प्रकार की लता जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा आकार में कौवे की नाक के समान होते हैं।

विशेष—इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें लोदिए के समान बीज होते हैं। बवासीर दूर करने तथा बालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग औषध की भाँति होता है।

पर्या०—काकनासा। वायसी। सुरंगी। काकाक्षी। शिरोबाला।

कौआपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौआ+परी] बहुत काली और कुरूप स्त्री।—(व्यंग्य में)।

कौवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक प्रकार की चिड़िया। २. कचूर के आकार का एक वृक्ष जिसमें बहुत से लाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है। ३. कौवाठोंठी।

कौवाल—संज्ञा पुं० [अ० कौवाल] मुसलमानों में गवैयों का एक वर्ग। इस जाति के लोग कौवाली गाते हैं।

कौवाली—संज्ञा स्त्री० [अ० कौवाली] १ एक प्रकार का गाना।

विशेष—पीरों की मजार या सूफियों की मजलिसों में यह गाना होता है। इसके गाने की एक विशेष धुन होती है। इसमें प्रायः धर्म संबंधी या आध्यात्मिक गजलें होती हैं, जिनके कारण कभी कभी सुननेवाले तन्मय हो जाते हैं।

२. इस धुन में गाई जानेवाली कोई गजल। ३. कौवालों का पेशा। ४. संगीत में तिताला बजाने का एक भेद।

विशेष—यह मध्यमान से दूना जल्दी बजाया जाता है। कौवाली की गजलों के सिवा और रागिनियों में भी इसका प्रयोग होता है। इसका तबले का बोल यह है— + ३

धा दिन् दिन् धा, धा

० १ +

धिन् दिन् धा, ना तिन् तिन् ता। ता दिन् दिन् धा। धा। धा।

अथवा— + ३ ०

धाधिन् धिन् धा, धिन् धागे धिन् धिन् धा, ना तिन्

१ +

तिन् ता, तागे धिन् धिन् धा। धा

कौविंद—संज्ञा पुं० [सं० कौविन्द] [स्त्री० कौविन्दी] जुलाहा। ततुवाय। बुनकर [को०]।

कौवेर—वि० [सं०] दे० 'कौबेरी' [को०]।

कौवेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौबेरी' [को०]।

कौश¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौशेय] संज्ञा [स्त्री० कौशी] १ कुश द्वीप। २. एक गोत्र का नाम। ३. कान्यकुब्ज देश का एक नाम। ४. रेशमी कपड़ा।

कौश²—वि० १. रेशमी। उ०—स्वर्गिक शोभा स्तंभों से पेशल जघनों पर कँपती होगी कौश जलद छाया ओझल हों।—युगपथ, पृ० ११५। २ कुश से बना हुआ [को०]।

कौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता। चतुराई। निपुणता। उ०—हुए टाँकियों के कौशल से उपल सुकोमल उत्पल ज्यों।—साकेत, पृ० ३७४। १. मंगल। ३. कोशल देश का निवासी। ४. मत्स्यपुराण के अनुसार वह कक्ष जिसमें ४६ स्तंभ हों [को०]।

कौशलिक—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। रिश्वत। घूस [को०]।

कौशलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपहार। उपढौकन। भेंट। नजर। २. कुशल क्षेम। कुशल मंगल [को०]।

कौशली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौशलिका' [को०]।

कौशलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।

कौशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशल' [को०]।

कौशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता। २ पुरुराज की स्त्री और जनमेजय की माता। ३ सत्यवान की स्त्री। ४. धृतराष्ट्र की माता। ५ पंचमुखी आरती। पाँच बत्ती की आरती।

कौशल्यायनि—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, राम।

कौशाव—संज्ञा पुं० [सं० कौशाम्ब] राम के पौत्र और कुश के पुत्र का नाम। इन्होंने कौशांबी नगरी बसाई थी [को०]।

कौशांबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशाम्बी] एक बहुत प्राचीन नगर जिसे कुश के पुत्र कौशांब ने बसाया था। इसका दूसरा नाम वत्सपट्टन है।

विशेष—प्राचीन काल में यह नगर यमुना के किनारे था, पर अब यमुना वह स्थान छोड़कर दूर चली गई हैं। बुद्धदेव कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहे थे। यहाँ एक मंदिर में उनकी चंदन की एक बहुत बड़ी मूर्ति है, इसलिए यह स्थान बौद्धों का एक तीर्थ हो गया है। प्रयाग से पंद्रह कोस पश्चिम की ओर यह स्थान है, और अब भी यहाँ कोसम नामक एक छोटा गाँव और बहुत से पुराने खंडहर हैं।

कौशिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २. कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इंद्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। ३. विश्वामित्र (कुशिक राजा के वंशज) ४. जरासंध के एक सेनापति का नाम। ५ कोशाध्यक्ष। ६ कोशकार। ७ उल्लू। ८ नेवला। ९. एक प्रकार का शालवृक्ष। अश्वकर्ण। १० रेशमी कपड़ा। ११. शृंगार रस। १२ मज्जा। १३ एक उपपुराण। १४. हनुमत के मत से छह रागों में से एक। कुकुभा, चंपावती, गुणकिरी, गौरी और टोड़ी रागिनियाँ इसकी पत्नी हैं।—(संगीत)। १५. अथर्ववेद का एक सूक्त।

विशेष—इससे देव, पितृ तथा पाकयज्ञ, मंत्रों के गण, युद्ध तथा राजनीति, वज्र तथा वृष्टिनिवारण के मंत्र, विवाह की विधि, वेदारंभ और वेदाध्ययन की विधि आदि विषयों का वर्णन है।

१६ गुग्गुल। गुग्गुल (को०)। १७. सँपेरा (को०)। १८ शिव का एक नाम (को०)। १९ वह जो छिपे खजाने को जानता है (को०)।

कौशिक²—वि० १ कोश या म्यान में रखा हुआ। २. रेशम का। रेशमी [को०]।

कौशिकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र [को०]।

कौशिकफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का वृक्ष। २. नारियल का फल [को०]।

कौशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जल आदि पीने का बरतन। कटोरा। गिलास। २. गुग्गुल।

कौशिकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र अर्जुन [को०]।

कौशिकायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। २. इंद्रधनुष [को०]।

कौशिकाराति, कौशिकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा। काग [को०]।

कौबेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्तर दिशा जिसके अधिपति कुबेर हैं। २ कुबेर की शक्ति [को०]।

कौम—संज्ञा स्त्री० [अ० कौम] १ वर्ण। जाति। नस्ल। उ०—पाजी हूँ मैं कौम का बदर मेरा नाम।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६। २ सल्तनत। राष्ट्र (को०)।

कौमकुम—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक केतु तारा जिसकी तीन शिखाएँ हैं और जो मंगल का साठवाँ पुत्र माना जाता है। २. रक्त। खून। लहू।

कौमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौमारी] १ कुमार अवस्था। जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था।

विशेष—तंत्र के एक मत से सोलह वर्ष तक की अवस्था को कौमार कहते हैं।

२ एक प्रकार की सृष्टि जिसकी रचना सनत्कुमार ने की थी। ३ कुमार। ४ एक पर्वत का नाम (को०)। ५ कुमारी का पुत्र। कौमारिकेय (को०)।

कौमारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लड़कपन। बचपन। कुमार अवस्था। २ एक राग [को०]।

कौमारचारी—वि० [सं० कौमारचारिन्] ब्रह्मचारी। कुमारव्रती [को०]।

कौमारबंधकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौमारबन्धकी] वेश्या। वारवनिता [को०]।

कौमारभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों के लालन पालन और चिकित्सा आदि की विद्या। यह आयुर्वेद का एक अंग है। धात्रीविद्या। दाईगीरी।

कौमारव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनभर अविवाहित रहने का व्रत [को०]।

कौमारिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २ वह पिता जिसे केवल कन्याएँ ही हों (को०)।

कौमारिक[2]—वि० कुमार संबंधी। २ मृदु। कोमल [को०]।

कौमारिकेय—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी स्त्री को उसकी कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो। कानीन।

कौमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी पुरुष की पहली स्त्री। २ सात मातृकाओं में से एक। कार्तिकेय की शक्ति। ३ पार्वती का एक नाम। ४ वाराहीकंद। कोलकंद।

कौमार्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार अवस्था। कुँआरापन [को०]।

कौमियत—संज्ञा स्त्री० [अ० कौमियत] कौम या जाति का भाव। जातीयता। जैसे,—वल्दियत और कौमियत सब लिखा दो।

कौमी—वि० [अ० कौमी] किसी कौम या जाति संबंधी। जातीय। जैसे—कौमी जोश। कौमी मजलिस।

कौमुद—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक मास। कातिक।

कौमुदी—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योत्सना। चाँदनी। जुन्हैया।

यौ०—कौमुदीपति=चंद्रमा।

२. कार्तिकोत्सव, जो कार्तिक की पूर्णिमा को होता है। ३ कार्तिकपूर्णिमा। ४ आश्विनी पूर्णिमा। ५ दीपोत्सव की तिथि। ६ कुमुदिनी। कोईं। ७ दक्षिण देश की एक नदी। ८ उत्सव (को०)। ९ (ग्रंथ नाम के अंत में प्रयुक्त) टीका। व्याख्या। विवेचन। जैसे, तर्ककौमुदी=सांख्यतत्वकौमुदी, सिद्धांतकौमुदी आदि।

कौमुदीचार—संज्ञा पुं० [सं०] कोजागर पूर्णिमा। शरत् पूर्णिमा।

कौमुदीतरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौमुदीवृक्ष' [को०]।

कौमुदीमहोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] शरत् पूर्णिमा के उपलक्ष में मनाया जानेवाला उत्सव।

कौमुदीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदनी का उदय। [को०]।

कौमुदीवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीपस्तंभ। दीपाधार [को०]।

कौमोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा।

कौमोदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की गदा। कौमोदकी।

कौर[1]—संज्ञा पुं० [सं० कवल] १ उतना भोजन, जितना एक बार मुँह में डाला जाय। ग्रास। गस्सा। निवाला। उ०—राम नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और को। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर को।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।

मुहा०—मुँह का कौर छिन जाना=जीविका का संकट होना रोजी छिन जाना। उ०—कौर मुँह का क्यों न तब छिन जायगा। जायँगी पच क्यों न प्यारी थालियाँ।—चुभते०, पृ० ३६। मुँह का कौर छीनना=देखते देखते किसी का अंश दबा बैठना। कौर करना=खा जाना। ग्रास बनाना। उ०—किनारे की सब कमलिनी क्रम से उखाड़ उखाड़ कौर कर गए।—श्याम०, पृ० ११३।

२ उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये डाला जाय।

क्रि० प्र०—डालना।

कौर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा, फैलनेवाला झाड़ जो उत्तर भारत की पहाड़ी और पथरीली भूमि में होता है।

कौरना†—क्रि० स० [हिं० कौड़ा] थोड़ा भूनना। सेंकना। उ०—कुँदरू और ककोड़ा कौरे। कचरी चार चँचेड़ा सौरे।—सूर (शब्द०)।

कौरव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कौरवी] [वि० कौरवी] कुरु राज की संतान। कुरु के वंशज।

कौरव[2]—वि० [सं०] कुरु संबंधी। जैसे,—कौरवी सेना।

कौरव[3]—वि० [सं० कुरव] कुरव या लाल कटसरैया के रंग का। लाल रंग का। उ०—धर्‌यो तन कौरव वस्त्र कुँआरि। मँडी जनु सम मनंमथ रारि।—पृ० रा०, २१।६२।

कौरवपति—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन। सुयोधन।

कौरवेय—संज्ञा पुं० [सं०] कुरु के वंशज। कौरव [को०]।

कौरव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौरव। कुरुसंतान। २ एक नगर जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

कौरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कोल, क्रोड़ या सं० कपाटक, प्रा० कवाड़अ] [स्त्री० कौरी] द्वार के इधर उधर का वह भाग जिसके खुलने पर किवाड़ भिड़ रहते हैं। द्वार का कोना। उ०—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कौरेन सथिया चीतत नवनिधि।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—कौरे लगना = (१) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने पर छिपकर खड़ा होना। किसी बात में छिपा रहना। उ०—मन जिन सुनै बात यह माई। कौरे लग्यो होइगो कितहूँ कहि दैहै सो जाई।—सूर (शब्द०)। (२) रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना। मुँह फुलाना।

कौरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कवल] १. वह खाना जो कुत्ते, अंत्यज आदि को दिया जाय। २. भिक्षा। भीख। उ०—भले बुरे के कौरा खैहो।—कबीर० ग्रं०, पृ० २२।

क्रि० प्र०—खाना।—डालना।—देना।

कौरा[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौड़ा'।

कौरापन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कौरा + पन (प्रत्य०)] भीख माँगने की स्थिति। भिखमँगई। भैक्ष्यवृत्ति। उ०—लौकी साठ साठ तीरथ न्हाई। कौरापन तऊ न जाई। कबीर ग्रं०, पृ० ३३२।

कौरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड] १ अँकवार। गोद। उ०—कौरी में न आवे जिन्हे वादू न हिनावे वलवान न भुकावे एते मान डिठियत है।—भारतेंदु (शब्द०)।

मुहा०—कौरी भरकर भेंटना या मिलना = आलिंगन करके मिलना। उ०—छत्रसाल त्यों गये बिजौरा। भेंटे रतन साहु भर कौरी।—लाल (शब्द०)

२ एक अँकवार भर कटे हुए अनाज के पौधे जो फसल के समय मजदूरों को मजदूरी में दिए जाते हैं।

कौरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वालिन की फली। गुवार।

कौरो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कौरव] दे० 'कौरव'। उ०—जित जित मन अर्जुन को तितहि रथ चलायो। कौरो दल नासि नासि कीन्हों जन भायो।—सूर०, १। २३।

कौर्णेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम। २. अग्नि। अनल। ३ पवन। वायु। हवा [को०]।

कौर्म[1]—वि० [सं०] १. कूर्म या कछुवा संबंधी। २ कूर्म अवतार संबंधी। जैसे, कौर्म पुराण।

कौर्म[2]—संज्ञा पुं० एक कल्प का नाम [को०]।

कौलज—संज्ञा पुं० [यू० कूलंज] एक प्रकार का दर्द जो पसलियों के नीचे होता है। वायसूल।

कौल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तम कुल में उत्पन्न। अच्छे खानदान का। २ वाममार्गी। कौलाचारी। उ०—कहने की आवश्यकता नहीं कि कौल, कापालिक आदि इन्हीं वज्रयानियों से निकले।—इतिहास, पृ० १३।

कौल[2]—वि० कुल संबंधी। खानदानी। कुलक्रम से आगत या प्राप्त। उ०—फूटि निर्गुन गुण धारिन्ह आनि परचो मोह मिटि कौल कानि।—जग० श०, पृ० ६६।

कौल[3]—संज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल। सरोज। उ०—वहै लाल लोह लसै वारिधारा। मनो कौल फूले कलगी अपारा।—हम्मीर०, पृ० ५२।

कौल[4]—संज्ञा पुं० [सं० कवल] ग्रास। कौर।

कौल[5]—संज्ञा पुं० [तु० करावल] सेना की छावनी का मध्य भाग।

कौल[6]—संज्ञा पुं० [अ० कौल] १. कथन। उक्ति। वाक्य। २. प्रतिज्ञा। प्रण। वादा। इकरार। उ०—कौल 'आवरू' का था कि न जाऊँगा उस गली। होकर के बेकरार देखो आज फिर गया।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ११।

यौ०—कौल करार = परस्पर दृढ़ प्रतिज्ञा। कौल का पूरा या पक्का = बात का सच्चा। जबान का धनी।

मुहा०—कौल तोड़ना = किसी से की हुई प्रतिज्ञा छोड़ना। प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य न करना। कौल देना = किसी से प्रतिज्ञा करना। किसी को वचन देना। कौल निभाना = वादा पूरा करना। उ०—नट नागर कछु कहन बनै ना उनको कौल निभायो।—नट, पृ० २२। कौल लेना = प्रतिज्ञा कराना। वचन लेना। कौल से फिरना = दे० 'कौल तोड़ा'। कौल हारना = दे० 'कौल देना'। उ०—मगर मियाँ आजाद कौल हार के निकल गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६३।

३ एक प्रकार का चलता गाना। सूफियाना गीत। कौवाल।

कौल[7]—संज्ञा पुं० [सं० कोल] सूकर। सूअर। उ०—कहूँ कौलपुंज कहूँ लीलगाह। कहुँ चीतलं पांडुल व्याघ्र नाह।—ह० रासो, पृ० ३६।

कौल[8](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोर'। उ०—लाला बिलोचनि कौलन सों, मुसकाइ इतै अरुझाइ चितैगी।—मतिराम (शब्द०)।

कौलई—वि० [हिं० कौला = संगतरा + ई (प्रत्य०)] ललाई लिए पीला। संगतरे के रंग का। नारंगी।

कौलकेय[1]—वि० [सं०] ऊँचे वंश में उत्पन्न। कुलीन [को०]।

कौलकेय[2]—संज्ञा पुं० कुलटा स्त्री से उत्पन्न पुत्र [को०]।

कौलटिनेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. (साध्वी) भिक्षुणी का पुत्र। २. जारजपुत्र [को०]।

कौलटेय—संज्ञा पुं० [सं०] जार कर्म [को०]।

कौलटेर—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यभिचारिणी स्त्री की संतान। जारज पुत्र। २ भिखारिन का पुत्र [को०]।

कौलदुमा—वि० [हिं० कौल = कमल + दुमा = दुमदार] कबूतर की एक जाति। इस जाति के कबूतर की दुम लंबी और कमल की पत्ती की तरह छिछली होती है।

कौलव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में बव आदि ग्यारह करणों में से तीसरा। उ०—वदि भादौं, आठैं दिना, अरध निसा बुधवार। कौलव करन सु रोहिनी, जनमे नंदकुमार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६।

विशेष—इसके देवता मित्र हैं। इस करण में जन्म लेनेवाला विद्वान और गुणी पर कृतघ्न होता है।

कौला[1]—संज्ञा पुं० [सं० कमला] एक प्रकार का संतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। कमला।

कौला[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोल = क्रोड़, गोद] १. द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर द्वार भिड़े रहते हैं। कोना। कोरा।

मुहा०—कौले लगना = (१) रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना। (२) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिपकर खड़ा होना। घात में रहना। कौले सोचना = पूजा, यात्रा आदि के समय द्वार के इधर उधर पानी छिड़कना। २. पाखा।

पर्या०—कपर्दिका । वराटिका ।

मुहा०—कौडी का = जिसका कुछ मूल्य न हो । तुच्छ । कौडी काम का नही = किसी काम का नहीं । निकम्मा । निकृष्ठ । कौडी या दो कौडी का = (१) जिसका कुछ मूल्य नही । तुच्छ । निकम्मा । (२) निकृष्ट । खराव । कौड़ी के काम का नहीं = दे० 'कौड़ी काम का नहीं' । कौडी के तीन तीन बिकना = बहुत सस्ता होना । कौडी के तीन तीन होना = (१) वहुत सस्ता होना । (२) तुच्छ होना । वेकदर होना । नाचीज होना । कौडी मोल या कौडी के मोल विकना = वहुत सस्ता विकना । उ०—विकती जो कौडी मोल यहाँ होगी कोई इस निर्जन में ।—अपरा, पृ० ६७ । कौडी को न पूछना = (१) मुफ्त भी न लेना । विलकुल निकम्मा समझना । (२) नितात तुच्छ ठहराना । कुछ भी कदर न करना । जैसे,— वहाँ तुम्हें कोई कौड़ी को भी न पूछेगा । कौडी कोस दौडना = एक कौडी के पीछे कोसो का धावा मारना । थोडी सी प्राप्ति के लिये बहुत परिश्रम करना । कौडी कौडी = एक एक कौडी । कौड़ी कौड़ी को मुहताज = रुपए पैसे से विलकुल खाली । दरिद्र । कौडी कौड़ी अदा करना, चुकाना या भरना = सब ऋण चुका देना । कुल वेवाक कर देना । कौड़ी कौडी भर पाना = सारा लहना वसूल कर लेना । कौड़ी कौडी जोडना = वहुत थोडा थोडा करके धन इकट्ठा करना । वहुत कष्ट से रुपया वटोरना । कौडी फिरना = (१) जुए में अपना दाँव पडने लगना । (२) फौजी सिपाहियो का किसी विषय मे एक मत होना । (पहले जब सिपाहियो को किसी वात मे एका करना होता था, तब वे कौड़ी घुमाते थे । जिन सिपाहियो को वह वात स्वीकार होती थी, वे कौडी ले लेते थे । कौडी के बदले हीरा देना = खराब वस्तु लेकर अच्छी वस्तु देना । उ०—मूल न राख्या लाह लीया कौडी वदलै हीरा दीया । फिर पछिताना सबलु नाही हारि चल्या क्यूँ पाव सॉई ।—दादू०, पृ० ६२८ । कौडियो पर दाँत देना = लोभी होना । उ०—कौडियो पर किसलिये हम दाँत दें । है हमारा भाग तो फूटा नहीं ।—चुभते० पृ० ५२ । कौडी फेरा करना = घडी घडी आना जाना । थोडी थोडी वात के लिये भी आना जाना । वहुत फेरे लगाना । जैसे,—अव तो वे आपके मुहल्ले में आ गए हैं, कौडी फेरा करेंगे । कौडी भर = वहुत थोडा सा । जरा सा । तनिक सा । जैसे,—कौडी भर चूना ला दो । कौडी लेना = मस्तूल के चारो ओर लपेटना । (लश०) । कानी, झझी या फूटी कौडी = (१) वह कौड़ी जो टूटी हो । (२) अत्यत अल्प द्रव्य । कम से कम परिमाण का धन । जैसे,—हम तुम्हें कानी कौड़ी भी न देंगे । चित्ती कौड़ी = वह कौडी जिसकी पीठ पर उभरी हुई गाँठें हो । इसका व्यवहार जुए में होता है ।

२ धन । द्रव्य । रुपया पैसा । उ०—ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि वात । कौडी लागि लोभवस, करहिं विप्र गुरु घात ।—तुलसी (शब्द०) । ३ वह कर जो सम्राट् अपने अधीन राजाओ से लेता है ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

४.आँख का डेला । ५ छाती के नीचे बीचोबीच की वह हड्डी जिसपर सबसे नीचे की दोनो पसलियाँ मिलती है ।

मुहा०—कौडी जलना = भूख, क्रोध आदि से शरीर मे ताप होना । उ०—उसकी कौडी तो यो ही जल रही है, क्यों चिढ़ाते हो ?

६ जंघे, काँख या गले की गिलटी ।

क्रि० प्र०—उसकना ।—उसकना ।—छटकना ।—निकलना ।

७ कटार की नोक । उ०—कौडी के आर पार है कौडी कटार की ।—(शब्द०) ।

कौडी गुडगुड—सज्ञा पुं० [हिं० कौडी + गुडगुड] लडको का एक खेल ।

विशेष—बहुत से लडके दो ओर पक्तियो मे आमने सामने बैठते हैं । इन दोनो पक्तियों के दो सरदार होते हैं । पैसा या जूता आदि उछालकर चित पट से इस वात का निश्चय किया जाता है कि पहले किस पंक्ति से खेल आरंभ होगा । जिस पंक्ति से खेल आरभ होता है, उसका सरदार अँजुली मे धूल भर लेता है जिसके अदर कौडी छिपी होती है । सरदार थोड़ी थोडी धूल अपनी पक्ति के सब लडको के हाथ मे डाल आता है । फिर दूसरी पक्तिवाले बूझते हैं कि धूल के साथ कौडी किस लडके के हाथ मे गई है । यदि वे ठीक बूझ गए तो जिसके हाथ मे कौडी रहती है, उसे चपत लगाते हैं ।

कौडी जगनमगन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौडी गुडगुड' ।

कौडी जूड़ा—सज्ञा पुं० [हिं० कौडी + जूडा] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं ।

कौडेना[1]—सज्ञा पुं० [देश०] [अल्पा० कौड़ेनी] कसेरो का लोहे का एक औजार जिससे वरतनो पर नकाशी की जाती है । यह डेढ़ वालिश्त लवा और नोक पर पतला तथा चिपटा होता है ।

कौडेना[2]—सज्ञा पुं० [हिं कौड़ियाला] कौडियाला नाम की जडी ।

कौड़ेना[3]—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कौडियाहो' ।

कौडेनी†—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी । उ०—धोबइन तलचरैया, कौडेनी, चकआ इत्यादि ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २० ।

कौढ†—सज्ञा पुं० [हिं० कोढ] दे० 'कोढ़' । उ०—और वा वैष्णव के सरीर मे तें तत्काल सब ठौर तें कोढ़ जात रह्यो ।—दो सौ वावन, भा० १. पृ० ३३० ।

कौणप—सज्ञा पुं० [सं०] १.राक्षस । २ वासुकी के वंश का एक सर्प । ३ पातकी या अधर्मी जीव ।

कौणपदत—सज्ञा पुं० [सं० कौणपदन्त] भीष्म ।

कौतक(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कौतुक] खेल तमाशा । उ०—सुर नर मुनि जब कौतक आए कोटि तेंतीसो जाना ।—कबीर ग्र०, पृ० २९६ ।

कौतिक(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कौतुक' । उ०—इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ ।—घनानद, पृ० ५४७ ।

कौतिग†—सज्ञा पुं० [हिं० कौतुक] विलक्षण और अदभुत वात । कौतुक । उ०—देखत कछु कौतिगु इतै देखो नैक निहारि । कब की इक टक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि ।—बिहारी (शब्द०) ।

कौतिगहार(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० कौतिग + हार(प्रत्य०)] खेल

माँहि कौतिगहार। देह अछत अलगी रहै, दादू सेवि अपार।—दादू०, पृ० ५८३।

कौतिग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौतिग'। उ०—खलकंत ओन घर चलिया खाल। कौतिग देव हर रुंड माल।—पृ० रा०, १।६६७।

कौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कौतुकित, कौतुकी] १. कुतूहल। २. आश्चर्य। अचंभा। उ०—सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता।—मानस, १।५४। ३ विनोद। दिल्लगी। ४ आनंद। प्रशंसा। ५. खेल तमाशा।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—देखना।—होना।

६ वह मांगलिक सूत्र (कंगन) जो विवाह से पहले हाथ में पहना जाता है। ७ विवाह के पूर्व कंगन बाधने की प्रथा। ८. पर्व। उत्सव (को०)। ९. विवाह आदि शुभ कार्य (को०)। १० उत्सुकता। आवेग। आतुरता (को०)। ११ आश्चर्यजनक वस्तु (को०)।

यौ०—कौतुकक्रिया। कौतुकमंगल = (१) बड़ा उत्सव। महोत्सव। (२) विवाह संस्कार। कौतुकतोरण = उत्सव के लिये निर्मित मंगलसूचक द्वार। कौतुकागार = (१) क्रीडागृह। विनोदगृह। (२) दे० 'कोहबर'।

कौतुकिया—संज्ञा पुं० [हिं० कौतुक + इया (प्रत्य०)] १. कौतुक करनेवाला। २. विवाह संबध करानेवाला नाई; पुरोहित आदि।—उ०—तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीं। वर कन्या अनेक जग माहीं।—तुलसी (शब्द०)।

कौतुकी—वि० [सं० कौतुकिन्] १. कौतुक करनेवाला। विनोदशील। उ०—मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरवासिन सब पूछत भयऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. विवाह संबंध करानेवाला। ३ खेल तमाशा करनेवाला।

कौतूहल—संज्ञा पुं० [सं०] कुतूहल। कौतुक।

कौतूहलता—संज्ञा स्त्री० [सं० कौतूहल + ता (प्रत्य०)] कौतूहल का भाव। औत्सुक्य। उत्सुकता। उ०—क्रीड़ा कौतूहलता मन की, वह मेरी आनंद उमग।—पल्लव, पृ० १०५।

कौतोमत—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनका वर्णन गोपथ ब्राह्मण में आया है।

कौत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो कुत्स ऋषि के पुत्र, वरतंतु के शिष्य और जैमिनि के आचार्य थे। २ कुत्स नामक ऋषि के बनाए हुए कुछ साम (गान) जो विकृत यज्ञ में गाए जाते थे।

कौथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौन + तिथि] १. कौन सी तिथि। कौन तारीख। जैसे—आज कौथ है? २. कौन संबंध। कौन वास्ता। उ०—राम नाम को छोड़ि के राखै करवा चौथ। सो तो होयगी सूकरी, तिन्ह राम सो कौथ?—कबीर (शब्द०)।

कौथा—वि० [हिं० कौन + सं० स्था (स्थान)] किस संख्या का। गणना में किस स्थान का। जैसे,—दरजे में तुम्हारा नंबर कौथा है?

कौथि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'कौथ'।

कौथुम—संज्ञा पुं० [सं०] कौथुमी शाखा का अध्ययन करनेवाला।

कौथुमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सामवेद की एक शाखा जिसका प्रचार कुथुम ऋषि ने किया था।

कौद(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोद'। उ०—दोय लख पैद चढ़ै गढ़न कौद।—ह० रासो०, पृ० ६०।

कौदन—वि० [फ़ा०] मंदबुद्धि। कमसमझ। नासमझ।

कौदालिक, कौदालीक—संज्ञा पुं० [सं०] धीवर पिता और धोबिन माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।

कौद्रविक—संज्ञा पुं० [सं०] सोंचर नोन। काला नमक।

कौधनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करधनी] करधनी। कोंधनी।

कौन[1]—सर्व० [सं० क, पुनः किम्, प्रा० कवण] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जो अभिप्रेत व्यक्ति या वस्तु की जिज्ञासा करता है। उस मनुष्य या वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको पूछना होता है। जैसे,—(क) तुम्हारे साथ कौन गया था? (ख) इन आमों में से तुम कौन लोगे?

मुहा०—कौन सा = कौन। कौन किसका होता है? = कौन किसके काम आता है। कोई दूसरे की सहायता नहीं करता। कौन होना = (१) क्या अधिकार रखना। क्या मतलब रखना। जैसे,—तुम हमारे बीच बोलने वाले कौन होते हो। (२) क्या संबंध होना। क्या रिश्ता या नाता होना। जैसे,—वे तुम्हारे कौन होते हैं?

विशेष—विभक्ति लगने के पहले कौन का रूप किस हो जाता है। जैसे—किसने, किसको, किससे, किसमें इत्यादि। यद्यपि संस्कृत के अनुसार हिंदी व्याकरणों में इस शब्द को केवल सर्वनाम ही लिखा है, तथापि जब इसके आगे संज्ञा शब्द भी आ जाता है, जैसे, 'कौन मनुष्य'—तब यह विशेषण के ही समान जान पड़ता है।

कौन[2]—वि० किस जाति का? किस प्रकार का? जैसे,—यह कौन आम है, लँगड़ा या बंबई?

कौनप—संज्ञा पुं० [सं० कौणप] दे० 'कौणप'। उ०—केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई।—तुलसी (शब्द०)।

कौप[1]—वि० [सं०] कुएँ का। कूप संबंधी (को०)।

कौप[2]—संज्ञा पुं० कुएँ का जल। कूपजल (को०)।

कौपीन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मचारियों और संन्यासियों आदि की लँगोटी। चीर। कफनी। काछा। २ शरीर के वे भाग जो कौपीन से ढाँके जायँ—गुदा और लिंग। ३. पाप। गुनाह। ४. अनुचित कार्य।

कौपोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण की गदा (को०)।

कौबेर—वि० [सं०] कुबेर संबंधी। कुबेर का (को०)।

कौबेरतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर संबंधी तीर्थ विशेष। उ०—कौबेर तीर्थ में देवताओं ने कुबेर का राज्याभिषेक किया था।—प्रा० भा० प०, पृ० १०३।

कौँना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोण] कोना। उ०—चकित भई घर आँगन फिरैं। कौने जाय उसाँसिन भरैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १५२।

कौंभ¹—संज्ञा पुं० [सं० कौम्भ] सौ बरस का पुराना घी, जो बहुत गुणकारी समझा जाता है।—(वैद्यक)।

कौंभ²—वि० कुंभ या घड़े में रखा हुआ या उससे संबंधित [को०]।

कौंभसर्पि—संज्ञा पुं० [सं० कौम्भसर्पि] दे० 'कौंभ'।

कौँर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़। बनखोर।

विशेष—यह वृक्ष प्राय पंजाब, नेपाल और उसकी तराइयों में होता है। इसकी लकड़ी अंदर से हलकी गुलाबी होती है और इमारत के काम में आती है। इसके काठ से थालियाँ और रकाबियाँ भी बनाई जाती हैं। इसके फलों को पहाड़ी लोग सुखाकर चक्की में पीसते और दूसरे अनाज के साथ मिलाकर खाते हैं।

कौँरा—संज्ञा पुं० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'।

कौँरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पान की चौथाई ढोली, जिसमें ५० पान होते हैं। कँवरी।

कौँल—संज्ञा पुं० [सं०, प्रा० कमल] दे० 'कमल'। उ०—धीमी बयार लगने से छोटी छोटी लहरें उठती हैं, फूले हुए कौंल अपने हरे हरे पत्तों में धीरे धीरे हिलते हैं।—ठेठ०, पृ० २९।

कौँला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कमला] कमला। सरस्वती। उ०—कवि बिआस रस कौंला पूरी। दूरिहिं निअर निअर भा दूरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३६।

कौँली हड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल + हिं० हड्डी] कुरकुरी हड्डी।

कौंसल—संज्ञा पुं० [अ०] १ बैरिस्टर। ऐडवोकेट। २. राज का प्रतिनिधि।

कौंसलर—संज्ञा पुं० [अ०] परामर्शदाता। समति देनेवाला।

कौंसली—संज्ञा पुं० [अ० कौंसल] बैरिस्टर। ऐडवोकेट। जैसे,—हाईकोर्ट में उसकी ओर से बड़े बड़े कौंसली पैरवी कर रहे है।—(प्रांतक)।

कौंसिल—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. किसी विषय पर विचार करने के लिये कुछ लोगों की बैठक। २. कुछ विशेष मनुष्यों की वह सभा जो किसी राजा या शासक का शासन के संबंध में परामर्श देने के लिये बनाई जाती है। विधानसभा। जैसे,—बड़े लाट की कौंसिल, प्रिवी कौंसिल, आदि।

कौँहर—संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन की जाति का एक प्रकार का फल जो पकने पर बहुत सुंदर लाल रंग का हो जाता है। कहते हैं जिस स्थान पर यह फल रखा जाता है, वहाँ साँप नहीं आता। कवि लोग प्रायः इससे एँड़ी की उपमा दिया करते हैं। उ०—(क) कौंहर सी एँड़ीन की लाली देखि सुभाइ। पाय महावर देन को आप भई बेपाय।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जौहर, कौल, जपादल विद्रुम का इतनी जो बँधूक में कोत है।—शंभु (शब्द०)।

कौँहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोहर] दे० 'कौंहर'।

कौ(पु)¹—सर्व० [हिं०] दे० 'कोई'। उ०—ईसीय न देखल पुतओं गयण सलूणा वचन सुभात। इसीय न खाती को घडइ, इसी अस्त्री नहीं राव तणै दीठ।—बी० रासो, पृ० ४५।

कौ(पु)²—प्रत्य० [हिं०] कर्म, संप्रदान और संबंध कारक का विभक्ति प्रत्यय। उ०—(क) चतुर्भुजदास वाद करते और पडितन को जीत लेते।—अकबरी०, पृ० ३८। (ख) खंजरीट मृग मीन बिचारति, उपमा कौ अकुलाति। चंचल चारु चपल अवलोकनि, चितहिं न एक समाति।—सूर० १०। १८११। (ग) रावन अरि कौ अनुज बिभीषन ता को मिले भरत नाई। सूर०, १।३।

कौआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौवा'।

कौआना—क्रि० अ० [हिं० कौआ] १. भौंचक्का होना। चकपकाना। आश्चर्य से इधर उधर ताकना। २. सोते में स्वप्न देखकर या यों ही अचानक कुछ बड़बड़ा उठना।

क्रि० प्र०—उठना।

कौआरोर†—संज्ञा पुं० [हिं० कौआ + सं० रव = शब्द] कौवों का शब्द। कोवारोर। काँव काँव की पुकार। शोरगुल।

कौआरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौआर] एक प्रकार का जलपक्षी।

कौआल—संज्ञा पुं० [अ० कौवाल] कौवाली गानेवाला व्यक्ति।

कौवाली—संज्ञा पुं० [अ० कौवाली] दे० 'कौवाली'।

कौकुत्यातिचार—संज्ञा पुं० [सं० काकूत्यातिचार] वह वाक्य जिसके कहने, बोलने या पढ़ने से अपने या औरों के मन में काम, क्रोध आदि उत्पन्न हों। जैसे, शृंगार के कवित्त, बारहमासा आदि—(जैन)।

कौकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्कर्म। कुकृत्य। दुष्टता। २ पश्चात्ताप। अनुशोचन [को०]।

कौक्कुटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुक्कुटपालक या मुर्गे का व्यापारी। २ एक प्रकार के साधु जो जीवहिंसा न हो अत जमीन देखते चलते हैं। ३ (लाक्ष०) दंभी या घमंडी व्यक्ति [को०]।

कौक्षेय¹—वि० [सं०] १ कुक्षि या उदर संबंधी। २ म्यानयुक्त [को०]।

कौक्षेयक—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। तलवार [को०]।

कौच¹—संज्ञा पुं० [अ०] मोटे गद्दे का अंगरेजो का पलंग या बेंच।

कौच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवच] दे० 'कवच'। उ०—धरे टाप कुंडी कसे कौच अंग।—हम्मीर०, पृ० २४।

कौचुमार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ६४ कलाओं में से एक। कुरूप को सुंदर बनाने की विद्या।

कौट¹—वि० [सं०] १ अपने घर या कुटी में रहनेवाला। स्वतंत्र। मुक्त। २. गृह में पालित। घरेलू। घर का। ३ जालसाज। बेईमानी। ४. जाल में फँसा हुआ या जालयुक्त [को०]।

कौट²—संज्ञा पुं० १ जालसाजी। बेईमानी। छल। धोखा। फरेब। २ वह जो झूठी गवाही दे [को०]।

यौ०—कौटज = कुटज। कौटतक्ष = स्वतंत्र रूप से काम करनेवाला बढ़ई। ग्रामतक्ष का विलोम। कौटसाक्षी = झूठी गवाही। कौटसाक्ष्य = झूठी साक्षी। झूठी गवाही।

कौटकिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याध। बहेलिया। २ कसाई। मांस विक्रेता [को०]।

कौटमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

कौटल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौटिल्य'।

कौटवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोट्टवी' [को०]।

कौटिक¹—वि० [सं०] १ फंदा या जाल संबंधी। २ बेईमान। धूर्त। अविश्वसनीय [को०]।

कौटिक²—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० कौटकिक' [को०]।

कौटिलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहेलिया। शिकारी। २.लुहार [को०]

कौटिलीय—वि० [सं०] कौटिल्य का, कौटिल्यनिर्मित। कौटिल्य संबंधी [को०]।

कौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १.टेढ़ापन। २.कुटिलता। कपट। ३. चाणक्य का एक नाम।

कौटुंबिक—वि०[सं० कौटुम्बिक] कुटुंब का। कुटुंब संबंधी। २ परिवारवाला।

कौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कपर्दक प्रा० कवद्दड्ढ, कवड्डह]बड़ी कौड़ी। उ०—कौड़ा आँसू बूँद करि साँकर बरुनी सजल। कीन्हे बदन निमूँद, दृग मलंग डारे रहैं।—बिहारी (शब्द०)। २ धन। पूँजी। उ०—गुरु बिन बाट नाहिं कौड़ा बिन हाट नाहिं। सुदर० ग्रं०, भा० २,पृ० ३८८।

कौड़ा²—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] जाड़े के दिनों में तापने के लिये किसी गड्ढे में खर, पतवार फूँककर जलाई हुई आग। अलाव। उ०—जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर प्यार भिछा बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा,बालक और बालिका, युवा और वृद्ध सबके सब बैठ कथा कह दिन बिताते हैं।—श्यामा०, पृ० ४४।

कौड़ा³—संज्ञा पुं० [सं० कंदन] एक प्रकार का जंगली प्याज। कौंचिड़ा फफोर।

कौड़ा⁴—संज्ञा पुं० [देश०] बूई नाम का पौधा जिसे जलाकर सज्जी खार निकालते हैं। वि० दे० 'बूई'।

कौड़ा⁵— वि० [सं० कटु] दे० 'कड़ुआ'। उ०—भोरे भोरे तन करै, बंडे करि कुरवाण। मिट्ठा कौड़ा ना लगै,दादू तौहू साण।—दादू०, पृ० ६५।

कौड़िया¹—वि०[हिं० कौड़ी] कौड़ी की तरह का। कौड़ी के रंग का। कुछ स्याही लिए हुए सफेद रंग का।

कौड़िया²—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़िल्ल] कड़िल्ला या किलकिला नाम का पक्षी। उ०—नयन कौड़िया हिय समुद्र गुरु सो तेहि जोति। मन मरजिया न होइ परै हाथ न आवै मोति।—जायसी (शब्द०)

कौड़ियाला¹—वि० [हिं० कौड़ी] कौड़ी के रंग का। हलका नीला (रंग) जिसमें गुलाबी की कुछ झलक हो। कोकई।

कौड़ियाला²—संज्ञा पुं० १ कोकई रंग का। २ एक प्रकार का विषैला साँप जिसपर कौड़ी के रंग और आकार की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। ३. वह धनी जो साँप की तरह रुपए के ऊपर बैठा रहे उसे खर्च न होने दे। कृपण धनाढ्य। कंजूस अमीर। ४ एक पौधा जो ऊसर भूमि में होता है। उ०—कौड़ियाला मेरी तुरबत पै लगाना यारो। नागनी जुल्फ के काटे की यह पहचान रहे। (शब्द०)।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और कुछ मटमैले रंग की होती हैं। इसमें सीप या छुच्छी के आकार के छोटे छोटे फूल लगते हैं। फूल के रंग के विचार से कौड़ियाला तीन प्रकार का होता है सफेद फूल का, लाल फूल का और नीले फूल का। नीले फूल के कौड़ियाले को विष्णुक्रांता कहते हैं। वैद्यक में कौड़ियाला तीक्ष्ण, गरम, मेधाजनक तथा कृमिघ्न और विषघ्न समझा जाता है। इसे शंखपुष्पी या शंखाहुली भी कहते हैं।

पर्या०—मेध्या। चंडा। सुपुष्पी। किरीटी। कंबुमालिनी। भूलग्ना वनमालिनी। मलविनाशिनी। सर्पाक्षी, इत्यादि।

कौड़ियालो—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ियाला] दे० 'कौड़ियाला'—४।

कौड़ियाही¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ी] मजदूरी की एक रीति जिसमें मजदूरों को मिट्टी, ईंटें आदि उठाने की मजदूरी प्रति ईंट या प्रति खेप कुछ कौड़ियाँ दी जाती हैं। इस रीति से काम जल्दी होता है।

कौड़ियाही²—वि० स्त्री० बहुत थोड़े धन के लालच से कोई काम करनेवाली।

कौड़िल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कौड़ी] २ मछली पकड़कर खानेवाली एक चिड़िया। किलकिला। २ कसी नाम का पौधा जिसे संस्कृत में कशुक और गवेधुक कहते हैं। दे० कसी'।

कौड़िहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०कौड़ियाही] दे० 'कौड़ियाही'।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कपर्दिका, प्रा० कवड्डिआ] १. समुद्र का एक कीड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोष के अंदर रहता है। वराटिका।

विशेष—यह अस्थिकोश उभड़ा हुआ और चमकीला होता है तथा इसके नीचे बड़ा लंबा पतला छेद होता है, जिसके दोनों किनारे पर दाँत होते हैं। खुले मुँह को आवश्यकतानुसार बंद करने के लिये उसपर ढक्कन नहीं होता। छेद के बाहर इसका सिर रहता है, जिसमें दो कोने निकले रहते हैं जो स्पर्शेंद्रिय का काम देते हैं। कौड़िया भारत महासागर में लंका,मलाया, स्याम,सिंहल मालद्वीप आदि के पास इकट्ठी की जाती हैं। राजनिघंटु में कौड़ियाँ पाँच प्रकार की बतलाई गई हैं—(क) सिंही, जो सुनहले रंग की होती है। (ख) व्याघ्री जो धूमले रंग की होती है (ग) मृगी, जिसकी पीठ पीली और पेट सफेद होता है (घ) हंसी जो बिलकुल सफेद होती है। और (च) विदता, जो बहुत बड़ी नहीं होती। द्रव्य रूप में कौड़ी का व्यवहार भारत चीन आदि देशों में बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। वाजसनेयी संहिता में इसका उल्लेख आया है। भास्कराचार्य ने लीलावती में इसके मूल्य का विवरण दिया है। पैसे के आधे को अधेला, चौथाई को दुकड़ा या छदाम और अष्टमांश को दमड़ी कहते थे। एक पैसे में प्रायः ८० कौड़ियाँ या २५ दाम माने जाते थे। ३ दाम की एक दमड़ी, छ दाम का एक टुकड़ा और १२॥ दाम का एक अधेला माना जाता था

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोसना+काटना] शाप के रूप मे गाली। बददुआ।

कोसिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] १ मिट्टी का छोटा कसोरा। २ चूना रखने की कूँड़ी।—(तँबोली)।

कोसिला†—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या'। उ०—बिहँग आइ माता सो मिला। रामहिं जनु भेंटी कोसिला।—जायसी (शब्द०)।

कोसिली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पिराक या गुझिया नाम का पकवान। २ आम्रफल के भीतर की गुठली जिसमे बीज रहता है।

कोसी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशिकी] एक नदी जो नेपाल के पहाड़ो से निकलकर चंपारन के पास पास गंगा मे मिलती है।

विशेष—इसका बहाव बहुत तेज है। रामायण मे लिखा है कि विश्वामित्र की बहन सत्यवती (दूसरा नाम कौशिकी) जब अपने पति के साथ स्वर्ग चली गई, तब इस नदी की उत्पत्ति हुई थी। एक मास तक इसके किनारे पर रहने से एक अश्वमेध यज्ञ का फल होता है।

कोसी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] अनाज के वे दाने जो दायने के बाद बाल या फली मे लगे रह जाते हैं। गूड़ी। चँवरी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय जुआर या मूँग के लिये ही होता है।

कोसीस—संज्ञा पुं० [सं० कपिशीर्षक] दे० 'कौसीस'। उ०—कोट कोसीसा नयर विसाल। धार नग्री माहइगम कीयउ।—बी० रासो, पृ० १०४।

कोहँडौरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा+बरी] उर्द की पीठी और कुम्हड़े के गूदे से बनाई हुई बरी।

कोहँरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्हार'। उ०—एकै मिटटी कै घडा घड़ैला, एकै कोहँरा सानो।—कबीर० श०, पृ० ८९२।

कोह[1]—संज्ञा पुं० [फा०] पर्वत। पहाड़।

यौ०—कोहिस्तान।

कोह[2]†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] क्रोध। गुस्सा। उ०—किंकर, कंचन, क्रोह काम के।—तुलसी (शब्द०)।

कोह[3]—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष।

कोह[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० खेह, पुं० हिं० खोहि खोह] धूल। गर्द। उ०—राण दिस हाथिया ठाण आराण रुख, कोह आसमाण चढ भाण ढका।—रघु रू०, पृ० १४६।

कोहकन—वि० [फ़ा०] १ पर्वत काटनेवाला। पर्वतभेदी। २ शीरी के प्रेमी फरहाद की उपाधि [को०]।

कोहकाफ—संज्ञा पुं० [फा० कोह=पहाड+काफ] एक पहाड जो यूरोप और एशिया के बीच में है। इसके आसपास के स्थानों के निवासी बहुत सुंदर होते हैं। फारस आदि देशो के निवासियो का विश्वास है कि इस पहाड़ पर देव और परियाँ रहती हैं। काकेशस। उ०—कुछ का मत है कि आर्यो का आदि स्थान कोहकाफ के पास था।—प्रा० भा० प०, पृ० ५६।

कोहकुन—वि० [फ़ा० कोहकन] खोदने का काम करनेवाला। खनिक। उ०—है तुझ दर अस्ल गौहर के लगन, लाल के इश्को हुई हूँ कोहकुन।—दक्खिन०, पृ० १८२।

कोहकुनी—संज्ञा पुं० [फा० कोहकनी] पहाड खोदना। परिश्रम। उ०—शीरीं लबाँ सूँ संग दिलो को असर नहीं। फरहाद काम कोहकुनी का किया तो क्या।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४१।

कोहन[1]वि०—[सं० क्रोधन, प्रा० कोहण] १ क्रोधी। २ तुनकमिजाज। उ०—हेरि चितै तिरछी करि दृष्टि चली गई कोहन मूठि सी मारे।—रसखान, पृ० १४।

कोहन[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुहनी'।

कोहनी संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुहनी'।

कोहनूर—संज्ञा पुं० [फा० कोह+अ० नूर] एक बहुत बडा और प्रसिद्ध हीरा।

विशेष—इसके विषय मे कहा जाता है कि यह राजा कर्ण के पास था और पीछे मालवा के राजा विक्रमादित्य के हाथ लगा था। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ मे यह हीरा ग्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के बादशाह को दिया था। सन् १७३९ मे करनाल के युद्ध के बाद वह नादिरशाह को मिला था। उसके वंशज शाहशुजा से यह हीरा राजा रणजीतसिंह ने ले लिया। अंत मे सन् १८४९ मे यह अंगरेजो के हाथ आया और दूसरे वर्ष इंगलैंड मे महारानी विक्टोरिया की भेंट हुआ और अबतक वहाँ के राजकोश मे वर्तमान है। पहले यह हीरा ३१९ रत्ती का था और संसार मे सबसे बडा समझा जाता था पर अब यह यह फिर से तराशा गया और तौल मे केवल १०२३/४ रत्ती रह गया।

कोहबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर या कौतुकगृह] वह स्थान या घर जहाँ विवाह के समय कुलदेवता स्थापित किए जाते हैं और जहाँ कई प्रकार की लौकिक रीतियाँ की जाती हैं। उ०—कोहबरहिं आने कुँवर कुँवरि सुआसिनिन सुख पाइकै। अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइकै।—तुलसी (शब्द०)।

कोहर—संज्ञा पुं० [सं० कोटर या कुहर] गुफा। कंदर। खोह। उ०—नदी सु एक जल बिंदु तहँ सु एकह सुभ कोहर।—पृ० रा०, २४।३४२।

कोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुहरा] कुहासा। कुहिर। कुहरा।

कोहरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] उबाले या तले हुए चने आदि। घुँघनी।

कोहल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जिन्होंने सोमेश्वर से संगीत सीखा था और जो नाट्यशास्त्र के प्रणेता कहे जाते हैं २. जौ की शराब। ३. कुम्हड़े की शराब। ४. एक प्रकार का बाजा।

कोहल[2]—वि० [सं०] अस्पष्ट बोलनेवाला। साफ साफ उच्चारण न करनेवाला [को०]।

कोहाँर †—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्हार'।

कोहा[1]†—संज्ञा पुं० [सं० कोश=पात्र] १ मिटटी का बडा कूँड़ा जिसमे प्राय ऊख का रस या काँजी आदि रखते हैं। नाँद। २ कपाल की आकृति का मिट्टी का बर्तन।

कोहाँ²—संज्ञा पुं० [सं० कुक्ष, हिं० कोख, कोखा] पेट। उदर।

कोहान—संज्ञा पुं० [फा०] ऊँट की पीठ पर का डिल्ला या कूबड़।

कोहाना†Ⓤ—क्रि० अ० [हिं० कोह] १. रूठना। नाराज होना। मान करना। उ०—तुमहि कोहाव परम प्रिय अहई।—तुलसी (शब्द०)। २. गुस्सा होना। क्रोध करना।

कोहिरा—†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोहरा'। उ०—दुर्ग के पूर्व त्रिवेणी अपनी गौरवयुक्त झाँकी को कोहिरे से आवेष्ठित किये हुए है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८।

कोहिल—संज्ञा पुं० [देश०] नर शाही बाज।

कोहिस्तान—संज्ञा पुं० [फा०] पर्वतस्थली। पहाड़ी देश।

कोही¹—वि० [हिं० कोह+ई (प्रत्य०)] क्रोध करनेवाला। क्रोधी। गुस्सैल। उ०—बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिश्वविदित क्षत्री-कुल द्रोही।—तुलसी (शब्द०)।

कोही²—वि० [फा० कोह] पहाड़ी।

यौ०—कोही भाँग=एक प्रकार की भाँग जो सिंध में होती है और जिससे गाँजा या चरस नहीं निकलता। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है और रेशे से रस्सी आदि बनती है।

कोही³—संज्ञा स्त्री० [देश०] शाही नामक बाज पक्षी की मादा।

कोहुⓊ¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध, प्रा० कोह] दे० 'कोह'। उ०—तुम्ह जोगी बैरागी कहत न मानहु कोहु।—जायसी ग्रं०, पृ० ९४।

कोहु²—सर्व० [हिं०] दे० 'कोऊ'। उ०—जा दिन दौरि कहै कोहु सजनी, आए कुँवर कन्हाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३८।

कौंक—संज्ञा पुं० [सं० कोङ्क] १. भारत के एक प्रदेश का प्राचीन नाम। कोंकण। २. कोंकण का रहनेवाला। ३. कोंकण का शासक [को०]।

कौंकण—संज्ञा पुं० [सं० कौङ्कण] दे० 'कौंक' [को०]।

कौंकिरⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर, हिं० कंकर] हीरे आदि की कनी। काँच की किरिच। काँच का नुकीला टुकड़ा। काँच की रेत। उ०—हो ता दिन कजरा मैं दैहौं। जा दिन नंदनंदन के नैनन अपने नैन मिलैहौं। सुन री सखी इहै जिय मेरे भूलि न और चितैहौं। अब हठ सूर इहै मत मेरो कौंकिर खै मरि जैहौं।—सूर (शब्द०)।

कौंकुम¹—संज्ञा पुं० [सं० कौङ्कुम] तीन पूँछ या चोटीवाले लाल रंग के पुच्छल तारे जो बृहत्संहिता के अनुसार संख्या में ६० हैं और मंगल के पुत्र माने जाते हैं। ये उत्तर की ओर उदय होते हैं।

कौंकुम²—वि० १. कुंकुमयुक्त। २ कुंकुम के रंग का। केसरिया [को०]।

कौंच¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] हिमालय का एक अंश। क्रौंच पर्वत [को०]।

कौंच²—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] १. सेम की तरह की एक बेल। केवाँच। २. इस बेल की फली।

विशेष—इस लता में सेम की सी पत्तियाँ, फूल और फलियाँ लगती हैं। सेम की फलियों से कौंच की फलियाँ अधिक गोल, बड़ी, गूदेदार और रोएँदार होती हैं। कौंच तीन प्रकार की होती है—भूरी, काली और सफेद। भूरी और काली फलियाँ रोएँदार होती हैं, सफेद बिना रोएँ की होती हैं। काली और सफेद तरकारी के काम में आती हैं, भूरी का अधिकतर व्यवहार औषध में होता है और इसके भूरे और चमकदार रोयों के शरीर में लगने से खुजली और सूजन होती है। वैद्यक में कौंच अत्यंत वीर्यवर्द्धक, पुष्ट, मधुर और वातघ्न मानी जाती है। इसके बीज वाजीकरण औषधों में पड़ते हैं।

पर्या०—कपिकच्छु। आत्मगुप्ता। शूकशिंबी। कंडूरा। सच्छोया। शूका। शूकवती। ऋषभ। जटा। गात्रभंगा। प्रावृषा। वानरी। लांगली। कुंडली। रोमवल्ली। वृष्या, इत्यादि।

कौंच³—संज्ञा [अं० कोच] दे० 'कोच'। उ०—बढ़िया साटन की मढ़ी हुई सुनहरी कौंच।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७७।

कौंचा†—संज्ञा पुं० [?] ऊख के ऊपर का पतला और नीरस भाग जिसकी गाँठें बहुत पास पास होती हैं। अगौरा।

कौंची†—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] बाँस की पतली टहनी।

कौंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] केवाँच। कौंच। वि० दे० 'कौंच²'।

कौंजर¹—वि० [सं० कौञ्जर] कुंजर संबंधी। हाथी संबंधी [को०]।

कौंजर²—संज्ञा पुं० उपवेशन या बैठने का एक तरीका [को०]।

कौंट—संज्ञा पुं० [अं० काउंट] [स्त्री० कौंटेस] यूरोप के कई देशों के सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों की उपाधि जिसका दर्जा ब्रिटिश उपाधि 'अर्ल' के बराबर का है।

कौंठ्य—संज्ञा पुं० [सं० कौण्ठ्य] भोथरापन। कुंठित होना [को०]।

कौंडल, कौंडलिक—वि० [सं० कौण्डल, कौण्डलिक] कुंडलवाला। कुंडलधारी [को०]।

कौंडिन्य—संज्ञा पुं० [सं० कौण्डिन्य] [स्त्री० कौंडिनी] १. कुंडिन मुनि के गोत्र का व्यक्ति। २. कुंडिन मुनि का पुत्र।

कौंतल—वि० [सं० कौन्तल] कुंतल देश संबंधी। कुंतल देश का।

कौंतिक—संज्ञा पुं० [सं० कौन्तिक] भालेवाला। बरछा चलानेवाला।

कौंती—संज्ञा स्त्री० [सं० कौन्ति] रेणुका नाम का गंधद्रव्य।

कौंतेय—संज्ञा पुं० [सं० कौन्तेय] १ कुंती के युधिष्ठिर आदि पुत्र। २. अर्जुन वृक्ष।

कौंदⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौंद'। उ०—केइंद्री वर वुद्ध राद्ध सब कौंद अहिन्नो।—पृ० रा० ७। १६६।

कौंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक। उ०—नयनों की नीलम घाटी जिस रसघन से छा जाती हो, वह कौंध कि जिससे अंतर की शीतलता ठढक पाती हो।—कामायनी, पृ० १०१।

कौंधना—क्रि० अ० [सं० कनन+चमकना=अन्व या सं० कबन्ध] बिजली का चमकना।

कौंधनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] करधनी।

कौंधा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] १. बिजली की चमक। कौंध। उ०—(क) कारी घटा सधूम देखियति अति गति पवन चलायो। चारों दिसा चितै किन देखो दामिनि कौंधा लायो।—सूर। (शब्द०)। २ बिजली। उठ कौंधा सा त्वरित राजतोरण पर आया।—साकेत, पृ० ४०३।

कोशनायक--संज्ञा पुं० [सं०] १ वह कर्मचारी जिसके जिम्मे खजाने का हिसाब किताब और उसकी रक्षा का भार हो। खजानची। कोशाध्यक्ष। २ कुवेर का नाम (को०)।

कोशपति--संज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। खजानची।

कोशपान--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन परीक्षाविधि।

विशेष—इस परीक्षाविधि के अनुसार यह जाना जाता था कि अभियुक्त अपराधी है अथवा नहीं। इसमे अभियुक्त को एक दिन उपवास करने के बाद परीक्षा के समय कुछ प्रतिष्ठित लोगो के सामने तीन चुल्लू जल पीना पड़ता था।

कोशपाल--संज्ञा पुं० [सं०] १ खजाने की रक्षा करनेवाला। २ खजानची। ३. कुवेर (को०)।

कोशपेटक--संज्ञा पुं० [सं०] वह पेटी या संदूक जिसमे खजाना रखा जाता है (को०)।

कोशफल--संज्ञा पुं० [सं०] १ अंडकोश। २ जायफल। ३ घिया, तरोई, लौकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा इत्यादि का गाछ।

कोशफला--संज्ञा स्त्री० [सं०] घिया, तरोई, लौकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा आदि की लता।

कोशल—संज्ञा पुं० [सं०] १ सरयू या घाघरा नदी के दोनों तटो पर का देश।

विशेष—उत्तर तटवाले को उत्तर कोशल और दक्षिण तटवाले को दक्षिण कोशल कहते हैं। किसी पुराण मे इस देश के पाँच खंड और किसी में सात खंड बतलाए गए हैं। प्राचीन काल मे इस देश की राजधानी अयोध्या थी।

२ उपर्युक्त देश मे बसनेवाली क्षत्रिय जाति। ३ अयोध्या नगर। ४. एक राग जिसमे गांधार और धैवत तो कोमल और शेष सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोशला--संज्ञा स्त्री० [सं०] कोशल की राजधानी। अयोध्या।

कोशलिक--संज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। घूस। रिश्वत।

कोशवासी--संज्ञा पुं० [सं० कोशवासिन्] सीप, शंख, घोंघा आदि मे रहनेवाले जीव (को०)।

कोशवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अंडवृद्धि का रोग। २ खजाने का बढ़ना (को०)।

कोशशायिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] कटार छुरिका आदि शस्त्र जो म्यान मे रखे जायँ (को०)।

कोशशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य परीक्षा आदि से प्राप्त या होनेवाली शुद्धता (को०)।

कोशसंधि—संज्ञा स्त्री० [कोशसन्धि] कोश देकर संधि करना। धन देकर किया जानेवाला मेल।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि यदि शत्रु कोशसंधि करना चाहे तो उसको ऐसे बहुमूल्य पदार्थ दे जिनका कोई खरीदनेवाला न हो या जो युद्ध के लिये अनुपयोगी हो या जो जांगलिक पदार्थ हों।

कोशस्थ--संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार पाँच प्रकार के जीवो मे से एक। शंख, घोंघा आदि इसी के अंतर्गत है। इस जाति के जीव का मांस मधुर, शीतल, वायुनाशक और कफ बढ़ानेवाला होता है।

कोशांग—संज्ञा पुं० [सं० कोशाङ्ग] एक प्रकार का नरकुल या सरकंडा (को०)।

कोशांड—संज्ञा पुं० [सं० कोशाण्ड] अंडकोश।

कोशांबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशाम्बी] दे० 'कौशांबी'।

कोशागार—संज्ञा पुं० [सं०] खजाना। भंडार।

कोशातक—संज्ञा पुं० [सं०] १ यजुर्वेद की कठ नाम की शाखा। २ केश। बाल (को०)। ३. तरोई (को०)।

कोशातकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तोरई। तरोई। २ शुक्ल पक्ष की रात (को०)। ३ एक वृक्ष का नाम। पटोल (को०)।

कोशातकी²—संज्ञा पुं० [सं० कोशातकिन्] १ व्यापार। वाणिज्य। २ व्यापारी। ३ वड़वानल। बडवाग्नि (को०)।

कोशाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। खजानची।

कोशाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशाधिप'।

कोशाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] खजानची। भंडारी।

कोशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशाधिप'।

कोशाभिसंहरण—संज्ञा पुं० [सं०] खजाने की कमी पूरा करना।

विशेष—चाणक्य ने इसके कई ढंग बताए हैं, जैसे—(१) बाकी राजकर को एकदम वसूल करना। (२) धान्य का तृतीय या चतुर्थ अंश टैक्स मे लेना। ३. सोने, चाँदी के उत्पादक, व्यापारियों, व्यवसायियों तथा पशुपालको से भिन्न भिन्न ढंग पर राजकर लेना। (४) मंदिरो की आमदनी मे से कर लेना। (५) धनियों के घरों से धन गुप्त दूतो द्वारा चोरी कराके प्राप्त करना।

कोशाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

कोशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानपात्र। आबखोरा (को०)।

कोशिन—संज्ञा पुं० [सं०] आम का वृक्ष। रसाल वृक्ष (को०)।

कोशिश—संज्ञा पुं० [फा०] प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग। श्रम।

कोशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कली। कुड्मल। २ बीजकोश। ३ पादुका। ४ अन्न की बालो का टूँड़ (को०)।

कोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोश'।

कोषकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशकार'।

कोषफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंकोल मिर्च। २. दे० 'कोशफल'।

कोषफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोशफला'।

कोषवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोशवृद्धि'।

कोषातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशातक' (को०)।

कोषाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोष का अध्यक्ष या स्वामी। वह जिसके पास कोष रहता है। २ वह जिसके पास किसी व्यक्ति या संस्था का आयव्यय और रोकड़ आदि रहती है। रोकड़िया। खजानची।

कोषिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशिन' (को०)।

कोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोशी' (को०)।

कोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदर का मध्य भाग। पेट का भीतरी हिस्सा।

यौ०—कोष्ठबद्ध। कोष्ठशुद्धि।

२. शरीर के अंदर का कोई वह भाग जो किसी आवरण से घिरा हो और जिसके अंदर कोई विशेष शक्ति रहती हो। जैसे,—पक्वाशय, मूत्राशय, गर्भाशय, आदि। ३ कोठा। घर का भीतरी भाग। ४ वह स्थान जहाँ अन्नसंग्रह किया जाय। गोला। ५. कोश। भंडार। खजाना। ६ प्राकार। कोट। शहरपनाह। चहारदीवारी। ७. वह स्थान जो किसी प्रकार चारो ओर से घिरा हो। ८. शरीर के भीतरी छह चक्रों मे से एक, जो नाभि के पास है। इसे मणिपूर भी कहते हैं। ९. दे० 'कोष्ठक'—३।

कोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की दीवार, लकीर या और कोई चीज जो किसी स्थान या पद को घेरने के काम में आती हो। २. किसी प्रकार का चक्र जिसमें बहुत से खाने या घर हों। सारणी। ३. लिखने में एक प्रकार का चिह्नों का जोड़ा जिसके अंदर कुछ वाक्य या अंक आदि लिखे जाते हैं। यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—( ), [ ] आदि।

१				९
	२		८	
		३		
	७			४
६				५

[कोष्ठक सारणी]

विशेष—(क) जब यह चिह्न किसी वाक्य के अंतर्गत आता है, तब इसके अंदर आए हुए शब्दों का परस्पर तो व्याकरण संबंध होता है, पर प्रधान वाक्य से व्याख्यात्मक या निदर्शनरूप अर्थसंबंध होते हुए भी प्रायः उसका व्याकरणसंबंध नहीं होता। (ख) गणित मे इन चिह्नों के अंतर्गत आए हुए अंक कुल मिलाकर एक समझे जाते हैं और उनमें से किसी एक अंक का कोष्ठक के बाहरवाले किसी अंक से कोई स्वतंत्र संबंध नहीं होता।

४. कोष्ठ। अन्नभंडार। ५. चहारदीवारी। ६. ईंट, चूना आदि से निर्मित वह स्थान जहाँ पशु जल पीते हों (को०)।

कोष्ठपाल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या स्थान की रक्षा करनेवाला व्यक्ति।

कोष्ठबद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पेट मे मल का रुकना। कब्जियत।

कोष्ठबद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोष्ठबद्ध'।

कोष्ठशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट का मलरहित और बिलकुल साफ हो जाना।

कोष्ठागार—संज्ञा पुं० [सं०] भंडार। भंडारखाना।

कोष्ठागारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंडारी। भंडारगृह का प्रधान। २. कोश मे रहनेवाला जीव (को०)।

कोष्ठाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाचन शक्ति। जठरानल (को०)।

कोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र जिसमे किसी मनुष्य के जन्मकाल और ग्रह, नक्षत्र आदि दिए हों। जन्मपत्री।

कोष्ण—वि० [सं०] कुछ गरम और कुछ ठंढा। कदुष्ण। कुनकुना।

कोस[१]—संज्ञा पुं० [सं० क्रोश] दूरी की एक नाप जो प्राचीन काल मे ४००० हाथ, या किसी किसी के मत से ८००० हाथ की होती थी। आजकल कोस प्रायः दो मील का माना जाता है।

मुहा०—कोसों या काले कोसों = बहुत दूर। कोसों दूर रहना = अलग रहना। बहुत बचना। कोसों भागना = दे० 'कोसों दूर रहना'।

कोस[२]—संज्ञा पुं० [सं० कोश] फूल का संपुट। फूल के भीतर का वह स्थान जहाँ मकरंद रहता है। उ०—कँवल प्रवेश भँवर जो किया। कोस झकोर सकल रस लिया।—माधवानल०, पृ० १९८।

कोसक[१]—संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] दे० 'कौशिक'। उ०—एकण दिहाड़ै मुनिराज अजोध्या कोसक आय कीधी।—रघु० रू०, पृ० ६४।

कोसना—क्रि० स० [सं० क्रोशन] शाप के रूप मे गालियाँ देना। दुर्वचन कहकर बुरा मानना।

मुहा०—पानी पी पीकर कोसना = बहुत अधिक कोसना। कोसना काटना = शाप और गाली देना।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० कोशाम्र] दे० 'कोसम'।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० कोशाम्र] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जिसके बीज औषध के काम आते हैं।

विशेष—यह पेड़ पंजाब, मध्य भारत और मदरास में अधिकता से होता है और इसका पतझड़ प्रतिवर्ष होता है। इसके हीर की लकड़ी ललाई लिए हुए भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है। इससे हल और खेती के औजार भी बनाए जाते हैं। इसमें लाख बहुत लगती है और बहुत अच्छी होती है। इसका फल कुछ खट्टापन लिए हुए मीठा होता है। वैद्यक मे इसका फल उष्ण, गुरु, पित्तवर्द्धक और दाहकारक माना गया है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है, जो वैद्यक के अनुसार सारक, पाचक और वमनकारक होता है। सुश्रुत में लिखा है कि इस तेल के मलने से कोढ़ या फोड़ा अच्छा हो जाता है।

कोसल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशल'।

कोसला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयोध्या नगरी (को०)।

कोसली—संज्ञा स्त्री० [सं०] षाडव जाति की एक रागिनी जिसमे ऋषभ वर्जित है।

कोसा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० कोश] एक प्रकार का रेशम जो मध्यभारत मे अधिक होता है।

कोसा[२]—संज्ञा पुं० [सं० कोश = प्याला] [स्त्री० कोसिया] मिट्टी का बड़ा दिया जो घड़ा ढकने या खाने पीने की वस्तुएँ रखने के काम मे आता है।

कोसा[३]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोसाकाटी'।

कोसा[४]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गाढ़ा रस या अवलेह जो चिकनी सुपारी बनाते समय सुपारियों को उबालने पर तैयार होता है और जिसकी सहायता से बढ़िया दर्जे की सुपारियाँ रंगी और स्वादिष्ट बनाई जाती हैं।

दिया। उन्हीं दोनों के संयोग से कोल वंश की उत्पत्ति हुई। स्कंद पुराण के हिमवत् खंड लिखा में है कि कोल एक म्लेच्छ जाति थी जो हिमालय में शिकार करती हुई घूमा करती थी।
१२ एक जंगली जाति। उ०—बन हित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी।—मानस, २। ६०।
विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण में कोल को लेट पुरुष और तीवर स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति लिखा है। स्कंदपुराण में इसे म्लेच्छ जाति लिखा है। पद्मपुराण में लिखा है कि जब यवन, पल्लव, कोलि, सर्प आदि सगर के भय से वशिष्ठ की शरण में आए, तब उन्होंने उनका सिर आदि मुँड़ाकर उन्हें केवल संस्कारभ्रष्ट कर दिया। आजकल जो कोल नाम की एक जंगली जाति है, वह आर्यों से स्वतंत्र एक आदिम जाति जान पड़ती है, और छोटा नागपुर से लेकर मिरजापुर के जंगलों तक फैली हुई है।

कोल²—संज्ञा पुं० [सं० कवल] चबेना। दाना। चरवन।

कोलकंद—संज्ञा पुं० [सं० कोलकन्द] एक प्रकार का कंद।
विशेष—काश्मीर में इसे पताल् कहते हैं। यह गरम होता है और कृमिदोष दूर करता है। इस कंद के ऊपर सूअर के से रोएँ होते हैं, इसलिये इसे वाराही कंद भी कहते हैं।

कोलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का पेड़। २. काली मिरिच। ३. शीतलचीनी।

कोलक²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा लंबा औजार जिसकी सतह पर दनदाने होते हैं। इससे रेती और आरी तेज की जाती है।

कोलककँटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का एक प्रकार [को०]।

कोलका—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलक] गोल मिर्च। उ०—तिक्ता उखना कोलका फलफला पुनि नाउ।—अनेकार्थ०, पृ० ८०।

कोलकुण—संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण। खटमल [को०]।

कोलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का कोलाचल नामक पर्वत। इसे कोलमलय भी कहते हैं।

कोलदल—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

कोलना—क्रि० स० [सं० क्रोडन] लकड़ी, पत्थर आदि को बीच से खोदकर पोला या खाली करना। † २ काढ़ लेना। उ०—धुनि सुनि और होति थिर चर गति औरि बिचारिनि की मति कोलै।—घनानंद पृ० ४७५।

कोलपार—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक प्रकार का वृक्ष।
विशेष—यह बराबर और दारजिलिंग की तराइयों में होता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं, जिनका मुरब्बा बनता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने और इमारत के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अंदर से गुलाबी निकलता है, पर हवा लगने से वह काला हो जाता है। इसे सोना भी कहते हैं।

कोलपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चील। कांक। कंक।

कोलमूल—संज्ञा पुं० [सं०] पिप्पलीमूल [को०]।

कोलशिंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलशिम्बी] सेम की फली।

कोलसा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंगवी'।

कोला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटी पीपल। पिप्पली। २. चव्य। ३. बेर का पेड़।

कोला²—संज्ञा पुं० [देश०] गीदड़।

कोला³—संज्ञा पुं० [अ०] अफ्रिका के गर्म प्रदेशों में होनेवाला एक पेड़ जिसके फल अखरोट की तरह होते हैं।
विशेष—इसके फलों के बीजों में थकावट दूर करने और नशे का चस्का छुड़ाने का गुण होता है। ये बीज निर्मली के समान जल साफ करने के काम में भी आते हैं।

कोलाहट—संज्ञा पुं० [सं०] वह नृत्य में प्रवीण मनुष्य जिसके अंग खूब टूटे हों, जो अंगों को खूब मोड़माड़ सकता हो जो तलवार की धार पर नाच सकता हो और जो मुँह से मोती पिरो सकता हो।

कोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट। शोर। होरा। हल्ला। रौला।
क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।
२. संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण कान्हड़ा और बिहाग के मेल से बनता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरी। बेर। कर्कंधु [को०]।

कोलिआर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झाड़ीदार पेड़।
विशेष—यह वृक्ष हिमालय, बरमा और मध्य तथा दक्षिण भारत में होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसकी छाल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। बंबई में इसकी पत्तियों में तमाकू या सुरती लपेटकर बीड़ी बनाती हैं।

कोलिक—संज्ञा पुं० [सं० कौलिक] जुलाहा। तंतुवाय।

कोलिवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलवल्लिका] कपिलता। केवाँच। —अनेकार्थ०, पृ० २८।

कोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोल = रास्ता] १ तंग रास्ता। पतली गली। २. वह खेत जिसका आकार पतला और लंबा हो।

कोलियाना¹†—क्रि० अ० [हिं० कोलिया + ना (प्रत्य०)] १.

कोलियाना²—संज्ञा पुं० [हिं० कोली + आना (प्रत्य०)] किसी गाँव का वह भाग या स्थान जहाँ कोली रहते हों कोलियों के रहने का स्थान।

कोली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड़, प्रा० कोल] १. आलिंगन के समय दोनों भुजाओं के बीच का स्थान। गोद। अँकवार।
क्रि० प्र०—में भरना या लेना।—भरना।
२ कोना। कोण। ३. दे० 'कोलिया'।

कोली—²—संज्ञा पु० [हिं० कोरी] हिंदू जुलाहा। कोरी। उ०—हाड़ देखि के तजत तिय ज्यों कोली को रूप। त्योंही धौरे केस लखि बुरो लगत नर रूप।—ब्र० ग्र०, पृ० ७८।

कोली³†—संज्ञा स्त्री० [?] वह कालापन जो हाथों और पैरों में मेंहदी लगाने के काम में आता है।

कोली४—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेर का पेड़। बदरी [को०]।

कोलेंदा—संज्ञा पुं० [सं० कोल=बेर+अण्ड] महुए का पका फल। गोलेंदा। कोइना।

कोल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपर। पिप्पली [को०]।

कोल्हाड़—संज्ञा पुं० [हिं० कोल्हू+आर (प्रत्य०)]। वह स्थान जहाँ ऊख पेरकर रस निकाला और गुड़ बनाया जाता हो।

कोल्हुआ१—संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा] कुश्ती का एक पेंच। दे० 'कूल्हा'।

कोल्हुआ२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोल्हू'।

कोल्हुआड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोल्हाड़'।

कोल्हू—संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा या देश०] तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो कुछ कुछ डमरू के आकार का बहुत बड़ा होता है।

विशेष—यह प्राय: पत्थर का और कभी कभी लकड़ी या लोहे का भी होता है। इसके बीच में थोड़ा सा खोखला स्थान होता है जिसे हाँडी या कूँड़ी कहते हैं। इसके पेंदे में एक नाली होती है जिसमें से तेल या रस निकलकर बाहर की ओर रखे हुए बरतन में गिरता है। कूँड़ी के मध्य में लकड़ी का मोटा और ऊँचा लट्ठा लगा रहता है जिसे जाठ कहते हैं। यह जाठ नधे हुए बैल या बैलों के चक्कर काटने से घूमती है, जिसके कारण कूँड़ी में डाली हुई चीज पर उसकी दाब पड़ती है।

क्रि० प्र०—पेरना।—चलना।

मुहा०—कोल्हू काटकर मोगरी बनाना=कोई छोटी चीज बनाने के लिये बड़ी चीज नष्ट करना। थोड़े से लाभ के लिये बहुत सी हानि करना। कोल्हू का बैल=(१) बहुत कठिन परिश्रम करनेवाला। दिन रात काम करनेवाला। (२) एक ही जगह बार बार चक्कर लगानेवाला। कोल्हू में डालकर पेरना=बहुत अधिक कष्ट पहुँचाकर प्राण लेना। बहुत दु:ख देकर जान से मारना।

कोल्हेना†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाब में होता है।

कोवँड(पु), कोवँड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड] दे० 'कोदंड'। उ०—कर करपि कोवँड बान।—पृ० रा०, ६६। १४८५।

कोवा—संज्ञा पुं० [सं० कोश] कटहल का बीज जिस कोश में रहता है। कोया। उ०—कटहर कोवा मेवा त्यावौं छोड पवारौं प्यारा।—जग० श०, भा० १, पृ० ११।

कोवारी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोविद—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कोविदा] पंडित। विद्वान्। कृतविद्य। उ०—केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद गज जिमि चहै।—नंद ग्रं०, पृ० १४७।

कोविदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कचनार का पेड़। २. कचनार का फूल।

कोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंड। अंडा। २. संपुट। डिब्बा। गोलक। जैसे, नेत्रकोश। ३ फूलों की बँधी कली। ४. मद्यपात्र। शराब का प्याला। ५. पत्रपात्र नामक पूजा का बरतन। ६. तलवार, कटार आदि का म्यान। ७. आवरण। खोल। जैसे,—बीजकोश।

विशेष—वेदांती लोग मनुष्य में पाँच कोशों की कल्पना करते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय। अन्न से उत्पन्न और अन्न ही के आधार पर रहने के कारण देह को अन्नमय कहते हैं। पंच कर्मेंद्रियों के सहित प्राण, अपान आदि पंचप्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं, जिसके साथ मिलकर देह सब क्रियाएँ करती है। श्रोत्र, चक्षु आदि पाँच ज्ञानेंद्रियों के सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं। यही मनोमय कोश अविद्या रूप है और इसी से सांसारिक विषयों की प्रतीति होती है। पंच ज्ञानेंद्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं। यही विज्ञानमय कोश कर्तृत्व भोक्तृत्व, सुख. दु:ख आदि अहंकारविशिष्ट पुरुष के संसार का कारण है। सत्वगुणविशिष्ट परमात्मा के आवरक का नाम आनंदमय कोश है।

८ थैली। ९. संचित धन। १०. वह ग्रंथ जिसमें अर्थ या पर्याय के सहित शब्द इकट्ठे किए गए हों। अभिधान। जैसे, अमरकोश। मेदिनीकोश। ११. समूह। १२. खान से ताजा निकला हुआ सोना या चाँदी। १३ अंडकोश। १४. योनि। १५. सुश्रुत के अनुसार घाव पर बाँधने की एक प्रकार की पट्टी। १६. एक प्रकार का पात्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में दो राजाओं के बीच संधि स्थिर करने में होता था। १७. ज्योतिष में एक योग जो शनि और बृहस्पति के साथ किसी तीसरे ग्रह के आने से होता है। १८ रेशम का कोया। कुसयारी। १९ कटहल आदि फलों का कोया। २०. दे० 'कोशपान'। २१. धनागार। खजाना (को०)। २२. बादल। मेघ (को०)। २३. लिंग। शिश्न (को०)। २४. तरल वस्तुओं के रखने का पात्र। (को०)।

कोशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंडा। २ अंडकोश [को०]।

कोशकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार, कटार आदि के लिये म्यान बनानेवाला। २ शब्दकोश बनानेवाला। अर्थ सहित शब्दों का क्रमानुसार संग्रह करनेवाला। ३ रेशम का कीड़ा। ४.एक प्रकार की ऊख। कुसियार।

कोशकार—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा [को०]।

कोशकीट—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा।

कोशकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख [को०]।

कोशगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंडारघर। २. धनागार। खजाना [को०]।

कोशग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन काल की परीक्षा-विधि। कोशपान [को०]।

कोशचंचु—संज्ञा पुं० [सं० कोशचञ्चु] सरहंस पक्षी। सारस [को०]।

कोशचञ्चु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

कोशज—संज्ञा [सं०] १. रेशम। २ सीप, शंख, घोंघे आदि में रहनेवाले जीव। ३. मोती। मुक्ता।

कोरम—संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने की उपस्थिति कार्यनिर्वाह के लिये आवश्यक होती है। किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने के उपस्थित रहने पर सभा का कार्य प्रारंभ होता है। कार्यनिर्वाहक सदस्यसंख्या। गणपूर्ति। जैसे,—साधारण सभा का कोरम ६ सदस्यों का है, पर ६ ही उपस्थित हुए, कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

कोरमकोर—वि० [हिं० कोरमकोर] १ पूर्णत। पूरी तौर से। २. एकमात्र। सिर्फ। उ०—ये दोनों लेखक मनुष्य के नैतिक व्यक्तित्व को कोरमकोर अर्थाश्रित मानते हैं और क्षण क्षण में उसकी खिल्ली उड़ाने को तैयार रहते हैं।—नया०, पृ० १७।

कोरमा—संज्ञा पुं० [तु०] अधिक घी में भुना हुआ एक प्रकार का मांस जिसमें जल का अंश या शोरबा बिलकुल नहीं होता।

कोरवस—संज्ञा पुं० [देश०] मदरास के आसपास रहनेवाली एक जाति।
विशेष—इस जाति के लोग प्राय दौरियाँ आदि बनाते और सारे भारत में घूम घूमकर अनेक प्रकार के पक्षियों के पर एकत्र करते हैं।

कोरवा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. पान की खेती का दूसरा वर्ष।
विशेष—जो पान पौधों में दूसरे वर्ष लगता है वह अधिक उत्तम माना जाता है।
२. दे० 'कोरा'।

कोरस—संज्ञा पुं० [अं०] पाँच सात व्यक्तियों का एक साथ गान। समवेत गान। सामूहिक गान। उ०—रंगभूमि को कोरस सों रस कब बरसावै।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४६।

कोरसाकेन—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा और सुहावना पेड़।
विशेष—यह अवध, बंगाल, आसाम और मदरास में अधिकता से होता है। लगाते ही यह पेड बहुत जल्दी बढ जाता है और घना तथा छायादार हो जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है जो अधिक दामों पर बिकती और इमारत के काम में आती है।

कोरहन†—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का धान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। औ संसार तिलक खँडविला।—जायसी (शब्द०)।

कोरहा[१]†—वि० [हिं० कोर+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कोरही] कोरदार। नोकदार। २ मन में किसी बात की कोर कसर बनाए रखनेवाला। बुराई का बदला लेनेवाला।
यौ०—कोरही सबरी=कसेरों की वह पतली और छोटी सबरी जो महीन काम करने के लिये होती है।

कोरहा[२]—वि० [हिं० कोरा=गोद] गोद में बहुत रहनेवाला।

कोरा†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड] गोद। उछंग। उ०—नैन जो चक्र फिरै चहुँ ओरी। चरचै धाइ समाइ न कोरी।—जायसी ग्रं०, पृ० २३७।

कोरा[१]—वि० [सं० केवल] [स्त्री० कोरी] १ जो बरता न गया हो। जिसका व्यवहार न हुआ हो। नया। अछूता।
मुहा०—कोरा छुरा या उस्तरा=वह उस्तरा जिसपर ताजा सान रखा हो। वह सान रखा हुआ छुरा जो चलाया न गया हो। कोरे छुरे या उस्तरे से मूँडना=(१) ताजी धार के छुरे से सिर मूँड़ना, जिसमें बाल जड से मुड जाय अथवा बड़ा कष्ट हो। (२) सूखा मूँड़न। बिना पानी लगाए मूड़ना। (३)खूब लूटना। खूब फँसना। कोरी धार या बाढ़=हथियार की धार जिसपर सान रखा हो। तीक्ष्ण धार। कोरा पिंडा=अछूना शरीर। बिना ब्याहा पुरुष या बिनब्याही स्त्री।
२. (कपड़ा या मिट्टी का बरतन) जो धोया न गया हो। जिससे जल का स्पर्श न हुआ हो। जैसे, कोरा घड़ा। कोरा कपड़ा। कोरा नैनसुख।
मुहा०—कोरा बरतन=(१) मिट्टी का वह बरतन जिसमें पानी न डाला गया हो (२) नवोढा स्त्री। अछूती कुमारी। (बाजारू)। कोरा सिर=(१) वह सिर जिसमें छुरा न लगा हो। वह सिर जिसमें पेट के बाल हों। (२) वह मला हुआ सिर जिसमें तेल न लगा हो।
३. जो रँगा न गया हो। जिसपर कुछ लिखा या चित्रित न किया गया हो। जिसपर कोई दाग या चिह्न न हो। सादा। साफ। जैसे,—कोरा कागज।
मुहा०—कोरा जवाब=साफ इनकार। स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार।
४. खाली। रहित। वंचित। विहीन। जैसे,—उन्हें कुछ नहीं मिला, वे कोरे लौट आए।
मुहा०—कोरा रह जाना=कुछ न पाना। सिद्धिलाभ न करना। वंचित रह जाना।
५ जिनपर कोई आघात या बुरा प्रभाव न पड़ने पाया हो। आपत्ति या दोष से रक्षित। निरापद या निष्कलंक। बेदाग।
मुहा०—कोरा बचना=किसी आपत्ति या दोष से साफ बचना।
६ विद्याविहीन। मूर्ख। अपढ। जड़। ७ धनहीन। अकिंचन। ८ केवल। सिर्फ। खाली। जैसे—कोरी बातों से काम न चलेगा।

कोरा[२]—संज्ञा पुं० [सं० करक] एक चिड़िया जो तालों के किनारे रहती है। इसकी चोंच पीली और पैर लाल होते हैं। यह जेठ असाढ़ में अंडा देती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

कोरा[३]—संज्ञा पुं० [?] बिना किनारे की रेशमी धोती।

कोरा[४]†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड़] गोद। उछंग।
क्रि० प्र०—लेना।

कोरा[५]—संज्ञा पुं० [देश०] १.एक छोटा पेड़।
विशेष—यह गढ़वाल, बरार, मध्यप्रदेश और आसाम में बहुतायत से होता है। यह पेड़ कद में छोटा होता है। इसके हीर की लकड़ी सफेद, चिकनी और नरम होती है। देहरादून और सहारनपुर में इसपर खोदाई का काम होता है। इसकी छाल, फल और पत्ते दवा के काम में आते हैं।
२. एक प्रकार का सलमा जो कारचोबी के काम में आता है।
३. ऊख के खेत की पहली सिंचाई।

कोरा⁴(५)—संज्ञा पुं० दे० 'चकोर' । उ०—जैसे स्नेह चंद कर कोरा । कबीर सा०, पृ० ६०८ ।

कोरान—संज्ञा पुं० [फा० कुरान] दे० 'कुरान' ।

कोरापन—संज्ञा पुं० [हिं० कोरा + पन (प्रत्य०)] नवीनता । अछूतापन ।

कोराहर(५)†—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] दे० 'कोलाहल' । उ०—कुहकहिं मोर सुहावन लागा । होइ कोराहर बोलहिं कागा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३६ ।

कोरि(५)—वि० [सं० कोटि] दे० 'कोटि' । उ०—ब्रजनिधि चतुर सुजान उनसों कबहू न तोरिए । वे ही जीवन प्रान कोरि नीति करि जोरिए ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३५ ।

कोरिया(५)†—संज्ञा पुं० [हिं० कोरी] १ दे० 'कोरी'¹ । उ०—ढूँढ़ि फिरे घर कोउ न बतायो स्वपच कोरिया लौं ।—सूर०, १।१२१ ।

कोरी¹—संज्ञा पुं० [सं० कोल = सुअर] [स्त्री० कोरिन] हिंदुओं की एक जाति जो सादे और मोटे कपड़े बुनती है । हिंदू जुलाहा । उ०—ज्यों कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर ।—कबीर सा० सं० पृ० ७७ ।

कोरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कोटि या अं० स्कोर] बीस वस्तुओं का समूह । कोड़ी ।

कोरी³—वि० स्त्री० [हिं० कोरा] १ जो काम में न लाई गई हो । अछूती । नवीन । २. जिसपर रंग न चढ़ा हो । जिसपर कुछ न लिखा गया हो । सादी । वि० दे० 'कोरा' ।

कोरैया†—संज्ञा पुं० [सं० कुटज या देश०] बनबेला । कुरैया । उ०—बनबेले (कोरैया) ने फूलकर बाग के बेलों को लजाया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२ ।

कोरो—संज्ञा पुं० [हिं० कोर] १ वह लकड़ी जिससे पनवारी का भीटा छाया जाता है । २ कोंडी जो खपरैल में लगती है । ३ रेंड़ का सूखा पेड़ ।

कोर्ट¹—संज्ञा पुं० [अं०] अदालत । कचहरी ।

कोर्ट²—संज्ञा पुं० [अं०] कोर्ट पीस नामक ताश के खेल में एक प्रकार की जीत जो लगातार सात हाथ जीतने से होती और सात बाजियाँ जीतने के बराबर समझी जाती है ।

कोर्ट आफ वार्ड्स्—संज्ञा पुं० [अं०] वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा किसी अनाथ, विधवा या अयोग्य मनुष्य की भारी जायदाद का प्रबंध होता है । कोरट ।

विशेष—जब से जमींदारी प्रथा समाप्त हुई यह विभाग बंद कर दिया गया ।

कोर्ट इंसपेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] पुलिस का वह कर्मचारी जो पुलिस की ओर से फौजदारी मुकदमों की पैरवी करता है ।

कोर्टपीस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का ताश का खेल जो चार आदमियों में होता है ।

कोर्टफीस—संज्ञा स्त्री० [अं० कोर्ट + फी] अदालती रसूम ।

विशेष—दे० 'रसूम' ।

कोर्ट मार्शल—संज्ञा पुं० [अं०] फौजी अदालत जिसमें सेना के नियमों को भंग करनेवाले, सेना छोड़कर भागनेवाले तथा बागी सिपाहियों का विचार होता है ।

कोर्टशिप—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक पाश्चात्य प्रथा जिसके अनुसार पुरुष किसी स्त्री को अपने साथ विवाह करने के लिये उद्यत और अनुकूल करता है । कन्यावरण ।

विशेष—यह प्रथा यूरोप, अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित है । प्राचीन काल में आर्यों में भी यह प्रथा थी, पर अब भारत की केवल कुछ असभ्य जातियों में ही देखी जाती है । यह प्रथा स्मृतियों के आठ प्रकार के विवाहों में से गांधर्व विवाह के अंतर्गत समझी जाती है ।

कोर्निस—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्निश] १ अभिवादन । नमस्कार । सलाम । बंदगी । २ संतों में एक आसन का नाम जो भजन के समय लगाया जाता है । उ०—जप और भजन दो आसनों में किए जाते हैं । प्रथम आसन को 'कोर्निस' कहते हैं ।—सं० दरिया०, पृ० ३२ ।

कोर्निसि(५)—संज्ञा पुं० [तु० कुर्निश] अभिवादन । उ०—दस्त जोरि कोर्निसि किया प्रेम प्रीति लव लाय ।—सं० दरिया पृ० ५ ।

कोर्मा—संज्ञा पुं० [तु० कोर्मह] घी में बना हुआ मांस । उ०—पहले वह दस दस दोस्तों के साथ, नवाबी दस्तरखान सजाकर बैठते, कोर्मा होता, कलिया होती, और रात रात भर बोतलों के काग फटाफट खुलते रहते ।—शराबी, पृ० १०४ ।

कोर्स—संज्ञा पुं० [अं०] उन विषयों का क्रम जो किसी विश्वविद्यालय स्कूल, कालेज, आदि में पढ़ाए जाते हैं । पाठ्यक्रम । जैसे,—इस बार बी० ए० के कोर्स में शकुंतला के स्थान पर भवभूति कृत 'उत्तररामचरित' रखा गया है ।

कोलंबक—संज्ञा पुं० [सं० कोलम्बक] वीणा का तूँबा और डंडा ।

कोल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुअर । शूकर । उ०—कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन ।—अकबरी०, पृ० १८६ । २. गोद । उत्संग । ३ आलिंगन करने में दोनों भुजाओं के बीच का स्थान ४ चीता नाम की ओषधि । चित्रक । ५ शनैश्चर ग्रह । ६ बेर । बदरीफल । ७. एक तौल जो तोले भर की होती है । ८ काली मिर्च । ९. शीतलचीनी । १० चव्य नाम की ओषधि । ११ पुरुवंशी आक्रीड नामक राजा का पुत्र । १२ एक प्रदेश या राज्य का प्राचीन नाम ।

विशेष—हरिवंश में कोल राज्य का नाम दक्षिण के पांड्य और केरल के साथ आया है । पर बौद्ध ग्रंथों में कोल राज्य कपिलवस्तु के पूर्व रोहिणी नदी के उस पार बतलाया गया है । शुद्धोदन और सिद्धार्थ दोनों का विवाह इसी वंश में हुआ था । इस कोल वंश के विषय में बौद्धों में ऐसा प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकुवंश के चार पुरुष अपनी कोढ़िन बहन को हिमालय के प्रांचल में ले गए और उसे एक गुफा में बंद कर आए । कुछ दिनों के उपरांत काशी का एक कोढ़ी राजा भी उसी स्थान पर पहुँचा और काली मिर्च (कोल) खाकर अच्छा हो गया । राजा ने एक दिन देखा कि एक सिंह उस गुफा के द्वार पर रखे हुए पत्थर को हटाना चाहता है । राजा ने सिंह को मारा और गुहा से उस कन्या का उद्धार करके उसका कुष्ट रोग छुड़ा

कोमल[1]—वि० [सं०] [संज्ञा कोमलता] १. मृदु। मुलायम। नरम। २ सुकुमार। नाजुक। ३ अपरिपक्व। कच्चा। जैसे—कोमलमति बालक। ४ सुंदर। मनोहर।

यौ०—कोमलचित्त=वह चित्त जो शीघ्र द्रवित हो जाय। दयापूर्ण चित्त।

कोमल[2]—संज्ञा पुं० १ संगीत मे स्वर का एक भेद।

विशेष—संगीत मे स्वर तीन प्रकार के होते हैं—शुद्ध, तीव्र और कोमल। षडज और पंचम शुद्ध स्वर हैं, और इनमे किसी प्रकार का विकार नही होता। शेष पाँचो स्वर (ऋषभ, गधर्व, मध्यम, धैवत और निषाद) कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं। जो स्वर धीमा और अपने स्थान से कुछ नीचा हो, वह कोमल कहलाता है। धीमेपन के विचार से कोमल के भी तीन भेद होते हैं—कोमल, कोमलतर और कोमलतम।

२ मृत्तिका। मिट्टी (को०)। ३ जातीफल। जायफल (को०)। ४. जल (को०)। ५. रेशम (को०)।

कोमलक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल का रेशा। मृणालतंतु [को०]।

कोमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृदुलता। मुलायमियत। नरमी। २.

कोमलांग—वि० [सं० कोमलाङ्ग] [वि० स्त्री० कोमलांगी] कोमल अंगोंवाला। जिसका शरीर मृदुल हो।

कोमलांगी—वि० [सं० कोमलाङ्गी] सुकुमार अंगोवाली।

कोमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वृत्ति जिसके अनुप्रासो मे व्यासपद हो, पर उसकी मधुरता बनी रहे। इसके दूसरे नाम प्रसाद और लाटी या लाटानुप्रास हैं। २ खिरनी का पेड़।

कोमासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलों के लिये छोटी जाली [को०]।

कोय(पु)—सर्व० [सं० कोऽपि, हिं० कोई] कोई भी। उ०—(क) जुगन जुगन समझावत हारा, कही न मानत कोय रे।—कबीर श०, पृ० ३५। (ख) मदामद वोलए सर्वे कोय पिवइत नीम वाँक मुँह होंय।—विद्यापति, पृ० २८३।

कोयता—संज्ञा पुं० [सं० कर्त्ता, प्रा० कत्ता=छुरा] ताड़ी टपकानेवालो का एक औजार जिससे वे छेव लगाते हैं।

कोयरा—संज्ञा पुं० [सं० कोंपल] १ साग पात। सब्जी। तरकारी। २ वह हरा चारा जो गौ बैल आदि को दिया जाता है।

कोयरी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोइरी'। उ०—यों ही कोइरी और काछी भी अच्छी तरकारी और भाजी देख राजी हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८।

कोयल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया। कोकिला। कोइली।

विशेष—यह आकार मे कौवे से कुछ छोटी होती है और मैदानो में वसंत ऋतु के आरंभ से वर्षा के अंत तक रहती है यह चिडिया सारे ससार मे पाई जाती है, और प्राय सभी भाषाओ मे इसके नाम भी इसके स्वर के अनुकरण पर बने है। भारत में कोयल अपने अंडे कौवे के घोसले मे रख देती और वही उसमे से बच्चा निकलता है। इसी लिए इसे संस्कृत मे 'अन्यपुष्ट' 'परभृत' भी कहते हैं। इसकी आँखें लाल, चोंच कुछ झुकी हुई और दुम चौड़ी तथा गोल होती है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस पित्तनाशक और कफ बढानेवाला है।

कोयल[2]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की लता। अपराजिता।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गुलाब मे मिलती जुलती, पर कुछ छोटी होती है। इसमे नीले और सफेद फूल होते हैं, और एक प्रकार की फलियाँ लगती हैं। इसका प्रयोग ओषधियो में बहुत होता है। वैद्यक के अनुसार यह ठढी, विरेचक और वमनकारक होती है। इसकी पत्तियो का रस पीने से साँप का विष उतर जाता है कभी कभी इसका प्रयोग अँगरेजी दवाओ मे भी होता है।

कोयला[1]—संज्ञा पुं० [सं० कोकिल=जलता हुआ अंगारा] १ वह जला हुआ अंश या पदार्थ जो जली हुई लकड़ी के अंगारों को बुझाने से बच रहता है। २ एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो कोयले के रूप का होता है और जलाने के काम मे आता है।

विशेष—यह कई रंग और प्रकार का होता है। जहाजों और रेलो के इंजिनो तथा भट्ठो आदि मे यही झोंका जाता है। है। इसकी आंच बहुत तेज होती है और बहुत देर तक ठहरती है। इसकी खाने संसार के प्राय सभी भागो मे पाई जाती हैं। वनस्पति और वृक्ष आदि के मिट्टी के नीचे दब जाने और बहुत दिनों तक उसी दशा मे पड़े रहने के कारण उनकी सडी लकड़ियाँ आदि जमकर पत्थर या चट्टान का रूप धारण कर लेती हैं और अंदर की गरमी से जलकर उसे वह रूप प्राप्त होता है जिसमें वह खानों से निकलता है। इसीलिए इसे पत्थर का कोयला भी कहते हैं। इसमे मिट्टी का भी कुछ अंश मिला रहता है जो इसके जल चुकने पर राख के साथ बाकी रह जाता है।

मुहा०—कोयलो पर मोहर होना=केवल छोटे और तुच्छ खरचो की अधिक जाँच पड़ताल होना। छोटे और तुच्छ पदार्थ की अधिक और अनावश्यक रक्षा होना।

कोयला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बडा पेड जो आसाम मे होता है। इसकी लकड़ी चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम मे आती है। इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ो को खिलाई जाती हैं। इसे सोम भी कहते हैं।

कोयष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी। श्वेत बक। करांकुल [को०]।

कोयष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोयष्टि' [को०]।

कोया[1]—संज्ञा पुं० [सं० कोण] १. आँख का डेला। उ०—(क) कहत भरे जल लोचन कोये।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बाल काहू लाली परी लोयन कोयन माँह। लाल तिहारे दृगन की परी दृगन मे छाँह।—बिहारी (शब्द०)। २. आँख का कोना।

कोया[2]—संज्ञा पुं० [सं० कोश] कटहल के फल के अंदर की वह गुठली जो चारो ओर गूदे से ढँकी होती है और जिसके अंदर बीज होता है। कटहल का बीजकोश। २ रेशम के कीड़े की खोल या आवरण।

कोरंड—संज्ञा पुं० [सं० कोरण्ड] १. अंडवृद्धि का रोग। २ एक पौधा (को०)।

कोरंगा—संज्ञा पुं० [देश०] गोबर और मिट्टी से पोती हुई एक प्रकार की बोरी जिसमे अनाज आदि रखते हैं।

कोरंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोरङ्गी] १. छोटी इलायची। २. पिप्पली।

कोरबा—संज्ञा पुं० [हिं० कोर+अनाज] वह अन्न जो मजदूरों को मजदूरी मे दिया जाता है।

कोर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण] १. किनारा। तट। उपकठ। उ०—चारि जना मिलि लेइ चले हैं, जाइ उतारे जमुनवा के कोर।—धरम०, पृ० ७४। २ किनारा। सिरा। हाशिया। उ०—केसरी वन्यो है बागो मोतिन की कोर लगो। फूल झरें जब वह मुख बोलें।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६१।

मुहा०—कोर निकालना=किनारा बनाना। कोर मारना या छाँटना=बढ़े हुए या धारदार किनारे को कम या बराबर करना।—(बढ़ई या संगतराश)।

३ कोना। गोशा। अतराल।

मुहा०—कोर दबना=किसी प्रकार के दबाव या वश में होना। कस में होना। जैसे—(क) अब तो उनकी कोर दबती है, अब वे कहाँ जायँगे? (ख) जबतक उनकी कोर न दबेगी, तब तक वे रुपया न देंगे।

४ द्वेष। वैर। वैमनस्य। उ०—उतते सूत्र न टारत कतहूँ, मोसों मानत कोर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना।—रखना।

५ द्वेष। ऐब। बुराई। ६. कमी। कसर। उ०—सुनो पूरबला अकरम मोर। बलि जाउँ करो जिन कोर।—रै० बानी, पृ० १७।

क्रि० प्र०—निकालना।

यौ०—कोरकसर।

७. हथियार की धार। बाढ़। ८. पंक्ति। श्रेणी। कतार। उ०—कोर बाँधि पाँचो भये ठाढे। आगे धरे जँजालन गाढे।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बाँधना।

कोर²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चैती फसल की पहली सिंचाई। २. वह चबैना या और खाद्य पदार्थ जो मजदूरों या कुलियों को जलपान के लिये दिया जाता है। पनपियाव। छाक।

क्रि० प्र०—देना।—बाँटना।—पाना।—लेना आदि।

कोर³—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर की आठ प्रकार की संधियों में से एक प्रकार की संधि। इस संधि पर से अवयव मुड़ सकते हैं। उँगली, कलाई, कुहनी और घुटने की संधियाँ इसी के अंतर्गत हैं। २. कुड्मल। कली (को०)।

कोर⁴—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन। सैन्यदल। जैसे,—वालंटियर कोर।

कोर⁵—वि० [फा०] सूर। अंधा। बिना आँखोंवाला (को०)।

कोर(पु)—वि०—[हिं०] करोड़। कोटि।

कोरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

विशेष—यह घास हिमालय मे काश्मीर से बरमा तक ६००० फुट ऊँची पहाड़ियों और तराइयों मे पैदा होती है। बंगाल और मदरास में अधिकता से इसकी चटाइयाँ बनती हैं। इसे कहीं कहीं मुदरकटी भी कहते हैं।

कोरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली। मुकुल। २ फूल या कली का वह बाहरी भाग जो प्राय. हरा होता है और जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं। फूल की कटोरी। उ०—कोरक सहित अगस्तिया लख्यो राहु अवतार। कला कलाधर को गिली जनु उगिलत एहि वार।—गुमान (शब्द०)। ३. कमल की नाल या डंडी। मृणाल। ४. चोरक नाम का गंधद्रव्य। ५ शीतल चीनी।

कोरक²—संज्ञा पुं० [सं० कोरक=मृणाल] एक प्रकार का मोटा और मजबूत बेत जो आसाम और बरमा मे होता है और जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

कोरकसर—संज्ञा स्त्री० [हिं०कोर+फा०कसर] १ दोष और त्रुटि। ऐब और कमी। २. अधिकता या न्यूनता। कमी बेशी। जैसे;—अगर इसके दाम मे कुछ कोर कसर हो तो उसे ठीक कर दीजिए।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

कोरट—संज्ञा पुं० [अं० कोर्ट आफ वार्ड्स] १. दे० 'कोर्ट आफ् वार्ड्स'। जैसे,—कोरट का मुहर्रिर। २. किसी जायदाद का कोर्ट आफ वार्ड्स मे आना या लिया जाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—कोरट छूटना=किसी जायदाद का कोर्ट आफ् वार्ड्स के प्रबंध से निकलना। किसी जायदाद पर से कोरट का प्रबंध उठना। कोरट बैठना=किसी जायदाद का कोरट के प्रबंध मे आना।

कोरड(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] चाबुक। कशा। कोड़ा। उ०—(क) हने कटि ले कोरडे कीने मृतक समान। दिए छोड तिस बार तिनि आप निज निज थान।—अर्ध०, पृ० १२। (ख) कोला राव बोला इं लुगाई नें उतारो। ग्राडा जो फिरै तो कोरडाँ सूँ फेरि मारो।—शिखर०, पृ० ६।

कोरदार—वि० [हिं० कोर+फा०दार] किनारेदार। नुकीला। अनियारा। उ०—ये न कज खंजन चकोर औौर गंजन सो, करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५७३।

कोरदूष, कोरदूषक—संज्ञा पुं० [सं०] कोदो। कोद्रव (को०)।

कोरना¹—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कोड़ना'।

कोरना²—क्रि० स० [हिं० कोर+ना (प्रत्य०)] १ लकड़ी आदि में कोर निकालना। २ छील छालकर ठीक करना। दुरुस्त करना। उ०—बनवासी पुर लोग महामुनि किए हैं काठ से कोरि।—तुलसी (शब्द०)। ३. किनारा बनाना। छाँटना। ३. खरोचना। खोदकर गड्ढा बनाना। उ०—ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरिकै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६५।

कोरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पत्थर पर खुदाई का काम। संगतराशी।

कोदार—संज्ञा पुं० [सं०] अन्नविशेष [को०] ।

कोदैकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोरनी । बिडोर ।

कोदो—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदों' ।

कोदों—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] एक प्रकार का कदन्न जो प्राय सारे भारतवर्ष मे होता है । कोदरा । कोदई ।

विशेष—इसका पौधा धान या बडी घास के आकार का होता है । इसकी फसल पहली वर्षा होते ही बो दी जाती है और भादो मे तैयार हो जाती है । इसके लिये बढ़िया भूमि या अधिक परिश्रम की आवश्यकता नही होती । कहीं कही यह रूई या अरहर के खेत मे भी बो दिया जाता है । अधिक पकने पर इसके दाने झडकर खेत मे गिर जाते हैं, इसलिये इसे पकने से कुछ पहले ही काटकर खलिहान में डाल देते हैं । छिलका उतरने पर इसके अदर से एक प्रकार के गोल चावल निकलते हैं जो खाए जाते हैं। कभी कभी इसके खेत मे अगिया नाम की घास उत्पन्न हो जाती है जो इसके पौधो को जला देती है। यदि इसकी कटाई से कुछ पहले बदली हो जाय, तो इसके चावलों मे एक प्रकार का विष आ जाता है । वैद्यक के मत से यह मधुर, तिक्त, रूखा, कफ और पित्तनाशक होता है । नया कोदो गुरु पाक होता है । फोडे के रोगी को इसका पथ्य दिया जाता है ।

मुहा०—कोदो देकर पढ़ना या सीखना = अधूरी या बेढगी शिक्षा पाना। कोदो दलना = निकृष्ट पर अधिक परिश्रम का काम करना । छाती पर कोदो दलना = किसी को दिखलाकर कोई ऐसा काम करना जिससे उसे ईर्ष्या और ताप हो । किसी को जलाने या कुढाने के लिये उसे दिखलाकर या उसकी जानकारी मे कोई काम करना ।

कोदो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदों' । उ०—फूटै नाक न टूटै काधन कोदो कों भुस खैहै ।—कबीर ग्र०, पृ० २८८ ।

कोद्रव—संज्ञा पुं० [स०] कोदो । कोदई ।

कोद्रा—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] मडुआ नामक अन्न । उ०—और कोद्रा भी हैं किंतु वह हमारे देश का कोदो नही मड़ुआ (रागी) है ।—किन्नर०, पृ० ७० ।

कोध(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र, हिं० कोति कोद] दे० 'कोद' । उ०—नर नारी सब देखि चकित भे दावा लग्यो चहूँ कोध ।—सूर (शब्द०) ।

कोन¹—संज्ञा पुं० [सं० कोण] कोना ।

मुहा०—कोन देना = कोने से हल को घुमाना । कोन मारना = जोतने मे छुटे हुए कोनो को गोड़ना ।

कोन²—संज्ञा पुं० [देश०] नौ की सख्या ।—(दलाल) ।

यौ०—कोनलाय ।

कोन³(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'कौन' । उ०—(क) कहो सर कोन करै पतिसाह । करै तव जग बचों नहि ताहि ।—ह० रासो, पृ० ५५ । (ख) फिरि फेरि बोलावहिं साहि मोहि सो मानि दिखावउँ कोन मुख ।—अकबरी०, पृ० ६६ ।

कोनलाय—संज्ञा पुं० [देश०] १६ की सख्या ।—(दलाल) ।

कोनसिला—संज्ञा पुं० [हिं० कोना + सिरा] कोनिया की छाजन में वह मोटी लकडी जो बँडेर के सिरे से दीवार के कोने तक तिरछी गई हो । कोरो इसी के आधार पर रखे जाते हैं ।

कोना—संज्ञा पुं० [सं० कोण] १. एक बिंदु पर मिलती हुई ऐसी दो रेखाओं के बीच का अतर जो मिलकर एक रेखा नहीं हो जाती । अ तराल । गोशा । २. नुकीला किनारा या छोर । नुकीला सिरा । जैसे- उसके हाथ मे शीशे का कोना धँस गया ।

मुहा०—कोना निकालना = किनारा बचाना । कोना मारना या छाँटना = दे० 'कोर मारना' ।

३ छोर का वह स्थान जहाँ लंबाई चौड़ाई मिलती हो । खूँट । जैसे,— दुपट्टे का कोना ।

मुहा०—कोना दबना = दे० 'कोर दबना' ।

४ कोठरी या घर के अ दर की वह सँकरी जगह जहाँ लबाई चौड़ाई की दीवारें मिलती हैं । गोशा ।

मुहा०—कोना अँतरा = घर के अदर का ऐसा स्थान जहाँ दृष्टि जल्दी न पड़ती हो । छिपा स्थान । जैसे,—(क) उसने सारा कोना अँतरा ढूँढ़ डाला । (ख) छडी कहीं कोने अँतरे मे पडी होगी ।

५. एकात और छिपा हुआ स्थान । जैसे,—कोने मे बैठकर गाली देना वीरता नही है । उ०—पर नारी का राँचना, ज्यो लह सुन की खान । कोने बैठ के खाइए, परगट होय निदान ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—कोना झाँकना = किसी बात के पड़ने पर भय या लज्जा से जी चुराना । किसी बात से बचने का उपाय करना ।—जैसे—तुम कहने को तो सब कुछ कहते हो पर पीछे कोना झाँकने लगते हो ।

६ चार भागो मे से एक । चौथाई । चहारुम ।—(दलाल) ।

मुहा०—कोने से = चार आने रुपए के हिसाब से ।

कोनालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० एक प्रकार का जलपक्षी [को०] ।

कोनालका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोनालक' ।

कोनिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० कोना + इया (प्रत्य०)] वह छाजन जिसमें बँडेर के दोनो सिरे पाखो पर नही रहते, बल्कि दीवार के कोनो से कुछ दूर पर रखी हुई धरन के ऊपर रहते हैं जहाँ से दीवार के कोनो तक दो धरने (कोनसिले) तिरछी रखी जाती है । ऐसी छाजन के लिये पाखो की आवश्यकता नही होती । २ काठ की पटरी या पत्थर की पटिया जो दीवार के कोने पर चीजें रखने के लिये बैठाई जाती है । पटनी । ३ पानी के नल आदि मे मोड़ पर लगाया जानेवाला लोहे का छोटा टुकड़ा जो कुहनी के आकार का होता है ।

कोनेदड—संज्ञा पुं० [हिं० कोना + दड] वह दड नामक कसरत जो घर के कोने मे दोनो ओर की दीवारो पर हाथ रखकर की जाती है ।

कोन्वशिर—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्षत्रिय जो ब्राह्मण द्वारा शापित होने से शूद्रत्व को प्राप्त हुआ हो [को०] ।

कोप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुपित] १. क्रोध। रिस। गुस्सा।
यौ०—कोपभवन। कोपभाजन।
२. आयुर्वेद में शारीरिक त्रिदोष विकार (को०)।

कोपक—संज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ, जो मंत्रियों के उपदेश से या राजद्रोही मंत्रियों के अनादर से हुआ हो।
विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि पहली अवस्था में मंत्री यह समझने लगते हैं कि हम न होते तो राज्य की बहुत हानि हो जाती, और दूसरी अवस्था में शेष मंत्री यह समझते हैं कि जहाँ हमसे लाभ न पहुँचेगा, वहाँ हमारा नाश होगा।

कोपड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] पहटा। सरावें। हेंगा।
विशेष—दे० 'हेंगा'।

कोपन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] क्रुद्ध होना। क्रोध करना (को०)।

कोपन[2]—वि० क्रोधी। उग्र स्वभाव का। २. दोष या विकार उत्पन्न करनेवाला (को०)।

कोपनक[1]—वि० [सं०] क्रोधी। क्रुद्ध (को०)।

कोपनक[2]—संज्ञा पुं० चोवा नामक गंधद्रव्य।

कोपना[1]Ⓤ—क्रि० अ० [सं० कोप + हिं० ना० (प्रत्य०)] क्रोध करना। क्रुद्ध होना। नाराज होना। उ०—कोप्यो समर श्रीराम।—तुलसी। (शब्द०)।

कोपना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोधी स्वभाववाली स्त्री (को०)।

कोपना[3]—वि० स्त्री० क्रोध करनेवाली। क्रोधी स्वभाव की (स्त्री)।

कोपपद—संज्ञा पुं० [सं०] कोप का कारण। क्रोध का कारण (को०)।

कोपभवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई मनुष्य क्रोध करके या अपने घर के प्राणियों से रूठकर जा रहे। उ०—कोपभवन गवनी कैकेयी।—तुलसी (शब्द०)।

कोपर[1]—संज्ञा पुं० [सं० कपाल] पीपल या अन्य किसी धातु का बड़ा थाल जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिये कुंडा लगा रहता है। उ०—कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।—तुलसी (शब्द०)।

कोपर[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कोपल] डाल का पका हुआ आम। टपका। सीकर। सोप।

कोपर[3]Ⓤ†—संज्ञा पुं० [सं० कूर्पर, प्रा० कोप्पर] [स्त्री० कोपरी]। भुजा और हाथ के मध्य की संधि। कुहनी उ०—(क) पाँव कोपर चरावे? चित सों वाछा राखीला।—दक्खिनी० पृ० ३३। (ख) दसकुणी अगुली, करी कोपरी कपाली। वीच वेत बिरवरी, फरी विहुरी किरमाली।—रा० रू०, पृ० २५१।

कोपल—संज्ञा पुं० [सं० कोमल या कुपल्लव] वृक्ष आदि की नई मुलायम पत्ती। कल्ला। अंकुर।

कोपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनफोड़ा नाम की बेल।

कोपली[1]—वि० [हिं० कोपर] कोपल के रंग का। आम के नए निकले हुए पत्ते के रंग का। बैंगनी।

कोपली[2]—संज्ञा पुं० एक रंग जो आम के तुरंत निकले हुए पत्ते के रंग अर्थात् कालापन लिए लाल बैंगनी होता है और मजीठ और नील के मिलाने से बनता है।

कोपिका Ⓤ—वि० स्त्री० [सं०] कोप करनेवाली। कोपपूर्ण। उ०—कुबरी इलाज सो अवाज करो कोपिका।—सुजान० पृ० ४।

कोपित—वि० [सं०] क्रोध में लाया गया। क्रुद्ध। (को०)।

कोपिन Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० कौपीन] दे० 'कौपीन'। उ०—कोपिन बाँधे मूल दुवार, उलटे पवन उठे झनकार।—गुलाल०, पृ० ५८।

कोपिलास†—संज्ञा पुं० [हिं० कोइलास] दे० 'कोइलास'।

कोपी[1]—वि० [सं० कोपिन्] १ कोप करनेवाला। क्रोधी। २. एक प्रकार का पक्षी जो जल के किनारे रहता है। ३. संकीर्ण राग का एक भेद।

कोपी[2]—वि० [सं० कोऽपि] कोई। कोई भी। उ०—विमुख राम त्राता नहिं कोपी।—तुलसी (शब्द०)।

कोपीन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौपीन'।

कोप्यापणयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार ऐसे जाली सिक्कों का चलना जिनका रोकना जरूरी हो।

कोफ्त—संज्ञा पुं० [फा० कोफ़्त] १. रंज। दुःख। खेद। दरदुद। परेशानी। हैरानी।
क्रि० प्र०—उठाना।—गुजरना।—होना।
२. लोहे आदि पर सोने चाँदी की पच्चीकारी।

कोफ्तगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० कोफ़्तगरी] लोहे के बरतनों या हथियारों पर चाँदी या सोने की पच्चीकारी करने का काम।

कोफ्ता—संज्ञा पुं० [फा० कोफ़्तह्] कूटे हुए मांस अथवा आलू आदि का बना हुआ एक प्रकार का कबाब जो जामुन के आकार का होता है और जिसके अंदर अदरक पुदीना, लहसुन, भुने चने का आटा आदि भरा रहता है। उ०—कोफ्ता तो ऐसा बना कि क्या कहिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४। २. वह कमाई जो नकुवेपन से प्राप्त हो (को०)।

कोंबडी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो बरमा और नेपाल में अधिकता से होता है।

कोबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठगृह या हिं० कोहबर] १ निवास। कोठरी। कोठर। उ०—काया कोबर भरि भरि लीन्हों ज्ञान अबीर उड़ोरी।—गुलाल०, पृ० १०५। २. दे० 'कोबर[1]'।

कोबिद Ⓤ—वि० [सं० कोविद] [वि० स्त्री० कोबिदा] दे० 'कोविद'।

कोबिदार—संज्ञा पुं० [सं० कोविदार] दे० 'कोविदार'।

कोबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोभी] गोभी का फूल।

कोमⓊ—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म, प्रा० कुम्म] दे० 'कूर्म'। उ०—चलत घाव वेग वाव धाव पाव चंचल। मही कपाल नीठ धीर पीठ कोन माकुले।—रा० रू०, पृ० १७६।

कोमता—संज्ञा पुं० [देश०] कीकर की जाति का एक बड़ा, मुलायम और सदाबहार पेड़ जो सिंध और अजमेर के रेतीले इलाकों में अधिकता से होता है। इसमें काँटे बहुत अधिक होते हैं।

कोमरा†—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का वह कोना जो किसी ओर कुछ अधिक बढ़ गया हो।

कोडी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौड़ी'। उ०—(क) सुंदर मनुषा देह यह पायो रतन अमोल। कोडी सटै न पोइये मांनि हमारो बोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६। (ख) गुन को न लेश ताको बडे गुनवान कहैं, दानी कहत जाको कोडी करते डरैं नही।—रघु० रू०, पृ० २८४।

कोडी²†—संज्ञा पुं० [देश० कुड्ड, कोडड] आश्चर्य। कुतूहल। कौतुक। उ०—सीगण कांइ न सिरजियाँ, प्रीतम हाथ करत। काठी साहन मूठि माँ, कोडी कासी सत।—ढोला०, दू० ४१६।

कोडी³—संज्ञा स्त्री० [अं० स्कोर या सं० कोटि] १ वीस का समूह। बीसी। २ तालाब का पक्का निकास जिससे तालाब भर जाने पर अधिक पानी निकल जाता है। पक्का ओना।

कोडी⁴—वि० बीस।

कोढ़—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ] [वि० कोढ़ी] एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो संक्रामक और पुरुषानुक्रमिक होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार कोढ १८ प्रकार का होता है जिनमे से कापाल, उदुंबर, मंडल, सिध्म, काकणक, पुंडरीक और ऋक्षजिह्व नामक सात प्रकार के कोढ़ महाकुष्ठ कहे और असाध्य समझे जाते हैं, और एक कुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विर्चचिका, विपादिका, पामा, कच्छू, दद्रु, विस्फोट, किटिम और अलसक नामक शेष ग्यारह प्रकार के कोढ़ क्षुद्र कुष्ठ कहे और साध्य समझे जाते हैं। कोढ़ होने से पहले चमड़ा लाल हो जाता है और उसमे बहुत जलन होती है। गलित कोढ़ से हाथ पैर की उँगलियाँ गल गलकर गिर जाती हैं। डाक्टरों के मत से यह सर्वांगव्यापी रोग है और श्लीपद आदि भी इसी के अंतर्गत हैं। इस रोग से पीड़ित मनुष्य घृणित और अस्पृश्य समझा जाता है।

मुहा०—कोढ़ चूना या टपकना = कोढ़ के कारण अंगों का गल गलकर गिरना। कोढ़ की खाज या कोढ़ में खाज = दुःख पर दुःख। विपत्ति पर विपत्ति। उ०—एक तो कराल कलिकाल सूलमूल तामें, कोढ मे की खाजु सी समीचरी है मीन की।—तुलसी (शब्द०)।

कोढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोड्ड] १. खेत मे वह बाड़ा या स्थान जहाँ खाद के लिये गोवर आदि संग्रह करने के अभिप्राय से पशुओं को रखते हैं। †२ सांकल आदि लगाने या फँसाने का लोहे आदि निर्मित गोला।

कोढिन, कोढिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोढ़ी] १ वह स्त्री जिसे कोढ़ हुआ हो। २ (लाक्ष०) माया।

कोढ़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ़] एक प्रकार का रोग जो तमाखू के पत्तों मे होता है और जिसके कारण उसपर चकत्ते या दाग पड जाते हैं।

कोढ़िला†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा।

कोढी¹—संज्ञा पुं० [हिं० कोढ़] [स्त्री० कोढ़िन] कोढ रोग से पीड़ित मनुष्य।

कोढ़ी²—वि० कुष्ठ रोग से ग्रस्त।

कोण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक बिंदु पर मिलती या कटती हुई दो ऐसी रेखाओं के बीच का अंतर, जो मिलकर एक न हो जाती हो। कोना। गोशा।

विशेष—जिन दो रेखाओं से कोण बनता है उनकी लंबाई के घटने बढने से कोण के मान मे कुछ अंतर नहीं पड़ता। कोण का मान निकालने का ढंग यह है कि जिस बिंदु पर दोनो रेखाएँ मिलती हैं उसे केंद्र मानकर दोनो रेखाओं को काटता हुआ एक वृत्त बनावे। फिर उसकी परिधि को ३६० अंशों में विभक्त करे। जितने अंश कोण बनानेवाली रेखाओं के बीच मे पड़ेंगे, उतने अंशों का वह कोण कहा जायगा। रेखागणित में कोण कई प्रकार के होते हैं, जैसे—समकोण (९० अंश का) न्यूनकोण (९० अंश से कम का), इत्यादि।

२. दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा।

विशेष—कोण चार हैं—अग्निकोण (पूर्व और दक्षिण के बीच का कोण), नैऋति (पश्चिम और दक्षिण का), ईशान (पूर्व और उत्तर का) तथा वायव्य (उत्तर और पश्चिम का)।

३ सारंगी का कमानी। ४, हथियारों की बाढ़। तलवार आदि की धार। ५. सोटा। डंडा। लाठी। ६ ढोल पीटने का चोब।

कोण²—संज्ञा पुं० [यू० कोनस] १ शनि ग्रह। २ मंगल ग्रह।

कोणकुण—संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण। खटमल (को०)।

कोणनर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोणशंकु'।

कोणप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौणप'।

कोणवादी—संज्ञा पुं० [सं० कोणवादिन्] शंकर। शिव (को०)।

कोणवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह देशांतर वृत्त जो उत्तरपूर्व से दक्षिण-पश्चिम या उत्तरपश्चिम से दक्षिणपूर्व की ओर गया हो।

कोणशंकु—संज्ञा पुं० [सं० कोणशङ्कु] सूर्य की वह स्थिति जब कि वह न तो कोणवृत्त मे हो और न उन्मंडल मे हो।

कोणस्पृग्वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जो किसी क्षेत्र के सब कोनों को छूता हुआ खींचा जाय।

कोणाकोणी—अव्य० [सं०] एक कोने से दूसरे कोने तक।

कोणाघात—संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार ढोलों और एक हजार डुग्गों के एक साथ बजने का शब्द०।

कोणार्क—संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथपुरी का प्रसिद्ध तीर्थ। यहाँ का सूर्य मंदिर बहुत प्रसिद्ध है।

कोणि—वि० [सं०] जिसका हाथ टेढा हो। वक्रहस्त (को०)।

कोत¹—संज्ञा स्त्री० [अ० कुवत] बल। शक्ति। जोर। उ०—कौंहर, कौल, जपादल, विद्रुम का इतनी जो बदूक' में कोत है।—शंभु (शब्द०)।

कोत²†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोद'।

कोतको—संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] दे० 'कौतुक'। उ० ज्यांरी कोतक देख जुध, हुवे मुनिंद्रा हास।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३।

कोतकहार†—वि० [सं० कौतुक + हिं० हार (प्रत्य०)] कौतुकी। खेल रचनेवाला। तमाशा दिखानेवाला। उ०—आप निरंजन हुय रह्या कायमो कोतकहार। दादू निर्गुण गुण कहै जाऊँगा बलिहार।—राम० धर्म०, पृ० २५।

कोतर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] दे० 'कोटर'। उ०—जुवती जन

चढ़ि काम जाहि कोतर तर पंपी। अवृत्त वृत्त सुंदरिय काम वदिय वर अ पी।—पृ० रा०, २५।६७५।

कोतरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कोतल[1]—संज्ञा पुं० [फा०] १. सजा सजाया घोडा जिसपर कोई सवार न हो। जलूसी घोडा। २. स्वयं राजा की सवारी का घोड़ा। उ०—गवर्नहि भरत पयादेहि पाये। कोतल संग जाहि डोरिआये।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह घोड़ा जो जरूरत के वक्त के लिये साथ रखा जाता है।

कोतल[2]—वि० जिसे कोई काम न हो। खाली।

कोतल गारद—संज्ञा पुं० [अं० क्वार्टर गार्ड] छावनी का वह प्रधान स्थान जहाँ हर समय गारद रहती है और जहाँ दलेलवालों की निगरानी होती है।

कोतवार—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] दे० 'कोतवाल'। उ०—भरमहुँ भौंरि न देअ कोतवार। काहु न के ओ नहि करये विचार।—विद्यापति, पृ० ३८६।

कोतवाल—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, प्रा० कोटवाल] १. पुलिस का एक प्रधान कर्मचारी जो किसी जिले के प्रधान नगर में रहता है और जिसके अधीन कई थाने और थानेदार होते हैं। इसपर नगर की शांतिरक्षा का भार रहता है। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस। २. वह कार्यकर्ता जिसका काम पंडितों की सभा या पंचायतवाली बिरादरी अथवा साधुओं के अखाड़े की बैठक, भोज आदि का निमंत्रण देना और उनका ऊपरी प्रबंध करना हो।

कोतवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोतवाल+ई (प्रत्य०)] १. वह स्थान या मकान जहाँ पुलिस के कोतवाल का कार्यालय हो। २ कोतवाल का पद या ओहदा।

कोतह—वि० [फा०] छोटा। कम।

कोतह गर्दन—संज्ञा पुं० [फा०] वह जिसकी गर्दन छोटी अर्थात् बहुत कम लंबी हो।

कोतहगरदनी(पु)—वि० [फा० कोतहगर्दन+ई] छोटी गरदनवाली। उ०—कोतहगरदनी ऐंचा तानी। कुबजा गाडर विष की खानी। कबीर सा०, पृ० १५६६।

कोतहनजर—वि० [फा० कोतह नजर] स्थूल बुद्धिवाला। अदूरदर्शी [को०]।

कोता(पु)†—वि० [फा० कोतह] [स्त्री० कोती] छोटा। कम। अल्प। उ०—सुर गधर्व सरिस नर नारी, नहिं विद्या बुद्धि कोती। —रघुराज (शब्द०)।

कोताह—वि० [फा०] छोटा। अल्प। कम।

कोताही संज्ञा स्त्री० [फा०] त्रुटि। कमी। कोर कसर।

कोति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र=किधर या कुत] दिशा। ओर। उ०—दामिनि ! निज दुति दरपि कै चमुक न अब इहि कोति। शृं० सत० (शब्द०)।

कोतिक(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'केतिक'। उ०—राजा येतो दुख जिनि करही। कोतिक नारि पुरुष जो मरही।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २१६।

कोतिक[2](पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] दे० 'कौतुक'। उ०—कोतिक लखे हुय विकराल दीरघ रद किया।—रघु० रू०, पृ० १२६।

कोतिग(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौतुक'। उ०—गनपति सारद मानिकै, रावै पूजौं पाय। कृष्णकेलि कोतिग कहौं, ताकी कथा बनाय।—ब्रज ग्रं०, पृ० १।

कोतिल(पु)†—संज्ञा पुं० [तु० कोतल] दे० 'कोतल'। उ०—चपल कोतिल कलल चंचल, विहद मद गल भ्रमर अलवत।—रघु० रू०, पृ० १२८।

कोथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख की पलक के भीतर का एक रोग। कथुआ। २. भगंदर। ३ मथन। मथना (को०)। ४ सड़न।

कोथ[2]—वि० पीड़ा से युक्त। २. मथित [को०]।

कोथमीर—संज्ञा पुं० [?] हरा धनिया।

कोथरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ कोठरी। २ दे० 'कोथली'। उ०—राम रतन मुख कोथरी पारख आगे खोलि।—कबीर ग्रं०, पृ० २५६।

कोथला—संज्ञा पुं० [हिं० गूथल अथवा कोठला] १. बड़ा थैला। २. पेट।

मुहा०—कोथला भरना=भोजन करना। (व्यंग्य)।

कोथली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोथला] रुपए आदि रखने की एक प्रकार की लंबी पतली थैली जिसे लोग कमर में बाँधकर रखते हैं। हिमयानी। उ०—खरे दाम घर मैं धरे खोटैं ल्यायौ जोरि। मिहि कोथली माहि धरि दीनी गाँठि मरोरि।—अर्ध०, पृ० ४७। (पु) २. कोठरी।

कोथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (तलवार के) म्यान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छल्ला या टुकड़ा। म्यान की साम।

कोदंड—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड] १ धनुष। कमान।

यौ०—कोदंडकला=धनुर्विद्या।

२. धनराशि। ३ भौंह। ४. एक प्राचीन देश।

कोद(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण अथवा कुत्र] १. दिशा। ओर। तरफ। उ०—भाग के भाजन जात जहाँ चहुँ कोदनि मोद बिनोद निपाये।—गुमान (शब्द०)। २ कोना। उ०—साखी हैं बेनी प्रवीन जु पै अबही इतै भाजि दुरे कहुँ कोद में। —बेनी (शब्द०)।

कोदइता‡—संज्ञा पुं० [हिं० कोदो+ऐत (प्रत्य०)] कोदो दलनेवाला।

कोदई†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो'।

कोदरा—संज्ञा पुं० [सं०कोद्रव] दे० 'कोदो'।

कोदरैता†—संज्ञा पुं० [हिं० कोदो+दरना] कोदो दलने की चक्की जो प्राय चिकनी मिट्टी की बनती है।

कोदव—संज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] कोदो।

कोदवला—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोदो] कोदो के पेड के आकार की एक प्रकार की घास, जिसके नरम पत्ते चौपाए शौक से खाते हैं।

कोटिश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोटीश'।

कोटीस(पु)—वि० [सं० कोटीश] करोड़पति। कोट्यधीश। उ०—नयर मध्य कोटीस वसं वानिक्क ग्रनत लछि।—पृ० रा०, २५। १७३।

कोटू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कूटू'।

कोटेशन—संज्ञा पुं० [अं०] लेख या वाक्य का उद्धृत अंश। उद्धरण। २ सीसे का ढला हुआ चौकोर पोला टुकड़ा जो कंपोज करने मे, खाली स्थान भरने के काम मे आता है।

विशेष—यह क्वाड्रेट से बड़ा होता है। इसकी चौड़ाई ४ एम पाइका और लंबाई २, ४, ६ या ८ एम पाइका तक होती है।

कोट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ किला। दुर्ग। २. नगर।—देशी०, पृ० ११०।

कोट्टवी—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाणासुर की माता।

विशेष—जब श्रीकृष्ण और वाणासुर मे युद्ध हुआ था, तब यह अपने पुत्र की रक्षा के लिये नगी होकर युद्धक्षेत्र में उतरी थी।

२ नगी स्त्री जिसके बाल बिखरे हों। ३ दुर्गा।

कोट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] १ किला। दुर्ग। २ किलेवदीवाला नगर। ३ कूप। कुआँ। ४ तालाब की सीढ़ी। ५ दुराचारी। लंपट [को०]।

कोट्यधीश—संज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति। करोड़ी। बहुत बड़ा धनी।

कोठ¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ जो मंडलाकार होता है।

कोठ²—वि० [सं० कुण्ठ] जिससे कोई वस्तु कूँची या चबाई न जा सके। कुंठित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दाँतों के लिये उस समय होता है, जब वे खट्टी वस्तु लगने के कारण कुछ देर के लिये बेकाम से हो जाते हैं।

कोठ³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोट्ट] कोट। किला। उ०—दहुति कोस विसतार कोठ मरद्दुध्य त्रिपु ची।—पृ० रा०, २६। ७५।

कोठ⁴—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोठ] दे० 'अंकोल'। उ०—सो उनके द्वारे एक कोठ को वृक्ष हतो।—दो० सौ बावन०, भा० १, पृ० ५१।

कोठडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठरी] दे० 'कोठरी'।

कोठर—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़।

कोठरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधारा नामक वृक्ष।

कोठरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठरी+इया] (प्रत्य०)] दे० 'कोठरी'।

कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा+डी (री) (अल्पा०) (प्रत्य०)] (मकान आदि मे) वह छोटा स्थान जो चारों ओर दीवारों या दरवाजों आदि से घिरा और ऊपर से छाया हो। छोटा कमरा। तंग कोठा।

मुहा०—अँधेरी कोठरी=दे० 'अँधेरी²' का यौगिक। अँधेरी कोठरी का यार=वि० दे० 'अँधेरी²' का मुहावरा। कालकोठरी=वि० दे० 'कालकोठरी'।

कोठली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोठरी'। उ०—सार की कोठली बंठ तालिया पूरा, पच मूसा ससारा।—रामानद०, पृ० ३६।

कोठा—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठक] १ बड़ी कोठरी। चौड़ा कमरा। २. कमरा। २ वह स्थान जहाँ बहुत सी चीजें संग्रह करके रखी जायँ। भंडार।

यौ०—कोठादार। कोठारी।

३. मकान में छत या पाटन के ऊपर का कमरा। अटारी। बड़ा मकान। व्यापारी, महाजन या संपन्न व्यक्ति का पक्का बड़ा मकान।

यौ०—कोठेवाली=बाजारू स्त्री। वेश्या।

मुहा०—कोठे पर चढ़ना=किसी ऐसे स्थान पर पहुँचना जहाँ सब लोग देख सकें। अधिक ज्ञात या प्रसिद्ध होना। जैसे,—(बात) ओठो निकली, कोठो चढ़ी। कोठे पर बैठना=वेश्या बनाना। कसब कमाना।

४ उदर। पेट। पक्वाशय।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=अपच आदि रोग होना। कोठा साफ होना=साफ दस्त होने के बाद पेट का हलका हो जाना।

५. गर्भाशय। धरन।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=गर्भाशय मे किसी प्रकार का रोग होना।

६. खाना। घर। जैसे,—शतरंज या चौपड़ के कोठे।

मुहा०—कोठा खींचना=लकीरों से खाना बनाना। कोठा भरना=हिंदुओं मे कार्तिक स्नान करनेवाली स्त्रियों का विशेष तिथियों को भूमि पर ३५ खाने खींचकर ब्राह्मण को दान देने के अभिप्राय से उनमे अन्न, वस्त्र आदि पदार्थ भरना।

७ किसी एक अंक का पहाड़ा जो एक खाने मे लिखा जाता है। जैसे,—आज उसने चार कोठे पहाड़े याद किए। ८ शरीर या मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग, जिसमे कोई विशेष शक्ति रहती हो।

मुहा०—कोठो मे चित्त भरमना या जाना=अनेक प्रकार की आशकाएँ होना। जैसे,—तुम्हारे चले जाने पर मुझे बहुत चिंता हुई, न जाने कितने कोठों मे चित्त भरमा। किसी कोठे मे चित्त जाना=किसी प्रकार की प्रवृत्ति या वासना होना। अर्धे कोठे का=मूर्ख। वेवकूफ। विचारशून्य। कोठा न होना या कोठा साफ होना=अंतःकरण शुद्ध होना। हृदय मे कोई बुरा विचार न रहना।

कोठाकुचाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठा+कुचाल] हाथियों की वह बीमारी जिसमें उनकी भूख मारी जाती है।

कोठादार—संज्ञा पुं० [सं० कोठा+फा० दार] भंडारी। कोठारी। भंडार का अधिकारी।

कोठार—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठागार] अन्न, धनादि रखने का स्थान। भंडार। उ०—कोठार और रसोई घर की गृहस्थ को रोज आवश्यकता पड़ती है।—रस०, पृ० ८२।

कोठारी—संज्ञा पुं० [हिं० कोठार+ई (प्रत्य०)] वह अधिकारी जो भंडार का प्रबंध करता और उसके लिये पदार्थ आदि का संग्रह करता हो। भंडारी। उ०—करिदे कौन कोठारी। खरीदे माल सब भारी।—संत तुरसी०, पृ० ६६।

कोठिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुठला'।

कोठी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठा+ई (प्रत्य०)] १. बड़ा पक्का मकान।

होती। उ०—[illegible] कोठी में जो [illegible] —[illegible] ग्रंथा०, भा० २, पृ० ३८। २. [illegible] के रहने का मकान। [illegible] ३. वह मकान जिसमें रुपए का लेनदेन या कोई बड़ा कारबार हो। बड़ी दूकान [illegible] जिसमें होती हो [illegible] किया जाता हो [illegible] किया जाता हो। जैसे,—(क) महाजन की कोठी। (ख) नील की कोठी।

मुहा०—कोठी करना या खोलना = (१) महाजनी का काम शुरू करना। लेनदेन का व्यवहार करना। (२) कोई बड़ा कारबार शुरू करना। बड़ी दूकान खोलना। कोठी चलना = महाजनी या कारबार होना। लेनदेन का व्यवहार होना। जैसे,—उनकी इस समय कई कोठियाँ चलती हैं। कोठी बैठना = दिवाला निकलना। कारबार में घाटा आना।

यौ०—कोठीवाल।

४. [illegible]। ५. ईंट या पत्थर की वह जोड़ाई जो कुएँ की दीवार या पुल के खंभे [illegible] नीचे जमीन तक होती है।

विशेष—यह जोड़ाई [illegible] या नींव के ऊपर होती है। [illegible] ज्यों ज्यों नीचे धँसता जाता है त्यों त्यों जोड़ाई होती जाती है।

क्रि० प्र०—[illegible]।

मुहा०—कोठी उतारना, बैठाना या डालना = [illegible] कोठी गलाना = कुएँ या पुल के खंभे [illegible] ऊपर की जोड़ाई को नीचे धँसाना। लाल कोठी = [illegible] (बाज़ारू)।

६. [illegible] ७. [illegible] ८. [illegible] ९. [illegible]

कोठी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठि या कूट = समूह] [illegible] ऊख या मंजे प्रकार [illegible]।

कोठीवाल—संज्ञा पुं० [हिं० कोठी + वाल (प्रत्य०)] [illegible] कोठी का [illegible]

कोठीवाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोठी] [illegible]

कोड़[illegible]—[illegible]

कोंपु—[illegible] [सं० कांति] [illegible]

कोड[1]—संज्ञा पुं० [अं०] [illegible]

कोड़ना—क्रि० स० [सं० [illegible]] [illegible]

कोड़वाना—क्रि० स० [हिं० कोड़ना का प्रे० रूप] [illegible] कोड़ने का काम कराना।

कोड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० [illegible]] [illegible] चाबुक। सोंटा। दुर्रा।

क्रि० प्र०—[illegible]

२. [illegible]

क्रि० प्र०—[illegible]

कोड़ा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] [illegible]

[illegible]

कोड़ाई—[illegible]

कोड़ी—[illegible]

कोच[४]—संज्ञा पुं० [सं०] १ संकोच । संकोचन । २. एक मिश्र जाति। कैवर्त और कसाई स्त्री के संयोग से उत्पन्न जाति [को०] ।

कोचकी—संज्ञा पुं० [देश०] मकोइया सेमिलता जुलता एक प्रकार का रंग जो ललाई लिये भूरा होता है और कई प्रकार से बनाया जाता है ।

कोचना—क्रि० स० [सं० कुच=लकीर करना, खिलना] धँसाना । चुभाना । गड़ाना ।

मुहा०—कोचा करेला=वह चेहरा जिसपर शीतला के बहुत से दाग हों । (व्यंग्य मे) ।

कोचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोचना] १. लोहे का एक छोटा औजार जो सुई के आकार का होता है और जिससे तलवार की म्यान के ऊपर का चमडा सीया जाता है । २ बैल हाँकने की छड़ी । पैना । औगी । ३. कोचने की कोई भी वस्तु ।

कोचबकस—संज्ञा पुं० [अं० कोच+बॉक्स] घोड़ा गाड़ी में वह ऊँचा स्थान जिसपर हाँकनेवाला बैठता है ।

कोंचरा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़े पेड़ो पर चढ़नेवाला एक प्रकार की घनी लता ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक अँगुल लंबी तथा दोनो ओर नुकीली होती है। जेठ, असाढ़ मे इसमे पीले रंग के फूल गुच्छो मे लगते हैं, और दूसरे बैसाख तक फल पक जाते हैं । यह लता गोडा, बहराइच तथा खसिया और भूटान में होती है ।

कोचरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी । उ०—करै कलोल कोचरी उलूक उद्ध कूकहीं ।—सुजान०, पृ० ३० ।

कोचवान—संज्ञा पुं० [अं० कोचमैन] घोड़ागाडी हाँकनेवाला ।

कोचा—संज्ञा पुं० [हिं० कोचना] १. तलवार, कटार, आदि का हलका घाव जो पार न हुआ हो ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

२ लगती हुई बात । चुटीली बात । ताना । व्यंग्य ।

क्रि० प्र०—देना ।

कोचिंडा—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली प्याज जो दक्षिण हिमालय मे होता है और खाने तथा दवा के काम मे आता है । कौंद्रा ।

कोचिला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुचला' ।

कोची—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की तरह का एक जंगली पेड़ । बनरीठा । सीकाकाई ।

विशेष—यह पूरब और दक्षिण भारत के जगलो मे अधिकता से होता है । इसकी छाल और पत्तियाँ प्राय.औषध के काम मे आती हैं । इसकी सूखी फलियों को लोग आँवले या इमली की भाँति रगड कर उससे सिर के बाल धोते हैं ।

कोचीन—संज्ञा पुं० [देश०] मदरास प्रांत की एक देशी रियासत जो ट्रावनकोर राज्य के उत्तर मे है ।

कोजागर—संज्ञा पुं० [सं०] आश्विन मास की पूर्णिमा । शरद पूनो ।

विशेष—ऐसा माना गया है कि इस रात को लक्ष्मी संसार का भ्रमण करती हैं और जिसे जागरण करते और उत्सव मनाते पाती हैं, उसपर प्रसन्न होती और उसे धन देती हैं। मानों लक्ष्मी तलाश करती फिरती है कि 'को जागर' अर्थात् कौन जागता है ।

कोजागरी–वि० [सं० कोजागरीय] कोजागर के पर्ववाला । कोजागर या आश्विन पूर्णिमा सबंधी । उ०—दीप कोजागरी बाले कि फिर आवें वियोगी सब ।—हरी घास०, पृ० ३६ ।

कोट[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्ग । गढ़ । किला ।

यौ०—कोटप । कोटपाल ।

२. शहरपनाह । प्राचीर । ३ राजमंदिर । महल । राजप्रासाद । ४ छप्पर । भोपडा (को०) । ५ दाढ़ी (को०) । ६ कुटिलता । कुटिलपन (को०) ।

कोट[२]—संज्ञा पुं० [सं० कोटि] समूह । यूथ । जत्था । उ०—चले तुरंग अपार कोटि कोटि को कोट करि । सोहत सकल सवार रामागमन अनंद भरि ।—रघुराज (शब्द०) । २ कोटि । करोड़ । उ०—अनतहि चदा ऊगिया सूर्य कोट परकास ।—दरिया० बानी, पृ० १५ ।

कोट[३]—संज्ञा पुं० [अं०] अंगरेजी ढंग का एक पहनावा जो कमीज या कुरते के ऊपर पहना जाता है और जिसका सामना बटनदार होता है ।

यौ०—कोटपतलून=साहबी पहनावा । योरोपीय पहनावा ।

कोट अरलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो समुद्र मे होती है और जिसका मांस खाने मे बहुत स्वादिष्ट होता है ।

कोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोपड़ी बनानेवाला व्यक्ति । २ एक वर्णसंकर जाति । सगतराश और कुम्हार की लड़की से उत्पन्न व्यक्ति [को०] ।

कोटगधल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ ।

विशेष—इसकी लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजबूत होती है और इमारत के काम मे आती है । बंगाल, मध्य प्रदेश और मदरास मे यह पेड़ अधिकता से होता है ।

कोटचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का चक्र, जिसका प्रयोग युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परिणाम जानने के लिये होता है ।

विशेष—यह आठ प्रकार का होता है, जिनके नाम ये हैं—मृण्मय, जलकोटक, ग्रामकोटक, गह्वर, गिरि, डामर, वक्रभूमि और विषम ।

कोटडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोठरी' । उ०—और नारायनदास ने अपने घर के आगें दोऊ ओर वैष्णवन के उतरिबे को न्यारी न्यारी कोटड़ी करि राखी हती ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११६ ।

कोटन—संज्ञा पुं० [सं०] शीत ऋतु । हेमंत ऋतु [को०] ।

कोटपाल—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग की रक्षा करनेवाला । किलेदार ।

कोटपीस—संज्ञा पुं० [अं० कोर्टपीस] दे० 'कोर्ट पीस' ।

कोटभरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठ+हिं० भरना] वह लकडी जो नाव के किनारे किनारे ऊपर की ओर जड़ी रहती है ।

कोटमास्टर—संज्ञा पुं० [अं० क्वार्टर मास्टर] दे० 'क्वार्टर मास्टर' ।

कोटर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेड़ का खोखला भाग । उ०—रूखन तर

मुनि भग्न परयो है। शुक कोटर ते यह नु गिरयो है।—शकुंतला, पृ० ११। २ दुर्ग के आसपास का वह कृत्रिम वन जो रक्षा के लिये लगाया जाता है।

कोटरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणासुर की माता का नाम।

कोटरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। चंडिका। काली। २. नग्न स्त्री। नंगी महिला (को०)।

कोटल़ा—संज्ञा पुं० [तु० कोतल] दे० कोतल[१]। उ०—दुग्र कोटल दुग्र नृपति के किन्ने हाजुर आनि।—पृ० रा०, ७। १०६।

कोटवार—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, प्रा० कोटवार] दुर्गरक्षक। किलेदार। उ०—पौरि पंथ कोटवार बईठा। पेम क लुबुधा सुरंग पईठा।—पदमावत, पृ० २६२।

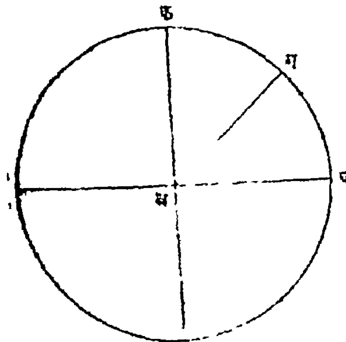
कोटवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोटपाल'। उ०—पायक चेतन कोटवालं।—रामानंद०, पृ० १५।

कोटवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोटरी' (को०)।

कोटा—संज्ञा पुं० [अं०] वह निर्धारित अंश जो किसी को देने या लेने के लिये हो।

यौ०—कोटा परमिट।

कोटि[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष का सिरा। कमान का गोशा। उ०—क्षत्रियो के चाप कोटि समक्ष, लोक मे है कौन दुर्गम लक्ष।—साकेत, पृ० १८१। २ किसी अस्त्र की नोक या धार। ३. वर्ग। श्रेणी। दरजा। ४ किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष। ५ उत्कृष्टता। उत्तमता। ६. अर्धचंद्र का सिरा। ७ समूह। जत्था। ८. किसी ९० अंश के चाप के भागों दो में से एक।



(क से घ तक का चाप ९० अंश का है। उसका एक अंश क ग उसके दूसरे अंश ग घ की कोटि है और ग घ उसके दूसरे अंश क ग की कोटि है।) ९ किसी त्रिभुज या चतुर्भुज की भूमि या आधार और कर्ण से भिन्न रेखा। १०. राशिचक्र का तृतीय अंश। ११ असवरग नामक सुगंध द्रव्य जो औषध के काम में आता है। १२. आखिरी सीमा या सिरा।

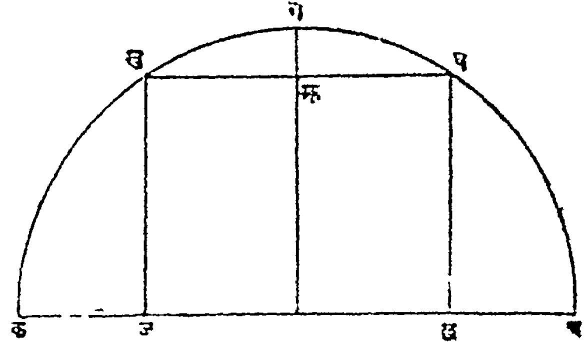
कोटि—वि० [सं०] सौ लाख की संख्या। करोड़।

कोटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. इंद्रवधूटी। गोपवधूटी (को०)।

कोटिक[२]—वि० [सं० कोटि+क] १ करोड़। उ०—कोऊ कोटिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार।—बिहारी (शब्द०)। २ अनेक करोड़। करोड़ों। अमित। असंख्य। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—कीनैं हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु। भो मनमोहन रूपु मिलि पानी मैं को लौनु।—बिहारी (शब्द०)।

कोटिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेणी का क्रम। विकासक्रम। उ०—हमने उपन्यास कला और उसके कोटिक्रम पर ही अधिक ध्यान रखकर ... ऊपर की पंक्तियाँ लिखी हैं।—साहित्या०, पृ० १५७।

कोटिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों की स्पष्टता के लिये बनाए हुए एक प्रकार के क्षेत्र का एक विशेष अंश।



विशेष—इस क्षेत्र में ख–झ या घ–झ, और ख—ज या घ—छ अंश कोटिज्या है।

कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थविशेष। इस नाम के तीर्थ अनेक हैं पर उज्जैन और चित्रकूट के तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

कोटिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] कोटयधीश। करोड़पति (को०)।

कोटिपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का पतवार (को०)।

कोटिफली—संज्ञा पुं० [सं०] गोदावरी नदी के सागरसंगम के निकट का प्रसिद्ध तीर्थ है।

विशेष—जब सिंह राशि पर बृहस्पति आता है, तब इस स्थान पर बड़ा मेला लगता है। उस समय तीर्थ में स्नान करने का बड़ा फल है। कहते हैं, इंद्र का अहल्यागमन का पाप इसी तीर्थ के स्नान से छूटा था।

कोटिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधुओं के सिर पर सींग के आकार की बनाई हुई जटा। २ इंद्र। ३. नकुल। नेवला। ४. बीरबहूटी (को०)।

कोटिश[१]—क्रि० वि० [सं० कोटिशस्] अनेक प्रकार से। बहुत प्रकार से।

कोटिश[२]—वि० बहुत अधिक। बहुत बहुत। अनेकानेक। जैसे,—आपको कोटिश धन्यवाद।

कोटिवेधी—वि० [सं० कोटिवेधिन्] १. निशत बिंदु पर प्रहार करनेवाला। २ (लाक्ष०) अत्यंत कठिन कार्य करनेवाला।

कोटिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा (को०)।

कोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोटि' (को०)।

कोटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. (साधु के माथे पर) सींग के आकार की जटा। २ शिखा। चूड़ा। ३. किरीट (को०)।

कोटीश—संज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति। कोटयधीश (को०)।

कोक[२]—संज्ञा स्त्री० [फा०] कच्ची सिलाई।

कोकआगम (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोक+आगमन] कामशास्त्र। कामकला। उ० - काव्य कोक आगमहिं बखानहुँ।—माधवानल०, पृ० २०८।

कोकई[१]—वि० [तु० कोक] ऐसा नीला जिसमे गुलाबी की झलक हो। कोडियाला।

कोकई[२]—संज्ञा पुं० [तु० कोक] ऐसा नीला रंग जिसमे गुलाबी की झलक हो। कोडियाला रंग।

विशेष—यह नील, शहाब और मजीठ के संयोग से बनता है।

कोककला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतिविद्या संभोग संबंधी विद्या। उ०—गहि अंग संग आसन दियव, कोक कला रस विस्तरिय।—हु० रासो, पृ० ४१।

कोकट—वि० [सं० कुक्कुटी] मटमैले रंग का। गंदा। मैल से भरा हुआ (कपड़ा)।

कोकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी, हिं० कुकटी] दे० 'कुकटी'। उ०—कोकटी की रूई खरीदकर उसने दो सेर सूत इसलिए काते।—रति०, पृ० १३१।

कोकदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोकशास्त्र या रतिशास्त्र का रचयिता। २ सूर्य (को०)। ३ कपोत। कबूतर (को०)।

कोकन—संज्ञा पुं० [देश०] एक ऊँचा पेड़ जो आसाम और पूरबी बंगाल मे होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ शिशिर मे झड़ जाती हैं। इसकी लकड़ी अंदर से सफेद निकलती है जिसपर पीली पीली धारियाँ होती हैं। लकड़ी का वजन प्रति घन फुट १०से १८ सेर तक होता है। देखने में तो मुलायम होती है। पर न फटती है और न झुकती है। यह चाय के संदूक और नाव बनाने के काम मे आती है तथा मकानो मे भी लगती है।

कोकनद—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल। १ लाल कुमुद। लाल कुई।

कोकना[१]—क्रि० स० [फा० कोक (=कच्ची सिलाई)+हिं० ना (प्रत्य०)] कच्ची सिलाई करना। कच्चा करना। लंगर डालना।

कोकना[२] (पु)†—क्रि० अ० [हिं० कूकना] बुलाना। चिल्लाना। उ०—कोकै पाड्यो अरी परधान। दीधों छै जव तिहा चउगुणउ मान।—वी० रासो, पृ० ८७।

कोकनी[१]—संज्ञा पुं० [सं० कोक=चकवा] एक प्रकार का तीतर।

कोकनी[२]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सतरा जो सहारनपुर और दिल्ली मे होता है।

कोकनी[३]—संज्ञा पुं० [तु० कोक=आसमानी] एक प्रकार का रंग जो शहाब, लाजवर्द और फिटकिरी से बनता है।

कोकनी[४]—वि० [देश०] १ छोटा। नन्हा। जैसे,—कोकनी बेर, कोकनी केला। २. घटिया। निकृष्ट। जैसे,—कोकनी कलाबत्तू।

कोकबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कोकबन्धु] रवि। सूर्य। दिनकर [को०]।

कोकम—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा सदाबहार पेड़, जो केवल दक्षिण भारत मे होता है।

विशेष—दे० 'अमसूल'।

कोकव—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो पूरवी बिलावल, केदारा, मारू और देवगिरि से मिलाकर बनाया गया है।

कोकवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बरमा और आसाम में बहुतायत से होता है। यह टोकरे बनाने के काम में आता है।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोककृत रतिशास्त्र।

कोकहर—संज्ञा पुं० [सं० कोक+हर] चकवा का आनंद हरण करने वाला—चंद्रमा। शशि।

कोका[१]—संज्ञा पुं० [अ०] दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष।

विशेष—इसकी सुखाई हुई पत्तियाँ चाय या कहवे की भाँति शक्तिवर्धक समझी जाती हैं। इसके व्यवहार से थकावट और भूख नहीं मालूम होती, इसलिये वहाँ के निवासी पहाड़ो पर चढ़ने से पहले थोड़ी सी सूखी पत्तियाँ चबा लेते हैं। इनमें एक प्रकार का नशा होता है, इसलिये एक बार इनका व्यवहार आरंभ करके फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है। कोकेन इसी से निकलता है।

कोका[२]—संज्ञा स्त्री० [तु० कोकह्] धाय की संतान। दूध पिलानेवाली की संतति। दूधभाई या दूधबहिन।

कोका[३]—संज्ञा पुं० [हिं० को] एक प्रकार का कबूतर।

कोका[४]—संज्ञा स्त्री० [?] नीली कुमुदिनी।

विशेष—दे० 'कोकाबेरी'।

कोकाबेरी—संज्ञा स्त्री० [कोका+बेली] नीली कुमुदिनी। नीली कुई।

विशेष—यह पुरानी झीलो या तालावो मे होती है। इसका फूल नीले रंग का, बड़ा और सुहावना होता है। इसमें भी कुई की तरह बीज होते हैं, जिनका आटा व्रत मे फलाहार की तरह खाया जाता है। इसके बीज भूनने से लावा हो जाते हैं,जिसे चीनी में पागकर लड्डू बनाते हैं।

कोकाबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० कोका+हिं० बेली] दे० 'कोकाबेरी'। उ०—कोकाबेली, पवन सियरी वारि की चारुताई। को है ऐसो, करहिं नहिं ये जासु तल्लीनताई।—द्विवेदी (शब्द०)।

कोकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] भारत का एक प्राचीन तीर्थ जिसका उल्लेख महाभारत मे आया है।

कोकाह—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा। उ० हरे कुरंग महुअ बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह सुपाँती।—जायसी (शब्द०)।

कोकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल।

पर्या०—पिक। परभृत। ताम्राक्ष। वनप्रिय। परपुष्ट। अन्यपुष्ट। वसंतदूत। रक्ताक्ष। मधुगायन। कलकंठ। कामांध। काकलीरव। कुहूख।

यौ०—कोकिलकंठी=दे० 'कोकिलबैनी'। कोकिलनयन=तालमखाना। कोकिलबैनी=कोयल जैसा मधुर बोलनेवाली। उ०—लंक सिंघिनी सारंगनैनी। हंसगामिनी कोकिलबैनी।—जायसी ग्रं०, पृ० १२। कोकिलरव। दे० 'कोकिलारव'।

२. नीलम की एक छाया। ३ एक प्रकार का चूहा जिस के काटने से ज्वर आता है और बहुत जलन होती है। ४ छप्पय का

१६ वाँ भेद जिसमें ५२ गुरु, ४८ लघु अर्थात् १०० वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। ५ जलता हुआ अंगारा।

कोकिलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छंद [को०]।

कोकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोयल। पिक। २ आग का अंगारा। उ०—चकई निसि बिछुरै, दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला।—जायसी ग्रं०, पृ० १५४।

कोकिलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तालमखाना।

कोकिलाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत मे एक ताल जिसमे एक प्लुत (प्लुत की तीन मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा) और तब फिर एक प्लुत होता है। इसे लोग परमलु भी कहते हैं। इसके मृदग के बोल ये हैं—धीकृत धीकृत धिधिकिट ऽ तक थीं। तकिडिगि डिधिगिन थों थो¹ ऽ।

कोकिलारव—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों मे से एक।

कोकिलावास—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का वृक्ष। रसालतरु [को०]।

कोकिलासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक आसन।

कोकिलेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जामुन। फरेंदा।

कोकिलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड। सहकार वृक्ष [को०]।

कोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चकवी। चक्रवाकी। उ०—छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी।—मानस, २।६६।

कोकीन—संज्ञा स्त्री० [अं० कोकेन] दे० 'कोकेन'।

कोकुआ—संज्ञा पुं० [सं० कोकाम्र] समष्ठिल नाम का पौधा।

पर्या०—मद्याम्र। अम्रगेधक। कोकाम्र। कटकफल। उपदेश।

कोकेन—संज्ञा स्त्री० [अं०] कोका नामक वृक्ष की पत्तियो से तैयार की हुई एक प्रकार की ओषध, जो गधहीन और सफेद रग की होती है।

विशेष—यह दवा की भाँति, मरहमो मे मिलाने और आँख आदि कोमल अगो पर अस्त्रचिकित्सा करने से पहले उन स्थानो को सुन्न करने के काम मे आती है। कुछ दिनो पूर्व भारत मे इसका प्रयोग मादक द्रव्यो की भाँति होने लगा था और लोग इसे पान के साथ खाते थे, पर अब इसका प्रयोग केवल डाक्टर ही कर सकते हैं। कानून द्वारा साधारण लोगो मे इसकी बिक्री बंद है।

यौ०—कोकेनची=मादक द्रव्य की भाँति कोकेन का उपयोग करनेवाला। कोकेन का नशा खानेवाला।

कोको¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कौआ। लड़को को बहकाने का शब्द। उ०—मैं तो सोय रही सुख नीद, पिया को कोको ले गई रे। (गीत)।

विशेष—जब किसी वस्तु को बच्चो के सामने से हटाना होता है, तब उसे हाथ मे लेकर कही छिपा देते हैं और उनके बहकाने के लिये कहते है कि कौआ ले गया। 'कोको ले गई'।

कोको²—संज्ञा पुं० [सं० कोकोआ] १. विषुवत् रेखा के आसपास के देशों मे होनेवाला एक पेड़ जो ताड़ वृक्ष के आकार का होता है। उ०—उसी ने कोको वृक्ष लगाना आरंभ किया।—प्रा० भा० प०, पृ० १३। २ कोको के फल का चूर्ण। ३. कोको के बीज के चूर्ण से बनाया हुआ पेय।

कोकोजम, कोकोजेम—संज्ञा पुं० [अं० कोको=नारियल] साफ करके जमाया हुआ, निर्गंध गरी का तेल जिसका व्यवहार घी के स्थान पर होता है।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षि, प्रा० कुक्खि] १. उदर। जठर। पेट। २. पसलियो के नीचे, पेट के दोनो बगल का स्थान।

मुहा०—कोखें लगना या सटना=पेट खाली रहने या बहुत अधिक भूख लगने के कारण पेट अंदर धँस जाना।

३. गर्भाशय।

विशेष—इस अर्थ के सब मुहावरो और यौगिक शब्दो का प्रयोग केवल स्त्रियो के लिये होता है।

यौ०—कोखबंद। कोखजली।

मुहा०—कोख उजड़ना=(१) संतान मर जाना। बालक मर जाना। (२) गर्भ गिर जाना। कोख बंद होना=बंध्या होना। संतति उत्पन्न करने के अयोग्य होना। कोख या कोख माँग से ठडी या भरी पूरी रहना=बालक या, बालक और पति का सुख देखते रहना—(आशीस)। कोख मारी जाना=दे० 'कोख बंद होना'। कोख की बीमारी या रोग=संतति न होने या होकर मर जाने का रोग। कोख की आँच=संतान का वियोग। संतान का कष्ट। जैसे—सब दु:ख सहा जाता है, पर कोख की आँच नहीं सही जाती। कोख खुलना=बाँझपन दूर होना। उ०—पर मिला पुत जो सपूत नहीं। क्या खुली कोख जो न भाग खुला।—चोखे०, पृ० ३६।

कोखजली—वि० स्त्री० [हिं० कोख+जलना] जिसकी संतति होकर मर जाती हो। जिसके बालक मर जाते हो।

कोखबंद—वि० [हिं० कोख+बंद] जिसे संतति न होती हो। बंध्या। बाँझ।

कोखा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोख'। उ०—बालक जन्मा मोरे कोखा। जन्म मरे की भागी धोखा।—कबीर सा०, पृ० ५३८।

कोगी—संज्ञा पुं० [देश०] लोमड़ी से मिलता जुलता एक जानवर।

विशेष—यह झुंड में रहता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है। कहते हैं इनका झुड मिलकर शेर पर टूट पड़ता है और उसके शरीर का सारा मास खा जाता है। जिस जगल में कोगी का झुंड जाता है, उसमे से शेर डरकर निकल जाते हैं।

कोच¹—संज्ञा पुं० [अं०] १ एक प्रकार की चौपहिया बढ़िया घोड़ा‧गाड़ी।

यौ०—कोचबकस। कोचवान।

२. गद्देदार बढ़िया पलंग, बेंच या आरामकुरसी।

कोच²—संज्ञा पुं० [हिं० कोचना] वह लबी छड़ जिसकी सहायता से भट्ठे मे से ढले हुए बरतन निकाले जाते हैं।

कोच³—संज्ञा पुं० [?] टूटे हुए जहाज का टुकड़ा।—(लश०)।

कोंछी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछा] साड़ी या धोती का वह भाग जिसे चुनकर स्त्रियाँ पेट के आगे खोसती हैं । फुबती । तिन्नी । नीवी ।

कोंड़ई—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीला झाड़ या पेड़ ।
विशेष—यह झाड़ देहरादून, कुमाऊँ, बंगाल और दक्षिण भारत में होता है । इसकी पत्तियाँ ३-४ अंगुल लंबी होती हैं । इसमें बहुत छोटे फूल छोटे छोटे गुच्छों में लगते हैं । पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं, फल खाए जाते हैं तथा जड़ और छाल की दवा बनती है ।

कोंड़रा†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] लोहे का वह कड़ा जो मोट के मुँह पर लगा रहता है । गोंडरा ।

कोंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] हुडुक बाजे की वह लकड़ी जिसपर चमड़ा मढ़ा रहता है ।

कोंड़हा—वि० [हिं० कोढ़ा] दे० 'कोढ़ा' ।

कोंडी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोडा' । उ०—रैयत जगत सब्द की कोडी, दूजी मार न मारी ।—धरनी०, पृ० ३ ।

कोंढ़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] धातु का वह छल्ला या कड़ा जिसमें जंजीर या और कोई वस्तु अटकाई जाती है ।

कोंढ़ा²—वि० [हिं० कोढ़ा+हा (प्रत्य०)] (रुपया) जिसमें कोढा लगा हो या जिसमें कोढ़ा लगे रहने का चिह्न हो ।
विशेष—इस देश में रुपयों में छेद करके उनकी माला पिरोकर स्त्रियों और बच्चों को पहनाते हैं । ऐसे रुपयों को माला में से निकालकर बाजार में चलाने से पहले उनके छेद चाँदी से बंद कर देते हैं । इस प्रकार के रुपयों को कोढ़ा या कोढ़हा कहते हैं ।

कोंढी¹—संज्ञा, स्त्री० [हिं० कोंढ़ा' का अल्पा०] दे० 'कोढ़ा' ।

कोंढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोरक] मुँहबँधी कली । अनखिली कली ।

कोंथा†—संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों की परिभाषा में बरतन आदि का वह पूर्वरूप जो मिट्टी को चाकपर रखने के बाद बनता है ।

कोंथना—क्रि० अ० [सं० कुन्थन] दे० 'कूँखना' या 'कूथना' ।

कोंप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोंपल' । उ०—उठें कोंप जनु दाखि दाखा । भई ओनत प्रेम की साखा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६० ।

कोंपना†—क्रि० अ० [हिं० कोंपल या कोंप+ना (प्रत्य०)] कोंपल निकलना या लगना ।

कोंपर†—संज्ञा पुं० [हिं० कोंपल] छोटा अधपका या डाल का पका हुआ आम ।

कोंपल†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल या कु+(अल्प), छोटा+पल्लव] वृक्ष आदि की छोटी, नई और मुलायम पत्ती । अंकुर । कल्ला । कनखा ।

कोंवर(पु)†—वि० [सं० कोमल] नरम । मुलायम । नाजुक । उ०—(क) कोंवरे पानि रची मेंहदी इफ नीके बजाय हरें हियरा री ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) (ख) माखन सी जीभ मुख कंज सो कोंवर कहु काठ सी कठैठी बातें कैसे निकरति हैं ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७२ ।

कोंवरि(पु), कोंवरी(पु)—वि० स्त्री० [सं० कोमल] मुलायम । नाजुक । कोमल । उ०—(क) भेदहुँ चाहि धनि कोंवरि भई ।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० ३३६ । (ख) एक तो ताती सुठि कोवरी ।—जायसी ग्र०,पृ० १२४ ।

कोंवल(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'कोमल' । उ०—कोवल कुटिल केस नग कारे ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १८५ ।

कोंवलि(पु)†—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'कोमल' । उ०—सुआ सो नाक कठोर पँवारी । वह कोंवलि तिल पुहुप सँवारी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १८६ ।

कोंस—संज्ञा पुं० [सं० कोश] लंबी फली । छीमी ।

कोंहड़ा†—संज्ञा पुं० [सं०कूष्माण्ड, प्रा० कोहंड] दे० 'कुम्हड़ा' ।

कोंहड़ौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंहड़ा+बरी] कुम्हड़े या पेठें की बनाई हुई बरी ।

कोंहरा†—संज्ञा पुं० [देश०] [कोंहरी] उबाले हुए खड़े चने या मटर जिनको तेल में छौंककर और नमक मिर्च लगाकर खाते हैं । घुँघनी ।

कोंहराना†—संज्ञा पुं० [हिं० कोंहार] वह बस्ती जहाँ कोंहार रहते हैं ।

कोंहाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कोहाना' ।

कोंहार†—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार, प्रा० कुम्भार] दे० 'कुम्हार' । उ०—तुरी औ नाव दाहिन रथ हाँका । बाएँ फिरै कोहार क चाका ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६८ ।

को¹(पु)—सर्व० [सं० क]१ कौन । उ०—तू को, कौन देस है तेरो । कै छल गह्यो राज सब मेरो ।—सुर०, १।२६० । २. कोई । उ०—पैदा जाको हुआ है वो सब उनो किया है । —दक्खिनी० पृ० २१२ । ३ क्या । उ० —इतर धातु पाहनहिं परसि कंचन ह्वै सोहै । नंदसुवन को परम प्रेम इह अचरज को है ।—नंद० ग्र०, पृ० ८ ।

को²—(प्रत्य०) [हिं०] कर्म और संप्रदान का विभक्ति प्रत्यय । जैसे—साँप को मारो । राम को दो । उ०—और विद्या को अभ्यास विशेष हतो ।—अकबरी० पृ० ३८ ।

कोआ—संज्ञा पुं० [सं० कोश या हिं० कोसा] १.रेशम के कीड़े का घर । कुसियारी । २ टसर नामक रेशम का कीड़ा । ३ महुए का पका फल । कोलेंदा । गोलेंदा ४ कटहल के पके हुए बीजकोश । ५ धुने हुए ऊन की पोनी, जिसे कातकर ऊन का तागा निकालते हैं । (गड़रिया) । ६ दे० 'कोया' ।

कोआर—संज्ञा पुं० [देश०] कोरा नाम का वृक्ष ।

कोइँदा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कोइना' ।

कोइदी—संज्ञा स्त्री० [कोइँदा] महुए का बीज ।

कोइ(पु)—सर्व० [हिं० कोई] दे० 'कोई' उ०—लोग कहहिं यह होइ न जोगी । राजकुँवर कोइ अहै वियोगी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २६४ ।

कोइक(पु)—सर्व० [सं० कति+एक या कियत्+एक हिं० कोई एक] दे० 'कोई' । उ०—(क) कोइक दिन गुर राम पै पढी सुबुधि विद्या अप्प । चवदसु विद्या चतुर बर लई सीष पर

लिए।—पृ० रा०, १। ७१६। (ख) कोइक आखर मति वस्यउ उही पंख समार।—ढोला०, दू० ६७।

कोइडार†—संज्ञा पुं० [हिं० कोइरी + आर (प्रत्य०)] वह खेत या स्थान जहाँ कोइरी लोग साग, तरकारी आदि बोते हों।

कोइनां†—संज्ञा पुं० [हिं० कोआ + इना (प्रत्य०)] महुए का पका फल। गोलेंदा।

कोइराना—संज्ञा पुं० [हिं० कोइरी] वह बस्ती जहाँ कोइरी रहते हों।

कोइरारा†—[हिं० कोइरी] दे० 'कोइडार'।

कोइरी—संज्ञा पुं० [हिं० कोयर = साग पात] एक जाति। इस जाति के लोग साग, तरकारी आदि बोते और बेचते हैं। काछी।

कोइल¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १ गोल छेददार लकडी जो मक्खन निकालने के समय दूध के मटके या मेहँडे के मुँह पर रखी जाती है और जिसके छेद मे मथानी इसलिये डाल दी जाती है कि जिसमें वह सीधी घूमे और उससे मटका न फूटे। २ करघे मे की वह लकडी जो ढरकी के बगल में लगी रहती है।—(जुलाहा)।

कोइल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोलना] दे० 'कोइलारी'।

कोइल³—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] दे० 'कोयल' 'कोकिल'। उ०—या ठोटी हरि को जबै सफल भए बैराय। तबहिं रसालनि को गई कोइल दाग लगाय।—राम० धर्म०, पृ० २३४।

कोइलरी—संज्ञा पुं० [अं० कोलियरी] कोयले की खान।

कोइलांस—संज्ञा पुं० [हिं० कोइल + आंस] (प्रत्य०) दे० 'कोइली'।

कोइला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोयला'। उ०—करम काट कोइला किया ब्रह्म अगिन परचार।—कबीर सा०, पृ० २५।

कोइलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोलना] १. गरांव की मुद्धी। १ लकडी का वह गोल कडा जिसे बदमाश चौपायों के गरांव मे इसलिये फँसा देते हैं जिसमे झटका देने या खीचने से उनका गला दबे। इस व्यवहार से बदमाश चौपाये सीधे हो जाते हैं और चुपचाप खडे रहते हैं।

कोइलिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल + इया] (प्रत्य०)] दे० 'कोयल'।

कोइली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल] १. वह कच्चा आम जिसमे किसी प्रकार का आघात लगने से एक काला सा दाग पड जाता है। ऐसा आम कुछ सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

विशेष—साधारण लोगों का यह विश्वास कि आम की यह दशा उसपर कोयल के पादने या बैठने से हो जाती है।

२. आम की गुठली। ३ दे० 'कोयल'।

कोई¹—सर्व० [सं० कोपि, प्रा० कोवि] १. ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो। न जाने कौन एक। जैसे,—वहाँ कोई खड़ा था, इसी से मैं नहीं गया।

मुहा०—कोई न कोई = एक नहीं तो दूसरा। यह न सही, वह। जैसे—कोई न कोई तो हमारी बात सुनेगा।

२. ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। बहुतों मे से चाहे जो एक। अविशेष वस्तु या व्यक्ति। जैसे,—(क) वहाँ बहुत सी पुस्तकें पड़ी हैं, उनमे से कोई ले लो। (ख) हमारा कोई क्या कर लेगा ?

मुहा—कोई एक या कोई सा = जो चाहे सो एक।

३ एक भी (मनुष्य) जैसे—वहाँ कोई नहीं है।

कोई²—वि० १. ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो।

मुहा०—कोई दम का मेहमान = थोड़े ही काल तक और जीनेवाला। शीघ्र मरनेवाला।

२. बहुतों मे से चाहे जो एक। ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। जैसे,—इनमे से कोई एक पुस्तक ले लो। ३. एक भी। कुछ भी। जैसे—(क) कोई चिंता नहीं (ख) यह कोई पढना नहीं है।

मुहा०—यह भी कोई बात है ? = यह कोई बात नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं होना चाहिए। जैसे,—(क) जब हम आते हैं तब तुम चल देते हो। यह भी कोई बात है। (ख) यह भी कोई बात है कि जो हम कहे वह न हो।

कोई³—क्रि० वि० लगभग। करीब करीब। जैसे,—कोई दस आदमियों ने चंदा दिया होगा।

कोउ(पु)†—सर्व०, वि० [हिं० को + हू = भी] कोई। उ०—कोउ नप होउ हमहि का हानी।—मानस, २। १६। वि० दे० 'कोई'।

कोउक(पु)†—सर्व० [हिं० कोउ + एक] कोई एक। कतिपय। कुछ लोग। उ०—जौं इह फागुन पीय, फाग न खेलहु आय ब्रज। कै हौं कै इह जीय, कोउक तुम पर आय है।—नंद० ग्रं०, पृ० १७१।

कोऊ(पु)†—सर्व० [हिं० को + हू = भी] कोई। उ०—सावन सरित न रुकै करै जो जतन कोऊ अति। कृष्ण गहे जिनको मन ते क्यों रुकहिं अगम अति।—नंद० ग्रं०, पृ० ६।

कोकंब—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसके सब अंग खट्टे होते हैं। वि० दे० 'विषांबिल'।

कोक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कोकी] चकवा पक्षी। चक्रवाक। सुरखाब।

यौ०—कोकबंधु = सूर्य।

२ एक पंडित का नाम जो रतिशास्त्र का आचार्य माना जाता है। इसका पूरा नाम कोकदेव कहा जाता है।

यौ०—(पु)कोक आगम। कोककला। कोकशास्त्र।

३ संगीत का छठा भेद जिसमें नायिका, नायक, रस, रसाभास, अलंकार, उद्दीपन, आलंबन, समय और समाजादि का ज्ञान आवश्यक होता है। ४. विष्णु। ५. भेड़िया।

यौ०—कोकमुख। कोकाक्ष।

६ मेढक।

यौ०—कोकाट = लोमड़ी।

७ जंगली खजूर। ८. कोयल। पिक (को०)। ९. छिपकली या गिरगिट (को०)। १० कामशास्त्र। रति कला। उ०—उरनाइयै कोक पढ़ै सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।—घनानंद, पृ० २८।

कैंरि[2]ⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० करीर, प्रा० कइर] करील का वृक्ष । उ०—सुन कैंरि स्व कदम्ब करील ।—पृ० रा०, २।३५५ ।

कैरट—संज्ञा पुं० [अं० मि० अ० किरात] १ साढ़े तीन ग्रेन की एक तौल । दे० 'करात' । २ एक प्रकार का मान जिससे सोने की शुद्धता और उसमें दिए हुए मेल का हिसाब जाना जाता है ।

विशेष—यूरोप और अमेरिका में बिलकुल खालिस सोने का व्यवहार प्रायः नहीं होता और उसमें अपेक्षाकृत अधिक मेल दिया जाता है । इसीलिये जो सोना बिलकुल शुद्ध होता है उसे २४ कैरट का कहा जाता है । यदि आधा सोना और आधा दूसरी धातु का मेल हो तो वह सोना १२ कैरट का और यदि तीन चौथाई सोना और एक चौथाई मेल हो तो वह सोना १८ कैरट का कहा जाता है । इसी प्रकार १४, १६, २० और २२ कैरट का भी सोना होता है जिनमें से अंतिम सबसे अच्छा समझा जाता है ।

कैरव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैरवी] १. कुमुद । २. सफेद कमल । ३ शत्रु । ४. जुआरी ।

कैरवबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कैरवबन्धु] चंद्रमा । निशाकर (को०) ।

कैरविणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुमुदयुक्त वापी । २ कुमुद पुष्पों की ढेरी या समूह (को०) ।

कैरवी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कैरविन्] चंद्रमा ।

कैरवी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाँदनी (रात) । २ मेथी ।

कैरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कैरव = कुमुद] [स्त्री० कैरी] १ भूरा (रंग) । २ वह सफेदी जिसमें ललाई की झलक या आभा हो । ३ रंग के भेद से एक प्रकार का बैल जिसके सफेद रोओं के अंदर से चमड़े की ललाई झलकती है । ऐसे बैल बड़े तेज पर सुकुमार होते हैं । सोकना । सोकन ।

कैरा[2]—वि० १ कैरे रंग का । २. जिसकी भूरी आँखें हों । कंजा ।

कैराटक—संज्ञा पुं० [सं०] स्थावर विष का एक भेद, जिसके अंतर्गत अफीम, कनेर, संखिया आदि हैं ।

कैरात[1]—वि० [सं०] १. किरात जाति संबंधी । किरात देश संबंधी ।

कैरात[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिरायता । २. श्वेत चंदन । ३ बलवान् मनुष्य । ४ करैत साँप । ५. एक प्रकार की चिड़िया । ६ शुद्ध राग का एक भेद (संगीत) । ७ किरात देश का राजा (को०) ।

कैरातक, कैरातिक—वि० [सं०] दे० 'कैरात' [1] (को०) ।

कैराल—संज्ञा [सं०] वायविडंग ।

कैरो[1]—वि० स्त्री० [हिं० कैरा] १ भूरे रंग की । जैसे—कैरी आँख । २. ललाई लिए सफेद रंग की । जैसे—कैरी गाय ।

कैरो[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कैरी' ।

कैलंडर—संज्ञा पुं० [अं०] १ अंगरेजी तिथिपत्र या पंचांग जिसमें महीना वार और तारीख दी रहती है । २. सूची । फेहरिस्त । रजिस्टर ।

कैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कल्ला] किसी वृक्ष की नई निकली हुई लंबी पतली शाखा । कल्ला ।

कैल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] खेल । मनोविनोद । क्रीड़ा (को०) ।

कैलकिल—संज्ञा पुं० [सं०] यवन (को०) ।

कैलातक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुरा । मदिरा २ मधु (को०) ।

कैलास—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिमालय की एक चोटी का नाम, जो तिब्बत में राक्षसताल या रावणह्रद से उत्तर ओर पचास मील की दूरी पर है । पुराणानुसार यह शिव जी तथा कुबेर का निवासस्थान माना जाता है ।

यौ०—कैलासनाथ । कैलासपति = शिव । कैलासावास = मरण । मृत्यु ।

२ एक प्रकार का षट्कोण देवमंदिर, जिसमें आठ भूमियाँ और अनेक शिखर होते हैं । इसका विस्तार अठारह हाथ होता है । ⓤ३ स्वर्ग । उ०—ऊँची पँवरी ऊँच उड़ासा । जनु कैलास इंद्र कर बासा ।—जायसी (शब्द०) ।

कैलासी—संज्ञा पुं० [सं० कैलास + ई (प्रत्य०)] १ कैलास निवासी महादेव । १ कुबेर ।

कैलैया—संज्ञा पुं० [सं० कोकिलाक्ष] ताल मखाना ।

कैवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार मार्गव पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति । ब्रह्मवैवर्त पुराण में कैवर्त की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से लिखी है । इसी शब्द से व्युत्पन्न आजकल का केवट शब्द है ।

कैवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मछुवा । केवट (को०) ।

कैवर्तमुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कैवर्तमुस्तक' (को०) ।

कैवर्तमुस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] केवटी मोथा ।

कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम जो औषध के काम आती है ।

विशेष—यह अधिकतर मालवा में होती है तथा हलकी, वृष्य और कसैली होती है । यह कफ, खाँसी और मंदाग्नि को दूर करनेवाली समझी जाती है ।

पर्या०—सुरसा । दशारुहा । रंगिनी । वस्त्रांगा । सुभाग ।

कैवल—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग । वाभिरंग ।

कैवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ शुद्धता । केवलता । निर्लिप्तता । एकता । २ मुक्ति । अपवर्ग निर्वाण ।

विशेष—दर्शनों का यह सिद्धांत है कि जीवात्मा या तो आवरणों के कारण अथवा अविद्या से भ्रमवश संसार में सुख दुःख भोग रहा है । उसे शुद्ध या भ्रमरहित करना ही शास्त्रों ने अपना परम कर्तव्य समझा है और उसके भिन्न भिन्न साधन बतलाए हैं । सांख्य शास्त्र में त्रिविध दुःखों की अत्यंत निवृत्ति को कैवल्य माना है और विवेक को उसका एकमात्र साधन बतलाया है । योगशास्त्र में चित्तपरवर्ती आत्मभाव की भावना अर्थात् अहंकार की निवृत्ति को कैवल्य बतलाया है और चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही उसका साधन कहा है । वेदांत में अद्वितीय ब्रह्मभाव की प्राप्ति को कैवल्य माना है और अविद्या की निरोध को उसका साधन ठहराया है । न्याय में दुःख की अत्यंत विमुक्ति को कैवल्य या अपवर्ग कहा और उसका साधन प्रमाणादि षोडश पदार्थों का तत्वज्ञान बतलाया है ।

३. एक उपनिषद् का नाम ।

कैवा-(५)क्रि० वि० [सं० कति+वार, हिं० कै (=कई)+वा (वार)] कई बार। कई दफा। उ०—मैं तोसों कैवा कह्यो तू जिन इन्हें पत्याइ। लगालगी करि लोइननु उर में लाई लाइ।—बिहारी र०, दो० ६६।

कैश[१]—संज्ञा पुं० [अं०] रुपया पैसा। सिक्का। नगदी।

यौ०—कैशबुक=रोकड़ वही।

कैश[२]—वि० जिसका दाम नगद दिया गया हो। सिक्का देकर लिया हुआ।

यौ०—कैशमेमो=नकद खरीदे माल की रसीद।

कैशिक[१]—वि० [सं०] १. केशवाला। बड़े बड़े बालोंवाला। २ बाल के समान। केश के समान सूक्ष्म (को०)।

कैशिक[२]—संज्ञा पुं० १ केशसमूह। २. शृंगार। ३ नृत्य का एक भाव जिसमें सुकुमारता से किसी की नकल की जाती है। ४. प्रेम। प्रणय (को०)।

कैशिक निषाद—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो तीव्र नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें तीन श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिक पंचम—संज्ञा पुं० [सं० कैशिक पञ्चम] संगीत में एक विकृत स्वर जो संदीपनी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ लगती हैं।

कैशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाटक की चार वृत्तियों में से एक।

विशेष—यह वृत्ति शृंगार-रस-प्रधान नाटकों में होती है। इसमें नृत्य, गीत, वाद्य और भोग विलास का अधिक वर्णन किया जाता है। ऐसे नाटकों में स्त्रीपात्र अधिक होते हैं।

२ दुर्गा (को०)।

कैशियर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह कर्मचारी जिसके पास रुपया पैसा जमा रहता हो और जो उसे खर्च करता हो। आमदनी लेने और खर्च करनेवाला आदमी। खजानची।

कैशोर—संज्ञा पुं० [सं०] किशोर अवस्था। बचपन। अल्प वय (को०)।

कैशोर्य—संज्ञा पुं० [सं०] बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लिखित एक ऋषि (को०)।

कैश्य—संज्ञा पुं० [सं०] केशसमूह। केशभार (को०)।

कैसन—वि० [हिं०] दे० 'कैसा'। उ०—कैसन देश राज वह आही। चित इच्छा प्रभु देखन ताही।—कबीर सा०, पृ० ४३६।

कैसर—संज्ञा पुं० [लै० सीजर] १ सम्राट्। बादशाह। जैसे,—कैसर हिंद। २. जर्मनी के सम्राट् की उपाधि।

कैसा[१]—वि० [सं० कीदृश, प्रा० केरस] [स्त्री० कैसी] [क्रि० वि० कैसे] १ किस प्रकार का। किस ढंग का। जैसे,—यह कैसा आदमी है? २ (निषेधार्थक प्रश्न के रूप में) किस प्रकार का? किसी प्रकार का नहीं। जैसे,—जब हम उस मकान में रहते नहीं तब किराया कैसा?।

कैसा[२]—क्रि० वि० [हिं० का+सा] के समान। का सा। की तरह का।

कैसे—क्रि० वि० [हिं० कैसा] किस प्रकार से। किस ढंग से? जैसे,—यह काम कैसे होगा?। २ किस हेतु? किसलिये? क्यों? जैसे,—तुम यहाँ कैसे आए?

कैसो[१](५)†—वि० [हिं० कैसा] दे० 'कैसा'।

कैसो[२](५)†—क्रि० वि० के समान। का सा। उ०—झिझिगा कैसो घर भयो, दिन ही में बन कुंज। मतिराम (शब्द०)।

को†(५)—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को'। उ०—ब्रह्मादिक को जीति महामद मदन भरयो जब। दर्पदलन नंदलाल रास रस प्रगट कयचो तब।—नंद० ग्रं० पृ० ३६।

कोइछा†—संज्ञा पुं० [हिं० खूँट] दे० 'खोइचा'।

कोई(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुई] दे० 'कुई'। उ०—झरक पानी डोमक कों गरब उपज आहि।—विद्यापति, पृ० २४६।

कोकण —संज्ञा पुं० [सं० कोङ्कण] दक्षिण भारत का एक प्रदेश, जिसके अंतर्गत कनारा, रत्नगिरि, कोलाबा, बंबई और थाना आदि हैं।

विशेष—प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र कोंकण, करहाट, कर्णाट और दर्बर मिलकर सप्तकोंकण कहलाते थे।

२ उक्त देश का निवासी। ३ एक प्रकार का शस्त्र (को०)।

कोकणा—संज्ञा स्त्री० [सं० कोङ्कणा] परशुराम की माता रेणुका। इन्हें कोकणावती भी कहते हैं।

यौ०—कोंकणासुत=परशुराम।

कोकणी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोङ्कणी] कोकण देश की भाषा जो भाषाओं के मेल से बनी है।

कोचना-क्रि० स० [सं० कुच=लिखना, खरोचना या देश०] चुभाना गोदना। गाड़ना। उ०-कोंचत करेजन कजाकी कमनैत काम कानन कमान तान कानन दिखावतो।-श्यामा०, पृ० १३५।

कोचफली—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवांच+फली] दे० 'कौंछ'।

कोचा[१]—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] एक प्रकार का जलपक्षी।

कोचा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कोंचना] १ बहेलियों की वह लंबी लग्घी जिसके पतले सिरे पर वे लोग लासा लगाए रहते हैं और जिससे वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी को कोंचकर फँसा लेते हैं। खोंचा। २ भड़भूजे का वह कड़छा जिससे बालू निकाला जाता है। ३ मोटी मिट्टी।

कोछ—संज्ञा पुं० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] [क्रि० कोछियाना] १. स्त्रियों के अंचल का एक कोना।

मुहा०—कोंछ भरना=अंचल के कोने में चावल, मिठाई, हलदी आदि मंगलद्रव्य डालना (सौभाग्यवती स्त्री के प्रस्थान के समय तथा सीमंतोन्नयन संस्कार में यह रीति होती है)।

कोछना—क्रि० स० [हिं० कोछ+ना (प्रत्य०)] कोंछियाना। उ०—केसर सों उबटी अन्हवाइ चुनी चुनरी चुटकीन सों कोंछी। बेनी जु माँग भरे मुक्ता बड़ी बेनी सुगंध फुलेल तिलौंछी।—बेनी (शब्द०)।

कोछियाना[१]—क्रि० स० [हिं० कोंछी] (स्त्रियों की) साड़ी का वह भाग चुनना जो पहनने में पेट के आगे खोंसा जाता है। फुबती चुनना।

कोछियाना[२]— क्रि० स० [हिं० कोंछ] (स्त्रियों के) कोंछ में कोई चीज भरकर उसके दोनों छोरों को आगे की ओर कमर में खोंस लेना।

कैटार—संज्ञा पुं० [सं० कण्टट = कीकर] एक प्रकार का ऊँचा और सुंदर पेड़।

कैटट—वि० [सं०] कीट संबंधी। कीटयुक्त [को०]।

कैटज—संज्ञा पुं० [सं०] कुटज वृक्ष [को०]।

कैटभ—संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था।

यौ०—कैटभजित्। कैटभरिपु। कैटभहा। कैटभार्दन = दे० 'कैटभारि'।

कैटभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

कैटभारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कैटर्य—संज्ञा पुं० [सं० कैटर्य, कैटर्य] १ कायफल। २ नीम। ३. महानिंब। ४. मदन वृक्ष। मदनी।

कैटलग—संज्ञा पुं० [अं०] सूचीपत्र। फेहरिस्त। फर्द।

कैडर्य—संज्ञा पुं० [सं० कैटर्य, कैडर्य] १. कायफल। २. करंज। ३. पूतिकरंज।

कैत¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कित] ओर। तरफ।

कैत²—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ] दे० 'कैथ'।

कैतक¹—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी का फूल।

कैतक²—वि० केतकी का। केतकीवाला। केतकी संबंधी [को०]।

कैतव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ धोखा। छल। कपट। धूर्तता। २. जुआ। द्यूत क्रीड़ा। ३. वैदूर्य मणि। लहसुनियाँ। ४. धतूरा।

कैतव²—वि० १ धोखेबाज। छली। २ धूर्त। शठ। ३ जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

कैतवक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआ खेलना। द्यूतक्रीड़ा। २ जुए में की जानेवाली धूर्तता [को०]।

कैतवापह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपह्नुति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रकृत अर्थात् वास्तविक विषय का गोपन या निषेध स्पष्ट शब्दों में न करके व्याज से किया जाय। इसमें प्राय व्याज, मिस आदि शब्द आ जाते हैं। जैसे,—'रसना मिस विधि ने धरी जोगिनि चल मुख माहि'। इसमें जिह्वा का निषेध शब्दों द्वारा नहीं बल्कि अर्थ से होता है। इसे आर्थी भी कहते हैं।

कैतसाली¹—संज्ञा स्त्री० [अ० कहत + फा० साली] दुर्भिक्ष। अकाल। भुखमरी। उ०—जैसी भूमि नेह रावराजा की दुहाई। कौनू राज केऊ कैतसाली भी न आई।—निधर०, पृ० ११२।

कैतून—संज्ञा स्त्री० [अ० कैतून] एक प्रकार की बारीक लैस जो कपड़ों के किनारे किनारे लगाई जाती है। यह प्राय सुनहले तार और रेशम से बनती है, पर कभी कभी धागे ऊन या रेशम की भी बनाई जाती है।

कैथ—संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइत्थ] एक कँटीला पेड़ जो बेल के पेड़ के समान होता है और जिसमें बेल के आकार के फल लगते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, जड़ की ओर नुकीली और आगे की ओर गोल होती हैं और एक सींके में लगी रहती हैं। फल खाने में कसैला और खटमिट्ठा होता है और उससे चटनी तथा अचार बनाते हैं। लोग कहते हैं, हाथी पूरा कैथ बिना चबाए निगल जाता है और कुछ समय बाद उसकी लीद के साथ पूरा कैथ निकलता है, जिसमें गूदे के स्थान में लीद भरी होती है। इसीलिये संस्कृतवालों ने एक 'गजकपित्थ' न्याय बना रखा है। इसकी लकड़ी जरदी लिए सफेद और मजबूत होती है और सगहे बनाने के काम में आती है।

पर्या०—कपित्थ। दधित्थ। ग्राही। मनमथ। दधिफल। पुष्पफल। दंतशठ। कपित्थ। मालूर। मंगल्य। नील मल्लिका। ग्राहिफल। चिरपाकी। ग्रंथिफल। कुचफल। कपिष्ठ। गंधफल। दंतफल। करवल्लभ। काठिन्यफल। करजफलक।

कैथा†—संज्ञा पुं० [हिं० कैथ] दे० 'कैथ'।

कैथिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ] कायस्थ जाति की स्त्री।

कैथी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कैथ] एक प्रकार का कैथ जिसके फल छोटे छोटे होते हैं।

कैथी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ] एक पुरानी लिपि जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—यह शीघ्र लिखी जाती है और इसमें टेक या शीर्ष रेखा नहीं होती। इसमें एक ही सरकार होता है और ऋ, लृ, लॄ स्वर तथा ङ, ञ, ण व्यंजन नहीं होते। संयुक्तप्रांत तथा बिहार में चिट्ठी पत्री और हिसाब किताब प्राय इसी लिपि में लिखे जाते हैं।

कैद—संज्ञा स्त्री० [अ० कैद] [वि० कैदी] १. बंधन। अवरोध। २ एक प्रकार का दंड जो राजनियम के अनुसार या राजाज्ञा से दिया जाता है और जिसमें अभियुक्त को किसी बंद स्थान में रखते हैं। कारागारवास। कारावास।

विशेष—आजकल अंग्रेजी कानून में कैद तीन प्रकार की होती है। कैद महज या सादी कैद, कैद सख्त और कैद तनहाई।

यौ०—कैदखाना।

क्रि० प्र०—करना।—भुगतना।—रखना।—होना।

मुहा०—कैद काटना या भरना = कैद में दिन बिताना। कैद में रहना।

३. किसी प्रकार की शर्त, अटक या प्रतिबंध। जैसे, (क)—पहले मिडिल पास मुख्तारी की परीक्षा दे सकते थे, पर अब इसमें एंट्रेंस की कैद लग गई है। (ख) सरकारी नौकरी में उम्र की कैद है।

क्रि० प्र०—रखना।—लगना।—लगाना।—होना।

कैदक—संज्ञा स्त्री० [अ० कैदक] एक प्रकार का कागज का बंद या पट्टी जिसमें किसी एक विषय या व्यक्ति से संबंध रखनेवाले कागज आदि रखे जाते हैं।

कैदखाना—संज्ञा पुं० [फा० कैदखानह्] वह स्थान जहाँ कैदी रखे जाते हों। कारागार। बंदीगृह। जेलखाना।

कैदतनहाई—संज्ञा स्त्री० [अ० कैद + फा० तनहाई] वह कैद जिसमें कैदी को बहुत ही छोटी और तंग कोठरी में अकेले रखा जाय। कालकोठरी।

कैदमहज—संज्ञा स्त्री० [अ० कैदमहज] वह कैद जिसमें कैदी को

किसी प्रकार का परिश्रम या काम न करना पड़े। सादी कैद।

कैदसख्त—संज्ञा स्त्री० [अ० कैद+फा० सख्त] वह कैद जिसमें कैदी को कठिन परिश्रम करना पड़े। कड़ी कैद।

कैदसोवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कैद+सोवारी] तबले की एक गत जिसका बोल यह है—

\+ ० । ।

केटे ता दिनता त्रेकेटे, धकिटे

० । । ० +

दिनत धाकेट धाकेट। दिनता। धा।

कैदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्माख नाम की लकड़ी। पद्मकाष्ठ। २ शालि धान। ३. एक प्रकार का बढ़िया धान। ४. खेतों का समूह (को०)।

कैदी—संज्ञा पुं० [अ० कैदी] वह जो कैद किया गया हो। वह जिसे कैद की सजा दी गई हो। बंदी। बँधुआ।

कैधौं—अव्य० [हिं० कै+धौं] या। वा। अथवा। उ०—प्यारो की ठोढ़ी को बिंदु दिनेश किधौं बिसराम गोविंद के जी को। चारु चुभ्यौं कनिका मनि नील को केधौं जमाव जम्यो रजनी को। कैधौं अनंग सिगार को रंग लिख्यो नर मंत्र बसीकर पी को। फूले उरोज में भौंरी बसी किधौं फूल ससी में लग्यो अरसी को।—दिनेश (शब्द०)।

कैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] १. बाँस की टहनी। २. किसी वृक्ष की पतली टहनी।

कैना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का क्षुप या पौधा, जिसकी पत्तियों का लोग साग बनाते हैं।

कैनित—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक खनिज पदार्थ जो खाद के काम में आता है। इसमें जवाखार या पुटाश का अंश अधिक होता है।

कैप—संज्ञा पुं० [अं०] टोपी।

कैपिटल—संज्ञा पुं० [अं०] १ किसी व्यक्ति या समुदाय का ऐसा समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम में लगा सके। धन। संपत्ति। पूँजी। २ वह धन जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो या जिससे कारोबार आरंभ किया गया हो। किसी दूकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि को निज की चर या अचर संपत्ति। पूँजी। मूलधन। ३ वह सब सामग्री जिसके द्वारा संपत्ति अर्जित की जा सके। ४. किसी देश का मुख्य या प्रधान नगर जिसमें राजा या राज प्रतिनिधि या प्रधान सरकार हो।

कैपिटलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पूँजीपति'।

कैफ—संज्ञा पुं० [अ० कैफ़] नशा। मद। उ०—हरो हरो रंग देखि कै भूलत है मन हैफ। नीम पतौवन में मिलै कहू भाँग को कैफ।—रसनिधि (शब्द०)। २ बुलबुल को खिलाने का वह चारा जिसमें भाँग या और कोई मादक द्रव्य मिला रहता है और जो उसे लड़ाने के पहले दिया जाता है।

कैफियत—संज्ञा स्त्री० [अ० कैफ़ियत] १. समाचार। हाल। वर्णन। २ विवरण। तफसील।

क्रि० प्र०—देना।—पूछना।—माँगना।—लिखना।

मुहा०—कैफियत तलब करना = नियमानुसार विवरण माँगना। कारण पूछना।

३. आश्चर्यजनक या हर्षोत्पादक घटना। जैसे—आज बड़ी कैफियत हुई।

क्रि० प्र०—दिखाना।—होना।

कैफी—वि० [अ० कैफ़ी] १. मतवाला। मद भरा। उ०—नेहिन उर आवत लख्यो जबही धीरज सैन। सैफी हेरन में पठे कैफी तेरे नैन।—रसनिधि (शब्द०)। २ नशेबाज।

कैफीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० कैफ़ीयत] दे० 'कैफियत' (को०)।

कैंबर—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीर का फल या गाँसी। उ०—(क) सीस झरोखे डारि कै, झाँकी घूँघट टारि। कैंबर सी कसकै हिये, बाँकी चितवन नारि।—शृं० सत० (शब्द०)। (ख) रँगी नैन में औरो ललाई दौरि आई है, कि साँचो काम कैंबर विश्व शोनित में डुबाई है।—प्रताप (शब्द०)। (ग) विष भरे कैंबर नसै वर गरब ए रे तेरे तुल्य वचन प्रपंचित को गायो है।—दूलह (शब्द०)।

कैंबा—अव्य० [सं० कति+वार] अनेक बार। बार बार। कई बार।

कैंवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। द्वार का पल्ला।

कैबिनेट—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह कमरा जिसमें राजा, महाराज आदि अपने विश्वासपात्र मंत्रियों के साथ प्रबंध संबंधी सलाह करते हैं। २ मुख्य मंत्रियों की वह विशेष समिति जो किसी एकांत स्थान में बैठकर राज्यप्रबंध पर विचार करे। मंत्रिसमाज। मंत्रिमंडल। ३. लकड़ी का बना हुआ सामान। जैसे, मेज, आलमारी, दराज इत्यादि। ४. फोटो का एक आकार जो कार्ड साइज से दूना होता है।

कैम¹—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब, प्रा० कयंब, कलंब] दे० 'कैमा' उ०—अब तज नाम उपाय को आयो सावन मास। खेल न रहिबो खेम सो कैम कुसुम की बास।—(शब्द०)।

कैम²—वि० [अ० कायम] १. स्थित। २. दृढ़।

कैमा—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] एक प्रकार का कदंब। करमा।

विशेष—इसके पत्ते कचनार की तरह चौड़े सिरे के होते हैं। इसके फूल कदंब की ही तरह पर उससे छोटे होते हैं और उनके ऊपर सफेद सफेद जीरे नहीं लगते। इसकी लकड़ी पीले रंग की ओर बहुत मजबूत होती है तथा इमारतों में लगती है।

कैमुतिक न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या उक्ति जिसका प्रयोग यह दिखलाने के लिये होता है कि जब इतना बड़ा काम हो गया, तब यह क्या है।

कैमेरा—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कमरा'।

कैयक—वि० [सं० कियत्+एक] कितने ही। उ०—ढई मनरूप लसै इह रूप। गड़े जिन कैयक हैं महिभूप।—सुजान०, पृ० ३४।

कैया—संज्ञा पुं० [देश०] १. टीन का काम करनेवालों का एक औजार जिससे बरतन राजे जाते हैं। यह करछी के आकार का और लोहे का होता है और इसमें एक ओर लकड़ी की मूठ लगी रहती है। २ मध्य भारत का घी, तेल आदि नापने का एक मान जो लगभग आध पाव का होता है।

कैर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० करीर, प्रा० करर] दे० 'करील'।

केशर[२]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] सिंह। उ०—धक धकहिं धुकहिं तक्कहि चकहिं, दिष्ष उसासन उल्हसहि। प्रथिराज कुंवर कोवट डर, गिर कंदर केसर बसहिं।—पृ० रा० ६।१०३।

केसराचल—संज्ञा पुं० [सं०] मेरु पर्वत [को०]।

केसराम्ल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नामक नीबू [को०]।

केसरि[१]Ⓟ—दे॰ संज्ञा स्त्री० [सं० केसर] दे० 'केसर[१]'। उ०—पेट पत्र चदन जनु लावा। कुंकुह केसर बरन सोहावा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६५।

केसरि[२]—संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान के पिता का नाम [को०]।

यौ०—केसरिकिशोर=(१) हनुमान। (२) सिंहशावक। केसरितनय। केसरिनंदन। केसरिपुत्र। केसरिसुत=हनूमान।

केसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई।

केसरिया—वि० [सं० केसर+हिं० इया (प्रत्य०)] १ केसर के रंग का पीला। जर्द। जैसे,—केसरिया बाना। २ केसर के रंग में रँगा हुआ। ३. केसरमिश्रित। केसरयुक्त। जैसे—केसरिया चंदन। केसरिया बरफी।

केसरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] १ सिंह। घोड़ा ३ नागकेसर। ४. पुन्नाग। ५ बिजौरा नीबू। ६ हनुमान जी के पिता का नाम। ७ उडीसा का एक प्राचीन राजवंश। ८ एक प्रकार का बगुला। ९ एक प्रकार का चारखाना (कपड़ा)।

केसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, प्रा० किसर] मटर की जाति का एक अन्न, जिसे दुबिया मटर भी कहते हैं।

विशेष—इसके दाने छोटे चिपटे चौकोर और मटमैले होते हैं और पत्तियाँ लंबी तथा पतली होती हैं, इसकी फलियाँ छोटी और चिपटी होती हैं जिनपर कभी कभी छोटे दाग भी होते हैं। वैद्यक में यह कदन्न कहा गया है और डाक्टरी मत से इसे खाने से लकवा हो जाता है। इसे कसारी, खेसारी और लतरी भी कहते हैं।

केसु, केसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] ढाक। टेसूपलास। उ०—(क) केसु कुसुम सिंदूर सम भास' केतकि धूलि बियुरलहु पर वास।—विद्यापति, पृ० १०६। (ख) कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं, जैसी पियराई गात पगियै रहति है।—घनानंद, पृ० ७१।

केसौⓅ—संज्ञा पुं० [सं० केशव] दे० 'केशव'। उ०—ता पाछे एक बार ही रोई सकल ब्रजनारि हो करुणामय नाथ हो केसौ कृष्ण ! मुरारि।—नंद ग्रं०, पृ० १८६।

केहइ—वि० [सं० कीदृश, अप० केह] दे० 'कैसा' उ०—धन मत्थइ, ऊजासडउ, थे इण केहइ रंग। धण लीजइ, प्री मारिजइ, छाँडि बिडाँणउ संग।—ढोला०, दू० ६५३।

केहर—संज्ञा पुं० [सं० केसरी > पुं० हिं० केसर] केहरी। सिंह। उ०—केहर रै हायल करी, कीधी दांत वराह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २।

केहरी, Ⓟकेहरी[१]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] सिंह। शेर। उ०—(क) लंक पुहुमि अस आहि न काहूँ। कहौं केहरि न ओहि सर ताहूँ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७।(ख) केहरि कंधर बाहु बिसाला, उर अति रुचिर नाग मनि माला।—तुलसी (शब्द०)। २ घोड़ा।

केहरी[२]—संज्ञा स्त्री० [फा० कीसा=थैली] एक छोटा जुजदान जिसमें दर्जी, मोची आदि अपने सीने की चीजें या कितनी आवश्यक समान रखती हैं। छोटी थैली।

केहा—संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] १ मोर। मयूर। २ एक छोटा जंगली पक्षी जो बटेर के समान होता है। उ०—धरी परेव पाडुक टेरी। केहा कदगो उत्तर बगेरी।—जायसी (शब्द०)।

केहिⓅ—वि० [प्रा० किस्स] किस। उ० केहि कारण आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावहु बारा।—तुलसी (शब्द०)

विशेष—यह अवधी के 'के' का कर्म, सप्रदान और अधिकरण रूप है।

केहुⓅ—सर्व० [सं० केऽपि] कोई। उ०—सतगुरु जानु सत्त सुख बानी, । शब्द साँच बिरला केहु जानी।—दरिया० बानी पृ० ८।

केहुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि] १ कोहनी। कुहनी। २ पीतल या ताँबे की वह टेढ़ी नली जो नैचे में नै और जलेबी को जोड़ती है।

केहूँⓅ—क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी प्रकार। किसी भाँति। किसी तरह।

कैंकर्य—संज्ञा पुं० [सं० कैङ्कर्य] किंकरता। सेवकाई। सेवा। खिदमत। उ०—गजरहि मंदाकिनी नित जाई। निज कर करि कैंकर्य सदाई—रघुराज (शब्द०)।

कैंचा[१]—वि० [हिं० काना+ऐंचा] ऐंचाताना। भेंगा।

कैंचा[२]—संज्ञा पुं० [?] वह बैल जिसका एक सींग सीधा खड़ा हो और दूसरा सींग आँख के ऊपर होता हुआ नीचे को जाता है।

कैंचा[३]—संज्ञा पुं० [हिं० कैंची] बड़ी कैंची।

कैंची—संज्ञा स्त्री० [तु०] १ बाल कपड़े आदि काटने या कतरने का एक औजार। कतरनी।

विशेष—इसमें समान आकृति के दो लंबे फाल होते हैं जो परस्पर एक दूसरे के ऊपर रखकर कील से जड़े जाते हैं। कैंची कई प्रकार की होती है—जैसे बाल काटने की कैंची, बत्ती काटने की कैंची, दर्जी की कैंची लोहार की कैंची बागवान की कैंची, डाक्टर की कैंची इत्यादि।

मुहा०—कैंची करना=काटना छाँटना। जैसे—बागवान पेड़ों को कैंची कर रहा है। कैंची काटना=नजर बचाकर निकल जाना। रास्ता काटकर निकल जाना। कतराना। (२) पहले कहकर किसी बात से इनकार कर जाना। काट जाना। कैंची बाँधना=(१) दोनों रानों से दबाना।—(सवार)। (२) विपक्षी को अपने नीचे लाकर दोनों रानों से दबाना।—(कुश्ती)। कैंची लगाना=(१) काटना। बाल छाँटना कलम करना। (२) सिर के बालों को कैंची से काटना। छाँटना।

२. दो सीधी तीलियाँ या लकड़ियाँ जो कैंची की तरह एक दूसरी के ऊपर तिरछी रखी, बाँधी या जड़ी हो।

विशेष—छाजन में कभी कभी एक सीधी धरन के स्थान पर दो उठी हुई लकड़ियाँ लगाते हैं, जो सिरों के पास एक दूसरी पर आड़ी बाँध दी जाती हैं।

यौ०—कैंची का जंगला = वह जंगला जिसमें पतली पतली तीलियाँ एक दूसरी पर तिरछी लगी हों।

मुहा०—कैंची लगाना = दो या अधिक लकड़ियों को कैंची की तरह एक दूसरी के ऊपर तिरछा रखना या बाँधना।

३ सहारे के लिये धरन के नीचे में लगी हुई दो तिरछी लकड़ियाँ। ४. कुश्ती का एक पेंच, जिसमें प्रतिपक्षी की दोनों टाँगों में अपनी टाँगें फँसाकर उसे गिराते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।

५. मालखंभ की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी दौड़ता हुआ या उछकर सीधे बिना मालखंभ को हाथ लगाए, कमरपेटे की रीति से मालखंभ को बाँधता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

कैंटीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] जलपानगृह। ऐसे जलपान गृह छात्रावासों, सैनिक छावनियों आदि में होते हैं, जहाँ उस विभाग के लोगों के लिये चाय, बिस्कुट जलपान आदि की व्यवस्था रहती है।

कैंडल—संज्ञा पुं० [हिं० कैंड़ा वा देश०] एक प्रकार का पक्षी। बनतीतर।

कैंडा—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड = एक प्रकार की वर्गमाप] १ वह यंत्र जिससे किसी चीज का नकशा ठीक किया जाता है। डौल डालने का औजार। २. किसी वस्तु का विस्तार आदि नापने का अँहुड़ा। पैमाना। मान।

मुहा०—कैंडा करना = (१) सरसरी तौर से नापना। अंदाज करना। (२) डौल डालना। कैंडा लेना = चिट्ठा लेना। खाका बनाना।

३ चाल। ढंग। तर्ज। काटछाँट। जैसे,—वह न जाने किस कैंड़े का आदमी है। ४ चालबाजी। चतुराई।

कैंता—संज्ञा पुं० [हिं० कंत = किनारा] पत्थर की वह पट्टी जो दीवार में फरकी के दोनों तरफ चौड़ाई के बल उसे रोकने के लिये आड़ी लगाई जाती है।

कैंप—संज्ञा पुं० [अं०] हाकिमों या सेना के ठहरने का स्थान। पड़ाव। लश्कर। छावनी। कंपू।

कैंवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कैमा'।

कैंवच—संज्ञा पुं० [सं० कपिकच्छु, प्रा० कइकच्छु, कवियच्छु] दे० 'केवाँच'। उ०—बैरी कटक नाग विष बीछू कैंवच दाघ। यासू दूर रहनड़ा, दूर रहे दुख दाघ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६४।

कै¹—वि० [सं० कति प्रा० कइ] कितना। किस कदर। जैसे—कै आदमी आए हैं।

कै²Ⓟ—अव्य० [सं० किम्] या। वा। अथवा। या तो। उ०—जन्म सिरानो ऐसे ऐसे। कै घर घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत कै बैसे। कै कहुँ खान पान रसनादिक, के कहुँ बाद अनैसे।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द के साथ प्रश्न में 'धौं', 'घौं' प्राय. आता है। जैसे,—(क) कैधौं व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु कैधौं रस वीर तरवारि सी उघारी है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७०। (ख) कैधो अनंग सिंगार को रंग लिख्यो नर मंत्र वसीकर पी को।—दिनेश (शब्द०)।

कै³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा जड़हन धान।

कै⁴†—प्रत्य० [सं० प्रत्य० क] संबंधवाचक का, की के स्थान पर प्रयुक्त विभक्ति। उ०—(क) रामकथा कै मिति जग नाहीं।—मानस, १।३३। (ख) धोबी कै सो कूकर न घर को न घाट को। तुलसी ग्रं०, पृ० ११२।

विशेष—करण कारक के रूप में भी इसका प्रयोग होता है, जैसे,—कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।—मानस, १।२७०।

कै⁵—संज्ञा स्त्री० [अ० कै] वमन। छाँट। उलटी।

क्रि० प्र०—आना।—करना —होना।

कैइकⓅ—वि० [सं० कति + एक] कई एक। अनेक। उ०—कैइक रहे तहाँ अरगाने। अक्रूरादिक अनसनमाने।—नंद० ग्रं०, पृ० २२४।

कैउⓅ† कैउकⓅ†—वि० [सं० कति + एक] दे० कैऊ'। उ०—(क) कैउ बरस में काटि कै, महि पारचो अरिमाथ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६४। (ख) मन फौन सो जाय अटक्यो रे। ऐसे वच्यो छोरचो न छूटे कैउक बरियाँ भटक्यो रे।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२४।

कैऊⓅ—वि० [सं० कति + एक] कई एक। अनेक। उ०—ऐसे कैऊ जुद्ध जीते सिंह सुजान वे। तब मलार ह्वै सुद्ध, कुरम सों एकौ कियो।—सुजान०, पृ० ३५।

कैकⓅ—वि० [सं० कति + एक] कितने ही। कई एक। उ०—कैक वचन कहे नर्म कैक रसवर कर्मनि पर। एक कहे तिय धर्म परम भेदक सुंदर वर।—नंद० ग्रं०, पृ० २७।

कैकईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कैकेयी] दे० 'कैकेयी'। उ०—कैकइ सुअन जोगु जगु जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।—मानस, २।१८१।

कैकट—संज्ञा पुं० [सं० कीकट] देशविशेष। कीकट। उ०—उतपन कैकट देश कलि असुर जग्य जय हारि। जयु जय बुद्ध सरूप सजि है सुर सिद्धि सुधारि।—पृ० रा०, २।५६५।

कैकय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश। दे० 'केकय'।

कैकयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केकय जनपद की स्त्री [को०]।

कैकस—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

कैकसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमाली राक्षस की कन्या और रावण की माता।

कैकेय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैकेयी] १. केकय गोत्र का पुरुष। २ केकय देश का राजा।

कैकेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केकय गोत्र में उत्पन्न स्त्री। २ राजा दशरथ की वह रानी जो भरत की माता थी और जिसने मंथरा के बहकाने से रामचंद्र को वनवास दिलवाया था।

केवाँई—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवा] कुई।

केवाँच, केवाँछ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कौंच'। उ०—सेज केवाछ जाजु कोइ लावा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २३३।

केवाण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] तलवार। उ०—इद्रभांण मुकनेश रो, ग्रह केवाण त्ररस्स। ग्रासमान छिव ग्राखियो, भाई भाण सरस्स।—रा० रू०, पृ० ७५।

केवा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुव=कमल] कमल कली। उ०—(क) तोहि ग्रनि कीन्ह ग्राप भा केवा। हौं पठवा गुरु बीच परेवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) स्वर्ग सूर भूई सरवर केवा। वनखड भवँर होय रस लेवा।—जायसी (शब्द०)।

केवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० किंवा] बहाना। मिस ग्रानाकानी। सकोच। उ०—रघुराज कौनहू विसच नहिं होन पैहै, खासे खासे खसी खेल खूब खेलवैहौं मैं। केवा जनि कीजै मीरि सेवा सब भाँति लीजै, मीठ मीठ मेवा लै कलेवा करवैहो मैं।—रघुराज (शब्द०)।

केवाड़†—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] दे० 'किवाड़'।

केवाडा†—संज्ञा पुं० [सं० कपाटक] दे० 'किवाड़'।

केवार[1]—क्रि० वि० [सं० कति+वार] कई वार। ग्रनेक वार। उ०—कई वार साहि बध्यो पोन। दीनो कैवार जिहि जोव दान।—पृ० रा०, २४ ३१२।

केवार[2]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'किवाड़'।

केवारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] दे० 'किवाड़'। उ०—पौरि पौरि गढ़ लाग केवारा। ग्रौ राजा सौं भई पुकारा।—जायसी ग्र०, पृ० ६४।

केविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम जो कोकड प्रदेश मे होता है। सद्गधा।

केवी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० के+ग्रपि=केऽपि (ग्रन्येऽपि)] शत्रु। दुश्मन। उ०—(क) कांकणि कह काम, काल कह कैवी।—वेलि०, दू०, ७६। (ख) चूरलियो ग्रौ चौतरफ, कैवी वयण कहत।—बाँकी० ग्र० भा०, १, पृ० ३४।

केश—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिर का बाल।

यौ०—केशविन्यास=बाल सँवारना। केशाकेशी=वह लड़ाई जिसमें दो ग्रादमी एक दूसरे के बाल पकड़कर खीचे।

२ रश्मि। किरण ३ ब्रह्मा की शक्ति का एक भेद। ४.वरुण। ५ शिव। ६ विष्णु ७ सूर्य।

८.शेर या घोड़े के गले पर बाल। ९ केशी नामक दैत्य। १० एक गधद्रव्य (को०)।

केशक—वि० [सं०] केशरचना मे दक्ष(को०)।

केशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० केशकर्मन्] १ बाल झाड़ने ग्रौर गूँथने की कला। केशविन्यास। २ केशात नामक सस्कार।

केशकार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गन्ना (को०)।

केशकीट—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ।

केशगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेणी। कबरी २ वरुणदेव (को०)।

केशघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल उड़ना। गंजापन (को०)।

केशच्छिद—संज्ञा पुं० [सं०] नापित। हज्जाम (को०)।

केशट—संज्ञा पुं० [सं०] १ खटमल। २ विष्णु। ३ छाया। ४. कामदेव के पाँच बाणों मे से शोषण नामक बाण। ५.श्योनाक वृक्ष। टेंटू ७ भाई। सहोदर (को०)। ८ ढील। जूँ (को०)।

केशपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रपामार्ग। चिचड़ा।

केशपाश—संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट। काकुल।

केशप्रसाधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कघी (को०)।

केशबंध—संज्ञा पुं० [सं० केशबन्ध] नृत्य का एक हस्तक जिसमें हाथों को कधे पर से घुमाते हुए कमर पर लाते हैं ग्रौर फिर ऊपर सिर की ग्रोर ले जाते हैं।

केशमथनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़, जिसके काँटों में बाल उलझ जाते हैं।

केशमार्जक, केशमार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] केशप्रसाधनी। ककहो। कघी (को०)।

केशरंजन—संज्ञा पुं० [सं० केशरञ्जन] भृगराज। भँगरैया।

केशर—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] दे० 'केसर'।

केशराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का भुजगा पक्षी। २. भँगरैया। भृगराज।

केशराम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रनार। दाडिम। २ विजौरा नीबू।

केशरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] दे० 'केसरी'।

केशरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेड़ पर का बाँदा।

केशलुचक[1]—संज्ञा पुं० [सं० केशलुञ्चक] सिर के बाल नोचनेवाला, जैन यति।

केशव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का एक नाम २ कृष्णचद्र का एक नाम। राधारमण। गोपीनाथ ३ ब्रह्मा। परमेश्वर।

विशेष—इस ग्रर्थ का विवरण महाभारत में इस प्रकार वर्णित है—ग्रशवो ये प्रकाशते मम केशसज्ञिता। सर्वज्ञा केशव तस्मात् प्राहुर्मा द्विजसत्तमा।—महाभारत।

४ विष्णु के चौबीस मूर्तिभेदों मे से एक। ५. पुनाग वृक्ष। ६. मार्गशीर्ष का महीना। ग्रगहन (को०)। ७. हिंदी के एक कवि जिनकी लिखी रामचद्रिका है।

केशव[2]—वि० सुंदर बालोवाला। प्रशस्त केशवाला (को०)।

केशवपन—संज्ञा पुं० [सं०] बाल बनवाना या कटाना (को०)।

केशवपनीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ग्रतिरात्र यज्ञ जो दो पशु वध यागो के ग्रनतर किया जाता है। इस यज्ञ के ग्रत मे ज्येष्ठा पौर्णमासी सुत्य सोमयाग करना पड़ता है।

केशवर्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नाम की बूटी। सहदेइया।

केशवायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का ग्रायुध। २ ग्राम।

केशवालय—संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव वृक्ष। पीपल।

केशवावास—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष (को०)।

केशविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] बालो की सजावट। बालों का सँवारना।

केशवेश—संज्ञा पुं० [सं०] वेणी। कबरीबध (को०)।

केशवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सीमत। माँग (को०)।

केशशुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारांगना [को०] ।

केशहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० केशहन्त्री] समी का वृक्ष । केशघ्न ।

केशांत—संज्ञा पुं० [सं० केशान्त] १.सोलह संस्कारों में से एक ।

विशेष - ब्राह्मण को यह संस्कार सोलहवें वर्ष, क्षत्रिय को बाईसवें वर्ष और वैश्य को चौबीसवें वर्ष करने का विधान है । यह संस्कार यज्ञोपवीत के बाद और समावर्तन के पहले होता था और इसमे ब्रह्मचारी के सिर के बाल मूड़े जाते थे । इसे गोदानकर्म भी कहते हैं ।

२.मुंडन । ३.बाल का सिरा ।

केशारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नामक बूटी । सहदेइया ।

केशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे कृष्ण ने मारा था ।

केशिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० केशिकी] अलकृत या सुंदर घुँघराले चिकने बालोंवाला [को०] ।

केशिका— संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी ।

केशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जटामासी । २ चोरपुष्पी नाम की एक ओषधि । ३.वह स्त्री जिसके सिर के बाल सुंदर और बड़े हों । ४ एक अप्सरा का नाम जो कश्यप की पत्नी और प्रधा की कन्या थी । ५ पार्वती की एक सहचरी । ६ राजा अजमीढ़ की रानी का नाम । ७ राजा सगर की एक रानी का नाम । ८.भागवत के अनुसार रावण की माता कैकसी का एक नाम । ९.एक प्राचीन नगरी का नाम । १० दमयंती की उस दूती का नाम जो नल के भेस बदलकर आने पर उसके पास दमयंती का सदेसा लेकर गई थी ।

केशी¹—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्] [स्त्री० केशिनी] १.प्राचीन काल के एक गृहपति का नाम । २ एक असुर जिसे कृष्ण ने मारा था । ३.घोड़ा ४.सिंह । ५. एक यादव का नाम ।

केशी²—वि० १.किरण या प्रकाशवाला । २ अच्छे बालोंवाला ।

केशी³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पौधा । २ भूतकेश नाम की ओषधि । ३.केवाच । कौंच ४. एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ खजूर की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं । ५.दुर्गा (को०) । ६.चोटी (को०) ।

केश्य¹—वि० [सं०] १. केश संबंधी । २ बाल बढ़ानेवाला [को०] ।

केश्य²—संज्ञा पुं० १ काला अगर । २. महाबला नामक पौधा (को०) ।

केस¹—संज्ञा पुं० [सं० केश] १. दे० 'केश' । २. आँख का एक रोग जिसमे आँख के कोने मे लाल मांस निकलता है, जो क्रमशः बढ़ता जाता है और धीरे धीरे सारी आँख को ढक लेता है ।

केस²—संज्ञा पुं० [अं०] १ किसी चीजको रखने का खाना या घर । जैसे—चश्मे का केस २ मुकदमा । ३ दुर्घटना । ४.लकड़ी का एक प्रकार का चौकोर घेरा जो प्राय एक हाथ चौड़ा दो हाथ लंबा और तीन चार अंगुल ऊँचा होता है जिससे टाइप रखने के लिये बहुत छोटे छोटे खाने बने रहते हैं ।—(छापाखाना) ।

केसई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कसई' या 'कसी' ।

केसर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाल की तरह पतले पतले वे सींके जो फूलों के बीच रहते हैं । किंजल्क ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है । एक वह जो घुंडी के किनारे किनारे होता है और जिसमे नोक पर छोटे, चिपटे दाने होते हैं । इसमे पराग रहता है और यह 'परागकेसर' कहलाता है । दूसरा वह जो घुंडी के बीच मे होता है । इसमे पराग नहीं होता और यह 'गर्भकेसर' कहलाता है ।

२ एक प्रकार के फूल का बीच का पतला सींका या केसर जिसका पौधा बहुत छोटा होता है और पत्तियाँ घास की तरह लंबी और पतली होती हैं ।

विशेष—केसर का पौधा स्पेन, फारस, कश्मीर, तिब्बत और चीन मे होता है । कश्मीर का केसर रंग में सर्वोत्तम माना जाता है और स्पेन का सुगंध मे । इसका फूल बैंगनी रंग की झाईं लिए बहुत रंगों का होता है और पौधे मे फूल निकलने के बाद पत्तियाँ लगती हैं । प्रत्येक फूल मे केवल तीन केसर होते हैं, इसीलिये आधी छटाँक असल केसर के लिये प्राय. चार हजार फूलो की आवश्यकता होती है । केसर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके डंडों से कूटते हैं और तब उसे किसी जलभरे बरतन में डाल देते हैं । उसमे से जो अंश नीचे बैठ जाता है, वह 'मोंगला' कहलाता है और मध्यम श्रेणी का केसर होता है । जो अंश जल मे न डूबकर पानी के ऊपर रह जाता है, वह फिर सुखकर और कूटकर पानी में डाला जाता है । इस बार जो केसर जल मे डूब जाता है, वह निकृष्ट श्रेणी का होता है और 'नीवल' या 'निर्वल' कहलाता है । केसर का पौधा विशेष प्रकार की ढालुआँ जमीन मे होता है, जो इसी कार्य के लिये आठ वर्ष पहले से बिलकुल परती छोड़ दी जाती है । इस पौधे की गाँठें जमीन मे गाड़ी जाती हैं और एक बार की लगाई गाँठो से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं । इसके फूल कातिक मे लगते और संग्रह किए जाते हैं । केसर बहुत ही सुगंधित और गरम होता है और खाने पीने की चीजो मे सुगंध के लिये डाला जाता है । केसर का रंग देखने मे गहरा लाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता है । वैद्यक में केसर को सुगंधित तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, कांतिवर्द्धक, कडुनाशक, विरेचक और कास, वायु, कफ, कृमि तथा त्रिदोष का नाशक माना है । डाक्टरी मत से यह ज्वर और यकृत् का नाशक और रजोनिस्सारक है, पर आजकल के कुछ नए डाक्टर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते ।

पर्या०—काश्मीरजन्म । अग्निशिख । पीतन । रक्त । संकोच । पिडन । लोहित चंदन । चारु । रुधिर । शठ । शोणित । अरुण । कांत । खल । रज । दीपक । सौरभ । चदन ।

३. घोड़े, सिंह आदि जानवरों की गरदन पर के बाल । अयाल । ४ नागकेसर । ५. बकुल । मौलसिरी । ६. पुन्नाग । ७. हींग का पेड़ । ८ एक प्रकार का विष । ९ स्वर्ण । १०. कसीस ।

केरी१—प्रत्य० [प्रा० केर, केरक] की।—सुरपति रवनी रमा की चेरी। सो वह चेरी जसुमति केरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २५७।

विशेष—यह 'केर' का स्त्री० रूप है।

केरी२—संज्ञा स्त्री० [देश०] आम का कच्चा और छोटा नया फल। अँबिया।

केरोसिन—संज्ञा पुं० [अं०] मिट्टी का तेल।

केल१—संज्ञा स्त्री० [सं० कदल, प्रा० कयल] दे० 'केला'। उ०—केल रहै नित काँपती कायर जणे कपूर।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० २४।

केल२—संज्ञा पुं० [सं० केलिक, प्रा० केलिय] एक वृक्ष जो हिमालय पर ६००० से ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है।

विशेष—यह पेड़ सीधा और बहुत बड़ा होता है। इसकी लकड़ी प्रति घनफुट १७ सेर भारी होती है। इसके दो भेद होते हैं—देशी और विलायती। दोनों की लकड़ी प्रायः इमारत के काम में आती है। देशी केल की लकड़ी में से चीड़ के तेल की तरह तेल निकलता है और उसका कोयला भी अच्छा होता है जिससे लोहा पिघल जाता है। विलायती केल की लकड़ी जलाने के काम में नहीं आती वह जलाने से चिड़चिड़ाती और जल्दी बुझ जाती है। दोनों की छाल दृढ़ होती है और छत पाटने के काम में आती है। केल की पत्तियाँ और डालियाँ बिछाने के काम में लाई जाती है। विलायती केल के पेड़ देखने में सीधे और सुंदर होते हैं, इसलिये सड़कों पर और मैदानों में लगाए जाते हैं।

केलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के नाचनेवाले जो हाथ में तलवार, कटारी आदि लेकर नाचते हैं।

केला—संज्ञा पुं० [सं० कदलक, प्रा० कयल] एक प्रसिद्ध पेड़। कदली।

विशेष—यह भारतवर्ष, बरमा, चीन, मलाया के टापुओं, अफ्रीका, अमेरिका, दक्षिणी युरोप आदि गरम स्थानों में होता है। इसके पत्ते गज डेढ़ गज लंबे और हाथ भर चौड़े होते हैं। इस पेड़ में डालियाँ नहीं होती, अरुई, बंडे आदि की तरह पेड़ी या पूती ही से एक एक पत्ता निकलता है। पेड़ी चिकनी, पर्तदार, छिद्रमय और पानी से भरी होती है। केले के लिये पानी की आवश्यकता बहुत होती है, इसी से इसे नालियों में लगाते हैं। पेड़ साल भर में पूरी बाढ़ को पहुँचता है और तब उसके नीचे से कमल के आकार का कालापन लिए लाल रंग का बहुत बड़ा फूल निकलता है, जो नीचे की ओर झुका होता है। यह फूल एकबारगी नहीं खिलता। प्रति दिन एक एक दल खुलता है, जिसके अंदर आठ दस छोटी छोटी फलियों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इन फलियों के सिरों पर पीले पीले फूल लगते हैं। इन फलियों की पंक्ति को पंजा कहते हैं। प्रत्येक दल के नीचे एक एक पंजा निकलता है। पीले फूलों के गिर जाने पर यही फलियाँ बढ़कर बड़ी बड़ी होती हैं। पूरे डंठल को, जिसमें फलियों के कई पंजे होते हैं, घौद कहते हैं। केले की अनेक जातियाँ होती हैं, जिनमें मर्तबान, चंपा, चीनिया, मालभोग आदि प्रसिद्ध हैं। केले के फल साधारणतया पकने पर पीले होते हैं, पर कहीं कहीं लाल, गुलाबी, सुनहरे और हरे रंग के केले भी मिलते हैं। केले की फलियाँ चार अंगुल से लेकर डेढ़ बित्ते तक की होती हैं। जावा में एक प्रकार का केला इतना बड़ा होता है जिससे चार आदमियों का पेट भर सकता है। इस केले का फूल पेड़ी के बाहर नहीं निकलता, भीतर ही भीतर फलता फूलता है। पेड में एक ही फल लगता है जिसके पकने पर पेड़ी फट जाती है। फिलीपाइन द्वीप में भी बहुत बड़े बड़े केले होते हैं बहुत से केले बीजू होते हैं, जिनकी फलियों में काले काले गोल बीज भरे रहते हैं। इन्हें कटकेल कहते हैं। कच्चे केले की लोग तरकारी बनाते हैं। कच्चे केले को सुखा कर आटा भी बनाया जाता है जो हलका होता है और दवा के काम में आता है। बंगाल में केले को डंठल की भी तरकारी बनती है। पत्तों के डंठल से जो रेशे निकलते हैं, उनसे चटाई बुनी जाती है और कागज भी बनता है। आसाम और चटगाँव की ओर केलों के जंगल भी है।

२ केले का फल।

पर्या०—रंभा। मोचा। कदली। अंशुमत्फला। वारणवुषा। वारबुषा। सुफला। निःसारा। भानुफला। गुच्छफला। वारणवल्लभा। वन लक्ष्मी। रोचक। चर्मण्वती।

३ पुरुषेंद्रिय (बाजारू)।

केलि१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खेल। क्रीड़ा। २ रति। मैथुन। समागमन। स्त्रीप्रसंग। उ०—अस कहि अमित बनाये अंगा। कीन्ही केलि सवन के संगा।—रघुनाथ (शब्द०)।

यौ०—केलिगृह। केलिनिकेतन। केलिमंदिर। केलिभवन, केलि-सदन = रति या क्रीड़ा का स्थान। केलिनगर = कामासक्त। केलिपर = विलासी। केलिपल्लव = क्रीड़ार्थ तालाब। क्रीड़ा-सरोवर। केलिरंग = क्रीडा स्थान। केलिवन = क्रीड़ाउपवन। केलिशयन = विलासशय्या। केलिसचिव = नर्मसचिव।

३. हँसी। ठट्ठा। मजाक। दिल्लगी। ४ पृथ्वी।

केलि२†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली] दे० 'कदली'। उ०—केलि फूल दासी को हेतू।—माधवानल० पृ० २७९।

केलि३—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

केलिकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती की वीणा। २.रति। केलि। रतिक्रीडा।

केलिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का विदूषक। २. शिव के कुष्मांडक नामक अनुचर का एक नाम।

केलिकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की स्त्री। रति।

केलिकिलावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'केलिकिला' [को०]।

केलिकीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रमेलक। ऊँट [को०]।

केलिकुंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० केलिकुञ्चिका] स्त्री की छोटा बहन। छोटी साली [को०]।

केलिकोष—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नट। अभिनेता। नर्तक। [को०]।

केलिनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली, प्रा० कयली हिं० केलि, केली,] दे० 'केली१' उ०—पंथी एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहुच्याइ। जधा केलिनि फलि गई स्वान जु वरसउ मं इ।—ढोला० दू०, १३२।

केलिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] हास परिहास। हँसी। मजाक [को०]।
केलिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कदंब वृक्ष का एक प्रकार [को०]।
केलिशुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरती [को०]।
केली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कदली, प्रा० कयली] केले की एक जाति जिसके फल छोटे होते हैं। वि० दे० 'केला'।
केली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खेल। क्रीडा। २ कामकेलि [को०]।
यौ०—केलीपिक = मनोविनोदन के लिये रखी कोयल। केलीवनी = प्रमोदवाटिका। केलीशुक = मनोरंजनार्थ पाला गया सुग्गा।
केलूगव—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केल'।
केलो—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केल[1]'।
केव—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष।
विशेष—यह सिंध की पहाड़ियों में और पश्चिमी हिमालय में होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की और भारी होती है तथा सजावट के सामान और खिलौने आदि बनाने के काम आती है। इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है। इसके पौधे पर विलायती जैतून की कलम लग जाती है।
केवका—संज्ञा पुं० [सं० कवक = ग्रास] वह मशाला जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है।
केवकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केवटी'।
केवट—संज्ञा पुं० [सं० कैवर्त्त, प्रा० केवट्ट] स्मृतियों के अनुसार कैवर्त क्षत्रिय पिता और वेश्या माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति थी। इस जाति के लोग आजकल नाव चलाने तथा मिट्टी खोदने का काम करते हैं। उ०—तब केवट ऊँचे चढि जाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई।—तुलसी (शब्द०)।
यौ०—केवटपाल = केवट को पालनेवाले श्रीराम। उ०—तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि। सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ?।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९०।
केवटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।
केवटीदाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केवट = एक संकर जाति + दाल] दो या अधिक प्रकार की, एक में मिली हुई दाल।
केवटीमोथा—संज्ञा पुं० [सं० कैवमुर्त्त मुस्तक] एक प्रकार का सुगंधित मोथा जो मालवा में होता है।
विशेष—इसकी जड़ बहुत सुगंधित होती है और ओषधि के काम में आती है। वैद्यक में इसे गरम और कफ और वात का नाश करनेवाला तथा दाह, शूल, व्रण और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है।
केवड़ई[1]—वि० [हिं० केवड़ा + ई (प्रत्य०)] केवड़े के रंग का।
केवड़ई[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो केवड़े की तरह का हलका पीला मिला हुआ सफेद होता है और जो शहाब, खटाई और तुन के फूलों को मिलाने से बनता है।
केवड़ा—संज्ञा पुं० [सं० केविका] १. सफेद केतकी का पौधा जो केतकी से कुछ बड़ा होता है।
विशेष—इसके फूल और पत्तियाँ केतकी से बड़ी होती हैं। केतकी की पत्तियों की भाँति इसकी पत्तियाँ भी चटाइयाँ आदि बनाने के काम आती हैं और इसके फूल से भी अतर और सुगंधित जल बनता तथा कत्था बसाया जाता है। इसमें भी केतकी के प्राय सब गुण हैं। इसके सिवा वैद्यक में इसके केसर को गरम कंडुनाशक माना है और इसके फल को वात, प्रमेह और कफ का नाशक कहा है।
विशेष—दे० केतकी'।
२ इस पौधे का फूल ३ इसके फूल से उतारा हुआ सुगंधित जल या आसव। ४. एक पेड़ जो हरद्वार के जंगलों और बरमा में होता है।
विशेष—यह गरमी के दिनों में फूलता है। इसकी लकड़ी सागवन आदि की तरह मजबूत होती है। जिसके तख्तों से मेज, कुरसी संदूक आदि बनाए जाते हैं।
केवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० केवड़ा] दे० 'केवड़ा' उ०—वहु फुल्लि केवर फूलि। बग बैठि पावस भूमि।—पृ० रा० १४।१३८।
केवरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० केवड़ा'। उ०—कहुँ रहे केवरा जूही जय।—ह० रासो, पृ० ६३।
केवल[1]—वि० [सं०] १. एकमात्र। अकेला। २ शुद्ध। पवित्र ३ अमिश्रित। उत्कृष्ट। उत्तम श्रेष्ठ। ४. पूर्ण। समस्त। पूरा (को०)। ५ नग्न। अनावृत (भूमि) (को०)।
केवल[2]—क्रि० वि सिर्फ। उ० केवल हुँमा की हुँकारी की झाँई पर्वत के कंदरों में बोलती है।—श्यामा०, पृ० ७९।
केवल[3]—संज्ञा पुं० [वि० केवली] १ वह ज्ञान जो भ्रांतिशून्य और विशुद्ध हो।
विशेष—सांख्य के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान तत्वाभ्यास से प्राप्त होता है। यह ज्ञान मोक्ष का साधक होता है। इससे ज्ञानी को यह साक्षात हो जाता है कि न मैं कर्ता हूँ, न मेरा किसी से कुछ संबंध है और न मैं स्वयं पृथक कुछ हूँ। इस प्रकार के ज्ञान से वह पुरुष को साक्षी मात्र के रूप में देखता है।
२ जैन शास्त्रानुसार सम्यक् ज्ञान। ३. वास्तु विद्या में स्तंभ के आधार अर्थात् कुंभी के ऊपर का ढाँचा।
केवलव्यतिरेकी—संज्ञा पुं० [सं० केवलव्यतिरेकिन्] न्याय के अनुसार एक प्रकार का हेतु जिसका विलोम केवलान्वयी' होता है जिसकी सहायता अनुमान में ली जाती है और जिसे 'शेषवत्' भी कहते हैं। वि० दे० 'अनुमान'।
केवलात्मा—संज्ञा पुं० [सं० केवलात्मन्] १ पाप और पुण्य से रहित- ईश्वर। २ शुद्धस्वभाववाला मनुष्य।
केवलान्वयी—संज्ञा पुं० [सं० केवलान्वयिन] न्याय में एक प्रकार का हेतु जिसकी सहायता अनुमान में ली जाती है जिसे 'पूर्ववत्' भी कहते हैं। वि० दे० 'अनुमान'।
केवली[1]—संज्ञा पुं० [सं० केवलिन्] [स्त्री० केवलिनी] १ मुक्ति का अधिकारी साधु। केवलज्ञानी। २ मुक्तिप्राप्त साधु। तीर्थंकर (जैन)।
केवली[2]—वि० १ अकेला। निःसंग २ विशुद्ध। आत्मैक्य के सिद्धांत को माननेवाला। ३ पूर्ण ज्ञान प्राप्त ज्ञानी [को०]।

के कोठे मे तीन तीन अक्षर लिखे जाते हैं। इस प्रकार जन्म-नक्षत्र से वर्षेश का निश्चय किया जाता है। वर्षेश के वर्ष मे अन्य ग्रहो का मर्दिन होता है। इसका भी प्रचार बंगाल मे अधिक है।

केतुभ— संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

केतुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णार्ध समवृत्त का नाम जिसके विषम पादो मे सगण, जगण, सगण और एक गुरु होता है और समपादो में भगण, रगण, नगण और दो गुरु होते हैं। जैसे,—प्रभु जी हरी हमहिं तारो, मो मन तें सबी अघ निकारो। अपने हिये यह विचारो, राम अनाथ को जधि उबारो।—२ रावण की नानी अर्थात् सुमाली राक्षस की पत्नी का नाम।

केतुमान्¹—वि० [सं० केतुमत्] १ तेजवान। तेजस्वी। २ ध्वजा-वाला। जिसके पास पताका हो। ३. बुद्धिमान्। ४ चिह्न या प्रतीकवाला। प्रतीकयुक्त [को०]।

केतुमान्²—संज्ञा पुं० १. हरिवंश के अनुसार काशिराज दिवोदास के वंश का एक राजा जो धन्वंतरि का पुत्र था। २ एक दानव का नाम।

केतुमाल— संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के नौ खंडों मे से एक खंड।

विशेष—ब्रह्मांड पुराण के अनुसार इसमे सात पर्वत और कई नदियाँ हैं। सिद्ध और देवर्षि प्राय इन्हीं नदियों मे स्नान करना पसंद करते हैं। इस खंड मे प्राय जंगली जानवर भी रहते हैं।

केतुमालक- संज्ञा पुं० [सं०[दे० 'केतुमाल'।

केतुयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वज का दंड। पताका का डंडा [को०]।

केतुरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] लहसुनिया नामक रत्न।

केतुवसन—संज्ञा पुं० [सं०] पताका। ध्वजा। झंडा [को०]।

केतुवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के चारो ओर के पर्वतों पर के चार वृक्षो के नाम।

विशेष—विष्णुपुराण के अनुसार मेरु की पूर्वदिशा में मंदराचल है जिसपर कदंब का वृक्ष है, दक्षिण ओर गंधमादन पर जंबू, पश्चिम ओर विपुल गिरि पर पीपल और उत्तर ओर सुपार्श्व पर्वत पर वट वृक्ष है। इन्हीं चारो वृक्षों को केतुवृक्ष कहते हैं।

केतेक(पु)—वि० [सं० कियत्+एक] कितने एक। कितने ही। उ०—ऐसे करत केतेक दिन भए।—दो सौ बावन, पृ० १६५।

केतो¹—संज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के गरम देशो मे रहनेवाला एक जानवर जो लोमड़ी के आकार का होता है और ईख के खेतो को बडी हानि पहुँचाता है।

केतो²(पु)—वि० [सं० कति] कितना।

केथि(पु)†—क्रि० वि० [सं० कुत्र, अप०, केत्थु, प० कित्थु, कित्थे] दे० 'कहाँ।' उ०—करहा पानी खंच पिउ, त्रासा घणा सहेसि। छीलरियउ ढूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि।—ढोला० दू०, ४२६।

केद(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कैद] दे० 'कैद'। उ०—बंदीखाने मे केद राखे।—दो सौ बावन०, पृ० १३८।

केदर¹—वि० [सं०] ऐंचा या भेंगी आँखवाला। भेंगा [को०]।

केदर²—संज्ञा पुं० [सं०] १. सद्व्यवहार। व्यवहार। २ एक पौधे का नाम [को०]।

केदली†—संज्ञा पुं० [सं० कदली] केले का पेड़। कदली वृक्ष। उ०—विधिहि बदि तिन कीन्ह अरंभा। विरचे कनक केदली खंभा।—तुलसी (शब्द०)।

केदार—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह खेत जिसमें धान बोया या रोपा जाता है। कियारी। २ वृक्ष के नीचे जमीन पर बना हुआ थाला। थावला। ३. मेघ राग का चौथा पुत्र। यह संपूर्ण जाति का राग है और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। उ०—मुख मुरली में केदारो कैसे गावै।—घनानंद, पृ० ५४५। ४. हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदार-नाथ नाम का एक शिवलिंग है। ५ शिव का एक नाम।

विशेष—दे० 'केदारनाथ'।

५ कामरूप देश का एक तीर्थ।

केदारक—संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।

केदारखंड—संज्ञा पुं० [सं० केदारखण्ड] १ स्कंदपुराण का खंड या भाग जिसमे केदारतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन है। २ स्कंद पुराण (काशीखंड) के अनुसार वाराणसी के तीन खंड या भूभाग में से एक का नाम। काशी का दक्षिणवर्ती खंड जहाँ केदारनाथ का मंदिर है। ३ जल रोकने के लिये बनाया हुआ मिट्टी का छोटा बंधा [को०]।

केदारगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० केदारगङ्गा] गढ़वाल प्रांत की एक प्रसिद्ध नदी जो गंगा मे मिलती है।

केदारनट—संज्ञा पुं० [सं० केदार+नट] षाड़व जाति का एक संकर राग जो नट और केदार को मिलाकर बनता है।

विशेष—यह रात के दूसरे पहर मे गाया जाता है। इसमें ऋषभ वर्जित है। संगीतपारिजात मे इसे ओड़व जाति का राग माना है और इसमे ऋषभ तथा धैवत वर्जित बतलाया है। किसी किसी के मत से यह नटनारायण का छठा पुत्र भी है।

केदारनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत का नाम, जिसके शिखर पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है।

विशेष—यह समुद्र से ७३३३ फुट ऊँचा है। इसका ऊपरी भाग महापथ कहलाता है और सदा बरफ से ढका रहता है। बहुत प्राचीन काल से यह स्थान एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसके आसपास और भी अनेक छोटे छोटे तीर्थ हैं। वैशाख से कार्तिक तक भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों से अनेक यात्री दर्शनों के लिये यहाँ जाते हैं।

केदारा—संज्ञा पुं० [सं० केदारी] दे० 'केदारी'।

केदारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की पाँचवीं रागिनी जो रात के समय दूसरे पहर की पहली घड़ी मे गाई जाती है। इसे केदारा भी कहते हैं।

विशेष—यह ओड़व जाति की रागिनी है और इसमे ऋषभ तथा धैवत स्वर वर्जित हैं। इसका सरगम यह है।—नि स ग म प नि नि। पर सोमेश्वर के मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी

है और संध्या के समय गाई जाती है। इसका व्यवहार प्राय वीर और शृंगार रस के वर्णन में किया जाता है।

केन१—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध उपनिषद् जिसका पहला मंत्र 'केनेषितम् ...' 'केन' शब्द से आरंभ होता है। इसे तवल्कार उपनिषद् भी कहते हैं। यह सामवेदी है और इसमें चार खंडों में ३४ मंत्र हैं।

केन२—संज्ञा स्त्री० [देश०] जिला बाँदा की एक नदी जो विंध्याचल से निकलकर यमुना नदी में गिरती है।

केना†—संज्ञा पुं० [सं० क्रयण=मोल लेना] १ वह थोड़ा सा अन्न जिसे देकर देहात में लोग तरकारी इत्यादि मोल लेते हैं। कनूका। केजा। २. सागपात। तरकारी। भाजी। ३ एक प्रकार की बरसाती घास जो साग के रूप में काम आती है।

केनार—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम। कुंभीपाक नरक। २. कपोल। ३ खोपड़ी। ४. सिर। ५ संधि। जोड़ [को०]।

केनिपात, केनिपातक—संज्ञा पुं० [सं०] डाँड़ या बल्ली जिससे नाव चलाई जाती है। बहना। अरित्र।

केनिपातन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केनिपात'।

केम१—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब, प्रा० कयम्ब] कदंब। कदम। उ०—अब तजि नाउँ उपाय को आए पावस मास। खेलु न रहिबो खेम सों केम कुसुम की बास।—बिहारी (शब्द०)।

केम२Ⓟ†—क्रि० वि० [सं० किम्, गुज०] किस प्रकार। कैसे। क्यों। उ०—बीसलदे राज कवि पुव्व कथ्य। जरौं ताप उधरौं केम नथ्य।—पृ० रा०, १।५५६।

केमद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० केनोद्रोमस्] ज्योतिष में चंद्रमा का एक योग।

विशेष—बृहज्जातक में वाराहमिहिर के अनुसार यह योग उस समय होता है जबकि चंद्रमावाली राशि के आगे या पीछेवाली राशि पर कोई और ग्रह न हो। फलित के अनुसार यदि इस योग में किसी राजकुमार का भी जन्म हो, तो वह सदा दुखी और दरिद्र रहता है।

केमरा—संज्ञा पुं० [अं० कैमरा] फोटो खींचने का यंत्र। दे० 'कमरा'-२। उ०— केमरा कंधे से उतारकर रखा और कुर्सी पर बैठ भी गए।—किन्नर, पृ० १४।

केमिⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'किमि'। उ०—व्रत टरै केमि छत्री प्रभग।—ह० रासो०, पृ० १०७।

केमुक—संज्ञा पुं० [सं०] केउआँ। बंडा।

केयूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँह में पहनने का एक आभूषण। बिजायठ। बजुल्ला। अंगद। बहुँटा। भुजबंद। भुजभूषण। उ०—कोऊ विशाल मृणाल के केयूर वलय बनावते।—प्रेमघन०, पृ० ११३। २. एक प्रकार का रतिबंध (को०)।

केयूरवल—संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बौद्ध देवता।

केयूरी—[सं० केयूरिन्] जो केयूर पहने हो। केयूरधारी।

केर—प्रत्य० [सं० कृत] [स्त्री० केरि, केरी] [अन्य रूप-केरा, केरो] संबंध सूचक अव्यय जो अवधी भाषा तथा अन्य भाषाओं में 'का' और 'के' विभक्तियों के स्थान में आता है। उ०—(क) छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मुँजे गेहूँ केरा झाड़ दिखलाया तूँ।—दक्खिनी०, पृ० ३००। (ग) सुनत जु वेनुगीत पिय केरो।—नंद० ग्रं०, पृ० २९५।

केरक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश।

केरल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण भारत का एक देश।

विशेष—यह कन्याकुमारी से गोकर्ण तक मलयवार (मलाबार) पर समुद्र के किनारे किनारे फैला हुआ है। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है। तंत्रों के अनुसार केरल के तीन विभाग थे। (१) सिद्ध केरल (सुब्रह्मण्य से जनार्दन तक), (२) हम केरल (रामेश्वर से वेंकटगिरि तक) और (३) केरल (अनंतशैल से अव्यय तक)। आजकल इस देश को कनारा (कन्नड) कहते हैं और यहाँ कनारी (कन्नड) भाषा बोली जाती है।

२. [स्त्री० केरली] केरल देशवासी पुरुष। ३ एक प्रकार का फलित ज्योतिष, जिसका आविष्कार केरल देश में हुआ था। इसमें स्वर और व्यंजन अक्षरों के लिये कुछ अंक नियत होते हैं और उन्हीं की सहायता से गणित करके प्रश्न का फल या उत्तर निकाला जाता है। ४. एक घंटे के बराबर का समय। होरा (को०)।

केरा१†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केला' उ०—सफल रसाल पुंगफल केरा।—मानस, २।६।

केरा२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बत्तक जिसे 'पतारी' भी कहते हैं।

केराना१—क्रि० स० [सं० किरण या हिं० गिराना] सूप में अन्न रखकर उसे हिला हिलाकर बड़े और छोटे दाने अलग करना।

केराना२—संज्ञा पुं० [सं० क्रयण] नमक, मसाला, हलदी आदि चीजें जो नित्य के व्यवहार में आती और पसारियों के यहाँ मिलती हैं।

केरानी२—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] १ वह मनुष्य जिसके माता पिता में से कोई एक यूरोपियन और दूसरा हिंदुस्तानी हो। किरटा। यूरेशियन। २ अँगरेजी दफ्तर में लिखने पढ़ने का काम करनेवाला मुंशी। क्लार्क।

यौ०—केरानी खाना=अँगरेजी दफ्तर।

केराया†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'किराया'।

केराव†—संज्ञा पुं० [सं० कलाय] मटर।

केरावल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'किरावल'।

केरि१Ⓟ—प्रत्य० [सं० कृत] दे० 'केरी'। उ०—हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी। जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी।—जायसी ग्रं०, पृ० ५।

केरि२Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० केलि] दे० 'केलि'। उ०—तिन ठाम आइ नाहर सुघेरि। वाहत हथ्थ जनु करिय केरि।—पृ० रा०, ७। १०१।

जिसमे साग तरकारी, फलादि बोए और लगाए जायँ। नए पौधो का बाग। नौरंगा।

केडा—संज्ञा पुं० [सं० करीर = बाँस का कल्ला] १ नया पौधा या अंकुर। कोंपल। कल्ला। २ नवयुवक। उ०—वह सदा इसी ताक मे रहता था कि किस घराने मे कौन कौन नए केडे हैं।—सौ अजान और एक सुजान (शब्द०)। ३ खेत से काटी हुई फसल या घास का गट्ठा।

केणिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केणिका = खेमा] खेमा। तंबू। रावटी।—(डिं०)।

केणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'केणिक'।

केत—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर। भवन।। २ स्थान। जगह। वस्ती। उ०—फूल छूल फिर पूछौ जो पहुँचो वहि केत। तन नेउछावर क मिलौं ज्यो मधुकर जिउ देत।—जायसी (शब्द०)। ३ केतु। ध्वजा। ४ बुद्धि। प्रज्ञा। ५ संकल्प। इच्छाशक्ति। ६ मंत्रणा। सलाह। ७ अन्न। जैसे—केतपू। ८ (पु) केतु नाम का एक ग्रह। उ० शनिवार तीसरो छठो केत।—पृ० रासो, पृ० ५४। ९ आमंत्रण। निमंत्रण (को०)। १०. संपत्ति (को०)। ११ आकाश (को०)। १२ (पु) केवड़ा।

केतक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] केवडा। उ०—लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरि कै।—केशव (शब्द०)।

केतक[2]—वि० [सं० कति + एक] १ कितने। किस कदर। २ बहुत। उ०—केतक दिवस राज्य तव कियऊ। एक दिवस नारद मुनि गयऊ।—सबल (शब्द०)।

केतकर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केतकी'। उ०—तूहू जो प्रीति निबाहै आँटा। भौंरै न देख केतकर काँटा।—जायसी (शब्द०)।

केतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा। केवड़ा। उ०—गमक रहा था केतकी का गंध चारो ओर।—साकेत, पृ० २७४।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लंबी, नुकीली, चिपटी, कोमल और चिकनी होती हैं और जिनके किनारे और पीठ पर छोटे छोटे काँटे होते हैं। केतकी दो प्रकार की होती है—एक सफेद और दूसरी पीली। सफेद केतकी को हिंदी मे केवड़ा और पीली या सुवर्ण केतकी को केतकी कहते हैं। इसकी पत्तियो से चटाइयाँ छाते और टोपियाँ बनती हैं। इसका तना नरम होता है और बोतलो मे डाट लगाने के काम मे आता है। कही कहीं इसकी नरम पत्तियो का साग भी बनाया जाता है। बरसात मे इसमे फूल लगते हैं जो लंबे सफेद रंग के और बहुत सुगंधित होते हैं। इसका फूल बाल की तरह होता है और ऊपर से लंबी लंबी पत्तियो से ढका हुआ होता है। फूल से अतर और सुगंधित जल बनाया जाता है और उससे कत्था भी बसाया जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस फूल पर भौंरा नहीं बैठता। पुराणो के अनुसार यह फूल शिव जी को नही चढ़ाया जाता। वैद्यक मे सफेद केतकी बालो की दुर्गंधि दूर करनेवाली मानी गई है और इसका शाक या मूल स्वाद मे कडुवापन लिये हुए मीठा और गुण में कफनाशक तथा लघुपाक कहा गया है।

पर्या०—शूचीपत्र। हलीन। जंबूल। जंबूक। तीक्ष्ण पुष्पा। विफला। धूलिपुष्पा। नेघ्या। इंदुकलिका। शिवद्विष्टा। ककचा। दीर्घपत्रा। स्थिरगंधा। कंटकदला। दलपुष्पा। केवड़ा।

२ एक रागिनी का नाम। उ०—रामकली, गुनकली, केतकी, सुर सुघराई गायो। जैजैवंती, जगतमोहिनी, सुर सों बीन बजायो।—सूर (शब्द०)।

केतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निमंत्रण। आह्वान। २ ध्वजा। उ०—प्रकट सजीव चित्र सा था शून्य पट पर दंडहीन केतन दंग के निकेतन मे।—साकेत, पृ० ३९७। ३. चिह्न। प्रतीक। ४ घर। ५ घंटा। दाग (को०)। ६ शरीर (को०)। ७ स्थान। जगह।

केतपू—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न साफ करनेवाला।

केतली—संज्ञा स्त्री० [अं० केटिल] पानी गरम करने का एक टोंटीदार बरतन, जिसके मुँह पर ढक्कन रहता है। इसमें विशेषत: चाय के लिये पानी गरम करते हैं। उ०—स्टोव जलाकर शांति ने चाय की केतली चढ़ा दी।—संन्यासी, पृ० ७८।

केता(पु)—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० केती) कितना।

केतान(पु)—वि० [हिं० 'केता' का बहु० व०] कितने। उ०—सूर वीर केतान गया सब लोग रे। बारो बार बिहाय सुपन को जोग रे।—राम० धर्म०, पृ० २५८।

केतिक(पु)—वि० [सं० कति + एक] कितना। किस कदर। उ०—कहौ बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति ब्रजबालहि।—सूर (शब्द०)।

केती(पु)—वि० [हिं०] दे० 'केता'। उ०—भूपन जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हारयो लखिए कछू न केती बातें चित चुनियैं।—भूपण ग्रं०, पृ० ३२।

केतीहेक(पु)†—वि० [सं० कियदेक, प्रा० केत्तिअ + राज० हेक = एक] दे० 'केतिक'। उ०—ढोलउ मारू एकठा कहि केतीहेक दूर।—ढोला० दू०, ६४६।

केतु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ज्ञान २ दीप्ति। प्रकाश। ३ ध्वजा। पताका। ४ निशान। चिह्न। ५ पुराणानुसार एक राक्षस का कबंध।

विशेष—यह राक्षस समुद्रमथन के समय देवताओ के साथ बैठकर अमृतपान कर गया था। इसलिये विष्णु भगवान् ने इसका सिर काट डाला। पर अमृत के प्रभाव से यह मरा नहीं और इसका सिर राहु और कबंध केतु हो गया। कहा है इसे सूर्य और चंद्रमा ही ने पहचाना था, इसीलिये यह अबतक ग्रहण के समय सूर्य और चंद्रमा को ग्रसता है।

६ एक प्रकार का तारा जिसके प्रकाश की पूँछ दिखाई देती है। यह पुच्छल तारा कहलाता है। उ०—कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहि राहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस प्रकार के अनेक तारे हैं, जो कभी कभी रात को झाड की तरह भिन्न भिन्न आकार के दिखाई देते हैं। भारतीय ज्योतिषियो मे इनकी संख्या के विषय में मतभेद है। कोई हजार, कोई १०१, कोई कुछ, कोई कुछ मानता है। नारदी जी का मत है कि केतु एक ही है और वही भिन्न भिन्न रूप का दिखाई पडता है। फलित मे भिन्न भिन्न केतुओं के उदय का भिन्न भिन्न फल माना गया है। ज्योतिषियों का मत

है कि केतु अपने उदयकाल ही मे या उदय से पंद्रह दिन पीछे शुभ या अशुभ फल दिखाते हैं। आजकल के पाश्चात्य ज्योतिषियों ने दूरबीन द्वारा यह निश्चित किया है कि केतुओं की संख्या अनिश्चित है और वे भिन्न भिन्न पटनों में भिन्न भिन्न दीर्घवृत्त या परवलयवृत्त कक्षाओं मे भिन्न भिन्न वेगों से घूमते हैं। इन कक्षाओं की दो नाभियों में सूर्य एक नाभि होता है। दीर्घवृत्तात्मक कक्षा होने से ये तारे जब रविनीच के या सूर्य के समीपवर्ती कक्षांश में होते हैं, तभी दिखाई पड़ते हैं। रविनीच के कक्षांश मे आते ही ये तारे कुछ दिखाई पड़ने लगते हैं और पहले पहल प्रकाश के धब्बे की तरह दूरबीनों से दिखाई पड़ते हैं। ज्यों ज्यों ये सूर्य के समीप आते जाते हैं इनकी केतुनाभि दिखाई पड़ने लगती है फिर क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। पर कितने ही केतुओं की केतुनाभि नहीं दिखाई पड़ती। उनमे केतुनाभि है या नहीं, यह संदिग्ध है। इन तारों की केतुनाभि उनके आवरण में लिपटी हुई सूर्य से २ अंश से ६० अंश तक मे दिखाई पड़ती है। इन तारों के साथ प्रकाश की एक घड़ी लगी होती है जिसे केतुपुच्छ कहते हैं। इस केतुपुच्छ में स्वयं प्रकाश नहीं होता। यह स्वयं स्वच्छ पारदर्शी और वायुमय होता है जिसमें सूर्य के सान्निध्य से प्रकाश आ जाता है। यही कारण है कि पुच्छ की दूसरी ओर का छोटे से छोटा तारा तक दिखाई पड़ता है। सन् १६८२ ई० के पूर्व के ज्योतिषियों की यह धारणा थी कि पुच्छल तारे बिना ठीक ठिकाने के मनमाने घूमा करते हैं, न इनकी कोई नियत कक्षा है और न इनके घूमने का कोई नियम है। पर सन् १८६२ ई० मे हेली साहब ने हिसाब लगाकर एक तारे के विषय में यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि वह बहेल्ले की तरह नहीं घूमता, बल्कि लगभग ७६ वर्ष के बाद दिखाई पड़ता है। इस तारे को हेली साहब का पुच्छल तारा या 'हेली केतु' कहते हैं। तब से ज्योतिषियों का ध्यान इन केतुओं की गति की ओर आकर्षित हुआ और अबतक कितने ही तारों की गति और कक्षा आदि का पूरा पता लग चुका है। ऐसे तारों को ज्योतिष मे नियतकालिक केतु कहते हैं। सबसे विलक्षण बात—जिसका पता सन् १८६२ ई० मे इटली के शेपरले नामक ज्योतिषी ने लगाया—यह है कि कितने ही पुच्छल तारों की कक्षा और कितने ही उल्कापुंजों की कक्षा एक ही है। उसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि १८६२ के केतु और सिंहगत उल्का, ये एक ही कक्षा मे भ्रमण करते हैं। केतु को पुच्छलतारा, बढ़नी, झाड़ू आदि भी कहते हैं।

७. नवग्रहों मे से एक ग्रह। यद्यपि फलित मे इसे ग्रह माना है तथापि सिद्धांत ग्रंथों मे चंद्रकक्ष और क्रांतिरेखा के अधःपात के बिंदु को ही केतु माना है।

विशेष—दे० 'पात'।

८ प्रकाशकिरण [को०]। ६ प्रतान या विशिष्ट वंचित [को०]। १०. दिन का समय। दिन [को०]। ११. आकार। रूप। आकृति (को०)। १२ एक वामन या बौनी जाति (को०)। १३. शत्रु। वैरी (को०)। १४. एक प्रकार का रोग (को०)।

केतु(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० केतकी] केवड़ा।

केतुकि(पु) केतुकी—संज्ञा पुं० [सं० केतकी] केतकी। केवड़ा। उ०—(क) पल्लव सुधीर केतुकि नवल, बर बसंत वायह हले। तम तेज रुधिर नंच्यौ बहुल कलह किरि जावक पुलं।—पृ० रा० ७।१६०। (ख) कोइ केतुकि मालति फुलवारी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४७।

केतुकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० केतुकुण्डली] फलित ज्योतिष के अनुसार बारह कोष्ठों का एक चक्र, जिससे प्रत्येक वर्ष का स्वामी निकाला जाता है।

विशेष—इस चक्र के बनाने की रीति यह है कि कोष्ठों मे पहले कोष्ठ से आरंभ करके ग्रहों के नाम इस क्रम से रखते हैं—सूर्य, केतु, बुध, मंगल, केतु, बृहस्पति, चंद्रमा, केतु, शुक्र, राहु, केतु और शनि। फिर उत्तराभाद्र से आरंभ करके नक्षत्रों को कोष्ठों मे इस प्रकार भरते हैं कि सूर्य आदि ग्रहों के नीचे तीन तीन नक्षत्र और केतु के नीचे एक एक नक्षत्र यथाक्रम पड़े। इसके उपरांत चक्र मे कुंडलीवाले के जन्मनक्षत्र को देखते हैं। वह नक्षत्र जिस ग्रह के कोष्ठ में होता है, वही प्रथम वर्ष का वर्षेश होता है इसी प्रकार दूसरे, तीसरे आदि वर्षों का भी निकालते हैं। इसका प्रचार वंग देश में विशेष है।

चक्र

सू०
उत्तराभाद्र, रेवती,
अश्विनी
के०
भरणी
बु०
कृत्तिका
रोहिणी
मृगशिरा,
मं०
आर्द्रा पुनर्वसु,
पुष्य
के०
श्लेषा
बृ०
मघा, पूर्वाफाल्गुनी,
उत्तरा फाल्गुनी
चं०
हस्त, चित्रा, स्वाति
के०
विशाखा,
शु०
अनुराधा,
ज्येष्ठा, मूल
रा०
पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ,
अभिजित्
के०
श्रवण
श०
धनिष्ठा, शतभिषा,
पूर्वाभाद्र

केतुचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केतुकुंडली' [को०]।

केतुतारा—संज्ञा पुं० [सं०] पुच्छल तारा [को०]।

केतुपताका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार नौ कोष्ठों का एक चक्र जिससे वर्षेश निकाला जाता है।

विशेष—इस चक्र मे नवों ग्रह, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध शनि बृहस्पति राहु, शुक्र, केतु क्रम से रखे जाते हैं। फिर कृत्तिका से लेकर भरणी तक और सूर्य से लेकर शुक्र तक प्रत्येक ग्र॰

यह कभी अपने शरीर को सिकोड लेता है, और कभी लंबा कर देता है। यह मिट्टी ही खाता है। इससे पीले रंग की एक लसदार वस्तु निकलती है, जो रात को चमकती है।

२ केंचुए के आकार का सफेद कीडा जो पेट से मल द्वारा बाहर निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना। पड़ना।

केंचुकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] दे० 'कंचुकी' उ०—स्वेत भवर कंठ केतुकी। चाहहिं वेध कीन्ह केंचुकी।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० १६५।

केंचुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कंचुली'। उ०—अनंग के घाट नहाय नसैं भले पातक केंचुरी मानो भुजंग।—श्यामा०, पृ० १२६।

केंचुल—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] [वि० केंचुली] सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आपसे आप पृथक् होकर गिर जाती है। उ०—निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु व्रन पास।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२१।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—झगड़ना।—बदलना।

मुहा०—केंचुल बदलना = पोशाक बदलना। कपड़ा बदलना।—(व्यंग्य)। केंचुल में आना या भरना = केंचुल छोडने पर होना।

केंचुली¹—वि० [हिं० केंचुल] केंचुल की तरह का।

यौ०—केंचुली लचका या केंचुली का लचका = एक प्रकार का लचका जो खीचने पर साँप की तरह बढ़ता है।

केंचुली²—संज्ञा स्त्री० दे० 'केंचुल'।

केंचुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केंचुआ'।

केंत—संज्ञा पुं० [बेंत का अनु या० अं० केन] एक प्रकार का मोटा बेंत जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

केंदु—संज्ञा पुं० [सं० केन्दु] तेंदू का पेड़।

केंदुक—संज्ञा पुं० [सं० केन्दुक] १ एक माप। २ एक प्रकार का तेंदू (को०)।

केंदुवाल—संज्ञा पुं० [सं० केन्दुवाल] नाव खेने का डाँड़। बल्ला। अरित्र। केनिपात।

केंद्र—संज्ञा पुं० [सं० केन्दु] तेंदू।

केंद्र—संज्ञा पुं० [सं० केन्द्र, यू० केण्ट्रन] १ किसी वृत्त के अंदर का वह बिंदु जिससे परिधि तक खीची हुई सब रेखाएँ परस्पर बराबर हों। नाभि। २ किसी निश्चित अंश से ९०, १८०, २७० और ३६० अंश के अंतर का स्थान। ३ ज्योतिष शास्त्र मे ग्रहो के दो केंद्र—शीघ्र केंद्र और मंद केंद्र। ग्रह के मध्य मे से मंदोच्च घटाने से मंद केंद्र और शीघ्रोच्च घटाने से शीघ्र केंद्र का ज्ञान होता है। ४ फलित के अनुसार कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। ५ मुख्य या प्रधान स्थान। ६ सदा रहने का स्थान। ७ बीच का स्थान। ८ किसी वस्तु के उत्पादन, वितरण आदि का स्थान सेंटर।

यौ०—केंद्रग। केंद्रगामी = केंद्र की ओर गमन करनेवाला। केंद्रस्थ = केंद्र मे स्थिति। केंद्रस्थान।

केंद्रातीत—वि० [सं० केन्द्र + अतीत] केंद्र का प्रतिगामी। केंद्र से बहिर्मुख। केंद्रापग। उ०—पुरुष केंद्रातीत शक्ति के प्रति आकर्षित होकर विश्वविजय की आकांक्षा करके बाह्य जगत् मे अपनी कीर्ति प्रसारित करना चाहता है।—प्रेम० और गोर्की० पृ० १०७।

केंद्रापगामी¹—वि० [सं० केन्द्रापगामिन्] केंद्र की विपरीत दिशा मे जानेवाला।

केंद्रापगामी²—वि० दे० 'केंद्रापमुखी'।

केंद्रापमुखी—वि० [सं० केन्द्रापमुखिन्] केंद्र का विरोधी। केंद्र से बाहर रहनेवाला। उ०—जो भारतवर्ष के जीवन मे केंद्रापमुखी प्रवृत्ति जगने पर अलग राष्ट्र बन जाते हैं।—भारत० नि०, पृ० १६२।

केंद्राभिगामी—वि० [सं० केन्द्राभिगामिन्] केंद्र की ओर जानेवाला। केंद्र का समर्थन करनेवाला। उ०—मौर्य काल की राज्य-संस्था मे केंद्राभिगामी और केंद्रापगामी प्रवृत्तियों की किस प्रकार कशमकश थी, उसका उल्लेख कर चुके हैं।—भा० इ० रू०, पृ० ६६१।

केंद्री—वि० [सं० केन्द्रिन्] केंद्र मे स्थित। केंद्रस्थित। उ०—केंद्री है सबके कर स्वामी योग नद्र चडामणि। गुरु द्विज भक्त सकल गुणसागर दाता सूर शिरोमणि।—रघुराज (शब्द०)।

केंद्रीभूत—वि० [सं० केन्द्रीभूत] केंद्र मे स्थित वा एकत्रित। पुंजीभूत। उ०—सुख, केवल सुख का वह संग्रह केंद्रीभूत हुआ इतना, छायापथ मे नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।—कामायनी, पृ० ८।

केंद्रीय—वि० [सं० केंद्रीय] १ केंद्र संबंधी। २ केंद्रस्थ। केंद्र में स्थित। ३ प्रधान। मुख्य। वरिष्ठ। श्रेष्ठ।

केंद्राभिमुखी—वि० [सं० केन्द्राभिमुखिन्] दे० 'केंद्राभिगामी'।

केंद्रिक—वि० [सं० केन्द्रिक] केंद्र संबंधी। केंद्र का। केंद्रीय। उ०—कई मामलो मे जनसत्ता का सिद्धांत मानते हुए भी यहाँ केंद्रिक शासन मे जनसत्ता का रूप लाना टेढ़ी खीर थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १२।

केंद्रित—वि० [सं० केन्द्रित] १ केंद्र मे स्थित। २ निश्चित स्थान पर एकत्रित (को०)।

के¹—प्रत्य० [हिं० का] संबंधसूचक 'का' विभक्ति का बहुवचन रूप। जैसे,—राम के घोड़े।

विशेष—यदि संबंधवान् के आगे कोई विभक्ति होती है, तो एक वचन में 'का' के स्थान पर 'के' आता है। जैसे—(क) वह राम के घोड़े से गिर पड़ा। (ख) हम उसके घर (पर) गए थे।

के²—सर्व० [सं० 'क' का बहु० व०] कौन ? उ०—कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई।—मानस, २।१८१।

के³—सर्व० [हिं०] क्या ? । उ०—के और तू मन के संदेह हैं।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३११।

केइ(पु)—सर्व० [हिं० कोई] १. दे० 'कोई'। उ०—तहँ केइ धीरा केइ अधीरा। केइ धीरा धीरा रस भीरा।—नंद ग्रं०, पृ०

पृ० १४७ । २. कितने। उ०—केइ तव नासा कान निपाता।—तुलसी (शब्द०)।

केइक(पु)—वि० [हिं०] कुछ। कई एक। उ०—सुंदर घर घर रोवणों परयो काल की मास। केइक आगे को गए फिर केइक को नास।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७०४।

केउँआ—संज्ञा पुं० [सं० केमुक] १. कच्चू। २ चुकंदर। ३ शलगम।

केउ†—सर्व० [हिं० के+उ (प्रत्य०)–भी] कोई। उ०—अलख अलौकिक रूप तव, तर्कि सकै नहिं केउ। जानैं सोइ करि कृपा, तुम, जाहि जनावो देउ।—विश्राम (शब्द०)।

केउक(पु)—वि० [हिं०] कुछ। कितने एक। उ०—केउक कलप बीतें लोन मपरत हैं।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४।

केउटा†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कोट] एक प्रकार का बहुत विषैला काला साँप। औषधों में इसी का विष काम में आता है। करैत।

केउटी†—वि० [हिं०] दे० 'केवटी'।

केउर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केयूर] दे० 'केयूर'।

केऊ[1](पु)†—वि० [हिं०] कुछ। कई।

केऊ[2](पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'केउ'।

केक[1]—(पु)सर्व० [हिं०कई+एक] कितने। कुछ।

केक[2]—संज्ञा पुं० [अं०] चीनी फल और आटे के मिश्रण द्वारा तैयार की हुई एक तरह की अँगरेजी मिठाई जो गोलाई लिये हुई ऊँची होती है।

विशेष—यह छोटे मँझोले और बडे आकार में कई प्रकार की होती है। जन्मोत्सव के लिये बड़ा केक बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—काटना=जिसका जन्म दिन मनाया जा रहा हो उसके द्वारा या जिसका सम्मान स्वागत किया जा रहा हो उसके द्वारा केक काटा जाना और उपस्थित जनो मे वितरण।

केकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, पा० ककट] पानी का एक कीड़ा जिसे आठ टाँगें और दो पंजे होते हैं।

विशेष—यह साधारण गड़हियों से लेकर समुद्र तक मे पाया जाता है और भिन्न भिन्न आकार का, छोटा, बडा और कई रंगो का होता है। यह अडज है और इसके विषय मे कहा जाता है कि इसकी माता अंडा देने से पहले मर जाती है। बरसात में केकडे जोड़ा खाते हैं, और जब मादा का पेट अंडो से भर जाता है तब वह मर जाती है, और अंडे में से पकने पर, छोटे छोटे बच्चे निकलते हैं। कहते हैं कि पाँच खोल बदलने पर यह पूरा केकड़ा होता है। यह सूखी भूमि पर भी चल सकता है। गरमी मे छिछले पानी या किनारे पर रहता है और जाड़े मे गहरे जल मे चला जाता है, जहाँ झुंड बाँधकर किसी दरार या गड्ढे मे रहता है। बडा केकड़ा अपने छोटे और निर्बल केकडो को खा जाता है। भिन्न भिन्न प्रदेशों मे लोग इसका मास भी खाते हैं। वैद्यक मे सफेद केकड़े का मास वायु और पित्त का नाश करनेवाला और रुचिकारक तथा काले केकडे का मास बलकारक, गरम और वातनाशक माना गया है।

मुहा०—केकड़े की चाल=टेढ़ी तिरछी चाल।

केकय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम।

विशेष—रामायण के अनुसार यह देश व्यास और शाल्मली नदी की दूसरी ओर था और उस समय वहाँ की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी। अब यह देश कश्मीर राज्य के अतर्गत है और कक्का कहलाता है। यहाँ के निवासी गक्कर, गक्खर या कक्का कहलाते हैं।

२ [स्त्री० केकयी] केकय देश का राजा या निवासी। ३ दशरथ के श्वसुर और कैकेयी के पिता का नाम।

केकया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केकय देश की स्त्री। २. राजा दशरथ की रानी जिससे भरत जी उत्पन्न हुए थे। दे० 'कैकेयी'।

केकर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐंचा। भेंगा। २. तत्र में चार अक्षरों का एक मंत्र।

यौ०—केकराक्ष। केकरनेत्र। केकरलोचन=वक्र दृष्टि का। ऐंचो आँखवाला।

केकर[2]†—सर्व० [हिं० के+कर (प्रत्य०)] किसका।

केकरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केकड़ा'।

केकसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कैकसी] दे० 'कैकसी'।

केका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की बोली। मोर की कूक।

यौ०—केकारव=मोर की बोली। उ०—एक मोर गहरी खाई मे सोया तरुओ का तम। केकारव से चकित बखेरे मुग्ध स्वप्नो का सभ्रम।—ग्राम्या, पृ० १०५।

केकाण—संज्ञा पुं० [सं०] केकाण देश का घोडा। उ०—हाथी चाल्या दोडसो। अमीय सेहस चाल्या केकाण।—बी० रासो पृ० १२।

केकान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केकाण, राज० केकाँण, केकाण गुज० ककाण] केकाण देश का घोडा। उ०—दुरद अयुत रथ अयुत एक हज्जार केकान।—पृ० रा० २। २१७।

केकावल—संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर [को०]।

केकिंधा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० किष्किन्धा] दे० 'किष्किंधा'। उ०—बालअजो ध्याकाड विध सुणिया सूक्षम माड। कहे मंछ जिमिही कहूँ, केकिंधा हिव काड।—रघु० रू०, पृ० १४४।

केकिक—संज्ञा पुं० [सं० केकिकस] मयूर। मोर [को०]।

केकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मयूरी। उ०—जो छा जाती गगन तल के अंक में मेघ माला। जो केको ही नर्तित करता केकिनी साथ क्रीड़ा।—प्रिय०, पृ० २६३।

केकि,(पु)केकी—संज्ञा पुं० [सं० केकिन्] मोर। मयूर। उ०—(क) केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तडित विनिंदक बसन सुरगा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोकिल केकी कपोतन के कुल केलि करैं अति आनँद वारी।—मतिराम (शब्द०)।

केचित्—सर्व० [सं०] कोई। कोई कोई।

केचुर्आ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं०कञ्चुक=चोली] दे० 'कचुकी' उ०—झिलमिल कंचुर्आ उनत थन हार।—विद्यापति, पृ० १३१।

केछुवारी—वि० [सं० कच्छ+हिं०वारी] कच्छ की। कच्छवाली। उ०—कहुँ केछुवारी सुपारी नियारी।—प० रासो, पृ० ५५।

केजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केना'।

केडवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० केन=साग भाजी+वारी] वह भाग

पीछे ये द्वारका चले गए और वहाँ इन्होंने यादवों का राज्य स्थापित किया। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पांडवों को बहुत सहायता दी थी। इनकी मृत्यु एक बहेलिए का तीर लगने से हुई थी। ये विष्णु के दस अवतारों में से आठवें अवतार माने जाते हैं।

२ एक असुर जिसका जिक्र वेदों में आया है और जिसे इंद्र ने मारा था। ३ एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई मंत्रों का प्रकाश किया था। ४ अथर्ववेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। ५ छप्पय छंद का एक भेद, जिसमें २२ गुरु और १०८ लघु, कुल १३० वर्ण या १५२ मात्राएँ, अथवा २२ गुरु १०४ लघु, कुल १२६ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं। ६ चार अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक 'तगण' और एक लघु होता है। जैसे—तू ला मन। गोपीधन। तृष्णं तज। कृष्णं भज। ७ वेदव्यास। ८ अर्जुन। ९. कोयल। १०. कौवा। ११ कदम का पेड़। १२ मास का वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो। अँधेरा पक्ष। १३ कलियुग। १४ शाल्मलि द्वीप के निवासी शूद्र। १५ करौंदा। १६. नील। १७ पीपल। १८ जैनियों के मतानुसार नौ काले वसुदेवों में से एक। १९ बौद्धों के मतानुसार एक राक्षस जो बुद्ध का शत्रु माना जाता है। २० चंद्रमा का धब्बा। २१ लोहा। २२ सुरमा।

कृष्णकंचुक—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णकञ्चुक] काला चना [को०]।

कृष्णकंद—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णकन्द] रक्त कमल। लाल रंग का कमल [को०]।

कृष्णक—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण वर्ण के मृग का चर्म [को०]।

कृष्णकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा आदि पापपूर्ण कर्म। २ वह कर्म जो बिना फल की कामना के किया जाय। ३ फोड़े की चिकित्सा की एक प्रक्रिया।

कृष्णकर्मा—वि० [सं० कृष्णकर्मन्] दुष्कर्म करनेवाला। अपराधी। पापी [को०]।

कृष्णकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ महिष। भैंसा। २ कोई भी वस्तु या प्राणी जो काले रंग का हो।

कृष्णकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णागुरु। काला चंदन या अगर [को०]।

कृष्णकेलि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुल अब्बास। गुलाबाँस का फूल। २ गुलाबाँस का पेड़।

कृष्णकेलि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण की क्रीड़ा। कृष्णलीला। उ०—कृष्णकेलि कौतिग कहौं ताकी कथा बनाय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १।

कृष्णकोहल—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी [को०]।

कृष्णगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णगङ्गा] कृष्णा नदी। कृष्ण वेणी।

कृष्णगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णगन्धा] सहिजन। शोभांजन।

कृष्णगति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

कृष्णगर्भ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल।

कृष्णगर्भ[2]—संज्ञा स्त्री० कृष्ण नामक असुर की भार्या।

कृष्णगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि पर्वत [को०]।

कृष्णगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीला कीड़ा। विषकीट [को०]।

कृष्णग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ। शिव [को०]।

कृष्णचंचुक—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णचञ्चुक] नीले रंग की मटर। काली केराव [को०]।

कृष्णचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णचन्द्र] दे० 'कृष्ण'।

कृष्णचूड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुंजा। घुँघची। २ एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जिसके फूल पीले या लाल होते हैं और जिनमें हलकी सुगंध होती है। यह साधारणतः सब ऋतुओं में और विशेषतः बरसात में फूलता और फलता है।

कृष्णचूड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं] दे० 'कृष्णचूड़ा' [को०]।

कृष्णचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का चूरा। लोहमल [को०]।

कृष्णचैतन्य—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + चैतन्य] दे० 'चैतन्य'।

कृष्णच्छवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काले हिरन का चमड़ा। २. काला बादल।

कृष्णजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

कृष्णजीरक—संज्ञा पुं० [सं०] काला जीरा।

कृष्णताम्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन [को०]।

कृष्णतार—संज्ञा पुं० [सं०] १. काले मृग का एक भेद या जाति। २. मृग या हरिण [को०]।

कृष्णदेह—संज्ञा पुं० [सं०] काले रंग की बड़ी मधुमक्खी या भ्रमर [को०]।

कृष्णद्वैपायन—संज्ञा पुं० [सं०] पराशर के पुत्र वेदव्यास। पाराशर्य।

कृष्णधन—संज्ञा पुं० [सं०] अनैतिक उपाय से अर्जित धन [को०]।

कृष्णपक्ष—संज्ञा पुं० [सं] १. वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो। अँधियारा पक्ष। २ अर्जुन का एक नाम [को०]।

कृष्णपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काले पत्ते की तुलसी। कृष्णा।

कृष्णपवि—संज्ञा पुं० [सं] अग्नि [को०]।

कृष्णपही—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गानेवाली चिड़िया।

विशेष—लंबाई में यह एक बालिश्त होती है। यह कश्मीर से भूटान तक पाई जाती है और जाड़ों में नीचे उतर आती है। यह वृक्षों की जड़ में घोंसला बनाती है और एक बार में चार अंडे देती है।

कृष्णपाक—संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

कृष्णपिंगला—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णपिङ्गला] दुर्गा [को०]।

कृष्णपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] रोहू मछली।

कृष्णपुष्प—संज्ञा पुं० [सं] काला धतूरा।

कृष्णफल—संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

कृष्णफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मिर्च की लता। २. एक प्रकार का छोटा जामुन।

कृष्णबीज—स्त्री० पुं० [सं०] तरबूज।

कृष्णभुजंग—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णभुजङ्ग] करैत साँप। काला सर्प।

कृष्णभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ की मिट्टी काली हो।

कृष्णभेदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कृष्णमंडल—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णमण्डल] आँख की पुतली।

कृष्णमणि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलम ।

कृष्णमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णपर्णी । काली पत्तियोंवाली तुलसी ।

कृष्णमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ लंगूर । २. एक दानव का नाम ।

कृष्णमृग—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार मृग । काला हिरन [को०] ।

कृष्णयजुष—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद के दो भेदों में से एक । इसमें ८६ शाखाएँ हैं, जिनमें तैत्तिरीय और आपस्तंब आदि शाखाएँ प्रधान हैं । वि० दे० 'यजुर्वेद' ।

कृष्णयाम—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कृष्णरक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा सुर्ख रंग । लाल टेस रंग [को०] ।

कृष्णरक्त[2]—वि० गहरे लाल रंगवाला [को०] ।

कृष्णराज—संज्ञा पुं० [सं०] भुजंगा पक्षी ।

कृष्णरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका नाम की लता [को०] ।

कृष्णल—संज्ञा पुं० [सं०] १ घुँघुची । गुंजा । २ गुंजा का पौधा [को०] ।

कृष्णला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुँघची । २. शीशम का वृक्ष । ३. रत्ती (परिमाण) ।

कृष्णलोह--संज्ञा पुं० [सं०] चुंबक पत्थर [को०] ।

कृष्णवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका [को०] ।

कृष्णवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णानदी । दे० 'कृष्णा' ३ ।

कृष्णसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

कृष्णसखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्रौपदी । २ जीरा ।

कृष्णसार—संज्ञा पुं० [सं०] १ काला मृग । काला हिरन । करसायल । २. सेंहुड़ । ३. शीशम का वृक्ष । ४ खैर का वृक्ष ।

कृष्णसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

कृष्णस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णस्कन्ध] सुरती का पेड़ ।

कृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रौपदी । २. पीपल । पिप्पली ३ दक्षिण देश की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकलकर (मछलीपट्टम में) बंगाल की खाड़ी में गिरती है । कृष्णगंगा । कृष्णवेणी । ४ कच्चे नील की बट्टी । नीलबरी । ५ काली दाख । ६. काला जीरा । ७ अगर । ऊद (लकड़ी) । ८ काली (देवी) । ९ एक प्रकार की जहरीली जोंक । १० पपरी नाम का गंधद्रव्य । ११. कुटकी । १२. राई १३ अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । १४. एक योगिनी । १५ काले पत्ते की तुलसी । १६. आँख की पुतली ।

कृष्णागरु—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णागुरु] काला अगर । काले रंग का अगर । उ०—ऊपर तें कृष्णागरु भरि भरि डारति कनक कमोरी ।—छीत०, पृ० २२ ।

कृष्णागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] काला अगर । काला चंदन [को०] ।

यौ०—कृष्णागुरुवर्तिका = काले अगर की बत्ती । उ०—कृष्णागुरुवर्तिका जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में ।—लहर, पृ० ८२ ।

कृष्णाचल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रैवतक पर्वत । (प्राचीन द्वारका इसी पर्वत पर थी ।) २. नीलगिरि पर्वत ।

कृष्णाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ काले मृग का चमड़ा । मृगचर्म । २ एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

कृष्णाध्वा— संज्ञा पुं० [सं० कृष्णाध्वन्] अग्नि । आग [को०] ।

कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अभिसारिका नायिका जो अँधेरी रात में अपने प्रेमी के पास संकेतस्थान में जाय ।

कृष्णायस—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा । काला लोह [को०] ।

कृष्णार्चि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कृष्णार्जक—संज्ञा पुं० [सं०] वनतुलसी । बर्बरी [को०] ।

कृष्णार्पण—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण के निमित्त अर्पण करना या देना ।

कृष्णार्पन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णार्पण] कृष्ण के निमित्त प्रदान करना या देना । उ०—या प्रकार निष्काम भाव सों कृष्णार्पन किए कर्म ब्रह्मरूप होई, भक्ति को उत्पन्न करत हैं ।—दो सौ बावन० भा० १, पृ० ८४ ।

कृष्णावास—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ । पीपल का वृक्ष [को०] ।

कृष्णाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों कृष्ण पक्ष की अष्टमी, जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था ।

कृष्णिका— संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राई । २ श्यामा पक्षी ।

कृष्णिमा—संज्ञा स्त्री० [कृष्णिमन्] कालापन । कालिमा [को०] ।

कृष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकारमयी रात्रि । अँधियारी रात [को०] ।

कृष्णोदर— संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

कृष्णोदुंबरक—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + उदुम्बरक] एक प्रकार का गूलर । कठगूलर [को०] ।

कृष्न(पु)--संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०--अंग अंग सुभग अति, चलति गजराज गति, कृष्न सौं एक मति जमुन जाहीं ।--सूर०, १० । १७५१ ।

कृष्य—वि० [सं०] कर्षण या खेती के योग्य (भूमि) ।

कृस(पु)—वि० [सं० कृश] दे० 'कृश' ।

कृसर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृशर' [को०] ।

कृसानु--संज्ञा पुं० [सं० कृशानु] दे० 'कृशानु' । उ०—नाहिन या मृग मृदुल तन लगन जोग यह बान । ज्यों फूलन की रासि में उचित न धरन कृसान ।—'शकुंतला' पृ० ९ ।

कृसोदरी(पु)--वि० [सं० कृशोदरी] दे० 'कृशोदरी' ।

कृस्न(पु)— संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] वसुदेव देवकी के पुत्र । कृष्ण ।

कृस्नला(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णला] घुँघची । गुंजा । उ०—काकचंचुका कृस्नला गुंजा करति प्रनाम । —अनेकार्थ, पृ० २८ ।

कृस्ना(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णा] पिप्पली । उ०--काना कृस्ना मागधी तिक्ततंडुला होइ ।—अनेकार्थ०, पृ० ५८ ।

कें कें--संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का कष्टसूचक शब्द । २. झगड़ा या असंतोषसूचक शब्द ।

क्रि० प्र०—करना । मचाना ।

केंचुआ--संज्ञा पुं० [सं० किञ्चिलिक, प्रा० केंचुओ] १ एक बरसाती कीड़ा ।

विशेष—इसके अनेक प्रकार होते हैं । यह एक बालिश्त भर या इससे अधिक लंबा होता है । इसके शरीर में हड्डी नहीं होती ।

कृपाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी तलवार। २. कैंची। कतरनी (को०)। ३. कटारी या बर्छी (को०)।

कृपान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] तलवार। छुरी। कटारी। उ०—रिष्ट कुसेय कृपान असि मण्डलाग्र करवाल।—अनेकार्थ०, पृ० २६।

कृपापात्र—संज्ञा पुं० [सं० कृपा+पात्र] वह व्यक्ति जिसपर कृपा हो। कृपा का अधिकारी। जैसे—आप उनके बड़े कृपापात्र हैं।

कृपायतन—संज्ञा पुं० [सं०] कृपा के भवन। कृपा के आधार। अत्यंत कृपालु। उ०—तो मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ।—मानस, १।६१।

कृपाल(पु)†—वि० [सं० कृपालु] दे० 'कृपालु'। उ०—सत्यसंद सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञ पूरन कृपाल।—घनानंद, पृ० ५०५।

कृपालता(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपालुता] दे० 'कृपालुता'।

कृपालु—वि० [सं०] कृपा करनेवाला। दयालु। उ०—सबन जिआवै सगुन सुभ सुमिरहु राम कृपालु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६०।

कृपालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दया का भाव। मेहरबानी।

कृपासिंधु—वि० [सं० कृपासिन्धु] दयानिधि। अकारण कृपा करनेवाला (परमात्मा)। उ०—बरदायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मनरंजन।—मानस, १।७०।

कृपिण(पु)†—वि० [सं० कृपण] दे० 'कृपण'।

कृपिणता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपणता] दे० 'कृपणता'।

कृपिन(पु)†—वि० [सं० कृपण, हिं० कृपिण] दे० 'कृपण'। उ०—कहा कृपिन की माया गनियै करत फिरत अपनी अपनी।—सूर०, १।३६।

कृपिनता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपणता, हिं० कृपिणता] दे० 'कृपणता'।

कृपिनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कृपिन+आई (प्रत्य०)] दे० 'कृपनाई'।

कृपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपाचार्य की बहन जो द्रोणाचार्य को व्याही थी और अश्वत्थामा की माता थी।

यौ०—कृपीपति=द्रोणाचार्य। कृपीसुत=अश्वत्थामा।

कृपीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगल की लकड़ी। २. जलाने की लकड़ी। ईंधन। ३. जल। ४. कुक्षि। उदर। पेट (को०)।

यौ०—कृपीटपाल=(१) पतवार। (२) समुद्र। (३) वायु। कृपीटयोनि=अग्नि।

कृवाल—संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] करवाल। तलवार। उ०—ठनकन मूठिनु लागि कृवाल। ठनकत ढाय परे छुटि नाल।—सुजान०, पृ० ३४।

कृमि—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कृमिल] १. क्षुद्र कीट। छोटा कीड़ा। २. हिरमिजी कीड़ा या मिट्टी। किरमिजी। ३. लाह। ४. गदहा (को०)। ५. मकड़ा (को०)।

यौ०—कृमिकोश=कुसवारी।

कृमिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० कृमिकण्टक] १. वायविडंग। बाभीरंग। विडंग। २. चित्राग। ३. गूलर। उदुंबर (को०)।

कृमिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा कीड़ा [को०]।

कृमिकर—संज्ञा पुं० [सं०] एक जहरीला कीड़ा [को०]।

कृमिकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कान की जूँ या कीड़ा। कान का एक रोग [को०]।

कृमिकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिकर्ण' [को०]।

कृमिकोश—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम के कीड़े का घर। कोया। ककून। कुसवारी।

कृमिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिकोश'।

कृमिघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] कान के रोग की औषधि के रूप में काम में आनेवाला पौधा। कुरंगी [को०]।

कृमिघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी। हरिद्रा [को०]।

कृमिज¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कृमिजा] कीड़ों से उत्पन्न।

कृमिज²—संज्ञा पुं० [सं०] १. रेशम। २. अगर। ३. किरमिजी। हिरमिजी।

कृमिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीड़े से उत्पन्न लाल रंग। लाख [को०]।

कृमिण—वि० [सं०] दे० 'कृमिल' [को०]।

कृमिदंतक—संज्ञा पुं० [सं० कृमिदन्तक] दाँत को कीड़ा। दाँतों में होनेवाला रोग [को०]।

कृमिपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिशैल' [को०]।

कृमिफल—संज्ञा पुं० [सं०] उदुंबर वृक्ष। गूलर [को०]।

कृमिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

कृमिरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग का पौधा जो कृमिनाशक है [को०]।

कृमिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] आमाशय और पक्वाशय में केंचुए या कीड़े उत्पन्न होने का रोग।

कृमिल—वि० [सं०] जिसमें कीड़े पड़ गए हों।

कृमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बहुत लड़के पैदा होते हों। बहुप्रजा स्त्री।

कृमिलाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार आजमीढ़ वंश का एक राजा।

कृमिवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लाल वस्त्र [को०]।

कृमिशंख—संज्ञा पुं० [सं० कृमिशङ्ख] शंख के भीतर रहनेवाला मत्स्य [को०]।

कृमिशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृमिरिपु' [को०]।

कृमिशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीप का कीट। २. दोहरी पीठवाला घोंघा। ३. सीप [को०]।

कृमिशैल—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बिमौट। बाँबी। बामी।

कृमीलक—संज्ञा पुं० [सं०] वन्य मुद्ग। जंगली मूँग [को०]।

कृश—वि० [सं०] १. दुबला पतला। क्षीण। २. गरीब। नगण्य (को०)। ३. अल्प। छोटा। सूक्ष्म।

यौ०—कृशकूट=एक प्रकार का पक्षी। कृशनास। कृशभृत्य। कृशोदरी।

कृशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुबलापन। दुर्बलता। क्षीणता। पतलापन। २ अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।

कृशताई(पु)-संज्ञा स्त्री० [सं० कृशता+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृशता'।

कृशत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षीणता। दुबलापन। २. अल्पता। सूक्ष्मता। कमी।

कृशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुक्ता। मोती। २. सोना। हिरण्य। ३ आकार। आकृति। गठन (को०)।

कृशनास—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

कृशभृत्य—वि० [सं०] भृत्य या नौकरों को कम खाना देनेवाला।

कृशर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कृशरा] १ तिल और चावल की खिचड़ी। २. खिचड़ी। ३ लोबिया मटर। केसारी। दुविया।

कृशरान्न—संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

कृशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर के केश। शिरोरुह (को०)।

कृशाग[1]—संज्ञा पुं० [सं० कृशाङ्ग] शिव (को०)।

कृशाग[2]—वि० [सं० कृशाङ्ग] दुबला पतला। क्षीणकाय (को०)।

कृशागी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृशाङ्गी] १. दुबले पतले शरीर की युवती। तन्वंगी। २. प्रियगु लता (को०)।

कृशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ऊर्णनाभ। अष्टपद। मकड़ा (को०)।

कृशातिथि—वि० [सं०] १. अतिथियों को कम भोजन देनेवाला। २ कृपणता के कारण जिसके घर अतिथि कम आते हों (को०)।

कृशानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २ चित्रक। चीता।

यौ०—कृशानुयत्र। कृशानुरेता।

कृशानुयत्र—संज्ञा पुं० [सं० कृशानुयन्त्र] अग्नि यंत्र।

कृशानुरेता—संज्ञा पुं० [सं० कृशानुरेतस्] शिव। महादेव।

कृशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ भागवत के अनुसार तृणविंदु वंश का एक राजर्षि जो संयम का पुत्र और महादेव का बड़ा भाई था। २. दक्ष के एक जामाता।

विशेष—भागवत के अनुसार इन्होंने दक्ष की अर्चि और धीषणा नाम की कन्याओं से विवाह किया था। अर्चि के गर्भ से धूमकेश और धीषणा के गर्भ से देवल नामक पुत्र हुए थे। रामायण के मत से कृशाश्व ने दक्ष की जया और सुप्रभा नाम की कन्याओं को ब्याहा था, जिनसे पचास पचास शस्त्रस्वरूप पुत्र हुए थे।

३. हरिवंश के अनुसार धुंधुमारवंशी एक राजा, जो नाट्यशास्त्र के एक आचार्य माने जाते हैं।

कृशाश्वी—संज्ञा पुं० [सं० कृशाश्विन्] १. कृशाश्वकृत नाट्यशास्त्र का पढ़नेवाला या पढ़ानेवाला। २. नाट्यकला में कुशल व्यक्ति। नट।

कृशित—वि० [सं०] दुबला पतला। दुर्बल। क्षीणकाय।

कृशोदर—वि० [सं०] जिसका पेट बड़ा न हो। कृश उदरवाला (को०)।

कृशोदरी[1]—वि० स्त्री० [सं०] पतली कमरवाली (स्त्री)।

कृशोदरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल।

कृषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसान। खेतिहर। काश्तकार। २. हल का फाल। ३. बैल (को०)।

कृषाण—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर। काश्तकार।

कृषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृष्य] १. खेती। काश्त। किसानी। २ हल चलाना। जोतना बोना (को०)। ३. पृथिवी। जमीन। धरती (को०)।

कृषिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ खेतिहर। किसान। २ हल का फाल।

कृषिकर्म—संज्ञा पुं० [कृषिकर्मन्] खेती का काम। किसानी (को०)।

कृषिकार—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर।

कृषिजीवी—वि० [सं० कृषिजीविन्] खेती के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला (किसान) (को०)।

कृषी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'।

कृषी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्षण भूमि। खेत (को०)।

कृषीवल—संज्ञा पुं० [सं०] किसान। खेतिहर। कृषिकार (को०)।

कृष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव (को०)।

कृष्ट—वि० [सं०] १ जोता हुआ। हल चलाया हुआ। उ०—उसे उचित है कि कृष्ट भूमि पर न रहे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १३३। २. खींचा हुआ। घसीटा हुआ।

कृष्टपच्य—वि० [सं०] खेत में बोने से पैदा होनेवाला। खेत में पकने या तैयार होनेवाला। उ०—अन्न दो प्रकार के होते थे, कृष्टपच्य तथा अकृष्टपच्य।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

कृष्टपाक्य—वि० [सं०] दे० 'कृष्टपच्य' (को०)।

कृष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] खेत में पैदा होनेवाली फसल (को०)।

कृष्टि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान् पुरुष (को०)।

कृष्टि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खींचना। आकृष्ट करना। २. खेत जोतना। खेत कमाना (को०)।

कृष्टोप्त—वि० [सं०] (खेत) जोता बोया हुआ हो (को०)।

कृष्ण[1]—वि० [सं०] १ श्याम। काला। सियाह। २. नीला या आसमानी ३. दुष्ट। अनिष्टकर (को०)।

कृष्ण[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० कृष्णा] १ विष्णु के दस अवतारों में आठवाँ अवतार। यदुवंशी वसुदेव के पुत्र, जो भोजवंशी देवक की कन्या देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—उस समय देवक के भाई राजा उग्रसेन का पुत्र कंस अपने पिता को कैद करके मथुरा का राज्य करता था। देवकी के विवाह के समय कंस को किसी प्रकार यह बात मालूम हो गई थी कि देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा, वह मुझको मार डालेगा। इसलिये कंस ने देवकी और वसुदेव को अपने यहाँ कैद कर लिया था। देवकी के सात बालकों को तो कंस ने जन्म लेते ही मार डाला था, पर आठवें बालक कृष्ण को, जिनका जन्म भादों की कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय हुआ था, वसुदेव जी गोकुल में जाकर नंद के घर रख आए थे। बड़े होने पर कृष्ण ने अनेक अद्भुत कार्य किए थे, जिनके कारण चकित होकर कंस ने उन्हें मरवा डालने के अनेक उपाय किए, पर सब व्यर्थ हुए। अंत में कृष्ण ने कंस को मार डाला। इन्होंने विदर्भ के राजा की कन्या रुक्मिणी से विवाह किया था।

कृताह्वान—वि० [सं० कृत+आह्वान] जिसे पुकारा वा ललकारा गया हो [को०]।

कृति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. करतूत। करनी। २. कार्य। काम। ३ आघात। क्षति। ४ इंद्रजाल। जादू। ५ गणित में दो समान अंकों का घात। वर्गसंख्या। ६ डाकिनी। ७ अनुष्टुप जाति का एक छंद, जिसमें बीस बीस अक्षरों के चार चरण होते हैं। जैसे—रोज रोज राज गैल तें गुपाल ग्वाल तीन सात। वायु सेवनार्थ प्रति बाग जात आव लै सुफूल पात। लाय कै घरें सबै सुफल पात मोदयुक्त मातु हात। धन्य मान मातु बाल वृत्त देखि हर्ष रोम रोम गात।—(शब्द०)। ८. बीस की संख्या। ९ कटारी। १० रचना (को०)। ११ चाकू। छुरी (को०)। १२ मारण। वध। हनन (को०)।

कृति²—संज्ञा पुं० विष्णु।

कृतिकर संज्ञा पुं० [सं०] १ (बीस हाथवाला) रावण। २ जादूगर (को०)।

कृतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कृत्तिका] दे० 'कृत्तिका'।

कृतिकार—संज्ञा पुं० [सं० कृति=रचना+कार=कर्ता] गद्य पद्य आदि में रचना करनेवाला व्यक्ति। रचनाकार। काव्यस्रष्टा। उ०—कृति का रूप कृतिकार के सामने पहले से ही उपस्थित नहीं होता।—पा० सा० सि०, पृ० १।

कृती¹—वि० [सं० कृतिन्] १ कुशल। निपुण। दक्ष। उ०—कितने कृती हुए, पर किसने इतना गौरव पाया है?—साकेत, पृ० ३७२। २ साधु। ३ पुण्यात्मा। ४ कृतकार्य। सफल (को०)। ५ सौभाग्यशाली। भाग्यवान् (को०)। ६ अनुवर्ती। आज्ञाकारी (को०)।

कृती²—संज्ञा पुं० च्यवन ऋषि के पुत्र और उपरिचर वसु के पिता का नाम।

कृतु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रतु] दे० 'क्रतु'। उ०—लागति है जाइ कठ नाग दिगपालन के, मेरे जान सोई कृतु कीरति तिहारी को।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५३।

कृतोत्साह—वि० [सं०] १ उत्साहयुक्त। २ परिश्रमी। उद्योगी [को०]।

कृतोदक—वि० [सं०] नहाया हुआ। स्नात [को०]।

कृतोद्वाह—वि० [सं०] जिसका विवाह हो चुका हो। विवाहित [को०]।

कृत्त—वि० [सं०] १ छिन्न। विभक्त। कटा हुआ। २ इच्छित। आकांक्षित [को०]।

कृत्तम(पु)†—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम'। उ०—ना मैं कृत्तम कर्म बखानों। नां रसूल का कलमा जानों।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०३।

कृत्ति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृगचर्म। २ चमड़ा। खाल। ३ भोजपत्र। ४ कृत्तिका नक्षत्र। ५ भूर्ज वृक्ष (को०)। ६ गृह। मकान (को०)।

कृत्ति²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृत्य] दे० 'कृत्य'। उ०—तदपि केई तजि तजि सब कृत्ति। निर्मल करत चित्त की वृत्ति।—नंद० ग्रं०, पृ० २६९।

कृत्तिकांजि—संज्ञा पुं० [सं० कृत्तिकाञ्जि] वह शकटाकार तिलक जो अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को लगाया जाता था।

कृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्ताईस नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र।
विशेष—इस नक्षत्र में छह तारे हैं, जिनका संयुक्त आकार अग्निशिखा के समान होता है। यह चंद्रमा की पत्नी और कार्तिकेय का पालन करनेवाली मानी जाती है और इसकी अधिष्ठात्री 'अग्नि' है।
यौ०—कृत्तिकातनय। कृत्तिकापुत्र। कृत्तिकासुत=कार्तिकेय।
२ छकड़ा। बैलगाड़ी।

कृत्तिवास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृत्तिवासा'।

कृत्तिवासा—संज्ञा पुं० [सं० कृत्तिवासस्] शिव। महादेव।
विशेष—महादेव जी ने गजासुर को मारकर उसकी खाल ओढ़ ली थी, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

कृत्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तव्य कर्म। वेदविहित आवश्यक कार्य।
विशेष—बौद्धों के मत से ज्ञानानुसार कृत्य चौदह प्रकार के होते हैं। यथा—(१) प्रतिसंधि (२) भवांग, (३) आवर्जन, (४) दर्शन, (५) श्रवण, (६) घ्राण, (७) स्वदन, (८) स्पर्श, (९) संप्रतिच्छन, (१०) संतीर्ण, (११) उत्थान, (१२) जवन, (१३) तदालंबन और (१४) च्युति। इसके अतिरिक्त कालानुसार उन्होंने इसके पाँच और भेद किए हैं—(१) पूर्वभावन कृत्य, (२) पश्चातभावन कृत्य, (३) प्रथमयाम कृत्य, (४) मध्यमयाम कृत्य और (५) पश्चिमयाम कृत्य। जैनियों के अनुसार कृत्य छह प्रकार के होते हैं—(१) दिनकृत्य (२) रात्रिकृत्य, (३) पर्वकृत्य, (४) चातुर्मास्य कृत्य, (५) संवत्सर कृत्य और (६) जन्मकृत्य।
२. भूत, प्रेत यक्षादि जिनका पूजन अभिचार के लिये होता है। ३. कार्य। व्यवसाय। कर्म (को०)। ४ प्रयोजन। लक्ष्य। उद्देश्य। कारण (को०)। ५ कर्मवाच्य कृदंत के चार प्रत्यय अनीय, एलिम, तव्य और य (को०)।

कृत्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह स्त्री जो हत्या आदि बड़े बड़े भयंकर कार्य कर सकती हो। २ चुड़ैल। डाकिनी (को०)।

कृत्यकृत्य(पु)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य'। उ०—तदपि तनक अभिमान के साथ। हम सब कृत्यकृत्य भए नाथ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७२।

कृत्यम(पु)†—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] दे० 'कृत्रिम'। उ०—कृत्यम घट कला नाहीं, सकल रहित सोई। दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई।—दादू०, पृ० ५१०।

कृत्यवाह—संज्ञा पुं० [सं०] करणीय कार्य को संपन्न करनेवाला [को०]।

कृत्यविद्—वि० [सं०] कर्तव्य कर्म जाननेवाला। कर्तव्य में चतुर। कुशल। निपुण।

कृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तंत्र के अनुसार एक राक्षसी, जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को विनष्ट करने के लिये भेजते हैं। यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदों तक में आया है। २ अभिचार। ३ काम। कर्म (को०)। ४. जादू (को०)। ५. दुष्टा या कर्कशा स्त्री।
यौ०—कृत्यादूषण।

कृत्याकृत्य—वि० [सं०] करने और न करने योग्य काम। भला और बुरा काम।

कृत्यादूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का कृत्य जो कृत्या के प्रतिकार के लिये किया जाता है। २ एक प्रकार की ओषधि जिससे कृत्या के दोष का निवारण होता है। ३. अंगिरस वंश के एक ऋषि, जो कृत्या के दोष का निवारण किया करते थे।

कृत्वार(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृत्या] क्रिया। उ०—हम कहै नृप राज विचार जो पुच्छौ कारन कृत्वार।—पृ० रा०, २५। १६५।

कृत्रिम[1]—वि० [सं०] १ जो असली न हो। नकली। बनावटी। जाली। २ बारह प्रकार के पुत्रों में से एक।

विशेष—पुत्राभिलाषी पुरुष, यदि किसी माता-पिता हीन बालक को धन संपत्ति का लोभ दिखाकर उससे अपना पुत्र बनना स्वीकार कराके उसे पुत्रवत् अपने संग रखे तो वह बालक उस पुरुष का कृत्रिम पुत्र कहलाएगा।

कृत्रिम[2]—संज्ञा पुं० १ काच लवण। कचिया नोन। २. जवादि गंधद्रव्य। ३ रसौत। रसांजन।

कृत्रिम अरिप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो किसी दूसरे को विजेता के विरुद्ध भड़काता हो।

कृत्रिमधूप—संज्ञा पुं० [सं०] दशांगादि धूप जो अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों को मिलाकर बनाया जाता है।

कृत्रिमपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो माता पिता की सहमति के बिना गोद लिया गया हो [को०]।

कृत्रिमभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चबूतरा जो किसी मकान या इमारत के नीचे उसे सील आदि से बचाने के लिये बनाया जाता है। कुर्सी।

कृत्रिमपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] गुड्डा। गुड्डा [को०]।

कृत्रिम मित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसके साथ किसी उपकार आदि के कारण मित्रता स्थापित हो। शास्त्रों में ऐसा मित्र और प्रकार के मित्रों से श्रेष्ठ माना गया है।

कृत्रिम मित्रप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो धन तथा जीवन के हेतु मित्र बन गया हो।

कृत्रिमवन—संज्ञा पुं० [सं०] उपवन। उद्यान। बगीचा [को०]।

कृत्रिमाराति प्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृत्रिम अरिप्रकृति'।

कृत्स—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल। २ भीड़। समूह। ३ कलुष। पाप। अघ [को०]।

कृत्स्न[1]—वि० [सं०] संपूर्ण। सब। पूरा [को०]।

कृत्स्न[2]—संज्ञा पुं० १. जल। २. उदर। कुक्षि [को०]।

कृदंत—संज्ञा पुं० [सं० कृदन्त] वह शब्द जो धातु में कृत् प्रत्यय लगाने से बने। जैसे,—पाचक, नंदन, भुक्त, भोक्तव्य, भोक्ता आदि।

कृप—संज्ञा पुं० [सं०] १ वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम। २. दे० कृपाचार्य।

कृपण[1]—वि० [सं०] [संज्ञा कृपणता] १ कंजूस। सूम। अनुदार। कदर्य। २ क्षुद्र। नीच। ३ विवेकरहित (को०)। ४ गरीब। दयनीय। अभागा (को०)।

कृपण[2] संज्ञा पुं० १ अनुदार या सूम व्यक्ति। २. एक प्रकार का कीट। ३. बुरी हालत। दुर्दशा [को०]।

कृपणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कंजूसी। २. दीनता। दैन्य (को०)।

कृपणधी—वि० [सं०] क्षुद्रबुद्धि।

कृपणी—वि० [सं० कृपणिन्] दुःखी। विपन्न। दयनीय [को०]।

कृपन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृपण] दे० 'कृपण'। उ०—मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहु कृपन धन रासि गँवाई।—मानस, २। १४४।

कृपनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपण + हिं० आई (प्रत्य०)] कृपणता। कंजूसी। उ०—दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई।—मानस, २। ३५।

कृपनु(पु)—वि० [हिं०] दे० 'कृपण'। उ०—कृपनु देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ।—तुलसी ग्रं० पृ० ९६।

कृपया—क्रि० वि० [सं०] कृपापूर्वक। अनुग्रहपूर्वक। जैसे—कृपया हमारा यह काम कर दीजिए।

कृपाँन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] दे० 'कृपाण'। उ०—बाँत कृपाँन विधांन अखिल भूपति मन मोहै।—ह० रासो, पृ० १३।

कृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृपालु] १ बिना किसी प्रतिकार की आशा के दूसरे की भलाई करने की इच्छा या वृत्ति। अनुग्रह। दया। मेहरबानी।

यौ०—कृपादृष्टि = दया की दृष्टि। कृपानिकेत = दे० 'कृपायतन'। कृपापात्र, कृपाभाजन = दया का पात्र। दया के योग्य। कृपायतन = दया के निवास। दयालु। कृपासिंधु = कृपा के सागर (भगवान्)।

२. क्षमा। माफी। जैसे—जो कुछ हो गया, सो हो गया, अब कृपा करो।

कृपाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम के पौत्र और शरद्वत् के पुत्र। अश्वत्थामा के मामा।

विशेष—इनकी बहन कृपा से द्रोणाचार्य का विवाह हुआ था। ये धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे। द्रोणाचार्य की भाँति इन्होंने भी कौरवों और पांडवों को अस्त्रशिक्षा दी थी। कुरुक्षेत्र के युद्ध में ये कौरवों की ओर से लड़े थे, पर युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर के यहाँ रहने लगे थे। राजा परीक्षित् को भी इन्होंने अस्त्रविद्या सिखाई थी।

कृपाण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कृपाणी] १. तलवार। २. कटार। ३. दंडक वृत्त का एक भेद।

विशेष—यह छंद ३२ वर्णों का होता है। आठ आठ वर्णों पर यति होती है। इसमें ३१ वाँ वर्ण गुरु और ३२वाँ लघु होता है। यतियों पर अनुप्रासों का मिलान और अंत में 'नकार' का होना इस छंद की जान है। उ०—चली त्रू फै विकरान, महा कालहू को काल, किये दोऊ दृग लाल, धाय रण समुहान। तहाँ लागे लहरान, निसिचरहू पराव, बहाँ कानिका रिसान, झुकि भारी किरपान।

कृपाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार। २. कटार।

कृपाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी तलवार। २. कटारी।

तत्संबंधी । उ०—फूले फाँस सकल महि छाई । जनु वरषा कृत प्रगट बुढाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यहाँ 'कृत' संबंध विभक्ति 'का' के स्थान पर आया है ।

कृत²—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगों में से पहला युग । सतयुग । २ पंद्रह प्रकार के दासों में से एक । वह दास जिसने कुछ नियत काल तक सेवा करने की प्रतिज्ञा की हो । ३ एक प्रकार का पासा, जिसमें चार चिह्न बने होते हैं । ४ चार की संख्या । ५ फल । परिणाम । ६ उद्देश्य । लक्ष्य । ७. उपकार । उ०—कृत चित्त चकोर कछूक धरो । मिय देहु बताय सहाय करो ।—राम० च०, पृ० ७६ । ८ कर्म । काम । कृत्य । उ०—रोवत समुझि कुमातु कृत, मीजि हाथ धुनि माथ ।—तुलसी ग्र०, पृ० ७४ । ९. सेवा । लाभ (को०) । १० युद्ध में प्राप्त धन या इनाम (को०) । ११. देवता या सम्मानित व्यक्ति को अर्पित वस्तु । भेंट (को०) ।

कृतक¹—वि० [सं०] १ किया हुआ । २ अनित्य । नैसर्गिक का उलटा (न्याय) । ३ कृत्रिम । फरजी । बनावटी । ४. कल्पित । दिखावटी । उ०—ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य तंत्र, शासन चालन के कृतक यान ।—युगांत, पृ० ६० ।५ दत्तक । गोद लिया हुआ (को०)

यौ०—कृतकपुत्र = दत्तक पुत्र ।

कृतक²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का नमक । विट्लवण [को०] ।

कृतकर्मा¹—वि० [सं० कृतकर्मन्] १ जो अपना काम सिद्ध कर चुका हो । सफलताप्राप्त । कामयाब । २ चतुर । प्रवीण । कुशल ।

कृतकर्मा²— संज्ञा पुं० १ तीनों ऋणों (ऋषि, देव और पितृ) से युक्त संन्यासी । २ परमेश्वर ।

कृतकाम—वि० [सं०] जिसकी कामना पूरी हो गई हो ।

कृतकारज(पु)—वि० [सं० कृतकार्य] दे० 'कृतकार्य' ।

कृतकार्य— वि० [सं०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो । सफलमनोरथ । कामयाब ।

कृतकाल—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चित समय । निर्धारित काल [को०] ।

कृतकालदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जिसने कुछ ही समय के लिये अपने को दास बनाया हो ।

कृतकृत(पु)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य' । उ०—हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दर्शन मात्र ।—नंद० ग्र०, पृ० १८६ ।

कृतकृत्य—वि० [सं०] जिसका काम पूरा हो चुका हो । कृतार्थ । सफलमनोरथ । जैसे—हम आपके दर्शन से कृतकृत्य हो गए ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः आदर, सम्मान, श्रद्धा आदि सूचित करने में होता है ।

कृतक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] क्रय करनेवाला व्यक्ति । खरीददार [को०] ।

कृतक्षण—वि० [सं०] १ निर्धारित समय की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करनेवाला । २ सुअवसर पानेवाला । सुयोगप्राप्त [को०] ।

कृतघन(पु)—वि० [सं० कृतघ्न] दे० 'कृतघ्न' । उ०—संकट परें तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं । कोटिक करें एक नहिं मानैं सूर महा कृतघन कौं ।—सूर०, १।८ ।

कृतघ्न—वि० [सं०] किए हुए उपकार को न माननेवाला । अकृतज्ञ । नमकहराम ।

कृतघ्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को न मानने का भाव । अकृतज्ञता । नमकहरामी ।

कृतघ्नताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतघ्नता + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृतघ्नता' ।

कृतघ्नी(पु)†—वि० [सं० कृतघ्न + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृतघ्न' । २ मुक्तिदाता । कर्मनाश करनेवाला । बंधन से छुड़ानेवाला । उ०—कृतघ्नी कुठारा कुकन्यादि चाहै ।—राम चं०, पृ० ८६ ।

कृतज्ञ¹—वि० [सं०] [संज्ञा कृतज्ञता] किए हुए उपकार को माननेवाला । एहसान माननेवाला । जैसे,—यह कार्य कर दीजिए, तो हम आपके बड़े कृतज्ञ होंगे ।

कृतज्ञ²—संज्ञा पुं० कुत्ता । श्वान [को०] ।

कृतज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को मानने का भाव । निहोरा मानना । एहसानमंदी ।

कृततीर्थ—वि० [सं०] १. जो तीर्थस्थानों में भ्रमण कर चुका हो । २. अध्यापन वृत्तिवाले अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करनेवाला । ३ जिसे तरकीब खूब सूझती हो । ४. पथप्रदर्शक । ५. सरल किया हुआ [को०] ।

कृतदंड—संज्ञा पुं० [सं० कृतदण्ड] यमराज । उ०—गोपन सखा भाव करि देखे, दुष्ट नृपति कृतदंड । पुत्र भाव वसुदेव देवकी, देखे नित्य अखंड ।—सूर (शब्द०) ।

कृतधी—वि० [सं०] १. दूरदर्शी । २ विद्वान् । शिक्षित । ज्ञानवान् [को०] ।

कृतनिंदक—वि० [सं० कृतनिन्दक] कृतघ्न । नाशुकरा । नमकहराम । उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ । सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ।—मानस, ७ । ४४ ।

कृतनिश्चय—वि० [सं०] जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया हो । कृतसंकल्प । दृढ़प्रतिज्ञ [को०] ।

कृतपुंख—वि० [सं० कृतपुङ्ख] बाणविद्या या धनुर्विद्या में कुशल [को०] ।

कृतपूर्व—वि० [सं०] पहले किया हुआ । पूर्वतः संपन्न [को०] ।

कृतप्रतिज्ञ—वि० [सं०] जिसने प्रतिज्ञा कर ली हो [को०] ।

कृतफल¹— संज्ञा पुं० [सं०] सफल [को०] ।

कृतफल²—संज्ञा पुं० [सं०] १ शीतल चीनी । २ कोलशिंबी । सुमरा सेम ।

कृतम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम' ।—आतम माँहै ऊपजै दादू पंगुल ज्ञान । कृतम जाइ उलंघि करि, जहाँ निरंजन थान ।—दादू०, पृ० ५ ।

कृतबुद्धि—वि० [सं०] दे० 'कृतधी' [को०] ।

कृतमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमिलतास । २ चितकबरा मृग । धब्बेदार हिरन (को०) । ३. कसौंदा का एक भेद । कासमर्द (को०) ।

कृतमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण (द्रविड) देश की एक छोटी नदी, जिसके जल के पान का माहात्म्य भागवत में लिखा है ।

कृतमुख—संज्ञा पुं० [सं०] पंडित।
कृतयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सतयुग।
कृतवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० कृतवर्मन्] १. राजा कनक का पुत्र और कृतवीर्य का भाई। २ हृदिक का पुत्र। ३ जैन मतानुसार वर्तमान अवसर्पिणी के तेरहवें अर्हत् के पिता।
कृतविदूषण संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतविदूषण सन्धि] कौटिल्य के अनुसार शत्रु के बागियों या अपने गुप्तचरों द्वारा यह सिद्ध करके कि शत्रु ने संधिभंग किया है संधिभंग करना।
कृतविद्य—वि० [सं०] जिसे विद्या का अभ्यास हो। जानकार। उ०—हुआ रूप दर्शन जब कृतविद्य तुम मिले।—अपरा, पृ० १४१।
कृतवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा कनक का पुत्र और कृतवर्मा का भाई। २ सहस्रार्जुन का पिता (को०)।
कृतवेदी—वि० [सं० कृतवेदिन] उपकार माननेवाला। कृतज्ञ।
कृतवेश—वि० [सं०] सुसज्ज। विभूषित (को०)।
कृतशुल्क—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार (माल) जिसपर चुंगी दी जा चुकी हो।
कृतशोभ—वि० [सं०] १. शानदार। २. सुंदर। ३ पटु। चतुर। दक्ष (को०)।
कृतशौच—वि० [सं०] पवित्र। शुद्ध किया हुआ। २. जिसने स्नानादि नित्यकर्म कर लिया हो (को०)।
कृतश्लेषण संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतश्लेषण सन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह पक्की संधि जो मित्रों को बीच में डालकर की जाय और जिससे युद्ध या विग्रह की संभावना न रह जाय।
कृतसंकल्प—वि० [सं० कृतसङ्कल्प] दे० 'कृतनिश्चय' (को०)।
कृतसंज्ञ—वि० [सं०] १ होश में लाया हुआ। चेतनाप्राप्त। २ उद्बोधित। जगाया हुआ। ३ पैनी बुद्धिवाला। तीक्ष्ण-बुद्धि (को०)।
कृतसापत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पति ने उसके जीवन-काल में ही दूसरा विवाह कर लिया हो।
कृतहस्त—वि० [सं०] १ किसी काम के करने में होशियार। चतुर। कुशल। २ बाण चलाने में निपुण।
कृतांक[1]—वि० [सं० कृताङ्क] १ चिह्नित। दागी। २ संख्यांकित।
कृतांक[2]—संज्ञा पुं० पासे का वह भाग जिसपर चार बिंदु हों (को०)।
कृतांजलि[1]—वि० [सं० कृताञ्जलि] हाथ जोड़े हुए। हाथ बाँधे हुए।
कृतांजलि[2]—संज्ञा स्त्री० लाजवंती। लजाधुर।
कृतांत[1]—वि० [सं० कृतान्त] १ समाप्त करनेवाला। अंत करनेवाला।
कृतांत[2]—संज्ञा पुं० १ यम। धर्मराज।

यौ०—कृतांतजनक=सूर्य। कृतांतपुर=यमलोक। कृतांतभगिनी=यमुना।

२ पूर्व जन्म में किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल। ३. सिद्धांत। ४ मृत्यु। ५ पाप। ६. शनिवार। ७. देवतामात्र। ८ भरणी नक्षत्र। ९ दो की संख्या। १० शनि ग्रह (को०)।
कृतांता—संज्ञा स्त्री० [सं० कृतान्ता] रेणुका नाम का गंध द्रव्य।

कृताकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. किया और बिना किया हुआ। २ अधूरा काम। ३. कार्य और कारण। ४ सोना और चाँदी। ५. वह हव्य द्रव्य जो कच्चा और अपक्व हो। जैसे—कच्चे चावल आदि।
कृतागम[1]—वि० [सं०] प्रवीण। समर्थ। कुशल (को०)।
कृतागम[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा। ब्रह्म (को०)।
कृतात्मा—संज्ञा पुं० [सं० कृतात्मन्] वह मनुष्य जिसकी आत्मा शुद्ध हो। महात्मा।
कृतात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य दर्शन के अनुसार भोग द्वारा कर्मों का नाश।

विशेष—सांख्य का मत है कि एक बार जो कर्म उत्पन्न होता है वह बिना भोग किए हुए नष्ट नहीं होता। यद्यपि ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्म का अंत हो जाता है और नए कर्म की उत्पत्ति नहीं होती, पर इससे पहले का किया हुआ कर्म बिना भोग किए नष्ट नहीं हो सकता। इसीलिये मुक्त पुरुष की दो अवस्थाएँ होती हैं—जीवन्मुक्ति और विदेहकैवल्य। ज्ञान उत्पन्न होने पर मनुष्य के कर्मों का अंत हो जाता है और उसे जीवन्मुक्ति मिलती है। लेकिन पूर्वसंचित या प्रारब्ध कर्म का फल भोगने के लिये या तो मुक्त पुरुष का शरीर विद्यमान रहता है और या उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ता है। इसी अवस्था में फल भोगकर कर्म की जो समाप्ति की जाती है, उसे 'कृतात्यय' कहते हैं। विदेहकैवल्य इसके बाद मिलता है।

कृतान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ पकाया हुआ अन्न। २. (भोजन के बाद) पचाया हुआ अन्न।
कृतापराध—वि० [सं०] दोषी। अपराधी। मुजरिम (को०)।
कृताभिषेक—वि० [सं०] (राजा) जिसका अभिषेक हो चुका हो (को०)।
कृतायास—वि० [सं० कृत+आयास] १ परिश्रम करनेवाला। २. कष्ट उठानेवाला (को०)।
कृतारथ—संज्ञा पुं० [सं० कृतार्थ] दे० 'कृतार्थ'। उ०—(क) माइ है जनम कृतारथ भेला।—विद्यापति, पृ० १९२। (ख) हमहिं कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु।—मानस, २।२४९।
कृतार्घ—संज्ञा पुं० [सं०] गत अवसर्पिणी के १९ वें अर्हत् का नाम।
कृतार्थ—वि० [सं०] १ जिसका अभिप्राय पूरा हो चुका हो। जो अपने सब काम कर चुका हो। कृतकृत्य। सफल मनोरथ। २ संतुष्ट। ३ कुशल। निपुण। होशियार। ४. जो मुक्ति प्राप्त कर चुका हो।
कृतालक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक अनुचर।
कृतालय[1]—वि० [सं०] जिसने कहीं घर बना लिया हो। घर बना लेनेवाला (को०)।
कृतालय[2]—संज्ञा पुं० १ मेढक। मंडूक। २ कुत्ता (को०)।
कृतावधि—वि० [सं०] १ जिसकी समयसीमा निश्चित हो। निश्चित समय का। २. सीमित (को०)।
कृतास्त्र—वि० [सं०] १. अस्त्रवाला। शस्त्रास्त्रयुक्त। २. अस्त्र के प्रयोग में कुशल (को०)।

उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाखन को बडो कूर कायर कपूत कौडी आध की।—तुलसी (शब्द०)। ५ जिसका किया कुछ न हो सके। अकर्मण्य। निकम्मा। उ०—सुभट शरीर वीर चारी भारी भारी तहाँ सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं।—तुलसी (शब्द०)। ६. नासमझ। अनजान। मूर्ख। उ० हँसिहहि कूर कुटिल कुविचारी। जे परदुषन भूषन धारी।—मानस, १।८।

कूर²—संज्ञा पुं० [हिं० कूरा = अंश] लगान की वह कमी जो उच्च जातियो को मुजरा दी जाती है, जिससे वे लोग हलवाहा रख सकें।

कूर³—संज्ञा पुं० [सं०] उबाला हुआ चावल। भात [को०]।

कूर⁴†—संज्ञा पुं० [हिं० पुर = भरना] गुझिया, समोसे आदि मे भरने का मसाला।

कूरता—संज्ञा स्त्री० [सं० कूरता वा हिं० कूर + ता (प्रत्य०)] १. निर्दयता। कठोरता। बेरहमी। २ जडता। मूर्खता। ३ अरसिकता। उ०—कृष्णचरित रस पूर, नमो सुर कवि सूर कवि। जासु भणित रसमूर, होत दुरि सुनि कूरता।—रघुराज (शब्द०)। ४. कायरता। डरपोकपन।

कूरपन—संज्ञा पुं० [हिं० कूर + पन (प्रत्य०)] दे० 'कूरता'।

कूरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० 'कूर्म'। उ०—कूरम पै कोल कोलहू पै सेप कुंडली है, कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५३।

कूरा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड = ढेर] [स्त्री० कूरी] १. ढेर। राशि। उ०—सीस बसै बरदा बरदानि चढ्यो बरदा धरनिउ बरदा है। धाम धतूरो विभूति को कूरो निवास तहाँ सब लै मरवा है।—तुलसी (शब्द०)। २ भाग। अंश। हिस्सा।

कूरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे चपरेला या मोतिया भी कहते हैं।

कूरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा] छोटा ढेर। ढेरी।

कूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुट्ठी भर कुश। २ दोनो भौंहो के बीच का स्थान। ३ अंगूठे और तर्जनी के बीच का स्थान। ४ झूठ। असत्य। ५ दंभ। ६ एक प्रकार का आसन। ७ एक बीजमंत्र। ८ कूँची। ९ मस्तक सिर। १० गोदाम। भांडार। ११ पूला (को०)। १२. दाढी (को०)। १३ मोर पंख (को०)।

कूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूँची। २. दाँतो को स्वच्छ करने की कूँची। ३ एक माप या तौल [को०]।

कूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूँची। २. कली। ३ कुंजी। ४ सूई। ५ फटा हुआ दूध। छेना।

कूर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कूदने की क्रिया। उछलना कूदना [को०]।

कूर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा। इस तिथि को कामदेव का उत्सव होता था

कूर्प—संज्ञा पुं० [सं०] भौंहों के बीच का स्थान। त्रिकुटी [को०]।

कूर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पैर के बीच का जोड। घुटना। २. हाथ के बीच का जोड़। कुहनी [को०]।

कूर्पास—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार धड़ की रक्षा के लिये लोहे की जालियो का छोटा कवच।

कूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ कच्छप। कछुआ। २. पृथिवी। ३ प्रजापति का एक अवतार। ४ एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई सूत्रों का विकास किया था। ५. एक वायु जिसका निवास आँखों में है और जिसके प्रभाव से पलकें खुलती और बंद होती हैं। यह दस प्राणों में से एक है। ६. नाभिचक्र के पास की एक नाडी। कछुआ। पोतनहर। ७ विष्णु का दूसरा अवतार, ८. तंत्र के अनुसार एक मुद्रा या आसन जिसका व्यवहार देवता के ध्यान के समय किया जाता है। ९. दे० 'कूर्मासन'।

कूर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओ का एक तीर्थ, जहाँ कूर्मावतार भगवान् के दर्शन होते हैं।

कूर्मखंड—संज्ञा पुं० [सं० कूर्मखण्ड] पुराण के अनुसार एक वर्ष या खंड का नाम [को०]।

कूर्मचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र, जो तांत्रिक लोग बनाते हैं और जिससे शुभाशुभ का शकुन और फल जाना जाता है।

कूर्मद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौष शुक्ला द्वादशी। इसी तिथि को कूर्मावतार का होना माना जाता है।

कूर्मपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह मुख्य पुराणो मे से एक।

कूर्मपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कछुए की पीठ। २. वह स्थल जो कछुए की पीठ तरह ऊँचा नीचा हो। ३. वाणपुष्प या अम्लान नामक वृक्ष। ४ तश्तरी या किसी वस्तु का ढक्कन (को०)।

कूर्ममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिको की उपासना मे एक प्रकार की मुद्रा जिसमे एक हथेली दूसरी हथेली पर इस प्रकार रखते हैं कि कछुए की आकृति बन जाती है।

कूर्मराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का कूर्मावतार। २. बहुत बड़ा कछुवा [को०]।

कूर्मा संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

कूर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] योग मे एक आसन का नाम। इसमें दोनों पैरो को तले ऊपर रखकर एँड़ियों से गुदा को दबाकर घुटनों के बल खड़ा होना पडता है।

कूर्मिका, कूर्मी—संज्ञा स्त्री० [पुं० कूर्मिका] एक प्रकार का बहुत प्राचीन बाजा, जिसमे बजाने के लिये तार लगे होते थे।

कूलंकष—वि० [सं० कूलङ्कष] तट को छूनेवाला [को०]।

कूलंकष—संज्ञा पुं० १. नदी की धारा या प्रवाह। २ समुद्र। सागर [को०]।

कूलंकषा—संज्ञा स्त्री० [सं० कूलङ्कषा] सरिता। नदी [को०]।

कूलज—संज्ञा पुं० [अ०] आँत का दर्द। अँतड़ियो की पीड़ा [को०]।

कूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किनारा। तट। तीर।

यौ०—कूलवती = नदी।

२ सेना के पीछे का भाग। ३. समीप। पास। ४ बड़ा नाला। नहर। ५ तालाब। ६ ढूहा टीला (को०)।

कूलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ तट। किनारा। २ वल्मीक। बाँबी। ३ ढूह। टीला [को०]।

कूलचर—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार नदी किनारे विचरनेवाले हाथी, भैंस, हिरन, सूअर आदि पशु।

कूला—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] [स्त्री० कुलिया] १. वह छोटा मार्ग

जो किसी नदी नाले आदि में से पानी लाने के लिये खोदा गया हो। छोटी नहर। २ दे० 'कूल्हा'।

कूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा या सितार के नीचे का भाग।

कूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

कूली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत छोटी मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कूलेचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूलचर'।

कूल्हना†—क्रि० अ० [सं० कुन्थ=क्लेश] पीड़ासूचक शब्द करना। कांखना। कराहना।

कूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड=कोड, कोल अथवा देश०] १ कोख के नीचे, कमर में पेड़ू के दोनों ओर निकली हुई हड्डियां।

मुहा०—कूल्हा उतरना या सरकना=गिरने या किसी प्रकार का आघात लगने के कारण कूल्हे का अपने स्थान से हट जाना। कूल्हा मटकाना=चूतड़ मटकाना।

२ कुश्ती का एक पेंच, जिसमें पहलवान सामने खड़े हुए विपक्षी की पीठ पर दाहिनी तरफ से अपना दाहिना हाथ ले जाकर उसका दाहिना जांघिया पकड़ता है और अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पहुँचा पकड़कर खींचता हुआ अपने कूल्हे पर से लाद कर सामने चित गिराता है।

कूल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीतल (सोनारों की बोली)।

कूवत—संज्ञा स्त्री० [अ० कूवत] शक्ति। बल। जोर। ताकत।

यौ०—कूवतेजिस्मानी=शारीरिक शक्ति। कूवतेबाजू=भुजबल। कूवतेबाह = रतिकर्म की शक्ति। कूवते रूहानी=आत्मबल। मनोबल।

कूवर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ रथ का वह भाग जिसपर जूआ बांधा जाता है। युगंधर। हरसा। उ०—किए हेमदंडन पै मंडन विचित्र चित्र, बने कीर मोर चारु ओर मनभावते। कूवर अनूप रूप छतरी छजत तैसी, छज्जन में मोती लटकत छवि छावते।—(शब्द०)। २ रथ में रथिक के बैठने का स्थान। ३ कुबड़ा। ४ कुब्जक। कूजा। कूल।

कूवर²—वि० मनोहर। सुंदर।

कूवार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूपार' (को०)।

कूश्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के हवनीय देवता।

कूष्मांड—संज्ञा पुं० [सं० कूष्माण्ड] १. कुम्हड़ा। २ पेठा। ३. वैदिक काल के एक ऋषि। ४ एक प्रकार के पिशाच जो शिव के गण हैं। ५ बाणासुर का प्रधान मंत्री।

कूष्मांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० कूष्माण्डा] नौ दुर्गा में चौथी दुर्गा। दुर्गा का एक रूप।

कूष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कूष्माण्डी] १ दुर्गा। २. यजुर्वेद की एक ऋचा, जिसके द्रष्टा कूष्मांड ऋषि थे।

कूसल—संज्ञा पुं० [सं० कुश] एक प्रकार की घास जिसके डंठलों का झाड़ू बनता है।

कूह(५)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चिंघाड़। हाथी की चिग्घार। २. चीख। चिल्लाहट। उ०—संतु सतावत हैं जग को हैं कठोर महा सब को मद तूरत। कूह कै कै कर मारै कहीं लखि कुंजन बारन ढारन पूरत।—शंभुनाथ (शब्द०)।

कूहा†—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुहरा'।

कूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाज की जाति की एक प्रकार की शिकारी चिड़िया। कुही।

कृंतत्र—संज्ञा पुं० [सं० कृन्तत्र] १. खंड। भाग। विभाग। २. टुकड़ा। चिप्पी ३. हल (को०)।

कृंतन—संज्ञा पुं० [सं० कृन्तन] काटना। कतरना। खंड खंड करना। टुकड़े टुकड़े करना (को०)।

कृंतनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कृन्तनिका] १ कतरनी। कैंची। २. छोटा चाकू (को०)।

कृंतनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृन्तनी] दे० 'कृंतनिका' (को०)।

कृक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रीवा। गला। २. नाभि (को०)।

कृकण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का तीतर। २. एक कीड़ा। ३. शिव का एक नाम (को०)।

कृकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मस्तक की वह वायु जिसके वेग से छींक आती है। २ शिव। ३ चार। चक्र। ४. एक प्रकार का पक्षी। ५. कनेर का पेड़।

कृकल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृकर'।

कृकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पीपर (को०)।

कृकलास—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।

कृकवाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १ मयूर। २. मुर्गा। ३. छिपकली (को०)।

कृकाटिका संज्ञा स्त्री० [सं०] कंठ और गले का जोड़। घांटी। उ०—सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कबु कंठ सोभा मन मानति।—तुलसी (शब्द०)।

कृच्छ्र¹—वि० [सं० कृच्छ्र=कष्टसाध्य] १ कष्टसाध्य। उ०—तेज को प्रताप गात कृच्छ्रहू लखात नीको दीपन चढ़ायौ सान हीरा जिमि छीनो है।—शकुंतला, पृ० ११०।

कृच्छ्र²—संज्ञा पुं० [सं०] १. कष्ट। दुःख। २ पाप। ३ मूत्रकृच्छ्र रोग। ४. कोई व्रत जिसमें पंचगव्य प्राशन कर दूसरे दिन उपवास किया जाय। जैसे, कृच्छ्रसांतपन।

कृच्छ्र³ वि० १. कष्टसाध्य। २ कष्टयुक्त। ३. दुष्ट। बुरा (को०)। ४ पापी। पापात्मा (को०)।

कृच्छ्रपराक—संज्ञा पुं० [सं०] १२ दिन तक निराहार रहने का व्रत।

कृच्छ्रातिकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] २६ दिन तक दूध पर निर्वाह करने का व्रत।

विशेष—गौतम के मत से इस व्रत में दूध के स्थान पर पानी पीकर ही रहना चाहिए।

कृत्¹—वि [सं०] करने या बनानेवाला। कर्ता। प्रायः समासांत में प्रयुक्त, जैसे, ग्रंथकृत् (को०)।

कृत्²—संज्ञा पुं० १ धातु के साथ मिलकर विशेषण आदि बनानेवाले प्रत्यय। २. उक्त प्रत्ययों के योग से बना हुआ शब्द (को०)।

कृत¹—वि० [सं०] १ किया हुआ। संपादित। २ बनाया हुआ। रचित। जैसे—तुलसीकृत रामायण। ३. संबंध रखनेवाला।

कुछ अदल बदल न हो सके । अटल । अचल ३. अविनाशी । विनाशरहित । ४ छिपा हुआ । गुप्त । अतर्व्याप्ति । पोशीदा ।

कूटस्थ[२]—संज्ञा पुं० १ व्याघ्रनख नाम का सुगंधित द्रव्य । २ परमेश्वर । परमात्मा । ३ जीव ।

विशेष—सांख्य मे 'कूटस्थ' ऐसे आत्मा पुरुष को कहते हैं जो परिमाणरहित हो और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनो अवस्थाओ मे एक समान रहे । न्याय में परमेश्वर को 'कूटस्थ' कहा है और उसे जन्म-गुण -रहित अर्थात् किसी से न उत्पन्न होनेवाला माना है ।

कूटस्वर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] खोटा सोना । बनावटी सोना ।

कूटा†—संज्ञा पु० [हिं० कूटना] [स्त्री० कूटी] कुटनपन करनेवाला । कुटना ।

कूटाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जाली पासा । बनावटी पासा ।

कूटाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूट अर्थवाले शब्दों मे लिखी गई कहानी । २ कल्पित कथा [को०] ।

कूटागार—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार वह मदिर जो मानुषी बुद्धो के लिये बना हो ।

कूटायुध—संज्ञा पुं० [सं०] छिपाकर रखा गया हथियार [को०] ।

कूटार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह छिपा हुआ अर्थ जिसे बौद्धिक प्रयत्न से समझा जाय ।

कूटावपात—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर से छिपा हुआ गड्ढा, जो जंगली जानवरो को फँसाने के लिये बनाया जाता है ।

कूटि(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० कूट] वह व्यंग्य भरी बात जिससे किसी का परिहास ध्वनित हो ।

कूटी[१]—संज्ञा पुं० [सं० कूट+ई (प्रत्य०)] १ हँसी उड़ानेवाला । मसखरा । २ जालसाज । जालिया ।

कूटी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटनी या कूटा का स्त्री०] कुटनी । दूती ।

कूटू—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो हिमालय पर्वत पर ४००० फुट से १०,०००फुट की ऊँचाई तक होता है । वहाँ इसे प्रायः तरकारी के लिये बोते हैं । मैदानो मे भी इसकी खेती होती है । फाफर । कुल्टू । काठू । तुवा । कसपत । फोटू ।

विशेष—इसकी खेती बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश और उत्तरप्रदेश मे भी होती है । बीज जुलाई में बोया जाता है और अक्टूबर मे इसकी फसल तैयार होती हैं । पौधा डेढ़ दो फुट ऊँचा होता है और उसके सिरे पर नीले फूलो का गुच्छा लगता है । फूल देखने में बहुत सुंदर होते हैं । फूल गिर जाने पर फल लगते हैं । पकने पर बीजो को डठल से मलकर अलग कर लेते हैं । बीज काले रंग के तिकोने लबे और नुकीले होते हैं । भूसी निकल जाने पर उनके अदर से दाने निकालकर आटा पीसते हैं जो फलाहार के लिये व्रतो में काम आता है ।

कूड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड=ढेरा] १ जमीन पर पड़ी हुई गर्द खर पत्ते आदि जिन्हें साफ करने के लिये झाड़ू दिया जाता है । कतवार ।

यौ०—कूड़ा करकट । कूड़ाखाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—बटोरना ।—झाड़ना ।—उठाना ।—फेंकना । फैलाना ।—लगाना ।

२ व्यर्थ और निकम्मी चीज । बेकाम चीज ।

कूड़ाखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कूड़ा+फा० खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा फेंका जाता हो । कतवारखाना ।

कूड्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्य' [को०] ।

कूढ़[१]—संज्ञा पुं० [सं० कुष्टि, प्रा० कुड्ढि] १ हल का वह भाग जिसके एक सिरे पर मुठिया और दूसरे पर खोपी होती है । जाँघा । हलपत । परिहत । बोने की वह प्रथा जिसमे हल की गरारी मे बीज डाला जाता है । छींटा का उलटा ।

विशेष—जब खेत मे तरी कम रह जाती है तब रबी की फसल इसी तरह बोई जाती है । गेहूँ, तीसी आदि की बोवाई भी इसी तरह होती है ।

कूढ़[२]—वि० [सं० कु+ऊह=कूह, पा० कूघ अथवा कुण्ठ] नासमझ । अज्ञानी । बेवकूफ ।

यौ०—कूढ़मग्ज ।

कूढ़मग्ज—वि० [हिं० कूढ़+फा० मग्ज] जिसे कोई बात समझने में बहुत कठिनता हो । मंदबुद्धि । कुदजिहन ।

कूण(पु)†—सर्व० [डिं०] दे० कुण' ।

कूणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा, सितार, सारगी या चिकारा आदि तत्री बीजों की वह खूँटी जिसमे तार बँधे रहते हैं और समय समय पर जिसे मरोड़कर तार को ढीला या कड़ा करते हैं ।

कूणित—वि० [सं०] बद । सकुचित । सिमटा हुआ । अविकसित [को०] ।

कूणितेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] श्येन । बाज पक्षी [को०] ।

कूत—संज्ञा पुं० [सं० आकूत=आशय] १ वस्तु को बिना गिने, नापे या तौल उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण का अनुमान ।

क्रि०प्र०—करना ।—होना ।

२. दे० 'कनकूत' ।

कूतना—क्रि० स० [हिं० कूत+ना (प्रत्य०)] १ अनुमान करना । अंदाज लगाना । उ०—बैर सुनें न परें श्रुति लो मुसकंबो मिलें मधरान को कूते ।—सेवक (शब्द०) । २ किसी वस्तु को बिना गिने नापे या तौले उसकी सख्या मूल्य या परिमाण आदि का अनुमान करना ३ कनकूत करना ।

कूथना[१]- क्रि० स० [सं० कुन्थन] बहुत मारना । बुरी तरह पीटना ।

कूथना[२]—क्रि० अ० दे० 'कूँथना' ।

कूद—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूदने या उछलने की क्रिया या भाव ।

यौ०—कूदफाँद=कूदने या उछलने की क्रिया ।

कूदना[१]—क्रि० अ० [सं० स्कुन्दन या सं० कूर्दन प्रा० कुद्दन] २ दोनों पैरो को पृथिवी या किसी दूसरे आधार पर से बलपूर्वक उठा कर शरीर को किसी ओर फेंकना । उछलना । फाँदना । जैसे—वह यहाँ से कूदकर वहाँ चला गया । २ जान बूझकर ऊपर से नीचे की ओर गिरना । जैसे—वह स्त्री कुएँ में कूद पड़ी । ३ किसी काम या बात के बीच में सहसा आ मिलना या दखल देना । जैसे—तुम यहाँ कहाँ से कूद पड़े ? ४ क्रम

भाग करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना। जैसे,—तुम तो अभी चौथा पन्ना पढ़ते थे, बीसवें पन्ने मे कैसे कूद गए? ५ अत्यत प्रसन्नहोना। खुशी से फूलना। उछलना। ६ बढ़ बढ़कर बातें करना। शेखी बघारना।

मुहा०—किसी के बल पर कूदना = किसी का सहारा पाकर बहुत बढ़ बढ़कर बोलना।

कूदना²—क्रि० स० किसी वस्तु की एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। उल्लघन कर जाना। लाँघ जाना। फलाँग जाना। जैसे—जब महावीर जी समुद्र कूद गए, तब सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

यौ०—कूदाकूदी। कूदफाँद।

कूदर—सज्ञा पु० [सं०] ऋतुमती ब्राह्मणी और ऋषि के सयोग से उत्पन्न सतान [को०]।

कूदा—सज्ञा पुं० [हिं० कूदना] खेत आदि नापने का एक प्रकार का परिमाण, जिसमें कुछ निश्चित कुदानें कूदनी पड़ती हैं।

कूदी—सज्ञा स्त्री० [स०] पैर बाँधने की शृंखला या जजीर [को०]।

कूद्दाल—सज्ञा पुं० [सं०] पहाडी कचनार [को०]।

कून—सज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'कूँडा'। २. दे० 'कुंद'।

कूनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कूँडी] कोल्हू का वह गड्ढा जिसमे ऊख के टुकड़े डालकर पेरते हैं। कूँड़ी।

कूप—सज्ञा पुं० [सं०] १.कुआँ। इनारा। २.छिद्र। छेद। सुराख। जैसे—रोमकूप। ३. गहरा गड्ढा। कुंड।

यौ०—कूपमंडूक।

४ चमड़े का कुप्पा (को०)। ५ नदी के बीच की चट्टान या वृक्ष (को०)। ६.नाव आदि बाँधने का खूँटा (को०)। मस्तूल (को०)।

कूपक—सज्ञा पुं० [स०] १ छोटा कुआँ। २.चमड़े का बना हुआ तेल या घी रखने का पात्र। कुप्पा। ३ नाव बाँधने का खूँटा। ४.नाव या जहाज का मस्तूल। ५ चिता। ६. कूल्हे के नीचे का गड्ढा (को०)। ७. नौका। नाव। किश्ती (को०)। ८.छिद्र छेद।

कूपकच्छप—सज्ञा पुं० [सं०] १. कुएँ में रहनेवाला कछुआ। २. सीमित जानकारी रखनेवाला मनुष्य। कूपमडूक। अनुभवहीन व्यक्ति [को०]।

कूपकार—सज्ञा पुं० [सं०] कुआँ बनाने या कुआँ खोदनेवाला आदमी [को०]।

कूपखानक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूपकार' [को०]।

कूपचक्र—सज्ञा पु० [स०] कुएँ से पानी खीचने की चरखी। रहट। कूपयत्र [को०]।

कूपदड—सज्ञा पुं० [सं० कूपदण्ड] जहाज या नाव का मस्तूल [को०]।

कूपन—सज्ञा पु० [अं०] १.मनीआर्डर फार्म का वह भाग जिसपर रुपया भेजनेवाला कुछ समाचार आदि लिख सकता है और जो रुपया पानेवाले के पास रह जाता है २. नियत्रित या सीमित किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की चिट या पुरजा।

कूपमडूक—सज्ञा पुं० [सं० कूपमण्डूक] १.कूएँ का मेढक। कूएँ मे रहनेवाला मेढक। २.वह मनुष्य जो अपना स्थान छोड़कर कहीं बाहर न गया हो, या बाह्य जगत् की जिसको कुछ भी खबर न हो।

कूपयत्र—सज्ञा पुं० [सं० कूपयन्त्र] दे० 'कूपचक्र' [को०]।

यौ०—कूपयंत्रघटिका, कूपयत्रघटी = कुएँ से पानी खीचने के यंत्र मे लगी छोटी डोल। रहट मे लगी हुई डोलची जिनसे पानी क्रमश गिरता रहता है। कूपयत्रघटिका न्याय = सासारिक अस्तित्व की विभिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करने का न्याय जिसमे रहट की डोलों के क्रमश ऊँचा नीचा, भरा खाली, भरता हुआ खाली होता हुआ आदि के द्वारा सासारिक स्थिति व्यक्त की जाती है (मृच्छकटिक)।

कूपार—सज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।

कूपी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १.छोटा कुआँ। २.कुप्पी। बोतल। ३ नाभि [को०]।

कूपुप—सज्ञा पुं० [सं०] मूत्राशय।

कूब—सज्ञा पुं० [सं०] दे०'कूबड़'।

कूबड—सज्ञा पुं० [सं० कूबर] १.पीठ का टेढ़ापन २.किसी वस्तु का टेढ़ापन।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

कूबर¹—सज्ञा पुं०।[पुं०] १.कुबड़ा व्यक्ति। २.गाड़ी या रथ की वह बल्ली जिससे जुआ बाँधा जाता है [को०]।

कूबर²—वि० १. सुंदर। रुचिकर। प्रिय २ कूबड़वाला [को०]।

कूबरी—सज्ञा स्त्री० [स०] १.दे० 'कुबरी'। २. पर्दे आदि से ढँकी गाडी (को०)। ३ रथ या गाड़ी की बल्ली जिससे जुआ बाँधा जाता है (को०)।

कूबा¹—सज्ञा पुं० [हिं० कूबड] १.कूबड। २. वह धनुषाकार लकड़ी जिसपर बँडेरा रखा जाता है। इसके दोनो सिरे दीवार पर रहते हैं, और इसके बीच के टेढ़े उभडे हुए भाग पर बँडेरा रखा जाता है।

कूबा²—सज्ञा पुं० [देश०] त्रिटाई करनेवालों का सीसे का एक गोलाकार औजार जिसे टेकुरी को भारी करने के लिये उसके नीचे चिपका देते हैं। यह दुअन्नी या एकन्नी के बराबर गोल गोल होता है।

कूम¹—सज्ञा पुं० [सं०] तालाब। जलाशय [को०]।

कूम²—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकडी बहुत मजबूत होती है।

विशेष—गढवाल और चटगाँव में यह पेड़ बहुत होता है। इसकी लकडी इमारत के काम मे आती है और कही कही, जहाँ यह अधिक होता है, जलाई भी जाती है।

कूमटा¹—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो राजपूताने और सिंध देश मे होता है।

कूमटा²—सज्ञा स्त्री० [देश०] धारवार प्रात मे पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास।

कूर¹—वि० [सं० क्रूर] १.दयारहित। निर्दय। २.भयकर। डरावना। ३.मनहूस। असगुनिया। दुष्ट। बुरा। कुमार्गी।

का नाम, जिसकी पत्तियों को पीसकर कुत्ते के काटे हुए स्थान पर रखते हैं।

कूकरनिंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूकर+नींद+इया (प्रत्य०)] वह हलकी नींद जो थोड़े ही खटके से टूट जाय।

कूकरबसेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कूकर+बसेरा] थोड़ा विश्राम।
क्रि० प्र०—करना।—लेना।

कूकरभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० कूकुर+हिं० भँगरा] १ काला भँगरा। २ कुकरौंधा।

कूकरमुत्ता†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुकुरमुत्ता'।

कूकरलेंड—संज्ञा पुं० [हिं० कूकुर+लेंड] कुत्तों का मैथुन।

कूका—संज्ञा पुं० [हिं० कूकना=चिल्लाना] † १ चिल्लाहट भरी लंबी पुकार। २ सिक्खों का एक पंथ।
विशेष—सन् १८६७ में रामसिंह नामक एक बढ़ई ने यह पंथ चलाया था। वह अपना उपदेश बहुत चिल्ला चिल्लाकर देता था और श्रोता लोग भी खूब भक्ति में लीन होकर चिल्ला चिल्लाकर ग्रंथ साहब के पद गाते थे, इसी से इस पंथ का नाम ही 'कूका' पड़ गया।

कूकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा, जो जाड़े की फसलों को हानि पहुँचाता है।

कूकुद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकुद[1]'।

कूख‡—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] दे० 'कोख'।

कूच[1]—संज्ञा पुं० [तु०] १. प्रस्थान। रवानगी। २ मृत्यु। मौत। परलोकयात्रा [को०]।
मुहा०—कूच कर जाना=मर जाना। (किसी के) देवता कूच कर जाना=होश हवाश जाता रहना। भय या किसी और कारण से विवेक नष्ट हो जाना। कूच का डंका या नक्कारा बाजाना=(१) फौज या समूह का रवाना होना। (२) मर जाना। कूच बोलना=प्रस्थान करना।

कूच[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुच' [को०]।

कूच[3]—संज्ञा पुं० [देश०] महुए के पेड़ में पतझड़ के बाद टहनियों में लगनेवाला वह गुच्छा, जिसमें फूल निकलते हैं।

कूच[4]—संज्ञा पुं० [सं० कूर्चिका, हिं० कूँच] पैर के नीचले भाग की एक नस। घोड़ा नस।

कूचा—संज्ञा पुं० [फा० कूचह्] १ छोटा रास्ता। गली।
यौ०—कूचागर्दी=इधर उधर फिरना। व्यर्थ घूमना।
मुहा०—कूचा झाँकना=इधर उधर ठोकर खाना। गली गली मारा फिरना।
२ रेशेदार लकड़ी या मूँज को कूट कर बनाया हुआ झाड़न। ३. झाड़ू। बोहारी।

कूचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूँची। कूर्चिका। २ कुंजी। ताली [को०]।

कूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'कूँची'। २ दे० 'कूचिका' (को०)।

कूज—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूजना] १ ध्वनि। शब्द। आवाज। २ शब्द करने की क्रिया। ३ पहियों की घरघराहट (को०)। ४, कूजने की क्रिया। कू कू की ध्वनि [को०]।

कूजन—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कूजित] दे० 'कूज'।

कूजना—क्रि० अ० [सं० कूजन] १ कोमल और मधुर शब्द करना। उ०—(क) विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुंजत भृंगा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कनक किंकणी नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल।—सूर (शब्द०)।

कूजा[1]—संज्ञा पुं० [फा० कूज़ह्] १ प्याले या पुरवे के आकार का मिट्टी का बरतन। कुल्हड़। २. मिट्टी के पुरवे में जमाई हुई अर्द्ध गोलाकार मिसरी। ३ कुब्ज। कुबड़ा [को०]।

कूजा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुब्जक] मोतिया या बेले का फूल। उ०—कोइ कूजा सतबर्ग चमेली। कोई कदम सुरस रस बेली।—जायसी (शब्द०)।

कूजित—वि० [सं०] १ जो बोला या कहा गया हो। ध्वनित। २. गूँजा हुआ या ध्वनिपूर्ण। (स्थान आदि) उ०—कोकिल कूजित कुंज कुटीर।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

कूट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़ की ऊँची चोटी। जैसे—हेमकूट, चित्रकूट। २ सींग। ३. (अनाज आदि की) ऊँची और बड़ी राशि या ढेरी। उ०—कोस भरे लो हेम मणि अन्नन के करि कूट। विप्रन दीन्हो नंद नृप भई अलौकिक लूट।—गोपाल (शब्द०)।
यौ०—अन्नकूट।
४. हल की वह लकड़ी जिसमें फल लगा रहता है। खोंपी। परिहारी। ५ लोहे का मोगरा। हथौड़ा। ६ हिरनों के फँसाने का फंदा या जाल। ७ लकड़ी के म्यान में छिपा हुआ हथियार। जैसे—तलवार, गुप्ती आदि। ८ छल। धोखा। फरेब। जैसे—कूटनीति। ९ मिथ्या। असत्य। झूठ। १०. अगस्त्य मुनि का एक नाम। ११. घड़ा। १२ गुप्त वैर। कीना। १३ नगर का द्वार। १४ गूढ़ भेद। गुप्त रहस्य। १५. जिसके अर्थ में हेर फेर हो। जिसका समझना कठिन हो। जैसे, सूर का कूट। १६ वह हास्य या व्यंग्य जिसका अर्थ गूढ़ हो। उ०—करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुंदरताई।—तुलसी (शब्द०)। १७ निहाई। १८ वह बैल जिसके सींग टूटे हों। १९ घर। आवास (को०)। २० घट। घड़ा (को०)। २१ उभार सहित माथे की हड्डी [को०]। २२ सिरा। छोर। किनारा [को०]।

कूट[2]—वि० [सं०] १ झूठा। मिथ्यावादी। २ धोखा देनेवाला। छलिया। ३ कृत्रिम। बनावटी। नकली। ४. प्रधान। श्रेष्ठ ५ निश्चल। ६ धर्मभ्रष्ट।

कूट[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूट] कुट नाम की ओषधि।

कूट[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना या कूटना] काटने, कूटने या पीटने आदि की क्रिया। जैसे—मारकूट, काटकूट।

कूट[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटी] झोपड़ी।

कूटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल। कपट। धोखा। धूर्तता। २ उठान। मुख्यता। ३ हल का फाल। ४ वेणी। कबरी। ५ एक सुगंधद्रव्य [को०]।
यौ०—कूटकाख्यान=दे० 'कूटाख्यान'।

कूटकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १, छल। कपट। धोखा। २, कौटिल्य के

अनुसार जूआ खेलते समय बेईमानी करना या हाथ की चतुराई या सफाई से पासे उलटना।

कूटकर्मा—वि० [सं० कूटकर्मन्] छली। कपटी। धोखेबाज।

कूटकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्ट या धोखा देनेवाला व्यक्ति। २. झूठा गवाह [को०]।

कूटकृत्[1]—वि० [सं०]१ धोखेबाज। ठगनेवाला। २ जाली दस्तावेज बनानेवाला। ३ उत्कोच या घूस देनेवाला [को०]।

कूटकृत्[2]—संज्ञा पुं० १ कायस्थ। २ शिव [को०]।

कूटकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान का सबसे ऊपर का भाग। २. कूटशाला [को०]।

कूटखड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह तलवार जो किसी छड़ी में छिपी हो [को०]। गुप्ती।

कूटच्छद्मा—संज्ञा पुं० [सं० कूटच्छद्मन्] ठग। धूर्त। धोखेबाज [को०]।

कूटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कठिनाई। २. झुठाई। ३. छल। कपट।

कूटतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तराजू जिसमे पसंगा हो या जिसकी डंडी में कुछ हेर फेर हो। डाँड़ीचोर तराजू।

कूटत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूटता'।

कूटन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना]१. कूटने की क्रिया या भाव। २. मारना। पीटना। कुटाई। उ०—फेरत नैन चेरि सौ छूटीं। भइ कूटन कुटनी तस कूटीं।—जायसी (शब्द०)।

कूटना—क्रि० स० [सं० कुट्टन] १ किसी चीज को नीचे रखकर) ऊपर से लगातार बलपूर्वक आघात पहुँचाना। जैसे—धान कूटना, सड़क कूटना, छाती कूटना।

मुहा०-कूट कूटकर भरना=ठूँस ठूँस कर भरना। कस कस कर भरना। ठसाठस भरना। जैसे,—उसमें कूट कूटकर चालाकी भरी है।

२. मारना। पीटना। ठोकना ३. मिल, चक्की आदि में टाँकी से छोटे छोटे गड्ढे करना या दाँत निकालना। ४ बैल या भैंसे का अंडकोष कूटकर उसे बधिया करना।

कूटनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाँव पेंच की नीति या चाल। वह चाल या नीति जिसका रहस्य कठिनता से खुले।

कूटपणकारक- संज्ञा पुं० [सं०] १ जाली सिक्का या माल तैयार करनेवाला। २ जाली दस्तावेज बनानेवाला। जालसाज।—(को०)।

कूटपर्व, कूटपाकल—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तज्वर। दे० 'कूटपूर्व'।

कूटपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] (संगीत में) मृदंग के चार वर्णों में एक वर्ण।

कूटपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १.कुम्हार। कुंभकार। २ कुम्हार का आँवा। ३. दे० 'कूटपूर्व' [को०]।

कूटपाश—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों को फँसाने का जाल। फंदा।

कूटपूर्व—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का त्रिदोषज ज्वर।

कूटप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] पहेली। बुझौवल। प्रहेलिका [को०]।

कूटबंध—संज्ञा पुं० [सं० कूटबन्ध] दे० कूटपाश' [को०]।

कूटमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह पैमाना जो ठीक नाप से बड़ा या छोटा हो। २ वह बाट जो ठीक तौल से हलका या भारी हो।

कूटमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०]कौटिल्य के अनुसार जाली मुहर या सिक्का बनानेवाला।

कूटमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के मत में जाली मुहर या परवाना।

कूटमोहन—संज्ञा पुं० [सं०]स्कंद। कुमार कार्तिकेय [को०]।

कूटयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कूटयन्त्र] पशुओं और पक्षियों को फँसाने का जाल।

कूटयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई जिसमें शत्रु को धोखा दिया जाय। धोखे की लड़ाई।

कूटरचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जाल। फंदा। २. कुटनियों का मायाजाल [को०]।

कूटरूप—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली रुपया या सिक्का।

कूटरूपकारक—संज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का तैयार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य ने लिखा है कि जो लोग भिन्न भिन्न प्रकार के लोहे के औजार खरीदते हो तथा जिनके पास सैकड़ों प्रकार के रासायनिक द्रव्य हो और जो धूएँ में सने हों, उनको जाली सिक्का तैयार करनेवाला समझना चाहिए। इनको गुप्त दूत लगाकर पकड़ना और देश से निकाल देना चाहिए।

कूटरूपनिर्यापण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली सिक्का निकालना या चलाना।

कूटरूपप्रतिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जाली सिक्का ग्रहण करना।

कूटलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूठा या जाली दस्तावेज। फरजी कागज पत्र [को०]।

कूटलेख—संज्ञा पुं० [सं०] झूठा या जाली दस्तावेज।

कूटलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] जाली दस्तावेज लिखनेवाला। जालसाज।

कूटलेख्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूटलेख' [को०]।

कूटशाल्मलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का शाल्मलि जो जंगलों में होता है।

विशेष—इसके पत्ते सिंगनी के समान और फूल गहरे लाल रंग के होते हैं। इसकी जड़ औषध के काम में आती है। वैद्यक में इसे कड़ुआ, चरपरा, गरम और कफ, प्लीहा, उदररोग और रुधिरविकार को दूर करनेवाला माना है।

२ यमराज की गदा। ३ पुराणानुसार नरक में शाल्मलि के आकार का लोहे का एक कँटीला वृक्ष।

कूटशासन—संज्ञा पुं० [सं०] जाली या फरजी आज्ञापत्र [को०]।

कूटसाक्षी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कूटसाक्षिन्] झूठा गवाह।

कूटसाक्षी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूठी गवाही। झूठी शहादत।

कूटसाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] फरजी गवाही। बनावटी गवाही [को०]।

कूटस्थ[1]—वि० [सं०]१. सर्वोपरि स्थित। ऊँचे दर्जे का। २. स्थिर

कुहुकबान—संज्ञा पुं० [हिं० कुहुकना + बान] एक प्रकार का बाण, जो बाँस की कई पट्टियों को जोड़कर बनाया जाता है और जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है।

कुहुकाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कुहुक] दे० 'कुहुकना'। उ०—केइ मधुमत्त मधुप संग गावत। केइ मिलि कल कोकिल कुहुकावत।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

कुहूँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहू] दे० 'कुहू'। उ०—तिन हेरें अँधेरेई दीसैं सबैं, बिन सूझ तें पूज्यो अबूझ कुहूँ।—घनानंद, पृ० ७४।

कुहूँ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह अमावस्या जिसमें चंद्रमा बिलकुल दिखलाई न दे। २ अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी और अंगिरा ऋषि की कन्या, जो उनकी श्रद्धा नाम की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। प्लक्ष द्वीप की एक नदी। ४ मोर या कोयल की कूक। मोर या कोयल की बोली।

विशेष—इस अर्थ में 'कुहू' के साथ कंठ, मुख, रव आदि शब्द लगाने से कोकिलवाची शब्द बनते हैं। जैसे—कुहूकंठ' कुहूमुख, कुहूरव, कुहूशब्द आदि।

यौ०—कुहू कुहू = मयूर या कोयल की बोली। उ०—(क) डहडहे भए द्रुम रचक हवा के गुन कुहू कुहू मोरवा पुकारि मोद भरिगे।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। (ख) कारी कुरूर कसाइनै ये सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी। पद्माकर (शब्द०)।

कुहूकबान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुहुकबान'। उ०—चले चंदबान घनबान औ कुहूकबान चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।—भूषण (शब्द०)।

कुहूकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या का दिन [को०]।

कुहूमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल २. विपत्ति। ३ दूज का चाँद [को०]।

कुहेड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा। कुहेलिका।

कुहेडो—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे०। 'कुहेड़िका' [को०]।

कुहेरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुहेलिका] दे०' कुहरा'। उ०—राम बिनाँ ससार धध कुहेरा सिरि प्रगटया जम का पेरा।—कबीर ग्रं०, पृ० १६५।

कुहेला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुधि] एक प्रकार का शिकारी पक्षी। एक प्रकार का छोटा बाज उ०—कुही कुहेला बाज दिय नृप जलहन के हथ्थ।—पृ० रासो पृ० १००।

कुहेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुहरा। २ कुहरे के कारण फैला अंधकार। उ०—भाषा के विषय में आज हम अनिश्चितता की कुहेलिका में नहीं हैं।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ७५।

कुहेली—संज्ञा [सं०] दे० 'कुहेलिका' [को०]।

कुहेसा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कुहासा] दे० कुहासा'। उ०—जनों के अज्ञानरूपी कुहे से को नास करके ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ३७७।

कुहौ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहू या अनुर०] १ मोर या कोकिल की कूल। उ०—बन बाटनु पिक बटपरा लखि बिरहिन मत मैं न। कुहौ कुहौ कहि कहि उठै करि करि राते नैन।—बिहारी र०, दो० ५७५।

कुहौकुहौ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहू कुहू या अनु०] कोकिल की बोली। कोयल की कूक।

कूँआ—संज्ञा पुं० [सं० कूप दे०] 'कुआँ'।

कूँई (पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूई] दे० 'कूई'।

कूँख—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] कोख। पेट। गर्भ।

कूँखना—क्रि० अ० [सं० कुन्थन = क्लेश] दुःख या पीड़ा से उहूँ उहूँ शब्द करना। काँखना।

कूँग—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] एक यंत्र जिसपर कसेरे पीतल, ताँबे के बरतन खरादते और जिला करते हैं। खराद। चरख।

कूँगा—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की छाल का काढ़ा जिसमें डुबोकर चमड़ा भिझाया जाता है।

कूँच¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] १ खस या नारियल के रेशे का बना हुआ डेढ़ हाथ लंबा एक बड़ा ब्रुश जिससे जोलाहे ताने का सूत साफ करते हैं। २ लोहारों की बड़ी सँड़सी।

कूँच²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुचिका = नली] मोटी नस जो मनुष्यों की एँड़ी के ऊपर और पशुओं के टखने के नीचे होती है। पै। घोड़ा नस।

मुहा०—कूँचे काटना = घोड़े की नस काटकर उसे बेकाम कर देना।

कूँचना†—क्रि० स० [हिं० कूटना या अनु० 'कुच कुच'] कूटना। कुचलना। उ०—कहु आसग अहैं हम पायन साँच बात बरनी। समर शत्रु मुख कूँचत छन में कठिन करै करनी।—गोपाल (शब्द०)।

मुहा०—मुँह कूँचना = (ल) मारना पीटना (२) मान ध्वस करना। ध्वस्त करना।

कूँचा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुर्च या कून] [स्त्री० कूची] १. किसी रेशेदार लकड़ी या मूँज आदि को कूटकर बनाया हुआ झाड़ू जिसमें चीजों को झाड़ते या साफ करते हैं। २. बोहारी। ३ टूटे हुए जहाज के टुकड़े।

कूँचा²—संज्ञा पुं० [हिं० करछा] भड़भूजे का बड़ा करछा।

कूँची¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँचा] १ छोटा कूचा। छोटी झाड़ू।

२ कूटी हुई मूँज या बालों का गुच्छा, जिससे चीजों की मैल साफ करते या उनपर रंग फेरते हैं। जैसे—सफेदी करने की कूँची, सोनार की कूँची, तसवीर रँगने की कूँची।

मुहा०—कूँची देना = (१) कूँची से रंग चढ़ाना। (२) कूँची से साफ करना। निखारना। † (३) खेत की एक कोने से दूसरे कोने तक जोतना।

३ चित्रकार की रंग भरने की कूँची। तूलिका।

कूँची²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कूज़ह] १ कुल्हिया जिसमें मिस्री जमाई जाती है। जैसे—कूँची की चीनी। २ मिट्टी का वह बरतन जिसमें कोल्हू से निकलकर रस इकट्ठा होता है।

कूची³(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुँची] ताली। कुंजी।

कूँज—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च प्रा० कोंच] क्रौंच पक्षी। करकुल।

कूँजड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कुँजड़ा] दे० 'कुँजड़ा'।

कूँजड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुँजड़ा] १. कुँजड़े की स्त्री। २ वह स्त्री जो शाक तरकारी इत्यादि बेचती हो। कबाड़िन।

कूँजना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० कूजना] दे० 'कूजना'।

कूँजरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुँजड़ा'।

कूँजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुँजड़ी'।

कूँजाँ—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] दे० 'कूँज'।

कूँट—संज्ञा पुं० [हिं० सं० कूट] पैर का वंधन। शृंखला।

कूँड—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] १. सिर को बचाने के लिये लोहे की एक ऊँची टोपी, जिसे लड़ाई के समय पहनते थे। खोद। उ०—अँगरी पहिरि कूँड सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं।—तुलसी (शब्द०)। २ चौगोशिया टोपी के आकार का मिट्टी या लोहे का गहरा बरतन, जिसे ढेकुल में लगाकर सिंचाई के लिये कुएँ से पानी निकालते हैं। ३ वह गहरी लकीर जो खेत में हल जोतने से बन जाती है। कुंड। ४ मिट्टी, ताँबे या पीतल आदि का बना हुआ वह गहरा पात्र जिसके ऊपर चमड़ा मढ़कर 'बायाँ' या ठेका बजाते हैं।

कूँडा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] [स्त्री० कूँडी] १. पानी रखने का मिट्टी का गहरा बरतन। २ छोटे पौधे लगाने का थाला। गमला। ३. रोशनी करने की एक प्रकार की बड़ी हाँडी, जिसे डोल भी कहते हैं। ४. मिट्टी या काठ का बड़ा बरतन जिसमें आटा गूँधते हैं। कठौता। मन्होता।

कूँडी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूँड़ा] १ पत्थर का बना हुआ कटोरे के आकार का बरतन। पत्थर की प्याली। पथरी। २ छोटी नाँद। ३ कोल्हू के बीच का वह गड्ढा जिसमें जाठ रहता है।

कूँडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] एँडुरी जिसे सिर पर रखकर स्त्रियाँ घड़ा उठाती हैं।

कूँथना(पु)†¹—क्रि० अ० [सं० कुन्थन=दुःख उठाना] १. दुःख से अस्पष्ट शब्द मुँह से निकालना। कराहना। २ कबूतरों का गुटरगूँ करना। उ०—गूढ गूढचरी निरो चुरी चहचर करैं कुंथत कपोत भट काम के कटक के।—देव (शब्द०)।

कूँथना(पु)†²—संज्ञा पुं० १ कराह। दुःख या कष्ट में निकलनेवाला अस्पष्ट शब्द। २ कबूतरों की गुटरगूँ की ध्वनि।

कूँदना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कुनना'।

कू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिशाची। डाइन। २ पृथ्वी। धरती (को०)।

कूआ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव, हिं० कुआँ, कुवाँ] दे० 'कुआँ'।

कूई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] जल में होनेवाला कमल की तरह का एक पौधा, जिसके पत्ते कमल ही के पत्तों के समान, पर कुछ लंबे और कटावदार होते हैं।

विशेष—यह पौधा भारतवर्ष भर में ऐसे तालों, पोखरों या गड्ढों में होता है, जिनमें बरसात का पानी इकट्ठा होता है। यह बरसात के प्रारंभ में बीजों या पुरानी जड़ों से निकलता है। इसके पत्ते पानी के ऊपर रहते हैं और डंठल अंदर। शरद् ऋतु अर्थात् क्वार कार्तिक में, इसमें सुंदर सुंदर सफेद फूल लगते हैं, जो लंबी लंबी नालों या डंठलों में लगे रहते हैं। इसकी नाल और कमल की नाल में इतना भेद होता है कि कमल की नाल के ऊपर गड़नेवाली रोएँ होती है, पर इसकी नाल चिकनी होती है। कुई या कुमुदनी के फूल रात को खिलते हैं और चाँदनी रात में बहुत मनोहर लगते हैं। इसी से कवियों ने चंद्रमा का नाम 'कुमुदबांधव' आदि रखा है। सफेद फूल ही की कूई अधिक देखने में आती है, पर कहीं कहीं लाल और पीले फूलों की कूई भी होती है। कमल के फूल की तरह इसके फूल के अंदर छत्ता नहीं होता, बल्कि एक कर्णिका मंडल होता है, जिसके नीचे नाल की घुंडी होती है। यह घुंडी बढ़कर लड्डू की तरह हो जाती है और बीजों से भर जाती है। ये बीज काली सरसों की तरह के होते हैं और 'बेरा' कहलाते हैं। भूनने पर इनके सफेद लावे या खीलें हो जाती हैं। व्रत के दिन इन बीजों के लावे खाए जाते हैं। पटने में बेरे के लड्डू अच्छे बनते हैं। कूई की जड़ खाई जाती है और दवा के काम में भी आती है। वैद्यक में कूई का फूल शीतल, कफ और पित्तनाशक तथा दाह और श्रम को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—कैरव। कुमुदिनी। कुमुद। गर्दभ। सौगंधिक। फच्छ। कुव। सितोत्पल। कुवल। हल्लक (लाल फूई)। कोका। उत्पल (सफेद कूई) रात्रिपुष्प। हिमाब्ज। शीतजलज। निशाफुल्ल। कुवल। कुवेलय। कुवेल।

कूक¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कूज] १ लंबी सुरीली ध्वनि। २ मोर या कोयल की बोली। उ०—(क) बोरन मनहुँ इंद्रधनु मोहत मोर कूक सहनाई। बरसत आनँद आँसु अंबु सोइ अवध प्रजा समुदाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कोकिल कूक कपोतन के कुल केलि करैं अति आनँद वारी।—मतिराम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मारना।

३. महीन और सुरीले स्वर से रोने का शब्द (जैसे स्त्रियों का)।

कूक²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंजी] घड़ी या बाजे आदि में कुंजी देने की क्रिया, जिससे गति उत्पन्न हो। जैसे,—यह आठ दिनों की कूक की घड़ी है।

कूकना¹—क्रि० अ० [सं० कूजन या अनु०] १ लंबी सुरीली ध्वनि निकालना। २. कोयल या मोर का बोलना। उ०—(क) कौंधत दामिनी कूकत मोर रटै मिलि भेकी भयानक ठौरे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) कारी कुरूप कसाइनै ये सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी।—पद्माकर (शब्द०)।

कूकना²—क्रि० स० [हिं० कुंजी] कमानी कसने के लिये घड़ी या बाजे के पेंच को घुमाना। घड़ी चलाने या बाजा बजाने के लिये कुंजी घुमाना। कुंजी भरना।

कूकर†—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] [स्त्री० कूकरी] कुत्ता। श्वान।

यौ०—कूकरकौर। कूकरचदो। कूकरनिंदिया।

कूकरकौर—संज्ञा पुं० [हिं० कूकर+कौर] १ वह बचा खुचा जूठा भोजन जो कुत्ते के आगे डाला जाता है। टुकड़ा। २. तुच्छ वस्तु। उ०—जाको कहाय कहै तुलसी तू लजाहि न माँगत कूकरकौरहि। जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीभ जो जाँचत औरहि।—तुलसी (शब्द०)।

कूकरचदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूकर+सं० चन्द्र] एक जंगली बड़ी

कुसुमितलतावेल्लिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अठारह अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, यगण, यगण का क्रम रहता है। जैसे—माता नायो काल इन बरजोरी दही मूँ हमारे। झूठें लाई तो यह उलहनो आज होतें सकारे। मैं ना जाऊँ अंत कतहुँ लखो नित्य मानू सुता की। शोभा वारी है कुसुमितलतावेल्लिता वीचि जाकी।—(शब्द०)।

कुसुमेषु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २ पुष्पमय बाण। फूल का बाण [को०]।

कुसुमोदर—संज्ञा पुं० [सं०] अोट का पेड़ [को०]।

कुसुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुसली'।

कुसूत—संज्ञा पुं० [सं० कु+सूत्र, प्रा० सुत्त, हिं० सूत] १ बुरा सूत। उ०—कहति कबीर करम सो जोरी। सूत कुसूत बिनै भल कोरी।—कबीर (शब्द०)। २. कुप्रबंध। कुब्योंत।उ०—रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को भूतनाथ पाहि पद पकज गहतु हौं।—तुलसी ग्र०, पृ० २४०।

कुसूर—संज्ञा पुं० [अ० कुसूर] दे० 'कसूर'।

यौ०—कुसूरमंद। कुसूरवार। अपराधी। दोषी।

कुसूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देवयोनि। २ दे० 'कुशूल'।

कुसृति—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्रजाल। हथकंडा। २.दुराचार। ३ शठता। दुष्टता।

कुसेसय—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] कमल। पद्म। उ०—राजिवदल इंदीवर सतदल कमल कुसेसय जाति। निसिमुद्रित प्रातहि वे बिगसत ए बिगसत दिनराति।—सूर (शब्द)।

कुसेसे(पु), कुसेसै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] दे० 'कुसेसय'। उ०—(क) फूल फूलि रहे जलज सुदेसे। इंदीवर, राजीव, कुसेसे।—नंद० ग्र०, पृ० ११९। (ख) कुशल रहैं वे केस कुसेसै नैनि सुधारे।—दीन० ग्र०, पृ० ९७।

कुस्टि,(पु) कुस्टी(पु)—वि० [सं० कुष्ठिन्] दे० 'कुष्ठी'। उ०—(क) बाहन बैल कुस्टि कर भेसू।—जायसी ग्र०, पृ० २६०। (ख) कुस्टी अग कठ विष बाँध।—चित्रा०, पृ०, १९।

कुस्तबरु—संज्ञा पुं० [सं० कुस्तम्बरु] धनियाँ का बीज।

कुस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुश्ती'।

कुस्तुंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुस्तुम्बरी] धनियाँ।

कुस्तुंबरु—संज्ञा दे० [सं०] धनियाँ।

कुस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ समुद्र। सागर [को०]।

कुस्याली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशहाली] प्रसन्नता की स्थिति। खुशी की हालत। उ०—वागा वादिस्याँहा के कुस्याली का कुगारा।—शिखर०, पृ० १९।

कुस्सा—संज्ञा पुं० [देश०] कुदाल।

कुहँचा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कफोणि हिं० कोहनी,] कोहनी। पहुँचा। कलाई। उ०—मुच्छा उमैठत उमड़ि ऐंठत कठिन कर कुहँचान का।—पद्माकर ग्र० पृ० १६।

कुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर। २. छली या फरेबी व्यक्ति (को०)।

कुहक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. माया। धोखा। जाल। फरेब। २.धूर्त। मक्कार। वंचक। ३ मेढक। ४ मुर्गे की कूक। ५ नाग-विशेष। ६ इंद्रजाल जाननेवाला।

यौ०—कुहककार=कपटी। छली। कुहकचकित=दाँव पेंच से डरा हुआ। संदेह करनेवाला। सजग। कुहकजीवी=इंद्रजाली मायावी। वंचक। कुहकस्वन, कुहकस्वर=मुर्गा। कुहकवृत्ति=दे० कुहकजीवी'।

कुहक(पु)[2]—वि० [सं० कुह+क] आश्चर्यजनक। उ०—कालि कलह कलि करहु कुहक विक्रम सुरुणं जिम।—प० रासो०, पृ० १७४।

कुहकना—क्रि० अ० [स० कुहक या कुहू या अनुर०] पक्षी का मधुर स्वर में बोलना। पीकना। उ०—कुहकहिं मोर सुहावन लागा। होय कुराहर बोलहिं कागा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—प्राय मोर और कोयल के ही बोलने को कुहकना कहते हैं।

कुहकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहकना] कुहकनेवाली। कोकिल। कोयल।

कुहकाना(पु)—क्रि० स० [हिं० कुहकना] कूकने या कूजने के लिये प्रेरित करना। उ०—पिक गवाय केकी कुहकाई।—नंद० ग्र०, पृ० १४१।

कुहकुह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] केसर। कुमकुम। जाफरान। उ०—कनक हाट सब कुहकुह लीपी। बैठि महाजन सिंहलदीपी।—जायसी (शब्द०)।

कुहकुहाना—क्रि० अ० [सं० कुहू=कोयल की आवाज] १ कोयल या मोर का बोलना। कान के अंदर पानी जाने से हलकी सुरसुरी या खुजलाहट होना।

कुहक्क—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक। इसमें दो द्रुत और दो लघु मात्राएँ होती हैं।

कुहक्कड़ा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहकना अथवा सं० कुह्वान=कर्कश ध्वनि] पुकार। कूकना। आवाज। उ०—बाबउ बाबा देसड़उ, वाँणी जहाँ कुवाँह। आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ गुवाँह।—ढोला० दू० ६५५।

कुहन[1]—वि० [सं०] ईर्ष्या करनेवाला। २ मक्कार। धोखेबाज।

कुहन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चूहा। मूसा। २ मिट्टी का बर्तन। ३. शीशे का बर्तन। ३ साँप।

कुहना†—क्रि० स० [स० कु+हनना=मारना] मारना। बुरी तरह से मारना। उ०—पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि! कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है।—तुलसी ग्र०, पृ० २४५।

कुहना[2]—संज्ञा पुं० [अनु० कुहू=कोकिल की बोली] गाना। अलापना। उ०—आपु व्याध को रूप धरि कुहौ कुरगहि राग। तुलसी जो मृग मन मरै परै प्रेम पर दाग।—तुलसी (शब्द०)।

कुहना[3]—वि० [फा० कुहनह्] जीर्ण। पुराना। बेकाम का [को०]।

कुहना[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुहनिका' [को०]।

कुहनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.स्वार्थसिद्धि के निमित्त धार्मिक व्रत पूजा का दिखावा। २.ढोंग। पाखंड। दंभ [को०]।

कुहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि, प्रा० कहोणि] १ हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी। उ०—किसी को चुटकी, किसी को कुहनी किसी को ठोकर निपट लड़ाका।—नजीर (शब्द०)। २. ताँबे या पीतल की बनी हुई टेढ़ी नली जो हुक्के की निगाली मे लगाई जाती है।

कुहनीउड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुहनी + उड़ान] कुश्ती का एक पेच जिसमे फुरती से कुहनी के झटके से प्रतिद्वंद्वी के हाथों को पकड़कर हटा दिया जाता है। यह पेच ऐसी अवस्था मे काम में लाया जाता है, जब प्रतिद्वंद्वी के दोनों हाथ अपनी गर्दन पर होते है।

यौ०—कुहनीउड़ान की टाँग = कुश्ती का एक पेच। जब विपक्षी अपने दोनों हाथ खेलाड़ी के कंधे पर रखे, तो खेलाड़ी उनका एक हाथ पकड़कर और दूसरा हाथ कुहनी से उड़ाकर अपनी बगल मे दबा उसी समय अपनी टाँग झोंके से उसके पैर में मारे कि वह गिर पड़े। तोड़—उड़ाया हुआ हाथ खेलाड़ी की जाँघ में अड़ा देना और पैर से पीछे की टाँग मारकर गिराना इस दाँव का तोड़ है। कुहनीउड़ान की डूब = कुश्ती का एक पेच। जब विपक्षी अपने कंधे पर हाथ रखे तब उसकी दोनों कुहनियों को उड़ाकर झट उसके पेट में घुसे और जाँघ से पकड़ उसके दोनों पैरों को उड़ाता हुआ गिरावे।

कुहप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुहू = अमावस्या + प] रजनीचर। राक्षस। उ०—मुनि मानव विलोकि मघु मधुवन आज वुधि होत देव, दानव, कुहप की।—देव (शब्द०)।

कुहबर—संज्ञा पुं० [हिं० कोहबर] दे० 'कोहबर'।

कुहर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा। गर्त। २ बिल। छेद। सूराख। जैसे—कर्णकुहर। ४ कान। ४. गला। कंठ। ५ समीपता। निकटता। ६ रतिक्रिया। ७. कंठस्वर। ८. वातायन। खिड़की [को०]। ८ गले का छेद। (पु) ६. कुहरा।

कुहर²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का शिकरा जो पक्षियों को पकड़ता है। बहरी।

कुहर³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस खाया जाता है।

कुहरा—संज्ञा पुं० [सं० कुहेडी] वायु मे जल के अत्यंत सूक्ष्म कणों का समूह जो ठंढ पाकर वायु मे मिली हुई भाप के जमने से उत्पन्न होता है। ये जलकण पत्तियों और घासों पर पड़कर बड़ी बड़ी बूँदों के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

कुहराम—संज्ञा पुं० [अ० कहर + आम] १ विलाप। रोना पीटना। आर्तनाद। वावैला। उ०—रनिवास मे कुहराम पड़ गया। लल्लू (शब्द०)। २. हलचल। उ०—सारे रावी गाँव के ब्राह्मणों मे कुहराम मचा हुआ है।—किन्नर०, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।—मचना।—होना।

कुहरित—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोकिल की कूक। २ ध्वनि। स्वर। ३ रतिक्रिया मे मुख से निकला शब्द या सीत्कार [को०]।

कुहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुहेडी] हलका कुहरा। कुहेलिका। उ०—जलाशय के किनारे कुहरी थी, हरे नीले पत्तो का घेरा था।—अप्सरा, पृ० १६१।

कुहलि—संज्ञा पुं० [सं०] पान की पत्ती [को०]।

कुहसार—संज्ञा पुं० [फा० कोहसार] १ पर्वत। पहाड़। २. उपत्यका। घाटी [को०]।

कुहाँरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हार] दे० 'कुम्हार'।

कुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुकी नाम की औषध [को०]।

कुहाड़उ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुठार, प्रा० कुहाड] दे० 'कुहारा'। उ०—बाबा म देसइ मारवाँ सूवा एवाहि कंत्रि कुहाडउ सिरि घडउ वासउ मझि यलाँह।—ढोला०, दू० १५६।

कुहाड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कुल्हाड़ा] [संज्ञा स्त्री० कुहाडी] कुठार। परशु। उ०—(क) कबीर तोड़ा मान गढ़ पकड़े पाँचो दिवान। ज्ञान कुहाड़ा कर्म बन, काटि किया मैदान।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० २६। (ख) शब्द कुहाडी सूद्र साँचो सुकृत करि फिरलान। नान निज करुण बद्दन नेति भूत दुख नस न।—राम०, धर्म० पृ० १८३।

कुहाना(पु)†—क्रि० अ० [सं० क्रोधन, प्रा० कोहन] रिसाना। नाराज होना। रूठना। उ०—(क) आप कुहाय मंदिर कहँ सिह जान गौ गोन।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुम्हहिं कुहाब परम प्रिय अहई।—तुलसी (शब्द०)।

कुहारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० कुहारि, कुहारी] कुल्हाड़ा। टाँगी। उ०—(क) इंद्रिय स्वाद विवस निसिवासर आपु अपनपौ हारयो। जल उनमेद मीन ज्यों बपुरो, पाउँ कुहारो मारयो।—सूर (शब्द०)। (ख) विरह कुहारी तन बहै घाव न बाँधे रोह।—कबीर (शब्द०)। (ग) कबिरा यह तन बन भया करम जो भया कुहारि।—कबीर (शब्द०)।

कुहासा†—संज्ञा पुं० [सं० कुहेडी] कुहरा। कुहेसा।

कुहिर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुहरा'।

कुहिरा—संज्ञा पुं० [हिं० दे०] कुहरा'।

कुही¹—संज्ञा स्त्री० [कुधि = एक पक्षी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है। कुहर। उ०—(क) बहु कुही बाज सिच्चान सँग लगर लाग लग्गत फिरे।—पृ० रा० (उ०), पृ० ११६। (ख) नीबीयै नीवी निपट दीठि कुही लौं दौरि। उठि ऊँचे नीचे दियो मन कुलग झकझोरि।—बिहारी (शब्द०)।

कुही²—संज्ञा स्त्री० [फा० कोही = पहाड़ी] घोड़े की एक जाति। टाँगन। उ०—तुरकी ताजी कुही देस खधारी जनकी। अरबी पराकी रु पर्वती कच्छी बलकी।—सूदन (शब्द०)।

कुहु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुहू'। उ०—भनइ विद्यापति सुनह अभयपति कुकु निकट परिमाने।—विद्यापति, पृ० ८८।

कुहुक—संज्ञा पुं० [अनु०] पक्षियों का मधुर स्वर। पीक।

कुहुकना—क्रि० अ० [हिं० कुहुक + ना (प्रत्य०)] पक्षियों का मधुर स्वर मे बोलना। कुहुकना। उ०—कुहँ कुहँ कोकिलें कुहुक रहे थे।—सदल मिश्र (शब्द०)।

वर्ष भर में बीतती है वे एक युगक कहलाते हैं। कहीं कहीं, जैसे चीन में, ऐसे कीड़े भी पाए जाते हैं जिनकी वर्ष भर में दो पीढ़ियाँ हो जाती हैं। ऐसे कीड़ों को द्वियुगक कहते हैं। बहुत से देशों में त्रियुगक और चतुर्युगक कीड़े तक मिलते हैं। विशेष दे० 'रेशम'।

२ रेशम का कोया। उ०—अरे हाँ पलटू कुसवारी में कीटहिं चारा देत है।—पलटू, पृ० ६८।

कुसवाहा—संज्ञा पुं० [हिं०] हिंदुओं में तरकारी, सब्जी आदि पैदा करनेवाली जाति। कोइरी।

कुसाँव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशाम्ब] दे० 'कुशाव'।

कुसाइत—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + अ० सायत] १. बुरी साइत। बुरा मुहूर्त। कुसमय। उ०—न जानिये आज किस कुसाइत में घर से निकले कि हाथ गरम होना कैसा, एक फूटी झंझी से भी भेंट न हुई।—सौ अजान० (शब्द०)। २. अनुपयुक्त समय। बेमौका।

कुसाखी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु + शाखिन् = वृक्ष] बुरा पेड़। कुवृक्ष। उ०—सठ सुधरैं सतसग तें, गए बहुत बुध भाखि। जैसे मलय प्रसग ते चदन होहिं कुसाखि।—दीनदयालु (शब्द०)।

कुसाद(पु)—वि० [हिं० कुशादा] दे० 'कुशादा'। उ०—देवे मेंहे कुसाद खाय में तग है।—पलटू०, पृ० ७७।

कुसारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसवारी] दे० कुसवारी'।

कुसाव(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] कुच्छाव। कच्छी घोड़े। उ०—गज्जनेस अवदेश साहि पल्लान कुसावं।—पृ० रा० (उ०), पृ० २८६।

कुसियां†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसी + या] दे० कुसी'। उ०—वे धरती माता की छाती में कुसिया घुसेड़कर पीड़ा नहीं देना चाहते।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० ४०।

कुसियार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ईख जो मोटी, सफेद और नरम होती है। इसमें रस अधिक होता है। इसे विशेषकर लोग चूसने के काम में लाते हैं, इससे गुड़ नहीं बनाते। पौंड़ा। उ०—माड़ी भर जोधरी, पोंरिसकुसियारे, जल्दी जल्दी बढ़ो ओजली होकर हुसियारे।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० १३८।

कुसियारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुसवारी'।

कुसी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशी] हल की फाल।

कुसी[2](पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशी] इच्छा। खुशी। उ०—बिदर पिदर जाणै नहीं, मादर बिदरा मून। रा खैअगणत रगरा दिलरी कुसी हुकूल।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५।

कुसीद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुसीदिक] १. ब्याज पर रुपया देने की रीति। सूद। ब्याज। वृद्धि। २ ब्याज पर दिया हुआ धन।

यौ०—कुसीदजीवी। कुसीदपथ। कुसीदवृद्धि।

३ रक्त चंदन। ४ सूद या ब्याज लेनेवाला व्यक्ति। सूदखोर [को०]।

कुसीद[2]—वि० आलसी। सुस्त। अकर्मण्य [को०]।

कुसीदजीवी—संज्ञा पुं० [सं० कुसीदजीविन्] सूदखोर [को०]।

कुसीदपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूद पर रुपया देना। २ वह सूद या ब्याज जो ५ प्रतिशत से अधिक हो (को०)। ३ ब्याज। सूद [को०]।

कुसीदवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋण का ब्याज [को०]।

कुसीदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋण देनेवाली स्त्री। ब्याज पर रुपया देनेवाली स्त्री [को०]।

कुसीदायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाजन की या ब्याज पर रुपए देनेवाले की पत्नी [को०]।

कुसीदिक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] सूद पर रुपया देनेवाला। महाजन।

कुसीदी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० कुसीदिन] महाजन या सूदखोर [को०]।

कुसीनार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुशीनार'।

कुसुंब—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम्भक] एक बड़ा वृक्ष जो भारत, बरमा और चीन में होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है और कोल्हू का जाठ और गाड़ियाँ बनाने के काम में आती है। इसकी लाख बहुत अच्छी होती है और अधिक दामों पर बिकती है। इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है, जो जलाने, खाने और औषध के काम में आता है। इसकी पत्तियाँ ८-१० अंगुल लंबी होती हैं और सींके में दो दो आमने सामने लगती हैं। फूल चंपा के फूल के रंग के होते हैं। इसमें दो अंगुल लंबे, नुकीले, चिकने फल लगते हैं जो क्वार कार्तिक में पकते हैं। जहाँ ये पेड़ अधिक होते हैं, जैसे अवध में वहाँ इनकी पत्तियाँ गरमी में चौपायों को खिलाई जाती हैं।

कुसुंबिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसुंब + इया (प्रत्य०)] दे० 'कुसुंब'।

कुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] १ कुसुम। बर्रे। अग्निशिखा। २ केसर। कुमकुम। ३ तपस्वी का जलपात्र। ४ स्वर्ण। सोना। ५ बाह्य प्रेम। ऊपरी या दिखावटी प्रेम (को०)।

यौ०—कसुंभराग।

कुसुंभला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम्भला] दारुहल्दी [को०]।

कुसुंभा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] १ कुसुम का रंग। २ अफीम और भाँग के योग से बना हुआ एक मादक द्रव्य।

कुसुंभा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम्भा] आषाढ़ शुक्ल पक्ष की छठ।

कुसुंभी—वि० [सं० कुसुम्भ] कुसुम के रंग का। लाल। उ०—(क) मुख तँबोल सिर चीर कुसुंभी। कानन कनक जड़ाऊ खुंभी।—जायसी (शब्द०)।

कुसुम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुसुमित] १ फूल। पुष्प। २ वह गद्य जिसमें छोटे छोटे वाक्य हों। जैसे—हे राम! दास पर दया करो। ३. आँख का एक रोग। ४. जैनियों के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के छठे अर्हत् के गणधर। ५ एक राजा का नाम। ६ मासिक धर्म। रजोदर्शन। रज।

मुहा०—कुसुम का रोग = रजस्राव का रोग।

७ छद में ठगण का छठा भेद, जिसमें लघु, गुरु, लघु, लघु (ISII) होते हैं। जैसे,—'कृपा करं'। ८ एक प्रकार का फल [को०]। ९. अग्नि का एक भेद या रूप (को०)।

कुसुम[२]—संज्ञा पुं० [कुसुम्भ, कुसुम्भक] १.दे० 'कुसुंब' । २ हनुमत् के मत से मेघ राग का एक पुत्र । यह षाडव जाति का राग है और इसके गाने का समय दोपहर है । ३.लाल रंग । जैसे—कुसुम रंग ।

कुसुम[३]—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] एक पौधा जो पाँच छह फुट ऊँचा होता है और जो रबी फसल के साथ खेतों में बीजों या फूलों के लिये बोया जाता है । बर्रे ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है एक जंगली और काँटेदार, और दूसरा बिना काँटे का । जंगली कुसुम की पत्तियों की नोकों पर काँटे होते हैं और उसके बीजों से तेल निकलता है । इसके फूल पीले, लाल, गुलाबी और सफेद होते हैं । दूसरी जाति में काँटे नहीं होते अथवा बहुत कम होते हैं । इसके बीजों से तेल और फलों से बढ़िया लाल रंग निकलता है । इसके फूल प्राय पीले या नारंगी रंग के होते हैं । कभी कभी बैंगनी या गुलाबी रंग के फूल भी पाए जाते है । पीले और लाल फूल वाले कुसुम खेतों में बीज और फूल के लिये और दूसरे रंग के फूलवाले कुसुम बगीचों में शोभा के लिये लगाए जाते हैं । इसकी डालियों के सिरे पर छोटा, गोल नुकीला ढोंड निकलता है, जिसपर पतले पतले बहुत से फूल होते हैं । जो पेड़ फूल के लिये बोए जाते हैं, उनके फूल नित्य प्रात काल चुन लिए और छाया में सुखाए जाते हैं, पर बीज के लिये बोए जाते हैं, जो पहले वृक्षों में ही लगे लगे सूख जाते हैं । चुने हुए फूल एक कपड़े में रखकर ऊपर से खार मिला हुआ जल गिराते हैं, जो पहले तो पीला होकर निकलता है, पर पीछे खार आदि मिलाने से वह लाल हो जाता है । इसका बीज कोल्हू में डालकर पेरा जाता है और उससे जो तेल निकलता है, वह खाने, जलाने और शरीर में लगाने के काम मे आता है । वैद्यक में तेल को दस्तावर माना है इसके सिवा यह कई तरह से औषधियों में काम आता है और इससे मोमजामा भी बनता है ।

कुसुमकार्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमकुंतला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम+कुन्तला] वेणी में पुष्प लगाने वाली स्त्री । उ०—नंदन की शत शत दिव्य कुसुमकुंतला ।—लहर, पृ० ६६ ।

कुसुमदल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसुमदल] फूल की पँखुरी या पत्ती । पुष्पदल । उ०—कवलि कुसुमदलि भीतरि जाता, दश अगुलि के बीच समाता ।—प्राण०, पृ० ६३ ।

कुसुमधन्वा—संज्ञा पुं०[सं० कुसुम+धन्वन्] दे० 'कुसुमबाण' (को०) ।

कुसुमपंचक—स्त्री० पुं० [सं० कुसुमपञ्चक] कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलकमल ये पाँच फूल कामदेव के बाण में कहे गए हैं (को०) ।

कुसुमपल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाटलिपुत्र । पटना नगर । २. रजस्वला स्त्री (को०) ।

कुसुमपुर—संज्ञा पुं० [सं०] पाटलिपुत्र । पटना का एक प्राचीन नाम ।

कुसुमबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । मदन (को०) ।

कुसुमरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] पराग । पुष्परेणु ।

कुसुमविचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे नगण, यगण, नगण, यगण का क्रम होता है । जैसे—नयन यही ते तुम वदनामा । हरि छवि देखी किन वसु जामा । अनुजसमेता जनकदुलारी । कुसुमविचित्रा कर फुलवारी ।

कुसुमशर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसुमबाण' (को०) ।

कुसुमसर(५)—संज्ञा पुं० [सं० कुसुमशर] कामदेव । उ०—वचन अगोचर चरित अति, नमो कुसुमसर देव ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ९६ ।

कुसुमसायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसुमबाण' (को०) ।

कुसुमस्तवक—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक का एक भेद जिसके प्रत्येक पद मे नौ या नौ से अधिक सगण होते हैं । जैसे—भजिए हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को ।

कुसुमांजन—संज्ञा पुं० [सं० कुसुमाञ्जन] जिस्ते का भस्म ।

कुसुमांजलि—संज्ञा स्त्री० [वि० कुसुमाञ्जलि] १. फूल से भरी हुई अंजली । २ षोडशोपचार पूजन में अंतिम उपचार जिसमें देवता पर हाथ की अंजुलि में फूल भरकर चढ़ाते हैं । पुष्पांजलि । ३ न्याय का एक ग्रंथ जिसे उदयनाचार्य ने बनाया है ।

कुसुमाउँह(५)†—स्त्री० पुं० [सं० कुसुमायुध, प्रा० कुसुमाउह] दे० 'कुसुमायुध' । उ०—तसु नंदन भोगी सराअ, वर भोग पुरंदर । हुअ हुआसन तेजिकति कुसुमाउँह सुंदर ।—कीर्ति०, पृ० १० ।

कुसुमाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १ वसंत । २ छप्पय का एक भेद जिसमें ६ गुरु और १४० लघु अर्थात् कुल १४६ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ६ गुरु, १३६ लघु, कुल १४२ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं । ३ बाग । बगीचा । वाटिका । उ०—अरु फूलि रहे कुसुमाकर मैं सु कहूँ पहचान की बास नहीं ।—घनानंद, पृ० ९६ ।

कुसुमागम—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ।

कुसुमादपि—क्रि० वि० [सं० कुसुमात्+अपि] फूल से भी । उ०—वह शोभा पात्र नहीं कुसुमादपि मृदुल गात्र ।—ग्राम्या, पृ० २० ।

कुसुमाधिप, कुसुमाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ चम्पा का वृक्ष २. चंपा का पुष्प (को०) ।

कुसुमायुध—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । उ०—प्रियवर' । मैं तव हृदय की नहीं जानती बात । सतापित करता मुझे कुसुमायुध दिन रात ।—शकु०, पृ० १३ ।

कुसुमाल—संज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

कुसुमावचाय—संज्ञा पुं०[सं०] पुष्पों का चयन । फूलों का चुनना (को०) ।

कुसुमावतंसक—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम+अवतन्सक] फूलों का गजरा । २. कुसुमाभरण (को०) ।

कुसुमावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों का गुच्छा । फूलों का समूह ।

कुसुमासव—संज्ञा पुं० [सं०] १. फूल का रस । मकरंद । २. मधु । पुष्पमधु ।

कुसुमित—वि० [सं०] फूला हुआ । पुष्पित ।

से यह विदित हुआ कि कुशिक वंश के द्वारा उनके वंश में क्षत्रिय धर्म का संचार होगा, तब उन्होंने कुशिक वंश को भस्म करना विचारा और वे राजा कुशिक के पास गए। बहुत दिनों तक अनेक प्रकार के कष्ट देने पर भी जब राजा और रानी में उन्होंने शाप देने के लिये कोई छिद्र न पाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर राजा कुशिक को वर दिया कि तुम्हारा पौत्र ब्राह्मणत्व लाभ करेगा।

३ कुशिक वंश का पुरुष। ४.हल की कुसी। फाल। ५ बहेड़ा ६ साल। साखू। ७.तेल की तलछट।

कुशिक[2]—वि० [सं०] जिसकी आँखें टेढ़ी मेढ़ी हों। ऐंचाताना।

कुशित—वि० [सं०] जल मिला हुआ। जलयुक्त [को०]।

कुशिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + शिवा] अमंगल सूचित करनेवाली सियारिन। उ०—मुख पे उलका लए फिरति हैं कुशिवा कारी।—श्यामा०, पृ० ५।

कुशी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुशिन्] १ वह जिसके हाथ में कुश हो। कुशवाला या कुशधारी व्यक्ति। २.वाल्मीकि ऋषि।

कुशी[2]—वि० १ कुश का बना हुआ। २ जल से युक्त [को०]।

कुशी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हल की फाली। २ एक प्रकार की दर्वी।

कुशीद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसीद'।

कुशीनगर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुशीनार'।

कुशीनार—संज्ञा पुं० [सं० कुशनगर] वह स्थान जहाँ साल वृक्ष के नीचे गौतमबुद्ध का निर्वाण हुआ था। यह स्थान गोरखपुर जिले में है और इसे आजकल कसया कहते हैं।

कुशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कवि। चारण। २ नाटक खेलनेवाला। नट। ३ गवैया। ४ वाल्मीकि ऋषि का एक नाम। ५ वार्ताप्रसारक। संवाददाता (को०)। ६ गप्प हाँकनेवाला व्यक्ति (को०)।

कुशुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुशुम्भ] १ संन्यासी का कमंडलु। २ जल का पात्र [को०]।

कुशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का घेरा। कोठला। कोठार। डेहरी।

यौ०—कुशूलधान्य। कुशूलधान्यक।

२ तुषाग्नि। ३ कड़ाही। ४ एक राक्षस। ५ बुरी पीड़ा। बुरा दर्द।

कुशूलधान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थों का एक भेद। वह गृहस्थ जिसके पास तीन वर्ष तक के लिये खाने भर को अन्न संचित हो।

कुशेश—संज्ञा पुं० [सं० कुशेशय] दे० 'कुशेशय'।

कुशेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ पद्म। कमल। २ सारस। ३ कनक चंपा। कनिआरी। ४ कुशद्वीप का एक पर्वत।

कुशोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि के लिये हाथ में लिया हुआ) कुश मिला जल।

कुशोदका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

कुश्तमकुश्ता—संज्ञा पुं० [फा० कुश्ती] उठापटक। गुत्थमगुत्था। कुश्ती। मुठभेड़। लड़ाई।

कुश्ता—संज्ञा पुं० [फा० कुश्तह] १ वह भस्म जो धातुओं को रासायनिक क्रिया से फूँककर बनाया जाय। भस्म। जैसे—अबरक का कुश्ता। चाँदी का कुश्ता। सोने का कुश्ता। २ वह जो मार डाला गया हो। निहत। ३ लाश। मृत शरीर (को०)।

कुश्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] दो आदमियों का परस्पर एक दूसरे को बलपूर्वक पछाड़ने या पटकने के लिये लड़ना। मल्ल युद्ध। पकड़।

यौ०—कुश्तीबाज = कुश्ती लड़नेवाला।

क्रि० प्र०—लड़ना।—जीतना।—हारना।—करना।—होना।

मुहा०—कुश्ती में बढ़ा रहना = कुश्ती में जीत होना। कुश्ती बराबर रहना या छूटना = कुश्ती में किसी का न हारना। दोनों पक्षों का बराबर रहना। कुश्ती मारना = कुश्ती जीतना। कुश्ती में दूसरे को पछाड़ना। कुश्ती बदना = कुश्ती लड़ने का निश्चय करना। कुश्ती माँगना = (किसी को) अपने साथ कुश्ती लड़ने के लिये कहना। कुश्ती लड़ना = (किसी को) शिक्षा देने के लिये (उससे) लड़ना। कुश्ती खाना = कुश्ती में हार जाना। कुश्तमकुश्ता = मुठभेड़। लड़ाई।

कुश्तीबाज—वि० [फा० कुश्तीबाज] कुश्ती लड़नेवाला। लड़ंता। पहलवान।

कुश्तोखून—संज्ञा पुं० [फा०] खूनखराबा। मारकाट। रक्तपात। [को०]।

कुषल—वि० [सं०] दे० कुशल' [को०]।

कुषाकु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। दिनकर। २ अग्नि। आग। ३ वानर। बंदर। कपि [को०]।

कुषाकु[2]—वि० १ जलता हुआ। तप्त। २ बुरा। खराब। घृणित [को०]।

कुषित—वि० [सं०] जलमिश्रित। पानी मिला हुआ [को०]।

कुषीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १.एक ऋषि का नाम। २ एक पक्षी।

कुषीद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुसीद' [को०]।

कुषीद[2]—वि० तटस्थ। उदासीन [को०]।

कुषुंभ—संज्ञा पुं० [सं० कुषुम्भ] कीड़ों की वह थैली या कोश जिसमें उनका विष रहता है।

कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोढ़ २ कुट नामक ओषधि। ३ कुड़ा नामक वृक्ष। ४ निर्झर का गड्ढा (को०)।

कुष्ठकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] भुईं खेखसा नाम की लता। मार्कंडिका। भूम्याहुल्य।

कुष्ठगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ठगन्धि] एलुआ।

कुष्ठघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] हितावली नाम की ओषधि।

कुष्ठघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर। काकोदुंबरिका।

कुष्ठनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरीश नामक वृक्ष [को०]।

कुष्ठसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

कुष्ठहंता—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठहन्तृ] हस्तिकंद नामक ओषधि (को०)।

कुष्ठहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ठहन्त्री] बकुची [को०]।

कुष्ठहृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ खैर का पेड़ २ विड्खदिर। ३ कुष्ठनाशक।

कुष्ठा– संज्ञा स्त्री० [सं०] टोकरी का मुँह।

कुष्ठारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्कपत्र। २. गंधक। ३. परवल। ४. दे० 'कुष्ठहृत्'।

कुष्ठी—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठिन्] [स्त्री० कुष्ठिनी] वह जिसे कोढ़ हुआ हो। कोढ़ी।

कुष्मन– संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्तन। काटना। २. पत्र। पत्ता (को०)।

कुष्मांड – संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] १. कुम्हड़ा। २. एक प्रकार के देवता जो शिव के अनुचर हैं। ३. जरायु। गर्भस्थली।

पर्या०—कुष्मांड नवमी = कार्तिक शुक्ल नवमी। इस दिन कुम्हड़े में स्वर्ण आदि रखकर दान करते हैं।

कुष्मांडक– संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्डक] दे० 'कुष्मांड' (को०)।

कुष्मांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्माण्डी] १. पार्वती का नाम। २. एक ऋचा। दे० 'कूष्मांडी'। ३. यज्ञ में प्रयुक्त क्रिया वा कार्य। ४. काशीफल। कुम्हड़ा (को०)।

कुसंग– संज्ञा पुं० [सं० कुसङ्ग] बुरे लोगों का साथ। बुरी सोहबत। उ०—उपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।—मानस, ४।१५।

कुसंगति—संज्ञा स्त्री० [सं० कुसङ्गति] बुरों का संग। बुरे लोगों के साथ उठना बैठना। उ०—को न कुसंगति पाइ नसाई। —मानस, २।२४।

कुसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अंतःकरण में अयथार्थ या निषिद्ध बात का प्रभाव जिससे बुद्धि ठीक निश्चय न कर सके या मन अच्छे कामों की ओर न जाय। चित्त में बुरी बातों का जमना। बुरा संस्कार।

कुस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुश] दे० 'कुश'। उ०—दुरवासा दुरजोधन पठयो पांडव अहित बिचारी। साक पत्र लै सबै अघाए न्हात भजे कुस डारी।— सूर०, १।१२२।

कुसगुन– संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० सगुन] १. बुरा सगुन। असगुन। कुलक्षण। उ०—कुसगुन लंक अवध अति सोकू।—तुलसी (शब्द०)।

कुसब्द(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुशब्द] बुरे शब्द। उ०—तजहु कुसब्द बालु सुभ बानी, अपने मारग चलिये। जग० बानी, पृ० २४।

कुसमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा समय। २. वह समय जो किसी कार्य के लिये ठीक न हो। अनुपयुक्त अवसर। ३. नियत से आगे या पीछे का समय। ४. संकट का समय। दुःख के दिन।

कुसमल(पु)— संज्ञा पुं० [सं० कुश्मल] दे० 'कश्मल'। उ०—सकल भुवन सब आतमा, निर्विष करि हरि लेइ। पड़दा है सो दूरि करि, कुसमल रहण न देइ।—दादू०, पृ० ४५२।

कुसमाज(पु) —संज्ञा पुं० [सं० कु + समाज] बुरा समाज। बुरे लोगों का साथ या सोहबत। उ०—बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु। होहि राम को, नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८।

कुसमेषु(पु) —संज्ञा पुं० [सं० कुसुमेषु] कामदेव। पुष्पधन्वा। उ०—छूटहि अलकावलि बदन, मोह चढ़ी कमान। जाल रोपि कुसमेषु जनु, मारन चाहति प्रान।—चित्रा०, ८५।

कुसयारी- –संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुसवारी'।

कुसर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पानीबेल या मूसल नामक लता की जड़ जो दवा के तौर पर काम में आती है।

कुसर[2](पु)†—वि० [सं० कुशल] दे० 'कुशल'। उ०—तुमरी कुसर कुमर सदा ब्रज मैं नित है हो।—घनानंद, पृ० १९३।

यौ०—कुसरखेम = कुशलक्षेम। उ०—ब्रज मैं कुसरखेम तो आहि। कारन कवन कहहु किन ताहि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१९।

कुसरात†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुशलात] दे० 'कुशलात'। उ०— चाहे निरवाहै नित हित कुसरात कौं। –घनानंद, पृ० ६२।

कुसरा(पु)†—वि० [सं० कुशलिन्] दे० 'कुशली'। उ०—गोवरधन को मूरति दुसरी। श्री गोविंद चंद हित कुसरी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

कुसल(पु)†—वि० संज्ञा पुं० [सं० कुशल] दे० 'कुशल'।

कुसलई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + ई (प्रत्य०)] निपुणता। चतुराई। उ०—जो कहुँ सिखई आदि सुनैनी कला कुसलई सारी। तौ मनुजन की कौन चलाई मोहित होयँ चतुरभुज-धारी।—प्रताप (शब्द०)।

कुसलछेम† कुसलछेमा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुशलक्षेम'।

कुसलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल, हिं० कुसल + आई (प्रत्य०)] १. कुशलता। निपुणता। २. कुशलक्षेम। खैरियत। आनंद मंगल। उ०—कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई।—तुलसी (शब्द०)।

कुसलात(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुशलात'।

कुसलायत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुसल + आयत (प्रत्य०)] दे० 'कुशलता', 'कुशलात'। उ०—वा तन कुसलायत तणी बालम पूछूँ बात।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २५।

कुसली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशली] दे० 'कुशली'।

कुसली[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० कसली अथवा सं० कोश = आवरण, खोल + हिं० ली (प्रत्य०)] १. आम का गुठली। २. एक पकवान जो आम की गुठली के आकार का होता है और जिसके अंदर मीठा पूर या कूरा भरा रहता है। गोझा। पिराक।

कुसवा—संज्ञा पुं० [सं० कुश] जड़हन का एक रोग, जिसमें उसके पत्ते पीले पड़ जाते हैं, और उनका रंग खैर के ऐसा लाल हो जाता है। खैरा।

कुसवारी—संज्ञा पुं० [सं० कोश = हिं० कुस + वारी (प्रत्य०)] १. रेशम का जंगली कीड़ा जो बेर और पियासाल आदि पेड़ों पर कोया बनाकर उसके अंदर रहता है।

विशेष—इस कीड़े के जीवन में चार अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें युग कह सकते हैं। सब के पहले यह अंडे के रूप में रहता है। अंडे से निकलकर यह कमला की तरह का कीड़ा हो जाता है। फिर उसमें पक्षावरण दिखाई पड़ते हैं और यह तागे निकालता है। अंत में वह कोए से निकलकर फतिंगा होकर उड़ने लगता है, अंडे देता है और मर जाता है। जिन कीड़ों की ये चार अवस्थाएँ या युग होते

कुवाच्य[1]—वि० [सं०] जो कहने योग्य न हो। गंदा। बुरा।

कुवाच्य[2]—संज्ञा पुं० कठोर शब्द। दुर्वचन। गाली।

कुवाट(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। दरवाजा।—(डिं०)।

कुवाट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दरवाजे का पल्ला [को०]।

कुवाण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण] धनुष।—(डिं०)।

कुवा—वि० [सं०] परनिंदक। नीच। निम्न कोटि का [को०]।

कुवार[1]—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी = कुवार] [वि० कुवारी] आश्विन का महीना। असोज। उ०—आइ सरद रितु अधिक पियारी। नव कुवार कातिक उजिआरी।—जायसी ग्र०, पृ० ३५०।

कुवार[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] कुमार। पुत्र। उ०—फिर वदनेस कुवार विमेसु फनेपत्नी, रैठें इकले जाइ करन मसलति भली।—सुजान, पृ० १२।

कुवारी[1]—वि० [सं० कुमारी] जिसका विवाह न हुआ हो। कुमारी। उ०—सुरति कुवारी कन्या हंसा संग व्याहिये।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ५।

कुवारी[2]—वि० [हिं० कुवार] कुवार के महीने में होनेवाला। कुवार का। जैसे—कुवारी फसल। कुवारी धान।

कुवासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट इच्छा। बुरी इच्छा।

कुवाहुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँट। उष्ट्र [को०]।

कुविंद—संज्ञा पुं० [सं० कुविन्द] जुलाहा। कोरी।

कुविचार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट विचार। बुरा विचार।

कुविचारी—वि० [सं० कुविचारिन्] [स्त्री० कुविचारिणी] बुरे विचार वाला। जिसके विचार बुरे हों।

कुविसन—संज्ञा पुं० [सं० कु + व्यसन] बुरा व्यसन। बुरी आदत। पाप कर्म। उ०—कुविसन करै कुसंगति जाइ। खोवै दाम अमल बहु खाइ।—अर्ध०, पृ० ३२।

कुवेणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुवेणी' [को०]।

कुवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तुरत पकड़ी गई मछलियों के रखने की टोकरी। मछली रखने की डलिया। २. बिना तरीके बँधी हुई वेणी। सिर के बेतरतीब केशगुच्छ [को०]।

कुवेर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देवता, जो इंद्र की नौ निधियों के भंडारी और महादेव जी के मित्र समझे जाते हैं।

विशेष—यह विश्रवा ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। इनकी माता का नाम इलविला था। कहते हैं, इन्होंने विश्वकर्मा से लंका बनवाई थी। पर जब रावण ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया तब इनके तपस्या करने पर ब्रह्मा ने इन्हें देवता बनाकर उत्तर दिशा का राज्य दे दिया और इंद्र का भंडारी बना दिया। यह समस्त संसार के स्वामी समझे जाते हैं। इनके एक आँख तीन पैर और आठ दाँत हैं। देवता होने पर भी इन का वैसा पूजन नहीं होता। कोई कोई इन्हें पुलस्त्य ऋषि का भी पुत्र बतलाते हैं।

यौ०—कुवेराचल। कुवेराद्रि। कुवेरदिशा = उत्तरदिशा। कुवेर-बांधव = शिव।

पर्या०—त्र्यंबकसखा। यक्षराज। गुह्यकेश्वर। मनुष्यधर्मा। धनद। राजराज। धनाधिप। किन्नरेश। वैश्रवण। नर-वाहन। यक्ष। एकपिंग। ऐलविल। श्रीद। पुण्यजनेश्वर। हर्यक्ष। अलकाधिप।

२ जैन मत में वर्तमान अवसर्पिणी (कालगति) के १९वें अर्हत् का एक उपासक। ३ तुन का पेड़।

कुवेर[2]—वि० १ बुरा। खराब। २ बुरे या बेढंगे होंठवाला [को०]।

कुवेराचल—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत का एक नाम।

कुवेराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

कुवेल—संज्ञा पुं० [सं०] पद्म। कमल। पद्म [को०]।

कुव्वत—संज्ञा स्त्री० [अ० कुव्वत] दे० 'कूवत'। उ०—पंडत कहे आई मौत गई कुव्वत अकल की।—दक्खिनी०, पृ० ४७।

कुशंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कशण्डिका] दे० 'कुशकंडिका'।

कुश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशा, कुशी] १ काँस की तरह की एक पवित्र और प्रसिद्ध घास। दाभ। डाभ। दर्भ। उ०—कुश किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सग मंजु मनोज तुराई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी पत्तियाँ नुकीली, तीखी और कड़ी होती हैं। प्राचीन काल में यज्ञों में इसका बहुत उपयोग होता था। इसकी रस्सियाँ ईंधन लपेटने, जुआ बाँधने आदि कामों में आती थीं। अब भी कुश पवित्र माना जाता है और कर्मकांड तथा तर्पण आदि में इसका उपयोग होता है।

पर्या०—कुथ। दर्भ। पवित्र। याज्ञिक। वर्हि। ह्रस्वगर्भ। कुतुप। शूच्यग्र।

२ जल। पानी। ३ एक राजा जो उपरिचर वसु का पुत्र था। ४ रामचंद्र का एक पुत्र। ५ पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। ६ वलाकाश्व का पुत्र। ७ फाल। कुसिया। कुसी (हल की)।

कुश[2]—वि० १ कुत्सित। नीच। २ उन्मत्त। पागल।

कुशकंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशकण्डिका] वेदी पर या कुंड में अग्निस्थापन करने की आनुष्ठानिक क्रिया, जिसका विधान ऋग्वेदियों, यजुर्वेदियों और सामवेदियों के लिये भिन्न भिन्न है। इसमें होम करनेवाला कुशासन पर बैठ दाहिने हाथ में कुश लेकर उसकी नोक से वेदी पर रेखा खींचता जाता है।

कुशकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २ राजा कुशध्वज।

कुशचीर—संज्ञा पुं० [सं०] कुश का बना हुआ वस्त्र (को०)।

कुशद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक, जो चारों ओर घृतसमुद्र से घिरा है।

कुशध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १ ह्रस्वरोम राजा के पुत्र और सीरध्वज जनक के छोटे भाई। इनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को व्याही थीं। २. एक ऋषि जो बृहस्पति के पुत्र और वेदवती के पिता थे।

कुशन—संज्ञा पुं० [अं०] मोटा गद्दा।

कुशनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुश का पुत्र।

कुशप—संज्ञा पुं० [सं०] जल पीने का पात्र।

कुशपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] फोड़ा चीरने का एक औजार (वैद्यक)।

कुशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निपूर्ण [को०] ।

कुशपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष [को०] ।

कुशप्लवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

कुशमुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश की बनी हुई अँगूठी । पवित्री । पैंती । उ०—कुशमुद्रिका समिधैं स्रुवा कुश औ कमंडल को लिये ।—केशव (शब्द०) ।

कुशय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीने का बरतन । आबखोरा [को०] ।

कुशल¹—वि० [सं०] [स्त्री० कुशला] १ चतुर । दक्ष । प्रवीण । उ०—पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २ श्रेष्ठ । अच्छा । भला । ३ पुण्यशील । ४ प्रसन्न । खुश (को०) ।

कुशल²—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशला, कुशली] १ क्षेम । मंगल । खैरियत । राजी खुशी । उ०—अब कहु कुशल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन अंगद अस कहई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—कुशलक्षेम । कुशलमंगल ।

२ वह जिसके हाथ में कुश हो । ३. शिव का एक नाम । ४ कुश द्वीप का निवासी । ५ गुण (को०) ६. चतुरता । चतुराई (को०) ।

कुशलकाम—वि० [सं०] कुशल की कामना रखनेवाला । राजीखुशी चाहनेवाला [को०] ।

कुशलक्षेम—संज्ञा पुं० [सं०] १ राजी खुशी । खैर आफियत ।

कुशलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चतुराई । निपुणता । चालाकी । २ योग्यता । प्रवीणता । ३ क्षेम । कुशलाई [को०] ।

कुशलप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] किसी का कुशल मंगल पूछना ।

क्रि० प्र०—करना ।—पूछना ।

कुशलमंगल—संज्ञा पुं० [सं० कुशलमङ्गल] दे० 'कुशलक्षेम' ।

कुशलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुशल] कल्याण । क्षेम । खैरियत । कुशल । उ०—मेरो कह्यो सत्य कै जानो । जो चाहो ब्रज की कुशलाई तो गोवर्धन मानो ।—सूर (शब्द०) ।

कुशलात(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + वार्ता, या सं० कुशल + हिं० आत (प्रत्य०)] कुशल समाचार । मंगल समाचार । खैरियत । उ०—(क) दच्छ न कछु पूछी कुशलाता ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मधुकर ल्याए योग सँदेसो । भली स्याम कुशलात सुनाई सुनतहि भयो अँदेसो ।——सूर (शब्द०) ।

कुशली¹—वि० [कुशलिन्] [स्त्री० कुशलिनी] १ कल्याणयुक्त । बकुशल । २. नीरोग । तंदुरुस्त । ३ निम्न जाति का । छोटी जाति का [को०] ।

कुशली²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्मतक या आवटा नामक वृक्ष । २ लोना या अमलोनी नामक साग । क्षुद्राम्लकी ।

कुशवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वन जो ब्रज में गोकुल के पास है ।

कुशवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुसवारी' ।

कुशस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] होम करने के पहले यज्ञभूमि या यज्ञकुंड के चारों ओर कुश बिछाने का काम । कुशकंडिका ।

कुशस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के एक स्थान का नाम जिसे संभवत कन्नौज कहते हैं ।

कुशस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वारका का एक नाम । २. कुशावती नामक नगरी जो विंध्य पर्वत पर थी और जहाँ रामचंद्र जी के पुत्र कुश राज्य करते थे ।

कुशहस्त—वि० [सं०] श्राद्ध, तर्पण या दानादि करने के लिये उद्यत ।

कुशांगुरीय—संज्ञा पुं० [सं० कुशाङ्गुरीय] कुश की बनी अँगूठी । पैंती पवित्री [को०] ।

कुशांगुलीय—संज्ञा पुं० [सं० कुशाङ्गुलीय] कुशमुद्रिका । पवित्री [को०] ।

कुशांब—संज्ञा पुं० [सं० कुशाम्ब] निमि वंशीय राजा कुश का पुत्र जिसने पिता के आदेश से कौशांबी नगरी बनाई थी ।

कुशांबु—संज्ञा पुं० [सं० कुशाम्बु] १ दे० 'कुशांब' । २ कुश के अगले भाग से टपकता हुआ पानी ।

कुशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुश । २ रस्सी । ३ एक प्रकार का मीठा नीबू । ३ लगाम । बल्गा (को०) । ४ लकड़ी का टुकड़ा । काष्ठखंड (को०) ।

कुशाकर—संज्ञा पुं० [सं० कुश + आकार] यज्ञ की अग्नि [को०] ।

कुशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वानर । बंदर [को०] ।

कुशाग्र—वि० [सं०] कुश की नोक की तरह तीखा । तीव्र । तेज । नुकीला । जैसे—कुशाग्रबुद्धि = तीव्र बुद्धि रखनेवाला ।

कुशादगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] फैलाव । विस्तार । चौड़ाई ।

कुशादा—वि० [फा० कुशादह्] [संज्ञा कुशादगी] १. खुला हुआ । आवरणरहित । २ विस्तृत । लंबा चौड़ा । बुलंद ।

मुहा०—कुशादा करना = (१) खोलना । (२) फैलाना । चौड़ा करना ।

कुशादादिल—वि० [फा०] विशाल हृदयवाला । महान् ।

कुशारणि—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वासा ऋषि ।

कुशावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रामचंद्र जी के पुत्र कुश की राजधानी का नाम ।

कुशावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिद्वार के पास एक तीर्थ का नाम । २ एक ऋषि का नाम ।

कुशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिसकी राजधानी विशाल थी । यह सहदेव का पुत्र और सोमदत्त का पिता था ।

कुशासन¹—संज्ञा पुं० [सं० कुश + आसन] कुश का बना हुआ आसन । कुश की चटाई ।

विशेष—शास्त्रों में दान, यज्ञ, श्राद्ध, उपासना आदि के समय कुशासन पर ही बैठने का विधान है ।

कुशासन²—संज्ञा पुं० [सं० कु + शासन] बुरा शासन । अव्यवस्थित राज्य । अन्यायपूर्वक किया जानेवाला शासन ।

कुशिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीन आर्यवंश । विश्वामित्र जी इसी वंश के थे । २ एक राजा जो विश्वामित्र के पितामह और गाधि के पिता थे ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि जब च्यवन ऋषि को ध्यान

अच्छी नस्ल का घोड़ा (को०)। ३. नाखून मे होनेवाला एक रोग (को०)। ४ शक्तिपूजक (को०)।

कुलीनक¹—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली मूँग या मुद्ग [को०]।

कुलीनक²—वि० उच्च वंश मे उत्पन्न। कुलीन [को०]।

कुलीनस—संज्ञा पुं० [सं०] [सं०] पानी। जल। वारि [को०]।

कुलीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ केकडा। २ कर्क राशि [को०]।

कुलीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलीर' [को०]।

कुलीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिश' [को०]।

कुलुक—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर जमनेवाली मैल। जिह्वामल [को०]।

कुलुक्कगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलुक्कगुञ्जा] लूक। लुकाठी। उल्मुक [को०]।

कुलुफ—संज्ञा पुं० [अ० कुफल]—ताला। उ०—(क) नैना न रहैं री मेरे हटके। कछु पढ़ि दिये सखी यहि ढोटा घूँघरवारे लटके। कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर मे पलक संदूक पट अटकें।—सूर (शब्द०)। (ख) कुलुफ मैं कुलुफ करी है मति मेरी छनि एरी अलि कहा करो कल ना परति है।—दीन ग्रं०, पृ० १०।

कुलुसा—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की मछली जो सिंधु, संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम मे पाई जाती है। लंबाई मे यह पाँच फुट तक होती है इसे लोग तालावों में पालते हैं। कुरसा।

कुलू¹—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] कुल्हू नामक प्राचीन देश, जो कांगड़े के पास है।

कुलू²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़, जिसकी मुलायम छाल के पर्त निकलते हैं। गुलु।

विशेष—इसकी पत्तियाँ १०–११ इंच लंबी होती हैं और टहनियो के सिरो पर गुच्छों में होती हैं। इसके फूल छोटे छोटे और गंधकी रंग के होते हैं। यह पेड़ नैपाल की तराई, बुंदेलखंड तथा बंगाल मे होता है। इसमे से एक प्रकार का गोंद निकलता हैं जिसे कतीरा या कतीला कहते हैं। वि० दे० 'गुलु'।

कुलूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलू¹'।

कुलेल—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्लोल] क्रीड़ा। कलोल। उ०—कोउ सँग वरछीन साधि हँसि करत कुलेलन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

कुलेलना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० हिं० कुलेल + ना (प्रत्य०)] क्रीड़ा करना। आमोद प्रमोद करना। उ०—देखि सरोवर हँसै कुलेली। पद्मावति सँग कहहिं सहेली।—जायसी (शब्द०)।

कुलोद्भव—वि० [सं०] १ कुलविशेष में उत्पन्न्। २. कुलीन [को०]।

कुलोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] कुल का नाम। कुलगत नाम [को०]।

कुल्टू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोट'।

कुल्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुल्थी'।

कुल्फ(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलुफ'। उ०—कोई माल इकट्ठा करता है कोई कुंजी कुल्फ लगाता है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

कुल्फ²—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग। २. गुल्फ। टखना [को०]।

कुल्फी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलफी'। उ०—मेवे, फल, मिठाई, वर्फ की कुल्फी सब मेजो पर सजा दिए गए। गबन, पृ० १०३।

कुल्माष—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुलथी। २ उर्द। माष। ३. बोरो धान। ४ वह अन्न जिसमे दो भाग या दल हों, जैसे—चना, उर्द, मटर आदि। ५ वन कुलथी। ६ सूर्य का एक पारिपार्श्वक। ७ खिचड़ी। ८ कांजी ९ एक प्रकार का रोग।

कुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिष्ठित व्यक्ति। आदरणीय मनुष्य (को०)। २ मित्रता का प्रकाशन (समवेदना, बधाई आदि) (को०)। ३ हड्डी। अस्थि (को०) ४ डलिया। छाज (को०)। ५ मांस (को०)। ६ अन्न नापने का एक परिमाण या पैमाना। उ०—कुल्य अनाज नापने का एक साधन छोटी टोकरी के सदृश था।—पूर्व०, म० पृ० १२३।

कुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृत्रिम नदी। नहर। २ छोटी नदी। नाला। ३ पनाला नाली। ४ कुलीन स्त्री। ५ जीवंती नामक ओषधि। ६ आठ द्रोण के बराबर की एक प्राचीन तोल (को०)। ७ साध्वी स्त्री (को०)। ८. परिखा। खाई (को०)।

कुल्यावाप—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तकालीन भूमि नापने की एक माप।—पूर्व० म० भा०, पृ० १२३।

कुल्ल¹—संज्ञा पुं० [देशी] कंठ। गला। ग्रीवा [को०]।

कुल्ल²(पु)—वि० [अ० कुल] सब। समस्त। पूरा। तमाम। उ०—(क) मुजलिम जोरे ध्यान कुल्ल को हरि सों रहैं लै राचे।—सूर०, १।१४२। (ख) हँसे स्याम बलभद्र अक्रूर कुल्ली।—पृ० रा०, २।४७७।

कुल्लह—संज्ञा पुं० [सं० कुलाह] दे० कुलाह'। उ०—रंग रंग के सजे तुरंगा। कुल्लह समुद्र कुमैत सुरंगा।—हम्मीर०, पृ० ३।

कुल्ला¹—संज्ञा पुं० [सं० कवल] [स्त्री० कुल्ली] १ मुँह को साफ करने के लिये उसमे पानी लेकर इधर उधर हिलाकर फेंकने की क्रिया। गरारा।

क्रि० प्र० —करना।—फेंकना।—होना।

२ उतना पानी जितना एक बार मुँह मे लिया जाय।

कुल्ला²—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] ईख के खेत की वह हलकी सिंचाई, जो अंकुर निकलने पर होती है।

कुल्ला³—संज्ञा पुं० [अ० कुल्लह] घोड़े का एक रंग जिसमे पीठ की रीढ़ पर बराबर काली धारी होती है। २ इस रंग का घोड़ा

कुल्ला⁴—संज्ञा पुं० [फ़ा० काकुल, मि० स० 'कुंतल'] [स्त्री० कुल्ली] बाल। जुल्फ। काकुल। पट्टा।

कुल्ला⁵—संज्ञा पुं० [अ० कुल्लह] १ शृंग। चोटी। २ किसी भी वस्तु का शीर्षभाग। ३ तलवार की मूठ। कब्जा [को०]।

कुल्ली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्ला] १ मुँह को साफ करने के लिये उसमे पानी लेकर और इधर उधर हिलाकर फेंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उतना पानी जितना एक बार मुँह मे लिया जाय।

कुल्ली²—संज्ञा स्त्री० [फा० काकुल, मि० सं० कुन्तल] बाल। जुल्फ। पट्टा। उ०—विश्वामित्र ने आकर उस यज्ञ की रक्षा के लिये कुल्लियोंवाला राम माँगा।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुल्लुक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस। वि० दे० 'बाँसिनी'।

कुल्लूक—संज्ञा पुं० [सं०] मनुसंहिता (मनुस्मृति) के टीकाकार जो दिवाकर भट्ट के पुत्र थे। कुल्लूक भट्ट।

कुल्ला—संज्ञा पुं० [देशी/कुल्ल] कंठ। ग्रीवा। गला।

कुल्वक—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर जमी हुई मैल। जिह्वामल [को०]।

कुल्हइया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुल्ही'। उ०—छोटी छोटी सीस ल्टुरिया अमरावलि जनु आई री। तैसी ननिक कुल्हइया तापै देखत अति सुखदाई री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८३।

कुल्हड—संज्ञा पुं० [सं० कुल्हर] [स्त्री० कुल्हिया] पुरवा। चुक्कड।

कुल्हरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुल्हाडी'। उ०—काटि हैं जमदूत कुल्हरी, अवई नहि कोई काम।—जग० बानी, पृ० ३०।

कुल्हा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कूल्हा'।

कुल्हाड—संज्ञा पुं० दे० 'कुल्हाड'। उ०—साखी कंध कुल्हाड मसाल, मनक दुनिया भाग। गरीबदास शाह यों कहैं बखशो अबकी बार।—कबीर मं०, पृ० १२०।

कुल्हाडा—संज्ञा पुं० [सं० कुठार] [स्त्री० अल्पा० कुल्हाडी] एक औजार, जिससे बढ़ई आदि पेड़ काटते और लकडी चीरते हैं। कुठार। टाँगा।

विशेष—यह बारह चौदह अंगुल लंबा और चार छह अंगुल चौड़ा लोहे का होता है, जिसके एक सिरे पर, जो तीन चार अंगुल मोटा होता है, एक लंबा, गोला छेद, इंच सवा इंच व्यास का होता है जिसमें लकडी का दस्ता लगाया जाता है, और दूसरा सिरा पतला, लंबा और धारदार होता है।

कुल्हाडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्हाड़ा का स्त्री० अल्पा०] १. छोटा कुल्हाड़ा। कुठार। टाँगी। २. बसूला (लश०)।

कुल्हार—संज्ञा पुं० [हिं० कुल्ह] वह स्थान जहाँ ईख पेरने का कोल्हू चलता है। कोल्हू चलने का स्थान। उ०—चलत कुल्हार जबै कोल्हुन पर चढ़त धाय कोउ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४८।

कुल्हारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुल्हाडा'। उ०—जल मोंहे मैं चहुँ दिसि पैरचो पाउँ कुल्हारो मारो।—सूर०, १।१५२।

मुहा०—पाँव में कुल्हारा मारना = अपने हाथों अपनी हानि करना।

कुल्हिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुल्हड] छोटा पुरवा। छोटा कुल्हड़। चुक्कड़। उ०—तोरै चोंच न कीर तू यह पजर है लोह। खुलिहै खुले कपाट के तजि कुल्हिया को मोह।—दीनदयालु (शब्द०)।

मुहा०—कुल्हिया मे गुड़ फोडना = कोई कार्य इस प्रकार करना जिसमें किसी को कानों कान खबर न हो। उ०—सतगुरु कबीर विचारि कहैं, क्या कुल्हिए में गुड़ फोरना जी।—कबीर० रे०, पृ० ४७।

कुल्हू—संज्ञा पुं० [सं० कुलूत] एक देश का नाम जो काँगडे के पास है। कुलू।

कुल्हैया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० कुल्ही'। उ०—नंददास बलिहारी छबि पै धारी नवल पाग बनी नवल कुल्हैया—नंद० ग्रं०, पृ० ३७३।

कुवग—संज्ञा पुं० [सं० कुवङ्ग] सीसा नाम की धातु।

कुव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल २. फूल।

कुवज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल से उत्पन्न। ब्रह्मा। उ०—सुत मरीचि, नाती कुवज, देव दनुज के तात। तपत यहाँ परजापती, सहित सुरन की मात।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुवट—वि० [सं० कु + वर्त्म, प्रा० कुवट्ट] कुमार्ग। खराब रास्ता। उ०—तिमिर वीर गवन कुवट। त्रिगुन तेज रवि त्रास।—पृ० रा०, २५।३०८।

कुवत्त—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवार्ता, प्रा० कुवत्ता] बुरी बात न कहने योग्य अनुचित बात। उ०—बुल्लिव ब्रह्म कुमार, अस कुवत्त किम बुझियौ।—पृ० रा०, पृ० १६६।

कुवम—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। रवि। आदित्य [को०]।

कुवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक वर्षा होना। अतिवृष्टि।

कुवल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमुदिनी। कुई। २. मोती। ३ जल। पानी। ४ साँप का पेट [को०]।

कुवलय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०कुवलयिनी] १ नीली कोई। कोका। २ नील कमल। ३ भूमडल। ४.एक प्रकार के असुर।

कुवलयानंद—संज्ञा पुं० [सं० कुवलयानन्द] संस्कृत का एक प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ जिसकी रचना अप्पय दीक्षित ने, जो द्रविण थे, की थी। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

कुवलयापीड—संज्ञा पुं० [सं०] एक हाथी का नाम, जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये धनुषयज्ञ के मंडप के द्वार पर रख छोड़ा था। इसे कृष्णचंद्र ने मार डाला था।

कुवलयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ धुंधुमार राजा का एक नाम। २ प्रतर्दन का एक नाम। ४ ऋतुध्वज राजा का नाम। ४ एक घोड़ा, जिसे ऋषियो का यज्ञ विध्वस करनेवाले पातालकेतु को मारने के लिये पुराणों के अनुसार सूर्य ने पृथिवी पर भेजा था।

कुवलयित—वि० [सं०] नील कमलोंवाला। नील कमल युक्त [को०]।

कुवलयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.नीली कुई का फूल और पौधा। २ नीले कमल से व्याप्त स्थान [को०]।

कुवलयी—वि० [सं० कुवलयिन्] १. नील कमल से भरा हुआ कुवलयवाला [को०]।

कुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव] दे० 'कुआँ'।

कुवाँटा—संज्ञा पुं० [सं० कु + पाटल] जंगली गुलाब।

कुवा—संज्ञा पुं० [कूप प्रा० कूव] दे० कुआँ। उ०—नाना अपआप सागर हुवा, काहे के कारण गोता है कुवा।—दक्खिनी, पृ० २२।

कुवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] अयोग्य बात। दुर्वचन। गाली।

कुलराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वंश के सरदारों का राज्य। किसी एक कुल के नायकों द्वारा चलनेवाला शासन। सरदारतंत्र।

विशेष—चाणक्य के अनुसार ऐसे राज्य में स्थिरता रहती है। अराजकता का भय नहीं रहता और ऐसे राज्य को शत्रु भी जल्दी नहीं जीत सकता।

कुलवंत—वि० [सं०कुलवन्त] [स्त्री० कुलवन्ति,(पु) कुलवन्ती] कुलीन। उ०—(क) कुलवंत निकारहिं नारि सती। —तुलसी (शब्द०) (ख) जोवन चंचल ढीठ है करै निकाजै काज। धनि कुलवंती जो कुलधरै कै जोवन मन लाज। —जायसी (शब्द०)।

कुलवान—वि० [सं० कुलवत्] [स्त्री० कुलवती] कुलीन। अच्छे वंश का अच्छे। खानदान का।

कुलसंकुल—संज्ञा पुं० [सं० कुलसङ्कुल] एक नरक का नाम।

कुलसंघ—संज्ञा पुं० [सं० कुलसङ्घ] कुलीन तंत्र राज्य का शासक मंडल। वि० दे० 'कुलराज्य'।

कुलस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] वज्र। उ०—याण मरकट हुलस गुरज रिमसिर पड़े। झट कुलस हूत गिर जांण टोला झड़ै। —रघु० रू०, पृ० १८४।

कुलशतावर ग्राम—संज्ञा पुं०[सं०] कौटिल्य के अनुसार वह ग्राम जिसकी आबादी सौ से अधिक हो।

कुलसन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

कुलस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल की नारी। साध्वी स्त्री [को०]।

कुलस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वंश की उन्नति। २ वंशपरंपरा से चली आती प्रथा [को०]।

कुलह—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] १ टोपी। उ०—पीत कुलह राजै, चूनरी सुपीत साजै, लहंगा पीत, कचुकी पीत सोहै तन गोरै। —नंद० ग्रं०, पृ० ३७७। २ शिकारी। ३ चिड़ियों की आँखों पर का ढक्कन। टोपी। अँधियारी। उ०—बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमति कुविहँग कुलह जनु खोली। —तुलसी (शब्द०)।

कुलहवरा†—संज्ञा पुं० [फा० कुलाह+वाला] बच्चों के पहनने का एक प्रकार का कंटोप, जिसके नीचे पीछे की ओर पैर तक लटकता हुआ लंबा कपड़ा चुनकर सिला रहता है।

कुलहा(पु)†—संज्ञा पुं० [फा०-कुलाह] १ टोपी। २ शिकारी चिड़ियों की आँख ढकने की अँधियारी। ढोका। उ०—बगुला झपटै बाज पै, बाज रहै सिर नाय। कुलहा दीने पग बंधे, खोटे दे फहराय। —सभाविलास (शब्द०)।

कुलही†—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] बच्चों के सिर पर देने की टोपी। कनटोप। उ०—(क) कुलही चित्र विचित्र भगूली। निरखहि मातु मुदित मन फूली। —तुलसी (शब्द०)। (ख) खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छवि छाई। कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु विधि सुरँग बनाई। —सूर (शब्द०)।

कुलहीन—वि० [सं० कुल+हीन] [वि० स्त्री० कुलहीनी] अकुलीन। हीन या निम्न कुल का। उ०—बैठु सभा मँह सो कुलहीनी। वेस्या की गति ताकर चीन्ही। —स० दरिया, पृ० ४६।

कुलांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलाङ्गना] दे० 'कुलस्त्री' [को०]।

कुलांगार—संज्ञा पुं० [सं० कुलाङ्गार] कुल का नाश करनेवाला। सत्यानाशी। उ०—ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार। खाकर पत्तल में करें छेद। —अपरा, पृ० १७६।

कुलांच—संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] १ दोनों हाथों के बीच की दूरी। २ चौकड़ी। ३ छलांग। उछाल। (क) लेत कुलांच लखो तुम अबही। धरत पाँव धरनी जब तबही। —लक्ष्मण सिंह (शब्द०)। (ख) दस योजन कर बीच तहँ, पँचै एक कुलांच। सिंहासन तें अवनि पर पटक्यो मारि तमांच। —विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—भरना।—मारना। —लेना।

कुलांचना—क्रि० प्र० [हिं०] चौकड़ी भरना। उछलना कूदना।

कुलांट(पु)—संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] छलांग। चौकड़ी। उछाल। उ० —अप्रमान हय्यीन दा विक्रम बड़काया। करि कुलांट अतुक मनों किलकार सुधाया। —सूदन (शब्द०)।

कुला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल मैनसिल [को०]।

कुला²—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] एक प्रकार की ऊँची टोपी। कुलाह। उ०—उन्हें कुला लगाकर साफा बाँधने में एक असुविधा अवगत होती थी। —लंबे केशों की। —झाँसी० पृ० २३४।

कुलाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ निश्चित नक्षत्र, वार और तिथियाँ, जैसे—आर्द्रा, मूल, अभिजित् आदि नक्षत्र, बुधवार और द्वितीया, छठ और द्वादशी आदि तिथियाँ।

कुलाक्रम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुल+आक्रम] कुलमर्यादा। उ०—तजि कुलाक्रम अभिमाना, झूठे भरमि भुलाना। —कबीर ग्रं०, पृ० १७८।

कुलाचल—संज्ञा पुं० [सं० कुल+अचल] दे० 'कुलपर्वत'।

कुलाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल परंपरा से आगत आचार व्यवहार या रीति रस्म। कुलरीति। कुलधर्म। २. वाममार्ग। कौलाचार [को०]।

कुलाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलगुरु। पुरोहित।

कुलाधि(पु)—संज्ञा स्त्री० [पुं० कुल=समूह+आधि=रोग दोष] पाप। दोष। उ०—मछरी तुरकै पकरिया, वहै गग के तीर। धोय कुलाधिनी भाजही, राम न कहै सरीर। —कबीर (शब्द०)।

कुलाबा—संज्ञा पुं० [अ०] १ लोहे का जमुरका, जिसके द्वारा किवाड़ बाजू से जकड़ा रहता है। पायजा। २. मछली फँसाने का काँटा। ३ जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो चकवा के बीच लगी रहती है। ४ नाली जिसमें होकर पानी निकलता है। मोरी ५ जंजीर। सिकड़ी। उ०—हद करें मेराज कुफर का खोलि कुलावा। तीसो रोजा रहैं अंदर में साल रिकावा। —पलटू०, पृ० ४३।

कुलाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर। देह। जिस्म २ खोता। घोंसला। ३ स्थान। जगह।

कुलायिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पक्षिशाला। चिड़ियाघर। २ पिंजर। पिंजड़ा (को०)।

कुलाल—संज्ञा पुं० [सं० तुल फा० कुलाल] [स्त्री० कुलाली] १ मिट्टी के बरतन बनानेवाला। कुम्हार। उ०—जैसे चक्र कुलाल का फिरता बहु दीसै। तौर छाड़ि कतहूँ न गया यह बिसव बीसै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २ पृ० ८६४।

यौ०—कुलाल चक्र=कुम्हार का चाक।

२ जंगली मुर्गा। ३. उलूक। उल्लू।

कुलालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिड़ियाखाना।

कुलाली[१](पु)—संज्ञा स्त्री० [पुं०] १ कुम्हार की स्त्री। कुम्हारिन। २ कुम्हार जाति की स्त्री। ३ अंजन या सुरमे मे प्रयुक्त होनेवाला एक प्रकार का नीला पत्थर (को०)।

कुलाली[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्यपाली] कलार की स्त्री। कलाली। कलारिन। उ०—भरि भरि प्याला देत कुलाली वाढै भक्ति खुमारा।—चरण० बानी, पृ० १७१।

कुलाली[३]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दूरबीन।—(डिं०)।

कुलाह[१]—संज्ञा पुं० [सं०] भूरे रंग का घोड़ा, जिसके पैर गाँठ से सुमो तक काले हों।

कुलाह[२]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ एक प्रकार की ऊँची टोपी जो फारस और अफगानिस्तान आदि मे पहनी जाती है। उ०—खडा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा। नेकी की कुलाह सिर दीये, गले पैरहन साजा।—संतवाणी०, भा० २, पृ० १०३। २ ताज। मुकुट (को०)। टोपी (को०)।

कुलाहक—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट। कृकवाकु। प्रतिसूर्यक (को०)।

कुलाहल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] दे० 'कोलाहल'। उ०—आपुस मे सब करत कुलाहल धौरी धूमरि धेनु बुलाए।—सूर० १०।४४७।

कुलिंग[१]—संज्ञा पुं० [सं० कुलिङ्ग] १. एक प्रकार का पक्षी। २ चिड़ा। गौरा ३. पक्षी चिड़िया। ४ काकड़ा। सींगी। ५. एक प्रकार का सर्प (को०)। ६ एक किस्म का चूहा (को०)। ७. भूमिकूष्मांड। भुईं कुम्हड़ा (को०) ८ हाथी। मतगज (को०)।

कुलिंग[२]—संज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम।

कुलिंग[३]—वि० बुरे लिंग का।

कुलिंगक—संज्ञा पुं० [सं० कुलिङ्गक] चिड़ा। गौरा। पक्षी। चटक।

कुलिंजन—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्चन] दे० 'कुलंजन'।

कुलिंद—संज्ञा पुं० [पुं० कुलिन्द] १ एक प्राचीन देश जो उत्तर-पश्चिम भारत मे था। कुनिंद। २ उक्त देश का निवासी। ३ उक्त देश का राजा।

कुलि[१]—वि० [हिं०] दे० 'कुल' उ०—त्रिविध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन।—मानस १।३५।

कुलि[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ। हस्त। कर। २ भटकटैया (को०)।

कुलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पकार। दस्तकार। कारीगर। २ उत्तम वंश मे उत्पन्न पुरुष। ३. आठ महानागों मे से एक। ४. घुँघची का पेड़। ५ तालमखाना। ६ किसी जाति या कुल का प्रधान पुरुष ७ ज्योतिष में दिन और रात का कुछ निश्चित अंश, जो यात्रा या अन्य शुभ कर्मो के लिये निषिद्ध समझा जाता है। ८ केकड़ा। कर्क। ९ स्वजन। परिजन (को०)। १० आखेटिक। शिकारी (को०)।

कुलिज—संज्ञा पुं० [सं०] करज। नख (को०)।

कुलिया[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोलिया'।

कुलिर—संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा। २ कर्क राशि (को०)।

कुलिश—संज्ञा पुं० [सं०] १ हीरा। उ०—माणिक्य मर्कत कुलिश पिरोजा। चीर कोरि पच रचे सरोजा।—तुलसी (शब्द०)। २ वज्र। बिजली। गाज। बिल्ली। उ०—भयो कुलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर। बिपुल बिहँग बन परयो निसि, मानो कुलिस कठोर।—तुलसी (शब्द०)। ३ ईश्वरावतार राम, कृष्णादि के चरणों का एक चिह्न, जो वज्र के आकार का माना जाता है। उ०—अरुण चरण अंकुशध्वज, कंज कुलिश चिह्न रुचिर, भ्राजत अति नूपुर वर मधुर मुखरकारी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—कुलिशधर=वज्रधर। इंद्र।

४ कुठार। ५. एक प्रकार की मछली।

कुलिशकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिशधर' (को०)।

कुलिशधर—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। सुरराज।

कुलिशपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिशधर'।

कुलिशनायक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध (को०)।

कुलिशासन—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम।

कुलिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वेदोक्त नदी जो आकाश के मध्य मे मानी जाती है।

कुलिस—संज्ञा पुं० [सं० कुलिश] वज्र। कुलिश। उ०—कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।—मानस, १।२७३।

कुलीजन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलंजन'।

कुली[१]—संज्ञा पुं० [तु०] १ बोझ ढोनेवाला। मजदूर। मोटिया। २ गुलाम (को०)।

यौ०—कुली कबारी=छोटी जाति के लोग।

कुली[२]—संज्ञा पुं० [सं० कुलिन्] १. सप्त कुलपर्वतों मे से एक। २. पर्वत (को०)।

कुली[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बडी साली। पत्नी की बड़ी बहन। २. भटकटैया (को०)।

कुली[४]—वि० [सं० कुलिन्] कुलीन। कुलवाले। ऊँचे वंश मे उत्पन्न। जैसे,—कुली छतीस=छत्तीस कुलवाले।

कुलीन[१]—वि० [सं०] [संज्ञा कुलीनता] १ उत्तम कुल मे उत्पन्न। अच्छे घराने का। खानदानी। २ पवित्र। शुद्ध। साफ। उ०—गंग जो निरमल नीर कुलीना। नार मिले जलहोइ मलीना।—जायसी (शब्द०)।

कुलीन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के बंगाली ब्राह्मण, जो उन पाँच ब्राह्मणों की संतान हैं, जिन्हे पंचगौड़ के महाराज आदिशूर अपने राज्य मे साग्निक ब्राह्मण न होने के कारण, आठवीं शताब्दी के आरंभ मे काशी से अपने साथ ले गए थे। २,

कुलती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ बुरी आदत । कुटेव । २. कौल संप्रदाय की साधना में प्रयुक्त होनेवाली स्त्री । कुलस्त्री । उ०—नजो कुन्ती मेटी भंग । अहनिसि रापो औजुद वंधि ।—गोरख०, पृ० ७४ ।

कुलत्ती‡—वि० [सं० कु + हिं० लत] बुरी आदतवाला । कुटेववाला ।

कुलत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी । कुरथ ।

कुलत्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलथी । कुरथी ।

कुलथ—संज्ञा पुं० [पुं० कुलत्थ] कुलथी ।

कुलथी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ या कुलत्थिका] उरद की तरह का एक मोटा अन्न जो प्राय बरसात मे ज्वार के साथ बोया जाता है ।

विशेष—इसकी बेल भी उरद की भाँति पृथ्वी पर फैलती है, पर इसकी पत्तियाँ पजे के आकार की होती हैं । फलियाँ गुच्छों मे लगती हैं और एक एक फली मे तीन तीन चार चार दाने निकलते हैं । दाने उरद ही के से होते हैं, पर कुछ चिपटे और भिन्न भिन्न रंगों के, जैसे—भूरे, लाल, काले होते हैं । कुलथी घोडो और चौपायों को बहुत खिलाई जाती है । गरीब लोग इसकी दाल भी खाते हैं । यह कदन्न मानी गई है । वैद्य लोग इसे धातु शोधने के काम मे लाते हैं । वैद्यक में इसे रूखी, कसैली, गरम, कब्ज करनेवाली तथा रक्तपित्तकारिणी मानते हैं ।

पर्या०—ताम्रबीज । श्वेतबीज । सितेतर । कालवृंत । ताम्रवृंत ।

कलदीप—संज्ञा पुं० [सं०] वंश को दीप की भाँति प्रकाशित करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

कुलदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलदीप' (को०) ।

कुलदुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलदुहितृ] दे० 'कुलकन्या' (को०) ।

कुलदूषण—वि० [सं०] दे० 'कुलकलंक' (को०) ।

कुलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलदेवी] वह देवता जिसकी पूजा किसी कुल मे परंपरा से होती आई हो । ऐसे देवताओं की पूजा विवाह आदि के समय या वार्षिक नवरात्र आदि के दिनों मे होती है । कुलदेवता ।

कुलदेवता[१]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलदेव' ।

कुलदेवता[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] षोडश मातृकाओं मे से एक ।

कुलदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो ।

कुलद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] दस प्रमुख वृक्ष, जिनके नाम हैं—(१) पीपल, (२) बरगद, (३) बेल, (४) नीम, (५) कदंब, (६) गूलर, (७) इमली, (८) आमला, (९) लसोढ़ा और (१०) करंज ।

कुलधन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पैतृक संपत्ति । खानदान की अत्यंत प्रिय एवं मूल्यवान् संपत्ति या परंपरा ।

कुलधन[२]—वि० जिसका धन वंश की प्रतिष्ठारक्षा के लिये लगे(को०)।

कुलधन्या—[सं०] कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली । वंश की मर्यादा की रक्षा करनेवाली । उ०—जो कुछ मेरे वह, कन्या का, कुलधन्या का ।—अपरा, पृ० १८२ ।

कुलधर—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा ।

कुलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वंशपरंपरा से आनेवाला कर्तव्य कर्म । पूर्व- पुरुषों द्वारा पालित धर्म ।

विशेष—अभियोगों के निर्णय में भी इसका विचार किया जाता था ।

कुलधारक—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा ।

कुलन‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० कललाना] दर्द । टीस । जैसे,—दाँतों की कुलन ।

कलनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा पूर्वाषाढ, श्रवण, उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र ।

कुलना—क्रि० प० [हिं० कुलनाना] टीस मारना । दर्द करना । जैसे —आजकल दाँत कुल रहे हैं ।

कुलनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाममार्ग या कौल धर्म के अनुसार वे स्त्रियाँ जिनकी पूजा कौल लोग चक्र मे करते हैं । ये नौ प्रकार की होती हैं—नटी, कपालिनी, वेश्या, धोबिन, नाइन ब्राह्मणी, शूद्रा, अहीरिन और मालिन ।

कुलनार—संज्ञा पुं० [देश०] एक खनिज पदार्थ या पत्थर जो सफेद या कुछ सुरमई रंग लिए होता है ।

विशेष—इसे सिलखड़ी, संग जराहत, सफेद सुरमा और कर्पूर शिलाजित भी कहते हैं । इसे भस्म करके गच या प्लास्टर आफ पेरिस बनाते हैं । इस भस्मचूर्ण में यह गुण होता है कि यह पानी पाने से लस पकडने लगता है और अंत मे सूखने पर उसके सब कण मिलकर फिर ठोस पत्थर हो जाते हैं । इसकी मूर्तियाँ, खिलौने, इलेक्ट्रोटाइप के साँचे और बहुत सी चीजें बनती हैं । इससे शीशा भी जोडते हैं । कुलनार मद्रास, पंजाब राजपूताने तथा भारतवर्ष के और कई भागों मे मिलता है । जोधपुर और बीकानेर मे इसकी बडी बड़ी खानें हैं, और इससे बहुत से काम होते हैं । इससे खिडकी की जालियाँ बड़े कौशल के साथ बनाते हैं । गच या गीले कुलनार की दो बराबर पट्टियाँ लेते हैं और उनमे एक ही नक्काशी की जालियाँ काटते हैं । फिर एक पट्टी की जालियों पर रंग बिरंग के शीशे बैठाकर ऊपर दूसरी पट्टी भी सटीक जमाकर बाँध देते हैं । इस प्रकार दोनों पट्टियाँ मिलकर एक हो जाती हैं और कटाव के बीच रंग बिरंग के शीशे दिखाई पड़ते हैं । आगरा, लाहौर आमेर आदि के शीश महल इसी गच की सहायता से बने हैं । कुलनार या सिलखड़ी का चूरा खेतों में भी खाद के लिये डाला जाता है । नील की खेती के लिये इसकी खाद बहुत उपयोगी होती है । पेशाब लाने के लिये वैद्य सिलखडी का चूरा दूध के साथ खिलाते हैं ।

कुलनीवीग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी समाज या संघ की आमदनी को अपने पास जमा रखनेवाला ।

विशेष —कौटिल्य ने ऐसे धन का अपव्यय करनेवाले पर १०० पण जुर्माना लिखा है ।

कुलप—संज्ञा पुं० [सं०] कुल का प्रधान पुरुष । किसी कुल को अनु-

शासन में रखनेवाला प्रधान व्यक्ति। उ०—सामाजिक संगठन की मूलभूत इकाई कुल थी जिसमें एक पिता या ज्येष्ठ भ्राता के, जो कुलप कहलाता था, अनुशासन को मानते हुए कई सदस्य एक ही गृह में एक साथ रहते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८२।

कुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर का मालिक। मुखिया। सरदार। २ वह अध्यापक जो विद्यार्थियों का भरण पोषण करता हुआ उन्हें शिक्षा दे। ३ शास्त्रानुसार वह ऋषि जो दस हजार मुखियों या ब्रह्मचारियों को अन्नदान और शिक्षा दे। ४. महंत। ५ किसी विद्यासंस्था विशेषतया कालिज या विश्वविद्यालय का वैधानिक प्रधान।

कुलपरंपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलपरंपरा] वंश में चली आती रीति। वंशपरंपरा। उ०—इन खिलाड़ियों के लड़के भी कुलपरंपरा से बहुधा सिपाही का काम अंगीकार करते थे। हिंदु सभ्यता, पृ० ४६।

कुलपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] सात पहाड़ों का एक समूह जिसके अंतर्गत ये पर्वत आते हैं—महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विंध्य और पारियात्र।

कुलपांसुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। व्यभिचारिणी स्त्री [को०]।

कुलपालक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नारंगी।

कुलपालक[2]—वि० वंश या खानदान का पालन और रक्षण करनेवाला [को०]।

कुलपालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुलपालिका' [को०]।

कुलपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती स्त्री। २ कुलजा स्त्री। उत्तम कुल की नारी [को०]।

कुलपाली संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुलपालिका' [को०]।

कुलपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीन मनुष्य। उच्चवंश का व्यक्ति [को०]।

कुलपूज्य—वि० [सं०] जिसका मान कुलपरंपरा से होता आया हो। जो कुल का पूज्य हो। उ०—गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे।—तुलसी (शब्द०)।

कुलफ(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कुफ़्ल] ताला। उ०—(क) श्री रघुराज मनो जुलफें की जंजीरन की कुलफें खुलवाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) भ्रम करहु कुलफ कपाट है जब जीव जाहिंतें ना चलें।—कबीर सा०, पृ० ११।

विशेष—कुछ लोग इसे स्त्रीलिंग भी मानते और लिखते हैं।

कुलफत—संज्ञा स्त्री० [अ० कुल्फ़त] मानसिक चिंता या दुःख। विकलता। उ०—उलफत नेहा कुलफता नारी।—कबीर श०, पृ० ६।

क्रि० प्र०—मिटना।—होना।

कुलफा[1]—संज्ञा पुं० [फा० खुर्फा] एक साग जिसके पत्त दलदार, नीचे डंठल के पास नुकीले और सिर पर चौड़े होते हैं।

विशेष—इसके पत्ते दो अंगुल लंबे और डंठल मे दो दो आमने सामने लगते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे छोटे कँगूरे निकलते हैं जिनमे काले काले, गोल चिपटे दाने होते हैं। ये दाने बहुत छोटे होते हैं और दवा के काम में आते हैं। लोग ठंडाई में इन्हें प्राय डालते हैं। इसका पौधा एक बालिश्त से डेढ बालिश्त तक ऊँचा है और ठंडी जगह मे उगता है। यह वसंत ऋतु के पहले बोया जाता है और गरमी में तैयार होता है। इसका पौधा बहुत जल्द बढ़ता है। बरसात मे यह आपसे आप खेतों मे जमता है। लोग इसका साग खाते हैं। वैद्यक मे यह ठंडा माना गया है। इसी की छोटी जाति को लोनी, अमलोनी या नोनिया कहते हैं।

पर्या०—बृहल्लोणी। घोलिका।

कुलफा[2]—(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलफ'। उ०—चर्म दृष्टि का कुलफा दे के, चौरासी भरमाई हो।—कबीर श०, पृ० ६३।

कुलफी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुफ़्ली] १ पेंच। २. टीन या किसी धातु अथवा मिट्टी आदि का बना हुआ चोंगा जिसमे दूध आदि भरकर बर्फ जमाते हैं। ३. उपर्युक्त प्रकार से जमा हुआ दूध, मलाई या कोई शर्बत। जैसे—मलाई की कुलफी। ४ पीतल या ताँबे आदि की गोल या झुकी हुई नली जिसे नरकुल मे लगाकर नैचा बाँधा जाता है।

कुलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवती स्त्री। मर्यादा से रहनेवाली स्त्री। उ०—कितौ न गोकुल कुलवधू, काहि न केहि सिखदीन।—बिहारी (शब्द०)।

कुलवाँसा—संज्ञा पुं० [हिं० कुल+बाँस] जुलाहों के करघों का एक बाँस जिसमे कंघी बँधी रहती है।

कुलबुल—संज्ञा पुं० [अनु०] [संज्ञा कुलबुलाहट] छोटे छोटे जीवों के हिलने डुलने की आहट।

कुलबुलाना—क्रि० अ० [अनु० कुलबुल] १ बहुत से छोटे छोटे जीवों का एक साथ मिलकर हिलना डोलना। इधर उधर रेंगना। जैसे,—मोरी मे कीड़े कुलबुला रहे हैं। २ धीरे धीरे हिलना डोलना। जैसे,—बच्चा गोद मे कुलबुला रहा है ३. चंचल होना। आकुल होना। जैसे—(क) सोया हुआ लड़का कुलबुलाकर उठ बैठा (ख) भूख के मारे अंतड़ियाँ कुलबुला रही हैं।

कुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलबुल] धीरे धीरे हिलने डुलने का भाव। इधर उधर रेंगना।

कुलबोर—वि० [सं० कुल+हिं बोरना] कुल को डुबानेवाला। कुलकलंक। उ०—परमदास विनवं कर जोरी, नगरी के लोग कहैं कुलबोर।—धरम, पृ० ७४।

कुलबोरन—वि० [हिं० कुल+बोरना] १. कुल को डुबानेवाला। वंश की मर्यादा को भ्रष्ट करनेवाला। कुल मे दाग लगानेवाला। कुलकुठार। १. अयोग्य। नालायक।

कुलबोरना—वि० [हिं०] दे० 'कुलबोर'। उ०—मोहि कुलबोरना के बिरई हुंकाव।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५८।

कुलमौड़—वि० [सं० कुल+मौलि हिं मौर] कुलश्रेष्ठ। वंश मे श्रेष्ठ और ख्यात। वंशभूषण। उ०—औरंग जेत अखियो, दूजे दिन दागोड़। गया दरगाह माह रै, मारुधर कुलमौड़।—रा० रू०, पृ० ३७।

कुर्री—स्त्री० [देश०] १ हेंगा । पटरा । पटैला । सुहागा । २ कुरकुरी हड्डी । वि० दे० 'कुरकुरी' । ३ गोल टिकिया ।

कुर्स—संज्ञा पुं० [अ० कुर्स = गोल टिकिया] १. गोल टिकिया । २ अरब देश का चाँदी का एक पुराना सिक्का जो लगभग डेढ आने मूल्य का होता है । ३. चीन देश का सोने या चाँदी का एक सिक्का जो नाव के आकार का होता है और जो तौल में पचास या सौ तोले और इससे कम या अधिक भी होता है ।

कुर्स[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसकी जड लबी नरम और मजबूत होती है और रस्सी बटने और चटाई बनाने के काम मे आती है । इसकी खेती केवल जड़ के लिये होती है ।

कुर्सी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुरसी] दे० 'कुरसी' ।

कुर्सीनामा—संज्ञा पुं० [अ० कुर्सीनामा] दे० 'कुरसीनामा' ।

कुलक—संज्ञा पुं० [फा० कुलग] एक विशेष प्रकार का पक्षी । कुलग । उ०—बहुरी अमल हित पख बल गहे कुलंक असक गत । सोनेंग दुरग अकबर सहित सर्भौ एम घर नेम सत ।—रा० रू०, पृ० १५३ ।

कुलग[१]—संज्ञा पुं० [फा०] १ वह पक्षी जिसका सिर लाल और बाकी शरीर मटमैले रग का होता है । इसकी गरदन लबी होती है । यह लकलक से बड़ा होता है और पानी के किनारे रहता है । उ०—तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत, कुरर, कुलग, कलहस गहि लाए हैं ।—केशव (शब्द०) । २ मुर्गा । कुक्कुट । ३ लबी टाँग का आदमी ।—(व्यग) ।

कुलग[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुलाँच । कूद । चौकड़ी । उ०—हेरत तहाँ हरिन कुलग करि कूदयो एक ताही समै साहसीक साहसनि मात के ।—हम्मीर०, पृ० ६ ।

कुलज[१]—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्ज] 'कुलजन' ।

कुलज[२]—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े का एक दोष जिसमे चलते समय टाँगें आपस मे टकराती हैं ।

कुलंजन—संज्ञा पुं० [सं० कुलञ्जन] १ अदरक की तरह का एक पौधा ।

विशेष—यह बर्मा, मलाया द्वीप, चीन आदि मे होता है । इसकी रेशेदार जड बाहर बहुत भेजी जाती हैं । यह कडवी, गरम और दीपन होती है तथा मुख की दुर्गंध को दूर करती है । कुलजन के दो भेद हैं—बड़ा कुलजन और छोटा कुलजन ।

पर्या०—कुलज । कुर्णज । गधमूल ।

२ पान की जड या डठल ।

विशेष—इसे लोग खाली या पान की तरह चूना, कत्था आदि मिलाकर खाते हैं । इससे बैठा हुआ गला खुल जाता है ।

कुलधर—वि० [सं० कुलन्धर] वश परपरा को चलानेवाला [को०] ।

कुलभर—संज्ञा पुं० [सं० कुलम्भर] चोर [को०] ।

कुल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वश । घराना । खानदान ।

यौ०—कुलकानि । कुलपति । कुलकलक । कुलांगार । कुलतिलक । कुलभूषण । कुलकटक, आदि ।

मुहा०—कुल बखानना (१) वंशविख्यातकी वर्णन करना (२) बहुत गालियाँ देना ।

२ जाति । ३ समूह । समुदाय । झुंड । जैसे—कविकुलभूषण । कविकुलतिलक आदि । ४. भवन । घर । मकान । जैसे—गुरुकुल, ऋषिकुल आदि । ५ तत्र के अनुसार प्रकृति, काल, आकाश, जल, तेज, वायु आदि पदार्थ । ६ वाम मार्ग । कौल धर्म । ७ सगीत मे एक ताल जिसमे इस प्रकार १५ मात्राएँ होती हैं—द्रुत, लघुद्रुत, लघु, द्रुत, लघु द्रुत, द्रुत, द्रुत लघु, द्रुत, द्रुत, द्रुत, द्रुत और लघु । ८. स्मृति के अनुसार व्यापारियों या कारीगरों का सघ । श्रेणी । कपनी । ९. कौटिल्य के अनुसार शासन करनेवाले उच्च कुल के लोगों का मडल । कुलीनतत्र राज्य । १० देह । शरीर (को०) । ११. अगला भाग । आगे का हिस्सा (को०) । १२ एक प्रकार का नीला पत्थर [को०] । १३ गोत्र (को०) । १४ नगर । जनपद (को०) । १५ तंत्र के अनुसार कुडलिनी शक्ति जो मूलाधार चक्र मे है (को०) ।

कुल[२]—वि० [अ०] समस्त । सब । सारा । पूरा । तमाम ।

यौ०—कुल जमा = (१) सब मिलाकर । (२) केवल । मात्र ।

कुलकटक—संज्ञा पुं० [सं० कुलकण्टक] अपनी कुचाल से अपने वंशवालों को दुखी करनेवाला ।

कुलक[१]—वि० [सं०] अच्छे कुल, खानदान का [को०] ।

कुलक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मकर तेंदुआ नाम का वृक्ष । २ कुचिला । ३ परवल या उसकी लता । ४ हरा साँप । ५ दीपक । ६. श्रेणी या समूह का प्रधान [को०] । ७ समूह [को०] । ८. वल्मीक । बाँबी । ९ सस्कृत मे गद्य लिखने का एक ढग । १० सस्कृत मे कविता लिखने का एक विशेष ढग । उ०—यद्यपि हिंदी मे इस ढग की कविता का प्रचार नहीं है, तथापि अन्य भाषाओं मे (जैसे, सस्कृत मे कुलक, अंग्रेजी मे ब्लैकवर्स, बँगला मे अमित्राक्षर छद आदि) इसका उपयुक्त प्रचार है ।—करुणा०, (सू०) ।

विशेष—कुलक में ५ से १४ तक एक साथ अन्वित पद्य या कविताएँ होती हैं । व्याकरण की दृष्टि से इनका वाक्यविन्यास और बधान ऐसा होता है कि सब एक ही वाक्य में लिखा जा सकता है ।

कुलकज्जल—वि० [सं०] वश को कलकित करनेवाला ।

कुलकना—क्रि० अ० [हिं० किलकना] आनंदित होना । खुशी से उछलना । उ०—लक्ष्मण का तन पुलक उठा, मन मानो कुछ कुलक उठा ।—साकेत, पृ० ६३ ।

कुलकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न कन्या [को०] ।

कुलकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० कुलकर्तृ] वश का आदिपुरुष । सस्थापक । कुलपति ।

कुलकलक—संज्ञा पुं० [सं० कुलकलङ्क] अपनी कुचाल से अपने वश की कीर्ति मे धब्बा लगानेवाला ।

कुलकाट—वि० [सं० कुल + हिं० काट = मैल] कुल को कलक लगानेवाला । उ०—कम हीमत, कुलकाट, माभी मरण, मलीण मत ।—बाँकी ग्र०, भा० १, पृ० ६१ ।

कुलकान(पु) -संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलकानि'। उ०—कर्यो न तजें ताके सुनें और सबै कुलकान।—स० सप्तक, पृ० १८८।

कुलकानि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुल + हिं० कान = मर्यादा] कुल की मर्यादा। कुल की लज्जा। उ०—छूटेउ लाज डगरिया औ कुलकानि। करत जात अपरथवा परि गइ बानि।—रहीम (शब्द०)।

कुलकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चिरम।

कुलकुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक शक्ति जिसका समग्र संसार एक अंश है। इसकी महिमा 'प्रकृति' या शक्ति के समान कही जाती है और इसकी उपासना होती है।

कुलकुल[१]—संज्ञा पुं० [अनु०] पक्षियों की मधुर ध्वनि। उ०—खगकुल कुलकुल सा बोल रहा।—लहर, पृ० १६।

कुलकुल[२]—संज्ञा पुं० [अ०] बोतल या सुराही से मदिरा या जल गिराने के समय होनेवाली आवाज (को०)।

कुलकुलाना - क्रि० अ० [अनु०] कुल कुल शब्द करना।

मुहा०—आँतें कुलकुलाना = अत्यंत भूख लगना। उ०—पेट की आँतें कुलकुला रही थीं।—दुर्गेशनंदिनी (शब्द०)।

विशेष—जब पेट खाली होता है, तब आँतों से कुलकुल शब्द निकलता है।

कुलकुली—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कलबलाहट। खुजली। २ बेचैनी।

कुलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुल में पताका के समान श्रेष्ठ। कुल को यशस्वी बनानेवाला व्यक्ति (को०)।

कुलक्षण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा लक्षण। बुरा चिह्न। २ कुचाल। बदचलनी।

कुलक्षण[२]—वि० [सं०] [स्त्री० कुलक्षणा] १ बुरे लक्षणवाला। २. दुराचारी।

कुलक्षणी[१]—संज्ञा पुं० [कुलक्षण + ई (प्रत्य०)] १ बुरे लक्षणवाला। २. दुराचारी।

कुलक्षणी[२]—संज्ञा स्त्री० १ बुरे लक्षणवाली। २. दुराचारिणी।

कुलक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] कुल या वंश का विनाश (को०)।

कुलगरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंश का गौरव। खानदान की इज्जत (को०)।

कुलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलपर्वत' (को०)।

कुलगुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुलगुरु] दे० 'कुलगुरु'। उ०—वेदविहित कुलरीति कीन्ह दुहुँ कुलगुर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५७।

कुलगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] वंश या खानदान का गुरु। कुलपुरोहित (को०)।

कुलगृह—संज्ञा पुं० [सं०] उच्चवंश का भवन। प्रतिष्ठित घर।

कुलघ्न—वि० [सं०] वंश या कुल का विनाश करनेवाला (को०)।

कुलचंडी -संज्ञा स्त्री० [सं० कुलचण्डी] एक देवी का नाम।

कुलचंद—वि० [सं० कुल + चन्द्र] कुल या वंश को चंद्रमा के समान प्रकाशित करनेवाला। कुलभूषण। उ०—साहि तनै कुलचंद सिवा जस चंद सो चंद कियो छवि छीनो।—भूषण ग्रं०, पृ० ४८।

कुलचा—संज्ञा पुं० [फा० कलीचह्] १ एक प्रकार की खमीरी रोटी, जो खूब फूली होती है। २ तंबू या खेमे के डंडे के ऊपर का गोल लट्टू। ३ छिपाकर इकट्ठा किया हुआ रुपया।

कुलच्छन—संज्ञा पुं० वि० [हिं०] दे० 'कुलक्षण'।

कुलच्छनी[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलक्षणी'।

कुलच्छनी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलक्षणी'। उ०—(क) बेहतर यह है कि राजा से कहिए, यह कुलच्छनी है, आपके योग नहीं।—लल्लू (शब्द०)। (ख) पति को दुख देखनेवाली मैं कुलच्छनी सती हूँ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुलज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलजा] १ उत्तम वंश में उत्पन्न। कुलीन। २. परवल। परोरा।

कुलजन—संज्ञा पुं० [सं०] सत्कुलोत्पन्न व्यक्ति। कुलीन जन (को०)।

कुलजा[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली भेड़ जो पामीर और गिलगित में होती है। यह डीलडौल में बड़ी होती है। कुचकार।

कुलजा[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवधू।

कुलजात -वि० [सं०] वंश में उत्पन्न। वंशोद्भव।

कुलजाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलीना स्त्री। पतिव्रता (को०)।

कुलट[१]- वि० पुं० [सं०] [स्त्री० कुलटा] बहुत स्त्रियों से प्रेम रखनेवाला। व्यभिचारी। बदचलन। उ०—श्याम सखी कारेहु ते कारे। तब चितचोर भोर व्रजवासिन प्रेम नेक व्रत टारे। लै सरवस नहिं मिले सूर प्रभु कहिये कुलट विचारे।—सूर (शब्द०)।

कुलट[२]—संज्ञा पुं० [सं०] औरस के अतिरिक्त और किसी प्रकार का पुत्र। क्षेत्रज, गौलक, दत्तक या क्रीत पुत्र।

कुलटा[१]—वि० स्त्री० [सं०] बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली (स्त्री)। छिनाल। बदचलन। व्यभिचारिणी। पुंश्चली।

पर्या०—पुंश्चली। स्वैरिणी। पांशुला। व्यभिचारिणी।

कुलटा[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो बहुत पुरुषों से प्रेम रखती हो।

कुलतंतु—संज्ञा पुं० [सं० कुलतन्तु] वह पुरुष जिसे छोड़ और कोई दूसरा सहारा उसके कुलवालों को न हो।

कुलतारन—वि० [सं० कुल + हिं० तारन] [वि० स्त्री० कुलतारनी] कुल को तारनेवाला। कुल को पवित्र करनेवाला। उ०—सुतहिं कह्यो तैं भो कुलतारन। मोहिं दरसायो वारन तारन।—रघुराज (शब्द०)।

कुलत—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० लत] बुरी आदत। कुटेव।

कुलतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्ध चांद्र दिवस। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी या चतुर्दशी तिथि (को०)।

कुलतिलक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] वंश की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला पुरुष। वंश का गौरव (को०)।

कुलतिलक[२]—वि० कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला। कुल में श्रेष्ठ।

कुरी[४]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ धुस्स । टीला । उ०—हान सो करे गोइ लेइ बाढ़ा । कुरी दुवौ पैंज कै काढ़ा—जायसी (शब्द०) । २ ढेर । समूह । उ०—तेइ सन बोहित कुरी चलाए । तेई सन पवन पख जनु लाए ।—जायसी (शब्द०) ३ कोल्हू ।

कुरी[५]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा = ढेर, भाग] विभाग । खड । टुकड़ा । उ०—सीधे हैं कड़े चने, मिली एक एक कुरी ।—अर्चना । पृ० ६४ ।

मुहा०—कुरी कुरी होना = टुकड़े टुकड़े होना । उ०—जाके रूप आगे रभा रति उरबसी, शची हची मान मेनका को ह्वै गयो कुरी कुरी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

कुरीज[१]—संज्ञा पुं० [फा० कुरीज] १ चिड़िया का सालाना पख गिराना । २ बेत या नरकट की बनी झोपड़ी ।

कुरीज[२]—वि० परकटी (चिड़िया) । (वह पक्षी) जिसके पख टूट या गिर गए हों । उ०—आइ पिता के पद गहे मां रोई उर ठोकि । जैसे चिरी कुरीज की त्यों सुत दसा विलोकि ।—अर्ध०, पृ० १६ ।

कुरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी रीति । कुप्रथा । २. कुचाल ।

कुरीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्रियों का शिरोवस्त्र । स्त्रियों के लिये सिर का एक पहनावा । कुव । २ सभोग । रतिक्रिया [को०] ।

कुरुट—संज्ञा पुं० [सं० कुरुण्ड] लाल कटसरैया [को०] ।

पर्या०—कुरुन्टक—कुरुण्ड ।

कुरुम—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० 'कूर्म' । उ०—तरहि, कुरुम बासुकि के पीठी । ऊपर इद्र लोक पै दीठी ।—जायसी ग्र ० (गुप्त), पृ० १४६ ।

कुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ वैदिक आर्यों का एक कुल । २ एक प्राचीन देश जो दो भागों मे विभक्त था—उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु । दक्षिण कुरु हिमालय के दक्षिण में था, जिसमे पाचालादि देश थे, और उत्तर कुरु हिमालय के उत्तर मे था जिसमे फारस, तिब्बत आदि देश थे । इसको लोग स्वर्ग भी कहते थे । ३ एक सोमवंशी राजा का नाम जिसके वश मे पाडु और धृतराष्ट्र हुए थे । ४ कुरु के वश मे उत्पन्न पुरुष । ५ पुरोहितकर्ता । ६. पका हुआ चावल । भात ।

कुरुआ[१]—संज्ञा पुं० [सं० कुडव] अन्न नापने का एक मान, जो दस छटाँक के बराबर होता है ।

कुरुआ[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कडुआ' । उ०—कुरुआ क तेल आड़ग लाइम बांदी वड दासओ छपाइअ ।—कीर्ति०, पृ० ६८ ।

कुरुई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुडव] बाँस या मूँज की बनी हुई छोटी डलिया । मौनी ।

कुरुकदक—संज्ञा पुं० [सं० कुरुकन्दक] मूलक । मूली (को०) ।

कुरुक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन तीर्थ, जो सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अबाला और दिल्ली के बीच मे है ।

विशेष—ऋग्वेद के कई ब्राह्मणों मे लिखा है कि प्राचीन काल मे ऋषि लोग इसी स्थान पर यज्ञादि किया करते थे । अब तक यहाँ एक बहुत पवित्र और प्राचीन सरोवर के चिह्न वर्तमान हैं, जिसका नाम ऋग्वेद मे 'सुर्यनावत' लिखा है । किसी समय मे इसके आसपास अनेक बड़े और पवित्र तीर्थ थे, जिनके कुछ चिह्न अबतक पाए जाते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ के ब्रह्मसर नामक सरोवर मे परशुराम ने स्नान करके अपने आप को क्षत्रिय हत्या के पाप से मुक्त किया था और महाराज पुरूरवा ने इसी के किनारे बिछड़ी हुई उर्वशी को फिर से पाया था । चद्रवंशी राजा कुरु इन्हीं सरोवरों मे से किसी एक के तट पर बहुत दिनों तक तप करके गुप्त हुए थे । तभी से इसका नाम धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र पड़ा । महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के सिवा इस स्थान पर और भी अनेक बड़े युद्ध हुए थे । पीछे से यहीं पर स्थाणु नामक महादेव की एक मूर्ति स्थापित हुई और (थानेसर) नामक नगर बसा, जहाँ राजा पुष्पभूति ने वर्द्धन नामक राजवश की प्रतिष्ठा की, जिसमें प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन हुए । ग्रहण, पर्व आदि अवसरों पर अब भी यहाँ बहुत बड़े बड़े मेले लगते हैं ।

कुरुख—वि० [सं० कु + फा० रुख] जो मुँह बनाए हुए हो । नाराज । कुपित । उ०—(क) थकित सुभल दृग अरुन उनींद कुरुख कटाक्ष करत मुख थोरी । खजन मृग अकुलात घात डर श्याम व्याध बाँधे रति डोरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) मिलतहिं कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो सरजा, सुरेस ज्यों दुचित्त ब्रजराज को ।—भूषण (शब्द०) ।

कुरुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र । उ०—निंदक न्हाय गहन कुरुखेत । अरपे नारि सिंगार समेत । चौसठ कुआँ बाउ खुदवावे । तबहूँ, निंदक नरकहिं जावे ।—कबीर (शब्द०) ।

कुरुजागल—संज्ञा पुं० [सं० कुरुजाङ्गल, कुरुजाङ्गल] एक प्राचीन देश जो पाचाल देश के पश्चिम मे था ।

कुरुबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ पद्मराग मणि । मानिक । २ बनकुलथी ।

कुरुम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म्म] कूर्म । कच्छप । उ०—कुरुम टूटै भुइँ फाटै तिन्ह हस्तिन्ह के चालि ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरुराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्योधन । २. युधिष्ठिर ।

कुरुल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] बाल की लट, जो माथ पर बिखरी हो ।

कुरुल[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुरड' ।

कुरुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगीत मे एक प्रकार की गमक ।

कुरुवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर कुरु ।

कुरुविद—संज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्द] १ मोथा । २. काच लवण । ३. उरनद । ४. मानिक । ५ दर्पण । ६. ईंगुर । शिगरफ ।

कुरुविस्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरानी तौल का नाम ।

कुरुविस्त—संज्ञा पुं० [सं०] सोने का एक निश्चित परिमाण [को०] ।

कुरुवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म [को०] ।

कुरुश्रेष्ठ, कुरुसत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन (को०) ।

कुरूप—वि० [सं०] [स्त्री० कुरूपा] बुरा शकल का । बदसूरत । बेडौल । बेढगा । उ०—कार कुरूप विधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा ।—मानस, २।१६ ।

कुरूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप होने का भाव । बदसूरती ।

कुरूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] राँग [को०] ।

कुरेदना—क्रि० स० [सं० कर्त्तन] खुरचना । खरोचना । कुरोदना ।

उ०—(क) कभी कभी साँप के काटने से एक सामान्य छाला सा पड जाता है और सूई के कुरेदने के से दाग पड़ जाते हैं। —दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०)। (ख) पक्षियों का कुरेदा हुआ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुरेदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरेदना] लकड़ी या लोहे आदि का एक औजार जो भट्ठे की आग, ढेर आदि कुरेदने के काम आता है और लंबा, नुकीला और छड़ के आकार का होता है।

कुरेभा—संज्ञा स्त्री० [सं० करभ = बच्चा] एक प्रकार की गाय जो साल में दो बार बच्चा देती है।

कुरेर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल या कल + केलि] कुलेल। आमोद प्रमोद। उ०—हँसहि हम औ करहिं कुरेरा। चुनहिं रतन मुकताहल हेरा।—(शब्द०)।

कुरेरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कुरेर] कुलेल करना। क्रीडा करना। उ०—करहि कुरेरे तुरंग रँगीली। औ चोवा चदन सब गीली। —जायसी ग्र०, पृ० २४५।

कुरेलना—क्रि० स० [हिं० कुरेदना] खोदना। करोदना।

संयो० क्रि०—डालना।

कुरेलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुरेदनी'।

कुरैत—वि० [हिं० कूरा = भाग या ढेर + ऐत या एत (प्रत्य०)] [स्त्री० कुरैतिन] भाग पानेवाला। हिस्सेदार।

कुरैना¹—क्रि० स० [हिं०] दे० कुरौना'।

कुरैना²—संज्ञा पुं० [हिं० कूरा] [स्त्री० कुरैनी] ढेर। राशि।

कुरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटज] एक वृक्ष जो जगलों में होता है और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं जो सफेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं।

विशेष—फूल के रगों के विचार से ही इसके चार भेद हैं जिनके गुण भी पृथक् पृथक् माने गए हैं। सफेद फूल की कुरैया का बीज मीठा इंद्रयव और काले फूल की कुरैया का बीज कड़ुआ इद्रयव कहलाता है। यह कसैला दीपक और हलका होता है और बवासीर अतिसार और सग्रहणी को दूर करता है। यह बरसात में फूलता है और देखने में बहुत भला मालूम होता है।

पर्या०—कुटज। वत्सक। गिरिमल्लिका। वरतिक्त। पाडुर। कुटक। कटुक। कौटजा। तिक्तक। रक्तनाशक। वृक्षक। कूटज। काही। कालिग। प्रावृष्य। यवफल। सग्राही। प्रावृषएय। महागध। इद्रव। कोट।

कुरौना(पु)†—क्रि० स० [हिं० कूरा = ढेर] ढेर लगाना। कूरा लगाना

कुरौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूरा] ढेर। राशि।

कुर्क—वि० [तु० कुर्क] [संज्ञा कुर्की] जब्त। उ०—रह रह आँखों में चुभती वह कुर्क बरघों की जोड़ी।—ग्राम्या, २५।

यौ०—कुर्कअमीन। कुर्कनामा।

कुर्कअमीन-संज्ञा पुं० [तु० कुर्क + फा० अमीन] वह सरकारी कर्मचारी जो अदालत के आज्ञानुसार जायदाद की कुर्की करता है।

कुर्कनामा—स० पुं० [तु० कुर्क + फा० नामा] अदालत का वह परवाना जिसके अनुसार कुर्कअमीन किसी की जायदाद की कुर्की करता है। जब्ती का परवाना।

कुर्की—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क + ई(प्रत्य०)] देना चुकाने या भागे हुए अपराधी को अदालत में हाजिर कराने के लिए कर्जदार या अपराधी की जायदाद का सरकार द्वारा जब्त किया जाना।

विशेष—कभी कभी महाजन के विशेष कारण दिखलाने पर कर्जदार की जायदाद फैसला या डिग्री होने से पहले ही इसलिये जब्त कर ली जाती है कि जिसमें वह जायदाद इधर उधर न कर सके। इसे कच्ची कुर्की कहते हैं।

मुहा०—कुर्की उठाना = जब्त की हुई जायदाद को छोड़ देना। कुर्की बैठाना = कुर्क करना। जब्त करना। कुर्की ले जाना = कुर्कनामा लेकर किसी की जायदाद कुर्क करने के लिये जाना।

कुर्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुर्गा। कुक्कुट। २ कूड़ा। करकट [को०]।

कुर्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। श्वान [को०]।

कुर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० कूर्चिका' [को०]।

कुर्ता—संज्ञा पुं० [तु० कुरता] दे० 'कुरता'।

कुर्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुर्ता] दे० 'कुरती'।

कुर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कूर्दन'।

कुर्दमी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज का रस्सा। आलात।—(लश०)।

कुर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुहनी। २.घुटना। पैरों के बीच का हड्डियों का जोड़ [को०]।

कुर्पास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुर्पासक' [को०]

कुर्पासक—संज्ञा पुं० [सं०] अगिया। चोली।

कुर्ब—संज्ञा पुं० [अ० कुर्ब] निकटता। समीपता।

कुर्बान-संज्ञा पुं० [अ० कुर्बान] बलि। निछावर। भेंट [को०]।

कुर्बानी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुर्बानी] दे० कुरबानी'।

कुर्ब्बि(पु)† संज्ञा स्त्री० [देश०] फैलाव। विस्तार। उ०—प्रथम ही आप तें मूल माया करी। बहुरि वह कुर्ब्बि करि त्रिगुन ह्वै विस्तरी।—सुदर ग्र०, भा० १ पृ० २५६।

कुर्बोजवार—संज्ञा पुं०[अ० कुर्ब व जवार] आस पास। अगल बगल। पास पड़ोस [को०]।

कुर्मी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, प्रा० कुडुम्ब या सं० कु (= पृथ्वी) + हिं० रमी या देश०] एक जाति जो खेती करती है। कुनबी।

विशेष—कहीं कहीं इस जाति के लोग अपना परिचय 'गृहस्थ' कहकर देते हैं।

कुर्मुक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमुक] सुपारी।—(डिं०)।

कुर्म्ह(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० कूर्म'। उ०—मीन रूप जो प्रथम सुभाऊ। ता पीछे कुर्म्हहि निभाऊ।—कबीर सा०, पृ० ११।

कुर्रना†—क्रि० अ० [अनु०] दे० कुरलना'।

कुर्री—संज्ञा पुं० [अ० कुर्अह] रमल के काम में प्रयुक्त पाँसा। पौसा। पाशक। सारि। उ०—एक ओझा नाम निकलने के लिये बुलाया गया। मौलवी साहब ने कुर्रा फेंका।—मान० भा० ५, पृ० २५३।

२ आत्मत्याग। आत्मबलिदान (को०)। ३ त्याग। स्वार्थत्याग (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—चढ़ाना।—देना।

कुरम(५)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कछुआ। कच्छप। उ०—कुरम सुतन को धरत है ऊँचे आपु उदर को धावै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १६।

कुरमा†(५)—संज्ञा पुं० [हिं० कुनबा] कुटुंब। परिवार। उ०—भेद की भेरी अलोक कै झालरि, कौतुक भो कलि के कुरमा मैं। जूझत ही बलवीर बजै बहु दारिद के दरबार दमामैं।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १३१।

कुरमा का बाँक—संज्ञा पुं० [देश०] वे आडी लकड़ियाँ जो जहाज के नीचे अंदर की ओर शहतीरों के बीच में उनको जकड़े रखने के लिये लगाई जाती हैं।—(लश०)।

कुरमी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुर्मी'। उ०—नव कुरमी सत्रह कोरी। तेरह कुम्हार सबै सिर मोरी।—कबीर सा०, पृ० ५६३।

कुरमुराना—क्रि० अ० [अनु०] कुर कुर करना। गतिशील होना। उ०—लता टूटी, कुरमुराता मूल में है सूक्ष्म भय का कीट।—हरी घास०, पृ० १८।

कुरर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिद्ध की जाति का एक पक्षी। २. करांकुल। क्रौंच।

कुररा—संज्ञा [सं० कुरर] [स्त्री० कुररी] १ करांकुल। क्रौंच। उ०—छत्र विटप वट पटु पिक डाढ़ो। कुरर नकीब करत धुनि गाढो।—देव (शब्द०)। २ टिटिहरी। उ०—लै कै कंत भा कुररा लोपी। कठिन विछोह जियहिं किमि गोपी।—जायसी।—(शब्द०)।

कुरराव¹(५)—संज्ञा पुं० [सं० कुरराज] दुर्योधन। उ०—जाप को पेगवर, आपका दरियाव। ताप का सेस ज्वाल दाप का कुरराव।—रा० रू०, पृ० ६७।

कुरराव²—संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच या बाज पक्षियों से घिरा स्थान।

कुररी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्या छंद का एक भेद, जिसमें चार गुरु और उनचास लघु होते हैं। २. कुररा का स्त्रीलिंग रूप। क्रौंची। उ०—लै दच्छिन दिसि गयो गुसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।—तुलसी (शब्द०)। दे० 'कुररा'।

कुरल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रौंच। २ बाज पक्षी। ३. कुंचित केश। घुँघराले बाल।

कुरल²—संज्ञा पुं० [त०] मद्रास के निकट मयलापुरम् में जन्म लेनेवाले संत कवि तिरुवल्लवर रचित तमिल भाषा का धर्मनीति शास्त्र ग्रंथ जो 'तमिलवेद' नाम से प्रसिद्ध है।

कुरलना(५)—क्रि० अ० [सं० कलरव या कुरव, हिं० कुर या अनु०] मधुर स्वर से पक्षियों का बोलना। उ०—(क) कुरलहिं सारस करहिं हुलासा। जीवन मरन सु एकहु पासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। खूँदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।—जायसी (शब्द०)।

कुरला—संज्ञा पुं० [हिं०] १ खेल। क्रीड़ा। २. कुल्ला। मुँह में भरकर पानी गिराना।

कुरली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुररी पक्षी। २ बाज की मादा।

कुरव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृक्ष जिसके फूल लाल होते हैं। लाल फूल की कटसरैया। लाल कुरैया। कुरवक। मदुवा। उ०—बट बकुल कदंब पनस रसाल। कुसुमित तरुनिकर कुरव तमाल।—तुलसी (शब्द०)। २ सफेद मदार। आक। ३ सियार। ४. कर्णकटु स्वर। कर्कश स्वर।

कुरव²—वि० [सं० कु + रव] कर्कश या कटु शब्द करनेवाला (को०)।

कुरवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुरैया का वृक्ष और फूल। कुरव। उ०—छोटा सा कुरवक का पेड कैसा एक साथ फूल उठा।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ३९३।

कुरवा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुरवक] कटसरैया।

कुरवा²—संज्ञा पुं० [सं० कुडव] लकडी का एक बर्तन जो अन्न नापने के काम आता है। यह एक सेर का होता है।

कुरवारना†—क्रि० स० [सं० कर्त्तन] खोदना। करोदना। खरोचना। उ०—(क) पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली। धरनी नख चरनन कुरवारति सौतिन भाग सुहाग डहीली।—सूर (शब्द०)। (ख) कौन्यो थिरिकि बैठु तेहि डारा। कौन्यों कलो केल कुरवारा।—जायसी (शब्द०)।

कुरविंद—संज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्द] दे० 'कुरुविंद'।

कुरुखेत(५)—संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] 'कुरुक्षेत्र'।

कुरसथ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैली खाँड़।

कुरसा¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष जो बहुत शीघ्र बढ़ता है और देखने में बहुत अच्छा मालूम होता है। इसकी लकडी लाल रंग की और मजबूत होती है और मकान तथा पुल के बनाने के काम आती है। यह कुमायूँ, नीलगिरि अवध, बंगाल, आसाम और मद्रास में होता है। २ जंगली गोभी।

कुरसा²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलिश] १ एक प्रकार की बडी मछली।

कुरसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. एक प्रकार की चौकी जिसके पाये कुछ ऊँचे होते हैं और जिसमें पीछे की ओर सहारे के लिये पटरी या इसी प्रकार की और कोई चीज लगी रहती है। किसी किसी में हाथों के सहारे के लिये दोनों ओर दो लकड़ियाँ भी लगी रहती हैं। यह केवल एक आदमी के बैठने योग्य बनाई जाती है।

विशेष—कुरसी प्रायः लकड़ी की बनती है और उसमें बैठने और सहारा लगाने का स्थान बेंत से बुना या चमड़े आदि से मढ़ा होता है। कभी कभी पत्थर, लोहे या किसी दूसरी धातु से भी कुरसी बनाई जाती है। यह कई कई आकार और प्रकार की होती है।

यौ०—आराम कुरसी = एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिसपर आदमी लेट सकता है।

२ वह चबूतरा जिसके ऊपर इमारत या इसी प्रकार की और कोई चीज बनाई जाती है। यह आसपास की भूमि से कुछ ऊँचा होता है और पानी, सीड आदि से इमारत की रक्षा करता है। ३ पीढ़ी। पुश्त।

यौ०—कुरसीनामा।

४. वह चौकोर तावीज जो हुमेल के बीच मे रहती है। चौकी। उरबसी। ५. नाव के किनारे किनारे की तख्तावदी। जहाज में इसी तख्तावंदी पर नीचे पाल वँधा रहता है। ६ जहाज के मस्तूल के ऊपर की वे आडी तिरछी लकड़ियाँ जिनपर खडे होकर मल्लाह पाल की रस्सियाँ तानते हैं। ७ नदियों मे चलनेवाली छोटी नाव की लंवाई मे पट्टियों का बना हुआ वह चौरस स्थान जिसपर आरोही वैठते हैं। पादारक।

कुरसीनामा—सज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसमे किसी की वंशपरंपरा लिखी हो। वशवृक्ष। शजरा। पुश्तनामा।

कुरह—सज्ञा स्त्री० [सं० कु+फा० रह या राह] वुरा रास्ता। कुमार्ग। उ०—जो देख वेजावी कुरह सो भर्म अँवेरी पुरा।—कवीर म०, पृ० ३७१।

कुरहम—सज्ञा पुं० [स० कु+अ० रह्म] पाप। निर्दयता। उ०—रहम की नजर कर कुरहम दिल से दूर कर।—मलूक०, पृ० ३९।

कुराँ—सज्ञा पुं० [अ० कुरान] कुरान का संक्षिप्त रूप। उ०—गजनी तोड़े सोमनाथ को, कावे को दे फूँक शिवा। जले कुराँ अरवी रेतों मे सागर जा फिर वेद रहे।—द्वद्व०, पृ० ३२।

कुरा¹—सज्ञा पुं० [अ० कुरह्] वह गाँठ जो पुराने जखम में पड जाती है। इसमे पीव जमा रहता है और नासूर हो जाता है।

कुरा²—सज्ञा पुं० [स० कुरव] कटसरैया। उ०—कुरे की डाल मे अंचल उलझा है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुराई¹—सज्ञा पुं० [हिं० कुराह] वुरा रास्ता। तग और नीचा ऊँचा रास्ता। उ०—कुश कंटक काँकरी कुराई। कटुक कठोर कुवस्तु दुराई।—तुलसी (शब्द०)।

कुराई²—सज्ञा स्त्री० [देश०] पाँव में टालने का काठ।

कुराई³—वि० [हिं०] दे० 'कुराही'।

कुरान—सज्ञा पुं० [अ० कुरान] अरवी भाषा की एक पुस्तक जो मुसलमानों का धर्मग्रंथ है। उनका विश्वास है कि ईश्वर ने इस ग्रंथ के वाक्यों को भिन्न भिन्न काल में जिवरईल के द्वारा मुहम्मद साहब के पास भेजा था। इस ग्रंथ मे तीस भाग हैं जिन्हें 'पारा' कहते हैं।

विशेष—मुसलमान लोग आदर के लिये कुरान के साथ 'शरीफ' 'मजीद' आदि शब्द भी जोड़ते हैं। जैसे,—पढ़त कुरान शरीफ अजव मुख विकृत वनावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

मुहा०—कुरान उठाना या कुरान पर हाथ रखना=कुरान की साक्षी देना। कुरान की कसम खाना। कुरान का जामा पहनना=अत्यंत धर्मनिष्ठ वनना।

कुरानी—वि० [हिं० कुरान+ई (प्रत्य०)] १. कुरान पर विश्वास करनेवाला (मुसलमान)। २ कुरान से संवंधित।

कुराय—सज्ञा स्त्री० [सं० कु+फा० राह] रास्ते का ऊँचा नीचा स्थान। गड्ढा। खदरा। दे० 'कुराई'। उ०—काँट कुराय लपेटन लोटनि ठाँवहि ठाँव वझाऊ रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज वासन भेट जगाऊ रे।—तुलसी (शब्द०)।

कुरारी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुरीर] दे०'कुररी'। उ०—दाएँ कुरारी दाहिन कूचा। पहुँचै भुगुति जैस मन रूचा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१२।

कुराल—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय के उत्तर-पश्चिम विभाग मे शिमला, गढवाल और कुमाऊँ आदि स्थानो मे होता है। इसमे फलियाँ लगती हैं।

कुरासा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुरसा'।

कुराह—सज्ञा स्त्री० [स० कु+फा राह] [वि० कुराही] कुमार्ग। वुरी राह। खराव रास्ता।

कुराहर—सज्ञा पुं० [स० कोलाहल हिं० कुलाहल] शोर। गुल गपाडा। कोलाहल। उ०—कुहकहि मोर सुहावन लागा। होय कुराहर वोलहि कागा।—जायसी (शब्द०)।

कुराही¹—वि० [हिं० कुराह+ई (प्रत्य०)] कुमार्गी। वदचलन। उ०—कुटिल कुराही कुलदोषी सो कलक भरो कुमति मते मैं अति महा मद पूरे है।—रघुनाथ (शब्द०)।

कुराही²—सज्ञा स्त्री० वदचलनी। दुराचार।

कुरिंद—सज्ञा पुं० [देश०] दरिद्र।—(डिं०)।

कुरिया¹—सज्ञा स्त्री० [सं० कुटी या कुटिका] १ फूस की झोपड़ी। मँड़ई। कुटी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—छान।

२. वहुत छोटा गाँव।

कुरिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुरीना] १ ढेर। वोझ। गाँज। २. राव क वोरो को जूसी निकालने के लिये तले ऊपर रखना।

कुरियाना—क्रि० स० [हिं० कुरिया+ना (प्रत्य०)] कूरा लगाना। ढेर लगाना। एकत्र करना।

कुरियार—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुरियाल] दे० 'कुरियाल'। उ०—सुख कुरियार फरहरी खाना। विज भा जवहिं विआध तुलाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७।

कुरियाल—सज्ञा स्त्री० [स० कल्लोल] चिडियो का मौज मे वैठकर पख खुजलाना या भडभडाना।

मुहा०—कुरियाल मे आना=(१) चिडियों का आनंद में होना। (२) मौज मे आना। आनंद या उमग मे होना। कुरियाल मे गुलेला लगना=रंग मे भग होना। आनद में विघ्न पडना।

कुरिला—सज्ञा पुं० [सं० कुरट] जूता वनानेवाला या चमडे का कार-वार करनेवाला चमार।

कुरिहार—सज्ञा पुं० [स० कोलाहल] शोरगुल। हल्ला गुल्ला।

कुरी¹—सज्ञा पुं० [सं०] १. चेना नाम का अन्न। २. अरहर की फलियाँ।

कुरी²—सज्ञा स्त्री० [स० कुल] वश। घराना। खानदान। उ०—(क) भइ आहाँ पदुमावति चली। छत्तिस कुरि भइ गोहन भली।—जायसी (शब्द०)। (ख) नित नव मगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी।—तुलसी (शब्द०)।

कुरी³—सज्ञा स्त्री० [हिं० कोड़री] दे० 'कोड़री'। उ०—तव लगि वोयो कुरी चमारा।—कवीर सा०, पृ० ६३५।

कुम्हलाना—क्रि०अ० [सं० कु+म्लान] १ ताजगी का जाता रहना। सरसता और हरापन न रहना। मुरझाना। जैसे,-पौधे, पत्ते, फूल आदि का कुम्हलाना। उ०—तरु पर फूल कमल पर जल कण सुंदर परम सुहाते हैं। अल्प काल के बीच किंतु वे कुम्हलाकर मिट जाते हैं।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। २ सूखने पर होना। ३ प्रफुल्लता रहित होना। कांति का मलिन पड़ना। प्रभाहीन होना। जैसे—इतनी धूप में आए हो, चेहरा कुम्हलाया हुआ है। उ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुम्हलानी।—तुलसी (शब्द०)।

कुम्हार—संज्ञा पुं० [सं० कुंभकार, प्रा० कुंभार] [स्त्री० कुम्हारिन] १ मिट्टी का बरतन बनानेवाला मनुष्य। २ मिट्टी का बरतन बनानेवाली जाति।

कुम्हिलाना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कुम्हलाना'। उ०—(क) सुंदर तन सुकुमार दोउ जन सूर किरिन कुम्हिलात।—सूर०, ६। ४३। (ख) भजन बेलि जात कुम्हिलाइ। कौनि जुक्ति कै भक्ति दृढ़ाइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ६८।

कुम्ही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] एक पौधा जो पानी पर फैलता हैं। उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले। मोते गए कुम्ही के जर ज्यों ऐसे वे निरमूले। सूरश्याम जल राशि परे अब रूप रंग अनुकूले।—सूर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'कुंभी'।

कुम्हैड़ा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हड़ा] दे० 'कुम्हड़ा'।

कुयलिया†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोयल+इया (प्रत्य०)] दे० 'कोयल'। उ०—कूकनि लगी कुयलिया मधुर महान।—नट०, पृ० १०४।

कुयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जंतुओं की कोटि। तिर्यक्योनि।

कुरकर, कुरकुर—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्कर, कुरङ्कुर] सारस पक्षी [को०]।

कुरंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्ग] [स्त्री० कुरंगी] १ बादामी या तामड़े रंग का हिरन। २ मृग। हिरन।

यौ०—कुरंगलाछन।

३ बरवै छंद का एक नाम। ४.चंद्रमा में दृश्यमान धब्बा (को०)।

कुरंग[2]—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० रंग] १ बुरा रंग ढंग। बुरा लक्षण। २ घोड़े का एक रंग जो लोहे के समान होता है। नीला। कुम्मैत। लखोरी। ३ इस रंग का घोड़ा। कुलंठा, लखोरी। उ०—हरे कुरंग महुम बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह सुपाँती।—जायसी (शब्द०)।

कुरंग[3]—बुरे रंग का। बदरंग।

कुरंगक—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गक] हरिण। मृग [को०]।

कुरंगनयना—वि० स्त्री० [सं० कुरंगनयन] हिरन की आँखों के समान बड़ी बड़ी आँखोंवाली [को०]।

पर्या०—कुरंगनयनी।—कुरंगनेत्रा।—कुरंगलोचना।

कुरंगम—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गम] हरिण। मृग। कुरंगक [को०]।

कुरंगनाभि—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गनाभि] कस्तूरी [को०]।

कुरंगलाछन—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गलाञ्छन] चंद्रमा। मृगलांछन।

कुरंगिन, कुरंगिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरङ्ग] हिरन। उ०—(क) चंदन माँझ कुरंगिन खोजू। तेहि को पाव को राजा भोजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) जोबन पंखी बिरह बिआधू। केहरि भयो कुरंगिनि खाधू।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २३६।

कुरंगसार—संज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गसार] कस्तूरी। मुश्क। उ०—केसर कुरंगसार रंग से लिपित दोऊ दूहू में दिपति औ छिपति जात छाती में।—देव (शब्द०)।

कुरंगी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरङ्गी] हरिणी। मृगी।

कुरंगी[2]—वि० [सं० कु+हिं० रंगी] बुरे लक्षण, स्वभाव या रंगवाला।

कुरंच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] दे० 'क्रौंच'। उ०—ठाम ठाम जल थान मद्धि जल जीव निवासिय। ढंक कुरम कुरंच हंस सारस सुभ भासिय।—पृ० रा० ६। ६५।

कुरंचदीप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्चद्वीप] दे० 'क्रौंचद्वीप'। उ०—कुरंचदीप जब मनुआ बहै। रचक हद जस अंतरि गहै।—प्राण०, ४६।

कुरंट—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्ट] दे० 'कुरंटक' [को०]।

कुरंटक—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्टक] [स्त्री० कुरंटिका] पीली कटसरैया।

कुरंड[1]—संज्ञा पुं० [कुरुविंद = माणिक] एक खनिज पदार्थ, जो एक प्रकार का मूर्च्छित अलुमीनम है और मिस्री की चमकीली डली के रूप में जमा हुआ मिलता है।

विशेष—कड़ाई में यह हीरे से कुछ ही कम होता है। इसके चूर्ण को लाख आदि में मिलाकर हथियार तेज करने की सान बनाते हैं। अविशुद्ध अवस्था में चुंबक आदि से मिला हुआ जो दानेदार कुरंड मिलता है, वह मानिकरेत कहलाता है, जिससे सोनार सोने चाँदी के गहनों पर जिला देते हैं। अधिक कांतिवाले जो कुरंड मिलते हैं वे रत्न माने जाते हैं, और रंग के अनुसार उन्हें मानिक (लाल), नीलम, पुखराज, गोमेद आदि कहते हैं।

कुरंड[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्ड] १ औषध के काम में प्रयुक्त होनेवाला एक पौधा।

विशेष—यह पौधा खेतों के किनारे और इधर उधर उगता है। इसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं। वैद्यक में इसे अग्निदीपक, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक और मूत्रकृच्छ को दूर करनेवाला माना है।

२ फोता बढ़ने का रोग। अंडवृद्धि रोग (को०)।

कुरंडक—संज्ञा पुं० [सं० कुरण्डक] पीली कटसरैया।

कुरंद†, कुरंदर†—संज्ञा पुं० [देश०] गरीबी। दरिद्रता। उ०—(क) मनरा महराण समापण मोजा, कापण दीनाँ तरण कुरंद।—रघु० रू०, पृ० १६। (ख) बामण चार वेद के वकता, आगम दृष्टी ज्ञान धुरंधर। साहुकार सको धजबंधी दूजी गात अलेप कुरंदर।—रघु० रू०, पृ० २७४।

कुरवा—संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ की एक जाति जो डील में छोटी होती है और जिसके बाल नोचे से काने पर सिरे पर सफेद होते हैं। इसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट होता है।

कुर्रम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कूर्म । कछुवा । उ०—ढेंक कुर्रम कुरच । हस सारस सुभ भासिय ।—पृ० रा० ६ । ६५ ।

कुरग्रान—संज्ञा पु० [ग्र० क़ुरग्रान] दे० 'कुरान' । उ०—जर दीन है, कुरग्रान है, ईमाँ है, नवी है । जर ही मेरा ग्रल्लाह है, जर राम हमारा ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५२५ ।

कुरकनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोडे या गधे के चमडे का अगला भाग जिसका कीमुख्त नहीं बन सकता ।

कुरका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सलई । चीड । २ दक्षिण का एक देश जिसे अब कुर्ग कहते हैं । ३ एक नगर जो कुर्ग देश मे ताम्रपर्णी नदी के किनारे था और जहाँ वैष्णव ग्राचार्य शठकोप का जन्म हुग्रा था ।

कुरकी—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क] दे० 'कुर्की' ।

कुरकुड—संज्ञा पु० [देश०] एक घास जिसे रीहा ग्रौर कनखुरा भी कहते हैं । यह ग्रासाम ग्रौर बगाल मे होती है । इसका रेशा बहुत दृढ़ ग्रौर बारीक होता है ग्रौर जाल कपड़े ग्रादि बनाने के काम मे ग्राता है ।

विशेष—दे० 'रीहा' ।

कुरकुट¹—संज्ञा पुं० [सं० कुट = कुटना या कुट का ग्राम्रेडित रूप] किसी वस्तु का छोटा टुकडा ।

कुरकुट²(पु)—संज्ञा पु० [सं० कुक्कुट] १. मुर्गा । तमचुर । २ मुर्गे की बोली । उ०—कुरकुट सुनि चुरकट भई बाला । लीनै उससि उसाय विसाला ।—नद० ग्र०, पृ० १४२ ।

कुरकुटा—संज्ञा पुं० [सं० कुट = कूटना] १ किसी वस्तु का कूटा हुग्रा रवा । टुकडा २ रोटी का टुकड़ा । उ०—कैसे सहब खिनहि बिन भूखा । कैसे खाव कुरकुटा रूखा ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरकुर—संज्ञा पुं० [अनु०] खरी वस्तु के दबकर टूटने का शब्द । जैसे,—पापड दाँत के नीचे कुरकुर बोलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—बोलना ।

कुरकुरा—वि० [हिं० कुरकुर] [स्त्री० कुरकुरी] खरा ग्रौर करारा जिसे तोडने पर कुरकुर शब्द हो ।

कुरकुराना—क्रि० ग्र० [हिं० कुरकुर] १ कुरकुर शब्द करना । २. कुरकुर शब्द करते हुए खाना (को०) ।

कुरकुराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरकुर] कुरकुर शब्द होने का भाव ।

कुरकुरी—संज्ञा पुं० [देश० । अनु०] १ घोडे की एक बीमारी जिसमे उसका पखाना, पेशाब बद हो जाता है ग्रौर पेट फूल ग्राता है । २. पतली मुलायम हड्डी, जैसे, कान की ।

कुरखेत¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] १ वह स्थान जहाँ महाभारत का युद्ध हुग्रा था । २. युद्ध । संघर्ष ।

कुरखेत²†—संज्ञा पुं० [हिं०] वह खेत जिसकी जुताई हो गई हो किंतु बुवाई न हुई हो ।

कुरगरा—संज्ञा पुं० [हिं० कोर + गर] एक छोटी थापी जिससे दर्जबदी तथा कारनिस ग्रादि का बारीक काम किया जाता है ।

कुरच‡—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] कराकुल पक्षी । उ०—(क) विधि रोदनि जाति सिय, कुरच सरिस मन माँहि । हे रघुबर हे प्राणपति केहि मम रक्षहु नाहि ।—(शब्द०) । (ख) बारहि बार बिलाप करि कुरच सरिस रघुराइ । तब लगि मैं सिष्यन सहित पहुँचेउ तेहि बन ग्राइ ।—मधुसूदनदास (शब्द०) ।

कुरचिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] केकडा ।

कुरट—संज्ञा पुं० [सं०] १ चमड़ा बेचनेवाला । २ जूते बनानेवाला । चर्मकार (को०) ।

कुरडा—संज्ञा पु० [देश०] [स्त्री० कुरड़ी] ग्ररबी ग्रौर तुरकी जाति के घोडो के जोडे से उत्पन्न एक दोगली जाति का घोड़ा । इस जाति के घोड़े ग्ररब मे मिलते हैं ।

कुरता—संज्ञा स्त्री० [तु०] [स्त्री० कुरती] एक पहनावा जो सिर डालकर पहना जाता है ग्रौर जिसमे सामने छाती के नीचे किसी प्रकार का जोड़ या परदा नही होता ।

कुरती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुरता] १ स्त्रियो का एक पहनावा जो फतुही की तरह का होता है । २ (सोनार लोगों की बोली मे) स्त्री ।

कुरथी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुलथी' ।

कुरन¹—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कुरड' । उ०—शब्द मसकला करे ज्ञान का कुरन लगावै ।—पलटू०, पृ० ६ ।

कुरन²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कूरा] राशि । ढेर ।

कुरना(पु)†—क्रि० ग्र० [हिं० कूरा = ढेर] १ ढेर लगना । कूरा लगना । उ०—(क) वैभव विभव ब्रह्मानद की ग्रपार धार कोशल की कोश एकबार ही कुरे परी ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) पारावार, पूरन, ग्रपार परब्रह्म राशि, जसुदा की कोरें एकबार ही कुरें परी ।—देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. दे० 'कुरलना' । उ०—सारो सुग्रा जो रहचह करहीं । कुरहि परेवा ग्रो करवरहीं ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरब¹‡—संज्ञा पुं० [हिं०] इज्जत । उ०—कवियण किण पायो कुरब मागे मावडियाँह ।—बाँकी ग्र०, भा० २, पृ० १५ ।

कुरब²—संज्ञा पुं० [सं०] कुरबक नामक वृक्ष ग्रौर उसका फूल । लाल कटसरैया (को०) ।

कुरबक—संज्ञा पु० [सं०] कटसरैया ।

कुरबनही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोर + बनना] बढइयो का एक ग्रौजार जो रुखानी के ग्राकार का होता है ग्रौर जिससे कोने की कसर छीलकर साफ करते हैं । इसमे दस्ता नही होता ।

कुरबान—वि० [ग्र०] १. जो न्योछावर किया गया हो । जो बलिदान किया गया हो । २. न्योछावर । निसार । ३. बलि । सदका (को०) ।

मुहा०—कुरबान करना = न्योछावर करना । वारना । उ०—चचल चारु विशाल विवि लोचन मोचन मान । चितवत दिथि कब देखिहौं मन को करि कुरबान ।—विश्राम (शब्द०) । कुरबान जाना = न्योछावर होना । बलि जाना । कुरबान होना = (१) न्योछावर होना । (२) मरना । प्राण देना ।

कुरबानी—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] १ किसी देवता ग्रादि के लिये किसी जीव को बलिदान करने की क्रिया । कुरबान करने का काम ।

सोगहि नसावै। प्रमोद उपजावै। अतीव सुकुमारी। कुमार ललिता री। २ बालको की क्रीडा।

कुमारलसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ अक्षरो का एक वृत्त, जिसमे एक जगरण, एक सगण और अत में एक लघु और एक गुरु होता है। उ०—भजो जु सुखकद को। हरो जु दुख छद को। (शब्द०)।

कुमारवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] मोर। शिखी। वर्ही। मयूर [को०]।

कुमारव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन भर ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत [को०]।

कुमारसभव—संज्ञा पुं० [सं० कुमारसम्भव] कालिदासप्रणीत एक महाकाव्य।

विशेष—इस काव्य मे शिव-पार्वती-विवाह और कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। इस महाकाव्य मे कुल १७ सर्ग हैं जिसमें प्राचीन टीकाएँ आठ सर्ग के बाद नही मिलती। अत ऐसा विश्वास किया जाता है कि कालिदास ने आठ ही सर्गों की रचना की है तथा शेष नव सर्ग किसी अन्य कवि की कृति है।

कुमारसू -संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार कार्तिकेय की जननी। पार्वती [को०]।

कुमारामात्य—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तकाल मे उच्च पदाधिकारियो को दी जानेवाली एक उपाधि। उ०—सभवत सम्राट् तो कुसुमपुर चले गए हैं, और कुमारामात्य महाबलाधिकृत वीरसेन स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।—स्कद०, पृ० ४।

कुमारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] दे० 'कुमारी'। उ०—भौन ते निकसि वृषभानु की कुमारि देख्यो, ता समै सहेट को निकुंज गिरयो तीर को।—मति० ग्र०, पृ० २६०।

कुमारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। उ०—जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत।—ग्रपरा, पृ० ४०।

कुमारिल भट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध मीमासक और शबर भाष्य तथा अन्य श्रौत सूत्रो के टीकाकार।

विशेष—पहले इन्होने जैन धर्म ग्रहण किया था पर कुछ समय पीछे अपने जैन गुरु को शास्त्रार्थ मे परास्त करके ये वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे थे। कहते हैं गुरुसिद्धात का खडन करने के प्रायश्चित्त के लिये ये कूटाग्नि मे जल मरे थे। यह भी कहा जाता है कि इनके अग्नि मे जलने के समय शकराचार्य इनके पास भेंट करने के लिये गए थे।

कुमारी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दस वर्ष से बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या।

यौ०—कुमारीपूजा।

२ अविवाहिता कन्या (को०)३ कन्या। पुत्री। लडकी (को०)। ४ घीकुआर ५ नवमल्लिका। ६ बाँझ ककोड़ी। ७. बड़ी इलायची। ८ श्यामा पक्षी ९ सीता जी का एक नाम। १० पार्वती ११ दुर्गा १२ एक अतरीप जो भारतवर्ष के दक्खिन मे है। १३ चमेली १४ सेवती। १५ पृथ्वी का मध्य भाग १६ शाकद्वीप की सात नदियो मे एक। १७.अपराजिता।

कुमारी²—वि० बिना व्याही। जिस (स्त्री) का विवाह न हुआ हो।

कुमारीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुमारी से उत्पन्न व्यक्ति। २ कर्ण का नाम [को०]।

कुमारीपुर—संज्ञा पुं० [सं०] राजभवन का वह भाग जिसमें कुमारी लडकियाँ रहती हों [को०]।

कुमारीपूजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पूजा जो देवी पूजन के समय होती है और जिसमे कुमारी बालिकाओं का पूजन करके उन्हे मिष्ठान्न आदि दिया जाता है।

कुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुमार्गी] १ बुरा मार्ग। बुरी राह। २ अधर्म।

कुमार्गगामी—वि० [सं० कुमार्गगामिन्] १ कुपथी। कुमार्गी। २ अधर्मी।

कुमार्गी—वि० [सं० कुमार्गिन्] [स्त्री० कुमार्गिनी] १ बदचलन। कुचाली। २ अधर्मी। धर्महीन।

कुमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीन प्रदेश जो वर्तमान मालवा के अतर्गत था। इसे सौवीर भी कहते हैं। २ उक्त देश के निवासी।

कुमाला—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड जिसका फल खाया जाता है।

विशेष—यह पेड देहरादून, अवध, छोटा नागपुर, बंबई तथा दक्षिण भारत मे होता है। यह ८-१० फुट ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ चार पाँच इच लबी होती हैं। यह जेठ असाढ मे फूलता है और इसका फल खाया जाता है।

कुमिस—संज्ञा पुं० [सं० कु+मिष प्रा० मिस] कुव्याज। बुरा धोखा। दुष्टता से भरा बहाना या छल। उ०—भूषण कुमिस गैर मिसिल खरे किए को।—भूषण ग्र०, पृ० २०।

कुमीच(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+मृत्यु > प्रा० मिच्चु] बुरी मृत्यु। अपमृत्यु।

कुमुख¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ रावण के दुर्मुख नामक एक योद्धा का का नाम। २ सूअर।

कुमुख²—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० कुमुखी] १ बुरे मुखवाला जिसका चेहरा देखने मे अच्छा न हो। २ कुत्सित या अपविचार को व्यक्त करनेवाला (मुख)। उ०—लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे।—मानस, २।४३।

कुमुद—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुईं २ लाल कमल। ३ निर्दय। बेरहम। ४ कजूस।

कुमुद¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुईं। कोका २. लाल कमल।

यौ०—कुमुदबधु=चद्रमा।

३ चाँदी। ४ विष्णु। ५ एक बदर का नाम जो रावण के युद्ध मे लडा था ६. एक प्रकार का वैद्य। ७ एक द्वीप का नाम ८. कपूर ९ एक नाग का नाम। इसकी बहन कुमुद्वती कुश की पत्नी थी। १० आठ दिग्गजो मे से एक जो दक्षिणपश्चिम कोण मे रहता है ११ विष्णु का एक पारिषद। १२ सगीत का एक ताल १३ एक केतु तारा जो कुई के आकार का है।

विशेष—यह दक्खिन में उदय होता है और कुछ ही रात को दिखाई देता है। इसकी स्थिति ध्रुव की ओर होती है। कहते हैं कि इसके उदय होने पर वन वर्ष तक दुर्भिक्ष रहता है।

कुमुद²—वि० १ कंजूस। कृपण। २. लोभी। लालची।

कुमुदकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी। ज्योत्स्ना। उ०—कुमुदकला है यहीं किरणों वह नव कैसा निर्मल है।—वीणा, पृ० ८।

कुमुदकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की किरण। चंद्ररश्मि। उ०—उ०—तुहिन बिंदु बनकर सुंदर, कुमुदकिरण से सहज उतर।—वीणा, पृ० २।

कुमुदनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'।

कुमुदबंधु—संज्ञा पुं० [सं० कुमुदबन्धु] चद्रमा।

पर्या०—कुमुदनाथ। कुमुदपति। कुमुदबांधव। कुमुदसुहृत।

कुमुदिन—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—मनु कुमुदिन घर चल्यो चंद्रमा देत परम सुख।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६।

कुमुदिक—वि० [सं०] १. कुमुद से संबंध रखनेवाला। २. कुमुदों से भरा हुआ [को०]।

कुमुदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कट्फल [को०]।

कुमुदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुई। कोईं। २ वह स्थान जहाँ कुमुद हों। उ०—कहुँ संवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५४।

विशेष—इस शब्द के साथ 'पति' वाची शब्द जोड़ने से जो समस्त शब्द बनते हैं वे चद्रमा का अर्थ देते हैं।

कुमुदिनीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

कुमुद्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ षड्ज स्वर की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति। १. नागराज कुमुद की भगिनी और कुश की स्त्री। ३ कुमुद से पूर्ण बावड़ी। उ०—किन तीक्ष्ण करों से छिन्न हुई, यह कुमुद्वती जल भिन्न हुई।—साकेत, पृ० १४६।

कुमेटी¹ ⓤ—संज्ञा स्त्री० [देश० कुमेंड] बुराई। उ०—मेटो सकल कुमेटी पोथी पोथी पढत मरोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०४

कुमेटी²—संज्ञा स्त्री० [अं० कमिटी] विचार विमर्श। राय मशविरा।

कुमेडिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेता—ⓤ संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्मैत'। उ०—मुसकी पंचकल्यानी कुमेता केहरि रंगा।—सुजान०, पृ० ८।

कुमेरु—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी ध्रुव।

कुमेंडा—संज्ञा पुं० [देश०] छल। कपट। धोखा। दगा।

कुमैत—संज्ञा पुं० [हिं०] 'कुम्मैत'। उ०—रंग रंग के साजे तुरंगा। कुल्लह समुद कुमैत सुरंगा।—हम्मीर० पृ० ३।

कुमैंड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० कुमेंड] छली। कपटी। दगाबाज।

कुमोदⓤ—संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] कुई। उ०—चली सबै मालत सँग भूले कमल कुमोद। बेध रही गन गंधरब बास परिमलामोद।—जायसी (शब्द०)।

कुमोदनीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—चहुँ ओर कुमोदनी फाड़ कुस्यो।—ह० रासो, पृ० ३१।

कुमोदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'।

कुम्बेरⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० कुबेर] दे० 'कुबेर'। उ०—नौ निधि नौ सिद्धि द्वारहिं ठाढ़ि कुम्बेर भँडारी। कहो कौन कुमति कवि हरिचंद बिचारो।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २११।

कुम्मैत¹—संज्ञा पुं० [तु० कुमैत] घोड़े का एक रंग जो स्याही लिए लाल होता है। लाखी। २. वह घोड़ा जो इस रंग का हो। इस रंग का घोड़ा बहुत मजबूत और तेज होता है।

यौ०—आठो गाँठ कुम्मैत = मस्त चतुर। छँटा हुआ। चालाक। धूर्त।

कुम्मैत²—वि० कुम्मैत रंग का।

कुम्मैदⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुम्मैत'।

कुम्हड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कूष्माण्ड, प्रा० कुम्हंड, पा० कुभंड] १. फैलनेवाली बेल जिसके फलों की तरकारी और मुरब्बा, पाग आदि बनाया जाता है।

विशेष—इसके पत्ते बड़े, गोल रोएँदार होते हैं। पत्ते का डंठल बड़ा और पोला होता है। इसमें घंटी के आकार के बड़े बड़े पीले फूल लगते हैं। कुम्हड़े की बेल बहुत दूर तक फैलती है। इसके फल गोल और बहुत बड़े बड़े सात आठ सेर तक के होते हैं। कुम्हड़ा दो प्रकार का होता है—एक सफेद, दूसरा पीला। सफेद रंग के कुम्हड़े को पेठा कहते हैं। यह खाने में बहुत फीका सा होता है। लोग इसका मुरब्बा डालते हैं और इसके महीन टुकड़ों को पीठी में मिलाकर बरी भी बनाते हैं। पीले कुम्हड़े का गूदा लाल रंग का और खाने में मीठा होता है। इसकी दो फसलें होती हैं—एक गरमी में, दूसरी बरसात में। गरमी का कुम्हड़ा जमीन पर और बरसात का छप्पर आदि पर फैलता है। कुम्हड़े के फल की तरकारी होती है और फूलों तथा पत्तों का साग बनता है।

पर्या०—काशीफल। पेठा।

२ कुम्हड़े का फल।

मुहा०—कुम्हड़ बतिया = (१) कुम्हड़े का छोटा फल। (२) अशक्त और निर्बल मनुष्य। उ०—इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखि मरि जाहीं।—तुलसी (शब्द०)। कुम्हड़े की बतिया—(१) कुम्हड़े का छोटा कच्चा फल। (२) अशक्त और निर्बल मनुष्य।

कुम्हड़ौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुम्हड़ा + बौरी (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की बरी, जो पीठी में कुम्हड़े के महीन महीन टुकड़े मिलाकर

कुबिज(पु)—वि० [सं० कुब्ज] दे० 'कुब्ज'। उ०—कुबिज खज अरु स्यामदंत नर।—पृ० रासो, पृ० १४।

कुबिजा (पु)संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुब्जा'।

कुबुजवा†—वि० [सं० कुब्ज, हिं० कुबिल, कुबुज+वा (प्रत्य०)] कुबडा। कुब्ज। उ०—सइयाँ हमरे कुबुजवा हो हम घन अलप कुमारि।—गुलाल०, पृ० ५३।

कुबुजा(पु) संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुब्जा'। उ०—कोउ कहे रे मधुप स्याम जोगी तुम चेला। कुबजा तीरथ जाइ कियो इद्रिन को मेला।—नंद० ग्र०, पृ० १८५।

कुबुद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगला।

कुबुद्धि¹—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो। दुर्बुद्धि। मूर्ख।

कुबुद्धि²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूर्खता। बेवकूफी। २ बुरी सलाह। कुमंत्रणा।

कुबुधि(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुबुद्धि'। उ०—काम औ क्रोध दुइ पाप का मूल हैं, कुबुधि का बीज का जानि बोवै।—कबीर रे०, पृ० ३२।

कुबेर—संज्ञा पुं० [सं० कुबेर] दे० 'कुवेर'।

कुबेला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवेला] बुरा समय। अनुपयुक्त काल। उ०—अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुबेला, यहाँ अबवा तरे रुक एक पल विश्राम लेना।—ठंडा०, पृ० १८।

कुबोल—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० बोल] १ बुरी बात। अशुभ वचन। अमंगल बात।

कुबोलना†—वि० [हिं० कुबोल] बुरी या अशिष्टतायुक्त बात कहनेवाला। अशुभभाषी। कुभाषी।

कुबोलनी—वि० स्त्री० [हिं० कुबोल] बुरा बोल बोलनेवाली। कुभाषिणी। उ०—युवति कुरूप कुबोलनि जाके। सदा शोक हिय ह्वै है ताके।—निश्चल (शब्द०)।

कुब्ज¹—वि० [सं०] [स्त्री० कुब्जा] जिसकी पीठ टेढ़ी हो। कुबड़ा।

कुब्ज²—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिसमे वायु के विकार से छाती या पीठ टेढ़ा होकर ऊँचा हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है। एक मे पीठ आगे को और और दूसरे मे पीछे की ओर झुकता है। २ अपामार्ग। लहचिचिड़ा। लटजीरा।

कुब्जकंठ—संज्ञा पुं० [सं० कुब्जकण्ठ] सन्निपात का एक रोग।

विशेष—इसमे कंठ रुक जाता है और रोगी के गले के नीचे पानी नहीं उतरता। इसमे दाह, मोह आदि भी होता है। वैद्यक मे इसे असाध्य माना है, और इसकी अवधि १३ दिन बतलाई है।

कुब्जक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मालती। २ नगर के आठ प्रकारों मे से एक। उ०—शहर आठ तरह के होते है—राजधानी, नगर, पुर, नगरी, खेट, खर्वाट, कुब्जक, पट्टन।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ४८४।

कुब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कंस की एक दासी, जिसकी पीठ कुबड़ी थी। यह कृष्णचंद्र से अधिक प्रेम रखता था। कुबरी। २. कैकेयी की मथरा नाम की एक दासी। उ०—लखनु, भरतु, रिपुदमन सुमित्रा कुबरी के उर साल।—तुलसी (शब्द०)।

कुब्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ वर्ष की अवस्था की लडकी। २ दुर्गा देवी का एक नाम।

कुब्बा†—संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] डिल्ला। कूबड़।

कुब्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ जंगल। २ यज्ञार्थ निर्मित कुंड। ३ अँगूठी। ४ कान मे पहनने का एक आभूषण। बाली। ५ डोरा। ततु। धागा। ६ गाड़ी। शकट (को०)।

कुभरा†—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हार] दे० 'कुम्हार'। उ०—कुभरा ह्वै करि बासन घरिहूँ धोबी ह्वै मल धोअ।—कबीर ग्र०, पृ० २१७।

कुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी की छाया। २. बुरी दीप्ति। ३. काबुल नदी।

कुभायँ—संज्ञा पुं० [सं० कुभाव] दे० 'कुभाव'। उ०—भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मगल दिसि दसहूँ।—मानस, १।२८।

कुभाव—संज्ञा पुं० [सं० कु+भाव] अनुचित भाव। दुर्वृत्ति। प्रेमशून्य भाव।

कुभृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। २ सात की संख्या। ३ काबुल नदी।

कुमठी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कमठ=बाँस] पतली लचीली टहनी। उ०—पाता बड बड़ देखि के चढ़े कुमठी धाय। तरुवर होय तो भार सह टूट रेंड अरराय।—गिरिधर (शब्द०)।

कुमंत्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमन्त्रणा] बुरी सलाह।

कुमंत्रित—वि० [सं० कु+मन्त्रित] जिसे असत् परामर्श दिया गया हो।

कुमइत(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'कुम्मैत'।

कुमक—संज्ञा स्त्री० [तु०] १ सहायता। मदद। उ०—लार्ड आकलेंड ने जाने से पहले जलालाबादवालों की कुमक के लिये पेशावर मे फौज जमा होने के लिये हुक्म जारी किया।—शिवप्रसाद (शब्द०)। २ पक्षपात। हिमायत। तरफदारी।

क्रि० प्र०—करना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—देना।—आना।

मुहा०—कुमक पर होना=हिमायत करना। पक्ष लेना। तरफदारी करना।

कुमकी¹—वि० [तु० कुमक] कुमक या कुमक से सबंध रखनेवाला। जैसे—कुमकी फौज।

कुमकी²—संज्ञा स्त्री० हाथियों के पकड़ने मे सहायता करने के लिये सिखाई हुई हथिनी।

कुमकुम—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] १. केशर। उ०—जहाँ स्याम घन रास उपायो। कुमकुम जल सुख वृष्टि रमायो।—सूर (शब्द०)। २ कुमकुमा। उ०—चंदन कालकूट सम जानहु। कुमकुम पवि प्रहार इव मानहु।—मधुसूदनदास (शब्द०)।

कुमकुमा—संज्ञा पुं० [तु० कुमकुमा] १. लाख का बना हुआ एक प्रकार का पोला, गोल या चिपटा लट्टू, जिसमे अबीर और गुलाल भरकर होली मे लोग एक दूसरे पर मारते हैं। इसके टूटने से गुलाल अबीर आदि इधर उधर बिखर जाता है। उ०—चलत कुमकुमा रंग पिचकारी अरु गुलाल की झारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४०४। २. एक प्रकार का तंग मुँह का लोटा

कुपढ़—वि० [सं० कु+हिं० पढ़ना] अनपढ़। मूर्ख।

कुपत्थ(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य, प्रा० कुपत्थ] १ किसी रोगी के रोग को बढ़ानेवाला आहार विहार। २ अस्वास्थ्यकर खान पान।

कुपत्थी[1]—वि० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य करनेवाला। असयमी।

कुपत्थी[2]—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जो पथ्य से न रहे। बदपरहेज आदमी।

कुपथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा रास्ता। २ निषिद्ध आचरण। बुरी चाल।

यौ०—कुपथगामी=कुमार्गी। निषिद्ध आचरण का।

कुपथ[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] वह भोजन जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो। उ०—राज काज कुपथ कुसाज भोग रोग को है वेद वुध विद्या वाय विवस वलकहीं।—तुलसी। (शब्द०)।

कुपथ्य—संज्ञा पुं० [सं० कु+पथ्य] वह आहार विहार जो स्वास्थ्य को हानिकारक हो। बदपरहेजी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुपना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कोपना] दे० 'कोपना'।

कुपली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोंपल'। उ०—जीभ न जीभ विगोयनो। दव का दाघा कुपली मेल्ही।—वी० रासो, पृ० ३७।

कुपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी मंत्रणा। बुरी सलाह। उ०—कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाठू।—तुलसी (शब्द०)।

कुपाठी—वि० [सं० कुपाठिन्] बदमाश। नटखट। दुष्ट। उत्पाती।

कुपातर—वि० [सं० कुपात्र] दे० 'कुपात्र'। उ०—म्हारी जात में भी कोई कुपातर निकल गयो।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ४४।

कुपात्र—वि० [सं०] १ किसी विषय का अनधिकारी। अयोग्य। नालायक। २ वह जिसे दान देना शास्त्रों मे निषद्ध है।

कुपार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अकूपार] समुद्र। उ०—देख अब रक लक जारत निशक तेरी तऊ न बुझैगी जो लौं आइहौं कुपार को।—हनुमान (शब्द०)।

कुपिंद—संज्ञा पुं० [सं० कुविन्द] जुलाहा। तंतुवाय।

कुपित—वि० [सं०] १. क्रुद्ध। क्रोधित। २ अप्रसन्न। नाराज।

कुपितमूल (सैन्य)—संज्ञा पुं० [सं०] भड़की हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य के मत में भड़की हुई और भिन्नगर्भ (तितर बितर हुई) सेनाओं मे से कुपितमूल सामादि उपायो से शात की जाकर उपयोग में लाई जा सकती है।

कुपिन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कौपीन'।

कुपिया—क्रि० वि० [अ० खुफीयह्] छुपे छुपे। चुपचाप। छिपे हुए। खोपिया। पोशीदा। उ०—के प्रपच कुपिया करै, रुपिया जोडण रोक। परपीडा पेखै नहीं, ऐ लोभीडा लोक।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ५६।

कुपीन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कौपीन] कौपीन। लंगोटी। उ०—गाँठी सत्त कुपीन में सदा फिरे नि सक। नाम अमल माता रहै गिने इंद्र को रक।—मलूक०, पृ० ३३।

कुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो कुपथगामी हो। कुपूत। दुष्ट पुत्र।

कुप्पक—संज्ञा पुं० [सं० कोप] घोड़ो का एक रोग जिसमे उन्हे ज्वर आता है और उनकी नाक से पानी बहता है।

कुप्पना(पु)संज्ञा पुं० [हिं० कोपना] दे० 'कोपना'। उ०—सुनी राव हम्मीर कुप्पे सुमारी।—ह० रासो०, पृ० ६६।

कुप्पल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सज्जी जिसके कलम वारीक और नुकीले होते हैं। यह लाल रंग की होती है और बरार की लोनार झील के पानी को सुखाकर निकाली जाती है।

कुप्पा—संज्ञा पुं० [सं० कूपक] [स्त्री० अल्पा० कुप्पी] चमड़े का बना हुआ घड़े के आकार का एक बड़ा बर्तन जिसमे घी, तेल आदि रखे जाते हैं।

यौ०—कुप्पासाज।

मुहा०—कुप्पा लुढ़ना या लुढ़कना=(१) किसी बड़े आदमी का मरना। (२) अधिक व्यय होना। कुप्पा होना या हो जाना=(१) फूल जाना। सूजना। वरम होना। जैसे—भिड के काटने से उसका मुँह कुप्पा हो गया(२) मोटा होना। हृष्टपुष्ट होना। जैसे,—वह दो महीने मे ही कुप्पा हो गया (३) रूठना। रूठकर बोलचाल वद करना। जैसे—वह जरा सी बात में कुप्पा हो जाते हैं। फूलकर कुप्पा होना=(१) मोटा होना। हृष्ट पुष्ट होना। (२) अत्यत हर्षित होना। आनद से फूल जाना। जैसे,—जिस समय वह यह सुनेगा फूलकर कुप्पा हो जायगा। किसी का मुँह कुप्पा होना=किसी का नाराज होकर मुँह फुलाना। किसी का रूठकर वोलचाल वद करना। जैसे—जरा सी वात पर तुम्हारा मुँह कुप्पा हो जाता है। कुप्पा सा मुँह करना=मुँह फुलाना। रूठकर बोलचाल वंद करना।

कुप्पासाज—संज्ञा पुं० [हिं० कुप्पा+फा० साज] कुप्पा बनानेवाला व्यक्ति।

कुप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुप्पा का अल्पा०] चमड़े का बना हुआ कुप्पे से छोटा वर्तन जिसमे तेल, फुलेल आदि रखते हैं। फुलेली।

कुफर—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्र] दोप। पाप। अपराध। अपवित्रता। कृतघ्नता। उ०—अपना कुफर चीह्न नहिं भाई, हिंदू को काफर बतलाई।—तुलसी० श०, पृ० ३११।

कुफरान—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्रान] १ एहसानफरामोशी। कृतघ्नता। उ०—कुफरान जिकिर छोडो। पद साँच देव गोड़ौं।—गुलाल०, पृ० ११२।

कुफराना—वि० [अ० कुफ्रान]कृतघ्नता से भरा हुआ। उ०—काफिर कुफर करे कुफराना। दिल दलील हैराना।—सत तुरसी०, पृ० १६८।

कुफल—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्ल, कुफल] ताला। तालिका। द्वारयंत्र। उ०—जिन यह कुजी कुफल उघाटी।—कबीर श०, पृ० २२।

कुफार[1]—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्फार, काफिर का बहुव०] काफिर लोग। अविश्वासी लोग। मूर्तिपूजक लोग उ०—गारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०३।

कुफार[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कु+फार] कुवचन। बुरी बात। झगड़ा।

भ्रष्ट। उ०—पार परोसिन डाहै हो निस दिन करत कुफार। —गुलाल०, पृ० ५४।

कुफ़ारी—वि० [हिं० कु + फार] अश्लील। गंदी। असभ्यों की सी। उ०—भ्रापुन हँसत हँसावत औरन देत कुफारी गारी। —भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४११।

कुफ़ुर¹—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्र] मुसलमानी मत के विरुद्ध अन्य मत। उ०—डाहि देवालय कुफुर मिटाऊँ। पातसाह को हुकुम चलाऊँ।—लाल (शब्द०)। वि० दे० 'कुफ्र'।

कुफ़ुर²—संज्ञा पुं० पाप। अपराध। दोष। अविश्वास। उ०—मीखा कहै कुफुर तब टूटै जब साहब करहि सहाई।—भीखा श०, पृ० ३२।

कुफेन—संज्ञा स्त्री० [सं०] काबुल नदी का पुराना नाम। इसे वैदिक काल में कुभा कहते थे।

कुफेर—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० फेर] बुरे दिनों का चक्कर। दुर्भाग्य। उ०—गुरु सों नाम रटा करै, निस दिन साधन संग। कहो धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ३३।

कुफ्र—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्र] १ मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत। उ०—सब कुफ्र और इस्लाम के झगड़ों में हैं भूले। देखा न कभी जिस्म का बुतखाना किसू ने।—दक्खिनी०, पृ० २४१। २ मुसलमानी धर्म के विरुद्ध वाक्य।

क्रि० प्र०—बकना।

कुफ्ल—संज्ञा पुं० [अ० कुफ्ल] ताला। जंदरा। उ०—कुंजी उसकी जबान शीरीं है। दिल मेरा कुफ्ल है बतासे का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६।

कुफ्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुल्फी'।

कुबंड¹—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड, प्रा०, पु० हिं० कोवंड] धनुष। उ०—(क) कुबंड कियो बिखिंड महा बरबंड प्रचंड भुजा बल ते।—हनुमान (शब्द०)। (ख) भुसुंडिय और कुबंडिय साधि। परे दुहु ओरन लेमट आँधि।—सूदन (शब्द०)।

कुबंड²—वि० [सं० कु + षण्ठ = खंज] खोडा। विकृतांग। उ०—हों जीति सुरथ महेश को पूत गणेश को दंत उपारि लियो। यम को वध कै पुनि वाहन का जिन तोरि विषाण कुबंड कियो। —हनुमान (शब्द०)।

कुब—संज्ञा पुं० [फ़ा० कुब्बह्] १. छोटा गुंबद। बुर्जी। गुमटी। २. गुंबद के आकार की पीठ। कूबर।

कुबग—संज्ञा पुं० [?] एक जंतु जो गिलहरी के आकार का होता है।

कुबज—वि० [सं० कुब्ज] कुबड़ा।

कुबजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुब्जा] दे० 'कुब्जा'।

कुबज्या—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुब्जा] दे० 'कुब्जा'। उ०—ऊधो बेगि सिधारो ब्रज ते तुम जावो हम हारे। नट नागर सों यों कहियो कुबज्या को न बिसारे।—नट०, पृ० ४५।

कुबड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुब्ज + हिं० ड़ा (प्रत्य)] [स्त्री० कुबड़ी] वह पुरुष जिसकी पीठ टेढ़ी हो गई हो या झुक गई हो। उ०—सबसे अधिक किरात डरे जो थे भी ठीक गँवार। कुबड़े नीचे नीचे चल के डर से हो गए पार।—रत्नावली (शब्द०)।

कुबड़ा²—वि० [वि० स्त्री० कुबड़ी] झुका हुआ। टेढ़ा। उ०—तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़े पर जीन धरो बाबा।—नजीर। (शब्द०)।

कुबड़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा + पन] कुबड़ा होने का भाव।

कुबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] १ दे० 'कुबरी'। २. वह छड़ी जिसका सिरा झुका हुआ हो। टेढ़िया।

कुबत—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० बात] १. बुरी बात। निंदा। उ०—करो कुबत जग कुटिलता तजौं न दीनदयाल। दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल।—बिहारी (शब्द०)। २ कुचाल। बुरी चाल। उ०—कहति न देवर की कुबत, कुल तिय कलह डराति। पिंजरगत मंजार ढिग सुक लौं सूखति जाति।—बिहारी (शब्द०)।

कुबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुबड़ा] १. कंस की एक दासी जिसकी पीठ टेढ़ी थी। यह कृष्णचंद्र पर अधिक प्रेम रखती थी। कुब्जा। उ०—योग कथा पठई व्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। ऊधो जू क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।—तुलसी (शब्द०)। २ वह छड़ी जिसका सिरा झुका हो। टेढ़िया। ३. एक प्रकार की मछली जो भारत, चीन और लंका में पाई जाती है।

कुबलय—संज्ञा पुं० [सं० कुवलय] कुमुद। कमल। उ०—क्यों न फिरे सब जगत में करत दिग्विजय मार। जाके दृगसामंत हैं कुबलय जीतनहार।—मति० ग्र०, पृ० ३६६।

कुबलयापीड़—संज्ञा पुं० [सं० कुवलयापीड] दे० 'कुवलयापीड़'।

कुबली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवलय = गोल] पिंडी गोला।

कुबहा—वि० [हिं० कुब + हा (प्रत्य०)] कूबड़वाला।

कुबाक—संज्ञा पुं० [सं० कुवाक्य] १ कुवचन। टेढ़ा बोल। कठोर वचन। कड़ी बात। उ०—तजी सक सकुचति नचति बोलति बाक कुबाक। दिन छिनदा छाका रहति उठत न छिन छबि छाक।—बिहारी (शब्द०) २. गाली। अपशब्द। ३. शाप।

कुबादी—वि० [सं० कु + वादिन] व्यर्थ का विवाद करनेवाला। उ०—श्री शंकराचार्य जी ने उस कामकौतुकवाद को, इस ढंग से समझ के कुबादी सेवड़ा का बाद में परास्त किया। —भक्तमाल (प्रा०) पृ० ४६७।

कुबानि—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हिं० बानि] बुरी आदत। बुरी टेव। बुरी लत। कुटेव।

कुबानी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + वाणी] बुरा बोल। अशिष्ट शब्द। अमंगल बात।

कुबानी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + बानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय। खराब वाणिज्य। उ०—अपने चलन स कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर भइ हानी।—जायसी (शब्द०)।

कुबासन—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवासना] दे० 'कुवासना'।

कुबिचार—वि० [सं० कुविचार] दे० 'कुविचार'।

कुबिचारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुविचारिन्] दे० 'कुविचारी'।

कुदाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० दाँव] कुदाँव। उ०—लेत केहरि को बयर जनु भेक हनि गोमाय। त्योहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६७।

कुदार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुदाल'। उ०—ज्ञान कुदार ले बदर गोड़ैं।—कबीर श०, पृ० १३६।

कुदारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुदाली'।

कुदाल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुद्दाल] लोहे का बना एक ओजार।

विशेष—यह प्राय एक हाथ लंबा और चार अंगुल चौड़ा होता है। इसके ऐन सिरे पर छेद मे लकड़ी का लंबा बेंट लगा रहता है। यह जमीन या मिट्टी खोदने और खेत गोड़ने के काम आता है।

मुहा०—कुदाल बजाना=(घर का) खोदा जाना।

कुदाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुदाल] छोटी कुदाल।

कुदाव†—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] कुदान। उ०—पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव। निगुरा तो ऊभर चलै, जब तब करै कुदाव।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १७।

कुदास[1]—संज्ञा पुं० [?] जहाज की पतवार का खंभा। खड़ा पठान।

कुदास[2]—संज्ञा पुं० [सं० कु+दास] बुरा सेवक। आज्ञा न माननेवाला नौकर [को०]।

कुदास[3]—संज्ञा स्त्री०, [हिं० कूदना+आस] (प्रत्य०)] कूदने की प्रबल इच्छा।

कुदिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति का समय। कष्ट के दिन। खराब दिन। २ दिन का वह परिमाण जो एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक के मध्य मे होता है। सावन दिन। ३ वह दिन जिसमे ऋतुविरुद्ध या इसी प्रकार की और कष्ट देनेवाली घटनाएँ हों। जैसे—पूस माघ मे खूब वर्षा होना, बरसात में बिलकुल जल न बरसना, अथवा दिन रात लगातार जल बरसना आदि।

कुदिष्टि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुदृष्टि] बुरी दृष्टि। बुरी नजर। पाप दृष्टि। बद निगाह।

कुदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी नजर। पाप दृष्टि। बद निगाह। उ०—इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।—तुलसी (शब्द०)। २ वह तर्क जो वेद से अनुमोदित न हो। वेद से स्वतंत्र तर्क।

कुदरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मैल। मैलापन। गंदलापन। २ मनोमालिन्य। रंजिश। ३ द्वेष। अमर्ष। खुनस।

कुदेव[1]—संज्ञा पुं० [सं० कु=भूमि+देव=देवता] भूदेव। भूसुर। उ०—कुदेव देव नारिको न बाल वित्त ली जिए। विरोध विप्र वंश सो सो स्वप्न हू न कीजिए।—केशव (शब्द०)।

कुदेव[2]—संज्ञा पुं० [सं० कु=बुरा कुदेव=देवता] १ राक्षस। दैत्य। दानव। उ०—देव कुदेवनि के चरणोदक बोरचो सबै कलि को कुलपानी।—केशव (शब्द०)। ३ जैनियों के अनुसार ऐसे देवता, जो उनसे भिन्न धर्मवालों के हों।

कुदेस—संज्ञा पुं० [सं० कु+देश] वह देश जहाँ शासन की समुचित व्यवस्था न हो। बुरा देश। उ०—सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास। ऐसे देस कुदेस में कबहुँ न कीजै वास।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६५।

कुदेह[1]—वि० [सं०] कुरूप। बदशक्ल [को०]।

कुदेह[2]—संज्ञा पुं० कुबेर का एक नाम [को०]।

कुद्दार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बना एक औजार। कुदार।

कुद्दाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुदाल' [को०]

कुद्मल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्मल' [को०]।

कुद्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्य' [को०]।

कुद्रंक—संज्ञा पुं० [सं० कुद्रङ्क] घटाघर। वह स्थान जहाँ ऊँची जगह पर घड़ी लगी हो [को०]।

कुद्रंग—संज्ञा पुं० [सं० कुद्रङ्ग] दे० 'कुद्रंक' [को०]।

कुद्रव[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुद्रव, कद्रव] कोदो। कोदई।

कुद्रव[2]—संज्ञा पुं० [देश०] तलवार चलाने के ३२ हाथों या प्रकारों में से एक। उ०—तिमि सव्य जानु विजानु संकोचित सुप्राहित चित्र को। धृतनपन कुद्रव क्षिप्त सव्येतर तथा उत्तरत को।—रघुराज (शब्द०)।

कुधर—संज्ञा पुं० [सं० कुध्र] १ पहाड़। पर्वत। भूधर। उ०—कुधर समान सरीर बिसाला। गरजि सिंधु इव रन विकराला।—द्विज (शब्द०)। २ शेषनाग।

कुधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी धातु। २. लोहा। उ०—सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।—तुलसी (शब्द०)।

कुधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जो पाप की कमाई का हो। बुरा अन्न।

कुधि—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू। उलूक [को०]।

कुधी—वि० [सं० कु+धी] १. मंदबुद्धि। दुर्बुद्धि। मूर्ख। २. बदमाश (को०)।

कुध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़। कुधर [को०]।

कुनक—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा। काक [को०]

कुनकाना(पु)—क्रि० स० [सं० क्वण] क्वणित करना। ध्वनित करना। उ०—सेज परी नूपुर रुनकावैं। कर के कल कंकन कुनकावैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

कुनकुन—वि० [हिं०] दे० 'कुनकुना'।

कुनकुना—वि० [सं० कदुष्ण प्रा० कउण्ह] आधा गरम (पानी)। कुछ गरम (पानी)। गुनगुना।

कुनख—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमे नख खराब हो जाते और प्राय पककर गिर जाते हैं। वैद्यों ने इसे त्रिदोषज माना है।

कुनखी—वि० [सं० कुनखिन्] १ बुरे नखवाला। २ कुनख रोगवाला।

कुनना—क्रि० स० [सं० क्षुणन या घूर्णन=घुमाना] १ बरतन खरादना। २ खुरचना। छीलना।

कुनप—संज्ञा पुं० [सं० कुणप] दे० 'कुणप'।

कुनवा—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, प्रा० कुडुंब] परिवार। कुटुंब।

खानदान। उ०—इनकी बदौलत उसके कुनबे ने खूब चैन किए।—सैर ७०, पृ० १८।

मुहा०—कुनवा जोड़ना = नाते गोते के लोगों को इकट्ठा करना। परिवार जुटाना। उ०—कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती का कुनवा जोड़ा।

कुनबी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, हिं० कुनबा] हिंदुओं की एक जाति जो प्राय खेती करती है। कहीं कहीं ये लोग अपने को गृहस्थ कहते हैं।

कुनलई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कँटीला छोटा पेड़, जिसमे बहुत सी पतली टहनियाँ होती हैं।

विशेष—इसकी छाल ऊपर से सफेद होती है। पत्तियाँ ३-४ अंगुल की होती है। गरमी के दिनों मे इसमें बहुत छोटे-छोटे पीले फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और खेमों के खूँटे आदि बनाने के काम मे आती है।

कुनवा—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] [स्त्री० कुनवी] खरादनेवाला मनुष्य। बरतन आदि चरख पर चढाकर खरादनेवाला मनुष्य। खरादी।

कुनह(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० कीनह] [वि० कुनही] १. द्वेष। मनोमालिन्य। मनमोटाव। उ०—कौन कुनह बिन गुनह जिन तिन सुख सुना न पाव। सहसबाहु सुरनाथ भृगु अत्रिय सुत मुगराव।—विश्राम। (शब्द०)। २ पुराना वैर।

क्रि० प्र०—करना। निकालना।—रखना।

कुनही—वि० [हिं० कुनह] द्वेष रखनेवाला। बुरा माननेवाला।

कुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुनना = खरादना, खुरचना] १. वह चूर या बुकनी जो किसी वस्तु को खरादने या खुरचने पर निकलती है। बुरादा। २. खरादने की क्रिया। ३ खरादने की मजदूरी।

कुनाकु—संज्ञा पुं० [सं०] एक पहाड़ी पक्षी [को०]।

कुनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बवंडर। वातावर्त २ नौ निधियों में से एक।

कुनाम—संज्ञा पुं० [सं०] कुख्याति। बदनामी। उ०—वृंदावन द्वारे बैठ धाम। कोई न पथ हरयो सबन को कोई अपना किया कुनाम।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुनालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोकिल पक्षी। कोयल। परभृत [को०]।

कुनित(पु)—वि० [सं० क्वणित] शब्द करता हुआ। गुंजार करता हुआ। बोलता हुआ। बजता हुआ। झनकार करता हुआ। उ०—किंकिणी कटि कुनित कंकन करचुरी झनकार। हृदय चाकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार।—सूर (शब्द०)।

कुनिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना + इया (प्रत्य०)] खरादनेवाला व्यक्ति।

कुनिया²—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] कनकूत करनेवाला।

कुनिया³—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण, हिं० कनिया] कोना। उ०—ग्राम के वक्त वह थककर दीवार की कुनिया से पीठ लगा बैठ गया था।—फूला० पृ० ५७।

कुनीति—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + नीति] दुर्नीति। बुरी नीति। अविचार। उ०—अपने उन अग्रगण्यों की कुनीति की हानियाँ कुछ सूझने लगी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५।

कुनेर, कुनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुनना] लोहे पीतल आदि के बरतनों की कुनाई करनेवाली जाति और उस जाति का व्यक्ति।

कुनैन—संज्ञा पुं० [अ० क्विनिन] एक ओषधि जो अंग्रेजी चिकित्सा मे ज्वर के लिये अत्यंत उपकारी मानी जाती है। कुनाइन।

विशेष—यह एक पेड़ की छाल का सत है, जिसे सिंकोना कहते हैं। यह पेड़ पहले दक्षिण अमेरिका मे ही होता था पर अब यह भारतवर्ष के नीलगिर, मैसूर, सिक्किम आदि ऊँचे पहाड़ी स्थानों मे भी लगाया जाता हैं। यह दो ढंग से लगाया जाता है। कहीं तो बीज बोकर पौधे उगाते हैं और कहीं डालियाँ काटकर कलम लगाते हैं। इसके बीजों को घना बोते हैं और खूब सिंचाई करते हैं। ऊपर से फूस आदि की छाया भी करते हैं। ४०-४१ दिनों मे अँखुए निकल आते हैं। जब दो या तीन जोड़ी पत्तियाँ निकल आती हैं तब पौधों को दूसरी जगह लगाते हैं। इसी प्रकार पौधों को कई बार उखाड़ उखाड़कर अन्यत्र लगाना पड़ता है। ये पौधे चार या छह छह फुट के अंतर पर लगाए जाते हैं। सिंकोना कई प्रकार का होता है—भूरी छाल का लाल, छाल का और पीली छाल का। लाल छाल का पेड़ बड़ा होता है, भूरी छाल का मध्यम आकार का होता है और पीली छाल का झाड़ी के आकार का छोटा होता हैं। जब पौधा चार वर्ष का होता है तब उसकी छाल मे सच्छी तरह क्षार आ जाता है और वह काम लायक हो जाती है। सातवें वर्ष से क्षार कुछ घटने लगता है, इससे १२-१४ वर्ष के भीतर ही सारे पेड़ छाल के लिये उखाड़ लिए जाते हैं। जड़ मे क्षार का अंश विशेष होता है, इससे यह और भागों की अपेक्षा बहुमूल्य समझी जाती है।

कुन्याई(पु)—संज्ञा पुं० [कु = बुरा + न्यायी, हिं० न्याई] अन्याय करनेवाला। अन्यायी। उ०—एकहि मूल सबै उपजाई। भेंट्यो तेज अड कुन्याई।—कबीर सा०, पृ० ६।

कुन्याय—संज्ञा पुं० [कु + न्याय] अन्याय। न्यायविरुद्ध काम। उ०—बालक पै तेग वाही सो कुन्याय सल्ला।—शिखर०, पृ० ६२।

कुपखि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु + पक्षिन्] बुरा पक्षी। कटु शब्द करनेवाला पक्षी। दुष्टपक्षी। उ०—हंस सु मान सरोवरी, छपखि आया वासु। संगति काय कुपखि की किउँ छूटे तिन पासु।—प्राण०, भा० १, पृ० १०५।

कुपथ—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ] [वि० कुपथी] १ बुरा मार्ग। २. निषिद्ध आचरण। कुचाल। उ०—रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरै न काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पर चलना।

३ बुरा मत। कुत्सित सिद्धांत। उ०—चलत कुपंथ वेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े।—मानस, १।१२।

कुप—संज्ञा पुं० [देश०] घास, भूसा, पुआल आदि का ढेर (को०)।

कुपक—संज्ञा पुं० [फा० कबक] एक पक्षी जिसकी आवाज मुरीली होती है।

यौ०—कुतुब जनूबी = दक्षिणी ध्रुव । कुतुबनुमा । कुतुब शिमाली, कुतुबशमाली = उत्तरी ध्रुव ।

कुतुब[2]—[अ० किताब का बहु व०] पुस्तकें । किताबें [को०] ।

कुतुबखाना—संज्ञा पुं० [फा० कुतुबखानह्] पुस्तकालय ।

कुतुबनुमा—संज्ञा पुं० [अ० कुत्बनुमा] एक यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । दिग्दर्शक यंत्र ।

विशेष—यह एक छोटी डिबिया के आकार का होता है, जिसके भीतर लोहे की एक सूई के मुँह पर अयस्कांत की शक्ति रहती है जिससे वह सदा उत्तर दिशा की ओर रहा करती है । यह यंत्र सामुद्रिक नौकाओं और मापकों के काम आता है ।

कुतुबफरोश—संज्ञा पुं० [फा० कुतुबफरोश] पुस्तकविक्रेता । किताबें बेचनेवाला ।

कुतुबमीनार—संज्ञा स्त्री० [अ० कुत्बमीनार] पुरानी दिल्ली की एक बहुत ऊँची मीनार ।

विशेष—कहते हैं इसे गुलामवंश के बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ने निर्मित कराया था । इसी के पास लोहे की एक लाट है जिसे कुतुब साहब की लाट कहते हैं । यह लाट चौहान राजा पृथ्वीराज द्वारा निर्मित कही जाती है ।

कुतुबशाही—संज्ञा स्त्री० [अ०] दक्षिण भारत के पाँच बहमनी राज्यों में से एक ।

कुतुरङ्गा—संज्ञा पुं० [देश०] एक हरा पक्षी जिसकी चोंच, पीठ और पैर लाल होते हैं ।

कुतुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] इमली का कोमल फल, जिसके बीज मुलायम हों । कँटिया ।

कुतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े की वह कुप्पी जिसमें तेल रखा जाता है [को०] ।

कुतूणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुथुआ' ।

कुतूहल—संज्ञा पुं० [सं०] [कुतूहली] १ किसी वस्तु के देखने या किसी बात के सुनने की प्रबल इच्छा । उत्कंठा । २ वह वस्तु जिसके देखने की इच्छा हो । कौतुक । उ०—वन तो मेरे लिये कुतूहल हो गया ।—साकेत, पृ०, १३८ । ३ क्रीड़ा । खिलवाड़ । उ०—काम कुतूहल में विलसैं निशि वारवधू मनमान हरे ।—केशव (शब्द०) ४ आश्चर्य । अचंभा ५ नायिका का एक अलंकार ।

कुतूहली—वि० [सं० कुतूहलिन्] १ जिसे वस्तुओं को देखने या जानने की उत्कंठा हुआ करे । तमाशा देखनेवाला । उ०—यदि वह मुझे बहुत कुतूहली न समझे तो मैं एक बात जानने के लिये उत्सुक हूँ ।—जिप्सी, पृ० २६७ । २ कौतुकी । खिलवाड़ी ।

कुतृण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभी । जलकुंभी । आकाशमूली [को०] ।

कुत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कुत्ती] १. भेड़िए, गीदड़ और लोमड़ी आदि की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग साधारणतः घर की रक्षा के लिये पालते हैं । श्वान । कूकुर ।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह सारे संसार में पाया जाता है । इसकी श्रवण शक्ति बहुत प्रबल होती है और यह जरा से खटके से जाग उठता है । अपने स्वामी का यह बहुत शुभचिंतक और भक्त होता है । किसी किसी जाति के कुत्ते की घ्राण शक्ति बहुत प्रबल होती है जिसके कारण वह किसी के पैरों के निशान सूँघकर उसके पास जा पहुँचता है । शिकार में भी इससे बहुत सहायता मिलती है । पागल कुत्ते के काटने से आदमी उसी की तरह से भूँकने लगता है और प्रायः कुछ दिनों में मर जाता है । बरसात में इसके विष का दौरा अधिक होता है । काटे हुए स्थान पर कुचला घिसकर लगाना लाभदायक होता है ।

यौ०—कुत्ते खसी = व्यर्थ और तुच्छ कार्य ।

मुहा०—क्या कुत्ते ने काटा है = क्या पागल हुए हैं ? उ०—क्या हमें कुत्ते ने काटा है जो हम इतनी रात को वहाँ जाएँगे ?

विशेष—साधारणतः पागल कुत्ते के काटने से मनुष्य पागल हो जाता है इसी से यह मुहावरा बना है । इसका प्रयोग प्रायः प्रश्न के लिये होता है और काकु अलंकार से अर्थ सिद्ध होता है ।

कुत्ते ने नहीं काटा है = दे० 'क्या कुत्ते ने काटा है ?' कुत्ता घसीटना = नीच और तुच्छ कार्य करना । कुत्ते की मौत मरना = बहुत बुरी तरह से मरना । कुत्ते की हुड़क उठना = (१) पागल कुत्ते के काटने की लहर उठना (२) अचानक या कुसमय में किसी वस्तु के लिये आतुर होना । कुत्ते का दिमाग होना या कुत्ते का भेजा खाना = बहुत अधिक बकवाद करने की शक्ति होना । बहुत बक्की होना । कुत्ते की दुम = कभी अपनी बुरी चाल न छोड़नेवाला । जिसपर समझाने बुझाने या सत्संग आदि का कोई प्रभाव न पड़े ।

विशेष—कुत्ते की दुम सदा टेढ़ी रहती है, वह कभी सीधी नहीं होती । इसी से यह मुहावरा बना है ।

२ एक प्रकार की घास जो कपड़ों में लिपट जाती है और जिसे लपटौवाँ कहते हैं । ३ कल का वह पुरजा जो किसी चक्कर को उलटा या पीछे की ओर घूमने से रोकता है ४ लकड़ी का एक छोटा चौकोर टुकड़ा जो करगहने में लगा रहता है और जिसके नीचे गिरा देने पर दरवाजा नहीं खुल सकता । बिल्ली । ५ संदूक का घोड़ा । ६. नीच या तुच्छ मनुष्य । क्षुद्र ।

कुत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुत्ता] कुकुरी । कुतिया । कुत्ते की मादा ।

कुत्र—क्रि० वि० [सं०] कहाँ । किस जगह ? किस वातावरण में [को०] ।

कुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम, जिनकी बनाई हुई बहुत सी ऋचाएँ ऋग्वेद में हैं ।

कुत्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुत्सित] १. निंदा । २ नीच काम । निंदित काम ।

कुत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा ।

कुत्सित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुष्ठ या कुट नाम की औषधि । २. कुड़ा । कोरैया ।

कुत्सित[2]—वि० १ नीच । अधम । २ निंदित । गर्हित । खराब ।

कुत्स्य—वि० [सं०] निंदनीय । निंदा के योग्य ।

कुय—संज्ञा पुं० [सं०] १ कयरी। कथा। २.हाथी की भूल। ३. रथ, पालकी आदि का ओहार। ४ एक कीड़ा। ५ प्रात काल स्नान करनेवाला ब्राह्मण। ६ कुश (को०)।

कुयना—क्रि० अ० [हिं० कूयना] बहुत मार खाना। पीटा जाना।

कुयरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु=पृथिवी+√स्तृ=स्तरण, आस्तरण] दे० 'कथरी'।

कुयल—संज्ञा पुं० [सं० कुलुण] आँख का एक रोग।

कुथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.कथा। कथरी। २. हाथी की भूल (को०)।

कुयुआ—संज्ञा पुं० [सं० कुलुणक] वालकों की आँख का एक रोग जिसमें पलकों के भीतर दाने पड जाते और बड़ी खुजली होती है।

कुदई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोदई] दे० 'कोदो'।

कुदकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] दे० 'कुदक्का'। उ०—जिसकी गोदी में जी चाहे खुल कर लेटें, हँसें, शरारत करें, कुदकड़े मारें।—चाँदनी०, पृ० ९२।

कुदकना—क्रि० अ० [हिं० कूदना] उछलकूद करना। उ०—मेमनों से मेघों के दल, कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।—पल्लव, पृ० २०।

कुदक्कड़—वि० [हिं० कूदना या √कुदक+अक्कड़ (प्रत्य०)] कूदने में कुशल। कूदनेवाला।

कुदक्का†—संज्ञा पुं० [हिं० कूदना] उछलकूद।

मुहा०—कुदक्का मारना=इधर उधर कूदते फिरना।

कुदरत—संज्ञा स्त्री० [अ० कुद्रत] १.शक्ति। प्रभुत्व। इखतियार। सामर्थ्य। उ०—कुदरत पाई खरी सों चित सों चित मिलाय। भँवर विलंबा कमल रस अब कैसे उडि जाय।—कबीर (शब्द०) २ प्रकृति। माया। ईश्वर शक्ति। महिमा। उ० उ०—कुदरत वाकी भर रही, रसनिधि सबही जाग। ईंधन बिन बनि यों रहे ज्यों पाहन में आग।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—कुदरत का खेल=ईश्वरीय लीला। प्रकृति की रचना। उ०—पढ़ें फारसी बेचें तेल। यह देखो कुदरत का खेल।

२ कारीगरी। रचना।

कुदरति (पु)—वि० [अ० कुदरती] दे० 'कुदरती'। उ०—अप्पिय आइ जहाँ मिलि पान। कुदरति कथा एक परमान।—पृ० रा०, २४।३३१।

कुदरती—वि० [अ०] १ प्राकृतिक। स्वाभाविक। २. दैवी। ईश्वरीय।

कुदरा—संज्ञा पुं० [सं० कुद्दाल] कुदार। उ०—कुदरा खुरपा बेल गुनतफा छुरा कतरनी। नहनी रौहन परी डरी बहु भरना भरनी।—सूदन (शब्द०)।

कुदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में बुरा मालूम हो। कुरूप। बदसूरत। भद्दा। असभ्य। उ०—कामी कृपण कुचील कुदर्शन कौन कृपा करि तारयो। ताते कहत दयालु देव मुनि काहे सूर बिसारयो।—सूर। (शब्द०)।

कुदलाना—क्रि० अ० [हिं० कूदना] कूदते हुए चलना। उछलना। कूदना। उ०—एहि विधि बरषा ऋतु के माहीं। वन बछरू तिन सम कुदलाहीं।—(शब्द०)।

कुदली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुदाली] दे० 'कुदाल'।

कुदशा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+दशा] बुरी गति। बुरी दशा। अधोगति। उ०—कार्यकर्ताओं का विशेष ध्यान देश की कुदशा की ओर खींचा जाय।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०६।

कुदसियाँ†—वि० स्त्री० [अ०] फरिश्ता। पवित्र उ०—के महशर लग रहे श्रो जाजा होर तर। अछे नित कुदसियाँ उसपर भू वर।—दक्खिनी०, पृ० २३७।

कुदाँव—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० दाँव] १.बुरा दाँव। कुघात। विश्वासघात। दगा। धोखा। उ०—पूरे को पूरा मिलै पूरा परखै दाँव। निगुरा तो कुव्वट चलै, जब तब करै कुदाँव।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना उ०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुशील सुभाव। नृपसनेह लखि धुनेहु सिर, पापिनि दीन्ह कुदाँव।—तुलसी (शब्द०)।

†२ औघट। बुरी स्थिति। संकट की स्थिति। ३. बुरा स्थान। विकट स्थान।

कुदाई (पु)—वि० [हिं० कुदाँव] बुरे ढग से दाँव घात करनेवाला छली। विश्वासघाती उ०—बार बहारन मोर ही हौं पठई मतिहीन मतो कै लुगाइन। छेरी किवार उघारत ही चलि मोर चकोर कठोर कुदाइन।—देव (शब्द०)।

कुदाउँ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुदाँव'।

कुदाता—संज्ञा पुं० [सं० कु(=१ बुरा। २ पृथिवी)+दाता] १. कृपण। २ पृथ्वी का दान देनेवाला। उ०—कृतघ्नी कुदाता कुकन्यादि चाहे।—राम च०, पृ० ९६।

कुदान¹—संज्ञा पुं० [सं० कु+दान] १ बुरा दान (लेनेवाले के लिये)।

विशेष—शय्यादान, गजदान आदि लेनेवाले के लिए बुरे समझे जाते हैं।

२. कुपात्र या अयोग्य आदि को दान।

कुदान²—संज्ञा स्त्री० [हिं० √कूद+आन (प्रत्य०)] १ कूदने की क्रिया। कूदने का भाव। २.बहुत पहुँचकर कहना। दूर की कौड़ी लाना। ३ उतनी दूरी जितनी एक बार कूदने में पार की जाय। जैसे—वह पाँच पाँच गज की कुदान मारता है।

क्रि० प्र०—मारना।

४ कूदने का स्थान। जैसे—लोरिक की कुदान।

कुदाना—क्रि० स० [हिं० कूदना] १. कूदने का प्रेरणार्थक रूप। कूदने में प्रवृत्त करना। उ०— सन्मुख जाइ सुबाजि कुदाई। तजत शूल काट्यो रिपि छाई।—गोपाल (शब्द०) २ घोड़े आदि पर चढ़कर उसे दौड़ाना। जैसे—घोड़ा कुदाना।

कुदाम (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० दाम] खोटा सिक्का। खोटा रुपया। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३५।

विशेष १२ प्रकृति या मुटठी का एक कुडव और ४ कुडव का एक प्रस्थ होता है। पर वैद्यक मे कुडव ३२ तोले का होता है और प्रकृति १६ तोले की मानी जाती है।

कुडा¹—सज्ञा पुं० [सं० कुटज] इद्रजौ का वृक्ष। कुरैया।

कुडा²—सज्ञा पुं० [अ० करहह, हिं० कुढ़ा] दे० 'कुढ़ा'।

कुडाली—सज्ञा स्त्री० [सं० कुठारी] कुल्हाडी (लश०)।

कुडि—सज्ञा पुं० [सं०] देह। शरीर [को०]।

कुडिका—सज्ञा स्त्री० [स०] मृत्तिका का या काष्ठ का बना हुआ जल पात्र [को०]।

कुडिठि(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० कुदृष्टि] कुदृष्टि बुरी नजर। उ०—रूप हमर वैरी भए गेल देइति कुडिठि साल।—विद्यापति पृ० ३५०।

कुडिया—सज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, हिं० कुँड कूँड, कूड़ि+ईया(प्रत्य०)] टोप। उ०—सुन वे सांवलिया कुडिया दे ऊपर की हुया फिरदा सिपाही।—घनानद, पृ० ८६७।

कुडिल†—सज्ञा पुं० [सं० कुडिका] स्नान कराने का पात्र। उ०—माटी के कुडिल न्हवाओ भटोले सुताओ।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ६१७।

कुडिश—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कुडी—सज्ञा स्त्री० [सं० कुटी] कुटिया। कुटीर [को०]।

कुडी†—सज्ञा स्त्री० [प०] लड़की। कन्या [को०]।

कुडुक¹—सज्ञा पुं० [देश०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमडा मढा होता था।

कुडुक²—सज्ञा स्त्री० [फ़ा० कुरक] अडा न देनेवाली मुरगी।

कुडक³—वि० व्यर्थ। खाली।

मुहा०—कुड़क बोलना = व्यर्थ होना। खाली जाना।

कुडेर—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुडेरना] वह नाली जो कुरिया में राब का सीरा निकालने के लिये बनाई जाती है।

कुडेरना—क्रि० स० [देश०] राब के बोरो को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना जिसमे उसकी जूसी बहकर निकल जाय।

कुडौल—वि० [सं० कु+हिं० डौल] बेढगा। भद्दा।

कुड्मल—सज्ञा पुं० [सं०] १. कली। मुकुल। २ इक्कीस नरको मे से एक नरक। ३. नोक। अनी (को०)।

कुड्य—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुड्या] १ दीवार। भित्ति।

यौ०—कुड्यच्छेदी = सेंध लगानेवाला चोर। कुड्यच्छेद्य = दीवार का गड्ढा। कुड्यमत्सी, कुड्यमत्स्य = छिपकिली। गृहगोधिका।

२ (दीवार पर) पलस्तर करना या चढाना। ३. उत्सुकता। कौतूहल [को०]।

कुड्यक—सज्ञा पुं० [सं०] दीवार। भित्ति [को०]।

कुढयार†—सज्ञा पुं० [प०, हिं० कूडा] तुच्छ। नगण्य। उ०—इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सो भावती नारि। सुइने रुप्पे पच्चरी, नानक बिनु नावैं कुडयार।—सतवाणी०, पृ० ६८।

कुढग¹—सज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० ढग] बुरा ढग। कुचाल। बुरी रीति।

कुढग,² कुढग—वि० १ बुरे ढग का। बेढगा। भद्दा। बुरा। उ०—कुढग कोप तजि रग रली करति जुवति जग जोइ। पावस बातन गूढ यह, बूढन हूँ रँग होइ।—बिहारी (शब्द०)। २ बुरी तरह का। बदमजा। कुढगा।

कुढगा—वि० [हिं० कुढग] [स्त्री० कुढगी] १ बुरी चाल का। बेशऊर। उजड्ड। २ बेढंगा। भद्दा।

कुढगी—वि० [हिं० कुढग] कुमार्गी। बुरी चालचलन का। उ०—परचो एक पतित पराग तीर गग जू के, कुटिल कृतघ्नी कोढी कुठित कुढगी अघ।—पद्माकर (शब्द०)।

कुढ़—सज्ञा स्त्री० [सं० क्वथ् प्रा०, कढ, कुत्थ] दे० 'कुढ़न'।

कुढन—सज्ञा स्त्री० [सं० क्रुद्ध, प्रा० कुड्ढ] १. वह क्रोध जो मन ही मन रहे। वह क्रोध जो भीतर ही भीतर रहे, प्रकट न किया जाय। चिढ़। २ वह दुःख जो दूसरे के अनिवार्य कष्ट को देखकर हो।

कुढना—क्रि० अ० [सं० क्रुद्ध, या क्रुष्ट, प्रा० कुड्ढ] १ भीतर ही भीतर क्रोध करना। मन ही मन खीझना या चिढ़ना। बुरा मानना। २ डाह करना। जलना। उ०—चद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे और महानद अपने सब पुत्रो का पक्ष करके इससे कुढता था।—हरिश्चद्र (शब्द०)। ३ भीतर ही भीतर दुखी होना। मसोसना। उ०—श्रीकृष्णचद इतना कह पाताल पुरी को गए कि माता तुम अब मत कुढ़ो, मैं अपने भाइयो को अभी जाय ले आता हूँ।—लल्लू। (शब्द०)। ४ दूसरे के कष्ट को देख भीतर ही भीतर मसोसकर रह जाना।

कुढ़ब वि० [स० कु+हिं० ढब] १ बुरे ढग का। बेढब। २ कठिन। दुस्तर।

कुढा—सज्ञा पुं० [अ० करहह] सूजाक के रोग मे वह गाँठ जो पेशाब की नली मे पड जाती है और जिसके कारण पेशाब बाहर नही निकलता और बडी पीड़ा होती है। यह गाँठ रक्त और पीब के भीतर जम जाने से पड जाती है।

कुढाना—क्रि० स० [हिं० कुढ़ना] १ क्रोध दिलाना। चिढ़ाना। खिझाना। २ दुखी करना। कलपाना।

कुढावना(पु)—क्रि० स० [हिं० कुढ़ाना] दे० 'कुढ़ाना'। उ०—और वैष्णव मात्र को काहू प्रकार सों कुढावनो नाही।—दो सौ बावन०, पृ० ३३९।

कुण¹—सज्ञा पु० [स०] १ चीलर। २ नाभि का मैल। कीट। ३ बच्चा। उ०—कोल कोल कुण कीचर माही। वल तें भिरे सकोप तहाँ ही।—गोपाल। (शब्द०)।

कुण†²—सर्व० [हिं०] कौन। उ०—चद वदन कइ कारणइ। कुण वर वरसी बीज कुवार।—बी० रासो, पृ० ७।

कुणक—सज्ञा पुं० [सं०] सद्य उत्पन्न हुआ पशुशावक [को०]।

कुणप¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुणपी] दुर्गंधयुक्त। अशुचि गंध वाला [को०]।

कुणप²—सज्ञा पुं० [सं०] १ मृत शरीर। शव। लाश। २ इंगुदी। गोंदी। ३. रागा। ४. बरछा। भाला। ५. अशुचि गध। दुर्गंध [को०]।

कुणपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी। भाला।

कुणपाशी—सज्ञा पुं० [सं० कुणपाशिन्] १. एक प्रकार का प्रेत जो मुर्दा खाता है। २. मुर्दा खानेवाला जंतु। जैसे,—गीध, कौआ, गीदड़।

कुणपी—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी चिड़िया मैना आदि [को०]।

कुणाल—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. अशोक का एक पुत्र [को०]।

कुणि—सज्ञा पुं० [सं०] १ तुन का पेड़। २ वह मनुष्य जिसकी बाहु टेढ़ी हो गई हो या मारी गई हो। ३. नखव्रण। अर्बुद। गलका [को०]।

कुत—क्रि० वि० [सं० कुतस्] १ कहाँ से। किस स्थान से। २ कहाँ। किस जगह। ३ क्यों। कैसे [को०]।

कुतक—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुतका'।

कुतका—सज्ञा पुं० [हिं० गतका] १ गतका। २. मोटा डंडा। सोटा। उ०—लै कुतका कहै 'दम्म मदारा'। राम रहे इनहू ते न्यारा। उ०—कबीर (शब्द०)। ३ भाँग घोटने का डंडा। भँगघोटना। मुहा०—कुतका दिखलाना या देखना = किसी चीज के देने से साफ इनकार कर जाना। अँगूठा दिखलाना।

कुतकी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुतका] छोटी लकड़ी। छड़ी। उ०—अरघ चद हेका दिए हेका गाल हजार। हेका कुतकी हे दुवै एह दुष्ट अवतार —बाकी ग्र०, भा० २, पृ० २९।

कुतक्का(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० कुतका'। उ०—तहवँध बाँधि कुतक्का लीना दम दम करै दिवाना।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८५।

कुतना—क्रि० अ० [हिं० कूतना] कुतने का कार्य होना। कूता जाना।

कुतप—सज्ञा पुं० [सं०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त जो मध्याह्न समय मे होता है। २ मिताक्षरा के अनुसार आठ वस्तुएँ जिनकी श्राद्ध में आवश्यकता होती है, अर्थात्—मध्याह्न, खड्गपात्र या गैंडे के चमड़े का पात्र, नेपाली कंबल, चादी का बरतन, कुश, तिल, गाय और दौहित्र। इसे कुतपाष्टक भी कहते हैं। ३ एक बाजा। ३ बकरी के बाल का कबल। ५ सूर्य। ६. अग्नि। ७. द्विज। ८ अतिथि। ९ भांजा। १०. वृषभ। बैल [को०]। ११ अन्न (को०)। १२. कन्या का पुत्र [को०]। १३ कुश (को०)।

कुतवा—सज्ञा पुं० [अ० खुतबह्] १. वह धार्मिक व्याख्यान जिसे इमाम जुमा (शुक्रवार) की या ईद की नमाज के बाद देता है और जिसमें तत्कालीन खलीफा या शाह की प्रशंसा रहती है। दे० 'खुतबा'। उ०—कुतवा पढचो छत्र सिरतान। बैठि तखत फेरी निज थान।—अर्ध०, पृ० ४।

कुतर(पु)—सज्ञा पु० [सं० कुतरु] १ बुरा वृक्ष, नीम, बबूल आदि। उ०—कुकव हूँत आछो कुतर ऊगे चंदण पास।—बाकी ग्र०, भा० ३, पृ० ८२। २ एक प्रकार का तृण जो कपड़े में चिपक जाता है। इसे कुत्ता भी कहते हैं।

कुतरक(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कुतर्क] दे० 'कुतर्क'। उ०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड।—मानस, १।३२।

कुतरकी(पु)—वि० [सं० कुतर्किन्] दे० 'कुतर्की'। उ०—हरि हर रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की मानस, १।९।

कुतरन—सज्ञा पुं० [हिं० कुतरना] कुतरा हुआ टुकड़ा।

कुतरना—क्रि० स० [सं० कर्तन = कतरना] १ किसी वस्तु मे से बहुत थोड़ा सा भाग दाँत से काटकर अलग करना। दाँत से छोटा सा टुकड़ा काट लेना। जैसे—(क) चूहों ने कई जगह कपड़े कुतर डाले हैं। (ख) हिरन पौधों की पत्तियाँ कुतर गए हैं। २ किसी वस्तु मे से कुछ अंश निकाल लेना। बीच ही मे कुछ अंश उड़ा लेना। जैसे—५) रुपए हमें मिले थे, उसमे से दो रुपए तुम्ही ने कुतर लिए।

कुतरा(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० कुत्ता] कुत्ता। कुक्कुर। श्वान। उ०—दीन हौ दीन हौं दीन महा नटनागर के घर को कुतरा हौं। नट०, पृ० ३।

कुतरु—वि० [सं० कु + तरु] बुरा पेड़। उ०—कुतरु कुमरपुर राजमग लहत भुवन विख्यात।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८।

कुतर्क—सज्ञा पुं० [सं०] बुरा तर्क। बेढगी दलील। बकवाद। वितंडा।

कुतर्की१—सज्ञा पुं० [सं० कुतर्किन्] व्यर्थ तर्क करनेवाला। बकवादी। वितडावादी।

कुतर्की२—वि० कुतर्कदूषित।

कुतला†—सज्ञा पुं० [हिं० कतरना, तुलनीय अ० कत्ल = काट डालना] हँसिया।

कुतवार१†—सज्ञा पुं० [हिं० कूतना + वार] (प्रत्य०) वह पुरुष जो बँटाई के लिये खेत की फसल का कनकूत करे।

कुतवार२(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, कोतवाल] कोतवाल। उ०—नौ पौरी तेहि गढ मँझियारा औ तहँ फिरहिं पाच कुतवारा। जायसी (शब्द०)।

कुतवारी(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कोटपाली, हिं० कोतवाली] १. कोतवाल का काम। उ०—शेप न पायो अंत पुहुमि जा की फनवारी। पवन बुहारत द्वार सदा सकर कुतवारी।—सूर (शब्द०)। २ कोतवाल का कार्यस्थान। कोतवाली।

कुतवाल†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोतवाल'। उ०—पापु भए कुतवाल भली विधि लूटही।—कबीर रा०, भा० ४, पृ० २।

कुतवाली—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोतवाली'।

कुतार†—सज्ञा पुं० [सं० कु हिं० तार] अड़स। असुविधा।

कुताल—सज्ञा पु० [सं० कु + ताल] सगीत मे वह तान जो असामयिक और अनियमित हो। उ०—ताल कुताल सप्त सुर जाने।—माधवानल०, पृ० १९२।

कुताही—सज्ञा स्त्री० [हिं० कोताही] दे० 'कोताही'।

कुतिया—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुत्ती] कुत्ते की मादा। कूकरी। कुत्ती। उ०—इह दसा स्वान पाई तऊ कुतिया सों उरझत गिरत।—ब्रज० ग्र०, पृ० ११०।

कुतुक—सज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छा। अभिलाषा। लालसा। २. कौतुक। कुतूहल। ३ उत्कट इच्छा या कामना [को०]।

कुतुप—सज्ञा पुं० [सं०] १ दिनमान का आठवाँ मुहूर्त। कुतप। २ तेल रखने [illegible] चमड़े की कुप्पी।

[illegible] ० कुत्ब] १. ध्रुवतारा। नेता। नायक। उ०—[illegible] कुतुब हैं वो खबर लिए मात सूँ आपने सीस [illegible]०, पृ० २६८।

वाला। कुनबेवाला। २ कुटुंब के लोग। संबंधी। नातेदार। ३ वह व्यक्ति जो किसी वस्तु की देखभाल करता हो [को०]। ४ किसान। कृषक [को०]।

कुटुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुट्टनी' (को०)।

कुटुम(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंब'।

यौ०—कुटुमकबीला=कुटुंबीजन।

कुटुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] १ कूटनेवाला। २ बैल या भैंस को बधिया करनेवाला।

कुटेक—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० टेव] अनुचित हठ। बुरी जिद।

कुटेव—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० टेव] खराब आदत। बुरी बान। बुरा अभ्यास। उ०—नंनन यहै कुटेव परी। लूटत स्याम रूप आपुन ही निसि दिन पहर घरी।—सूर (शब्द०)।

कुटेशन—संज्ञा पुं० [अं० कोटेशन] दे० 'कोटेशन'।

कुटौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना+औनी (प्रत्य०)] १ धान कूटने का काम। उ०—कर्कशा अपढ़ स्त्रियों का दिल बहलाव लडाई है। घर गृहस्थी के साथ काम पिसौनी कुटौनी से छुट्टी पाय जबतक दाँत न करं लें, आपस मे झोटीझोटा न कर लें, तबतक कभी न अघायँ।—हिंदी प्रदीप (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कुटौनी पिसौनी=(१) धान कूटने और गेहूँ पीसने का काम। (२) जीविका के लिये कठिन परिश्रम (स्त्रियों का)। जैसे—माँ तो कुटौनी पिसौनी करती है और बेटे का यह हाल है।

२ धान कूटने की मजदूरी। जैसे—दो मन धान की कुटौनी कितनी हुई।

कुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ गुणक। गुणा करनेवाला। २ वह अंक जिससे गुणा किया जाय [को०]।

कुट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कूटने पीसनेवाला व्यक्ति। २. एक शिकारी पक्षी। ३ गुणक [को०]।

कुट्टन संज्ञा पुं० [सं०] १ नृत्य में वह मुद्रा जिसमे वृद्धावस्था के कारण दाँत से दाँत बजने का भाव दिखाया जाता है। २ कूटना (को०)। ३ पीसना (को०)। ४ काटना (को०)।

कुट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटनी। दल्लाला। २ मनमोटाव करने के लिये एक आदमी की बात दूसरे आदमी से कहनेवाली। इधर की उधर लगानेवाली।

कुट्टमित—संज्ञा पुं०[सं०]सुख के अनुभवकाल में स्त्रियों की मिथ्या दुःखचेष्टा। यह ग्यारह प्रकार के हावों मे से एक माना गया है। हेमचंद्र ने इसे स्त्रियों के दस प्रकार के अलंकारों में माना है।

कुट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० कटना] १ परकटा कबूतर। वह कबूतर जिसकी पूँछ के पर कतरकर उसे उड़ने के अयोग्य कर देते हैं और जिसे दूसरे कबूतरों को बुलाने के लिये हाथ में लेकर उछालते हैं। २ वह पक्षी जिसके पैर बाँधकर जाल में इसलिये छोड देते हैं कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल मे फँसे। मुल्लह।

कुट्टाक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुट्टाकि] १ काटने या विभक्त करनेवाला। २ कूटने पीसने का काम करनेवाला। कुट्टक।

कुट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंबल। ओढने का ऊनी वस्त्र। २ रतिक्रिया। संभोग। ३ पहाड। पर्वत। ४. पृथक्ता। पार्थक्य [को०]।

कुट्टित—वि० [सं०] १ फटा हुआ। २ पिसा हुआ। कूटा हुआ [को०]।

कुट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह भूमि जिसपर कंकड, पत्थर या ईंटें बैठाई हो। पक्का फर्श। गच। २ अनार। दाडिम। ३. रत्न की खान (को०)। ४. कुटी। छोटा गृह (को०)।

कुट्टिमित—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुट्टमित (को०)।

कुट्टिहारिका—संज्ञा स्त्री० [पुं०] दे० 'कुट्टहारिका' [को०]।

कुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १ घास, पयाल या और चारे को छोटे छोटे टुकडों मे काटने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ गँड़ासे से बारीक कटा हुआ चारा। ३ कूटा और सड़ाया हुआ कागज, जिससे पुट्ठे और कलमदान इत्यादि बनते हैं। ४. लडकों का एक शब्द, जिसका प्रयोग वे एक दूसरे से मित्रता तोडने के समय दाँतों पर नाखून खुट से बुलाकर करते हैं। ५. मैत्रीभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. परकटा कबूतर। वि० दे० 'कुट्टा'।

कुट्टीर—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा पहाड। पहाडी [को०]।

कुट्टीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुटीरक' [को०]।

कुट्मल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्मल' (को०)

कुठ—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़। वृक्ष। गाछ [को०]।

कुठर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कुटर' [को०]।

कुठला—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोट्ठ+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कुठली] १. अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। २. चूने की भट्ठी।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

कुठाँउ, कुठाँय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कु+ठाँव] दे० 'कुठाव'।

कुठाँव(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० ठाँव] बुरी ठौर। बुरी जगह। उ०—यह सब कलियुग को परभाव। जो नृप को मन गयो कुठाँव।—सूर (शब्द०)।

मुहा—कुठाँव मारना=(१) मर्म स्थान पर मारना, अथवा ऐसे स्थान पर मारना जहाँ बहुत कष्ट या दुर्गति हो। (२) घोर आघात पहुँचाना। बुरी मौत मारना। उ०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे राव। सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठाँव।—तुलसी (शब्द०)।

कूठाकु†—संज्ञा पुं० [देश०] कठफोडवा पक्षी।

कुठाटक—संज्ञा पुं० [सं० कुठारटङ्क] [स्त्री० कुठाटका] छोटा कुल्हाडा। कुल्हाडी।

कुठाट—संज्ञा पुं० [सं० कु+हिं० ठाट] १. बुरा साज। बुरा सामान। उ०—राग को न साज न विराग जोग जाग जिय, काया नहिं छाड़ि देत ठाटिवो कुठाट को।—तुलसी (शब्द०)। २. बुरा प्रबंध। बुरा आयोजन। उ०—(क) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कुकोटिक चेटक कोटि कुठाट ठटो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मोहि लगि यह कुठाट तेहिं ठाटा। तुलसी (शब्द०)।

कुठाय(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुठाँव'।

कुठार¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुठारी] १ कुल्हाड़ी। २ परशु। उ०—कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही। —तुलसी (शब्द०)।

यौ०—कुठाराघात। कुठारपाणि।

३ नाश करनेवाला। सत्यानाशी। कुलकुठार। ४. वृक्ष। पेड़ (को०)।

कुठार²—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठागार, प्रा० कोट्ठार, हिं० कोठार] अनाज आदि रखने का बड़ा बरतन। कोठिला।

कुठारक—संज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी (को०)।

कुठारपाणि¹—वि० [सं०] जो हाथ मे परशु या कुठार लिए हो।

कुठारपाणि²—संज्ञा पुं० [सं०] परशुराम जी का एक नाम। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही।—तुलसी (शब्द०)।

कुठारपानि—संज्ञा पुं० [सं० कुठारपाणि] परशुराम।

कुठाराघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल्हाड़ी का आघात। कुल्हाड़ी का घाव। २. गहरी चोट। भारी सदमा ३. पूर्णत. नष्ट करनेवाला व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुठारिक¹—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी काटकर जीविका अर्जित करनेवाला। लकड़हारा (को०)।

कुठारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल्हाड़ी (को०)।

कुठारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुल्हाड़ी। टाँगी। उ०—रामकथा कलि विटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी।—मानस, १।११४। २. नाश करनेवाली उ०—गहि पद विनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकरकुल होसि कुठारी।—मानस, २।३४।

कुठारी¹—संज्ञा पुं० [हिं० कोठारी] दे० 'कोठारी'।

कुठारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। पेड़। २ वानर। बंदर ३. शस्त्रकार। अस्त्रनिर्माता (को०)।

कुठाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + स्थाली = बटलोई हिं० कुठार + ई (अल्पा० प्रत्य०)] मिट्टी की घरिया जिसमे सोना चाँदी गलाते हैं। घरिया। उ०—पंडित जी ने संखिया मँगा दिया तो बाबा जी ने तुरत कुठाली मे डाल के पंडित जी के हाथ से एक बूटी का रस उसके ऊपर गिरवाया।—श्रद्धाराम (शब्द०)।

कुठाहर—संज्ञा पुं० [सं० कु + ठाहर = जगह] १. कुठौर। कुठाँव। बुरा स्थान। उ०—कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।—मानस ५।४६। २ बे मौका। बुरा अवसर। उ०—सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि विधि बामू।—मानस २।३६।

कुठि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेड़। तरु। २ पर्वत। पहाड़ (को०)।

कुठिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोष्ठिका, प्रा० कोट्ठिया] अनाज रखने का मिट्टी का गहरा बरतन।

कुठिला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुठला'।

कुठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कँटीली बर्रें या कुसुम का पेड़ जो बंगाल मे होता है और रंग बनाने के काम मे आता है।

कुठौर—संज्ञा पुं० [सं० कु + हिं० ठौर] १. कुठाँव। बुरी जगह। २. बे मौका। बे ठिकाना। अनुपयुक्त अवसर।

कुठेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुलसी का पौधा। २ अग्नि (को०)।

कुठेरक—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी का पौधा (को०)।

कुठेरु—संज्ञा पुं० [सं०] चँवर या पंखे की वायु (को०)।

कुडंग—संज्ञा पुं० [सं० कुडङ्ग] कुंज। पेड़ों का झुरमुट (को०)।

कुड—संज्ञा पुं० [कुट, कुठ प्रा० कुड] वृक्ष। पेड़। उ०—सेही सियाल लंगूर बहु, कुड कदम नरि तर रहिय —पृ० रा० ६।६४।

कुड¹—संज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ, प्रा० कुट्ठ] कुट नाम की ओषधि।

कुड़²—संज्ञा पुं० [देश० या सं० कुट = समूह] अन्न की राशि। कूरा।

कुड़³—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोड़ना = खोदना] हल की अगवाँसी। जोंघा।

कुड़की†—संज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क] दे० 'कुर्की'। उ०—किसपर कुड़की नहीं आई।—गोदान, पृ० १।

कुडकुड—संज्ञा पुं० [अनु०] एक निरर्थक शब्द, जिसकी सहायता से पक्षी, पशु आदि खेतों से हटाए जाते हैं।

कुडकुड़ाना¹—क्रि० अ० [अनु०] किसी अनुचित या अप्रिय बात को देख या सुनकर भीतर ही भीतर क्षुब्ध होना। मन ही मन कुढना। कुडबुडाना।

कुडकुड़ाना²—क्रि० स० खेत मे चिड़ियों को उड़ाना या जानवरों को भगाना। जैसे,—वह दिन भर खेत मे बैठा कौए कुडकुडाया करता है।

कुडकुडी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भूख या अजीर्ण से होनेवाली पेट की गुड़गुड़ाहट।

मुहा०—कुड़कुड़ी होना = किसी बात को जानने के लिये गहरी आकुलता या उत्कंठा होना। पेट मे चूहे कूदना।

कुडप—संज्ञा पुं० [सं० कुडप] दे० 'कुडव'।

कुड पना—क्रि० स० [हिं० कुड़ = हलकी लकीर] कँगनी के खेत को उस समय जोतना जब फसल एक बित्ते की हो जाय।

कुडबुडाना—क्रि० अ० [अनु०] मन ही मन कुढ़ना। कुड़कुड़ाना।

कुड्मल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुड्मल] दे० 'कुड्मल'। उ०—कुलिश कुंद कुड्मल दामिनि दुति दसननि देखि लजाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६२।

कुडमाई—संज्ञा स्त्री० [पं०] विवाह के पहले विवाह के निश्चय के उपलक्ष्य में होनेवाला लोकाचार। मँगनी। सगाई।

कुडरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुडरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'कुड़री'।

कुडरी—संज्ञा स्त्री० [कुण्डली] १ गेंडुरी। इँडुरी। गिंडई। बिड़वा। २ वह भूमि जो नदी के घूमने से बीच में पड़कर तीन तरफ जल से घिर जाय। कुडरिया।

कुडल—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चन] शरीर मे ऐंठन जो रक्त की कमी या उसके ठंडे पड़ने से होती है। यह अवस्था मिरगी आदि रोगों मे या निर्बलता के कारण होती है। बयगुज।

कुड़व—संज्ञा पुं० [सं० कुडव] लोहे या लकड़ी का अन्न नापने का एक पुराना मान जो चार अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा होता था।

भी होता है। इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी कटावदार और ऊपर की चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ में गोल गोल बेडौल गाँठें पड़ती हैं जो औषध के काम में आती हैं। स्वाद में कुटकी कड़वी, चरपरी और रूखी होती है। प्रकृति इसकी शीतल है। यह भेदक, कफनाशक तथा पित्तज्वर, श्वास, कोढ़ और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसमें दीपक और मादक गुण भी होता है। यह २ रत्ती से ४ रत्ती तक खाई जा सकती है। इसे काली कुटकी भी कहते हैं।

पर्या०—तिक्ता। काडरुहा। अरिष्टा। चक्रांगी। शकुलादिनी। कटुका। मत्स्यपित्ता। नकुलासादिनी। शतपर्वा। द्विजांगी। मलभेदिनी। कृष्णा। कृष्णभेदा। कृष्णभेदी। महौषधि। कटवी। अजनी कटु। वामघ्नी। चित्रांगी।

२ एक जड़ी जो शिमले से काश्मीर तक पाँच से दस हजार फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों में होती है। यह जिनशियन नाम की अंग्रेजी दवा के स्थान में व्यवहृत होती है। यह बल और वीर्यवर्धक होती है।

कुटकी[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक छोटी चिड़िया।

विशेष—यह भारत के घने जंगलों में होती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। यह पाँच इंच लंबी होती है और तीन चार अंडे देती है। यह कभी जोड़े में और कभी झुंड में रहती है। बोली इसकी कड़ी होती है। यह पत्ते, फूल, बाल, कपास आदि गूँथकर घोंसला बनाती है।

२ बांदिए के पेंच का वह भाग, जिसमें लोहे की कीलों या छड़ों में पेंच बनाया जाता है।

कुटकी[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटका = छोटा टुकड़ा] कँगनी। चेना।

कुटकी[४]—संज्ञा स्त्री० [सं० कट् + कीट] एक उड़नेवाला कीड़ा जो कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं के शरीर के रोयों में घुसा रहता है और उन्हें काटता है।

कुटचारि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कूटचार] चुगुली। चवाव। उ०—अस को आहि कुटीचर सगा। कै कुटचारि कीन्ह रस भंगा।—चित्रा० पृ० ५३।

कुटज—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुरैया। कर्ची। इंद्रजौ। अगस्त्य मुनि। ३. द्रोणाचार्य का एक नाम। ४. पद्म। कमल।

कुटनई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटनपन'।

कुटनपन, कुटनपना—संज्ञा पुं० [सं० कुट्टन अथवा हिं० कुटनी + पन (प्रत्य०)] १ कुटनी का काम। स्त्रियों को फोड़ने फासने का काम। दूती कर्म। २. इधर उधर लगाने का काम। झगड़ा लगाने का काम।

कुटनपेशा—संज्ञा पुं० [हिं० कुटन + फा० पेशा] दे० 'कुटनपन'।

कुटनहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना + हारी (प्रत्य०)] धान कूटने का काम करनेवाली स्त्री। वह स्त्री जो धान कूटकर भूसी और चावल अलग करने का व्यवसाय करती हो।

कुटना[१]—संज्ञा पुं० [हिं० कुटनी] १. स्त्रियों को बहकाकर उन्हें परपुरुष से मिलाने वाला अथवा एक का संदेशा दूसरे तक पहुँचानेवाला व्यक्ति। स्त्रियों का दलाल दूत। टाला। २. एक की बात दूसरे से कहकर दो आदमियों में झगड़ा करानेवाला। चुगलखोर।

कुटना[२]—संज्ञा पुं० [हिं० कूटना] १ वह औजार या हथियार जिससे कुटाई की जाय। २ कूटे जाने की क्रिया।

यौ०—कुटना पिसना = कूटे और पीसे जाने का काम।

कुटना[३]—क्रि० अ० [हिं० कूटना] १ कूटा जाना। २. मारा या पीटा जाना।

कुटनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटनपन'।

कुटनाना—क्रि० स० [हिं० कुटना] १ किसी स्त्री को बहकाकर कुमार्ग पर ले जाना। २ बहकाना।

कुटनापन—संज्ञा पुं० [हिं० कुटना + पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटनापा—संज्ञा पुं० [हिं० कुटना + पा (प्रत्य०) दे० 'कुटनपन'।

कुटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुट्टनी] १ स्त्रियों को बहकाकर उन्हें परपुरुष से मिलानेवाली अथवा एक का संदेशा दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री। दूती। २ चुगली खाकर दो व्यक्तियों में झगड़ा करानेवाली स्त्री। इधर की उधर लगानेवाली औरत।

कुटनीपन—संज्ञा पुं० [हिं० कुटनी + पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटन्नक—संज्ञा पुं० [सं०] कैवट मोथा। कसेरू।

कुटन्नट—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्योनाक। छोंका। २ कैवट मोथा। कैवर्तमुस्ता।

कुटप—संज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न की एक नाप। कुडव। २ घर से लगा हुआ या समीपवर्ती बगीचा। ३ संत। तपस्वी। ४ कमल। पद्म [को०]।

कुटम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंब'। उ०—कुटम सेव करि खेस, करद लै अदल पठाए।—ह० रासो०, पृ० १२१।

कुटर—संज्ञा पुं० [सं०] वह डंडा जिसमें मथानी की रस्सी लपेटी जाती है।

कुटर, कुटर—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी कड़ी वस्तु के चबाने का शब्द।

कुटरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. फाग। २ तंबू। खीमा [को०]।

कुटल—संज्ञा पुं० [सं०] छप्पर। छत [को०]।

कुटवाना—क्रि० स० [हिं० 'कूटना' का प्रे० रूप] कूटने की क्रिया कराना। कूटने में तत्पर करना।

कुटवार—संज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] गाँव का गोड़इत। चौकीदार।

कुटवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोटपाल प्रा० कुट्टवाल = नगररक्षक, हिं० कोतवाल, कोतवाली] कोतवाल का कार्य। नगररक्षा या चौकसी। दे० 'कोतवाली'। उ०—कैसे नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष विचषन नारी।—कबीर ग्रं०, पृ० ११३।

कुटहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। सेविका। नौकरानी [को०]।

कुटाई—संज्ञा [हिं० कूटना] १ कूटने का काम। १ कूटने की मजदूरी। ३ किसी को बहुत अधिक पीटना। कुटास।

कुटार—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] नटखट टट्टू।

कुटास—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] खूब मारना। पीटना।

कुटि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ देह। शरीर। २. वृक्ष।

कुटि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ झोपड़ी। कुटी। २ मोड़। घुमाव।

कटिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह गाँव जिसका प्रधान एक व्यक्ति हो [को०]।

कुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुटिया'।

कुटिचर—संज्ञा पुं० [सं०] जलशूकर। शिशुमार। सूँस [को०]।

कुटिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटिका] छोटी झोंपड़ी।

कुटिर—संज्ञा पुं० [सं०] झोपड़ी। कुटिया [को०]।

कुटिल[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुटिला] १. वक्र। टेढ़ा।
यौ०—कुटिलकीट = साँप। कुटिलबुद्धि, कुटिलमति, कुटिलस्वभाव, कुटिलाशय = दुरात्मा। टेढ़ी प्रकृति का। बुरे स्वभाववाला।
२. दगाबाज। कपटी। छली।

कुटिल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शठ। खल। २. वह जिसका रंग पीला लिए सफेद हो और आँखें लाल हों। ३. चौदह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में स, भ, न, य, ग, ग, होते हैं। उ०—सुभ नायो गगरिक तुरत गगा पानी। जिन शंभू सिर जननि दया की खानी तजि सारे कुटिलन कपटी को साथा। तिनपाई अति सुभ गति गावैं गाथा। ४. तगर का फूल। ५. टिन [को०]।

कुटिलई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुटिलता।

कुटिलक—वि० [सं०] मुड़ा हुआ। वक्र [को०]।

कुटिलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप। उ०—तनु तज्यो कुटिलकीट ज्यों तज्यो मात पिता हूँ।—तुलसी (शब्द०)।

कुटिलकीटक—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा [को०]।

कुटिलगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वक्रगति। टेढ़ी चाल। २. एक वर्णवृत्त [को०]।

कुटिलगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। सरिता [को०]।

कुटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टेढ़ापन। २ खोटाई। धोखेबाजी। छल। कपट।

कुटिलपन—संज्ञा पुं० [सं० कुटिल + हिं० पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटिलता'। उ०—केकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।—मानस, २।९१।

कुटिललिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटिला नामक एक लिपि। वि० दे० कुटिला २।

कुटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती नदी। २ एक प्राचीन लिपि, जिसका प्रचार भारतवर्ष में आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक था।
विशेष—भारतीय प्राचीन लिपिमाला (पृ० ४२) के विवरण के अनुसार इसके अक्षरों तथा विशेषकर स्वरों की मात्राओं की कुटिल आकृतियों के कारण इसका नाम कुटिल रखा गया। यह गुप्त लिपि से निकली और इसका प्रचार ई० स० की छठी शताब्दी से नवीं तक रहा और इसी से नागरी और शारदा लिपियाँ निकलीं।
३. असबरग नामक गंधद्रव्य, जिसका उपयोग औषधों में भी होता है। ४. चैतन्य संप्रदाय के अनुसार राधिका की ननद और आयानघोष की बहन।

कुटिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटिलता'।

कुटिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना आहट के पैर दबाकर आना। निःशब्द आगमन। २ लोहार की धौंकनी या भाथी [को०]।

कुटिहा—वि० [हिं० कूट + हा (प्रत्य०)] १. कूट कहनेवाला। २. व्यंग्य से हँसी उड़ानेवाला। ३. दिल्लगीबाज।

कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जंगलों या देहात में रहने के लिये घास फूस से बनाया हुआ छोटा घर। पर्णशाला। कुटिया। झोपड़ी। २ मुरा नामक गंधद्रव्य। ३. सफेद कुड़ा। कुटज। ४ मरुआ नामक पौधा। ५ मदिरा। मद्य [को०]। ६. लतागृह। लतामंडप [को०]। ७. पुष्प का स्तवक। फूल का गुच्छा [को०]। ८ मोड़। घुमाव [को०]।

कुटीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा घर। कुटिया [को०]।

कुटीचक—संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के संन्यासियों में से पहला।
विशेष—इस कोटि का संन्यासी शिखासूत्र का त्याग नहीं करता। यह तीन दंड और कमंडलु रखता, कषाय पहनता और त्रिकाल संध्या करता है। यह अपने कुटुंब और बंधुओं के अतिरिक्त दूसरे के घर की भिक्षा नहीं लेता। मरने पर इसका दाहकर्म किया जाता है।

कुटीचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुटीचक'। उ०—प्राचीन आर्यों की धर्मनीति में इसी लिये कुटीचर और एकांतवासियों का ही अनुमोदन किया है।—कंकाल, पृ० १८।

कुटीचर[2]—संज्ञा पुं० [सं० कुचर या या सं० कूट + चर या सं० कुटीचर] कुटिल। कपटी। छली। उ०—जोबन नैंर पर्यो है कुटीचर काम पै बाहु अनेक चहौंगी।—घनानंद, पृ० ६००।

कुटीप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार कल्पचिकित्सा के लिये विशेष प्रकार से निर्मित कुटी में रहना [को०]।

कुटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'कुटी'। २. रति क्रिया। ३. सपूर्णता [को०]।

कुटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] कुटी। कुटिया।

कुटुंगक—संज्ञा पुं० [सं० कुटुङ्गक] १ वृक्ष पर चढ़ी हुई लता से बना हुआ मंडप। लताकुंज। २. वृक्ष पर चढ़ी हुई लता। ३. छत। छाजन। ४ कुटीर। झोपड़ी। ५ अन्न का भांडार (को०)।

कुटुंब—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] १. परिवार। कुनबा। खानदान। २. परिवार के प्रति कर्तव्य कर्म (को०)। ३. रिश्तेदार। संबंधी (को०)। ४. नाम (को०)। ५. जाति (को०)। ६. समूह (को०)।

कुटुंबक—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बक] १. दे० 'कुटुंब'। २ एक प्रकार की घास [को०]।

कुटुंबिक—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिक] दे० 'कुटुंबी'।

कुटुंबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटुम्बिनी] १ एक क्षुद्र गुल्म जो मीठा, संग्राहक, कफपित्त का नाशक, रक्तशोधक और व्रण में उपकारी होता है। २. घर गृहस्थीवाली स्त्री। परिवारवाली स्त्री [को०]। ३. कुटुंब के प्रधान की पत्नी। ४. घर की नौकरानी।

कुटुंबी—संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिन्] [स्त्री० कुटुम्बिनी] १. परिव.र

कुचोद्य--संज्ञा पुं० [सं० कु+चोद्य] कुत्सित प्रश्न। वितंडा। कुतर्क। खुचुर।
क्रि० प्र०--करना।
विशेष--इस शब्द का प्रयोग काशी के पंडित ही बहुधा करते हैं।

कुच्चा--संज्ञा पुं० [फा० कूजह] [स्त्री० कुच्ची] चमड़े आदि का बना हुआ कुप्पा।

कुच्ची[1]--संज्ञा पुं० [फा० कुजह] मिट्टी का लबा बरतन जिससे तेली तेल नापते हैं।

कुच्ची[2]--वि० छोटी। नन्ही। उ०--मोटा तन व थुंदना थुंदना मुख कुच्ची आँख।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६।

कुच्छ--संज्ञा पुं० [सं०] जलकमल का एक भेद। कुईं [को०]।

कुच्छित, कुच्छित्त(पु)--वि० [सं० कुत्सित] कुत्सित। नीच। उ०--(क) सुरधुनी अोध संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरो। परमहंस वंसानि में भयो विभागी बानरो।--नाभा (शब्द०)। (ख) कुच्छित्त देस कारन विक्रम। तहँ सु केम किज्जै गमन।--पृ० रा०, १।१७६।

कुछ--वि० [सं० किंचित् पा० किंची, पू० हिं० कछु, किछु] थोड़ी संख्या या मात्रा का। जरा। थोड़ा सा। टुक। जैसे--(क) देखो पेड़ में कुछ फल हैं। (ख) कुछ लोग आ रहे हैं। (ग) कुछ देर ठहरो तो बातचीत करें।
मुहा०--कुछ एक=थोड़ा सा। कुछ ऐसा=विलक्षण। असाधारण। जैसे--(क) रात तो कुछ ऐसी नींद आई कि पड़ते ही सो गए। (ख) वह लड़का कुछ ऐसा घबड़ाया कि भागते ही बना। कुछ कुछ=थोड़ा। जैसे--आज बुखार कुछ कुछ उतरा है। कुछ न कुछ=थोड़ा बहुत। कम या ज्यादा। बहुत कुछ। कितना कुछ=बहुत अधिक।

कुछ[2]--सर्व० [सं० कश्चित् प्रा० कोचि] १ कोई (वस्तु)। जैसे,--कुछ खाओ तो ले आवें। (ख) कुछ दिलवाओ। (ग) हम कुछ नहीं जानते।
मुहा०--कुछ का कुछ=और का और। विपरीत। उलटा। जैसे--वह सदा कुछ का कुछ समझता है। कुछ से कुछ होना=भारी उलट फेर होना। विशेष परिवर्तन हो जाना। कुछ कह बैठना=कड़ी बात कह देना। ऊँची नीची सुना देना। गाली दे देना। कुछ कहना=कड़ी बात कहना। गाली देना। बिगड़ना। जैसे--तुम्हें किसी ने कुछ कहा है? कुछ सुनोगे या कुछ सुनने पर लगे हो=ऊँचा नीचा सुनोगे। गाल खाओगे। जैसे--तुम नहीं मानते हो, अब कुछ सुनोगे। कुछ खा लेना=विष खा लेना जैसे--इसने कुछ खा तो नहीं लिया। कुछ खाकर मर जाना=विष खाकर मर जाना। कुछ कर देना=जादू टोना कर देना। मंत्रप्रयोग कर देना। जैसे--जान पड़ता है कि किसी ने उसपर कुछ कर दिया है। कुछ हो जाना=कोई रोग या भूत। प्रेत की बाधा हो जाना जैसे--उसको कुछ हो तो नहीं गया। (किसी बुरी बात) या वस्तु का नाम लेकर लोग कभी कभी केवल इसी सर्वनाम का प्रयोग कर लेते हैं जैसे-- उसे कुछ हो तो नहीं गया। उसने कुछ खा तो नहीं लिया? किसी ने कुछ कहा तो नहीं? इत्यादि। कुछ हो=चाहे जो हो।
२ कोई बड़ी बात। कोई अच्छी बात। जैसे,--यदि ५०) ही दिए तो कुछ नहीं किया। ३ कोई सार वस्तु। कोई काम की वस्तु। जैसे,--उसमें तो कुछ भी नहीं निकला।
मुहा०--कुछ (कछु) न रहना=इज्जत न रहना। प्रतिष्ठा न रहना। उ०--नंददास प्रभु कछु न रहेगी, जब बरतन उघरोगी।--नंद ग्रं०, पृ० ३६२। कुछ लगाना=(अपने को) बड़ा या श्रेष्ठ समझना। कुछ हो जाना=किसी योग्य हो जाना। किसी बात में समर्थ या किसी गुण से युक्त हो जाना। गण्यमान्य हो जाना। जैसे,-(क) यह लड़का परिश्रम करेगा तो कुछ हो जायगा। ख) यदि यह काम चमक गया तो हम भी कुछ हो जायँगे।

कुजंत्र(पु)--संज्ञा पुं० [सं० कु+यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. बुरा यंत्र। २. अभिचार। टोटका। टोना। उ०--कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्र। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्र।--तुलसी (शब्द०)।

कुजंभल--संज्ञा पुं० [सं० कुजम्भल] सेंध लगानेवाला। चोर [को०]।

कुजंभा[1]--वि० [सं० कुजम्भा] विकराल दाँतवाला।

कुजंभा[2]--संज्ञा पुं० एक असुर जो प्रह्लाद का पुत्र था।

कुजंभिल--संज्ञा पुं० [सं० कुजम्भिल] दे० 'कुजंभल'।

कुज[1]--संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह। उ०--(क) भाल बिसाल ललित लटकन मनि बाल दसा के चिकुर सुहाए। मानो गुरु शनि कुज आगे करि ससिहिं मिलन तम के गन आए।--सूर०, १०।१०४। (ख) भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि। इंदु कला कुज में बसी मनहु राहु भय भाजि।--बिहारी (शब्द०)। २ वृक्ष। पेड़। उ०--चंदन वदन जोग तुम धन्य द्रुमन के राय। देत कु कुज ककोल लों देवन सीस चढ़ाय।--दीन० ग्रं०, पृ० २१३। ३ नरकासुर का नाम, जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता था।

कुज--वि० [मंगल के समान] लाल रंग का। लाल। उ०-(क) फहरी अनंत सोहै धुजा। सित स्याम रंग कीती कुजा।--सूदन (शब्द०)। (ख) यह स्याम धुजा बहुरंग कुजा।--सूदन (शब्द०)।

कुज[3]--क्रि० वि० [फा० कुजा=कहाँ, क्यों] कहाँ। किस जगह। उ०--कुज रौला पाया अलमा कुज कागजा पाया मल्ल।--संतवाणी०, भा० १, पृ० १५१।

कुज[4](पु)†--वि० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०--वहाँ कुज ऐतबार सिफत का नहीं सिवाए एकानियत के।--दक्खिनी०, पृ० ४४२।
यौ०--कुजकोई=हर एक। प्रत्येक। जो चाहे। उ०--कुजकोई चुबन करे गनका हुदो गाल। कुजकोई खावए करे मावडियारो माल।--बाकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १५।

कुजन--संज्ञा पुं० [सं०] बुरा व्यक्ति। दुर्जन व्यक्ति। असत्पुरुष।

कुजन्मा--वि० [सं० कुजन्मन्] १ नीच से उत्पन्न। अकुलीन। २ पृथ्वी से उत्पन्न [को०]।

कुजस--संज्ञा पुं० [हिं० कु+जस (सं० यशस्)] अपयश। निंदा। अपकीर्ति।

कुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु=पृथ्वी+जा=जायमान] १ सीता। जानकी। उ०—टूटे धनुष कठिन है ब्याहू। बिन मर्जे को वरी कुजाहू।—विश्राम (शब्द०)। २. कात्यायिनी का एक नाम।

कुजात—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुजाति'।

यौ०—जात कुजात।

कुजाति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी जाति। नीच जाति। उ०—दुख सुख, पाप, पुण्य दिन राती। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती।—तुलसी (शब्द०)।

कुजाति[2]—संज्ञा पु० १ बुरी जाति का आदमी। नीच पुरुष। उ०—नहि तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मँगता।—तुलसी (शब्द०)। पतित या अधम पुरुष। उ०—कूर कुजाति कपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजा।—तुलसी (शब्द०)।

कुजाम† —संज्ञा पुं० [सं० कु+याम] दे० 'कुजून'।

कुजाष्टम—संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो जन्मकुंडली के चक्र में मगल के आठवें स्थान पर होने से होता है। यह योग बड़ा ही अशुभ माना जाता है। ज्योतिषियों का मत है कि कुजाष्टम योग कुंडली के अन्य शुभ योगों को नष्ट कर देता है।

कुजिया†—संज्ञा स्त्री० [फा० कूजह=प्याला] छोटी घरिया।

कुजून†—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० जून=समय] १. कुसमय। बुरा समय। २ अतिकाल। देर। नावक्त।

कुजोग ◌॑ —संज्ञा पुं० [सं० कुयोग] १.कुसंग। कुमेल। बुरा मेल। उ०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग। होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।—तुलसी (शब्द०)। २ बुरा संयोग। बुरा अवसर। प्रतिकूल अवस्था।

कुजोगी ◌॑ —वि० [सं० कुयोगी] असंयमी। उ०—पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहि सकहिं उपारी।—तुलसी (शब्द०)

कुज्जा—संज्ञा पुं० [फा० कूज़ह=प्याला]१ मिट्टी का प्याला। पुरवा। २ मिट्टी के कूजे में जमाई हुई मिस्त्री की बड़ी गोल डली।

कुज्झटि, कज्झटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स० 'कुज्झटिका' (को०)।

कुज्झटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा। कुहेलिका। उ०— क्षण क्षण विद्युत प्रकाश, गुरु गर्जन मधुर मास. कुज्झटिका अट्टहास, मतङ्ग विनिस्तंद्र।—आराधना, पृ० १३।

कुटक—संज्ञा पुं० [सं० कुटङ्क] छाजन। छप्पर। छत (को०)।

कुटगक—संज्ञा पुं० [सं० कुटङ्गक] १ लताकुंज। लतामंडप। २. झोपड़ी। कुटी। आवास (को०)।

कुटत†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना+त (प्रत्य०)] १. कूटने का भाव। कुटाई। २. मार। प्रहार। जैसे—जाओ घर पर खूब कुटत होगी। उ०—जेहि जियत इंद्रपुर मे कूटत। गज बाज ऊँट वृषभा लूटत।—सूदन (शब्द०)।

कुटंम ◌॑ —संज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंम'। उ०—कुटंम कलित या ने रहत नहीं ही हम, जाति के खवास खास विश्व में विमात हैं।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३४।

कुट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुटी] १. घर। गृह। २.कोट। गढ़। ३ कलश। ४. वह घन जिससे पत्थर तोड़ा जाता है। ५. वृक्ष। ६. पर्वत।

कुट[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुष्ट, प्रा० कुट्ठ] एक बड़ी मोटी झाड़ी जिसकी जड़ सुगंधित होती है।

विशेष—कश्मीर के किनारे की ढालू पहाड़ियों पर ८००० से ९००० फुट की ऊँचाई तक यह होती है। चनाब और झेलम के ऊँचे कछारों में भी यह मिलती है। कश्मीर में इसकी जड़ खोदकर बहुत इकट्ठी की जाती है और छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर बाहर कलकत्ते और बंबई भेजी जाती है, जहाँ से इसकी चलान चीन और योरप को होती है। कश्मीर में इसका संग्रह राज्य की ओर से होता है। प्रत्येक काश्तकार को कुछ जड़ कर के रूप में देनी पड़ती है। इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है और चीन में इसे धूप की तरह जलाते हैं। इससे बाल भी मला जाता है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इससे सफेद बाल काले हो जाते हैं। काश्मीर में शाल के व्यापारी इसे दुशालों की तह में उन्हें कीड़ों से बचाने के लिये रखते हैं। पहले लोग असली कश्मीरी शाल की पहचान इसी की महक से करते थे। वैद्यक में यह गरम, कफ और वात-नाशक, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाली और शुक्रजनक मानी गई है। हकीम लोग कुट तीन प्रकार की मानते हैं। एक मीठी, तौल में हलकी, सुगंधित और पीलापन लिये सफेद होती है। दूसरी कड़वी, कुछ करौंछे रंग की और बिना महक की होती है। तीसरी लाल रंग की और स्वाद में फीकी होती है और उसमें घीक्वार की सी महक होती है।

पर्या०—कुष्ट। व्याधि। परिभाव्य। व्याप्य। पाकल। उत्पल। कदाह्य। दुष्ट। आप्य। जरण। कौवेर। भासुर। गदाह्व। कुठिक। काकल। नीरुज। आमय। रुजा। गद। पारिभद्रक कुत्सित। पावन।

कुट—संज्ञा पु० [सं० कुट=कूटना] १. कूटा हुआ टुकड़ा।

यौ०—कसकुट। तिलकुट। तिसकुट।

मुहा०—कुट करना=मैत्री खंडित करना। बालकों का दाँतों पर नाखून खुट से बुलाकर मित्रता तोड़ना। कुट्टी करना।

२ कूटा और सड़ाया हुआ कागज। कुट्टी।

कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल का फल। २. मथानी की रस्सी लपेटने का डंडा। ३ भागवत वर्णित एक देश और उसके निवासी। ४ वृक्षविशेष का नाम (को०)।

कुटका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] [स्त्री० अल्पा० कुटकी] १ छोटा टुकड़ा। उ०—साधुन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव। चंदन की कुटकी भली, ना बबूल बनराव।—कबीर (शब्द०)। २. कसीदे में का तिकोना बूटा। तिघाड़ा।

कुटकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। परिचारिका (को०)।

कुटकी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुका] १ एक पौधा जिसकी जड़ शीतल प्रकृति की होती है और दवा के काम में आती है।

विशेष—यह पश्चिमी और पूर्वी घाटों में तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशों में

कुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षेत्र, पा० कुखेत्त] बुरा स्थान। खराब जगह। कुठाँव। उ०—(क) असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चारों ओर व्यास खगपति के झुंड झुंड वह आये। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के अंग अंग कुम्हिलाये।—सूर (शब्द०)।

कुख्यात—वि० [सं०] निंदित। बदनाम।

कुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा। बदनामी।

कुगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गति। दुर्दशा। बुरी हालत। उ०—हम सुगति छोड क्यों कुगति विचारें जन की।—साकेत, पृ० २२०

कुगहनि†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+ग्रहण] अनुचित आग्रह। हठ। जिद। उ०—महामदअंध दसकंध न करत कान मीचु बस नीच हठि कुगहनि गही है।—तुलसी (शब्द०)।

कुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] पापग्रह। खोटे ग्रह। अनिष्टकारी ग्रह [को०]।

कुघाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] दिशा। ओर। तरफ। उ०—चोहूँ कुघा तडिता तड़पैं डरपैं वनिता कहि केशव साँचै।—केशव (शब्द०)।

कुघाइⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+घात, प्रा० घाइ] दे० 'कुघात'। उ०—कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ। पलक पानि पर ओडिअत समुझि कुघाइ सुघाइ।—तुलसी ग्र०, पृ० १०६।

कुघात—संज्ञा पुं० [हिं० कु+घात] १ कुअवसर। बेमौका। २ बुरा दाँव। बुरी चाल। छल कपट। उ०—बड़ कुघात करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु। काजु सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु।—मानस, २।२२।

कुचंदन—संज्ञा पुं० [सं० कुचन्दन] १ रक्त चदन। लाल चदन। देवी चदन। २ बक्कम। पटरंग। ३ कुंकुम।

कुच¹—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। छाती।

यौ०—कुचकुंभ।—कुचतट। कुचतटी = स्तन।

कुच²—वि० १. सकुचित। २ कृपण। कजूस।

कुच³—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुक] काँचली। केंचुल। उ०—साँप कुच छोड़े विख नहीं छोड़े। उदक माँहि जैसे बक ध्यान माँडे।—दक्खिनी०, पृ० ४०।

कुच⁴Ⓟ—सर्व० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०—ना कुच खावे ना कुच पीवे।—दक्खिनी०, पृ० १६।

कुचकार—संज्ञा पुं० [देश०] भेड की एक जाति जो गिलगिल के उत्तर हजा मे पाई जाती है। यह पामीर मे भी होती है। कुलजा।

कुचकुचवा†—संज्ञा पुं० [अनु०] उल्लू।

कुचकुचाना—क्रि० स० [अनु० कुच कुच] १ लगातार कोचना। बार बार नुकीली चीज धँसाना या खोधना जैसे,—मुरब्बे के लिये आँवला कुचकुचाना। २. थोड़ा कुचलना।

कुचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों को हानि पहुँचानेवाला गुप्त प्रयत्न। षड्यत्र। साजिश।

क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।—खड़ा करना।

कुचक्री—संज्ञा पुं० [सं० कुचक्रिन्] षड्यत्र रचनेवाला। गुप्त प्रयत्न करके दूसरों को हानि पहुँचानेवाला।

कुचनाⓅ—क्रि० अ० [सं० कुञ्चन] सिकुड़ना। सिमटना (क्व०)। उ०—कँपै वर बानी डगैं उर डीठ तुचाति कुचैं सकुचैं मति बेली।—केशव (शब्द०)।

कुचफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ दाडिम। अनार [को०]। Ⓟ २. स्तन।

कुचमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का सन या पटुआ जिससे रस्से बनाए जाते हैं। २ हाथ से किसी स्त्री के स्तन मसलना।

कुचमुख—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन का अग्र भाग। कुचाग्र। चूचुक [को०]।

कुचर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुचरा, कुचरी] १ बुरे स्थानों मे घूमनेवाला। आवारा। २ नीच कर्म करनेवाला। ३ वह जो पराई निंदा करता फिरे। परनिंदक। ४ धीरे धीरे चलने वाला। रेंगनेवाला (को०)। ५ बुरी सुहबत का (को०)। ६ चोर (को०)।

कुचर²—संज्ञा पुं० निश्चल वा स्थिर नक्षत्र [को०]।

कुचरचा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+चर्चा] अपवाद। अपकथन। निंदा। उ०—राम कुचरचा करहिं सब, सीतहि लाइ कलंक। सदा अभागी लोग जग कहत सकोचु न संक।—तुलसी ग्र०, पृ० ९३।

कुचरा†—संज्ञा पुं० [हिं० कूँचा] [स्त्री० अल्पा० कूचरी] झाडू।

कुचराईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुच्चर] कुचाल। बुरी चाल। उ०—नाम रटन को करत निठुराई कूदि चलै कुचराई।—धरनी०, पृ० ५।

कुचलना—क्रि० स० [हिं० कुचना या अनु०] १ किसी चीज पर सहसा ऐसी दाब पहुँचाना जिससे वह बहुत दब और विकृत हो जाय। मसलना। २ पैरों से रौंदना। पाँव से दबाना।

सयो० क्रि०—जाना।—डालना।—देना।

मुहा०—सिर कुचलना = पराजित करना। मान ध्वंश करना। कुचल देना = शक्तिहीन कर देना।

कुचला—संज्ञा पुं० [सं० कच्चीर] १ एक प्रकार का वृक्ष जो सारे भारतवर्ष मे, पर बगाल और मदरास मे अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पान के आकार की चमकीले हरे रंग की होती हैं और फूल लबे, पतले और सफद होते हैं। फूल झड़ जाने पर इसमे नारंगी के समान लाल और पीले फल लगते हैं, जिनके भीतर पीले रंग का गूदा और बीज होता है। कच्चा फल मलावरोधक, वातवर्धक और ठढा होता है और पक्का फल भारी तथा कफ, वात, प्रमेह और रक्त के विकार को दूर करता है। इसका स्वाद कुछ मिठास लिए हुए कड़ुवा और कसैला होता होता है। इस वृक्ष की छाल और इसके बीज का उपयोग औषध मे होता है। इसकी लकड़ी मे घुन नहीं लगता और वह बहुत मजबूत और चिमड़ी होती है और गाड़ियाँ, हल, तख्ते आदि बनाने के काम मे आती है।

२. इस वृक्ष का बीज जो बहुत जहरीला होता है। कुँचला।

विशेष—यह गोल और चपटा होता है। इसके ऊपर मटमैले रंग का छिलका होता है जिसके अंदर दो दालें होती हैं। जिनके मध्य एक छोटा हरे रंग का अँखुआ रहता है। यह बहुत अधिक कड़ा होता है इसलिये इसका पीसना या तोड़ना बड़ा कठिन होता है। यह कड़ुआ गरम मादक और बहुत विषैला होता है और कफ, वात रुधिरविकार, कुष्ठ और बवासीर को दूर करता है। वमन कराने और सुगंध सुँघाने से इसका विष उतर जाता है। कुत्ते के लिये यह बहुत घातक होता है।

पर्या०—कारस्कर। विषतिंदु। कालकूटक। मर्कटतिंदु। कुपाक। किंपाक।

कुचली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुचलना] वे दाँत जो डाढ़ों और राजदंत के बीच में होते हैं। ये नोकदार और बड़े होते हैं। कीला। सीता दाँत।

कुचांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] स्तनों को बाँधने का वस्त्रखंड। स्तनोत्तरीय। चोली [को०]।

कुचाग्र—संज्ञा पुं० [सं० कुच+अग्र पुं०, हिं० कुचा अग्र (वव०)] युवती के कुच या उरोज का अगला भाग। कुचमुख। उ०—(क) उनके हृदयों को कल्पित कठोर कुचाग्र अंकुश से छेदती। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५। (ख) कालिंदी न्हावहिं न नयन अजें न अगगद। कुचाग्र परसें न नील दल कवल तोरि सद। —पृ० रा०, २।३४६।

कुचाना—क्रि० स० [हिं० कोंचना] चुभाना। गोदना। गड़ाना। उ०—अपनी अंगुली से आँख कुचा कर आप ही पूछते हो कि आँसू क्यों आए।—शकुंतला, पृ० ३०।

कुचाल—संज्ञा स्त्री० [सं०कु+हिं० चाल] १ बुरा आचरण। खराब चालचलन।

क्रि० प्र०—चलाना।

२. दुष्टता। पाजीपन। खोटाई। बदमाशी। उ०—राजा दशरथ रानी कोसिला जाये। कैकयी कुचाल करि कानन पठाए।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चाल कुचाल = खोटापन। उ०—नाहिं तो ठाकुर है अति दारुण करिहै च लु कुचाली हो। - कबीर (शब्द०)।

कुचालिया—संज्ञा पुं० [हिं० कुचाल+इया (प्रत्य०)] दे० 'कुचाली'।

कुचाली—संज्ञा पुं० [हिं० कुचाल] १ कुमार्गी। २ बुरे आचरणवाला। ३ दुष्ट। पाजी। बदमाश। उ०—सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली।—मानस २।११।

कुचाह(पु)—संज्ञा स्त्री० [कु+हिं० चाह] अमंगल। अशुभ वार्ता। उ०—(क) जातुधान तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहें।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१३। (ख) लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।—मानस, २।२२५।

कुचिक—संज्ञा पुं० [सं०] ईशान [पूर्वोत्तर] दिशा का एक प्राचीन देश, जो कदाचित् आधुनिक कूचविहार हो।

कुचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कुचित—वि० [सं०] १ सिकुड़ा हुआ। संकुचित। २ अल्प। थोड़ा [को०]।

कुचिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका या गुञ्जिका] छोटी छोटी टिकिया।

कुचियादाँत—संज्ञा पुं० [हिं० कुचना > कुचिया + दाँत] वह दाँत जिससे प्राणी अपने आहार का कुचल कुचलकर खाते हैं। डाढ़। चौभर।

कुचिल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'कुचील'। उ०—पतिव्रता मैली भली, काली कुचिल कुरूप। पतिवरता के रूप पै, वारौं कोटि सरूप।—कबीर सा० सं०, भा० १ पृ० ३०।

कुचिलना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'कुचलना'। उ०—फूल की सो माल बाल लाल जो लपटि लागी तन मन ओट पट काट कुचिलगे।—देव (शब्द०)।

कुचिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुचला'।

कुची—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका, हिं० कुची, कुची] दे० 'कुची'।

कुचील(पु)†—वि० [सं० कुचेल] मैले वस्त्रवाला। मैला कुचैला। मलिन उ०—(क) हौं कुचील मतिहीन सकल विधि तुम कृपालु जग जान।—सूर०, १।१००। (ख) कज्जल कीच कुचील किए तट अंचर अधर कपोल। थकि रहे पथिक सुयश हित ही के हस्त चरन मुख बोल।—सूर (शब्द०)।

कुचीला(पु)†—वि० [हिं० कुचील] दे० 'कुचैला'।

कुचुमार—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक प्रधान आचार्य का नाम जिनका मत वात्स्यायन के कामशास्त्र मे उद्धृत मिलता है।

कुचेल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मैला कपड़ा। मलिन वस्त्र। १. पाठा।

कुचेल[2]—वि० १ मैला कपड़ा पहननेवाला। जिसके कपड़े मैले हों। २ मैला। गंदा। मलिन।

कुचेष्ट—वि० [सं० कु+चेष्टा] बुरी चेष्टावाला। जिसकी बुरी चेष्टा हो।

कुचेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कुचेष्ट] १ बुरी चेष्टा। कुप्रयत्न। हानि पहुँचाने का यत्न। बुरी चाल। २ चेहरे का बुरा भाव।

कुचैन(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० चैन] कष्ट। दुख। व्याकुलता। उ०—सोवत जागत सपन बस रस रिस चैन कुचैन। सुरति स्याम घन की सुरति बिसरें हूँ बिसरै न।—बिहारी र०, दो० २२७।

कुचैन[2]—वि० बेचैन। व्याकुल। उ०—साजे मोहन मोह कौं मोंही करत कुचैन। कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन।—बिहारी र०, दो० ४७।

कुचैल(पु)—वि० [सं० कुचेल] फटा पुराना। मैला। गंदा। उ०—(क) पट कुचैल दुरबल द्विज देखत, ता के तंदुल खाए (हो)।—सूर० २।७। (ख) रे कुचैल तैं तेलिया अपनी मुख तो हेर सुमनन वासे तेल को काहे डारत पेर।—रा०निधि (शब्द०)।

कुचैला(पु)—वि० [सं० कुचेल] [वि० स्त्री० कुचैली] १ जिसका कपड़ा मैला हो। मैले कपड़ेवाला। २. मैला। गंदा। जैसे—मैली कुचैली धोती। मैले कुचैले कपड़े।

कुकर—संज्ञा पुं० [अं०] रसोई बनाने का एक आधुनिक यंत्र जिसपर एक साथ अनेक चीजें बनाई जाती हैं।

कुकरी¹ⓟ†-संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुट, कुक्कुटी, पुं० हिं० कुकडी (कबीर), कुकड़ा (खुसरो)] मुरगी। बनमुरगी। उ०—हारिल चरज आइ बँद परे। बनकुकरी, जलकुकरी धरे।—जायसी (शब्द०)। २ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा। अटी। कुकडी। मुड्ढा। उ०—छह मास तागा बरस दिन कुकरी। लोग बोले भल कातल बपुरी।—कबीर (शब्द०)।

कुकरी²†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ पीड़ा। दर्द। २ वह झिल्ली या सल जो घाव पर पड जाती है। पर्दा। झिल्ली। ३ खुखडी।

कुकरौंदा—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुरद्रु] दे० 'कुकरौंधा'।

कुकरौंधा- संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुरद्रु] ओषधि मे प्रयुक्त होनेवाला एक प्रकार का छोटा पौधा।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पान की पत्तियो से कुछ बड़ी होती हैं। इससे एक प्रकार की कडी गंध निकलती है। बरसात के अंत मे ठढी जगहो पर या मोरियो के किनारे यह उगता है। पहले इसकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं, पर डालियाँ निकलने पर वे क्रमश छोटी होने लगती हैं। पत्तियो और डालियो पर छोटे छोटे घने रोएँ होते हैं जिनके कारण वे बहुत मुलायम मालूम होती हैं। जब यह हाथ डेढ़ हाथ का हो जाता है, तब इसकी चोटी पर मजरी लगती है, जिसमे तुलसी की भाँति बीज निकलते हैं, जो पानी मे डालने पर इसबगोल की भाँति फूल जाते हैं। वैद्यक के अनुसार यह कडवा, चरपरा और ज्वरनाशक है तथा रक्त और कफ के दोष को दूर करता है। यह आमरक्त, सग्रहणी और रक्तातिसार मे भी उपकारी होता है।

पर्या०-कुकुंदर। कुक्करद्रु। ताम्रचूड। कुकुरमुत्ता। कुकरौंदा।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम। खोटा काम।

कुकर्मी—वि० [हिं० कुकर्म+ई (प्रत्य०)] बुरा काम करनेवाला। पापी। खोटा।

कुकस†ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कूकूल, प्रा० कुकुस, कुक्कुस=तुष, भूसी] अभक्ष्य पदार्थ। साधारण भोज्य पदार्थ। निकृष्ट पदार्थ। उ०—पूरब देश को पुरब्यालोक, पानफूलाँ तणउ तुं लहइ भोग। कण सचइ कुकस भखइ अति चतुराई राजा गढ़ ग्वालेर।—बी० रासो०, पृ० ३५।

कुकील—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़। पर्वत [को०]।

कुकुंदर—संज्ञा पुं० [सं० कुकुन्दर] १ कुकरौंधा। २ चूतड़ पर का गड्ढा।

कुकुज—संज्ञा पुं० [देश०] एक विशेष फूल या वृक्ष उ०—सेत कुकुज ककोल लो देवन सीस चढ़ाय।—दीन० ग्र०, पृ० ६६।

कुकुत्सद—संज्ञा पुं० [कुकुत्सन्द] एक बुद्ध का नाम जो गौतम से पहले हुए थे।

कुकुद¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह पिता जो अपनी कन्या को विधिवत् पूरी साजसज्जा के साथ दान करता है [को०]।

कुकुद²—संज्ञा पुं० [सं० ककुद] १. चोटी। शिखर। २. सींग। ३, राजचिह्न। ४ बैल का डिल्ला। उ०—जब तें तेरे कुचि, रुचिर, हरि हेरे भरि नैन। कनक कलस कंबुक कुमुद, नीके तनक लगें न।—स० सप्तक, पृ० २५७।

कुकुद्मत्—वि० [सं० ककुद्मत्] चोटी या शृंगवाला। डिल्लवाला। उ०—पागुर करते दृढ़ निर्द्वंद्व ककुद्मत् शैल वृषभवत्।—अतिमा, पृ० १३७।

कुकुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक राग का नाम। वि० दे० 'ककुभ'। २. एक मात्रिक छद जिसके प्रत्येक चरण मे १६ और १४ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं। छंद के पादात मे दो गुरु का होना आवश्यक है। जैसे,—गिरिधर मोहन वशीधारी, राधापति हरि बलबीरा। ब्रजवासी संतन हितकारी, शूरा हलधर रणधीरा। सुदर रामप्रताप मुरारी, जसुदा को पीछो छीरा। चक्रपाणि कह सुनो विहारी, चितवन से हर मम पीरा।

कुकुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी। वि० दे० 'ककुभा'।

कुकुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ यदुवशी क्षत्रियो की एक जाति। ये लोग अधक राजा के पुत्र कुकुर के वंशज माने जाते हैं।

पर्या०—यादव। वाशार्ह। सात्वत। कुक्कुर।

२ एक प्रदेश जहाँ कुक्कुर जाति के क्षत्रिय रहते थे। यह देश राजपूताने के अंतर्गत है। ३ एक साँप का नाम। ४ कुत्ता। ५ गँठिवन का पेड।

कुकुरआलू—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर+आलू] एक बेल जो नैपाल, भूटान, आसाम और छोटा नागपुर आदि जगलो मे होती है। इसके कंद या जड को अकाल के दिनो मे गरीब लोग खाते हैं।

कुकुरखाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर+खाँसी] वह सूखी खाँसी जिसमे कफ न गिरे। ठाँसी।

कुकुरठाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुकुरखाँसी'।

कुक्कुरदंत—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर+दंत] [वि० कुकुरदंता] वह दाँत जो किसी किसी को साधारण दाँतों के अतिरिक्त और उनसे कुछ नीचे आड़ा निकलता है तथा जिसके कारण होठ कुछ उठ जाता है।

कुकुरदंता—वि० [हिं० कुकुरदंत] जिसके मुँह मे कुकुरदंत हो।

कुकुरनिंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुकुर+निंदिया] थोड़ी सी आहट से भी टूट जानेवाली नींद। श्वाननिद्रा। उ०—नीद नहो आई, कुकुरनिंदिया की तरह दो एक झपकियाँ लीं।—काले०, पृ० ३४।

कुकुरभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुकुर+भँगरा] काला भँगरा। भँगरैया। वि० दे० 'भँगरा'।

कुकरमाछी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुकुर+माछी] एक प्रकार की मक्खी जो घोड़े, बैल और कुत्ते आदि के शरीर पर लगती और काटती है। यह बहुत दृढ़ होती है। इन मक्खियो का रंग कुछ ललाई लिए हुए भूरा होता है।

कुकुरमुत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० कुक्कुर+मूत] एक प्रकार की खुमी जिसमे से बुरी गंध निकलती है। वि० दे० 'खुमी'।

कुकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुर] १. कुकुडी । २ कुतिया । दे० 'कुक्कुर' ।

कुकुरौछी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कुक्कुर+माछी] एक प्रकार की मक्खी । दे० 'कुकुरमाछी' ।

कुकुही[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुभ, ग्रा० कुक्कुह] वनमुर्गी । उ०—मानुस तें वड पापिया, अक्षर गुरुहि न मान । वार वार वन कुकुही गर्भ धरे चौखान ।—कबीर (शब्द०) ।

कुकुही[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरे की फसल का एक रोग जिसमे बाल पर काली बुकनी सी जम जाती है और दाने नहीं पडते ।

कुकूण—संज्ञा पुं० [सं० कुकूणक] आँखों का एक रोग जो प्राय बच्चों को होता है । कुथुआ । रोहा ।

विशेष—इस रोग में आँखों की पलकों में खुजलाहट होती है और पलक खोलने और मूँदने मे कष्ट होता है । इस रोग में लडके प्राय आँख मलते हैं, तथा नाक और माथा रगडा करते हैं ।

कुकूणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकूण' ।

कुकूद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकुद[१]' ।

कुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूसी । २. भूसी की आग । ३ वह गड्ढा जिसमें लकडियाँ भरी हों । ४ कवच (को०) ।

कुकूलाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं० कुकूल+अग्नि] भूसी की आग । तुषाग्नि । तुषानल (को०) ।

कुक्कर—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुर] दे० 'कुक्कुर' उ०—निषिद्ध मास विना हमारा भोजन ही नहीं बनता, कुक्कुर हमारा जलपान है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ८५६ ।

कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गा ।

यौ०—कुक्कुटध्वनि । कुक्कुटमस्तक । कुक्कुटशिख । कुक्कुटाडक कुक्कुटभृत्य ।

२. चिनगारी । ३ लुक । ४. जटाधारी । मुर्गकेश ।

कुक्कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वनमुर्गी । कुकुही । २. निषादी माता और शूद्र पिता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति ।

कुक्कुटनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक टेढ़ी नली या यत्र जिससे भरे बरतन या स्थान से खाली बरतन या स्थान मे पानी आदि पहुँचाया जाता है ।

कुक्कुटपाद—संज्ञा पुं० [सं०] गया के पास एक पर्वत का प्राचीन नाम जिसे अब कुर्किहार कहते हैं ।

विशेष—यह पर्वत गया से आठ कोस उत्तरपूर्व की ओर है । चीनी यात्रियो के यात्राविवरण से मालूम होता है कि यह यह उस समय बौद्धों का प्रधान तीर्थस्थान था । अब भी इसके आसपास कई टूटे फूटे स्तूप और मूर्तियाँ पाई जाती हैं ।

कुक्कुटमंडप—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटमण्डप] जैन धर्म के अनुसार वह स्थान जहाँ कोई निर्वाण प्राप्त करता है (को०) ।

कुक्कुटमस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] चव्य । चाव । गजपिप्पली ।

कुक्कुटयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटयन्त्र] दे० 'कुक्कुटनाडी' ।

कुक्कुटव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो भादो की शुक्ला सप्तमी को होता है । इस दिन स्त्रियाँ सतान के लिये शिव और दुर्गा की पूजा करती हैं ।

कुक्कुटशिख—संज्ञा पुं० [सं०] कुसुम (कुसुंभ) का पेड या फूल ।

कुक्कुटांड—संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटाण्ड] दे० 'कुक्कुटाडक' (को०) ।

कुक्कुटांडक-संज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटाण्डक] सुश्रुत के अनुसार एक धान जो खाने मे कसैला और मीठा होता है । दुद्धी ।

कुक्कुटाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप (को०) ।

कुक्कुटासन—संज्ञा पुं० [सं०] योगसाधना मे एक आसनविशेष (को०) ।

कुक्कुटाहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प (को०) ।

कुक्कुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुक्कुटी' ।

कुक्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुर्गी । २. दभचर्या । पाखड । ३. सेमल का पेड़ । ४. एक प्रकार का कीडा । छिपकली या बह्मनी ।

कुक्कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गा । २ वनमुर्गा । ३ वार्निश (को०) ।

कुक्कुर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुक्कुरी] १. कुत्ता । श्वान । २. आंध्र वंश का एक यदुवंशी राजा । ३ यदुवंशियो की एक शाखा । कुकुर । एक मुनि का नाम । ५. एक वनस्पति । ग्रंथिपर्णी । गांडर (को०) ।

कुक्कुर[२]—वि० गाँठदार । गँठीला ।

कुक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पेट । उदर ।

कुक्षि[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पेट ।

यौ०—कुक्षिंभरि = (१) पेटू । (२) स्वार्थी ।

२. कोख ।

यौ०—कुक्षिगत = गर्भ या कोख मे आगत । गर्भस्थ । कुक्षिज = पुत्र । कुक्षिस्थ = कुक्षिगत ।

३. किसी चीज के बीच का भाग । ४. गुहा । ५. सतति । ६. गर्त । गड्ढा (को०) । ७ घाटी (को०) । ८. खाड़ी (को०) ।

कुक्षि[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत के अनुसार एक दानव का नाम २. बालि नामक दानव राजा का नाम । ३ रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु का पुत्र जो विकुक्षि का पिता था । ४. बलि का दूसरा नाम । ५. प्रियव्रत का दूसरा नाम । ६ एक प्राचीन देश ।

कुक्षिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहण के सात प्रकार के मोक्ष के भेदो मे से एक ।

विशेष—इसके दो भेद होते हैं । 'दक्षिण कुक्षिभेद' और 'वाम कुक्षिभेद' । जब मोक्ष दाहिनी ओर से होता है, तब उसे दक्षिण कुक्षिभेद और जब बाईं ओर से होता है, तब उसे वाम कुक्षिभेद कहते हैं ।

कुक्षिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] पेट की पीड़ा । उदरशूल (को०) ।

कुखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा । अटी । कुकड़ी । उ०—पिउनी पाँच पचीस रग की, कुखड़ी नाम नजन हो ।—कबीर ग्र०, पृ० ७६ ।

कुंदरू—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डुर = करेला] एक बेल जिसमे चार पाँच अंगुल लंबे फल लगते हैं और जिनकी तरकारी होती है।

विशेष—ये फल पकने पर बहुत लाल होते हैं, इसी से कवि लोग ओठों की उपमा इनसे देते हैं। कुंदरू की पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और पचकोनी होती हैं। इसमें सफेद फूल लगते हैं। वैद्यक में कुंदरू का फल शीतल, मलस्तंभक, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला तथा श्वास, दमा, वात और सूजन को दूर करनेवाला माना गया है। इसकी जड़ प्रमेहनाशक और धातुवर्धक मानी गई है। बरई प्रायः अपने पान के भीटों पर परवल की तरह इसकी बेल भी चढ़ाते हैं। कुंदरू के विषय में यह भी प्रवाद चला आता है कि यह बुद्धिनाशक होता है।

पर्या०—बिंबी। बिंबा। रक्तफला। तुंडी। ओष्ठोपमफला। पीलुपर्णी। कर्मकरी। गोल्ही। छर्दिनी।

कुंदला—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का खेमा या तंबू।

कुंदेरना—क्रि० स० [सं० कुंदलन = खोदना या सं० कुन्दकरण = छीलना खुरचना] खुरचना। छीलना। खरोचना। खूड़हेरना।

कुंदेरा—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दकर = खरादनेवाला अथवा हिं० कुंदरना + एरा (प्रत्य०) तुलनीय फा० कुंदहकार] [स्त्री० कुंदेरी] खरादनेवाला। खरादी। कुनेरा। उ०—कनक दंड दुइ भुजा कलाई। जानहु फेर कुंदेरे भाई।—जायसी (शब्द०)।

कुंभड़ा†—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] दे० 'कुम्हड़ा'।

कुंभार—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] कुम्हार।

कुंभिलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कुम्हलाना'।

कुंमर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] दे० 'कुंवर'। उ०—फिर मोसो मैया फिर कहिहैं, कुंमर कछुक तुतराई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३३।

कुँवर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, प्रा० कुंवार] [स्त्री० कुँवरि] १ लड़का। पुत्र। बेटा। २ राजपुत्र। राजा का लड़का।

कुँवराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कोमल] मृदुता। १ कोमलता। उ०—हेम कँवल तन सुंदरताई। फूल सरीख गात कुंवराई।—चित्रा०, पृ० २११।

कुँवरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] १ कुमारी। २. राजकन्या। उ०—इक दिन राधे कुँवरि, स्याम घर खेलनि आई।—नंद० ग्रं०, पृ० १९४।

कुँवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी] दे० 'कुंवरि'।

कुँवरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० कुंवर + एटा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुँवरेटी] बालक। छोटा लड़का। बच्चा।

कुँवाँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप] दे० 'कुआँ'।

कुँवारा—वि० [सं० कुमार, प्रा० कुंवार] [स्त्री० कुंवारी] जिसका ब्याह न हुआ हो। बिन ब्याहा। जैसे,—वह अभी कुँवारा है। उ०—सो वाको एक बेटी कुँवारी हती। सो कन्या के विवाह पर रुपैया को चहिए हतो।—दो सौ बावन०, पृ० ३७।

कुंकुम(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] केशर। जाफरान। उ०—[illegible] परिमल लिए रहै। जावँ अंग रहन जनु चहै।—जायसी (शब्द०)।

कुँहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] कुम्हड़ा। उ०—कद्दू कुँहड़े पीले, खरबूजे मटमैले।—आराधना, पृ० ७५।

कु[1]—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो संज्ञा के पहले लगकर विशेषण का काम देता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है, उसके अर्थ में 'नीच', 'कुत्सित' आदिका भाव आ जाता है। जैसे—संग कुसंग। पुत्र कुपुत्र। टेव, कुटेव आदि। पर जिन शब्दों के आदि में स्वर होता है उनमें लगने से पहले इसका रूप 'कद्' (कद्) हो जाता है। जैसे—कदन्न, कदाचार, कदुष्ण। हिंदी में यह नियम नहीं है, जैसे कुअन्न, कुअसर आदि शब्दों में। इसके रूप 'कव' का भी मिलते हैं। जैसे,—किंप्रभु।

कु[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

यौ०—कुज।

२ त्रिकोण या त्रिभुज का आधार (को०)।

कुअटा†—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव + हिं० टा (प्रत्य०)] कुआँ। उ०—कुअटा एक पंच पनिहारी टटी, लेजुरि भरैं मतिहारी।—कबीर सा० सं०, भा०, २, पृ० ७।

कुअन्न—संज्ञा पुं० [सं०, हिं० कु (खराब) + अन्न =] रद्दी अन्न। मोटा अनाज। रसहीन अन्न। उ०—अब अढ़ाई तीन सेर का मिलता है वह भी अन्न नहीं, कुअन्न।—अभिशप्त, पृ० २३।

कुअवसर—संज्ञा पुं० [हिं०] अनुपयुक्त समय या वातावरण। उ०—जानि कुअवसर प्रीति दुराई।—मानस १। ६८।

कुआँ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कुव] पानी निकालने के लिए पृथ्वी मे खोदा हुआ एक गहरा गड्ढा। कूप।

विशेष—यह भीतर पानी की तह तक चला जाता है। इसके किनारे को लोग ईंट या पत्थर से बाँधते हैं। इसके घेरे को जो पहले खोदा जाता है, भगाड़ या ढाल कहते। भगाड़ खोदे जाने पर उसमें लकड़ी के पहिए के आकार का चक्र रखते हैं जिसे निवार या जमवट कहते हैं। इसी निवार के ऊपर ईंटों की जोड़ी होती है जिसे कोठी कहते हैं। किसी किसी कोठी में दो निवार लगाए जाते हैं। दूसरा निवार पहले निवार के पाँच छ हाथ ऊपर रहता है और दोनों के बीच में पतली लकड़ियों की पटरियाँ लगाई जाती हैं जिन्हे कँची कहते हैं। कोठी तैयार हो जाने पर उसके बीच की मिट्टी निकाली जाती है जिससे कोठी नीचे धँसती जाती है और कुआँ गहरा होता जाता है। इस क्रिया को कोठी गलाना कहते हैं। इस प्रकार कई बार कोठी गलाने पर भीतर पानी का सोत मिलता है। पतले स्रोत को 'सोती' और मोटे स्रोत को 'भूमला' कहते हैं। कुएँ के ऊपर मुँह पर जो चबूतरा बनाया जाता है, वह 'जगत' कहलाता है कुएँ के मुँह पर के चौकठे को 'जाल' कहते हैं।

पर्या०—कूप। अधु। अहि। उदपान। अवट। कोट्टार। कात। कर्त। वञ्च। काट। खात। अवत। क्रिवि। सूद। उत्स। ऋष्यदात्। कारोतरात्। कुशय। केवट

मुहा०—कुआँ खोदना=(१) दूसरे की बुराई का सामान करना। दूसरे का नाश करने या उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना। जैसे—जो दूसरे के लिये कुआँ खोदता है, वह आप गिरता है। (२) जीविका के लिये परिश्रम करना। जैसे—उन्हें तो रोज कुआँ खोदना और खाना है। कुआँ चलाना या जोतना=कुएँ से खेत सींचने के लिये पानी निकालना। कुआँ या कुएँ झाँकना=यत्न में इधर उधर दौड़ना। खोज में चारों ओर मारे मारे फिरना। कोशिश में हैरान घूमना। जैसे,—इसके लिये हमें कितने कुएँ झाँकने पड़े। कुआँ या कुएँ झँकवाना, झँकाना=खोज में हैरान करना। यत्न में इधर उधर घुमाना। जैसे,—इस वस्तु ने हमें कितने कुएँ झँकवाए। (लोगों का विश्वास है कि कुत्ते के काटने का विष सात कुएँ झाँकने से उतर जाता है। इसी बात से यह मुहाविरा लिया गया है।) कुएँ में गिरना=आपत्ति में फँसना। विपत्ति में पड़ना। जैसे,—जो जान बूझ कर कुएँ में गिरता है, उसे कोई कहाँ तक बचाएगा। कुएँ की मिट्टी कुएँ में लगना=जहाँ की आमदनी हो वहीं खर्च होना। कुएँ में डाल देना=जन्म नष्ट करना। सत्यानाश करना। जैसे,—ऐसी जगह संबंध करके तुमने लड़की कुएँ में डाल दी। कुएँ में बाँस डालना=बहुत तलाश करना। बहुत ढूँढ़ना। बहुत छानबीन करना। जैसे,—तुम्हारे लिये कुओं में बाँस डाले गए, इतनी देर कहाँ थे। कुएँ में बाँस पड़ना=बहुत खोज होना। कुएँ में भाँग पड़ना=मंडली की मंडली का उन्मत्त होना। सबकी बुद्धि मारी जाना। जैसे,—यहाँ तो कुएँ में भाँग पड़ी है, कोई कुछ सुनता ही नहीं है कुएँ में बोलना या कुएँ में से बोलना=इतने धीरे से बोलना कि सुनाई न पड़े। कुएँ पर से प्यासे आना=ऐसे स्थान पर पहुँचकर भी निराश लौटना जहाँ कार्य सिद्धि की पूरी आशा हो।

यौ०—अंधा कुआँ=वह अँधेरा कुआँ जिसमें पानी न हो और जो घासपात से ढका हो।

कुआडा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+हिं० आड़ी] संगीत में वह लय जिसमें बराबर और ड्योढ़ी (आड़ी) दोनों लयें पाई जायँ।

कुआर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, प्रा० कुंवार] [वि० कुआरा] हिंदुस्तानी सातवाँ महीना जो भादों के बाद और कातिक के पहले होता है। आसिन। आश्विन। असोज।

विशेष—शरद ऋतु का प्रारंभ इसी महीने से माना जाता है। इस महीने के कृष्णपक्ष को पितृपक्ष और शुक्लपक्ष को देवपक्ष कहते हैं। सूर्य इस महीने में कन्या राशि का होता है और कन्या की संक्रांति प्रायः इसी महीने में पड़ती है।

कुआरा—वि० [हिं० कुआर] [वि० स्त्री० कुआरी] कुआर का। जो कुआर में हो। उ०—माघ पूस की बादरी, और कुआरा घाम। ई तीनों परितज के, करें पराया काम।—(शब्द०)।

कुआरी¹—वि० [देश०] क्वार मास में होनेवाला। जैसे,—कुआरी फसल, कुआरी धान।

कुआरी²—संज्ञा पुं० क्वार में होनेवाला मोटे किस्म का एक धान।

कुँइदरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुआँ+दर=जगह] वह गड्ढा जो कुएँ के दब या बैठ जाने से उस स्थान पर हो जाता है।

कुइयाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुआँ] छोटा कुआँ।

यौ०—कठकुइयाँ।

कुइला¹—संज्ञा पुं० [सं० कोकिल, देश० कोइला (देशी० २।४८), हिं० कोयला] कोयला। उ०—ढाढी एक सँदेसड़उ, प्रीतम कहिया जाइ। सा धण वलि कुइला भई भसम ढँढोलिसि आइ।—ढोला०, दू० ११२।

कुई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुँई'।

कुई²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली मनुष्य जाति। उ०—महाराष्ट्र, उड़ीसा और चेदि, कोशल के सीमांत जंगलों में रहनेवाले गोंड तथा कुई लोगों की बोलियों के साथ सीधा और स्पष्ट नाता है।—भारत० नि०, पृ० २३९।

कुकटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी=सेमल] कपास की एक जाति जिसकी रूई ललाई लिए सफेद रंग की होती है। यह गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों में बोई जाती है।

कुकठ—वि० [सं० कुकाष्ठ, प्रा० कु+कठ्ठ=शुष्क, अथवा सं० कुकथ्य] शुष्कहृदय। अरसिक। जो (प्राणी) कहने योग्य न हो। उ०—उनिगणाँ गुण वरणवाँ। कुकठ कुमाणसाँ निण कहइ रास।—बी० रासो, पृ० २।

कुकड़ना—क्रि० अ० [हिं० सिकुड़ना] सिकुड़कर रह जाना। संकुचित हो जाना। उ०—कोढिनि सी कुकरे कर कंजनि केशव श्वेत सबै तन तातो।—केशव (शब्द०)।

कुकड़बेल—संज्ञा स्त्री० [सं० कु+कटुवल्ली] बंडाल।

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] १ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा, जो कातकर तकले पर से उतारा जाता है। मुट्ठा। अंटी। २ मदार का डोडा या फल। ३. दे० 'खुखड़ी'। ४ मुरगी। उ०—कुकड़ी मारे बकरी मारे, हक हक करि बोलै। सबै जीव साई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै।—कबीर ग्रं०,पृ० १०८।

कुकनू—संज्ञा पुं० [यू०] एक पक्षी, जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह अकेला नर ही पैदा होता है। उ०—कुकनू पंख जइस सर साजा। तस सर साजि जरै चह राजा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—यह गाने में बहुत निपुण समझा जाता है। कहते हैं, इसकी चोंच में बहुत से छिद्र होते हैं, जिनमें से तरह तरह के स्वर निकलते हैं। इसका गान ऐसा विलक्षण होता है कि उसमें से आग निकलती है। जब यह पूर्ण युवा होता है, तब बसंत ऋतु में लकड़ियाँ संग्रह कर उसपर बैठ कर गाता है। इसके गाने से आग निकलती है और यह जलकर भस्म हो जाता है। जब बरसात आती है, तब पानी पड़ने से इसकी राख में से अंडा निकल आता है जिससे कुछ दिनों में एक दूसरा पक्षी निकलता है। इसे फारसी में 'आतशजन' कहते हैं।

कुकवि—संज्ञा पुं० [सं० कु+कवि] बुरा कवि। कम प्रतिभावाला कवि। उ०—सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।—मानस, १।१०।

कुकभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य [को०]।

कए पुछलए बुरि ससार, तर सूते गढ़ि फाट कुंभार।—विद्यापति, पृ० ४३४।

कुंभिक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिक] १ एक प्रकार का नपुंसक।

कुंभिका—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिका] १ कुंभी। जलकुंभी। २ वेश्या। ३. कायफल। ४ आँख का एक रोग जिसमे पलकों के किनारे आँखो की कोरो मे छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं। वैद्यक के अनुसार यह रोग त्रिदोष से उत्पन्न होता है। इसे बिलनी भी कहते हैं। ५. परवल की लता। ६. एक रोग जिसमे लिंग पर जामुन के बीज की तरह फुड़िया होती है। यह रोग उन लोगो को हो जाता है जो लिंग बढ़ाने का इलाज करते हैं। शूक रोग। ७ छोटा घड़ा। गगरी (को०)।

कुंभिनी संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भिनी] १ पृथ्वी। २ जमालगोटा का वृक्ष।

यौ०—कुंभिनीफल कुंभिनीबीज = जमालगोटा।

कुंभिर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भी] मछली फँसाने का काँटा। बंसी। उ०—बंसी कुंभिर मीढ़ा, मच्छघातिनती नाम। बेसरसो उलझी जु लट, मानो बंसी काम।—नंद० ग्रं०, पृ० ८२।

कुंभिल, कुंभिलक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिल, कुम्भिलक] १ वह चोर जो सेंध लगाता हो। सेंधिया चोर। २ वह सतान जो अपूर्ण वयस् में अथवा अपूर्ण गर्भ से उत्पन्न हो। ३ साला। की मछली। प्रकार ४ एक ५ साहित्यक चोरी करनेवाला। साहित्यिक चोर (को०)।

कुंभी¹—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भिन्] हाथी। २ मगर। ३ गुग्गुल या वह पेड़ जिससे गुग्गुल निकलता है। ४ एक जहरीला कीड़ा। ५ पारस्कर के अनुसार एक राक्षस जो बच्चो को क्लेश देता है। ६ एक प्रकार की मछली। ७ आठ की संख्या (को०)।

कुंभी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] १ छोटा घड़ा। २ कायफल का पेड। ३ दंती का पेड़। दंती। ४ पाँडर का पेड। ५ तरबूज। ६ बंसी। ७. एक पेड।

विशेष—इसकी लकड़ी इमारते और आरायसी चीजें बनाने मे काम आती हैं। इसकी छाल से चमड़ा सिझाते और रस्सी बटते हैं, और फल, जिसे कुम्भी (खुम्भी) कहते हैं, पंजाब के लोग खुद खाते और पशुओ के खिलाते हैं।

८ एक वनस्पति जो जलाशयो मे पानी के ऊपर फैलती है। जलकुंभी।

विशेष—इसके पत्ते चार पाँच अंगुल लंबे और उतने ही चौड़े तथा मोटे दल के होते हैं। इसकी जड भूमि मे नहीं होती, बल्कि पानी पर सतह के नीचे होती है। यह फूलती फलती नहीं दिखाई देती, पर इसके बीज अवश्य होते हैं। इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं जिनकी पत्तियाँ भिन्न भिन्न आकार की होती हैं।

९ एक नरक का नाम। कुंभीपाक नरक। १० सलई का पेड। ११ गनियारी या अरणी का पेड। १२. तल। आधार। उ०—उन स्तंभो की कुंभियों (आधार) पर शिल्पियो ने एक एक करके 'अ' को छोड़कर 'अ' से 'ट' तक के अक्षर खोद डाले हैं।—मा० प्रा० लि०, पृ० ४६।

कुंभीक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीक] १ एक प्रकार का नपुंसक। इसे गुदयोनि भी कहते हैं। कुंभिक। २ कुंभी। जलकुंभी। पुन्नाग वृक्ष।

कुंभीका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भीका] १ कुंभी। जलकुंभी। २ आँख का एक रोग। कुंभिका। बिलनी। ३ एक प्रकार का रोग जो व्यभिचारियों और लिंग बढ़ाने का औषध करनेवालो को हो जाता है। कुंभिका। शूक रोग।

कुंभीधान्य—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीधान्य] घडा या मटका भर अन्न, जिसे कोई गृहस्थ परिवार छह दिन, या किसी किसी के मत से साल भर तक खा सके।

विशेष—मनु, याज्ञवल्क्य आदि संहिताकारो के मत से प्रत्येक व्यक्ति को अपने कुटुंब के पालन के लिये कुछ निश्चित दिनो के वास्ते अन्न सग्रह कर रखना चाहिए। इस प्रकार रखे हुए अन्न को 'कुंभीधान्य' भी कहते हैं।

कुंभीधान्यक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीधान्यक] घडा भर अन्न रखनेवाला। उतना अन्न रखनेवाला जितना कोई गृहस्थ छह दिन या किसी के मत से सालभर खा सके।

कुंभीनस—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीनस] [स्त्री० कुम्भीनसा] १ क्रूर साँप। २. एक प्रकार का जहरीला कीडा। ३ रावण।

कुंभीनसि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीनसि] शंबर नाम का असुर।

कुंभीनसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भीनसी] लवणासुर की माता जो सुमाली राक्षस की चार कन्याओ मे से एक थी और कैतुमती से उत्पन्न हुई थी।

कुंभीपाक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीपाक] १ पुराणानुसार एक नरक जिसमे मास खाने के लिये पशु पक्षी मारनेवाले लोग खौलते हुए तेल मे डाले जाते हैं। २. एक प्रकार का सन्निपात जिसमे नाक के रास्ते काला खून जाता और सिर घूमाता है। ३. हँडिका मे पकाई हुई वस्तु (को०)।

कुंभीपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भीपाकी] कायफल [को०]।

कुंभीपुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीपुर] हस्तिनापुर। पुरानी दिल्ली।

कुंभीमद—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीमद] हाथी के मस्तक से चूनेवाला मदजल [को०]।

कुंभीमुख—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीमुख] चरक के अनुसार एक प्रकार का फोडा।

कुंभीर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीर] १ नक्र या नाक नामक जतु जो जल मे होता है। २ एक प्रकार का छोटा कीडा। ३ एक यक्ष।

कुंभीरक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीरक] चोर [को०]।

कुंभीरासन—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीरासन] योग मे एक प्रकार का आसन, जिसमे भूमि पर चित लेटकर एक पैर को दूसरे पैर पर और दोनो हाथो को माथे पर रख लेते हैं।

कुंभील, कुंभीलक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भील कुम्भीलक] १ तस्कर। चोर। २ नक्र। घडियाल [को०]।

कुंभीवल्क—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भीवल्क] कायफर [को०]।

कुंभेर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भेर] खमारी। खभारि। गभारि।

कुंभोदर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भोदर] महादेव के एक गण का नाम।

रघुवंश के अनुसार इसी ने सिंह बनकर वशिष्ठ की गौ नंदिनी पर आक्रमण किया था।

कुंभोलूक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भोलूक] एक प्रकार का उल्लू जो बहुत बड़ा होता है।

कुंअर—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] [स्त्री० कुंअरि] १. लड़का। पुत्र। बालक।

यौ०—राजकुंअर।

२ राजपुत्र। राजकुमार। उ०—देखन बाग कुंअर दोउ आए। वय किशोर सब भाँति सुहाए।—तुलसी (शब्द०)।

कुंअरपुरिया—संज्ञा पुं० [हिं० कुंअरपुर] एक प्रकार की हलदी जो कटक के पास कुंअरपुर राज्य में पैदा होती है।

विशेष—यह प्रति पाँचवें वर्ष खेत से खोदी जाती है। इसकी जड़ या पत्ती लंबी होती है। इसके खेत में भैंस के गोबर की खाद दी जाती है।

कुंअरप्पन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] कुमारपन। कौमारावस्था। कौमार्य। उ०—कुंअरप्पन प्रथिराज तपै तेजह सु महावर। सुक्कल बीजु दिन हुनें कला दिन चढ़त कलाकर।—पृ० रा०,५।२।

कुंअरविरास—संज्ञा पुं० [हिं० कुंअर+विलास] कुंअर विलास। एक प्रकार का धान या चावल। उ०—घी खाडों औ कुंअर-विरासू। रामदास आवै अति बासू।—जायसी (शब्द०)।

कुंअरि, कुंअरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी, प्रा० कुंआरी] १ कुमारी। कन्या। २ राजकुमारी। उ०—(क) कुंअरि कुंआरि रहौ का करऊँ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कुंअरी पिंगल रायनी, मारुवणी तस नाम। ढोला०, दू० ६०।

कुंअरेटा(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० कुंअर+एटा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुंअरेटी] लड़का। बालक। उ०—लालन माल जरी पट लाल सखी संग बाल वधू कुंअरेटी।—देव (शब्द०)।

कुंअल(पु)‡ संज्ञा पुं० [सं० कुवलय, प्रा० कुवलअ] दे० 'कमल'। उ०—जब सुपतल करि कुंअल, कीणी लव प्रलव। ढोला एही मारुइ जाणि क कणयर कंब।—ढोला०, दू० ५७३।

कुंआ—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूव, कूय] [स्त्री० अल्पा० कुंइयाँ] कुआँ। कूप।

कुंआरा—वि० [सं० कुमारक] [स्त्री० कुंआरी] जिसका व्याह न हुआ हो। बिन ब्याहा। उ०—सुकृत जाइ जो पन परिहरऊँ। कुंअरि कुंआरि रहौं का करऊँ।—तुलसी (शब्द०)।

कुंइयाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० कूपिका, प्र० कूविया हिं० कुंआ] छोटा कुंआ। उ०—गगन मंडल बिच उर्धमुख कुइयाँ।—कबीर श०, पृ० ५७।

यौ०—कठकुइयाँ = वह छोटा कुआँ जो काठ से बँधा हुआ हो।

कुंई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी, प्रा० कुउई] कुमुदनी। उ०—कानों में गुड़हल खोंस धवल, या कुंई, कनेर, लोध्र, पाटल।—ग्राम्या पृ० १८।

कुंकुं‡—संज्ञा पुं० [हिं० कुंमकुम] दे० 'कुंकुम उ०—मोती का आसा किया कुंकुं चंदन तिलक सिंदूर।—बी० रासो, पृ० २०।

कुंजड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कुंज+ड़ा (प्रत्य०) या देश०] [स्त्री० कुंजड़ी, कुंजड़िन] एक जाति जो तरकारी बोती और बेचती है। इस जाति के लोग प्रायः अब मुसलमान हो गए हैं।

मुहा०—कुंजड़े कसाई = नीच जाति के लोग। नीची श्रेणी के मुसलमान। कुंजड़े का गल्ला = (१) वह गल्ला, राशि या वस्तु जिसके लेनदेन का लेखा न लिखा जाता हो। (२) बे सिर पैर का लेखा। गड़बड़ हिसाब। (३) गोलमाल। गड़बड़। कुंजड़े की दूकान = वह स्थान जहाँ सब छोटे बड़े जा सकें या जहाँ भीड़भाड़ और शोरगुल हो। जैसे—क्या तुम लोगों ने कचहरी को कुंजड़े की दूकान समझ लिया है?

कुंजड़ई, कंजड़ाई(पु)—वि० [हिं० कुंजड़ा+ई (प्रत्य०)] कुंजड़ापन उ०—गुरु शब्द का बंगन करि लै तब बनिहै कुंजड़ाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८।

कुंड—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] १. खेत में वह गहरी रेखा जो हल जोतने से पड़ जाती है। दे० 'कूंड़'।

कुंडपुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड+पुजना = भरना] किसानों का एक उत्सव जो उस दिन किया जाता है जिस दिन रबी की बोआई समाप्त होती है। कुंडमुदनी।

कुंडबुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंड+बजना = भरना] कुंडपुजी। कुंडमुदनी।

कुंडमुदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड+मूंदना] कुंडपुजी।

कुंडरा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] [स्त्री० अल्पा० कुंडरी] १ मंडलाकार खींची हुई रेखा (क) जिसके भीतर खड़े होकर लोग शपथ करते थे। (ख) जिसके भीतर किसी वस्तु को रखकर उसे मंत्र आदि से रक्षित करते थे, और (ग) जिसके भीतर भोजन रखकर उसे छूत से बचाते हैं। २ कई फेरे देकर मंडलाकार लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा जिसे सिर के ऊपर रखकर बोझ या घड़ा आदि उठाते हैं। इडुवा। गेंडुरी।

कुंडरा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड+हिं० रा० (प्रत्य०) कुंडा। मटका।

कुंडरा²—संज्ञा पुं० [सं०कुण्डल] इंडुरी। गेंडुरी।

कुंडाला—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड+हिं० ला (प्रत्य०)] मिट्टी की कूंडी या पथरी जिसमें कालाबत्तू बनानेवाले टिकुरियों पर कलाबत्तू लपेटकर रखे रहते हैं।

कुंडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड+हिं० इया (प्रत्य०)] १. एक चौखूंटा गड्ढा जो शोरे के कारखानों में होता है। कोठी।

विशेष—यह गड्ढा दो हाथ चौड़ा, पाँच हाथ लंबा और हाथ भर गहरा होता है। शोरा जमाने के लिये इसमें नोनी मिट्टी पानी में मिलाकर डाली जाती है।

२ मिट्टी का बरतन जिसमें बादले की पिटाई, करनेवाले पीटने के लिये बादला रखते हैं। कूंडी।

कुंढ़वा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड+हिं० वा (प्रत्य)] मिट्टी का कूजा। कुल्हिया। पुरवा।

कुंण—सर्व [सं० क] कौन। उ०—करैं कुंण तेज परमाण काया।—रघु० रू०, पृ० २६।

कुंदना—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदन = सोना] बाजरे का एक रोग जिससें डंठल लाल हो जाते है, बाल में काली काली धूल जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

पिछला लकड़ी का तिकोना भाग जिसमे घोडा और नली आदि जडी रहती है और जो बदूक चलानेवाले की ओर रहता है।

मुहा०- कुंदा चढ़ाना = बदूक की नली मे लकडी जड़ना।

४ वह लकडी जिसमे अपराधी के पैर ठोके जाते हैं। काठ ५ दस्ता। मूठ। बेंट। ६. लकडी की बड़ी मोगरी जिससे कपडो की कुंदी की जाती है।

कुंदा२—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, हिं० कधा] १ चिडिया का पर। डैना।

मुहा०—कुंदे बाँध, जोड़ या तौलकर उतरना = पक्षी का अपने दोनो पर समेटकर नीचे आना।

२ कुश्ती का एक पेंच। दे० 'कुंडा'। ३ कुश्ती मे एक प्रकार का आघात, जो प्रतिद्वद्वी को नीचे लाकर उसकी गरदन पर अपनी कलाई कोहनी के बीच की हड्डी से रगडते हुए किया जाता है। रद्दा। घस्सा।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

कुंदा३—सज्ञा पुं० [सं० फर्ण, हिं० कन्ना] १ पतग या गुड्डी के वे दोनो कोने जिनके बीच मे कमानी लगी रहती है २ पायजामे की वह तिकोनी कली जो दोनो पायचो के ऊपर मध्य मे रहती है। कली।

क्रि०प्र०—लगाना।

कुंदा४—सज्ञा पुं० [सं० कुण्ड = कड़ाही] भुना हुआ दूध। खोवा। मावा।

मुहा०—कुंदा कराना या भूनना = दूध से खोवा तैयार करना।

कुंदा५— वि० [फा०,कुन्द] दे० 'कुन्द२'। उ०—कुल घों में दिसता चदा है। औं पाया नैन सो कुदा है।—दक्खिनी०, पृ० ३२३।

कुंदा६—सज्ञा पुं० [हिं० कुंडा] दरवाजे की साँकल या कोढा। उ०—जरमन का प्रसिद्ध विद्वान् लेसिंग एक बार बहुत रात गए अपने घर आया और कुंदा खटखटाने लगा।—श्रीनिवास ग्र ०, पृ० १६३।

कुंदी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कुंदा] १ धुले या रँगे हुए कपडो की तह करके उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करने तथा तह जमाने के लिये उसे लकड़ी की मोगरी से कूटने की क्रिया।

विशेष—इस देश मे इस्तरी की प्रथा का प्रचार होने से पहले धोबी इसी का व्यवहार करते थे। आजकल भी कमखाब आदि पर कुंदी ही की जाती है।

२. खूब मारना। ठोंकना।पीटना।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—कुंदीगर।

कुंदीगर—सज्ञा पुं० [हिं० कुंदी + गर (प्रत्य०)] कुंदी करनेवाला व्यक्ति।

कुंदु—सज्ञा पुं० [सं० कुन्दु] मूस। चूहा[को०]।

कुंदुर—सज्ञा पुं० [सं०,अ०]१ एक प्रकार का सुगंधित पीला गोद।

विशेष—यह एक प्रकार के कँटीले पौधे से निकलता है जो दो हाथ ऊँचा होता है और अरब के यमन आदि पथरीले स्थानों मे मिलता है। इसके फल और बीज कडुए होते है। जब सूर्य कर्क राशि मे होता है तब गोंद इकट्ठा किया जाता है। हकीम लोग इसे पुष्ट, हृद्य और रक्तस्राव को रोकनेवाला मानते हैं।

२ एक प्रकार का सुगधित गोद जो सलई के पेड़ से निकलता है। वैद्यक मे यह रुचिकारक, स्वेदनाशक त्वचा को हितकारी और जूँ को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—सौराष्ट्री। पालकी। तीक्ष्णगध। कुंदरु। भीषण। सुगध। बिडालाक्ष। खपुर। नागवधूप्रिय। शल्लकी निर्यास।

कुंभी—सज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भी] १. काय फल। २.कुंभी जलकुंभी। ३ कुंभ नामक पेड ४ एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। भरजम।

विशेष—यह बहुत जल्दी बढ़ता और प्राय सारे भारत मे पाया जाता है। इसकी छाल से चमडा सिझाया जाता है और रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं कहीं अकाल के दिनो म इसकी छाल आटे की तरह पीसकर खाई भी जाती है। लकड़ी से खेती के औजार छाजन की बल्लियाँ गाड़ियों के धुरे और बदूक के कुंदे बनाए जाते हैं। यह पानी मे जल्दी सड़ता नहीं। जगली सूअर इसकी छाल बहुत मजे में खाते हैं, इसलिए शिकारी लोग उनका शिकार करने के लिये प्राय इसका उपयोग करते हैं।

कुंभ—सज्ञा पुं० [सं० कुम्भ] १. मिट्टी का घडा। घट। कलश। उ०—गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है गढ़ गढ़ काढै खोट। अतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।—कबीर सा०, स०, पृ० ३।

यौ०—कुंभज। कुंभकर्ण। कुंभकार।

२ हाथीके सिर के दोनो ओर ऊपर उभड़े हुए भाग।उ०—मत्त नाग तम कुंभ विदारी। ससि केसरी गगन बनचारी। तुलसी (शब्द०)। ३. एक राशि का नाम जो दसवीं मानी जाती है।

विशेष—यह धनिष्टा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध और शतभिष तथा पूर्व भाद्रपद के तृतीय चरण तक उदय रहती है। इसका उदय-काल ३दड ५८ पल है। यह राशि शीर्षोदय है।

४ एक मान जो दो द्रोण या ६४ सेर का होता है। इसे सूर्प भी कहते हैं। किसी किसी के मत से बीस द्रोण का भी एक कुंभ होता है। उ०—दो द्रोणो का शूर्प और कुंभ कहा है।—शाङ्ग० स०, पृ० ६। ५ योगशास्त्र के अनुसार प्राणायाम के तीन भागो मे से एक। कुंभक। ६ एक पर्व का नाम जो प्रति १२ वें वर्ष लगता है। इस अवसर पर हरद्वार, प्रयाग नासिक आदि मे बड़ा मेला लगता है। यह पर्व इसलिए कुंभ कहलाता है कि जब सूर्य कुंभराशि का होता है तभी यह पड़ता है। ७ मिट्टी आदि का वह घड़ा जो देवालयों के शिखर पर तथा घरो की मुड़ेरी पर शोभा के लिय लगाया जाता है। कलश ८.गुग्गुल ९ वह पुरुष जिसने वेश्या रख ली हो। वेश्यापति।

यौ०—कुंभदासी।

१०. जैन मतानुसार वर्तमान अवसर्पिणी के १९ वें अर्हत का नाम। ११. बौद्धो के अनुसार बुद्धदेव के गत चौबीस जन्मों

में से एक जन्म का नाम। १२. एक राग का नाम जो श्री राग का आठवाँ पुत्र माना जाता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है और सन्ध्या समय रात के पहले पहर में गाया जाता है। संगीत दामोदर में इसे सरस्वती और धनाश्री रागिनियों के योग से बना हुआ संकर राग माना है।

१३. एक दैत्य का नाम। यह एक दानव था और प्रह्लाद का पुत्र था। १४. एक राक्षस का नाम जो कुंभकर्ण का पुत्र था। १५. एक वानर का नाम। १६. हृदय का एक प्रकार का रोग (को०)। १७. एक पेड़ का नाम जो बंगाल, मद्रास, आसाम और अवध के जंगलों में होता है। कुंबी। कुंभी।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है। छाल काले रंग की होती है। लकड़ी मकान और आरायशी चीजें बनाने के काम में आती है और पानी में नहीं सड़ती। इसकी छाल रेशेदार होती है और उससे रस्सी बटी जाती है। यह औषधों में भी काम आती है। इसके फल को खुम्भी कहते हैं, जिसे पंजाबी स्वयं खाते तथा पशुओं को भी खिलाते हैं। इसके पत्ते माघ, फागुन में झड़ जाते हैं। इसे कुंबी और अर्जमा अरजम भी कहते हैं।

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भक] प्राणायाम का एक भाग, जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं।

विशेष—यह क्रिया पूरक के बाद की जाती है और इसमें मुँह बंद करके नाक के रंध्रों को एक ओर से अँगूठे और दूसरी ओर से मध्यमा तथा अनामिका से दबाकर बंद कर देते हैं, जिससे उसमें वायु आ जा नहीं सकती। इसे कुंभ भी कहते हैं।

कुंभकरण, कुंभकरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकर्ण] दे० 'कुंभकर्ण'। उ०—(क) कुंभकरण गहि समर अपारा।—कबीर सा०, पृ० ४१। (ख) उठि बिसाल बिकराल बड़ कुंभकरनु जमहान।—तुलसी ग्र०, पृ० ८६।

कुंभकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकर्ण] एक राक्षस का नाम, जो रावण का भाई था। रामायण के अनुसार यह छह महीने सोता था।

कुंभकला—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकला] घड़ों का खेल जिसमें नट लोग सिर पर घड़े रखकर बाँस पर चढ़ते हैं। उ०—जैसे सीप समुद्र में चित देत अकाना। कुंभकला ह्वै खेलही, तस साहेब दाना।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १४।

कुंभकामला—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकामला] कामला रोग का एक भेद।—माधव०, पृ० ७५।

विशेष—पांडु रोग की उपेक्षा करने से कामला रोग होता है, उसी की दूसरी अवस्था कुंभकामला है। वैद्यक में इसे कृच्छ्र-साध्य कहा गया है।

कुंभकार—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] १. एक संकर जाति। कुम्हार।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस वर्णसंकर जाति की उत्पत्ति विश्वकर्मा पिता और शूद्रा माता से हुई है। जातिमाला में इसे पटया (पटिका) पिता और गोप माता से उत्पन्न माना है। उशना ने चोरी से वेश्यागमन करनेवाले विप्र और वेश्या की संतान माना है और पाराशर ने मालाकार और कर्मकरी के योग से इसकी उत्पत्ति मानी है।

२. मुर्गा। कुक्कुट। ३. साँप (को०)। ४. जंगली पक्षी (को०)।

कुंभकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकारिका] १. दे० 'कुंभकारी'।

कुंभकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकारी] १. कुंभकार की स्त्री। २. कुलथी। ३. मैनसिल।

कुंभज—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भज] १. घड़े से उत्पन्न पुरुष। २. अगस्त्य मुनि। उ०—जासु कथा कुंभज रिषि गाई।—मानस, १।५१।३. ३. वशिष्ठ। ४. द्रोणाचार्य।

कुंभजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भजन्मन्] दे० 'कुंभज'।

कुंभजात—संज्ञा पुं० दे० [सं० कुम्भजात] 'कुंभज'।

कुंभदास—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भदास] व्रज के अष्टछाप के कवियों में से एक कवि। यह सखा भाव से कृष्ण की उपासना करते थे।

कुंभदासी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भदासी] १. कुटनी। दूती। २. कुंभिका। जलकुंभी।

कुंभवर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भवर] कुंभराशि।

कुंभनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० कुम्भणी = जल का गर्त] जल भरा छोटा गड्ढा। उ०—रज्जब चेला चकपद बिन गुरु मिल्या जा चद। कूप भई पद कुंभनी क्यूँ पावहि प्रभु पद।—रज्जब०, पृ० १४।

कुंभपंजर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भपञ्जर] वह स्थान या आधार जो दीवार में बना हो। गवाक्ष। गोख। ताखा। [को०]।

कुंभपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भपदी] द्रोणपदी [को०]।

कुंभमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भमण्डूक] १. घड़े का मेढक। २. अनुभवहीन व्यक्ति [को०]।

कुंभयोनि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भयोनि] १. अगस्त्य मुनि का एक नाम। २. गूमा का पेड़।

कुंभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भरी] दुर्गा का एक नाम [को०]।

कुंभरेता—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भरेतस्] अग्नि का एक नाम [को०]।

कुंभला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भला] गोरखमुंडी।

कुंभशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भशाला] मिट्टी के घड़े बनाने का स्थान [को०]।

कुंभसंधि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भसन्धि] हाथी के सिर का वह गड्ढा जो उसके दोनों कुंभों के बीच में होता है।

कुंभसंभव—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भसम्भव] अगस्त्य मुनि का एक नाम। उ०—जयति लवणाम्बुनिधि कुम्भसंभव महा दनुज दुर्जन दवन दुरित हारी।—तुलसी (शब्द०)।

कुंभहनु—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भहनु] रावण के दल के एक राक्षस का नाम, जिसे वाल्मीकि के अनुसार तार नामक बंदर ने मारा था।

कुंभांड—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भाण्ड] बाणासुर के एक मंत्री का नाम।

कुंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भा] १. वेश्या। २. नागदंती।

कुंभार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] कुम्हार। उ०—मन

काग सब भए अपावन । कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मन के । बिनु गुण लहै न कोइ सहस गुण गाहक नर के ।

कुंडली¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १ जलेबी । २ कुंडलिनी । ३ गुडुचि । गिलोय । ४ कचनार । ५ केवाँच । ६ जन्मकाल के ग्रहों को बतलानेवाला एक चक्र जिसमे बारह घर होते हैं । ७ गेंडुरी । इँडुवा । ८ साँप के बैठने की मुद्रा । फेंटी । ९. खँझरी । डफली ।

कुंडली²—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलिन्] १ साँप । २ वरुण । ३ मयूर । मोर । ४ चित्तल हरिण । ५. विष्णु । ६ शिव (को०)।

कुंडली³—वि० १ जो कुंडल पहने हो । कुंडलधारी । २ घुमावदार । लपेटा हुआ । ३ कुंडली की आकृति का ।

कुंडलीकरण—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलीकरण] धनुष को खीचकर इतना मोड़ना कि वह कुंडल के आकार का हो जाय (को०)।

कुंडलीकृत—वि० [सं० कुण्डलीकृत] कुंडली के समान गोल आकृति का बनाया हुआ (को०) ।

कुंडा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] मिट्टी का बना हुआ चौड़े मुँह का एक गहरा बरतन, जिसमे पानी, अनाज आदि रखा जाता है। बड़ा मटका। कछरा ।

कुंडा²—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १. दरवाजे की चौखट मे लगा हुआ कोढा, जिसमे साँकल फँसाई जाती है और ताला लगाया जाता है । २ कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमे नीचे आए हुए विपक्षी की दाहिनी ओर खड़े होकर अपनी दाहिनी टाँग उसकी गरदन मे बाईं तरफ से डालकर उसकी दाहिनी बगल से बाहर निकाल लेते हैं और अपने बाएँ पैर के घुटने के अंदर अपने दाहिने मोजे को दबाकर उसके सिर पर बैठकर बाएँ हाथ से उसका जाँघिया पकडकर उसे चित्त कर लेते हैं ।

कुंडा³—संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के अगले मस्तूल का चौथा खड । निरकट । तावर डोल ।

कुंडा⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डा] दुर्गा का एक नाम (को०) ।

कुंडाशी—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डाशिन्] १ कुंड नामक जारज पुरुष का अन्न खानेवाला । २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

कुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डिक] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

कुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डिका] १ कमडलु । २ कूँडी । अथरी । पथरी । ३ तावे का कुंड जिसमे हवन किया जाता हैं । ४ अथर्ववेद का एक उपनिषद् । ५ छोटा कुंड । उ०—ता रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी । त्रिवली ता महँ ललित भाँति मनु उपजति लहरी ।—नद० ग्रं०, पृ० ४।

कुंडिन—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डिन] एक प्राचीन नगर, जो विदर्भ देश की राजधानी था ।

विशेष—वहाँ का राजा भीष्मक था जिसकी कन्या रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर ले गए थे । विदर्भ का आधुनिक नाम बीदर है, जो हैदराबाद राज्य मे है । बीदर से कुछ दूर पर कुंडिलवती नाम की एक पुरानी नगरी आज तक है । जिसमे पूर्व समृद्धि के चिह्न पाए जाते हैं । यही स्थान प्राचीन कुंडिन या कुंडिनपुर हो सकता है ।

कुंडिल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] दे० 'कुंडल' । उ०—कनक्क काम कुंडिल हलत तेज उम्भरे ।—पृ० रा०, २५ । ३१२ ।

कुंडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] पत्थर या मिट्टी का कटोरे के आकार का बरतन जिसमे लोग दही, चटनी आदि रखते हैं । पत्थर की कुंडी मे भाँग भी घोटी जाती है ।

यौ०—कुंडी सोंटा = भाँग घोटने का सामान ।

२ लोहे की टोपी या शिरस्त्राण । कूँड । उ०—धरे टोप कुंडी कसे काँच अग ।—हम्मीर०, पृ० २४ ।

कुंडी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्डा] १ जजीर की कड़ी । कडी । २. किवाड़ मे लगी हुई साँकल जो किवाड को बद रखने के लिये कुंडी मे फँसाई या डाली जाती है ।

क्रि० प्र०—खोलना —बद करना ।

मुहा०—कुंडी खटखटाना = द्वार खुलवाने के लिये साँकल को जोर जोर से हिलाना । कुंडी देना, मारना लगाना = कुंडी बद करना ।

३ लगर का बड़ा छल्ला, जो उसके सिरे पर लगा रहता है ।

कुंडी³—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] मुर्रा भैंस जिसकी सींग घुमी हुई होती हैं । दे० 'मुर्रा' ।

कुंडू—संज्ञा पुं० [देश०] काले रग की एक चिड़िया जिसका कठ और मुँह सफेद और पूँछ पीली होती है । लबाई मे यह ग्यारह इच की होती है । यह काश्मीर से आसाम तक मिलती है । इसे कस्तूरा भी कहते हैं ।

कुंडोध्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डोध्नी] १ वह गाय जिसके थन बडे हो । बड़े थनवाली गाय । २ वह स्त्री जिसके स्तन बडे हों। भरी छातीवाली औरत (को०) ।

कुंडोदर—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डोदर] महादेव जी का एक गण । उ०—विरूपाक्ष कुंडोदर नामा । रहिहैं तुव समीप सब यामा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कुंत—संज्ञा पुं० [सं० कुन्त] १ गवेधुक । कौडिल्ला । केसई । २. भाला । बरछी । उ०—कुवलय विपिन कुंत बन सरिसा । वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।—तुलसी (शब्द०)। ३ जूँ । ४ चड भाव । क्रूर भाव । अनख । ५ जन । ६ कुश ७ अग्नि । ८ आकाश । ९ काल । १० कमल । ११ खड्ग । उ०—कुंत सलिल औ कुंत कुस, कुंत अनल नभ, काल । कुंत कनत कवि कमल सो कुंत जु खंग कराल ।—अनेकार्थ० पृ० १२३ ।

कुंतक—संज्ञा पुं० [सं० कुन्तक] संस्कृत साहित्य मे वक्रोक्ति सप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य । वक्रोक्तिजीवित इनका ग्रथ है ।

कुंतल—संज्ञा पुं० [सं० कुन्तल] १ सिर के बाल । केश । उ०—श्रवण मणि ताटंक मजुल कुटिल कुंतल छोर ।—सूर (शब्द०) । २ प्याला । चुक्कड । ३ जौ । ४. सुगधवाला । ५ हल । ६. सगीत मे एक प्रकार का ध्रुपद, जिसके प्रति पाद मे १६ अक्षर होते हैं । ७ एक देश का नाम जो कोकण और बरार के बीच मे था । ८ सपूर्ण जाति का एक राग जो दीपक का चौथा पुत्र माना जाता है । इसके गाने का समय

ग्रीष्म ऋतु का दोपहर है। ९ सूत्रधार (अने०)। १० वेष बदलनेवाला पुरुष। बहुरुपिया (अने०)। ११ राम की सेना का एक बंदर।

कुंतल[3]—संज्ञा पुं० [अं० क्विन्टल] एक तौल। कुंटल।

कुंतलवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं० कुन्तलवर्द्धन] भृंगराज। भंगरा। भंगरैया।

कुंतलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्तलिका] १. एक पौधा। २. छुरिका-विशेष। दर्वी। कलछा (को०)।

कुंतली संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्त = भाला] एक छोटी मक्खी जिसके छत्ते से डामर नामक मोम निकलती है। इन मक्खियों को डंक नहीं होता। अलमोड़ा, वेलगाँव, छिंदवाड़ा, खानदेश आदि में ये मक्खियाँ बहुत होती हैं।

पर्या०—कुन्ती। भिनकवा। नसरी। वेंकुआ।

कुंता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्ती] दे० कुंती[1]।

कुंतिभोज—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम, जिसने कुंती (पृथा) को गोद लिया था।

कुंती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्ती] युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम की माता। पृथा।

विशेष—यह शूरसेन यादव की कन्या और वसुदेव की बहन थी। इसे इसके चचा भोज देश के राजा कुंतिभोज ने गोद लिया था। यह दुर्वासा ऋषि की बहुत सेवा करती थी, इससे उन्होंने इसे पाँच मंत्र ऐसे बतलाए कि वह पाँच देवताओं में से किसी को आह्वान कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थी। उसने कुमारी अवस्था में ही सूर्य से कर्ण को उत्पन्न कराया। इसके उपरांत इसका विवाह पांडु से हुआ।

कुंती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुन्त] १ बरछी। भाला। २. एक छोटी मक्खी। दे० कुंतली।

कुंती[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंजे की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह मध्य बंगाल, बरमा, आसाम आदि स्थानों में होता है। इसकी फलियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने के काम आती हैं और बीज से जो तेल निकलता है वह जलाने के काम में आता है। इसके फलों को टेंटी कहते हैं।

पर्या०—बकेटी। अमलकुच्ची।

कुंथु—संज्ञा पुं० [सं० कुन्थु] १. जैन शास्त्रानुसार छठा चक्रवर्ती २ जैनियों के मत से वर्तमान अवसर्पिणी (काल) का सत्रहवाँ अर्हंत। उ०—फिरि आए हस्तिनापुर जहाँ। सांति कुंथु अरपूजे तहाँ।—अर्ध०, पृ० ५३।

कुंद[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुन्द] १. जूही की तरह का एक पौधा, जिसमें सफेद फूल लगते हैं। इन फूलों में बड़ी मीठी सुगंध होती है।

विशेष—यह पौधा क्वार से लेकर फागुन चैत तक फूलता रहा है। वैद्यक में यह शीतल, मधुर, कसैला, कुछ रेचक, पाचक तथा पित्तरोग और रुधिर विकार में उपकारी माना जाता है। प्रायः कवि लोग दाँतों की उपमा कुंद की कलियों से देते हैं। जैसे—बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर पल्लव खोलन की।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—माध्य। मकरंद। श्वेतपुष्प। महामोद। सदापुष्प। वरट। मुक्तापुष्प। वनहास। भृंगबंधु। अट्टहास।

२ कनेर का पेड़। ३ कमल। ४ कदर नाम का गोंद। ५. एक पर्वत का नाम। ६ कुबेर की नौ निधियों में से एक। ७. नौ की संख्या। ८ विष्णु। ९. खराद। उ०—गढ़ि गढ़ि छोलि छोलि कुंद की सी भाईं बातें जैसी मुख कहौ तैसी उर जब आनिहौं।—तुलसी (शब्द०)।

कुंद[2]—वि० [फा०] १ कुंठित। गुठला। २. स्तब्ध। मंद।

यौ०—कुंदजेहन = कुंठित बुद्धि का। मंदबुद्धि।

कुंदर—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दकर, टर्नर] खराद का काम करनेवाला व्यक्ति [को०]।

कुंदन[1]—संज्ञा पुं० [सं० कुन्द = श्वेतपुष्प या देश०] १ बहुत अच्छे और साफ सोने का पतला पत्तर, जिसे लगाकर जड़िए नगीने जड़ते हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. स्वच्छ सुवर्ण। बढ़िया सोना। खालिस सोना। उ०—पीतर पटतर बिगत, निपक (निकष) ज्यों कुंदन रेखा।—भक्तमाल (प्रिया०), पृ० ५८२।

विशेष—दमकती हुई स्वच्छ निर्मल वस्तु की उपमा प्रायः कुंदन से देते हैं, जैसे—कुंदन सा शरीर।

मुहा०—कुन्दन सा दमकना = स्वच्छ सोने की भाँति चमकना। कुंदन हो जाना = खूब स्वच्छ और निर्मल हो जाना। निखर आना।

कुंदन[2]—वि० १ कुंदन के समान चोखा। खालिस। स्वच्छ। बढ़िया। जैसे—यह कुंदन माल है। २ स्वस्थ और सुंदर। नीरोग। जैसे—चार दिन औषध खाओ तुम्हारा शरीर कुंदन हो जायगा।

कुंदनपुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुंडिनपुर'।

कुंदनसाज—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदन + फा० साज] १ कुंदन का पत्तर बनानेवाला। २. कुंदन देकर नगीना बैठानेवाला। जड़िया।

कुंदम—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दम] बिल्ली। मार्जार [को०]।

कुंदर—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दर] १ निघंटु में कथित एक घास जो कलिंग देश में होती है और जिसकी जड़ औषध के काम आती है।

पर्या०—कंदूर। मिटी। दीघपत्र। खरच्छद। रसाल। सुतृण। मृगवल्लभ।

२. विष्णु।

कुंदरू—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डुर] दे० कुंदरू'।

कुंदलता—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दलता] १. छब्बीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसे सुख' भी कहते हैं। दे० 'सुख'। २ माधवालता।

कुंदा[1]—संज्ञा पुं० [फा०, तुल० सं० स्कन्ध] १. लकड़ी का बहुत बड़ा, मोटा और बिना चीरा हुआ टुकड़ा जो प्रायः जलाने के काम में आता है। लक्कड़। २. लकड़ी का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बढ़ई लकड़ी गढ़ते, कुंदीगर कपड़े पर कुंदी करते और किसान घास काटते हैं। निहठा। निस्ठा। ३. बंदूक में वह

-वि पायो जेही गर निगरयो। सूरदास प्रभु रूप थक्यो मन कुंजल पंक परयो।—सूर(शब्द०)।

कुंजविहारी—संज्ञा पुं० [कुञ्जविहारिन्] १ कुंजों मे विहार करने वाला पुरुष। २ श्रीकृष्ण।

कुंजा¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च, प्रा० कुंच कोंच्च, राज० कुंज, कूंज, कुंफ, कुंफ] क्रौंच पक्षी। उ०—अंबर कुंजा कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल। जिनि पैं गोविंद बीछुटें, तिनके कौण हवाल।—कबीर ग्रं० पृ० ७।

कुंजा²—†—संज्ञा पुं० [ग्र० कूजा] पुरवा। चुक्कड़। उ०—प्याली गगा जली टोकनी गगा सागर। कुंजा जमूदवा और ताँबे की गागर।—सूदन (शब्द०)।

कुंजा³‡—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] केंचुल। निर्मोक। उ०—नानक देह तजे ज्यो कुंजे मनु निरञ्जन समाना।—प्राण०,पृ० ६६।

कुंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] १ कृष्णजीरा। कालाजीरा। २ कुंजी। ३ टीका। ग्रंथ की व्याख्या।

कुंजित—वि० [सं० कूजित] दे० 'कूजित'।

कुंजी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] चाभी। ताली। उ०—कुंजी उनकी जबान शीरीं है। दिल मेरा कुफ्ल है बताशे का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६।

मुहा० —(किसी की) कुंजी हाथ मे होना = किसी का वश में होना। किसी की चाल या गति का वश में होना। जैसे,—वे तमसे कुछ न बोलेंगे उनकी कुंजी तो हमारे हाथ मे है।

२ पुस्तक जिससे किसी दूसरी पुस्तक का अर्थ खुले। टीका।

कुंझ†(पु) कुंझी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [क्रौञ्च, क्रौञ्ची] एक पक्षी। दे० कुंजा¹। उ०—(क) कुंभी चउ नइ पखडी, थाकउ विनउ वहेसि।—ढोला०, दू० ६३। (ख) कुंभी परदेसों फिरैं, अबु धरैं घर माहिं।—दरिया० बानी, पृ० ४।

कुंट‡—संज्ञा पुं० [हिं०] कोण। दिशा। खूँट। उ०—अठसठ तीरथ पगि भवै साधु निरखन जाय। चारि कुंट चौदह भवन निरखि निरखि त्रिगसाय।—प्राण०, पृ० १८।

कुंटल†—संज्ञा पुं० [ग्र० क्विन्टल] एक तौल जो १०० किलोग्राम की होती है।

कुंठ—वि० [सं० कुण्ठ] [संज्ञा कुण्ठता, कुण्ठत्व। वि० कुंठित] १ जो चोखा या तीक्ष्ण न हो। गुठला। भोथरा। कुंद २ मूर्ख। स्थूल बुद्धि का। कुंदजेहन। ३ आलसी। सुस्त (कौ०)। ४ कमजोर। निर्बल (कौ०)।

यौ०—कुंठधी। कुंठमना = मूर्ख। कुंदजेहन।

कुंठक—वि० [सं० कुंठक] बुद्धिहीन। नासमझ [कौ०]।

कुंठा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ठ+आ] १ खीझ। चिढ़। २ निराशा। ३ मन की गाँठ। मानसिक ग्रंथि। उ०—ओ तिक्त मधुर कुंठा निष्ठुर पावक मरद रज के युग मन।—प्रतिमा, पृ० १३८।

यौ०—कुंठाजात = निराशा, खीझ या मन की अतृप्त इच्छाओं से बना हुआ। उ०— ने तो आज के समूचे साहित्य को कुंठाजात माना है।—हिं० आ० प्र०, पृ० ३।

कुंठित—वि० [सं० कुण्ठित] १ जिसकी धार चोखी या तीक्ष्ण न हो। कुंद। गुठला। उ०—रहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठारकुंठित नृपघाती।—तुलसी (शब्द०)। २ मंद। बेकाम। निकम्मा। जैसे—तुम्हारी बुद्धि कुंठित हो गई है। ३ गृहीत। ग्रहण किया हुआ (कौ०)। ४ विकृत। परिवर्तित (कौ०)। ५ मूर्ख। जड़ (कौ०)। ६ बाधित। विघ्नित। अपहृत (कौ०)।

कुंड—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] १ चौड़े मुँह का गहरा बरतन। कूँडा। २ एक प्राचीन काल का मान जिससे अनाज नापा जाता था। ३ छोटा बँधा हुआ जलाशय। बहुत छोटा तालाब। जैसे—भरत-कुंड, सूर्यकुंड। ४ पृथिवी में खोदा हुआ गड्ढा अथवा मिट्टी, धातु आदि का बना हुआ पात्र जिसमे अग्नि जलाकर अग्निहोत्र आदि करते हैं। उ०—यज्ञ पुरुष प्रसन्न जब भए। निकसि कुंड ते दरसन दए।—सूर० ४।५। ५ बटलोई। स्थाली। ६ जलपात्र। कमडलु (कौ०)। ७ शिव का एक नाम। ८ एक नाग का नाम।—प्रा० भा०, प०, पृ० ८६। ९ धृतराष्ट्र का एक लड़का। १०. ऐसी स्त्री का जारज लड़का जिसका पति जीता हो। ११ मुगरी। पूला। गट्ठा। जैसे—दर्भकुंड। १२. ज्योतिष के अनुसार चद्रमा के मडल का एक भेद। १३ गर्त। गड्ढा। उ०—उठैं रुंड भू मैं परे मुंड लोटैं। भरैं कुंड लोहू बहे बीर ओटैं।—हम्मीर०, पृ० १९। (पु)१४ लोहे का टोप। कूँड़। खोद। उ०—(क) तीर तरवारि भाला बरछी बदूक हाथ आयस के कुंड माथ करन पनाह के।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कुंडन के ऊपर कड़ाके उठै ठौर ठौर —भूषण ग्र०, पृ० ७३। (पु) १५ हौदा। उ०—चढ़ि चित्रित सुंड भुसुंड पैं सोभित कचन कुंड पैं। नृप सजेउ चलत बदुभुंड पैं जिमि गज मृग सिर पुंड पैं।—गोपाल (शब्द०)। (पु) १६ श्री राग के आठ पुत्रों मे से एक का नाम। उ०—सावा सारग सागरा औ गधारी भीर। अष्ट पुत्र श्री राग के गोल कुंड गभीर।—माधवानल०, पृ० १९४।

कुंडक—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] १ पात्र। २ मटका। कुंडा। ३ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम [कौ०]।

कुंडकीट—संज्ञा पुं० [कुण्डकीट] १ चार्वाक के मत का अनुयायी। पतित ब्राह्मणी पुत्र। ३ रखेली या सुरैतिन के रूप मे किसी स्त्री को रखनेवाला (कौ०)।

कुंडकील—संज्ञा पुं० [कुण्डकील] नीच या जगली व्यक्ति (कौ०)।

कुंडकोदर¹—वि० [सं० कुण्डकोदर] कुंडे या मटके की तरह पेट वाला [कौ०]।

कुंडकोदर²—संज्ञा पुं० १ शिव जी का एक गण। २ एक नाग का नाम [कौ०]।

कुंडगोल, कुंडगोलक—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डगोल, कुण्डगोलक] कांजी।

कुंडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डनी] मिट्टी का बड़ा बरतन [कौ०]।

कुंडपायिनामयन—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डपायिनामयन] एक यज्ञ जिसमे यजमान को ३१ रात्रि तक दीक्षित रहना पड़ता है

और उसके एक मास के उपरात सोम संग्रह करने के लिये जाना पड़ता है।

कुंडपायी—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डपायिन्] १ सोमयाग करनेवाला वह यजमान जिसने १६ ऋत्विजों से सोमसत्र कराके कुंडाकार चमसे से सोमपान किया हो। २ याज्ञिकों का एक संप्रदाय जिनके पूर्वज कुंडपायी थे या जिनके कुल में सोमयाग में कुंडाकार चमसे से सोमपान होता था।

विशेष—ऐसे लोगों के अयनयागादि औरों से कुछ विलक्षण हुआ करते थे। आश्वलायन श्रौतसूत्र में इनके अयनयाग का पृथक् विधान मिलता है।

कुंडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कुण्ड+र(प्रत्य०) अथवा कुण्डल=घेरा, मंडल] दे० 'कुंडल'। उ०—नामी कुंडर बानारसी। सौंह को होइ मीचु तहँ बसी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६६।

कुंडरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड या हिं० कुंडर] १ कूंडा। मटका। उ०—अस कहि इक कुंडरा मँगायो। निज तुवा तेहि औंध करायो।—रघुराज (शब्द०)। २ दे० 'कुंडरा'।

कुंडल—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १ सोने। चाँदी आदि का बना हुआ एक मंडलाकार आभूषण जिसे लोग कानों में पहनते हैं। बाली। मुरकी। उ०—घुँघरारी लटें लटकें मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।—तुलसी (शब्द०)। पहिए के आकार का एक आभूषण जिसे गोरखनाथ के अनुयायी कनफटे कानों में पहनते हैं। यह सींग, लकड़ी, काँच, गेंडे की खाल तथा सोने आदि धातुओं का भी होता है। ३ कोई मंडलाकार आभूषण जैसे—कड़ा, चूड़ा आदि। ४. रस्सी आदि का गोल फंदा। ५. लोहे का वह गोल मँडरा जो मोट या चरस के मुँह पर लगाया जाता है। मेखड़ा। मेड़री। ६ कोल्हू के चारों ओर लगा हुआ गोल बंद ७ किसी लंबी लचीली वस्तु की कई गोल फेरों में सिमट कर बैठने की स्थिति। फेंटी। मंडल। जैसे,—साँप कुंडल बाँधकर बैठा है।

क्रि० प्र० बाँधना।—मारना।

८. वह मंडल जो कुहरे या बदली में चंद्रमा या सूर्य के किनारे दिखाई पड़ता है।

क्रि० प्र०—में बैठना।

९. छंद में वह मात्रिक गण जिसमें दो मात्राएँ हों, पर एक ही अक्षर हो। जैसे—'श्री'। १०. बाईस मात्राओं का एक छंद जिसमें बारह और दस पर विराम होता है और अंत में दो गुरु होते हैं।

विशेष—इस छंद में अंतिम दो गुरु के अतिरिक्त शेष अठारह मात्राओं का यह नियम है कि पहली बारह मात्राओं के शब्द या तो सब द्विकल वा त्रिकल अथवा दो त्रिकल के बाद तीन द्विकल अथवा तीन द्विकल के बाद दो त्रिकल होते हैं और शेष बारह मात्राओं में त्रिकल के पश्चात् त्रिकल या तीन द्विकल होते हैं। इस छंद के चरणांत में अगर एक ही गुरु हो तो उसे उड़ियाना कहते हैं। जैसे,—तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी। नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो। मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो।

कुंडलपुर—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलपुर] दे० 'कुंडिनपुर'।

कुंडलाकार—वि० [सं० कुण्डलाकार] १ वर्तुलाकार। गोल। २ मंडलाकार।

कुंडलि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलि] सर्प। शेषनाग। उ०—मेरु कछू न कछू दिग्दंति न कुंडलि कोल कछू न कछू है।—भूषण ग्रं०, पृ० ३८।

कुंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिका] १ मंडलाकार रेखा। २ जलेबी नाम की एक मिठाई। ३. कुंडलिया छंद।

कुंडलित—वि० [सं० कुण्डलित] १ जो कुंडली मारे हुए हो। जो फेंटी मारे हुए हो। कई बलों में घूमा हुआ। २ कुंडल नामक आभूषण से युक्त। उ०—कोमल कुटिल कुंडलित कनकाभरण भूषित कान।—वर्ण०, पृ० ४।

कुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिनी] १ तंत्र और उसके अनुयायी हठयोग के अनुसार एक कल्पित वस्तु, जो मूलाधार में सुषुम्ना नाड़ी के नीचे मानी गई है।

विशेष—यह वहाँ साढ़े तीन कुंडली मारकर त्रिकोण के आकार में पड़ी सोती रहती है। योगी लोग इसी को जगाने के लिये अष्टांग योग का साधन करते हैं। अत्यंत योगाभ्यास करने से यह जागती है। जागने पर यह साँप की तरह अत्यंत चंचल होती है, एक जगह स्थिर नहीं रहती और सुषुम्ना नाड़ी में होती हुई मूलाधार से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, अग्नि और मेरुशिखर होती हुई या उन्हें भेदती हुई ब्रह्मरंध्र से सहस्रार चक्र में जाती है। ज्यों ज्यों यह ऊपर चढ़ती जाती है त्यों त्यों साधक में अलौकिक शक्तियों का विकास होता जाता है और उसके सांसारिक बंधन ढीले पड़ते जाते हैं। ऊपर के सहस्रार चक्र में उसे पकड़ कर योगबल से ठहराना और सदा के लिये उसे वहीं रोक रखना हठयोग के साधकों का परम पुरुषार्थ माना गया है। उनके मत से यही उनके मोक्ष का साधन है। किसी किसी तंत्र का यह भी मत है कि कुंडलिनी नित्य जागती है और वह बीच के चक्रों को भेदती हुई सहस्रार कमल में जाती है और वहाँ देवगण उसे अमृत से स्नान कराते हैं। उनका कथन है कि यह कुंडलिनी मनुष्यों के सोने की अवस्था में ऊपर चढ़ती है और जागने के समय अपने स्थान मूलाधार में चली जाती है।

पर्या०—कुटिलांगी। भुजगी। ईश्वरी। शक्ति। अरुंधती। कुंडली।

२. जलेबी नाम की मिठाई। इमरती। ३. गुडूची। गिलोय।

कुंडलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिका, प्रा० कुंडलिआ] एक मात्रिक छंद जो एक दोहे और रोले के योग से इस प्रकार बनता है कि दोहे के अंतिम चरण के कुछ शब्द रोले के आदि में अविकल आते हैं। जैसे,—गुण के गाहक सहस नर बिनु गुण लहै न कोय। जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय। शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन। दोऊ के एक रंग

३ मधु। शन्द। ४ खून। रक्त। ५ देवो का एक मधुर पेय पदार्थ। ६ चौपाया। पशु।

यौ०—कीलालज = मास। कीलालधि = समुद्र। कीलालप = (१) भौरा। (२) राक्षस। प्रेत।

कीलाल[२]—वि० बधन हटाने या दूर करनेवाला।

कीलाली—सज्ञा पुं० [स० कीलालिन्] गिरगिट। छिपकली।

कीलिका—सज्ञा [सं०] १ मनुष्य के शरीर की वे हड्डियाँ जो स्थपन और तारान को छोड दूसरे स्नायु मे बँधी होती हैं। २ एक प्रकार का बाण। ३ धुरी (को०)।

कीलित—वि० [सं०] १ जिसमे कील जडी हो। २ मत्र से स्तभित। कीला हुआ।

कीलिया—सज्ञा पुं० [हिं० कील] मोट के बैलो को हाँकनेवाला। पुरवोलवा। पैरहा।

कीली—सज्ञा स्त्री० [सं० कील] १ किसी चक्र के ठीक मध्य के छेद में पडी हुई वह कील या डडा जिसपर वह चक्र घूमता है। जैसे—पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है, जिससे रात और दिन होता है। २ दे० 'कील' और 'किल्ली'।

कीवाँ(पु)—अव्य० [हिं किमि] कैसे। उ०—तुक बाजू खरी वो नामिनी कीवाँ दिन परच वी।—घनानंद०, पृ० ३८४।

कीश—सज्ञा पुं० [सं०] १ बदर। वानर। लगूर।

यौ०—कीशध्वज। कीशकेतु = अर्जुन।

२ चिडिया। ३ सूर्य।

कीशपर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग नामक पौधा। चिडा [को०]।

कीशपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० कीशपर्णिन] अपामार्ग नामक पौधा [को०]।

कीस[१]—सज्ञा पुं० [सं० कीश] बदर। वानर। उ०। धन्य कीस जो निज प्रभुकाजा। जहँ तहँ नाचै परिहरि लाजा।—मानस, ६।२०।

कीस[२]—सज्ञा पु० [फा० कीसह] गर्भ की थैली।

कीसउ(पु)—वि० [सं० कीदृश] कीदृश। कैसा। उ०—राजा वुली महूरत कीसउ म्हाँ तो ओलग चाल्स्या आज।—वी० रासो, पृ० ८१।

कीसा—सज्ञा पुं० [फा० कीसह्] १ थैली। खीसा। २ जेब। खरीता।

कीसोव(पु)—क्रि० वि० [सं० कीदृश+इव] कैसे। क्यों। कीदृश। उ०—कहइ समझाई, हर पेलवी। राजा कीसीव तु मागि चितोड।—वी० रासो, पृ० २४।

कुंकन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कोङ्कण] दे० 'कोंकण'।

कुंकुम—सज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुम] १ केसर। जाफरान। उ०—कुकुम रग सुअग जितो मुख चद सो चदन होड़ परी है।—तुलसी (शब्द०)। २ लाल रग की बुकनी, जिसे स्त्रियाँ माथे मे लगाती है। रोली। ३ कुकुमा।

कुंकुमज्वर—सज्ञा पुं० [सं० कुङ्कुमज्वर] एक प्रकार का ज्वर। श्वास लेने मे कष्ट, छाती मे पीड़ा, त्वचा थोड़ी गरमी आदि इसके लक्षण हैं।—माधव० पृ० ४३।

कुंकुमफूल—सज्ञा पुं० [देश०] दुपहरिया का फूल।

कुंकुमा—सज्ञा पु० [सं० कुङ्कुम] १ झिल्ली की कुप्पी या ऐसा बना हुआ लाख का पोला गोला जिसके भीतर गुलाल भरकर होली के दिनो मे मारते हैं। लाख को लोहे की नली मे भरकर फूँकते हैं जिससे उसका फूलकर गोला बन जाता है। २ दे० कुंकुम—१। उ०—कोई गटे कुकुमा चोवा। दरसन आस ठाढि मुख जोवा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३१७।

कुंकुमाद्रि—सज्ञा पु० [सं० कुङ्कुमाद्रि] एक पर्वत का नाम जो काश्मीर मे है [को०]।

कुंकुह(पु)—सज्ञा पुं० [पि०] दे० 'कुकुम'। उ०—पेट पत्र चदन जनु लावा। कुकुह केसरि बरन सोहावा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९५।

कुंचन—सज्ञा पुं० [सं० कुञ्चन] १ सिकुडने या बटुरने की क्रिया। सिमटना। २ आँख का एक रोग, जिसमें आँख की पलके सिकुड़ जाती हैं।

कुंचि—सज्ञा पुं० [सं० कुञ्चि] आठ मुट्ठी का एक परिमाण।

कुंचिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] १ घुँघची। गुंजा। २ बाँस की टहनी। ३ कुंजी। ताल। चाभी। ४ एक प्रकार की मछली। ५ हुरहुर। ६ एक प्रकार का नरकट [को०]।

कुंचित—वि० [सं० कुञ्चित] १ घूमा हुआ। टेढ़ा। वक्र। २ घूँघरवाले। छल्लेदार (बाल)। उ०—कुचित अलक तिलक गोरोचन, ससि पर हरि के ऐंन। कबहूँक खेलत जात घुटुरुवनि उपजावत सुख चैंन।—सूर० १०।१०३। (ख) चिक्कन कच कुचि तगभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।—तुलसी (शब्द०)।

कुंची, कुंचो(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] ताली। कुजी। चाभी। उ०—धर्मधीर कुलकानि कुँची कर तेहि तारी दे दूरि धरयो री। पलक कपट कठिन उर अतर इतेहु जतन कछुवै न सरयो री।—सूर (शब्द०)।

कुंज—सज्ञा पुं० [सं० कुञ्ज, तुल, फा० कुज] १ वह स्थान जिसके चारो ओर घनी लता छाई हो। वह स्थान जो वृक्ष लता आदि से मडप की तरह ढका हो।—उ० (क) जहँ वृंदावन आदि अजर जहँ कुज लता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ, निगम भृग गुजार।—सूर (शब्द०)। (ख) सघन कुंज छाया सुखद सीतल मद समीर। मन ह्वै जात अजहुँ वहै कालिंदी के तीर।—विहारी (शब्द०)।

यौ०—कुंज कुटीर = लतागृह। कुज की खोरी = दे० 'कुजगली' (१) उ०—सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुज की खोरी।—सूर० १०।२६७। कुजगली = (१) वाटिका मे लताओं से छायापथ। भूलभुलैया। (२) तग और पतली गली। कुजविहारी = दे० श्रीकृष्ण। उ०—जब तें बिछुरे कुज विहारी। नींद न परे घटै नहिं रजनी बिथा विरह जुर भारी।—सूर०, १०।३२८७।

२ हाथी का दाँत। ३ नीचे का जबडा (को०)। ४ दाँत [को०]। ५ गुफा। कदरा [को०]।

कुंज[२]—सज्ञा पुं० [फा० कुज = कोना] १ वे बूटे जो दुशाले के कोनो पर बनाए जाते है। २ खपरैल या छप्पर की छाजन मे वह लकडी जो बँडेर से अ कर कोने पर तिरछी गिरती है। कोनिया। कोनसिला। ३ कोण। कोना।

कुंजक—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जक] डेवढ़ी पर का वह चोबदार जो अंत पुर में आता जाता हो। कंचुकी। ख्वाजःसरा। उरदा-बेग। उ०—कुंजक क्लीव त्रिविध परिचारक। जे रनिवास खबरि परचारक।—रघुराज (शब्द०)।

कुंजकुटीर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जकुटीर] लतागृह। कुंजगृह। लताओं से घिरा हुआ घर। उ०—चलहिं किन मानिनि कुंजकुटीर। तो बिनु कुँअर कोटि वनिताजुत बिलपत बिपिन अधीर।—हित हरिवंश (शब्द०)।

कुंजगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंज + गली] १. बगीचों में लता से छाया हुआ पथ। २ पतली तंग गली।

कुंजड़¹—संज्ञा पुं० [अ० कुंदर] पिस्ते का गोंद जो दवा के काम आता है और देखने में रूमी मस्तगी से मिलता जुलता होता है। कुंदुर।

कुंजड़²—संज्ञा पुं० [हिं० कुंजड़ा] [स्त्री० कुँजड़ी] दे० 'कुँजड़ा'। उ०—उस कुंजड़ ने ठाकुर के शीश पर मुकुट रख दिया।—कबीर सं०, पृ० ३८५।

कुंजर—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जर] [स्त्री० कुंजरा कुंजरी] १ हाथी।

मुहा०—कुंजरो वा (नरो वा कुंजरो वा नरो) = हाथी या मनुष्य। श्वेत या कृष्ण। यह या वह। अनिश्चित या दुविधे की बात। उ०—सोहौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो। स्वारथ हू परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—द्रोणाचार्य जी को वरदान था कि उनका प्राण पुत्र-शोक से निकलेगा। महाभारत के युद्ध में जब द्रोणाचार्यजी के बाणों से पांडव दल को बड़ी क्षति पहुँची तब कृष्णचंद्र ने यह गप उड़ाने की सलाह दी कि 'अश्वत्थामा मारा गया, और इसकी सत्यता के लिये अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मरवा डाला। द्रोणाचार्य जी से बहुतों ने अश्वत्थामा के मारे जाने का समाचार कहा, पर उन्हें विश्वास नहीं आया, यहाँ तक कि स्वयं श्रीकृष्ण के कहने पर भी उन्होंने सत्य नहीं माना और कहा कि जबतक धर्मराज युधिष्ठिर न कहेंगे मैं इसे सत्य नहीं मानूँगा। इसपर कृष्णचंद्र ने युधिष्ठिर को इतना कहने के लिये राजी किया कि 'अश्वत्थामा मारा गया, न जाने हाथी या मनुष्य'। अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो वा'। कृष्ण जी ने ऐसा प्रबंध किया कि ज्यों ही युधिष्ठिर के मुँह से 'अश्वत्थामा हतो' वाक्य निकला, शंखध्वनि होने लगी और द्रोणाचार्य जी शेष 'कुंजरो वा नरो वा' जो धीरे से कहा गया था, न सुन सके। वे प्राणायाम द्वारा सब बातों को जानकर प्राण त्यागना चाहते थे कि द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा, जो द्रौपदी का भाई था, उनका सिर काट लिया गया। युधिष्ठिर के इस संदिग्ध वाक्य को लेकर यह मुहाविरा दुविधे की बातों के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

२ एक नाग का नाम ३ बाल। केश। ४ एक देश का नाम। ५ रामायण के अनुसार एक पर्वत का नाम। यह मलयागिरि की किसी शृंखला का नाम था। ६. अंजना के पिता और हनुमान के नाना का नाम। ७. पद्मपुराण के अनुसार एक वृद्ध शुक पक्षी का नाम जिसने महर्षि च्यवन को उपदेश दिया था। ८ छप्पय के ३१ वें भेद का नाम जिसमें ५० गुरु, ५२ लघु, १०२ वर्ण और १५२ मात्राएँ या ५० गुरु, ४८ लघु, ९८ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ९ पाँच मात्रा के छंदों के प्रस्तार में पहला प्रस्तार। १०. हस्त नक्षत्र। ११. पीपल। १२. आठ की संख्या। १३. शिर (को०)। १४ एक आभूषण (को०)।

कुंजर²—वि० श्रेष्ठ। उत्तम। जैसे, पुरुषकुंजर, कपिकुंजर।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समस्त पदों के अंत में आता है। अमर कोशकार ने इस प्रसंग में व्याघ्र, पुंगव, ऋषभ, कुंजर, सिंह शार्दूल और नाग आदि शब्दों को भी श्रेष्ठ अर्थ में प्रयोग सूचित किया है।

कुंजरकरण—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरकरण] गजपिप्पली। गजपीपल।

कुंजरग्रह—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरग्रह] वह व्यक्ति जो हाथी पकड़ने का व्यवसाय करता हो [को०]।

कुंजरच्छाय—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरच्छाय] ज्योतिष के अनुसार एक योग।

विशेष—जब कृष्ण त्रयोदशी मघा नक्षत्र से युक्त होती है अथवा सूर्य और चंद्र मघा नक्षत्र के होते हैं तब यह योग होता है। मनु के अनुसार जब कृष्णपक्ष में त्रयोदशी और चतुर्दशी का योग हो और उसी दिन पूर्वाह्न में हस्त नक्षत्र भी हो तब 'कुंजरच्छाय होता है। यह एक पर्व माना गया है और शास्त्रों में इस दिन पितरों के श्राद्ध का बड़ा फल लिखा है।

कुंजरदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरदरी] एक प्रदेश का नाम। अनुमलय।

कुंजरपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरपिप्पली] गजपिप्पली।

कुंजरमनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरमणि] गजमुक्ता। उ०—कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।—मानस १। २४३।

कुंजरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरा] १. हथिनी। २ धातकी। धव।

कुंजरानीक—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरानीक] गजसैन्य। हाथियों की सेना [को०]।

कुंजराराति—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जराराति] हाथी का शत्रु, सिंह। २ शरभ। एक अष्टापद जंतु (को०)।

कुंजरारि—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरारि] हाथी का वैरी सिंह। उ०—प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर धाए जातुधान हनुमान लियो घेरि कै। महा बलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहाँ तहाँ पटके लंगूर फेरि फेरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

कुंजरारोह—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरारोह] हाथीवान। महावत। पीलवान।

कुंजराशन—संज्ञा पुं० [कुञ्जराशन] अश्वत्थ। पीपल।

कुंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरी] हथिनी। हस्तिनी। २. धव। पलाश [को०]।

कुंजल¹—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जल] काँजी।

कुंजल²—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जर] हाथी। हस्ती। गज। उ०—(क) मद जोबन बारी को राधा। कुंजर बिरह बिथो बद बाधा।—जायसी (शब्द०)। (ख) ज्यों सिंह दरबन

कीमत--संज्ञा पुं० [अ० कीमत] [वि० कीमती] वह धन जो किसी चीज के बिकने पर उसके बदले में मिलता है। दाम। मूल्य।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।
मुहा०—कीमत चढ़ना या बढ़ना = १. चीज का महँगी होना। २. महत्व होना। कीमत उतरना = १ चीज का सुलभ या सस्ता होना। २. महत्व घटना। कीमत ठहरना = मूल्य निश्चित होना। दाम तै होना।
कीमत ठहराना = मूल्य निश्चित करना। दाम तै करना। कीमत चुकाना = (१) दाम देना। (२) दे० 'कीमत ठहराना'।
कीमत लगाना = दाम आँकना। (खरीदनेवाले का) दाम कहना।

कीमती--वि० [अ० कीमत + फा० ई (प्रत्य)] अधिक दामों का। बहुमूल्य।

कीमा--संज्ञा पुं० [अ० कीमह्] बहुत छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ गोश्त (खाने के लिये)।
क्रि० प्र०--करना।--बनाना।
मुहा०—कीमा करना = किसी चीज के बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना। उ०—चाहूँ तो अग्नि में दहन कर दूँ चाहूँ तो दीवार में चुन दूँ-चाहूँ तो टुकड़े टुकड़े काटकर कीमा करूँ-और यदि चाहूँ तो बटुए में चुरा डालूँ।—कबीर म०, पृ० ११६।

कीमिया --संज्ञा स्त्री० [अ० कीमियह] १. रासायनिक क्रिया। रसायन। २. सोना चाँदी बनाने की विद्या। ३. वह रसायन जो अक्सीर या अमोघ हो। ४ कार्य सिद्ध करनेवाली युक्ति।
यौ०--कीमियागर।

कीमियागर-- वि० [अ० कीमियह + फा० गर (प्रत्य०)] १. रसायन बनानेवाला। रासायनिक परिवर्तन में प्रवीण। २. सोना चाँदी बनानेवाला। ३. कार्यकुशल।

कीमयागरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कीमियागर + ई (प्रत्य०)] १. रसायन बनाने की विद्या। २ सोना चाँदी बनाने की विद्या।

कीमियासाज-वि० [अ० कीमियह् + फा० साज्] दे० 'कीमियागर'।

कीमुख्त—संज्ञा पुं० [अ० कीमुख्त] गधे या घोड़े का चमड़ा जो हरे रंग का और दानेदार होता है। इसके जूते बरसात में पहने जाते हैं।

कीमुख्ती—वि० [अ० कीमुख्त + फा० ई (प्रत्य०)] कीमुख्त का बना हुआ।

कीर¹-संज्ञा पुं० [सं०] १ शुक। सुग्गा। तोता। २. व्याध। बहेलिया। ३. कश्मीर देश। ४ कश्मीर देशवासी। ५ मांस (को०)।

कीर(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० केवट] कछुवा। केवट। उ०—कढ़िया खटकी जाल की आइ पहूँचा कीर।—कबीर सा०सं०, पृ०७५।

कीरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपलब्धि। प्राप्ति। २. एक बुद्ध। ३. एक वृक्ष का नाम (को०)।

कीरणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम (को०)।

कीरत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] दे० 'कीरति'। उ०—बलभद्र। कीरत की लीक सुकुमार है।--श्याम०, पृ० २६।

कीरतन—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तन] दे० 'कीर्तन'।

कीरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] १ दे० 'कीर्ति'। २.। उ०—कुवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय। पावनहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी (शब्द०)।
२ राधिका की माता 'कीर्ति'।
यौ०—कीरतिकुमारी = राधा। उ०—पीतपट नंद जसुमति नवनीत दियौ कीरतिकुमारी सुखारी दई बाँसुरी।-रत्नाकर, भा० २, पृ०। कीरतिनंदिनी = राधा। उ०—रसिक रासि को रूप, तू ही कीरतिनंदिनी। रसिया ब्रज को भूप, करि किनि सुख चौचंदिनी।—ब्रज० ग्र ०, पृ० २।

कीरतनिया- -संज्ञा पुं० [हिं० कितनिया] दे० 'कीर्तनिया'।

कीरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृमि, हिं० किरम] दे० 'कृमि' उ०—करम किए कीरम हुआ नैन बिहूना सोय।—सं० दरिया, पृ० १८१।

कीरशब्दा--संज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्दश ताल का एक भेद जिसमें तीन आघात, एक खाली और फिर तीन आघात होते हैं।

कीरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कीड़ा] दे० 'कीड़ा'। उ०—बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुह परेउ न कीरा।—मानस, २। १६२।

कीरात—संज्ञा पुं० [अ० कीरात] चार जौ की तौल। किरात।

कीरि—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्तुति। प्रशंसा। २. स्तोत्र (को०)।
यौ०—कीरिचोदन = प्रशंसा की प्रेरणा करना। प्रशंसक को बढ़ावा देना।

कीरिमारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूँ (को०)।

कीरी— संज्ञा स्त्री० [सं० कीट अथवा कीटिका] १ महीन कीड़े छोटे कीड़े जो गेहूँ, जौ या चने की बाल के भीतर जाकर उसका दूध खा जाते हैं। २ चींटी। कीड़ी। उ०—साईं के सब जीव है कीरी कुंजर दोय।—कबीर (शब्द०)। ३ बहुत छोटे कीड़े। ४ व्याध या बहेलिया की स्त्री।

कीर्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] दे० 'कीरति'। उ०—कीर्त बधाऊँ तो नाम न मेरा काहे झूटा पछताऊँ घेरा।- दक्खिनी०, पृ० १०५।

कीर्ण--वि० [सं०] १. फैला हुआ। बिखरा हुआ। उ०—वधू, विदा दो उसी भाव से तुम हमें वन काँटे बने कीर्ण कुंकुम हमें।-साकेत, पृ० १४४। २. ढका हुआ (को०)। ३ धारण किया हुआ (को०)। ४. स्थित (को०)। ५ आहत। चोट खाया हुआ (को०)।

कीर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिखेरने या फैलानेवाली स्त्री। २ आच्छादन या गोपन करनेवाली स्त्री। ३ आघात करनेवाली स्त्री (को०)।

कीर्णित—वि० [सं० कीर्ण] अंकित। उत्कीर्ण। उ०—जहाँ तुम्हारे चरण-कमल, चक्कर कीर्णित कर जाते हैं।-कुंकुम, पृ० ४६।

कीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन। यशवर्णन। गुणकथन। २ राम संबंधी या कृष्णलीला संबंधी भजन और कथा आदि।
यौ०—हरिकीर्तन। नगरकीर्तन।
३. कथन। वर्णन। जैसे, गुण कीर्तन। ४. मंदिर। भवन (को०)।

कीर्तनकार—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तनकार] कीर्तन करनेवाला भक्त।

कीर्तना —संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कथन। वर्णन। २ प्रसिद्धि। ख्याति (को०)।

कीर्तनिया—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तन+हिं० इया (प्रत्य०)] कृष्ण लीला संबंधी भजन और कथा सुनानेवाला। कीर्तन करनेवाला। उ०—कीर्तनिया सो कोस बिस, संन्यासी सो तीस।—कबीर सा० सं०, पृ० ६२।

कीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] १ पुण्य। २ ख्याति। बड़ाई। नामवरी। नेकनामी। यश।

यौ०—कीर्तिस्तंभ।

३ सीता की एक सखी का नाम। ४ आर्या छंद के भेदों में से एक। इसमें १४ गुरु और १६ लघु वर्ण होते हैं ५ दशाक्षरी वृत्तों में से एक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण मे तीन सगण और एक गुरु होता है। जैसे,—शशि है सकलंक खरो री। अकलंकित कीर्ति किशोरी। ६ एकादशाक्षरी वृत्तो मे से एक वृत्त, जो इंद्रवज्र के मेल से बनता है। इसके प्रथम चरण का प्रथम अक्षर लघु होता है और शेष तीन चरणों के प्रथमाक्षर गुरु होते हैं। जैसे—मुकुंद राधा रमण उचारो। श्री रामकृष्ण भजिवो सँवारो। गोपाल गोविंदहि ते पसारो। ह्वै हैं जबै सिंधु भवै उवारो। ७ प्रसाद। ८ शब्द। ९ दीप्ति। १० मातृका विशेष। ११ विस्तार। १२ कीचड़। १३ एक ताल(संगीत)। १४ दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी।

कीर्तित—वि० [सं० कीर्तित] [वि० स्त्री० कीर्तिता] १ कथित। कहा हुआ। वर्णित। २. जिसका यश गाया गया हो। प्रशंसित। ३ ख्यात। ४ कुख्यात (को०)।

कीर्तितव्य—वि० [सं०] कीर्तन योग्य (को०)।

कीर्तिदा- वि० [कीर्ति(=यश)+दा] यशोदा।

कीर्तिमंत—वि० [सं० कीर्तिमत्] दे० 'कीर्तिमान'। उ०—प्रथमहि कीर्तिमंत सुत भयो। वसुदेव ताहि लये ही गयो।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

कीर्तिमान्-वि०[सं० कीर्तिमत्] यशस्वी। नेकनाम। मशहूर। विख्यात।

कीर्तिलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्तिलेखा] कीर्ति की रेखा या चिह्न। उ०—और आज गंगा के उत्तरी तट पर विदेह, वज्जि, लिच्छवि और मल्लो का जो गणतंत्र अपनी ख्याति से सर्वोन्नत है वह उन्हीं पूर्वजों की कीर्तिलेखा है।—इंद्र०, पृ० १२५।

कीर्तिवंत(पु)—वि० [सं० कीर्तिमत] दे० 'कीर्तिमान्'।

कीर्तिवान—वि० [हिं० कीर्तिमान] दे० 'कीर्तिमान्'।

कीर्तिशाली—वि० [सं० कीर्तिशालिन्] कीर्तिमान। यशस्वी।

कीर्तिशेष—वि० [सं० कीर्तिशेष] दिवंगत कीर्तिमान्। मरा हुआ यशस्वी। जिसकी कीर्ति ही शेष हो। नामशेष। आलेख्यशेष।

कीर्तिस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० कीर्तिस्तम्भ] १. वह स्तंभ जो किसी की कीर्ति को स्मरण कराने के लिये बनाया जाय। २. वह कार्य या वस्तु जिसके द्वारा किसी की कीर्ति स्थायी हो।

कील¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लोहे या काठ की मेख। काँटा। परेग। खूँटी।

यौ०—कील काँटा=(१) लोहार या बढ़ई का औजार। (२) हरवा हथियार। उ०—सभारो तो पहले ही से कील काँटे से लैस था।—किसाना०, भा० ३, पृ० ३८३।

२ वह मांस गर्भ जो योनि मे अटक जाता है ३ नाक में पहिनने का एक छोटा आभूषण, जिसका आकार लौंग के समान होता है। लौंग। ४ मुहाँसे की मासकील। ५ स्त्री प्रसंग मे एक प्रकार का आसन जिसे 'कीलासन' कहते है। ६ जाँते के बीचोबीच का खूँटा जिसके आधार पर वह खड़ा रहता है। ७ वह खूँटी जिसपर कुम्हार का चाक घमता है। ८ आग की लपट। अग्निशिखा। ९ दे० 'कीलक'। १० भाला (को०)। ११ अस्त्र (को०)। १२ कुहनी धँसाना या मारना (को०)। १३ सूक्ष्म कण (को०)। १४ शिव (को०)। १५ जुआरी। १६ एक प्रेत (को०)।

कील²—संज्ञा स्त्री० [देश०] खुगी या देवकास जो आसाम की गारो पहाड़ियो मे होती है।

कीलक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ खूँटा। कील। २. गौओं और बैलों के बाँधने का खूँटा। ३ तंत्र के अनुसार एक देवता। ४ किसी मंत्र का मध्य भाग। ५ वह मंत्र जिससे किसी अन्य मंत्र की शक्ति या उसका प्रभाव नष्ट कर दिया जाय। ६ ज्योतिष मे प्रभव आदि ६० वर्षों में से ४२ वाँ वर्ष।

विशेष—इस वर्ष अमंगलो का नाश होकर सब जगह मंगल और सुख होता है।

७ एक स्तव जो सप्तशती पाठ करने के समय किया जाता है। ८ केतु विशेष।

यौ०—कीलकन्याय।

कीलक²—(पु)संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] दे० 'किलक'। उ०—श्यामाशक्ति श्याम सुंदर जू कीलक सब थल मोहै।—श्यामा० पृ० १६३।

कीलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंधन। रोक। रुकावट। २ किसी मंत्र को कील देने का काम। एक तांत्रिक या मांत्रिक क्रिया।

कीलना—क्रि० स० [सं० कीलन] १. मेख जड़ना। कील लगाना। २ किसी मंत्र या युक्ति के प्रभाव को नष्ट करना। ३ साँप को ऐसा मोहित कर देना कि वह किसी को काट न सके। ४. अधीन करना। वश मे करना। ५ तोप की नली में आगे की ओर से कसकर लकड़ी का कुंदा ठोकना जिसमें तोप चलाई न जा सके।

कीलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० कील+मुद्रा] दे० 'कीलाक्षर'।

कीलसंस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम (को०)।

कीला—संज्ञा पुं० [सं० कील] १ बड़ी कील। काँटा। मेख। दे० 'कील ६, ७'। उ०—आमे पामे जो फिरे निपट पिसाने सोय। कीला से लगा रहै ताको विघन न होय।—कबीर सा०, पृ० १२।

कीलाक्षर—संज्ञा पुं० [सं० कील+अक्षर] एक प्रकार की बहुत प्राचीन लिपि जिसके अक्षर कील के आकार के होते थे। इस लिपि के ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व के कई लेख ईरान देश मे पाए गए है। उ०—ये लेख मिट्टी की पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों में लिखे गए हैं।—भोज० भा० सा०, पृ० १५।

कीलाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अमृत। २ जल। पानी। उ०—प्रेम कमन कीलाल जन पय पुष्कर वन वारि।—अनेकार्थ०, पृ० ४६।

कीकना—क्रि० अ० [अनु०] की की करके चिल्लाना। हर्ष, क्रोध या भयसूचक शब्द करना। चीत्कार करना।

कीकर—संज्ञा पुं० [सं० किङ्कराल] बबूल का पेड। उ०—छल कीकर कूँकाटि के बाँधो धीरज वार।—चरण० बानी, पृ० ६।

कीकरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कीकर] एक प्रकार। कीकर या बबूल जिसकी पत्तियाँ बहुत महीन महीन होती हैं।

कीकरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगूरा] एक प्रकार की सिलाई जिसमें कपड़े को कतरकर लहरदार या कँगूरेदार बनाते हैं।

क्रि० प्र०—काढना।—काटना।—बनाना।

कीकश—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल (को०)।

कीकस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हड्डी। २ एक कीड़ा। (को०)।

कीकस[2]—वि० [सं०] कठोर। दृढ़ (को०)।

कीकसमुख—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया (को०)।

कीकसास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कीकसमुख' (को०)।

कीका⑨ संज्ञा पुं० [सं० कीकट] घोड़ा।

कीकान†—संज्ञा पुं० [सं० केकाण] १ केकाण देश जो किसी समय घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था। २ इस देश का घोड़ा। ३ घोड़ा। अश्व। उ०—हरि जान लसे कीकान इमि उभउ कान उन्नत करे।—गोपाल (शब्द०)।

कीगिनी⑨—संज्ञा स्त्री० [अनु० या देश०] पक्षियों की बोली। उ०-प्रथम बानि कीगिनी जो होई। अडंम बानि समानी सोई।—कबीर० सा०, पृ० ८८०।

कीच—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] कीचड़। कर्दम। पंक। उ०—(क) गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलै नीच जल संगा। तुलसी (शब्द०)। (ख) पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारे अंग।—(शब्द०)।

कीचक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँस, जिसके छेद में घुसकर वायु हू हू शब्द करती है। २. पोला बाँस (को०)। ३ राजा विराट का साला और उसकी सेना का नायक।

विशेष—जब पांडव लोग राजा विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे, उस समय कीचक ने द्रौपदी से छेड़छाड़ की थी। इसी पर भीम ने उसे मार डाला था।

यौ०—कीचकजित् = भीम।

कीचड़—संज्ञा पुं० [हिं० कीच + ड़ (प्रत्य०)] १. गीली मिट्टी पानी मिली हुई धूल या मिट्टी। कर्दम पंक।

मुहा०—कीचड़ में फँसना = असमंजस में पड़ना। संकट में पड़ना। कठिनाई में पड़ना।

२. आँख का सफेद मल जो कभी कभी आँख के कोने पर आ जाता है।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।—बहना।

कीचम⑨—वि० [हिं० कीच + प्रा० म (प्रत्य०)] गंदी। मलिन। उ०-सुंदर सदगुरु ब्रह्म मय परि शिष कीचम दृष्टि। सूधी वोर न देखई देखै दर्पन पृष्टि।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६७२।

कीचर⑨†—संज्ञा पुं० [हिं० कीचड़] दे० 'कीचड़' उ०—चोवा चिव अरगजा आसा, कुमकुम कुमति बिसार। घर धर धूर कूर सम काढ़ो, करमन कीचर धोरी।—घट०, पृ० २८०।

कीट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रेंगने या उड़नेवाला क्षुद्र जंतु। कीड़ा। मकोड़ा।

विशेष—सुश्रुत ने कीटकल्प में इनके जो नाम गिनाए हैं और उनके काटने और डंक मारने आदि से जो प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पड़ता है, उसके विचार से उनके चार भेद किए हैं वातप्रकृति, जिनके काटने आदि से मनुष्य के शरीर में वात का प्रकोप होता है। पित्तप्रकृति, जिनके काटने से पित्त का प्रकोप होता है। श्लेष्मप्रकृति, जिनके काटने से कफ कुपित होता है। त्रिदोषप्रकृति, जिनके काटने से त्रिदोष होता है। अगिया (अग्निनामा), ग्वालिन (आवर्तक) आदि को वातप्रकृति, भिड़ भौंरा, ब्रह्मनी (ब्रह्मणिका), पतविढ़िया या छिउँकी (पत्रवृश्चिक), कनखजूरा (शतपादक) मकड़ी, गदहला (गर्दभी) आदि को पित्तप्रकृति तथा काली गोह आदि को श्लेष्मप्रकृति लिखा है। ऊपर की नामावली से स्पष्ट है कि कीट शब्द के अंतर्गत कुछ रीढ़वाले जंतु भी आ गए हैं, पर अधिकतर बिना रीढ़वाले जंतुओं ही को कीट कहते हैं। पाश्चात्य जीवतत्वविदों ने इन बिना रीढ़वाले जंतुओं के बहुत से भेद किए हैं, जिनमें कुछ तो आकारपरिवर्तन के विचार से किए गए हैं, कुछ पंख के विचार से और कुछ मुखाकृति के विचार से। हमारे यहाँ कीट शब्द के अंतर्गत जिन जीवों को लिया गया है, वे सब ऊष्मज और अंडज है। ऊष्मज तो सब कीट हैं, पर सब अंडज कीट नहीं हैं। जैसे, पक्षी मछली आदि को कीट नहीं कह सकते।

२ हीनता या तुच्छताव्यंजक शब्द। जैसे, ढिपकीट = तुच्छ हाथी। पक्षिकीट।

कीट[2]—वि० कड़ा। कठोर (को०)।

कीट[3]—संज्ञा पुं० [सं० किट्ट] जमी हुई मैल। मल।

क्रि० प्र०—जमना।—लगना।

कीटक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीड़ा। २ मागध जाति का चारण (को०)।

कीटक[2]—वि० कड़ा। कठोर।

कीटघ्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक (को०)।

कीटघ्न[2]—वि० कृमिनाशक। कीटाणुनाशक।

कीटज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम। रेशमी वस्त्र। कौशेय (को०)।

कीटज[1]—वि० कीट से उत्पन्न (को०)।

कीटजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाक्षा। लाख (को०)।

कीटनामा, कीटपादिका, कीटपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख (को०)।

कीटभृंग—संज्ञा पुं० [सं० कीटभृङ्ग] एक न्याय, जिसका प्रयोग उस समय होता है जब दो या कई वस्तुएँ बिलकुल एक रूप हो जाती हैं। उ०—भइ गति कीटभृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखे रघुराई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—भृंग या गुहांजनी (जिसे बिलनी और भँवरी भी कहते हैं) के विषय में यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीड़ों को अपनी बिल में पकड़ ले जाती है और उन्हें अपने रूप का कर लेती हैं।

यौ०—कीटभृंगन्याय।
कीटमणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुगनू। खद्योत।
कीटमवार—संज्ञा पुं० [सं० कीट, हिं० मवारना] एक संप्रदाय का नाम। उ०—पश्चिम ओर शारदा मठ कीटमवार संप्रदाय का क्षेत्र-सिद्धेश्वर देवता।—कबीर मं०, पृ० ६२।
कीटमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० कीटमातृ] लाख [को०]।
कीटाणु—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत छोटा कीड़ा। सूक्ष्मतम कीट। ऐसे छोटे कीड़े जो सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से दिखाई पड़ें या उनसे भी न देखे जा सकें।
विशेष—ये छोटे छोटे कीड़े आँखों से दिखाई नहीं देते और संख्यातीत परिमाण में पाए जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र से ही इन्हें देखा जा सकता है। पश्चिमी डाक्टरों ने रोगों का कारण कीटाणुओं को माना है। हैजा, ताऊन आदि रोग इन्हीं के कारण फैलते हैं।
कीटावपन्न—वि० [सं०] १ कीटग्रस्त। कीटयुक्त। २. कीड़ा द्वारा खाया हुआ [को०]।
कीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षुद्र कीट। छोटा कीड़ा। २. तुच्छ प्राणी या जीव [को०]।
कीटोत्कर—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। वमौट [को०]।
कीड़ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीड़ा, प्रा० कीड, कील] दे० 'क्रीड़ा'। उ०—अवहीं परा समुझि कै,कांधे पर दुख भार। खेल कीड़ कित पाइव, जव गवनव ससुरार।—इंद्रा०, पृ० ८१।
कीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कीट, प्रा० कीड] १ कीट। छोटा उड़ने या रेंगनेवाला जंतु। मकोड़ा। जैसे, कनखजूरा, विच्छू, भिड़ आदि।
यौ०—कीड़ा फतिंगा। कीड़ा मकोड़ा।
२ कृमि। सूक्ष्म कीट।
मुहा०—कीड़े काटना=चुनचुनाहट होना। बेचैनी होना। चंचलता होना। जी उकताना। जैसे, दम भर बैठे नहीं कि कीड़े काटने लगे। कीड़े पड़ना=(१) (वस्तु में) कीड़े उत्पन्न होना। जैसे,-घाव में कीड़े पड़ना। पानी में कीड़े पड़ना (२) दोष होना। ऐब होना। जैसे—इसमें क्या कीड़े पड़े हैं जो नहीं लेते। कीड़े लगना=बाहर से आकर कीड़ों का किसी वस्तु को खाने या नष्ट करने के लिये घर करना। जैसे—कपड़े कागज आदि में कीड़े लगना।
३ साँप। ४ जूँ। खटमल आदि। ५ थोड़े दिन का बच्चा।
कीड़ाकीड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडाक्रीडित] बच्चों का एक खेल। उ०—सामने गाँव के बच्चे कीड़ाकीड़ी का खेल खेल रहे थे।—फूलो०, पृ० ८।
कीड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कीड़ा का अल्पार्थक स्त्री०] १. छोटा कीड़ा। २. चींटी। पिपीलिका। उ०—कीड़ी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ३६।
कीतमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जेठी मधु। मुलेठी [को०]।
कीतवुⓟ—वि० [हिं० कितो या केतो] कितना ही। उ०—पूजौ याहि भजो जो चाहो। बिनु माँगे कीतवु सर गाहो।—नंद० ग्र०, पृ० १६०।
कीतवाⓟ—वि० [सं० कीयत्, हिं० कितना] कितने ही। बहुत से। उ०—हरि बिन सर्व भया हैराना। पढ़ि पढ़ि भकत कीताना।—राम० धर्म०, पृ० ३७३।
कीदउँⓟ—प्रत्य० [हिं० कीधौं] दे० 'कीधौं'।
कीदृक्ष—वि० [सं०][वि० स्त्री०कीदृक्षी] कैसा (आकार या प्रकृति में) [को०]।
कीदृश्, कीदृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कीदृशी] कैसा (रूप या स्वभाव में) [को०]।
कीन[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ घृणा। २ शत्रुता ३. मनोमालिन्य। ४ प्रतिशोध। उ०—हर चार तरफ कारे हसद बुगजा कीन का, देखो जिधर को जा के तमाशा है तीन का।—कबीर मं०, पृ० २२३।
कीन[२]ⓟ—वि० [फ़ा० कीनवर] शत्रुता या वैमनस्य रखनेवाला। द्वेषी। उ०—जो कोइ कीन जानिहै मोहीं, तेहिका दूरि बहावों।—जग० बानी०, पृ० ११।
कीन[३]—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।
कीन[४]ⓟ†—वि० [हिं० करना क्रिया का भूत कृदंत रूप] किया। किया हुआ।
कीनखाब—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमख्वाब] दे० 'कमखाब'।
कीनना†—क्रि० स० [सं० क्रीणन] खरीदना। मोल लेना। क्रय करना।
कीनरⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरी'। उ०—अनहद ताल पखाउज कीनर झाँना सुमति विचारा।—सं० दरिया, पृ० १५५।
कीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० कीनह्] द्वेष। वैर। शत्रुता। दुश्मनी। उ०—किवर होर कीना कर पाक इसते सीना।—दक्खिनी०, पृ०५२।
क्रि० प्र०—रखना।
यौ०—कीनाकश=द्वेष रखनेवाला। मन में मैल रखनेवाला। कीनापरवर=कीना रखनेवाला। कीनावर=मन में दुर्भाव या द्वेष रखनेवाला।
कीनार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट या बुरा आदमी [को०]।
कीनाश[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ यम। मृत्युदेवता। २ एक प्रकार का बानर। ३. कसाई। वधिक [को०]।
कीनाश[२]—वि० १. गरीब। दरिद्र। अकिंचन। २ छोटा। क्षुद्र। ३ थोड़ा। अल्प। ४ धोखे से मारनेवाला। ५. खेती करनेवाला। ६ क्रूर। निर्दय [को०]।
कीनास—संज्ञा पुं० [सं० कीनाश] १. यम। यमराज।—(डिं०)। २ एक प्रकार का बंदर। ३. किसान। खेतिहर।
कीनिया†—संज्ञा पुं० [फ़ा० कीनह्] कपट रखनेवाला। वैर रखनेवाला।
कीप[१]—संज्ञा स्त्री० [अ० कीफ़्] वह चोंगी जिसे तंग मुँह के बरतन में इसलिये लगाते हैं जिसमें तेल, अर्क आदि द्रव पदार्थ उसमें ढालते समय बाहर न गिरे। छुच्छी।
कीप[२]ⓟ संज्ञा पुं० [डिं०] रस। उ०—कजली वन अलगो घणो, मलगो सिंहल दीप। किम इण वन लै केहरी, कुंभा थल री कीप।—बाँकी ग्र०, भा० १, पृ० ३५।

किसमिस— संज्ञा पुं० [फा० किशमिश] दे० 'किशमिश'।

किसमिसी—वि० [फा० किशमिशी] दे० 'किशमिशी'।

किसमी(पु)— संज्ञा पुं० [अ० कसबी] श्रमजीवी। कुली। मजदूरा। उ०—किसमी, किसान, कुलवनिक, भिखारी, भाट, चाकर, चपल, नट, चोर, चार चेटकी।—तुलसी (शब्द०)।

किसल— संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'किसलय'। उ०—नव किसल धनुक जनु कनक वेलि। तिरि चलिय जमुन जल कदम केलि। लटके सुवाल वैनिय सुरग। सोमैं सु दुति विच जन तरग।—पृ० रा०, २१३७४।

किसलय— संज्ञा पुं० [सं०] दल। नवपल्लव। नया पत्ता।

किसलै(पु) — संज्ञा पुं० [सं० किसलय] दे० 'किसलय'। उ०—कचन गुच्छ विचित्र सुच्छ जहँ किसलै लाल लखाही।—श्यामा० पृ०,११८।

किसा(पु)—वि० [सं० कीदृश (कीदृशक)], प्रा० किसउ] दे० 'कैसा'। उ०—दिन दिन जोवन तन खिसइ, लाभ किसा कउ लेसि।—ढोला दू० १७७।

किसान[1]— संज्ञा पुं० [सं० कृषाण प्रा० किसान] १ कृषि या खेती करनेवाला। खेतिहर। २ गाँव में नाई, बारी आदि जिनके घर कमाते हैं उन्हें किसान कहते हैं।

किसान[2](पु)— संज्ञा स्त्री० [सं० कृशानु] आग। ज्वाला। उ०—भूपति के सुनि के वचन, उर मे उठी किसान। उठी सभा मृग सिंह ज्यो वुल्लिव नहीं जुवान।—प० रासो०, पृ० ११९।

किसानी[1]— संज्ञा स्त्री० [हिं० किसान] खेती। कृषि कर्म। किसी का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

किसानी[2](पु)—वि० कृषि सवधी। खेती से सवंध रखनेवाला।

किसमी— संज्ञा स्त्री० [अ० किस्म] दे० 'किस्म'।

किसी[1]—सर्व०, वि० [हिं० किस+ही] हिंदी के प्रश्नार्थक 'क' शृंखला का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता है। जैसे, किसी ने, किसी को, किसी पर आदि।

किसी[2]—वि० हिंदी के प्रश्नार्थक 'क' शृंखला का वह रूप जो उसे उस समय प्राप्त होता है जब उसके विशेष्य में विभक्ति लगाई जाती है।

मुहा०—किसी न किसी = कोई न कोई। कोई एक। एक न एक।

किसीस(पु)— संज्ञा पुं० [सं० कीशेश] हनुमान। वानरेश। उ०—करा जोड रूप कीस, साम पाय नाम सीस। वाघ चाल महावीर, कुदियो किसीस।—रघु० रू०, पृ० १९५।

किसु(पु)—सर्व० [सं० कस्य प्रा० कोस, अप किसु] किसका। उ०—नारद कर उपदेश मुनि कहहु वसेउ किसु गेह।—मानस, १।७८।

किसुन(पु)†— संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] श्री कृष्ण।

किसू(पु)†— सर्व० [हिं० किसु] दे० किसी'। उ०—अरे हमना किसू के हैं अगर कोई ना हमारा है।—संत तुरसी०, पृ० ३३।

किसेन— संज्ञा पुं० [सं० कृषाण हिं० किसान] दे० 'किसान'। उ०—घण माल ज्युँही असुराण घड़ा। खित आवृत मेन किसेन खड़ा।—रा० रू०, पृ० ३३।

किसोरि(पु)— संज्ञा स्त्री० [सं० किशोरी] दे० 'किशोरी'। उ०—सुनि निकसी नव लाडिली श्री राधा राज किसोरि।—नद० ग्रं०, पृ० ३८३।

किसोरी(पु)— संज्ञा स्त्री० [सं० किशोरी] दे० 'किशोरी'।

किस्त— संज्ञा स्त्री० [अ० किस्त] १ ऋण या देन चुकाने का वह ढग जिसमे सब रुपया एकबारगी न दे दिया जाय, बल्कि उसके कई भाग करके प्रत्येक भाग के चुकाने के लिये अलग अलग समय निश्चित किया जाय। जैसे—सब रुपए एक साथ न दे सको तो किस्त कर दो।

यौ०—किस्तबंदी।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।

२ किसी ऋण या देन का वह भाग जो किसी निश्चित समय पर दिया जाय। जैसे—उसके यहाँ एक किस्त लगान बाकी है।

यौ०—किस्तवार।

क्रि० प्र०—अदा करना।—चुकाना।—देना।

३ किसी ऋण या देन के किसी भाग के चकाने का निश्चित समय। जैसे,—दो किस्तें बीत गईं अभी तक रुपया नही आया।

किस्तवदी— संज्ञा स्त्री० [अ० किस्त+फा० बंदी] थोड़ा थोड़ा करके रुपया अदा करने का ढग।

किस्तवार—क्रि० वि० [फा० किस्तवार] १. किस्त के ढंग से। किस्त किस्त करके। २. हर किस्त पर। जैसे,—वह किस्तवार नजराना लेता है।

किस्ती(पु)— संज्ञा [फा० किश्ती] दे० 'किश्ती'। उ०—साहित्र किस्ती चढ़ी, पठाई मुनसी 'कसवी'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ४१५।

किस्न(पु)— संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—किस्न कै करा चढा ओहि माथे। तव सो छूट अव छूट न नाथे।—जायसी ग्र०, (गुप्त) पृ० १९६।

किस्म— संज्ञा पुं० [अ० किस्म] १ प्रकार। २. भेद। भाँति। तरह। ३. ढंग। तर्ज। चाल। जैसे,—वह तो एक अजीव किस्म का आदमी है।

किस्मत— संज्ञा स्त्री० [अ० किस्मत] १. प्रारब्ध। भाग्य। नसीव। करम। तकदीर। उ०—यह न थी हमारी किस्मत कि विसाले यार होता। अगर और जीते रहते यही इंतजार होता।—कविता कौ०। भा० ४, पृ० १९।

मुहा०—किस्मत आजमाना = भाग्य की परीक्षा करना। किसी कार्य को हाथ मे लेकर देखना, कि उसमे सफलता होती है या नही। उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायें। तू ही जब खजर आजमा न हुआ।—गालिव०। किस्मत उलटना = भाग्य खराव हो जाना। किस्मत खुलना = भाग्य अच्छा होना। किस्मत चमकना = भाग्य प्रवल होना। किस्मत जगना या जागना = भाग्य का अनुकूल होना। किस्मत पलटना = भाग्य में परिवर्तन होना। प्रारब्ध का अच्छे से बुरा या बुरे से अच्छा होना। किस्मत फिरना = दे० 'किस्मत पलटना'। किस्मत फूटना = भाग्य का बहुत मद हो जाना। किस्मत लड़ना =

(१) भाग्य की परीक्षा होना। जैसे,—इस समय कई आदमियों की किस्मत लड़ रही है, देखें किसे मिलता है। (२) भाग्य खुलना = प्रारब्ध अच्छा होना। जैसे,—उनकी किस्मत लड़गई वे इतने ऊँचे पद पर पहुँच गए। किस्मत का लिखा पूरा होना = भाग्य का फल मिलना।

यौ०—किस्मतवाला = भाग्यवान्। बड़े भाग्यवाला। किस्मत का धनी = जिसका भाग्य प्रबल हो। भाग्यवान्। किस्मत का हेठा = जिसका भाग्य मंद हो। अभागा। बदकिस्मत। किस्मत का फेर = भाग्य की प्रतिकूलता। किस्मत का लिखा = वह जो भाग्य में लिखा है। करमरेख।

२. किसी प्रदेश का वह भाग जिसमें कई जिले हों और जो एक कमिश्नर के अधीन हो। कमिश्नरी।

किस्मतवर—वि० [अ० किस्मत + फा० वर] भाग्यवान्। उ०—इस दुनिया में आज कौन मुझसे बढ़कर है किस्मतवर।—ठंडा०, पृ० २५।

किस्सा—संज्ञा पुं० [अ० किस्सह] १ कहानी। कथा। आख्यान।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनना।—सुनाना, इत्यादि।

यौ०—किस्सा कहानी = झूठी कल्पित कथा। २ वृत्तांत। समाचार। हाल। जैसे,—उनका किस्सा बड़ा भारी है।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनना।

मुहा०—किस्सा कोताह या मुख्तसर = (क्रि० वि०) थोड़े में संक्षेप में। सारांश। किस्सा नाधना = अपनी बीती सुनाना। अपने कष्ट का वृत्तांत आरंभ करना। जैसे,—अब चलो, वे अपना किस्सा नाधेंगे तो रात हो जायगी। किस्सा बढ़ाना = किसी वृत्तांत का विस्तार से कहना।

३. कांड। झगड़ा। तकरार।

मुहा०—किस्सा खड़ा करना = कांड खड़ा करना। झगड़ा खड़ा करना। किस्सा खतम करना, चुकाना, तमाम करना या पाक करना = (१) झगड़ा मिटाना। झंझट दूर करना। (२) किसी वस्तु या विषय को समूल नष्ट करना। किस्सा खतम होना, चुकना, तमाम या पाक होना = (१) झगड़ा मिटना। (२) किसी वस्तु या विषय का समूल नष्ट होना। किस्सा मोल लेना = झगड़ा खड़ा करना। किस्सा नाधना = झगड़ा खड़ा करना।

किस्साकहानी—संज्ञा पुं० [हिं० किस्सा + कहानी] कल्पित बात। झूठी या मनगढ़ंत बात। निरर्थक चीज।

किस्सागो—संज्ञा पुं० [फा० किस्सागो] १. कहानी कहनेवाला। २. कहानीकार। कथाकार। उ०—प्रेमचंद पैदायशी किस्सागो थे।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २१७।

किस्सागोई—संज्ञा स्त्री० [फा० किस्सागोई] कहानी कहना। उ०—उनकी वर्णनात्मक प्रवृत्ति में कथक्कड़ी स्वभाव में किस्सागोई में परिवर्तन पाया गया है।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १६८।

किह(पु)[1]—सर्व० [सं० कः] कोई। किसी। उ०—दुज धनि बेद सुबद्ध बरन तजे न किह तक्कत नयन। बीसल नारद रह्यू भय प्रकन्नि लहै न कहू निस दिन।—पृ० रासो०, १।४१२

किह(पु)[2]—अव्य० [प्रा० कहँ-कहि, कहो] दे० 'कहाँ'। उ०—ते देखी तिरा पूछियउ, कुण ए राजकुमारि। किहू पीहर किहू सासरउ, विगतइ कहइ विचारि।—ढोला०, दू० ८६।

किहकल—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया।

किहाँ(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] के यहाँ। उ०—वेदें तीरथ वरत करावे अनबोले किहा आवें। चलते चलने पांव गिराना रोवत घर को आवें।—सं० दरिया, पृ० १२४।

किहि[1](पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'किसी'। किसे। उ०—कन्ह के बन मोर्नी करी खाती। हरिहि कहा, गोप किहि बाती।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

किहि[2](पु)—सर्व वि० [सं० कम् + हिं०] किसको किसे। उ०—काहू न करै अबला प्रबल, किहि जग काल न खाय।—ह० रासो, पृ० २८।

किहि—सर्व० [हिं०] दे० 'किस'। उ०—तुच्छ, अल्प, लव, सूक्ष्म, तनु, निपट किशोदर थोर। कहिं वलि एतौ मान सचि, गाढ्यो है किहि ओर।—नंद० ग्रं०, पृ० ९७।

किहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुहनी'।

कींगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरी'। उ०—बाजत किंगरी निरवना, सुनि सुनि चित भइ बावरी, रीझे मन सुलतान।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १६।

कीच—संज्ञा पुं० [हिं० कीच] दे० 'कीचड़'। उ०—कुमति कीच चेला भरा गुरू ज्ञान जल होय। जनम जनम का मोरचा, पल में डारे धोय।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १०।

की[1]—प्रत्य० [हिं० का] हिं० विभक्ति 'का' का स्त्री०। जैसे,—उसकी गाय।

की[2]—क्रि० स० [सं० कृत, प्रा० किय] हिं० 'करना' के भूतकालिक रूप 'किया' का स्त्री०। जैसे,—उसने बड़ी सहायता की।

की[3]—अव्य० [हिं० 'कि' का विकृत रूप] १ क्या। उ०—अपयश योग की जानकी, मणि चोरी की कान्हि।—तुलसी (शब्द०) २ या। या तो। उ०—की मुख पट दीन्हे रहै, की यथार्थ भाखत।—तुलसी (शब्द०)।

की[4]—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कठिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो। कुंजी २. चाबी। ताली।

कीक—संज्ञा पुं० [अनु०] चीत्कार। चीख। चिल्लाहट। शोरगुल। क्रि० प्र०—देना।—मारना। उ०—वहँ काक बिपुल शृगाल गीध बलाक आमिष भखत हैं। योगिनि जमाति कराल कीक देत पल भनितखत हैं।—रघुराज (शब्द०)।

कीकट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कीकटी] १ मगध देश का प्राचीन वैदिक नाम।

विशेष—तंत्र के अनुसार चरणाद्रि (चुनार) से लेकर गृद्धकूट (गिद्धौर) तक कीकट देश है। मगध उसी के अंतर्गत है।

२. [स्त्री० कीकटी] घोड़ा। ३. प्राचीन काल की एक अनार्य जाति जो कीकट देश में बसती थी।

कीकट[2]—वि० [वि० स्त्री० कीकटी] १ निर्धन। गरीब। २ लोभी। कृपण। कंजूस।

होता है। इसका रंग खाकी होता है और यह नाव के मस्तूल बनाने के काम में अधिक आता है।

किलोहड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] छोटी उम्र के बैल। उ०—काढ़ै जीभ किलोहड़ा ध्रध न झालै भार।—बाकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४१।

किलौनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलनी] दे० 'किलनी'।

किल्की, किल्वी—संज्ञा पुं० [किल्किन्, किल्विन्] घोड़ा [को०]।

किल्विख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किल्विष] दे० 'किल्विष'। उ०—ऐन वृजिन दुकृत दुरित अघ मलीन मति पंक। किल्विख कलमख कलुष पुनि कस्मल ममल कलंक।—अनेकार्थ०, पृ० ५५।

किल्विष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ अपराध। ३. बीमारी। ४ विपत्ति। ५ धूर्तता। ठगी। ६. शत्रुता। वैर [को०]।

किल्विषी—वि० [किल्विषिन्] पापी। पातकी [को०]।

किल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ० किल्लत] १ कमी। न्यूनता। २ संकोच। तंगी। ३ दुर्लभ होना। दुर्लभता।

किल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० किल्ल] बहुत बड़ी कील या मेख। खूँटा। २ लकड़ी की वह मेख जो जाँते के बीचोबीच गड़ी रहती है और जिसके चारो ओर जाँता घूमता रहता है। कील।

मुहा०—किल्ला गाड़कर बैठना = अटल होकर बैठना।

किल्ला—संज्ञा पुं० [अ० किलअ] दे० 'किला'।

किल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] १ कील। खूँटी। मेख। उ०—भयो तुँवर मतिहीन करिय किल्ली तैं ढिल्लिय।—चंद (शब्द०)। २ सिटकिनी। चिल्ली। ३ किसी कल या पेंच की मुठिया जिसे घुमाने से वह चले।

क्रि०प्र०—ऐंठना।—घुमाना।—दबाना।

मुहा०—किसी की किल्ली किसी के हाथ में होना = किसी का वश किसी पर होना। किसी की चाल किसी के हाथ में होना। जैसे—वह हम से भागकर किधर जायगा, उसकी किल्ली तो हमारे हाथ में है। किल्ली घुमाना या ऐंठना = दाँव पाँच चलाना। युक्ति लगाना। जैसे,—उसने न जाने कैसी किल्ली ऐंठ दी है वहाँ कोई हमारी बात नहीं सुनता।

किल्विष—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। अपराध। दोष। २ रोग। व्याधि।

किल्होरा†—संज्ञा पुं० [देश०] १ बछड़ा। २.किशोर अवस्था का बालक। उ०—पतला छरहरा क्या ही खूबसूरत किल्होर था?—रति०, पृ० १३८।

किव(पु)—अव्य० [अप० किवँ] कैसे। उ०—आज उमाहउ मो घणउ, ना जाणूँ किम केम। पुरुष परायउ वीर वड, ग्रहइ फुरक्कइ केम।—ढोला०, दू० ५१८।

किवरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कपाटिका] छोटा किवाड़। किवाड़ी। उ०—(क) खुली किवरिया मिटि अँधियरिया।—धरम०, पृ० ५३। (ख) आठ मरातिब दस दर्वाजा, नौं मे लगी किवरिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५५।

किवाँच—संज्ञा पुं० [हिं० केवाच] दे० 'केवाँच'।

किवाट—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] दरवाजा। कपाट। किवाड़। उ०—उठिठी कुँवर प्रथिराज लषि, गयौ महल निज मद्धि। दै किवाट मिति थाट जुव, मच्यौ कलह सुन मद्धि।—पृ० रा०, ५।८८।

किवाड—संज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाड] [स्त्री० किवाड़ी] लकड़ी का पल्ला जो द्वार बंद करने के लिये द्वार की चौखट में जड़ा जाता है। (एक द्वार में प्राय दो पल्ले लगाए जाते हैं)। पट। कपाट। उ०—(क) गोट गोट सखि सब गेलि बहराय। बजर किवाड पहुँ देल्हि लगाय।—विद्यापति, पृ० २७९। (ख) भूल गए रस रीति अनीति किवाड न खोले।—कविता कौ०, भा० २, पृ० १८०।

क्रि० प्र०—उढ़काना।—खोलना।—भड़काना।—बंद करना।

मुहा०—किवाड़ देना लगाना या भिड़ाना = किवाड बंद करना। किवाड़ खटखटाना = किवाड़ खुलवाने के लिये उसकी कुंडी हिलाना या उसपर आघात करना।

किवाडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किवाड़ + ई (प्रत्य०)] दे० 'किवाड'।
उ०—दिन बड़ी कठिनाई के साथ बीतने लगे, भूख भूरी होती है, जब कोई भ्गोत न रहा, तो घर की कड़ी और किवाडी तक बेंच दी गई पर ऐसे कितने दिन चल सकता है।—ठेठ०, पृ० ४३।

किवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाड़, हिं० किवाड़] दे० 'किवाड'। उ०—ज्यौं मैं खोले किवार सौ ही आदि न लवढ़ि गो गरे।—घनानंद, पृ० ३९९।

किवारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किवाडी] दे० 'किवाड'। उ०—नाम पान मैं कहौं विचारी। जातें छूटै भर्म किवारी।—कबीर सा०, पृ० ९९५।

किशदा—संज्ञा पुं० [फा० किश्ता] एक प्रकार का छोटा शफतालू।

विशेष—इसका मुरब्बा पड़ता है और इसकी गुठलियों से चाँदी साफ की जाती है।

किशनतालू—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णतालु] वह हाथी जिसका तालू काला हो।

विशेष—ऐसा हाथी अच्छा समझा जाता है।

किशमिश—संज्ञा पुं० [फा०] [वि० किशमिशी] सुखाया हुआ छोटा लंबा बेदाना अंगूर। सुखाई हुई छोटी दाख। वि० दे० 'अंगूर'।

किशमिशी[1]—वि० [फा०] १ किशमिश का। जिसमें किशमिश हो। २ किशमिश के रंग का।

किशमिशी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अंबीरी रंग।

विशेष—यह किशमिश के ऐसा होता है और इस प्रकार बनता है—पहले कपड़े को धोकर उसे हड़ के पानी में डुबाते हैं फिर गेरू देकर हल्दी और उसके उपरांत तुन या अनार की छाल में रंगकर सुखा लेते हैं। दूसरी रीति यह है कि कपड़े को ईगुर में रंगकर सुखाते हैं और कटहल की छाल, कुसुम हरसिंगार और तुन के फूलों के अर्क में उसे रंगते हैं।

किशल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'किशलय' (को०)

किशलय—संज्ञा पुं० [सं०] नया निकला पत्ता। कोमल पत्ता। कल्ला। उ०—नूतन किशलय मनहु कृशानू।—तुलसी (शब्द०)।

किशोर[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० किशोरी] ११ वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था का।

यौ०—किशोरावस्था।

किशोर²—संज्ञा पुं० [सं०] १ ११ से १५ वर्ष तक की अवस्था का बालक।

यौ०—युगलकिशोर।

२ पुत्र। बेटा। जैसे—नंदकिशोर। ३—घोड़े का बछेड़ा। ४. सिंह आदि का बच्चा जो जवान न हो। जैसे, केसरीकिशोर, सिंहकिशोर। ५ सूर्य (को०)।

किशोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा बालक। २ किसी जीव का बच्चा। उ०—शशिहि चकोर किशोरक जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

किशोरी - संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर की मादा संतान। जैसे, बछेड़ी। २. युवती। तरुणी। ३ पुत्री। जैसे, जनककिशोरी वृषभानुकिशोरी।

किश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ शतरंज के खेल मे बादशाह का किसी मोहरे की घात मे पड़ना। इसे 'शह' भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—लगना

२ खेती। कृषि।

यौ०—किश्तकार = किसान। काश्तकार। किश्तकारी = खेती का काम। किसानी। किश्तजार = वह भूभाग जहाँ चारो ओर हरे भरे खेत हो।

किश्तवार- संज्ञा पुं० [फा० किश्त = खेत + वार (प्रत्य०)] पटवारियों का एक कागज जिसमे खेतो का नंबर, रकबा आदि दर्ज रहता है।

किश्तिया¹(पु)— संज्ञा स्त्री० [फा० किश्ती] दे० 'किश्ती'। उ०—कहे दरिया गुन खेंवो किश्तिया होय पार।—सं० दरिया, पृ० ११।

किश्तिया²—वि० [फा० किश्ती + हिं० इया (प्रत्य०)] किश्ती के आकार की। जैसे किश्तिया टोपी।

किश्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ नाव।

यौ०—किश्तीनुमा = नाव के आकार का।

२ एक प्रकार की छिछली थाली या लंबी तश्तरी जिसमे रखकर किसी को कुछ सौगात देते हैं। ३ शतरंज का एक मोहरा जिसे हाथी भी कहते हैं।

किश्तीनुमा—वि० [फा०] नाव के आकार का। जिसके दोनो किनारे टेढे या धनुषाकार होकर दोनों छोरो पर कोना बनाते हुए मिलें। जैसे—किश्तीनुमा टोपी।

किष्किंध—संज्ञा पुं० [सं० किष्किन्ध] १. मैसूर के आसपास के देश का प्राचीन नाम।

विशेष—राम के समय मे यह देश बिलकुल जंगल था और यहाँ का राजा था।

२ एक पर्वत जो किष्किंध देश मे है।

किष्किंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० किष्किन्धा] १. किष्किंध पर्वतश्रेणी। २ किष्किंध पर्वत की गुफा। ३ रामायण का एक कांड जिसमे किष्किंधा संबंधी राम का चरित्र वर्णित है।

किष्किंध्य—संज्ञा पुं० [सं० किष्किन्ध्य] दे० 'किष्किंध' (को०)।

किष्किंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० किष्किन्ध्या] दे० 'किष्किंधा' (को०)।

किष्कु¹—संज्ञा पुं०[सं०]१ २४ या ४२ अंगुल का परिमाण। २ बित्ता। बालिश्त। बिलाद। ३ लंबाई नापने का एक पैमाना (को०)।

किष्कु²— वि० १ घृणा। नहूँशोर। २ बुरा (को०)।

किष्कुपर्वा—संज्ञा पुं० [सं० किष्कुपर्वन्] १ ईख। गन्ना। २. नरकट। ३ बाँस (को०)।

किष्ण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ० —किष्ण विरह गोपिका भई व्याकुल सु विकल मन।—पृ० रा०, २।३८८।

किस¹—सर्व० [सं० कस्य] 'कौन' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे —किसने, किसको, किसमे इत्यादि।

किस²— वि० 'कौन' का वह रूप जो उसे उस समय प्राप्त होता है जब उसके विशेष्य मे विभक्ति लगाई जाती है। जैसे, किस व्यक्ति को, किस वस्तु मे।

विशेष—इस शब्द के अंत मे जब निश्चयार्थक 'ही' लगता है, तब उसका रूप 'किसी' हो जाता है।

किसत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्त] दे०'किस्त'। उ०—च्यार किसत कीधी चलू दिक्खण हुई राह।—रा० रू०, पृ० ३५०।

किसती(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० किश्ती] दे० 'किश्ती'।

किसन(पु) - संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'। उ०—राम किसन कित्ती सरस कहन लगे वहु वार। छुट्टच आव कवि चंद की सिर चहुवाना भार।—पृ० रा०, २।५८५।

यौ०—किसन दीपायन = कृष्ण द्वैपायन अर्थात् व्यास। उ०—वालमीक रिषराज किसन दीपायन धारिय।—पृ० रा०, २।५८६।

किसनई -संज्ञा स्त्री० [हिं० किसान + ई] (प्रत्य०) किसान का काम। किसानी। खेती।

किसना(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णा] कृष्णा नाम की दक्षिण की एक नदी। उ०—सीता धुनी पयस्वनी गोदावरी गहीर। ऊँनत भद्रा पूरणा किसना निरमल नीर।—बाँकी ग्रं०,भा० ३, पृ० ७३।

किसना(पु)²—वि० स्त्री० [सं० कृष्णा] काली। अँधेरी। उ० —उर नभ जितै ऊगमै, औ संतोष उदोत नर तिसना किसना निसा, मिटे इतै नँह मीत।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५४।

किसनू(पु) — संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] कृष्ण। वासुदेव।

किसब(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कस्ब] १ रोजगार। व्यवसाय। २ कारीगर। कला कौशल। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न वनिज भीख जानत न कूर कछु किसब कबारु है।—तुलसी (शब्द०)।

किसवत—संज्ञा स्त्री० [अ० किसवत] १ एक थैली जिसमे नाई और जर्राह अपने उस्तरे, कैंची आदि औजार रखते हैं। २. पोशाक। उ०—रूपा और सोना तूँ एक बार देखत। अकड़ता है क्यों पहन जर तार किसवत।—दक्खिनी०, पृ० २५५।

किसम¹—संज्ञा स्त्री० [अ० कसम] दे० 'कसम'।

किसम²—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्म] दे० 'किस्म'।

यौ०—किसम किसम का = भाँति भाँति का। अनेक प्रकार का।

किसमत—संज्ञा स्त्री० [अ० किस्मत] दे० 'किस्मत'।

आनंद प्रकट करना। किलकार मारना। हर्षध्वनि करना। उ०—(क) तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गहि पलका की पाटी डोलै। किलकि किलकि दसननि दुति खोलै।—लाल (शब्द०)। (ग) प्रात आँसू ढुलकाकर भी खिली पखुड़ियाँ पंकज किलके।—हिम त०, पृ० ३६।

किलकाना—क्रि० अ० [अ०कलक, हिं० किलक] व्याकुल होना। दुखी होना। उ०—बिछुरि परी सहचरिन संग तें डोलत बन किलकाइ रे।—घनानंद, पृ० ५३७।

किलकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] वह गंभीर और अस्पष्ट स्वर जिसे लोग आनंद और उत्साह के समय मुँह से निकालते हैं। हर्षध्वनि। उ०—कलरव करते किलकार रार ये मौन मूक तृण तरुदल पर। तकते अपलक निश्चल सोए उड़ उड़ पत्र-ड़ियों पर सुंदर।—युग०, पृ० ६०।

किलकारना—क्रि० अ० [अनु०] किलकार भरना। चिड़ियों का प्रसन्नतापूर्वक बोलना। चहचहाना। उ०—खग कुल किलकार रहे थे, कलहंस कर रहे कलरव।—कामायनी, पृ० २८५।

किलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०किलकना] वह गंभीर और अस्पष्ट स्वर जिसे लोग आनंद के समय मुँह से निकालते हैं। हर्षध्वनि।

क्रि० प्र०—देना।—मारना। उ०—चले हनुमान मारि किलकारी।—तुलसी (शब्द०)।

किलकिंचित—संज्ञा पुं० [सं० किलकिञ्चत्] संयोग शृंगार के ११ हावों में से एक, जिसमें नायिका एक ही साथ कई एक भावों को प्रगट करती है। जैसे,—(क) सी करति ओठन बसीकरति आँखिन रिसौंही सी हँसी करति भौंहनि हँसी करनि।—देव (शब्द०)। (ख) कहति, नटति, खिझति, मिलति, खिलति, लजि जात। भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात।—बिहारी (शब्द०)।

किलकिल[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झगड़ा। लड़ाई। वादविवाद। किटकिट। जैसे,—रोज की किलकिल अच्छी नहीं।

यौ०—दाँता किलकिल।

किलकिल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ आनंद या हर्षसूचक ध्वनि। किलकारी। २ शिव [को०]।

किलकिला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हर्षध्वनि। आनंदसूचक शब्द। किलकारी। उ०—लाँघि सिंधु एहि पारहिं आवा। शब्द किलकिला कपिन सुनावा।—तुलसी (शब्द०)।

किलकिला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कूकल] मछली खानेवाली एक छोटी चिड़िया। उ०—मेरे कान सुजान तुव नैन किलकिला आइ। हृदय सिंधु ते मीन मन, तुरत पकरि लै जाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—जिस पानी में मछलियाँ होती हैं, उस पानी के ऊपर लगभग १० हाथ की ऊँचाई पर उड़ती रहती है। मछली को देखकर अचानक उसपर टूटती है और उसे पकड़कर उड़ जाती है।

किलकिला[3]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] समुद्र का वह भाग जहाँ की लहरें भयंकर शब्द करती हों। उ०—पुनि किलकिला समुद्र महँ आई। गा धीरज देखत डर खाई।—जायसी (शब्द०)।

किलकिला[4]—वि० घूँघरवाला। कुंचित। उ०—बरस बावीस को बान्यो, वेस दन कवाइया, सिर किलकिला केस।—बी० रासो, पृ०।

किलकिलाना—क्रि० अ० [हिं० किलकिला] १.आनंदसूचक शब्द करना। हर्षध्वनि करना। उ०—चली चमू चहुँ ओर सोक कछु बनै न बरनत भीर। किलकिलात कसमसत कोलाहल होत नीरनिधि तीर।—तुलसी (शब्द०)। २. अस्पष्ट शब्दों में चिल्लाना। हल्लागुल्ला करना। ३ वादविवाद करना। झगड़ा करना।

किलकिलाहट-संज्ञा स्त्री०[हिं०किलकिलाना] किलकिलाने का शब्द।

किलकिलित-संज्ञा पुं० [सं०] आनंद,हर्ष आदि का व्यंजन शब्द [को०]।

किलकी—संज्ञा स्त्री० [फा०किलक=नरकट या कलम] बढ़इयों का एक औजार, जिससे वे नाप के अनुसार काठ पर निशान करते हैं।

किलकैया[1]—संज्ञा पुं० [देश०] नहरुए के ढंग का एक प्रकार का रोग, जिसमें चौपायों के खुरों में कीड़े पड जाते हैं।

किलकैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० किलकना] किलकनेवाला।

किलक्क(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] दे० 'किलक'। उ०—धड़कें उर कातर सोर धुकें। मच हक्क किलक्क अनेक मुकें।—रा० रू०, पृ० ३८।

किलचिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा बगला जो सारे भारत में पाया जाता है।

किलटा—संज्ञा पुं० [देश०] बेंत का टोकरा।

विशेष—यह इस युक्ति से बना रहता है कि इसमें रखी हुई वस्तु का भार ढोनेवाले के कंधों ही पर पड़ता है। इसे पहाड़ी लोग लेकर ऊँचाई पर चढ़ते हैं।

किलना[1]—क्रि० अ० [सं० कीलन] कीलन होना। कीला जाना। २ वश में किया जाना। गति में अवरोध होना। जैसे,—शत्रु की जीभ किल गई।

किलना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० किलनी का पुं०] १ बड़ी किलनी। २ नर किलनी।

किलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कीट, हिं० कीड़ा+नी (प्रत्य०)]एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो गाय, बैल, कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं के शरीर में चिपटा रहता है और उनका रक्त पीता है। किल्ली।

किलबिलाना—क्रि० अ० [अनुध्व० अथवा हिं० कुलबुलाना] दे० 'कुलबुलाना'।

किलविष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किल्बिष] दे० 'किल्बिष'। उ०—काया यह तो अहै खाक की, किलविष अहै समोई। उ०-जग० बानी० पृ० ३३।

किलम(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] यवन। उ०—किलम गयद चढ़ियों हिलकारे। अठी जगड भड धीर उचारे।—रा० रू० पृ० २२६।

किलमी– संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला खंड। २ पिछले खंड के मस्तूल का बादबान।

किलमोरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दारुहल्दी, जिसकी झाड़ियाँ हिमालय पर कोसों फैली हुई मिलती हैं। दे० 'दारुहल्दी'।

किलवाँक—संज्ञा पुं० [देश०] काबुल देश का एक प्रकार का घोड़ा। उ०—काबिल के किलवाँक कच्छ दच्छी दरियाई। उम्मट के हुवसान जंगली जाति अलाई। सूदन (शब्द०)।

किलवा†—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ा फावड़ा या बड़ी कुदाल। (रुहेलखंड)।

किलवाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ा पाँचा या लकड़ी की फरुई जिससे सूखी घास या पयाल इकट्ठा करते हैं।

किलवाना—क्रि० स० [हिं० किलना का प्रे० रूप] १ कील ठोकवाना। कील लगवाना या जड़वाना। २ तंत्र या मंत्र द्वारा किसी भूत प्रेत के विघ्नकारी कृत्य को रोकवा देना। जादू या टोना करा देना।

किलवारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण] पतवार। कन्ना। वह डाँड़ा जिससे छोटी छोटी नावों में पतवार का काम लेते हैं।

किलविष(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० किल्विष] दे० 'किल्विष'। उ०—दुख विनाशन अघहरन किलविष काटण हारू। संतोष सरोवर पर्वते वर्ष अम्रित धारू।—प्राण० पृ० २६८।

किलविषी(पु)— संज्ञा स्त्री० [सं० कौल्विष] पापी। अपराधी। उ०—मन मलीन कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब निवाज। तुलसी (शब्द०)।

किलहँटा—संज्ञा पुं० [पा० गिलाट या हिं० कलह ? या अनु०] [स्त्री० किलहँटी] एक प्रकार की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है। सिरोही।

किलहटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलहँटा] दे० 'किलहँटा'।

किला—संज्ञा पुं० [अ० किलाअ] १ लड़ाई के समय बचाव का एक सुदृढ़ स्थान। दुर्ग। गढ़।

क्रि० प्र०—टूटना।—तोड़ना।—बाँधना।—ले लेना।

यौ०—किलेदार = दुर्गपति। गढ़पति। किलेदारी = दुर्ग की अध्यक्षता। किलाबंदी = किला बाँधने का काम।

मुहा०—किला फतेह करना = महा कठिन काम कर लेना। अत्यंत विकट कार्य करने में सफलता प्राप्त करना। किला टूटना = किसी बड़ी भारी कठिनता या अड़चन का दूर होना। किसी दुःसाध्य कार्य का पूरा होना।

२ विशाल और सुदृढ़ पक्का मकान। ३ शतरंज के खेल में वह सुरक्षित स्थान जहाँ बादशाह शह से बचा रहता है।

मुहा०—किला बाँधना = शतरंज के खेल में बादशाह को किसी घर में सुरक्षित रखना, जिससे प्रतिपक्षी जल्दी मात न कर सके।

किलाट—संज्ञा पुं० [सं०] खटाई डालकर फाड़ा हुआ दूध। छेना।

किलाटी—संज्ञा पुं० [सं० किलाटिन्] बाँस। कीचक [को०]।

किलात- संज्ञा पुं० [सं०] बौना।

किलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'किलवाना'।

किलाबंदी– संज्ञा स्त्री० [अ० किला + फा० बंदी] १ दुर्गनिर्माण। २ व्यूहरचना। सेना की श्रेणियों को विशेष नियमानुसार खड़ा करना। ३ शतरंज में बादशाह को सुरक्षित घर में रखना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

किलाया – संज्ञा पुं० [हिं०] हाथी की गरदन पर पड़ी हुई रस्सी, जिसपर महावत पाँव रखता है। किलावा। उ०—कुंजर किलाए आइ करि तन तमकि तरवारन लिस्यो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७७।

किलाव(पु)– संज्ञा पुं० [फा० कुलावा] कोढ़ा या बंधन। वि० दे० 'कुलावा'। उ०—कंचन किलाव लगाय कल पट्टी बंधिय चंद कट। तिहि बेर मन्हु चद्रग्रान चप रूप प्रगटि अति पिनिवट।—पृ० रा० ५। ५७।

किलावा[1]—संज्ञा पुं० [?] सोनारों का एक औजार।

किलावा[2]— संज्ञा पुं० [फा० कलावा] हाथी के गले में पड़ा हुआ रस्सा या बंधन जिसमें पैर फँसाकर महावत हाथी को चलने आदि का इशारा करते हैं।

किलास[1]— संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ रोग। चर्मरोग [को०]।

किलास[2]—वि० कुष्ठी। कुष्ठ रोग से ग्रस्त (को०)।

किलास†—संज्ञा पुं० [अ० क्लास] दे० 'क्लास'।

किलासी—वि० [सं० किलासिन्] कुष्ठ। किलास रोगवाला (को०)।

किलिंच—संज्ञा पुं०[सं० किलिञ्च] १ हरी लकड़ी या पतला तख्ता। २ चटाई [को०]।

किलिंज, किलिंजक– संज्ञा पुं० [सं० किलिञ्ज, किलिञ्जक] दे० किलिंच'। [को०]।

किलिक—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का नरकट, जिसकी कलम बनती है।

किलिन—संज्ञा पुं० [अ० कील] जहाज के पीछे का वह स्थान जहाँ बाहरी तख्ते मुड़कर मिलते हैं। जहाज के पेंदे का वह छोर जो पिछाड़ी की ओर होता है। केदास की मोड़।

किलिम—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु वृक्ष [को०]।

किलेस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश'। उ०—मास छ सात रहे उस देस। थोरा सौदा बहुत किलेस।—अर्ध०, पृ० ४२।

किलोमीटर—संज्ञा पुं० [अ०] दूरी की एक अंतर्राष्ट्रीय माप, जो मील के प्राय पंच अष्टमांश के बराबर होती है।

किलोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] खेल। आनंद। उछल कूद। उ०—मैं गुण तीनि पाँच तत्व मैं हूँ मैं दश दिशि चहुँ ओर मैं निहरूप धरे नाना विधि निशि दिन करत किलोर।—कबीर सा०, पृ० ३८८।

किलोल—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] दे० कल्लोल' 'कलोल'।

किलोवा—संज्ञा पुं० [बरमी] एक प्रकार का लंबा बाँस।

विशेष—यह बरमा में पेगू और मतबान के जंगलों में होता है। इसकी लंबाई ६० से १२० फुट तथा घेरा ५ से ८ इंच तक

किरानी—संज्ञा पुं० [हिं० किराना+ई (प्रत्य०)] १ अंग्रेजी दफ्तर का क्लार्क या लिपिक। २. यूरेशियन।

किराया—संज्ञा पुं० [अ० किरा, फ़ा० किरायह्] वह दाम जो दूसरे की कोई वस्तु काम मे लाने के बदले उस वस्तु के मालिक को दिया जाय। भाडा।

क्रि० प्र०—उतरना। उतारना।—करना।—चढ़ना।—चुकाना।—देना।—लेना।

यौ०—कियायादार = किराये पर लेने वाले व्यक्ति।

मुहा०—किराया उतरना = किराया वसूल होना। किराया उतारना = भाडा वसूल करना। किराए करना = भाडे पर लेना। जैसे —एक गाडी किराए कर लो। किराए पर देना = अपनी वस्तु को दूसरे के व्यवहार के लिये कुछ धन के बदले मे देना। किराए पर लेना = दूसरे की वस्तु का कुछ दाम देकर व्यवहार करना।

कियायेदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० किरायह्दार] वह जो किसी की कोई वस्तु भाडे पर ले। कुछ दाम देकर किसी दूसरे की वस्तु कुछ काल तक काम मे लानेवाला।

किरार[१]—संज्ञा पुं० [देश०] एक नीच जाति।

किरार[२]‡—संज्ञा पुं० [प्रा० किराड] किनारा। तट। करार।

किराव†—संज्ञा पुं० [हिं० केराव] दे० 'केराव'।

किरावल—संज्ञा पुं० [तु० करावल] १ वह सेना जो लड़ाई का मैदान ठीक करने के लिये आगे जाय। २. बदूक से शिकार करनेवाला आदमी।

किरासन—संज्ञा पुं० [अ० केरोसिन] करोसिन तेल। मिट्टी का तेल।

किरि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुअर। बाराह। २ बादल [को०]।

किरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्याही या मसि रखने का पात्र। मसिपात्र। दावत [को०]।

किरिच—संज्ञा स्त्री० [सं० कृति अथवा प्रा० किलिच = लकड़ी का छोटा टुकडा] कडी वस्तु का छोटा नुकीला टुकड़ा। दे० 'किरच'। उ०—चूरत महागिरि शिखर परि विद्युत किरिच रचक अली।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११६।

यौ०—किरिच का गोला = एक प्रकार का जहाजी गोला जिसके भीतर लोहे के टुकड़े, कीलें या छर्रे भरे रहते हैं। यह गोला शत्रु के जहाज का पाल फाड़ डालने या रस्सियो और मस्तूल को काट कर गिरा देने की इच्छा से फेका जाता है।

किरिट—संज्ञा पुं० [सं०] दलदली खजूर का फल [को०]।

किरिन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० किरण, हिं० किरन] दे० 'किरण'। उ०—जानहु सुरुज किरिन हुति काढ़ी। सुरुज करा घाटि वह बाढ़ी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५३।

किरिनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [स० किरण, हिं० किरन, (पु)†किरिन] दे० 'किरण'। उ०—सुरुज किरिनि जस गगन विसेखी। जमुना माँझ सुरसुती देखी।—जायसी ग्र० (गुप्त०), पृ० १८६।

किरिपा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'। उ०—कह सुदिवस्टि औ किरिपा हिठा पूजं मोरि।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० ३३२।

किरिम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि'।

यौ०—किरिमकुड।

किरिमदाना संज्ञा पुं० [सं० कृमि + हिं० दाना] किरमिज नामक कीडा। किरमिजी।

विशेष—ये एक प्रकार के छोटे छोटे कीडे होते हैं जो थूहड के पेडो पर फैलते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि लगभग ७० हजार कीडे तौल मे आध सेर होते हैं। मादा कीडो को इकट्ठा कर सुखा लेते हैं और उन्हे पीस कर रंगने के काम मे लाते हैं। इसी बुकनी को किरमिजी या हिरमिजी कहते है। इसका रग हलका और मटमैला लाल होता है।

किरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रिया] १ शपथ। सौगध। कसम। उ०—मामी! काली किरिया, किसी से कहना मत।—मैना०, पृ० ६६।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—दिलाना।—धराना।—रखना।

यौ०—किरिया कसम = शपथ। सौगंध।

२ कर्तव्य। काम। ३. मृत व्यक्ति के हेतु श्राद्धादि कर्म। मृतकर्म।

यौ०—किरियाकरम = (१) क्रिया कर्म। मृतककर्म। (२) दुर्दशा।

किरिरना†—क्रि० अ० [हिं० या० अनुध्व] दे० 'किचकिचाना'।

किरिरा—संज्ञा स्त्री० [हिं० क्रीडा] दे० 'क्रीड़ा'। उ०—किरिरा काम केलि मनुहारी। किरिरा जेहिं नहि सो न सुनारी।—जायसी ग्रं० पृ० ३३४।

किरिसना—क्रि० अ० [सं० कृश से नामिक धातु] कृश या दुबला होना।

किरिसित—वि० [कृशि] कृश या दुर्बल।

किरिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० क्रिश्चियन] १ ईसाई। २ विधर्मी। उ०—आधे पुराने पुरानहि माने, आधे भये किरिस्तान हो दुइरंगी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५००।

किरिसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि]। दे० 'कृषि'। उ०—वेदे होम जग्य एह भाखे और कि किरिसी घर वारा।—स० दरिया, पृ०१२४

किरोट—संज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार का शिरोभूषण। मुकुट।

विशेष—यह माथे में बाँधा जाता था और इसका व्यवहार प्राचीन राजा पगड़ी के स्थान पर करते थे। इसके ऊपर मुकुट भी कभी कभी पहनते थे।

यौ०—किरीटधारी = राजा। किरीटमाली = अर्जुन।

२ एक वर्णवृत्त या सवैया जिसमें ८ भगण होते है। जैसे,—भा वसुधा तल पाप महा तव धाय धरा दइ देव सभा जहँ। आरत नाद पुकार करी सुनि वाणि भई नभ धीर धरो तहँ। लै नर देह हतौं खल पुंजन थापहुँ गो नय पाय मही महँ। यो कहि चारि भुजा हरि नाथ किरीट धरे जनमे प्रहमी महँ।

किरीटित—वि० [सं०] किरीट नामक शिरोभूषण से सज्जित। उ०—जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्षरत्न, शत स्वागत। हिम

सौंदर्य किरीटित जिसका शारद मस्तक उन्नत।—अतिमा, पृ० १३५।

किरीटी¹—संज्ञा पुं० [सं० किरीटिन्] १. इंद्र। २ अर्जुन। ३. राजा।

किरीटी²—वि० कोई किरीटधारी। जो किरीट पहने हो।

किरीरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा, हिं०] दे० 'क्रीडा' उ०—हंसहिं हंस और करहिं किरीरा। चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा।—जायसी (शब्द०)।

करोड़—वि० [हिं० करोड़] 'करोड़'। उ०—दिल्ली से बनारस के पट्टे तक किरोड़ों आदमी हिंदी बोलनेवाले है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३।

किरोध(पु)— संज्ञा पुं० [सं० क्रोध + हिं० कुरोध, कुरोध] दे० 'क्रोध'। उ०—तुम बारी पिउ दुहुँ जग राजा। गरब किरोध ओहि पै छाजा।—जायसी (शब्द०)।

किरोर†— संज्ञा पुं० [हिं० किरोड़] दे० 'करोड़'।

किरोलना—क्रि० स० [अनु०] करोदना। खुरचना।

किरौना†— संज्ञा पुं० [हिं० कीरा + औना (प्रत्य०)] कीड़ा।

किर्च(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरच] दे० 'किरच'।

किर्तकिर्त(पु)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य'। उ०—चहुँ जुग किर्तकिर्त कियो तुम जेहि सुकर सिर थापे हो। भीखा०श०, पृ० ३२।

किर्तनिया—संज्ञा पुं० [हिं० कीर्तन + इया (प्रत्य०)] कीर्तन करनेवाला आदमी। भगवान का गुणानुवाद करनेवाला भक्त। २. प्रशसक व्यक्ति। यश गा नेवाला पुरुष।

किर्तिम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] दे० 'कृत्रिम'। उ०—चीन्हहु किर्तिम आदि सत्य असत्य विचारहू। छाँड़ि देहु बकवादि खोजहु अविचल पुरुष कहूँ।—कबीर सा० पृ० ३६४।

किर्तम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम'। दूजा करम भरम है किर्तम ज्यों दर्पन मे छाहीं।—कबीर श०, भा० १, पृ०५१

किर्द—संज्ञा पुं० [फा०] १ काम काज। कार्य। २ धंधा। पेशा।

किर्दगार—संज्ञा पुं० [फा०करदगार] ईश्वर। उ०—ऐ साहब सत्तार ऐ किर्दगार। के ऐ खालिक खल्क परवरदिगार।—दक्खिनी०, पृ० २३५।

किर्न(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरन] दे० 'किरण'। उ०—बसे सब माहि तन धारी। रवी किर्नं मून विस्तारी।—सत तुरसी०, पृ० ६२।

किर्म¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि'। उ०—तुचा ते ऊन औ किर्म ते पाट है पाट अबर सोई मनं भावं।—कबीर रे०, पृ० २२।

किर्म²—संज्ञा पुं० [फा० तुलनीय, सं० कृमि] कीट। कीड़ा।

यौ०—किर्मखुर्दा = कीड़ा लगा हुआ। कीड़ा खाया हुआ। किर्मपीला = रेशम का कीडा। किर्मशबताब = खद्योत। जुगुनूँ।

किर्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भवन। २. विस्तृत कक्ष। बहुत से लोगो के बैठने के लिये बना हुआ बडा कमरा। ३. तांबे या लोहे की मूर्ति। ४. पलाश वृक्ष [को०]।

किर्मिज—संज्ञा पुं० [सं० कृमिज] १ एक प्रकार का रंग। किरिमदाने का चूर्ण। बुकनी किया हुआ किरिमदाना। हिरमिजी। वि० दे० 'किरिमदाना'। २ किरमिजी रंग का घोड़ा।

किर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'किर्मि' [को०]।

किर्मीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस जिसे भीमसेन ने मारा था।

यौ०—किर्मीरजित। किर्मीरनिषूदन। किर्मीरभिद्। किर्मीरसूदन = भीमसेन

२ नारगी का पेड़। ३ चितकबरा रंग (को०)।

किर्मीर²—वि० [सं०] चितकबरा।

किर्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली शूकरी [को०]।

किर्र—संज्ञा पुं० [अनु०] दो बांसो की रगड से या बैलगाड़ी के चलते समय पहिए से निकलनेवाली ध्वनि। उ०—मेले का किर्र किर्र घोर कल कल ...। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८।

किर्रना¹†—क्रि० स० [अनुध्व०] किर्र किर्र की आवाज करना जो दात के बराबर रगड से, बांसो की रगड़ से, बिना तेल लगे पहियो के चलने पर धुरो आदि से होती है।

किर्रना²—क्रि० अ० किर्र किर्र की आवाज होना।

किर्री—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ण] एक प्रकार की छेनी जिससे धातु की नक्काशी मे पत्तियाँ और डालियाँ बनाई जाती है।

किर्राना†—क्रि० अ०, क्रि० स० [अनुध्व०] दे० 'किर्रना'।

किर्षि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि'। उ०—एक क्रिया करि किर्षि निपावत आदि द अन्न ममत्व बढ़ो है।—सुदर ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४०।

किलगी—संज्ञा स्त्री० [फा० कलंगी] कलगी। उ०—कठो माला कड़ा किलंगी सतगुरु अरपण लाऊँ। दिखण दिशारी मंगाय फांवरिया अपने हाथ ओढाऊँ।—राम०, धर्म०, पृ० १।

किलज—संज्ञा पुं० [सं० किलञ्ज] १ चटाई। २ पतला तख्ता। [को०]।

किल¹—क्रि० वि० [सं०] निश्चय ही। अवश्य। उ०—(क) कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।—केशव (शब्द०)। (ख) फूटे किल कनक-भास रवि-शशि-उडुगण प्रकाश।—आराधना पृ० ३६।

किल²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कील] लोहे की कांटीनुमा चीज। किल्ली। उ०—व्यास बोलि जगजोति तह सिद्ध महूरत ताव। दैवजोग संवह सिरह किल किलित सु ग्राव।—पृ० रा०, ३। १६।

किल³—संज्ञा पुं० [सं०] खेल। क्रीड़ा। [को०]।

किलक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलकना] १. किलकने की क्रिया। हर्षध्वनि करने की क्रिया। आनंदसूचक शब्द। हर्षध्वनि। किलकार। उ०—माँ, फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी।—कामायनी, पृ०।

किलक²—संज्ञा स्त्री० [फा० किलक]एक प्रकार का नरकट जिसकी कलम बनती है।

किलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० किलक] किलकिला। किलकारी।

किलकना— क्रि० अ० [सं० किलकिला] १. किलकिल शब्द करने

कथनी कथँ अपार । या बानी क्यो पाइए साहिब को दीदार ।—राम० धर्म०, पृ० २७९ ।

किरच सज्ञा स्त्री० [प्रा० किलिच] १ एक प्रकार की सीधी तलवार जो नोक के बल सीधी भोंकी जाती है । २ नुकीला टुकड़ा (जैसे काँच आदि का)। नुकीला रवा। छोटा नुकीला टुकड़ा उ०—(क) काँच किरच बदले शठ लेहीं । कर ते डारि परस मणि देही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) लग्गे सु टोप उड्डिय किरच । —पृ० रा० ७ । १५७ ।

किरचा—सज्ञा स्त्री० [हिं० किरच] दे० 'किरच'। उ०—गिरिधर-धीरता के किरिचा करत हैं ।—घनानद, पृ० ३१० ।

किरचिया—सज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी ।

विशेष—यह बगले से छोटा होता है । इसके पजे की झिल्ली सुनहले रग की होती है ।

किरची—सज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का मुलायम रेशम, जो बगाल मे होता है । १ रेशम का लच्छा ।

किरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ ज्योति की अति सूक्ष्म रेखाएँ जो प्रवाह के रूप मे सूर्य, चद्र, दीपक आदि प्रज्वलित पदार्थों से निकलकर फैलती हुई दिखाई पड़ती हैं । रोशनी की लकीर । प्रकाश की रेखा या धारा । २ अनेक प्रकार की दृश्य अदृश्य तरगो की धाराएँ जो अतरिक्ष से आती या यत्रो की सहायता से उत्पन्न की जाती हैं, जैसे एक्स रे, अल्फा रे, अल्ट्रावायलेट रे, आदि ।

पर्या०—अशुकर । दीधिति । मयूख । मरीचि । रश्मि ।

यौ०—किरणपति । किरणमाली ।

२ सूर्य (को०)। धूलिकण । रज कण (को०) ।

किरणकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

किरणपति—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । रश्मिमाली ।

किरणमाली—सज्ञा पुं० [सं० किरणमालिन्] सूर्य ।

किरणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख स्कद पुराण के काशी खड में हुआ है (को०) ।

किरतंत Ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० कृतान्त] कृतान्त । यमराज । उ०—मरा मत को दिष्पयत, रज मय के दीसत । तामस के पिष्पे प्रबल, क्रोध कलह किरतत ।—पृ० रा० ६ । ५२ ।

किरतम Ⓟ—वि० [सं० कृत्रिम] बनावटी । दिखाऊँ । उ०—ताका मरम भक्त नहिं जाना । किरतम वर्त्ता से मन माना ।-कबीर सा० ४८२ ।

किरतब Ⓟ— सज्ञा पुं० [सं० कर्तव्य] काम । कर्म । कृतित्व । उ०—बाँस बड़ा डेरा बज दिना बड़ेरा होय । सेपावत सिवसिंघ सो, किरतब बड़ो न होय ।—शिखर०, पृ० ५२ ।

किरतास—सज्ञा पुं० [करतास] कागज । उ०—कलम यक हात और यक हात किरतास बैठा हैरत जदा 'परदे के है पास ।—दक्खिनी०, पृ० २५० ।

किरतिम—Ⓟ वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम । माया ।—नामै चाँद सूर दिन राती । नामैं किरतिम की उतपाती ।—भीखा श०, पृ० २३ ।

किरती—सज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] व्यास की माता का नाम । सत्यवती । उ०—किरती सुख व्यास बखानिए जी ।—कबीर रे०, पृ० ४४ ।

किरन—सज्ञा पुं० [सं० किरण] १ किरण । रोशनी की लकीर । मुहा०—किरन फूटना = सूर्योदय होना । २ कलाबत्तू या बादले की बनी हुई एक प्रकार की झालर जो बच्चो या स्त्रियों के कपड़ो मे लगाई जाती है ।

किरनकेतु Ⓟ - सज्ञा पुं० [सं० किरणकेतु] सूर्य । उ०—जयति जय सत्रु करि केसरी सत्रुहन सत्रु तम तुहिन हर किरनकेतू ।—तुलसी (शब्द०) ।

किरना[1]—क्रि० अ० [सं०√कृ = किर्] बिखरना । इधर उधर होना । विमुख होना । उ०—अब तो ऐसियै जिय आई प्रीतम के पन ते क्यो किरिहौं ।—घनानद, पृ० ४७४ ।

किरना[2]—क्रि० स० बिखेरना । फैलाना । इधर उधर करना ।

किरनाकर—सज्ञा, पुं० [सं० किरण + आकर] किरणमाली । सूर्य । उ०—मकर आदि सक्रमन किरन बाढ़ै किरनाकर । यों सोमेस कुँआर जोति छिन छिन अति आगर ।—पृ० रा० ५।२ ।

किरनि Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [सं० किरण] दे० किरण' । उ०—कुसुम धूरि धूँधरि मधि चाँदनि चँद किरनि रही छाइ ।—नद, ग्र०, पृ० ३६३ ।

किरनीला—वि० [हिं० किरन + ईला (प्रत्य०)] किरणवाला । प्रकाशमान । उ०—चमकीले किरनीले शस्त्रों काट रहे तुम श्यामल तिलमिल ऊषा का मरघट साजोगे ? यही लिख सकों चार पहर मे ? चलो छिया छी हों हो अतर मे ।—हिम कि० पृ० १२ ।

किरनीलापन—सज्ञा पुं० [हिं० किरनीला + पन (प्रत्य०)] उज्वलता । प्रकाशित होने का भाव । उ०—अधकार है तो 'किरनीलेपन' की अगवानी संभव है, अंधकार है तो कीमत का तेरे उज्वल विमल विभव है ।—हिम कि० पृ० १३१ ।

किरपन Ⓟ—वि० [सं० कृपण] कजूस । मक्खीचूस । खबील । उ० यथा किरपन मूजी को माया नाव न होव न पूँगे ते । —सुदर ग्र ०, भा० १ पृ० ?३ ।

किरपा Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा' । उ०—तुम किरपा करि करो लाल मेरे को टीको ।—नद ग्र ०, पृ० १?४ ।

किरपान Ⓟ सज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] दे०'कृपाण' ।

किरपाल Ⓟ—वि० [सं० कृपालु] दे० कृपाल' ।

किरपिन Ⓟ—पुं० [सं० कृपण] दे० 'कृता' । उ०—तनिक बिसारै नाहिं कनक ज्यो किरपिन पाई ।—रत्नदू०, भा १, पृ० ४२ ।

किरम Ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० कृमि] ३ दे० 'किरिमदाना' । २ कीट । कीड़ा ।

किरमई—सज्ञा स्त्री० [सं० कृमि] एक प्रकार की लाख । लाख का एक भेद ।

किरमाल[1]—Ⓟ†—सज्ञा पुं० [सं० करवाल] तलवार । खड्ग ।

किरमाल[2] Ⓟ—सज्ञा पुं० [सं० किरणमालिन्, किरणमाल] सूर्य । उ०—नाम लियाँ थी मानवाँ सरकै कलुष विधान । मह जैसे मेटैं तिमिर, रसम रस किरमान —रघु० रू०, पृ० ३४ ।

किरमाला—सज्ञा पु० [सं० कृतमाल] अमिलताश । किरवारा ।

किरमिच—संज्ञा पुं० [अं० कैनवास, हिं० किरमिज] एक प्रकार का मोटा विलायती कपड़ा ।

विशेष—यह महीन टाट की तरह होता है और इससे परदे, जूते, बैग आदि बनते हैं ।

किरमिज—संज्ञा पुं० [सं० कृमि + ज] [वि० किरमिजी] १. एक प्रकार का रंग । किरिमदाने का चूर्ण । बुकनी किया हुआ किरिमदाना । हिरमजी । दे० 'किरिमदाना' । २ किरमिजी रंग का घोड़ा । वह घोड़ा, जिसका रंग हिरमिजी के समान लाल हो ।

किरमिजी—वि० [सं० कृमिज] किरमिज के रंग का । किरिमदाने के रंग का लाल । मटमैलापन लिए हुए करौंदिया रंग का । दे० 'किरिमदाना' ।

किरयात—संज्ञा पुं० [सं० किरात] चिरायता ।

किरराना¹(पु)‡—क्रि० अ० [हिं० कड़िलना या अनु०] तड़पना । छटपटाना । उ०—मन मृतक सो जाणिये घायल ज्यूं किरराय । रामदास रहै हरि सुमिरत दिन जाय ।—राम० धर्म०, पृ० १६४ ।

किरराना²—क्रि० अ० [अनु०] १ दाँत पीसना । २. क्रोध से दाँत पीसना । ३. किर्र किर्र शब्द करना ।

किरराना³(पु)—क्रि० अ० [हिं० कुररना = कुलेल करना या बोलना या अनु०] बोलना । उ०—पनवारो चंपति को आनो । वेखि सुआ सागे किररानो ।—लाल (शब्द०) ।

किरवाँन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण प्रा० किवाण] तलवार । कृपाण । उ०—किरवाँन चलाय समीर हरयो ।— ह० रासो, पृ० १४६ ।

किरवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृपाण, प्रा० किवाण] दे० 'कृपाण' । उ०—(क) खड हनो किरवान जब, परेउ भूमि चहुवान ।—प० रासो०, पृ० ६४ । (ख) सत्ता को सपूत राव, सगर को सिंह सोहै जैतवार जगत करेरी किरवान को ।—मति० ग्रं०, पृ० ३७७ ।

किरवार¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० करवाल] तलवार । खड्ग । उ०—रन समुद्र बोहित को कियो । करिया सो किरवारो लियो ।—केशव (शब्द०) ।

किरवार²—संज्ञा पुं० [सं० कृतमाल] अमलतास । उ०—कमल मूल किरवार कसेरू । काच नून कर मूल कसेरू ।—सूदन (शब्द०) ।

किरवारा—संज्ञा पुं०[सं० कृतमाल] अमलतास ।

किरसतान—संज्ञा पुं० [सं० अं० क्रिश्चियन, हिं० क्रिस्तान] दे० 'क्रिस्तान' । उ०—अब तक सारा देश मुसलमान किरसतान हो गया होता ।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६५ ।

किरसन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—मस्त मकड़ को किरसन सरका मुरली बजाना हमना साजे ।—दक्खिनी०, पृ० ३८७ ।

किरसुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—उहै धनुक किरसुन पहँ अहा । उहै धनुक राघौ कर गहा ।—जायसी (शब्द०) ।

किरांची—संज्ञा स्त्री० [अं० केरांच] १ दो या चार पहियों की गाड़ी जो माल असबाब ढोने के काम में आती है । वह बैलगाड़ी जिसपर अनाज, भूसा आदि लादा जाता है । २. मालगाड़ी का डब्बा ।

किराठ—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी । बनिया (को०) ।

किराड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किराट] वणिक । व्यापारी । उ०—गोती सो गणका जसी, सम सो चोर किराड़ ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६० ।

किराड(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा०] किनारा । तट । उ०—घाट किराडू पारकर लोद्रा लो जालेर, पुंगल गढ़ आबू सहित मंडोवर अजमेर ।—पृ० रा०, १२ । ४३ ।

किरात¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० किरातिनी, किरातिन, किराती] १ एक प्राचीन जंगली जाति । उ०—मिलहिं किरात, कोल बनवासी । वैखानस, बटु, गृही उदासी ।—तुलसी (शब्द०) । २ एक देश का प्राचीन नाम ।—बृहत्संहिता, पृ० ८५ ।

विशेष—यह हिमालय के पूर्वीय भाग तथा उसके आसपास में माना जाता था । वर्तमान भूटान, सिक्किम, मनीपुर आदि इसी देश के अंतर्गत माने जाते थे ।

३ चिरायता । ४. साईस । ५. वामन । बौना (को०) । ६. शिव (को०) ।

किरात²—संज्ञा स्त्री० [अ० किरात] १ जवाहरात की एक तौल जो लगभग चार जौ के बराबर होती है । २ एक आउंस का चौबीसवाँ भाग । ३ एक बहुत छोटा सिक्का या धातुखंड जिसका मूल्य पाई से भी कम होता था ।

किरातक—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिरायता । २. किरात जाति का व्यक्ति (को०) ।

किरातपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

किरातार्जुनीय—संज्ञा पुं० [सं०] भारविकृत १८ सर्गों का एक महाकाव्य ।

किराताशी—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड ।

किराति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा । २ दुर्गा । पार्वती (को०) ।

किरातिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिरायता । २ किरात जाति का व्यक्ति (को०) ।

किरातिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरात का स्त्री०] दे० 'किरातिनी' । उ०—येह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद । भूषन सजति बिलोकि मृग मनहु किरातिनि फंद ।—मानस २ । २६ ।

किरातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरात जाति की स्त्री । २. जटामासी ।

किराती—संज्ञा स्त्री० [सं०] किरात जाति की स्त्री । २ दुर्गा । ३ स्वर्ग की गंगा । ४ कुट्टिनी । ५. चवँर डुलानेवाली । चमरधारिणी ।

किरान(पु)†—क्रि० वि० [अ० किरान] पास । निकट । नजदीक । उ०—ततखन सुनि महेश मन लाजा । भाट किरान ह्वै बिनवा राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

किराना¹—संज्ञा पुं० [सं० क्रयण] पसारी की दुकान पर बिकनेवाली चीजें । जैसे मिर्च मसाला, नमक आदि ।

किराना²—क्रि० स० [सं० कीर्ण] दे० 'केराना' ।

किफायत- संज्ञा स्त्री० [अ० किफायत] १ काफी या अलम् होने का भाव । २. कमखर्ची । थोडे मे काम चलाने की क्रिया । जैसे- खर्च मे किफायत करो । ३. बचत । जैसे—ऐसा करने से ५०) की किफायत होगी । ४ कम दाम । थोडा मूल्य । जैसे—अगर किफायत मे मिले तो हम यही कपडा ले लें ।

यौ०—किफायत का = थोडे दाम का । सस्ता ।

किफायती - वि० [अ० किफायत] कम खर्च करनेवाला । समझकर खर्च करनेवाला ।

किवर(पु)—संज्ञा पुं० [अ० किब्र = बडाई, श्रेष्ठता] १ बड़प्पन । उच्चता । २ गर्व । उ०–न माने प्यास होर भूख नाले के सुख दुख । किवर होर कीना जर पाक इसते सीना ।—दक्खिनी०, पृ० ५२ ।

किवरिया—संज्ञा पुं० [अ० किब्रियह्] १. बड़प्पन । महत्व । २ ईश्वर । परमात्मा । उ०—इस आदत से नफश कुशी से हुए आरी, वेबदगी दीदार न हो किवरिया बारी ।—कबीर मं०, पृ० २६२ ।

किवलई—संज्ञा स्त्री० [अ० कियलई] पश्चिम दिशा ।—(लश०) ।

किवलनुमा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० किवलह् + फा० नुमा] दे० 'किवला-नुमा' । उ०—सब ही तन समुहाति छन, चलति सबन दै पीठि । वाही तन ठहराति यह किवलनुमा लौं दीठि ।—विहारी (शब्द०) ।

किवला-संज्ञा पुं० [अ० किबलह] १. जिस ओर मुख करके मुसलमान लोग नमाज पढ़ते या प्रार्थना करते हैं । पश्चिम दिशा । मक्का । उ०—मन करि मक्का किवला करि देही । बोलन हार परस गुरु एही ।—कबीर ग्र०, पृ० ३१५ ।

यौ०—किबलानुमा ।

३ पूज्य व्यक्ति । ४ पिता । बाप ।

यौ०—किवलाआलम ।

किवलाआलम--संज्ञा पुं० [अ० किवलाआलम] १ सारा ससार जिसकी प्रार्थना करे । ईश्वर । २ बादशाह । सम्राट् । राजा ।

किवलागाह, किवलागाही-संज्ञा पुं० [अ०] पिता । बाप ।

किवलानुमा--संज्ञा पुं० [अ० किबलह् + फा० नुमा] पश्चिम दिशा को बतानेवाला एक यंत्र जिसका व्यवहार जहाजो पर मल्लाह करते थे ।

विशेष—इसमे एक सुई ऐसी लगा देते थे जो पश्चिम ही की ओर रहती थी । आजकल के ध्रुवदर्शक यत्रो मे पश्चिम को विशेष रूप से निर्दिष्ट नही करते ।

किवाडि(पु)-संज्ञा स्त्री० [सं० कपाट या कपाटी, कपाटिका प्रा० कवाड] दे०'किवाड़' । उ०–सा धन ऊभी टेकि किवाड़ि । रतन कुडल सिर तिलक लीलाड़ ।—वी० रासो, पृ० ५४ ।

किवाडी—संज्ञा स्त्री० [हि० किवाड़ का स्त्री०] किवाड । किवाड़ या पल्ला । उ०—काँच की किबाड़ियों से ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १११ ।

किवार—संज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाल] दे० 'किवाड़' । उ०—फूलन के महल बने फूलन विताप तने, फलन छज्जे, झरोखा, फूलन किवार हैं । नद० ग्र० पृ० ३८० ।

किवलिनुमा-संज्ञा पुं० [अ० किवलह् + फा० नुमा] दे० 'किवलानुमा' उ०-उनके नेत्र किब्लिनुमा की भाँति मेरे ही ऊपर छा गए ।—श्यामा० पृ० १२३ ।

किवो(पु)-क्रि० स० [हिं०] करना । रचना । उ०—तन किवो सिस्टी का करता, देपत जगत भुलाना ।—रामनंद०,पृ० ३५ ।

किब्र—संज्ञा पुं० [अ०] १. महत्व । २ बडप्पन । उ०—सो कबीर उसे कहते हैं जिसमे किब्र (गौरव) होवे —कबीर म०, पृ० ४२० । २ अभिमान । गर्व । उ०—होर इबादत में काहिल बख्शता है होर किब्र व कीना, बुग्ज व हिर्स, हवा व बखीली व तुबी व शाहवत यो तमाम फेल नफस अम्मारा के हैं ।—दक्खिनी०, पृ० ३९६ ।

किब्रिया—संज्ञा स्त्री० [अ० किब्रियह्] १. महत्ता । बडप्पन । उ०—तू है करतार किब्रिया वारी, तेरा है हुक्म सब जगह जारी ।—कबीर सा०, पृ० ६७९ । २ ईश्वर । परमात्मा ।

किब्ल(पु)—क्रि० वि० [अ०कब्ल] पहले । पूर्व । उ०—मगर कम से कम अब के पीछे किसी नुकसान पर इतना रंज न होगा । जितना चद साल किब्ल हो सकता था ।—प्रेम० गो०, पृ० ६४ ।

किब्ल ए हाजात—संज्ञा पुं० [अ० किब्ला-ए-हाजात] इच्छा पूर्ण करनेवाला । जरूरतों को पूरा करनेवाला व्यक्ति । उ०—दर उसका यकी किब्लए हाजात है । रवाँ क फिना रोज और रात है ।—दक्खिनी०, पृ० २१३ ।

किम्—वि०, सर्व [सं०] १ क्या ? २ कौन सा ?

यौ०—किमपि = कोई भी । कुछ भी । उ०—(क) ताते गुप्त रहौं जग माहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ।—तुलसी (शब्द०) (ख) अति हरख मन, तन पुलक, लोचन सजल कहु पुनि रमा । का देहुँ तोहि त्रिलोक महँ, कपि, किमपि नहि बाणी समा ।—तुलसी (शब्द०) ।

किमखाव—संज्ञा पुं० [फा० कमख्वाब] एक कपडा । उ०—सो अमर दिया तेरे अमल कूँ । किमखाव दिया जबून कमन कूँ ।—दक्खिनी०, पृ० १७१ ।

किमरिक—संज्ञा पुं० [अं० कैंब्रिक] एक चिकना सफेद कपडा जो नैनसुख की तरह होता है ।

विशेष—यह पहले सन के सूत का ही बनता था और बडा ही मजबूत होता था । अब कपास के सूत का भी बनने लगा है ।

किमाछ--संज्ञा पुं० [सं० कपिकच्छु, हिं० केवाँच] दे० 'केवाँच' ।

किमाम—संज्ञा पुं० [अ० किवाम] शहद के समान गाढा किया हुआ शरबत । खमीर । जैसे—सुरती का किमाम ।

किमार—संज्ञा पुं० [अ० किमार] जुआ का खेल । द्यूतक्रीडा ।

किमारखाना--संज्ञा पुं० [अ० किमार + फा० खानह] वह घर जहाँ लोग जुआ खेलते हैं । जुआघर ।

किमारबाज--वि० [अ० किमार + फा० बाज] जुआरी ।

किमारबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० किमार + फा० बाजी] जुए का खेल ।

क्रिमाश—संज्ञा पुं० [अ० क़िमाश] १. तर्ज। ढंग। वजा। जैसे,—वह न जाने किस क़िमाश का आदमी है। २. गंजीफे का एक रंग, जिसे ताज भी कहते हैं।

किमि—क्रि० वि० [सं० किम्] कैसे? किस प्रकार? किस तरह? उ०—किमि सहि जानि अवश तोहि पाहीं। प्रिया वेगि प्रगटसि कस नाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

किमियाकार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कीमियागर अथवा हिं० कीमिया+सं० कार (प्रत्य०)] दे० 'कीमियागर'। उ०—वेद विपिन बूटी वचन हरिजन किमियाकार। खरी जरी तिनके कने खोटी गहत गँवार।—विश्राम (शब्द०)।

किम्मत¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० हिकमत] १. चतुराई। होशियारी। उ०—हारिए न हिम्मत सुकीजै कोटि किम्मत को आपति में पति राखि धीरज को धरिए—(शब्द०)। २ वीरता। बहादुरी।

किम्मत²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० कीमत] कीमत। मूल्य।—जिसके वे परदे विक, किम्मत जर भारी के।—नट०, पृ० ११२।

कियकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० किङ्कर] किंकर। सेवक। उ०—त्रय ताप संताप दुखाय दुखकर पाप कियकर तार लगा।—राम० धर्म०, पृ० ३०२।

कियत—वि० [सं० कियत्] कितना। उ०—राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीउ जाय जियत। जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत।—तुलसी (शब्द०)।

कियारथ(पु)—वि० [सं० कृतार्थ] कृतार्थ। उ०—श्री हरि नाम सँभारि, काम अभिराम कियारथ। अरथ धरम अपवग्ग, दियण जगच्यार पदारथ।—रा० रू०, पृ० ३।

कियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० केदार] १ खेतों या बगीचों में थोड़े थोड़े अंतर पर दो पतले मेड़ों के बीच की भूमि, जिसमें बीज बोए या पौधे लगाए जाते हैं। क्यारी। २. खेत का एक विभाग। ३. खेतों के वे विभाग जो सिंचाई के लिये बरहों या नालियों के बीच की भूमि मे फावड़े से पतले मेड डालकर बनाए जाते हैं। ४ एक बड़ा कड़ाह, जिसमें समुद्र का खारा पानी नमक नीचे बैठने के लिये भरते हैं। ५. (सुनारों की बोली में) चारपाई।

कियावर¹(पु)—वि० [सं० क्रियापर, प्रा० कियावर] कर्मकुशल। कर्मपरायण।

कियावर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रियावली] कर्म। कृत्यसमूह। उ०—सार कियावर डरै सकोई। कत सम विक्रम भोजन कोई।—रा० रू०, पृ० १५।

किराह—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का घोड़ा।

किरंटा—संज्ञा पुं० [अं० क्रिश्चियन] छोटे दरजे का क्रिस्तान। केरानी। (एक तुच्छताव्यंजक शब्द)।

किर¹(पु)—अव्य० [सं० किल] मानो। उ०—ऊँचा डूगर विखम घलु, लागा किर तारेहि।—ढोला०, दू० ६४८।

किर²—संज्ञा पुं० [सं०] सुअर। वाराह (को०)।

किरकांट—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास] गिरगिट। छिपकली की जाति का एक जंतु। उ०—कबहुक भरिया समुंद सा, कबहुक नाहीं छांट। जन दरिया इतउत रता, ते कहिए किर कांट।—दत वाणी०, १।१।३२।

किरका†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर=कंकड़ी] छोटा टुकड़ा। कंकड़। किरकिरी। उ०—गर्व करत गोवर्धन गिरि को। पर्वत मांह माई वह किरको।—सूर (शब्द०)।

किरकिटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कट] धूल या तिनके आदि का कण जो आँख में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करता है। उ०—मैं हो जान्यो लोयननि, जुरत बाढ़ि है जोति। को हौं जानत दीठि, को दीठि किरकिटी होति।—बिहारी (शब्द०)।

किरकिन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का दानेदार चमड़ा जो घोड़ा या गधे का होता है। एक प्रकार का कीमुख्त।

किरकिरा¹—वि० [सं० कर्कट] कंकरीला। कंकड़दार। जिसमें महीन और कड़े रवे हो।

मुहा०—किरकिरा हो जाना=रंग में भंग हो जाना। आनंद में विघ्न पड़ना। बात बिगड़ जाना।

किरकिरा²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृकल] शरीर में स्थित पाँच वायुओं में से एक, जो पाचन क्रिया में सहायिका होती है। उ०—व्यान वायु धर किरकिरा कूरम वाई जीत। नाग धनंजय देवदत्त दशवाई रणजीत।—कबीर सा०, पृ० २८०।

किरकिरा³—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] लोहारों का एक औजार जिससे बड़े और मोटे लोहे में छेद किया जाता है।

किरकिराना—क्रि० अ० [हिं० किरकिरा से नामिक धातु] १. किरकिरी पड़ने की सी पीड़ा करना। जैसे,—आज आँख किरकिराती है। २ दे० 'किटकिटाना'।

किरकिराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० किरकिरा+हट (प्रत्य०)] १. किरकिराने की सी पीड़ा। आँख में किरकिरी पड़ जाने की सी पीड़ा। २ दाँत के नीचे कँकरीली वस्तु के पड़ने का शब्द। ३ किटकिटापन। कंकरीलापन। जैसे,—कत्थे को और छानो, अभी इसमें किरकिराहट है।

किरकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर] १ धूल या तिनके आदि का कण जो आँख में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करता है। जैसे,—आँख में किरकिरी पड गई है। २ अपमान। हेठी। जैसे,—आज तो उनकी बड़ी किरकिरी हुई। उ०—अगर अखबारवालों का जिक्र छेड़ा और वह बिगड़ गए तो बड़ी किरकिरी होगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६।

किरकिल¹—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास] गिरदान। गिरगिट।

किरकिल²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कृकर या कृकल] शरीरस्थ दस वायुओं में से वह वायु जिससे छींक आती है। उ०—किरकिल छींक लगावे भाई।—विश्राम (शब्द०)।

किरकिला¹—संज्ञा पुं० [सं० कृकर] एक पक्षी जो आकाश से मछलियों पर टूटता है। दे० 'किलकिला'।

किरकिला²—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास] १ कृकलास। गिरगिट। २. शरीरस्थ वायुविशेष। उ०—कूरम सेस किरकिला धनंजय देवदत्त कहँ देखो।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६६।

किरकी¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्कणी] एक प्रकार का गहना।

किरकी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ किनकी। जरा सा कण। २. तिनका। तिनके का टुकड़ा। उ०—करनी की किरकी नहीं

कित्त(पु)—क्रि० वि० [हिं० कित] दे० 'कित'। उ०—मुहमद चारिउ मीत मिल, भए जो एकै चित्त। एहि जग साथ जो निबहा, ओहि जग बिछुरन कित्त।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

कित्ता†—वि० [हिं० कितना का संक्षिप्त रूप] दे० 'कितना'।

कित्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० [सं० कीर्ति] 'कीर्ति'। उ०—कित्ति लद्ध सूर संग्राम, धम्म पराक्रम हित्रअ, विपअ काम नह दीन जपइ।—कीर्ति०, पृ० ८। (ख) सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी कित्ति जोन्ह कंत जगत चित्त चाव है।—मति० ग्रं०, पृ० ३६६।

यौ०—कित्तिपाल(पु) = यश की रक्षा करनेवाला। कित्तिवल्लि(पु) = कीर्तिवल्ली। कीर्ति रूपी लता।—तिहुअन खेत्तहि काढि तसु, कित्तिवल्लि पसरेइ।—कीर्ति० पृ० ४।

कित्तिम(पु)—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] कृत्रिम। उ०—काजरे चाद कलङ्क। लज्ज कित्तिम कपट ताकन्न।—कीर्ति०, पृ० ३४।

कित्तो(पु)—वि० [हिं० कितो] दे० 'कितना'। उ०—कित्तो गढ़ रणथंभ राव जिस पँह गर्वाए।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

कित्तोक(पु)—वि० [हिं० कित्तो + क] दे० 'कितेक', 'किनक'। उ०—सुमुद कितो गरुअत्त अप्प भुज जोर हिलोरिय। कित्तोक मवन मेरु गिरि कमठ होइ पिट्ठह वेलिय।—पृ० रा०, १।७८०।

कित्थां—वि० [हिं०] कहाँ। किस स्थान पर। उ०—इत्था उत्था जित्था कित्था, हूँ जीवा तो नाल वे। मीयां मेंडा आव असाडे, तू लालों सिर लालवे।—दादू०, पृ० ५१३।

कित्य(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति या कृत्य] कीर्ति। यश। उ०—पट्टी सहस अरि पवँग कवी चदह कह कित्यो।—पृ० रा० ४।१८।

कियौं—क्रि० वि० [हिं० तुल० प० कित्थे] १ कैसे। क्यों। किसी प्रकार। २ कहीं। उ०—है अति बारीकु षोजु नहि दरसै नदरि कियौं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० २७६।

किदारा—संज्ञा पुं० [हिं० केदारा] दे० 'केदारा'।

किधन(पु)—क्रि० वि० [देश०, तुल० हिं० किधर] तरफ। उ०—हलू लाजती आई मैंना किंधन, कही यूँ जो ऐ तू है शीरी जबाँ।—दक्खिनी०, पृ० ८४

किधर—क्रि० वि० [हिं०] किस ओर। किस तरफ। जैसे,—तुम आज किधर गए थे।

मुहा०—किधर आया किधर गया = किसी के आने जाने की कुछ भी खबर नहीं। जैसे—हम तो चारपाई पर बेसुध पड़े थ, जानते ही नहीं कौन किधर आया गया। किधर का चाँद निकला? = यह कैसी अनहोनी बात हुई? यह कैसी बात हुई जिसकी कोई आशा न थी।

विशेष—जब किसी से कोई ऐसी बात बन पड़ती है जिसकी उससे आशा नहीं थी, या कोई मित्र अचानक मिलने जाता है, तब इस वाक्य का प्रयोग होता है।

किधर जाऊँ, क्या करूँ = कौन सा उपाय करूँ? कोई उपाय नहीं सूझता।

किधौं(पु)—अव्य० [हिं०] अथवा। वा। या। न जाने। उ०—सब है यहपण कुटी किधौं ओर यह लक्ष्मण होय नहीं?—केशव (शब्द०)।

किन[१]—सर्व० [हिं०] 'किस' का बहुवचन। उ०—अक्रूर कहावत क्रूरमति बात करत अति साधु अति। किन नाम कीन्ह तुव दान पति है नितही नादान पति।—गोपाल (शब्द०)।

किन(पु)[२]—क्रि० वि० [सं० किम् + न] क्यों न। उ०—(क) बिनु हरि भजन मुक्ति नहि होई। कोटि उपाय करो किन कोई।—सूर (शब्द०)। (ख) बिगरी बात बनै नहीं लाख करो किन कोय। रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होय।—रहीम (शब्द०)।

किन[३](पु)—संज्ञा पुं० [सं० किण] किसी वस्तु के लगने चुभने वा रगड़ पहुँचने का चिह्न। दाग। घटठा। उ०—ध्वज कुलिस अंकुस कंजयुत वन फिरत कटक किन लहे।—तुलसी (शब्द०)।

किनका—संज्ञा पुं० [सं० कणिका] [स्त्री० अल्पा० किनकी] १ छोटा दाना। अन्न का टूटा हुआ दाना। २ चावल आदि के दाने का महीन टुकड़ा जो कूटने से अलग हो जाता है। खुद्दी। उ०—जो कोई होइ सत्य का किनका सोहम को पति माई।—कबीर श०, भा० ३ पृ० २।

किननाट(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] किन्नाट। आवाज। उ०—बपु नपत पुरारिय किनन किन नाट कुररिय। गगन गगन तोर रग छन्न छविय उछरगिय।—पृ० रा०, १०। ८३।

किनमिन—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. धीमा, अव्यक्त शब्द। अनुध्वनि। २ आनाकानी। ननुनच। उ०—दीवारों से लगे खड़े होंगे चुप छान और छप्पर। झरती होगी खामोशी से औलाती भी किनमिन कर।—मिट्टी०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—करना।

किनर(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरी'। उ०—मुरली बेनु किनर एह बाजे गोपिन्ह रंग मनाया।—सं० दरिया, पृ० १०३।

किनर मिनर—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहाना। आना कानी।

किनरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'किनारी' उ०—ऊँची अटरिया जरद किनरिया, लगी नाम की डोरी।—कबीर श०, पृ० ५५।

किनवानी‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। फुहार। झड़ी।

किनहा†—वि० [सं० किण (= घुन या कीड़ा), हिं० किन (प्रत्य०)] (फल) जिसमें कीड़े पड़े हों।

किनाँ(पु)—अव्य० [देश०] या। अथवा। उ०—कहि सुवा किम आवियउ, किहीक कारण कथ्थ। तू मालवणी मेल्हियउ किनाँ अम्हीणइ सथ्थ। ढोला—दू० ४०१।

किना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण, हिं० कन] दे० 'कन', कण। उ०—यह मन चंचल चोर अन्याई भक्ति न आवत एक किना।—गुलाल० पृ० १२६।

किनाअत(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कनाअत] संतोष। उ०—फाक किनाअत सुख घना आनद अगाधा।—चरण० बानी, पृ० ११२।

किनात(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कनाअत] संतोष। वासना का त्याग। उ०—फाका जिकर किनात दे तीनो बात जमीर।—पलटू० पृ० १४।

किनाती—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

विशेष—यह बाजों के किनारे रहती है और इसकी चोंच हरी

तथा सिर और कंठ सफेद होता है। यह मई और सितंबर के बीच अंडा देती है।

किनार(प)†—संज्ञा पुं० [हिं० किनारा] दे० 'किनारा'।

किनारदार—वि० [फा० किनारा + दार (प्रत्य०)] (कपड़ा) जिसमें किनारा बना हो। जैसे—किनारदार धोती।

किनारपेंच—संज्ञा पुं० [हिं० किनारा + पेंच] डोरियाँ जो दरी के ताने के दोनों ओर लगी रहती हैं।

विशेष—ये डोरियाँ दरी के ताने वाने से कुछ अधिक मोटी होती हैं और ताने के रक्षार्थ लगाई जाती हैं।

किनारा—संज्ञा पुं० [फा० किनारह्] किसी अधिक लंबाई और कम चौड़ाईवाली वस्तु के वे दोनों भाग या प्रांत जहाँ से चौड़ाई समाप्त होती हो। लंबाई के बल की कोर। जैसे—(क) थान या कपड़े का किनारा। (ख) थान किनारे पर फटा है। २ नदी या जलाशय का तट। तीर।

मुहा०—किनारा दिखाना = छोर या सिरा दिखाना। उ०—बह रहे हैं विपत् लहर में हम अब दया का दिखा किनारा दें।—चुभते० पृ० ४।

३. समान या कम असमान लंबाई चौड़ाईवाली वस्तु के चारों ओर का वह भाग जहाँ से उसके विस्तार का अंत होता हो। प्रांत। भाग। जैसे—खेत का किनारा चौकी का किनारा। ४. [स्त्री० किनारी] कपड़े आदि में किनारे पर का वह भाग जो भिन्न रंग या बुनावट का होता है। हाशिया। गोटा। बार्डर।

—किनारादार या किनारेदार।

५ किसी ऐसी वस्तु का सिरा या छोर जिसमें चौड़ाई न हो। जैसे, तागे का किनारा। पार्श्व। बगल।

मुहा०—किनारा करना = अलग होना। दूर होना। परित्याग करना। छोड़ देना। उ०—जिनके हित परलोक बिगारा वे सब जियतै किह्नि किनारा।—विश्राम (शब्द०)। किनारा काटना = (१) अलग करना। (२) अलग होना। किनारा खींचना = किनारे होना। अलग होना। दूर होना। हटना।

किनारी—संज्ञा स्त्री० [फा० किनारा] सुनहला या रुपहला पतला गोटा जो कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है।

किनारीवारी(प)—वि० स्त्री० [हिं० किनारी + वारी] जिसमें किनारी लगी हो (साड़ी)। उ०—कुंदन के अंग माँग मोतिन सँवारी सारी सोहत किनारीवारी केसरि के रंग की।—मति० ग्रं०, पृ० ४१६।

किनारे—क्रि० वि० [हिं० किनारा] १ किनारे पर। तट पर। २ अलग। दूर।

मुहा०—किनारे करना = दूर करना। अलग करना। हटाना। किनारे न जाना = दूर रहना। अलग रहना। बचना। जैसे—हम ऐसे काम के किनारे नहीं जाते। किनारे कर लेना = अलग कर लेना। उ०—यदि अपने भावों को समेटकर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि के किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी।—रस०, पृ० ८। किनारे किनारे जाना = (१) तीर तीर होकर जाना। (२) अलग होकर जाना। किनारे न लगना = पास न फटकना। निकट न जाना। दूर रहना। जैसे—कभी बीमार पड़ोगे तो कोई किनारे न लगेगा। किनारे बैठना = अलग होना। छोड़कर दूर हटना। जैसे—हम अपना काम कर लेंगे, तुम किनारे बैठो। किनारे रहना = दूर रहना। बचना। जैसे—तुम ऐसी बातों से किनारे रहते हो। किनारे लगना = (१) (नाव को) किनारे पर पहुँचना (२) (किसी कार्य का) समाप्ति पर पहुँचना। समाप्त होना। किनारे लगाना = (१) (नाव को) किनारे पर पहुँचना या भिड़ाना। (२) (किसी कार्य को) समाप्ति पर पहुँचाना। पूरा करना। निर्वाह करना। जैसे—जब इस काम को हाथ में ले लिया है, तब किनारे लगाओ। किनारे होना = अलग होना। दूर हटना। संबंध छोड़ना। छुट्टी पाना। मतलब न रखना। जैसे—तुम तो ले देकर किनारे हो गए हमारा चाहे जो हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विभक्ति का लोप करके प्रायः किया जाता है। जैसे—(क) नदी के किनारे चलो। (ख) वह किनारे किनारे जा रहा है।

यौ०—किनारी बाफ = किनारी या गोटा बुननेवाला।

किनि[1](प)—सर्व० [हिं० किन] दे० 'किन'। उ०—जितहिं परची हौं तितहिं न पावौं। जसुमति जिय यौं किनि बिरमावौं।—नंद० ग्रं०, पृ० २८३।

किनी[2](प)—क्रि० वि० दे० 'किन' उ०—तुम। सब रहो री हौं हो उतार देहों चले किनि जाउ डाँटा बाइ बावरी गाऊ—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १९०।

किन्नर[1]—संज्ञा पुं० [सं० किन्नर किंनर] [स्त्री० किन्नरी] एक प्रकार के देवता।

विशेष—इनका मुख घोड़े के समान होता है और ये संगीत में अत्यंत कुशल होते हैं। ये लोग पुलस्त्य ऋषि के वंशज माने जाते हैं।

पर्या०—तुरगमुख।—किंपुरुष।—गीतमोदी।

किन्नर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] तकरार। विवाद। दलील।

किन्नर[3]—†(प)संज्ञा पुं० [सं० कन्दर] गुफा। खोह। कंदरा। उ०—कपि कुल विपन रीछ गिर किन्नर, सुर गुर नरग समावैं—रघु० रू०, पृ० १९१।

किन्नरि(प)—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी] एक बाजा। उ०—गोमुख, किन्नर, झाँझ, बीच बिच मधुर उपंग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८२।

किन्नरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किन्नर की स्त्री। २. किन्नर जाति की स्त्री।

किन्नरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी = वीणा] १ एक प्रकार का तँबूरा। २ किंगरी। सारंगी।

किन्ना—(प)संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या] कन्या। पुत्री (डिं०)।—उ० किन्ना ब्याहे कोडनो, जू किन्यादन्न लेवैं।—रघु० रू०, पृ० २८२।

किप्पाट(प)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] कपाट। दरवाजा। उ०—काम धाम रिम राह स्याम जिम धाम सिरपति। पंच पंच दिय रोस फट्टि किप्पाट थाट भजि।—पृ० रा० ५।२८।

चुपचाप बैठो, उठे कि मारा। (ग) तुम यहाँ से हटे कि चीज गई। ३ था। अथवा। जैसे,—तुम आम लोगे कि इमली। उ०—सुंदर बोलत आवत बैन। ना जानौं तिहि समय सखी री,सब तन स्रवन कि नैन।—सूर०, १०।१८०४।

किग्राह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कियाह] १ ताड के पके फल के रग का घोड़ा। २ लाल रग का घोडा। उ०—लील समुद चाल जग जाएँ। हासुल भवँर कियाह बखाणैं —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५०।

किक—संज्ञा स्त्री० [अ०] ठोकर। पाँव का आघात।

किकान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केकारण] घोडा। अश्व। उ०—जसवत साजवान। चड्ढे किकान करि करि गराज।—सूदन (शब्द०)।

किक—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीलकठ पक्षी। २ नारियल।

किकियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केकाण = केकाण देश का घोडा] घोड़ा। उ०— चलहि कलापि कमान चलत धनवान है। परत सत्रु रणभूमि फुट्टि किकियान है।—प० रासो०, पृ० ८।

किकियाना—क्रि० अ० [अनु०] १ की की या कें के का शब्द करना। २ चिल्लाना। ३.रोना। चीखना।

किकोरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

किक्यान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० केकाण = केकाण देश का घोडा] एक प्रकार का घोडा। उ०—प्रदह सहस सुभग किक्यान। कनक भसे नग जरे पलान।—नंद ग्र०, पृ० २२१।

किचकिच—संज्ञा स्त्री० [अनु० मू०] १ व्यर्थ का वाद विवाद। व्यर्थ की बकवाद। २ झगड़ा। तकरार। जैसे,—दिन रात की किचकिच अच्छी नही।

क्रि० प्र०— करना।— मचना।—मचाना।—होना।

किचकिचाना—क्रि० अ० [हिं० किचकिच से नामिक धातु] १ (क्रोध से) दाँत पीसना। जैसे—तुम तो व्यर्थ ही किचकिचाया करते हो। २ भरपूर बल लगाने के लिये दाँत पर दाँत रखकर दबाना। जैसे—उसने किचकिचाकर पत्थर उमाडा तब उभडा। ३ दाँत पर दाँत रखकर दबाना। जैसे—उसने किचकिचाकर काट लिया।

किचकिचाहट—संज्ञा पुं० [हिं०] किचकिचाने का भाव।

किचकिची-संज्ञा स्त्री०[हिं०]किचकिचाहट। दाँत पीसने की अवस्था।

मुहा०—किचकिची बाँधना = (१) क्रोध से दाँत पीसना। (२) भरपूर बल लगाने के लिये दाँत पर दाँत रखकर दबाना।

किचपिच—वि०[हिं० गिचपिच] दे० 'गिचपिच'।

किचडाना—क्रि० अ० [हिं० कीचड़ से नामिक नाम०] (आँख का) कीचड से भरना। कीचड़ से युक्त होना। जैसे—आँख किचडाई है।

किचन—संज्ञा पुं० [अ०] रसोईघर। उ०—यही हमारा ड्राइग रूम है, यही बेड रूम और किचन भी यही हैं।—संयासी पृ० १०३।

किचला—संज्ञा पु० [देश०] कीडा। उ०—नरम लकडी किचल पकड़ी।—दक्खिनी०, पृ० ४६७।

किचर-पिचर(पु)—वि० [हिं० गिचपिच] दे० 'गिचपिच'।

किछु(पु)—संज्ञा- वि० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०— धनि राजा तोर राज बिसेखा। जेहि कि रजाउरि सब किछु देखा।—जायसी ग्रं०, पृ० ३४५।

किछौ(पु)—क्रि० वि० [हि० किछु + औ (प्रत्य०)] कुछ भी। उ०—बरनि सिंगार न जानेऊँ नखसिख जैस अभोग। जग तस किछौ न पावौं उपमा देऊँ ओहि जोग।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १९९।

किटकिट—संज्ञा पुं० [अनु० मू० अथवा सं० किटकिटाय] वादविवाद। किचकिच।

किटकिटाना—क्रि० अ० [हिं किटकिट' से नामिक धातु] १ क्रोध से दाँत पीसना। २ दाँत के नीचे ककड की तरह कड़ा लगना। जैसे,—दाल बिनी नहीं गई है, किटकिटाती है।

किटकिना—संज्ञा पुं० [सं० कृतक] १.वह दस्तावेज जिसके द्वारा ठेकेदार अपने ठेके की चीज का ठीका अपनी ओर से दूसरे असामियो को देता है २ सोनारो का ठप्पा जिसपर ठोककर चाँदी सोने के पत्तो या तारो पर कुछ चित्र या बेलबूटे उभारते हैं। ३ चाल। चालाकी।

यौ०—किटकिनेबाजी = चालबाजी।

किटकिनाबाज—संज्ञा पुं० [हिं० किटकिना + फा० बाज] किफायत से काम करनेवाला। चालाक। अल्पव्ययी।

किटकिनादार—संज्ञा पुं० [हिं० किटकिना + फा दार (प्रत्य०)] वह पुरुष जो किसी वस्तु को ठेकेदार से ठेके पर ले।

किटकिनेदार—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'किटकिनादार'।

किटकिरा—संज्ञा पु० [हिं० किटकिना] दे० 'किटकिना'।

किटि—संज्ञा पुं० [सं०] वाराह। सुअर [कौ०]।

किटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमडे या बाँस का बना कवच।

किटिभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ केशकीट। जूँ। २ खटमल (कौ०)।

किटिभकुष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कोढ जिसमे चमड़ा सूखे फोडे के समान काला और कडा हो जाता है।

किटिम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का कुष्ठ रोग [कौ०]।

किट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ धातु की मैल। २ तेल इत्यादि मे नीचे बैठी हुई मैल। ३. जमी हुई मैल।

किट्टक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'किट्ट' [कौ०]।

किट्टाल—संज्ञा पुं० [सं०] १.एक ताम्रपात्र। २ लोहे का मोरचा [कौ०]।

किट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी जो साफ न हो [कौ०]।

किड़कना—क्रि० अ० [अनु०] चुपके से चला जाना। खिसकना।

किणकिण —संज्ञा पुं० [अनु०] (किंकिणी की) मधुर ध्वनि। उ०—कण कण कर कंकण प्रिय किण् किण् रव किंकिणी।—गीतिका, पृ० ८।

किण—संज्ञा पुं० [सं०] १ घट्ठा। २ खुरड। ३. मस्सा। ४ लकड़ी का कीड़ा। घुन [कौ०]।

किणयक(पु)—वि० [हिं० किन + एक ?] किसी। उ०—वयण सगाई वंश, मिल्यां सचो दोषण मिटे। किणयक समैं कवंस, थरियौं सखापण उत्तपर्यं।—रघु० रू०, पृ० १३।

किण्व—संज्ञा पुं० [सं०] शराब में खमीर उठाने के लिये व्यवहृत एक प्रकार का बीज [को०]।

किण्वी संज्ञा पुं० [सं० किण्विन्] घोडा [को०]।

कितⓤ†—क्रि० वि० [सं० कुत्र, प्रा० कुत्थ] १ कहाँ। २ किस ओर। किधर।

कितकⓤ†— क्रि० वि० [सं० कियत्क] कितना। किस कदर।

कितकुⓤ†—वि० [सं० कति] कितना। उ०—कितकु होन है कटक जैसे। चरनमध्य कसकत है कैसे।—नंद ग्रं०—पृ० २३३।

कितना¹ —वि० [सं० कियत् से हिं०] [स्त्री० कितनी] १ किस परिमाण मात्रा या संख्या का? (प्रश्नवाचक) जैसे,—(क) तुम्हारे पास कितने रुपए हैं? (ख) यह घी तौल में कितना है?

यौ०—कितना एक (परिमाण या मात्रा)=कितना। किस परिमाण या मात्रा का। जैसे—कितना एक तेल खर्च हुआ होगा? कितने एक=किस संख्या में। जैसे,—कितने एक आदमी तुम्हारे साथ होंगे।

२.अधिक। बहुत ज्यादा। जैसे—यह कितना बेहया आदमी है।

कितना²—क्रि० वि० १.किस परिमाण या मात्रा में? कहाँ तक? जैसे—तुम हमारे लिये कितना दौडोगे? २ अधिक। बहुत ज्यादा। जैसे—कितना समझाते हैं पर वह नहीं मानता।

कितनी—वि० [हिं० 'कितना' का स्त्री०] अनेक। उ०—यों ही कितनियों को इस दामिनी की एक चमक दमक ..। प्रेमघन, भा० २, पृ० १२२।

कितनीकⓤ—वि० [कितनी+एक] कितनी एक। उ०—द्रव्य की तो कितनीक बात है। —दो सौ बावन, भा० १, पृ० १५४।

कितनोकⓤ—वि० [हिं० कितना+एक, ब्रज कितनो+एक] उ०—चांपासाई सों पूछी जो करज कितनोक भयो है।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १५३।

कितमकⓤ—संज्ञा पुं० [फ़ा०किसमत] कर्ता। भाग्य। विधि। उ०—पूरब जनम तणइ सराप, कितमक लीख्या सो भोगवी, विण मोग्या नहीं छूट सी पाप।—बी० रासो पृ० ३१

कितव—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआरी। २. धूर्त। छली। ३ उन्मत्त। पागल। ४ खल। दुष्ट। ५. धतूरा। ६ गोरोचन।

कितहुँ—सर्व० [सं० कुत्रापि अथवा हिं० कित+हुँ (प्रत्य०)] कहीं भी। उ०—चल्यो गयो तहँ विप्र क्षिप्रगति कितहुँ न अटक्यो।—नंद० ग्रं० पृ० २०४।

किता¹—संज्ञा पुं० [अ० क़ितः] १. सिलाई के लिये कपड़े की काट छाँट। ब्योंत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ काट छाँट। ढंग। चाल। जैसे—(क) टोपी अच्छे किते की है। (ख) यह तो अजीबो किते का आदमी है। ३ संख्या अदद। जैसे—दस किता मकान, चार किता खेत। पाँच किता दस्तावेज। ४ विस्तार का एक भाग। सतह का हिस्सा। ५ प्रदेश। प्रागण। भूभाग।

किता²—वि० [हिं० कितना का संक्षिप्त रूप] दे॰ 'कितना'। उ०—किता हुआ दिग कवी समुझणहार मशेष—रघु० रू०, पृ० ११।

किताब—संज्ञा स्त्री० [वि० किताबी] १ पुस्तक। ग्रंथ। २ रजिस्टर। बहीखाता। ३. कुरान। उ०—ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना। वेद किताब भरम हम साना—कबीर सा०, पृ० ८०७।

यौ०—किताबखाना=पुस्तकालय। लाइब्रेरी। किताबफ़रोश=पुस्तकें बेचनेवाला। पुस्तकों का दूकानदार। पुस्तकविक्रेता। किताबवाला=जो लिखी बातों को प्रमाण मानता है। अनुभव को प्रमाण माननेवाला। उ०—किताबवालों को इन्हीं दोनों में बांध लिया—कबीर सा०, पृ० ९९४।

किताबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] लिखापढ़ी। करना। प्रतिलिपि करना (को०)।

किताबत—वि० [अ० किताब] १ किताब के आकार का। २. किताब संबंधी।

यौ०—किताबी इल्म=पुस्तकीय ज्ञान। किताबी कीड़ा=(१) वह कीडा जो पुस्तकों को चाट जाता है। (२) वह व्यक्ति जो सदा पुस्तक ही पढ़ता रहता है। किताबी चेहरा=वह चेहरा जिसकी आकृति लंबाई लिए हो। लंबोतरा चेहरा।

कितिकⓤ† वि० [हिं० कितक] दे० 'कितक' 'कितना'। उ०—कितिक बरस द्वारावति बसे।—नंद० ग्रं०, पृ० २१९।

कितेⓤ -वि० [हिं० किता] कितना। अनिश्चित संख्या। उ०—अबले रे मनुष मानुमन सो देव दैत्य आगे किते।—हम्मीर रा० पृ० १०६।

कितेकⓤ—वि० [सं० कियदेक] १ कितना। २ जिसकी संख्या निश्चित न हो। असंख्य। बहुत। उ०—किरवान वज्र सों विपक्ष करिबे को डर आनि के कितेक आए सरन की गैल हैं।—भूषण ग्रं० पृ० ४६।

कितेबⓤ—संज्ञा स्त्री० [अ०किताब] किताब। कुरान शरीफ। उ०—वेद कितेब ते भेद न्यारा रहा, वहाँ तो आप हैं एक सोई—कबीर रे०, पृ० १२।

कितेबाⓤ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कितेब] दे० 'किताब'। उ०—ना खुदा कुरान कितेबाँ न खुदा नमाजे।—संतवाणी०, भा०१ पृ० १५२।

कितेबाⓤ—संज्ञा पुं० [अ० किताब] किताब या कुरान। उ०—कितेबा पढ़ंता तुरुकहा अनंता।—कीर्ति०, पृ० ४०।

कितैⓤ†—क्रि० वि० [सं० कुत्र, प्रा० कुत्थ] कहाँ। किस जगह। उ० — किसी शंभु को दै राजपुत्री कितै।—केशव (शब्द०)।

कितो¹ⓤ†—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० किती] कितना। उ०—किती न गो कुल कुलवधू, काहि न केहि सिख दीन?—विहारी (शब्द०)।

कितो²ⓤ† क्रि० वि० 'कितना'।

कितौ—ⓤ वि० [हिं० कितना] दे० 'कितना'। उ०—एक अंड को भार सु कितौ। परबतु सेस धरे सिर तितौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८२।

कितोऊ—वि० [हिं० कितौ+उर (प्रत्य०)] कितना हो। उ०—कहैं श्री हरिदास पिंजरा के जिनावर सो, तरफराइ रह्यो उड़िबे को कितोऊ करि।—पोद्दार अभि०, ग्रं० पृ० ३६०।

विशेष—हिंदुस्तान मे यह केवल बगीचो मे बोया जाता है, जगली नही मिलता। अरब और रूम आदि मे यह वसंत ऋतु मे होता है, पर भारतवर्ष मे जाडे के दिनो मे होता है। यूरोप के बगीचो में एक प्रकार का काहू बोया जाता है जिसकी पत्तियाँ पातगोभी की तरह एक दूसरी से लिपटी और बँधी रहती हैं और उनके सिरो पर कुछ कुछ बैंगनी रंगत रहती है। पश्चिम के देशो में काहू का साग या तरकारी बहुत खाई जाती है। बहुत से स्थानो मे काहू के पौधे से एक प्रकार की अफीम पोछकर निकालते है जो पोस्ते को तरह तेज नहीं होती। इसमे गोभी की तरह एक सीधा डंठल ऊपर जाता है जिसमे फूल और बीज लगते हैं। इसके बीज दवा के काम मे आते हैं। हकीम लोग काहू को रक्तशोधक मानते हैं। मल और पेशाब खोलने के लिये भी इसे देते हैं। काहू के बीजो से तेल निकाला जाता है। जो सिर के दर्द आदि मे लगाया जाता है।

काहे᠎Ⓟ—क्रि० वि० [हिं०] क्यो। किसलिये।

यौ०—काहे को = किसलिये ? क्यो ?

कि—अव्य० [सं० किम्] दे० 'किम'।

किंकनी किंकणीका—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्कणी, किङ्कणीका] १ करधनी। २ एक प्रकार का खट्टा अगूर (को०)।

किंकनी᠎Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] दे० 'किंकिणी'। उ०—काछनी किंकनी कटि पीतांबर की चटक (मटक) कुडल किरन रवि रथ की अटक।—नंद० ग्र०, पृ० ३६३।

किंकर—संज्ञा पु० [सं० किङ्कर] [स्त्री० किङ्करी] १ दास। सेवक। नौकर।—आगे बढ़ बोला मैं प्रभुवर, किंकर कर लेगा यह कार्य।—साकेत, पृ० ३६६। २ राक्षसो की एक जाति जिसको हनुमान जी ने प्रमदा वन को उजाड़ने समय मारा था।

किंकरता—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्करता] सेवा। दासता। उ०—किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज चरनन की।—काश्मीर० पृ० ४।

किंकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्करी] सेविका। उ०—तटिनी, यह तुच्छ किंकरी, सुख से क्यो न, बता वहीं मरी ?—साकेत, पृ० ३४६।

किंकर्तव्यविमूढ़—वि० [सं०] जिसे यह न सूझ पड़े कि अब क्या करना चाहिए। हक्का बक्का। भौचक्का। घबराया हुआ।

किंकिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणिका] दे० 'किंकिणी' (को०)।

किंकिणी संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] १ क्षुद्र घंटिका। करधनी। जेहर। कमरकस। २ एक प्रकार की खट्टी दाख। ३ कटाय का पेड़। विकंकत वृक्ष।

किंकिन᠎Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'किंकिणी'। मद गयद की चाल चलै कटि किंकिन नेवर की धुनि बाजै।—मति० ग्र०। पृ० ३४६।

किंकिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किणी] दे० 'किंकिणी'। उ०—घट किंकिनि मुरलि बाजै संख धुनि मान मन।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२२।

किंकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] दे० 'किंकणी'। उ०—रसना काँची किंकिनी सूत्र मेखला जान।—अनेकार्थ०, पृ० ३३।

किंकिर—संज्ञा पुं० [सं० किङ्किर] १. हाथी का मस्तक। २ कोकिल। ३ भौंरा। ४ घोडा। ५ कामदेव। उ०—नंददास प्रेमी स्याम परसि पद पंकज कही, कालिह तें जू काँमरि भरि किंकिर बुलावै।—नंद० ग्र० पृ० ३६०। ६. लाल रंग।

किंकिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किरा] रुधिर। खून (को०)।

किंकिरात—संज्ञा पुं० [सं० किङ्किरात] १ अशोक का पेड़। २ कटसरैया। ३ कामदेव। ४ सुआ। तोता।

किंकिरि—संज्ञा स्त्री० [सं० किङ्किरि] कोयल (को०)।

किंकिरि—संज्ञा पुं० [सं० किङ्किरिन्] विकंकत का वृक्ष (को०)।

किंगरई—संज्ञा पुं० [देश०] लाजवंत की जाति का एक कँटीला पौधा।

विशेष—इसकी पत्तियो के सीके ७-८ इंच लंबे और इनमे लगी हुई पत्तियाँ ½ इंच लंबी होती हैं। यह असाढ़ सावन मे फूलता है। फूल पहले लाल रहते हैं, फिर सफेद हो जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं। इसकी लकड़ी का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। यह भारतवर्ष मे सर्वत्र होता है।

किंगरि᠎Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगरी] दे० 'किंगरी'। उ०—किंगरिय गहि दिन रैन बजैहों।—माधवानल०, पृ० २०१।

किंगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० किंगिरी] दे० 'किंगिरि'। उ०—तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहे बियोगी।—जायसी० ग्र० (गुप्त) पृ० १२६।

किंगाना᠎Ⓟ—क्रि० अ० [हिं०] शब्द करना। बोलना। उ०—भूली सारस सद्दइ जाप्रम् करह किंगाइ। धाई धाई अत चढो, पगे दाधी माय।—ढोला० दू० ३८८।

किंगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी] छोटा चिकारा। छोटी सारंगी जिसे बजाकर एक प्रकार के जोगी भीख माँगते हैं। उ०—किंगिरी गहे जो हुत बैरागी। मरती बार वही धुन लागी।—जायसी (शब्द०)।

किंगोरा—संज्ञा पुं० [देश०] दारुहल्दी की जाति की ४-५ हाथ ऊँची एक कटीली झाडी जो जमीन पर दूर तक नही फैलती, सीधी ऊपर जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी होती हैं जिनके किनारो पर दूर दूर दाँत होते हैं। इसमे छोटे छोटे फूल और लाल या काली फलियाँ लगती हैं जो खाई जाती हैं इसमे भी वे ही गुण हैं जो दारुहल्दी मे हैं। इसे किलमोरा और चित्रा भी कहते हैं।

किंचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ थोडी वस्तु। असमग्र वस्तु। २ पलाश।

किंचन्य—संज्ञा पुं० [सं० किञ्चन्य] धन। संपत्ति (को०)।

किंचित्¹—वि० [सं० किञ्चित] कुछ। अल्प। जरा सा।

यौ०—किंचिन्मात्र = थोड़ा भी।

कास्टा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठा] दे० 'काष्ठा' । उ०—आसा कास्टा ककुभ दिसि गो हरीत इहि गेर ।—अनेकार्थ०, पृ० ३६ ।

कास्टिंग वोट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या परिषद के अध्यक्ष या सभापति का वोट । निर्णायक वोट । जैसे,—अमुक प्रस्ताव के पक्ष में २० और विपक्ष में भी २० ही वोट आए । सभापति ने पक्ष में अपना कास्टिंग वोट देकर प्रस्ताव पास कर दिया ।

विशेष—इसका उपयोग किसी विषय या प्रश्न का निर्णय करने के लिये उस समय किया जाता है जब सभासद दो समान भागों में बँट जाते हैं, अर्थात् जब आधे सदस्य पक्ष में और आधे विपक्ष में होते हैं, तब सभापति किसी पक्ष में अपना 'कास्टिंग वोट' देता है । इस प्रकार एक अधिक वोट से उस पक्ष की बात मान ली जाती है । यदि सभापति उस सभा या संस्था का सदस्य हो तो वह कास्टिंग वोट दे सकता है । सदस्य रूप से वह सदस्यों के साथ पहले ही वोट दे चुकता है ।

कास्टिक—वि० [अं०] वह क्षार जो चमड़े पर पड़कर उसे जला दे या आबले डाल दे । जारक ।

काहँ(पु)†—प्रत्य० [हिं० कहँ] दे० 'कहँ' ।

काह(पु)१—क्रि० वि० [हिं०] क्या ? कौन वस्तु ? उ०—का सुनाय बिधि काह सुनावा । का दिखाइ चह काह दिखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

काह२—संज्ञा स्त्री० [फा०] तृण । घास । उ०—दो मुँह से चरता है दाना व काह । व लेकिन नहीं लीद करने को राह ।—दक्खिनी, पृ० ३०२ ।

काहन—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० काहिना] १ भविष्यवक्ता । २. उपदेशक । ३ मुल्ला । मौलवी । उ०—कुमरी और कबूतर के बच्चों में से बलि लावे और काहन उसको बलिस्थान में लाकर उसका गला मरोड डाले ।—कबीर म०, पृ० २८७ ।

काहर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काहारक] दे० 'कहार' । उ०—काहर कथन कितक कितक स्वानन मुष टुट्टत । बिछी सर्प विषंग मत्रवादी मिल लुट्टत ।—पृ० रा०, ६।१०५ ।

काहरऊ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्वाथ, प्रा० काढ] काढ़ा । क्वाथ । उ०—काहरऊ पीवी न ऊपद खाई ।—बीसल० रास, पृ० ६४ ।

काहल१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा ढोल । २. [स्त्री० काहली] बिल्ला । ३ [स्त्री० काहली] मुर्गा । ४ अव्यक्त शब्द । (को०) । ५ हुंकार ५. कौआ । काक (को०) । ६ शब्द ध्वनि (को०) । ७. एक बाजा (को०) ।

काहल२—वि० [सं०] १ कठोर । उ०—स्तब्ध कठिन, कर्कस, परुष, अद, कठोर । दृढ काहल पुनि करागु जो होहि तिन्हें तजि सील-नंद० ग्रं०, पृ० ११२ । शुष्क । सूखा । मुरझाया हुआ (को०) । ३ दुष्ट । धूर्त (को०) । ४ अधिक । विस्तृत । विशाल (को०) ५ हानिकारक (को०) ।

काहल—३(पु)—वि० [देश०] गंदा । पंक भरा ।

काहला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वरुण की स्त्री । २ एक अप्सरा का नाम । ३ सेना संबंधी एक बडा ढोल (को०) ।

काहलि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०) ।

काहली—संज्ञा स्त्री० [पुं०] युवती । तरुणी (को०) ।

काहा(पु)—सर्व० [हिं० कहा = क्या] क्या । उ०—जाइ उतर अब देहौं काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ।—मानस ११५४ ।

काहारक—संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति जिसका पेशा लोगों को पालकी में ढोना है । कहार (को०) ।

काहानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कथानक, कथानिका, हिं० कहानी] कहानी । कथा । उ०—पुरिस काहानी हओ (कहथों) जसु पत्थावे पुड्डु ।—कीर्ति०, पृ० ८ ।

काहापण—संज्ञा पुं० [सं० कार्षापण] दे० 'कार्षापण' । उ०—और इसने वाराहिपुत्र अग्निभूति ब्राह्मण के हाथ से चार हजार काहापणों के मूल्य से खरीदा खेत दिया कि इससे मेरे लेण में रहनेवाले चतुर्दिश भिक्षुसंघ को भोजन मिलता रहेगा ।—भा० इ० रू०, पृ० ७६० ।

काहि(पु)—सर्व० [हिं०] १. किसको । किसे । २ किससे । उ०—काहि कहौं यह जान न कोऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

काहिल—वि० [अ०] जो फुर्तीला न हो । आलसी । सुस्ती । उ० मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १ पृ० ४८० ।

काहिली—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुस्ती । आलस ।

काही(पु)—प्रत्य० [हिं० कहँ] को । के लिये ।

काही१—वि० [फा० काह, या हिं० काई] घास के रंग का । कालापन लिए हुए हरा ।

काही२—संज्ञा पुं० एक रंग जो कालापन लिए हुए हरा होता है तथा नील, हल्दी और फिटकरी के योग से बनता है ।

काहीदा—वि० [फा०] छटा हुआ । कटा हुआ । कृश । उ०—काहीदा ऐसा हूँ मैं भी ढूँढ़ा करे न पाएगी, । मेरी खातिर मौत भी मेरी बरसों सर टकराएगी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५६ ।

काहु(पु)—सर्व० [हिं० काहू] दे० 'काहू' । उ०—(क) काहु का पल काहु घोल, काहु सबल देल थोल ।—कीर्ति०, पृ० २४ । (ख) मोतिय वर इन काहुव हाथा । रेडुर चढइ न मोरेह माथा ।—इंद्रा०, पृ० ३९ ।

काहूँ—सर्व० [हिं०] कोई । किसी ने । उ०—पेम सुरा सोई पै पिया । लखै न कोइ कि काहूँ दिया ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३६ ।

काहू१—सर्व० [हिं० का + हू (प्रत्य०)] किसी । उ० —(क) जो काहू की देखहिं बिपती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) धार लगै तरवार लगै पर काहू कीकाहू सो आँखि लगे ना (शब्द०) ।

विशेष—ब्रजभाषा के 'को' शब्द का विभक्ति लगने के पहले 'का' रूप हो जाता है । इसी 'का' में निश्चयार्थक 'हू' विभक्ति के पहले लग जाता है, जैसे, काहू ने, काहू को, काहू सों आदि ।

काहू२—संज्ञा पुं० [फा०] गोभी की तरह का एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी, दलदार और मुलायम होती हैं ।

रूख तरे, पर सुंदरदास सहै दुख भारी। डासन छाड़ि कै कासन ऊपर, आसन मारि पै आस न मारी।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० १२३।

कास[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कौडी। उ०—जला इश्क की बात मे मालो धन कूँ। रखी कास ना पास हरगिज कफन कूँ।—दक्खिनी०, पृ० २५७।

कासहृत्—वि० [सं०] खाँसी दूर करनेवाला।

कासकंद—संज्ञा पुं० [सं० कासकन्द] कसेरू

कासकुंठ[१]—वि० [सं० कासकुण्ठ] खाँसी का रोगी [को०]

कासकुंठ[२]—संज्ञा पुं० यम। यमराज [को०]।

कासघ्न[१]—वि० [सं०] खाँसी का निवारक। खाँसी दूर करनेवाला [को०]

कासघ्न[२]—संज्ञा पुं० बहेड़ा [को०]।

कासनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ पौधा जो हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है और देखने मे बहुत हरा भरा जान पडता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पालकी की छोटी पत्तियो की तरह होती हैं, डठलो मे तीन तीन चार चार अगुल पर गाँठें होती हैं, जिसमे नीले फूलो के गुच्छे लगते हैं। फूलो के झड़ जाने पर उनके नीचे मटमैले रग के छोटे छोटे बीज पड़ते हैं। इस पौधे की जड़, डठल और बीज सब दवा के काम में आते हैं। हकीमो के मत से कासनी का बीज द्रावक शीतल और भेदक है तथा उसकी जड गर्म, ज्वरनाशक और बलवर्धक है। डाक्टरों के अनुसार इसका बीज रज स्रावक, बलकारक और शीतल तथा इसका चूर्ण ज्वरनाशक है। कासनी बगीचो मे बोई जाती है। हिंदुस्तान मे अच्छी कासनी पजाव के उत्तरी भागो मे तथा कश्मीर मे होती है। पर यूरोप और साइबेरिया आदि की कासनी औषध के लिये बहुत उत्तम समझी जाती है। यूरोप मे लोग कासनी का साग खाते हैं और उसकी जड़ को कहवे के साथ मिलाकर पीते हैं। जड़ से कही कही एक प्रकार की तेज शराब भी निकालते हैं।

२ कासनी का बीज। ३. एक प्रकार का नीला रग जो कासनी के फूल के रग के समान होता है।

विशेष—यह रग चढ़ाने के लिये कपड़े को पहले शराब मे फिर नील मे और फिर खटाई मे डुबाते हैं।

४ नीले रंग का कबूतर।

कासमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] कसौंदा।

कासर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कासरी] भैंसा। महिष।

कासर[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह काली भेड जिसके पेट के रोएँ लाल रग के होते हो।

कासा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खाँसी। २ छींक [को०]।

कासा[२]—संज्ञा पुं० [फा० कासह्] १ प्याला। कटोरा। उ०—हाथ मे लिया कासा, तब भीख का क्या साँसा ?—(शब्द०)। २ आहार। भोजन। उ०—कासा दीजिए बासा न दीजिए। ३. दरियाई नारियल का वह भिक्षापात्र जो प्राय मुसलमान फकीरो के पास रहता है। कचकोल।

यौ०—कासाए गदाई = भीख मागने का पात्र। कासासर = कपाल। खोपड़ी। कासालेस = (१) प्याला चाटनेवाला। (२) लालची। लोभी। (३) चाटुकार। खुशामदी।

कासार—संज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा तालाब। ताल। पोखरा। उ०—लखि कपास को नासरी बिलखि न घर हरि धार। बिसनी मजहूँ पलास हैं सजि सूखे कासार।—म० सप्तक, पृ० ३०८। २ २० रगण का एक दंडक वृत्त। ३ एक प्रकार का पकवान। ४ भील। ह्रद। (को०)।

कासालु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद या आलू।

कासिका[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० काशिका] दे० 'काशिका'। उ०—परम रम्य सुखरासि कासिका पुरी सुहावनि।—रत्नाकर भा० १ पृ० ९८।

कासिका[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाँसी [को०]।

कासिद[१]—संज्ञा पुं० [अ० कासिद] संदेसा ले जानेवाला। हरकारा। दूत। पत्रवाहक। उ०—य अश्क आँखो कासिद किस तरह यक दम नहीं थमता। दिले बेताब का शायद लिये मकतूब जाता है।—कविता को०, भा० ४, पृ० २१।

कासिद[२]—वि० इच्छा या अभिलाषा रखनेवाला।

कासिप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कश्यप] दे० 'कश्यप'। उ०—मन तेण थियो मारीच मुनि उरावो कासिप ऊपनो। घर नूर प्रकासी प्रीत घर सुर तेण घर सपनो।—रा० रू०, पृ० ७।

कासी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० काशी] दे० 'काशी'। उ०—महामत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू।—मानस १। १९।

कासी[२]—वि० [अ० खास, राज० कासा, खासा] अधिक। खास। उ०—सीगण कोइ न सिरजियाँ प्रीतम हाथ करत। काठी साहत मूठि माँ कोडी कासी सत।—ढोला०, दू० ४१६।

कासी[३]—वि० [सं० कासिन्] कास या खाँसी के रोग से पीडित [को०]

कासीनाथ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० काशीनाथ] काशीनाथ। विश्वनाथ। महादेव। उ०—कासीनाथ बिसेस्वर दाता, तुम सब जग के बिधाता।—घनानद, पृ० ५९१।

कासीबास—(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० काशीवास] काशीपुरी मे निवास। काशी मे रहना। उ०—आराम से काशीवास करो।—रगभूमि, भा० २, पृ० ४९४।

मुहा०—कासीबास हो जाना या होना = (१) काशी मे रहते हुए मृत्यु प्राप्त करना। काशी मे मरना। गगालाभ होना। (२) मौत होना। स्वर्गवास होना।

कासीस—संज्ञा पुं० [सं०] हीरा कसीस [को०]।

कासुंदा†—संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, प्रा० कासमद्द] [स्त्री० कासुंदी] पुं० 'कसौंदा।

कासृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पगडंडी। २. पतला रास्ता (गृह्यसूत्र)। ३. गुप्त मार्ग (को०)।

कासेय्यक—वि० [सं० काशिक अथवा काशेय] काशी मे बना हुआ (रेशमी वस्त्र)। उ०—काशी का चदन और काशी के सूक्ष्म कासेय्यक वस्त्र।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३८।

कास्केट—संज्ञा पुं० [अ० कैस्केट] पेटी। सदूकडी। डिब्बा। जैसे,—अभिनंदनपत्र चाँदी के एक सुदर कास्केट मे रखकर उनके अर्पण किया गया।

८. मास [को०]।

यौ०—काश्यपनंदन = गरुड।

काश्यपि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अरुण, जो गरुड के बड़े भाई कहे गए हैं। २. गरुड (को०)।

काश्यपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी। जमीन। २ प्रजा।

काश्यपेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। दिवाकर। देवता। ३ पक्षिराज। गरुड़। ४. दारुक नाम का सारथी [को०]।

काश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काश्मरी' [को०]।

काष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सान का पत्थर। २ एक ऋषि। ३ कसौटी। निकष (को०)।

काषण—वि० [सं०] कच्चा। अपरिपक्व [को०]।

काषाय¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० काषायी] १ हर्रे, बहेड़े, कटहल, आम आदि कसैली वस्तुओं में रंगा हुआ। २. गेरुआ। उ०—चिंतित से काषाय वसनधारी सब मंत्री।—साकेत पृ० ४१३।

काषाय²—संज्ञा पुं० १ हर्रा, बहेड़ा, आम, कटहल आदि कसैली वस्तुओं में रंगा हुआ वस्त्र। २. गेरुआ वस्त्र।

काष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ लकड़ी। काठ। २ ईंधन। ३. छड़ी [को०]। ४ लंबाई नापने का एक साधन या औजार [को०]।

काष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] अगर। एक सुगंधित लकड़ी (को०)।

काष्ठकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठकेला।

काष्ठकीट—संज्ञा पुं० [सं०] घुन (को०)।

काष्ठकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पक्षी।

काष्ठकुद्दाल—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का पानी निकालने और उसके पेंदे को साफ करने का औजार [को०]।

काष्ठकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काष्ठकुट्ट' [को०]।

काष्ठकौशिक¹—वि० [सं०] मूर्ख [को०]।

काष्ठकौशिक²—संज्ञा पुं० काठ का उल्लू। उ०—यदि कोई व्यक्ति अभिज्ञान शाकुंतल की आध्यात्मिक व्याख्या करे, मेघ की यात्रा को जीवात्मा का परमात्मा में लीन होने का साधन पथ बतावे, तो कुछ लोग तो विरक्ति से मुँह फेर लेंगे, पर बहुत से लोग आँखें फाड़कर काष्ठकौशिक की तरह ताकते रह जायगे।—चिंतामणि, भा० २ पृ० ८६।

काष्ठतंतु—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठतन्तु] काठ के भीतर रहने वाला कीड़ा।

काष्ठतक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ई [को०]।

काष्ठदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु। देवदार [को०]।

काष्ठद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पलास वृक्ष [को०]।

काष्ठपुत्तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काठ की मूर्ति। २. कठपुतली [को०]।

काष्ठपूलक—संज्ञा पुं० [सं०] छड़ियों या काठ के चुर्दों का ढेर [को०]।

काष्ठप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] चिता बनाना। चिता के लिये लकड़ी चुनना [को०]।

काष्ठभंगी—संज्ञा पुं० [काष्ठभङ्गिन्] १. कठफोड़वा। २. घुन [को०]।

काष्ठभार—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियों का विशेष भार या वजन [को०]

काष्ठभारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी ढोनेवाला मजदूर। २ लकड़हारा [को०]।

काष्ठमठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिता। सरा।

काष्ठमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अरथी। बाँस या लकड़ी का बना वह ढाँचा जिसपर शव को रखकर श्मशान पर ले जाते हैं [को०]

काष्ठयूप—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का खंभा, जो यज्ञपशु को बाँधने के लिये गाड़ा जाता था। उ०— देखा जैसे, चौंक उन्होंने प्रथम बार पृथ्वी पर, पशु बनकर नर बँधा हुआ है काष्ठयूप में कसकर।—दैनिकी, पृ० २।

काष्ठरजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठरञ्जनी] दारु हल्दी।

काष्ठलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] घुन।

विशेष—घुन लकड़ियों में काट काटकर टेढ़ी मेढ़ी लकीरें वा चिह्न डालते हैं जिन्हें घुणाक्षर कहते हैं।

काष्ठलोही—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठलोहिन्] लोहे से मढ़ी लाठी या गदा [को०]।

काष्ठवाट—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की बनी हुई दीवार। काष्ठभित्ति [को०]।

काष्ठसंघात संज्ञा पुं० [सं० काष्ठसङ्घात] लकड़ियों का बेड़ा (को०)।

काष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हद। अवधि। उच्चतम चोटी या ऊँचाई। उत्कर्ष। ३ १८ पल का समय या एक कला का ३०वाँ भाग। ४ चंद्रमा की एक कला। ५ घुड़दौड़ का मैदान या दौड़ लगाने की सड़क। ६ दक्ष की एक कन्या का नाम जो कश्यप को ब्याही थी। ७. दिशा। ओर। तरफ। ८. स्थिति। ९. चरम स्थिति या अंतिम सीमा (को०)। १० गंतव्य लक्ष्य (को०)। ११ आकाश में वायु और मेघ का पथ (को०)। १२ समय का एक परिमाण। कला [को०]। १४ सूर्य (को०)। १५ पीला रंग (को०)। १६ कदंब वृक्ष (को०) १७. रूप। आकार। घाटी (को०)।

काष्ठांबुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठाम्बुवाहिनी] काठ का जलपात्र [को०]।

काष्ठागार—संज्ञा पुं० [सं०]काठ का बना घर। कठघरा। काष्ठगृह। [को०]।

काष्ठिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़हारा [को०]।

काष्ठिक²—वि० काठ से संबंध रखनेवाला। काठ का [को०]

काष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैली। काष्ठखंड। काठ का छोटा टुकड़ा [को०]।

काष्ठीय—वि० [सं०] १ काठ का बना। २ काठ से संबंध रखनेवाला [को०]।

काष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला [को०]।

कास¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाँसी। २ सहिजन का पेड़। ३ छींक (को०)।

यौ०—कासघ्नी = एक कँटीली झाड़ी जो खाँसी की दवा के काम आती है। कासनाशिनी = खाँसी रोग हरनेवाले एक पौधे का नाम।

कास²—संज्ञा पुं० [सं० काश] दे० 'काँस'। उ०—भूमि सदै रहि

मुहा०—काशी (कासी) करवट लेना=(१) काशी करवट नामक तीर्थ में गला कटवाकर मरना। प्राणत्याग करना। उ०—सूरदास प्रभु जो न मिलेंगे लेहौं करवट कासी।—सूर० (शब्द०)। (२) कठिन दुःख सहना। काशी करवत लेना= दे० 'काशी करवट लेना'। उ०—जो कोई जावे हिमालय गले काशी करवत लेकर मरे।—दक्खिनी०, पृ० १६।

काशीखड—संज्ञा पुं० [सं० काशीखण्ड] स्कद नामक महापुराण का एक खड, जिसमे स्कद द्वारा काशी का माहात्म्य वर्णित हुआ है।

काशीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वनाथ। शिव। ईश्वर [को०]।

काशीफल—संज्ञा पुं० [सं० काशफल] कुम्हड़ा।

काशीवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ काशी मे निवास करना २ सन्यास लेना। ३ मृत्यु पाना। देहत्याग करना।

काशीराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काशिराज' [को०]।

काशीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक उपधातु का नाम। २ शिव। विश्वनाथ [को०]।

काशू—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी। भाला।

काशूकार—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड। पूग फल का वृक्ष [को०]।

काशेय—वि० [सं०] १. काशी सबधी। २. काशी मे उत्पन्न [को०]।

काश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. खेती। कृषि।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ जमींदार को कुछ वार्षिक लगान देकर उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व।

मुहा०—काश्त लगना=वह अवधि पूरी होना जिसके बाद किसी काश्तकार को किसी खेत पर दखीलकारी का हक प्राप्त हो जाय।

काश्तकार—संज्ञा पुं० [फा०] १. किसान। कृषक। खेतिहर। २. वह मनुष्य जिसने जमींदार को कुछ वार्षिक लगान देने की प्रतिज्ञा करके उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व प्राप्त किया हो।

विशेष—साधारणतः काश्तकार पाँच प्रकार के होते हैं, शरह मुएअन, दखीलकार, गैर दखीलकार, साकितुल-मालकियत और शिकमी। शरह मुएअन वे हैं जो दवामी बदोबस्त के समय से बराबर एक ही मुकर्रर लगान देते आए हो। ऐसे काश्तकारो की लगान बढ़ाई नही जा सकती और वे बेदखल नहीं किए जा सकते। दखीलकार वे हैं जिन्हे बारह वर्ष तक लगातार एक ही जमीन जोतने के कारण उनपर दखीलकारी का हक प्राप्त हो गया हो और जो बेदखल नही किए जा सकते। गैर दखीलकार वे हैं जिनकी काश्त की मुद्दत बारह वर्ष से कम हो। साकितुल मालकियत वह है जो उसी जमीन पर पहले जमींदार की हैसियत से सीर करता रहा हो। शिकमी वह है जो किसी दूसरे काश्तकार से कुछ मुद्दत तक के लिये जमीन लेकर जोते।

काश्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. खेतीबारी। किसानी। २. काश्तकार का हक। ३. वह जमीन जिसपर किसी को काश्त करने का हक हो।

काश्मकराष्ट्रक—संज्ञा पुं० [सं०] हीरों के अनेक भेद या प्रकार [को०]।

काश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बडा वृक्ष।

विशेष—इसके पत्ते पीपल के पत्ते से चौडे होते हैं और इसके कई अगो का व्यवहार ओषधि रूप मे होता है। वि० दे० 'गभारी'।

काश्मर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काश्मरी' (को०)।

काश्मल्य—संज्ञा पुं० [सं०] निराशा। मस्तिष्क का अव्यवस्थित होना [को०]।

काश्मीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक देश का नाम। दे० 'कश्मीर'। २ कश्मीर का निवासी। ३ कश्मीर मे उत्पन्न वस्तु। ४ पुष्कर मूल। ५. केसर। ६ सोहागा।

काश्मीर²—वि० कश्मीर मे उत्पन्न। कश्मीर का।

काश्मीरक, काश्मीरिक—वि० [सं०] कश्मीर देश में उत्पन्न [को०]।

काश्मीरज—संज्ञा पुं० [सं०] केसर [को०]।

काश्मीरजन्मा—संज्ञा पुं० [पुं० काश्मीरजन्मन्] केसर [को०]।

काश्मीरपङ्क—संज्ञा पुं० [सं० काश्मीरपङ्क] कस्तूरी। मृगमद [को०]।

काश्मीरा—संज्ञा पुं० [सं० काश्मीर] १ एक प्रकार का मोटा ऊनी कपडा। २ एक प्रकार का अगूर।

काश्मीरी¹—वि० [सं० काश्मीर + ई] १ काश्मीर देश सबधी। काश्मीर देश का। २ काश्मीर देश का निवासी।

काश्मीरी²—संज्ञा पुं० रबर का पेड। बोर। लेसु।

काश्मीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] केसर [को०]।

काश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदिरा। शराब। २ महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम [को०]।

काश्यप¹—वि० [सं०] १ कश्यप प्रजापति के वश या गोत्र का। कश्यप सबधी। २. जैनमतानुसार महास्वामी के गोत्र का।

काश्यप²—संज्ञा पुं० १. बौद्धमतानुसार एक बुद्ध जो गौतम बुद्ध से पहले हुए थे। २ रामचद्र की सभा के एक सभासद। ३ कणाद मुनि (को०)। ४ एक प्रकार का मृग (को०)। ५. एक गोत्र का नाम जो कश्यप ऋषि के वशजों मे चला (को०)। ६. एक मुनि का नाम (को०)। ७. विषविद्या का एक विद्वान् जिसका उल्लेख महाभारत मे विस्तार से हुआ है।

विशेष—कहा गया है कि जब शमीक के पुत्र शृगी ऋषि ने राजा परिक्षित को सातवें दिन तक्षक द्वारा डस लिए जाने का शाप दिया तब धन के लोभ से उन्हें बचाने के लिये यह ब्राह्मण हस्तिनापुर चल दिया। रास्ते में तक्षक से उसकी भेंट हो गई। तक्षक के पूछने पर इसने हस्तिनापुर जाने का प्रयोजन उसे बता दिया। इसकी सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिये उसने एक विशाल वट वृक्ष को जाकर डस लिया। उसमे विष के प्रभाव से ज्वालाएँ उठने लगी। उसके जल जाने पर उसकी राख हाथ मे लेकर ब्राह्मण ने मत्र पढ़ा और वह वृक्ष फिर उसी प्रकार ज्यो का त्यो हो गया। यह देखकर तक्षक ने बहुत सा धन देकर उस ब्राह्मण को वहीं से लौटा दिया।

कोई कोई इस काव्यलिंग को हेतु अलंकार के अंतर्गत ही मानते हैं, अलग अलंकार नहीं मानते।

काव्यवस्तु—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का विषय। काव्य में वर्णित मुख्य बात। उ०—सच्चो स्वाभाविक रहस्य भावनावाले और सांप्रदायिक या सिद्धांती रहस्यवादी की पहचान के लिये काव्य वस्तु का भेद आरंभ में ही हम दिखा आए हैं।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १३६।

काव्यशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] काव्यलक्षण संबंधी विवेचन। काव्य की समीक्षा। उ०—इस प्रकार के मिलन को काव्यशास्त्र में वियोग में संयोग कहा है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १०२।

काव्यशिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्यमर्यादा। काव्य संबंधी संस्कृति। उ०—ऐसे भावोद्गार भी भद्दे पन से खाली नहीं, और काव्य-शिष्टता के विरुद्ध है।—रस०, पृ० १२३।

काव्यशोभाकर—वि० [सं०] काव्य संबंधी सौंदर्य बढानेवाला। उ०—आचार्यों ने भी अलंकारों को 'काव्यशोभाकर' 'शोभातिशायी' आदि ही कहा है।—रस०, पृ० ५२।

काव्यसमीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का आलोचक। काव्य का सम्यक् अध्ययन करके उसके गुणों और दोषों पर विचार प्रकट करने-वाला व्यक्ति। उ०—पाश्चात्य काव्यसमीक्षक किसी वर्णन के ज्ञातृ पक्ष और ज्ञेय पक्ष अथवा विषयि पक्ष और विषय पक्ष दो पक्ष लिया करते हैं।—रस०, पृ० १२२।

काव्यहास—संज्ञा पुं० [सं०] प्रहसन जिसका अभिनय देखने से अधिक हँसी आती है।

काव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूतना। २ बुद्धि।

काव्यानुमान—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य विषयक अनुमान। काव्य का ज्ञान। उ०—मेरा काव्यानुमान यदि न बढ़ा ज्ञान जहाँ का रहा।—अपरा०, पृ० १६३।

काव्याभरण—संज्ञा पुं० [सं०] काव्यालंकार। काव्यसंबंधी गुण। उ०—यह दर्शनशासित प्रेम गीति, अनुरूप कल्पना और नए काव्याभरण का योग पाकर युग की एक प्रतिनिधि कृति बन गई।—नया०, पृ० १५०।

काव्याभास—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यरचना जो पाठक या श्रोता को प्रभावित न कर सके। जो काव्य सा प्रतीत हो किंतु वस्तुत काव्य न हो।

काव्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कवित्वमय विचार या सूझ [को०]।

यौ०—काव्यार्थचौर = किसी दूसरे की अच्छी सूझ को अपनी कविता में जड़ देनेवाला।

काव्यालंकार—संज्ञा पुं० [सं० काव्यालङ्कार] काव्यसंबंधी अलंकार। वे अलंकार जिनका काव्य में प्रयोग मिलता है।

काव्यार्थापत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थापत्ति अलंकार।

काश¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की घास। काँस। २ खाँसी। ३ एक प्रकार का चूहा। ४, एक मुनि का नाम। ६ शोभा। दीप्ति। उज्वलता (को०)।

काश²—अव्य० [फा०] दुःख और चाह आदि को व्यक्त करनेवाला पद। अव्यक्त इच्छा और प्रार्थना के स्थान पर यह शब्द प्रयुक्त होता है। खुदा करता। उ०—दूबदू मारे शर्म के हमारी आँखें ही न उठती थीं। आह! काश मालूम हो जाता किस बेरहम ने तुझपर कातिल वार किया।—काया०, पृ० ३३५।

काशक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काश' [को०]।

काशकृत्स्न—संज्ञा पुं० [सं०] एक संस्कृत वैयाकरण का नाम [को०]।

काशाना—संज्ञा पुं० [फा० काशानह्] छोटा सा घर जिसे शीशे आदि से सजाया जाय। उ०—तुममें झनक गर नहीं तो किससे रोशन यह काशाना है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६०।

काशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तेज। प्रकाश। २. सूर्य। ३ मुट्ठी। ४. काशी [को०]।

काशिक¹—वि० [सं०] १. काशी का बना हुआ। २. रेशमी [को०]।

काशिक²—संज्ञा पुं० रेशमी वस्त्र [को०]।

काशिका¹—वि० [सं०] १. प्रकाश करनेवाली। २ प्रकाशित। प्रदीप्त।

काशिका²—संज्ञा स्त्री० २ काशीपुरी। १ जयादित्य और वामन की बनाई हुई पाणिनीयव्याकरण पर एक वृत्ति।

विशेष—राजतरंगिणी में जयापीड नामक राजा का नाम आया है, जो ६६७ शकाब्द में कश्मीर के सिंहासन पर बैठा था और जिसके एक मंत्री का नाम वामन था। लोग इसी जयापीड को काशिका का कर्ता मानते हैं। पर मैक्समूलर साहब का मत है कि काशिकार जयादित्य कश्मीर के जयापीड़ से पहले हुआ है, क्योंकि चीनी यात्री इत्सिंग ने ६१२ शकाब्द में अपनी पुस्तक में जयादित्य के वृत्तिसूत्र का उल्लेख किया है। इस विषय में इतना समझ रखना चाहिए कि कल्हण के दिए हुए संवत् बिलकुल ठीक नहीं हैं। काशिका के प्रकाशक बालशास्त्री का मत है कि काशिका का कर्ता बौद्ध था, क्योंकि उसने मंगलाचरण नहीं लिखा है और पाणिनि के सूत्रों में फेरफार किया।

यौ०—काशिकाप्रिय = धन्वंतरि। काशिकावृत्ति = काशिका।

काशिनाथ, काशिप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। विश्वनाथ [को०]।

काशिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ काशी का राजा। २ दिवोदास। ३. धन्वंतरि।

काशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तरीय भारत की एक नगरी जो वरुणा और अस्सी नदी के बीच गंगा के किनारे बसी हुई है और प्रधान तीर्थस्थान भी है। वाराणसी। बनारस।

विशेष—काशी शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद के कौषीतक ब्राह्मण के उपनिषद् में पाया जाता है। रामायण के समय में भी काशी एक बड़ी समृद्ध नगरी थी। ईसा की ५वीं शताब्दी में जब फाहियान आया था, तब भी वाराणसी एक विस्तृत प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी समझी जाती थी। यह सात प्रसिद्ध तीर्थपुरियों में गिनी गई है।

काशीकरवट—संज्ञा पुं० [सं० काशी + सं० करपत्र, प्रा० करवत] काशीस्थ एक तीर्थ स्थान जहाँ प्राचीन काल में लोग आरे के नीचे कटकर अपने प्राण देना बहुत पुण्य समझते थे। दे० 'करवत'।

कावा—संज्ञा पुं० [फा०] घोडे को एक वृत्त में चक्कर देने की क्रिया।
क्रि० प्र०—काटना।—खाना।—देना।—मारना।
मुहा०—कावा काटना = (१) एक वृत्त मे दौडना। चक्कर खाना। चक्कर मारना। (२) आँख बचाकर दूसरी ओर फिर निकल जाना। कावा देना = वृत्त मे दौडाना। चक्कर देना। (घोडे को) कावे पर लगाना = (घोडे को) कावा या चक्कर देना।

कावार—संज्ञा पुं० [सं०] शैवाल। सेवार [को०]।

कावारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना डंडे की छतरी या छाता [को०]

कावृक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुक्कुट। ताम्रचूर्ण। मुरगा। २ चक्रवाक। चकवा पक्षी [को०]।

कावेर—संज्ञा पुं० [सं०] केसर [को०]।

कावेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दक्षिण की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकलकर बंगाल की खाड़ी मे गिरती है। २. संपूर्ण जाति की एक रागिनी। ३ वेश्या। ४ हल्दी।

काव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वाक्य रचना जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। वह कला जिसमे चुने हुए शब्दो के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है।
विशेष—रसगंगाधर मे 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। अर्थ की रमणीयता के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दालंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ की रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नही है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। रस अर्थात मनोवेगो का सुखद संचार ही काव्य की आत्मा है। काव्यप्रकाश मे काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है जिसमे शब्दो से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत व्यंग्य वह है जिसमें व्यंग्य गौण हो। चित्र या अलंकार वह है जिसमे बिना व्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनो को क्रमश उत्तम, मध्यम, और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नही। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमे शृंगार, वीर या शांत रसों मे से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच बीच मे करुण, हास्य इत्यादि और और रस तथा और और लोगो के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य मे संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य, और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे, नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनने योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं। कथा और आख्यायिका। चंपू, विरुद और करंभक तीन प्रकार के काव्य और माने गए है।
२ वह पुस्तक जिसमे कविता हो। काव्य का ग्रंथ। ३ शुक्राचार्य। ५ रोला छंद का एक भेद, जिसके प्रत्येक चरण की ११ वीं मात्रा लघु पड़ती है। किसी किसी के मत से इसकी छठी, आठवीं और दसवीं मात्रा पर यति होनी चाहिए। जैसे—अजनि सुत मह दशा देखि अतिशै रिसि पाग्यो। वेगि जाय लव निकट शिला तरु मारन लाग्यो। खंडि तिन्हैं सियपुत्र तीर कपि के तन मारे। बान सकल करि पान क्रोश नि फल करि डारे।

काव्य[२]—वि० १. कवि की विशेषताओं से युक्त। २. प्रशंसनीय। कथनीय (को०)।

काव्यचोर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के काव्य को अपना कहकर प्रकट करनेवाला व्यक्ति (को०)।

काव्यतत्व(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काव्य+तत्व] कविता का तत्व। काव्य का मूल प्रेरक तत्व। उ०—टालस्टाय के, मनुष्य मनुष्य में मातृ-प्रेम-संचार को ही एक मात्र काव्यतत्व कहने का बहुत कुछ कारण सांप्रदायिक था।—रस०, पृ० ६१।

काव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवि की दृष्टि। रसमय साहित्यिक दृष्टि। उ०—जब तक वे इन मूल मार्मिक रूपो मे नही लाए जाते तबतक उन पर काव्य दृष्टि नही पड़ती।—रस० पृ० ७।

काव्यप्रकाशकार—संज्ञा पुं० [सं०] मम्मट भट्ट जिन्होंने काव्यप्रकाश नाम का काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ लिखा। उ०—वास्तविक बात तो यह है कि काव्य प्रकाशकार का विचार उनके प्रभाव से प्रभावित है।—रस क०, पृ० २३।

काव्यभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्यक्षेत्र। कविता का आधारभूत विषय। उ०—हमे उस काव्यभूमि का वर्णन करना है जिसमें आनंद अपनी सिद्धावस्था मे दिखाई पड़ता है।—रस०, पृ० ७३।

काव्यरीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य की पद्धति या शैली। काव्य संबंधी नियम। उ०—काव्यरीति का निरूपण थोड़ा थोड़ा सब देशो के साहित्य मे पाया जाता है।—रस०, पृ० ६४।

काव्यलिंग—संज्ञा पुं० [सं० काव्यलिङ्ग] एक अर्थालंकार जिसमे किसी कही हुई बात का कारण आने वाले वाक्य के युक्तिपूर्ण अर्थ द्वारा या पद के अर्थ द्वारा दिखाया जाय। जैसे—(क) (वाक्यार्थ द्वारा) कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय। वह खाए बौरात है, यह पाए बौराय। यहाँ पहले चरण मे सोने की जो अधिक मादकता बतलाई गई, उसका कारण दूसरे चरण के 'वह पाए बौराय, इस वाक्य द्वारा दिया गया। (ख) (पदार्थता द्वारा] जनि उपाय और करो यहै राखु निरधार। हिय वियोग तम टारिहैं विधुबदनी वह नार। इस दोहे मे वियोगरूप तम दूर होने का कारण 'विधुबदनी' इस एक पद के अर्थ द्वारा कहा गया।

विशेष—इसकी पत्तियाँ दो तीन इंच लंबी होती हैं और इसमें फागुन चैत में छोटे छोटे फल लगते हैं जो कुछ हरापन लिए होते हैं। बैसाख जेठ मे यह लता फलती है। यह समस्त उत्तरी और मध्य भारत तथा आसाम आदि देशो मे बराबर होती है।

कालीमिट्टी—[हिं० काली+मिट्टी] चिकनी करैल मिट्टी जो लीपने पोतने या सिर मलने के काम आती है।

काली मिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+मिर्च] गोल मिर्च। दे० 'मिर्च'।

कालीय—संज्ञा पुं० [सं०] काला चंदन।

कालीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पीला चंदन। २ काला अगर। ३. काला चंदन। ४. दारु हल्दी। ५ केसर (को०)।

कालीसर—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+सर] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह सिक्किम, आसाम, बर्मा आदि देशो मे होती है। इसके पत्ते से नीला रंग निकाला जाता है।

कालीशीतला—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+सं० शीतला] एक प्रकार की शीतला या चेचक।

विशेष—इसमें कुछ काले काले दाने निकलते हैं और रोगी को बड़ा कष्ट होता है।

काली हर्रे—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+हर्र] जंगी हर्र। छोटी हर्र।

कालुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कलुषता। मलिनता। उ०—और निकल आती है फिर हर बार काल के मुख से, नई चारुता लिए, शीर्णता का कालुष्य बहाकर, पावक मे गलकर सुवर्ण ज्यों नया रूप पाता हो।—नील०, पृ० ५४। २. निष्प्रभ। ३ असहमति। मतभिन्नता।

कालू—संज्ञा स्त्री० [देश०] सीप की मछली। सीप के अंदर का कीडा। लोना कीड़ा। सियाल पोका।

कालेजा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालेय, प्रा० कालिज्ज] दे० 'कलेजा'। उ०—भेड़ा रहे बाग अली जा। काढि नित खात कालेजा।—तुलसी० सा०, पृ० २४७।

कालेय[1]—वि० [सं०] कलियुग संबंधी [को०]।

कालेय[2]—संज्ञा पुं० १. दैत्य। कालकेय। कालकंज। प्रा० भा० प०, पृ० ८६। २ यकृत [को०]। ३. काला चंदन [को०]। ४ केसर [को०]। ५. कृष्ण यजुर्वेदीय संप्रदाय का एक नाम [को०]।

कालेयक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की सुगंधित लकड़ी। २ काला चंदन। ३ हलदी। ४ पीलिया नामक रोग। ५ शिकारी कुत्ता [को०]।

कालेयरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुत्ता। २. एक प्रकार का चंदन (को०)।

कालेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. सूर्य (को०)।

कालोंच—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'कलौंछ'। कालापन। उ०—बारूद और धुए ने दाना के चेहरे और हाथ काले कर दिए। नित्य ही ऐसा हो जाता था। उस दिन कालोंच कुछ और अधिक चढ़ गई थी।—झाँसी०, पृ० ३६८।

कालोनियल—वि० [अं० कॉलोनियल] कालोनी या उपनिवेश संबंधी औपनिवेशिक। जैसे, कालोनियल सेक्रेटरी।

कालोनी—संज्ञा स्त्री० [अं० कालोनी] एक देश के लोगों की दूसरे देश में बस्ती या आबादी। उपनिवेश।

कालोज—संज्ञा पुं० [सं०] कौवा। काक (को०)।

कालौंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+औंछ (प्रत्य०)] १ कालापन। स्याही। कालिख। उ०—मुख्य अर्थ इस शब्द का कालिमा, कालौंछ वा कालिख है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३३। २. आग के धुएँ की कालिख जो छत, दीवार इत्यादि मे लग जाती है। रडूँ। ३. काला जाला जो रसोई घर मे या भाड़ या भट्टी के ऊपर लगा रहता है।

काल्प[1]—वि० [सं०] कल्प संबंधी [को०]।

काल्प[2]—संज्ञा पुं० कचूर [को०]।

काल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] कर्चूर। कचूर [को०]।

काल्पनिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पना करनेवाला।

काल्पनिक[2]—वि० १ कल्पित। फर्जी। मनगढ़त। २ कल्पना संबंधी।

काल्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। भोर। उ०—कोर्वाहि काल्य सुनेंगी कंसासुर, सुन हो जसोमति माय।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३०७।

काल्य[2]—वि० १ शुभ। कल्याणकर। २. समयानुकूल। ३. अविरुद्ध। अनुकूल। ४. प्रभात काल का। प्रभात संबंधी [को०]

काल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साँड या वृषभ के पास ले जाने योग्य गाय। २. पति के पास जाने योग्य स्त्री [को०]।

काल्याणक—संज्ञा पुं० [सं०] कल्याणमयता [को०]।

काल्ह—क्रि० वि० [सं० कल्य अथवा काल्य] दे० 'कल'।

काल्हि(पु)—क्रि० वि० [सं० कल्य, अथवा काल्य] दे० 'कल'। 'कालि'। उ०—कहहि आजु कछु थोर पयाना। काल्हि पयान दूरि है जाना।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १३३।

काल्हेड़ो—संज्ञा पुं० [हिं० कालिगड़ा] दे० 'कालिंगडा'। उ०—पदो मे जो काल्हेडो रागिनी दी है यह कालगड़ा का बिगड़ा नाम है।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १७४।

कावँच—संज्ञा स्त्री० [देश०] केवाँच। उ०—रैदास तूँ कावँच फली तुझे न छीपे कोइ।—रै० बानी, पृ० १।

कावचिक[1] वि० [सं०] वि० स्त्री० कावचिकी] १ कवच संबंधी। २. कवचयुक्त [को०]।

कावचिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कवचधारियों का समूह [को०]।

कावड़—संज्ञा पुं० [सं० कापटिक] दे० 'कावर'।

कावर—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी बरछी जो जहाज की माँग या गलही में बँधा रहती है और जिससे ह्वेल आदि का शिकार करते हैं—(लश०)।

कावरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'। उ०—कहि कावरि कान्ह कर सिव सिव कहि जीव यंत्रत मे विप साने।—स० दरिया, पृ० ६१।

कावरी—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी का फंदा जिसमे कोई चीज बाँधी जाय। मुद्धा।—(लश०)।

विशेष—यह दो रस्सियों को ढीला बटकर बनाया जाता है और जहाज मे काम आता है।

कावली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

(कौ०)। १० सत्यवती या व्यास की माता (कौ०)। ११ रात्रि (कौ०)। १२ कलक। निंदा (कौ०) १३. यम की बहन (कौ०)। १४ एक छोटा पौधा जो रेचक होता है (कौ०)। १५ एक कीटविशेष (कौ०)।

काली[२]—वि० स्त्री० १ काले रग की। २ बावली।

काली[३](पु)—सज्ञा पुं० [सं० कालिय] कालिय नाग।

कालीअच्छी—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक बडी झाडी जिसकी टहनियो मे सीधे सीधे काँटे होते हैं।

विशेष—इसके पत्ते १२-१३ अगुल लवे और किनारो पर ददानेदार होते हैं। इसमे गुलाबी रग के फूल लगते हैं। फल लाल होते हैं, जो बहुत पकने पर काले हो जाते हैं। काली अछी पजाब और गुजरात को छोड भारतवर्ष मे सर्वत्र होती है और फूल के लिये लगाई जाती है।

कालीक—सज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच नामक पक्षी (कौ०)।

कालीखोह—सज्ञा स्त्री० [हिं० काली+खोह] मिर्जापुर के निकट विंध्याचल की देवी (दुर्गा) का स्थान। उ०—काली खोह निवासिनी महाकाली के भय से।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३६।

कालीघटा—सज्ञा स्त्री० [हिं० काली+घटा] घने काले बादलो का समूह जो क्षितिज को घेरे हुए दिखाई पडे। सघन कृष्ण मेघमाला।

क्रि० प्र०—उठना।—उमड़ना।—घिरना।—छाना।

कालीचो—सज्ञा स्त्री० [स०] यम का न्यायालय। वह विशाल भवन जिसमे बैठकर यमराज प्राणियो के शुभ अशुभ कर्मो का निर्णय करते हैं (कौ०)।

कालीजबान—सज्ञा स्त्री० [हिं० काली+फा० जबान] वह जबान जिससे निकली हुई अशुभ बातें सत्य घटा करें।

कालीजोरी—सज्ञा स्त्री० [स० कणजीर, हिं० काला+जीरा] एक औषधि।

विशेष—इसका पेड ४-५ हाथ ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ गहरी हरी, गोल, ५ ६ अगुल चौड़ी और नुकीली होती हैं, तथा उनके किनारे ददानेदार होते हैं। पेड प्राय बरसात मे उगता है और क्वार कातिक मे उसके सिर पर गोल गोल गोंडियो के गुच्छे लगते हैं, जिनमे से छोटे छोटे, पतले पतले बैंगनी रग के फूल या कुसुम निकलते है। फूलो के झड़ जाने पर बोडी बर्रे या कुसुम की बोड़ी की तरह बढती जाती है और महीने भर मे पककर छितरा जाती है। उसके फटने से भूरे रग की रोई दिखाई पडती है जिसमें बडी झाल होती है। यह रोई बोडी के भीतर के बीज के सिरे पर लगी रहती है और जल्दी अलग हो जाती है। काली जीरी खाने मे कड़वी और चरपरी होती है। वैद्यक मे इसे व्रणनाशक तथा घाव, फोडे आदि के लिये उपकारी माना है। ब्याई हुई घोड़ी के मसालो मे भी यह दी जाती है।

पर्या०—वनजीरा। अरण्यजीरक। बृहन्पाली। कण।

कालीतनय—सज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा (कौ०)।

कालीथान†—सज्ञा पुं० [स० कालीस्थान] वह स्थान जहाँ काली की मूर्ति प्रतिष्ठापित हो। कालीमदिर। उ०—कालीथान की ओर मुह करके माँ काली को प्रणाम किया।—मैला०, पृ०२।

कालीदह—सज्ञा पुं० [सं० कालिका+हिं० दह] वृदावन मे जमुना का एक दह या कुड, जिसमे काली नामक नाग रहा करता था। उ०—(क) गयो डूबि कालीदह माहीं। अवलौं देखि परयो पुनि नाहीं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) पहुँचे जब कालीदह तीरा। पियत भए गो बालक नीरा।—विश्राम (शब्द०)।

कालीधार—सज्ञा स्त्री० [सं० काली+धारा] १ भयकर नदी की धारा। २ विष की धारा।

मुहा०—कालीधार मे डूबना=सर्वस्व नष्ट होना। उ०—रमावे डूब गिरार, मानव कालीधरा मझ।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ११२।

कालीन[१]—वि० [सं०] कालसबधी। जैसे, समकालीन, प्राक्कालीन, बहुकालीन। उ०—देखत बालक बहु कालीना।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द समस्त पद के अत में आता है, अकेला व्यवहार मे नहीं आता।

कालीन[२]—सज्ञा पुं० [अ० कालीन] ऊन या सूत के मोटे तागो का बना हुआ बिछावन, जो बहुत मोटा और भारी होता है और जिसमे रग बिरगे बेलबूटे बने रहते हैं। गलीचा।

विशेष—इसका ताना खडे बल रखा जाता है अर्थात वह छत से जमीन की ओर लटकता हुआ होता है। रग बिरगे तागो के टुकडे लेकर तानो के साथ गाँठते जाते हैं और उनके छोरों को काटते जाते हैं। इन्ही निकले हुए छोरो के कारण कालीन पर रोएँ जान पडते हैं। कालीन का व्यवसाय भारतवर्ष मे कितना पुराना है, इसका ठीक ठीक पता नहीं मिलता। सस्कृत ग्रथों म दरी या कालीन के व्यवसाय का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। बहुत से लोगो का मत है कि यह कला मिस्र देश से बाबिलन होती हुई और देशो मे फैली। फारस मे इस कला की बहुत उन्नति हुई। उसमे मुसलमानो के आने पर देश मे इस कला का प्रचार बहुत बढ़ गया और फारस आदि देशों से और करीगर बुलाए गए। आईने अकबरी मे लिखा है कि अकबर ने उत्तरीय भारत मे इस कला का प्रचार किया, पर यह कला अकबर के पहले स यहाँ प्रचलित थी। कालीनो की नक्काशी अधिकाश फारसी नमूने की होती है, इससे यह कला फारस से आई बतलाई जाती है। ईरान की कालीन ससार मे सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है।

कालीनाग—सज्ञा पु० [सं० कालियनाग] दे० 'कालिय'। उ०—काली नाग जू नाथियो, तुम सो और न कोइ।—नद० ग्र०, पृ० १६८।

कालीपति—सज्ञा पु० [सं०] शिव। महादेव। उ०—चितामणि शिव सेइयो, द्वादस वर्ष प्रमान। हुँ प्रसन्न कालीपतिय, सीस जोर धरि ठान।—पृ० रासो०, पृ० ३४।

कालीफुलिया—सज्ञा स्त्री० [हिं० काली+फूल] एक प्रकार की बुलबुल

कालीवेल—सज्ञा स्त्री० [हिं० काली+वेल] एक बडी लता।

कालिक(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कालिख] दे० 'कालिख'। उ०—पहिले गहि मूँड मुँडावा। पीछे मुख कालिक लावा।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १३६।

कालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवी की एक मूर्ति। चंडिका। काली।
विशेष—शुंभ और निशुंभ के अत्याचारों से पीड़ित इंद्रादिक देवताओं की प्रार्थना पर एक मातंगी प्रकट हुई, जिसके शरीर से इन देवी का आविर्भाव हुआ। पहले इनका वर्ण काला था, इसी से इनका नाम कालिका पड़ा। यह उग्र भयों से रक्षा करती हैं, इस कारण इनका एक नाम उग्रतारा भी है। इनके सिर पर एक जटा है, इसी से ये एकजटा भी कहलाती हैं। इनका ध्यान इस प्रकार है—कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, दाहिने दोनों हाथों में से ऊपर के हाथ में खड्ग और नीचे के हाथ में पद्म, बाएँ दोनों हाथों में से ऊपर के हाथों में कटारी और नीचे के हाथ में खप्पर, बड़ी ऊँची एक जटा, गले में मुंडमाला और साँप, लाल नेत्र, काले वस्त्र, कमर में बाघंबर, बायाँ पैर शव की छाती पर और दाहिना सिंह की पीठ पर, भयंकर अट्टहास करती हुई। इनके साथ आठ योगिनियाँ भी हैं, जिनके नाम ये हैं—महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी।
२. कालापन। कलौंछ। कालिख। ३. बिछुआ नामक पौधा। ४. किस्तबंदी। ५. रोमराजी। जटामासी ७. काकोली। ८. शृगाली। ९. कौवे की मादा। १०. श्यामा पक्षी। ११. मेघघटा १२ सोने का एक दोष। सूवर। १३. मट्ठे का कीड़ा। १४. स्याही। मसी। १५. सुरा। मदिरा। शराब। १६ एक प्रकार की हड़। काली हड़। १७ एक नदी। १८. आँख की काली पुतली। १९ दक्ष की एक कन्या। २०. कान की मुख्य नस। २१. हलकी झड़ी। झीसी। २२ बिच्छू। २३ काली मिट्टी जिससे सिर मलते हैं। २४. चार वर्ष की कन्या। २५ रणचंडी। २६. चौथे अर्हंत की एक दासी (जैन)।

कालिकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिसकी आँख स्वभावत काली हो। २ एक राक्षस।

कालिकापुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम जिसमें कालिका देवी के माहात्म्य आदि का वर्णन है।

कलिकावन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत।

कालिकाला(पु)—क्रि०वि० [हिं० कालि + काल] कदाचित्। कभी। किसी समय। उ०—एतेहू पर कोऊ जो रावरो ह्वै जोर करै, ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं। पाइकै ओराहनो ओराहनो न दीजै मोहिं कालिकाला काशीनाथ कहे निवरत हौं।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—यह शब्द संदिग्ध जान पड़ता है, बैजनाथ कुरमी ने अपनी टीका में यही अर्थ दिया है।

कालिकावृद्धि—संज्ञा स्त्री०[सं०] वह ब्याज जो महीने महीने लिया जाय। मासिक ब्याज।

कालिकेय—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष की कन्या कालिका से उत्पन्न असुरों की एक जाति।

कालिख—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिका] वह काली महीन बुकनी जो आग या दीपक के धुएँ के जमने से वस्तुओं में लग जाती है। कलौंछ। स्याही।
क्रि० प्र०—लगना।—जमना।
मुहा०—मुँह में कालिख लगना = बदनामी और कलंक के के कारण मुह दिखलाने लायक न रहना। कलंक लगना। मुँह में कालिख लगना = (१) कलंक लगने का कारण होना। बदनामी का कारण होना। जैसे,—उसने ऐसा करके हमारे मुह भी कालिख लगाई। (२) कलंक लगाना। दोषी ठहराना।

कालिज[1]—संज्ञा पुं० [अ० कॉलिज] वह विद्यालय जहाँ ऊँचे दर्जे की पढ़ाई होती हो।

कालिज[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चकोर जो जो शिमले में मिलता है।

कालित—वि० [सं०] मृत [को०]।

कालिदास—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक श्रेष्ठ कवि का नाम, जिन्होंने अभिज्ञान शाकुंतल, विक्रमोर्वशीय, और मालविकाग्निमित्र नाटक तथा रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत और ऋतुसंहार नामक काव्यों की रचना की थी।

कालिब—संज्ञा पुं० [अ०] १ टीन या लकड़ी का एक गोल ढाँचा जिस पर चढ़ाकर टोपियाँ दुरुस्त की जाती हैं। २ शरीर। देह। उ०—गुरु पारस पत्न में पर्से सिष कंचन कर लीन। सो रज्जब महँगे सदा कुलि कालिबा सु छीनि।—रज्जब०, पृ० ८।

कालिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिमन्] १. कालापन। २. कलौंछ। कालिख। ३ अँधेरा। ४ कलंक। दोष। लांछन। उ०—तात मरन तिय हरन गीध बध भुज दाहिनी गँवाई। तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कालिमा लाई।—तुलसी (शब्द०)।

कालिय[1]—वि० [सं०] १. काल या समय संबंधी। २ सामयिक [को०]।

कालिय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग [को०]।

कालिय[3]—संज्ञा पुं० [सं०] एक सर्प जिसे कृष्ण ने वश में किया था।
यौ०—कालियजित्, कालियदमन, कालियमर्दन = कृष्ण। कालियह्रद = कालियदह। कालियदह = वह दह जिसमें कालिय नाग रहता था।

कालियादह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालिय + ह्रद, प्रा० द्रह = दह] यमुना नदी का वह खंड जिसमें कालिय नाम का सर्प रहता था।

काली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंडी। कालिका। दुर्गा। २. पार्वती। गिरिजा। ३ हिमालय पर्वत से निकली हुई एक नदी। ४. दस महाविद्याओं में पहली महाविद्या। ५. अग्नि की सात जिह्वाओं में पहली।
विशेष—अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम ये हैं—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुची।
६ कृष्णता। श्यामता। कालापन (को०)। ७ काले रंग की स्याही (को०)। ८. काले रंग की घटा (को०)। ९. काले रंग की स्त्री

मुहा०—काला बाल जानना या समझना = किसी को अत्यन्त तुच्छ समझना। उ०—चोर कब उसका जोर माने है। काला बाल उसको अपना जाने है।—सौदा (शब्द०)।

कालाभुजंग¹—वि० [हिं० काला + सं० भुजङ्ग] बहुत काला। अत्यंत काला। घोर कृष्ण वर्ण का।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राणियो के ही लिये होता है। भुजंग शब्द से या तो सर्प का अभिप्राय है या भुजंगे पक्षी का जो बहुत काला होता है।

कालाभुजंग²—संज्ञा पुं० १. काला साँप। २ भुजंग पक्षी जो काले रंग का होता है।

कालामोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० काला + मोहरा] सींगिया की जाति का एक पौधा, जिसकी जड मे विष होता है।

कालायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवा। दुर्गा। रुद्राणी [को०]।

कालावधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी कार्य के पूर्ण होने की निश्चित तिथि। नियत काल [को०]।

कालाशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष मे वह समय जो शुभ कार्यों के लिये निषिद्ध है।

कालाशौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो पिता माता आदि गुरुजनो के मरने के उपरान्त एक वर्ष तक रहता है।

कालासुखदास—संज्ञा पुं० [हिं० काला + सुखदास] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है।

कालास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाण जिसके प्रहार से शत्रु का निधन निश्चय समझा जाता था। संहारक बाण।

कालिंग¹—वि० [सं० कालिङ्ग] कलिंग देश का। कलिंग देश मे उत्पन्न।

कालिंग²—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलिंग देश का निवासी। २. कलिंग देश का राजा। ३ हाथी। ४ साँप। ५ कलिंदा। तरबूज। हिंदुवाना। ६ भूमिकर्कारु। कुटज। विलायती कुम्हड़ा। ७ लोहा

कालिंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिंगिका] निसोथ। त्रिवृत्। निधारा।

कालिंजर—संज्ञा पुं० [सं० कालञ्जर] १ एक पर्वत जो बाँदा से ३० मील पूर्व की ओर है।

विशेष—यह पर्वत ससार के नौ ऊखलो में से एक ऊखल माना जाता है। इसका माहात्म्य पुराणों मे वर्णित है और यह एक तीर्थ माना जाता है। इस पहाड पर एक बडा पुराना किला है। कालिंजर नाम का कसबा पहाड के नीचे है। रामायण (उत्तर कांड) महाभारत और हरिवंश के अतिरिक्त गरुड़, मत्स्य आदि पुराणों मे इस स्थान का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर नीलकंठ महादेव का एक मंदिर है। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक फरिश्ता लिखता है कि कालिंजर का गढ़ केदारनाथ नामक एक व्यक्ति ने ईसा की पहली शताब्दी मे बनवाया था। महमूद गजनवी ने सन् १०२२ मे इस गढ़ को घेरा था। उस समय यहाँ का राजा नद था जिसने एक वर्ष पहले कन्नौज पर चढाई की थी।

२ एक नगर का नाम (को०)।

यौ०—कालिंजर गढ़।

कालिंडी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] दे० 'कालिंदी'। उ०—तसी सहस सह मिलियौ कालिंडी के तीर।—पृ० रासो, पृ० १२३।

कालिंद¹—वि० [सं० कालिन्द] १ कलिंद पर्वत से संबद्ध। २ कलिंद पहाड़ से आता हुआ। ३ यमुना नदी से आता हुआ [को०]

कालिंद²—संज्ञा पुं० तरबूज।

कालिंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] १ कलिंद पर्वत से निकली हुई, यमुना नदी। २ अयोध्या के राजा असित की स्त्री जो सगर की माता थी। ३ कृष्ण की एक स्त्री। ४ लाल निसोथ। ५. एक असुर कन्या का नाम। ६ उडीसा का एक वैष्णव संप्रदाय जिसके अनुयायी प्राय छोटी जाति के लोग हैं। ८ ओडव जाति की एक रागिनी।

कालिंदीकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० कालिन्दीकर्षण] दे० 'कालिंदी' भेदन [को०]।

कालिंदीभेदन—संज्ञा पुं० [सं० कालिन्दीभेदन] कृष्ण के जेठे भाई बलराम जो हल से यमुना नदी को वृंदावन खींच लाए थे।

विशेष—कालिंदीकर्षण की कथा हरिवंश मे दी हुई है।

कालिंदीसू¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दीसू] सूर्य की पत्नी [को०]।

कालिंदीसू²—संज्ञा पुं० [सं० कालिन्दीसू] सूर्य। वह जिसकी पुत्री कालिंदी है [को०]।

कालिंदीसोदर—संज्ञा पुं० [कालिन्दीसोदर] यमुना नदी का भाई, यमराज [को०]।

कालिंद्र(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्द] दे० कालियदह'। उ०—कालिंद्र दह सु अति गहर वारि। पावन्न परम सीतल सु चारि—पृ० रा०, १।५५८।

कालिंद्री(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्द्री] दे० 'कालिंदी'। उ०—कै उलटी कालिंद्री वहही। गिरि गंगा परसन को चहही।—माधवानल०, पृ० १९१।

कालि(पु)†—क्रि० वि० [सं० कल्य] १ गत दिवस। आज से पहले का दिन। उ०—जनक को सीय को हमारो तेरो तुलसी को सबको भावत ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—कालि को = काल का। थोड़े दिनो का। उ०—दूषण विराध खर त्रिशिर कबंध बधे, तालऊ बिसाल बेधे कौतुक हैं कालि को।—तुलसी (शब्द०)।

२ आगामी दिवस। आनेवाला दिन। उ०—जैहौं कालि नेवतवा भव दुब दून। गाँव करसि रखवरिया सब घर सून।—रहीम (शब्द०)। ३. आगामी थोडे दिनो मे। शीघ्र ही।

कालिक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कालिकी] १. समय सबंधी। समयोचित।

विशेष—इसका प्रयोग प्राय समस्त पदो के अंत मे मिलता है। जैसे, नियतकालिक, पूर्वकालिक।

२ जिसका कोई समय नियत हो। ३ मौसमी। सामयिक (को०)।

कालिक²—संज्ञा पुं० १ नाक्षत्र मास। १ काला चंदन। ३ क्रौंच पक्षी। ४. वैर। शत्रुता (को०)। ५ बगुला चिड़िया (को०)।

काला तिल—संज्ञा पुं० [हिं० काला + सं० तिल] काले रंग का तिल।
मुहा०—(किसी का) काले तिल चबाना = (किसी का) दवैल होना। अधीन या वशवर्ती होना। गुलाम होना। जैसे—क्या तुम्हारे काले तिल चबाए हैं जो न बोलें।

कालातीत¹—वि० [सं०] जिसका समय बीत गया हो।

कालातीत²—संज्ञा पुं० १ न्याय के पाँच प्रकार के हेत्वाभासों में से एक जिसमें अर्थ एक देश काल के ध्वंस से युक्त हो और इस कारण हेतु असत् ठहरता हो।
विशेष—जैसे किसी ने कहा कि शब्द नित्य हैं। संयोग द्वारा व्यक्त होने से, जैसे अँधेरे में रखे हुए घट के रूप की अभिव्यक्ति दीपक लाने से होती है, ऐसे ही डंके के शब्द की अभिव्यक्ति भी उसपर लकड़ी का संयोग होने से होती है, और जैसे संयोग के पहले घट का रूप विद्यमान था वैसे ही लकड़ी के संयोग के पहले शब्द विद्यमान था। इसपर प्रतिवादी कहता है कि तुम्हारा यह हेतु असत् है क्योंकि दीपक का संयोग जबतक रहता है तभी तक घट के रूप का ज्ञान होता है संयोग के उपरांत नहीं। पर संयोग निवृत्त होने पर संयोग काल के अतिक्रमण में भी शब्द का दूरस्थित मनुष्य को ज्ञान होता है अतः संयोग द्वारा अभिव्यक्ति को नित्यता का हेतु कहना हेतु नहीं है हेत्वाभास है।
२ आधुनिक न्याय में एक प्रकार का बाध, जिसमें साध्य के आधार अर्थात् पक्ष में साध्य का अभाव निश्चित रहता है।

कालात्मा—संज्ञा पुं० [सं० कालात्मन्] परमात्मा। ईश्वर [को०]।

कालात्यय—संज्ञा पुं० [सं० काल + अत्यय] दे० 'कालक्षेप' [को०]।

कालादाना—संज्ञा पुं० [हिं० कालादाना] १ एक प्रकार की लता जो देखने में बहुत सुंदर होती है।
विशेष—इसके फूल नीले रंग के होते हैं। फूल झड़ जाने पर बोंडी लगती है, जिसमें काले काले दाने निकलते हैं। इसका गोंद भी औषधि के काम में आता है। दाना आधे ड्राम से लेकर एक ड्राम तक और गोंद दो से आठ ग्रेन तक खाया जा सकता है।
२ इस लता का बीज जो अत्यंत रेचक होता है।

कालादेव—संज्ञा पुं० [हिं० काला + फा० देव] १ एक कल्पित देव या विशालकाय व्यक्ति जिसका रंग बिलकुल काला माना गया है। २ वह व्यक्ति जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट और रंग बहुत काला हो।

कालाधतूरा—संज्ञा पुं० [सं० कालधुस्तूर] एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा।
विशेष—इसके पत्ते हरे पर फल और बीज काले होते हैं। लोग प्रायः बहुत अधिक नशे या स्तंभन के लिये इसका व्यवहार करते हैं।

कालाव्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ परमात्मा। ब्रह्म [को०]।

कालानमक—संज्ञा पुं० [हिं० काला + नमक] एक प्रकार का बनावटी नमक जिसका रंग काला होता है और जो साधारण नमक तथा हड़, बहेड़े और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है। सोंचर नमक।
विशेष—वैद्यक में यह हलका, उष्णवीर्य, रेचक, भेदन दीपन, पाचक वातनाशक अत्यंत पित्तजनक और विबंध, शूल, गुल्म और आनाह का नाशक माना गया है।

कालानल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रलय काल की अग्नि। कालाग्नि। उ०—कालानल मय क्रोध कराला। क्षमा क्षमा सम जासु विशाला।—रघुराज (शब्द०)। २ वह रुद्राक्ष जो पंचमुखी होता है [को०]। ३. रुद्र (को०)।

कालनाग—संज्ञा पुं० [हिं० काला + नाग] १ काला साँप। विषधर सर्प। १ अत्यंत कुटिल या खोटा आदमी।

कालानुक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] समय का अनुक्रम। काल की स्थिति के अनुसार क्रम या व्यवस्था।

कालानुनादी—संज्ञा पुं० [सं० कालानुनादिन्] १ मधुमक्खी। २ गौरैया। चटक पक्षी। ३ पपीहा। चातक [को०]।

कालाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ सिर के बाल या केश। २ सर्प का फण। ३ दैत्य। दानव। ४. कलाप व्याकरण का वेत्ता। ५. कलाप व्याकरण का विद्यार्थी [को०]।

कालापक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कलाप के अध्येताओं का समूह। २ कलाप के नियम या सिद्धांत। ३ कातंत्र व्याकरण [को०]।

कालापहाड़—संज्ञा पुं० [हिं० काला + पहाड़] १ बहुत भारी और भयानक वस्तु। दुस्तर वस्तु। जैसे—दुःख की रात नहीं कटती, काला पहाड़ हो जाती है। २ बहलोल लोदी का एक भांजा जो सिकंदर लोदी से लड़ा था। ३ मुर्शिदाबाद के नवाब दाऊद का एक सेनापति।
विशेष—यह बड़ा क्रूर और कट्टर मुसलमान था। इसने बंग देश के बहुत से देवमंदिर तोड़े थे, यहाँ तक कि एक बार जगन्नाथ की मूर्ति को समुद्र में फेंक दिया था। वह पहले ब्राह्मण था। किसी नवाब कन्या के प्रेम में पागल हुआ था।

कालापान—संज्ञा पुं० [हिं० काला + पान] ताश में 'हुकुम' का रंग।

कालापानी—संज्ञा पुं० [हिं० काला + पानी] १. देशनिकाले का दंड। जलावतनी की सजा। २ अंडमान और निकोबार आदि द्वीप।
क्रि० प्र०—जाना।—भेजना।
विशेष—अंडमान, निकोबार आदि द्वीपों के आसपास के समुद्र का पानी काला दिखाई पड़ता है, इसी से उन द्वीपों का यह नाम पड़ा। भारत में जिनको देशनिकाले का दंड मिलता था, वे इन्हीं द्वीपों को भेज दिए जाते थे। इसी कारण उस दंड को भी इसी नाम से पुकारने लगे।
३ शराब। मदिरा।

कालाबाजार—संज्ञा पुं० [हिं० काला + बाजार] वह बाजार या व्यापार जिसमें अनुचित लाभ के लिये क्रय विक्रय होता हो।
क्रि० प्र०—करना।—चलना।—होना।
यौ०—कालाबाजारिया = काला बाजार करनेवाला व्यापारी। नफाखोर। मुनाफाखोर।

कालावाल—संज्ञा पुं० [हिं० काला + बाल] साँट। पशम।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे माल का दाम बनने के समय को उसकी लागत का विचार करके निश्चित किया जाता था।

काला¹—वि० [सं० काल] [स्त्री० काली] १ काजल या कोयले के रंग का कृष्ण। स्याह।

यौ०—काला कलूटा।—काला भुजंग काला चोर। काला पानी। काला जीरा।

मुहा०—काला काला होना = शंका या संदेह होना। उ०—यह बनावट की बात है, इसमें कुछ काला काला जरूर है।—फिसाना० भा० ३, पृ० ४०८। (अपना) मुँह काला करना = (१) कुकर्म करना। पाप करना। (२) व्यभिचार करना। अनुचित सहगमन करना। (३) किसी ऐसे मनुष्य का हटना या चला जाना जिसका हटना या चला जाना इष्ट हो। किसी बुरे आदमी का दूर होना। जैसे—जाओ, यहाँ से मुँह काला करो। (दूसरे का मुँह काला करना = (१) किसी अरुचिकर या बुरी वस्तु या व्यक्ति को दूर करना। व्यर्थ वस्तु को हटाना। व्यर्थ की झंझट दूर हटाना। जैसे—(क) तुम्हें इन झगड़ों से क्या काम, जाने दो, मुँह काला करो। (ख) इन सबों को जो कुछ देना लेना हो, दे लेकर मुँह काला करो, जायँ। (२) कलंक का कारण होना। बदनामी का सबब होना। ऐसा कार्य करना जिससे दूसरे की बदनामी हो। जैसे—तुम आपके आप गए, हमारा भी मुँह काला किया। काला मुँह होना या मुँह काला होना = कलंकित होना। बदनाम होना। काली हाँड़ी सिर पर रखना = (१) सिर पर बदनामी लेना। (२) कलंक का टीका लगाना। काले कौवे खाना = बहुत दिनों तक जीवित रहना।

विशेष—बहुत जीने वालों को लोग हँसी से ऐसा कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि कौवा बहुत दिनों तक जीता है।

२ कलुषित। बुरा। जैसे—उसका हृदय बहुत काला है। ३ भारी। प्रचंड। बड़ा। जैसे—काली आँधी। काला कोस। काला चोर।

मुहा०—काले कोसों = बहुत दूर। उ०—तातें अब मरियत अपसोसन। मथुरा हू ते गए सखी री अब हरि काले कोसन।—सूर (शब्द)।

काला²—संज्ञा पुं० [सं० काल] काला साँप। जैसे—जा, तुझे काला डसे।

क्रि० प्र०—काले का काटना, खाना या डसना।

काला³—संज्ञा पुं० [सं० काल] समय। अवसर। काल। उ०—चढ़िय रंगीले हिंडोर कहा कहौं तिहि काला।—नंद० ग्र०, पृ० ३७५।

काला(पु)⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० कला] कला। माया। उ०—मीरा हरि नटवर बहुरूपी जानहिं आपु आपनी काला।—मीरा ग्र०, पृ० ३१।

काला⁵—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कई पौधों के नाम। २ दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम। ३. दुर्गा (को०)।

कालाकंद—संज्ञा पुं० [हिं० काला + कण] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है।

कालाकलूटा—वि० [हिं० काला + कलूटा] बहुत काला। अत्यंत श्याम।

विशेष—इसका प्रयोग मनुष्यों ही के लिये होता है, जड़ पदार्थों के लिये नहीं।

कालाकाँकर—संज्ञा पुं० [हिं० काला + काँकर] एक कस्बा जो प्रतापगढ़ जिले में गंगातट पर बसा है।—उ० काला काकर का राजभवन सोया जल में निश्चित प्रमन। गुंजन, पृ० ६८।

काला कानून—संज्ञा पुं० [हिं० काला + कानून] १. वह कानून या अध्यादेश जो लोकजीवन के विरुद्ध हो। २ अँगरेजी शासन में गवर्नर या वाइसराय द्वारा बनाए गए अध्यादेश या आर्डिनेंस जो जनता के विरुद्ध पड़ते थे।

कालाक्षरिक—वि० [सं०] दे० 'कालाक्षरी'।

कालाक्षरी—वि० [सं०] काले अक्षर मात्र का अर्थ बता देने वाला। अत्यंत विद्वान्। सब विद्याओं और भाषाओं का विद्वान्। जैसे—वह तो कालाक्षरी पंडित है।

कालागरू—संज्ञा पुं० [सं०] काला अगर।

काला गांडा—संज्ञा पुं० [हिं० काला + गन्ना] एक प्रकार की ईख जो बहुत मोटी और रंग में काली होती है।

कालागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालागरू'।

काला गेंडा—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला गांडा] दे० 'काला गांडा'।

कालाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रलय काल की अग्नि। २ प्रलयाग्नि के अधिष्ठाता रुद्र। ३ पंचमुखी रुद्राक्ष।

काला चोर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा चोर। बहुत भारी चोर। वह चोर जो जल्दी पकड़ा न जा सके। २. बुरे से बुरा आदमी। तुच्छ मनुष्य। जैसे,—हमारी चीज है, हम काले चोर को देंगे, किसी का क्या ?

कालाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १ काले हरिण का चर्म या छाल। काला मृगछाला। २. एक देश का नाम। बृहत्० पृ० ८४।

कालाजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० काला + फ़ा० जीरा] एक प्रकार का जीरा जो रंग में काला होता है। स्याह जीरा। मीठा जीरा। पर्वत जीरा।

विशेष—यह मसाले और दवा में अधिक काम आता है और सफेद जीरे से अधिक सुगंधित और महँगा होता है।

२. एक प्रकार का धान।

विशेष—इसके चावल बहुत दिनों तक रह सकते हैं। यह धान अगहन में होता है।

कालाढोकरा, काला धोकड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। धवा। धव।

विशेष—इसकी डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं और जाड़े में पत्तियाँ ताँबड़े रंग की हो जाती हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। उसका रंग कालापन लिए लाल होता है। यह वृक्ष मालवा, मध्य प्रदेश और राजपूताने में बहुत होता है।

कालातिपात—संज्ञा पुं० [सं० काल + अतिपात] दे० कालक्षेप (को०)।

कालातिरेक—संज्ञा पुं० [सं० काल + अतिरेक] दे० 'कालक्षेप' (को०)।

के ४ दंड, शुक्रवार को तीसरा भाग अर्थात् ८ दंड के बाद के ४ दंड और शनिवार को पहला और आठवाँ भाग अर्थात् पहले ४ दंड और अंतिम ४ दंड। यह हिसाब ३२ दंड की रात के लिये है। यदि रात्रि इससे कम या अधिक हो तो उन दंडों के आठ सम भाग करके उसी क्रम से हिसाब बैठा लेना चाहिए।

५ दीवाली की अमावस्या। ६ दुर्गा की एक मूर्ति। ७. यमराज की बहन जो सब प्राणियों का नाश करती है। ८ मनुष्य की आयु में वह रात जो सतहत्तरवें वर्ष के सातवें महीने के सातवें दिन पड़ती है और जिसके बाद वह नित्य कर्म आदि से मुक्त समझा जाता है।

कालरात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कालरात्रि'।

कालरुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र देव, जिनसे उत्पन्न अग्नि सृष्टि का संहार कर देती है (को०)।

काललोह, काललोह—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात नाम का लोहा (को०)।

कालवलन—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। तनुत्राण। वारवाण। जिरह बक्तर (को०)।

कालवाचक—वि० [सं०] काल या समय का प्रबोधक। समय का ज्ञान करानेवाला।

कालवाची—वि० [सं० कालवाचिन्] समय का ज्ञान करानेवाला। जिसके द्वारा समय का ज्ञान हो।

कालवादी—वि० [सं० कालवादिन्] काल (समय) को माननेवाला। उ०—वैसेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध पातंजलिशास्त्र माहिं योगवाद लह्यो है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ११६।

कालविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] समय का पूरा होना। किसी काम के पूर्ण हो जाने की अवधि। उ०—डर न टरै नींद न परै हरै न काल विपाक। छिन छाके उछकै न फिरि खरो विषम छवि छाक।—बिहारी (शब्द०)।

कालविप्रकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कालक्षेप। कालयापन (को०)।

कालविभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का विभाग या अंश (को०)।

कालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० कालवृन्त] कुल्थी (को०)।

कालवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो बढ़ते बढ़ते दूने से अधिक हो जाय। यह स्मृति में निंदित कहा गया है।

कालवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में वह योग या समय जिसमें किसी कार्य का करना निषिद्ध हो।

विशेष—इसमें दिन और रात के दंडों के आठ आठ सम विभाग किए जाते हैं और फिर एक एक वार के लिये कुछ विशेष विशेष विभाग अशुभ ठहराए जाते हैं, जैसे—

	दिन का	रात का
रविवार को—	पाँचवाँ और	छठा भाग
सोमवार को—	दूसरा	चौथा भाग
मंगल —	छठा	दूसरा „
बुध —	तीसरा	सातवाँ
बृहस्पति —	सातवाँ	पाँचवाँ „
शुक्रवार —	चौथा	तीसरा „
शनिवार —	पहला, आठवाँ,	पहला, आठवाँ भाग

कालशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पटुआ साग। २. करेमू।

कालसकर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालसंकर्षा] नौ वर्ष की बालिका जो धार्मिक उत्सव में दुर्गा बनाई जाती है (को०)।

कालसकर्षी—वि० [सं० कालसंकर्षिन्] काल को संक्षिप्त करने वाला (जैसे मंत्र) (को०)।

कालसंग—वि० [सं० कालसंग] विलंब (को०)।

कालसंपन्न—वि० [सं० कालसम्पन्न] तिथि या दिनांक सहित (को०)।

कालसरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ दीर्घकाल तक रोक रखना। २ दीर्घकाल बीतना (को०)।

कालसदृश—वि० [सं०] समयानुकूल (को०)।

कालसमन्वित, कालसमायुक्त—वि० [सं०] मृत (को०)।

कालसर—संज्ञा पुं० [हिं० कालसिर] दे० 'कालसिर'।

कालसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] काला और अत्यंत विषैला साँप (को०)।

कालसार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार नाम का मृग। २ पीतवर्ण का चंदन (को०)।

कालसार[2]—वि० काली कनीनिका या पुतलीवाला (को०)।

कालसिर—संज्ञा पुं० [हिं० काल + सिर] जहाज के मस्तूल का सिरा।

कालसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक सूक्त का नाम जिसमें काल का वर्णन है।

कालसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ २८ मुख्य नरकों में से एक नरक। २ काल (यम या समय) का सूत्र (को०)।

कालसूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नरक। २ काल का सूत्र (को०)

कालसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पांत के समय का सूर्य।

कालसेन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उस डोम का नाम जिसने राजा हरिश्चंद्र को मोल लिया था।

कालस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० कालस्कन्द] तमाल वृक्ष (को०)।

कालहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महेश (को०)।

कालहरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालक्षेप' (को०)।

कालहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विलंब। देर (को०)।

कालाग—वि० [सं० कालाङ्ग] काले अंगवाला (खड्ग आदि) (को०)।

कालांजन—संज्ञा पुं० [सं० कालाञ्जन] काला सुरमा। अंजन-विशेष (को०)।

कालाजनी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काल + अंजनी] नरमा। वनकपास।

कालाजनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कालाञ्जनी] औषधि के काम आने वाली एक छोटी झाड़ी (को०)।

कालांतर—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तर] अन्य समय। बाद का काल। समय का अंतराल। उ०—महाकाश ही नहीं दृगों में देख रहा हूँ कालांतर भी, तब नयनों की गहराई में है युग युग के महद् तर भी।—अपलक, पृ० ७६।

कालांतर विष—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तर विष] ऐसे जंतु जिनके काटने का विष तत्काल नहीं चढ़ता, कुछ समय के उपरांत मालूम होता है। जैसे, चूहा आदि।

कालांतरित पण्य—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तरित पण्य] बहुत काल पहले का बना माल।

कालबूत—संज्ञा पुं० [फा० कालबुद्] वह कच्चा भराव जिसपर मेहराब बनाई जाती है। छैना। उ०—कालबूत दूती बिना जुरै न और उपाय। फिर ताके टारे बनै पाके प्रेम लदाय। —बिहारी (शब्द०)। २ चमारों का वह काठ का साँचा जिसपर चढ़ाकर वे जूता सीते हैं। ३ रस्सी बटने का एक औजार।

विशेष—यह औजार काठ का एक कुंदा होता है जिसमें रस्सी की लड़ जाने के लिये कई छेद या दरार बने रहते हैं। इन्हीं दरारों में लड़ों को डालकर बटते हैं जिससे कोई लड़ मोटी या पतली न होने पाए, बल्कि दरार के अंदाज से एक सी रहे।

कालबेल—संज्ञा स्त्री० [अं० काल बेल] वह घंटी जिसे नौकर को बुलाने के लिये अधिकारी अपनी मेज पर रखते हैं और उसके बजते ही नौकर दरवाजे के बाहर से सामने आ उपस्थित होता है। आवाहनघंटिका। उ०— दूसरी पर पानदान, इत्रदान, कालबेल (आवाहकवरिका)।—प्रेमघन०, भा० २, पृ ७२।

कालभुजंगी— संज्ञा स्त्री० [स कालभुजंगी] समय की सर्पिणी। उ०— परंतु भटार्क! जिसे तुम खेल समझकर हाथ में ले रहे हो, उस कालभुजंगी राष्ट्रनीति की प्राण देकर भी रक्षा करना।—स्कंद०, पृ० ३४।

कालभैरव —संज्ञा पुं० [सं०] काशीस्थ शिव के मुख्य गणों में से एक गण। भैरव का रूप।

कालम— संज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक या संवाद पत्र के पृष्ठ की चौड़ाई में किए हुए विभागों में से एक।

विशेष—इन विभागों के बीच या तो कुछ जगह छोड़ दी जाती है या खड़ी लकीर बना दी जाती है। पृष्ठ का इस प्रकार विभाग करने से पंक्तियाँ बहुत बड़ी नहीं होने पाती, इससे आँख को एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति पर आने में उतना कष्ट नहीं होता।

कालमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी [को०]।

कालमान—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी का पौधा। २ समय का परिमाण [को०]।

कालमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी। २ समय की माप [को०]।

कालमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १ शैव मत का एक प्रकार।

विशेष—इसमें शैव भक्त भगवान शिव के कृष्ण वर्ण और नृमुंड माली रूप का ध्यान और उपासना करते हैं।

२ एक प्रकार का बंदर जिसका मुँह काला होता है [को०]।

कालमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक पौधा जो औषध के काम में आता है। २ ऐसे घोर बादल जो वर्षा से चारों ओर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दें [को०]।

कालमेशिका, कालमेषिका, कालमेषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजिष्ठा। मजीठ। (को०)।

कालयवन-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार यवनों का एक राजा।

विशेष—इसे गार्ग्य ऋषि ने मथुरावालों पर क्रुद्ध होकर उनसे बदला लेने के लिये गोपाली नाम की अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न किया था। जरासंध के साथ इसने भी मथुरा पर चढ़ाई की थी। श्रीकृष्ण ने यह जानकर कि मथुरावालों के हाथ से यह नहीं मारा जायगा, एक चाल की कि उसके सामने से भागकर वे एक गुफा में जाकर छिपे रहे जिसमें मुचकुंद नामक राजा बहुत दिनों से सो रहे थे। जब कालयवन ने गुफा के भीतर जा मुचकुंद को लात से जगाया, तब उन्हीं की कोपदृष्टि से वह भस्म हो गया।

कालयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन का सफर। समय या आयु का व्यतीत होना। उ०—जो हो हमें तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि हमारी यह कालयात्रा, जिसे जीवन कहते हैं, जिन जिन रूपों के बीच से होती चली आती है, हमारा हृदय उन सबको पास समेटकर अपनी रागात्मक सत्ता के अंतर्भूत करने का प्रयत्न करता है।—आचार्य०, पृ० १०२।

कालयाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ विलंब। २. समय बिताना [को०]।

कालयापन— संज्ञा पुं० [सं०] १ कालक्षेप। दिन काटना। गुजारा करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ विलंब करना (को०)।

कालयुक्त— संज्ञा पुं० [सं०] प्रभव आदि साठ संवत्सरों में से बावनवाँ संवत्सर।—बृहत्०, पृ० ५३।

कालयोग— संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य। नियति। प्रारब्ध (को०)।

कालयोगत —क्रि० वि० [सं०] काल की आवश्यकता के अनुसार [को०]

कालयोगी—संज्ञा पुं० [स० कालयोगिन्] शिव। परमेश (को०)।

कालर[1]— संज्ञा पुं०[अं० कालर] १ गले में बाँधने का पट्टा। २ कोट, कमीज या कुरते में वह उठी हुई पट्टी जो गले के चारों ओर रहती है।

कालर(पु)[2]—वि० [हिं० कल्लर] कल्लर। ऊसर। उ०—सहजो गुरु पूरा मिलै सिस मैला घर चित्त। मेह बरसे कालर जिमीं खेत न उपजै छित्त।—सहजो०, पृ० १३।

कालरा—संज्ञा पुं० [अं० कालरा] हैजा या विसूचिका नामक रोग।

कालराति(पु)— संज्ञा स्त्री०[स० कालरात्रि] दे० 'कालरात्रि'। उ०— कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी। —मानस, ५।४०।

कालरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०]१. अँधेरी और भयावनी रात। २ ब्रह्मा की रात्रि जिसमें सारी सृष्टि प्रलय को प्राप्त रहती है, केवल नारायण ही रहते हैं। प्रलय की रात। ३. मृत्यु की रात्रि। ४. ज्योतिष में रात्रि का वह भाग जिसमें किसी कार्य का आरंभ करना निषिद्ध समझा जाता है।

विशेष—इसके लिये रात के दंडों के आठ सम भाग करते हैं। फिर वारों के हिसाब से एक एक दिन के लिये एक एक भाग वर्जित है। जैसे, रविवार को रात का छठा भाग अर्थात् २० दंड के बाद के ४ दंड, सोमवार को चौथा भाग अर्थात् १२ दंड के बाद के ४ दंड, मंगलवार को दूसरा भाग अर्थात् ४ दंड के बाद के ४ दंड, बुधवार को सातवाँ भाग अर्थात् २४ दंड के बादके ४दंड, बृहस्पतिवार को पाँचवाँ भाग अर्थात् १६दंड के बाद

कालज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय की पहचान। स्थिति और अवस्था की जानकारी। २. मृत्यु का समय जान लेना।

कालज्येष्ठ—वि० [सं०] उम्र मे बड़ा। जिसकी आयु अधिक हो [को०]

कालतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सांख्य मे एक प्रकार की तुष्टि।

विशेष—यह विचारकर सतुष्ट रहना कि जब समय आ जायगा, तब यह बात स्वयं हो जायगी।

कालत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्य।

कालदंड—संज्ञा पुं० [सं० कालदण्ड] १ यमराज का दंड। उ०—वज्र ते कठोर है कैलाश ते विशाल, कालदंड ते कराल सब काल गावई।—केशव (शब्द०)। २ मृत्यु (को०)।

कालदत्त—वि० [सं०] समय की दी हुई। परिस्थितवश प्राप्त। उ०—उभरी इसकी कठिन त्वचा पर कालदत्त कर्कशता, नहीं लूट पाई है ऊष्मा इसकी हार्द सरसता।—दैनिकी, पृ० ३७।

कालदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

कालदष्ट—वि० [सं०] काल द्वारा डसा हुआ या काटा हुआ [को०]।

कालधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृत्यु। विनाश। अवसान। उ०—सगर भूप जब गयो देवपुर कालधर्म कहँ पाई। अंशुमान को भूप कियो तब प्रकृत प्रजा समुदाई।—रघुराज (शब्द०)। २. वह व्यापार जिसका होना किसी विशेष समय पर स्वाभाविक हो। समयानुसार धर्म। जैसे वसंत मे मौर लगाना, ग्रीष्म ऋतु मे गरमी पड़ना। ३. समयानुकूल प्रभाव [को०]। ४. अवसर या समय के अनुकूल आचरण [को०]।

कालधारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का विस्तार [को०]।

कालधौत—वि० [सं०] सोने या चाँदी का [को०]।

कालनर—संज्ञा पुं० [सं०] (ज्योतिष शास्त्र के अनुसार) मानव शरीर का आकार। मनुष्य के शरीर की प्रतिमा [को०]।

कालनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २ कालभैरव। काशीस्थ भैरवविशेष। उ०—लोक बेदहु बिदित बारानसी की बड़ाई बासी नर नारि ईश अंबिका सरूप हैं। कालनाथ कोतवाल दंडकारि दंडपानि सभासद गणप से अमित अनूप हैं।—तुलसी (शब्द०)।

कालनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों मे से एक।

कालनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। काशीश [को०]।

कालनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्यफल। नियति [को०]।

कालनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल।

कालनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दीवाली की रात। २ अत्यंत काली रात। अँधेरी भयावनी रात।

कालनेम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालनेमि] दे० 'कालनेमि'। उ०—पहिले कालनेम हो हुतो। विष्णु सदा कौ वैरी सु तो।—नंद ग्रं०, पृ० २२३।

कालनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ रावण का मामा एक राक्षस जो हनुमान जी को उस समय छलना चाहता था, जब वे संजीवनी लाने जा रहे थे। २. एक दानव का नाम।

विशेष—इसने देवताओं को पराजित करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था और अपने शरीर को चार भागों मे बाँटकर सब कार्य करता था। अंत मे यह विष्णु के हाथ से मारा गया और दूसरे जन्म में कंस हुआ।

कालपक्व—वि० [सं०] समय पर स्वभावत. या अपने आप पक्व [को०]

कालपट्टी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० कॉलाफटी] जहाज की सीवन या दरार मे सन आदि ठूँसने का कार्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक फूलवाला पौधा। तगर [को०]।

कालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली तुलसी।

कालपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] काल का अतिक्रमण। निश्चित समय का उल्लंघन [को०]।

कालपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] समय की गति। कालचक्र [को०]।

कालपाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. समय का बंधन। समय का वह नियम जिसके कारण भूत प्रेत कुछ समय तक के लिये कुछ अनिष्ट नही कर सकते। २ यमपाश। यमराज का बंधन।

कालपाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] वधिक। जल्लाद [को०]।

कालपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर का विराट् रूप। विराट् रूप भगवान्। २ काल। ३ यम के दूत। उ०—अंडा के देखते ही वह अंडा फूट गया और उसमें से कालपुरुष उत्पन्न हुआ।—कबीर म०, पृ० ७।

कालपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालपुरुष' [को०]।

कालपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १ मृग या हरिण का एक प्रकार। २. क्रौंच पक्षी। ३. बगुला। ४ कंक पक्षी [को०]।

कालपृष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्ण के धनुष का नाम। २. धनुष। कमान [को०]।

कालप्रभात—संज्ञा पुं० [सं०] शरत [को०]।

विशेष—वर्षा के बाद आनेवाले आश्विन और कार्तिक दो महीने वर्ष मे श्रेष्ठ समय के रूप मे माने जाते हैं।

कालप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग।

विशेष—इसमे काला पेशाब आता है। सुश्रुत ने इसे अम्लप्रमेह लिखा है।

कालफाँस—संज्ञा पुं० [सं० कालपाश] काल का पाश। काल की फाँसी। उ०—बूझो काल फाँस नर नारी, पूर्व जन्म तोहि लीन्ह उबारी।—कबीर सा०, पृ० ७२।

कालबजर—संज्ञा पुं० [सं० काल+हिं० बजर] वह भूमि जो बहुत दिनों से जोती बोई न गई हो। बहुत पुरानी परती।

कालबादी(पु)—वि० [सं० कालवादिन्] काल (समय) को माननेवाला। उ०—वैशेषिक शास्त्र पुनि कालबादी है प्रसिद्ध पातंजलि शास्त्र माँहि योगबाद लह्यो है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२१।

कालबियत(पु)‡—संज्ञा पुं० [अ० कालिब] शरीर धारण करना। उ०—बीज मोर भाड़ दोनों मिलकर कालबियत कू अपड़े।—दक्खिनी०, पृ० ३९५।

६ यकृत। ७ एक राक्षस का नाम जो कालक नामक स्त्री से उत्पन्न कश्यप का पुत्र था। ८ एक प्रकार का अन्न (को०)।

कालकटंकट— संज्ञा पुं० [सं० कालकटङ्कट] शिव [को०]।

कालकरंज—संज्ञा पुं० [सं० कालकरञ्ज] एक प्रकार का करंजा जिसकी ऊपरी छाल साधारण करंजे की छाल से कुछ अधिक नीली होती है। काला करंजा।

कालकर्णिका, कालकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्भाग्य। भाग्यहीनता [को०]।

कालकर्मा— संज्ञा पुं० [सं० कालकर्मन्] १ मृत्यु। नाश [को०]।

कालकलाय—संज्ञा पुं० [सं०] काली मटर या दाल [को०]।

कालकल्लक— संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला साँप। डेड़हा [को०]।

कालकवि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

कालका— संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या।

विशेष—यह कश्यप को ब्याही थी और इससे नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

कालकार्मुक- संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार खरदूषण की सेना का एक सेनापति जिसे रामचंद्र ने मारा था।

कालकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर। २ शिव [को०]।

कालकील—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि। कोलाहल [को०]।

कालकुंज—संज्ञा पुं० [सं० कालकुञ्ज] विष्णु [को०]।

कालकुंठ— संज्ञा पुं० [सं० कालकुण्ठ] यमराज। यम (को०)।

कालकूट— संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का अत्यंत भयंकर विष।

विशेष—इसे काला वच्छनाग भी कहते हैं। भावप्रकाश के अनुसार यह एक पौधे का गोंद है जो शृंगवेर, कोंकण और मलय पर्वत पर होता है। शुद्ध करने के लिये इसे तीन दिन गोमूत्र में रखकर सरसों के तेल से भीगे कपड़े में बाँधकर कुछ दिन तक रखना चाहिए। शुद्ध रूप में कभी कभी सन्निपात, श्लेष्मा आदि दूर करने के लिये इसका प्रयोग होता है।

२ सिकिम और भूटान में होनेवाले घोंगिया की जाति के एक पौधे की जड़ जिसमें छोटी छोटी गोल चित्तियाँ होती हैं। ३ समुद्रमथन के बाद निकला हुआ विष जिसे शिव ने पान किया। हलाहल (को०)।

कालकूटक—संज्ञा पुं० [सं०] विष। गरल। जहर [को०]।

कालकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा। ईश्वर। २ मोर पक्षी। ३ सूर्य [को०]।

कालकृत[1]—वि० [सं०] १ काल या ऋतु से उत्पन्न। २ निश्चित। नियत। ३ न्यस्त। न्यास के रूप में रखा हुआ। उधार दिया हुआ। ४ बहुत पहले का कृत या किया हुआ [को०]।

कालकृत[2]—संज्ञा पुं० सूर्य [को०]।

कालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम। उ०—कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर ह्वै नृपहि भुलावा।—मानस, १।१७०।

कालकेय—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। दैत्य। उ०—दैत्य कालेय, कालकेय तथा कालकंज कहे गए हैं।—प्रा० भा० प०, पृ० ८९।

कालकोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काल + कोठरी] १ जेलखाने की एक बहुत तंग और अँधेरी कोठरी जिसमें कैद तनहाईवाले कैदी रखे जाते हैं। २ कलकत्ते के फोर्ट विलियम नामक किले की एक तंग कोठरी जिसमें सिराजुद्दौला ने अँगरेजों को कैद किया था।

कालक्रम— संज्ञा पुं० [सं०] काल की गति। समय का अतिक्रमण [को०]।

कालक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समय का निश्चय। २ मृत्यु [को०]।

कालक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिन काटना। समय बिताना। वक्त गुजारना। जैसे—वह दीन ब्राह्मण किसी प्रकार अपना कालक्षेप करता है। २ विलंब देर (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कालखंज, कालखंजन— संज्ञा पुं० [सं० कालखञ्ज कालखञ्जन] १ यकृत। २ बरबट (को०)।

कालखंड—सं० पुं० [संज्ञा कालखण्ड] १ परमेश्वर। उ०— मानो कीन्ही काल ही को कालखंड खंडन।—केशव (शब्द०)। २ यकृत (को०)। ३. बरबट [को०]।

कालगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालगङ्गा] १ वह गंगा जिसका रंग काला हो, अर्थात् यमुना नदी। २ लंका द्वीप की एक नदी।

कालगंडैत—संज्ञा पुं० [हिं० काला + गंडा + ऐत (प्रत्य०)] वह विषधर साँप जिसके ऊपर काले गंडे या चित्तियाँ होती हैं।

कालगौतम—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ऋषि का नाम।

कालग्रंथि—संज्ञा [सं० कालग्रन्थि] वर्ष। वत्सर। साल (को०)।

कालचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] समय का चक्र। समय का हेरफेर। जमाने की गर्दिश। उ०—कालचक्र में हो दबे, आज तुम राजकुँवर।—अपरा, पृ० ११।

विशेष—दिन रात आदि के बराबर आते जाते रहने से काल की उपमा चक्र से देते आए हैं। मत्स्यपुराण में पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न को कालचक्र की नाभि, संवत्सर, परिवत्सर आदि को आरे और छह ऋतुओं को नेमि लिखा है। जैन लोग भी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में छह छह आरे मानते हैं।

२ उतना काल जितना एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में लगता है। ३ एक अस्त्र का नाम। ४ काल का पहिया (को०)। ५ भाग्यचक्र। भाग्य का हेरफेर (को०)। ६ सूर्य (को०)।

कालचिह्न— संज्ञा पुं० [सं०] काल या मृत्यु होने के लक्षण [को०]।

कालजा(पु)— संज्ञा पुं० [हिं० कलेजा] दे० 'कलेजा'। उ०—काटै नाहर कालजा, छक यों अचरज छाक।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २४।

कालजुवारी—संज्ञा पुं० [हिं० काल + जुवारी] बड़ा जुवारी। गजब का जुवारी।

कालजोपक—वि० [सं०] समय पर जो कुछ मिल जाय वही खा पीकर संतुष्ट रहनेवाला (को०)।

कालज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय के हेरफेर को जाननेवाला व्यक्ति। २ ज्योतिषी। ३ मुर्गा।

कालज्ञ[2]—वि० १ अवसर को पहचानकर काम करने वाला। २ मृत्यु को जाननेवाला (को०)।

कार्पि[२]—संज्ञा पुं० १ आकर्षण । २ कृषि कर्म [को०] ।

कार्पिक - संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कार्षापण' [को०] ।

कार्षीवण—संज्ञा पुं० [सं०] चरवाहा [को०] ।

कार्ष्ण—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कार्ष्णी] १. कृष्ण संबंधी । २. कृष्ण द्वैपायन संबंधी । ३ कृष्ण मृग संबंधी ।

कार्ष्णायन - संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यासवंशीय ब्राह्मण । २ वसिष्ठ गोत्र का ब्राह्मण ।

कार्ष्णि—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण के पुत्र, प्रद्युम्न । २. कामदेव । ३ कृष्ण द्वैपायन व्यास के पुत्र, शुकदेव । ४. एक गंधर्व का नाम ।

कार्ष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर ।

कार्ष्ण्य संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णता । कालापन ।

कालंकत-संज्ञा पुं० [सं० कालङ्कत] १ कासमर्द । बहेड़ा का पेड़ जिसकी छाल के सेवन से खाँसी का रोग दूर हो जाता है । २ खाँसी की एक तरल दवा [को०] ।

कालकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालकर्णी अलक्ष्मी] पराजय । हार । अभाग्य । उ०-अवतार लियो प्रिथिराज पहु ता दिन दान अनंत दिय । कनवज्जदेस गज्जन पटन । किलकिलत कालंकनिय ।—पृ० रा०, १।६८८ ।

कालंजर—संज्ञा पुं० [सं० कालञ्जर] १ दे० 'कालिंजर' । २ एक पहाड़ जिसकी स्थिति कालिंजर के पास है (को०)। ३ धार्मिक भिक्षुकों का समूह या सभा (को०) । ४ शिव (को०) ।

कालंजरा, कालंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कालञ्जरा, कालञ्जरी] दुर्गा । पार्वती [को०] ।

काल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ समय । वक्त । वह संबंधसत्ता जिसके द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमान आदि की प्रतीति होती है और एक घटना दूसरी से आगे, पीछे आदि समझी जाती है ।

विशेष—वैशेषिक मे काल एक नित्य द्रव्य माना गया है और 'आगे', पीछे','साथ', 'धीरे', 'जल्दी' आदी उसके लिंग बतलाए गए हैं । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग उसके गुण कहे गए हैं । 'पर', 'अपर' आदि प्रत्ययों का भान सर्वत्र सब प्राणियो मे समान होता है, और इस परत्व, अपरत्व की उत्पत्ति मे असमवायि कारण से काल का संयोग होता है । इससे काल सबका कारण तथा व्यापक और एक माना गया है। उसकी अनेकता की प्रतीति केवल उपाधि से होती है। कोई कोई नैयायिक काल के 'खंडकाल' और 'महाकाल' दो भेद करते हैं । पदार्थों (ग्रहों आदि) की गति आदि से क्षण दंड, मास, वर्ष आदि का जिसमे व्यवहार होता है, वह खंडकाल है । और उसी का दूसरा नाम कालोपाधि है । जैन शास्त्रकार काल को एक अरूपी द्रव्य मानते हैं और उसकी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो गतियाँ कहते हैं । पाश्चात्य दार्शनिको मे लेबनीज काल को संबंधों की अव्यक्त भावना कहता है । काट का मत है कि काल कोई स्वतंत्र वाह्य पदार्थ नहीं है, वह चित्तप्रयुक्त अवस्था है जो चित्त के अधीन है, वस्तु के अधीन नहीं । देश और काल वास्तव मे मानसिक अवस्थाएँ हैं जिनसे सबद्ध सब कुछ देख पड़ता है ।

मुहा०—काल काटना = समय बिताना । कालक्षेप करना = समय काटना । दिन बिताना । काल पाकर =(१) कुछ दिनों के पीछे । कुछ काल बीतने पर । जैसे,—काल पाकर उसका रंग बदल जायगा । (२) मरकर । मरने के बाद । उ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा । भएउ निसाचर सहित समाजा । —मानस, १।१७६ ।

३ अंतिम काल । नाश का समय । अंत । मृत्यु ।

क्रि० प्र०—आना ।

३ यमराज । यमदूत । उ०—प्रभु प्रताप ते कालहि खाई ।—तुलसी (शब्द०) । ४ नियत ऋतु । नियत समय । जैसे,—ये पेड़ अपने काल पर फूलेंगे । ४ उपयुक्त समय । अवसर । मौका । ६ अकाल । महँगी । दुर्भिक्ष । कहत ।

क्रि०प्र०—पड़ना ।

७ ज्योतिष के अनुसार एक योग जो दिन के अनुसार घूमता है और यात्रा मे अशुभ माना जाता है । ८ कर्मोजा । ९. काला साँप । १०. लोहा । ११ शनि । १२ [स्त्री० काली] शिव का नाम । महाकाल । १३ काला या गहरा नीला रंग (को०) । १४ प्रारब्ध (को०) । १५ आँख का काला हिस्सा (को०) । १६ कोयल (को०) । १७. एक सुगंधयुक्त पदार्थ । अगुरु (को०) । १८ कलवार । मद्यविक्रेता (को०) । १९. मौसम । ऋतु (को०) । २० भाग्य । नियति (को०) । २१ भाग । विभाग (को०) । २२. शिव का एक शत्रु (को०) । २३. 'म' अक्षर की गुह्य संज्ञा (को०) ।

काल[२]—वि० काला । काले रंग का ।

यौ०—कालकोठरी ।

काल(पु)[३]—क्रि० वि० [हिं० काल] दे० 'कल' ।

कालकंज—संज्ञा पुं० [सं० कालकञ्ज] १ दैत्य । उ० —दैत्य कालेय कालकेय तथा कालकंज कहे गए हैं ।—प्रा० भा० प० —पृ० ८९ । २ नील कमल (को०) ।

कालकंटक—संज्ञा [सं० कालकण्टक] शिव । महादेव ।

कालकंठ—संज्ञा पुं० [सं० कालकण्ठ] १ शिव । महादेव । २. मोर । मयूर । नीलकंठ पक्षी । ४. गौरा पक्षी । ५ खंजन । खिड़रिच ।

कालकंठक—संज्ञा पुं० [सं० कालकण्ठक] १ वनकौआ । २ गीध । ३ चील । ४. सुग्गा [को०] ।

कालकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० कालकण्ठी] पार्वती । उमा [को०] ।

कालकंडक—संज्ञा पुं० [सं० कालकण्डक] पानी का साँप । डेड़हा [को०] ।

कालकंदक – संज्ञा पुं० [सं० कालकन्दक] पानी का साँप । डेड़हा ।

कालकंध संज्ञा पुं० [सं० कालकन्ध] तमाल वृक्ष ।

कालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तैंतीस प्रकार के केतुओं मे से एक केतु का नाम । २ आँख की पुतली । ३ बीजगणित मे द्वितीय अव्यक्त राशि । ४ अलगर्द नामक पानी का साँप । ५ एक देशविशेष ।

विशेष—यह महाभाष्यकार पतंजलि के समय मे आर्यावर्त की पूर्वी सीमा माना जाता था ।

कार्यगौरव— संज्ञा पुं० [सं०] १ काम का महत्व या वैशिष्ट्य । २. कार्य की पूर्ति के प्रति आदर [को०] ।

कार्यचिंतक[1]— संज्ञा पुं० [सं० कार्यचिन्तक] १ शासक । २ स्थानीय प्रबंधकर्ता (स्मृति०) ।

कार्यचिंतक[2]— वि० सावधान । अवहितचित्त । विचारकर काम करनेवाला [को०] ।

कार्यच्युत—वि० [सं०] १ कार्य में चूका हुआ । २. काम से निकला हुआ [को०] ।

कार्यजात—संज्ञा पुं० [सं०] । दे० 'कार्यदर्शन' [को०] ।

कार्यदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के किए हुए काम को आलोचनार्थ देखना । काम की देखभाल । २ अपने काम की फिर से जाँच । ३ सार्वजनिक कार्य की जाँच (को०) ।

कार्यदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० कार्यदर्शिन्] काम को देखने भालनेवाला । निरीक्षक ।

कार्यपंचक—संज्ञा पुं० [सं० कार्यपञ्चक] ईश्वर के पाँच विशेष काम, अर्थात् अनुग्रह, तिरोभाव, आदान, स्थिति और उद्‌भव ।

कार्यपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम का ढर्रा । कार्य की पद्धति [को०] ।

कार्यपद्धति-संज्ञा स्त्री० [सं०] काम करने का ढंग ।

कार्यपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंडबंड काम करनेवाला । उन्मत्त २ क्षपणक । बौद्ध भिक्षुक । ३ काहिल । आलसी (को०) ।

कार्यप्रद्वेष- संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य से अरुचि । २ आलस्य । शिथिलता [को०] ।

कार्यभ्रंशकारी—वि० [सं० कार्यभ्रंशकारिन्] काम बिगाड़नेवाला । उ०—अत अर्थागम से हृष्ट 'स्वकार्य साधयेत्' के अनुवादी काशी के ज्योतिषी और कर्मकांडी, कानपुर के बनिये और दलाल, कचहरियों के अमले और मुख्तार, ऐसों को कार्यभ्रंशकारी मूर्ख, निरे निठल्ले या खब्त उल हवास समझ सकते हैं ।—रस० पृ० २२ ।

कार्यवस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उद्देश्य । २ विषय [को०] ।

कार्यवाही[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कार्यवाई] काररवाई ।

कार्यवाही[2]—वि० [सं० कार्यवाहिन्] काम करनेवाला ।

कार्यशेष—संज्ञा पुं० [सं०] काम का वह भाग जो काम करने से बाकी रह गया हो । बचा हुआ काम ।

कार्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में २४ जातियों में से एक।

विशेष—इसमें प्रतिवादी वादी के इस कथन पर कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य अनित्य हैं, प्रयत्न द्वारा उत्पन्न कार्यों की अनेकरूपता की दलील देता है जो वादी का पक्ष खंडन करने में असमर्थ होती है । जैसे नैयायिक कहता है कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य होने के कारण शब्द अनित्य है । इसपर प्रतिवादी या मीमांसक कहता है कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे कुआँ खोदने से जल निकलता है, तो क्या जल कुआँ खोदने के पहले नहीं था ? इसी को कार्यसम या कार्यविशेष कहते हैं । इसपर वादी कहता है कि व्यवधान के हटने से अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नहीं होती, शब्द की उत्पत्ति होती है, अभिव्यक्ति नहीं । अनुपलब्धि- कारण या व्यवधान के दूर करने के प्रयत्न को कारणत्व नहीं होता ।

कार्याकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] करने योग्य और न करने योग्य काम । सत् और असत् कर्म ।

कार्याधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० कार्याधिकारिन्] वह जिसके सुपुर्द किसी कार्य का प्रबंध आदि हो । अफसर ।

कार्याध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अफसर । मुख्य कार्यकर्ता ।

कार्यान्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य रूप में परिवर्तन ।

कार्यान्वित—वि० [सं०] लागू । कार्य रूप में परिणत । प्रयुक्त । उ०—इसलिये हमारा पहला लक्ष्य रचनात्मक जनतंत्र को अपने देश में ही कार्यान्वित करना है ।—नया०, पृ० २६ ।

कार्याभिमुख—वि० [सं०] काम की ओर मुड़ने वाला । काम का आरंभ करने जानेवाला (को०) ।

कार्याभिमुखत्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य की ओर उन्मुख होने का भाव ।

कार्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी कार्य का लक्ष्य या उद्देश्य । २ काम पाने का आवेदनपत्र । ३ उद्देश्य । अभिप्राय [को०] ।

कार्यार्थी[1]—वि० [सं० कार्यार्थिन्] १ कार्य की सिद्धि चाहनेवाला । कोई गरज रखने वाला । २ काम चाहने वाला व्यक्ति (को०) ।

कार्यार्थी—[2]-संज्ञा पुं० किसी मुकदमे की पैरवी करने वाला ।

कार्यालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई कार्य होता हो । दफ्तर । कारखाना ।

कार्यी—वि० [सं० कार्यिन्] १ परिश्रमी । कार्यशील । २ कार्य चाहनेवाला । ३ सोद्देश्य । ४ मुकदमेबाज [को०] ।

कार्येक्षण- संज्ञा पुं० [सं०] । काम की देखभाल । दूसरों के द्वारा किए हुए काम का निरीक्षण (को०)।

कार्रवाई— संज्ञा स्त्री० [हिं० काररवाई] दे० 'काररवाई' ।

कार्ल मार्क्स—संज्ञा पुं० [जर्मन] १९ वीं शती के महान् राजनीतिशास्त्रप्रणेता का नाम जिसने साम्यवाद के सिद्धांत को जन्म दिया ।

कार्शानव—वि० [सं०] अग्निमय । उष्ण [को०] ।

कार्श्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कृशता । दुबलापन । दुर्बलता २ साल का पेड़ । बड़हर का पेड़ । ४ कचूर ।

कार्ष, कार्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कृषिकर्म करनेवाला । खेतिहर कृषक । किसान [को०] ।

कार्षापण, कार्षापणक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन सिक्का ।

विशेष—यह यदि ताँबे का होता था तो अस्सी रत्ती का, यदि सोने का होता था तो १६ माशे का और यदि चाँदी का होता था तो १६ पण या १२८० कौड़ियों का (किसी किसी के कथनानुसार एक पण का या अस्सी कौड़ियों का) होता था ।

कार्षापणिक—वि० सं० [वि० स्त्री० कार्षापणिकी] एक कार्षापण मूल्य का [को०] ।

कार्षि[1]—वि० [सं०] १ आकर्षण करनेवाला । २ कृषि करनेवाला [को०] ।

कार्मण¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कार्मणी] मूल कर्म जिनमे मंत्र और औषध आदि से मारण, मोहन, वशीकरण आदि किया जाता है। मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग।

यौ०—कार्मण कर्म = (१) जादू। इंद्रजाल। (२) वशीकरण।

कार्मण²—वि० [वि० स्त्री० कार्मणी] १ कर्म मे दक्ष। कर्मकुशल। २.कर्म पूर्ण करनेवाला (को०)।

कार्मणत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जादू। वशीकरण मंत्र [को०]।

कार्मणेयक—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।—बृहत्०, पृ० ८५।

कार्मणोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कार्मणोन्मादी, कार्मणोन्मादिनी] एक प्रकार का उन्माद।

विशेष—इसमें कंधा और मस्तक भारी रहता है, नाक आँख, हाथ, पाँव मे पीड़ा होती है, वीर्य न्यून हो जाता है, रोगी दुबला होता जाता है और उसके शरीर में सुई चुभने की सी पीड़ा होती है। लोगों का विश्वास है कि यह उन्माद जादू, टोना, प्रयोग आदि से होता है।

कार्मना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मण] १ मंत्र तंत्र का प्रयोग। कृत्या। २ मंत्र। तंत्र। उ०—जैति परमंत्र मंत्राभिचारक ग्रसन कार्मना कूट कृत्यादिहंता। डाकिनी साकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता।—तुलसी (शब्द०)।

कार्मांतिक—संज्ञा पुं० [सं० कार्मान्तिक] १ शिल्पशाला। २. शिल्प कर्म का निरीक्षक। उ०—पुरोहित के अलावा मुख्य मंत्री, सेनापति, कार्मांतिक इत्यादि।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२९।

कार्मार—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलाकार। २ शिल्पी। ३ लुहार। ४ कर्मकार [को०]।

कार्मारक—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिल्प कर्म। २ लुहारों का काम [को०]।

कार्मारिक—संज्ञा पुं० [सं०] शूल। माला [को०]।

कार्मिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वस्त्र जिसमे बुनावट मे ही शंख, चक्र, स्वस्तिक आदि के चिह्न बने हो। २.रंगीन सूत मिला गोटे का काम (को०)।

कार्मिक²—वि० [वि० स्त्री० कार्मिकी] १ कर्मशील। काम करनेवाला। २.निर्मित। कृत। बनाया या तैयार किया हुआ (को०)। ३ बीच बीच मे रंगीन सूत मिला गोटेदार (कपडा) (को०)। ४.अनेक रंगो या डिजाइन के योग मे बुना हुआ (को०)।

कार्मिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्रियाशीलता। कर्मशीलता। परिश्रम [को०]।

कार्मुक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनुष।

यौ०—कार्मुकोपनिषद = धनुर्विद्या। कार्मुकभृत् = (१) धनुराशि। (२) धनुर्धर।

२ परिधि का एक भाग। चाप। ३ इंद्रधनुष। ४ बाँस। ५. सफेद खैर। ६ बकायन। ७ एक प्रकार का शहद। ८. धनुराशि। नवीं राशि। ९ रुई धुनने की धुनकी। १० योग मे एक आसन।

विशेष—इसमे पदमासन से बैठकर दाहिने हाथ से बाएँ पैर की दो उँगलियाँ और बाएँ हाथ से दाहिने पैर की दो उँगलियाँ पकड़ते हैं।

११.एक प्रकार का यंत्र या साधन जो धनुष के आकार का होता है (को०)। १२.समुद्र या नदी तट पर स्थित एक प्रकार का गाँव (को०)।

कार्मुक²—वि० [वि० स्त्री० कार्मुकी] कर्मकुशल। कर्मदक्ष [को०]।

कार्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम। व्यापार। धंधा। २ वह जो कारण से उत्पन्न हो। वह जो कारण का विकार हो अथवा जिसे लक्ष्य करके कर्ता क्रिया करे। जो कारण के बिना न हो। ३ फल। परिणाम। प्रयोजन। ४.ऋण आदि संबंधी विवाद। रुपए पैसे का झगड़ा। ५ ज्योतिष मे जन्मलग्न से दसवाँ स्थान। ६ आरोग्यता। ७ धार्मिक कृत्य या कर्म (को०)। ८ अभाव। आवश्यकता। अवसर। ९. नाटक का अंतिम फल (को०)। १० करने योग्य या करणीय कर्म (को०)। ११.आचरण (को०)। १२.किसी कारण का अनिवार्य फल या निष्पत्ति (विलोम कारण) (को०)। १३ मूल उद्गम (को०)। १४ शरीर। देह (को०)।

कार्य²—वि० १ करने योग्य। २ बनाने योग्य [को०]।

कार्यंकर—वि० [सं०] १ उपयोगी। उपादेय। लाभप्रद। २ काम करनेवाला [को०]।

कार्यकरण—संज्ञा पुं० [सं०] कार्यालय। दफ्तर। (को०)।

कार्यकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० कार्यकर्तृ] १ काम करनेवाला कर्मचारी। २ मित्र। हितकारी (को०)।

कार्य-कारण-भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य और कारण का संबंध। २ किसी कार्य का विशेष कारण (को०)।

कार्य-कारण-संबंध—संज्ञा पुं० [सं० कार्य कारण-सम्बन्ध] कार्य और कारण का पारस्परिक योग।

विशेष—मीमांसा में इसका प्रतिपादन अन्वयव्यतिरेक सिद्धांत द्वारा किया गया है, जिसका सूत्र है—तद्भावे भाव तदभावे अभाव। इसकी प्रथम अभिव्यक्ति शाबर भाष्य मे हुई है। जिसके होने पर जो होता है और न होने पर नहीं होता है, वही कार्य-कारण-संबंध की स्थिति होती है। यह उन नैयायिक कार्य-कारण संबंध से भिन्न है जिसका प्रयोग वे व्याप्ति की सिद्धि के लिये करते हैं।

कार्यकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम करने का समय। २ सुअवसर। ३. किसी पद या स्थान पर रहने का समय या काल [को०]।

कार्यक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य की सूची। किए जानेवाले या होनेवाले कामों का क्रम या व्यवस्था। प्रोग्राम। उ०—निश्चित सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम।—अपरा ०, पृ० ५५।

कार्यक्षेत्र—संज्ञा पुं० [संज्ञा] कर्मभूमि। वह भूभाग जिसके भीतर रहकर कोई व्यक्ति उसके हित के लिये काम करता है। उ०—किंतु व्रज को विशेष रूप से अपना कार्यक्षेत्र बनाया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३।

मे बहुतायत से पैदा होता है। इसका पेड ४० फुट तक ऊँचा होता है। छाल दो इंच तक मोटी होती है। एक बार छील लेने पर यह छाल चार या छह वर्ष मे फिर पैदा हो जाती है। इसका वृक्ष १५० वर्ष तक रहता है।

कार्कण—वि० [सं०] किसान से सबध रखनेवाला (को०)।

कार्कलास्य—सज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट होने की स्थिति या दशा [को०]

कार्कवाकव—वि० [सं०] कृकवाकु या कुक्कुट से संबंध रखनेवाला (को०)।

कार्कश्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कशता। कठोरपन। २ दृढ़ता। ३ ठोस होना। ठोस दशा। ४ कठोरहृदयता। निष्ठुरता। ५ मोटा या मेहनत का काम (को०)।

कार्कीक—वि० [सं०] सफेद घोडे जैसा (को०)।

काज(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'। उ०—पै जो मन चाहि है सो तेरो कार्ज होइगो।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८८।

कार्ड—सज्ञा पुं० [अ०] १ मोटा कागज। मोटे कागज का तख्ता। २ छोटे तथा मोटे कागज पर लिखा हुआ खुला पत्र। ३ पत्ते का कागज।

यौ० - पोस्ट कार्ड। विजिटिंग कार्ड। प्लेइंग कार्ड। वेजेज कार्ड।

कार्ण[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ कान का भूषण। कनफूल। २ कान का मैल। ३ वृषकेतु का नाम (को०)।

कार्ण[2]—वि० १ कान सबंधी। २ कर्ण सबधी (को०)।

कार्णछिद्रक—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुआँ [को०]।

कार्णाट भाषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्नाट या कन्नड़ देश की भाषा। कन्नड़ भाषा (को०)।

कार्तयुग—वि० [सं०] कृतयुग या सत्ययुग सबधी। सतयुग से सबध रखनेवाला [को०]।

कार्तवीर्य—सज्ञा पुं०[सं०] कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन जिसकी राजधानी माहिष्मती नगरी थी।

विशेष—यह राजा तत्रशास्त्र का आचार्य माना जाता है। कहते हैं कि इसे परशुराम जी ने मारा था। इसके हजार हाथ थे।

कार्तस्वर—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ण। सोना। २ धतूरा (को०)।

कार्तांतिक—वि० [सं० कार्तान्तिक] भविष्यद्वक्ता। ज्योतिषी (को०)।

कार्तिक—सज्ञा पुं० [सं०] १.एक चाद्र मास जो क्वार और अगहन के बीच मे पड़ता है।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा पड़ती है, उस दिन चद्रमा कृत्तिका नक्षत्र मे रहता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

२. वह सवत्सर जिसमे बृहस्पति कृत्तिका या रोहणी नक्षत्र में हो। बार्हस्पत्य वर्ष। ३ कुमार स्कद का एक विशेषण।

कार्तिकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि [को०]।

कार्तिकेय—सज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्रमे उत्पन्न होनेवाले स्कदजी। षडानन। उ०—आजनय को अधिक कृती उन कार्तिकेय से भी लेखो, माताएँ ही माताएँ हैं जिसके लिए जहाँ देखो।—साकेत पृ० ३८२।

यौ०—कार्तिकेयप्रसू = कार्तिकेय की माता, पार्वती।

कार्निस—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कारनिस'। उ०—भ्रातिशदान के कार्निस पर धरे हुए शीशे का बक्स और बोतल चमक उठे। पर उस क्रोध आया बिजली बुझा दी।—आकाश०, पृ० ५०।

कार्दम—वि० [सं०] वि० स्त्री० कादमी] कीचड से भरा हुआ या सना हुआ। २ कदम नामक प्रजापति सबधी। कर्दम से उत्पन्न। ३ कदम का किया या बनाया हुआ।

कार्दमक, कार्दमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कादमकी, कादमिकी] दे० 'कादम' (को०)।

कार्पट—सज्ञा पुं० [सं०] १. वादी। न्यायार्थी। २ अभ्यर्थी। उम्मीदवार। ३. चिथडा। ४ लाख (को०)।

कार्पटिक—सज्ञा पुं० (सं०) १ तीर्थयात्री २ पवित्र तीर्थजल ले जाकर जीविका प्राप्त करने वाला व्यक्ति। ३ तीर्थयात्रियों का सार्थ या कारवाँ। ४ अनुभवी व्यक्ति। ५. परपिंडोपजीवी। ६ धूर्त। वचक। ७ विश्वासपात्र। अनुगामी (को०)।

कार्पणी—सज्ञा स्त्री० (स०) प्रसन्नता (को०)।

कार्पण्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ कृपण होने का भाव। कृपणता। कजूसी। बखीली। २ दया। सहानुभूति (को०)। ३. गरीबी धनहीनता (को०)।

कार्पाण—सज्ञा पुं० [सं०] कृपाणयुद्ध। युद्ध। सग्राम [को०]।

कार्पास—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कार्पासी] १ कपास का बना कपडा। २. कपास। उ०—व्यापी है जिसमे विमा वलय सो नीलाभ श्वेत प्रभा। हाते हैं सित मघखड जिसमें कार्पास के पुंज से। सर्पाकार नितात दिव्य जिसम नीहारिकाएँ मिली। फैला है यह क्या पयोधि पय सा सवत्र आकाश म।—पारिजात, पृ० ३०। ३ कागज (को०)।

यौ०—कार्पासास्थि = कपास का बीज।

कार्पास[2]—वि० कपास का। कपास का बना। कपास सबधी (को०)।

कार्पासतांतव—सज्ञा पुं० (सं० कार्पासतान्तव) कपास के सूत का बुना हुआ कपडा [को०]।

कार्पासनालिका, कार्पासनासिका—सज्ञा स्त्री० (सं०) तकुआ [को०]।

कार्पाससौत्रिक—वि० [सं०] कपास क सूत का बुना हुआ (को०)।

कार्पासिक—वि० [सं०] वि० स्त्री० कार्पासिकी] कपास स या कपास का बना हुआ (को०)।

कार्पासिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का पौधा [को०]।

कार्पेट—सज्ञा पुं० [अ०] कालीन। गलीचा। उ०—घर का मालिक उसी घर म तसवीरें टाँगकर कार्पेट बिछाकर उसपर सदा के लिये अपनी छाप लगा देना चाहता है।—रस, पृ० ८२।

कार्बन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारबन'।

कार्बोन—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कारबन'। उ०—हीरा और कोयला दोनो कार्बोन हैं, उनके बनने का रसायनिक क्रिया भी एक सी है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १९५।

कार्बोनिक—वि० [अ०] दे० 'कारबोनिक'।

कार्बोलिक—वि० [अ०] दे० 'कारबोलिक'।

कार्म—वि० [सं०] परिश्रमी। मेहनती। कमशील [को०]।

कारीगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ अच्छे अच्छे काम बनाने की कला। निर्माणकला। २. सुंदर बना हुआ काम। मनोहर रचना।

कारीजीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली जीरी] दे० 'काली जीरी'।

कारीर—वि० [सं०] करीर या बाँस के कल्ले से निर्मित [को०]।

करीष¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूखे गोबर की ढरी। करीष का समूह[को०]

कारीष²—वि० १. कारीष या सूखे गोबर संबंधी। २ सूखे गोबर से उत्पन्न [को०]।

कारुडिका, कारुडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कारुण्डिका, कारुण्डी] जोंक [को०]।

कारु¹—वि० [सं०] १ करनेवाला। बनानेवाला। २ कलावस्तु बनानेवाला। कला का रचयिता। ३ मंत्र बनाने वाला। ४, भीषण। भयंकर (को०)। ५ विश्वकर्मा (को०)। शिल्प (को०)।

कारु²—संज्ञा पुं० १. शिल्पी। कारीगर। दस्तकार।

कारुक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारुका] १. शिल्पी। कारीगर। २ कलाकार [को०]।

कारुचौर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चोरी करता हो। २ धूर्त। वंचक [को०]।

कारुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पी की बनाई वस्तु। २. शरीर पर का तिल आदि। ३ हाथी का बच्चा। करभ। ४ गेरु। ५. वल्मीक। वमौट [को०]।

कारुणिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कारुणिकी] कारुण्ययुक्त। कृपालु। दयालु।

कारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] करुणा का भाव। दया। मेहरबानी।

कारुनीक(पु)—वि० दे० [हिं०] 'कारुनिक'। उ०—कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू।—मानस, ६।३६।

कारुपथ—संज्ञा पुं० [सं० कारापथ] दे० 'कारापथ'।

कारुशासित—संज्ञा पुं० [सं० कारुशासितृ] शिल्पियों या कारीगरों का निरीक्षक या उन्हें काम में लगानेवाला (को०)।

कारुशिल्पिगण—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पियों और कलाकारों का संघ [को०]।

कारूँ²—संज्ञा पुं० [अ० कारूँ] हजरत मूसा का चचेरा भाई जो बड़ा धनी था, पर खैरात नहीं करता था। कहा जाता है ४० खच्चरों पर उसके खजानों की कुंजियाँ चलती थीं। कंजूसी के कारण अब उसके नाम का अर्थ ही कंजूस पड़ गया है। उ०—दो चार टके ही पै कभी रात गवाँ दूँ। कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा।—भारतेंदु, ग्रं०, भा० २,पृ० ७६०।

यौ०—कारूँ का खजाना = असीम धन। अनंत संपत्ति। कुबेर की सी संपत्ति।

कारूँ—वि० कंजूस। बखील। मक्खीचूस। कृपण।

कारूक—संज्ञा पुं०[सं०] [स्त्री० कारूका] १. शिल्पकार। २. कलाकार [को०]।

कारूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—कारूनी सदली स्याह कर्नेता रूनी। नुकरा और दुबाज बोरता है छबि दूनी।—सूदन (शब्द०)।

कारूरा—संज्ञा पुं० [अ० कारूरह्] १ फुँकनी शीशी, जिसमें रोगी का मूत्र वैद्य को दिखाने के लिये रखा जाता है। २. मूत्र। पेशाब।

क्रि०प्र०—दिखाना। देखना।

मुहा०—कारूरा मिलना = अत्यंत घनिष्ठता होना। अत्यंत हेल-मेल होना।

३. बारूद की कुप्पी जिसमें आग लगाकर शत्रु की ओर फेंकते हैं।

कारूष¹—वि० [सं०] करूष देश संबंधी। करूष देश का।

कारूष²—संज्ञा पुं० १. करूष देश का निवासी। २. भूत्र। क्षुधा(को०)। ३ एक वर्णसंकर जाति जिसका पिता व्रात्य वैश्य और माता वैश्य हो (को०)।

कारेखैर—संज्ञा पुं० [फ़ा० कार + खैर] शुभ कार्य। उ०—बुड्ढा तुरत पैदा किया कर ना देर किया लाख खुशियाँ सेती कारेखैर।—दक्खिनी०, पृ० ७८।

कारेणव—वि० [सं०] हथिनी संबंधी। करेणु संबंधी [को०]।

कारेस्पांडेंट—संज्ञा पुं० [अ० करेस्पांडेंट] वह जो किसी समाचारपत्र में अपने स्थान की घटनाएँ आदि लिखकर भेजता हो। समाचार पत्रों में संवाद आदि भेजने वाला। संवाददाता।

कारेस्पांडेंस—संज्ञा पुं० [अ० करेस्पांडेंस] पत्र आदि का भेजा जाना और आना। पत्रव्यवहार।

कारोंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कालौंछ] दे० 'कालौंछ'।

कारो(पु)†—वि० [हिं० काला] दे० 'काला'। उ०—द्वै सिंघ आनन पर जमे कारो पीरो गात। खल अमृत सब पानहीं अमृत देखि डरात।—नंद ग्रं०, पृ० १८४।

कारोनर—संज्ञा पुं० [अ०] वह अफसर जिसका काम जूरी की सहायता से आकस्मिक या संदिग्ध मृत्यु, आत्महत्या तथा उन लोगों की मृत्यु की जाँच करना है जो दंगे फसाद में या किसी दुर्घटना के कारण मरे हों।

विशेष—हिंदुस्तान में प्रेसिडेंसी नगरों अर्थात् कलकत्ते, बंबई और मद्रास में कारोनर होते हैं। ये प्रायः छोटी अदालत के जज या मैजिस्ट्रेट होते हैं। इनके साथ जूरी बैठते हैं। ऐसी मौत के मामले इस अदालत में आते हैं जो गिरने, पड़ने, जलने अस्त्र शस्त्र के लगने या आत्महत्या से हुई हों। उदाहरणार्थ किसी युवती की मृत्यु जलने से हुई है। उसने स्वयं आत्महत्या की या जलाकर मार डाली गई, साक्षी और प्रमाणों पर यही निर्णय करना इस अदालत का काम है। और किसी प्रकार की कानूनी कारस्वाई करने या दंड का इसे अधिकार नहीं है। इसका निर्णय हो जाने पर साधारण अदालत में किसी पर मामला चलता।

कारोबार—संज्ञा पुं० [फ़ा० कारबार] दे० 'कारबार'।

कारो—वि० [हिं० काला] काला। उ०—चपल चखन को काजर बहि मुख कारो कीनो।—नंद ग्रं०, पृ० २११।

कार्क—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की बहुत ही हलकी लकड़ी की छाल जिससे बोतल में लगाने की डाट बनती है। काग।

विशेष—यह एक प्रकार का शाहबलूत है जो स्पेन और पुर्तगाल

कारस्तानी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ कारसाजी । काररवाई । २. चालबाजी । छिपी काररवाई ।

कारा[१]- संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बधन । कैद । उ०—है अपनो को छोड़ मुक्ति भी अपनी कारा ।—साकेत, पृ० ४१६ ।

यौ०—कारागार ।

२ पीडा । क्लेश । ३ दूती । ४ सोनारिन ।

कारा[२]Ⓟ†—वि० [हिं० काला] [वि० स्त्री० कारी] दे० 'काला' । उ०—पाँच तत्त रग भिन्न भिन्न देखा । कारा पीरा सुरख सपेदा ।—तुरसी० श०, पृ० २३८ ।

कारागार--संज्ञा पुं० [सं०] बदीगृह । कैदखाना ।

कारागारिक—संज्ञा पुं० [सं०] कारागार का रक्षक अधिकारी । जेलर ।

कारागुप्त—संज्ञा पु० [सं०] बदी । कैदी ।

कारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] कैदखाना । बदीगृह ।

कराधुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शख जैसा एक वाद्य [को०] ।

कारापक—संज्ञा पुं० [सं०] वह आदमी जो भवन या मदिरनिर्माण की देखरेख करने के लिये नियुक्त किया गया हो [को०] ।

कारापथ- संज्ञा पुं० [सं०] एक देश जो लक्ष्मण के पुत्र अगद और चित्रकेतु के शासन मे था ।

कारापाल—संज्ञा पुं० [सं०] कारागारिक । बदीगृह का रक्षक व्यक्ति या अधिकारी । जेलर [को०] ।

कारामद—वि० [फा०] उपयोग । काम में आने लायक ।

कारायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा सारस । सारसी [को०] ।

कारारुद्ध—वि० [सं०] कैद मे डाला गया [को०] ।

कारावर—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का वर्णसकर जिसका पिता निषाद और माता वैदेही हो । २ वह वर्णसंकर जिसकापिता चर्मकार और माता निषादी हो । मोची [को०] ।

कारावास— संज्ञा पुं० [सं०] कैद ।

कारावासी—संज्ञा पुं० [सं० कारावासिन्] कैदी । बदी [को०] ।

कारावेश्म—संज्ञा पुं० [सं० कारावेश्मन्] कारागृह [को०] ।

कारिंदा— संज्ञा पुं० [फा० कारिंदह] [संज्ञा कारिंदगी] दूसरे की ओर से काम करने वाला । कर्मचारी । गुमाश्ता ।

कारि[१]Ⓟ‡—वि० [हिं० कारी] दे० 'कारी[४]' । उ० ससि कारि घटा मैं करि उदोत ।—हम्मीर० रा०, पृ० ७० ।

कारि[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य । क्रिया । कर्म (को०)।

कारि[३]— संज्ञा पुं० १ कलाकार । २ यत्रवेत्ता (को०) ।

कारिक[१]—संज्ञा पुं० [देश०] करघे मे वह चिकनी लकड़ी जो ताने को सँभालती है और जिसे जुलाहे 'खरकूत' भी कहते हैं ।

कारिक[२]—संज्ञा पुं० [अ० कारिक] कुर्की करने वाला । जो पुरुष कुर्की करे ।

कारिक—वि० [स०] कार्य करनेवाला ।

कारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी सूत्र की श्लोकबद्ध व्याख्या । किसी सूत्र का श्लोको मे विवरण । २. नाटक करनेवाले नट की स्त्री । नटी । ३. सकीर्ण राग का एक भेद ।—(संगीत) । ४. पीडा देना । उत्पीडन (को०) । ५ व्याज । सूद (को०) । व्यापार । वाणिज्य (को०) ।

कारिख—संज्ञा स्त्री० [स० कलुष] १. कलौंछ । स्याही । कालिमा । २. काजल । ३ कलक । दोष । उ०—देवि बिनु करतूति कहिबो जानि हैं लघु लोइ । कहौ गो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ ।—तुलसी (शब्द०) । वि० दे० 'कालिख ।

कारिखीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० कलुष या कल्मष] १. स्याही । कालिमा । उ०—भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारिखी । जगदवा जानकी जगत पितु रामभद्र जानि जिय जीवो ज्यों न लागे मुँह कारिखी—तुलसी (शब्द०) । २. काजल । ३ कलक । दोष ।

कारिजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य । उ०—सबही सों हित अरु गुन सहित ऐसो कारिज मन धरत । ताको जु अर्थ अमृत लहत कोऊ दुख को नहिं करत ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ८० ।

कारिणी—वि० स्त्री० [सं०] करनेवाली [को०] ।

विशेष—समास के अत मे ही व्यवहार मिलता है । जैसे—हितकारिणी ।

कारित[१]—वि० (सं०) कराया हुआ ।

कारित[२]—संज्ञा पुं० (देश०) काठबेल ।

कारिता—संज्ञा पुं०[सं०]वह व्याज जो दस्तूर से अधिक हो और जिसे धनी या महाजन ने जबर्दस्ती ऋणी से देना स्वीकार कराया हो ।

कारितावृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सूद जो ऋण लिया हुआ धन दूसरे को देकर लिया जाय ।

विशेष—आधुनिक बैंक इसी नियम पर चलते हैं ।

कारिम[१]Ⓟ—वि० [अ० करीम] १. कृपालु । २. दाता । दानशील ।

कारिम[२]Ⓟ—संज्ञा पुं० ईश्वर । सब जीवों पर कृपा करनेवाला । उ०—कारिम करम बरवसी करै । दिल के रहम रहवर मिलै ।—तुरसी० श०, पृ० २८ ।

कारियगरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० कारीगर] दे० 'कारीगर' । उ०—कारियगर मन्त्रिन बुलवाये ।—प० रासो, पृ० २२ ।

कारी[१]—वि० [सं० कारिन्][वि० स्त्री० कारिणी] करनेवाला । बनाने वाला । जैसे,—न्यायकारी ।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों ही के अत मे होता है ।

कारी[२]—संज्ञा पुं० १ कलाकार । २ यत्रविद् । ३ निर्माता या तैयार करने का काम करने वाला व्यक्ति (को०) ।

कारी[३] -वि०[फा०] गहरा । घातक । मर्मभेदी ।

कारी[४]—वि० स्त्री० [हिं० काली] दे० 'काली' या 'काला' । उ०—सखि कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नदगाँव पै री । इतिहास, पृ० ३८४ ।

कारीगर[१]—संज्ञा पुं० [फा०] [संज्ञा कारीगरी] हाथ से अच्छे अच्छे काम बनाने वाला आदमी । धातु, लकड़ी, पत्थर इत्यादि से विशाल और सुंदर वस्तुओं की रचना करनेवाला पुरुष । शिल्पकार ।

कारीगर[२]—वि० हाथ से काम बनाने मे कुशल । निपुण । हुनरमदा ।

कारन¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कारण] दे० 'कारण'।

कारन²—संज्ञा पुं० [सं० कारुण्य या कारुणा] १ रोने का आर्त स्वर। कूक। करुण स्वर। २ व्यथा। दुख। पीडा। उ०—नागमती कारन कै रोई।—जायसी ग्र०, पृ० १५६।

क्रि०प्र०—करना। करके रोना।

कारनिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] दीवार की कँगनी। कगर।

कारनी¹—वि० [सं० कारण या करण = कान] प्रेरक। करनेवाला। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तूँ दाम कुदाम ज्यों कर कर न विकातो।——राम सोहातो तोहिं जौ तू सबहि सोहातो। काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कोहातो।—तुलसी (शब्द०)।

कारनी²—संज्ञा पुं० [सं० कारीनि] भेद करानेवाला। भेदक। जैसे, उसके साथ यहीं से कारनी लगे और राह में कान भरकर उन्होंने उसकी मति पलट दी।

कारपण्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्पण्य] दे० 'कार्पण्य'। उ०—द्रोह कोतवाल त्यों अज्ञान तहसीलदार गर्व गढ़वाल रोग सेवक अपार हैं। भनैं रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी है जग के विकार जेते सर्व सरदार हैं।—रघुराज (शब्द)।

कारपरदाज—वि० [फा० कारपर्दाज] [संज्ञा कारपर्दाजी] १ काम करने वाला। कारकुन। २ प्रबंधकर्ता। कारिंदा।

कारपरदाजी—वि०[फा० कारपर्दाजी] १ दूसरे का काम करने की वृत्ति। दूसरे की ओर से किसी कार्य का प्रबंध करने का काम। २ दूसरे का काम करने की तत्परता। कार्यपटुता।

कारपोरल—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का छोटा अफसर। जमादार। जैसे—कारपोरल मिल्टन।

कारबंकल—संज्ञा पुं०[अं०] शरीर के किसी भाग में विशेषत. पीठ पर होने वाला जहरीला फोडा।

कारबन—संज्ञापुं०[अं०कार्बन] भौतिक सृष्टि के मूलभूत तत्वों में से एक। यह कारबोनिक एसिड (गैस),कोयला, हीरा आदि में होता है।

कारबन पेपर—संज्ञा पुं० [अं] वह गहरे काले या नीले रंग का कागज जिसे उस कागज के नीचे लगा देते हैं, जिसपर लिखते या टाइप करते हैं। इस प्रकार उस कागज के माध्यम से लेख की प्रतिलिपि भी साथ साथ तैयार होती जाती है। उ०—ढोल उधर औ इधर फौलादी युग के दानव, प्रेम नया क्या होगा रे यह वही कारबन कापी।—वदन०, पृ० ४४।

कारबार—संज्ञा पुं० [फा०][वि० कारबारी] कामकाज। व्यापार। पेशा। व्यवसाय।

कारबारी¹—वि० [फा०] कामकाजी।

कारबारी²—संज्ञा पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी। कारकुन। कारिंदा।

कारबोन—संज्ञा पुं० [अं०] [वि० कारबोनिक] रसायन शास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि के बीच दो रूपों में मिलता है, एक हीरे के रूप में, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप में।

कारबोनिक—वि० [अं० कार्बानिक] कारबन या कोयला संबंधी। कारबन मिश्रित। कारबन से बना हुआ।

यौ०—कारबोनिक एसिड गैस।

कारबोलिक¹—वि० [अं० कार्बोलिक] अलकतरा संबंधी। अलकतरा मिश्रित या उससे बना हुआ।

कारबोलिक²—संज्ञा पुं० एक सार पदार्थ जो (पत्थर के) कोयले के तेल या अलकतरे से निकाला जाता है।

विशेष—घाव या फोड़े फुंसियों पर कारबोलिक का तेल कीड़ों को मारने या दूर रखने के लिये लगाया जाता है। १ से ३ ग्रेन तक की मात्रा में कारबोलिक खिलाया जाता है। इसका तेल और साबुन भी बनता है।

कारभ—वि० [सं०] करभ या ऊँट संबंधी। ऊँट का [को०]।

कारमन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मण] दे० 'कार्मण'।

कारमवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कामणी] जादूगरनी।

कारमिहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर। घनसार [को०]।

कारय—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'। उ०—कारण कारज भेद नहीं कछु आपु मैं आपुहि आपु तहाँ है।—सुंदर ग्रं०,भा०२, पृ० ६१६।

कारयिता—संज्ञा पुं० [सं० कारयितृ]१. सृष्टि करनेवाला। २ (कार्य) करानेवाला [को०]।

कारयित्री¹—वि० [सं०] १. करानेवाली। सृष्टि या रचना कराने वाली [को०]।

कारयित्री²—संज्ञा स्त्री०१. रचना करानेवाली स्त्री। २ प्रेरक शक्ति। वह आतरिक शक्ति जो रचना के लिये प्रेरित करे [को०]।

यौ०—कारयित्री प्रतिभा।

कारवाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ काम। कृत्य। जैसे—(क) यह बड़ी बेजा काररवाई है। (ख) तुम्हारी दरखास्त पर कुछ काररवाई हुई या नहीं ?

क्रि० प्र०—करना। दिखाना।—होना।

२ कार्यतत्परता। कर्मण्यता।

क्रि० प्र०—दिखाना।

३ गुप्त प्रयत्न। चाल। जैसे—इसमें जरूर कुछ काररवाई की गई है।

क्रि०प्र०—करना। लगना। होना।

कारव—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस। काग [को०]।

कारवाँ—संज्ञा पुं० [फा०] यात्रियों का झुंड जो एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है।

यौ०—कारवाँ सराय = कारवाँ के ठहरने की सराय।

कारवी—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम। कच्चा। नकली। उ०—दादू काया कारवी देखत ही चलि जाइ।—दादू०, पृ० ३९०।

कारवेल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] करेला।

कारवेल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवेल्ल' [को०]।

कारसाज—वि० [फा० कारसाज] [संज्ञा कारसाजी] काम बनाने वाला। बिगड़े काम को सँभालने वाला। काम पूरा करने की युक्ति निकालने वाला। जैसे—ईश्वर बड़ा कारसाज है।

कारसाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० कारसाजी] १ काम पूरा उतारने की युक्ति। २. गुप्त कारवाई। चालबाजी। कपट प्रयत्न। जैसे—तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह सब उसी की कारसाजी है।

कारस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला। किंपाक वृक्ष (को०)।

कारस्कराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजर। शतपदी। २. जोंक। जलौका ३. बिच्छू। वृश्चिक [को०]।

कारखानेदार - संज्ञा पुं० [हिं० कारखाना + दार (प्रत्य०)] कारखाने का मालिक।

कारगर—वि० [फा०] १ प्रभावोत्पादक। प्रभावजनक। असर करनेवाला।
क्रि० प्र०—होना।
२. उपयोगी। लाभकारक। जैसे—कोई दवा कारगर नही होती।
क्रि० प्र०—होना।

कारगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ बहुत से मजदूर आदि काम करते हों। कारखाना। २ जुलाहों के कपडा बुनने का स्थान। करगह।

कारगुजार—वि० [फा० कारगुजार] [संज्ञा कारगुजारी] काम को अच्छी तरह करनेवाला। अपना कर्तव्य अच्छी तरह पूरा करनेवाला। खूब अच्छी तरह और आज्ञा पर ध्यान देकर काम करनेवाला।

कारगुजारी—संज्ञा स्त्री० [फा० कारगुजारी] १ पूरी तरह और आज्ञा पर ध्यान देकर काम करना। कर्तव्यपालन। २ कार्य-पटुता। होशियारी। ३ कर्मण्यता।

कारचोब—संज्ञा पुं० [फा०] [वि० संज्ञा कारचोबी] १ लकडी का एक चौकठा जिसपर कपडा तानकर जरदोजी या कसीदे का काम बनाया जाता है। अड्डा। २ जरदोजी या कसीदे का काम करनेवाला। जरदोज। ३ कसीदे या गुलकारी का काम जो जरी के तारो को लेकर लकडी के चौकठे पर लगाया जाता है।

कारचोबी[1]—वि० [फा०] जरदोजी का।

कारचोबी[2]—संज्ञा स्त्री० जरदोजी। गुलकारी। कसीदा।

कारज[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'।

कारज[2]—वि० [सं०] करज अर्थात् उँगली संबंधी (को०)।

कारटाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० करट] कौआ। काग। उ०—काज कनागत कारटा आन देव को खाय। कहै कबीर समझै नही बाँधा यमपुर जाय।—कबीर (शब्द०)।

कारटून—संज्ञा पुं० [अ० कार्टून] वह उपहासपूर्ण कल्पित चित्र जिससे किसी घटना या व्यक्ति के संबंध मे किसी गूढ रहस्य का ज्ञान होता है। व्यंगचित्र।
क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

कारटूनिस्ट—संज्ञा पुं० [अ० कार्टूनिस्ट] व्यंग्यचित्रकार।

कारट्रिज—संज्ञा पुं० [अ] दफ्ती, टीन, ताँबे आदि का बना हुआ वह आवरण जिसके अंदर बंदूक मे भरकर चलाई जानेवाली गोली या छर्रा आदि रहता है। कारतूस।

कारड—संज्ञा पुं० [अ० कार्ड या पोस्टकार्ड] दे० 'कार्ड'।

कारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हेतु। वजह। सबब। जैसे, तुम किस कारण वहाँ गए थे।
विशेष—इस शब्द के साथ विभक्ति 'से' प्राय नही लगाई जाती।
२ वह जिसके बिना कार्य न हो। वह जिसका किसी वस्तु या क्रिया के पूर्व संबद्ध रूप होना अवश्यक हो। वह जिससे दूसरे पदार्थ की संप्राप्ति हो। हेतु। निमित्त। प्रत्यय।
विशेष—न्याय के मत से कारण तीन प्रकार के होते है—समवायि (जैसे तंतु वस्त्र का), असमवाय (तंतुओं का संयोग वस्त्र का)। और निमित्त (जैसे जुलाहा, ढरकी आदि वस्त्र के)। योगदर्शनमे कारण नौ प्रकार के हैं—उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति, विकार, ज्ञान, प्राप्ति, विच्छेद, अन्यत्व और धृति। यह विभिन्नता केवल कार्यभेद से जान पडती है। उत्पत्ति ज्ञान का कारण मन, शरीरस्थिति का कारण आहार, रूप की अभिव्यक्ति का कारण प्रकाश पचनीय वस्तुओ के विचार का कारण अग्नि अग्नि के कारणत्व का धूमज्ञान विवेकप्राप्ति और अशुद्धिविच्छेद का कारण योगागो का अनुष्ठान, स्वर्णकार कुडल मे सोने के रूपान्यत्व का कारण, इस जगत और इंद्रियो का अधिष्ठान ईश्वर वेदांत उपादान कारण मानता है। कोई कोई कारण तीन प्रकार का मानते हैं, उपादान (समवायि), निमित्त और साधारण। चार्वाक कारण को कोई पदार्थ नही मानता। सांख्य त्रयोगुणात्मिका प्रकृति को मूल कारण कहता है। वेदांत का कहना है कि अचेतन प्रकृति मे कार्य को उत्पत्ति नही हो सकती। कणाद ने परमाणु को सावयव जगत् का उपादान कारण माना है।
३ आदि। मूल। ४ साधना। ५ कर्म ६ प्रमाण। ७ एक बाजा। ८ तांत्रिको की परिभाषा में पूजन के उपरांत का मद्यपान। ९ एक प्रकार का गाना। १० विष्णु। ११ शिव।

कारणक—संज्ञा पुं० [सं०] हेतु। निमित्त (को०)
विशेष—यह समस्त पद के अंत में प्रयुक्त होता है।

कारणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कारण की स्थित (को०)।

कारणमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] हेतुओ की श्रेणी। २ काव्य मे एक अर्थालंकार जिसमे किसी कारण से उत्पन्न कार्य पुन किसी अन्यकार्य का कारण होता हुआ वर्णन किया जाय। जैसे—दल ते बल, बल ते विजय, ताते राज हुलास। कृत ते सुत, सुत ते सुयश, यश ते दिवि महँ वास।

कारणवादी संज्ञा पुं० [सं० कारणवादिन्] दावा या फरियाद करने वाला व्यक्ति। वादी (को०)।

कारणवारि—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि के आरंभकाल मे उत्पन्न प्रारंभिक जल, जिससे इसका क्रमश विस्तार या विकास हुआ (को०)।

कारणशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत मे अणुवाद के अनुसार सुषुप्त अवस्था का कल्पित शरीर।
विशेष—इसमे इंद्रियो के विषयव्यापार का अभाव रहता है पर अहकार आदि का संस्कार मात्र रह जाता है, जिससे जीवात्मा केवल सुख ही सुख का अनुभव करता है। यह शरीर वास्तव में अविद्या ही है। इसे आनंदमय कोश भी कहते हैं।

कारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ व्यथा। कष्ट। तकलीफ २ यम की यातना। ३ प्रेरणा। प्रोत्साहन (को०)।

कारणिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारणिकी] १ मुकदमे संबंधी कागज लिखनेवाला। मुहर्रिर अर्जीनवीस। २ लिपिक लिखक। क्लर्क। ३ परीक्षक (को०)। ४ न्यायाधीश। निर्णायिक (को०)। ५ अध्यापक (को०)।

कारणोपाधि—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।—(वेदांत)।

कारतूस—संज्ञा पु० [पुर्त० कारटूस] एक लंबी नली जिसमे गोली छर्रा और बारूद भरी रहती है और जिसके एक सिर पर टोपी लगी रहती है। इसे टोटवाली बंदूक या रिवालवर, राइफल आदि मे भरकर चलाते हैं।

कारन¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं०कारण] दे० 'कारण'।

कारन²—संज्ञा पुं० [सं० कारुण्य या कारुणा] १ रोने का आर्त स्वर। कूक। करुण स्वर। २ व्यथा। दुख। पीड़ा। उ०—नागमती कारन कै रोई।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६।

क्रि०प्र०—करना। करके रोना।

कारनिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] दीवार की कँगनी। कगर।

कारनी¹—वि० [सं० कारण या करण = कान] प्रेरक। करनेवाला। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तूँ दाम कुदाम ज्यों कर कर न विकातो।———राम सोहातो तोहिं जौ तू सबहिं सोहातो। काल कर्म कुल कारनी कोऊ न कोहातो।—तुलसी (शब्द०)।

कारनी²—संज्ञा पुं० [सं० कारीनि] भेद करानेवाला। भेदक। जैसे, उसके साथ यहाँ से कारनी लगे और राह मे कान भरकर उन्होंने उसकी मति पलट दी।

कारपण्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्पण्य] दे० 'कार्पण्य'। उ०—द्रोह कोतवाल त्यों अज्ञान तहसीलवाल गर्व गढवाल रोग सेवक अपार हैं। भनै रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी है जग के विकार जेते सबै सरदार हैं।—रघुराज (शब्द)।

कारपरदाज—वि० [फा० कारपर्दाज][संज्ञा कारपर्दाजी] १ काम करने वाला। कारकुन। २ प्रवधकर्ता। कारिंदा।

कारपरदाजी—वि०[फा० कारपर्दाजी] १ दूसरे का काम करने की वृत्ति। दूसरे की ओर से किसी कार्य का प्रवंध करने का काम। २ दूसरे का काम करने की तत्परता। कार्यपटुता।

कारपोरल—संज्ञा पुं० [अं०] पलटन का छोटा अफसर। जमादार। जैसे—कारपोरल मिल्टन।

कारबंकल—संज्ञा पुं०[अं०] शरीर के किसी भाग मे विशेषत· पीठ पर होने वाला जहरीला फोडा।

कारबन—संज्ञापुं०[अं०कार्बन] भौतिक सृष्टि के मूलभूत तत्वो मे से एक। यह कारबोनिक एसिड (गैस),कोयला, हीरा आदि मे होता है।

कारबन पेपर—संज्ञा पुं० [अं] वह गहरे काले या नीले रंग का कागज जिसे उस कागज के नीचे लगा देते हैं, जिसपर लिखते या टाइप करते हैं। इस प्रकार उस कागज के माध्यम से लेख की प्रतिलिपि भी साथ साथ तैयार होती जाती है। उ०—ढोल उधर औ इधर फौलादी युग के दानव, प्रेम नया क्या होगा र यह वही कारबन कापी।—बदन०, पृ० ४४।

कारबार—संज्ञा पुं० [फा०][वि० कारबारी] कामकाज। व्यापार। पेशा। व्यवसाय।

कारबारी¹—वि० [फा०] कामकाजी।

कारबारी²—संज्ञा पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी। कारकुन। कारिंदा।

कारबोन—संज्ञा पुं० [अं०] [वि० कारबोनिक] रसायन शास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि के बीच दो रूपों मे मिलता है, एक हीरे के रूप मे, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप मे।

कारबोनिक—वि० [अं० कार्बनिक] कारबन या कोयला संबंधी। कारबन मिश्रित। कारबन से बना हुआ।

यौ०—कारबोनिक एसिड गैस।

कारबोलिक¹—वि० [अं० कार्बोलिक] अलकतरा संबंधी। अलकतरा मिश्रित या उससे बना हुआ।

कारबोलिक²—संज्ञा पुं० एक सार पदार्थ जो (पत्थर के) कोयले के तेल या अलकतरे से निकाला जाता है।

विशेष—घाव या फोडे फुंसियों पर कारबोलिक का तेल कीड़ों को मारने या दूर रखने के लिये लगाया जाता है। १ से ३ ग्रेन तक की मात्रा मे कारबोलिक खिलाया जाता है। इसका तेल और साबुन भी बनता है।

कारभ—वि० [सं०] करभ या ऊँट सबधी। ऊँट का [को०]।

कारमन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मण] दे० 'कार्मण'।

कारमवि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कार्मणी] जादूगरनी।

कारमिहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर। घनसार [को०]।

कारय—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य'। उ०—कारण कारय भेद नहीं कछु आपु मे आपुहि आपु तहाँ है।—सुंदर ग्रं०,भा०२, पृ० ६१६।

कारयिता—संज्ञा पुं० [सं० कारयितृ]१. सृष्टि करनेवाला। २ (कार्य) करानेवाला [को०]।

कारयित्री¹—वि० [सं०] १. करानेवाली। सृष्टि या रचना कराने वाली [को०]।

कारयित्री²—संज्ञा स्त्री०१. रचना करानेवाली स्त्री। २ प्रेरक शक्ति। वह आतरिक शक्ति जो रचना के लिये प्रेरित करे [को०]।

यौ०—कारयित्री प्रतिभा।

काररवाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ काम। कृत्य। जैसे—(क) यह बड़ी बेजा काररवाई है। (ख) तुम्हारी दरखास्त पर कुछ काररवाई हुई या नहीं ?

क्रि० प्र०—करना। दिखाना।—होना।

२ कार्यतत्परता। कर्मण्यता।

क्रि० प्र०—दिखाना।

३ गुप्त प्रयत्न। चाल। जैसे—इसमे जरूर कुछ काररवाई की गई है।

क्रि०प्र०—करना। लगना। होना।

कारव—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस। काग [को०]।

कारवाँ—संज्ञा पुं० [फा०] यात्रियों का झुंड जो एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है।

यौ०—कारवाँ सराय = कारवाँ के ठहरने की सराय।

कारवी—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम। कच्चा। नकली। उ०—दादू काया कारवी. देखत ही चलि जाइ।—दादू०, पृ० ३२०।

कारवेल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] करेला।

कारवेल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवेल्ल' [को०]।

कारसाज—वि० [फा० कारसाज] [संज्ञा कारसाजी] काम बनाने वाला। बिगड़े काम को सँभालने वाला। काम पूरा करने की युक्ति निकालने वाला। जैसे—ईश्वर बड़ा कारसाज है।

कारसाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० कारसाजी] १ काम पूरा उतारने की युक्ति। २. गुप्त काररवाई। चालबाजी। कपट प्रयत्न। जैसे—तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह सब उसी की कारसाजी है।

कारस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला। किंपाक वृक्ष (को०)।

कारस्कराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजर। शतपदी। २. जोंक। जलौका ३. बिच्छू। वृश्चिक [को०]।

यौ० –कायक्रिया । कायक्लेश । कायचिकित्सा । निकाय । दीर्घकाय । महाकाय ।

२ प्रजापति तीर्थ। कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग ।

विशेष—मनु ने तर्पण, आचमन सकल्प आदि की पवित्रता के विचार से अगो के तीर्थ नाम से विभाग किए हैं ।

३ प्रजापति का हवि । वह हवि जो प्रजापति के निमित्त हो। ४ प्राजापत्य विवाह । ५ मूल धन । असल । ६ वस्तु स्वभाव । लक्षण । ७ लक्ष्य । ८. समुदाय । सघ । ९. बौद्ध-भिक्षुओ का सघ। १० पेड का तना या काण्ड (को०) । ११. तारों के अलावा वीण का रूप या ढांचा (को०) । १२ निवास-स्थान [को०] ।

काय[२]ⓟ†—अव्य० [हिं० काहु] दे० 'काहे' । उ०—आग लगी क्या देखत अधे काय के खातर सोया जू ।— दक्खिनी,० पृ० १६ ।

कायक—वि० [सं०] शरीर सबधी। दैहिक [को०] ।

कायका—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्याज । सूद [को०] ।

कायक्कⓟ—वि० [सं० कायक या कायिक] दे० 'कायिक' ।

कायचिकित्सा—सज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के किए हुए चिकित्सा के आठ विभागो या अगो मे से एक ।

विशेष—इसमे ज्वर, कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार आदि सर्वांगव्यापी रोगों के उपशमन का विधान है ।

कायजा - सज्ञा पुं० [अ० क़ायजह्] घोडे की लगाम की डोरी, जिसे पूँछ तक ले जाकर बाँधते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—बाँधना ।—लगाना ।

मुहा०—कायजा करना = घोडे की लगाम की डोरी को पूँछ मे फँसाना ।

विशेष—घोड़े को चुप चाप खड़ा करने के लिये खरहरा करते समय प्राय ऐसा करते हैं ।

कायथ—सज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] [स्त्री० कायथिन, कैथिन]दे० 'कायस्थ'।

कायदा—सज्ञा पुं० [अ० क़ायदह्] १ नियम । २ चाल । दस्तूर । रीति । ढग ३ विधि । विधान । ४ क्रम । व्यवस्था । करीना । ५ व्याकरण । ६ प्रारभिक पुस्तक जिसके द्वारा अक्षरज्ञान कराया जाय, जैसे उर्दू का कायदा ।

कायफर†—सज्ञा पुं० [सं० कायफल] दे० 'कायफल' ।

कायफल—सज्ञा पुं० [सं० कट्फल] एकवृक्ष जिसकी छाल दवा के काम मे आती है ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के कुछ गरम स्थानों मे पैदा होता है। आसाम के खासिया नामक पहाड पर और बरमा मे भी यह बहुत होता है ।

कायबधन—सज्ञा पुं० [सं० कायबन्धन] १. शुक्र और रक्त का समिश्रण । २ करधनी । कमरबद [को०] ।

कायब्यूहⓟ—सज्ञा पुं० [सं० कायव्यूह] १ शरीरो का बनाया हुआ मोरचा या व्यूह । ई०—प्रतिबिंबित जयसाहि दुति दीपति दरपन धाम । सबु जगु जीतनु कौं करची कायब्यूह मनु काम । — बिहारी (शब्द०)। २ दे० 'कायव्यूह' ।

कायम— वि० [अ० क़ायम] १ ठहरा हुआ । स्थिर । २ स्थापित । जैसे, स्कूल कायम करना । शतरग मे मोहरा कायम करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३ निर्धारित । निश्चित । मुकर्रर । जैसे, हद कायम करना ।

यौ०—कायममुकाम ।

४ जो बाजी बर बर रहे, जिसमे किसी पक्ष की हार जीत न हो ।

मुहा०—कायम उठाना = शतरज की बाजी का इस प्रकार समाप्त होना जिसमे किसी पक्ष की हारजीत न हो ।

कायममिजाज वि० [अ०कायम + मिजाज] सुस्थिरचित्त । धारमस्थ।

कायममुकाम—वि० [अ० कायममुकाम] स्थानापन्न । एवजी ।

कायमा—सज्ञा पुं० [अ० कायमह] (ज्यामिति मे) समकोण । नब्बे अश का कोण ।

यौ०—जावियाकायमा = समकोण ।

कायर—वि० [सं० कातर,प्रा० कादर] डरपोक । भीरु । असाहसी । कमहिम्मत । उ०—(क) कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक वेद निंदित बहु भाँती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बड़ो कूर कायर कपूत कौडी आध को ।—तुलसी (शब्द०) ।

कायरता—सज्ञा स्त्री० [सं० कातरता या हिं०कायर + ता(प्रत्य०)] डरपोकपन । भीरुता ।

कायल—वि० [अ० कायल] जो दूसरे की बात की यथार्थता को स्वीकार कर ले । जो तर्क वितर्क से सिद्ध बात को मान ले । जो अन्यथा प्रभावित होने पर अपना पक्ष छोड दे । कबूल करनेवाला ।

मुहा०—कायल करना = समझा बुझाकर कोई बात मनवाना । स्वीकार कराना । निरुत्तर करना । जैसे,—जब उसको दस आदमी कायल करेंगे, तब वह झख मारकर ऐसा करेगा । कायल माकूल करना = दे० 'कायल करना' । कायल होना = (१) दुसरे की बात की यथार्थता को मान लेना ।(१) स्वीकार करना । मानना । जैसे,—हम उनकी चालाकी के कायल हैं ।

कायली[१]†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कायर] ग्लानि । लज्जा ।

कायली[२]ⓟ—सज्ञा स्त्री० [सं० क्ष्वेडिका, क्ष्वेलिका, पा० खेलिका] मथानी । खैलर । (डिं०) ।

कायली[३]ⓟ—वि० [हिं० काहिल] काहिल ।

कायवलन—सज्ञा पुं० [सं०]कवच । जिरह बखतर [को०] ।

कायव्य—सज्ञा पुं० [सं०] महाभारत मे वर्णित एक दस्यु सरदार का नाम ।

विशेष—यह बड़ा धर्मपरायण था और साधुओ तथा तपस्वियो की सेवा करता था ।

कायव्यूह—सज्ञा पुं० [सं०]१ शरीर मे वात, पित्त, कफ तथा त्वक रक्त मास, स्नायु अस्थि, मज्जा और शुक्र के स्थान और विभाग आदि का क्रम (वैद्यक) । २ योगियो की अपने कर्मों के भोग के लिये चित्त मे एक एक इंद्रिय और अग की कल्पना की क्रिया ।

कायस्थ[१]—इस वि० [सं०] काय मे स्थित । शरीर मे रहनेवाला ।

कायस्थ[२]—सज्ञा पुं० [सं०] १ जीवात्मा । १. परमात्मा । ३ एक जाति का नाम । कायथ ।

विशेष —इस जाति के लोग प्राय लिखने पढ़ने का काम करते हैं और पजाब को छोड़ प्राय सारे उत्तर भारत मे पाए जाते हैं । यह लोग अपने को चित्रगुप्त का वशज मानते हैं ।

कामेडी—संज्ञा स्त्री० [अं० कॉमिडी] वह नाटक जिसका अंत आनंद या सुखमय हो। सुखांत नाटक। संयोगांत नाटक। मिलनांत नाटक।

कामेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तंत्र के अनुसार एक भैरवी। २. कामाख्या की पाँच मूर्तियों में से एक।

कामैतⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्मैत] कुमैत में से एक।

कामैतीⓅ—संज्ञा पुं०[हिं० काम] मजदूर। काम करनेवाला श्रमिक। उ०—सूबादार कामैतों समेत बाँधि लीनों। वेड़ी घालि दिल्ली को मताजी भेज दीनों।—शिखर०, पृ० २५।

कामोत्याप्य—वि० [सं०] वह नौकर जिसकी नौकरी स्थाई न हो। अस्थायी भृत्य। उ० —शूद्र को कहा है कामोत्याप्य अर्थात् जब चाहे निकाल दिया जानेवाला।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५।

कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस का पुत्र माना जाता है।

विशेष—इसमें धैवत वादी और पंचम संवादी है। इसके गाने का समय रात का पहला आधा पहर है। करुणा और हास्य में इसका उपयोग होता है। कोई कोई इसे विलावली और गौड के संयोग से बना संकर राग मानते हैं। कई रागों के मेल से कई प्रकार के संकर कामोद बनते हैं। यह चौताल पर बजाया जाता है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ध नि सा रे ग म प।

कामोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जलांजलि जो इच्छानुसार उस मृत प्राणी को दी जाती है जो चूड़ाकर्म के पहले मरा हो और जिसके लिये उदकक्रिया की विधि न हो।

कामोदकल्याण—संज्ञा पुं० [सं० कामोद + कल्याण] एक संकर राग जो कामोद और कल्याण के योग से बनता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसका सरगम इस प्रकार है।—ग म प ध नि सा रे।

कामोदतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और तिलक के योग से बनता है और वाडव जाति का है।

विशेष—इसमें धैवत वर्जित है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है। इसका सरगम इस प्रकार है।—प नि सा रे म प।

कामोदनट—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और नट के मिलाने से बनता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसे कुछ लोग नटनारायण का पुत्र भी मानते हैं। इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। कोई कोई इसे दिन के दूसरे पहर में भी गाते हैं। इसका सरगम यह है—ध नि सा रे ग म प प ध नि सा।

कामोदसामंत—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और सामंत के योग से बनता है।

विशेष—यह वाडव जाति का है। इसमें धैवत वर्जित है। इसके गाने का समय रात का तीसरा पहर है। इसका सरगम इस प्रकार है—ग म प नि सा रे ग।

कामोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'कामोदी'। २ एक पौधे का नाम (को०)।

कामोदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कामोदा] एक रागिनी जो मालकोश के पुत्र कामोद की स्त्री है। कोई कोई इसे दीपक की चौथी रागिनी भी मानते हैं।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और रात के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है। कोई कोई इसे संकर रागिनी कहते हैं और सुघराई और सोरठ के योग से उसकी उत्पत्ति मानते हैं। इसका सरगम यह है —प नि सा रे ग म प ध।

कामोद्दीपक—वि० [सं०] काम को उद्दीपन करनेवाला। जिससे मनुष्य को सहवास की इच्छा अधिक हो।

कामोद्दीपन—संज्ञा पुं० [सं०] सहवास की इच्छा का उत्तेजन।

कामोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम का वेग। वासना की प्रबलता। २ वह उन्माद जो काम के वेग से होता है (को०)।

काम्य¹—वि० [सं०] १ जिसकी इच्छा हो। २ जिससे कामना की सिद्धि हो। जैसे, —काम्य कर्म।

काम्य²—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ या कर्म जो किसी कामना की सिद्धि के लिये किया जाय। जैसे —पुत्रेष्टि, कारीरी।

विशेष-यह अर्थ कर्म के तीन भेदों में से है। काम्य कर्म भी तीन प्रकार का कहा गया है—ऐहिक वह है जिसका फल इस लोक में मिले, जैसे— पुत्रेष्टि और कारीरी। आमुष्मिक—वह है जिसका फल परलोक में मिले, जैसे अग्निहोत्र। ऐहिकामुष्मिक का फल कुछ इस लोक में और कुछ परलोक में मिलता है।

काम्यक--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वन का नाम। २ एक सरोवर का नाम (को०)।

काम्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जो किसी फल या कामना की प्राप्ति के लिये किया जाय।

काम्यदान-संज्ञा पुं० [सं०] १ रत्न आदि अच्छी वस्तुओं का दान।२. वह दान जो पुत्र या ऐश्वर्य आदि की कामना से किया जाय।

काम्यमरण- संज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छानुसार मृत्यु। २ मुक्ति।

काम्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। अभिलाषा। कामना। २ प्रार्थना। ३. गाय। गौ (को०)।

काम्येष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यज्ञ जो कामना की सिद्धि के लिये किया जाय। जैसे,—पुत्रेष्टि।

काम्रेड संज्ञा पुं० [अं०] सहयोगी। साथी।

विशेष—कम्युनिस्ट या साम्यवादी अपने दलवालों और अपने से सहानुभूति रखनेवालों को 'काम्रेड' शब्द से संबोधित करते हैं। जैसे,—काम्रेड सज्जादवाला।

काय काय—संज्ञा पुं० [अनु०] १ कौवे की बोली। २ स्यार की बोली। उ०-सियारों की भाँति काय काय कर खोपडी खाली कर डालेंगे।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०२।

काय¹-वि० [सं०] प्रजापति संबंधी, जैसे, कायतीर्थ, कायहवि इत्यादि।

काय²—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कायिक] १ शरीर। देह। बदन। जिस्म। उ०—कछु ह्वै न आइ गयो जन्म जाय। अति दुर्लभ तन पाइ कपट तजि भजे न राम मन वचन काय।—तुलसी (शब्द०)।

कामाध¹—वि० [सं० कामान्ध] काम की अतिशयता से जिसका विवेक नष्ट हो गया हो।

कामाध²—संज्ञा पुं० कोयल। कोकिल पक्षी [को०]।

कामाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामान्धा] १. कस्तूरी। २ गंधधूलि। योजनगंधा [को०]।

कामा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काम] १ कामिनी स्त्री। उ०—अधिक कामदग्ध सो कामा। हरि के सुवा गयो पिय नामा।—जायसी (शब्द०)। २ एक वृत्ति जिसमे दो गुरु होते हैं। जैसे-आना। जाना। रोना। धोना।

कामा²—संज्ञा पुं० [अं० कामा] एक विराम जो दो वाक्यों या शब्दों के बीच होता है। इसका चिह्न इस प्रकार है। (,)।

कामाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा देवी का एक अभिग्रह। २ तंत्र के अनुसार देवी की एक मूर्ति।

कामाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवी का एक अभिग्रह। २ सती या देवी का योनिपीठ। कामरूप।

कामाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्कट प्रेम। प्रबल अनुराग। २ काम की उत्तेजना। काम का वेग [को०]।

कामातुर—वि० [सं०] काम के वेग से व्याकुल। समागम की इच्छा से उद्विग्न।

कामात्मज संज्ञा पुं० [सं०] काम या प्रद्युम्न का आत्मज। अनिरुद्ध [को०]।

कामात्मा—वि० [सं० कामात्मन्] कामी। कामासक्त [को०]।

कामाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] आसाम का पर्वतविशेष [को०]।

कामानुज—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। गुस्सा। तामस। लोभ। उ०—शांत रह्यो कामानुज मुनि को। सेवन कीन्ह्यो गुनि मुनि धनि को।—रघुराज (शब्द०)।

कामायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १ आम। २ कामबाण (को०)। ३ पुरुषचिह्न। शिश्न (को०)।

कामारथी†—संज्ञा पुं० [सं० कामार्थी] दे० 'कामार्थी'।

कामारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी का एक नाम।

कामार्त—वि० [सं०] १. काम से पीड़ित। २ वियोगी। विरह पीड़ित [को०]।

कामार्थी—वि० [सं० कामार्थिन] १ कामुक। कामी। २. रतिकर्म में आसक्त [को०]।

कामावशायिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्य सकल्पता जो योगियों की आठ सिद्धियों या ऐश्वर्यों में से है। २ आत्मनिग्रह (को०)।

कामावसाय—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रियनिग्रह (को०)।

कामावसायिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कामावशायिता'।

कामि¹—संज्ञा पुं० [सं०] कामुक [को०]।

कामि²—संज्ञा स्त्री० काम की स्त्री। रति (को०)

कामिक¹—वि० [सं०] इच्छित। चाहा हुआ। जिसकी कामना की जाय (को०)।

कामिक²—संज्ञा पुं० वनहंस। कारंडव पक्षी [को०]।

कामिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रावण कृष्णा एकादशी।

कामित¹—वि० [सं०] चाहा हुआ। वांछित (को०)।

कामित²—संज्ञा पुं० कामना। वासना। प्रेम [को०]

कामितियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड जो सुमात्रा, जावा आदि टापूओं मे होता है और जिसकी छाल से एक प्रकार का लोबान बनता है।

कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कामवती स्त्री। २. स्त्री। सुंदरी ३ भीरु स्त्री (को०)। ४ दारु हल्दी। ५. मदिरा। ६ पेड़ों परका बाँदा। परगाछा। ७ मालकोस राग की एक रागिनी। ८ एक पेड जिसकी लकडी से मेज कुर्सी आदि सजावट के सामान बनते हैं।

विशेष—इसकी लकडी पर नक्काशी का काम अच्छा होता है।

यौ०—कामिनिकांचन=स्त्री और संपदा।

कामिनीकांत—संज्ञा पुं० [सं० कामिनीकांत] एक वर्णवृत्त। दे० 'स्रग्विणी' (को०)।

कामिनीमोहन—[सं०] स्रग्विणी छंद का एक नाम।

कामिनीश—संज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड। शोभांजन वृक्ष (को०)।

कामिल—वि० [अ०] १. पूरा। पूर्ण। सब। कुल। समूचा। २. योग्य। ३. व्युत्पन्न।

कामी¹—वि० [सं० कामिन्] [स्त्री० कामिनी] १. कामना रखनेवाला। इच्छुक। २ विषयी। कामुक। लंपट।

कामी²—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकवा २ कबूतर। ३ चिडा। गौरा। ४. सारस। ५. चंद्रमा। ६ काकड़ासींगी। ७. विष्णु का एक नाम। ८. शिव का एक विशेषण (को०)। ९ लंपट व्यक्ति (को०)। १० विलासी पति (को०)।

कामी³—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्प=हिलना] १ काँसे का ढाला हुआ छड़ जिससे मुठिया बनाते हैं। २ कमानी। तीली।

कामु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काम] दे० 'काम'। उ०—पठवहु कामु जाइ शिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं।—मानस, १।८३।

कामुक¹—वि० [सं०] १ [स्त्री० कामुकी] इच्छा करने वाला। चाहने वाला। २ [स्त्री० कामुका] कामी। विषयी।

कामुक²—संज्ञा पुं० १ अशोक। २. माधवी लता। ३ चिड़ा। गौरा।

कामुका¹—वि० स्त्री० [सं०] इच्छा करने वाली।

कामुका²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का मातृका दोष।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह रोग बालकों को जन्म के बारहवें दिन या बारहवें महीने या बारहवें वर्ष होता है। इसमें रोगी ज्वरग्रस्त होकर हँसता है, वस्त्रादि उतारकर फेंक देता है, अधिक साँस लेता है और अडबड बकता है।

२. धन की कामना रखनेवाली स्त्री (को०)।

कामुक(पु)—वि० [सं० कामुक, कामुकी] दे० 'कामुक'। उ०—जिनके विलोकत ही विलात, असेस कामुकि काम के।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४५७।

कामुकी—वि० स्त्री० [सं०] अत्यंत रति की इच्छा रखनेवाली। पुंश्चली। व्यभिचारिणी (को०)।

कामेडियन—संज्ञा पुं० [अं० कामेडियन] १ आदि रस या हास्य रस का अभिनेता। २. सुखांत नाटक लिखनेवाला।

समाज सोह वर नारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उ०—शशि किरणों से उतर उतरकर भू पर कामरूप नभचर । चूम चपल कलियों का मृदु मुख सिखा रहे थे मुसकाना ।—वीणा, पृ० ५८ ।

कामरूपत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि जो कर्मादि से निरपेक्ष होनेपर प्राप्त होती है । इससे साधक को यथेच्छ अनेक प्रकार के रूप धारण करने की शक्ति होती है ।

कामरूपिणी—वि० [सं०] इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली । मायाविनी । उ०—यम की सभा कामरूपिणी है, विश्वकर्मा ने बनाई है ।—प्रा० भा० प०, पृ० ३२५ ।

कामरूपी—वि० [सं० कामरूपिन्] [वि० स्त्री० कामरूपिणी] इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला । मायावी ।

कामरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारांगना (को०) ।

कामरेड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'काम्रेड' ।

कामर्स—संज्ञा पुं० [अं० कॉमर्स] व्यापार । वाणिज्य । कारोबार । लेनदेन । जैसे,—चेंबर आफ कामर्स । कामर्स डिपार्टमेंट ।

कामल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग ।

विशेष—इसमें पित्त की प्रबलता से रोगी के शरीर का रंग पीला पड जाता है, आँखें और नख विशेष पीले जान पडते हैं, शरीर अशक्त रहता है और भोजन में अरुचि रहती है ।

२. वसंत काल । ३. रेगिस्तान (को०) ।

कामल[2]—वि० कामी ।

कामलड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल, हिं० कामल + डी (प्रत्य०)] दे० 'कामरी' । उ०—फाडि पटोली धुज करों कामलडी फहराय । जेहि जेहि भेजे पिय मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४३ ।

कामला—संज्ञा पुं० [सं० कामल] दे० 'कामल[1]' ।

कामलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा (को०) ।

कामली—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल] कमली । छोटा कंबल । उ०—साधु हजारी कापड़ा ता में मल न समाय । साकट काली कामली भावै तहाँ बिछाय ।—कबीर (शब्द०) ।

कामली—वि० [सं० कामलिन्] [वि० स्त्री० कामलिनी] पीलिया रोग से पीडित (को०) ।

कामलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारांगना (को०) ।

कामलोक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार एक परोक्ष लोक ।

विशेष—यह ग्यारह प्रकार का है—मनुष्यलोक, तिर्यक्लोक, नरक, प्रेतलोक, असुरलोक, चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम्य, तुषित, निर्माणरति और परनिर्मित नाशवर्ती ।

कामलोल—वि० [सं०] कामातुर (को०) ।

कामवती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारु हल्दी ।

कामवती[2]—वि० स्त्री० काम की वासना रखनेवाली । समागम की इच्छा रखनेवाली ।

कामवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वन जहाँ बैठाकर महादेव जी ने कामदेव का दहन किया था । २ मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध वन जो तीर्थ माना जाता है ।

कामवर—संज्ञा पुं० [सं०] इच्छित भेंट या उपहार (को०) ।

कामवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ आम । आम का पेड । २ वसंत (को०) । ३. चंद्रमा (को०) ।

कामवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी । चंद्रिका ।

कामवश[1]—वि० [सं०] काम के अधीन । कामयुक्त (को०) ।

कामवश[2]—संज्ञा पुं० काम का आवेश या अधीनता (को०) ।

कामवाद[1]—सं० पुं० [सं०] इच्छानुसार कहने का सिद्धांत ।

कामवाद[2]—वि० १. इच्छानुसार कहने या बोलनेवाला । २ इच्छानुसार कहने के सिद्धांत को माननेवाला ।

कामवादी—वि० [सं० कामवादिन्] दे० 'कामवाद' ।

कामवान्—वि० [सं० कामवत्] [वि० स्त्री० कामवती] काम की इच्छा करनेवाला । समागम का अभिलाषी ।

कामविहंता—वि० [सं० कामविहन्तृ] काम या वासना का हनन करनेवाला (को०) ।

कामवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ (को०) ।

कामवृत्त—वि० [सं०] कामुक । लपट । स्वेच्छाचारी (को०) ।

कामवृत्ति[1]—वि० १. स्वेच्छाचारी । २ स्वतंत्र (को०) ।

कामवृत्ति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वतंत्र या अनियंत्रित कार्य । २ काम की प्रवृत्ति या भाव (को०) ।

कामवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम का आवेश या वेग (को०) ।

कामवेग—संज्ञा पुं० [सं०] कामोत्तेजना । काम की तीव्रता । उ०—'भाव' मन की वेगयुक्त अवस्थाविशेष है, वह क्षुत्पिपासा, कामवेग आदि शरीरवेगों से भिन्न है ।—रस०, पृ० १६४ ।

कामशर—संज्ञा पुं० [सं०] १ कामबाण । २. आम । ३ आम का पेड (को०) ।

कामशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या या ग्रंथ जिसमें स्त्री पुरुषों के परस्पर समागम आदि के व्यवहारों का वर्णन हो ।

विशेष—इसके प्रधान आचार्य नंदीश्वर माने जाते हैं और अंतिम आचार्य वात्स्यायन इनका ग्रंथ काम सूत्र है ।

कामसख—संज्ञा पुं० [सं०] १ वसंत । २. चैत्र का आरंभ । चैत्रमुख । ३ आम का वृक्ष (को०) ।

कामसखा—संज्ञा पुं० [सं० कामसखिन्] १. वसंत । २. चैत्रमास (को०) ।

कामसुख—संज्ञा पुं० [सं०] काम का आनंद । विषयानंद । उ०—समुझि कामसुख सोचहिं भोगी । भए अकंटक साधक जोगी ।—मानस, १।८७ ।

यौ०—कामसुखेच्छा = विषय-सुख की लालसा । कामसुखेच्छु = कामसुख का इच्छुक ।

कामसुत—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध जो कामदेव के अवतार, प्रद्युम्न के पुत्र थे ।

कामसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वात्स्यायन द्वारा रचित कामशास्त्र । २. प्रेमसूत्र । कामकथा (को०) ।

कामहा—संज्ञा पुं० [सं० कामहन्] १ शिव । २ विष्णु (को०) ।

कामांकुश—संज्ञा पुं० [सं० कामाङ्कुश] १ नख । नाखून । २. लिंग । शिश्न (को०) ।

कामांग—संज्ञा पुं० [सं० कामाङ्ग] आम ।

कामध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कामदेव की पताका पर हो, मछली।

कामन— वि०[सं०] १ कामुक। २ लपट। [को०]।

कामन्वेल्थ—संज्ञा पुं० [अं०] राष्ट्रमंडल। राष्ट्रकुल।

कामन सभा—संज्ञा स्त्री० [अं० हाउस आफ कामन्स] ब्रिटिश पार्लमेंट की वह शाखा या सभा जिसमे जनसाधारण के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। आजकल इनकी संख्या ७०७ होती है। हाउस आफ कामंस।

कामना-- संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। मनोरथ। २ वासना (को०)।

कामनीय, कामनीयक— संज्ञा पुं० [सं०] सौंदर्य। आकर्षण। रमणीयता (को०)।

कामपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विषय, भोग और इच्छाओं के वशीभूत रहने की स्थिति। कामुकता।

कामपाल— संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रीकृष्ण। २. बलराम। ३. महादेव। ४ विष्णु [को०]।

कामप्रद—वि० [सं०] कामना की पूर्ति करनेवाला। अभीष्टदायक उ०—संसार मे जितने कामप्रद सुख हैं, जितने दिव्य और महान सुख हैं, वे तृष्णाक्षय सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।— रस० क०, पृ० ४४।

कामप्रद—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

कामप्रवेदन— संज्ञा पुं० [सं०]काम को प्रकट करना या जताना (को०)।

कामप्रश्न— संज्ञा पुं० [सं०] स्वतंत्र या इच्छित प्रश्न(को०)।

कामफल— संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आम [को०]।

कामबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव के बाण, जो पाँच हैं—मोहन, उन्मादन संतपन, शोषण, और निश्चेष्टकरण।

विशेष—बाणों को फूलों का मानने पर वे पाँच बाण ये हैं—लालकमल, अशोक, आम, चमेली और नील कमल।

कामभूरुह—संज्ञा पुं० [सं० काम + भूरुह]। कल्पवृक्ष उ०—राम भलाई आपनी भल कियो न काको।——राम नाम महिमा करै कामभूरुह आको। साखी वेद पुरान है तुलसी तन ताको।—तुलसी (शब्द०)।

काममह—संज्ञा पुं० [सं० काममहस्] चैत्र पूर्णिमा को मनाया जाने वाला कामदेव का एक उत्सव (को०)।

काममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

काममूढ—वि० [सं० काममूढ] कामातुर। काम के वशीभूत (को०)।

काममोहित— वि०[सं०] कामातुर। काम के वशीभूत [को०]।

कामयमान, कामयान—वि० [सं०] कामी। कामसुखेच्छु। कामुक। कामातुर [को०]।

कामयाब—वि० [फा०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया हो। सफल। कृतकार्य।

कामयाबी—संज्ञा स्त्री०[फा०] [वि० कामयाब] सफलता। कृतकार्यता।

कामयिता—वि०[सं० कामयितृ] [वि०स्त्री० कामयित्री] कामातुर(को०)

कामरत—संज्ञा पुं० [सं०] कामलिप्त। वासनालिप्त। उ०—कहुँ भूल्यो कामरत कहुँ भूल्यो साधजत कहुँ भूल्यो हमध्य कहुँ वनबासी है।—सुंदर ग्रं० भा० २, पृ० ५८४।

कामरस- संज्ञा पुं० [सं०] १ वीर्य। २ काम संबंधी रस या आनंद (को०)

कामरसिक--वि०[सं०] [वि० स्त्री० कामरसिका] कामी। कामुक(को०)

कामरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कामरी] कमली। कंबल। उ०—सूरदास खल कारी कामरि चढत न दूजो रंग।--सूर (शब्द०)।

कामरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

कामरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कामरी] दे० 'कामरी'।

कामरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल] कमली। कंबल। उ०-काग री मो जिय मारो हुतो वहि कामरीवारो विचारो बचायो।—देव (शब्द०)।

कामरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्त्र जो रामायण के अनुसार विश्वामित्र ने रामचंद्र जी को दिया था। इससे वे अन्य अस्त्रों को व्यर्थ करते थे। उ०—तिमि विभूति अरु अनर कह्यो युग तेसहि वनकर बीरा। कामरूप मोहन आवरणहुँ लेहु कामरुचि बीरा।—रघुराज (शब्द०)।

कामरु--(पु)संज्ञा पुं० [कामरूप, प्रा० कामरुम]दे०'कामरूप'। उ०—कामरु देस कमच्छा देवी। जहाँ बसै इसमाइल जोगी।—(शब्द०)।

कामरू(पु)—संज्ञा पुं०[सं० कामरूप, प्रा० कामरुम] दे० 'कामरूप'।

कामरूप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. आसाम का एक जिला जहाँ कामाक्षा देवी का स्थान है। इसका प्रधान नगर गोहाटी है।

विशेष—कालिका पुराण मे कामाक्षा देवी और कामरूप तीर्थ का माहात्म्य बड़े विस्तार के साथ लिखा है। यह देवी के ५२ पीठों मे से है। यहाँ का जादू टोना प्रसिद्ध है। प्राचीनकाल मे यह म्लेच्छ देश माना जाता था और इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर (आधुनिक गोहाटी) थी। रामायण के समय मे इसका राजा नरकासुर था। सीता की खोज के लिये बंदरों को भेजते समय सुग्रीव ने इस देश का वर्णन किया है। महाभारत के समय में प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त था। जब अर्जुन दिग्विजय के लिये निकले थे, तब यह उनसे चीनियों और किरातों की सेना लेकर लड़ा था। कुरुक्षेत्र के युद्ध मे भी भगदत्त चीनियों और किरातों की म्लेच्छ सेना लेकर कौरवों की ओर से लड़ने गया था। महाभारत मे कहीं कहीं भगदत्त को 'म्लेच्छानामधिप' भी कहा है। पीछे से जब शाक्तों और तान्त्रिकों का प्रभाव बढ़ा,तब यह स्थान पवित्र मान लिया गया।

२. एक अस्त्र जिससे प्राचीन काल में शत्रु के फेंके हुए अस्त्र व्यर्थ किए जाते थे। ३ बरगद की जाति का एक बड़ा सदाबहार पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और ललाई लिए हुए सफेद रंग की होती है जिसपर बड़ी सुंदर लहरदार धारियाँ पड़ी होती है। इसकी तौल प्रति घनफुट २०सेर के लगभग होती है। यह लकड़ी किवाड़, कुरसी, मेज आदि बनाने के काम में आती है। कामरूप की पत्तियाँ टसर रेशम के कीड़े भी खाते हैं।

४. २६ मात्राओं का एक छंद, जिसमे ९,७ और १० के अंतर पर विराम होता है। अंत मे गुरु लघु होते हैं। जैसे,--सित पच्छ सुदसमी, विजय तिथि सुर, वंद्य नखत प्रकास। कपि भालु दल युत, चले रघुपति, निरखि समय सुभास। ५ देवता।

कामरूप²—वि० यथेच्छ रूप धारण करनेवाला। मनमाना रूप धारण करनेवाला। उ०-(क) कामरूप सुंदर तनु धारी। सहित

कामदगिरि—संज्ञा पुं०[सं०] चित्रकूट का एक पर्वत जो सभी कामनाएँ पूरी करनेवाला माना जाता है।

कामदमणि—संज्ञा पुं० [सं०] चितामणि।

कामदमनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कामदमणि] दे० 'कामदमणि'। उ०—गत चित चेति चित्रकूट चलि।... करिहैं राम भावतो मन को सुख साधन अनयास महा फलु। कामदमनि कामदा कल्पतरु सो जुग जुग जागत जगतीतलु। तुलसी तोहिं विसेखि बूझिए एक प्रतीति प्रीति एकै बलु।—तुलसी ग्रं०।

कामदर्शन—वि० [सं०] देखने में जो सुंदर लगे [को०]।

कामदव—संज्ञा पुं० [सं०] कामाग्नि। कामज्वाला [को०]।

कामदहन—संज्ञा पुं०[सं० काम + दहन]कामदेव को जलानेवाले, शिव। उ०—घर ही बैठे दोऊ दास। रिधि सिधि भक्ति अभय पद दायक आय मिले प्रभु हरि अनयास।...—जाको ध्यान धरत मुनि शंकर शीश जटा दिग अंबर तास। कामदहन गिरि कंदर आसन या मूरति की तऊ पियास।—सूर (शब्द०)।

कामदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कामधेनु। २. एक देवी जिसकी अहिरावण पूजा करता था। उ०—देहौ बलि कामद कहँ सोई। जानेहु नभ प्रकाश जब होई।—विश्राम (शब्द०)। ३ चैत्र शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम। ४ दस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें क्रम से, रगण, यगण, और जगण तथा एक गुरु होता है। जैसे,—रायजू गयो मो लला कहाँ ? रोय यों कहैं नंद जू तहाँ। हाय देवकी दीन आपदा। नैन मोठ के मूर्ति कामदा।

विशेष—इस वृत्त के आदि में गुरु के स्थान में दो लघु रखने से 'शुद्ध कामदा' वृत्त होता है। इसमें ५, ५ पर यति होती है।

कामदान—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा नाच रंग या गाना बजाना जिसमें लोग अपना कामधंधा छोड़कर लीन रहें। (को०)।

विशेष—कौटिल्य के समय में राज्य की मुख्य आमदनी अनाज की उपज का भाग ही था। अतः कृषकों के दुर्व्यसन, आलस्य आदि के कारण जो पैदावार की कमी होती थी, उससे राज्य को हानि पहुँचती थी। इसी से कामदान' अपराधों में गिना गया था और इसके लिये १२ पण जुरमाना होता था।

कामदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काम + दानी (प्रत्य०)] १.बेलबूटा जो बादले के तार या सलमे सितारे से बनाया जाय। २.वह कपड़ा जिस पर सलमे सितारे के बेलबूटे बने हों।

कामदार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० काम + दार (प्रत्य०)] राजपूताने की रियासतों में एक कर्मचारी जो प्रबंध का काम करता है। कारिंदा। अमला। उ०—पाँचो पकड़े कामदार जो पकड़ी ममता माई।—कबीर ग्रं० पृ० १३३।

कामदार[2]—वि० कारचोबी जिसपर जरदोजी या तार के कसीदे का काम हो। जिसपर कलाबत्तू आदि के बेलबूटे बने हों। जैसे—कामदार टोपी, कामदार जूता।

कामदुघ—वि०[सं०] हर प्रकार की इच्छा पूरी करने वाला। अभीष्ठ दायक (को०)।

कामदुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु कामदुहा [को०]।

कामदुह—वि० [सं० कामदुह] अभीष्टदायक [को०]।

कामदुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामदूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदती। हाथीसूँड़ नाम की घास।

कामदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परवल की बेल। २. कोयल (को०)।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्री पुरुष के संयोग की प्रेरणा करनेवाला एक पौराणिक देवता जिसकी स्त्री रति, साथी वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष बाण है। उसकी ध्वजा पर मीन और मकर का चिह्न है।

विशेष—कहते हैं जब सती का परलोकवास हो गया, तब शिवजी ने यह विचार कर कि अब विवाह न करेंगे, समाधि लगाई। इसी बीच तारकासुर ने घोर तप कर यह वर माँगा कि मेरी मृत्यु शिव के पुत्र से हो और देवताओं को सताना प्रारंभ किया। इस दुःख से दुखित हो देवताओं ने कामदेव से शिव की समाधि भंग करने के लिये कहा। उसने शिवजी की समाधि भंग करने के लिये उनपर अपने बाण चलाए। इसपर शिवजी ने कोप कर उसे भस्म कर डाला। इसपर उसकी स्त्री रति रोने और विलाप करने लगी। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि कामदेव अब से बिना शरीर के रहेगा और द्वारका में कृष्ण के घर प्रद्युम्न के रूप में उसका जन्म होगा। प्रद्युम्न कामदेव के अवतार कहे गए हैं।

पर्या०—काम। मदन। मन्मथ। मार। प्रद्युम्न। मीनकेतन। कदर्प। दर्पक। अनंग। पंचशर। स्मर। शंबरारि। मनसिज। कुसुमेषु। अनन्यज। पुष्पधन्वा। रतिपति। मकरध्वज। आत्मभू। ब्रह्मसू। ऋष्यकेतु।

२ वीर्य। ३.संभोग की इच्छा। ४. शिव। ५. विष्णु (को०)।

कामधाम—संज्ञा पुं० [हिं०काम + धाम] (अनु०)] कामकाज। धंधा। उ०—ब्रज घर गई गोपकुमारि। नेकहू कहुँ मन न लागत कामधाम बिसारि।—सूर (शब्द०)।

कामधुक्[1]—वि० [सं०] अभीष्टदायक [को०]।

कामधुक्[2]—संज्ञा स्त्री० कामधेनु [को०]।

कामधुक—संज्ञा स्त्री० [सं० कामधेनु] कामधेनु। उ०—नाम कामधुक रामलला।—तुलसी (शब्द०)।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक गाय जो पुराणानुसार समुद्र के मथने से निकली थी। सुरभी।

विशेष—यह चौदह रत्नों में से एक है। कहते हैं इससे जो माँगा जाय वही मिलता है।

२. वशिष्ठ की शवला या नंदिनी नाम की गाय।

विशेष—इसके कारण वशिष्ठ का विश्वामित्र से युद्ध हुआ था। विश्वामित्र एक बार वशिष्ठ के यहाँ गए। वशिष्ठ ने अपनी गाय के प्रभाव से उनका बड़े वैभव के साथ आतिथ्य किया। विश्वामित्र लोभ करके वह गाय माँगने लगे। वशिष्ठ ने अस्वीकार किया, इसी पर दोनों में घोर युद्ध हुआ।

३. दान के लिये सोने की बनाई हुई गाय।

कामधेन्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामधेनु] दे० 'कामधेनु'। उ०—यह मुट्ठी भर की कामधेन्वा इतनी उदार होगी यह मुझे विश्वास नहीं था।—किन्नर०, पृ० ८१।

कामकृत्[2]—संज्ञा पुं० लीलापुरुष । परमात्मा इच्छा मात्र से सृष्टि करनेवाला [को०] ।

कामकृत—वि० [सं०] काम या कामदेव द्वारा किया हुआ । उ०—दुई दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अय ।—मानस, १ । ८५ ।

कामकृतऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो विषय भोग मे लिप्त होने की दशा मे लिया गया हो ।—(स्मृति)।

कामकेलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतिक्रिया । कामक्रीड़ा [को०] ।

कामक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] रतिक्रिया । संभोग [को०] ।

कामक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामक्रीडा] कामकेलि । संभोग । रतिक्रिया [को०] ।

कामग—वि०[सं०] [वि० स्त्री० कामगा] १. स्वेच्छाचारी । अपनी इच्छा पर चलनेवाला । उ०—भगवान जब दशरत्थ नृप रानीन के गर्भहि गये । तवहीं विरंचि सुदेवतन सों बात यह बोलत भये । तुम हरि सहायहि के लिए उत्पत्ति कपि गन की करौ । अव अति बली अति काय कामग कामरूपी विस्तरौ । —पद्माकर (शब्द०) । २. परस्त्री या वेश्यागामी । लपट । ३. कामदेव ।

कामगति—वि० [सं०] मनोनुकूल स्थान पर जाने मे समर्थ । जहाँ मन चाहे वहाँ मे जाने मे समर्थ ।

कामगार—संज्ञा पुं० [सं० कर्म + कार, प्रा० कम्म + गार (प्रत्य०)] १ दे० 'कामदार' । २ मजदूरी । मजदूरी करके रोजी कमानेवाला व्यक्ति ।

कामगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट कामदगिरि [को०] ।

कामचर—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह जानेवाला । स्वेच्छापूर्वक विचरनेवाला ।

कामचलाऊ—वि० [हिं० काम + चलाना] जिससे किसी प्रकार काम निकल सके । जो पूरा पूरा या पूरे समय तक काम न दे सकने पर भी बहुत से अंशों मे काम दे जाय ।

कामचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कामचारी] १ इच्छानुसार भ्रमण । २ स्वेच्छाचार (को०) । ३ कामुकता (को०) । ४ स्वार्थपरता (को०) ।

कामचारी[1]—वि० [सं० कामचारिन्] १ मनमाना घूमनेवाला । जहा चाहे वहाँ विचरनेवाला । २ मनमाना काम करनेवाला । स्वेच्छाचारी । ३ कामुक । लपट ।

कामचारी[2]—संज्ञा पुं० १ गरुड़ । २ गौरैया [को०] ।

कामचोर—वि० [हिं० काम + चोर] काम से जी चुरानेवाला । काम से भागनेवाला । अकर्मण्य । आलसी । जाँगरचोर । जाँगरचोट्टा ।

कामज[1]—वि० [सं०] वासना से उत्पन्न ।

कामज[2]—संज्ञा पुं० १ व्यसन ।

विशेष—मनुसंहिता के अनुसार ये व्यसन दस प्रकार के होते हैं और इनमे आसक्त होने से अर्थ और धर्म की हानि होती है । दस कामज व्यसन ये हैं—मृगया, जुआ, दिन को सोना पराई निंदा, स्त्रीसंभोग मद्यपान' नृत्य, गीत, वाद्य और व्यर्थ इधर उधर घूमना ।

२ क्रोध । आवेश (को०) ।

कामजननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबेल [को०] ।

कामजान—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०] ।

कामजानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०] ।

कामजित्[1]—वि०[सं०] काम को जीतनेवाला ।

कामजित्[2]—संज्ञा पुं० १ महादेव । शिव । २ कार्तिकेय । ३ जिनदेव ।

कामज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो स्त्रियों और पुरुषों को अखंड ब्रह्मचर्य पालन करने से हो जाता है ।

विशेष—इसमें भोजन से अरुचि और हृदय में दाह होता है नींद, लज्जा, बुद्धि और धैर्य का नाश हो जाता है, पुरुषो के हृदय मे पीडा होती है और स्त्रियों का अंग टूटता है, नेत्र चचल हो जाते हैं, मन मे संभोग की इच्छा होती है । क्रोध उत्पन्न कर देने से इसका वेग शांत हो जाता है ।

कामठक—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के वंश का एक नाग जो जनमेजय राजा के सर्पयज्ञ में मारा गया था ।

कामणगारो(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० कर्मण + कार, गुज० कामण + गार + ई (प्रत्य०)] जादूगरनी । उ०—प्रीतम कामणगारियाँ, थल थल वादलियाँह । घण वरसतइ सूकियाँ, लसूँ जाँगुरियाँह ।—ढोला०, दू० २४८ ।

कामडिया—संज्ञा पुं० [सं० कम्बल] रामदेव के मत के अनुयायी चमार साधु ।

विशेष—ये राजपूताने में होते हैं और रामदेव के गन्द या उनकी वानी गाते और भीख मांगते हैं ।

कामत—क्रि० वि० [सं०] १ इच्छानुसार । स्वेच्छया । २ वासना से ।

कामत—संज्ञा पुं० [अ० कामत] शरीर । जिस्म । डील डौल । कद । उ०—सर्व कामत गजव की चाल से तुम क्यों कयामत चले वपा करके ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२० ।

कामतरु(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँदा जो पेड़ो पर होता है । २ कल्पवृक्ष ।

कामता(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कामद] चित्रकूट के पास का एक गाँव । चित्रकूट । उ०—पवन तनय रह कलियुग माहीं । अस दरशन होवै कहुँ नाहीं । तुलसिदास कह कृपा निहारी मोहि न अचरज परत निहारी । कह कपीश कामता सिधारी । बैठहु कालिह राम उरधारी ।—विश्राम (शब्द०)

यौ०—कामतागिरि = कामदगिरि ।

कामताप—संज्ञा पुं० [सं०] कामज्वर । उ०—आनंद रस-रंग-फलन काम-ताप हरन ।—घनानंद, पृ० ४३५ ।

कामताल—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०] ।

कामतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रयोदशी ।

विशेष—इस तिथि को कामदेव की पूजा होती है ।

कामद[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कामदा] मनोरथ पूरा करनेवाला । इच्छानुसार फल देनेवाला ।

यौ०—कामदगिरि = चित्रकूट ।

कामद[2]—संज्ञा पुं० १ स्वामीकार्तिक । २ ईश्वर । ३. शिव (को०) । ४ सूर्य (को०) ।

प्रयोजन निकलना। मतलब गँठना। उद्देश्य सिद्ध होना। मामला ठीक होना। बात बनना। जैसे,—वह इस समय यहाँ आ जाय तो हमारा काम बन जाय। **काम बनाना**= किसी अर्थ का साधन करना। किसी का मतलब निकालना। **काम लगना**=काम पड़ना। आवश्यकता होना। दरकार होना। जैसे, जब रुपए का काम लगे, तब ले लेना। **काम सँवारना**=काम बनाना। किसी का अर्थसाधन करना। **काम सधना**=काम सिद्ध होना। प्रयोजनसिद्ध होना। **काम सरना**=काम निकलना। काम पूरा होना। उ०—इससे आपकी ख्याति होगी वा आपके राज्य का काम सरेगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२। **काम साधना**=काम पूरा करना। प्रयोजन सिद्ध करना। **काम साथ देना**=सफल करना। सिद्ध करना। पूरा कर देना। उ०-वेसधा काम साध देती है। बात सीधी हुई सादी।—चोखे०, पृ० ३१। **काम होना**=प्रयोजन सिद्ध होना। अर्थ निकलना। आवश्यकता पूरी होनी।

४. गरज। वास्ता। सरोकार। लगाव। जैसे—(क) हमे अपने काम से काम। (ख) तुम्हें इन झगड़ों से क्या काम?

मुहा०—**किसी से काम डालना**=(काम 'पड़ना' का प्रे० रूप) पाला डालना। जैसे, ईश्वर ऐसों से काम न डाले। किसी से काम पड़ना। किसी से पाला पड़ना। किसी से वास्ता पड़ना। किसी प्रकार का व्यवहार या सबंध होना। उ०—चंदन पड़ा चमार घर नित उठि कूटै चाम। चदन बपुरा का करै, पडा नीच मे काम।—(शब्द०)। **काम रखना**=वास्ता रखना। सरोकार रखना। लगाव रखना। जैसे—बाकी और किसी बात से उन्हें काम नहीं, खाने पीने से मतलब रखते हैं। **काम से काम रखना**=अपने कार्य से प्रयोजन रखना। अपने प्रयोजन ही की ओर ध्यान रखना, व्यर्थ की बातो मे न पडना।

५ उपयोग। व्यवहार। इस्तेमाल।

मुहा०—**काम आना**=(१) काम मे आना। व्यवहार मे आना। उपयोगी होना। जैसे—(क) यह पत्ती दवा के काम आती है। (ख) इसे फेंको मत, रहने दो, किसी के काम आ जायगा। २. साथ देना। सहारा देना। सहायक होना। आड़े आना। जैसे—विपत्ति मे मित्र ही काम आते हैं। **काम का**= काम मे आने लायक। व्यवहार योग्य। उपयोगी (वस्तु)। **काम देना**=व्यवहार में आना। उपयोगी होना। जैसे—यह चीज वक्त पर काम देगी, रख छोड़ो। (किसी वस्तु से) **काम लेना**=व्यवहार मे लाना। उपयोग करना। बर्तना। इस्तेमाल करना। जैसे—वाह! आप हमारी टोपी से अच्छा काम ले रहे हैं। **काम मे आना**=व्यवहार मे आना। व्यवहृत होना। बर्ता जाना। जैसे,—इस रख छोडो, किसी के काम मे आ जायगी। **काम में लाना**=बर्तना। व्यवहार करना। उपयोग करना।

६ कारबार। व्यवसाय। रोजगार। जैसे—उन्हें कोई काम मिल जाता तो अच्छा था।

क्रि०प्र०—करना।

मुहा०—**कामखुलना**=कारबार चलना। नया कारखाना जारी होना। नया कारबार प्रारंभ होना। **काम चमकना**=बहुत अच्छी तरह कारबार चलना। व्यवसाय मे वृद्धि होना। रोजगार में फायदा होना। जैसे,—थोड़े ही दिनो में उनका काम खूब चमक गया और वह लाखो रुपए का आदमी हो गया। **काम पर जाना**=कार्यालय में जाना। अपने रोजगार की जगह जाना। जहाँपर कोई काम हो रहा हो, वहाँ जाना। **काम बढ़ाना**=काम बंद करना। नित्य के नियमित समय पर कोई कामकाज बंद करना। जैसे,—संध्या को कारीगर काम बढ़ाकर अपने अपने घर जाते हैं। **काम बिगड़ना**=कारबार बिगड़ना। व्यवसाय नष्ट होना। व्यापार मे घाटा आना। **काम सीखना**=कार्यक्रम की शिक्षा होना। व्यवसाय या धंधा सीखना। कला सीखना। जैसे,—वह तारकशी का काम सीख रहा है।

७ कारीगरी। बनावट। रचना। दस्तकारी। ८ बेलबूटा या नक्काशी जो कारीगरी से तैयार हो। जैसे—(क) इस टोपी पर बहुत घना काम है। (ख) दीवार पर का काम उखड़ रहा है।

यौ०—कामदानी। कामदार।

मुहा०—**काम उतारना**—किसी दस्तकारी के काम को पूरा करना। कोई कारीगरी की चीज तैयार करना। **काम चढ़ना**= तैयारी के लिये किसी चीज का खराद करघे, कालिब, कल आदि पर रखा जाना। **काम चढ़ाना**=किसी चीज की तैयारी के लिये खराद, करघे, कालिब कल आदि पर रखना या लगाना। जैसे,—कई दिनो से काम चढ़ाया है पर, अभी तक नहीं उतरा। **काम बनना**=किसी वस्तु का तैयार होना। रचना या निर्माण होना।

कामअंध(५)—वि० [सं० कामान्ध] दे० 'कामांध'। उ०—कामअंध जब भयो तब तिय ही तिय सब ठौर। अब विवेक अजत कियो लख्यो अलख सिरमौर।—ब्रज ग्रं०, पृ० १२१।

कामकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मैथुन। रति। २ कामदेव की स्त्री। रति। ३. एक तंत्रोक्त विद्या।

विशेष—इसमें शिव और शक्ति की दो सफेद और लाल बिंदियाँ मानी गई हैं, जिनके सयोग को कामकला कहते हैं। इसी सयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है।

४ कामदेव का कौशल। उ०—कामकला कछु मुनिहिं न व्यापी।—मानस, १।१२६।

कामकाज—संज्ञा पुं० [हिं० काम+काज] कारबार। कामधंधा।

कामकाजी—वि० [हिं० काम+काज] काम करनेवाला। उद्योगधंधे में रहनेवाला।

कामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेश्यागामी। लंपट। २ वेश्याओं का छल छद। ३. कामराज नामक श्रीविद्या का मंत्र जो तीन प्रकार का है—कामकूत, कामकेलि और कामक्रीडा।

कामकृत्[१]—वि० [सं०] १. इच्छानुसार करनेवाला। स्वेच्छाकारी। २. काम या इच्छा पूर्ण करनेवाला [को०]।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—होना ।—मे आना ।

मुहा०—काबू मे करना या काबू करना = वश मे करना । काबू चढ़ना या काबू पर चढ़ना = अधिकार मे आना । दाँव पर चढ़ना । काबू पाना = अधिकार पाना । दाँव पाना ।

काभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० काभर्तृ] बुरा पति । बुरा स्वामी(को०) ।

कामध[1] ⓟ—वि० [सं० कामान्ध] दे० 'कामांध'। उ०—नर नारि भए कामध अध ।—हमीर रा०, पृ० १६ ।

कामध[2] ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] दे० 'कवध' । उ०—घरी एक रविमडल छिद्रकारी । तुटे कध कामध मौ जुद्ध भारी ।—पृ० रा०, १२ । १४१ ।

काम[1]—संज्ञा पु० [सं०] [कामुक, कामी] १ इच्छा । मनोरथ ।

यौ०—कामद । कामप्रद ।

२ महादेव । ३ कामदेव । ४. इद्रियो की अपने अपने विषयो की ओर प्रवृत्ति (कामशास्त्र) । ५ सहवास या मैथुन की इच्छा । ६ चतुर्वर्ग या चार पदार्थों मे से एक । ७ प्रद्युम्न (को०) । ८ बलराम (को०) । ९ ईश्वर (को०) । १० प्रेम (को०) । ११ वीर्य (को०) । शुक्र (को०) । १२ एक प्रकार का आम (को०) ।

काम[2]—संज्ञा पुं० [सं० कर्म, प्रा० कम्म] १ वह जो किया जाय । गति या क्रिया जो किसी प्रयत्न से उत्पन्न हो । व्यापार । कार्य । जैसे,—सब लोग अपना अपना काम कर रहे हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—बिगडना ।—होना ।

यौ०—कामकाज । कामधधा । कामधाम । कामचोर ।

मुहा०—काम अटकना = काम रुकना । हर्ज होना । जैसे—उनके बिना तुम्हारा कौन सा काम अटका है । काम आना = मारा जाना । लडाई मे मारा जाना । जैसे,—उस लडाई मे हजारों सिपाही काम आए । काम कर दिखाना = महत्वपूर्ण काम करना । उ०—जम गए काम कर दिखाएँगे । कौन से काम हैं नही कस के ।—चुभते, पृ० २६ । काम करना = (१) प्रभाव डालना । असर करना । जैसे—यह दवा ऐसी बीमारी मे कुछ काम न करेगी । (२) प्रयत्न मे कृतकार्य होना । जैसे—यहाँ पर बुद्धि कुछ काम नही करती । (३) सभोग करना । मैथुन करना—(बाजारी) । काम के सिर होना या काम सिर होना = काम मे लगना । जैसे—महीनो से बेकार बैठे थे, काम के सिर हो गए अच्छा हुआ । काम चलना = (१) काम जारी रहना । क्रिया सपादन होना । जैसे—सिंचाई का काम चल रहा है । काम चलाना = काम जारी रखना । धधा चलता रखना । काम छेडना = कार्य आरभ करना । उ०—काम छेडा छूटता छोड़ नहीं । टूटता है दम रहे तो टूटता ।—चुभते०, पृ० १३ । काम तमाम या काम आखिर करना = (१) काम पूरा करना । (२) मार डालना । जान लेना । घात करना । कामतमाम या आखिर होना = (१) काम पूरा होना । काम समाप्त होना । (२) मरना । जान से जाना । जैसे—एक डडे मे साँप का काम तमाम हो गया । काम देखना = (१) किसी चलते हुए कार्य की देखभाल करना । काम की जाँच करना । (२) अपने कार्य या मतलब की ओर ध्यान रखना । जैसे—तुम अपना काम देखो, तुम्हें इन झगड़ो से क्या मतलब । काम बँटाना = किसी काम मे शरीक होना । किसी काम मे सहायता करना । सहायक होना । काम बनना = मामला बनना । बात बनना । काम बिगडना = बात बिगड़ना । मामला बिगड़ना । काम भुगतना = काम निपटना । काम पूरा होना । काम भुगताना = कार्य समाप्त करना । काम पूरा करना । काम लगाना = काम जारी होना । कार्य का विधान होना । किसी वस्तु के निर्मित करने का अनुष्ठान होना । जैसे—(क) महीनो से काम लगा है, पर मदिर अभी नही तैयार हुआ । (ख) जहाँ पर काम लगा है, वहाँ जाकर देखभाल करो । काम लगा रहना = व्यापार जारी रहना । जैसे—कोई आता है, कोई जाता है, यही काम दिन रात लगा रहता है । (किसी व्यक्ति से) काम लेना = कार्य मे नियुक्त करना । कार्य कराना । काम सीझना = काम सिद्ध या पूरा होना । उ०—प्रसन होइ शिव शिवा काम सीझै सुईंद जग ।—पृ० रा० २५ । ३४ । काम होना = (१) मरना प्राण जाना । जैसे-गिरते ही उनका काम हो गया । (२) अत्यत कष्ट पहुँचना । जैसे—तुम्हारा गया उठाने वाले का काम होना था ।

२ कठिन काम । मुश्किल बात । शक्ति या कौशल का कार्य । जैसे—वह नाटक लिखकर उन्होने काम किया ।

मुहा०—काम रखता है । बडा कठिन कार्य है । मुश्किल बात है । जैसे—इस भीड मे से होकर जाना काम रखता है ।

३ प्रयोजन । अर्थ । मतलब । उद्देश्य । जैसे—हमारा काम हो जाय तो तुम्हे प्रसन्न कर देंगे ।

मुहा०—काम करना = अर्थ साधना । मतलब निकालना । जैसे—वह अपना काम कर गया तुम ताकते ही रह गए । काम का = जिससे कोई प्रयोजन निकले । जिनसे कोई उद्देश्य सिद्ध हो । जो मतलब का हो । जैसे—काम का आदमी । काम चलना = प्रयोजन निकलना । अर्थ सिद्ध होना । अभिप्राय साधन होना । कार्यनिर्वाह होना । जैसे इतने से तुम्हारा काम नही चलेगा काम चलाना = प्रयोजन निकलना । अर्थ सिद्ध करना । कार्यनिर्वाह करना । आवश्यकता पूरी करना । जैसे—इस वर्ष इसी से काम चलाओ । काम निकलना = (१) प्रयोजन सिद्ध होना । उद्देश्य पूरा होना । मतलब गँठना । जैसे—काम निकल गया, अब क्यो हमारे यहाँ आवेंगे ? उ०—मुफ्त निकले काम तो क्यो खर्चे दाम ? । (२) कार्य निर्वाह होना । आवश्यकता पूरी होना । जैसे इतने से कुछ काम निकले तो ले जाओ । काम निकालना = (१) प्रयोजन साधना । मतलब गाँठना । जैसे—वह चालाक आदमी है, अपना काम निकाल लेता है । (२) कार्यनिर्वाह करना । आवश्यकता पूरी करना । जैसे—जब तक इसी से काम निकालो फिर देखा जायगा । काम पडना = आवश्यकता होना । प्रयोजन पडना । दरकार होना । जैसे,—जब काम पडेगा, तुमसे माँग लेंगे । काम बनाना = अर्थ साधना ।

विशेष—यह रंग केसर फिटकरी और हरसिंगार से बनता है।

२ कपूरी पान।

काब[1]—संज्ञा पुं० [तु० काब] बड़ी रिकाबी।

काब(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० काव्य, प्रा० कव्व] दे० 'काव्य'। उ०—दुग्र लागा ग्रसरार जुध, सुकवि चंद करि काब।—पृ० रा०, ७।१३८।

काबर[1]—वि० [सं० कर्बुर, प्रा० कब्बर] कई रंगों का। चितकबरा।

काबर[2]—संज्ञा पुं० [हि० खाबर] १ एक प्रकार की भूमि जिसमें कुछ कुछ रेत मिली रहती है। दोमट। खाबर। उ० काबर सुंदर रूप, छवि गेहूँवा जहँ ऊपजैं। बाला लगै अनूप हेत नैनन लह-लही।—रत्नहजारा (शब्द०)। २. एक प्रकार की जंगली मैना

काबला—संज्ञा पुं० [ग्रं० केबिल=रस्सा] एक बड़ा पेंच जिसमें ढेबरी कसी जाती है बालटू।—(लश०)।

काबा—संज्ञा पुं० [ग्र० काबह्] १ ग्ररब के मक्का शहर का एक स्थान जहाँ मुसलमान लोग हज करने जाते हैं। उ०—काबा फिर कासी भया राम जो भया रहीम। मोटे चूने मैदा भया बैठि कबीरा जीम।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह मुसलमानों का तीर्थ इस कारण है कि यहाँ मुहम्मद साहब रहते थे।

२ चौकोर इमारत। ३ पाँसा

काबाड़ी(पु)—संज्ञा पुं० [हि० कबार, कबाड़] १ लकड़हारा। लकड़ी काटनेवाला। उ०—काबाड़ी नित काटता भीक कुहाडा भाड।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३२। २ गुदड़ी के सामान जुटाने और बेचने वाला।

काबिज—वि० [ग्र० काबिज] १ जिसका किसी वस्तु पर अधिकार या कब्जा हो। अधिकार रखनेवाला। अधिकारकृत। अधिकारी। २ ऐसी वस्तु जिससे कब्ज हो।

काबिल[1] वि० [ग्र० काबिल] [संज्ञा काबिलीयत] १. योग्य। लायक। उ०—ग्ररु काबिल खुरसान, कोपि पतिसाह बुलाये।—हमीर रा०, पृ० ६६। १ विद्वान्। पंडित।

यौ० -काबिलजिक्र। काबिलदीद। काबिलतारीफ।

काबिल(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'काबुल'। उ०—कवन कज्ज काबिल गयव, कियव कवन सह दद।—प० रासो, पृ० १०२।

काबिदीद(पु)—वि० [हि०] दे० 'काबिलेदीद'। उ०—जो कुछ पहले दिलों को काबिलदीद व दरकार है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३४।

काबिलितर्क(पु)—वि० [ग्र० काबिल+हि० तर्क] तर्क करने योग्य। बहस करने योग्य। जिसपर बहस या विवाद किया जाय। उ०—हम कुछ हैवान और जंगली नहीं कि हमारी सब चाल और तरीके काबिलितर्क हों।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ८१।

काबिलीयत—संज्ञा स्त्री० [ग्र० काबिलीयत] १ योग्यता। लियाकत। २ पांडित्य। विद्वत्ता।

काबिलेतारीफ—वि० [ग्र० काबिल+तारीफ] प्रशंसनीय। प्रशंसा के योग्य। श्लाघ्य।

काबिलेदाद—वि० [ग्र० काबिल फा० +दाद] प्रशंसनीय प्रशंसा करने योग्य। दाद देने योग्य। उ०—मौलाना अरशद और हजरत नयाज दोनों साहबों के मजामीन काबिलेदाद हैं।—प्रेम० और गोर्की पृ० ५२।

काबिलेदीद—वि० [ग्र० काबिल+फा० दीद] देखने योग्य। दर्शनीय [को०]।

काबिस—संज्ञा पुं० [सं० कपिश] १ एक रंग जिससे मिट्टी के कच्चे बर्तन रँगकर पकाए जाते हैं।

विशेष—यह मोंठ, मिट्टी, बबूल की पत्ती, बाँस की पत्ती, आम की छाल और रेह को एक में घोलने से बनता है। इनसे रंग कर पकाने से बर्तन लाल हो जाते हैं और उनपर चमक आ जाती है।

२ एक प्रकार की मिट्टी जो लाल रंग की होती है और पानी डालने से बड़ी लसदार हो जाती है।

विशेष—यह मिट्टी काबिस बनाने में काम आती है।

काबी—संज्ञा स्त्री० [फा० काबा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें खेलाड़ी विपक्षी के पीछे जाकर एक हाथ से उसके जाँघिए का पिछौटा पकड़कर दूसरे हाथ से उसके एक पैर की नली पकड़कर खींच लेता है।

काबुक—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ कबूतरों का दरबा। २ काठे की गद्दी जिसपर गोटी रखकर तंदूर में लगाते हैं।

काबुल—संज्ञा पुं० [सं० कुभा] [वि० काबुली] १ एक नदी जो अफगानिस्तान से आकर अटक के पास सिंधु नदी में गिरती है। २ अफगानिस्तान का एक नगर जो वहाँ की राजधानी है। यह काबुल नदी पर है। ३ अफगानिस्तान का पुराना नाम।

मुहा०—काबुल में भी गधे होते हैं=अच्छी जगह में भी बुरे या अयोग्य व्यक्ति होते हैं।

काबुली—वि० [हि० काबुल] काबुल का। काबुल में उत्पन्न।

यौ० काबुली अनार। काबुली मेवा। काबुली पट्टू। काबुली घोड़ा।

काबुली चना - संज्ञा पुं० [हि० काबुली+चना] एक प्रकार का चना जिसके दाने बड़े बड़े और रंग साफ होता है।

काबुली बबूल—संज्ञा पुं० [हि० काबुली+बबूल] एक प्रकार का बबूल जो सरो की तरह सीधा जाता है।

विशेष—यह भारत के प्राय सभी स्थानों में पाया जाता है। बंबई की ओर इसे राम बबूल कहते हैं। इसकी लकड़ी साधारण बबूल की लकड़ी से कम मजबूत होती है।

काबुली मटर—संज्ञा स्त्री० [हि० काबुली+मटर] एक प्रकार की मटर जिसके दाने बड़े बड़े होते हैं।

काबुली मस्तगी—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक वृक्ष का गोंद जो रूमी मस्तगी के समान होता है और मस्तगी की जगह काम आता है।

विशेष—इसका पेड़ बंबई प्रांत तथा उत्तरी भारत में भी होता है। उसे बंबई की मस्तगी भी कहते हैं।

काबू—संज्ञा पुं० [तु० काबू] वश। अधिकार। इख्तियार। जोर। बस। कस।

कापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कायर। डरपोक। उ०—वर न सका कापुरुष जिसे तू, उसे व्यर्थ ही हर लाया।—साकेत पृ० ३८९।

कापेय[१]—वि० [सं०] [सं० स्त्री० कापेया] कपि संबंधी। बंदर का।

कापेय[२]—संज्ञा पुं० १ शौनक ऋषि जो कपि ऋषि के पुत्र थे। २ कपिसमूह (को०)। ३ बंदरघुड़की। बंदरभभकी (को०)।

कापोत[१]—वि० [सं०]१ भूरे मटमैले रंग का। कपोत वर्ण का। २. थोड़े धनवाला। बहुत कम ग्रायवाला [को०]।

कापोत[२]—संज्ञा पुं० १ कबूतरों का झुंड। २ सुरमा। ३ सोडा। ४. क्षार। ५ वह जो रूढ़ियों ग्रौर परपराग्रों के ग्रनुसार ग्राचरण रखता हो [को०]।

काप्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीनकालिक गोत्र जिसके प्रवर्तक कपि नामक ऋषि थे। २ ग्रागिरस। ३ पाप (को०)।

काप्य[२]—वि० कपि के गोत्र में उत्पन्न। काप्य गोत्र का।

काप्यकर—वि० [सं०] ग्रपने पापों पर प्रायश्चित्त करनेवाला [को०]।

काप्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रपने पापों को स्वीकार करना। २ ग्रपने पापों पर प्रायश्चित्त करनेवाला व्यक्ति [को०]।

काफ[१]—संज्ञा पुं० [ग्र० काफ]ग्ररबी ग्रौर फारसी वर्णमाला का एक एक ग्रक्षर।

काफ[२]—संज्ञा पुं० [ग्र० काफ़] ग्ररबी फारसी वर्णमाला का एक ग्रक्षर।

काफ[३]—संज्ञा पुं० [काफ] १ ग्ररबी वर्णमाला का एक ग्रक्षर। ग्रबजद में १०० की सूचक संख्या। २ कोहकाफ जो काला-सागर ग्रौर कास्पियन सागर के मध्य में है। काकेशस पहाड़। ३. एक कल्पित पहाड़ जिसके विषय में धारणा है कि वह दुनिया को क्षितिजविस्तार तक घेरे है।

यौ०—काफ ता काफ या काफ से काफ तक=एक छोर से दूसरे छोर तक। भूमंडल भर में। सारी पृथ्वी में। काफ से दाल=(संभवत 'कौल ग्रो दलील' का संक्षेप) (१) बातचीत ग्रौर तर्क। (२) सजावट। तड़क भड़क। (३) मूर्ख। बेवकूफ।

काफ[४]—संज्ञा पुं० [ग्र० काफ]ग्रसत्य। झूठ। उ०—सो काफिर जे बोलै काफ।—दादू०, पृ० ३५४।

काफर—वि० [ग्र० काफिर] सं० 'काफिर'। उ०—सो काफर सो ही ग्रापण बूझे ग्रल्ला दुनिया भर।—दक्खिनी०, पृ० १०८।

काफरी—वि० [हिं० काफूरी] दे० 'काफूरी'। उ०—काफरी कपूर चरबी ग्ररबी हैं ग्रँगरेज ग्रादि काठ तृन तूल भूस भूस है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८६५।

काफरी मिर्च—संज्ञा स्त्री० [हिं० काफिरी+मिर्च] एक प्रकार का मिरचा जो चपटे सिर का गोल गोल ग्रौर पीला होता है।

काफल[१]—पुं० [सं०] कायफल।

काफल[२]—संज्ञा पुं० [सं० कटफल] छोटा लाल फल। उ०—काफल थे रंग रहे, फूल में थी फल लिए खुदानी।—ग्रतिमा, पृ० १५।

काफा—संज्ञा पुं० [ग्र० कापफह्] संसार। प्रपंच। उ०—दरस दिदार करत कर काफ।—दरिया बा०, पृ० ४०।

काफिया—संज्ञा पुं० [ग्र० काफ़िया] ग्रत्यानुप्रास। तुक। सज।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—मिलना।—मिलाना।—बैठना।—बैठाना।

यौ०—काफियाबंदी=तुकबंदी। सज मिलाना। तुक जोड़ना।

मुहा०—काफिया तंग करना=बहुत हैरान करना। नाकों दम करना। दिक करना। काफिया तंग रहना या होना=किसी काम से तंग रहना या होना। नाकों दम रहना या होना। उ०—तुम दिल्लगी करती हो ग्रौर यहाँ काफिया तंग हो रहा है।—मान०, भा० ५, पृ० ५,। काफिया मिलाना=(१) तुक मिलाना। (२) ग्रपना साथी बनाना। किसी काम में शरीक करना।

काफिर[१]—वि०[ग्र० काफ़िर]१ मुसलमानों के ग्रनुसार उनसे भिन्न धर्म को माननेवाला। मूर्तिपूजक। उ०—मूरख कारो क फिर ग्राधी सिच्छित सबहिं भयो री।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४०५। २ ईश्वर को न माननेवाला। निर्दय। निष्ठुर। बेदर्द। ४ दुष्ट। बुरा। ५ काफिर देश का रहनेवाला।

काफिर[२]—संज्ञा पुं० १ एक देश का नाम जो ग्रफ्रिका में है ग्रौर उस देश का निवासी। २ दरिया। नदी। ३ किसान। ४ प्रेमपात्र। माशूक। ५ ग्रफ्रीका की एक हब्शी जाति। ६ एक जाति जो ग्रफगानिस्तान की सरहद पर रहती है।

काफिरिस्तान—संज्ञा पुं० [ग्र० काफिर+फा० स्तान] ग्रफगानिस्तान का वह प्रदेश जहाँ काफिर जाति रहती है।

काफिरी[१]—वि० [ग्र० काफिरी] १ काफिर संबंधी। २ काफिरों जैसा [को०]।

काफिरी[२]—संज्ञा स्त्री० १. काफिरों की भाषा। २ काफिरपन।

काफिला—संज्ञा पुं० [ग्र० काफिलह्] यात्रियों का झुंड जो तीर्थ, व्यापार ग्रादि के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है।

यौ०—काफिला सालार=यात्रियों का नेता। काफिले का सरदार। सार्थपति।

काफी[१]—वि० [ग्र० काफ़ी] किसी कार्य के लिये जितना ग्रावश्यक हो उतना। मतलब भर के लिये। पर्याप्त। पूरा।

क्रि० प्र०—होना।

काफी[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमे गांधार कोमल लगता है।

विशेष—इसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड तक है। काफी कान्हड़ा, काफी टोरी, काफी होली ग्रादि इसके कई संयुक्त रूप हैं।

काफी[३]—संज्ञा स्त्री० [ग्र० कॉफ़ी] दे० 'कहवा'।

काफूर—संज्ञा पुं० [फा० काफूर, तुलनीय सं० कर्पूर, हिं० कपूर] [वि० काफूरी] कपूर।

मुहा०—काफूर होना=चपत होना। रफूचक्कर होना। गायब होना। उड़ जाना। लुप्त होना। जैसे,—वह देखते ही देखते काफूर हो गया।

काफूरी[१]—वि० [हिं० काफूर] १ काफूर का। १. काफूर के रंग का।

काफूरी[२]—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का बहुत हलका रंग जिसमे कुछ कुछ हरेपन की झलक रहती है।

कापना(पु)—क्रि० स० [स० क्लृप, प्रा० कप्प] काटना। छेदना। उ०—ऊन वन सोनो कापियौं, विणही लुका वक।—बाँकी० ग्रं० भा० १, पृ० ५४।

कापर(पु)—संज्ञा पुं० [स० कर्पट = वस्त्र, प्रा० कप्पड] कपडा। वस्त्र। उ०—(क) हस्ति घोर औ कापर, सबैं दीन्ह बड साज। भये गृहस्थ सब लखपती, घर घर मानहु राज।—जायसी (शब्द०)। (ख) काढहु कोरे कापर हो अरु काढो घी की मौन। जाति पाँति पहिराइ के सब समदि छतीसो पौन।—सूर (शब्द०)।

कापर प्लेट—संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने मे काम आनेवाला ताँबे की चद्दर का एक टुकडा जिसपर अक्षर खुदे होते हैं।

विशेष—इसपर एक बार स्याही फेरी जाती है और फिर पोंछ ली जाती है जिससे खुदे अक्षरो मे स्याही भरी रह जाती है और शेष भाग साफ हो जाता है। फिर इसको प्रेस मे रखकर इसके ऊपर से कागज छापते हैं। जहाँ चित्र आदि बनाने होते हैं वहाँ तेजाब आदि रासायनिक द्रव्यो से काम लिया जाता है।

कापर प्लेट प्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का प्रेस या छापने की कल जिसमे प्राय दो बेलन होते हैं और जिसमे कापर प्लेट की छपाई होती है।

कापाल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन अस्त्र। उ०—वारुनास्त्र क्रौंचास्त्र हयग्रीवास्त्र सुहाये। ककालहु कापाल मुसल ये दोऊ आये।—पद्माकर (शब्द०)। २ वायविडग। ३ एक प्रकार की सधि जिसे करनेवाले पक्ष एक दूसरे के समान स्वत्व को स्वीकार करते हैं। ४ कापालिक (को०)। ५ एक प्रकार का कोढ़ (को०)।

कापाल[2]—वि० १ कपालसबंधी। २. भिक्षुक का सा। भिक्षुकसबधी [को०]।

कापालिक[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ शैव मत का तात्रिक साधु। उ०—कहने की आवश्यकता नही कि कौल, कापालिक आदि इन्ही वज्रयानियो से निकले।—इतिहास, पृ० १३।

विशेष—ये मनुष्य की खोपडी लिए रहते हैं, और मद्य मासादि खाते हैं। ये लोग भैरव या शक्ति को बलि चढाते हैं।

२ तत्रसार के अनुसार वग देश की एक वर्णसकर जाति। ३ एक प्रकार का कोढ।

विशेष—इसमें शरीर की त्वचा रूखी, कठोर, काली या लाल होकर फट जाती है और दर्द करती है। यह कोढ़ विषम होता है और बडी कठिनाई से अच्छा होता है।

कापालिक[2]—वि० १ कपालसबधी, २. भिखारी या मगन जैसा। भिखारी या मगन संबधी [को०]।

कापालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता था।

कापाली[1]—संज्ञा पुं० [सं० कापालिन्] [स्त्री० कापालिनी] १. शिव। २ एक प्रकार का वर्णसकर। ३ कपालो की माला। मुडमाल (को०)। बायविडग (को०)।

कापाली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुडमाला। कपालो की माला। २ चतुर स्त्री [को०]।

कापिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापिकी] बदर की शक्लवाला या बंदर के जैसा व्यवहार करनेवाला [को०]।

कापिल[1]—वि० [स०] १. कपिल सबधी। कपिल का। २ भूरा।

कापिल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह दार्शनिक सिद्धात जिसके प्रवर्तक कपिलाचार्य थे। साख्य दर्शन। २. कपिल के दर्शन का अनुयायी। ३ भूरा रग।

कापिश—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का मद्य जो माधवी के फूलो से बनता था।

कापिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १ मदिरा। २ एक देवी का नाम [को०]।

कापिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देश जिसका नाम पाणिनि की अष्टाध्यायी मे आया है। यहाँ का मद्य अच्छा होता था।

कापिशेय—संज्ञा पुं० [सं०] भूत प्रेत। पिशाच [को०]।

कापीशेयी[1]—वि० [सं०] काबुल की। अगूरी। उ०—कापिशेयी सुरा को हमारे पाणिनि बाबा ने अपने सूत्रो मे स्थान दिया है।—किन्नर०, पृ० ७२।

कापिशेयी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिशा की बनी मदिरा [को०]।

कापिसा(पु)—वि० [स० कपिश अथवा कापिश] दे० 'कपिश'। उ०—हरि मन कुमुद प्रमोदकर ब्रज प्रकासिनी बाम। जयति कापिसा। चद्रिका, राधा जी को नाम।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५।

कापी[1]—संज्ञा स्त्री० [अं० कॉपी] १ नकल। प्रतिरूप।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।—होना।

यौ०—कापीराइट।

२ लिखने की सादी पुस्तिका। ३. वह लिखा या छपा हुआ मैटर जो छापेखाने मे कपोज करने के लिये दिया जाय। जैसे,—कपोज के लिये कापी दीजिए, कपोजीटर बैठे हुए हैं। ४ लीथो की छपाई मे पीले कागज पर तैयार की हुई प्रतिलिपि जो छापने के लिये पत्थर या जिंक प्लेट पर लगाई जाती है।

कापी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० कैप] घिर्नी। गडारी।—(लश०)।

मुहा०—कापी गोला या कापी का गोला = वह ढाँचा जिसमे जहाज की चरखी की गडारी बैठाई जाती है।

कापीनवीस—संज्ञा पुं० [अं० कॉपी + फा० नवीस = लिखनेवाला] १ वह जो किसी प्रकार की प्रतिलिपि प्रस्तुत करता हो। लेखक। २ लीथो के छापेखाने का वह कर्मचारी जो छापने के लिये बहुत सुदर अक्षरो मे पीले कागज पर लेख आदि प्रस्तुत करता है। कापी लिखनेवाला। (इसी को लिखी हुई कापी पत्थर पर जमाकर छापी जाती है।

कापीराइट—संज्ञा पुं० [अं०] कानून के अनुसार वह स्वत्व जो ग्रथकार या प्रकाशक को प्राप्त होता है।

विशेष—इस नियम के अनुसार कोई दूसरा आदमी किसी ग्रथ को ग्रथकर्ता या प्रकाशक की आज्ञा बिना नही छाप सकता।

कापुरस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कापुरुष] दे० 'कापुरुष'। उ०—कापुरसाँ फिर कायराँ, जीवण लालच ज्यांह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १।

कानेजर—संज्ञा स्त्री० [फा० कानेजर] सोने की खान।

कानौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कने० = समीप, पार्श्व] किनारा। उ०—लूवाँ भडनह मागीयाँ, लुवाँ न कानों लेहु। बाँकी० ग्र० भा० १, पृ० ३८।

कानो†—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम, हिं० काँदो] दे० 'काँदो'।

यौ०—पानीकानो।

कान्यकुब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन समय का एक प्रांत जो वर्तमान समय के कन्नौज के आसपास था।

विशेष—इस प्रदेश के संबंध में रामायण में लिखा है कि राजर्षि कुशनाभ को घृताची नाम की अप्सरा से १०० कन्याएँ हुई। उन कन्याओं के रूप को देख वायु उन पर मोहित हो गया। कन्याओं ने जब वायु की बात अस्वीकार की, और कहा कि पिता की आज्ञा के बिना हम लोग किसी को स्वीकार नहीं कर सकती, तब वायु देवता ने कुपित होकर उन्हें कुबडी कर दिया। पिता कन्याओं पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें कांपिल्य नगर के राजा ब्रह्मदत्त (चूलीय ऋषि के पुत्र) को ब्याह दिया, जिनके स्पर्श से उनका कुबड़ापन जाता रहा। ह्वेनसांग ने अपने विवरण में यह कथा और ही प्रकार से लिखी है। उसने सौ कन्याओं को कुसुमपुर के राजा ब्रह्मदत्त की कन्याएँ माना है और लिखा है कि महावृक्ष ऋषि ने मोहित होकर उन कन्याओं में से एक को ब्रह्मदत्त से माँगा। राजा सबसे छोटी कन्या को लेकर ऋषि के आश्रम पर गए। ऋषि ने कुपित होकर कहा—सबसे छोटी कन्या क्यों? राजा ने डरते डरते कहा कि और कोई कन्या राजी नहीं हुई। ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारी और सब कन्याएँ कुबडी हो जायँ। इन्हीं कुबडी कन्याओं के आख्यान से इस प्रदेश का नाम कान्यकुब्ज पड़ा।

२ कान्यकुब्ज देश का निवासी। ३ कान्यकुब्ज देश का ब्राह्मण कनौजिया।

कान्सल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कासल'।

कान्सोलेट—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'दूतावास'।

कान्स्टिटयूशन—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कांस्टिट्यूशन'।

कान्स्टेबल—संज्ञा पुं० [अ० कान्स्टेब्ल] दे० 'कांस्टेबल'। उ०—एकाएक कान्स्टेबल ने कोचमैन को पुकारकर बग्गी खडी कराई।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३८८।

कान्स्पिरेसी—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कांस्पिरेसी'।

कान्यजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित पदार्थ [को०]।

कान्ह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण। उ०—पूरी धावौ ऊपडे, जुध गिरदार जवन्न। कान्ह हरी साको कियो, उजवालियो उतन्न।—रा० रू०, पृ० १९८।

कान्हडा—संज्ञा पुं० [सं० कर्णाट] एक राग जो मेघ राग का पुत्र समझा जाता है।

विशेष—इसमें सातों स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय रात ११ दंड से १५ दंड तक है।

यौ०—कान्हड़ा नट = एक संकर राग जो कान्हडे और नट के मिलाने से बनता है। यह रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।

कान्हडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाटी] एक रागिनी जो दीपक राग की पत्नी समझी जाती है।

कान्हम—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + मृत् (= मृत्तिका, मिट्टी) प्रा० कण्ह काला] मध्य प्रांत की वह काली मटियार जमीन जो कपास की पैदावार के लिये प्रसिद्ध है।

कान्हमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान्हम] मध्य प्रांत की कान्हम भूमि में उत्पन्न कपास।

कान्हर[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] कोल्हू के कातर के छोर पर लगी हुई बेडी और टेढ़ी लकडी।

विशेष—यह दोनों ओर निकली होती है और कोल्हू की कमर से लगकर चारों ओर घूमती है।

कान्हर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण जी। उ०—देखी कान्हर की निठुराई। कबहू पाती हू न पठाई।—(शब्द०)।

कान्हरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कान्हडा] दे० 'कान्हड़ा'। उ०—मुरली तान कान्हरो गावत, सुनत गी दै कान।—नंद० ग्र०, पृ० ३६७।

कान्हा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] श्री कृष्ण।

कान्हूड़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कान्ह + ड़ (प्रत्य०)] दे० 'कान्ह' उ०—कान्हूडे के रंग में सूरदास की चोन।—पोद्दार अभि० पृ० १६७।

काप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृप, पा० कप्प] काट। कटाव। उ०—कालेजा विचि काप परहर तू फाटइ नहीं।—ढोला०, दू० १८०।

कापट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापटकी] धोखेबाज। धूर्त। कपटी [को०]।

कापटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ चापलूस। खुशामदी। २ विद्यार्थी [को०]।

कापटिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापटिकी] १ कपट करनेवाला। बेईमान। २ दुष्ट [को०]।

कापाटिक[2]—संज्ञा पुं० १. चापलूस २ विद्यार्थी। अध्ययनार्थी (को०)।

कापट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल। २ दुष्टता (को०)।

कापड—संज्ञा पुं० [सं० कपट, प्रा० कप्पड़] कपडा।

यौ०—कुल कापड = वंश और कपड़ा।

कापडा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्पटक प्रा० कप्पडअ] दे० 'कपड़ा'।

कापडी[1]—संज्ञा पुं० [सं० कार्पटिक, प्रा० कप्पडि] [स्त्री० कापडिन] १ एक जाति का नाम २ बजाज। वस्त्रविक्रेता। उ०—और नागजी आपु कापड़ी को भेख करि वह लाठी हाथ में लै के श्री गुसाईं जी के पास श्री गोकुल को गोंधरा सो श्री गुसाईं जी, के दर्शनार्थ चले।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ७।

कापड़ी(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० काँवरी] एक तरह के धार्मिक यात्री जो गंगोत्तरी से काँवर पर जल लेकर चलते हैं और उस जल को सब तीर्थों में चढ़ाते हैं। उ०—कापड़ी सन्यासी तीरथ भ्रमाया। न पाया नृवाण पद का भेव।—गोरख०, पृ० ३३।

कापथ—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार्ग। बुरा रास्ता। १. उशीर। खस [को०]।

कानी[३]—संज्ञा पुं०[सं० कर्ण] 'आ' की मात्रा जो किसी अक्षर के आगे लगाई जाती है और जिसका रूप (ा) है जैसे,—वाला में का (ा), ।

काना[४]—वि० [सं० कर्ण] जिसका कोई कोना या भाग निकला हो। तिरछा। टेढ़ा। जैसे,—कपड़े में से टुकड़ा काटकर तुमने उसे काना कर दिया ।

काना[५]— संज्ञा पुं० [हिं० काना] पासे में की बिंदी पौ। जैसे,—तीन काने ।

कानाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाकर्णिक] कानाफूसी। चर्चा। उ०—जब जाना कि लोगों में यही बात कानाकानी हो रही है ।—सदल मिश्र (शब्द०)।

कानाकुतरा—[वि० हिं० काना + कुतरना] कुतरा हुआ। काटा हुआ। खंडित ।

कानागोसी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काना + फ़ा० गोश (कान) हिं० ई (प्रत्य०)] कान में बात कहना । कानाफूसी ।

कानाटीटो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

कानाफुसकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कानाफूसी] दे० 'कानाफूसी'।

कानाफूसी— संज्ञा स्त्री० [हिं० काना + अनु० 'फुस फुस'] । वह बात जो कान के पास जाकर धीरे से कही जाय । चुपके चुपके की बातचीत ।

क्रि०प्र०— करना ।—होना ।

कानाबाती—संज्ञा पुं० हिं० [कान + बात] १. चुपके चुपके कान मे बात कहना । कानाफूसी ।

क्रि०प्र०—करना ।—होना ।

२ बच्चों को हँसाने का एक ढंग, जिसमें उनके कान में 'कानाबाती कानाबाती कू' कहकर 'कू' शब्द पर जोर देते हैं। जिसपर बच्चा हँस पड़ता है ।

कानवेज— संज्ञा पुं० [अं० कैनवस] गवरून या सीकिया की तरह का एक कपड़ा ।

कानि—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लोकलज्जा । मर्यादा का ध्यान । उ०—(क) तेरे सुभाव सुशील अलो कुलनारिन को कुलकानि सिखाई ।—मतिराम (शब्द०) । (ख) मैं मरजीवा समुँद का पैठा सप्त पताल । लाज कानि कुल मेटिकै गहि लै निकला लाल ।—कबीर (शब्द०) । २ लिहाज । दबाव । संकोच । उ०—(क) खौरि पनच भृकुटी धनुष, सुरकि भाल भरि तानि । —बिहारी (शब्द०)। (ख) अब काहू की कानि न करिहौं। आज प्राण कपटी के हरिहौं ।—लल्लू (शब्द०) ।

कानिद—संज्ञा पुं० [देश०]बाँस की कमची जिससे खराद पर चढ़ाते समय हीरे पन्ने आदि रत्नों को दबाते हैं ।

कानिष्ठिक[१]- संज्ञा पुं० [सं०] सबसे छोटी उँगली । छिगुनी [को०]।

कानिष्ठिक[२]—वि० उम्र में सबसे छोटा [को०] ।

कानी[१]—वि० स्त्री०[हिं० काना] एक आँखवाली । जिस (स्त्री) की एक आँख फूट गई हो ।

यौ०—कानी कौड़ी = फूटी कौड़ी । छेदवाली कौड़ी । झंझी कौड़ी ।

मुहा०—कानी कौड़ी न होना = बिलकुल निर्धन या फटेहाल होना ।

कानी[२]— वि० स्त्री० [सं० कनीनी] सबसे छोटी उँगली । जैसे,—कानी उँगली ।

यौ०—कानी उँगली = सबसे छोटी उँगली । छिगुनी ।

कानीन[१]—वि० [सं०] क्वारी कन्या से उत्पन्न । कन्याजात ।

कानीन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी कन्या को कुमारी अवस्था में पैदा हुआ हो ।

विशेष—ऐसा पुत्र उस पुरुष का कानीन पुत्र कहलाता है, जिसको वह कन्या ब्याही जाय । व्यास और कर्ण ऐसे ही पुत्र थे ।

कानीहाउस—संज्ञा पुं० [अं० काइन या कैनिन + हाउस] वह स्थान जहाँ इधर उधर घूमनेवाले चौपाए पकड़कर बंद कर दिए जाते हैं । काँजी हाउस ।

कानीहौद—संज्ञा पुं० [हिं० कानिहाउस] दे० 'कानीहाउस'।

कानूँगोय(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कानून + फ़ा० गो]दे० 'कानूनगो'। उ०—कानूँगोय लोभ के खोटे छल बल पाहीं झूठे । —चरण० बानी, भा० २, पृ० १२८ ।

कानून—संज्ञा पुं० [अ० कानून] [वि० कानूनी] १. राज्य में शांति रखने का नियम । राजनियम । आईन । विधि ।

यौ०—कानूनदाँ ।—कानूनगो ।

मुहा०—कानून छाँटना = कानूनी बहस करना । कुतर्क करना । हुज्जत करना ।

२. एक रूमी बाजा जो पटरियों पर तार लगाकर बनाया जाता है

कानूनगो—संज्ञा पुं० [अ० कानून + फ़ा० गो] माल का एक कर्मचारी जो पटवारियों के उन कागजों की जाँच करता है जिनमें खेतों और उनके लगान आदि का हिसाब किताब रहता है ।

विशेष—कानूनगो दो प्रकार के होते हैं, गिरदावर और रजिस्ट्रार। गिरदावर कानूनगो का काम है घूमघूमकर पटवारियों के कागजों की जाँच करना, और रजिस्ट्रार कानूनगो के दफ्तर में पटवारियों के एक साल से अधिक पुराने कागज दाखिल होते और रखे जाते हैं ।

कानूगो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कानूनगोय] दे० 'कानूनगो'। उ०—राजरूप कानूगो लारां । रसमयी मिलिया राजा रा ।—रा०रू०, पृ० ३२५ ।

कानूनदाँ—संज्ञा पुं० [अ० कानून + फ़ा० दाँ] १. कानून जाननेवाला । विधिज्ञ । २. कानून छाँटनेवाला । हुज्जत करनेवाला । कुतर्की ।

कानूनन्—क्रि० वि०[अ० कानूनन्] कानून की रू से । कानून के अनुसार । जैसे,—कानूनन् तुम्हारा उस मकान पर कोई हक नहीं है।

कानूनिया—वि० [अ० कानून + हिं० इया (प्रत्य०)] १.कानून जाननेवाला । २. तकरार करनेवाला । हुज्जती ।

कानूनी—वि० [अ० कानून + हिं० ई (प्रत्य०)] १ जो कानून जाने । २. कानून संबंधी । अदालती । ३. जो कानून के मुताबिक हो । नियमानुकूल । ४. तकरार करनेवाला । हुज्जती तकरार ।

जाना। (किसी का किसी के) **कान लगना** = चुपके चुपके बात कहना। गुप्त रीति से मंत्रणा देना। जैसे—जब से बुरे लोग कान लगने लगे, तभी से उनकी यह दशा हुई है। उ०—आजहि कालि सुनी हम तो, वह कूबरिया अब कान लगी है। —नट०, पृ० ४१। **कान लगाना** = ध्यान देना। **कान न हिलाना** = विना विरोध किए कोई बात मान लेना। चूँ न करना। दम न मारना। **कान होना** = चेत होना। खबर होना। ख्याल होना। जैसे,—जबतक उन्होंने हानि न उठाई तबतक उन्हें कान न हुए। **कानाफूँसी करना** = (१) चुपके चुपके कान मे बात कहना। **कानाबाती करना** = चुपके चुपके कान मे बात कहना। (२) बच्चों को हँसाने का एक ढग, जिसमें बच्चे के कान में 'कानाबाती कानाबाती कू' कहकर 'कू' शब्द को अधिक जोर से कहते हैं जिससे बच्चा हँस देता है। **कानो पर हाथ धरना या रखना** = (१) बिलकुल इन्कार करना। किसी बात से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। किसी बात से अपना लगाव अस्वीकार करना। जैसे,—उनसे इस विषय मे कई बार पूछा गया, पर वे कानो पर हाथ रखते हैं। (२) किसी बात के करने से एकबारगी इन्कार करना। जैसे,—हमने उनसे कई बार ऐसा करने को कहा, पर वे कानो पर हाथ रखते हैं। **कानो मे उंगली देना** = किसी बात से विरक्त या उदासीन होकर उसकी चर्चा बचाना। किसी बात को न सुनने का प्रयत्न करना। उ०—कुल कानि जो अपनी राखी चहो दै रहौ अँगुरी दोउ कानन मे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३९७। **कानों मे ठेंठियाँ पड़ी होना** = कान बद होना। न सुनना। उ०—लाडो, ए लाडो, वी मुँह से जरी आवाज दो। सुनती हो और बोलती नहीं। जैसे, कानों में ठेंठियाँ पडी हैं।—सैर०, पृ० ३१। **कानों सुनना न आँखों देखना** = पूर्णत अज्ञात। जिसके विषय मे लेशमात्र जानकारी न हो। उ०—कानो सुनी न आँखों देखी।—कबीर सा०, पृ० ५४५। **कानोंकान खबर न होना** = जरा भी खबर न होना। कुछ भी सुनने में न आना। जैसे,—देखो, इस काम को ऐसे ढग से करना कि किसी को कानोकान खबर न होने पावे। उ०—मजूरो को कानोकान खबर न थी।—गोदान, पृ० २७४।

विशेष—जब 'कान' शब्द से यौगिक शब्द बनाए जाते हैं, तब इसका रूप 'कन' हो जाता है। जैसे,—कनखचूरा, कनखोदनी, कनछेदन, कनमैलिया, कनसलाई।

२ सुनने की शक्ति। श्रवणशक्ति। ३ लकडी का वह टुकडा जो हल के अगले भाग मे बाँध दिया जाता है और जिससे जोती हुई कूँड कुछ अधिक चौडी होती है।

विशेष—गेहूँ या चना बोते समय यह टुकडा बाँधा जाता है। इसे कना भी कहते हैं।

४ सोने का एक गहना जो कान मे पहना जाता है। ५ चारपाई का टेढापन। कनेव। ६ किसी वस्तु का ऐसा निकला हुआ कोना जो भद्दा जान पडे। ७ तराजू का पसगा। ८ तोप या बदूक का वह स्थान जहाँ रजक रखी जाती है और बत्ती दी जाती है। पियाली। रजकदानी। उ०—जोगी एक मढ़ी मे सोवैं। दारू पियैं मस्त नहिं होवैं। जबैं बालका कान मे लागैं। जोगी छोड मढ़ी को भागैं।—(पहेली)।

कान[2]- सज्ञा स्त्री० [हि० कानि] १ लोकलज्जा। २ मर्यादा। इज्जत। दे० 'कानि'। उ०—भीख के दिन दूने दान, कमल जल कुल की कान के।—बेला, पृ० १८।

कान[3]—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण] नाव की पतवार जिसका आकार प्राय कान सा होता है। उ०—कान समुद धँसि लीन्हेंसि भा पाछे सब कोइ।—जायसी (शब्द०)।

कान[4](पु)—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह (पु)कान्ह] कान्ह। कृष्ण। उ०—तुम कहा करो कान, काम तें अटकि रहे, तुमको न दोष सो तो आपनोई भाग है।—मति० ग्र०, पृ० २८०।

कान[5]—सज्ञा स्त्री० [फा० तुलनीय सं० खनि] खान। खनि।

कानक[1]—वि० [सं०] कनक सबधी। सोने का। सोने से सबधित (को०)।

कानक[2]—सज्ञा पुं० जमालगोटा।

कानकी—सज्ञा पुं० [देश०] कोकण देश का एक बडा पेड।

विशेष—इसकी लकडी मकानो में लगती है। इसके बीजो से एक प्रकार का पीला तेल निकाला जाता है जो दवा तथा जलाने के काम में आता है। इसके फल जायफल के समान होते हैं।

कानकुब्ज(पु)- सज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज] दे० 'कान्यकुब्ज'।

कानडा—वि० [सं० काण] १. एक आँख का काना। २ साव समुदर के खेल का वह घर जो चम्मो रानी के बाद आता है।

कानन—सज्ञा पुं० [सं०] १ जगल। वन। २. घर। ३ वाटिका। बाग (को०)। ४ ब्रह्मा का मुख (को०)।

यौ०—**काननाग्नि** = दावानल। जगली आग जो डालो आदि की रगड से लग जाती है। **काननौका** = (१)जगलवासी। (२) बदर।

काननारि- सज्ञा पुं० [सं०] शमी वृक्ष (को०)।

कानफरेंस—सज्ञा स्त्री० [अं० कानफ्रेंस] १ सभा। समिति। २. जन-समूह जो किसी बडी आवश्यक बात के निश्चय के लिये एकत्र हो।

कानवेंट—सज्ञा पुं० [अं०] १ ईसाई सन्यासियो का सघ। २ ईसाइयों का मठ या धर्मशाला। ३ ईसाइयो अथवा पादरियो द्वारा सचालित शिक्षासस्था। ४ ईसाइयो द्वारा सचालित ऐसी बाल पाठशाला जहाँ अग्रेजी भाषा पढ़ने बोलने आदि पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है।

कानस्टेबिल—सज्ञा पुं० [अं० कान्स्टेब्ल] पुलिस का सिपाही।

काना[1]—वि० [सं० काण] [स्त्री० कानी] जिसकी एक आँख फूट गई हो। जिसे एक आँख न हो। एकाक्ष। एक आँख का। उ०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।—मानस, २।१४।

मुहा—**काने का आगे पडना या काने का मिलना** = किसी के रास्ते मे काने आदमी का दिख जाना या दिखाई पडना।

विशेष—यह अपशकुन माना जाता है।

काने को काना कहना = बुरे को बुरा कहना। उ०—बात सच है, जल मरेगा वह मगर, लोग काना को अगर काना कहे।—चोखे०, पृ० २७।

काना[2]—वि० [सं० कर्णक] (फल आदि) जिनका कुछ भाग कीडो ने खा लिया हो। कन्ना। जैसे,—काना भटा।

हर तरह की बात को मान लेनेवाला। झूठी या निराधार बात को मान लेनेवाला। उ०—जो करे डाह दे विपत हम पर। पत उतारें न कान के पतले।—चुभते०, पृ० १०। कान की ठेंठी या मैल निकलवाना = (१) कान साफ कराना। (२) सुनने के योग्य होना। सुनने में समर्थ होना। (अपने) कान खड़े करना = (१) (आप) चौकन्ना होना। सचेत होना। जैसे,—बहुत कुछ खो चुके, अब तो कान खड़े करो। (दूसरे के) कान खड़े करना = सचेत करना। होशियार कर देना। चेताना। सजग कर देना। भूल बता देना। कान गरम करना या कर देना = कान उमेठना। कान झन्नाना = अधिक शब्द सुनने से कान का सुन्न हो जाना। जैसे,—इस झाँझ की आवाज से तो कान झन्ना गए। कान पूँछ दबाकर चला जाना = चुपचाप चला जाना। बिना चीं चपड़ किए खिसक जाना। बिना विरोध किए टल जाना। कान छेदना = बाली पहनने के लिये कान की लौ में छेद करना। (यह बच्चों का एक संस्कार है।) कान दबाना = विरोध न करना। दबना। सहमना। जैसे,—उनसे लोग कान दबाते हैं। उ०—दो चार आदमियों ने मकानों और छतों से ढेले फेंके मगर यह कान दबाए चले ही गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८६। (किसी बात पर) कान देना = ध्यान देना। ध्यान से सुनना। जैसे,—हम ऐसी बातों पर कान नहीं देते। उ०—कहा दीजिए कान प्रान प्यारी की बातन। कहा लीजिए स्वाद अधर के अमृत अघात न।—ब्रज० ग्र०, पृ० ५९५। (किसी बात पर) कान धरना = ध्यान से सुनना। (किसी बात से) कान धरना = (किसी बात को) फिर न करने की प्रतिज्ञा करना। बाज आना। कान धरना = दे० 'कान उमेठना'। कान न दिया जाना = कर्कश या करुण स्वर सुनने की क्षमता न रहना। न सुना जाना। सुनने में कष्ट होना। जैसे,—(क) ठठेरों के बाजार में कान नहीं दिया जाता। (ख) अपनी माता के लिये बच्चा ऐसा रोता है कि कान नहीं दिया जाता। कान पक जाना = ऊब जाना। अनिच्छा होना। उ०—सुनते सुनते मेरा कान पक गया।—किन्नर०, पृ० ७६। कान पकड़ना = (१) कान मलकर दंड देना। कान उमेठना। (२) अपनी भूल या छोटाई स्वीकार करना। किसी को अपना गुरु मान लेना। (३) किसी बात को न करने की प्रतिज्ञा करना। तोबा करना। जैसे,—आज से कान पकड़ते हैं, ऐसा काम कभी न करेंगे। (किसी बात से) कान पकड़ना = पछतावे के साथ किसी बात के फिर न करने की प्रतिज्ञा करना। जैसे,—अब हम किसी की जमानत करने से कान पकड़ते हैं। कान पकड़ी लौंडी = अत्यंत आज्ञाकारिणी दासी। कान पकड़कर उठना बैठना = एक प्रकार का दंड जो प्रायः लड़कों को दिया जाता है। कान पकड़कर निकाल देना = अनादर के साथ किसी स्थान से बाहर कर देना। बेइज्जती से हटा देना। कान पड़ना, कान में पड़ना = सुनने में आना। सुनाई पड़ना। कान पर जूँ न रेंगना = कुछ भी परवा न होना। कुछ भी ध्यान न होना। कुछ भी चेत न होना। बेखबर रहना। जैसे,—इतना सब हो गया पर तुम्हारे कान पर जूँ न रेंगी। कान पर हाथ धरकर सुनना = ध्यान से सुनना। उ०—अगर इजाजत हो तो अर्ज हाल करूँ मगर कान पर हाथ धरकर सुनिए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२१। कान पार कर सुनना = ध्यान से या एकाग्र होकर सुनना। उ०—और तू कहीं न मानी बात। 'कानन पारि न सुनत याहि ते नेको बैन हमारो।—ठेठ०, पृ० १५। कान पूँछ फटकारना = सजग होना। सावधान होना। चैतन्य होना। तुरंत के आघात से स्वयं या तंद्रा से चैतन्य होना। जैसे—इतना सुनते ही वे कान पूँछ फटकार कर खड़े हुए। कान फटफटाना = कुत्तों का कान हिलाना जिससे फट फट का शब्द होता है। (यात्रा आदि में यह अशुभ समझा जाता है।) कान फुँकवाना = गुरुमंत्र लेना। दीक्षा लेना। कान फुकाना = दे० 'कान फुकवाना'। उ०—जिव एक नगर में आया, तासो राजा कान फुकाया।—कबीर सा०, पृ० ५२६। कान फूँकना = (१) दीक्षा देना। चेला बनाना। गुरुमंत्र देना। (२) दे० 'कान भरना'। कान फटना या कान का परदा फटना = कड़े शब्द सुनते सुनते कान में पीड़ा होना या जी ऊबना। जैसे,—ताशों की आवाज से तो कान फट गए हैं। कान फूटना = दे० 'कान फटना या कान का परदा फटना'। उ०—गरजनि तरजनि अनु अनु भाँती। फूटे कान अरु फाटे छाती।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१। कान फोड़ना = शोर गुल करके कानों को कष्ट पहुँचाना। कान बजना = कान में वायु के कारण साँय साँय शब्द होना। कान बहना = कान से पीब निकलना। कान बींधना = कान छेदना। कान चपड़ियाना या बुचियाना = कानों को पीछे की ओर दबाकर काटने या चोट करने की तैयारी करना। (यह मुद्रा बंदरों और घोड़ों में बहुधा देखने में आती है।) कान भर जाना = सुनते सुनते जी ऊब जाना। जैसे,—उसकी तारीफ सुनते सुनते तो कान भर गए। कान भरना = किसी के विरुद्ध किसी के मन में कोई बात बठा देना। पहले से किसी के विषय में किसी का खयाल खराब करना। जैसे,—लोगों ने पहले ही से उनके कान भर दिए थे, इसलिये हमारा सब कहना सुनना व्यर्थ हुआ। उ०—क्यों भला आप भर गए साहब, कान ही तो भरे किसी ने थे।—चोखे०, पृ० ५३। कान मलना = दे० 'कान उमेठना'। कान में कौड़ी डालना = दास या गुलाम बनाना। कान में तेल डालना = बहरा बन जाना। बेखबर हो जाना। ध्यान न देना। उ०—कान में तेल डाल लेने से, कान का खोल डालना अच्छा।—चोखे०, पृ० २८। कान में तेल डाल बैठना = बहरा बन जाना। बात सुनकर भी उस ओर कुछ ध्यान न देना। बेखबर रहना। जैसे,—लोग चारों ओर रुपया माँग रहे हैं और वह कान में तेल डाले बैठा है। (कोई बात) कान में डाल देना = सुना देना। कान में पारा भरना = कान में पारा भरने का दंड देना। (प्राचीन काल में अपराधियों के कान में सीसा या पारा भरा जाता था। (किसी का) कान लगना = कान के पीछे घाव हो

कादवरी—सज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बरी] १ कोकिल । कोयल । २ सरस्वती । वाणी ३. मदिरा । शराब । उ०—मधुर केलि कादवरी छके सॉवरे छैल ।—घनानद, पृ० २७३ । ४ मैना । ५ वाणभट्ट की लिखी एक आख्यायिका जिसकी नायिका का यही नाम है । ६ गड्ढो मे एकत्र बरसात का पानी (को०) ।

कादविनि—सज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बिनी] दे० 'कादविनी' । उ०—निरवधि रस की रासि रसीली । हित कादविनि नित वरसीली ।—घनानंद, पृ० १८५ ।

कादविनी—सज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बिनी] १. मेघमाला । घटा । २ मेघ राग की एक रागिनी ।

कादम(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कदम, प्रा० कद्दम] दे० 'कर्दम¹' । उ०—वसु मास कादम मचो प्रसत परवत वर्ण, रुधिर मिल सरतपत हुम्रो रातो ।—रघु० रू०, पृ० २० ।

कादर—वि० [सं० कातर] १ डरपोक । भीरु । बुजदिल । २ व्याकुल । अधीर । उ०—(क) लाल विनु कैसे लाज चादर रहैगी आज कादर करत मोहिं वादर नए नए ।—श्रीपति (शब्द०) । (ख) क्षण इक मन मे शूरि कहोई । क्षण इक मे कादर हो सोई ।—अनुराग, पृ० ४१ ।

कादरियत(पु)—सज्ञा पुं० [अ० कद्रत] कुदरत करनेवाला । उ०—कादरियत के आलम मे किये च कुदरत नई, जो खुदा कहवाय ।—दक्खिनी०, पृ० ४११ ।

कादवा—सज्ञा पुं० [स० कर्दम, प्रा० कद्दम, (पु) कॉदो] दे० 'कॉदो' । उ०—मानि कादव लपटाय रे, ले कि तनिक गुन जाए रे ।—विद्यापति, पृ० ४६५ ।

कादा—सज्ञा पुं० [सं० क = जल + आर्द्रा = भीगी हुई] लकड़ी की पटरी जो जहाज की शहतीरो और कड़ियो के नीचे उन्हें जकड़े रहने के लिए जड़ी रहती है ।

कादिम(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कादम] दे० 'कर्दम' । उ०—नदियाँ नाला नीझरण, पावस चढ़िया पूर । करहउ कादिम तिलकस्यई पथी पूगल दूर ।—ढोला०, दू० २५६ ।

कादिर—वि० [अ० कादिर] १ ताकतवर । शक्तिशाली । २ सामर्थ्यवान । काबूदार । उ०-वीर रघुवीर पैगंवर खोदा मेरे, कादिर करीम काजी माया मत खोई है ।—मलूक०, पृ० २८ ।

कादिरकार—वि० [अ० कादिर + फा० कार(प्रत्य०)] शक्तिशाली बनानेवाला । सामर्थ्य प्रदान करनेवाला । उ०—जिंदगानी मुरद बाशद, कुजे कादिरकार ।—दादू०, पृ० ५०७ ।

कादिरी—सज्ञा स्त्री० [अ० कादिरी] एक प्रकार की चोली जिसे वेगमे पहनती हैं । सीनाबद । उ०—नीमा जामा तिलक लबादा कुस्ती दगला दुनही, नीमस्तीन कादिरी चोला झगला ।—सूदन (शब्द०) ।

कादी(पु)—सज्ञा पुं० [अ० काजी] दे० 'काजी' । उ०—सुरतान के फरमाने सगो राह सम सम खेल पलु, कादी पोजा मपदूम लरु ।—कीर्ति०, पृ० ८० ।

कादो(पु)—सज्ञा पुं० [हिं कादम, कादव] दे० 'कॉदो' । उ०—परवत बूडे भूमि नहिं भीजे कादो वकुलहिं खाई ।—म० दरिया, पृ० ११२ ।

काद्रव—वि० [स०] गहरे पीले रग का (को०) ।

काद्रवेय—सज्ञा पुं० [स०] शेष, अनत, वासुकी, तक्षक आदि सर्प जो कद्रु से उत्पन्न माने जाते हैं ।

कान¹—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] वह इंद्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है । सुनने की इंद्रिय । श्रवण । श्रुति । श्रोत्र ।

विशेष—मनुष्य तथा और दूसरे माता का दूध पीनेवाले जीवो के कान के तीन विभाग होते हैं ।(क) वाहरी, अर्थात् सूप की तरह निकला हुआ भाग और वाहरी छेद । (ख) बीच का भाग जो वाहरी छेद के आगे पड़नेवाली झिल्ली या परदे के भीतर होता है और जिसमे छोटी छोटी बहुत सी हड्डियाँ फैली होती हैं और जिसमे एक नली नाक के छेदो या तालू के ऊपरवाली थैली तक गई होती है । (ग) भीतरी या भूलभुलैया जो श्रवण शक्ति का प्रधान साधक है और जिसमे शब्दवाहक ततुओं के छोर रहते हैं । इनमे एक थैली होती है जो चक्करदार हड्डियो के बीच मे जमी रहती है । इन चक्करदार थैलियो के भीतर तथा बाहर एक प्रकार का चेप या रस रहता है । शब्दो की जो लहरें मध्यम भाग के परदे की झिल्ली से टकराती हैं, वे अस्थिततुओं द्वारा भूलभुलैया में पहुँचती हैं । दूध पीनेवालो से निम्न श्रेणी के रीढवाले जीवों में कान की बनावट कुछ सादी हो जाती है, उसके ऊपर का निकला हुआ भाग नही रहता, अस्थितनु भी कम रहते हैं । बिना रीढवाले कीटो को भी एक प्रकार का कान होना है ।

मुहा०—कान उठाना = (१) सुनने के लिये तैयार होना । आहट लेना । अकनना । (२) चौकन्ना होना । सचेत या सजग होना । होशियार होना । कान उड जाना = (१) लगातार देर तक गभीर या कड़ा शब्द सुनते सुनते कान मे पीड़ा और चित्त मे घबराहट होना । (२) कान का कट जाना । कान उड़ा देना = (१) हल्ला गुल्ला करके कान को पीड़ा पहुँचाना और व्याकुल करना । (२) कान काट लेना । कान उड़ाना = ध्यान न देना । इस कान से सुनना उस कान से उड़ा देना । उ०—अर्थं सुनी सब कान उडाई ।—कबीर सा०, पृ० ५८२ । कान उमेठना = (१) दंड देने के हेतु किसी का कान मरोड देना । जैसे,—इस लडके का कान तो उमेठो । (२) दड आदि द्वारा गहरी चेतावनी देना । (३) कोई काम न करने की कड़ी प्रतिज्ञा करना । जैसे,—लो भाई, कान उमेठता हूँ, अब ऐसा कभी न करूँगा । कान ऊँचे करना = दे०'कान उठाना' । कान ऐंठना = दे० कान उमेठना' । कान कतरना = दे० 'कान काटना' । कान करना = सुनना । ध्यान देना । उ०—बालक वचन करिय नहिं काना ।—तुलसी (शब्द०) । कान काटना = मात करना । बढ़कर होना । उ०—बादशाह अकबर उस वक्त कुल तेरह बरस चार महीने का लडका था, लेकिन होशियारी और जवाँमर्दी मे बडे बडे जवानों के कान काटता था । -शिवप्रसाद (शब्द०) । कान का कच्चा = शीघ्रविश्वासी । जो किसी के कहे पर बिना सोचे समझे विश्वास कर ले । जो दूसरो के बहकाने मे आ जाय । उ०—क्यो भला हम बात कच्ची सुनें । हैं न बच्चे न कान के कच्चे ।—चुभते०, पृ० १७ । कान का पतला =

कातरि(ु)† — संज्ञा स्त्री० [हिं० कातर] दे० 'कतरी'। उ०—कातरि केतर गिरत बैल चौंकत उछरत दोउ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४४।

कातरोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःख या संकट में कही जानेवाली दीनता भरी बातें।

कातर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कातरता।

कातल—संज्ञा पुं० [सं०] एक बड़ी मछली (को०)।

काता¹—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] काता हुआ सूत। तागा। डोरा।

यौ०—बुढ़िया का काता = एक प्रकार की मिठाई जो बहुत महीन सूत की तरह होती है।

काता²—संज्ञा पुं० [सं० कर्तृ, कर्त्ता, प्रा० कत्ता] बाँस काटने या छीलने की छुरी।

कातावारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त (काटना, बीच से दो भागों में बाँटना) + हिं० वारी (वाली)] वह पतली काँडी जो जहाज पर बेंड़ी धरनों के बीच लगी रहती है और जिसके ऊपर तख्ता जड़ा जाता है।

काति—वि० [सं०] इच्छुक (को०)।

कातिक¹—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] वह महीना जो शरद ऋतु में क्वार के बाद पड़ता है। कार्तिक।

कातिक²—संज्ञा पुं० [हिं०] हरे रंग का एक प्रकार का बहुत बड़ा तोता।

कातिग†—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] दे० 'कातिक'। उ०—संवत अठारह इक्यावन बरख मास, कातिग उँज्यारी तिथि पंचमी सुहाई है।—ब्रज ग्र०, पृ० १३७।

कातिकी¹—वि० [पुं० कार्तिकी] दे० 'कार्तिकी'

कातिकी(ु)²—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] दे० 'कातिक'। उ०—मैं कातिकी सरद ससि उवा। बहुरि गँगन रवि चाहै छुवा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४६।

कातिक्क(ु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] दे० 'कातिक'। उ०—कातिक्क माह जसो न्हाउ। तजि अन्न फल भख पाउ।—पृ० रा०, पृ० ११।

कातिब—संज्ञा पुं० [अ०] लिखनेवाला। लेखक।

कातिल¹—वि० अ० [कातिल] १ प्राण लेनेवाला। घातक।

कातिल²—संज्ञा पुं० कत्ल या वध करनेवाला मनुष्य। हत्यारा।

काती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री प्रा० कत्ती] १ कैंची। २ सुनारों की कतरनी। ३ चाकू। छुरी। ४ छोटी तलवार। कत्ती। उ०—यह पाती न छाती पै काती धरी, हमारी मुनि बुद्धि गरी सो गरी।—नट०, पृ० २६।

कातीय¹—वि [सं०] कत ऋषि संबंधी। कात्यायन संबंधी।

कातीय²—संज्ञा पुं० कात्यायन का छात्र।

कातु—संज्ञा पुं० [सं०] कुँआ (को०)।

कात्य¹—वि० [सं०] कत ऋषि संबंधी।

कात्य²—संज्ञा पुं० १ कत ऋषि के गोत्रज ऋषि २. कात्यायन।

कात्याइनी(ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० 'कात्यायनी] दे० कात्यायनी⁴। उ०—भवा भवानी, मृडा, मृडानी। काली कात्याइनी, हिमानी।—नंद० ग्र०, पृ० २२४।

कात्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कात्यायनी] १ कत ऋषि के गोत्र में उत्पन्न ऋषि जिसमें तीन प्रसिद्ध हैं—एक विश्वामित्र के वंशज, दूसरे गोभिल के पुत्र और तीसरे सोमदत्त के पुत्र वररुचि कात्यायन।

विशेष—विश्वामित्र वंशीय प्राचीन कात्यायन के बनाए हुए 'श्रौतसूत्र' और 'प्रतिहारसूत्र' हैं। दूसरे गोभिलपुत्र कात्यायन हैं जिनके बनाए 'गृह्यसंग्रह' और 'छंदोपरिशिष्ट' या 'कर्मप्रदीप' हैं। तीसरे वररुचि कात्यायन हैं जो पाणिनि सूत्रों के वार्तिककार प्रसिद्ध हैं।

२ एक बौद्ध आचार्य।

विशेष—इन्होंने 'अभिधर्म-ज्ञान-प्रस्थान' नामक ग्रंथ की रचना की है। नेपाली बौद्ध ग्रंथों से पता लगता है कि ये बुद्ध से ४५ वर्ष पीछे उत्पन्न हुए थे।

३ पाली व्याकरण के कर्ता एक बौद्ध आचार्य जिन्हें पाली ग्रंथों में 'कच्चायन' कहते हैं।

कात्यायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कत गोत्र में उत्पन्न स्त्री। २. कात्यायन ऋषि की पत्नी। ३. कषाय वस्त्र धारण करनेवाली अधेड़ विधवा स्त्री। ४. कतप्रभेद से कत गोत्र में उत्पन्न एक दुर्गा। ५ याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी। ६ पार्वती (को०)।

यौ०—कात्यायनीपुत्र कात्यायनीसुत = कार्तिकेय।

कात्यायनीय—वि० [सं०] कात्यायन ऋषि द्वारा रचित ग्रंथ।

काथ†¹—संज्ञा पुं० [हिं० कत्था (सं० क्वथित)] दे० 'कत्था'। उ०—जहँ बीरा तहँ चून है, पान सुपारी काथ।—जायसी(शब्द०)।

काथ(ु)²—संज्ञा पुं० [हिं० कत्था] एक प्रकार का खैरा रंग। उ०—केचित रँगहि काथ महि कपरा। करि प्रपंच बैठहि अति लपरा।—सुंदर ग्र०, भा० १ पृ० ६२।

काथ(ु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्था] दे० 'कथा'। उ०—रक्त पीत स्वेतावरी काथ राखै पुनि जैन।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७३५

काथरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कथरी] दे० 'कथरी'।

काथा(ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्था, हिं० काथ] दे० 'कथा'। उ०—माला पहिरै तिलक बनावै काथा सुंदर नावै।—गुलाल०, पृ० २२।

काथिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कहानियाँ कहनेवाला। २ कहानियाँ लिखनेवाला (को०)।

कादंब¹—वि० [सं० कादम्ब] १ कदंब संबंधी। २ समूह संबंधी।

कादंब²—संज्ञा पुं० १. कदंब का पेड़ या फल फूल। २ एक प्रकार का हंस। कलहंस। ३ ईख। ४ बाण। ५ दक्षिण का एक प्राचीन राजवंश। ६. शराब। मदिरा। कदंब की बनी शराब।

कादंबक—संज्ञा पुं० [सं० कादम्बक] बाण (को०)।

कादंबर—संज्ञा पुं० [सं० कादम्बर] १ दही की मलाई। २ ईख का गुड़। ३ कदंब के फूलों की शराब। ४ मदिरा। शराब। ५ हाथी का मद।

कादंबरि(ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बरी] सं० कादंबरी'। उ०—कांच मास कबहु कर भोजण, कादंबरि से लोहित लोअन।—कीर्ति०, पृ० ६०।

काठी⁴(पु)—वि० [सं० कष्ट, कृष्ट, प्रा कट्ठ] (राज०) काठी । खूब मजबूती से । उ०-सीगण काइ न सिर जियाँ, प्रातम हाय करत। काठी साहँत मूठि माँ, काडी कासी सत ।—ढोल०, दू० ४१६ ।

काठू—संज्ञा पुं० [हिं० काठ] कूटू की तरह का एक पौधा जिसकी खेती हिमालय के कम ठढे स्थानो मे होती है ।

विशेप—इसका पेड कूटू से कुछ बड़ा होता है। और दाने कूटू ही की तरह पहलदार होते हैं, पर कोने नुकीले नही होते । इसकी तरकारी भी लोग खाते हैं ।

काठो—संज्ञा पुं० [हिं० काठ] एक प्रकार का मोटा धान जो पजाब मे होता है।

काड—संज्ञा स्त्री० [अं० कॉड] एक प्रकार की मछली जो उत्तर की ओर ठढे समुद्रो मे पाई जाती है।

विशेप—यह तीन वर्ष मे पूरी बाढ़ को पहुँचती है । उस समय यह तीन फुट लबी और तौल मे १२ पाउ ड से २० पाउ ड तक होती है । इसका मास बहुत पुष्टिकर होता है। इसमे एक प्रकार का तेल बनाया जाता है जिसे 'काड लिवर ऑयल' कहते हैं। यह तेल क्षय रोग की अच्छी दवा मानी जाती है। इसमे विटामिन बी पर्याप्त मात्रा मे होता है ।

यौ०—काड लिवर आयल=काड नाम की मछली के कलेजे से निकाला हुआ तेल ।

काडो—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] अरहर का सूखा और कटा पेड़। कडिवा । रहट ।

काढना—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण] १. किसी वस्तु के भीतर से कोई वस्तु बाहर करना । निकालना । उ०—(क) खनि पताल पानी तहँ काढ़ा । छीर समुद निकसा हुत बाढ़ा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मीन दीन जनु जल ते काढ़े ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी आवरण को हटाकर कोई वस्तु प्रत्यक्ष करना । खोलकर दिखाना । जैसे,— दाँत काढ़ना । ३ किसी वस्तु को किसी वस्तु से अलग करना । उ०—तब मथि काढ़ि लिए नवनीता ।—तुलसी (शब्द०)। ४ लकडी, पत्थर, कपडे आदि पर बेल बूटे बनाना । उरेहना । चित्रित्र करना । जैसे—बेल बूटा काढ़ना, कसीदा काढ़ना । उ०—(क) पँवरिहि पँवरि सिंह गढ़ि काढ़े । डरपहिं लोग देखि तहँ ठाढ़े ।—जायसी (शब्द०)। (ख) राम वदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र माझि लिखि काढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) । ५ उधार लेना । ऋण लेना । जैसे, उनके पास रुपया तो था नहीं, कहीं से काढ़कर लाए हैं। उ०—(ग) मातहि पितहि उऋण भए नीके। गुरु ऋण रहा सोच बड़ जी के। सो जनु हमरे माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा ।—तुलसी (शब्द०)। ६. कड़ाहे मे से पकाकर निकालना । पकाना । छानना । जैसे,—पूरी काढ़ना, जलेबी काढ़ना । ७ दूध दुहना । जैसे,—गैया का दूध अभी काढ़ा गया है ।

काढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० क्वाथ, प्रा० काढ] ओषधियो को पानी मे उबाल या औटाकर बनाया हुआ शरबत । क्वाथ । जोशांद ।

काण¹—वि० [सं०] १ काना । २ छेद किया हुआ (को०) ।

काण²—संज्ञा पुं० कौआ ।

काण³(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कानि] मर्यादा । लोक लज्जा । उ०—लोपी छ।का नेण नूँ, काका वाली काण ।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ३ ।

काणूक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौआ । २ मुर्गा । ३. एक प्रकार का हस । ४ बया नामक चिडिया (को०) ।

काणेय—संज्ञा पुं० [सं०] कानी स्त्री का लडका (को०) ।

काणेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काणेय' (को०) ।

काणेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ व्यभिचारिणी स्त्री । २ अविवाहित स्त्री (को०) ।

यौ०—काणेलीमाता=(१) अविवाहित स्त्री का पुत्र । (२) वह माता जिसको अविवाहित अवस्था मे सतान हो ।

काण्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कण्व का वशज । २ कण्व का अनुयायी ।

कातत्र—संज्ञा पुं० [सं० कात त्र] कलाप व्याकरण जिसे कुमार या कार्तिकेय की कृपा से सर्ववर्मा ने बनाया था ।

कात—संज्ञा पुं० [सं० कर्तन, प्रा० कत्तन] १ एक प्रकार की कैंची जिससे गडेरिये भेडो के बाल कतरते हैं। २. मुर्गे के पैर का काँटा ।

कातक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कार्तिक' । उ०—कातक करत पहुपर सनान । गोकन्न महातम सुनत कान ।—पृ० रा०, १ । ३८० ।

कातना—क्रि० स०[सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] १ रूई से सूत बनाना । रूई या ऐंठ या बटकर तागा बनाना । उ०—बहू सास को कहि समुझावे तूँ मेरे ढिग बैठी काति ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५४५ । २ ढेरा से सन या मूँज आदि की रस्सी बनाना ।

मुहा०—महीन कातना=बहुत कुशलता से गढ़ गढ़कर बातें करना ।

कातर¹—वि० [सं०] [संज्ञा कातरता] १ अधीर । व्याकुल । चचल । २ डरा हुआ । भयभीत । ३. डरपोक । बुजदिल । उ०—कोउ कातर युद्ध परात सभय (शब्द०) । ४ आर्त । दुखित । उ०—कातर वियोगिन दुखद रन कीभूमि पावस नभ भई । भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ११० ।

यौ०—कातरोक्ति(पु)(१) दुख से भरा वचन । (२) विनती । प्रार्तविनय ।

५ विवश । लाचार (को०) ।

कातर²—संज्ञा पुं० [सं०] १ घडनैल । २. एक प्रकार की मछली ।

कातर³—संज्ञा पुं० [सं० कतरी] जबडा । चौभर ।—(कलदर) ।

कातर⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्तृ = कातनेवाला] कोल्हू मे लकड़ी का वह तख्ता जिसपर हाँकनेवाला बैठता है और जो कोल्हू का कमर से लगा हुआ उसके चारो ओर घूमता है । इसी मे बैल जाते जाते है ।

कातरता—संज्ञा स्त्री० [सं०][वि० कातर] १ अधीरता । चचलता । २ दुख की व्याकुलता । ३ डरपोकपन ।

कातराचार—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे एक प्रकार का हस्तक ।

यौ०—काठ कठगर = निस्सार वस्तु। निस्तत्व पदार्थ। उ०—समय काठ कठगरा तासो काटत लगे न वार।—भीखा श०, पृ० ८८। काठ कबाड़ = लकडी का बना सामान जो टूट फूटकर वेकाम हो गया हो। काठ का उल्लू = जड। वज्र मूर्ख। घोर अज्ञानी। काठ की घोडी = अस्तित्वहीनता का आधार। शून्याधार। उ०—चारगजी चरगजी मँगाया, चढ़ा काठ की घोडी।—कबीर श०, पृ० ६। काठ की हाँडी = धोखे की चीज। ऐसी दिखाऊ वस्तु जिसका धोखा एक वार से अधिक न चल सके। उ०—जैसे,—हाँडी काठ की चढे न दूजी वार। काठ का घोडा = वैसाखी। काठ कटौअल वाँसुरी = आँखमिचौली की तरह का एक खेल जिसमे लडके किसी काठ को छू छूकर आते हैं।

काठ होना = (१) संज्ञाहीन होना। चेतनारहित होना। जडवत् होना। स्तब्ध होना। जैसे—सिपाही को सामने देखते ही वह काठ हो गया। (२) सूखकर कडा हो जाना (वस्तु के लिये)। काठ कोड़ा चलना = (१) काठ मे पैर देने और कोडा मारने का अधिकार होना। दड देने का अधिकार होना।

विशेष—यौगिक शब्द बनाने मे 'काठ' को 'कठ' कर देते है। जैसे—कठफोडवा, कठपुतली, कठघोड़ा, कठकूआ, कठमलिया। ऐसे पेडो के नामो मे भी 'कठ' लगाते हैं जिनके फल नीरस और विना गूदे क होते हैं, जैसे,—कठजामुन, कठगूलर, कठवैर।

२. ईधन। जलाने की लकडी। ३ शहतीर। लक्कड। लकडी का वडा तख्ता। लकड़ी की बनी हुई वेडी। कलदरा। उ०—कोतवाल काठौ करि वाँध्यौ छूटै नही साँझ अरु भोर।—सुदर ग्र, भा० २, पृ० ५५७।

विशेष - यह वेडी वास्तव मे दो वरावर तराशे हुए लक्कडो से वनती है। दोनो के वीच मे छेद होता है। इसी छेद मे अपराधी का पैर डाल देते है और दोनो लक्कडो को पेंच से कस देत है।

मुहा०—काठ पहनाना, काठ मारना = अपराधी को काठ की वेडी पहनाना। काठ मे पाँव देना = (१) अपराधी को काठ की वेडी पहनाना। कलदरे मे पाँव डालना। (२) जान वूझकर स्वय वधन मे पडना। उ०—फूले फूले फिरत है, होत हमारो व्याव। तुलसी गाय वजाय के देत काठ म पाँव।—तुलसी (शब्द०)।

५. अचेत दशा। संज्ञाहीन की स्थिति। ६. कामसवधो के विपय मे वेखवरी'। जैसे—काठ औरत, काठ मर्द।

काठ(पु)[2]—संज्ञा पु० [हिं० काठ की पुतली का संक्षिप्त रूप] दे० 'कठपुतली'। उ०—कतहुँ विरहुँटा पंखा लावा। कतहुँ पखडी काठ नचावा।—जायसी (शब्द०)।

काठक—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद का एक शाखा। उ०—तैत्तिरीय सहिता और काठक संहिता से भी प्रगट होता है कि शूद्रो की गणना भी समाज के अगो मे होती थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८८।

यौ०—काठकगृह्यसूत्र = एक सूत्र ग्रथ का नाम। काठक सहिता = कृष्णयजुर्वेद का एक भाग या शाखा। काठकोपनिपद् = कठोपनिपद्।

काठकबाड़—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + कबाड़ (अनु०)] लकड़ियो आदि के टूटे फूटे और निकम्मे टुकड़े। अगड़ खगड़।

काठडा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० काठड़ी] काठ का बना हुआ बरतन। कठौता।

काठनीम—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + नीम] एक प्रकार का वृक्ष जिसे गधेल भी कहते हैं। वि० 'गधेल'।

काठवेर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + वेर] दे० 'घूँट' (वृक्ष)।

काठवेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + वेल] इद्रायन की तरह की एक वेल जो हिंदुस्तान के खुश्क हिस्सो मे तथा अफगानिस्तान और फारस मे होती है।

विशेप—इसके फल इंद्रायन के फल के समान ही कडुए होते हैं। इनके वीज से तेल निकलता है जो जलाने के काम मे आता है। कोई कोई इसका व्यवहार दवा मे इद्रायन के स्थान पर करते हैं। इसे कारिंत भी कहते हैं।

काठमांडू—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ + मडप, प्रा० मडव] नेपाली की राजधानी।

विशेष—इस नगर मे काठ के मकान अधिक होते हैं, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

काठमारी—वि० [हिं० काठ + मारना] जिसे काठ मार गया हो। अवसन्न। संज्ञाहीन।

काठिन—संज्ञा पुं० [स०] १. कठोरता। कडापन। २ खजूर का फल [को०]।

काठिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ापन। कठोरता। सख्ती।

कठियावाड़—संज्ञा पुं० [हिं० कांठ = समुद्रतट + वाड = द्वार] भारतवर्प का एक प्रात जो अब गुजरात देश का पश्चिम भाग है।

विशेष—यह कच्छ की खाडी और खभात की खाडी के वीच मे है। इस प्रात के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं जिन्हे लोग काठी कहते हैं। यह प्राचीन काल मे सोराष्ट्र मडल के अतर्गत था।

काठियावाडी[1]—वि० [हिं० काठियावाड़] काठियावाड से सवधित। काठियावाड का।

काठियावाडी[2]—संज्ञा पुं० काठियावाड की वोली।

काठी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ] १. घोडो की पीठ पर कसने की जीन जिसमे नीचे काठ लगा रहता है। यह आगे और पीछे की ओर कुछ उठी होती है। उ०—कोड़े पर अच्छी चमडे की काठी लगी हुई थी।— किन्नर, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—कसना।—धरना।

२ ऊँट की पीठ पर रखने की गद्दी जिसके नीचे और ऊपर के उठे हुए भागो मे काठ रहता है। ३ तलवार या कटार का काठ का म्यान जिसपर चमडा या कपडा चढ़ा रहता है।

काठी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कायस्थिति, प्रा० कायट्ठिइ अथवा सं० कायस्थि, प्रा० का आट्ठि] शरीर की गठन। अंगलेट। जैसे,—उसकी काठी वहुत अच्छी है। उ०—तेरी पुजी सेवा ये रे प्रोजी पराई काठी दे रे।—दक्खिनी ०, पृ० ३६।

काठी[3]—वि० [काठियावाड़] काठियावाड़ का (घोड़ा)। उ०—दल सुध दान विंयाह, काठी घाटी कवियणा।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० १५।

मुहा०—काटो तो खून या लहू नहीं = किसी दु:खदायी, भयानक या अपना रहस्य खोलने वाली बात को सुनकर एकबारगी सन्न हो जाना। स्तब्ध हो जाना। जैसे,—ज्यो ही उसने यह बात कही, काटो तो खून नही। उ०—काने को देखते ही दरोगा साहब के हवास पैतरा हुए। काटो तो लहू नही बदन मे। —फिसाना०, भा० ३, पृ० ५४। २ पीसना। महीन चूर जैसे, करना। भाँग काटना। मसाला काटना।

विशेष—इस अर्थ मे 'कर्ता' प्राय वस्तु होती है, व्यक्ति नही। जैसे,—यह बट्टा खूब मसाला काटता है।

३. घाव करना। जख्म करना। जैसे,—जूते का काटना। ४ किसी वस्तु का कोई अश अलग करना। जैसे,—(क) इस वर्ष नदी उधर की बहुत सी जमीन काट ले गई। (ख) उनकी तनख्वाह मे से २५) काट लो। ५ युद्ध मे मारना। वध करना जैसे,—उस लडाई मे सैकडो सिपाही काटे गए। ६ कतरना। ब्योतना। जैसे,—तुमने अभी हमारा कोट नही काटा। ७ छाँटना। नष्ट करना। दूर करना। मिटाना। जैसे,—पाप काटना, रग काटना, मैल काटना, झगडा काटना। ८ समय बिताना। वक्त गुजारना। जैसे,—रात काटना, दिन काटना, महीना काटना, जाड़ा काटना, गरमी काटना, बरसात काटना। ९ रास्ता खतम करना। दूरी तै करना। जैसे,—रेल हफ्तो का रास्ता घटो मे काटती है। १० अनुचित प्राप्ति करना। बुरे ढग से आय करना। जैसे, माल काटना। उ०—उसने उस मामले मे खूब रुपए काटे। ११ कलम की लकीर से लिखावट को रद करना। छेकना। मिटाना। खारिज करना। जैसे,—(क) उसने तुम्हारा लिखा सब काट दिया। (ख) उसका नाम स्कूल से काट दिया गया। १२ ऐसे कामो को तैयार करना जो लकीर के रूप मे कुछ दूर तक चले गए हो। जैसे, सडक काटना, नहर काटना। १३. एक नहर या नाली के पानी का किनारा काटकर दूसरी नहर या नाली मे ले जाना। जैसे,—इस खेत का पानी उसमे काट दो। १४ ऐसे कामो को तैयार करना जिनमे लकीरो द्वारा कई विभाग किए गए हो। जैसे,—खाना काटना, क्यारी काटना। १५ एक सख्या के साथ दूसरी सख्या का ऐसा भाग लगाना कि शेष न बचे। जैसे,—इस सख्या को सात से काटो। १६ बाँटने वाले के हाथ पर रखी हुई ताश की गड्डी मे से कुछ पत्तो को इसलिए उठाना जिसमे हाथ मे आई हुई गड्डी के अतिम पत्ते से बाँट आरंभ हो। १७ ताश की गड्डी का इस प्रकार फेंटना कि उसका पहले से लगा हुआ क्रम न बिगडे।—(जादू)। १८ जेलखाने मे दिन बिताना। कैद भोगना। जैसे,—जेल काटना। १९. किसी विषैले जतु का डक मारना या दाँत धँसाना। डसना। जैसे—साँप ने काटा, भिड ने काटा, कुत्ते ने काटा।

सयो० क्रि०—खाना।

मुहा०—काटने दौड़ना = चिडचिडाना। खीझना। जैसे—उससे रुपया माँगने जाते हैं तो वह काटने दौडता है।

२० किसी तीक्ष्ण वस्तु का शरीर के किसी भाग मे लगकर खुजली लिए हुए जलन और छरछराहट पैदा करना। जैसे—(क) पान मे चूना अधिक था, उसने सारा मुँह काट लिया। (ख) सूरन मे यदि खटाई न दी जाय तो वह गला काटता है। २१ एक रेखा का दूसरी रेखा के ऊपर से चार कोण बनाते हुए निकल जाना। २२ किसी जीव का सामने से निकल जाना। जैसे,—बिल्ली का रास्ता काटना बुरा समझा जाता है। २३ घर्सं से डोरी आदि तोडना। जैसे, पतग काटना। २४ (किसी मत का) खडन करना। अप्रमाणित करना। जैसे,—उसने तुम्हारे सब सिद्धांत काट दिए। २५ चलती गाडी से माल का गायब करना। २६ किसी शृ खला मे से कोई भाग जुदा करना। जैसे,—तीन गाडियाँ इसी स्टेशन पर काट दी जायँगी। २७ शरीर पर कष्ट पहुँचाना। दु:खदायी लगना। बुरा लगना। नागवार मालूम होना। जैसे,—(क) जाडे मे पानी काटता है। (ख) पढ़ने जाना तो इस लडके को काटता है।

मुहा०—काटे खाना या काटने दौडना = (१) बुरा मालूम होना। चित्त को व्यथित करना। (२) जी को उचाट करना। सूना और उजाड लगना। जैसे,—उनके बिना यह मकान काटे खाता है। उ०—बेगम, अब पहले तो हम इस मकान को बदलेंगे, काटे खाता है।—फिसाना० भा० ३, पृ० २३८। काटे का मत्र न होना = बाधा का प्रतिकार न होना। विरोध की सामर्थ्य न होना। उ०—यह बड़े जात शरीफ हैं, उनके काटे का मत्र नही।—फिसाना० भा० ३, पृ०, १३९। २८ पाखाना कमाना। मैला उठाना।—(लश०)।

काटर(पु)—वि० [हिं० कट्टर] दे० 'कट्टर'। उ०—राना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ न असवारू।—जायसी (शब्द०)।

काटल(पु)—वि० [सं० किट्ट, हिं० काट] मोरचावाला। जग लगा। उ०—काटल आवघ मूझ कर मन मदाइण बन्न।—बाँकी० ग्र०, भा० ३ पृ० २८।

काटुक—सज्ञा पुं० [सं०] अम्लता। खटास [को०]।

काटू[1]—सज्ञा पुं० [हिं० काटना + ऊ (प्रत्य०)] १. काटनेवाला। २ कटाऊ। डरावना। भयानक।

काटू[2]—सज्ञा पुं० [अं० कैश्यूनट] एक प्रकार का बडा वृक्ष जो दक्षिण अमेरिका से लाकर भारत के दक्षिणी समुद्रतटो पर रेतीली भूमि मे लगाया गया है। हिजली बदाम।

विशेष—इसके तने पर एक प्रकार का गोद होता है जिससे कीड़े नष्ट होते या भाग जाते हैं। इसकी छाल मे से एक प्रकार का रस निकलता है जिससे कपडो पर निशान लगाया जाता है। इसकी छाल मे से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो मछलियाँ पकडने के जालो पर लगाया जाता है। इसके बीजो से भी तेल निकलता है जो बहुत अशो मे बादाम के समान होते हैं भूनकर खाए जाते हैं और उनका मुरब्बा भी पडता है। इसकी लकडी से सदूक, नावें और कोयला बनाया जाता है।

काठ[1]—सज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ] १ पेड का कोई स्थूल अग (डाल तना आदि) जो आधार से अलग हो गया हो। लकड़ी।

काजर—संज्ञा पुं० [सं० कज्जल [हिं० काजल] दे० 'कजल'

मुहा०—काजर केरी कोठरी = दे० 'काजर की कोठरी'। उ०—काजर केरी कोठरी काजर ही का कोट। वलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट।—कवीर सा० सं०, भा० १ पृ०२२।

काजरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कज्जल हिं० काजरी] काले रंग की गाय। उ०—टेर सुनहिं तव जव होहिं तियरी। दूर गई वे काजरि पियरी। नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

काजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कज्जली] वह गाय जिसकी आँखों किनारे काला घेरा हो। उ०—वाँह उचाइ काजरी धौरी गैयन टेरि बुलावत।— सूर (शब्द०)।

काजरु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काजर] दे० 'काजल'। उ०— कजरारी अँखियान मे भूली काजरू एक।—मति० ग्रं०, पृ० ३३३।

काजल—संज्ञा पुं० [सं० कज्जल] वह कालिख जो दीपक के धुएँ के जमने से किसी ठीकरे आदि पर लग जाती है और आँखों मे लगाई जाती है।

क्रि० प्र०—देना।—पारना।—लगाना।

मुहा०—काजल घुलाना, डालना, देना, सारना = (आँखों मे) काजल लगाना। काजल पारना = दीपक के धुएँ की कालिख को किसी वरतन मे जमाना। काजल की ओवरी या कोठरी = ऐसा स्थान जहाँ जाने से मनुष्य दोष या कलंक से उसी प्रकार नहीं बच सकता जैसे काजल की कोठरी मे जाकर काजल लगने से। दोष या कलंक का स्थान। उ०—(क) यह मथुरा काजल की ओवरी जे आवहिं ते कारे।—सूर (शब्द०)। (ख) काजल की कोठरी में कैसहू सयानो जाय एक लीक काजल की लागै पै लागै री (शब्द०)।

यौ०—काजल का तिल = काजल की छोटी विंदी जो स्त्रियाँ शोभा के लिये गालो पर लगाती हैं।

काजलिया(पु)—वि० [सं० कज्जल, हिं० काजल + इया (प्रत्य०)] दे० 'कजलीवाली'। कजली सी। उ०—जइ तूँ ढोला नावियउ, काजलियारी तीज। चमक मरेसी माखी, दख खिवतां बीज। ढोला०, दू० १५०।

काजली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं कजली] दे० 'कजली—६'। उ०— रमइ सहेली काजली, घरि घरि कामिनी मड़ई छइ खेल।— वी० रासो, पृ० ४८।

काजि(पु)—क्रि० वि० [सं० किम्] क्यो। उ०—कोकिल काजि सतावह कान्ह।—विद्यापति, पृ० ४१५।

काजिब—संज्ञा पुं० [अ० काजिब] झूठ बोलने वाला। झूठा। उ०—झूठ की किश्ती चढे झूठ को काजिब तार।—कबीर म०, पृ० ३७५।

काजी—संज्ञा पुं० [अ० काजी] मुसलमानो के धर्म और रीतिनीति के अनुसार न्याय की व्यवस्था करने वाला। मुसलमानी समय का न्यायाध्यक्ष। उ०—(क) काजी जी दुवले क्यों, शहर के अ देशे से। (ख) रौशन जमीर वेचू सीना साफ काजी कादिर। —पलटू०, पृ० ८३।

काजू—संज्ञा पुं० [कों'क० काज्जु] १. एक पेड जो मदरास, केरल, चटगाँव और उत्तरपश्चिम आदि स्थानों में होता है।

विशेष—इसकी छाल वहुत खुरदरी और लकडी सुर्ख होती है जिससे संदूक और सजावट के सामान तैयार होते हैं। इसके फलो की गिरी को भूनकर लोग खाते हैं। मींगी निकाली हुई गुठलियो के छिलको से लोग एक प्रकार का तेल भी निकालते हैं जो तेजाव की तरह तेज होता है। इसके शरीर म लगते ही छाले पड जाते हैं। यह तेल पुस्तको की जिल्दो मे लगा देने स दीमको का डर नहीं रहता।

२. इस वृक्ष का फल। ३ इस वृक्ष के फल की गुठली के भीतर की मींगी या गिरी।

काजूभोजू—वि० [हिं काज + भोग] ऐसी दिखाऊ वस्तु जो अधिक काम न आ सके। कमजोर या मामूली चीज।

काट—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त, प्रा० कट्ट] १ काटने की क्रिया। काटने का काम। जैसे—यह तलवार अच्छी काट करती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—काट छाँट = (१) मारकाट। लड़ाई। (२) काटने से बचा खुचा टुकडा। कतरन। (३) किसी वस्तु मे कमी वेशी। घटाव वढ़ाव। जैसे—इस लेख मे वहुत काँट छाँट की आवश्यकता है। काट कूट = दे० 'काँट छाँट'। मारकाट = तलवार आदि की लडाई।

२ काटने का ढंग। कटाव। तराश। कतरव्योंत। जैसे,—इस अँगरखे की काट अच्छी नहीं है।

यौ०—काँट छाँट = रचना का ढंग। तर्ज। किता।

३. कटा हुआ स्थान। घाव। जख्म।

क्रि० प्र०—करना।

४. छरछराहट जो घाव पर कोई चीज लगने से होती है। ५. ढंग। कपट। चालवाजी। विश्वासघात। जैसे,—वह समय पर काट कर जाता है।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—काट कपट = चोरी छिपे किसी चीज को कम कर देना। काट छाँट = ढंग। जोड़ तोड। छक्का पंजा। जैसे,—वह वडी काट छाँट का आदमी है। काट फाँस = (१) जोड तोड। फँसाने का ढंग। (२) इधर की उधर लगाना। लगाव वझाव। ६. कुश्ती मे पेंच का जोड। ७ चिकनाई और गर्द मिली मैल। तेल, घी आदि का तलछट।

काट[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० किट्ट = मैल] वह मैल या तलछट जो तेल के पात्र में नीचे जम जाती है।

क्रि०प्र०—बैठना।

काटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + की] लकडी या छडी जिसे हाथ मे लेकर कलंदर वंदर या भालू नचाते हैं।

काटन[१]—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] किसी काटी हुई वस्तु के छोटे छोटे टुकडे जिन्हें वेकाम समझकर लोग फेंक देते हैं। कतरन

काटन[२]—संज्ञा पुं० [अ० कॉटन] १. कपास। रूई। २ रूई का कपड़ा। जैसे,— काटन मिल्स।

काटना—क्रि० स० [सं० कर्तन प्रा० कट्टण] १. किसी धारदार चीज की दाव या रगड से दो टुकडे करना। शस्त्र आदि की धार धँसाकर किसी वस्तु के दो खंड करना। जैसे,—पेड़ काटना, सिर काटना।

में ते आधा आधा पाव काँचे चना मनुष्य पाछे साँझ को मिलते हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२६ । २ अनित्य । असार । मिथ्या । उ०—समझयों में निरधार, यह जग काचो काँच सो । एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहाँ ।—बिहारी (शब्द०) ।

काची¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] दूध रखने की हाँडी ।

काची²†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] तीखुर, सिंघाडे या कुम्हड़े आदि का हलुवा ।

काच्या(पु)—वि०[हिं० काँचा] दे० 'कच्चा' । उ०—कुंभ काच्या नीर भरिया विनसत नहिं वार रे ।—दक्खिनी०, पृ० ३१ ।

काछ—संज्ञा पुं० [सं० कक्ष प्रा० कच्छ] १ पेड और जाँघ के जोड पर का तथा उसके कुछ नीचे तक का स्थान । २ धोती का वह भाग जो इस स्थान पर से होकर पीछे खोसा जाता है । लाँग । उ०—(क) कसि काछ दिए घँघरी की कसे कटि सो उपरौनिय भाँति भली ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) चतुर काछ काछै जब जैसा । तब तहँ नाच दिखावै तैसा ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—कसना । —काछना । —खोलना । —देना । —बाँधना ।—मारना ।—लगाना ।

३ अभिनय के लिये नटो का वेश या बनाव ।

काछना¹—क्रि० स० [सं० कक्षा, प्रा० कच्छ] १ कमर में लपेटे हुए वस्त्र के लटकते भाग को जाँघो पर से ले जाकर पीछे कसकर बाँधना । २ बनाना । सँवारना । पहनना । उ०—(क) गोर किशोर वेष वर काछे । कर शर चाप राम के पाछे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ए ई राम लखन जे मुनि सँग आए हैं । चौतनी चोलना काछे सखि सोहैं आगे पाछे ।—तुलसी (शब्द०) ।

काछना²—क्रि० स० [सं० कषण=घिसना, चलाना] हथेली या चम्मच आदि से किसी तरल पदार्थ को किनारे की ओर खींच-कर उठाना या इकट्ठा करना । जैसे, पोस्त से अफीम काछना, होरसे पर से चदन का काछना ।

काछनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछनी] दे० 'काछनी' । उ०—कमल दलनि की काछनि काछें, धातु विचित्र चित्र तन आछें ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६३ ।

काछनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] कसकर और कुछ ऊपर चढाकर पहनी हुई धोती जिसकी दोनो लाँगें पीछे खोसी जाती हैं । कछनी । उ०—(क) काछनी कटि पीत पट दुति कमल केसर खंड ।—सूर (शब्द०) । (ख) सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।—बिहारी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—कसना ।—काछना ।—मारना ।

२. घाँघरे की तरह का एक चुनावदार पहनावा जो आधे जघे तक होता है और प्राय जाँघिए के ऊपर पहना जाता है । आजकल मूर्तियो के शृंगार और रामलीला आदि मे इस पहनावे का व्यवहार होता है ।

काछा—संज्ञा पुं० [हिं० काछना] कसकर और कुछ ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती जिसकी दोनों लाँगें पीछे खोंसी जाती हैं । कछनी ।

क्रि० प्र०—कसना ।—काछना ।—बाँधना ।—मारना । —लगना ।

काछी¹—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ=जलप्राय देश] १. तरकारी बोने और बेचनेवाला । २ उक्त कार्य करनेवाली एक जाति ।

काछी(पु)²—वि० [सं० कच्छ] कच्छ देश का । कच्छी । उ०—काछी करह वियूमियाँ, घडियउ जोडण जाइ । हरणाखी जउ हँसि कहइ, आणिसि एथि बिमाई ।—ढोला०, दू० २२८ ।

काछी(पु)³—संज्ञा पुं० कच्छ देश का घोडा । उ०—पैत्र सुरंगी घाघरा, ढाके मत धर ढान काछी चढ़ आछी कहूँ हुआ भीजण हाल ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८ ।

काछुई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छपी, प्रा० कच्छवी] दे० 'कछुआ' । उ०—अंडा पालै काछुई, बिन थन राखे पोक । यों करता सबकी करै, पालै तीनउ लोक ।—कबीर सा०, पृ० ८१ ।

काछू†—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप, कच्छर] दे० 'कछुवा' । उ०—चेला पटै न छाँडहि पाछू । चेला मच्छ गुरु जिमि काछू ।—जायसी (शब्द०) ।

काछे—क्रि० वि० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] निकट । पास । नजदीक । उ०—नाहि कह्यौ सुत दे नंदि हरि को मैं गावनि हौं पाछे । बैंगहि फिरी सूर के प्रभु पै जहाँ कुंज गृह काछे ।—सूर(शब्द०)।

काज¹—संज्ञा पुं० [सं० कार्य प्रा० कज्ज] १ प्रयत्न जो किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये किया जाय । कार्य । काम । कृत्य । उ०—(क) ज्ञानी लोभ करत नहिं कबहूँ लोभ बिगारत काज ।—सूर (शब्द०) । (ख) घाम, धूम, नीर औ समीर मिले पाई देह ऐसो धन कैसे दूत काज भुगतावैगो ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । —कराना । —चलना । —चलाना । —निकलना ।— निकालना । —भुगतना ।— भुगताना । —सँवारना ।—सरना । सारना ।

मुहा०—के काज=के हेतु । निमित्त । लिये । उ०—पर स्वारथ के काज सीस आगे धरि दीजै ।—गिरधर (शब्द०) ।

२ व्यवसाय । धंधा । पेशा । रोजगार । जैसे, (क) इन लडके को अब किसी काम काज मे लगाओ । (ख) अपने घर का काज देखो । ३ प्रयोजन । मतलब । उद्देश्य । अर्थ । उ०—(क) रोए कंत न बहुरैं तौ रोए का काज ?—जायसी (शब्द०) । (ख) बिन काज आज महराज लाज गइ मेरी ।—(गीत), (शब्द०) । ४ विवाह संबंध । उ०—यह श्यामल राजकुमार सखी, इक जानकी जोगहिं जन्म लयो । रघुराज तथा मिथिलापुर राज अकाज यही जो न काज भयो ।—रघुराज (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

५ बालक अवस्था से बड़े या किसी बूढे आदमी के मर जाने का भोज । काम ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।-होना ।

काज²—संज्ञा पुं० [पुर्त० काजा, कोंकणी काज] छेद जिसमे बटन डालकर फँसाया जाता है । बटन का घर ।

क्रि० प्र०—बनाना ।

कागत(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कागज़, हिं० कागद] दे० 'कागज' । उ०—ऐसो संभ्रम होत मैं कबहूँ देख्यो नहीं, दुति कौ दुति लेखन कागत ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६० ।

कागद†—संज्ञा पुं० [अ० कागज] १. कागज । उ०—सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी कार्यालय का विशेष रजिस्टर । खाता । बही । उ०—साथी हमरे चलि गए, हम भी चालनहार । कागद में बाकी रही तातें लागी बार ।—कबीर सा० सं०, पृ० ७६ ।

क्रि० प्र०—आना ।—काटना ।—खोना ।—हिराना ।

यौ०—कागदपत्तर, कागदपत्र = दे० 'कागजपत्र' ।

मुहा०—कागद फटना = (१) किसी की मृत्यु होना । (२) मरने का लक्षण प्रकट होना । कागद खोना = दीर्घजीवी व्यक्ति का कष्टमय जीवन लंबा होते जाना ।

कागदगर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कागद + फा० गर (प्रत्य०)] कागज लिखनेवाला । उ०—ततकरा अपवित्र कर मानिए जैसे कागदगर करत विचार ।—रै० बानी०, पृ० ३७ ।

कागदी(पु)—वि० [हिं० कागद + ई (प्रत्य०)] केवल कागज पर लिखने वाला, व्यवहार न करनेवाला । उ०—कागद लिखे सो कागदी की व्योहारी जीव । आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव ।—कबीर सा०, पृ० ८५ ।

कागभुसुंडि(पु), कागभुसुंडी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काकभुशुण्डि] दे० 'काकभुशुंडि' ।

कागमारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे के सिक्के लंबे होते हैं ।

कागर(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कागज] १. कागज । उ०—(क) तुम्हरे देस कागर मसि खूटी । प्यास अरु नींद गई सब हरि के बिना विरह तन टूटी ।—सूर (शब्द०) । (ख) कवित विवेक एक नहिं मोरें । सत्य कहौं लिखि कागर कोरे ।—मानस, १।६ । २. पंख । पर । उ०—(क) कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कागर कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तज्यो नीर ज्यों काई ।—तुलसी (शब्द०) ।

कागरी(पु)—वि० [हिं० कागर = कागज] तुच्छ । हीन । उ०—नट नागर गुनन के आगर में प्रीति बाढ़ी गाढी नइ प्रतीति जगी रीति भई कागरी ।—रघुराज (शब्द०) ।

कागल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कागर] दे० 'कागर' । उ०—कागल नहीं कमम नहीं, नहीं कलेखणहार ।—ढोला०, दू० १५० ।

कागलो(पु)—वि० [हिं० कागरी] दे० 'कागरी' । उ०—जीवन घडीय तें नवि रहई । जीणसू कागली हुआ वेहार ।—बी० रासो, पृ० ३३ ।

कागा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० काक, काग] दे० 'काग' ।

कागावासी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काक + वासित (बोली या बोलने का समय) अथवा हिं० काग + √वासी] भाँग जो सबेरे कौआ बोलते समय छानी जाय । सबेरे के समय की भाँग । उ०—प्रात माल कबरें छ नें उडि भोरहि कागावासी ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

कागावासी²—संज्ञा पुं० [सं० काक + भासी] एक प्रकार का मोती जो कुछ काला होता है ।

कागारोल—संज्ञा पुं० [हिं० काग = कौआ + रोर = शोर] हल्ला । हुल्लड़ । शोरगुल ।

कागिया¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] तिब्बत देश की एक प्रकार की भेड़ ।

विशेष—इसका सिर बहुत भारी और टाँगें छोटी होती हैं । इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है । लोग इसे ऊन के लिये नहीं, मांस के लिये ही पालते हैं ।

कागिया²—संज्ञा पुं० [हिं० काग + इया (प्रत्य०)] काले रंग का एक कीड़ा जो बाजरे की फसल को हानि पहुँचाता है ।

कागिल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काग] काग । कौआ । उ०—कागिल गर फाँदियां, वटेरें वाज जीता ।—कबीर ग्रं०, पृ० १४१ ।

कागौर—संज्ञा पुं० [सं० काकवलि] पितृकर्म में कव्य का वह भाग जो कौए के लिये निकाला जाता है । काकबलि ।

काच(पु)†¹—वि० [हिं० कच्चा या कांचा] १. कच्चा । उ०—आगें पीछें जो करें सोई वचन है काच ।—सं० दरिया, पृ० ३ । २. जी का कच्चा । कायर । डरपोक ।

काच²—संज्ञा पुं० [सं०] १. शीशा । काँच । २. आँख का एक रोग जिसमें दृष्टि मंद हो जाती है । ३. खारी मिट्टी । ४. काला नमक । ५. मोम । ६. जुए के भार को सँभालनेवाली रस्सी । ७. तराजू की डोरी [को०] ।

काचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शीशा । काँच । २. पत्थर । ३. खारी मिट्टी [को०] ।

काचड़गारा(पु)—वि० [सं० कच्चर + कार] बुराई करनेवाला । उ०—काचडगारा ऊपरा रामतणी है रीस । काचडगारा कूचडा वगडे विसवा वीस ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७५ ।

काचडा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्चर = बुरा, नीच] चुगली । उ०—मुख ओछी रे मांहिले, पर काचडा पुरीप ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७ ।

काचन, काचनक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान, कागज के बंडल अथवा हस्तलेख के पन्नों को बाँधने की डोरी [को०] ।

काचमणि—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक ।

काचर(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचरी] दे० 'कचरी' । उ०—फोग केर काचर फली, पापड गेंघर पात ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७ ।

काचमल—संज्ञा पुं० [सं०] काचलवण ।

काचलवण—संज्ञा पुं० [सं०] काचिया नोन । काला नोन । सोंचर नोन ।

काचरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँचली] दे० 'काँचरी' ।

काचली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांचली] दे० 'काँचली' । उ०—साप काचली छाँडे वीस ही न छाँडे । उदक में वक ध्यान माँडे ।—दक्खिनी०, पृ० ३५ ।

काचा—[illegible] ० काँचा] १. दे० 'कच्चा' । उ०—इनको राजद्वार

विशेष—इसका चमडा बहुत सफेद, मुलायम और गरम होता है। अमीर लोग इस चमडे की पोस्तीन बनवाकर पहनते हैं।

काकुल—संज्ञा पुं० [फा०] कनपटी पर लटकते हुए लंबे बाल। कुल्ले। जुल्फें। उ०—दामे काकुल का तेरे कोई गिरफ्तार नही, पेंच हम पर ए पडा।—श्यामा० पृ० १०२।

मुहा—काकुल छोडना=बालो की लट गिराना या बिखराना। काकुल झाडना=बालो मे कंघी करना।

काकेची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

काकोचिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

काकोदर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० काकोदरी] १ सॉप। उ०—दादुर काकोदर दसन परैं मसन मति घ्याउ।—दीन० ग्र०, पृ० २०६। २ अघासुर नाम का राक्षस जिसका वध कृष्ण ने किया था। उ०—हरि तन चितय कहत काकोदर। याके उदर दोउ मेरे सोदर।—नंद ग्र०, पृ० २६०।

काकोल—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक विष का नाम। २ काला कौआ (को०)। ३ सर्प (को०)। ३ शूकर (को०)। ५ कुम्हार (को०)। ६ एक नरक (को०)। ७ एक बहुमूल्य वस्तु या पदार्थ (को०)।

काकोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि।

विशेष—यह एक प्रकार की जड या कंद है जो सतावर की तरह होती है, पर आजकल मिलती नही। इसका एक भेद क्षीरकाकोली भी है। वैद्यक मे यह वीर्यवर्धक और क्षीरवर्द्धक मानी गई है।

पर्या०—शीतपाकी। पयस्या। क्षीरा। वीरा। घीरा। शुक्ला। मेदुरा। जीवती। पयस्विनी।

काकोलूकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआ और उल्लू के जैसी सहज शत्रुता [को०]।

काकोलूकीय—संज्ञा पुं० [सं०] १ काक और उलूक का सहज वैर। २ पंचतंत्र का तीसरा तंत्र [को०]।

यौ०—काकोलूकीय तंत्र=पंच तंत्र का तीसरा तंत्र। काकलूकीय न्याय=वह न्याय जहाँ कौआ और उल्लू की सहज शत्रुता की स्थिति हो।

काक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ तिरछी नजर। कटाक्ष। २. कोप दृष्टि। ३. कुदृष्टि [को०]।

काक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ। २ एक प्रकार की सुगंधित मिट्टी [को०]।

काख(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कॉख] दे० 'कॉख'। उ०—पट अरु जठर बीच तौ बेनु। काख बेत, कच लपटे रेनु।—नंद० ग्र०, पृ० २६४।

काग[1]—संज्ञा पुं० [सं० काक] कौआ। वायस।

मुहा०—काग उडाना=किसी के आने का शकुन विचारना। उ०—बारुडियाँ वे यक्कियाँ, काग उड़ाइ उडाइ।—ढोला०, दू० १६७।

यौ०—कागभुसुंडि, कागभुसुंडी।

काग[2]—संज्ञा पुं० [अ० कार्क] १. बलूत की जाति का एक बडा पेड़।

विशेष—यह स्पेन, पुर्तगाल तथा अफ्रिका के उत्तरी भागों में होता है। यह ३०–४० फुट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल दो इंच तक मोटी और बहुत हलकी तथा लचीली (अर्थात् दाब पडने से दब जानेवाली) होती है। बोतल, शीशी आदि की डाट इसी छाल की बनती है।

२. बोतल या शीशी की डाट जो काग नामक पेड की छाल से बनती है।

कागज—संज्ञा पुं० [अ० कागज] [वि० कागजी] १. सन, रूई, पटुए, बाँस, लकडी आदि को पीसकर या सड़ाकर बनाया हुआ पत्र जिसपर अक्षर लिखे या छापे जाते हैं।

यौ०—कागजपत्र=(१) लिखे हुए कागज। (२) प्रामाणिक लेख। दस्तावेज।

मुहा०—कागज काला करना—व्यर्थ कुछ लिखना। कागज रँगना=कागज पर कुछ लिखना। कागज की नाव=क्षणभंगुर वस्तु। न टिकनेवाली चीज। कागज की लेखी=ग्रंथो मे लिखी बातें जो आँखो से देखी बातो की अपेक्षा कम प्रामाणिक होती हैं। उ०—मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागज की लेखी।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३५। कागज दौडाना, कागजी घोड़े दौडाना=खूब लिखापढ़ी करना। खूब चिटठीपत्री भेजना। परस्पर खूब पत्रव्यवहार करना। कागज पर चढ़ाना=कही लिख लेना। टाँकना। टीपना।

२ लिखा हुआ कागज। लेख। प्रामाणिक लेख। प्रमाणपत्र। दस्तावेज। जैसे,—जबतक कोई कागज न लाओगे, तुम्हारा दावा ठीक नहीमाना जाएगा।

क्रि० प्र०—लिखना।—लिखवाना।

३ संवादपत्र। समाचारपत्र। खबर का कागज। अखबार। जैसे—आजकल हम कोई कागज नहीं देखते। ४ नोट। प्रामिसरी नोट।—जैसे,—३००००) का तो उनके पास खाली कागज है।

कागजात—संज्ञा पुं० [अ० कागज का बहु०] कागजपत्र।

कागजी[1]—वि० [अ० कागज+फा० ई (प्रत्य०)] १. कागज का। कागज का बना हुआ। २ जिसका छिलका कागज की तरह पतला हो। जैसे,—कागजी नीबू, कागजी बादाम।

यौ०—कागजी जोक=बहुत पतली और छोटी जोक।

विशेष—जोक तीन प्रकार की होती हैं।—(१) भैंसिया। (२) मभोली और (३) कागजी।

कागजी[2]—संज्ञा पुं० १ कागज बेचनेवाला। २ वह कबूतर जो बिलकुल सफेद हो।

कागजी कारर्वाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागजी+फा० कारर्वाई] लिखापढ़ी।

कागजी बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० कागजी+फा० बादाम] एक प्रकार का बढिया बादाम जिसका ऊपरी छिलका अपेक्षाकृत पतला होता है।

कागजी सबूत—संज्ञा पुं० [हिं० कागज+अ० सबूत] कागज पर लिखा हुआ सबूत। लिखित प्रमाण।

संगीत में वह स्थान जहाँ सूक्ष्म और स्फुट स्वर लगते हैं ५. घुँघची। गुंजा। ३ कैंची (को०)। ७ हलकी ध्वनि का वाद्य जिसको चोरी करते समय चोर यह जानने के लिये बजाते हैं कि लोग सोए हैं या नहीं (को०)।

यौ०--काकलीद्राक्षा।

काकली[२]—वि० [सं० काकलिन्] जिसे काकली या घंटी हो।

काकलीक—संज्ञा पुं० [सं०] मंद मधुर स्वर (को०)।

काकलीद्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा अंगूर।

विशेष—इसमें बीज नहीं होते और इसे सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

२ किशमिश।

काकली निषाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक विकृत स्वर।

विशेष—यह कुमुद्वती नामक श्रुति से आरंभ होता है और इसमें चार श्रुतियाँ होती हैं।

काकलीरव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० काकलीरवा] कोयल।

काकशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं० [अगस्त का पेड या फूल। वकपुष्प। हथिया।

काकसेन--संज्ञा पुं०[अं काकस्वेन] वह पुरुष जो किसी अफसर की मातहती में रहकर जहाज और मजदूरों की निगरानी करता हो। —(लश०)।

काकांगा, काकांगी--संज्ञा स्त्री० [सं० काकाङ्गा, काकाङ्गी]काकजंघा। मसी (को०)।

काकाची—संज्ञा स्त्री० [सं० काकाञ्ची] काकजंघा (को०)।

काका[१]--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ काकजंघा। मसी। २. काकोली। ३ घुँघची। ४ कठूमर। कठगूलर। ५ मकोय।

काका[२]—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० काकी] १. बाप का भाई। चाचा। २. चमारों के नाच में करिंगे का वह साथी जिससे वह व्यंग्य और हास्यपूर्ण सवाल जवाब करता है। इस काका को फोकली काका भी कहते है। उ०—काका उसका है साथी नट, गदके उसपर जमा पटापट, उसे टोकता गोली खाकर, आँख जायगी क्यों वे नटखट? सुन न जायगा मुनगे सा झट ? ।--ग्राम्या, पृ० ४५।

काकाकौआ—संज्ञा पुं० [हिं० काका + कौआ] दे० 'काकातुआ'।

काकाक्षिगोलक न्याय— संज्ञा पुं० [सं०] एक शब्द या वाक्य को उलट फेरकर दो भिन्न भिन्न अर्थों में लगाना।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि कौए को एक ही आँख होती है जिसे वह इच्छानुसार दाहिने या बाएँ गोलक में लाकर अपना काम चलाता है। इसीलिये संस्कृत में कौए को एकाक्ष भी कहते हैं। जिस तरह एक आँख को कौआ कभी दाहिनी ओर कभी बाईं ओर ले जाता है, उसी तरह किसी शब्द या वाक्य का यथेच्छ सीधा उलटा अर्थ करने को काकाक्षिगोलक न्याय कहते हैं।

काकातुआ—संज्ञा पुं०[मला०] एक प्रकार का बड़ा तोता जो प्रायः सफेद रंग का होता है।

विशेष—इसके सिर पर टेढ़ी चोटी होती है। इस चोटी को यह ऊपर नीचे हिला सकता है। इसका शब्द बड़ा कर्कश होता है और सुनने में 'क क तु अ' की तरह मालूम होता है। यह पक्षी जावा, बोर्नियो आदि पूर्वी द्वीपसमूह के टापुओं में होता है।

काकातूआ--संज्ञा पुं० [हिं०काकातुआ] दे० 'काकातुआ'। उ०—काकतूआ महर गृह के द्वार का भी दुखी था। भूला जाता सकल स्वर था उन्मना हो रहा था।—प्रिय०, पृ० ५१।

काकादनी संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कौआठोठी। २ सफेद घुँघची।

काकायु—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णवल्ली (को०)।

काकार—वि० [सं०] जल छिड़कने या फैलानेवाला (को०)।

काकारि—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू (को०)।

काकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काकल' (को०)।

काकाष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्यंक। खाट (को०)।

काकिणि, काकिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकिणी' (को०)।

काकिणिक—वि० [सं०] दे० 'काकिणीक' (को०)।

काकिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घुँघची। गुंजा। २ पण का चतुर्थ भाग जो पाँच गंडे कौड़ियों का होता है। ३. माशे का चौथाई भाग। ४. कौड़ी।

काकाणीक—वि० [सं०] काकिणीवाला। अल्पतम धनवाला (को०)।

काकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकिणी'। उ०—सावन फल सुनि सार नाम तव भवसरिता कहँ बेरो। मोड़ पर कर काकिनी लाग सठ बेचि होत हठ चेरो।—तुलसी (शब्द०)।

काकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंठहार। कठमणि। २ गरदन का ऊपरी भाग (को०)।

काकी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौए की मादा।

काकी[२]—संज्ञा स्त्री० [फा० काका] चाची। चची।

काकु—संज्ञा पुं० [सं०] १ छिपी हुई चुटीली बात। व्यंग। तनज। ताना। उ०—(क) राम विरह दशरथ दुखित कहत केकयी काकु। कुसमय जाय उपाय सब केवल कर्मविपाकु।—तुलसी (शब्द०)। (ख)—बिनु समझे निज अघपरिपाकू। जारिउ जाय जननि कहि काकू।—तुलसी (शब्द०)। २. अलंकार में वक्रोक्ति के दो भेदों में से एक जिसमें शब्दों के अन्यार्थ या अनेकार्थ में नहीं बल्कि ध्वनि ही से दूसरा अभिप्राय ग्रहण किया जाय। जैसे,—क्या वह इतने पर भी न आवेगा ? अर्थात आवेगा। उ०—आलिकुल कोकिल कलित यह ललित वसंत बहार। कहु सखि ! नहिं ऐ हैं कहा प्यारे अबहूँ आगार (शब्द०)। ३. मलाप्ट कथन (को०)। ४. जिह्वा (को०)। ५ जोर देना। बल देना (को०)।

काकुत्स्थ-संज्ञा पुं० [सं०] १ ककुत्स्थ राजा के वंश में उत्पन्न पुरुष। २ रामचंद्र।

काकुद—संज्ञा पुं० [सं०] तालु (को०)।

काकुनी—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गुनी] दे० 'कँगनी'।

काकुम—संज्ञा पुं० [तु० काकुम] तातार देश के ठंडे भागों में होनेवाला एक प्रकार का नेवला।

यौ०—काकतालीय न्याय।

काकतालीय न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काकतालीय'।

काकतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकजंघा। घुँघची (को०)।

काकतुंड—संज्ञा पुं० [सं० काकतुण्ड] काला अगर।

काकतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्डी] कौआठोठी।

काकदंत—संज्ञा पुं० [सं० काकदन्त] कोई असंभव बात।

विशेष—कौए को दाँत नहीं होते, इससे शशशृंग, वंध्यापुत्र आदि शब्दों की तरह काकदंत भी असंभववाचक है।

यौ०—काकदंतगवेषण = (१) असंभव का खोज। (२) व्यर्थ चेष्टा या श्रम।

काकध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वडवानल। वाडवाग्नि।

काकपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बालों के पट्टे जो दोनों ओर कानों और कनपटियों के ऊपर रहते हैं। कुल्ला। जुल्फ।

विशेष—इस प्रकार के बाल रखनेवाले माथे के ऊपर के बाल मुँड़ा डालते हैं और दोनों ओर बड़े बड़े पट्टे छोड़ देते हैं जो कौए के पंख के समान लगते हैं।

काकपच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काकपक्ष] दे० 'काकपच्छ'। काकपच्छ सिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुम कली के।—तुलसी (शब्द०)।

काकपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चिह्न जो छूटे हुए शब्द के स्थान को जताने के लिये पंक्ति के नीचे बनाया जाता है और वह छूटा हुआ शब्द ऊपर लिख दिया जाता है। २. हीरे का एक दोष। छपहलू या अठपहलू हीरे में यदि यह दोष हो तो पहननेवाले के लिये हानिकारक समझा जाता है। ३. कौए के पैर का परिमाण। स्मृति में यह एक शिखा का परिमाण माना गया है। ४ चर्मच्छेदन। ५ रतिविषयक एक आसन या बंध (को०)।

काकपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल। उ०—लगे सोम कर तोम सर भई हिए वर घाइ। कूक काकपाली दई आली लाइ लगाइ।—राम० धम०, पृ० २७३।

काकपीलु—संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

काकपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

काकपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

काकपेय—वि० [सं०] छिछला (को०)।

यौ०—काकपेया नदी = छिछली नदी।

काकफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीम का पेड़। २. नीम का फल।

काकफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जामुन। वनजामुन।

काकवंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० काकवन्ध्या] वह स्त्री जिसे एक संतति के उपरांत दूसरी संतति न हुई हो। एक बाँझ।

काकबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्राद्ध के समय भोजन का वह भाग जो कौओं को दिया जाता है। कागोर।

काकभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] उलूक। उल्लू।

काकभुशुंडि—संज्ञा पुं० [सं० काकभुशुण्डि] एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौआ हो गए थे और राम के बड़े भक्त थे। कहते हैं कि इनकी बनाई भुशुंडि रामायण भी है।

काकमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] दात्यूह नामक पक्षी (को०)।

काकमर्द, काकमर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] लौकी (को०)।

काकमाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय (को०)।

काकमाची, काकमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय।

काकमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ककमारी'।

काकयव—संज्ञा पुं० [सं०] छूछा पौधा। ऐसा पौधा जिसकी बाल में दाना न हो (को०)।

काकरव—संज्ञा पुं० [सं०] डरपोक व्यक्ति। असाहसी मनुष्य। वह व्यक्ति जो जरा सी बात से डर जाय और कौए की तरह काँव काँव मचाने लगे।

काकरासिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकड़ासींगी] दे० 'काकड़ासींगी'।

काकरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटी, हिं० ककड़ी] ककड़ी। उ०—काकरी के चोर को कटारी मारियतु है।—पद्माकर (शब्द०)।

काकरुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ उल्लू। २. जोरू का गुलाम। स्त्रीभक्त। ३ धोखा। वंचना (को०)।

काकरुक[2]—वि० १ कायर। डरपोक। २ निर्धन। ३. नग्न (को०)।

काकरुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू की मादा (को०)।

काकरूक—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'काकरुक' (को०)।

काकरूकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'काकरुकी' (को०)।

काकरूत—संज्ञा पुं० [सं०] कौए की कर्कश बोली (को०)।

काकरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा जो पेड़ों के सहारे जीता है (को०)।

काकरेज—संज्ञा पुं० [फा० काकरेज] बैंगनी रंग। काले और लाल रंग के मेल से बनाया हुआ रंग। ऊदा रंग।

काकरेजा—संज्ञा पुं० [फा० काकरेज + हिं० आ (प्रत्य०)] १. काकरेजी रंग का कपड़ा। २ काकरेजी रंग।

काकरेजी[1]—संज्ञा पुं० [फा० काकरेजी] एक रंग जो लाल और काले के मेल से बनता है। कोकची।

विशेष—कपड़े को आल के रंग में रँगकर फिर लोहार की स्याही में रँगते हैं।

काकरेजी[2]—वि० काकरेजी रंग का।

काकलब(पु)—वि० [सं० काक + लभ्य] कौए का प्राप्य या ग्राह्य (आहार)। उ०—मप जोइ सिंघ जंबुक हरै। काकलब पप्पील गहि।—पृ० रा०, २६। १०।

काकल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० काकली] १ गले में सामने को ओर निकली हुई हड्डी। कौआ। घंटी। टेंटुवा। १ काला कौआ। ३. कंठ की मणि। गले की मणि (को०)।

काकलक—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरनलिका या स्वरयंत्र का सिरा। २. गले की मणि। ३ एक धान का नाम (को०)।

काकलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकली' (को०)।

काकली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मधुर ध्वनि। कलनाद। उ०—पिय बिनु कोकिल काकली भली अली दुख देत।—शृ० सत० (शब्द०)। २. सेंध लगाने की सबरी। ३. साठी धान। ४.

काउर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'—२। उ०—काउर का पाँणी पुनिर गिर पईसैं।—गोरख०, पृ० १३५।

काऊ¹—क्रि० वि० [सं० कुह, या *कुच अथवा सं० कदापि, प्रा० कदावि कम्रावि > कम्राउ, काऊ] कभी। उ०—हिय तेहि निकट जाय नहिं काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

काऊ²—सर्व० [सं० किमपि या कोपि] १ कोई। २ कुछ। —उ० (क) पथ श्रम लेश कलेश न काऊ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुन अवगुन प्रभु मान न काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

काऊ³—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी खूँटी जो वरही के सिरे पर जोते हुए खेत को बराबर करनेवाले पाटे या हेंगे में लगी रहती है। कानी।

काए(पु)—वि० [हिं० का] दे० 'किस'। उ०—कै दुखु री तोइ मात पिता को, कै तेरे मर जाए वीर, काए दुख डूबि जैऐ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ९१६।

काएथ्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] दे० 'कायस्थ'। उ०—तबहु न चुक्किअ एक्कम्रो शिरि केशव काएथ्य।—कीर्ति०, पृ० ७०।

काएनात—संज्ञा स्त्री० [अ० काइनात] सृष्टि। ससार। दुनिया। उ०—जिससे है कायम यह कुल काएनात।—कबीर मं०, पृ० ४६।

काकंदि—संज्ञा स्त्री० [सं० काकन्दि] एक देश का प्राचीन नाम। आजकल इसे कोकद कहते हैं। तुर्किस्तान में कोकंद नाम का नगर जो समरकद से पूरब है।

काक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० काकी] १. कौआ। २ लँगड़ा व्यक्ति (को०)। ३ एक प्रकार का तिलक (को०)। ४ एक माप (को०)। ५ एक द्वीप (को०)। ६. कौओ की भाँति पानी में केवल सिर डुबाकर स्नान करना (को०)। ७ धूर्त व्यक्ति (को०)। ८. ढीठ या धृष्ट व्यक्ति (को०)।

काक²—संज्ञा पुं० [अं० कार्क] एक प्रकार की नर्म लकडी जिसकी डाट बोतलों में लगाई जाती है। काग।

काक(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काका'। उ०—पुनि कन्ह काक गोइद राइ। परिपुर्न क्रोध जे लगत लाइ।—पृ० रा०, १४।४०।

काककंगु—संज्ञा पुं० [सं० काककङ्गु] चेना। कँगनी। काकुन।

काककला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चतुर्दश ताल का एक भेद। २. काकजंघा नाम की ओषधि।

काकगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] कौए की आँख की पुतली। उ०—उनको हितु उनहीं बनै कोऊ करौ अनेकु। फिरतु काकुगोलक भयो दुहूँ देह ज्यों एकु।—बिहारी (शब्द)।

विशेष—प्रसिद्ध है कि कौए की आँखें तो दो होती हैं, पर पुतली एक ही होती है और वह जब जिस आँख से देखना चहता है तब वह पुतली उसी आँख में चली जाती है।

काकचचकु(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० काकचिञ्चा] दे० 'काकचिंचा' उ०—काकचचकु कृस्नला गुजा करत प्रनाम।—अनेकार्थ०, पृ० २८।

काकचिंचा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० काकचिञ्चा] गुजा। घुँघची(को०)।

काकचेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौए के समान सावधान या चौकन्ना रहना (को०)।

काकच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. काकपक्ष। २. खजन (को०)।

काकजंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० काकजङ्घा] १ चकसेनी। मसी।

विशेष—इसका पौधा तीन चार हाथ तक ऊँचा जाता है। इसके डंठल में चार-पाँच अगुल पर फूली हुई गाँठें होती है। गाँठों पर डठल कुछ टेढ़ा रहता है जिससे वह चिड़िया की टाँग की तरह दिखाई देता है। प्रत्येक पुरानी मोटी गाँठ के भीतर एक छोटा कीडा होता है जो बच्चों की पसली फडकने में दवा की तरह दिया जाता है। इसकी पत्तियाँ इच डेढ़ इच लबी होती हैं। वैद्यक में काकजघा कफ, पित्त, खुजली, कृमि और फोडे फुसी को दूर करनेवाली मानी जाती है। २. गुजा। घुँघची। ३. मुगौन या मुगवन नाम की लता।

काकजबु—संज्ञा पुं० [सं० काकजम्बु] दे० 'काकाफला' (को०)।

काकजात—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल (को०)।

काकड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, प्रा० कक्कड़] एक बडा पेड जो सुलेमान पहाड तथा हिमालय पर कुमाऊँ आदि स्थानों में होता है।

विशेष—जाड़े में इसके पत्ते झड जाते हैं। इसकी कडी लकडी पीलापन लिए हुए भूरे रग की होती है और कुरसी, मेज, पलग आदि बनाने के काम में आती है। इसपर खुदाई का काम भी अच्छा होता है। पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं। इसमें सींग के आकार के पोले बाँदे लगते हैं जिन्हें 'काकडासींगी' कहते हैं।

काकड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का हिरन जिसे साँभर या सावर भी कहते हैं।

काकड़ासींगी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटश्रृङ्गी] हिमालय के उत्तर पश्चिम भाग में काँकडा नामक पेड में लगा हुआ एक प्रकार का टेढ़ा पोला बाँदा जिसका प्रयोग ओषधों में होता है।

विशेष—यह रँगने और चमडा सिझाने के काम में भी आता है। लोहे के चूर के साथ मिलकर यह काला नीला रग पकडता है। वैद्यक में इसे गरम और भारी मानते हैं। खाने में इसका स्वाद कसैला होता है। वात, कफ, श्वास, खाँसी, ज्वर, अतिसार और अरुचि आदि रोगों में इसे देते हैं। अरकोल या लाखर नामक वृक्ष का बाँदा भी काकड़ासींगी नाम से बिकता है।

काकण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ।

विशेष—इस रोग में त्रिदोष के कारण रोगी के शरीर में गुजा के समान लाल रग के चकत्ते पड जाते है जिनमें बीच बीच में काले चिह्न भी होते हैं। ये चकत्ते पकते तो नहीं, पर इनमें पीड़ा और जुजली बहुत अधिक होती है।

काकणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुँघची।

काकतालीय—वि० [सं०] सयोगवश होनेवाला। इत्तफाकिया।

विशेष—यह वाक्य इस घटना के अनुसार है कि किसी ताड के पेड़ पर एक कौआ ज्यों ही आकर बैठा त्यों ही उसका एक पका फल लद से नीचे टपक पडा। यद्यपि कौए ने फल को नहीं गिराया, तथापि देखनेवालों को यह धारणा होना सभव है कि कौए ने ही फल गिराया।

के ग्रंत मे फूलता है। फूल जीरे मे सफेद रूई की तरह लगते हैं। कांस रस्सियाँ बटने ग्रौर टोकरे ग्रादि वनाने के काम मे ग्राता है। इसकी एक पहाडी जाति वनकस या वगई कहलाती है जिसकी रस्सियाँ ज्यादा मजवूत होती हैं ग्रौर जिससे कागज भी वनता है।

विशेष—कोई कोई इस शव्द को स्त्रीलिंग मे भी वोलते हैं।

मुहा०—कांस मे तैरना = ग्रसमजस मे पडना। दुविधा मे पडना। कांस मे फँसना = सकट मे पडना।

कांसा[1]—सज्ञा पुं० [सं० कास्य] [वि० कांसी] एक मिश्रित धातु जो तांवे ग्रौर जस्ते के सयोग से वनती है। कसकुट। भरत।—उ०—कांसे ऊपर वीजुरी, परै ग्रचानक ग्राय। ताते निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया वताय।—कवीर (शव्द०)।

विशेष—इसके वरतन ग्रौर गहने ग्रादि वनते हैं।

यौ०—कंसभरा = कांसे का गहना वनाने ग्रौर वेचनेवाला।

कांसा[2]—सज्ञा पुं० [फा० कासा] १ भीख मांगने का ठीकरा या खप्पर। २ प्याला।

कांसागर—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा + फा० गर (प्रत्य०)] कांसे का काम करनेवाला।

कांसार—सज्ञा पुं० [सं० कास्यकार] कांसे का वरतन वनानेवाला। कसेरा।

कांसी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० काश] धान के पौधे का एक रोग।

क्रि० प्र०—लगना।

कांसी[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० कास्य] कांसा।

कांसी[3]—सज्ञा स्त्री० [सं० कनिष्ठा या कनीयसी] सवसे छोटी स्त्री। कनिष्ठा।

कांसुला—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा] कांसे का चौकोर टुकडा जिसमे चारो ग्रोर गोल गोल खड्ढे या गड्ढे वने होते हैं। कंसुला।

विशेष—इसपर सुनार चाँदी सोने ग्रादि के पत्तर रखकर गोल करते हैं ग्रौर कठा, घुडी ग्रादि वनाते हैं।

का[1]—प्रत्य० [स० क, जैसे—वासुदेवक, स्थानिक ग्रथवा सं० कृते, प्रा० केर, केरक, ग्रप० (पु)†ग्रप० कर, भोज० क, कर ग्रादि ग्रथवा सं० *कक्षे या कक्ष, प्रा० कच्छ, कक्ख, ग्रप० कहु, कह ग्रादि] सवध या षष्ठी का चिह्न, जैसे,—राम का घोडा। उसका घर।

विशेष—इस प्रत्यय का प्रयोग दो शव्दो के वीच ग्रधिकारी ग्रधिकृत (जैसे,—राम की पुस्तक), ग्राधार ग्राधेय (जैसे,—ईख का रस, घर की कोठरी), ग्रगागी (जैसे,—हाथ की उँगली), कार्य कारण (जैसे,—मिट्टी का घडा), कर्तृ कर्म (जैसे,—विहारी की सतसई) ग्रादि ग्रनेक भावों को प्रकट करने के लिये होता है। इसके ग्रतिरिक्त सादृश्य (जैसे,—कमल के समान), योग्यता (जैसे,—यह भी किसी से कहने की वात है?'), समस्तता (जैसे,—गाँव के गाँव वह गए) ग्रादि दिखाने के लिये भी इसका व्यवहार होता है। तद्धित प्रत्यय 'वाला' के ग्रर्थ मे भी पष्ठी विभक्ति ग्राती है, जैसे, वह नही ग्राने का। पष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया (कर्म) ग्रौर तृतीया (करण) के स्थान पर भी कही कही होता है, जैसे, रोटी का खाना, वदूक की लड़ाई। विभक्तियुक्त शव्द के साथ जिस दूसरे शव्द का सवध होता है, यदि वह स्त्रीलिंग होता है तो 'का' के स्थान पर 'की' प्रत्यय ग्राता है।

का[2]†—सर्व० [सं० क, या किम् या किमिति] १. क्या। उ०—का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे।—तुलसी (शव्द०)। २ व्रज भाषा मे कौन का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है, जैसे,—काको, कासो। उ०—कहो कौशिक, छोटो सो ढोटो है काको?—तुलसी (शव्द०)।

का[3](पु)† सज्ञा पुं० [हिं० काका का सक्षिप्त रूप] दे० 'काका'। उ०—पच राद पचाल,, लिन्न वैराट वद्धरर। जैतसिंह मोंहा मुग्राल का कन्ह नाह नर।—पृ० रा०, २१। ५५।

काग्रथ(पु)—सज्ञा पुं० [स० कायस्थ] 'कायथ'। उ०—वहुल व्रह्मण वहुल काग्रथ राजपुत्त कुल वहुल वहुल।—कीर्ति०, पृ० ३२।

काग्रर(पु)—वि० [स० कातर] दे० 'कायर'। उ०—सग्गम पइट्ठे जीग्रना तीनू काग्रर काज।—कीर्ति०, पृ० २०।

काइ[1](पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० काया] दे० 'काया'। उ०—सप्त वितस्ति काइ कौं करचो। रहत वहुरि कहाँ धौं परचो।—नंद ग्र० पृ० २७०।

काइ[2](पु)—क्रि० वि० [सं० क इति या किमिति, हिं०] 'क्यों'। उ०—दादू मझि कलूव मैला, तोडे वीयान काइ ड़े—दादू०, पृ० ५४४।

काइथ(पु)†—सज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] दे० 'कायथ'। उ०—वुल्लि सुजान करेय दिवानह। काइथ सव लायक वुधवानह।—प० रासो, पृ० २०।

काइम(पु)—वि० [ग्र० कायम] दे० 'कायम'। उ०—(क) दिखाइ दीदार मौज वदे कौ काइम करौ मिहाल।—दादू०, पृ० ५६७। (ख) मरदूद तुझे मरना सही। काइम ग्रकल करके कही।—सत तुरसी०, पृ० ४१।

काइर(पु)—वि० [सं० कातर, प्रा० कायर] दे० 'कायर'। उ०—इसो ग्रागमं भो सुवावन्न वीर। कपे काइर धीर रप्यो सुधीर।—पृ० रा०, ६। १५२।

काइयाँ—वि० [हिं० कांइयाँ] दे० 'काइयाँ'।

काई—सज्ञा स्त्री० [सं० कावार] १ जल या सीड मे होनेवाली एक प्रकार की महीन घास या सूक्ष्म वनस्पतिजाल।

विशेष—काई भिन्न भिन्न ग्राकारो ग्रौर भिन्न भिन्न रगो की होती है। चट्टान या मिट्टी पर जो काई जमती है, वह महीन सूत के रूप मे ग्रौर गहरे या हलके रग की होती है। पानी के ऊपर जो काई फैलती है, वह हल्के रग की होती है ग्रौर उसमे गोल गोल वारीक पत्तियाँ होती हैं तथा फूल भी लगते हैं। एक काई लवी जटा के रूप मे होती है, जिसे सेवार कहते हैं।

क्रि० प्र०—जमना।—लगना।

मुहा०—काई छुड़ाना = (१) मैल दूर करना। (२) दुख दारिद्रय दूर करना। काई सा फट जाना = तितर वितर हो जाना। छँट जाना। जैसे,—वादलो का, भीड का इत्यादि।

२ एक प्रकार का हरा मुर्चा जो ताँवे, पीतल इत्यादि के वरतनो पर जम जाता है। ३. मल। मैल। उ०—जव दर्पन लागी काई। तव दरस कहाँ ते पाई।—(शव्द०)।

काँधा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, (पु) कान्ह] दे० 'कान्हा'।

काँधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँधा] कंधा।

मुहा०—काँधी देना = इधर उधर करके बात टालना। टाल मटूल करना। काँधी मारना = घोड़े का अपनी गर्दन को किसी ओर को झटके के साथ फेरना जिससे सवार का आसन हिल जाय।

काँन्[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, (पु) कान्ह] दे० 'कान्ह'। उ०—मलक लोक वज्जत विषम गन गंध्रब्व विमान। सुरपति मति भुल्यो रहत्ति रास रचित ब्रज कान।—पृ० रा०, २।३८१।

काँन[2]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] दे० 'कान'। उ०—'बैजू' बनवारी वंशी अधर धरि वृंदावन चंद, बस किए सुनतहि कानन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५१।

कान्हु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण, हिं० कान] दे० 'कान'। उ०—पहिरो वस्त्र जादर सार कान्हें कुंडल आठोया।—बी० रासो, पृ० २२।

काँप—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्पा] १. बाँस या किसी और चीज की पतली लचीली तीली जो झुकाने से झुक जाय। २. पतंग या कनकौवे की वह पतली तीली जो धनुष की तरह झुकाकर लगाई जाती है। ३. सुअर का खाँग। ४. हाथी की दाँत। ५. कान में पहनने का सोने का गहना।

विशेष—यह पत्ते के आकार का होता और पहनने पर हिला करता है। स्त्रियाँ इसे पाँच पाँच या सात सात करके कान की बाली में पहनती हैं। यह जड़ाऊ भी होता है।

६. करनफूल। ७. कलई का चूना।

काँपना—क्रि० अ० [सं० कम्पन] १. हिलना। थरथराना। उ०—धन धन ओढ़ि बीर सिर गहा। काँपत बीजु दुहुँ दिसि रहा।—जायसी (शब्द०)। २. डर से काँपना। थर्राना। उ०—डोलइ गगन इंदर डरि काँपा। बासुकि जाइ पतारहि चाँपा।—जायसी (शब्द०)। ३. डरना। भयभीत होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

काँपा(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कंपा या काँप] लासा जिससे चिड़िया फँसती है। उ०—काम क्रोध को काँपा मायो नयो अधीन उपन को।—चरण० बानी, पृ० ११८।

काँपा(पु)[2]—संज्ञा पुं०[सं० कम्प]कंप। कंपन। उ०—गरजत गरन कहति नई एहै। काँपा जुत सुर पिकगन जेहै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२०।

काँमनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कामिनी] दे० 'कामिनी'। उ०—बाढ़ाण उ परद पेर पुगाण मंगल गावइ काँमनी।—बी० रासो०, पृ० ११।

काँमड़गारो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कामण (वशीकरण)+ कार, गुज० कामण + प्रा० गार (प्रत्य०)] जादूगर।—काँमड़गारो नंद मो रो प्यारो मधुरी बैन बजाई छे।—घनानंद, पृ० ४८३।

काँमण—संज्ञा स्त्री० [सं० कामिनी] दे० 'कामिनी'। उ०—रंग सुहामणउ जल सजल मीठा बोला बोइ। माल काँमणु सूद दक्खिण, बद हरि दिवइ न होइ।—ढोला०, पृ० ८८८।

काँमरि(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कामरी] दे० 'कामरी'। उ०—नैणा मेरी काँमरि चोरि लई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ११६।

काँय काँय—संज्ञा पुं० [अनु०] कौवे का शब्द।

काँव काँव—संज्ञा पुं० [अनु०] कौए का शब्द।

काँवर—संज्ञा स्त्री०[हिं० काँध + आवर (प्रत्य०)अथवा सं० स्कन्धभार] १. बाँस का एक मोटा टुकड़ा जिसके दोनों छोरों पर वस्तु लादने के लिए छींके बने रहते हैं और जिसे कंधे पर रखकर कहार आदि चलते हैं। बहँगी।

मुहा०—काँवर बहना = (१) भार या उत्तरदायित्व का निर्वाह करना। (२) बोझा ढोना।

२. एक डंडे के छोर पर बँधी हुई झाँप की टोकरियाँ जिनमें यात्री गंगाजल ले जाते हैं।

काँवरथी—संज्ञा पुं० [हिं० काँवरथी] दे० 'काँवारथी'।

काँवरा—वि० [प्र० कमला = पागल] व्याकुल। घबराया हुआ। भौचक्का। हक्का बक्का। उ०—उन लोगों ने चारों ओर से घेरकर मुझे काँवरा कर दिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

काँवरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'। उ०—(क) श्रवन श्रवन करि रहि मुई माता काँवरि लागि। तुम बिनु पानि न पावइ दसरथ लावै आगि।—जायसी (शब्द०)। (ख) नहुष तक्ट भरि कमल पठाए। बासों समाचारि तोर गोप ज तिनकों साथ पठाए। और बहुत काँवरि माखन दधि पहिरन काँधे चोरे। बहुत दिनकी मोरा रहिके और पर जलआमन ढोरी।—सूर (शब्द०)। (ग) कांटिन काँवरि चले कहारा। बिविध वस्तु को बरनइ पारा।—तुलसी (शब्द०)।

काँवरिया—संज्ञा पुं० [हिं० काँवरि] काँवरि लेकर चलनेवाला मनुष्य। काँवारथी।

काँवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँवर] दे० 'काँवरि'।

काँवरु[1]—संज्ञा पुं० [सं० कामरूप, प्रा० कामरूअ] कामरूप देश। उ०—तू काँवरू परा बस मोरा। कूना मन उत मनु रोना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३०।

काँवरु[2]—संज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल रोग।

काँवारथी—संज्ञा पुं० [सं० कामार्थी] वह जो किसी मनोरथ या किसी कामना से काँवर लेकर चले।

काँस—संज्ञा पुं० [सं० काश] एक प्रकार की लंबी घास जिसकी पत्तियाँ ऊँची और बहुत घनी होती हैं। उ०—(क) फूले काँस सकल महि छाई। जनु बरषा रितु प्रगट बुढ़ाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आयु कनक रस फूले काँस। बाढ़त भई गौ गौ बाँध (शब्द०)।

विशेष—इसकी पत्तियाँ दो दो ढाई ढाई हाथ लंबी और [illegible] होती हैं। कांड पुराना पड़ जाने पर कड़ा हो जाता है और इसी

२ जहाज के लगर की डाँड़ी, अर्थात् वह सीधा भाग जो मुड़े हुए अँकुड़ों और ऊपरी सिरे के बीच मे होता है। ३. बाँस या लकड़ी का कुछ पतला सीधा लट्ठा जो घर की छाजन में लगता तथा और और कामो मे भी आता है।

यौ०— कांडी कफन = मुरदे की रथी का सामान।

४ छड। लट्ठा। उ०—और सुआ सोने के डाँडी। सारदूल रूपे की काँड़ी।—जायसी (शब्द०)। ५ अरहर का सूखा डठल। रहठा।

काँडी²—सज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड = समूह, झुंड] मछलियों का समूह या झुंड। ढाँवर।

काँती‡—सज्ञा स्त्री०[हिं० कत्ती] १ कैंची। २ छुरी। ३ बिच्छू का डक। ४ अत्यधिक व्यथा।

काँथरा(पु)—सज्ञा पुं०[पुं० कन्था, हिं० कथरी का पुं०] दे० 'काँथरि'। उ०—दे मदिरा भर प्याला पीवों। होइ मतवार काँथरा सीवों।—इद्रा०, पृ० २०।

काँथरि(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कन्था] कथरी। गुदडी। उ०—कैसे ओढब काँथरि कया। कैसे पाँय चलब मुईं पंथा।—जायसी (शब्द०)।

काँथरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कथरी] कथरी। गुदड़ी।

काँद(पु)—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कघ(पु)†कांध] दे० 'कधा'। उ०—न देखे कोई त्यो आहिस्ता डग डग। हलूँ इस काँद ते उस कांद कू लग।—दक्खिनी०, पृ० २८२।

काँदना—क्रि० अ० [सं० क्रन्दन = चिल्लाना। बँग०] रोना। चिल्लाना। उ०—उसी समय एक ऋषि जो ईंधन के लिये वहाँ जा निकले, दूर ही से उसका रोना सुनके अति व्याकुल हो लगे सोच करने कि यह तो अनाथ स्त्री कोई काँदती है।—सदल मिश्र (शब्द०)।

काँदर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कादर] दे० 'कादर'। उ०—झलमल तीर तरवारि बरछी देषि काँदरं काचा।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ८८५।

काँदरना(पु)—क्रि० अ०[सं० क्रन्दन, हिं० काँवना] चिल्लाना। क्रदन करना। उ०—बीजल ज्यौं चमकै वाढाली, काइर काँदरि भाजै।—सुदर ग्र० भा० २, पृ० ८८५।

काँदवा—सज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम,(पु)कदो. काँदो] दे० 'काँदो'। उ०—बिन काँदव जिमि कमल सुखाई।—माधवा नल०, पृ० २०२।

काँदा(पु)—सज्ञा पुं०[सं० कन्द]एक गुल्म जिसमे प्याज की तरह गाँठ पडती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्याज से कुछ चौडी होती हैं। यह तालो के किनारे होता है। वर्षा का जल पडने पर इसमे पत्ते निकलते और सफेद रग के फूल (धतूरे के फूल के ऐसे) लगते हैं जिनके दलो पर पाँच छह खडी लाल धारियाँ होती हैं। इन धारियो के सिरो पर अर्धचद्राकार पीले चिह्न होते हैं। इसकी गाँठ माडी देने के काम मे आती है। इसे कँदली या कदली भी कहते हैं। इनका सस्कृत नाम भी कदली ही है।

२ प्याज। उ०—ज्यों मझ काँदा छोत जिम।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ६७।

काँदू—सज्ञा पुं० [सं० कान्दविक] १ बनियों की एक जाति। २ वह जाति जो भडभूजे का व्यवसाय करती है।

काँदो(पु)†—सज्ञा पुं० [सं० कर्दम, पा० कद्दम] कीच। कीचड। पक। उ०—अगिनिहि कहँ पानी गर आँटा। पछिनहि काहु न काँदो पाँटा।—जायसी (शब्द०)।

काँध(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कन्ध, प्रा० खध] कधा। उ०—(क) मत्त मतंग सब गजरहि बाँधे। निसि दिन रहहिं महाउत काँधे।—जायसी (शब्द०)। (ख) मस्तक टीका काँध जनेऊ। कवि बियास पंडित सहदेऊ।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—काँध देना = (१) सहारा देना। उठाने मे सहायता करना। किसी भारी चीज को कधे पर उठा कर ले जाने में सहायता देना। (२) अगीकार करना। ऊपर लेना। मानना। उ०—यह सो कृष्ण बलराम जस कीन्ह चहै छर बाँध। हम बिचार अस आवहि मेरहि दीज न काँध।—जायसी (शब्द०)। काँध मारना = न टिकना। धोखा देना। काम न आना। उ०—सजग जो नाहिं मार वल काँधा। बुध कहिये हस्ती काँ बाँधा।—जायसी (शब्द०)। काँध लगना = भारी या दूर तक बोझ ले जाने से कधा दुखना या कल्लाना (कहारो की बोली)। काँध लेना = उठाना। ऊपर लेना। सँभालना। उ०—काँध समुद धस लीन्हेसि भा पाछे सब कोइ। कोइ काहू न सँभारै आपन आपन होइ।—जायसी (शब्द०)।

२ कोल्हू की जाठ मे मुडी के ऊपर का पतला भाग।

काँधना(पु)—क्रि० स० [हिं काँध से नाम०] १ उठाना। सिर पर लेना। सँभालना। उ०—(क) प्रीति पहाड भार जो काँधा। किन तेहि छूट लाइ जिय बाँधा।—जायसी(शब्द०)। (ख) उठा बाँध जस सब गड बाँधा। कीजै बेगि भार जस काँधा।—जायसी (शब्द०)। १ ठानना। मचाना। उ०—(क) सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि दलत जेहि दूसरो सर न साँधो। आनि पर बाम, बिधि बाम तेहि राम सो सकत सग्राम दसकंध काँधो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भूपन भनत सिवराज तव कित्ति सम और की न किति कहिबे को काँधियतु है।—भूषण (शब्द०)। ३ स्वीकार करना। अगीकार करना। उ०—(क) जो पहिले मन मान न काँधे। परखे रतन गाँठि तब बाँधे।—जायसी(शब्द०)। (ख) तिनहिं जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी।—तुलसी (शब्द०)। ४ भार सहना। अँगेजना। सहना। उ०—बिरह पीर को नैन ये सकैं नही पल काँध। मीत आइकै तूँ इन्हें रूप पीठि दै बाँध।—रतनहजारा (शब्द०)।

काँधर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] कान्ह। कृष्ण। उ०—कहि सुदर भीतर जाइ जो देखो तो खोज नही कहूँ काँधर को।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०)।

काँधा¹†—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कध,] दे० 'कधा'।

१२ नाक में पहनने का एक आभूषण। कील। लौंग। १३. पजे के आकार का धातु का बना हुआ एक औजार जिससे अंग्रेज लोग खाना खाते हैं। १४ लकड़ी का एक ढाँचा जिसमे किसान धान भूसा उठाते हैं। वैशाखी। अखानी। १५ सूआ। सूजा। १६. घडी की सूई। १६. गणित मे गुणन के फल के शुद्धाशुद्ध की जाँच की एक क्रिया जिसमे एक दूसरे को काटती हुई दो लकीरें बनाई जाती हैं।

विशेष—गुण्य के अंकों को जोड़कर ९ ने भाग देते हैं अथवा एक एक अंक लेकर जोडते और उसमे से ९ घटाते जाते हैं। फिर जो बचता है, उसे काटनेवाली लकीरों के एक सिरे पर रखते हैं। फिर इसी प्रकार गुणक के अंकों को लेकर करते हैं, जो फल होता है, उसे लकीर के दूसरे सिरे पर रखते हैं, फिर इन दोनों आमने सामने के सिरों के अंकों को गुणते हैं और इसी प्रकार ९ से भाग देकर शेष को दूसरी लकीर के एक सिरे पर रखते हैं। अब यदि गुणन फल के अंकों को लेकर यही क्रिया करने से दूसरी लकीर के दूसरे सिरे पर रखने के लिये वही अंक आ जाय, तो गुणनफल ठीक समझना चाहिए। जैसे,—

५ — २८४ × १२ = ३४०८ परीक्ष्य।

२ + ८ + ४ = १४ ÷ ९ = शेष

६ ——|—— ६ ५ लकीर के एक सिरे पर।

१ + २ = ३ (९ का भाग नहीं लगता) दूसरे सिरे पर।

३.

५ × ३ = १५ ÷ ९ शेष ६, दूसरी लकीर के एक सिरे पर।

३ + ४ + ८ = १५ ÷ ९ शेष ६ दूसरे सिरे पर।

१८ वह क्रिया जो किसी गणित की शुद्धि की परीक्षा के लिये की जाय। १९ वह कुश्ती जिसमे दोनो पक्ष मिलकर न लड़ें, बल्कि प्रतिद्वंद्विता के भाव से लड़ें। २०. दरी की बिनावट मे उसके बेल बूटे का एक भेद जिसमे नोक निकली होती है। २१. एक प्रकार की आतशबाजी। २२. झाड या फानूस टाँगने या लटकाने की रस्सी की तरह बड़ी कँटिया। २३ मछली की हड्डी।

काँटा[2]†—संज्ञा पु० [सं० कण्ठ, या उपकण्ठ हिं० काँठा] जमुना के किनारे की वह निकम्मी भूमि जिसमे कुछ उपजता नहीं।

काँटाबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा + बाँस] एक प्रकार का कँटीला बाँस। मगरबास। नालबाँस। कटबाँसी।

विशेष—यह मध्य प्रदेश, पूर्वी बंगाल और आसाम को छोडकर प्राय शेष सारे भारत मे जगली रूप मे पाया जाता है और लगाया भी जाता है। तबाशीर प्राय इसी की गाँठों से निकलता है।

काँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा का अल्पा०] १ छोटा काँटा। कील। उ०—दरिया काँटी लोह की, पारस परसँ सोय।—दरिया० बानी, पृ० ३३।

क्रि० प्र०—गाडना।—लगाना।—ठोंकना।—जड़ना।

२ वह छोटी तराजू जिसकी डाँडी पर काँटा लगा हो। ऐसी तराजू सुनार लुहार आदि रखते हैं। ३ झुकी हुई छोटी कील। अँकुडी। ४ साँप पकडने की एक लकडी जिसके सिरे पर लोहे का अँकुडा लगा रहता है। ५. बेडी।

मुहा०—काँटी खाना = कैद काटना। जेल काटना। कैद होना। (जुआरियों की बोली)।

६. वह रूई जो धुनने के बाद बिनौला के साथ रह जाती है। ७ लडकों का खेल जिसमे वे डोरे मे कंकड़ बाँधकर लडाते हैं लगर।

मुहा०—काँटी लड़ाना = लगर लड़ाना।

काँठा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] १ गला। उ०—बाँवा कठ परा जरि काँठा। बिरह क जरा जाइ कहँ नाँठा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३७०। २ वह लाल नीली रेखा जो तोते के गले के किनारे मडलाकार निकलती है। उ०—हीरामन हौं तेहिके परेवा। काँठा फूट करत तेहि सेवा।—जायसी (शब्द०)। ३ किनारा। तट। उ०—(क) भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनि सायर काँठें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दरिया का काँठा।—(शब्द०), ४ पार्श्व। बगल।

काँठा[2]—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ] जुलाहों का लकडी का एक बालिश्त लबा पतला छड।

विशेष—इसमे जुलाहे बाना बुनने के लिये रेशम लपेटते हैं। यदि ताना बादले का होता है तो काँठे ही से बुनते भी हैं।

काँठी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठी] दे० 'काठी'।

काँडना(५)—क्रि० स० [सं० कण्डन (< √कडि = रौंदना, भूसी अलग करना)] १. रौंदना। कुचलना। २. धान को कूट कर चावल और भूसी अलग करना। कूटना। उ०—उदधि अपार उतरतहू न लागी बार केसरी को अडड ऐसो डाँडिगो। बाटिका उजारि अक्ष रक्षकनि मारि भट भारी भारी रावरे के चाउर से काँडिगो।—तुलसी ग्र०, पृ० १८८। ३. लात लगाना। खूब पीटना। मारना।

काँडली—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] लोनी। कुलफा।

काँडा[1]—संज्ञा पु० [सं० कर्णाक] १ पेडो का एक रोग जिसमे उनकी लकडी मे कीड़े पड जाते हैं। २ लकड़ी का कीडा। ३. दाँत का कीडा।

काँडा[2]—संज्ञा पुं० [सं० काण] काना।

काँडी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्डनी अथवा हिं० काँड़ना] १ ओखली का वह गड्ढा जिसमे धान आदि डालकर मूसल से कूटते हैं। २ भूमि मे गडा हुआ लकडी या पत्थर का टुकडा जिसमें धान कूटने के लिये गड्ढा बना रहता है। ३ हाथी का एक रोग जिसमे उसके पैर के तलवे मे गहरा घाव हो जाता है और उसको चलने फिरने मे बडा कष्ट होता है। घाव मे छोटे छोटे कीडे भी रहते हैं।

काँडी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १. लकडी का डंडा जिससे भारी चीजों को ढकेलते, ऊपर चढ़ाते तथा और प्रकार से हटाते हैं।

२ [illegible] पानी। छाँछ। उ०—(१) [illegible] बहुत [illegible] हेतु ही जोति निरंतर [illegible] जो ज्ञान [illegible] (२) [illegible] [illegible] (तुलसी०)। ३ [illegible] में [illegible] जाता है।

कांजीवरम् —[illegible] [सं० काञ्चीपुरम्] [illegible] राज्य का एक नगर [illegible]।

कांजीहाउस —संज्ञा पुं० [अं० काइन हाउस] वह मकान जहाँ गेरी [illegible] बिना प्रयोजन [illegible] मालिक कुछ [illegible] हैं।

कांट(पु)¹ —संज्ञा पुं० [सं० कण्टक, हिं० कांटा] दे० 'कांटा'। उ०—[illegible] पाय न पूजै [illegible] —चित्राव० (उद्द०)।

कांट(पु)² —संज्ञा पुं० [हिं० काट] मारना। उ०—दरिया नोना [illegible] —दरिया० बानी, पृ० २५।

कांटा(पु) —संज्ञा पुं० [हिं० कांट+आ (प्रत्य०)] दे० 'कांट'। उ०—[illegible] कान्ह कड़ैगा [illegible] —कबीर सा० सं०, पृ० ७३।

कांटा¹ —संज्ञा पुं० [सं० कण्टक, प्रा० कंटय, कंटग] [हिं० कंटीला] १ [illegible] और टहनियों में निकले हुए सुई [illegible] कड़े हो जाते हैं। कंटक। उ०—[illegible] लागहिं कांटे। [illegible] (तुलसी०)।

क्रि० प्र०—गड़ना।—चुभना।—धँसना।—निकलना।—[illegible]।

मुहा०—कांटा निकलना = (१) बाधा या कष्ट दूर होना। चैन होना। [illegible] (२) खटका मिटना। कांटा निकालना = (१) बाधा या कष्ट दूर करना। (२) खटका मिटाना। [illegible] कांटा बिछाना = [illegible] विघ्न करना। [illegible] कांटा = विघ्नरूप। बाधास्वरूप। कांटा बोना = [illegible] करना। उ०—[illegible] —[illegible], पृ० ५५२। कांटा होना = (१) [illegible] करना। उ०—[illegible] —कबीर (शब्द०)। [illegible] कांटा [illegible] कांटा सा = खटक [illegible] कांटा सा खटकना = [illegible] आँखों में कांटा सा खटकना = [illegible] [illegible] [illegible] उसकी [illegible] कांटा हो गई। कांटे पर की ओस = क्षणभंगुर वस्तु। थोड़े दिन रहनेवाली चीज। कांटों में घसीटना = किसी की इतनी अधिक प्रशंसा या आदर करना जिसके योग्य वह अपने को न समझे। (जब कोई मित्र या श्रेष्ठ पुरुष किसी की बहुत प्रशंसा या आदर करता है, तब वह नम्रता प्रकट करने के लिये कहता है कि 'आप तो मुझे कांटों में घसीटते हैं'।) कांटों पर लोटना = (१) दुःख से तड़पना। बेचैन होना। तिलमिलाना। (२) डाह से जलना। ईर्ष्या से व्याकुल होना। कांटों पर लोटाना = दुःख देना। सताना। तड़फाना। बेचैन करना। (२) डाह से जलाना। कांटों में फूल चुनना = दोषों में गुण ग्रहण करना। दोषों के बीच गुण देखना। उ०—लोग कांटों में फूल चुनते हैं।—चुभते०, पृ० ६।

२ वह कांटा जो मोर, मुर्गे, तीतर आदि पक्षियों की नर जातियों के पैरों में पंजे के ऊपर निकलता है। इससे लड़ते समय ये एक दूसरे को मारते हैं। खाँग।

क्रि० प्र०—मारना।

३ कांटा जो मैना आदि पक्षियों के गले में निकलता है।

विशेष—यह एक रोग है जिसमें पक्षी मर जाते हैं। पालतू मैना का कांटा लोग निकालते हैं।

मुहा०—कांटा लगना = पक्षी को कांटे का रोग होना।

४ छोटी छोटी नुकीली और खुरखुरी फुनियाँ जो जीभ में निकलती हैं।

मुहा०—जीभ या गले में कांटे पड़ना = अधिक प्यास से गला सूखना।

५ [स्त्री० अल्पा० कांटी] लोहे की जड़ी कील चाहे वह झुकी हो या सीधी।

क्रि० प्र०—गाड़ना।—जड़ना।—ठोंकना।—बैठाना।—लगाना।

६ मछली पकड़ने की झुकी हुई नोकदार अँकुसी या कटिया।

मुहा०—कांटा डालना या लगाना = मछली फँसाने के लिये कांटे को पानी में डालना।

७ लोहे की झुकी हुई अँकुड़ियों का गुच्छा जिसे कुएँ में डालकर गिरे हुए लोटे या गगरे आदि को निकालते हैं।

क्रि० प्र०—डालना।

८ सुई या कील की तरह की कोई नुकीली वस्तु। जैसे, साही की पीठ का कांटा, [illegible] का कांटा (जिसमें थोई [illegible] लगा रहता है)। ९ एक झुका हुआ लोहे का कांटा जिसमें [illegible] फँसाकर पटहार या पटवा गुहने का काम करता है। १०. वह सुई जो तराजू की डाँड़ी की पीठ पर होती है और जिससे दोनों पल्लों के बराबर होने की सूचना मिलती है।

विशेष—यदि कांटा ठीक सीधा खड़ा होगा तो समझा जायगा कि पल्ले बराबर हैं। यदि कुछ झुका हुआ या तिरछा होगा, तो समझा जायगा कि वे बराबर नहीं हैं।

११ वह तराजू जिसकी डाँड़ी पर कांटा होता है।

विशेष—इससे तौल ठीक ठीक मालूम होती है।

मुहा०—कांटे की तौल होना = न कम न अधिक होना। ठीक ठीक होना। कांटे न तुलना = नहँगा होना। गिरां होना।

कांगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगनी] दे० 'कँगनी'।

कांगर(पु)—संज्ञा पु० [फ़ा० कगूरह्] दे० 'कँगूरा'। उ०—जैसी विधि कांगरेऊ कोट पर जैसी विधि देपियत बुदबुदान नीर में।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ६५०।

कांगरू—संज्ञा पुं० [अ० कगू] दे० 'कंगारू'।

कांगारोल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागारोल] दे० 'कागारोल' उ०—आया है कालू का दौर घरो घर कांगारौल, पौर पौर ठौर ठौर पाप वेलि जागी है।—पोद्दार अभि० ग्र०,पृ० ४३३।

कांगुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगनी] दे० 'कँगनी'। उ०—निपजे छेत्र कांगुनी धान। तिनहि निरखि हरखे जु किसान।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

कांग्रेस—संज्ञा स्त्री० [अ० कांग्रेस] दे०'कांग्रेस'।

कांच¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] १. धोती का वह छोर जिसे दोनों जांघो के बीच से ले जाकर पीछे खोसते हैं। लाँग।

क्रि० प्र०—बांधना।—खोलना।

मुहा०—कांच खोलना = (१) प्रसग करना। उ०—कामी से कुता भला रितु सर खोले कांच। राम नाम जाना नहीं भावी जाय न बाँच।—कबीर (शब्द०)। (२) हिम्मत छोडना। साहस छोडना। विरोध करने मे असमर्थ होना। ३ गुदेंद्रिय के भीतर का भाग। गुदाचक्र। गुदावर्त।

क्रि० प्र०—निकलना = कांच का बाहर आना।

विशेष—एक रोग जिसमें कमजोरी आदि के कारण पाखाना फिरते समय कांच बाहर निकल आती है। यह रोग प्राय दस्त की बीमारीवाले को हो जाता है।

मुहा०—कांच निकलना = (१) किसी श्रम या चोट के सहने में असमर्थ होना। किसी आघात या परिश्रम से बुरी दशा होना। जैसे—(क) मारेंगे कांच निकल आवेगी। (ख) इस पत्थर को उठाओ तो कांच निकल आवे। कांच निकलना = (१) अत्यत चोट या कष्ट पहुँचाना। बेदम करना। (२) बहुत अधिक परिश्रम लेना।

कांच²—संज्ञा पुं० [सं० काच] एक मिश्र पदार्थ जो बालू और रेह या खारी मिट्टी को आग मे गलाने से बनती है और पारदर्शक होती है। उ०—कांच किरच बदले सठ लेही। कर तें डारि परसमणि देहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी चूडी, बोतल, दर्पण आदि बहुत सी चीजें बनती हैं। यह कडा और बहुत कडकीला होता है, इससे थोडी चोट से भी टूट जाता है। इसे बोलचाल मे शीशा भी कहते हैं।

कांचरि(पु)—संज्ञा स्त्री०[हिं० कांचरी] दे० 'कचारी'। उ०—तजो देह जिमि कांचरि सांपा।—कबीर सा०, पृ० ८५।

कांचरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका, हिं० कांचली] दे०'कांचली'। उ०—जौ लगि पौन चलै जग मे सिय जीवित है बिनु राम सँघाती। तौ लगि देह को यो तजु रे जैसे पन्नगी कांचरी को तजि जाती।—हनुमान (शब्द०)।

कांचली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका = आवरण] १ सांप की केचुली। उ०—बल, बक, हीरा, केवरा, कौडा करका, कांस। उरग कांचली, कमल, हिम, सिकता, भस्म, कपास।—के शव (शब्द०)। २ कंचुकी। चोली। उ०—रतन जडित की कांचली औ कसी कंचूवउ परउ हो सुमीढ़।—बी०रासो, पृ०६६।

कांचा(पु)—वि०[सं० कपण या कपण अथवा कुपक्व, *प्रा० कुपच्च* कुअच्च, कच्च, कच्चा] [स्त्री० कांची] १. कच्चा। अपक्व। २ अदृढ। दुर्बल। अस्थिर।

मुहा०—कांचा मन = जो शुद्धता और भक्ति मे दृढ़ न हो। उ०—जप माला, छापा तिलक सरै न एकौ काम। मन कांचे नाचे वृथा सांचे रांचे राम।—बिहारी (शब्द०) मन कांचा होना = जी छोटा होना। उत्साह और दृढ़ता न रहना। उ०—समय सुभाय नारि कर सांचा। मगल महँ भय मन अति कांचा।—तुलसी (शब्द०) कांची मति या बुद्धि = अपरिपक्व बुद्धि। खोटी समझ। उ०—ठकुराइत गिरिधर जू की सांची। हरि चरणारविंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति कांची। सूरदास भगवत भजत जे तिनकी लीक चहूँ युग खांची।—सूर (शब्द०)।

कांची(पु)—वि०[हिं० कांचा] दे० 'कच्चा'। उ०—काया कांची कांच सी, कचन होत न बार।—दरिया० बानी, पृ० ६।

कांचु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक, प्रा० कचुअ, कंचु] दे० 'कचुकी'। उ०—गलि पइहर्‌यो टंकाउलि हारि पहिरि, पदारथ कांचु वड।—बी० रासो,पृ० ११३।

कांचुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांचरी] दे० 'कांचरी'। उ०—जैसे सर्प कांचुरी जानै काया को ऐसे करि मानै।—कबीर सा०, पृ० ६५७।

कांचू¹†—संज्ञा पुं०[सं० कञ्चुल] केंचुल।

कांचू²—वि० [हिं० कांच]जिसे कांच का रोग हो।

कांछ—संज्ञा स्त्री०[हिं० कांच] दे० 'कांच'।

कांछना—क्रि० स० [हिं० काछना] दे० 'काछना'

कांछा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० काङ्क्षा] अभिलाषा।

कांज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं०कार्य, प्रा० कज्ज, अप०, कज]दे०'कार्य'। उ०—बढि साति छोटाहु कांज, कटक लटक परम बाज।—कीर्ति० पृ० ६८।

कांजी—संज्ञा स्त्री०[सं० काञ्जिक]एक प्रकार का खट्टा रस जो कई प्रकार से बनाया जाता है और जिसमे अचार और वड़े आदि भी पडते हैं।

विशेष—यह पाचक होता है और अपच मे दिया जाता है। इसके बनाने की प्रधान रीतियां ये हैं,—(क) चावल के मांड को मिट्टी के बर्तन मे तीन दिन तक राई मे मिलाकर रखते हैं और उसमें नमक आदि डालते हैं। (ख) राई को पीसकर पानी में घोलते हैं और फिर उसमे नमक, जीरा, सोंठ आदि मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखते हैं। उठने या खट्टा होने के पहले बड़े और अचार उसमें डालते हैं। (ग) दही के पानी में राई नमक मिलाकर रख देते हैं और उठने पर काम मे लाते हैं। (घ) चीनी और नीबू का रस अथवा सिरका मिलाकर पकाते और किमाम बनाते हैं।

कांस्टेबल—संज्ञा पुं० [अं० कान्स्टेबल] पुलिस का सिपाही।
यौ०—हेड कांस्टेबल=पुलिस के सिपाहियों का जमादार।
कांस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ कांसा। कसकुट।
यौ०—कांस्यकार। कांस्यदोहनी।
२ धातु का बना हुआ पानपात्र (को०)।
कांस्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०)।
कांस्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] कसेरा। भरतवाला। ठठेरा।
कांस्यताल—संज्ञा पुं० [सं०] मंजीरा। ताल।
कांस्यदोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांसे का बर्तन जिसमें दूध दुहा जाता है। कमोरी।
विशेष—यह गोदान के साथ दी जाती है।
कांस्यभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] कांसे का बरतन (को०)।
कांस्यमल—संज्ञा पुं० [सं०] तांबा पीतल आदि धातुओं में लगनेवाला मोर्चा (को०)।
कांस्ययुग—संज्ञा पुं० [सं०] इतिहास का वह युग जब अस्त्र शस्त्र और बर्तन आदि कांसे के बनते थे।
कां१(पु)—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को'। उ०—साईं नावों तोहि का माथ। —जग० बानी, पृ० ३३।
कां२(पु)†—क्रि० वि० [हिं० कहां का संक्षिप्त रूप] दे० 'कहां'। उ०—गया था कां तेरा तब होश दाईं, जो ऐसे मस्त दीवाने को लाई।—दक्खिनी०, पृ० २५१।
कांइ(पु)—सर्व० [अप०] कोई। कुछ। उ०—मैं अकेला ए दोइ जणां छेती नांही कांई।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।
कांइया—वि० [अनु० कांव कांव=(कौए का शब्द)] चालाक। धूर्त।
कांईं१†—अव्य० [सं० किम्] क्यों। उ०—माई म्हांको स्वप्न मे बरनी गोपाल। राती पीती चूनरि पहिरी मेहंदी पाणि रसाल। कांईं और की भरो भांवरें म्हाको जग जजाल। मीरा प्रभु गिरधरन लला सों करी सगाई हाल।—मीरा (शब्द०)।
कांईं२†—सर्व० [हिं० काहि] किसे। किसको।
कांका—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] कंगनी नाम का अनाज।
कांक२†—संज्ञा पुं० [सं० कङ्क] १. सफेद चील। कंक। २. गीध।
कांकड़१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, हिं० कंकड़] दे० 'कंकड़'। उ०—कासली पडेलो भूमि कांकड़ पैगाम।—शिखर०, पृ० ३३।
कांकड़२†—संज्ञा पुं० [हिं० कंकड़] कपास का बीज। बिनौला।
कांकड़३(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कङ्क] युद्ध। उ०—कांकण समै कुवेलियां सरकण तणो सुभाव।—बांकी०, ग्रं०, भा० ३, पृ० २४।
कांकर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] [स्त्री० अल्प० कांकरी] कंकड़। उ०—(क) कांकर पाथर जोरिके मसजिद लई चुनाय। ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय?—कबीर (शब्द०) (ख) कुस कंटक मग कांकर नाना। चलब पियादे बिनु पदत्राना।—तुलसी (शब्द०)।
कांकरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांकर का अल्पा०] छोटा कंकड़।—(क) कुस कंटक कांकरी कुराई। कटुक कठोर कुवस्तु दुराई। तुलसी (शब्द०)। (ख) गली सांकरी देखि री धरी कांकरी मारि नहिं बिसरैं बिसरायहूं हरे हांकरी नारि।—शृं० सत (शब्द०)।
मुहा०—कांकरी चुनना=चुपचाप मन मारकर बैठना। चिंता या वियोग के दुःख से किसी काम में मन न लगना।
कांकरु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कांकर] दे० 'कांकर'। उ०—घर बैठे आनि उख नींद करत 'कांकरु' चलावत निडर पाहि किन सीख दीनी अहो लै।—घनानंद' पृ० ४६२।
कांकल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कङ्क] युद्ध। उ०—मचियै कांकल मदत री, वीर न देखैं वाट।—बांकी ग्रं०, भा० १, पृ० ५।
कांकां—संज्ञा पुं० [अनु०] कौए की बोली। उ०—घरी एक सज्जन कुटुंब मिलि बैठे रुदन कराहीं। जैसे काग काग के मूए कां कां करि उड़ि जाहीं।—सूर (शब्द०)।
कांकुन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] दे० 'कंगनी'।
कांकुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांकुन] दे० 'कंगनी'।
कांख—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष] बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा। बगल। उ०— अंगदादि कपि मुर्छित करि समेत सुग्रीव। कांख दाबि कपिराज कहं चला अमित बल सींव।—तुलसी (शब्द०)।
कांखना—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी श्रम या पीड़ा से ऊंह आंह आदि शब्द मुंह से निकालना। २ मल या मूत्र को निकालने के लिये पेट की वायु को दबाना।
कांखासोती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांख+सं० स्रोत्र, प्रा० सोत] दुपट्टा डालने का एक ढंग। जनेउ की तरह दुपट्टा डालने का ढंग।
उ०— पियर उपरना।कांखासोती। दुहुं आचरन्हि लगे मनि मोती।—तुलसी (शब्द०)।
विशेष—इसमें दुपट्टे को बांए कंधे और पीठ पर से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते हैं और फिर बांए कंधे पर डाल लेते हैं।
कांखी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काङ्क्षिन्] दे० 'कांक्षी'। उ०—शुक भागवत प्रकट करि गायो कछू न दुविधा राखी। सूरदास ब्रजनारि संग हरि मांगी करहिं नहीं कोउ कांखी।—सूर (शब्द०)।
कांगड़ा१—संज्ञा पुं० [सं० कंक] खाकी रंग का एक पक्षी।
विशेष—इसकी छाती सफेद, कनपटी लाल और चोटी काली होती है। यह डीलडौल में बुलबुल से बड़ा और गिलगिलिया से छोटा होता है।
कांगड़ा२—संज्ञा पुं० [देश०] पंजाब प्रांत का एक छोटा पहाड़ी प्रदेश। उ०— मथुरा को छोड़कर कोट कांगड़ा में गई।—कबीर ग्रं०, पृ० ४०।
विशेष—इसमें एक छोटा ज्वालामुखी पर्वत है जो ज्वालामुखी देवी के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में यह कुलूत और कुलिंग प्रदेश के अंतर्गत था।
कांगड़ी— संज्ञा स्त्री० [हिं० कांगड़ा] एक छोटी अंगीठी जिसे कश्मीरी लोग गले में लटकाए रहते हैं।
विशेष—यह अंगूर के बेल की बनती है इसके भीतर मिट्टी लपेटी रहती है। पुरुष इसे गले से छाती के पास और स्त्रियां नाभि के पास लटकाती हैं।

है तथा फूल का रंग भी कुछ ललाई लिए होता है। कसौंजे का पौधा चकवँड के पौधे से बहुत कुछ मिलता जुलता है। भेद केवल यही है कि इसके पत्ते नुकीले होते हैं और चकवँड के गोल। इसकी फली चौड़ी और बीज नुकीले और कुछ चिपटे होते हैं, पर चकवँड़ की पतली फली और गोल होती है जिसके भीतर उर्द की तरह दाने होते हैं। यह कड़ुवा, गरम, कफ-वात-नाशक और खाँसी दूर करनेवाला होता है। कोई कोई इसका साग भी खाते हैं। लाल कसौंजे की पत्ती और बीज बवासीर की दवा से काम आते हैं।

पर्या०— कासमर्द। अरिमर्द। कासारि। कर्कश। कालकत। काल। कनक।

कसौंजी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कसौंजा] दे० 'कसौंजा'।

कसौंदा—सज्ञा पुं० [स० कासमर्द, प्रा० कासमद्द] दे० 'कसौंजा'। उ०— कोई हरफा रेउरी कसौंदा।—जायसी ग्रं०, पृ० २८७।

कसौंदी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कसौंदा] दे० 'कसौंजा'।

कसौटा(पु)—सज्ञा पु० [स० कषपट्ट, प्रा० कसवट्ट] दे० 'कसौटी'। उ०—कुसल कसौटा न भेल मलान। बिनु हुत वहे भेल बाहर बान।—विद्यापति, पृ० ३०६।

कसौटी—सज्ञा स्त्री० [सं० कषपट्टी, प्रा० कसवट्टी] १. एक प्रकार का काला पत्थर जिसपर रगड़कर सोने की परख की जाती है। शालिग्राम इसी पत्थर के होते हैं। कसौटी के खरल भी बनते हैं। उ०—कसिम्र कसौटी चिन्हिम्र हेम, प्रकृत परेखिम्र सुपुरुष पेम।—विद्यापति, पृ० ३८१।

क्रि० प्र०— पर कसना।— चढ़ाना।—रखना।—लगाना।

मुहा०— कसौटी पर कसना = (१) जाँचना। (२) खरा सिद्ध होना। उ०—निज विचारों की कसौटी पर कस चले है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३।

२. परीक्षा। जाँच। परख। जैसे,—विपत्ति ही धैर्य की कसौटी है। ३. जाँच या परीक्षा का आधार।

कसौली—सज्ञा पुं० [देश०] शिमले के पास ६००० फुट की ऊँचाई पर पहाड़ मे एक स्थान जहाँ कुत्ते, स्यार आदि के विष की दवा की जाती है।

कस्टम कस्टम्स—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कस्टम ड्यटी'।

कस्टम ड्यूटी—सज्ञा स्त्री० [अं०] वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुगी। परमट।

कस्टमहाउस—सज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान या मकान जहाँ विदेश से आने जानेवाले माल पर महसूल देना पड़ता है। परमट हाउस।

कस्त(पु)—सज्ञा पुं० [अ० कस्द] दृढ़ निश्चय। उ०—यह कस्त करि आए यहाँ रन हय्यारन कै भेंटवी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४।

कस्तरी—सज्ञा स्त्री० [फा० कासा] मिट्टी का चौड़े मुँह का एक वर्तन जिसमे दूध पकाया या रखा जाता है।

कस्तीर—सज्ञा पुं० [स०] टान [को०]।

कस्तूर—सज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] १. कस्तूरी मृग। वह मृग जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है। २ एक सुगंधित पदार्थ जो बीवर नामक जतु की नाभि से निकलता है।

कस्तूरा[1]—सज्ञा पुं० [स० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

कस्तूरा[2]—सज्ञा पुं० [देश०] १ जहाज के तख्तों की सधि या जोड़। २ वह सीप जिससे मोती निकलता है। ३. एक चिड़िया जिसका रग भूरा पेट कुछ सफेदी लिए तथा पैर और चोंच पीले होते हैं।

विशेष—यह पक्षी झुंडों मे रहना पसद करता है। यह पहाड़ी देशो मे कश्मीर के आसाम तक पाया जाता है और अच्छा बोलता है।

४. एक ओषधि जो पोर्ट ब्लेयर के पहाड़ो की चट्टानो से खुरचकर निकाली जाती है।

विशेष—यह दवा बहुत बलकारक होती है। दूध के साथ दो रत्ती भर खाई जाती है। लोग ऐसा मानते हैं कि यह अबाबील चिड़िया के मुँह का फेन है।

५. लोमड़ी के आकार का एक प्रकार का जानवर जिसकी दुम लोमड़ी की दुम से लंबी और झबरी होती है।

विशेष—कुछ लोगो का विश्वास है कि इसकी नाभि मे से भी कस्तूरी निकलती है, पर वह बात ठीक नही है।

कस्तूरिका[1] -सज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

कस्तूरिया[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

कस्तूरिया[2]—वि० १. कस्तूरीवाला। कस्तूरीमिश्रित। २. कस्तूरी के रंग का। मुश्की।

कस्तूरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगधित द्रव्य।

विशेष—यह एक प्रकार के मृग से निकलता है जो हिमालय पर गिलगित्त से आसाम तक ८००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक के स्थानो तथा तिब्बत और मध्य एशिया मे साइबेरिया तक अर्थात् बहुत ठडे स्थानो मे पाया जाता है। यह मृग बहुत चचल और छलाँग मारनेवाला होता है। डील डौल मे यह साधारण कुत्ते के बराबर होता है और रात को चरता है। नर मृग की नाभि के पास एक गाँठ होती है, जिसमे भूरे रग का चिकना सुगधित द्रव्य सचित रहता है। यह मृग जनवरी मे जोड़ा खाता है और इसी समय इसकी नाभि मे अधिक मात्रा से सुगधित द्रव्य मिलता है। शिकारी लोग इस मृग का शिकार कस्तूरी के लिये करते हैं। शिकार लेने पर इसकी नाभि काट ली जाती है, फिर शिकारी लोग इसमे रक्त आदि मिलाकर उसे सुखाते हैं। अच्छी से अच्छी कस्तूरी मे भी मिलावट पाई जाती है। कस्तूरी का नाफा मुर्गी के अडे के बराबर होता है। एक नाफे में लगभग आधी छटाँक कस्तूरी निकलती है। कस्तूरी के समान सुगधित पदार्थ कई एक अन्य जतुओ की नाभियो से भी निकलता है। वैद्यक मे तीन प्रकार की कस्तूरी मानी गई है, कपिल (सफेद), पिंगल और कृष्ण। नेपाल की कस्तूरी कपिल, कश्मीर की पिंगल और कामरूप (सिकिम, भूटान आदि) की कृष्ण होती है। कस्तूरी स्वाद में कड़वी और बहुत गरम होती है। यह वात पित्त, पीव,

कसीदागो—वि०[अ० कसीदह् + फा० गो] कसीदा लिखनेवाला।

कसीर—वि०[अ०] अधिक। बहुत। ज्यादा। उ०—आतिश की एक चिगारी रुई के अवारे कसीर को खाक कर डालती है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ११७।

कसीस¹—संज्ञा पुं० [सं० कासीस] लोहे का एक प्रकार का विकार जो खानो मे मिलता है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक हरा जिसे धातु कसीस' अथवा हरा या हीरा कसीस कहते हैं, दूसरा पीला जिसे पाशु या 'पुष्प कसीस' कहते हैं। कसैली वस्तु के साथ मिलने से कसीस काला रग उत्पन्न करता है अत यह रँगाई के काम मे बहुत आता है। तेजाब मे घुले हुए सोने को अलग करने के लिये हरा कसीस बडे काम का है। वैद्यक के अनुसार कसीस शीतल, कसैला, नेत्रो को हितकारी तथा विष, कोढ, कृमि और खुजली को दूर करनेवाला है।

कसीस²—संज्ञा स्त्री० [फा कशिश] दे० 'कशिश'। उ०—मार्‌यो पैचि कसीस करि बचन लगाया बान।—सुदर ग्र०, भा० १ पृ० २४७।

कसीसना (पु)—क्रि० अ० [हिं कसीस + ना (प्रत्य०)] १ आकर्षित करना। खीचना। उ०—वाम हाथ लीध वाह जीमणे कसीस जाह।— र० रू०, पृ० ७६। २ तानना।

कसूँव (पु)—संज्ञा पु० [सं०कुसुम्भ या कुसुम] दे०'कुसुम'। उ०—जैसा रग कसूँब का तैसा यहु ससार।—सत र०, पृ० १२६।

कसूँभ (पु)—संज्ञा पुं०[सं० कुसुम्भ] दे०'कुसुम। उ०—यूँ वे एकह पन रहे रग कसूँभ प्रमान।—पृ० रा०, २५। ७३२।

कसूँभी—वि०[सं० कुसुम्भ, हिं० कसूँभ + ई (प्रत्य०)] कुसुम के रग का अथवा कुसुभ के फूलो के रग से रँगा हुआ। उ०—सोनजुही सी वगमगति अँग जोवन जोति। सुरँग कसूँभी कचुकी दुरँग देह दुति होति।—विहारी (शब्द०)।

कसूत (पु)—संज्ञा पु० [हिं० क (= कु) + सूत] बुरा सूत। उलझनदार सूत। उ०—पूजै नवग्रह देवता पित्तर सतो अकूत। सहजो कैसे सुलझिहै होइ रहो सूत कसूत।—सहजो०, पृ० ४८।

कसून—संज्ञा पु० [देश०]कजी आँख का घोडा। सुलेमानी घोड़ा।

कसूम (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुसुम] दे० 'कुसुम'। उ०—हरि को हित ऐसो जैसो रग मजीठ ससार को हित जैसो कसूम दिन हुँती को। पोद्दार अभि०, ग्र० पृ० १६५।

कसूमर—संज्ञा पुं०[सं० कुसुम] दे० 'कुसुम'।

कसूमी (पु)†—वि० [हिं० कसूम + ई(प्रत्य०)] कुसुम रग की। उ०—पहिरैं कसूमी सारी, अंग अग छवि भारी, गोरी गोरी बाहुन मे मोती के गजरा।—नद ग्र०, पृ० ३५३।

कसूर—संज्ञा पुं० [अ० कुसूर] अपराध। दोष खता। उ०—(क) मैरा लगाडे पालड़ा, तोलां माँहि कसूर।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ६९। (ख) मैंने छोटी वडी भेड का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नही—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ६६९।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कसूरमद। कसूरवार। बेकसूर।

कसूरमद—वि०[अ० कुसूर + फा० मद] दोष। अपराधी।

कसूरवार—वि०[अ० कुसूर + हिं० वार(प्रत्य०)] दोषी। अपराधी।

कसेंडी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसहँडी, ने० कसौंडि] जलपात्र। उ०—तब वैष्णवन कसेंडी, डोरी काढिकै जल कूआं में तें काढ्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ७२।

कसेरहट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० कसेरा + हाट] दे० 'कसरहट्टा'।

कसेरा—संज्ञा पुं० [हिं० कांसा + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कसेरिन] कांसे, फूल आदि के बरतन ढालने और बेचनवाला।

यौ०—कसेरहट्टा या कसरहट्टा।

कसेरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कशेरु'।

कसेरुका—संज्ञा स्त्री०[सं०] दे० 'कशेरुका'।

कसेरू—संज्ञा पुं० [सं० कशेरु] एक प्रकार के मोथे की जड़ जो तालो और झीलो के किनारे मिलती है।

विशेष—यह जड गोल गाँठ की तरह होती है और इसके काले छिलके पर काले रोएँ या वाल होते हैं। कसेरू खाने मे मीठा और ठंढा होता है। फागुन मे यह तैयार हो जाता और असाढ़ तक मिलता है। सिंगापुर का कसेरू अच्छा होता है। कसेरू के पौधे को कही कही गोंदला भी कहते हैं।

कसया—संज्ञा पुं० [हिं० कसना] १ कसनेवाला। जकड़कर बाँधनेवाला। उ०—मतिराम कहै करवार के कसैया केते, गाडर से मूँडे जग हाँसी को प्रसग भी।—मति० ग्र०, पृ० ३६५। २. परखनेवाला। जाँचनेवाला। पारखी।

कसैला—वि० [हिं० कसाव + ऐला (प्रत्य०)] [स्त्री० कसैली] कषाय स्वादवाला। जिसमे कसाव हो। जिसके खाने से जीभ मे एक प्रकार की ऐंठन या संकोच मालूम हो। जैसे—आँवला, हड़ वहेड़ा, सुपारी आदि।

विशेष—कसैला छह रसो मे से एक है। कसैली वस्तुओं के उबालने से प्राय काला रंग निकलता है।

कसैलापन—संज्ञा पुं० [हिं० कसैला + पन (प्रत्य०)] कसैला होने का भाव।

कसैली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसैला] सुपारी।

कसोदरी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसौंदा + ई (प्रत्य०)] 'कसौंजा'। उ०—कनेर कसोदिय कैवर कोह। करोदिन कान्ह कहां कहु मोह।—पृ० रा० २, ३५५।

कसोरा—संज्ञा पुं० [हिं०कांसा + ओरा(प्रत्य०)] १. कटोरा। २ मिट्टी का प्याला।

कसौंजा—संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, प्रा० कासमद्द]एक पौधा जो बरसात मे उगता है और बहुत बढ़ने पर आदमी के बराबर ऊँचा होता है।

विशेष—पत्तियाँ इसकी एक सीके मे आमने सामने लगती हैं और चौडी तथा नुकीली होती हैं। जाडे के दिनो मे इसमे चकवँड की तरह के फूल लगते हैं। छह सात अगुल लवी, चिपटी फलियाँ लगती हैं। फलियो के भीतर बीज भरे रहते हैं, जो एक ओर कुछ नुकीले होते हैं। लाल कसौंजा सदाबहार होता है और इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रग की कुछ ललाई लिए हुए होती

कांसे के योग से खट्टी चीज का विगड़ जाना । जैसे,—इस बरतन मे दही कसा गया है।

विशेष—जब खट्टी चीज कांसे के बरतन मे देर तक रखी जाती है तब उसका स्वाद विगड़कर कसैला हो जाता है । ऐसी विगड़ी हुई चीज के खाने से वमन होता या जी मचलाता है।

२ स्वाद मे कसैला लगना । जैसे,— कच्चा अमरूद कसाता है ।

कसाना[2]—क्रि० स० [हिं० कसना का प्रे० रूप] दे० 'कसवाना' ।

कसाना[3](पु)—क्रि०अ० [हिं० कसना या कषायित] कष्टयुक्त होना। पीडित होना। उ०—अपडिया प्रेम कसाइयां, लोग जांणे दुखडियां । —कबीर ग्र० पृ० ६ ।

कसाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० कसाफत] १. मैलापन । गंदगी । २. गाढापन । ३. मोटाई । स्थूलता ।

कसाव(पु)—संज्ञा पु० [अ० कस्साव] दे० 'कसाई' । उ०—दरिया छूरी कसाव की, पारस परसै आप ।—सतवाणी०, पृ० १२६ ।

कसार[1]—संज्ञा पुं० [स० कृसर] चीनी मिला हुआ भुना आटा तथा सूजी । पँजीरी ।

कसार[2](पु)—संज्ञा पु० [स०कासार] दे० 'कासार । उ०—निरखि मलिन मुख नलिन कहुँ, फूले कमल कसार ।—नद०ग्र०,पृ० १३४।

कसालत—संज्ञा स्त्री० [अ०]१. आलस्य । शैथिल्य । २. थकावट । ३ काहिली ।

कसाला[1]—संज्ञा पु० [स० कष=पीडा, दु ख अथवा अ० कसालत]
१ कष्ट । तकलीफ । उ०—कहे ठाकुर कासो कहा कहिये हमें प्रीति करे के कसाले परे । —ठाकुर (शब्द०) ।

क्रि० प्र० —उठाना ।—करना ।—खींचना ।—झेलना ।—पड़ना ।—सहना ।

२ कठिन परिश्रम । श्रम । मेहनत उ०—करत सुतप बीते बहु काला । पुत्र हीन हित कियो कसाला ।—रघुराज (शब्द०)।

कसाला[2]—संज्ञा पु० [हिं० कसाव] खटाई जिसमे सोनार गहना साफ करते हैं ।

कसाव[1]—संज्ञा पुं० [सं० कषाय] कसैलापन । जैसे,—कढ़ी मे कसाव आ गया है ।

क्रि० प्र०— आना ।—पड़ना ।—होना ।

कसाव[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कसना] कसने का भाव । खिंचाव । तनाव ।

कसावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १. कसने का भाव । तनाव । खिंचावट । उ०—इसकी कसावट से कितनी ही मेमे दम घुट घुटकर मर गई । प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६२ । २. अच्छी गठन, विशेषत शरीर की ।

कसावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० कसाई] कसाई ।

कसावर—संज्ञा पुं० [हिं० कांसा] कांसे का थाली की तरह का बाजा जिसे लकड़ी से बजाते हैं । कांसे का घटा । उ०—ठनक कसावर रहा ठनाठन, थिरक चमारिन रही छनाछन । —ग्राम्या, पृ० ४४ ।

कसिपा—संज्ञा पुं० [सं० हिरण्यकशिपु] दे० 'हिरण्यकशिपु' । उ०—कसिया कहूँ पहलाद को मार डारूँ ।—कबीर सा०, पृ० १० ।

कसिपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । २. पका चावल । भात (को०) ।

कसिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] भूरे रग की एक चिड़िया जो राजपूताने और पजाब को छोड सारे भारतवर्ष मे पाई जाती है।

विशेष—यह पेडो की डालियो मे बहुत ऊँचाई पर घोसला बनाती हैं और पीले रंग के अडे देती है ।

कसियाना†—क्रि० अ० [हिं० कस=कसाव] कसाव से युक्त होना । तांबे या पीतल के बरतन मे रहने के कारण कसैला होना । कसाना ।

कसी[1]—संज्ञा स्त्री० [स० कशा=रस्सी] १. पृथ्वी नापने की एक रस्सी जो दो कदम या ४६.५ इच की होती है ।

कसी[2]—संज्ञा स्त्री०[सं० कषण=खरोचना, खोदना] हल की कुसी । लागूल । फाल ।

कसी[3]—संज्ञा स्त्री० [स० कशुक] एक पौधा जिसे सस्कृत मे गवेधुक और कशुक कहते हैं।

विशेष—वैदिक काल मे यज्ञो मे इसके चरु का प्रयोग होता था। उस समय इसकी खेती भी होती थी । यद्यपि आजकल मध्य प्रदेश, सिक्किम, आसाम और बरमा की जगली जातियो के अतिरिक्त इसकी खेती कोई नही करता, फिर भी यह समस्त भारत, चीन, जापान, बरमा, मलाया आदि देशो मे वन्य अवस्था मे मिलती है। इसकी कई जातियां हैं, पर रग के विचार से इसके प्राय दो भेद होते हैं । एक सफेद रग की, दूसरी मटमैली या स्याही लिए हुए होती है । यह वर्षा ऋतु मे उगती है। इसकी जड़ मे दो तीन बार डालियां निकलती हैं। इसके फल गोल, लबोतरे और एक ओर नुकीले होते हैं। इनके बीच सुगमता से छेद हो सकता है। छिलका इनका कड़ा और चिकना होता है। छिलके के भीतर सफेद रग की गिरी होती है जिसके आटे को रोटी गरीब लोग खाते हैं। इसे भूनकर सत्तू भी बनाते हैं। छिलका उतर जाने पर इसकी गिरी के टुकड़ो को चावल के साथ मिलाकर भात की तरह उबालकर खाते हैं। यह खाने में स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होती है । जापान आदि में इसके माँड़े से एक प्रकार का मद्य भी बनाया जाता है। इसका बीज औषध के काम आता है। इसके दानो को गूँथकर माला बनाई जाती है। नेपाल के थारू इसके बीज को गूँथकर टोकरो की झालर बनाते हैं।

पर्या०—कोडिल्ला । केस्सी । कसेई ।

कसीदा[1]—संज्ञा पुं० [फा० कशीदह्] दे० 'कशीदा' ।

कसीदा[2]—संज्ञा पुं० [अ० कसीदह्] उर्दू या फारसी भाषा की एक प्रकार की कविता, जिसमें प्राय किसी की स्तुति या निंदा की जाती है। इस कविता में १७ पक्ति से कम न हो, अधिक का कोई नियम नहीं है।

कसमिया—क्रि० वि० [हिं० कसम] कसम खाकर। शपथपूर्वक।

कसमीर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कश्मीर] केशर। उ०—गोर शरीर अधीर से लोचन मस्तक में कसमीर लगाएँ।—पोद्दार अभि०, पृ० ४६०।

कसर[1]—संज्ञा स्त्री०[अ०]१ कमी। न्यूनता। त्रुटि। उ०—कसर न मुझमे कुछ रही असर न अब तक तोहिं। आइ भावते दीजिए वेगि सुदरसन मोहिं।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—पड़ना।—रखना।—रहना।—होना।

मुहा०—कसर करना, छोड़ना, रखना=त्रुटि करना। कुछ बाकी छोडना। जैसे,—उन्होंने मेरी बुराई करने मे कोई कसर न की। कसर निकलना=कमी पूरी होना। कसर निकालना=कमी पूरी करना।

२. द्वेप। वैर। अकम। मनमुटाव। जैसे,—वे हमसे मन मे कुछ कमर रखते हैं।

क्रि० प्र०—रखना।

मुहा०—कसर निकालना या काढ़ना=बदला लेना। (दो आदमियो के बीच) कसर पड़ना=(दो आदमियो के बीच) मनमोटाव होना।

३. टोटा। घाटा। हानि। जैसे,—इस माल के बेचने मे हमे दो सौ की कसर पडती है।

क्रि० प्र०—पडना।—होना।

मुहा०—कसर खाना या सहना=हानि उठाना। घाटा सहना। कसर देना या भरना=घाटा पूरा करना।

४ नुक्स। दोप। विकार। जैसे,—उनके पेट मे कुछ कसर है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ किसी वस्तु के सूखने या उसमे से कूडा करकट निकलने से जो कमी हो। जैसे,—१० सेर गेहूँ में से १ सेर तो कसर गई।

क्रि० प्र०—जाना।

कसर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कुसुम या वर्रे का पौधा।

कसरकोर—संज्ञा स्त्री०[हिं० कसर+कोर] दे० 'कोरकसर'। उ०—यद्यपि कसरकोर किसी मे नहीं है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१२।

कसरत[1]—संज्ञा स्त्री०[अ० कसरत] [वि० कसरती] १ शरीर को पुष्ट और बलवान् बनाने के लिये दड, बैठक आदि परिश्रम का का काम। व्यायाम। मेहनत।

क्रि० प्र०—करना।

कसरत[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] अधिकता। बहुतायत। ज्यादती।

यौ०—कसरतराय=बहुमत।

कसरती—[अ० कसरत+हिं० ई (प्रत्य०)] १ कसरत करनेवाला। जैसे—कसरती जवान। २ कसरत से पुष्ट और बलवान् बनाया हुआ। जैसे—कसरती बदन।

कसरवा—संज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप। वि० दे० 'सालपान'।

कसरवानी—संज्ञा पुं०[सं० कास्यवणिक, हिं० केसरवानी] वनियो की एक जाति।

कसरहट्टा—संज्ञा पुं०[हिं० कसेरा+हट्ट या हाट] कसेरों का बाजार जहाँ बरतन बनते और बिकते हैं।

कसरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० कसर] दे० 'कसर'। उ०—करनी करत कसरि होय आई, तबहीं कानचर बाजु बँधाई—कबीर सा०, पृ० ६०७।

कसली—संज्ञा स्त्री०[सं०√कृष या कर्ष=खोदना+हिं० ली(प्रत्य०)] छोटा फावडा जिसकी धार पतली होती है।

कसवटी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० कषपट्टिका, प्रा० कसवट्टी]दे० 'कसौटी'।

कसवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसवाना] १ कसवाने की क्रिया। २. कसने की मजदूरी।

कसवाना—क्रि० स० [हिं० कसना का प्रे० रूप] कसने मे प्रवृत्त करना। कसने का काम कराना। जैसे—घोड़ा कसवा लाओ।

कसवार—संज्ञा पुं० [सं० कोशकार अथवा देश०] एक प्रकार की ईख जो डेढ़ इंच मोटी होती है और जिसका छिलका बादामी और कड़ा होता है।

विशेष—इसके भीतर के गूदे मे रस अधिक और रेशे कम होते हैं। यह अधिकतर चूसने के काम मे आती है। इसे कुमियार भी कहते हैं।

कसहँड—संज्ञा पुं० [सं० कास्यभाण्ड अथवा हिं० काँसा+हँडा] टूटे फूटे काँसे के बरतनों के टुकडे।

कसहँडा—संज्ञा पुं० [सं० कास्यभाण्ड] दे० 'कसहँडी'।

कसहँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कास्यभाण्ड अथवा हिं० काँसा+हाँडी] काँसे या पीतल का एक बरतन जिसका मुँह चौडा होता है।

विशेष—यह खाना पकाने या पानी रखने के काम मे आता है।

कसाइन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसाई का स्त्री] कसाई की स्त्री।

कसाइन[2]—वि० स्त्री० क्रूरतावाली। निठुर। उ०—नदकुमारहिं देख दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

कसाई[1]—संज्ञा पुं० [अ० कस्साब] [स्त्री० कसाइन] १ वधिक। घातक। २ गोघातक। बूचड।

मुहा०—कसाई के खूँटे बँधना=निष्ठुर के पाले पडना। कसाई का काठ=क्रूरता। कुत्सापूर्ण निर्दयता। उ०—कई बार उसने निश्चय किया कि अपने आप को कमाई के इस काठ से हटाकर ससार के भँवर मे डाल दे। अभिशप्त, पृ० ६५।

यौ०—कसाईवाडा।

कसाई[2]—वि० निर्दय। बेरहम। निष्ठुर।

कसाई[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसाना+आई (प्रत्य०)] दे० 'कसवाई'।

कसाईखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कसना=फ़ा० खानह्] वह स्थान जहाँ पशुओं का वध किया जाता है। जानवरो के काटने का स्थान।

कसाकस—क्रि० वि० [हिं० कसना] अच्छी तरह कसकर। ठसाठस।

कसाकसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] मनमुटाव। वैर। विरोध। तनातनी।

कसाना[1]—क्रि० अ० [हिं० काँसा या कसाव] १ कसैला हो जाना।

ततकार ।—कबीर (शब्द०)। ५. परीक्षा। परख। जाँच। उ०—(क) या मे कसनी भक्तन केरी। लेहु न नाथ अरज यह मेरी।—विश्राम (शब्द०)। (ख) साहु सिकंदर कसनी लीन्हा बरत अगिन मे डारी। मस्ता हाथी आनि झुकाए कठिन कला भइ भारी।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।—देना।

कसनी[2]— संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षणी] एक प्रकार की हथौडी जिससे कसेरे बर्तनों का गला बनाते हैं। हथौडी।

कसनी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० कसाना] कसाव का पुट। कसैली वस्तु मे डुबाने की क्रिया।

कसपत—संज्ञा पु० [देश०] १. काले रंग का कूटू। काला फाफर। २ कूटू का पौधा।

कसब—संज्ञा पु० [अ० कस्ब] १ परिश्रम। मेहनत। पेशा।—उ०—जाति भी ओछी करम भी ओछा ओछा कसब हमारा।—रै०बानी, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—उठाना।

२ छिनाला। व्यभिचार। उ०—बहुर कुमार अवस्था आई। कसब करन लाग्यों हरखाई।—रघुनाथ (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।— कमाना।—कमवाना।

कसबल—संज्ञा पुं०[हिं० कस+बल] १. शक्ति। सामर्थ्य। बल। जोर। ताकत। २. साहस। हिम्मत।

कसबा—संज्ञा पु० [अ० कस्बह्] [वि० कसबाती] बडा गाँव। साधारण गाँव से बडी और शहर से छोटी बस्ती।

कसबाती—वि० [अ० कस्बह्] [वि० स्त्री० कसबातिन] १ कसबे का। जो कसबे मे हो। जैसे—कसबाती मदरसा। २ कसबे का रहनेवाला।

कसबिन—संज्ञा स्त्री० [अ० कसब हिं० इन (प्रत्य०)] दे० 'कसबी'।

कसबी—संज्ञा स्त्री० [अ० कसब हिं० ई (प्रत्य०)] १. वेश्या। रंडी। पतुरिया।१. व्यभिचारिणी स्त्री। छिनाल औरत।

यौ०— कसबीखाना।

कसबीखाना—संज्ञा पु० [हिं० कसबी+फ़ा० खानह (प्रत्य०)] वेश्यालय।

कसम—संज्ञा स्त्री०[अ० कसम] शपथ। सौगंध। उ०—वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ।—भारतेंदु ग्र०, भाग १ पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—खिलाना।

मुहा०—कसम उतारना - (१) शपथ का प्रभाव दूर करना। खाई या दिलाई हुई शपथ के अनुसार न चलने पर उसके दोष का परिहार करना।

विशेष—खेल मे किसी लडके पर जब दूसरा लडका शपथ या कसम रख देता है तब वह कुछ वाक्य कहता है जिससे यह समझता है कि शपथ का प्रभाव दूर हो जायगा।

(२) किसी काम को नाममात्र के लिये करना। जैसे,—कसम उतारने को वे हमारे यहाँ भी होते गए थे। कसम देना, दिलाना, रखाना—किसी को शपथ द्वारा बाध्य करना। जैसे—हमारे सिर की कसम, तुम हमारे यहाँ आज आओ। (इन उदाहरण मे कसम दी गई है।) कसम लेना=कसम खिलाना। शपथ उठाने के लिये बाध्य करना। प्रतिज्ञा कराना। जैसे,—तुम अपने सिर की कसम खाओ कि वहाँ न जायँगे। (इस उदाहरण मे कसम ली गई है।) किसी बात की कसम खाना—(१) किसी बात के करने की प्रतिज्ञा करना। (२) किसी बात के न करने की प्रतिज्ञा करना। जैसे,—मैंने आज से वहाँ जाने की तो कसम खाई है। कसम तोडना=शपथ खाकर किसी कार्य को पूरा न करना। प्रतिज्ञा भंग करना। कसम खाने को=नाममात्र को। जैसे,—(क) हमारे पास कसम खाने को एक पैसा नहीं है। (ख) कसम खाने को तुम भी पुस्तक हाथ मे ले लो। कसम खाने के लिये=दे० 'कसम खाने को'। उ०—तो कसम खाने के लिये बेशक एक जगह है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६।

यौ०—कसमाकसमी=परस्पर प्रतिज्ञा।

कसमर(पु)—संज्ञा पु० [सं० कश्मल] दे० 'कश्मल'। उ०—नीमी रिपि निमी जिन्हि भखेव। कसेब काम कसमर दुरि भगेव।—सं० दरिया, पृ० ८६।

कसमस[1]—वि०[हिं० कस+मस (अनुध्व०)] कसा हुआ। कठोर। उ०—खींचती उबहनी वह, बरबस चोली से उभर उभर कसमस खिंचते संग युग रसभरे कलश।—ग्राम्या, पृ० १८।

कसमस[2]—संज्ञा पुं० स्त्री० दे० 'कसमसाहट'।

कसमसक(पु)—क्रि० वि० [हिं० कसमसाना] कसमसाते हुए। उ०—भुजन सो ४ ज बँधे अंग प्रति अंग सबे कसमसक कुम्हिलात सेज कुसुमन कली।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४७२।

कसमसना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० कसमसाना] दे० 'कसमसाना'। उ०—भए क्रुद्ध युद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोण शायक कसमसे।—तुलसी० (शब्द०)।

कसमसाना—क्रि० अ० [अनु०] १ एक ही स्थान पर बहुत सी वस्तुओं या व्यक्तियों का एक दूसरे से रगड खाते हुए हिलना डोलना। खलबलाना। कुलबुलाना। जैसे,-भीड के मारे लोग कसमसा रहे हैं। उ०—यहि के बीच निसाचर अनी। कसमसाति आई अति घनी।—तुलसी (शब्द०)। २ उकता-कर हिलना डोलना। ऊब ऊबकर इधर से उधर होना। जैसे,—ये बडी देर से यहाँ बैठे हैं, इसी से अब चलने के लिये कसमसा रहे हैं। ३ विचलित होना। घबराना। बेचैन होना। ४. आगा पीछा करना। हिचकना।

कसमसाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसमसाना+आहट (प्रत्य०)] १. कुलबुलाहट। जुम्बिश। डोलाव। हिलाव। २ बेचैनी। व्याकुलता। घबराहट।

कसमसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसमस+ई (प्रत्य०)] दे० 'कसमसाहट'।

कसमाकसमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसम] दोनों पक्षों का परस्पर कसम खाना।

ज्यो हिये पीर तीर सम सालत कसक कसक कसकानि ।—घट०, पृ० २०० ।

कसकुट—संज्ञा पुं०[हिं० कास + कुट = टुकड़ा] एक मिश्रित धातु जो तांबे और जस्ते को बराबर भाग से मिलाकर बनाई जाती है । भरत । कांसा ।

विशेष—इस धातु से बटलोई, लोटे, कटोरे आदि बनते हैं । इसके वर्तनों मे खट्टे पदार्थ बिगडकर जहरीले हो जाते हैं ।

कसगर—संज्ञा पुं० [फा० कासागर] मुसलमानो की एक जाति जो मिट्टी छोटे छोटे वर्तन बनाती है ।

कसट्ट(पु)—संज्ञा पु० [सं० कष्ट] दे० 'कष्ट' । उ०—मिटे सकट वाट घाट विघट्ट । रटै नाम तो कोटि काटै कसट्ट ।—पृ०रा०, १ ।३६३ ।

कसतुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [कस्तूरिका या कस्तूरी] दे० 'कस्तूरी, उ०—कीन्हेसि अगर कसतुरी वेना । कीन्हेसि भीमसेन औ चीना ।—जायसी ग्र०, पृ० २ ।

कसतूर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कस्तूरी] कस्तूरी । उ०—चदन सुलेप कसतूर चित्र । नभ कमल प्रगटि जनु किरन मित्र ।—पृ० रा०, ६ । ३६ ।

कसदार—वि० [हिं० कस + फा० दार (प्रत्य०)] १. ताकतवर । वलवान् । उ०—इनपर लक्ष्मीवाई के उन कसदार दो सौ घोडो का सपाटा पडा ।—झाँसी०, पृ० ४०० । २. जो अच्छी तरह कसा या जाँचा गया हो ।

कसन[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १ कसने की क्रिया । २. कसने की दिशा । कसने का ढग । जैसे,—इस वोरे की कसन ढीली पड गई है । ३ वह रस्सी जिससे किसी वस्तु को वाँधकर कसते हैं । ४ घोड़े की तग ।

कसन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कषन] दु ख । क्लेश । तप ।

कसनई—संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण] एक चिड़िया जिसके डैने काले, छाती और पीठ गुलाबी और चोच लाल रग की होती है ।

कसना[1]—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कस्सण] १. किसी वधन को दृढ़ करने के लिये उसकी डोरी आदि को खीचना । जकडने के लिये तानना । जैसे —(क) फीते को कसकर वाँध दो । (ख) पलंग की डोरी कस दो । २ वधन को खीचकर वँधी हुई वस्तु को अधिक दवाना । जैसे,—बोझ को थोड़ा और कस दो

मुहा०—कसकर = (१) खींचकर । जोर से । वलपूर्वक । जैसे, कसकर चार तमाचे लगाओ, सीधा हो जाय । उ०—दहै निगोडे नैन ये गहैं न चेत अचेत । हौं कसि कसिकै रिस करौं ये निरखे हँसि देत —(शब्द०) । (२) पूरा पूरा । वहुत अधिक । जैसे,—(क) कसकर तीन कोस चलना । (ख) कसकर दाम लेना । कसा = पूरा पूरा । वहुत अधिक । जैसे,— कसा कोस, कसा दाम । कसा तौलना = कम तौलना । तौल में कम देना

३ जकडकर वाँधना । जकडना । वाँधना । जैसे,—पेटी कसना । उ०—कटि पटपीत कसे वर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहु हाथा ।—तुलसी (शब्द) ४ पुरजों को दृढ़ करके वैठाना । जैसे,—पेंच कसना । ५. साज रखकर सवारी तैयार करना । जैसे,—घोडा कसना, हाथी कसना, गाडी कसना ।

मुहा०—कसा कसाया = चलने के लिये विलकुल तैयार । जैसे,—हम तो तुम्हारे आसरे मे कसे कसाए वैठे हैं ।

६ ठूँस ठूँसकर भरना । वहुत अधिक भरना । जैसे,—(क) संदूक को कपडों से कस दो । (ख) सदूक मे सव कपड़े कस दो । (ग) वदूक कसना = वंदूक भरना ।

कसना[2](पु)—क्रि० अ० १ वधन का खिचना जिससे वह अधिक जकड जाय । जकड जाना । जैसे,—कुत्ते का पट्टा कसा है, थोडा ढीला कर दो २. किसी लपेटने या पहनने की वस्तु का तंग होना । जैसे,—कुरता कसता है । ३ वधन के तनने या जकडने से वँधी हुई वस्त का अधिक दव जाना । जैसे,—कुत्ते का गला कसता है, पट्टा ढीला कर दो । ४ वँधना । जैसे,—विस्तर इत्यादि सव कस गया, चलिए । ५ साज रखकर सवारी का तैयार होना । जैसे'—गाडी कसी है, चलिए । ६ खूब भर जाना । जैसे—(क) सदूक कपडों से कसा है । (ख) पेट खूब कसा है, कुछ न खाएँगे ।

कसना[3]—क्रि० स० [सं० कषण] १ परखने के लिये सोने आदि धातुओ को कसौटी पर घिसना । कसौटी पर चढाना उ०—कचन रेख कसौटी कसी । जनु घन महँ दामिनी परगसी ।—जायसी (शब्द) २. खरे खोटे की पहचान करना । परखना । जाँचना । आजमाना । उ०—सूर प्रभु हंसत, अति प्रीति उर में वसत, इद्र को कसत हरि जगत-धाता ।—सूर (शब्द०) । ३. तलवार को लचाकर उसके लोहे की परीक्षा करना । ४ दूध की परीक्षा के लिये उसे आँच पर गाढ़ा करना । ५ दूध को गाढा करके खोया वनाना । जैसे—कुदा कसना । ६ घी मे भूनना । तलना ।

कसना[4]—क्रि० स० [सं० कषण = कष्ट देना] क्लेश देना । कष्ट पहुँचाना । उ०—(क) अत्रि आदि मुनिवर वहु वसहीं करहिं जोग, जप तप तन कसहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

कसना[5]—संज्ञा पुं० [स्त्री० कसनी] १ जिससे कोई वस्तु कसी जाय । वँधना । जैसे,—विस्तर का कसना । पलग का कसना । २ पिटारी, तकिए आदि का गिलाफ । वेठन । ३. एक प्रकार का जहरीला मकडा ।

कसनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० कषण अथवा हिं० कसना] दे० 'कसन' । उ०—महा तपन से जेहि कारन मुनि साधत तन मन कसनि ।—काष्ठ जिह्वा (शब्द०) ।

कसनिय(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] एक प्रकार की अँगिया । कसनी । उ०—फुँदिया और कसनिया राती । छायल वंद लाए गुजराती ।—जायसी ग्र०, पृ० १४५ ।

कसनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १. रस्सी जिससे कोई वस्तु वाँधी जाय । २ वह कपडा जिसमे किसी चीज को कसकर वाँधते हैं । वेठन । गिलाफ । ३. कचुकी । अँगिया । उ०—हुलसे कुच कसनी वंद टूटी । हुलसे भुज वलियाँ कर फूटी ।—जायसी (शब्द०) । ४ कसौटी । उ०—सतगुरु तो ऐसा मिला ताते लोह लोहार । कसनी दै कचन किया ताय लिया

कष्टकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत खींचखाँच की और कठिनता से ठीक घटनेवाली युक्ति। विचारों का घुमाव फिराव।

कष्टकारक¹—वि० [सं०] दु:खदायी। तकलीफदेह [को०]।

कष्टकारक²—संज्ञा पुं० संसार [को०]।

कष्टभागिनेय—संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी की बहन का लड़का [को०]।

कष्टमातुल—संज्ञा पुं० [सं०] सौतेली माँ का भाई [को०]।

कष्टमोचन—वि० [सं०] कष्ट से उबारनेवाला।

कष्टलभ्य—वि० [सं०] कष्ट से प्राप्त। कठिनाई से प्राप्त होनेवाला।

कष्टसाध्य—वि० [सं०] जिसका साधन या करना कठिन हो। मुश्किल से होनेवाला। जैसे,—कष्टसाध्य कार्य।

कष्टस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अरुचिकर स्थान [को०]।

कष्टार्जित—वि० [सं०] कष्ट से कमाया हुआ। अत्यंत परिश्रम से प्राप्त किया हुआ (को०)।

कष्टार्तव—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री को कष्ट से रजोधर्म का होना [को०]।

कष्टार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] खींचतान कर लगाया हुआ अर्थ [को०]।

कष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परीक्षा। २ कष्ट। ३ आघात [को०]।

कष्टित—वि० [सं०] [स्त्री० कष्टिता] दु:खित। दु:खी। उ०—मैं ऐसी हूँ न निज दु:ख से कष्टिता शोकमग्ना।—प्रिय०, पृ० २५६।

कष्टी—वि० स्त्री० [सं० कष्ट] १. प्रसववेदना से पीडित (स्त्री)। २. जिसे कष्ट हो। दु:खी। पीडित। दरशनारत दास त्रसित माया पास त्राहि त्राहि दास कष्टी।—तुलसी (शब्द०)।

कस¹—संज्ञा पुं० [सं० कष] १. परीक्षा। कसौटी। जाँच। उ०—जो मन लागै रामचरन अस। देह, गेह, सुत, वित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस। द्वंद-रहित, गतमान, ज्ञान रत, विषय-विरत खटाइ नाना कस।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६१।

क्रि० प्र०—पर खींचना या रखना।

२ तलवार की लचक जिससे उसकी उत्तमता की परख होती है।

कस²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसना] १. वह रस्सी जिनसे कोई वस्तु कसकर बाँधी जाय, जैसे,—गाड़ी की कस। मोट या पुरवट की कस। २ बंध। बंद। उ०—खेल खिलौं सतभाव लाडिले कंचुकि के कस खोलो।—घनानंद, पृ० ५६६।

कस³—संज्ञा पुं० [हिं० कसना] १ बल। जोर। उ०—रहि न सक्यो कस करि रह्यो बस करि लीनी मार। भेद दुसार कियो हियो तन दुति भेदी सार।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—कसबल।

२ दबाव। वश। काबू। इख्तियार। जैसे,—(क) वह आदमी हमारे कस का नहीं है। (ख) यह बात हमारे कस की होती तब तो?

मुहा०—कस का = वश का। अधीन। जिसपर अपना इख्तियार हो। कस में करना या रखना = वश में रखना। अधीन रखना। कस की गोदी = कुश्ती का पेंच।

विशेष—जब विपक्षी पेट में घुस आता है, तब खिलाड़ी अपना एक हाथ उसकी बगल के नीचे से ले जाकर उसकी गर्दन पर इस प्रकार चढ़ाता है कि दोनों की काँखें मिल जाती हैं। फिर वह दूसरे हाथ से विपक्षी का आगे बढ़ा हुआ पैर और (उसी ओर का) हाथ खींचकर गर्दन की ओर ले जाता हैं और झोंका देकर चित करता है।

३ रोक। अवरोध।

मुहा०—कस में कर रखना = रोक रखना। दबाना। उ०—परतिय दोष पुराण सुनि हँसि मुलकी सुखदानि। कस करि राखी मिश्रहूँ मुख आई मुसकानि।—बिहारी (शब्द०)।

कस⁴—संज्ञा पुं० [सं० कषाय, हिं० कसाव] १ 'कसाव' का संक्षिप्त रूप। २ निकाला हुआ अर्क। ३ सार। तत्व।

कस⁵—क्रि० वि० १. कैसे। क्योंकर। २. क्यों। उ०—सो काशी सेइय कस न।—तुलसी (शब्द०)।

कसई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कसी' या 'केसई'।

कसऊटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसौटी] दे० 'कसौटी'। उ०—तब की बात रहित भई, अब कसऊटी अदल चलाई।—कबीर सा०, पृ० ६२८।

कसक—संज्ञा स्त्री० [सं० कष् = आघात, चोट] १. वह पीड़ा जो किसी चोट के कारण उसके अच्छे हो जाने पर भी रह रहकर उठे। मीठा मीठा दर्द। साल। टीस। उ०—कसक बनी तब तें रहे बँधत न ऊपर खोट। दृग अनियारन की लगी जब ते हिय में चोट।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना। होना।

२ बहुत दिन का मन में हुआ द्वेष। पुराना वैर।

मुहा०—कसक निकालना या काढ़ना = पुराने वैर का बदला लेना।

३ हौसला। अरमान। अभिलाषा।

मुहा०—कसक मिटाना या निकालना = हौसला पूरा करना।

४. हमदर्दी। सहानुभूति। परपीड़ा का दु:ख। उ०—तिन सों चाहत दादि तैं मन पशु कौन हिसाब। छुरी चलावत हैं गरे जे बेकसक कसाव।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में यह संबंधकारक के साथ आता है।

कसकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसकना] कसक। टीस। पीड़ा। उ०—कुछ कसकन और कराह लिए। कुछ दर्द लिए कुछ दाह लिए।—हिल्लोल, पृ० १७।

कसकना—क्रि० अ० [हिं० कसक] दर्द करना। सालना। टीसना। उ०—(क) कमठ कठिन पीठ घट्ठा परो मंदर को आयो सोई काम पै करेजो कसकतु है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काहे को कलह नाध्यो, दारुण दाँवर बाँध्यो, कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया। नहीं कसकत मन निरखि कोमल तन तनिक दधि काज भली री तू मैया।—सूर (शब्द०) (ग) नासा मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह। काँटे लौं कसकत हिए गड़ी कटीली भौंह।—बिहारि (शब्द०)। (घ) नंदकुमारहिं देखि दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

कसकानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कसकना] दे० 'कसक'। उ०—

कश्मल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मोह। मूर्छा। बेहोशी। २ पाप। अघ। ३ अवरवारी।

कश्मल[2]—वि० [सं०] [स्त्री० कश्मला] पापयुक्त। मैला। गंदा।

कश्मीर—संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब के उत्तर में हिमालय से घिरा हुआ एक पहाड़ी प्रदेश जो प्राकृतिक सौंदर्य और उर्वरता के लिये संसार में प्रसिद्ध है।

विशेष—यहाँ अंगूर, सेब, नाशपाती, अनार, बादाम आदि फल बहुतायत से होते हैं। यहाँ बहुत से झीलें हैं जिनमें डल प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी भी बहुत भोले और सुंदर होते हैं। केसर इसी देश में होता है। यहाँ के शाल, दुशाले और लोइयाँ बहुत काल से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल में यह संस्कृत विद्यापीठ था। झेलम कश्मीर से होकर ही पंजाब की ओर बही है। ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ पहले जल ही जल था, कश्यप ऋषि ने बारामूला के मार्ग से सारा जल झेलम में निकाल दिया और यह अनूठा प्रदेश निकल आया। इसकी राजधानी श्रीनगर है जो समतल भूमि पर बसा हुआ है।

कश्मीरज—संज्ञा पुं० [सं०] केसर।

कश्मीरी[1]—वि० [हिं० कश्मीर+ई (प्रत्य०)] कश्मीर का। कश्मीर देश में उत्पन्न।

कश्मीरी[2]—संज्ञा स्त्री० १ कश्मीर देश की भाषा। २ एक प्रकार की चटनी।

विशेष—इसके बनाने की विधियाँ हैं—अदरक को छीलकर छोटे छोटे टुकड़े कर लेते हैं। तदनंतर शक्कर, मिर्च, शीतलचीनी, केसर, इलायची, जावित्री, सौंफ और जीरा आदि मिला देते हैं। फिर अंदाज से नमक और सिरका डालकर रख देते हैं।

कश्मीरी[3]—संज्ञा पुं० [हिं० कश्मीर] [स्त्री० कश्मीरिन] १ कश्मीर देश का निवासी। २ कश्मीर देश का घोड़ा।

कश्या[1]—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ शराब। मदिरा। २. घोड़े का पुट्ठा(को०)।

कश्य[2]—पुं० चाबुक मारने के योग्य [को०]।

कश्यप—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वैदिककालीन ऋषि का नाम।

विशेष—ऋग्वेद में इनके बनाए हुए अनेक मंत्र हैं।

२ एक प्रजापति का नाम। ३ कछुआ। कच्छप। ४ एक प्रकार की मछली। ५ एक प्रकार का मृग। ६. सप्तर्षिमंडल के एक तारे का नाम।

कश्यप—वि० [सं०] १ काले दाँतवाला। २ मद्यप। शराबी।

कश्यपनंदन—संज्ञा पुं० [सं० कश्यपनन्दन] गरुड [को०]।

कष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सान। २ कसौटी (पत्थर)।

यौ०—कषपट्टिका।

३ परीक्षा। जाँच। ४ रगड़ने की क्रिया (को०)।

कषण[1]—वि० [सं०] बिना पका हुआ। कच्चा [को०]।

कषण[2]—संज्ञा पुं० १ रगड़ना। २. चिह्न बनाना। ३. खरोंचना। ४. कसौटी पर सोने को कसना [को०]।

कषट—संज्ञा पुं०[सं० कष्ट] दे० 'कष्ट'। उ०—मन वचन क्रम भ्रम कषट सहत तन।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४५६।

कषट्ट—संज्ञा पुं० [सं० कष्ट] दे० 'कष्ट'। उ०—जग जंतु जनम्म अनंत कषट्टय महा दुपट्टय ह्वाल हुआ।—राम० धर्म०, पृ० ३००।

कषपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कसौटी [को०]।

कषा—संज्ञा पुं० [सं०]दे० 'कशा'।

कषाइ—संज्ञा स्त्री० [सं० कषाय] दे० 'कषाय'। उ०—जाके रवक सुनत सब, कर्म कषाइ नसाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२३।

कषाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ सूर्य [को०]।

कषाय[1]—वि० [सं०] १ कसैला। बाकठ।

विशेष—यह छह रसों में है।

२ सुगंधित। खुशबूदार। ३ रंगा हुआ। ४ गेरू के रंग का। गैरिक।

यौ०—कषायवस्त्र।

५ मधुर स्वरवाला (को०)। ६. अनुपयुक्त। अनुचित (को०)। ७ गंदा (को०)।

कषाय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसैली वस्तु। २. गोंद। वृक्ष का निर्यास। ३ क्वाथ। गाढ़ा रस। ४ सोनापाठा का पेड़। श्योनाक वृक्ष। ५ क्रोध लोभादि विकार (जैन), जैसे,—कषाय दोष। ६ कलियुग। ७ अंगरागलेपन (को०)। ८ धूल (को०)। ९. गंदगी (को०)। १०. विनाश। ध्वंस (को०)। ११. उत्तेजना। भावावेश (को०)। १२. मंदता। मूर्खता(को०)। १३. सांसारिक पदार्थों के प्रति अनुरक्ति (को०)।

कषायित—वि० [सं०] १ गेरू के रंग का। २. प्रभावित [को०]।

कषायी[1]—[सं० कषायिन्] १ जिस से गोंद जैसा पदार्थ निकले। २. कसैला। ३. गेरुए रंग का। ४ भौतिकतावादी। दुनियादार [को०]।

कषायी[2]—संज्ञा पुं० खजूर, शाल आदि वृक्ष [को०]।

कषि—वि० [सं०] हानिकारक। नुकसानदेह [को०]।

कषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पक्षी [को०]।

कषित—वि० [सं०] १ रगड़ा हुआ। कसौटी पर कसा हुआ। २. जिसे आघात लगा हो [को०]।

कषीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

कषेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रीढ़ [को०]।

कष्कष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा [को०]।

कष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्लेश। पीड़ा। वेदना। तकलीफ। व्यथा। दुःख।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—झेलना। देना—भोगना।—सहना।

२ संकट। आपत्ति। मुसीबत। ३. पाप। दोष (को०)। ४ दुष्टता। शैतानी (को०)। ५ प्रयत्न। उद्योग (को०)। ६. परिश्रम। श्रम (को०)।

कष्ट[2]—वि० १. बुरा। सदाप। २ हानिकारक। ३ जो क्रमश बुरी हालत को पहुँचा हो। ४ बदतर। कष्टकर। दुःखदायक। ५. चिंतापूर्ण। ६. कठिन। दुस्साध्य। ७. घातक [को०]।

कष्टकर—वि० [सं०] कष्ट देनेवाला। तकलीफदेह।

कवैं—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कवैक' (कौर)।

कवैत—संज्ञा पुं० [हिं० पवैं > कवैत ?] [स्त्री० कवैतिन] १. पैदल। दौड़ाक। २. बहुत काम करने वाला व्यक्ति।

कवैन—संज्ञा पुं० [हिं०] कवल (कौर)।

कवैया¹—संज्ञा पुं० [हिं० किंवा] पैर के कील। जिसके पैर की यह कील निकलकर मुई रहती है।—(शब्द०)।

कवैया²—संज्ञा पुं० [हिं० कौवा+एया (प्रत्य०)] कौए का बच्चा।

कवैसुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवीश्वर] कवीश्वर। श्रेष्ठ कवि। उ०—रन उत्पाई वेग निस्सा सोच सोचग लिहै। किरणक वर्ने कवेस, पन्थो जगपत उचर्पे।—रघु० रू०, पृ० १३।

कवोष्ण—वि० [सं०] हलका गरम। गुनगुना (कौ०)।

कव्य—संज्ञा पुं० [सं०]वह अन्न जो पितरों को दिया जाये। वह द्रव्य जिससे पिंड, पितृयज्ञादि किए जायें। उ०—विधिवत कव्य सँजोइ नित्त हमें तर्पित करे।—शकुंतला पृ० १२५।

विशेष—कव्य अन्न श्रोत्रिय को देना चाहिए।

कव्यवाह, कव्यवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिसमे पिंड से पितृयज्ञ में आहुति दी जाती है।

कव्व(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काव्य, प्रा० कव्व] दे० 'काव्य'। उ०—ते मोत्ते मलओ निरुडि गए, जइसओ तइसओ कव्व।—कीर्ति०, पृ० ४।

कव्वाण(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण प्रा० किवाण] दे० 'कृपाण'। उ०—काल कव्वाण कसी सिर ऊपरै मारसी जोय नहि कोय जाडा।—राम० धर्म० पृ० १३६।

कव्वाल—सज्ञा पुं० [हिं० कौवाल] दे० 'कौवाल'।

कश¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कशा] चाबुक।

कश²—सज्ञा पुं० [फा०] १. खिचाव।

यौ०—कशमकश। धुम्रांकश (स्टीमर)।

२ हुक्के या चिलम का दम। फूँक। जैसे,—दो कश हुक्का पी लें तब चलें।

क्रि० प्र०—खींचना।—मारना।—लगाना।—लेना।

कश³—वि० खीचनेवाला। करनेवाला। जैसे,—आराकश, मेहनतकश, कद्दूकश।

विशेष—इस अर्थ मे इसका प्रयोग केवल समस्त पदो के अंत मे होता है।

कशकु—सज्ञा पुं० [सं०] गवेधुक्। कसी।

कशकोल—सज्ञा पुं० [हिं० कजकोल] दे० 'कजकोल'।

कशमकश—सज्ञा स्त्री० [फा० कश्मकश] १ खीचातानी। २ भीड। धक्कमधक्का। ३ आगापीछा। सोचविचार। असमंजस। दुविधा।

कशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. रस्सी। २. कोडा। चाबुक।

यौ०—कशात्रय = कोडा मारने के तीन प्रकार।

विशेष—चाबुक मारने के तीन प्रकार कहे गए हैं—मृदु, मध्य और निष्ठुर। साधारण नटखटी पर मृदु आघात होता है और भयक होने या घोड़े इत्यादि देखकर बिदकने पर मध्य या निष्ठुर आघात किया जाता है। भड़कने पर अथवा पर चाबुक मारना चाहिए और घोड़ी देखकर हिनहिनाने या बिदकने पर कंधे पर चाबुक मारना चाहिए।

कशाघात—संज्ञा पुं० [सं०] चाबुक या कोड़े की मार।

कशारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मकांड में यज्ञ की उत्तर वेदी जिसपर अग्नि जलाई जाती है और कभी कभी अग्निकुंड भी बनाया जाता है।

कशिक—संज्ञा पुं० [सं०] नेवला (कौ०)।

कशिपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तकिया। २. बिछौना। आसन। ३. पहनावा। कपड़ा। ४. अन्न। ५. भात। ६. शंख (कौ०)।

यौ०—हिरण्यकशिपु।

कशिश—संज्ञा पुं० [फा०] १. आकर्षण। खिंचाव। २. झुकाव। रुझान। प्रवृत्ति। ३ रोचकता।

कशीदया—संज्ञा पुं० [फा० कशीद = खींचना + पा = पैर] कुश्ती का एक पेंच जिसमे विपक्षी की गरदन पर बाँया हाथ रखकर बाएँ पजे से उसका दाहिना मोजा अपनी तरफ को खीच और उसके दाहिने हाथ से पकड़कर गिरा देते है।

कशीदा¹—सज्ञा पुं० [फा० कशीदा] कपड़े पर सुई और तागे से निकाला हुआ काम। तागे भरकर कपड़े मे निकाले हुए बेल-बूटे। गुलकारी का काम।

विशेष—कशीदा कई प्रकार का होता है, जैसे—सादा, गंडारीदार, तिनकलिया, कश्मीदार, मुर्रीदार, पेंचदार, जंजीरेदार, गुलदार इत्यादि।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—निकालना।

कशीदा²—वि० [फा० कशीदह्] १. खिंचा हुआ। उठाया हुआ। २. अप्रसन्न।

यौ०—कशीदा कामत = लंबे डीलडौलवाला।

कशेरु—सज्ञा पुं० [सं०]१. रीढ़ की हड्डी। २. एक प्रकार की घास। ३ जंबू-द्वीप के नौ खंडो मे से एक। ४. कसेरू (कौ०)।

कशेरुक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कसेरू'।

कशेरुका—सज्ञा स्त्री० [सं०] पीठ की लंबी हड्डी। रीढ़।

कशेरू—सज्ञा पुं० [सं० कशेरु] दे० 'कसेरू'।

कश्चित्¹—वि० [सं०] कोई। कोई एक।

कश्चित्²—सर्व० [सं०] कोई (व्यक्ति)।

कश्ती—सज्ञा स्त्री० [फा०] १. नौका। नाव। उ०—आपकी कश्ती जहाँन कि, मस्ती राह निजात।—कबीर०, पृ० ५०। २. पान, मिठाई या भायना बाँटने के लिए धातु या काठ का बना छिछला पात्र विशेष। थाल।

कविता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनोविकारो पर प्रभाव डालनेवाला रमणीय पद्यमय वर्णन । काव्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—जोड़ना ।—पढ़ना ।—रचना ।

कविता[2]—संज्ञा पुं०, वि० [सं० कवितृ] दे० 'कवि' । उ०—(क) वरने नष की उपमा कविता । सु जरे मनु कुंदन मुत्तियता । —पृ० रा०, २१ । ८६ । (ख) दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि शकर को ।—कविता कौ०, भा०२, पृ० ६३ ।

कविताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कविता] दे० 'कविता' ।

कविताना—क्रि० स० [सं० कविता से नाम०] पद्यवद्ध करना । छद की जोडजाड़ करना ।

कविताव्रत—वि० [सं०] काव्यरचना का व्रत लेनेवाला । उ०—हुए कृती कविताव्रत राजकवि समूह ।—अनामिका, पृ० १४२ ।

कवित्त—संज्ञा पुं० [सं० कवित्व] १ कविता । काव्य । उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका ।—तुलसी (शब्द०) । २ दडक के अंतर्गत ३१ अक्षरों का एक वृत्त ।

विशेष—इसमे प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं । केवल अंत मे गुरु होना चाहिए, शेप वर्णों के लिये लघु गुरु का कोई नियम नही है । जहाँ तक हो, सम वर्ण के शब्दो का प्रयोग करें तो पाठ मधुर होता है । यदि विपम वर्ण के शब्द आएँ तो दो एक साथ हो । इसे मनहरन और घनाक्षरी भी कहते हैं । जैसे,—कूलन मे, केलि मे, कछारन मे, कुजन में, क्यारिन में कलिन कलीन किलकत है । कहै पद्माकर परागन मे, पौनहू मे, पातन में, पिक में, पलासन पगत है । द्वारे मे, दिसान मे दुनी मे, देस देसन मे, देखो दीप दीपन में, दीपत दिगत है । वीथिन मे, व्रज मे, नवेलिन मे, वेलिन मे, वनन में, वागन मे, वगरयो वसत है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६१ ।

३. छप्पय छद का एक नाम ।

कवित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ काव्य-रचना-शक्ति । २ काव्य का गुण ।

यौ०—कवित्वशक्ति ।

कविनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] कविश्रेष्ठ । कवियो का स्वामी । श्रेष्ठ कवि । उ०—अक्रमातिशय उक्ति सो कहि भूपन कविनाथ ।—भूपण ग्रं०, पृ० ८२ ।

कविपरपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कविपरम्परा] कवियो की परपरा । पूरा कविसमूह या सप्रदाय । उ०—जिसका विधान कविपरपरा वरावर करती चली आ रही है उसके प्रति उपेक्षा प्रकट करने''' का जो नया फैशन टाल्सटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है ।—रस०, पृ० ६४ ।

कविपुगव—संज्ञा पुं० [सं० कविपुङ्गव] श्रेष्ठ कवि । वडा कवि । उ०—इस प्रत्यक्षवादिता के लिये साप्रतिक राजनीति सवलित कविपुगवो और साहित्यिको से अधिक प्रशसा के भाजन अवश्य हैं ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८६ ।

कविपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ भृगु के एक पुत्र का नाम । २. शुक्राचार्य ।

कविप्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य मे प्रचलित रूढ़ियाँ जो सत्य न होने पर भी सत्य की भाँति ही काव्य मे वर्णित हुई हैं । कविसमय । कविरूढ़ि । जैसे, केले से कपूर निकलना या चकवा चकई का दिन मे साथ साथ रहना और रात में अलग हो जाना, आदि ।

कविर्मनीषी—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ कवि । महान् कवि । चिंतक कवि ।—अपरा, पृ० २०० ।

कविराज—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रेष्ठ कवि । उ०—इतमें हम महाराज हैं उतैं आप कविराज ।—अकवरी०, पृ० १२६ । २ भाट । ३. वगाली वैद्यो की उपाधि ।

कविरामायण—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि [को०] ।

कविराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवि + हिं० राय] दे० 'कविराज' । उ०—अकवर ने इन्हें कविराय की उपाधि दी थी ।—अकवरी०, पृ० ८४ ।

कविलास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कैलास, प्रा० कइलास, कविलास] १ कैलास । २. स्वर्ग । उ०—सात सहस हस्ती सिंहली । जनु कविलास इरावत वली ।—जायसी (शब्द०) ।

कविलासिका—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की वीणा ।

कविली(पु)—वि० [हिं० कावुली] दे० 'कावुली' । उ०—वत्तीस सहस कविली करूर । जम जोर जोध नज्जरि प्रकर ।—पृ० रा०, १३ । १३ ।

कविवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवि की वाणी । कविता । काव्य । उ०—कविवाणी के प्रसाद से हम ससार से सुख दु:ख, आनद क्लेश का शुद्ध स्वार्थमुक्त रूप मे अनुभव करते हैं ।—रस०, पृ० २४ ।

कविशेखर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सगीत मे ताल के ६० मुख्य भेदो मे से एक । २. उत्तम कवियो को प्रदत्त एक उपाधि (को०) ।

कविशेखर[2]—वि० श्रेष्ठ कवि [को०] ।

कविसमय—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में प्रचलित रूढियाँ । कविप्रसिद्धि ।

कविसम्राट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कवियो की श्रेष्ठतासूचक एक उपाधि । २. महान् कवि । श्रेष्ठ कवि ।

कविसम्राट्—वि० कवियो में श्रेष्ठ । अच्छे कवियो मे अच्छा या उत्तम । उ०—आप उच्चकोटि के कविसम्राट् भी हैं और प्रशस्त काव्याचार्य भी ।—रस क०, पृ० ३ ।

कवींद्र—संज्ञा पुं० [सं० कवीन्द्र] श्रेष्ठ कवि । वड़ा कवि ।

कविय—संज्ञा पुं० [सं०] 'कविक' [को०] ।

कवी[1]—वि० [अ० कवी] वलवान् । शक्तिशाली । मजवूत । दृढ़ । उ०—दलालत यो सही कुरान सूँ है । कवी इसलाम के ईमान सूँ है ।—दक्खिनी०, पृ० १९३ ।

कवी[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि' । उ०—किवलो पिच्छू कहैं लहू लघु अक लहावैं । गिण वद वस गुरू कवी लघु चार कहावैं ।—रघु० रू०, पृ० ५ ।

कवीठ—संज्ञा पुं० [सं० कपीत्थ, प्रा० कविट्ठ] कैथा । कैथ ।

कल्ला[3]—संज्ञा पुं० [फा] १. गाल के भीतर का अंश। जबड़ा। उ०—त्यों बोले उमराउनि हल्ला। जम के भये कटीले कल्ला। —लाला (शब्द०)।

यौ०—कल्लातोड़। कल्लादराज।

मुहा०—कल्ला चलाना = मुँह चलाना। खाना। जैसे,—कल्ला चले बला टले। कल्ला दबाना = (१) गला दबाना। बोलने से रोकना। मुँह पकड़ना। (२) अपने सामने दूसरे को न बोलने देना। कल्ला फुलाना = (१) गाल फुलाना। खफगी या रंज से मुँह फुलाना या किसी से बोलचाल बंद कर देना। रिसाना। रूठना। (२) घमंड से मुँह फुलाना या बनाना। घमंड करना।

२. जबड़े के नीचे गले तक का स्थान; जैसे, खसी का कल्ला। कल्ले का मांस।

मुहा०—कल्ले पाए = सिर और पैर का मांस। कल्ला मारना = गाल बजाना या मारना। डींग हाँकना। शेखी बघारना।

कल्ला[4]†—संज्ञा पुं० [हिं० कलह] झगड़ा। तकरार। वादविवाद।

यौ०—झगड़ा कल्ला = वादविवाद।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

कल्ला[5]--संज्ञा पुं०[हिं० कल्ला] लप का वह ऊपरी भाग जिसमें बत्ती जलती है। बर्नर।

कल्ला[6]†—संज्ञा पुं० [सं० कलाचि, हिं० कलाई] कलाई।

कल्लाठल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कल्ला + अनु० ठल्ला] मजबूत कलाई। उ०—ऐसा पहलवान था कि बस मैं क्या कहूँ। इधर देखो, यह चपचे (हाथ से दिखाकर) यह कल्ला ठल्ला।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७१।

कल्लातोड़—वि० [हिं० कल्ला + तोड़] १. मुँहतोड़। प्रबल। २. जोड़ तोड़ का। बराबरी का।

कल्लादराज—वि० [फा०][संज्ञा कल्लादराजी, कल्लेदराजी] बढ बढ़कर बात बोलनेवाला। दुर्वचन कहनेवाला। जिसकी जबान में लगाम न हो। मुँहजोर। जैसे,—वह बडी कल्लेदराज औरत है।

कल्लादराजी—संज्ञा स्त्री०[फा०]बढ़ बढ़कर बातें करना। मुँहजोरी।

कल्लाना[1]—क्रि० अ० [सं० कड् या कल् = असन्न होना] १ शरीर में चमड़े के ऊपर ही ऊपर कुछ जलन लिए हुए एक प्रकार की पीडा होना, जैसे थप्पड लगने से। २. असह्य होना। दुःखदायी होना।

मुहा०—जी कल्लाना = चित्त को दुःख पहुँचना। उ०—आज वे बिना खाए गए हैं, वह भला काहे को खाने पीने को पूछेगी। जैसा हमारा जी कल्लाता है, वैसा ही उसका भी थोड़े कल्लायगा —सौ अजान० (शब्द०)।

कल्लाना[2]--क्रि० अ० [हिं० कल्ला] १. कल्ले निकलना। पल्लवित होना। २. विकसित होना। समृद्ध होना। उ०—वे पुराने परिवार वृक्ष की कलमों के रूप में नई भूमि पा, नए परिवार की लहलहाती शाखा के रूप में कल्ला उठे।—भस्मावृत०, पृ० ९।

कल्लाश—संज्ञा पुं०[अ० कल्लास]चढी हुई नदी। वह नदी जिसमें बाढ़ आई हो। उ०—कल्लाश जो शाहो गदा अलहाम वही कलमः निदा।—कबीर मं०, पृ० ३७१।

कल्लि—क्रि० वि० [सं०] कल। आनेवाला दिन। अगला दिन[को०]।

कल्लू†—वि० [हिं० काला] काला कलूटा।

कल्लेदराज--वि० [फा० कल्लादराज] दे० 'कल्लादराज'।

कल्लेदराजी—संज्ञा [फा० कल्लादराजी] स्त्री० दे० 'कल्लादराजी'।

कल्लोल—संज्ञा पुं० [सं०] १ पानी की लहर। तरंग। २. मौज। उमंग। आमोद प्रमोद। क्रीडा। ३. शत्रु। दुश्मन (को०)।

कल्लोलना(पु)—क्रि० अ० [सं० कल्लोल] कलोलना।

कल्लोलित—वि० [सं०] लहराता हुआ। तरंगित।

कल्लोलिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्लोल करनेवाली नदी। लहराती हुई नदी।

कल्लोलिनी[2]—वि० कल्लोल करनेवाली। कल कल करनेवाली।

कल्व—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु या भवननिर्माण शिल्प में द्वार के वे किनारे जो नुकीले बनाए जाते हैं।

कल्ह†— क्रि० वि० [सं० कल्य, कल्लि] दे० 'कल'। उ०—कल्ह संध्या को ऐसी बदली छाई कि मेरे सिर में पीडा आई।—श्यामा०, पृ० ६।

कल्हक--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो कबूतर के बराबर होती है।

विशेष—इसका रंग ईंट का सा लाल होता है, केवल कंठ काला होता है, आँखें मोतीचूर होती हैं और पैर लाल होते हैं।

कल्हण—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक प्रसिद्ध पंडित और इतिहासकार।

विशेष—ये कश्मीर के राजमंत्री चंपक प्रभु के पुत्र और राजतरंगिणी के कर्ता थे। इनका समय ईसवी १२वीं शताब्दी का मध्य है।

कल्हर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कल्लर] दे० 'कल्लर'।

कल्हरना[1]†—क्रि० अ० [हिं० कड़ाह + ना (प्रत्य०)] भुनना। कड़ाही में तला जाना।

कल्हरना[2]—क्रि० अ० [प्रा० कल्हार] पुष्पित होना। पल्लवित होना। विकसित होना। उ०—कामलता कल्हरी पेम मारुत झकझोरी।—पृ० रा०, २५। ३८१।

कल्हरा[1]†—संज्ञा पुं० [देश०] करघे की वह लकड़ी जिसे चक कहते हैं। विशेष दे० 'चक'।

कल्हाना(पु)—क्रि० स० [हिं० कहलाना] दे० 'कहलाना'। उ०—खबर सुन सामभीन ने मिलके सारे कल्हा भेजे हैं उसकूँ।—दक्खिनी०, पृ० १९०।

कल्हार[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० कल्हारना] कल्हारने की क्रिया या भाव।

कल्हार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कोईं। श्वेत कमलिनी। उ०—मुक्ताफल कल्हार कमल तहाँ कुंदन से मणिन सों जरी पाल चहूँ ओर साँकरी।—राम० धर्म०, पृ० ६७।

कल्माषकंठ—संज्ञा पुं० [सं० कल्माषकण्ठ] शिव।

कल्माषपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।

कल्माषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी का नाम [को०]।

कल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सवेरा। भोर। प्रात काल। २ आनेवाला कल। उ०—आएँगे फिर ये इसी विध कल्य।—साकेत, पृ० १६६। ३ मधु। शराब। ४. बधाई। शुभकामना (को०)। ५ शुभ समाचार। सुसवाद (को०)। ६. स्वास्थ्य (को०)। ७ बीता हुआ कल [को०]। ८ प्रशसा (को०)। ९. उपाय। साधन (को०)। १० क्षेपण (को०)।

कल्य²—वि० १. स्वस्थ। निरोग। २ तैयार। प्रस्तुत। ३. चतुर। ४ शुभ। मगलकारक। ५. बहरा और गूँगा। ६ उपदेशात्मक। शैक्षिक। ७ कुशल। दक्ष [को०]।

कल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य [को०]।

कल्यपाल, कल्यपालक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कल्यपाली] कलवार।

कल्यवत—संज्ञा पुं० [सं०] सवेरे का भोजन। कलेवा [को०]।

कल्यान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कल्याण'। उ०—कुम्मैत कुमद कल्यान। मोती सु मगसी ग्रान।—हम्मीर रा०, पृ० १२५।

कल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह बछिया जो बरदाने के योग्य हो गई हो। कलोर। २ मदिरा। शराब। ३ हरीतकी। ४ बधाई। शुभकामना [को०]।

कल्याण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगल। शुभ। भलाई।

यौ०—कल्याणकारी।

२ सोना। ३ सपूर्ण जाति का एक शुद्ध राग।

विशेष—यह श्रीराग का सातवाँ पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। कोई कोई इसे मेघ राग का पुत्र मानते हैं। इसके मिश्र और शुद्ध मिलकर यमन कल्याण, शुद्ध कल्याण, जयत कल्याण, श्रावणी कल्याण, पूरिया कल्याण, कल्याण बराली, कल्याण कामोद, नट कल्याण, श्याम कल्याण, हेम कल्याण, क्षेम कल्याण, भूपाली कल्याण ये बारह भेद हैं। इसका सरगम यह है—'ग, म, ध, रि, स, नि, ध, प, म, स, रि, ग'।

४ एक प्रकार का घृत (वैद्यक)। ५ सौभाग्य (को०)। ६. प्रसन्नता। सुख (को०)। ७. सपन्नता (को०)। ८. त्योहार (को०)। ९ स्वर्ग (को०)।

कल्याण²—वि० [स्त्री० कल्याणी] १. शुभ। अच्छा। भला। मगलप्रद।

यौ०—कल्याणभार्य।

२ सुदर (को०)। ३. प्रामाणिक। यथार्थ (को०)।

कल्याणक, कल्याणकर—वि० [सं०] शुभ या कल्याण करनेवाला। कल्याणकारक [को०]।

कल्याणकारी—वि० [सं० कल्याणकारिन्] [वि० स्त्री० कल्याणकारिणी] दे० कल्याणकर' [को०]।

कल्याणकामोद—संज्ञा पुं० [सं०] सपूर्ण जाति का एक सकर राग जो रात के पहले पहर मे गाया जाता है।

कल्याणकृत्—वि० [सं०] १ कल्याणपूर्ण या मंगलमय कार्य करनेवाला। २. भाग्यशाली [को०]।

कल्याणधार(पु)—वि० [सं० कल्याणधार] कल्याणकर। उ०—उस कल्याणधार एकमात्र छप्पर को जिसके नीचे असख्य आर्य सतानो को सुख छाया की आशा है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६०।

कल्याणनट—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक सकर राग जो कल्याण और नट के सयोग से बनता है।

कल्याणबीज—संज्ञा पुं० [सं०] मसूर [को०]।

कल्याणभार्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो बार बार विवाह करे, पर जिसकी स्त्री मर जाय।

कल्याणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल [को०]।

कल्याणी¹—वि० स्त्री० [सं०] १ कल्याण करनेवाली। सुदरी। २ कल्याणकर। मगलकारक। उ०—विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण।—कामायनी, पृ० ५८।

कल्याणी²—संज्ञा स्त्री० १ माषपर्णी। जगली उडद। २ गाय। ३ प्रयाग तीर्थ की एक प्रसिद्ध देवी। ४ पवित्र गाय। (को०)। ५ बछिया (को०)। ६ एक रागिनी (को०)।

कल्याणीय—वि० [सं० कल्याणी] कल्याणकारी। उ०—हे, परम *कल्याणमय, तेरी कल्याणीय लीला को मैं नही जानता हूँ*।—त्याग०, पृ० ४५।

कल्यान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कल्याण] दे० 'कल्याण'।

कल्यानकर(पु)—वि० [सं० कल्याणकर] दे० 'कल्याणकर'। उ०—'हरिचद' सीस राजत सदा कलिमलहर कल्यानकर।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ६६०।

कल्याश—संज्ञा पुं० [सं०] सवेरे का भोजन। कलेवा [को०]।

कल्योना†—संज्ञा पुं० [सं० कल्य] कलेवा।

कल्ल—वि० [सं०] बहरा [को०]।

कल्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहरापन [को०]।

कल्लर¹—संज्ञा पुं० [देश०] १ नोनी मिट्टी।

क्रि० प्र०—लगना।

२. रेह। ऊसर। बंदर। उ०—सैकडो क्लेशो के साथ एक एक पैसा इकटठा करना और फिर विवाह के समय अधे होकर कल्लर में बखेर देना।—भाग्यवती (शब्द०)।

कल्लर²—वि० नमकीन। उ०—कै हल्लर फल्लर करै, पावै कल्लर रात।—बाँकी ग्र०, भा० ३ पृ० ८१।

कल्लाँच—वि० [तु० कल्लाच] १ लुच्चा। शोहदा। गुडा। चाँई। २. दरिद्र। कगाल। अनाथ।

कल्ला¹—संज्ञा पुं० [सं० करीर = बाँस का करैल] १ अकुर। कनफा। किल्ला। गोफा।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।—फूटना।

यौ०—करमकल्ला।

कल्ला²—संज्ञा पुं० [सं० कुल्या] वह गड्ढा या कूआँ जिसे पान के भीटे पर पान सींचने के लिये खोदते हैं।

कल्पवर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के भाई जो देवक के पुत्र थे।

कल्पवास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कल्पवासी, वि० स्त्री० कल्पवासिनी] माघ के महीने में महीना भर गंगा तट पर संयम के साथ रहना।

कल्पविटप—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

कल्पविद्—वि० [सं०] कल्पसूत्रों का ज्ञाता [को०]।

कल्पवृक्ष- संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार देवलोक का एक वृक्ष जो समुद्र मथने के समय समुद्र से निकला हुआ और १४ रत्नों में माना जाता है। यह इंद्र को दिया गया था।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि इससे जिस वस्तु की प्रार्थना की जाय, वही यह देता है। इसका नाश कल्पांत तक नहीं होता। इसी प्रकार का एक पेड़ मुसलमानों के स्वर्ग में भी है जिसे वे तूबा कहते हैं।

पर्या०—कल्पद्रुम। कल्पतरु। सुरतरु। कल्पलता। देवतरु।

२ एक वृक्ष जो संसार में सब पेड़ों से ऊँचा, घेरदार और दीर्घजीवी होता है।

विशेष—अफ्रीका के सेनीगाल नामक प्रदेश में इसका एक पेड़ है जिसके विषय में विद्वानों का अनुमान है कि वह ५२०० वर्ष का है। यह पेड़ ४० से लेकर ७० फुट तक ऊँचा होता है। सावन भादों में यह पत्तों और फूलों से लदा हुआ दिखाई पड़ता है। फूल प्रायः सफेद रंग के होते हैं और चार छह इंच तक चौड़े होते हैं। इनसे पके संतरों की महक आती है। फूलों के झड़ जाने पर कद्दू के आकार के फल लगते हैं, जो एक फुट लंबे होते हैं। फल पकने पर खटमिट्ठे होते हैं, जिन्हें बंदर बहुत खाते हैं। मिस्र देश के लोग फल का रस निकालकर और उसमें शक्कर मिलाकर पीते हैं। इसका गूदा पेचिश में देते हैं, इसके बीज दवा के काम में आते हैं। कहीं कहीं इसकी पत्तियों की बुकनी भोजन में मिलाकर खाते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत नहीं होती, इसी से इसमें बड़े बड़े खोड़रे पड़ जाते हैं। इसकी छाल के रेशे की रस्सी बनती है और एक प्रकार का कपड़ा भी बुना जाता है। यह वृक्ष भारतवर्ष में मद्रास, बंबई और मध्यप्रदेश में बहुत मिलता है। बरसात में बीज बोने से यह लगता है और बहुत जल्दी बढ़ता है। इसे गोरख इमली भी कहते हैं।

कल्पशाखी—संज्ञा पुं० [सं० कल्पशाखिन्] कल्पवृक्ष। उ०—जयति संग्राम जय राम संदेशहर कौशल कुशल कल्याण भाखी। राम विरहार्क संतप्त भरतादि नर नारि शीतल करण कल्पशाखी।—तुलसी (शब्द०)।

कल्पसाल—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष। उ०—आक कल्पसाल को निसाक कहै कहा माल मोंहि लै पिनाकपानि सीस श्री बढाई है।—दीन० ग्रं०, पृ० १३०।

कल्पसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह सूत्रग्रंथ जिसमें यज्ञादि कर्मों या गृह्य कर्मों का विधान लिखा हो।

विशेष—ऐसे ग्रंथ वेदों की प्रत्येक शाखा के लिये पृथक् पृथक् ऋषियों के बनाए हुए हैं और विषयभेद से इनके दो भेद हैं—श्रौत और गृह्य। वे सूत्रग्रंथ जिनमें दर्शपौर्णमास से लेकर अश्वमेधादि यज्ञों तक की विधि का विधान है, श्रौतसूत्र कहलाते हैं, तथा जिनमें गृहस्थों के पंचमहायज्ञादि कृत्यों और गर्भाधानादि संस्कारों की विधि लिखी है, वे गृह्यसूत्र कहलाते हैं।

कल्पहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रों के अनुसार वह हिंसा जो पकाने, पीसने आदि में होती है। हिंदू इसे 'पंचसूना' कहते हैं।

कल्पांत—संज्ञा पुं० [सं० कल्पान्त] प्रलय।

कल्पातीत[1]— संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के शास्त्रों के अनुसार देवताओं का एक गण।

विशेष—यह वैमानिक देवताओं के अंतर्गत है। इसके देवता दो प्रकार के हैं और इनकी संख्या १४ है—नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर।

कल्पातीत[2]—वि० जिसका अंत कल्प में भी न हो। नित्य।

कल्पारंभी- संज्ञा पुं० [सं० कल्पारम्भिन्] प्रशंसा कराने के लालच से काम करनेवाला। वाहवाही के लिये कुछ करनेवाला।

कल्पिक— वि० [सं०] योग्य। उपयुक्त [को०]।

कल्पित— वि० [सं०] १ जिसकी कल्पना की गई हो। २ मनमाना। मनगढ़ंत। फर्जी।

यौ० कपोलकल्पित।

३ बनावटी। नकली।

कल्पितोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें कवि उपमेय के लिये कोई एक स्वाभाविक उपयुक्त उपमान न मिलने से मनमाना उपमान कल्पित कर लेता है। इसे 'अभूतोपमा' भी कहते हैं। जैसे,—(क) कंकनहार विविध भूषण विधि रचे निज कर मन लाई।—गजमणि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडगन मंडल वारिद पर नवग्रह रची अथाई।—तुलसी (शब्द०)। इसमें गजमुक्ता के हार के बीच में पदिक की शोभा के हेतु उपयुक्त उपमान न पाकर कवि कल्पना करता है कि मानो मेघों के ऊपर बैठकर नवग्रह ने अथाई रची है। (ख) राधे मुख ते छुटि अलक लगी पयोधर आय। शशि मंडल ते मेरु सिर लटकी भोगिनी भाय (शब्द०)।

कल्ब—संज्ञा पुं० [अ० कल्ब] १ हृदय। दिल। उ०— खोलकर बंदे कबा सा मुल्के दिल गारत किया। क्या हिसारे कल्ब दिलबर ने खुले बंदों लिया।—कविता कौ०, भा० ४ पृ० ४७। २. मन। ३ मध्यभाग, विशेषत सेना का मध्य भाग। ४. १७वाँ नक्षत्र। ५ खोटी चाँदी या सोना।

कल्मष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। अघ। २ मैल। मल। ३ पीव। मवाद। ४ एक नरक का नाम। ५ कलाई का निचला भाग (को०)।

कल्मष[2]–वि० १ पापी। २ गंदा। मलिन। ३ दुष्ट। बदमाश [को०]।

कल्माष[1]—वि० [सं०] १ चितकबरा। चित्तावर्ण। २ काला।

यौ०—कल्माषपाद। कल्माषकंठ।

कल्माष— संज्ञा पुं० १ चितकबरा रंग। २. काला रंग। ३ राक्षस। ४ अग्नि का एक रूप। ५ एक प्रकार का सुगंधित चावल [को०]।

३ प्रात काल। ४ वैद्यक के अनुसार रोग निवृत्ति का एक उपाय या युक्ति। जैसे,—केशकल्प। कायाकल्प। ५ प्रकरण। एक विभाग। जैसे,—औषधकल्प। श्राद्धकल्प इत्यादि। ६ एक प्रकार का नृत्य। ७ काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं और जिसमे १४ मन्वतर या ४३२०००००० वर्ष होते हैं।

विशेष—पुराणनुसार ब्रह्मा के तीस दिनो के नाम ये हैं—(१) श्वेत (वाराह), (२) नीललोहित, (३) वामदेव, (४) रथतर, (५) रौरव, (६) प्राण, (७) वृहत्कल्प, (८) कदर्प, (९) सत्य या सद्य, (१३) ईशान, (११) व्यान (१२) सारस्वत, (१३) उदान, (१४) गारुड, (१५) कौम (ब्रह्म की पूर्णमासी), (१६) नारसिंह, (१७) समान (१८) आग्नेय, (१९) सोम, (२०) मानव, (२१) पुमान्, (२२) वैकुठ, (२३) लक्ष्मी, (२४) सावित्री, (२५) घोर, (२६) वाराह, (२७) वैराज, (२८) गौरी, (२९) महेश्वर, (३०) पितृ (ब्रह्मा की अमावस्या)।

८ प्रलय (को०)। ९ मदिरा। शराव (को०)। १० देह को नवीन और नीरोग करने की क्रिया या उपाय (को०)। ११. स्वर्ग का वृक्षविशेष (को०)।

यौ०—कल्पवृक्ष। कल्पतरु। कल्पलता।

कल्प[2]—वि० २ तुल्य। समान। जसे—ऋषिकल्प। देवकल्प।

विशेष—इस अर्थ मे यह शब्द समास के अत मे आता है। पाणिनि ने इसे प्रत्यय माना है।

२ योग्य (को०)। ३ उचित (को०)। ४ शक्तिमान (को०)। ५ सभव (को०)। ६ व्यावहारिक (को०)।

कल्पक[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ नाई। नापित। २ कचूर। कलायुक्त वाल काटनेवाला।

कल्पक[2]—वि० १ कल्पना करनेवाला। रचनेवाला। २ काटनेवाला।

कल्पकार[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ कल्पशास्त्र का रचनेवाला व्यक्ति। गृह्य या श्रौत सूत्र का रचयिता। २ नाई (को०)। ३ शराव वनानेवाला (को०)।

कल्पकार[2]—वि० १. कल्पशास्त्र रचनेवाला जिसने गृह्य या श्रौत सूत्र रचे हो। जैसे—कल्पकार ऋषियो ने कहा है। २ सजाने सँवारनेवाला (को०)।

कल्पक्षय—सज्ञा पुं० [सं०] कल्पात (को०)।

कल्पतरु—सज्ञा पुं० [स०] कल्पवृक्ष।

कल्पद्रुम—सज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

कल्पन—सज्ञा पुं० [सं०] १ निर्माण। रचना। २ सजाना। साज। ३ सज्जा के लिये एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर रखना। ४ धोखा। जालसाजी। ५ कल्पना करना। ६ काटना। कतरना (को०)।

कल्पना—सज्ञा स्त्री० [स०] १ रचना। वनावट। सजावट।

यौ०—प्रवधकल्पना।

२. वह शक्ति जो अत करण मे ऐसी वस्तुओं के स्वरूप उपस्थित करती है जो उस समय इद्रियो के समुख उपस्थित नहीं होती। उद्भावना। अनुमान। सकल्पनशीलता की शक्ति।

विशेष—काव्य, उपन्यास, चित्र आदि इसी शक्ति के द्वारा वनते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कल्पनाप्रसूत। कल्पनाशक्ति।

३. किसी एक वस्तु मे अन्य वस्तु का आरोप। अध्यारोप। जैसे, रस्सी मे साँप की भावना। ४ भावना। मान लेना। फर्ज। जैसे—कल्पना करो कि अ व एक सरल रेखा है। ५. मनगढत वात। जैसे—यह सब तुम्हारी कल्पना है।

क्रि० प्र०—करना।

६ पाश्चात्य साहित्यालोचन और सौंदर्यशास्त्र के अनुसार कलात्मक सर्जना की शक्ति। ७ सवारी के लिए हाथी की सजावट।

कल्पना—क्रि० अ० [हिं० कल्पना] दे० 'कलपना'।

कल्पनाचित्र—सज्ञा पुं० [सं० कल्पना + चित्र] कल्पना से निर्मित चित्र। ऐसा चित्र जिसकी रचयिता ने स्वय उद्भावना की हो जिसके निर्माण मे वाह्य जगत् का आधार न लिया हो।

कल्पनातीत—वि० [सं०] १ कल्पना से परे। जो कल्पना मे भी न आ सके। उ०—कल्पनातीत काल की घटना। हृदय को लगी अचानक रटना।—झरना, पृ० १।

कल्पनाप्रसूत—वि० [सं०] १ कल्पना से उत्पन्न। १ मनगढंत।

कल्पनावाद—सज्ञा पुं० [सं० कल्पना + वाद] १. कल्पना पर वल देनेवाला सिद्धात। यह सिद्धात कि कला अनुभव की कल्पना है।

कल्पनाशक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं० कल्पना + शक्ति] कल्पना करने की क्षमता। उद्भावना शक्ति।

कल्पनासृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कल्पनाप्रसूत रचना। २ कल्पना का राज्य।

कल्पनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्तनी। कतरनी। कैंची।

कल्पनीय - वि० [स०] जिसकी कल्पना की जा सके।

कल्पपादप—सज्ञा पुं० [स०] कल्पवृक्ष।

यौ०—कल्पपादप दान = एक महादान जिसमे सोने के पेड, फूल आदि वनाकर दान किए जाते हैं।

कल्पपाल—सज्ञा पुं० [सं०] शराव वेचनेवाला (को०)।

कल्पभव—सज्ञा पु० [स०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवगण।

विशेष—ये वैमानिक के अतर्गत माने जाते हैं और संख्या मे १२ हैं, अर्थात् सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्मा, कालातक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत। जैनियो का विश्वास है कि ये लोग तीर्थंकरों के जन्मादि सस्कारो मे आते हैं।

कल्पलता—सज्ञा स्त्री० [स०] कल्पवृक्ष।

यौ०—कल्पलता दान = जिसमे सोने की दस लताएँ तथा सिद्धि, मुनि, पक्षी आदि वनाकर दान किए जाते हैं।

कल्पवयन—सज्ञा पुं० [सं०] सोचविचार। उधेडवुन। उ०—मुँदे पलक जव निशा शमन मे लगे प्रबल मन कल्पवयन मे।—गीतिका, पृ० १८।

उ०—छगन मगन प्यारे लाल कीजिए कलेवा।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना।

मुहा०—कलेवा करना = निगल जाना। खा जाना। उ०—जिन भूपन जग जीति बाँधि जम अपनी बाँह बसायो। तेऊ काल कलेवा कीन्हो तू गिनती कब आयो ?—तुलसी (शब्द०)।

२. वह भोजन जो यात्री घर से चलते समय बाँध लेते हैं। पाथेय। संबल। ३ विवाह के अनंतर एक रीति जिसमें वर अपने सखाओं के साथ ससुराल में भोजन करने जाता है। खिचड़ी। बासी।

विशेष—यह रीति प्राय विवाह के दूसरे दिन होती है।

कलेवार(पु)—संज्ञा पुं० [स० कलेवर] कलेवर। शरीर। उ०—कलेवार पेत ढरं दूअचेत। उभै सूर भुभभै उभै साहि हेत पृ० रा०, ६।१५३।

कलेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश'। उ०—कत हम धैरज बाँधब सजनि तनि बिनु सहब कलेस।—विद्यापति, पृ० ५०८।

कलेसुरा—संज्ञा पु० [हिं० कलसिरा] दे० 'कलसिरा'।

कलैया—संज्ञा स्त्री० [स० कला] सिर नीचे और पैर ऊपर कर उलट जाने की क्रिया। कलाबाजी।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।

कलाई बोडा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा साँप या अजगर जो बंगाल मे होता है।

कलोपनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यम ग्राम की सात मूर्छनाओं मे से दूसरी मूर्छना।

कलोर¹—संज्ञा स्त्री०[स० कल्या या हिं० कलोल = कलोल करनेवाली बिना बरदाई गाय] वह जवान गाय जो बरदाई या ब्याई न हो।

कलोर²—संज्ञा पु० [हिं० कलोल] किलोल। चहचहाना। चिड़ियों का स्वर। उ०—परिमल वास उडे चहुँ ओरा, बहु विधि पक्षी करैं कलोरा।—कबीर सा०, पृ० ४६३।

कलोल—संज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] आमोद प्रमोद। क्रीडा। केलि। उ०—(क) विचित्र विहँग अलि जलज ज्यों सुखमा सर करत कलोल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मिलि नाचत करत कलोल छिरकत हरद दही। मानो वर्षत भादों मास नदी घृत दूध बही।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

कलोलना(पु)—क्रि० अ०[स० कल्लोल, हिं० कलोल] क्रीडा करना। आमोद प्रमोद करना।

कलोलह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलोल] दे० 'कलोल'। उ०—सब घर काल कलोलह खेलें बिनु पगु जग में डोलें।—सं० दरिया, पृ० ११२।

कलौंछ¹—संज्ञा पुं० [हिं० काला + औंछ (प्रत्य०)] दे० 'कलौंस'।

कलौंछ²—वि० दे० 'कलौंच'।

कलौंजी—संज्ञा पुं० [स० कालाजाजी] एक पौधा जो दक्षिण भारत और नेपाल की तराई मे होता है। मँगरैला।

विशेष—इसकी खेती नदियों के किनारे होती है। दोमट या बलुई जमीन मे इसे अगहन पूस मे बोते हैं। इसका पौधा डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है। फूल झड जाने पर कलियाँ लगती हैं जो ढाई तीन अंगुल लंबी होती हैं और जिनमे काले काले दाने भरे रहते हैं। दानों से एक तेज गंध आती है और इसी से वे मसाले के काम मे आते हैं। इन बीजों से तेल भी निकाला जाता है, जो दवा के काम मे आता है। तेल के विचार से यह दो प्रकार का होता है। एक का तेल काला और सुगंधित होता है, दूसरे का तेल साफ रेंडी के तेल का सा होता है। यह सुगंधित, वातघ्न तथा पेट के लिये उपकारी और पाचक होता है। बंगाल मे इसी को काला जीरा भी कहते हैं।

२. एक प्रकार की तरकारी। मरगल।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि करैले, परवर, भिंडी, बैंगन आदि का पेटा चारकर उनमें धनियाँ, मिर्चें, आदि मसालें खटाई नमक के साथ भरते हैं, और उसे तेल या घी मे तल लेते हैं।

कलौंस¹—वि० [हिं० काला + औंस (प्रत्य०)] कालापन लिए। सियाही मायल।

कलौंस²—संज्ञा स्त्री० १. कालापन। स्याही। कालिख। २ कलक।

कलौथी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुलत्थ] मुँगरा चावल।

कलौल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलोल] दे० 'कलोल'। उ०—इनमे करैं कलील सदाई करैं भोग जीवन भरमाई।—कबीर सा०, पृ० ८४०।

कल्क¹—संज्ञा पुं० [स०] १ चूर्ण। बुकनी। २ पीठी। ३ गूदा। ४. दंभ। पाखंड। ५ शठता। ६ मल। मैल। कीट। ७. कान की मैल। खूँट। ८ विष्ठा। ९ पाप। १० गीली या भिगोई हुई ओषधियों को बारीक पीसकर बनाई हुई चटनी। अवलेह। ११ बहेड़ा। १२ तुरुक नाम का गंधद्रव्य। १३ शत्रुता(को०)।

कल्क²—वि० १ पापी। २ दुष्ट [को०]।

कल्कफल—संज्ञा पु० [सं०] अनार।

कल्कि—संज्ञा पुं० [स०] विष्णु के दसवें अवतार का नाम जो संभल मुरादाबाद मे एक कुमारी कन्या के गर्भ से होगा।

कल्किपुराण—संज्ञा पुं०[स०]एक उपपुराण जिसमे कल्कि अवतार की कथा का वर्णन है [को०]।

कल्की¹—वि० [स० कल्किन्] १ गदा। २. सदोष। ३ दुष्ट [को०]।

कल्की²—संज्ञा पुं० द० 'कल्कि' [को०]।

कल्प¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विधान। विधि। कृत्य।

यौ०—प्रथम कल्प = पहला कृत्य।

२. वेद के प्रधान छह अंगों मे से एक। एक प्रकार के वैदिक सूत्र ग्रंथ।

विशेष—इसमें यज्ञादि करने का विधान है। श्रौत, गृह्य आदि सूत्रग्रंथ इसी के अंतर्गत हैं।

कलेजा मलना = दिल दुखाना। कष्ट पहुँचाना। कलेजा मसोस कर रह जाना = कलेजा थामकर रह जाना। दुख के वेग को रोककर रह जाना। कलेजा मुँह को या मुँह तक आना = (१) जी घबराना। जी उकताना। व्याकुलता होना। उ०—क्षुधा के संताप से कलेजा मुँह को आता है।—अयोध्या (शब्द०)। (२) संताप होना। दुःख से व्याकुल होना। उ०—इस दुनिया की इन बातों से बटोही का कलेजा मुँह को आ रहा था।—अयोध्या (शब्द०)। कलेजा सुलगना = दिल जलना। अत्यंत दुख पहुँचना। संताप होना। उ०—कवि सिवा कौन लग सका उसके है। कलेजा सुलग रहा जिसका।—चोखे०, पृ० ११। कलेजा सुलगना = बहुत सताना। अत्यंत कष्ट देना। दिल जलाना। कलेजा हिलना = कलेजा काँपना। अत्यंत भय होना। कलेजे का टुकड़ा = (१) लड़का। बेटा। संतान। (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति। कलेजे की कोर = (१) संतान। लड़का। लड़की। (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति। कलेजे खाईं = डाइन। बच्चों पर टोना करनेवाली। कलेजे पर चोट खाना = दुख होना। क्लेश होना। उ०—अब तो जान पर बन गई। कलेजे पर चोट खाई है तबीब बेचारा नब्ज क्या देखेगा?—फिसाना०, भा० १, पृ० ११। कलेजे पर चोट लगना = सदमा पहुँचना। अत्यंत क्लेश होना। कलेजे पर छुरी चल जाना = दिल पर चोट पहुँचना। अत्यंत क्लेश पहुँचना। कलेजे पर साँप लोटना = चित्त में किसी बात का स्मरण आ जाने से एक बारगी शोक छा जाना। जैसे,—जब वह अपने मरे लड़के की कोई चीज देखता है, तब उसके कलेजे पर साँप लोट जाता है। (ख) जब वह अपने पुराने मकान को दूसरों के अधिकार में देखता है, तब उसके कलेजे पर साँप लोट जाता है। कलेजे पर हाथ धरना या रखना = अपने दिल से पूछना। अपनी आत्मा से पूछना। चित्त में जैसा विश्वास हो, ठीक वैसा ही कहना। जैसे,—तुम कहते हो कि तुमने रुपया नहीं लिया, जरा कलेजे पर तो हाथ रखो।

विशेष—यदि कोई मनुष्य कोई दोष या अपराध करता है तो उसकी छाती धक धक करती है। इसी से जब कोई मनुष्य झूठ बोलता है या अपना अपराध स्वीकार करता है, तब यह मुहावरा बोला जाता है।

कलेजे पर हाथ धरकर या रखकर देखना = अपनी आत्मा से पूछ कर देखना। अपने चित्त का जो यथार्थ विश्वास हो, उसपर ध्यान देना। उ०—देखना हो अगर दहल दिल की। देखिए हाथ रख कलेजे पर।—चोखे०, पृ० ६१। कलेजे में आग लगना = (१) अत्यंत दुख या शोक होना। (२) डाह होना। द्वेष की जलन होना। (३) बहुत प्यास लगना। कलेजे में गाँठ पड़ना = मन में भेद पैदा होना। उ०—तब सके गाँठ हम कहाँ मतलब। पड़ गई गाँठ जब कलेजे में।—चोखे०, पृ० ३६। कलेजे में छेद करना = अत्यधिक क्लेश पहुँचाना। मार्मिक पीड़ा देना। उ०—बात से छेद छेद करके क्यों। छेद करदे किसी कलेजे में।—चोखे०, पृ० ३२। कलेजे में डालना = प्यार से सदा अपने बहुत पास रखना। हृदय से लगाकर रखना। जैसे,—जी चाहता है कि उसे कलेजे में डाल लूँ। कलेजे में डाल लेना = दे० 'कलेजे में डालना' उ०—मनचले नौनिहाल हैं जितने। हम उन्हें डाल लें कलेजे में।—चोखे०, पृ० १३। कलेजे में पैठना या घुसना = किसी का भेद लेने या किसी से अपना कोई मतलब निकालने के लिये उससे खूब ऊपरी हेल मेल बढ़ाना। जैसे—वह इस ढब से कलेजे में पैठकर बातें करता है कि सारी भेद ले लेता है। कलेजे में लगना = कलेजे में अटकना। कलेजे पर भारी मालूम होना। कलेजे या पेट में विकार उत्पन्न करना। जैसे,—(क) पानी धीरे धीरे पीओ नहीं तो कलेजे में लगेगा (ख) देखना यह कई दिनों का भूखा है, बहुत सा खा जायगा तो अन्न कलेजे में लगेगा। कलेजे में लगाकर रखना = (१) किसी प्रिय वस्तु को अपने अत्यंत निकट रखना या पास से जुदा न होने देना। बहुत प्रिय करके रखना। (२) बहुत यत्न से रखना।

२ छाती। वक्षस्थल।

मुहा०—कलेजे से लगाना = छाती से लगाना। आलिंगन करना। प्यार करना। गले लगाना। उ०—दुख कलेजा गया जिन्हें देखे। क्यों लगाएँ उन्हें कलेजे से।—चोखे०, पृ० ६२।

२. जीवट। साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—करना।—बढ़ना।

कलेजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलेजा] कलेजे का मांस।

कलेटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बकरी जिसके ऊन से कंबल आदि बुने जाते हैं।

कलेव—संज्ञा पुं० [सं० कलेवर] कलेवर। शरीर। उ०—तब कामन सु कलेव सुर करे सेव सुचि सच।—पृ० रा०, २५।१७६।

कलेवर—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर। देह। चोला।

मुहा०—कलेवर चढ़ाना = महावीर, भैरव, गणेश आदि देवताओं की मूर्ति पर घी या तेल में मिले सेंदुर का लेप करना। कलेवर बदलना = (१) एक शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना। चोला बदलना। (२) एक रूप से दूसरे रूप में जाना। (३) जगन्नाथ जी की पुरानी मूर्त्ति के स्थान पर नई मूर्ति स्थापित होना।

विशेष—यह एक प्रधान उत्सव है, जो जगन्नाथ पुरी में जब मलमास असाढ़ में पड़ता है, तब होता है। इसमें लकड़ी की नई मूर्ति मंदिर में स्थापित की जाती है और पुरानी फेंक दी जाती है।

(४) कायाकल्प होना। रोग के पीछे शरीर पर नई रंगत चढ़ना। (५) पुराना कपड़ा उतारकर नया और साफ कपड़ा पहनना।

२ ढाँचा। आकार। डील डौल।

कलेवा—संज्ञा पुं० [सं० कल्यवर्त, प्रा० कल्लवट्ट] १ वह हलका भोजन जो सवेरे बासी मुँह किया जाता है। नहारी। जलपान।

वाक्यों की वर्षा करना। लगती बात कहना। ताने मेहने मारना। **कलेजा छलनी होना** = दे० 'कलेजा छिदना या बिंधना'। **कलेजा जलना** = (१) अत्यंत दुःख पहुँचना। कष्ट पहुँचना। (२) बुरा लगना। अरुचिकर होना। **कलेजा जलाना** = दुःख देना। दुःख पहुँचाना। **कलेजा जला देना** = दे० 'कलेजा जलाना'। उ०—क्या अजब, कवि जला भुना कोई। है कलेजा जला जला देता। —चोखे०, पृ० १०। **कलेजा जली** = दुखिया। जिसके दिल पर बहुत चोट पहुँची हो। **कलेजा जली तुक्कल** = वह तुक्कल जिसके बीच का भाग काला हो। **कलेजा टूटना या टुकड़े टुकड़े होना** = जी टूटना। उत्साह भंग होना। हौसला न रहना। **कलेजा टूक टूक होना** = शोक से हृदय विदीर्ण होना। दिल पर कड़ी चोट पहुँचना। **कलेजा ठंढा करना** = संतोष देना। तुष्ट करना। चित्त की अभिलाषा पूरी करना। जैसे,—उसे देख मैंने अपना कलेजा ठंढा किया। **कलेजा ठंढा होना** = तृप्ति होना। संतोष होना। अभिलाषा पूरी होना। शांति मिलना। चैन पड़ना। **कलेजा तर होना** = (१) कलेजे में ठंढक पहुँचना। (२) धन से भरे पूरे रहने के कारण निर्द्वंद्व रहना। **कलेजा थामना** = दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना। शोक के वेग को दबाना। **कलेजा थामकर बैठ जाना या रह जाना** = (१) शोक के वेग को दबाकर रह जाना। मन मसोसकर रह जाना। जैसे,—जिस समय यह शोकसमाचार मिला, वे कलेजा थामकर रह गए। उ०—(क) उस समय रवाना अशरते काशाना की तरफ नजर डाली तो महताबी पर उदासी छाई हुई। कलेजा थाम के बैठ गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२४। (ख) थाम कर रह गए कलेजा हम। कर गया काम आँख का टोना।—चोखे०, पृ० ४२। (२) संतोष करना। **कलेजा थाम थामकर रोना** = (१) मसोस मसोस कर रोना। शोक के वेग को दबाते दबाते रोना। (२) रह रहकर रोना। **कलेजा दहलना** = भय से जी काँपना। **कलेजा धक धक करना** = भय से व्याकुल होना। आशंका से चित्त विचलित होना। **कलेजा धक्क धक्क करना** = दे० 'कलेजा धक धक करना'। उ०—आप जावें, मैं आपको रोक नहीं सकती, पर मैं बड़ी अभागिनी हूँ, इसी से मेरा कलेजा धक्क धक्क कर रहा है।—ठेठ०, पृ० ५२। **कलेजा धक से हो जाना** = (१) भय से सहसा स्तब्ध होना। एकबारगी डर छा जाना। उ०—हरिमोहन का कलेजा धक से हो गया और उन्होंने लड़खड़ाती जीभ से कहा।—अयोध्या (शब्द०)। (२) चकित होना। विस्मित होना। भौचक्का रहना। उ०—उसकी बुराई सुनते ही उसका कलेजा धक से हो गया।—अयोध्या (शब्द०)। **कलेजा धड़कना** = (१) डर से जी काँपना। भय से व्याकुलता होना। (२) चित्त में चिंता होना। जी में खटका होना। **कलेजा धड़ धड़ करना** = दे० 'कलेजा धड़कना'। उ०—दूसरा अफसर—कलेजा धड़ धड़ कर रहा है।—फिसाना०, भाग ३, पृ० १०५। **कलेजा धड़काना** = (१) डरा देना। भयभीत कर देना। (२) चिंता में डाल देना। **कलेजा धुकड़ पुकड़ होना** = दे० 'कलेजा धड़कना'। **कलेजा निकलना** (१) अत्यंत कष्ट होना। असह्य क्लेश होना। खलना। (२) सार वस्तु का निकल जाना। हीर निकल जाना। **कलेजा निकालकर दिखलाना** = हृदय की बात प्रकट करना। उ०—कम नहीं है कमाल कवियों का। हैं कलेजा निकाल दिखलाते।—चोखे०, पृ० ८। **कलेजा निकाल धर देना** = दे० 'कलेजा निकालकर रखना'। उ०—बेअने के लिये कलेजों को। हैं कलेजा निकाल धर देते।—चोखे०, पृ० ७। **कलेजा निकालना** = दे० 'कलेजा काढ़ना'। **कलेजा निकालकर रखना** = अत्यंत प्रिय वस्तु समर्पण करना। सर्वस्व दे देना। जैसे,—यदि हम कलेजा निकालकर रख दें तो भी तुम्हें विश्वास न होगा। **कलेजा पक जाना** = कष्ट से जी ऊब जाना। दुःख सहते सहते तंग आ जाना। जैसे,—नित्य के लड़ाई झगड़े से तो कलेजा पक गया। **कलेजा पकड़ना** = दे० 'कलेजा थामना'। **कलेजा पकड़ लेना** (१) किसी कष्ट को सहने के लिये जी कड़ा कर लेना (२) कलेजे पर भारी बोझ मालूम होना। जैसे—(क) बलगम ने कलेजा पकड़ लिया। (ख) मैदे की पूरियों ने तो कलेजा पकड़ लिया। **कलेजा पकाना** = इतना दुःख देना कि जी जल जाय। नाक में दम करना। हैरान करना। **पत्थर का कलेजा** = (१) कड़ा जी। दुःख सहने में समर्थ हृदय। (२) कठोर चित्त। **कलेजा पत्थर का करना** = (१) भारी दुःख झेलने के लिये चित्त को दबाना। जैसे—जो होना था सो हो गया अब कलेजा पत्थर का करके घर चलो। (२) किसी निष्ठुर कार्य के लिये चित्त को कठोर करना। जैसे,—पत्थर का कलेजा करके मुझे उस निरपराध को मारना पड़ा। **कलेजा पत्थर का = होना** (१) जी कड़ा होना। जैसे,—उसका दुःख सुनकर पत्थर का कलेजा भी पानी होता था। **कलेजा फटना** = (१) किसी के दुःख को देखकर मन में अत्यंत कष्ट होना। जैसे,—(क) दुखिया माँ का रोना सुनकर कलेजा फटता था। (ख) किसी को चार पैसे पाते देख तुम्हारा कलेजा क्यों फटता है। **कलेजा फूलना** = आनंदित होना। फूल मुँह से झड़े किसी कवि के, है कलेजा न फूलता किसका।—चोखे०, पृ० ८। **कलेजा बढ़ जाना** = (१) दिल बढ़ना। उत्साह और आनंद होना। हौसला होना। उ०—चढ़ गए चाव चित्त गया चढ़ बढ़। बढ़ गए बढ़ गया कलेजा है।—चोखे०, पृ० २२। **कलेजा बाँसों, बल्लियों या हाथों उछलना** = (१) आनंद से चित्त प्रफुल्लित होना। आनंद की उमंग में फूलना। उ०—मेरा कलेजा बल्लियों उछलता है। भरी बरसात के दिन हैं। कहीं फिसल न पड़े तो कहकहा उड़े।—फिसाना०, भा१, पृ० १। (२) भय या आशंका से जी धक धक करना। **कलेजा बैठा जाना** = भय या शिथिलता से चित्त का खिन्न और व्याकुल होना। क्षीणता के कारण शरीर और मन की शक्ति का मंद पड़ना। **कलेजा भरना** = तृप्त होना। अघा जाना। उ०—प्यार से किसका कलेजा है भरा।—चोखे०, पृ० १०—।

कलुषचेता—वि० [सं० कलुषचेतस्] १ जिसके मन मे कलुष हो। २ जो कलुषित कार्य करने मे प्रवृत्त हो (को०)।

कलुषता—सज्ञा स्त्री० [सं०] कल्मष। पाप। उ०—प्रेम भक्ति यह मैं कही जानै विरला कोइ। हृदय कलुषता क्यों रहै, जा घट जैसी होइ।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० २७।

कलुषमानस—वि० [सं०] कलुषित मनवाला। दुष्ट। पापी (को०)।

कलुषयोनि—सज्ञा पु० [सं०] वर्णसकर। दोगला।

यौ०—कलुषयोनिज = वर्णसकर। दोगला।

कलुषाई—सज्ञा स्त्री० [सं० कलुष+हिं० आई (प्रत्य०)] १ बुद्धि की मलिनता। चित्त का विकार या दोष। उ०—भए सव साधु किरात किरातिनि रामदरस मिटिगै कलुषाई।—तुलसी (शब्द०)। २ अपवित्रता। मलिनता। उ०—तीय सिरोमणि सीय तजी जिन पावक की कलुषाई दही है।—तुलसी (शब्द०)।

कलुषित—वि० [सं०] १ दूषित। उ०—कलुषित कैसे शुद्ध सलिल को आज करूँ मैं।—साकेत, पृ० ४०२। २ मलिन। मैला। ३ पापी। ४ दुखित। ५ क्षुब्ध। ६ असमर्थ। ७ काला। ८. रुष्ट (को०)। ९ दुष्ट (को०)।

कलुषी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १ पापिनी। दोषी। २ मलिन। गदी। ३ क्रुद्धा (को०)। ४ दुष्टा (को०)।

कलुषी[2]-वि० पुं० [सं० कलुषिन्] १ मलिन। मैला। गदा। २ पापी। दोषी। ३ क्रुद्ध (को०)। ४ दुष्ट (को०)।

कलू(पु)—सज्ञा पु० [सं० कलियुग, (पु)†कलऊ] दे० 'कलियुग'। उ०—आया है कलू का दौर घरो घर कांगारौल।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३३।

कलूटा—वि० [हिं० काला+टा (प्रत्य०)] [स्त्री० कलूटी] काले रग का। काला।

यौ०—काला। कलूटा।

कलूना—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा धान जो पजाब मे उत्पन्न होता है।

कलूब(पु)—सज्ञा पुं० [अ० कल्ब] हृदय। अंत करण। उ०—दादू पसु पिरनि के, पैहीं मञ्झि कलूब।—दादू०, पृ० ६०।

कलेंडर—सज्ञा पुं० [अ०] तिथिपत्र। पचाग। ईसवी सन का तिथिपत्र।

कलेऊ(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० कलेवा] प्रातकाल का लघु भोजन। जलपान। कलेवा। उ०—प्रात काल उठि देहु कलेऊ वदन चुपरि अरु चोटी। को ठाकुर ठाढो हाथ लकुट लिए छोटी।—सूर (शब्द०)।

कलेक्टर—सज्ञा पु० [अ०] दे० 'कलक्टर'।

कलेजई[1]—सज्ञा पुं० [हिं० कलेजा] एक रग का नाम।

विशेष—यह छिवुला, हर्रे, कमीस और मजीठ या पतग के मेल से बनता है। इसे चुनौटिया रग भी कहते हैं।

कलेजई[2]—वि० कलेजई रग का। चुनौटिया।

कलेजा—सज्ञा पुं० [सं० यकृत, (विपर्यय) कृत्य, कृज्ज] १. प्राणियो का एक भीतरी अवयव।

विशेष—यह छाती के भीतर बाईं ओर को फैला हुआ होता है और इसके नाड़ियों के सहारे शरीर मे रक्त का सचार होता है। यह पान के आकार की मास की थैली की तरह होता है जिसके भीतर रुधिर बनकर जाता है और फिर उसके ऊपरी परदे की गति या धड़कन से दबकर नाड़ियों मे पहुँचता और सारे शरीर मे फैलता है।

मुहा०—कलेजा उछलना = (१) दिल धड़कना। घबड़ाहट होना। (२) हृदय प्रफुल्लित होना। कलेजा उछल उछल पड़ना = आनद विभोर होना। उ०—है उमगें छलाँग सी भरती, है कलेजा उछल उछल पड़ता।—चोखे०, पृ० ८। कलेजा उड़ना = होश जाता रहना। घबराहट होना। कलेजा उलटना = (१) कै करते करते आँतो म बल पड़ना। वमन करते करते जी घबराना। (२) होश का जाता रहना। कलेजा कटना = (१) हीरे की कनी या और किसी विष के खाने से अँतड़ियो मे छेदन होना। (२) मल के साथ रक्त गिरना। खूनी दस्त आना। (३) दिल पर चोट पहुँचना। अत्यत हार्दिक कष्ट पहुँचना, जैसे—उसकी दशा देख किसका कलेजा नही कटता। (४) बुरा लगना। नागवार लगना। जब्र मालूम होना, जैसे—पैसा खर्च करते उसका कलेजा कटता है। (५) दिल जलना। डाह होना। हसद होना। जैसे—उसे चार पैसा पाते देख तुम्हारा कलेजा क्यो कटता है। कलेजा काँपना = जी दहलना। डर लगना, जैसे—नाव पर चढ़ते हमारा कलेजा काँपता है। कलेजा काढकर रखना = दे० 'कलेजा निकालकर रखना'। कलेजा काढ़ना = (१) दिल निकालना। अत्यत वेदना पहुँचाना। उ०—आँख तो आप काढ़ते ही थे। अब लगे काढ़ने कलेजा क्यों।—चोखे, पृ० ६२। (२) किसी की अत्यत प्रिय वस्तु ले लेना। किसी का सर्वस्व हरण करना। कलेजा काढ़ लेना = (१) हृदय में वेदना पहुँचाना। अत्यत कष्ट देना। (२) मोहित करना। रिझाना। (३) चोटी की चीज निकाल लेना। सबसे अच्छी वस्तु को छाँट लेना। सार वस्तु ले लेना। (४) किसी का सर्वस्व हरण कर लेना। कलेजा काढ़ के देना = (१) अपनी अत्यत प्यारी वस्तु देना। (२) सूम का किसी को अपनी वस्तु देना (जिससे उसे बहुत कष्ट हो)। कलेजा खाना = (१) बहुत तग करना। दिक करना। (२) बार बार तकाजा करना। जैसे—वह चार दिन से कलेजा खा रहा है, उसका रुपया आज दे देंगे। कलेजा खिलना = किसी को अत्यत प्रिय वस्तु देना। किसी का पोषण या सत्कार करने मे कोई बात उठा न रखना, जैसे—उसने कलेजा खिला पिलाकर उसे पाला है। कलेजा खुरचना = (१) बहुत भूख लगना, जैसे—मारे भूख के कलेजा खुरच रहा है। (२) किसी प्रिय के जाने पर उसके लिये चिंतित और व्याकुल होना, जैसे—जब से वह गया है, तब से उसके लिये कलेजा खुरच रहा है। कलेजा गोदना = दे० 'कलेजा छेदना या बींधना'। कलेजा छिदना या बिंधना = कड़ी बातो से जी दुखना। ताने मेहने से हृदय व्यथित होना, जैसे,—अब तो सुनते सुनते कलेजा छिद गया, कहाँ तक सुनें। कलेजा छेदना या बींधना = कटु

कलिल¹—वि० [सं०] १. मिला जुला। ओतप्रोत। मिश्रित। २. गहन। घना। दुर्गम। उ०—मोह कलिल व्यापित मति भोरी।—तुलसी (शब्द०)।

कलिल²—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। ढेर। राशि।

कलिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक चालुक्य राजा का नाम जिसे ध्रुव भी कहते थे।

कलिवर्ज्य—वि० [सं०] जिनका करना कलयुग मे निषिद्ध है।

विशेष—धर्मशास्त्रों में उस कर्म को कलिवर्ज्य कहते हैं जिसका करना अन्य युगो मे विहित था, पर कलियुग मे निषिद्ध या वर्जित है, जैसे अश्वमेध, गोमेध, देवरादि से नियोग, संन्यास, मांस का पिंडदान।

कलिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश का एक चालुक्यवंशी राजा जिसे त्रिभुवन मल्ल वा चतुर्थ विक्रमादित्य भी कहते हैं। इसके बाप का नाम आहववल्ल था। इसने संवत् ६६१ से १०४८ तक राज्य किया था।

कलिवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़ा [को०]।

कलिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी। करियारी।

कलींदा—संज्ञा पुं० [सं० कलिंग] तरबूज। हिनवाना।

कली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिना खिला फूल। मुँहबँधा फूल। बोंडी। कलिका। उ०—कली लगावै कपट की, नाम धरावै हेम।—दरिया० बानी, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—आना।—खिलना।—निकलना।—फटना।—लगना।

मुहा०—दिल की कली खिलना=आनंदित होना। चित्त प्रसन्न होना।

२. ऐसी कन्या जिसका पुरुष से समागम न हुआ हो।

मुहा०—कच्ची कली=अप्राप्तयौवना।

३. चिड़ियों का नया निकला हुआ पर। ४. वह तिकोना कटा हुआ कपड़ा जो कुर्ते, अँगरखे और पायजामे आदि में लगाया जाता है। ५. हुक्के का वह भाग जिसमें गड़गड़ा लगाया जाता है और जिसमें पानी रहता है। जैसे, नारियल की कली। ६. वैष्णवों के तिलक का एक भेद जो फूल की कली की तरह होता है।

कली²—संज्ञा स्त्री० [अ० कलई] पत्थर या सीप आदि का फुँका हुआ टुकड़ा जिससे चूना बनाया जाता है। जैसे—कली का चूना।

कली³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालिय] दे० 'कालिय'।

उ०—मुये काल व्यान। सिमू वछ्छ पाल। कली उत्तमंगं। किय नित्त रंगं।—पृ० रा०, २।५०।

कलीआ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिका, प्रा० कलिआ] दे० 'कली'।

उ०—विगसि रहिआ भँवर ज्यों कलिआ।—प्राण०, पृ० ३६।

कलीट(पु)—वि० [हिं० काला+ईट (प्रत्य०)] काला कलूटा। उ०—मुरली के सँग मिले मुरारी। ये कुलटा कलीट वे दोऊ। इक तें एक नहिं घाटे कोऊ।—सूर (शब्द०)।

कलीमा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कलीम] वाक्य। बात। उ०—अबे वे भणता सरावा पित्रता, कलीमा कहंता कनामे जीअता।—कीर्ति०, पृ० ४०।

कलीरा—संज्ञा पुं० [सं० कली+रा (प्रत्य०)] कौड़ियों और छुहारों आदि को पिरोकर बनाई हुई एक प्रकार की माला।

विशेष—प्रायः विवाह आदि के समय कन्या अथवा दीवाली आदि अवसरों पर यों ही बच्चों को उपहार में दी जाती है।

कलील—संज्ञा पुं० [अ०] १. थोड़ा। कम। २. छोटा।

कलीसा—संज्ञा पुं० [यू० इकलीसिया] मसीही लोगों का मंदिर। गिरजा। उ०—अगर मस्जिद मे अजान होती है तो कलीसा में घंटा क्यों न बजे?—मान०, भा० १, पृ० १९८।

कलीसाई¹—वि० [हिं० कलीसा] १. कलीसा से संबंधित। २. मसीही।

कलीसाई²—संज्ञा पुं० ईसा मसीह के मत को माननेवाला। ईसाई। मसीही।

कलीसिया—संज्ञा पुं० [यू० इकलीसिया] १ ईसाइयों या यहूदियों की धर्ममंडली।

कलु—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग, (पु) कलऊ] दे० 'कलियुग'। उ०—इह संसार असार सार कित्ती कलु मौंही।—पृ० रा०, ७।१५०।

कलुआबीर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कलुवाबीर'।

कलुक्क—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा। झाँझ (को०)।

कलुक्का—संज्ञा पुं० [सं०] १. सराय। २ उल्का [को०]।

कलुख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कलुष] दे० 'कलुष'।

उ०—काम कलुख कुंजर कदन समरथ जो सब भाँति, गदा चिह्न येहि हेतु हरि धरत चरन जुत क्रांति।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० १३।

कलुखाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलुख+आई (प्रत्य०)] दे० 'कलुषाई'।

कलुखी—वि० [हिं० कलुख+ई (प्रत्य०)] दोषी। कलंकी। बदनाम। उ०—बैरी यह बंधु, देव, दीनबंधु जानि हम बंधन में डारे तुम न्यारे कलुखी भये।—देव (शब्द०)।

कलुवा(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० काला] काला कुत्ता। काले रंग का कुत्ता। उ०—कलुवा कबरा मोतिया झबरा बुचवा मोंहि डेरवावे।—मलूक०, पृ० २५।

विशेष—कुत्तों के इस प्रकार के विशेषणमूलक नाम प्रचलित हैं।

कलुवाबीर—संज्ञा पुं० [हिं० काला+बीर] टोना टामर या साबरी मंत्रों का एक देवता।

विशेष—इसकी दुहाई मंत्रों में दी जाती है।

कलुष¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कलुषित, कलुषी] १. मलिनता। मैल। २ पाप। दोष। ३. कलंक।

यौ०—कलुषचेता। कलुषमति। कलुषात्मा।

४ क्रोध। ५ भैंसा।

कलुष²—वि० [सं० स्त्री० कलुषा, वि० कलुषी] १. मलिन। मैला। गंदा। २ निंदित। ३ दोषी। पापी।

कलिग्रल᳝—संज्ञा पुं०[सं० कलकल] दे० 'कलकल'। उ०—कुझड़ियाँ कलिग्रल कियउ, सुणी उ पेखइ वाइ। ज्यों की जोडी वीछडी, त्यों निसि नींद न ग्राइ।—ढोला०, दू० ५८।

कलिक—संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच पक्षी (को०)।

कलिकर्म—संज्ञा पुं०[सं०] युद्ध। संग्राम। उ०—करहिं ग्राय कलिकर्म धर्म जो क्षत्रिन को है।—विश्राम (शब्द०)।

कलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना खिला फूल। कली। २ वीणा का मूल। ३ प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमडा मढ़ा जाता था। ४ एक संस्कृत छंद का भेद। ५ कर्नौजी। मँगरैला। ६ कला। मूहूर्त। ७ अंश। भाग। ८ संस्कृत की पदरचना का एक भेद जिसमें ताल नियत हो।

कलिकान†—वि० [देश०] परेशान। हैरान। (बोल०)।

कलिकापूर्व—संज्ञा पुं०[सं०] वह वस्तु जिसका कारण ग्रशत ग्रज्ञातपूर्व हो (जैसे जन्म, ग्राग्नेयादि यज्ञ) और जिसका फल (जैसे स्वर्ग ग्रादि) नितांत ग्रपूर्व या ग्रज्ञानपूर्व हो।

कलिकार, कलिकारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ नारद। २ पूतिकरज (को०)।

कलिकारक¹—वि० [सं०] १ झगडा करनेवाला। २ झगडा लगानेवाला।

कलिकारक²—संज्ञा पुं० १ पूतिकरज। २ नारद ऋषि।

कलिकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी विष।

कलिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

कलिकालीन—वि० [सं०] कलियुगी। कलियुग का। उ०—कलिकाल न मलीते दीन जन पावन करन परम गंभीर।—घनानंद, पृ० ४८६।

कलिकालु᳝—संज्ञा पुं० [सं० कलिकाल] दे० 'कलिकाल'। उ०—राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकालु।—मानस१।२७।

कलिजुग᳝—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग'। उ०—कलि जुग मे काशी चलि ग्राए। जब हमरे तम दरसन पाए।—कबीर सा०, पृ० ८२५।

कलित—वि० [सं०]१ विदित। ख्यात। उक्त। २ प्राप्त। गृहीत। ३ सजाया हुआ। सुसज्जित। शोभित। युक्त। रचित उ०—(क) कुलिश कठोर, तन जोर परे शेर रन, करुना कलित मन धारमिक धीर को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ग्रालस वलित, कोरें काजर कलित, मतिराम वै ललित ग्रति पानिप धरत हैं।—मतिराम (शब्द०)। ४ सुंदर। मधुर। उ०—कलित किलाकिला, मिलित मोद उर, मान उदोतनि (शब्द०)।

कलितरु—संज्ञा पुं० [सं०] १ पापवृक्ष। २ बहेडा। उ०—प्रेम कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूँठ।—तुलसी ग्रं० पृ० १०६।

कलित्तर᳝—संज्ञा पुं० [सं०कलत्र] दे० 'कलत्र'। उ०—पुत्र कलित्तर भाई बधु सब ही ठोक जलाहीं।—चरण बानी०, पृ० १०८।

कद्रुमम—संज्ञा पुं० [सं०] बहेडे का पेड।

कलिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के चार ग्राचार्यों मे से एक।

कलिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पद्मराग मणि या मानिक की एक प्राचीन खान का नाम। २ पद्मराग मणि का एक भेद जो मध्यम माना जाता था।

कलिप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] शराब की दूकान (को०)।

कलिप्रिय¹—वि० [सं०] झगड़ालू। दुष्ट।

कलिप्रिय²—संज्ञा पुं० [सं०] १ नारद मुनि। २ बंदर। ३ बहेडे का पेड़।

कलिमल᳝—संज्ञा पुं० [सं०] पाप। कलुष। उ०—नसात कुपथ वेद मग छाडे। कपट कलेवर कलिमल भाँडे।—मानस, १।१२।

यौ०—कलिमल सरि = कर्मनाशा नदी।

कलियल᳝—संज्ञा पुं० [हिं० कलियल] करुण य। क्लेशजन्य चीत्कार। उ०—जिणि दीहे पालाउ पड़इ मारइ, मायत्र भिड़इ तिलाहि। तिणि दिन जाए ग्राद्रणउ कलियला कुरझड़ियाँहि।—ढोला० दू० २८३।

कलिया—संज्ञा पुं० [ग्र०] पकाया हुआ मांस। घी में भूनकर रसेदार पकाया हुआ मांस। उ०—कलिया नानपुलाव पट भरि धार कै।—पलटू०, भा० २, पृ० ८५।

कलियाना—क्रि० ग्र० [हिं० कलि]१. कली लेना। कलियों से युक्त होना। उ०—ग्रानक जय चरणों पर छाई। फलक पलाश डाल कलियाई।—ग्राराधना, पृ० ६०। २ चिड़ियों का नया पर निकालना।

कलियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिहारी] एक विषैला पौधा जिसकी पत्तियाँ पतली और नुकीली होती है और जिसकी जड मे गाँठें पड़ती हैं।

विशेष—इसका फूल नारंगी रंग का ग्रत्यंत सुंदर होता है। फूल झड़ जाने पर मिर्चें के ग्राकार का फल लगता है, जिसमें तीन धारियाँ होती हैं।पके फल के भीतर लाल छिलके में लिपटे हुए इलायची के दाने के ग्राकार के बीज होते हैं। इसकी जड़ या गाँठ मे विष होता है। यह कड़ुई, चरपरी, तीखी, कसैली ग्रौर गरम होती है तथा कफ, वात, शूल, ववासीर, खुजली, व्रण, सूजन ग्रौर शोथ के लिये उपकारी है। इससे गर्भपात हो जाता है। इसके पत्ते, फूल ग्रौर फल से तीखी गंध ग्राती है।

पर्या०—कलिकारी। लागलिकी। दीप्ता। गर्भघातिनी। ग्रग्निजिह्वा। वह्निशिखा। लांगुली। हली। नक्ता। इंद्रपुष्पिका। विद्युज्ज्वाला। कलिहारी।

कलियुग—संज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगों में से चौथा युग। २ पापयुग। कलहयुग।

कलियुगाद्या—संज्ञा पुं० [सं०] माघ की पूर्णिमा जिससे कलियुग का ग्रारंभ हुग्रा था।

कलियुगी—वि० [सं०] १ कलियुग का। २ बुरे युग का। कुप्रवृत्तिवाला। जैसे,—कलियुगी लड़के।

कलियुग्ग᳝—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग'। उ०—ग्रति सुयुग कलियुग्ग धन्य सवत् समरथ मति।—ग्रकबरी०, पृ० ७।

कलिख᳝—संज्ञा पुं० [हिं० कलख] दे० 'कलख'। उ०—एक भरई बीजो कलिख करई तीजा धरी पीवजे ठडा नीर।—वी० रासो, पृ० २८।

कलावादी दृष्टिकोण से तो इतिहास नहीं लिखे गए लेकिन न्यूनाधिक मात्रा में एकांगी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण आचार्य शुक्ल जी से लेकर आजतक अपनाए जाते रहे हैं।—आचार्य० पृ० २। २. 'कला कला के लिये' सिद्धांत को माननेवाला। उ०—इसी प्रकार कलावादियों का केवल कोमल और मधुर की लीक पकड़ना मनोरंजन मात्र की रुचि और दृष्टि की परिस्थिति के कारण समझना चाहिए।—रस०, पृ० ५६।

कलावान—वि० [सं० कलावान्] [स्त्री० कलावती] कलाकुशल। गुणी।

कलाविक—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।

कलास¹—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन समय का एक बाजा जिसपर चमड़ा चढ़ा रहता है।

कलास²—संज्ञा पुं० [अं० क्लास] दर्जा। कक्षा। श्रेणी।

कलासी—संज्ञा पुं० [देश०] दो तख्तों के जोड़ की लकीर —(लश०)।

कलाहक—संज्ञा पुं० [सं०] काहल नाम का बाजा।

कलिंग¹—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] १ मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लंबी और लाल तथा सिर भी लाल होता है। कुलंग। २ कुटज। कुरैया। ३ इंद्र जौ। ४ सिरिस का पेड़। ५ पाकर का पेड़। ६ तरबूज। ७. कलिंगड़ा राग। ८ प्राचीन काल का एक राजा जो बलि की रानी सुदेष्णा और दीर्घतमस् ऋषि के नियोग से उत्पन्न हुआ था। ९ एक प्राचीन समुद्र तटस्थ देश जिसके राज्य का विस्तार गोदावरी और वैतरणी नदी के बीच में था। यहाँ के लोग जहाज चलाने में प्रसिद्ध थे। यह राज्य आधुनिक आंध्र का वह भाग था जो कटक से मद्रास तक फैला है। १०. कलिंग देश का निवासी।

कलिंग²—वि० १ कलिंग देश का। २ कुशल। चतुर (को०)। ३ धूर्त (को०)।

कलिंगक—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्गक] १ इंद्रयव। इंद्रजौ। २. तरबूज।

कलिंगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] एक राग जो दीपक राग का पाँचवाँ पुत्र माना जाता है। उ०—जीवन में आग लगा डालूँ? हँसकर कलिंगड़ा गाऊँ? मेरा अंतरयामी कहता है, मैं मलार बरसाऊँ।—हिम०, पृ० ४५।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का राग है और रात के चौथे पहर में गाया जाता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं इनका स्वरपाठ इस प्रकार है: म ग रे मा सा रे ग म प ध नी सा।

कलिंगा—संज्ञा पुं० [देश०] तेवरी नाम का पेड़ जिसकी छाल रेचक होती है।

कलिंज—संज्ञा पुं० [सं० कलिञ्ज] नरकट नाम की घास। २ चटाई (को०)। ३ परदा (को०)।

कलिंजर—संज्ञा पुं० [सं० कालिञ्जर] दे० 'कालिंजर'।

कलिंद—संज्ञा पुं० [सं० कलिन्द] १ बहेड़ा। सूर्य। ३ पर्वत जिससे यमुना नदी निकलती है।

यौ०—कलिंदकन्या, कलिंदतनया, कलिंदनंदिनी कलिंदसुता = दे० 'कलिंदजा'।

कलिंदजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिन्द + जा] यमुना नदी जो कलिंद नामक पर्वत से निकली है। उ०—कूल कलिंदजा के सुखमूल लतान के वृंद वितान तने हैं।—भिखारीदास (शब्द०)।

कलिंदी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] दे० 'कालिंदी'। उ०—तब कदर कदंब के मूलनि। दुरत हैं जाइ कलिंदी कूलनि।—नंद० ग्र०, पृ० २६०।

कलिंद्र—संज्ञा पुं० [सं० कलिन्द] दे० 'कलिंद ३'। उ०—जनु कलिंद्र गिर सूर सुहावई।—प० रा०, पृ० ११२।

कलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहेड़े का फल या बीज।

विशेष वामन पुराण में ऐसी कथा है कि जब दमयंती ने नल के गले में जयमाल डाली, तब कलि चिढ़कर नल से बदला लेने के लिये बहेड़े के पेड़ों में चला गया, इससे बहेड़े का नाम 'कलि' पड़ा।

२ पासे के खेल में वह गोटी जो उठी न हो। उ०—कलि [नामक पासा] सो गया है, द्वापर स्थान छोड़ चुका है, त्रेता अभी खड़ा है, कृत चल रहा है [तेरी सफलता की संभावना है] परिश्रम करता जा।—भा० प्रा० लि०, पृ० ११।

विशेष—ऐतरेय ब्राह्मण से पता लगता है कि पहले आर्य लोग बहेड़े के फलों से पासा खेलते थे।

३ पासे का वह पार्श्व जिसमें एक ही बिंदी हो। ४. कलह। विवाद। झगड़ा। ५. पाप। ६ चार युगों में से चौथा युग जिसमें देवताओं के १२०० वर्ष या मनुष्यों के ४३२००० वर्ष होते हैं।

विशेष—पुराणों के मत से इसका प्रारंभ ईसा से ३१०२ वर्ष से पूर्व माना जाता है। इसमें दुराचार और अधर्म की अधिकता कही गई।

७ छंद में टगण का एक भेद जिसमें क्रम से दो गुरु और दो लघु होते हैं (ऽऽ।।)। ८ पुराण के अनुसार क्रोध का एक पुत्र जो हिंसा से उत्पन्न हुआ था। इसकी बहन दुरुक्ति और दो पुत्र, भय और मृत्यु हैं। ९ एक प्रकार के देव गंधर्व जो कश्यप और दक्ष की कन्या से उत्पन्न हैं। १० शिव का एक नाम। ११ सूरमा। वीर। जवाँमर्द।

१२ तरकश। १३. क्लेश। दुख। १४ संग्राम। युद्ध। उ०—कलि कलेश कलि सूरमा कलि निषंग संग्राम। कलि कलियुग यह और नहिं केवल केशव नाम।—नंददास (शब्द०)।

यौ—कलिकर्म = संग्राम। युद्ध।

कलि²—वि० श्याम। काला। उ०—श्वेत लाल पीरे युग युग में। भे कलि आदि कृष्ण कलियुग में।—गोपाल (शब्द०)।

कलि³—क्रि० वि० [सं० कल्य] दे० 'कल'। उ०—तब कहै कुँअर सामंत सम, कलि आपेटक रंग। मयों सुरमैं एक मता, मानस ही में गंग।—पृ० रा०, ६।१४१।

कलि⁴—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कली। उ०—जैसे नव ऋतु नव कलि आकुल नव नव अंजलि।—अर्चना, पृ० २५। २. वीणा का मूल (को०)।

कलाबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कला+फ़ा० बाजी] १. सिर नीचे करके उलट जाना। ढेंकली। २ लोटनिया।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

मुहा०—कलाबाजी खाना=लोटनिया लेना। उडते उडते सिर नीचे करके पलटा खाना (गिरहबाज कबूतर का)।

२ नाचकूद।

कलावीन—संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष।

विशेष—यह सिलहट, चटगाँव और वर्मा मे होता है। वह ४०-५० फुट ऊँचा होता है। इसके फल के बीज को मूँगरा चावल या कलौथी कहते हैं, जिसका तेल चर्मरोगो पर लगाया जाता है।

कलाभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

कलाम—संज्ञा पुं० [अ०] १. वाक्य। वचन। उक्ति। २ वातचीत। कथन। वात। ३ वादा। प्रतिज्ञा। उ०—पुनि नैन लगाइ वढ़ाइ के प्रीति निवाहन को क्यो कलाम कियो है।—हरिश्चद्र (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

२. उज्र। वक्तव्य। एतराज। उ०—दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे। कलाम आते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

मुहा०—कलाम होना=सदेह होना। शका होना। जैसे,—तुम्हारी सचाई मे कोई कलाम नही है।

कलामक—संज्ञा पुं० [सं०] जाडे मे पकनेवाला एक धान [को०]।

कलामपाक—संज्ञा पुं० [अ० कलाम+फा० पाक] कुरान शरीफ।

कलाममजीद—संज्ञा पुं० [अ० कलाम+मजीद] कुरान शरीफ।

कलामल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलिमल] दे० 'कलिमल'। उ०—काया धरि हम घर घर आए, काया नाम कलामल पाए।—कबीर सा०, पृ० २५३।

कलामुल्लाह—संज्ञा पुं० [अ०] कुरानशरीफ। उ०—मगर जब उसको किसी की तरफ से एतकाद आ जाता है तो वो उसके कलाम को कलामुल्लाह समझता है।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० १२४।

कलामेमजीद—संज्ञा पुं० [हिं० कलाममजीद] दे० 'कलाममजीद'। उ०—ख्वाजा-कलामेमजीद की कसम, जब तक अहल्या का पता न लगा लूँगा, मुझे दाना पानी हराम है।—काया०, पृ० ३३५।

कलामोचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो बगाल मे होता है।

कलाय—संज्ञा पुं० [सं०] मटर।

कलायखज—संज्ञा पुं० [सं० कलायखञ्ज] एक रोग जिसमे रोगी के जोडो की नसें ढीली पड जाती हैं। और उसके अगो मे कँपकँपी होती है। वह चलने मे लँगड़ाता है।

कलायन—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक [को०]।

कलायाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई] दे० 'कलाई'। उ०—वादीला बनराव रै, जितै कलायाँ जोर।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० २०।

कलार—संज्ञा पुं० [हिं० कलवार] दे० 'कलवार'। उ०—चलो कलार की हाट मे मदिरा को प्रथम प्रीति का साक्षी बनावें।—शकुतला, पृ० १०४।

कलारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार] १ कलवार जाति की स्त्री। कलवारिन। उ०—सुरत कलारी भइ मतवारी मदवा पी गइ बिन तोले।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १७। २ शराब बेचने या बनाने का स्थान। कलवरिया।

कलाल—संज्ञा पुं० [सं० कल्यपाल] [स्त्री० कलाली] कलवार। मद्य बेचनेवाला। उ०—मूरख लोक न जाणही चोर जुआरि अनइ कलाल।—वी० रासो, पृ० ५३।

यौ०—कलालखाना=शराबखाना। मद्य बिकने का स्थान।

कलाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलारी] दे० 'कलारी'। उ०—आगे कलाली की हाट हैं रे चोरना फूल चूनत।—कबीर म०, पृ० १७५।

कलावत[1]—संज्ञा पुं० [सं० कलावान्] १ सगीत कला मे निपुण व्यक्ति। वह पुरुष जिसे गाने बजाने की पूरी शिक्षा मिली हो। गवैया। उ०—बिनकुं राग सुनवे को व्यसन बहुत हतो सो गान सुनायवे के लिये देश देश के कलावत गवैया उहाँ आवते हते।—अकबरी०, पृ० ३६। २ कलाबजी करनेवाला। नट। ३ बाजीगर। जादूगर। उ०—कथनी कथा तो क्या हुआ करनी ना ठहराय। कलावत का कोट ज्यो देखत ही ढहि जाय।—कबीर सा० स०, पृ० ८८।

कलावत[2]—वि० कलाओ का जाननेवाला।

कलावत[3](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—जहाँई कलावत अलापैं मधुर स्वर।—भूषण ग्र०, पृ० ५४।

कलाव—संज्ञा पुं० [हिं० कलावा] दे० 'कलावा'।

कलावत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—भाट कलावत बसैं सुजाना। जिन्ह पिंगल सगीत बखाना।—चित्रा०, पृ० ११।

कलावती[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. जिसमे कला हो। २. शोभावाली। छविवाली।

कलावती[2]—संज्ञा स्त्री० १ तुबुरु नामक गधर्व की वीणा। २ द्रुमिल राजा की पत्नी। ३ एक अप्सरा का नाम। ४ गगा (काशी खंड)। ५ तत्र की एक प्रकार की दीक्षा।

कलावली(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलबल] दे० 'कलबल'। उ०—अबला कहत भला कहो मरा कैसे यह याकी कलावली वीर विपुल बिनासे हैं।—दीन० ग्र०, पृ० १३६।

कलावा—संज्ञा पुं० [सं० कलापक, प्रा० कलावअ, तुलनीय फा० कलावह्] [स्त्री० अल्पा० कलाई] १. सूत का लच्छा जो टेकुए पर लिपटा रहता है। २ लाल पीले सूत के तागो का लच्छा जिसे विवाह आदि शुभ अवसरो पर हाथ, घड़ो तथा और और वस्तुओ पर भी बाँधते हैं। ३ हाथी के गले मे पडी हुई कई लड़ो की रस्सी जिसमे पैर फँसाकर महावत हाथी हाँकते हैं। ४. हाथी की गरदन।

कलावादी—वि०—[सं० कला+वाद+हिं० ई(प्रत्य०)] १. कला के दृष्टिकोण से संबंधित। कला के विचार से युक्त। उ०—शुद्ध

कलाधर संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। उ०—यह समता क्यों करि बनत मो कर मुख मृदु गात। कमल कलाधर कनक लखि कवि कुल कहत लजात।—स० सप्तक, पृ० ३८८। २ दंडक छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण मे एक गुरु, एक लघु, इस क्रम से १५ गुरु और १५ लघु होकर अंत मे गुरु होता है। जैसे,—जाय के भरत्थ चित्रकूट राम पास वेगि, हाथ जोरि दीन ह्वै सुप्रेम तें विनै करी। सीय तात मात कौशिला वशिष्ठ आदि पूज्य लोक वेद प्रीति नीति की सुरीति ही धरी। जान भूप वैन धर्म पाल राम ह्वै सकोच धीर दे गंभीर बधु की गलानि को हरी। पादुका दई पठाय अोध को समाज साज देख नेह राम सीय के हिये कृपा भरी (शब्द०)। ३ शिव। ४. कलाओं को जाननेवाला। वह जो कलाओं का ज्ञाता हो। उ०—कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज राज वर वेश बने।—केशव (शब्द०)।

कलानक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के गण का नाम।

कलाना(पु)†—क्रि० अ० [प्रा० कल=आवाज करना] बोलना। चिल्लाना। उ०—मारू मारू कलाइयाँ उज्वल दती नारि। हसनइ दे हुँकारडउ, ढिवडउ फूटण हारि।—ढोला दू०६११।

कलानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। उ०—यह लघु लहरों का विकास है कलानाथ जिसमे खिच आता।—रस० पृ० ३४१। २ एक गधर्व का नाम जिसने सगीताचार्य सोमेश्वर से सगीत सीखा था।

कलानिधि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

कलानिपुण—वि० [सं०]कलाकुशल। कलाप्रवीण। कला का ज्ञाता। उ०—कवि को कलानिपुण और सहृदय दोनो होना चाहिए।—रस०, पृ० ६६।

कलान्यास—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र का एक न्यास जो शिष्य के शरीर पर किया जाता है।

विशेष—इसमें शिष्य के पैर से घुटने तक 'ॐ निवृत्यै नम', घुटने से नाभि तक 'ॐ प्रतिष्ठायै नम.', नाभि से कठ तक 'ॐ विद्यायै नम', कंठ से ललाट तक 'ॐ शात्यै नम' और ललाट से ब्रह्मरंध्र तक ॐशात्यतीतायैनम' कहकर न्यास करते हैं और फिर इसी क्रिया को सिर से पैर तक उल्टा दोहराते हैं।

कलाप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ समूह। झुंड। जैसे,—क्रियाकलाप। उ०—को कवि को छवि को बरनै रचि राखनि अंग सिंगार कलापन।—घनानंद, पृ० ३६। २. मोर की पूँछ। ३. पूला। मुट्ठा। ४. बाण। ५ तूण। तरकश। ६ कमरबंद। पेटी ७. करधनी। ८ चद्रमा। ९ कलावा। १० कातंत्र व्याकरण, जिसके विषय मे कहा जाता है कि इसे कार्तिकेय ने शर्ववमन को पढ़ाया था। ११ व्यापार। १२ वह ऋण जो मयूर के नाचने पर अर्थात् वर्षा मे चुकाया जाय। १३. एक प्राचीन गाँव जहाँ भागवत के अनुसार देवर्षि और सुदर्शन तप करते हैं। इन्ही दोनों राजर्षियों से युगातर में सोमवशी और सूर्यवशी क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी। १४ वेद की एक शाखा। १५ एक अर्धचंद्राकार अस्त्र का नाम। १६. एक संकर रागिनी जो बिलावल, मल्लार, कान्हड़ा और नट रागों को मिलाकर बनाई जाती है। १७ आभरण। जेवर। भूषण। १८. अर्धचंद्राकार गहना। चंदन।

कलाप²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलपना] व्यथा। दुख। क्लेश। उ०—अवही भेजी हेकली करही करइ कलाप। कहियउ लोपाँ सीमिकउ, सुदरि लहाँ सराप।—ढोला०, दू० ३२३।

कलापक—संज्ञा पुं०[सं०]१ समूह। २ पूला। गट्ठा। ३ हाथी के गले का रस्सा। ४ चार श्लोकों का समूह जिनका अन्वय एक में होता है। ५ वह ऋण जो मयूरों के नाचने पर अर्थात् वर्षा ऋतु मे चुकाया जाय। ६. मोतियो की लडी (को०)। ७ मेखला। करधनी (को०)। ललाट पर अंकित साप्रदायिक चिह्न या लक्षणविशेष (को०)।

कलापट्टी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०कलफेटर] जहाजों की पटरियों की दर्ज मे सन आदि ठूसने का काम।—(लश०)।

क्रि० प्र०—करना।

कलापति—संज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा। उ०—हम प्रणय की सदय मुखछवि देख लें, लोल लहरों पर कलापति से लिखी।—ग्रथि, पृ०६५।

कलापद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलाप ग्राम।

विशेष—भागवत के अनुसार यहाँ सोमवशी देवपि और सूर्यवशी सुदर्शन नाम के दो राजर्षि तप कर रहे हैं। कलियुग के अंत मे फिर इन्ही दोनो राजर्षियों से चद्र और सूर्य वंश चलेगा।

२. कातंत्र व्याकरण पर एक भाष्य का नाम।

कलापशिरा—संज्ञा पुं० [सं० कलापशिरस्] एक मुनि का नाम।

कलापा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगहार (नृत्य) मे वह स्थान जहाँ तीन करण हों।

कलपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] २ रात्रि। २ नागरमोथा। ३ मयूरी। मोरनी।

कलापी¹—संज्ञा पुं० [सं० कलापिन्] [स्त्री० कलापिनी] १. मोर। उ०—पैड़े परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्योंही, चातक। घातक त्यौं ही तू हू कान फोरि लै।—घनानद, पृ० ८७। २ कोकिल। ३ बरगद का पेड। ४. वैशपायन का एक शिष्य। ५. मयूर के नृत्य का समय (जब मयूर अपनी पूँछ के पंखो को फैलाता है) (को०)।

कलापी²—वि० १ तूणीर बाँधे हुए। तरकशबंद। २ कलाप व्याकरण पढ़ा हुआ। ३ झुंड मे रहनेवाला। ४ पूँछ या दुम फैलानेवाला (मोर) (को०)।

कलावतून—संज्ञा वि० [हिं० कलाबत्तू] दे० 'कलाबत्तू'।

कलावतूनी—वि० [तु० कलावतून] कलाबत्तू का बना हुआ।

कलाबत्तू—संज्ञा पुं० [तु० कलावतून] [वि० कलावतूनी] १. सोने चाँदी आदि का तार जो रेशम पर चढाकर बटा जाय। २. सोने चाँदी के कलाबत्तू का बना हुआ पतला फीता जो लचके से पतला होता है और कपड़ों के किनारो पर टाँका जाता है। ३ सोने चाँदी का तार।

कलावा—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कलावा'।

कलाबाज—वि० [हिं० कला+फ़ा० बाज] कलाबाजी करनेवाला। नटक्रिया करनेवाला। कलैया लगानेवाला।

३२ यज्ञ के तीन अंगों में से कोई अंग। मंत्र, द्रव्य और श्रद्धा ये तीन यज्ञ के अंग या उसकी कला हैं। ३३. यंत्र। पेंच। जैसे,—पथरकला। दमकला। ३४ मरीचि ऋषि की स्त्री का नाम। ३५ विभीषण की बड़ी कन्या का नाम। ३६. जानकी की एक सखी का नाम। ३७ एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण मे एक भगण और एक गुरु (SIIS) होता है। जैसे—भाग भरे ग्वाल खरे। पूर्ण कला। नंद लला।

३८ जैन दर्शन के अनुसार वह अचेतन द्रव्य जो चेतन के अधीन रहता है। पुद्गल। प्रकृति। यह दो प्रकार का है—कार्य और कारण।

कला²—संज्ञा स्त्री० [स० कला] १ नकलबाजी। २ बहानेबाजी। उ०—पुनि सिंगार करु कला नेवारी। कदम सेवती बैठु पियारी।—जायसी ग्र०, पृ० १४४।

कलाई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कलाची] १ हाथ के पहुँचे का वह भाग जहाँ हथेली का जोड़ रहता है। इसी स्थान पर स्त्रियाँ चूड़ी पहनती और पुरुष रक्षा बाँधते हैं। उ०—कहा परेखै करि रही इत देखै चित हाल। गई ललाई दृगनि तें छुवत कलाई लाल।—राम० धर्म०, पृ० २४८।

पर्या०—मणिबंध। गट्टा। प्रकोष्ठ।

२ एक प्रकार की कसरत जिसमे दो आदमी एक दूसरे की कलाई पकड़ते हैं और प्रत्येक अपनी कलाई को छुडाकर दूसरे की कलाई पकड़ने की चेष्टा करता है।

क्रि० प्र०—करना।

कलाई²—संज्ञा स्त्री० [सं० कलापी] १ पूला। गट्ठा। २ पहाड़ी प्रदेशों मे एक प्रकार की पूजा जो फसल के तैयार होने पर होती है।

विशेष—इसमे फसल के कटने से पहले दस बारह बालों को इकट्ठा बाँधकर कुलदेवता को चढ़ाते हैं।

कलाई³—संज्ञा स्त्री० [सं० कलापी = समूह] १ सूत का लच्छा। करछा। कुकरी। २ हाथी के गले में बाँधने का कलावा जिसमे पैर फँसाकर पीलवान हाथी हाँकते हैं। ३ अँदुवा। अलान।

कलाई⁴†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ] उरद।

कलाउँतⓅ—वि० [हिं० कलावंत] दे० 'कलावंत'। उ०—कलाउंत काजै भजन बारहमासी सखि लीनै आप मुख गावै राग रागिनी न राचवो।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७।

कलाकंद—संज्ञा पुं० [फा० कलाक़ंद] एक प्रकार की बरफी जो खोए और मिस्री की बनती है। उ०—कलाकंद तजि बनजो खारी। अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी।—सुंदर ग्र०, भा० १,पृ० ३२८।

कलाकर¹—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक की तरह का एक पेड़।

विशेष—यह बंगाल और मदरास मे होता है। इसे कहीं कहीं देवद्दारी भी कहते हैं।

कलाकर²—संज्ञा पुं० [सं०] कलाओं का आकर, चंद्रमा। कलाधर। उ०—कुअरप्पन प्रथिराज तपै तेजह सु महावर। सुकल बीजु दिन हुतें कला दिन चढ़त कलाकर।—पृ० रा०, २।२।

कलाकार—संज्ञा पुं०[सं०]१. किसी कला का ज्ञाता और उस कला में कार्य करनेवाला। कलावंत। २ कार्यकुशल। ललित कला का करने या बनानेवाला।

कलाकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं० कला + कारिता] कलाकुशलता। कुशलतापूर्वक कार्य करने की योग्यता।

कलाकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कला + कारी] दे० 'कलाकारिता'।

कलाकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जिसमे कला का अधिक समावेश हो। उ०—पर उ टन ने शक्तिकाव्य से भिन्न को जो कलाकाव्य (पोएट्री इज ऐन आर्ट) कहा है वह कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानकर।—रस०, पृ० ५७।

कलाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] हलाहल विष।

कलाकुशल—वि० [सं०] किसी कला को कुशलतापूर्वक संपन्न करनेवाला। चतुर। होशियार।

कलाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलापूर्ण रचना। श्रेष्ठ कृति।

कलाकेलि—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

कलाकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कला की निपुणता। हुनर। दस्तकारी। कारीगरी। २ शिल्प।

कलाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की कलाओं का क्रमशः घटना [को०]।

कलाक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कामरूप देश के अंतर्गत एक प्राचीन तीर्थ।

कलाचिक, कलाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कलाई। २ कलछी[को०]।

कलाजंग—संज्ञा पुं० [हिं० कला + जंग] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी के दाहिने पैंतरे पर खड़े होने पर अपने बाएँ हाथ से नीचे से उसका दाहिना हाथ पकड़कर अपना बाँया घुटना जमीन पर टेकते हुए दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी रान अंदर से पकड़ते हैं, और अपना सिर उसकी दाहिनी बगल मे से निकालकर बाँएँ हाथ से उसका हाथ खींचते हुए दाहिने हाथ से उसकी रान उठाकर अपनी बाईं तरफ गिराकर उसे चित कर देते हैं।

कलाजीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलौंजी। मँगरैला।

कलाटीन—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन की एक जाति का एक पक्षी[को०]।

कलातीत—वि० [सं०] सभी प्रकार की कलाओं से परे। उ०—कलातीत कल्यान कल्पांतकारी। सदा सज्जनानंद दाता पुरारी।—मानस, ७।१०८।

कलात्मक—वि० [सं०] कलापूर्ण। कलामय।

कलाद—संज्ञा पुं० [सं०] सोनार। उ०—जा दिन से तजी तुम ता दिन तें प्यारी पै कलाद कैसो पेसो लियो अधम अनंग है (शब्द०)।

कलादक—संज्ञा पुं० [पुं०] दे० 'कलाद'।

कलादाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कलाप, हिं० कलावा] हाथी की गर्दन पर वह स्थान जहाँ महावत बैठता है। कलावा। किलावा। उ०—चारिहु बंधु कबहुँ सीखन हित सखन सहित महलादे। सज्जित सिंधुर सकल भाँति सो बैठहिं आपु कलादे।—रघुराज (शब्द०)।

के लिये कर्णफूल आदि आभूषण बनाना), (१६) गंधयुक्त पदार्थ जैसे गुलाब, केवड़ा, इत्र, फुलेल आदि बनाना, (२०) भूषणभोजन, (२१) इंद्रजाल, (१२) कौचुमारयोग (कुरूप को सुंदर करना या मुँह में और शरीर में मलने आदि के लिये ऐसे उबटन आदि बनाना जिनसे कुरूप भी सुंदर हो जाय), (२३) हस्तलाघव (हाथ की सफाई, फुर्ती या लाग), (२४) चित्रशाकापूपभक्ष्य-विकार-क्रिया (अनेक प्रकार की तरकारियाँ, पूप और खाने के पकवान बनाना, सूपकर्म), (२५) पानकरसरागासव भोजन (पीने के लिये अनेक प्रकार के शर्बत, अर्क और शराब आदि बनाना), (२६) सूचीकर्म (सीना, पिरोना), (२७) सूत्रकर्म (रफूगरी और कसीदा काढ़ना तथा तागे से तरह तरह के बेल बूटे बनाना), (२८) प्रहेलिका (पहेली या बुझौवल कहना और बूझना), (२६) प्रतिमाला (अंत्याक्षरी अर्थात् श्लोक का अंतिम अक्षर लेकर उसी अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना, बैतबाजी), (३०) दुर्वाचकयोग (कठिन पदों या शब्दों का तात्पर्य निकालना), (३१) पुस्तकवाचन(उपयुक्त रीति से पुस्तक पढ़ना), (३२) नाटिकाख्यायिकादर्शन (नाटक देखना या दिखलाना), (३३) काव्यसमस्या-पूर्ति, (३४) पट्टिका-वेत्र-बाण-विकल्प ,(निवाड़, बाध या बेंत से चारपाई आदि बुनना), (३५) तर्ककर्म (दलील करना या हेतुवाद), (३६) तक्षण (बढ़ई, संगतराश आदि का काम करना), (३७) वास्तुविद्या (घर बनाना, इंजीनियरी), (३८) रूप्यरत्नपरीक्षा (सोने, चाँदी आदि धातुओं और रत्नों को परखना), (३६) धातुवाद (कच्ची धातुओं का साफ करना या मिली धातुओं को अलग अलग करना), (४०) मणिराग-ज्ञान (रत्नों के रंगों को जानना), (४१) आकरज्ञान (खानों की विद्या), (४) वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षों का ज्ञान, चिकित्सा और उन्हें रोपने आदि की विधि)' (३४) मेष-कुक्कुट-लावक-युद्ध-विधि, (भेड़े, मुर्गे, बटेर, बुलबुल आदि को लड़ाने की विधि), (४४) शुक-सारिका-प्रलापन (तोता, मैना पढ़ाना), (४५) उत्सादन (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर आदि दबाना), (४६) केश-मार्जन-कौशल (बालों का मलना और तेल लगाना), (४७) अक्षरमुष्टिका कथन (करपलई), (४८) म्लेच्छितकला विकल्प (म्लेच्छ या विदेशी भाषाओं का जानना), (४६) देशभाषाज्ञान (प्राकृतिक बोलियों को जानना), (५०) पुष्पशकटिकानिमित्तज्ञान (दैवी लक्षण जैसे बादल की गरज, बिजली की चमक इत्यादि देखकर आगामी घटना के लिये भविष्यद्वाणी करना), (५१) यंत्रमातृका (यंत्रनिर्माण), (५२) धारण मातृका (स्मरण बढ़ाना), (५३) संपाठ्य (दूसरे को कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसे उसी प्रकार पढ़ देना), (५४) मानसीकाव्य क्रिया (दूसरे का अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरंत कविता करना या मन में काव्य करके शीघ्र कहते जाना), (५५) क्रियाविकल्प (क्रिया के प्रभाव को पलटना), (५६) छलितकयोग (छल या ऐयारी करना), (५७) अभिधानकोष-छंदोज्ञान, (५८), वस्त्रगोपना (वस्त्रों की रक्षा करना), (५६) द्यूतविशेष (जुआ खेलना), (६०) आकर्षण क्रीडा (पासा आदि फेंकना), (६१) बालक्रीडाकर्म (लड़का खेलाना), (६२) वैनायिकी विद्या-ज्ञान (विनय और शिष्टाचार, इल्मे इखलाक व आदाब), (६३) वैजयिकी विद्याज्ञान, (६४) वैतालिकी विद्याज्ञान।

यौ०—कलाकुशल। कलाकौशल। कलावंत।

१३. मनुष्य के शरीर के आध्यात्मिक विभाग। उ०—संजम साधि कला बस कीन्ही मन पवन घर आयो।—चरण०' बानी, पृ० १६७।

विशेष—ये संख्या में १६ हैं। पाँच ज्ञानेंद्रिया, पांच कर्मेंद्रियाँ, पाँच प्राण और मन या बुद्धि।

१४. वृद्धि। सूद। १५. नृत्य का एक भेद। १६. नौका। १७. जिह्वा। १८ शिव। १६ लेश। लगाव। २० वर्ण। अक्षर। (तंत्र)। (२१) मात्रा (छंद)। (२२) स्त्री का रज। (२३) पाशुपत दर्शन के अनुसार शरीर के अंग या अवयव।

विशेष—इनमें कला दो प्रकार की मानी गई हैं।—एक कार्याख्या, दूसरी कारणाख्या। कार्याख्या कलाएँ दस हैं, पृथिव्यादि पाँच तत्व, और गंधादि उनके पाँच गुण। कारणाख्या १३ हैं—पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ तथा अध्यवसाय, अभिमान और संकल्प।

२४. विभूति। तेज। जैसे, ईश्वर की अद्भुत कला है। उ०-(क) कासिहु से कला जाती, मथुरा मसीद होती, सिवाजी न होते तो सुनति होति सबकी।—भूषण (शब्द०)। (ख) रामजानकी लपन म ज्यों ज्यों करिहो भाव। त्यों त्यों दरसैंहै कला दिन दिन दून दुराव।—रघुराज (शब्द०)। २५ शोभा। छटा। प्रभा। उ०—लखन बतीसी कुल निरमला। बरनि न जाय रूप की कला।—जायसी (शब्द०)। २६ ज्योति। तेज। उ०—अब दस मास पूरि भई घरी। पद्मावति कन्या अवतरी। जानो सुरुज किरिन हुत गढ़ी। सूरज कला घाट, वह बढ़ी। —जायसी (शब्द०)। २७ कौतुक। खेल। लीला। उ०—यहि विधि करत कला विविध बसत अवधपुर माहिं। अवध प्रजानि उछाह नित, राम बाँह की छाहिं।—रामस्वरूप (शब्द०)।

मुहा०—कला बजाना = बंदरों का मजीरा बजाना (मदारी)।

२८. छल। कपट। धोखा। बहाना। उ०—यों ही रच्यौ करैहैं कला कामिनी घनी।—प्रताप (शब्द०)।

यौ०—कलाकार = छली। कपटी। फसादी।

२६. बहाना। मिस। हीला। ३०. ढंग। युक्ति। करतब। जैसे— तुम्हारी कोई कला यहाँ नहीं लगेगी। उ०—विरहा कठिन काल कै कला।—जायसी ग्रं०, पृ० १०३। ३१ नटों की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी सिर नीचे करके उलटता है। ढेकली। उ०—(क) नाचौ घूँघट खोलि ज्ञान का ढोल बजाओ। देखै सब संसार कलाएँ उलटी खाओ।—पलटू०, पृ० ५८। (ख) छबहु नाद शब्द ही मला कउहुँ नाटक चेटक कला।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—कलाबाजी। कलाजंग।

क्रि० प्र०—खाना।—मारना।

कलहासिनि—वि० स्त्री० [सं०] मधुर हास्यवाली । सुंदर हँसीवाली । उ०—कुमुदकला बन कलाहासिनि अमृत प्रकाशिनी, नमवासिनि तेरी आभा को पाकर माँ । जग का तिमिर त्रास हर दूँ ।—वीणा, पृ० २ ।

कलाहिनी¹—वि० स्त्री० [सं०] लड़ाकी । झगड़ालू ।

कलाहिनी²—संज्ञा स्त्री० शनि की स्त्री का नाम ।

कलही¹—वि० [सं० कलहिन्] [वि० स्त्री० कलहिनी] झगड़ालू । लड़ाका ।

कलही²—वि० स्त्री० दे० 'कलहिनी' ।

कलांकुर—संज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर] १ कराकुल पक्षी । २ कंसासुर । ३ चौरशास्त्र के प्रवर्तक कर्णीसुत ।

कलांतर—संज्ञा पुं० [सं० कलान्तर] १ सूद । व्याज । २ दूसरी या अन्य कला (को०) । ३ लाभ [को०] ।

कलांबि, कलांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कलाम्बि, कलाम्बिका] १ ऋण देना । २ सूदखोरी [को०] ।

कलाँ—वि० [फा०] बड़ा । दीर्घाकार ।

यौ०—कलाँराशि का घोड़ा=बड़ी जाति का घोड़ा ।

कलांवत(पु)—वि० [हिं० कलावत] दे० 'कलावत' । उ०—ढाढी कलाँवत नट नरतक अरु पातुर ।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ३० ।

कला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अंश । भाग । २ चंद्रमा का सोलहवाँ भाग । इन सोलहो कलाओ के नाम ये हैं ।—१ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा, ४ पुष्टि, ५ तुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशनी, ९ चंद्रिका, १० कांति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अंगदा, १५ पूर्णा और १६ पूर्णामृता ।

विशेष—पुराणो मे लिखा है कि चद्रमा मे अमृत रहता है, जिसे देवता लोग पीते हैं। चद्रमा शुक्ल पक्ष मे कला कला करके बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन उसकी सोलहवी कला पूर्ण हो जाती है। कृष्णपक्ष मे उसके संचित अमृत को कला कला करके देवतागण इस भाँति पी जाते हैं—पहली कला को अग्नि, दूसरी कला को सूर्य, तीसरी कला को विश्वेदेवा, चौथी को वरुण, पाँचवी को वषट्कार, छठी को इंद्र, सातवी को देवर्षि, आठवी को अजएकपात्, नवी को यम, दसवी को वायु, ग्यारहवी को उमा, बारहवी को पितृगण, तेरहवीं को कुबेर, चौदहवी को पशुपति, पद्रहवी को प्रजापति और सोलहवी कला अमावस्या के दिन जल और ओषधियो मे प्रवेश कर जाती है जिनके खाने पीने से पशुओ मे दूध होता है। दूध से घी होता है। यह घी आहुति द्वारा पुन चद्रमा तक पहुँचता है।

यौ०—कलाधर । कलानाथ । कलानिधि । कलापति ।

३. सूर्य का बारहवाँ भाग ।

विशेष—वर्ष की बारह सक्रांतियो के विचार से सूर्य के बारह नाम हैं, अर्थात्—१ विवस्वान, २ अर्यमा, ३ पूषा, ४ त्वष्टा, ५ सविता, ६. भग, ७ धाता, ८ विधाता, ९ वरुण, १० मित्र, ११ शुक्र और १२. उरुक्रम। इनके तेज को कला कहते हैं। बारह कलाओ के नाम ये हैं—१ तपिनि, २ तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७ सुषुम्णा, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११ धारिणी और १२ क्षमा ।

४ अग्निमंडल के दस भागो मे से एक ।

विशेष—उसके दस भागो के नाम ये हैं—१. धूम्रा, २ अर्चि, ३ उष्मा, ४ ज्वलिनी, ५ ज्वालिनी, ६ विस्फुलिंगिनी, ७. ८ सुरूपा, ९ कपिला और १० हव्यकव्यवहा ।

५ समय का एक विभाग जो तीस काष्ठा का होता है।

विशेष—किसी के मत से दिन का $\frac{१}{६००}$ वाँ भाग और किसी के मत से $\frac{१}{१८००}$ वाँ भाग होता है।

६ राशि के ३०वें अंश का ६०वाँ भाग । ७ वृत्त का १८००वाँ भाग । ८ राशिचक्र के एक अंश का ६०वाँ भाग । ९ उपनिषदो के अनुसार पुरुष की देह के १६ अंश या उपाधि ।

विशेष—इनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्राण २ श्रद्धा ३. व्योम, ४ वायु ५ तेज, ६ जल, ७ पृथ्वी, ८ इंद्रिय, ९ मन १० अन्न, ११ वीर्य, १२. तप, १३. मंत्र, १४ कर्म, १५ लोक और १६ नाम ।

१० छंदशास्त्र या पिंगल मे 'मात्रा' या 'कला' ।

यौ०—द्विकल । त्रिकल ।

११ चिकित्सा शास्त्र के अनुसार शरीर की सात विशेष झिल्लियों के नाम जो मास, रक्त, मेद, कफ, मूत्र, पित्त और वीर्य को अलग अलग रखती हैं। १२ किसी कार्य को भली भाँति करने का कौशल । किसी काम को नियम और व्यवस्था के अनुसार करने की विद्या । फन । हुनर ।

विशेष—कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलाएँ ये हैं । —(१) गीत (गाना), (२) वाद्य (बाजा बजाना), (३) नृत्य (नाचना), (४) नाट्य (नाटक करना, अभिनय करना), (५) आलेख्य (चित्रकारी करना), (६) विशेषकच्छेद्य (तिलक के साँचे बनाना), (७) तंडुल-कुसुमावलि-विकार (चावलो और फूलो का चौक पूरना), (८) पुष्पास्तरण (फूलो की सेज रचना या बिछाना, (९) दशन-वसनांग राग (दाँतो, कपड़ो और अंगों को रँगना या दाँतो के लिये मंजन, मिस्सी आदि, वस्त्रो के लिये रंग और रँगने की सामग्री तथा अंगो मे लगाने के लिये चंदन, केसर, मेहँदी, महावर आदि बनाना और उनके बनाने की विधि का ज्ञान), (१०) मणिभूमिकाकर्म (ऋतु के अनुकूल घर सजाना), (११) शयनरचना (बिछावन या पलंग बिछाना), (१२) उदकवाद्य (जलतरंग बजाना), १३ उदकघात (पानी के छीटे आदि मारने या पिचकारी चलाने और गुलाबपास से काम लेने की विद्या), (१४) चित्रयोग (अवस्थापरिवर्तन करना अर्थात् नपुंसक करना, जवान को बुड्ढा और बुड्ढे को जवान करना इत्यादि), (१५) माल्य-ग्रंथविकल्प (देवपूजन के लिये या पहनने के लिये माला गूँथना), (१६) केश-शेखरापीड-योजन (सिर पर फूलों से अनेक प्रकार की रचना करना या सिर के बालो में फूल लगाकर गूँथना), (१७) नेपथ्ययोग (देश काल के अनुसार वस्त्र, आभूषण आदि पहनना, (१८) कर्णपत्रभंग (कानो

कलशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गगरी। छोटा कलसा। २. मंदिर का छोटा कँगूरा। ३. पृष्ठपर्णी। पिठवन। ४. एक प्रकार का बाजा, जिसे कलशीमुख भी कहते थे।

कलशीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कलशी से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि।

कलस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलश'। उ०—कीरति कुल कलस अलस तजि तेज सुनाम अतेज सिथिल गति है।—घनानंद, पृ० ६०६।

कलसजोनि—संज्ञा पुं० [हिं० कलस+जोनि] दे० 'कलशयोनि'। उ०—कलसजोनि जिय जानेउ नाम प्रतापु।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४।

कलसभव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलशभव'। उ०—अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध विंध्य बढ़ोइ। सकुचि सम भयो ईस आयसु कलसभव जिय जोइ।—तुलसी (शब्द०)।

कलसरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई+सर] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी को नीचे लाकर उसके मुँह की तरफ बैठकर अपना दाहिना हाथ सामने से उसकी बाँह मे डालकर पीठ पर ले जाते हैं और दूसरे हाथ की कलाई पकड कर बाईं ओर जोर करके चित कर देते हैं।

कलसरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलसिरी] दे० 'कलसिरी[1]'। उ०—सीकरा सो काल है कलसरी सी लपेट ले है।—मलूक०, पृ० ३१।

कलसवँदाना—क्रि० अ० [सं० कलश+वन्दन] विवाह मे एक रीति जिसमें स्त्रियाँ पानी भरे घड़े सिर पर रखकर शुभार्थ ले जाती हैं। उ०—परणवाँ चाल्यो वीसलराव। पच सखी मिलि कलस वदावि।—बी० रासो, पृ० १२।

कलसा—संज्ञा पुं० [सं० कलसक] [स्त्री० अल्पा० कलसी] १ पानी रखने का बरतन। गगरा। घडा। उ०—जस पनिहारी कलस भरे मारग मे आवै। कर छोडे मुख वचन चित्त कलसा मे लावै।—पलटू०, पृ० ४२। २. मंदिर का शिखर।

कलसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कलश, हिं० कलसा] अधीन। उ०—सागर कोट जाके कलसार। छपन कोट जाके पनिहार।—दरिया० बानी०, पृ० ४३।

कलसि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कलसी' (को०)।

कलसिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलसी+इया (प्रत्य०)] दे० 'कलसी[1]'। उ०—तश्तरी, प्याले, कलसिया, सिगारदानी, डिबियाँ ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २०।

कलसिरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+सिर] एक चिड़िया जिसका सिर काला होता है।

कलसिरी[2]—वि० स्त्री० [हिं० कलह+सिरी] लड़ाकी (स्त्री)। झगड़ा (स्त्री)।

कलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गगरा। २. छोटे छोटे कँगूरे। मंदिर का छोटा शिखर या कँगूरा।

कलसीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] घड़े से उत्पन्न, अगस्त्य ऋषि।

कलहांतरिता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कलहान्तरिता] दे० 'कलहांतरिता'। उ०—प्रोषितपतिका अरु खंडिता। कलहंतरिता उत्कंठिता।—नंद० ग्रं०, पृ० १४६।

कलहंस—संज्ञा पुं० [सं०] १ हंस। २ राजहंस। उ०—कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५६। ३. श्रेष्ठ राजा। ४ परमात्मा। ब्रह्म। ५ एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसमे प्रत्येक चरण मे १३ अक्षर अर्थात् एक सगण, एक जगण, फिर दो सगण और अंत मे एक गुरु होता है।—सज सी सिंगार कलहंस गति सी। अलि आई राम छवि मडप दीठी।

६. संकर जाति की एक रागिनी जो मधु, शंकरविजय और आभीरी के योग से बनती है। ७ राजपूतों की एक जाति। उ०—गहरवार परिहार जो कुरे। औ कलहंस जो ठाकुर जुरे।—जायसी (शब्द०)।

कलह—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाद। झगड़ा। उ०—कलह कलपना दुख घना रहै मन भग।—सहजो०, पृ० १६।

यौ०—कलहप्रिय।

२. लडाई। युद्ध। ३. तलवार की म्यान। ४. पथ। रास्ता।

कलहकार—वि० [सं०] झगड़ालू। झगड़ा करनेवाला।

कलहकारी—वि० [सं० कलहकारिन्] [वि० स्त्री० कलहकारिणी] झगड़ा करनेवाला। झगडालू।

कलहनी—वि० स्त्री० [सं० कलहिनी] दे० 'कलहिनी'।

कलहप्रिय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

कलहप्रिय[2]—वि० [वि० स्त्री० कलहप्रिया] जिसे लड़ाई भली लगे। लडाका। झगडालू।

कलहप्रिया[1]—वि० स्त्री० [सं०] झगडालू।

कलहप्रिया[2]—संज्ञा स्त्री० मैना।

कलहर—संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति जो मध्य प्रदेश मे पाई जाती है।

कलहरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलार > कलारी] दे० 'कलवारिन'। उ०—उव सुखसागर के बीच, कलहरी ह्वै रहु री।—चरण० बानी, पृ० १३७।

कलहलाना(पु)—क्रि० अ० [सं० कलकलाय, प्रा० कलकल? या सं० कोलाहल अथवा अनुध्व] कोलाहल या शोरगुल करना। उ०—एही भली न, करहला, कलहलिया कइकाँण।—ढोला० पृ० ६२७।

कलहांतरिता—संज्ञा स्त्री० [सं० कलहान्तरिता] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जो नायक या पति का अपमान कर पीछे पछताती है।

कलहारी—वि० स्त्री० [सं० कलहकार, हिं० कलहार+ई (प्रत्य०)] कलह करनेवाली। लडाकी। झगडालू। कर्कशा।

कलहास—संज्ञा पुं० [सं०] केशवदास के अनुसार हास के चार भेदों मे से एक जिसमे थोड़ी थोड़ी कोमल और मधुर ध्वनि निकलती है जैसे,—जेहि सुनिए कलधुनि कछू कोमल विमल विलास। केशव तन मन मोहिए वरनत कवि कलहास (शब्द०)।

कलमास(पु)—वि० [सं० कल्माष] चितकबरा।

कलमी¹—वि० [अ० कलम + फा० ई (प्रत्य०)] १ लिखा हुआ। लिखित। हाथ का लिखा हुआ। हस्तलिखित। २ जो कलम लगाने से उत्पन्न हुआ हो। जैसे,—कलमी नीबू कलमी आम। ३. जिसमे कलम या रवा हो। जैसे,—कलमी शोरा।

कलमी²—संज्ञा स्त्री०-[सं० कलम्बी], करेमू। कलमी साग।

कलमीशोरा—संज्ञा पुं० [हिं० कलमी + शोरा] साफ किया हुआ शोरा।

विशेष—इसमे कलमे होती हैं। शोरे को पानी मे साफ करके उसकी मैल को छाँटकर कलम जमाते हैं। यह शोरा साधारण शोरे से अधिक साफ और तेज होता है। इसकी कलमे भी बडी बड़ी होती हैं।

कलमुहाँ—वि० [हिं० काला + मुँह] १ काले मुँह का। जिसका मुँह काला हो। २ कलंकित। लांछित।

कलयुग—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० कलियुग'। उ०—असाधारणों की लोलुपता ने जो कलयुग मे वढ़ गई है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६९।

कलरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ मधुर शब्द। कोमल या मद मधुर ध्वनि। उ०—रजनी की लाज समेटो तो कलरव से उठकर भेंटो तो।—लहर, पृ० २२। २ कोकिल। ३ कबूतर। ४ चिड़ियों के चहकने की आवाज (को०)।

कलरासि(पु)-वि० [सं० कला + राशि] कलाविद्। कलाओं मे कुशल। कलाओं मे जानकर। उ०—चतुरई रासि छल रासि, कलरासि, हरि भजै जिहिं हेत तिहिं देन हारी।—सूर०, १०। १८०३।

कलरिन संज्ञा स्त्री० [देश०] जोंक लगानेवाली स्त्री। कीड़ी लगानेवाली स्त्री।

कलल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्भाशय मे रज और वीर्य की वह अवस्था जिसमे एक पतली झिल्ली सी बन जाती है और जो कलन के उपरांत होती है।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार जब ऋतुमती स्त्री का स्वप्न मैथुन द्वारा रज उसके गर्भाशय में प्रवेश करता है, तब भी उससे हड्डी आदि से रहित एक बुलबुला सा बनकर रह जाता है और कलल कहलाता है।

२. गर्भाशय (को०)।

यौ०—कललज = (१) गर्भ। (२) राल।

कलल²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलकल] कलकल।

कललिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णाक्षरों मे लिखावट। सोने के पानी की लिखावट [को०]।

कलवरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार + इया (प्रत्य०)] कलवार की दूकान। शराब की दुकान।

कलवार—संज्ञा पुं० [सं० कल्यपाल, प्रा० कल्लवाल] [स्त्री० कलवारी, कलवारिन] एक जाति जो किसी समय शराब बनाती और बेचती थी। शराब बनाने और बेचनेवाला। उ०—सुनि कलवार एक कहा हो जोगी। महा रूप कै अहउ वियोगी।—इंद्रा०, पृ० ७६।

कलवारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार] कलवार जाति की स्त्री। कलवारिन। उ०—चली सुनारि सुहाग सुनाती। औ कलवारि प्रेम मधुमाती।—जायसी (शब्द०)।

कलवारिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार का स्त्री०] १ कलवार जाति की स्त्री। २. कलवार की स्त्री।

कलवारिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलवारिन] दे० कलवारिन'। उ०—माया कलवारिनी देत विष घोरिकै, पिए बिष सबै ना कोउ भागै।—पलटू०, भा० २, पृ० ३८।

कलविंक—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] १ चटक। गौरैया। २. कालीदा। तरबूज। ३ सफेद चँवर। ४ त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के तीन मस्तकों मे से वह मस्तक जिसके मुँह से वह शराब पीता था। ५ एक तीर्थ का नाम। ६ धब्बा। दाग (को०)। ७ कोयल (को०)।

कलविंकविनोद—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्कविनोद] नृत्य के ५१ मुख्य चालकों मे से एक।

विशेष—इसमें माथे के ऊपर दोनों हाथों को ले जाकर आकाश में घुमाते हैं और फिर पसली पर लाकर नीचे ऊपर घुमाते हैं।

कलविकस्वर—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्कस्वर] एक प्रकार की समाधि [को०]।

कलविंग—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] १ गौरैया। चटक। २ दाग, धब्बा [को०]।

कलश—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कलशी] १. घड़ा। गगरा। २ तंत्र के अनुसार वह घडा या गगरा जो व्यास मे कम से कम ५० अंगुल और उँचाई मे १२ अंगुल हो और जिसका मुँह ८ अंगुल से कम न हो। ३. मंदिर, चैत्य आदि का शिखर। ४ मंदिरों के शिखर पर लगा हुआ पीपल, पत्थर आदि का कँगूरा। ५ खपड़ैल के कानों पर हुआ मिट्टी का कँगूरा। ६. एक प्रकार का मान जो द्रोण या आठ सेर के बराबर होता था। ७ चोटी। सिरा। ८ प्रधान अंग। श्रेष्ठ व्यक्ति। जैसे,—रघुकुलकलश। ९ काश्मीर का एक राजा जिसका नाम रणादित्य भी था।

विशेष—यह ९५७ शकाब्द मे हुआ था और बडा कुमार्गी तथा अन्यायी था। इसने अपने पिता पर बहुत से अत्याचार किए थे और अपनी भगिनी तक का सतीत्व नष्ट किया था। मंत्रियों ने इसे सिंहासन से उतारकर इसके पिता को गद्दी पर बैठाया था।

१० कोहल मुनि के मत से नृत्य की एक वर्तना। ११ समुद्र (को०)।

यौ०—कलशांभोधि, कलशार्णव, कलशोदधि = (१) समुद्र। (२) क्षीरसागर।

कलशक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णाटक देश के अंतर्गत एक तीर्थ।

कलशज—संज्ञा पुं० [सं०] कलश से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि [को०]।

कलशभव—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घट से कही गई है।

कलशयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि [को०]।

कलशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कलशी' [को०]।

कलम कराना = कटवाना। उ०—कलम रुकै तो कर कलम कराइये।—(शब्द०)। कलम घिसना = कलम चलाना। उ०—आखिर कलम घिसने से पहिले ही जीभ चलाने की विद्या सीखी थी।—किन्नर०, पृ० २१।

३ वह पौधा जो कलम लगाकर तैयार किया गया हो। ४ वे छोटे बाल जो हजामत बनवाने मे कनपटियों के पास छोड़ दिए जाते हैं।

क्रि० प्र०—काटना।—छाँटना।—बनाना।—रखना।

५. एक प्रकार की वंशी जिसमे सात छेद होते हैं। ६ बालो की कूची जिससे चित्रकार चित्र बनाते या रग भरते हैं।

यौ०—कलमकार।

७. शीशे का काटा हुआ लंबा टुकडा जो झाड मे लटकाया जाता है। ८ शोरे, नौसादर आदि का जमा हुआ छोटा लंबा टुकड़ा। रवा। ९ छछूदर। फुलझडी (आतशबाजी)। १० सोनारों या संगतराशों का एक औजार जिससे वे बारीक नक्काशी का काम करते हैं। ११. मुहर बनाने वालो का वह औजार जिससे वे अक्षर खोदते हैं। १२ किसी पेशेवाले का वह औजार जिससे कुछ काटा, खोदा या नकाशा जाय। १३ शैली। पद्धति। जैसे, राजपूती कलम। १४ लेखनकौशल।

कलम[2]—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह धान जो एक जगह बोया जाय और उखाडकर दूसरी जगह लगाया जाय। जड़हन।

यौ०—कलमोत्तम = बहुत अच्छा महीन धान। कलमगोपवधू कलमगोपी = धान के खेतों की रखवाली करनेवाली स्त्री।

२ लेखनी (को०)। ३ चोर (को०)। ४. दुष्ट। बदमाश (को०)।

कलमक, कलमक्क—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का अंगूर जो बलूचिस्तान मे बहुतायत से होता है।

कलमकसाई—सज्ञा पुं० [हिं० कलम + अ० कसाई] कठोर लिखनेवाला। क्रूरतापूर्वक लिखनेवाला।

कलमकार-सज्ञा पुं० [फा०] १ चित्रकार। चित्रो में रग भरनेवाला। २. एक प्रकार का बाफता (कपडा) जिसमें कई प्रकार के बेलबूटे होते हैं।

कलमकारी-सज्ञा स्त्री० [फा०] १. कलम से किया हुआ काम। जैसे,—नक्काशी, बेलबूटा आदि।

कलमकीली—सज्ञा स्त्री० [अ० कलम + हिं० कीली] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें विपक्षी के सामने खड़े होने पर अपने दाहिने हाथ की उँगलियों से उसके बाएँ हाथ की उँगलियो में पजा गठकर अपने दाहिने हाथ को उसके पजे के सहित अपनी गरदन पर लाते हैं और अपनी दाहिनी कोहनी उसकी बाईं कलाई से ऊपर लाकर नीचे की ओर दबाकर उसे चित कर देते हैं।

कलमख(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कल्मष] १ पाप। दोष। २ कलंक। लाछन। दाग। धब्बा। उ०—विमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख डोरे खोय।—दरिया० बानी०, पृ० १३।

कलमजद—वि० [अ० कलम + फा० जद] कलम किया हुआ। कटा हुआ।

कलमतराश—सज्ञा पु० [अ० कलम + फा० तराश] छुरी। चाकू। २. (कहारो और हाथीवानों की बोली में) अरहर की खूँटी।

कलमदान—सज्ञा पुं० [अ० कलम + फा दान] काठ का एक पतला लबा सदूक जिसमें कलम, दावात, पेंसिल चाकू आदि रखने के खाने बने रहते हैं। उ०—अपनी लेखनी को आनंद के कलमदान विश्रामालय मे स्थान दिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४५८।

मुहा०—कलमदान देना = किसी को लिखने पढ़ने की कोई नौकरी देना।

कलमना(पु)—क्रि० स० [हिं० कलम] काटना। दो टकडे करना। उ०—तब तमचरपति तमकि कह्यो धरि धरि हरि खाहु। मिलि मारो दोउ बंधु बंक कपि कलमत जाहु।—रघुनाथ (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग अनुचित और भददा है।

कलमबद[1]—वि० [अ० कलम + फा० बद] लिखित। लिपिबद्ध।

कलमबद[2]—सज्ञा पु० चित्रकार की कूँची बनानेवाला कारीगर।

कलमरिया—सज्ञा स्त्री० [पुर्त०] हवा का बद हो जाना—(लश०)

कलमल[1]—सज्ञा पु० [अनु०] कुलबुलाहट। कसमसाहट।

मुहा०—कलमल कलमल करना = व्याकुल होना। व्यथित होना। उ०—पिय मूरति जु आनि उर अरै। कामिनि कलमल कलमल करै।—नद ग्र०, पृ० १३२।

कलमल[2](पु)—सज्ञा पुं० [सं० कलिमल] कल्मष। पाप। उ०—मए कलमल दूर तन के, गई तपन नसाय हो।—धरनी० पृ० ३।

कलमलना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] दाब या अडस से पडने के कारण अगों का इधर उधर हिलना डोलना। कुलबुलाना। उ०—(क) चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चौंके बिरंचि शकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो।—तुलसी (शब्द०)।

कलमलाना—क्रि० अ० [अनु०] दाब या अंडस मे पकड़ने के कारण अगों का इधर उधर हिलना डोलना। कुलबुलाना। उ०—भूमी भय कलमलात डगमग अकुलाई।—संत तुरसी०, पृ० १५२।

कलमस(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कल्मष] दे० 'कल्मष'। उ०—जड़ उन्मत्त समान होइ विचरत गत कलमस।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ४२५।

कलमा—सज्ञा पुं० [अ० कलिमह्] १ वाक्य। बात। २ वह वाक्य जो मुसलमान धर्म का मूल मत्र है—'ला इलाह इल्लिल्लाह्, मुहम्मद उर् रसूलिल्लाह्'। उ०—चारो वर्ण धर्म छोडि कलमा निवाज पढ़ि, शिवाजी न होते तो सुनति होति सब की।—भूषण (शब्द०)।

मुहा०—कलमा पढना = मुसलमान होना। किसी के नाम का कलमा पढ़ना = किसी व्यक्तिविशेष पर अत्यत श्रद्धा या प्रेम रखना। कलमा पढाना = मुसलमान करना। कलमा भराना = इस्लाम धर्म के प्रति प्रेरित करना। उ०—दिल्ली बादिसाही दीन आपों कै मिलाया। कलमा भी [illegible]

कलपबेलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्प+हिं० बेलि] कल्पलता। उ०—(क) कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।—मानस, २।५६। (ख) सत्ता के सपूत तैं जगाई 'मतिराम' कहैं, लहलही कीरति कलपबेलि बाग हैं।—मति० ग्रं०, पृ० ३८६।

कलपात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्पान्त] दे० 'कल्पांत'। उ०—लघु जीवन संवत पचदसा। कलपात न नास गुमानु असा।—मानस, ७।१०२।

कलपाना—क्रि० स० [हिं० कलपना] दुःखी करना। जी दुखाना। तरसाना। रुलाना।

कलपून—संज्ञा पुं० [देश०] एक सदाबहार पेड़ जो उत्तरीय और पूर्वीय बंगाल मे होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी लाल रंग की और मजबूत होती है। यह घर बनाने में काम आती है और बड़ी कीमती समझी जाती है।

कलपोटिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+पोटा] एक चिड़िया जिसका पोटा काला होता है।

कलप्प(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्पन, प्रा० कप्पण] काटना। काटने का कार्य। खंडन। उ०—साधन्ह सिद्धि न पाइअ जौ लहि साधन तप्प। सोई जानहि बापुरे जो सिर करहि कलप्प।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०३।

कलप्पा—संज्ञा पुं० [मल० कलप्पा=नारियल] नीलापन लिए हुए सफेद रंग की कड़ी वस्तु। नारियल का मोती।

विशेष—यह कभी कभी नारियल के भीतर मिलती है। चीन के लोग इसे बड़े मूल्य की समझते हैं।

कलफ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कल्प] पक चावल या आरारोट आदि की पतली लेई जिसे कपड़ों पर उनकी तह कड़ी और बराबर करने के लिये लगाते हैं। माँड़ी।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लगाना।

कलफ[2]—संज्ञा पुं० [देश०] चेहरे पर का काला धब्बा। झाँई।

कलफदार—वि० [हिं० कलफ+फा० दार (प्रत्य०)] कलफ या माँड़ी लगा हुआ।

कलफा[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] देशी दारचीनी की छाल।

विशेष—यह मलाबार से आती है और चीन की दारचीनी में, उसे सस्ता करने के लिये, मिलाई जाती है।

कलफा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कल्ला। कोपल। नया अंकुर।

कलब—संज्ञा पुं० [देश०] टेसू के फूलों को उबालकर निकाला हुआ रंग।

विशेष—इसमें कत्था, लोध और चूना मिलाकर अगरई रंग बनाते हैं।

कलाबल[1]—संज्ञा पुं० [सं० कला+बल] उपाय। दाँव पेंच। जुगुत।

कलाबल[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] हल्ला गुल्ला। शोर गुल। उ०—सखिन सहित सो नित प्रति आवै। कलबल मुनि के निकट मचावै।—विश्राम (शब्द०)।

कलबल[3]—वि० [अनुध्व०] अस्पष्ट (स्वर)। (शब्द०) जो अलग अलग न मालूम हो। गिलबिल। उ०—कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे।—तुलसी (शब्द०)।

कलबोर—संज्ञा पुं० [हिं० अकलबीर] दे० 'अकलबीर'।

कलबुद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कलबूत] दे० 'कलबूत'। उ०—हाड़ मास रुधिर की मोटरी एह कलबुद्ध बनायो।—सं० दरिया, पृ० १००।

कलबूत—संज्ञा पुं० [फा० कालबुद] १. ढाँचा। साँचा। उ०—पूत कलबूत से रहैंगे सब ठाढ़े तब कछू न चलैगी जब दूत धरि पावैंगे।—दीन० ग्रं०, पृ० २४१। २ लकड़ी का ढाँचा जिसपर चढ़ाकर जूता सिया जाता है। फरमा। ३ मिट्टी, लकड़ी या टीन का गुंबदनुमा टुकड़ा जिसपर रखकर चौगोशिया या अठगोशिया टोपी या पगड़ी आदि बनाई जाती है। गोलबर। कालिब।

कलबूद(पु)—संज्ञा पुं०[फा०,कालबुद या हिं० कलबूत] दे० 'कलबूत'। उ०—पाँच औ तत्त पचीस प्रकीति है तीनि गुन बाँधि कलबूद दीन्हा।—सं० दरिया, पृ० ८३।

कलभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कलभी] १. हाथी का बच्चा। उ०—उर मनि माल कंबु कलग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सींवा।—तुलसी (शब्द०)। २ हाथी। ३. ऊँट का बच्चा। ४ धतूरा।

कलभक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा [को०]।

कलभवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़।

कलभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी या ऊँट का बच्चा (मादा)। २ चेंच का पौधा। चंचु।

कलम[1]—संज्ञा पुं० सं० स्त्री० [अ० कलम, तुलनीय] १. सरकंडे की कटी हुई छोटी छड़ या लोहे की जीभ लगी हुई लकड़ी का टुकड़ा जिसे स्याही मे डुबाकर कागज पर लिखते हैं। लेखनी। उ०—लिए हाथ मे कलम कलम सिर करत अनेकन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—बनना।—बनाना।

मुहा०—कलम खींचना, फेरना या मारना = लिखे हुए को काटना। कलम चलना = (१) लिखाई होना। (२) कलम का कागज पर अच्छी तरह खिसकना। जैसे,—यह कलम अच्छी नहीं चलती, दूसरी लाओ। कलम चलाना = लिखना। कलम तोड़ना = लिखने की हद कर देना। अनूठी उक्ति कहना। कलमबंद करना = लेखबद्ध करना। कलमबंद = पूरा पूरा। ठीक ठीक। जैसे,—कलमबंद सौ जूते लगेंगे।

यौ०—कलम कसाई। कलमतराश। कलमदान।

२ किसी पेड़ की टहनी जो दूसरी जगह बैठाने या दूसरे पेड़ मे पैवंद लगाने के लिये काटी जाय।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—काटना।—लगाना।

मुहा०—कलम करना = काटना। उ०—लिए हाथ में कलम कलम सिर करत अनेकन।—प्रेमघन०, १, पृ० १५।

कलठोरा—संज्ञा पुं० [हिं० काला+ठोर] कलचोंचा कबूतर।

कलत—वि० [सं०] गंजा। खल्वाट [को०]।

कलतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। पुंश्चली [को०]।

कलत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कलत्रवान्, कलत्री] १ स्त्री। पत्नी। उ०—किसके माँ बाप और किसके पुत्र कलत्र, कोई किसी का नहीं।—श्यामा०, पृ० १२। २. नितंब। ३ दुर्ग। किला। ४ सात की संख्या का सूचक शब्द।

कलत्रगर्हि सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] परिवार के वशीभूत सेना। वह सेना जो परिवार (पुत्र कलत्र) की चिंता में डूबी रहे।
विशेष—कौटिल्य ने यद्यपि ऐसी सेना को ठीक नहीं कहा है, तथापि अंत शल्य (शत्रु से भीतर भीतर मिली हुई) सेना से अच्छी कहा है।

कलत्यना—क्रि० अ० [सं० कलह] छटपटाना। दुखी होना। उ०—उलत्यैं पलत्यैं कलत्यैं कराहैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११।

कलयरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] करघे की चक नामक लकड़ी।

कलयरा[2]—वि० दे० 'चक'।

कलदार[1]—वि० [हिं० कल+फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें कल लगी हो। पेंचदार।

कलदार[2]—संज्ञा पुं० वह रुपया जो टकसाल की कल में बना हो। सरकारी रुपया। राजकीय रुपया।

कलदुमा[1]—वि० [हिं० काला+फ़ा० दुम+हिं० आ (प्रत्य०)] काली दुम का। काली पूँछ का।

कलदुमा[2]—संज्ञा पुं० काली दुम का कबूतर।

कलधूत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

कलधूत[2]—संज्ञा पुं० [सं० कलधौत] दे० 'कलधौत'। उ०—कलधूत कलस दस गढित हृथ्य। उच कुढि जन न्हांन सथ्य।—पृ० रा०, १४। १२३।

कलधौत—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। उ०—केतिक ये कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों।—रसखान (शब्द०)। २ चाँदी। ३ सुंदर ध्वनि।

कलध्वनि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुर ध्वनि। कोमल आवाज। सुरीली आवाज।

कलध्वनि[2]—संज्ञा पुं० १ कबूतर। २. मोर [को०]।

कलध्वनि[3]—संज्ञा स्त्री० कोयल [को०]।

कलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कलित] १. उत्पन्न करना। बनाना। लगाना। सजाना। २. धारण करना। होना। ३. आचरण। ४. लगाव। संबंध। ५. गणित की क्रिया। हिसाब। जैसे,—संकलन, व्यवकलन। ६ ग्रास। कौर। ७. ग्रहण। ८. शुक्र और शोणित के संयोग का वह विकार जो गर्भ की प्रथम रात्रि में होता है और जिससे कलल बनता है। ९ बेंत। १०. धब्बा (को०)। ११. दोष। अपराध (को०)।

कलना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गणना। हिसाब। उ०—देव सृष्टि की सुख विभावरी, ताराओं की कलना थी।—कामायनी, पृ० ८। २. आदान। ग्रहण (को०)। ३. रचना। उत्पन्न करना (को०)। ४. अधीनता। वश्यता (को०)। ५. बोध। प्रत्यय। ज्ञात (को०)। ६. धारण करना (को०)। ७. परित्याग। मोचन (को०)।

कलना[2]—क्रि० स० [हिं० करना] करना। किसी कार्य को करना। उ०—करि क्रक संक असुरनि उर कहर वत्त ता दिन कलिय।—पृ० रा०, २। २८५।

कलनाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मधुर ध्वनि। २. हंस [को०]।

कलनाद[2]—वि० मधुर ध्वनिवाला। जिसकी आवाज मीठी हो [को०]।

कलनादी—वि० [सं० कलनादिन्] कलकल ध्वनि करनेवाला। उ०—मीना और गुल को ढकेलते हुए सब उसी कलनादी स्रोत में कूद पड़े।—आकाश, दी० पृ० ३७।

कलप[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कलपना] व्याकुलता। छटपटाहट। उ०—तन विहवल दुख तलफ, कलप उपजे निज काया।—रा० रू०, पृ० ३३७।

कलप[2]—संज्ञा पुं० [सं० कल्प=रचना] १ कलफ। उ०—छूटै मल दाग नाम का कलप लगावै।—पलटू०, भा० १, पृ० ४। २. खिजाब।

कलप[3]—संज्ञा पुं० [सं० कल्प] दे० 'कल्प'। उ०—कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करो जो। हे मनहरनी तरुनी उऋन न होउँ तबो तौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१।

कलपतरु—संज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] दे० 'कल्पतरु'। उ०—चाह आलवाल और उछाह के कलपतरु, कीरति मयंक प्रेमसागर अपार है।—घनानंद०, पृ० १३१।

कलपत्तर—संज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] एक पेड़ जो शिमले और जौनसार की पहाड़ियों में अधिक होता है।
विशेष—इसकी लकड़ी सफेद और मजबूत होती है जो मकानों में लगती है, तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है।

कलपद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० कल्पद्रुम] दे० 'कल्पद्रुम'। उ०—एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित चाहै।—भूषण ग्रं०, पृ० ५०।

कलपना[1]—क्रि० अ० [सं० कल्पना=उद्भावना करना (दु ख की)] १. विलाप करना। बिलखना। दु ख की बात सोच सोचकर या कह कहकर रोना। जैसे,—अब रोने कलपने से क्या होगा। उ०—नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय क्यों पल धीरज लेखौं। नीरजनैनी के नीर भरे कित नीरद से दृग नीरज देखौं।—पद्माकर (शब्द०)। २. कल्पना करना।

कलपना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्पना] दे० 'कल्पना'। उ०—माया मोह भरम की मोटरी, यह सब काल कलपना।—धरनी०, पृ० ३८।

कलपना[3]—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, कल्पन, प्रा० कप्पण] काटना। कतरना। उ०—हौं रतनसेन नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू।—जायसी (शब्द०)।

कलपनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्पनी] कतरनी। कैंची।—(डिं०)।

कलपवृच्छ—संज्ञा पुं० [सं० कल्पवृक्ष] दे० 'कल्पवृक्ष'। उ०—कलपवृच्छ जब सुनिय सकल चितनि फलदायक।—नंद ग्रं०, पृ० ११।

कलकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलकानि] दे० 'कलकानि'। उ०—घर की त्रिया विमुख ह्वै बैठी, पुत्र कियो कलकान।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७।

कलकानि—संज्ञा स्त्री० [अ० कलक = रंज] दिक्कत। हैरानी। दु ख। उ०—(क) नारी बिनु नहिं बोले पूत करै कलकानी। घर मे आदर कादर कोसो सीझत रैनि बिहानी।—सूर (शब्द०)। (ख) भूपाल पालन भूमिपति वदनेस नद सुजान है। जानै दिली दल दक्खिनी कीन्हें महा कलकानि है।—सूदन (शब्द०)।

कलकी—संज्ञा पुं० [सं० कल्कि] दे० 'कल्कि'। उ०—अग्निकुंड सों वुध भये जिन मुख निंदा कीन। कलकी असि सो जानिये म्लेच्छ हरन परवीन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० २३।

कलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक कीडा। २. सगीत मे एक ग्राम।

कलकूजिका—वि०, स्त्री० [सं०] १ मधुर ध्वनि करनेवाली। २ कुलटा। पुश्चली (को०)।

कलकूणिका—वि० स्त्री० [सं०] १ मधुर बोलनेवाली। २ पुश्चली (को०)।

कलक्खि, लक्खी—संज्ञा पुं० [सं० कलक्षिक] मुर्गा। उ०—कूजन अलि गुजन लगे किय कलक्खिन सोर। सजनी गत रजनी भई नीरजनी छवि ग्रोर।—स० सप्तक, पृ० ३८८।

कलक्टर[1]—संज्ञा पु० [अं० कलेक्टर] माल का बडा हाकिम जिसके अधिकार में जिले का प्रबध होता है। यह सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के मुकदमो का फैसला करता है।
यौ०—डिप्टी कलक्टर।

कलक्टर[2]—वि० वसूल करनेवाला। जैसे—टिकट कलक्टर, बिल कलक्टर।

कलक्टरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलक्टर] १ जिले मे माल के मुकदमो की कचहरी। २ कलक्टर का पद।

कलक्टरी[2]—वि० कलक्टर से सबध रखनेवाला।

कलख—संज्ञा पुं० [अ० कलुष] कलुषता। कालापन। उ०—मानो कुछ भीतर कलख हो रहा है।—सुनीता, पृ० १८५।

कलगट—संज्ञा पुं० [देश०] कुल्हाड़ी।

कलग़ा—संज्ञा पुं० [तु० कलगी] मरसे की तरह का एक पौधा। मुर्गकेश। जटाधारी।

विशेष—यह बरसात मे उगता है और क्वार कातिक में इसके सिरे पर कलगी की तरह गुच्छेदार लाल, लाल फूल निकलते हैं। फूल चौड़ा चपटा होता है, जिसपर लाल लाल रोएँ होते [illegible] ज्यों ऊपर को जाते हैं, अधिक लाल होते हैं। यह है, जो [illegible] चोटी की तरह दिखाई देता है। देखने में मुर्गे के [illegible]

कलगी—संज्ञा स्त्री० [फा० [illegible]] १. शुतुरमुर्ग आदि चिड़ियो के सुंदर पंख जिन्हें राजा लोग [illegible]ड़ी या ताज पर लगाते हैं और जिसमे कभी कभी छोटे [illegible] भी पिरोए जाते हैं। २. मोती या सोने का बना हुआ सिर [illegible] का एक गहना। ३ चिड़ियो के सिर पर की चोटी, जैसी मोर या मुर्गे के सिर पर होती है। ४ टोपी या पगड़ी में लगाया [illegible]नेवाला तुर्रा। ५ किसी ऊँची इमारत का शिखर। ६. [illegible] का एक ढग।
यौ०—कलगीबाज।

कलघोष—संज्ञा पु० [सं०] कोयल (को०)।

कलचाला—वि० [सं० कलह + हिं० चाल] युद्ध मे छेड़छाड़ करनेवाला। उ०—हरियँद तणा दलां हालालों, कमँधां दल आगल कलचाला।—रा० रू०, पृ० १४१।

कलचिड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला = सुन्दर + चिड़िया] [पु० कलचिड़ा] एक चिड़िया जिसका पेट काला, पीठ मटमैली और चोंच लाल होती है। इसकी बोली सुरीली होती है।

कलची[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंजा] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी।

कलची[2]—वि० दे० 'कंजा'[2]।

कलचुरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक प्राचीन राजवंश जिसके अधिकार मे कर्णाट, चेदि, दाहल, मंडल आदि देश थे।

कलचोचा—संज्ञा पुं० [सं० काला + चोंच] एक प्रकार का कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद और चोंच काली होती है।

कलछा—संज्ञा पुं० [स० कर + रक्षा, हिं० करछा] [स्त्री० अल्पा० कलछी] बडी डाँडी का चम्मच या बडी कलछी।

कलछी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर + रक्षा] चम्मच के आकार का लंबी डाँडी का एक प्रकार का पात्र जिसका अगला भाग गोल कटोरी के आकार का होता है और जिससे पकाते समय चावल, दाल, तरकारी आदि चलाते या परोसते हैं।

कलछुला—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलछी] दे० 'कलछी'।

कलछुला—संज्ञा पुं० [हिं० कलछा] लोहे का लबा छड़ जिसके सिरे पर एक कटोरा सा लगा रहता है।

विशेष—इससे भाड में से गरम बालू निकालकर भड़भूँजे चबेना भूनते हैं।

कलछुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलछुल] दे० 'कलछी'।

कलजिब्भा—वि० [हिं० काला + जिह्वा या जीभ] [स्त्री० कलजिब्भी] १ जिसकी जीभ काली हो। २. जिसके मुँह से निकली हुई अशुभ बातें प्रायः ठीक घटें।

कलजिभी—वि० स्त्री० [हिं० काला > कल + जीभ > जिभ + ई (प्रत्य०)] दे० 'कलजिब्भा'। उ०—मब्बासी महरी ने सुन लिया तो आहिस्ते से मुँह पर एक थप्पड़ दिया क्यों री कलजिभी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४२७।

कलजीहा[1]—वि० [हिं० काला + प्रा० जीह] दे० 'कलजिब्भा'।

कलजीहा[2]—संज्ञा पुं० काली जीभ का हाथी जो दूषित समझा जाता है।

कलजुग—संज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग'। उ०—दिवस न भूख रैन नहीं सुख है जैसे कलजुग जाम।—कबीर ग्रं०, भा० १, पृ० ७४।

कलझँवा—वि० [हिं० काला + झाँई] काले मुँह का। साँवला। जैसे,—इस कलझँवे मुँह पर यह लैसदार टोपी।

कलट—संज्ञा पुं० [स०] मकान की छाजन (को०)।

कलटोरा—संज्ञा पुं० [सं० काल = काला + हिं० ठोर = चोंच] सफेद कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद हो, पर चोंच काली हो।

कलट्टर—संज्ञा पुं० [अं० कलेक्टर] दे० 'कलक्टर'।

जैसे,— तुमने तो ऐसी कल ऐंठ दी है कि अब वह किसी की सुनता ही नहीं। कल का पुतला = दूसरे के कहने पर चलनेवाला। दूसरे के अधीन कामकरनेवाला। कल बेकल होना = (१) पुरजा ढीला होना। जोड़ आदि का सरकना। (२) अव्यवस्थित होना। क्रम बिगड़ना। किसी की कल हाथ में होना = किसी की मति गति पर अधिकार होना। किसी का ऐसा वश में होना कि जिधर चलावे, उधर वह चले।

४. बंदूक का घोड़ा या चाप।

यौ०—कलदार बंदूक = तोड़ेदार बंदूक।

कल[5]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कलह] युद्ध। संग्राम। उ०—भुज दुहुवाँ बल, बीस भुज कल दस माथा काट।—बाकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६०।

कल[6]—वि० [हिं० काला शब्द का संक्षिप्त या समासगत रूप] काला। जैसे,—कलमुहाँ। कलसिरा। कलजिब्भा। कलपोटिया। कलदुमा।

कलइया[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलैया] दे० 'कलैया'।

कलइया[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई] दे० 'कलाई'।

कलई—संज्ञा स्त्री० [अ० कलई] १. राँगा।

यौ०—कलई का कुश्ता = राँगे का भस्म। वंग। कलई का चूना = सफेदी के काम में आनेवाला पत्थर का चूना।

२. राँगे का पतला लेप जो बरतन इत्यादि पर खाद्य पदार्थों को कसाव से बचाने के लिये लगाते हैं। मुलम्मा। उ०—कलई के काम सबै मिटि जावैं।—दरिया० बानी, पृ० ३०।

यौ०—कलईगर।

क्रि० प्र०—उड़ना।—उतरना।—करना।—होना।

३. वह लेप जो रंग चढ़ाने या चमकाने के लिये किसी वस्तु पर लगाया जाता है। जैसे,—(क) दीवार पर चूने की कलई करना। (ख) दर्पण के पीछे की कलई। ४. बाहरी चमक दमक। दिखाव। आवरण। तड़क भड़क। ऊपरी बनावट। उ०—साहित सत्य सुरीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—कलई खुलना = असलियत जाहिर होना। असली भेद खुलना। वास्तविक रूप का प्रगट होना। उ०—आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी।—सूर (शब्द०)। कलई न लगना = युक्ति न चलना। जैसे,—यहाँ तुम्हारी कलई न लगेगी।

५. चूना। कली।

क्रि० प्र०—करना।—पोतना।

कलईगर—संज्ञा पुं० [अ० कलई + फा० गर] कलई करनेवाला।

कलईदार—वि० [अ० कलई + फा० दार] जिस पर कलई की हो। जिसपर राँगे का लेप चढ़ा हो। जैसे,—कलईदार बरतन।

कलऊ[1]ⓟ—वि० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुगी'। उ०—कहै कबीर पुकारि कै ये कलऊ बेवहार।—कबीर सा०, पृ० ७१।

कलऊ[2]ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'कलियुग'। उ०—तीनों जुग जब जाय सेराई। तेहि पाछे कलऊ चलि आई।—द० सागर, पृ० ११।

कलकंठ[1]—संज्ञा पुं० [सं० कलकण्ठ] [स्त्री० कलकण्ठी] १. कोकिल। कोयल। उ०—काक कहहिं कलकंठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)। २. पारावत। परेवा। कबूतर। पिड़क। ३. हंस। ४. सुंदर कंठ। शोभायुक्त कंठ। उ०—कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।—घनानंद, पृ० ५८५।

कलकंठ[2]—वि० मीठी ध्वनि करनेवाला। सुंदर बोलनेवाला।

कलकंठिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० कलकण्ठी] कोयल। उ०—कलकंठिनि! निज कलरव में भर, अपने कवि के गीत मनोहर, फैला आओ वन वन घर घर।—वीणा, पृ० ५२।

कलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० कलकण्ठी] कोयल।

कलक[1]—संज्ञा पुं० [अ० कलक] १. बेकली। बेचैनी। घबराहट।

क्रि० प्र०—गुजरना।—होना।—रहना।—मिटना।

२. रंज। दुःख। खेद। सोच। चिंता। उ०—पर एक कलक होत बड़ ताता। कुसमय भये राम बिनु भ्राता।—(शब्द०)।

कलक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। २. एक प्रकार का गद्य (को०)।

कलक[3]—संज्ञा पुं० [सं० कल्क] दे० 'कल्क'।

कलकतिया—वि० [हिं० कलकत्ता + इया (प्रत्य०)] कलकत्तेवाला। कलकत्ते से संबंधित। उ०—क्रमश: कलकतिये समाचारपत्र भी होली मनाने लगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५१।

कलकत्ता—संज्ञा पुं० [अं० कैलकटा] भारत का एक प्रमुख शहर जो बंगाल की राजधानी है।

कलकनाⓟ—क्रि० अ० [हिं० कलकल = शब्द] चिल्लाना। शोर करना। चीत्कार करना। चिग्घाड़ मारना। उ०—अगनि उतंग जंग जैतवार जोर जिन्हैं चिक्करत दिक्करि हिलत कलकत हैं।—मति० ग्रं०, पृ० ३८७।

कलकल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. झरने आदि के जल के गिरने का शब्द। उ०—कलकल छलछल सरिता का जल बहता छिन छिन।—मधुज्वाल, पृ० ४१। २. कोलाहल। हल्ला। शोर। ३. शिव (को०)।

कलकल[2]—संज्ञा स्त्री० झगड़ा। वाद विवाद। दाँता किटकिट।

कलकल[3]—संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष की गोंद। राल।

कलकल[4]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलकलाना] खुजली। सुरसुरी। चुनचुनाहट।

कलकलतीⓟ—वि० [हिं० कलकलाना अथवा कड़कड़ाती] पर्यंत तेज। उ०—कलकलती किरणेह, बाँका झटकै लोभ वन।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ५४।

कलकलाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] कलकल की आवाज होना।

कलकलाना[2]—क्रि० अ० [देश० अथवा हिं० कुलबुलाना] १. शरीर में गरमी या चुनचुनाहट की अनुभूति होना। २. कुलबुलाना। उ०—कूर्म कलकलाइ गउ।—वर्ण०, पृ० ३१। ३. किसी ओर प्रवृत्ति होना। जैसे,—मार खाने के लिये पीठ का

इस देश मे ये लोग प्राय मुसलमान होते हैं। उ०—आसा की डोरी गरे बाँधि देत दुख छोम। चित पितु को वदर कियो ग्रह्यो कलंदर लोभ।—दीन० ग्र०, पृ० २५३। ३. दे० 'कलंदरा'।

कलंदर[२]—संज्ञा पुं० [सं० कलन्दर] १ एक वर्णसंकर जाति का नाम। २ उस जाति का व्यक्ति (को०)।

कलंदरा[१]—संज्ञा पुं० [अ०] १ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो सूत, रेशम और टसर से बुना जाता है। गुदड़। २ खेमे का अकुंडा जिसपर कपडा या रेशम लिपटा रहता है। इसमे लोग कपड़े या और और वस्तु लटका देते हैं। उ०—तबू, पाल, कनात, साएबान, सिरायचे। रावटि हू बहू भाँति, पुनि कुंदरा कलदरा।—सूदन (शब्द०)।

कलंदरा[२]—संज्ञा पुं० [अं० कैलेंडर] १. वह जंत्री या पत्रा जिसका साल पहली जनवरी से प्रारभ होता है। २. जुर्म या जुर्मों की वह सूची याददाश्त जो मजिस्ट्रेट को ऐसे मुकद्दमो मे तैयार करनी पड़ती है जिन्हें वह दौरा सुपुर्द करता है।

कलंदरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलंदरा + ई (प्रत्य०)] १ वह छोलदारी जिसमे कलदर लगे हों। २ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

कलंदरी[२]—वि० कलंदर से सबंधित। कलंदरों का।

कलंदरी[३]—संज्ञा स्त्री० कलदर का पेशा या धधा।

कलंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कलन्दिका] ज्ञान। बुद्धि (को०)।

कलंधर—संज्ञा पुं० [सं० कलन्धर] चद्रमा।

कलंब—संज्ञा पुं० [सं० कलम्ब] १. शर। वाण। २. शाक का डठल। ३. कदव।

कलंबक—संज्ञा पुं० [सं० कलम्बक] एक प्रकार का कदव (को०)।

कलंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कलम्बिका] १ गले के पीछे की नाड़ी। मन्या। २ एक साग (को०)।

कलंवियन—संज्ञा पुं० [अ०] प्रेस या छापे की कल का एक भेद।

विशेष—इसमे दो लगर होते हैं। एक चिड़िया के आकार का ऊपर रहता है, दूसरा पीछे की ओर। इन्हीं लगरों से इसकी दाव उठती है। कमानी नही होती। इसका चलन अब कम है। इसे चिड़िया प्रेस भी कहते हैं।

कलँगडा—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] कलीदा। तरबूज।

कलँगा—संज्ञा पुं० [हिं० कलँगी] १ लोहे की एक छेनी जिससे ठठेरे थाली मे नक्काशी करते हैं। २ छीपियो का एक ठप्पा जिसमें १८ फूल होते हैं। ३ दे० 'कलगा'।

कलँगी—संज्ञा स्त्री० [फा० कलगी] दे० 'कलगी'[२]। उ०—कलँगी सडक सेत गज गाहैं। मालनि जटित मजु मुकता है।—हम्मीर०, पृ० ३।

कल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अव्यक्त मधुर ध्वनि। जैसे—कोयल की कूक, भौंरो की गुजार।

यौ०—कलकठ।

२. वीर्य। ३. साल का पेड। ४. पितरों का एक वर्ग (को०)। ५. शकर। शिव (को०)। ६. चार मात्राओं का काल (को०)। ७. मात्रा (को०)।

कल[२]—वि० १ मनोहर। सुदर। उ०—सोमेस सूर प्रथिराज कल तिम समुह चर वर कही।—पृ० रा०, ८।३। २. कोमल। ३ मधुर। ४ कमजोर। दुर्बल (को०)। ५ कच्चा। अपक्व (को०)। ६ मधुर स्वर करनेवाला (को०)। ७ अस्पष्ट और मधुर। मद मधुर (ध्वनि) (को०)।

कल[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्य, प्रा० कल्ल] १ नीरोग्य। आरोग्य। सेहत तदुरुस्ती। २ आराम। चैन। सुख। उ०—कल नहिं लेत पहरुआ, कवन विधि जाइव हो।—धरम०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।—होना।

मुहा०—कल से = चैन से। उ०—सुवै तहाँ दिन दस कल काटी। आयउ व्याध ढूका लै टाटी।—जायसी (शब्द०)। कल से = आराम से। धीरे धीरे। आहिस्ता आहिस्ता।

३ सतोष। तुष्टि।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।—होना।

कल[४]—क्रि० वि० [सं० कल्य = प्रत्यूष, प्रभात] १. दूसरे दिन का सवेरा। आनेवाला दिन। जैसे,—मैं कल आऊँगा।

मुहा०—कल कल करना या आज कल करना = किसी बात के लिये सदा दूसरे दिन का वादा करना। टाल मटूल करना। हीला हवाला करना।

२ भविष्य मे। पर काल मे। किसी दूसरे समय। जैसे,—जो आज देगा, सो कल पावेगा। ३ गया दिन। बीता हुआ दिन। जैसे,—वह कल घर गया था।

मुहा०—कल का = थोड़े दिन का। हाल का। जैसे,—कल का लड़का हमसे बातें करने आया है। कल की बात = थोड़े दिनों की बात। ऐसी घटना जिसे हुए बहुत दिन न हुए हो। हाल का मामला। कल की रात = वह रात जो आज से पहले बीत गई। कल की घर पर है = आगे की बात आगे देखी जाएगी। कल को = भविष्य मे।

कल[५]—संज्ञा स्त्री० [सं० कला = अंग, भाग] १ ओर। बल। पहलू। जैसे,—(क) देखें ऊँट किस कल बैठता है (ख) कभी वे इस कल बैठते हैं, कभी उस कल। २. अग। अवयव। पुरजा।

कल[६]—संज्ञा स्त्री० [सं० कला = विद्या] १ युक्ति। ढग। उ०—मुझ में तीनों कल बल छल। किसी की कुछ नहिं सकती चल।—हरिश्चद्र (शब्द०)। २ कई पेंचों और पुरजों के जोड से बनी हुई वस्तु जिससे कोई काम लिया जाय। यत्र। जैसे—छापे की कल। कपड़ा बुनने की कल। सीने की कल। पानी की कल।

यौ०—कलदार = यत्र से बना हुआ सिक्का। रुपया। पानी की कल = वह नल जिसकी मूँठ ऐंठने या दबाने से पानी आता है।

क्रि० प्र०—खोलना।—चलना।—चलाना।—लगाना।

३ पेंच पुरजा।

क्रि० प्र०—उमेठना।—ऐंठना।—घुमाना।—फेरना।—मोड़ना।

मुहा०—कल ऐंठना = किसी के चित्त को किसी ओर फेरना।

कर्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] ताव। जोश। बढ़ावा। दे० 'करष'।

कर्षक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचनेवाला। २ हल जोतनेवाला। किसान। खेतिहर। उ०—हम राज्य लिए मरते हैं। सच्चा राज्य परंतु हमारे कर्षक ही करते हैं।—साकेत, पृ० २८५।

कर्षक[2]—वि० खींचनेवाला [को०]।

कर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कर्षित, कर्षी, कर्षक, कर्षणीय, कर्ष्य] १ खींचना। २. खरोंचकर लकीर डालना। ३. जोतना। ४ कृषि कर्म। खेती का काम। ५. आकर्षण। खिंचाव। उ०—किंतु तो भी कर्षण बलवंत है जब तक मिले हैं वे आपस में।—अपरा, पृ० ९८।

कर्षणविकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचतान। २. आसक्ति और अनासक्ति। उ०—कर्षण विकर्षण भाव जारी रहेगा यदि इसी तरह आपस में।—अपरा, पृ० ९७।

कर्षणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा [को०]।

कर्षना(पु)—क्रि० स० [कर्ष+हिं० ना (प्रत्य०)] खींचना। उ०—कोउ आजु राज समाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै।—केशव (शब्द०)।

कर्षफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहेड़ा। विभीतक। २. आँवला।

कर्षफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी [को०]।

कर्षिणी—संज्ञा वि० [सं०] १. खिरनी का पेड़। क्षीरिणी वृक्ष। २. घोड़े की लगाम।

कर्षित—वि० [सं०] १ खींचा हुआ। आकृष्ट किया हुआ। उ०—बार बार देखती चपल चित स्पर्श चकित कर्षित हो हर्षित।—गीतिका, पृ० १५। २. सताया हुआ। पीड़ित (को०)। ३. क्षीण किया हुआ (को०)। ४. जोता हुआ (को०)।

कर्षिताभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको शत्रु ने पूर्ण रूप से निचोड़ लिया हो।

कर्षी[1]—वि० [सं० कर्षिन्] आकर्षक। खींचनेवाला [को०]।

कर्षी[2]—संज्ञा पुं० किसान। हल चलानेवाला [को०]।

कर्षू[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंडे की आग। २. खेती। ३. जीविका।

कर्षू[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटा ताल। २. नदी। नहर। ४. छोटा कुंड जिसमें यज्ञ की अग्नि रखी जाती है। ५. कूँड़। जुताई (को०)।

कर्हि—क्रि० वि० [सं०] कब? किस समय?

कर्हिचित्—क्रि० वि० [सं०] १. कभी। किसी समय। २. कदाचित्।

कलंक—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्क] [वि० कलंकित, कलंकी] १. दाग। धब्बा। २ चंद्रमा पर काला दाग।

यौ०—कलंकांक।

३. लांछन। बदनामी। ४. ऐब। दोष।

क्रि० प्र०—छूटना।—देना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—कलंक चढ़ाना = कलंक आ-दोष लगाना। कलंक का टीका लगाना = दोष या धब्बा लगना। लांछन लगना। अपयश होना। उ०—बूढ़ा आदमी हूँ, इस बुढ़ौती में कलंक का टीका लगे तो कहीं का न रहूँ। फिसाना०, भा० ३, पृ० ११६।

५ वह कजली जो पारा सिद्ध हो जाने पर बैठ जाती है। उ०—करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मतिरंक। पारद प्रगट प्रपंच मय सिद्धिउँ नाउ कलंक।—तुलसी (शब्द०)। ६. पारे और गंधक की कजली। उ०—जौ लहि घरी कलंक न परा। काँच होहि नहिं कंचन करा।—जायसी (शब्द०)। ७ लोहे का मुरचा।

कलंक[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कल्कि, कलंकी] दे० 'कल्कि'।

यौ०—कलंक सरूप = कल्कि रूप या अवतार। उ०—कलि कलिमल सौं हरन हरि कियो कलक सरूप।—पृ० रा०, २। ५७१।

कलंकष—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्कष] १ सिंह। शेर। २ एक प्रकार का बाजा [को०]।

कलंकषी—संज्ञा स्त्री० [सं० कलङ्कषी] सिंहनी [को०]।

कलंकांक—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्काङ्क] चंद्रमा का काला दाग।

कलंकित—वि० [सं० कलङ्कित] १. जिसे कलंक लगा हो। लांछित। दोषयुक्त। २ जिसमें मुरचा लगा हो।

कलंकी[1]—वि० [सं० कलङ्किन्] [स्त्री० कलंकिनी] जिसे कलंक लगा हो। दोषी। अपराधी। उ०—वे करता नहिं भए कलंकी, नहीं कलिंगै मारा।—घट०, पृ० २६४।

कलंकी[2]—संज्ञा पुं० चंद्रमा। उ०—मैलो मृग धारे जगत नाम कलंकी जाग। तऊ कियो न मयंक तुम सरनागत को त्याग।—दीन० ग्रं०, पृ० १९८।

कलंकी(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० कल्कि] दे० 'कल्कि'।

यौ०—कलंकी सरूप = कल्कि अवतार। उ०—कलंकी सरूप धरंतं अनूप।—पृ० रा०, २। ५८४।

कलंकुर—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्कुर] पानी का भँवर।

कलंकूट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कालकूट] दे० 'कालकूट'। उ०—तुट्टे दंत जारी। करं गै बिहारी। परे भूमि थानं। कलंकूट जानं।—पृ० रा०, ११। ६४३।

कलंगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलगी] दे० 'कलगी'। उ०—बहै लाल लोहू लसै वारिधारा। मनो कौल फूले कलंगी अपारा।—हम्मीर०, पृ० ५१।

कलंगो—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० पहाड़ों में होनेवाली जंगली भाँग का वह पौधा जिसमे बीज लगते हैं। फुलगों का उलटा।

कलंज—संज्ञा पुं० [सं०] १ तवाकू का पौधा। २ मृग। ३ पक्षी। ४ पक्षी का मांस। ५. १० पल की तौल। ६ विषैले अस्त्र से मारा हुआ मृग या पक्षी (को०)।

कलंडर—संज्ञा पुं० [अं० कैलेंडर] वह अँगरेजी यंत्री या तिथिपत्र जिसका प्रारंभ पहली जनवरी से होता है।

कलंदक—संज्ञा पुं० [सं० कलन्दक] एक ऋषि का नाम।

कलंदर[1]—संज्ञा पुं० [अ० कलंदर] १. एक प्रकार का मुसलमान साधु जो संसार से विरक्त होता है। २ रीछ और बंदर नचानेवाला।

के प्रधान रूप को प्रकाश में लाने के लिये उत्सुक थे।—आचार्य० पृ० १६२।

कर्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम करने की जगह। २ फलित ज्योतिष मे लग्न से दसवाँ स्थान जिसके अनुसार मनुष्य के पिता पद, राजसम्मान आदि के संबंध मे विचार होता है। ३. वह स्थान जहाँ कारीगर काम करते हो। कारखाना [को०]।

कर्महीन—वि०[सं०]१ जिससे शुभ कर्म न बन पड़े। अकर्मनिष्ठ। २ अभागा। भाग्यहीन।

कर्महीनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० कर्महीन+ई] भाग्यहीन। अभागी। उ०—मदमति हम कर्महीनी दोष काहि लगाइए। प्राणपति सो नेह बाँध्यो कर्म लिख्यो सो पाइए।—सूर (शब्द०)।

कर्मांत—संज्ञा पुं० [सं० कर्मान्त] १. काम का अंत। काम की समाप्ति। २ जोती हुई धरती। ३ अन्नभाडार (को०)। ४ कार्यालय। कारखाना (को०)।

कर्मांतिक—संज्ञा पुं० [हिं० कर्मान्तिक] कर्मचारी। मजदूर [को०]।

कर्मा—(पु)वि० [हिं० कर्म+प्रा० (प्रत्य०)] दे० कर्मपरायण उ०—कर्मा धर्मा स्रावग जैनी। ये उतरे भौजल की सैनी—घट०, पृ०, २६३।

कर्माकारी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कर्मा+कारी] कर्म करनेवाला। कर्मकाडी। उ०—पुन हो पंडित कर्माकारी। ज्ञान पदार्थ तत्त् बीचारी।—प्राण०, पृ० २६४।

कर्माजीव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पेशे मे जीवननिर्वाह करनेवाला व्यक्ति [को०]।

कर्मादान—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यापार जिसका श्रावको के लिये निषेध है।

विशेष—ये १५ हैं—१ इंगला कर्म। २ वन कर्म। ३. साकट कर्म या साडी कर्म। ४. भाडी कर्म। ५ स्फोटिक कर्म–कोडी कर्म। ६ दंतकुवाणिज्य। ७. लाक्षा-कुवाणिज्य। ८. रस-कुवाणिज्य। ९ केशकुवाणिज्य। १०. विषकुवाणिज्य। ११ यंत्रपीडन। १२. निलाछन। १३ दावाग्नि-दान-कर्म। १४ शोषण कर्म। १५ असतीपोषण।

कर्मापरोध—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा मे असावधानी। बीमार का इलाज ठीक ढंग पर न करना।

कर्मार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कारीगर (सुनार, लोहार इत्यादि)। २ कर्मकार। लोहार। ३. कमरख। ४ एक प्रकार का बाँस।

कर्माश्रयाभृति—संज्ञा पुं० [सं०] काम के अच्छे या बुरे अथवा कम या अधिक होने के अनुसार मजदूरी। कार्य के अनुसार वेतन।

कर्मिष्ठ—वि० [सं०] १ कर्म करनेवाला। काम मे चतुर। २. विधि-पूर्वक शास्त्रविहित संध्या, अग्निहोत्र आदि कर्म करनेवाला। क्रियावान्।

कर्मी—वि० [सं० कर्मिन्] [स्त्री० कर्मिणी] १ कर्म करनेवाला। २ फल की आकांक्षा से यज्ञादि कर्म करनेवाला।

कर्मीर—संज्ञा पुं०[सं०]१ नारंगी रंग। किर्मीर। २ चितकबरा रंग।

कर्मेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मेन्द्रिय] काम करनेवाली इंद्रिय। वह इंद्रिय जिसे हिला डुलाकर कोई क्रिया उत्पन्न की जाती है।

विशेष—कर्मेंद्रियाँ पाँच है—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ। सांख्य मे ग्यारह इंद्रियाँ मानी गई हैं। पाँच ज्ञानेंद्रिय पाँच कर्मेंद्रिय और एक उभयात्मक मन।

कर्मोपघाती—वि० [सं० कर्मोपघातिन्] काम बिगाडनेवाला (को०)।

कर्रा[1]†—संज्ञा पुं० [सं० कराल] [स्त्री० कर्री]जुलाहो का सूत फैलाकर तानने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

कर्रा[2]†—वि०[हिं० कडा या करडा या करेरा] १ कडा। सख्त। २ कठिन। मुश्किल। जैसे,—कर्रा काम, कर्री मेहनत।

कर्राना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० कर्रा] कडा होना। कठोर होना। सख्त होना।

कर्री[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो देहरादून और अवध के जगलो तथा दक्षिण मे पाया जाता है।

विशेष—इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं और मार्च मे झड जाते हैं। पत्ते चारे के काम मे आते हैं। इन वृक्ष मे फल भी लगते हैं जो जून मे पकते हैं।

कर्री[2]—वि० [हिं० कर्रा का स्त्री०] कडी। कठोर।

कर्रोफर—संज्ञा पुं० [अ० कर्र ‌उ‌ फर्र] गर्व। वैभव। उ०—गर न होता पास मेरे यह कँकर। क्याँ हो‌ता मुज को इतना कर्रोफर।—दक्खिनी०, पृ० १८४।

कर्वट— संज्ञा पुं० [सं०] दो सौ गाँवो के बीच का कोई सुंदर स्थान जहाँ आसपास के लोग इकट्ठे होकर लेनदेन और व्यापार करते हो। मंडी। २. नगर। ३ वह गाँव जो काँटेदार झाड़ियों से घिरा हो।

कर्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ चीता। ३ राक्षस [को०]।

कर्वर[2]—वि० चितकबरा [को०]।

कर्वरी—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ दुर्गा। २ रात्रि। ३ राक्षसी। ४ मादा चीता। व्याघ्री [को०]।

कर्शन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

कर्शन[2]— वि० १ दुर्बल करनेवाला। क्षीण करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला। कष्ट दायक [को०]।

कर्शित—वि० [सं०] क्षीण। दुर्बल। कमजोर [को०]।

कर्श्य—संज्ञा पुं० [सं०] कचूर। नरकचूर। जरबाद।

कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोलह माशे का एक मान।

विशेष—प्राचीन काल मे माशा पाँच रत्ती का होता था। इससे आजकल के अनुसार कर्ष दस ही माशे का ठहरेगा। वैद्यक मे कहीं कहीं कर्ष दो तोले का भी माना गया है।

२ खिंचाव। घसीटना। ३ जोताई। ४ (लकीर आदि) खींचना। खरोंचना। ५ बहेड़ा। ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का सिक्का।

विशेष—यह सिक्का आजकल के हिसाब से लगभग ४।।) मूल्य का होता था। यह चाँदी के १६ कार्षापण के बराबर था। इसे 'हूण' भी कहते थे।

कर्मबंध, कर्मबंधन--संज्ञा पुं० [सं० कर्मबन्ध, कर्मबन्धन] अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार जन्म और मृत्यु का बंधन या चक्र।

कर्मभू--संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्यावर्त देश। भारतवर्ष। दे० 'कर्मक्षेत्र'

कर्मभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्मभू'।

कर्मभोग--संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्मफल। करनी का फल। २ पूर्वजन्म के कर्मों का परिणाम।

कर्ममार्ग- संज्ञा पुं० [सं०] विहित कर्मों द्वारा मोक्षप्राप्ति का मार्ग [को०]।

कर्ममास--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीना जो ३० सावन दिनों का होता है। सावन मास [को०]।

कर्ममूल - संज्ञा पुं० [सं०] कुश। कुशा [को०]।

कर्मयुग--संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

कर्मयोग--संज्ञा पुं०[सं०] १ चित्त शुद्ध करनेवाला शास्त्रविहित कर्म। उ०--कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो। श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।--सूर (शब्द०)। २ उस शुभ और कर्तव्य कर्म का साधन जो सिद्धि और असिद्धि में समान भाव रखकर निर्लिप्त रूप से किया जाय। इसका उपदेश श्रीकृष्ण ने गीता में विस्तार के साथ किया है।

कर्मयोगी--संज्ञा पुं० [सं० कर्मयोगिन्] कर्ममार्ग का अनुयायी। दृढ़तापूर्वक कार्य करनेवाला व्यक्ति।

कर्मरंग--संज्ञा पुं० [सं० कर्मरङ्ग] १ कमरख का वृक्ष। २ कमरख का फल।

कर्मरत--वि० [सं०] काम में लगा हुआ। काम में लीन। उ०--श्याम तन, भर बँधा यौवन, नत नयन, प्रिय कर्मरत मन।--अनामिका, पृ० ७३।

कर्मरेख--संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मरेखा] कर्म की रेखा। भाग्य की लिखन। तकदीर। उ०--कर्मरेख नहिं मिटै करै कोइ लाखन चतुराई (शब्द०)।

कर्मरेखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्मरेख'।

कर्मलीन--क्रि० वि० [सं०] कर्म में डूबी हुई। कर्ममय कर्मयुक्त। उ०--धाराएँ ज्योति सुरभि उर भर, बह चली चतुर्दिक् कर्मलीन।--अपरा, पृ० ३६।

कर्मवत(पु)--वि० [सं० कर्मवत्] कर्मशील। कर्मठ। काम करनेवाला। उ०--जब कर्मवत पवित्र मनुष्य ऋतु योनि ने इस और भूत आत्मग्नि को धारण किया।--कबीर० म०, पृ० ३६७।

कर्मवध--संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी जिसमें रोगी को हानि पहुँच जाय [को०]।

कर्मवध वैगुण्यकरण--संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी के कारण बीमारी का बढ़ जाना [को०]।

कर्मवाच्य क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जिसमें कर्म मुख्य होकर कर्ता के रूप में आया हो और जिसका लिंग, वचन उसी कर्म के अनुसार हो। जैसे,--पुस्तक पढ़ी जाती है।

कर्मवाद--संज्ञा पुं० [सं०] १ मीमांसा, जिसमें कर्म प्रधान माना गया है। २. कर्मयोग। उ०--कर्मवाद व्यापन को प्रगटे पृश्निगर्भ अवतार। सुधापान दीन्हों सुरगण को भयो जग जस विस्तार।--सूर (शब्द०)।

कर्मवादी--संज्ञा पुं० [सं० कर्मवादिन्] कर्मकांड या कर्म को प्रधान माननेवाला। मीमांसक।

कर्मवान्--वि० [सं०]वेदविहित नित्य कर्म को विधिपूर्वक करनेवाला। कर्म करनेवाला। क्रियावान्।

कर्मविपाक--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वजन्म के किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का भला और बुरा फल। उ०--राम विरह दशरथ दुखित कहति कैकेई काकु। कुसमय जाँय उपाय सब केवल कर्मविपाकु।--तुलसी (शब्द०)।

विशेष--पुराण के मत से प्राणी अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा जन्म धारण करता है, और पृथ्वी पर धन, ऐश्वर्य इत्यादि का सुख या रोग इत्यादि का कष्ट भोगता है। किन किन पापों से कौन कौन दुःख भोगने पड़ते हैं, इसका विवरण गरुण पुराण आदि ग्रंथों में है।

कर्मवीर--वि० [सं०]प्रशंसनीय ढंग से कार्य करनेवाला। दृढ़तापूर्वक कार्य करनेवाला। विघ्न बाधाओं में अविचल भाव से कार्य करनेवाला। पुरुषार्थी।

कर्मशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कार्य किया जाता है। कारखाना आदि। उ०--अपने इन विहारों के दौरान में कर्मशाला, सभा, कूप, विपणि निर्माणशाला...... हिंदु० सभ्यता, पृ० २२५।

कर्मशील--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो फल की अभिलाषा छोड़कर स्वभावतः काम करे। कर्मवान्। २ यत्नवान्। उद्योगी।

कर्मशूर--संज्ञा पुं० [सं०]वह जो साहस और दृढ़ता के साथ कर्म करने में प्रवृत्त हो। उद्योगी। कर्मवीर।

कर्मशौच--संज्ञा पुं० [सं०] विनय। नम्रता [को०]।

कर्मसंग--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसङ्ग] सांसारिक कार्यों और उनके फलों के प्रति आसक्ति [को०]।

कर्मसंधि--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्धि] दुर्ग बनाने के संबंध में दो राज्यों के बीच संधि [को०]।

कर्मसन्यास--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्यास] १. कर्म का त्याग। २. कर्म के फल का त्याग।

कर्मसंन्यासी--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसंन्यासिन्] कर्मत्यागी। यती।

कर्मसाक्षी[1]--वि०[सं० कर्मसाक्षिन्] जो कर्मों का देखनेवाला हो। जिसके सामने कोई काम हुआ हो।

कर्मसाक्षी[2]--संज्ञा पुं० वे देवता जो प्राणियों के कर्मों को देखते रहते हैं और उनके साक्षी रहते हैं।

विशेष--ये नौ हैं--सूर्य, चंद्र, यम, काल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

कर्मसिद्धांत--संज्ञा पुं० [सं० कर्मसिद्धान्त] कर्मवाद। उ०--इस जटिल प्रश्न के उत्तर में उपनिषद् कर्मसिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।--हिंदु० सभ्यता, पृ० १२८।

कर्मसौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० कर्म+सौन्दर्य] कर्म में निहित सौंदर्य। कर्म की महानता उ०--वे प्रेम के लिये जीवनव्यापी कर्मसौंदर्य

कर्मगृहीत—वि० [सं०] जो चोरी आदि अनुचित और दंडनीय कार्य करते हुए पकड़ा जाय [को०]।

कर्मघात—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मक्षय। कार्यस्थगन [को०]।

कर्मचांडाल—संज्ञा पुं० [सं० कर्मचाण्डाल] नीच कार्य करनेवाला व्यक्ति। नीच कार्य करने के कारण चांडाल माना जानेवाला व्यक्ति।

विशेष—वशिष्ठ के अनुसार कर्मचांडाल ये हैं—असूयक, पिशुन, कृतघ्न और दीर्घरोषक (बहुत समय तक रोष माननेवाला।)

कर्मचारी—संज्ञा पुं० [सं० कर्मचारिन्] १. काम करनेवाला। कार्यकर्ता २. वह जिसके अधीन राज्यप्रबंध या और किसी कार्यालय से संबंध रखनेवाला कोई कार्य करता हो।

कर्मचारीसंघ—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मचारियों का ऐसा संघटन जो उनके हितों की रक्षा के लिये कार्य करता है।

कर्मचेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य। कर्म [को०]।

कर्मचोदना—संज्ञा पुं० [सं०] कर्म की प्रेरणा करनेवाला हेतु। कर्म की प्रेरणा।

कर्मज¹—वि० [सं०] कर्म से उत्पन्न। २. जन्मांतर में किए हुए पुण्यपाप से उत्पन्न।

कर्मज²—संज्ञा पुं० [सं०] १ कलयुग। २ वट वृक्ष। ३ वह रोग जो जन्मांतर के कर्मों का फल हो। जैसे,—क्षयी।

कर्मजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १ मगध का जरासंधवंशी एक राजा। २ उड़ीसा का एक राजा।

कर्मजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ममय जीवन। वह जीवन जो कर्म से परिपूर्ण या संकुल हो। उ०—भेदकर कर्मजीवन के दुस्तर क्लेश सुपम आई ऊपर।—अनामिका, पृ० ८७।

कर्मठ¹—वि० [सं०] १ काम में चतुर। २ धर्मसंबंधी कृत्य करनेवाला। कर्मनिष्ठ।

कर्मठ²—संज्ञा पुं० १. शास्त्रविहित अग्निहोत्र, संध्या आदि नित्य कर्मों को विधिपूर्वक करनेवाला व्यक्ति। २ कर्मकांडी। उ०—कर्मठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञानविहीन।—तुलसी (शब्द०)।

कर्मणा—क्रि० वि० [सं० कर्मन् का तृतीया एक०] कर्म से। कर्म द्वारा। जैसे,—मनसा, वाचा, कर्मणा मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। उ०—जब मनसा होगा तब न कर्मणा होगा?—साकेत, पृ० २१६।

कर्मण्य¹—वि० [सं०] काम करनेवाला। कार्य में कुशल। उद्योगी। प्रयत्नशील।

कर्मण्य²—संज्ञा पुं० कर्मण्यता। कार्यनिष्ठा। सक्रियता [को०]।

कर्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यकुशलता। तत्परता।

कर्मण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पारिश्रमिक। मजदूरी [को०]।

कर्मत—क्रि० वि० [सं०] कर्म से। कर्म द्वारा [को०]।

कर्मदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऐतरेय और वृहदारण्यक उपनिषदों के अनुसार देवताओं का एक भेद।

विशेष—इसमें तेंतीस देवता हैं—अष्टावसु, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, तथा इंद्र और प्रजापति। इनका राजा इंद्र और आचार्य वृहस्पति है। ये लोग अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्म करके देवता हुए थे। २. पुण्य कर्मों से देवपद प्राप्ति।

कर्मधारय समास—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समास जिसमें विशेषण और विशेष्य का समान अधिकरण हो, जैसे, कचलहू, नवठट, नवयुवक, नवांकुर चिरायु।

विशेष—हिंदी में कर्मधारय समास बहुत कम होता है क्योंकि इसमें विशेष्य के साथ विशेषण में भी विभक्ति लगाने का साधारणतः नियम नहीं है।

कर्मना¹(पु)—क्रि० वि० [सं० कर्मणा] दे० 'कर्मणा'।

कर्मना²(पु)—क्रि० स० [सं० कर्म + हिं० ना (प्रत्य०)] कर्म करना। क्रिया करना। उ०—जुग जुग भर्मिया कर्म बहु कर्मिया।—कबीर रे०, पृ० १८।

कर्मनाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो शाहाबाद जिले के कैमोर पहाड़ से निकलकर चौसा के पास गंगा में मिलती है।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का क्षय होता है। कोई इसका कारण यह बतलाते हैं कि यह नदी त्रिशंकु राजा की लार से उत्पन्न हुई है, कोई कहते हैं कि रावण के मूत्र से निकली है। पर कुछ लोगों का यह मत है कि प्राचीन काल में कर्मनिष्ठ आर्य ब्राह्मण इस नदी को पार करके कीकट (मगध) और वंग देश में भी नहीं जाते थे। इसी से यह अपवित्र मानी गई है।

कर्मनिष्ठ—वि० [सं०] शास्त्रविहित कर्मों में निष्ठा रखनेवाला। संध्या, अग्निहोत्र आदि कर्तव्य करनेवाला। क्रियावान्।

कर्मनिष्पत्तिवेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम की अच्छाई बुराई के अनुसार वेतन। २ वह वेतन जो काम पूरा होने पर दिया जाय [को०]।

कर्मनिष्पाक—संज्ञा पुं० [सं०] मेहनती मजदूरों से काम को अंत तक पूरा करवाना।

कर्मनी(पु)—वि० [सं० कर्मण्य] कर्मवाली। कर्म से संबद्ध उ०—कर्मनी नदी पै भर्मनी ताल है, ताल के बीच में रहत अरना।—पलटू०, भा० २, पृ० ३१।

कर्मन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों के फल का परित्याग [को०]।

कर्मपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मपञ्चमी] ललित, बसंत, हिंडोल और देशकार के संयोग से बनी हुई एक रागिनी।

कर्मपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वजन्म में किए गए कर्मों का फल। २. कर्मों की पूर्णता [को०]।

कर्मप्रधान—वि० [सं०] १ जिसमें कर्म की प्रधानता हो। २ बहिर्दृष्टि रखनेवाला [को०]।

कर्मप्रधान क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में वह क्रिया जिसमें कर्म ही मुख्य होकर कर्ता के समान आता है और जिसका लिंग-वचन उसी कर्म के अनुसार होता है। जैसे, वह पुस्तक पढ़ी गई।

कर्मप्रधान वाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जिसमें कर्म मुख्य रूप से कर्ता की तरह आया हो। जैसे,—पुस्तक पढ़ी जाती है।

कर्मफल—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वजन्म में किए हुए कर्मों का फल, दुःख सुख आदि [को०]।

यौ०—कर्मकार। कर्मक्षेत्र। कर्मचारी। कर्मफल। कर्मभोग। कर्मकेंद्र। कर्मेंद्रिय।

२. व्याकरण में वह शब्द जिसके वाच्य पर कर्ता की क्रिया का प्रभाव पड़े। कर्ता की क्रिया या व्यापार द्वारा साध्य जो अभीप्सिततम कार्य हो जैसे, राम ने रावण को मारा। यहाँ राम के मारने का प्रभाव रावण मे पाया गया, इससे वह कर्म हुआ। यह द्वितीय कारक माना जाता है जिसका विभक्तिचिह्न 'को' है। कभी कभी अधिकरण अर्थ मे भी द्वितीया रूप का प्रयोग होता है। जैसे,—वह घर को गया था। पर ऐसा प्रयोग अकर्मक क्रियाओ में विशेषकर आना, जाना, फिरना, लौटना, फेंकना, आदि गत्यर्थक क्रियाओं के ही साथ होता है, जिनका सबंध देश स्थान और काल से होता है। सप्रदान कारक में भी कर्मकारक का चिह्न 'को' लगाया जाता है। जैसे,—'उसको रुपया दो' (व्याकरण मे कर्म दो प्रकार के होते हैं—मुख्य कर्म और गौण कर्म।) ३ वैशेषिक के अनुसार छह पदार्थो मे से एक जिसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—जो एक द्रव्य में हो, गुण न हो और सयोग और विभाग मे अनपेक्ष कारण हो। (कर्म यहाँ क्रिया का लगभग पर्याय शब्द है। 'व्यापार' भी उसे ही वैयाकरण कहते हैं।) कर्म पाँच हैं—उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), अवक्षेपण (नीचे फेंकना), आकुचन (सिकोडना), प्रसारण (फैलाना), और गमन (जाना, चलना)। गमन के पाँच भेद किए गए हैं—भ्रमण (घूमना), रेचन (खाली होना), स्यंदन (बहना या सरकना), उर्वज्वलन(ऊपर की ओर जलना), तिर्यग्गमन (तिरछा चलना)। ४. मीमासा के अनुसार कर्म के दो प्रकार जो ये हैं—गुण या गौण कर्म और प्रधान या अर्थ कर्म। गुण (गौण) कर्म वह है जिससे द्रव्य (सामग्री) की उत्पत्ति या संस्कार हो, जैसे,—धान कूटना, यूप बनाना, घी तपाना आदि। गुण कर्म का फल दृष्ट है, जैसे, धान कूटने से चावल निकलता है, लकडी गढ़ने से यूप बनता है। गुण कर्म के भी चार भेद किए गए हैं—(क) उत्पत्ति (जैसे, लकडी के गढने से यूप का तैयार होना। (ख) आप्ति (जैसे, गाय के दुहने से दूध की प्राप्ति), (ग) विकृति (धान कूटना, सोम का रस निचोडना, घी तपाना),(घ) सस्कृति (चावल पछाड़ना, सोम का रस छानना)। प्रधान या अर्थकर्म वह है जिससे द्रव्य की उत्पत्ति या शुद्धि न हो, वल्कि उसका प्रयोग हो, जैसे, यज्ञ आदि। उसका फल अदृष्ट है, जैसे स्वर्ग की प्राप्ति इत्यादि। प्रधान या अर्थकर्म के तीन भेद हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्य वह है जिससे न करने से पाप हो अर्थात् जिसका करना परम कर्तव्य हो, जैसे, सध्या अग्निहोत्र आदि। नैमित्तिक वह है जो किसी निमित्त से किसी अवसर पर किया जाय, जैसे, पौर्णमासपिंड, पितृयज्ञ आदि। जो कर्म किसी विशेष फल की कामना से किया जाय, वह काम्य है, जैसे, पुत्रेष्टि, कारीरि आदि। मीमासक लोग कर्म को प्रधान मानते हैं और वेदाती लोग ज्ञान को प्रधान मानकर उससे मुक्ति मानते हैं।

यौ०—कर्मकांड।

५. योगसूत्र की वृत्ति मे कर्म के तीन भेद। भोज ने ये भेद किए हैं—(क) विहित, जिनके करने की शास्त्रो मे आज्ञा है, (ख) निषिद्ध, जिनके करने का निषेध है और (ग) मिश्र अर्थात् मिले जुले। जाति, आयु और भोग कर्म के विपाक या फल कहे जाते है। ६ जन्मभेद से कर्म के चार विभाग—सचित, प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी। ७. जैन दर्शन के अनुसार कर्म पुद्गल और जीव के अनादि सबंध से उत्पन्न होता है, इसी से जैन लोग इसे पौद्गलिक भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं। (क) घाति जो मुक्ति का बाधक होता है और (ख) अघाति जो मुक्ति का बाधक नहीं होता। ८. वह कार्य या क्रिया जिसका करना कर्तव्य हो। जैसे,—ब्राह्मणों के षट्कर्म-यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह। ९ कर्म का फल। भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। इसके भी दो भेद हैं—(क) प्रारब्ध कर्म जिसका फल मनुष्य भोग रहा है और (२) सचित कर्म जिसका फल भविष्यत् मे मिलनेवाला है। जैसे,—(क) अपना कर्म भोग रहे हैं। (ख) कर्म मे जो लिखा होगा, सो होगा। उ०—कर्म हर्यो सीता कहँ आई, दुख सुख कर्म ताहि भुगताई।—कबीर सा०, पृ० ६६०। वि० दे० करम'।

१० मृतकसस्कार। क्रिया कर्म। उ०—जब तनु तज्यो गीध रघुपति तब बहुत कर्म विधि कीनी। जान्यो सखा राय दशरथ को तुरतहि निज गति दीनी।—सूर (शब्द०)।

कर्मकर—सज्ञा पुं०[सं०]१. श्रमी। मजदूर। २. प्राचीन काल की एक जाति जो सेवा कर्म करती थी। आजकल इसे कमकर कहते हैं। ३ यम [को०]।

कर्मकाड—सज्ञा पु० [सं० कर्मकाण्ड] १. धर्मसबधी कृत्य। यज्ञादि कर्म। २ वह शास्त्र जिसमे यज्ञादि कर्मों का विधान हो।

कर्मकाडी—सज्ञा पुं० [सं० कर्मकाण्डिन्] यज्ञादि कर्म करानेवाला। धर्मसबधी कृत्य करानेवाला।

कर्मकार—सज्ञा पुं० [स०] १. एक वर्णसकर जाति जो शूद्रा और विश्वकर्मा से उत्पन्न हुई है। २ लोहे या सोने का काम बनानेवाला। लुहार। सुनार। ३ बैल। ४. नौकर। सेवक। मजदूर। ५ विना वेतन या मजदूरी के काम करनेवाला। बेकार।

कर्मकारक—सज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण मे कर्म। दे० 'कर्म' २।

कर्मकार्मुक—सज्ञा पु० [सं०] मजबूत धनुष [को०]।

कर्मकीलक—सज्ञा पुं० [स०] धोबी [को०]।

कर्मक्षम—वि० [सं०] जो काम करने मे समर्थ हो।

कर्मक्षय—सज्ञा पु० [स०] कर्मों का विनाश।

विशेष—भूतकाल मे किए हुए पापकर्मों का विनाश उनके विपरीत पुण्यकर्म करने से होता है।

कर्मक्षेत्र—सज्ञा [सं०] १. कार्य करने का स्थान। २. भारतवर्ष।

विशेष—भागवत मे लिखा है कि नौ वर्षों (प्रदेशों) मे से भारतवर्ष कर्म करने के लिये है, शेष आठ वर्ष कर्मों के अवशिष्ट भोग के लिये हैं।

कर्मगुण—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य मत से काम की अच्छाई बुराई। कार्यक्षमता।

कर्मगुणापकर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] काम अच्छा न होना। श्रमियों की कार्यक्षमता का घटना

कर्तृत्व--संज्ञा पुं० [सं०] कर्ता का भाव। कर्ता का धर्म।

यौ०—कर्तृत्वशक्ति=करने का सामर्थ्य। कार्य करने की शक्ति।

कर्तृप्रधान क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जिसमे कर्ता प्रधान हो, जैसे,—खाना, पीना, करना आदि।

विशेष—खाया जाना, पीया जाना, किया जाना आदि कर्मप्रधान क्रियाएँ हैं।

कर्तृप्रधान वाक्य--संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जिसमे कर्ता प्रधान रूप से आया हो, जैसे,—यज्ञदत्त रोटी खाता है।

कर्तृवाचक—वि० [सं०] कर्ता का बोध करानेवाला।

कर्तृवाची--वि० [सं०] जिससे कर्ता का बोध हो।

कर्तृवाच्य क्रिया—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमे कर्ता का बोध प्रधान रूप से हो, जैसे, खाना, पीना, मारना।

विशेष--खाया जाना, पीया जाना, मारा जाना आदि कर्मप्रधान क्रियाएँ हैं।

कर्त्रिका, कर्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाकू। २ कैंची (को०)।

कर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्दम। कीचड। २. मिट्टी (को०)। ३ कमल की जड़ (को०)। ४ जल की लताविशेष (को०)।

कर्दट[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ कलम की जड। पद्मकंद। २. कीचड। कर्दम (को०)। ३ मिट्टी (को०)। ४ जल मे होनेवाली लताविशेष (को०)।

कर्दट[2]—वि० कीचड में चलनेवाला।

कर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का शब्द। पेट की गुड़गुड़ाहट।

कर्दम—संज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़। कीच। चहला। २ मास। ३ पाप। ४ छाया। ५. स्वायंभुव मन्वतर के एक प्रजापति।

विशेष—इनकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का नाम कपिलदेव था। ये छाया से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र थे, इसी से इनका नाम कर्दम पडा था।

कर्दमक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चावल। २ साँप का एक भेद (को०)।

कर्दमाटक—संज्ञा पुं० [सं०] मल फेंकने का स्थान (को०)।

कर्दमित—वि० [सं०] कीचडयुक्त। कीचड़ से लथपथ (को०)।

कर्दमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीचडवाली धरती। दलदली जमीन।

कर्दमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि (को०)।

कर्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] दे० कर्ण'। उ०—केहरि कल्याण कर्न कुदन कविंद से।—सुजान०, पृ० १।

कर्नफूली—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण+हिं० फूल] पूर्वी बगाल की एक नदी।

विशेष—यह आसाम के पहाडो से निकलकर बगाल की खाडी मे गिरती है। चटगाँव नगर इसी के किनारे बसा है।

कर्नल—संज्ञा पुं० [अ०] एक फौजी अफसर।

कर्नेता (करनेता)-संज्ञा पुं०[देश०] रग के अनुसार घोड़े का एक भेद। उ०—कारूमी सदली स्याह करनेता रूना।—सूदन (शब्द०)।

कर्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुराना चिथडा। गूदड़। लत्ता। २. कालिकापुराण के अनुसार नाभिमडल के पूर्व और भस्मकूट के दक्षिण का एक पर्वत। ३ कपडे का टुकड़ा या पट्टी(को०)। ४ मटीला या लाल रग का परिधान(को०)। ५ कपडा(को०)।

कर्पटिक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्पटिका] चिथडे गुदड़ेवाला भिखारी। भिखमगा।

कर्पटी—संज्ञा पुं० [सं० कर्पटिन्] [स्त्री० कर्पटिनी] चिथडे गुदड़े पहननेवाला, भिखारी।

कर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शस्त्र।

कर्पर--संज्ञा पुं०[सं०]१ कपाल। खोपड़ी। २. खप्पर। ३. कछुए की खोपडी। ४ एक शस्त्र। ५ कडाह। ६ गूलर।

कर्पराल—संज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड।

कर्परी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी के क्वाथ से निकला हुआ तूतिया। खपरिया।

कर्पास—संज्ञा पुं० [सं०] कपास।

कर्पासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का पौधा।

कर्पूर--संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

कर्पूरक—संज्ञा पुं० [सं०] कर्चूरक। कपूर कचरी।

कर्पूरगौर--वि० [सं०] कपूर की तरह सफेद।

कर्पूरगौरी—संज्ञा स्त्री०[सं०] सकर जाति की एक रागिनी जो ज्योति, खवावती, जयतश्री, टक और वराटी के योग से बनी है।

कर्पूरनालिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक पकवान।

विशेष—यह मोयनदार मैदे की लबी नली के आकार की लोई मे लौंग, मिर्च, कपूर, चीनी आदि भरकर उसे घी में तलने से बनता है।

कर्पूरमणि—संज्ञा पुं०[सं०]१. एक प्रकार का पत्थर जो दवा के काम आता है। यह वातनाशक है। २. एक रत्न (को०)।

कर्पूरवर्ति, कर्पूरवर्तिका--संज्ञा स्त्री०[सं०]प्राचीन समय मे घी और कपूर का चूर्ण मिलाकर कपडे मे रखकर और लपेटकर बनाई हुई बत्ती जिसे जलाने पर कपूर की सुगध निकला करती थी। कपूर की बत्ती। उ०—बँधकर घुलना अथवा, जल पल दीप दान कर खुलना, तुझको सभी सहज है मुझको कर्पूरवर्ति, बस घुलना।—साकेत, पृ० ३१६।

कर्पूरश्वेत—वि० [सं०] कपूर की भाँति सफेद। अत्यत उज्वल। उ०—कर्पूरश्वेत मधु की किन्नर देश मे बडी महिमा है।—किन्नर,० पृ० ७८।

कर्फर—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। आरसी। शीशा। आईना।

कर्फ्यू--संज्ञा पुं० [अ० कर्फ्यू] दे० 'करफ्यू'।

कर्बुदार—संज्ञा पुं० [सं०] १ लिसोडा। २ सफेद कचनार। ३ तेंदू का पेड जिससे आबनूस निकलता है।

कर्बुर[1]— संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। स्वर्ण। २. धतूरा। ३ जल। ४ पाप। ५ राक्षस। ६ जड़हन धान। ७ कचूर।

कर्बुर[2]—वि० नाना वर्णों का। रगबिरंगा। चितकबरा।

कर्बुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वनतुलसी। बबरी। २ कृष्णतुलसी।

कर्बुरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

कर्मंद—संज्ञा पुं० [सं० कर्मन्द] भिक्षु सूत्रकार एक ऋषि।

कर्म—संज्ञा पुं० [सं० कर्मन् का प्रथमा रूप] १ वह जो किया जाय। क्रिया। कार्य। काम। करनी। करतूत।

पेड़। ८ मेढासीगी। ९. कलम। लेखनी। १० डठल जिसमे फल लगा रहता है।

कर्णिकाचल—सज्ञा पु० [सं०] सुमेरु पर्वत [को०]।

कर्णिकार—सज्ञा पु० [सं०] १ कनियार या कनकचपा का पेड़। उ०—सहज मातृगुण गध था कर्णिकार का भाग। विगुण रूप दृष्टात के अर्थ न हो यह त्याग।—साकेत, पृ० २८१। २. एक प्रकार का अमलतास जिसका पेड़ बडा होता है। इसमे भी अमलतास ही की तरह की लबी लबी फलियाँ लगती हैं जिनके गूदे का जुलाब दिया जाता है। वैद्यक मे यह सारक और गरम तथा कफ, शूल, उदररोग, प्रमेह, व्रण और गुल्म को दूर करनेवाला माना जाता है।

कर्णिकारप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

कर्णी¹—सज्ञा स्त्री० [स०] १. एक प्रकार का वाण। २. चौर्य शास्त्र के कर्ता की माता (को०)। ३ कस की माता का नाम(को०)।

कर्णी²- सज्ञा पु० [सं० कर्णिन्] १ वाण। तीर। २ सप्तवर्ष पर्वतो मे से एक। सप्तवर्ष पर्वत ये कहलाते हैं—हिमवान, हेमकूट, निषद, मेरु, चैत्र, कर्णी, शृंगी। ३. गधा (को०)। ४, गर्भाशय का एक रोग (को०)। ५ कर्णधार (को०)।

कर्णी³—वि० १ कानवाला। २ बडे बड़े कानवाला। ३. जिसमे पतवार लगी हो।

कर्णीरथ—संज्ञा पु० [सं०] स्त्रियो की सवारी मे काम आनेवाली डोली। पालकी [को०]।

कर्णीसुत—सज्ञा पुं० [स०] चौर्य शास्त्र के प्रवर्तक मूलदेव [को०]।

कर्णेजप¹—सज्ञा पु० [स०] पीठ पीछे लोगो की निंदा करनेवाला व्यक्ति। धीरे धीरे कान मे लोगो की चुगली खानेवाला व्यक्ति। चुगलखोर। पिशुन।

कर्णेजप²—वि० निंदक। चुगलखोर। पिशुन [को०]।

कर्णोपकर्णिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक कान से दूसरे कान मे बात का जाना। कर्णपरपरा। अफवाह। जनश्रुति [को०]।

कर्ण्यगरा—सज्ञा पुं० [सं०] कानो के लिये हितकारी ओषधियो का समूह, जिसके अतर्गत तिलपर्णी, समुद्रफेन, कई समुद्री कीडो की हड्डियाँ आदि हैं।

कर्तन—सज्ञा पु० [सं०] काटना। कतरना। जैसे, केशकर्तन। २ (सूत इत्यादि) कातना।

कर्तनी—सज्ञा स्त्री० [स०] कतरनी। कैंची।

कर्तव(पु)—सज्ञा पुं०[स० कर्तव्य] दे० 'करतव'। उ०—जिस समय वह अपने 'पवनवेग' घोडे को किले के मैदान मे फेरकर अपना कर्तव दिखाता है, उस समय और राजकुमार"" चकित हो, चित्र बन जाते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ७।

कर्तरि—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्तरी'।

कर्तरिअचित—सज्ञा पु० [सं० कर्तरिमञ्चित] नृत्य मे उत्प्लुतकरण के १६ भेदो मे से एक जिसमे चरण स्वस्तिक रचकर उछलते हैं।

कर्तरिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्तरी'।

कर्तरिप्रयोग— सज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार क्रिया का प्रयोग [को०]।

कर्तरिवोद्दुतो—सज्ञा स्त्री० [सं०] उत्प्लुतकरण के १६ भेदों में से एक। इसमें करण स्वस्तिक रचकर फिर उसे खोलते हुए उछलकर तिरछे गिरते हैं।

कर्तरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कैंची। कतरनी। २ (सुनारो की) कातो। ३ छोटी तलवार। छुरी। कटारी। ४. ताल देने का एक वाजा। ५. फलित ज्योतिष का एक योग। जब दो क्रूर ग्रहों के बीच मे चद्रमा या कोई लग्न हो, तब कर्तरी योग होता है। इससे कन्या की मृत्यु और अपना बधन होता है। ६. वाण का वह भाग जहाँ पख लगाया जाता है [को०]।

कर्तरीफल—सज्ञा पु० [स०] कैंची या छुरी का फल [को०]।

कर्तव्य¹—वि० [स०] करने के योग। करणीय।

कर्तव्य²—सज्ञा पुं० करने योग्य कार्य। करणीय कर्म। उचित कर्म। धर्म। फर्ज। जैसे,—बडो की सेवा करना छोटो का कर्तव्य है।

क्रि० प्र०—करना।— पालन करना।—पालना।

यौ०—कर्तव्याकर्तव्य = करने और न करने योग्य कर्म। उचित कर्म और अनुचित कर्म। योग्य अयोग्य कार्य। जैसे,—बहुत से अधिकारियो को अपने कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं होता।

कर्तव्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कर्तव्य का भाव।

यौ०—इतिकर्तव्यता = उद्योग या प्रयत्न की पराकाष्ठा। कोशिश या कारवाई की हद। दौड। जैसे,—उनकी इतिकर्तव्यता यहीं तक थी।

२ कर्तव्य कराने की दक्षिणा। कर्मकाड की दक्षिणा।

कर्तव्यमूढ, कर्तव्यविमूढ—वि० [स० कर्तव्यमूढ़, कर्तव्यविमूढ़] [सज्ञा कर्तव्यमूढ़ता, कर्तव्यविमूढ़ता] १ जिसे यह न सुझाई दे कि क्या करना चाहिए। जो कर्तव्य स्थिर न कर सके। २. घबराहट के कारण जिससे कुछ करते धरते न बने। भौंचक्का।

कर्ता¹—सज्ञा पुं० [सं० 'कर्तृ'] की प्रथमा का एक०] [स्त्री० कर्त्री] १ करनेवाला। काम करनेवाला। २ रचनेवाला। बनानेवाला। ३. विधाता। ईश्वर। उ०—मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और(शब्द०)। ४ परिवार का, विशेषत सयुक्त परिवार का वह व्यक्ति जो घर का सब उत्तरदायित्व वहन करता है और परिवार की ओर से वैधानिक रूप से भी कार्य कर सकता है। परिवार का प्रवधक व्यक्ति। ५. व्याकरण के छह कारको मे पहला जिससे क्रिया के करनेवाले का ग्रहण होता है। जैसे—यज्ञदत्त मारता है। यहाँ मारने की क्रिया को करनेवाला यज्ञदत्त कर्ता हुआ।

कर्ता²— वि० करनेवाला। क्रिया का करनेवाला। जिससे क्रिया का सबंध हो।

कर्ताधर्ता—सज्ञा पुं० [स०] १ सब कुछ करने धरनेवाला व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो [को०]।

कर्तार—सज्ञा पुं० [सं० 'कर्तृ' का प्रथमा का बहु०] १. करनेवाला। बनानेवाला। २ विधाता। ईश्वर।

कर्तृ—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्त्री] १ करनेवाला। २ बनानेवाला। कर्ता।

कर्तृक—वि०[सं०] १ किया हुआ। संपादित। बनाया हुआ। जैसे—हर्षकर्तृक या माघकर्तृक। २. किसी की ओर से कुछ करनेवाला (को०)।

कर्णभूपण—सज्ञा पुं० [सं०] कान का एक ग्राभूपरण [को०]।
कर्णभूसा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक ग्राभूपरण [को०]।
कर्णमल—सज्ञा पुं० [सं०] कान का मैल। कान का खूँट [को०]।
कर्णमूल—सज्ञा पुं० [स०] एक रोग जिसमे कान की जड के पास सूजन होती है कनपेडा।
कर्णमृदग—सज्ञा पुं० [स० कर्णमृदङ्ग] कान के भीतर की चमडे की वह झिल्ली जो मृदग के चमडे की तरह हड्डियो पर कसी रहती है। इनपर शब्द द्वारा कपित वायु के ग्राघात से शब्द का ज्ञान होता है।
कर्णमोटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी का एक रूप [को०]।
कर्णयुग्म प्रकीर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] नृत्य के ५१ प्रकार के चालको मे से एक जिसमे दोनो हाथों को घुमाते हुए वगल से सामने ले ग्राते हैं।
कर्णयोनि—वि० [सं०] कान से जन्म लेनेवाला [को०]।
कर्णरध्र—सज्ञा पुं० [सं० कर्णरन्ध्र] कान का छेद।
कर्णलग्न स्कध—सज्ञा पुं० [स० कर्णलग्नस्कन्ध] नृत्य मे कधे के पाँच भेदो मे से एक जिससे कधे को सीधा ऊँचा करके कान की ग्रोर ले जाते हैं।
कर्णवश—सज्ञा पुं० [सं०] बाँस का मच [को०]।
कर्णवर्जित—सज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विशेष—प्राचीनो का विश्वास था कि साँप के कान नही होते, पर वास्तव मे साँप की ग्राँखो के पास कान के छेद प्रत्यक्ष दिखाई पडते हैं।

कर्णविद्रधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] कान के ग्रदर की फुसी। कान के भीतर की फुडिया या घाव।
कर्णवेध—सज्ञा पुं० [सं०] वालको के कान छेदने का सस्कार। कनछेदन। करनवेध।
कर्णवेधनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कान छेदने का ग्रोजार।
कर्णवेष्ट, कर्णवेष्टन—सज्ञा पुं० [सं०] १. कान का वाला। कुडल। २ कान की वाली [को०]।
कर्णशष्कुली—सज्ञा स्त्री० [स०] कान का वाहरी भाग [को०]।
कर्णशूल—सज्ञा पुं० [सं०] कान की पीडा।
कर्णशोभन—सज्ञा पुं० [सं०] कान का एक ग्राभूषण। कान का एक गहना। उ०—तीसरा ग्राभूपरण कर्णशोभन था।—सपूर्णा० ग्रभि० ग्र०, पृ० ६६।
कर्णश्रव—वि० [सं०] जो कान के द्वारा सुना जाय [को०]।
कर्णसू—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुती [को०]।
कर्णसूची—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटा कीडा [को०]।
कर्णस्फोटा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वेल। चित्रपर्णी[को०]।
कर्णस्राव—सज्ञा पुं० [स०] फुसी, फोडा ग्रादि के कारण कान के भीतर से पीव या मवाद वहने का रोग।
कर्णहल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक रोग [को०]।
कर्णहीन[1]—सज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।
कर्णहीन[2]—वि० जो सुन न सकता हो। वहरा [को०]।
कर्णादु कर्णादू—सज्ञा पुं० [स० कर्णान्दु, कर्णान्दू] कान का गहना। वाली [को०]।
कर्णाकर्णि—क्रि० वि० [सं०] कान से कान तक। कानोंकान [को०]।
कर्णाट—सज्ञा पु० [सं०] दक्षिण का एक देश।

विशेष—इसके ग्रतर्गत प्राचीन काल मे वर्तमान मैसूर के उत्तरीय भाग से लेकर वीजापुर तक का प्रदेश था। पर इधर तत्रवाले ग्राजकल के करनाटक के ग्रनुसार रामेश्वर से लेकर कावेरी तक के प्रदेश को कर्णाट मानते हैं।

२ सपूर्ण जाति का एक राग जो मेघ राग का दूसरा पुत्र माना जाता है।

विशेष—इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। इसका स्वर पाठ इस प्रकार है—प ध नि सा रे ग म प। इसे हिंदी में कान्हडा भी कहते हैं।

कर्णाटक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कर्णाट'।
कर्णाटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सपूर्ण जाति का एक शुद्ध रागिनी जो मालवा या किसी मत से दीपक राग की पत्नी है।

विशेष—यह रात के दूसरे पहर की दूसरी घडी मे गाई जाती है। स्वरपाठ इस प्रकार है—नि सा रे ग म प ध नी। सगीतदर्पण के ग्रनुसार इसका ग्रहाशन्यास या ग्राम निपाद है, पर किसी किसी के मत से पडज भी कहते हैं। इसे कान्हडी भी कहते हैं।

२. कर्णाट देश की स्त्री। ३. कर्णाट देश की भापा। ४. हंसपदी लता। ५. शब्दालकार ग्रनुप्रास की एक वृत्ति जिसमे केवल कवर्ग के ही ग्रक्षर होते हैं।

कर्णादर्श—सज्ञा पु० [सं०] कान में पहनने का गहना। करनफूल [को०]।
कर्णाधार—सज्ञा पुं०[सं० कर्णधार] सं० 'कर्णधार। उ०—विसर्जन ही है कर्णधार वही पहुँचा देगा उस पार।—यामा, पृ० १६।
कर्णानुज—सज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर।
कर्णाभरणक—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रमलतास।
कर्णारि—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रर्जुन जिसने कर्ण को मारा था।
कर्णिक[1]—वि०[सं०]१ कानवाला। जिसे कान हो। २ जिसके हाथ मे पतवार हो [को०]।
कर्णिक[2]—सज्ञा १ लिखनेवाला। लिपिक। क्लार्क। उ०—सीढियों के निकट वृद्ध कर्णिक गण सन्निपात की तमाम कार्यवाही लिखने को तैयार वैठे थे।—वैशाली०, न० पृ० १४। २ माँझी। कर्णधार (को०)।
कर्णिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कान का एक गहना। करनफूल। २ हाथ की विचली उँगली। ३ हाथी के सूँड की नोक। ४ कमल का छत्ता जिसमें से कँवलगट्टे निकलते हैं। ५ सेवती। सफेद गुलाब। ६ एक योनिरोग जिसमे योनि के कमल के चारो ग्रोर कँगनी के ग्रँकुर से निकल ग्राते हैं। ७. ग्ररनी का

विशेष—यह कन्याकाल मे सूर्य से उत्पन्न हुआ था, इसी से कानीन भी कहलाता था।

पर्या०—राधेय । वसुषेण अर्कनंदन । घटोत्कचांतक। चापेश। सूतपुत्र।

३ सुवर्णालि वृक्ष। ४. नाव की पतवार। ५. समकोण त्रिभुज मे समकोण के सामने के कोणों को मिलानेवाली रेखा। ६ किसी चतुर्भुज मे आमने सामने के कोणों को मिलानेवाली रेखा। ७ पिंगल मे डगण अर्थात् चार मात्रावाले गणों की सज्ञा। जैसे,—ऽऽ— माधो। ८. छप्पय के चौथे भेद का नाम। इसमे ६७ गुरु, १८ लघु, ८५ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं। परतु जिसमे उल्लाला २६ मात्राओं का होता है, उस छप्पय मे ६७ गुरु, १४ लघु, ८१ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ९. दो की सख्या (काव्य०)। १० उपदिग्भाग। दो दिशाओं का मध्यवर्ती कोण या भाग (को०)। ११. किसी पात्र या वर्तन का हत्या या कुंडा (को०)।

कर्णक—सज्ञा पु० [स०] १. वर्तन इत्यादि को पकडने का कुडा। २. पेड के पत्ते और शाखाएँ। ३. एक वेल। ४. एक प्रकार का ज्वर [को०]।

कर्णकटु—वि० [न०] कान को अप्रिय। जो सुनने मे कर्कश लगे।

कर्णकसन्निपात—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का सन्निपात।

विशेष—इसमे रोगी कान से वहरा हो जाता है, उसके शरीर मे ज्वर रहता है, कान के नीचे सूजन होती है वह अडवड वकता है, उसे पसीना होता है, प्यास लगती है, वेहोशी आती है और डर लगता है।

कर्णकीटा, कर्णकीटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनखजूरा। गोजर।

कर्णकुहर—सज्ञा पु० [स०] कान का विल। कान का छेद। उ०—कुहरित भी पचम स्वर, रहे वद कर्णकुहर।—अनामिका, पृ० १३।

कर्णक्ष्वेड—संज्ञा पुं० [स०] कान का एक रोग।

विशेष—इसमे पित्त और कफयुक्त वायु कान मे घुस जाने से बाँसुरी का सा शब्द सुन पडता है।

कर्णगूथ—सज्ञा पुं० [सं०] कान का खूँट। कान की मैल।

कर्णगूथक—सज्ञा पुं० [सं०] कान के खूँट का कडा होना [को०]।

कर्णगोचर—वि० [सं०] कान को सुनाई देनेवाला [को०]।

कर्णघट—सज्ञा पुं० [सं०] शिव जी के उपासको का एक वर्ग जो, कानो मे इसलिये घटा या घंटी वाँधे रहता था, जिससे उसके स्वर मे विष्णु का स्वर दव जाय [को०]।

कर्णज—सज्ञा पुं० [सं०] कान का खूँट [को०]।

कर्णजप[1]—सज्ञा पुं० [स०] चुगलखोरी [को०]।

कर्णजप[2]—वि० चुगलखोर [को०]।

कर्णजाप[1]—सज्ञा पुं० [सं०] चुगलखोरी [को०]।

कर्णजाप[2]—वि० चुगलखोर [को०]।

कर्णजलूका, कर्णजलौका—सज्ञा स्त्री० [स०] कनखजूरा [को०]।

कर्णजाह—सज्ञा पुं० [स०] कान की जड [को०]।

कर्णजित्—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन [को०]।

कर्णताल—सज्ञा पु० [सं०] १. हाथी का कान हिलाना। २ हाथी के कानो के हिलने की ध्वनि [को०]।

कर्णदेवता—सज्ञा पु० [स०] कान के देवता, वायु।

कर्णधार[1]—पुं० [स०] १. नाविक। माँझी। मल्लाह। केवट। २. पतवार थामनेवाला माँझी। ३. पतवार। कलवारी।

कर्णधार[2]—वि० वहुत वडे कार्य को करनेवाला। दूसरो का दु:खादि दूर करनेवाला।

कर्णनाद—सज्ञा स्त्री० [स०] १. कान मे सुनाई पडती हुई गूँज। घनघनाहट जो कान मे सुन पडती है। २ एक रोग जिसमे वायु के कारण कान मे एक प्रकार की गूँज सी सुनाई पड़ती है।

कर्णपथ—सज्ञा पुं० [स०] श्रवण का क्षेत्र। वह दूरी जहाँ तक की आवाज सुनाई दे [को०]।

कर्णपरंपरा—संज्ञा स्त्री० [स० कर्णपरम्परा] एक के कान से दूसरे के कान मे वात जाने का क्रम। सुनी सुनाई व्यवस्था। (किसी वात को) वहुत दिनो से लगातार सुनते सुनते चले आने का क्रम। श्रुतिपरंपरा।

कर्णपाक—सज्ञा पु० [स०] कान पकने की स्थिति या दशा [को०]।

कर्णपाली—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कान की लौ। कान की लोलक। कान की लोविया। कान की लहर। २ कान की वाली। मुरकी। ३ एक रोग जो कान की लोलक मे होता है।

कर्णपिशाची—सज्ञा स्त्री० [स०] एक तांत्रिक देवी।

विशेष—इसके सिद्ध होने पर, कहा जाता है, मनुष्य जो चाहे सो जान सकता है।

कर्णपुर—सज्ञा पुं० [स०] १ कान का घेरा। २ चपा नगरी जो अग देश की राजधानी थी।

कर्णपूर—सज्ञा पुं० [स०] १. सिरिस का पेड। २ अशोक का पेड़। ३. नील कमल। ४. करनफूल।

कर्णपूरक—सज्ञा पु० [स०] १ कदव का पेड़। २. कर्णफूल (को०)। ३ अशोक का वृक्ष (को०)। ४. नील कमल (को०)।

कर्णप्रणाद—सज्ञा पु० [स०] दे० 'कर्णप्रतिनाह'।

कर्णप्रतिनाह—सज्ञा पु० [स०] वैद्यक के अनुसार कान का एक रोग।

विशेष—इसमे खूँट फूलकर अर्थात् पतली होकर नाक और मुँह मे पहुँच जाती है इस रोग के होने से आधीसीसी उत्पन्न हो जाती है।

कर्णप्रयाग—सज्ञा पुं० [स०] गढवाल का एक गाँव।

विशेष—यह अलकनदा और पिंडार नदी के सगम पर है तथा वदरिकाश्रम के मार्ग मे पड़ता है। हिंदुओं के मत से यहाँ स्नान करने का माहात्म्य है।

कर्णफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कर्णफूल—सज्ञा पु० [सं० कर्ण + फूल] कान का एक आभूषण। करनफूल [को०]।

कर्कटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसमे करैले की तरह के छोटे छोटे फल लगते हैं, जिनकी तरकारी बनती है। ककोडा। खेखसा।

कर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कछुई। २ ककडी। ३. सेमल का फल ४ साँप। ५ घडा। ६ बँदाल की लता। ७. तरोई। ८. काकड़ासींगी।

कर्कंदु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारस (को०)।

कर्कर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ ककड। २ कुरज पत्थर जिसके चूर्ण की सान बनती है। ३ दर्पण। ४ नीलम का एक भेद। ५. हथौडा (को०)। ६ खोपडी का टुकडा (को०)। ७ चमड़े की पट्टी (को०)।

कर्कर[2]—वि० १ कड़ा। करारा। २ खुरखुरा।

कर्कराग—संज्ञा पुं० [सं० कर्कराङ्ग] खजनपक्षी (को०)।

कर्कराधुक—संज्ञा पुं० [सं० कर्कराम्धुक] अंधकूप। अंधा कुआँ। सूखा हुआ कुआँ (को०)।

कर्कराटु—संज्ञा पुं० [सं०] तिरछी चितवन। कटाक्ष (को०)।

कर्कराल—संज्ञा पुं० [सं०] बालो का जूडा (को०)।

कर्करी संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी का एक घडा, जिसके पेंदे मे छेद हो। २ एक प्रकार की बाँसुरी। ३. एक प्रकार का पौधा (को०)।

कर्करेटु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारस। करकरा। करकटिया।

कर्कश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमीले का पेड। २. ऊख। ईख। ३ खग। तलवार।

कर्कश[2]— वि० [संज्ञा कर्कशता, कर्कशत्व, कार्कश्य] १. कठोर। कड़ा।

यौ०—कर्कश स्वर = कडी आवाज। कानो को अच्छा न लगनेवाला शब्द।

२ खुरखुरा। काँटेदार। ३ तेज। तीव्र। प्रकड। ४. अधिक। ५ कठोरहृदय। क्रूर। ६. दुराचारी (को०)। ७. बलिष्ठ। हट्टा कट्टा (को०)। ८ दुश्चरित्र (को०)।

कर्कशता— संज्ञा स्त्री०[सं०]१. कठोरता। कडापन। २ खुरखुरापन।

कर्कशत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कडापन। २ खुरखुरापन।

कर्कशा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली का पौधा।

कर्कशा[2]—वि० स्त्री० झगडालू। झक्की। झगडा करनेवाली। लडाकी। कटुभाषिणी।

कर्कशिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] जगली बेर (को०)।

कर्कशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्कशिका'।

कर्कस(पु)—वि०[सं० कर्कश] कठोर। असह्य। उ०—कर्कश पवन गुहा तें ऐसो। आवत अजगर मुख ते जैसो।—नद० ग्र०, पृ० २६१।

कर्काटकश्रृंगी—संज्ञा पुं० [सं० कर्काटकश्रृङ्गिन्] वह असहत व्यूह जिसमे तीन भाग अर्धचंद्राकार असहत हो।

कर्कारु—संज्ञा पुं० [सं०] भूरा कुम्हडा। रकसवा कुम्हडा। पेठा।

कर्कारुक—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। हिनुवाना।

कर्कि—संज्ञा पुं० [सं०] कर्क राशि।

कर्केतन—संज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर। जमुर्रद।

विशेष—कर्केतन या जमुर्रद हरे या नीले रंग का होता है। अच्छा जमुर्रद दूब के रंग का और बिना सूत का स्वच्छ होता है। जमुर्रद से बिल्लौर कट जाता है। जमुर्रद को काटने के लिये नीलम और मानिक की आवश्यकता होती है। इसको घिसने से इसमे से एक प्रकार की चमक निकलती है। दक्षिण भारत मे कोयमबटूर के पास इसकी खान है। यह और जगह भी नीलम और पन्ने के साथ मिलता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त सिंहल, उत्तर अमेरिका, मिस्र रूस (यूराल पर्वत), ब्राजिल आदि स्थानो मे भी यह होता है। जिस कर्केतन मे सूत होता है अर्थात् जो बहुत स्वच्छ नही होता और मटमैले रंग का होता है, उसे लसुनिया कहते हैं।

कर्केतर--संज्ञा पुं० [सं०] कर्केतन या रत्न। जमुर्रद।

कर्कोट, कर्कोटक—संज्ञा पुं० [सं०]१ बेल का पेड। २ खेखसा। ककोडा। ३ एक राजा का नाम। ४ काश्मीर का एक राजवश। ५. पुराण के अनुसार आठ नागो मे से एक नाग का नाम। ६ ईख।

कर्कोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बनतोरई। २. खेखसी। ककोडा। ३ देवदाली। बदाल।

कर्चरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचौडी। बेढई। बेढ़वी।

कर्ची— संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिडिया।

कर्चूर—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। सुवर्ण। २. कचूर। नरकचूर।

कर्चूरक--संज्ञा पुं० [सं०] हल्दी (को०)।

कर्ज—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज] ऋण। उधार।

क्रि० प्र०—अदा करना।—करना।—काढ़ना।—खाना।—चुकना।—चुकाना।—देना।—पटना।—पटाना।—लेना।—होना।

मुहा०—कर्ज उतारना = कर्ज देना या चुकाना। उधार बेबाक करना। कर्ज उठाना = ऋण लेना। ऋण का बोझ ऊपर लेना। कर्ज खाना = (१) कर्ज लेना। (२) उपकृत होना। दबायल होना। वश मे होना। जैसे,—क्या हमने तुम्हारा कर्ज खाया है, जो आँख दिखाते हो? कर्ज खाए बैठना = दे० 'उधार खाए बैठना'।

यौ०—कर्जदार।

कर्जख्वाह—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज + फा० ख्वाह = चाहनेवाला] वह जो किसी से कर्ज लेना चाहता हो। ऋण लेने की इच्छा रखनेवाला।

कर्जदार—वि० [अ० कर्ज + फा० दार] उधार लेनेवाला। ऋणी।

कर्जा—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज] दे० 'कर्ज'।

कर्जी—वि० [अ० कर्ज + हिं० ई (प्रत्य०)] ऋणी। कर्जदार। ऋणग्रस्त।

कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कान। श्रवणेंद्रिय। २. कुंती का सब से बडा पुत्र।

सफेद और कुछ हलका और गहरा गुलाबी होता है। ये फल खट्टे होते हैं तथा अचार और चटनी के काम में आते हैं। पंजाब में करौंदे के पेड से लाह भी निकलती है फल रंगों मे भी पड़ता है। डालियों को छीलने से एक प्रकार का लासा निकलता है। कच्चा फल मलरोधक होता है। इसकी जड को कपूर और नीबू मे फेंटकर खाज पर लगाते हैं जिससे खुजली कम होती है और मक्खियाँ नही बैठती। इसकी लकडी ईंधन के काम मे आती है, पर दक्षिण में इसके कवे और कलछुले भी बनते हैं। करौंदे की झाड़ी टट्टी के लिये भी लगाई जाती है। करौंदा प्राय सब जगह होता है।

पर्या०—करमर्द। कराम्ल। करावुक। बोल। जातिपुष्प। २ एक छोटी कँटीली झाडी।

विशेष—यह जंगलो मे होती है जिसमे मटर के बराबर छोटे फल लगते हैं, जो जाडे के दिनो में पककर खूब काले हो जाते हैं। पकने पर इन फलो का स्वाद मीठा होता है।

३ कान के पास की गिल्टी।

करौंदिया[1]—वि० [हि० करौंदा + इया(प्रत्य०)] १ करौंदे से सबद्ध। २ करौंदे के रग का। करौंदे के समान हलकी स्याही लिए हुए खुलते लाल रंग का। उ०—करौंदिया और सुआपखी धानी रग के वस्त्रो। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०।

करौंदिया[2]—सज्ञा पुं० एक रग जो हल्की स्याही के लिए लाल होता है।

विशेष—गुलाबी से इसमे थोडा ही अतर जान पड़ता है। रँगरेज लोग जिन वस्तुओं से अब्बासी रग बनाते हैं, उन्ही से इसे भी बनाते हैं, अर्थात् ८ छटाँक शहाब के फूल, ½ छटाँक आम की खटाई और ८-६ माशे नील।

करौंदी—सज्ञा स्त्री० [हि० करौंदा का स्त्री०] दे० 'करौंदिया'। उ०—उत्फुल्ल करौंदी कुज वायु रह रहकर, करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह मह कर।—साकेत, पृ० २२७।

करौंत[1]—सज्ञा पुं० [स० करपत्र] [स्त्री० करौती] लकड़ी चीरने का औजार। आरा।

करौंत[2]—सज्ञा स्त्री० [हि० करना] रखेली।

करौता[1]—सज्ञा पुं० [हि० करौत] दे० 'करौत'।

करौता[2]—सज्ञा पुं० [हि० कारा, काला] करैल मिट्टी।

करौता[3]—सज्ञा पुं० [हि० करवा] काँच का बड़ा बरतन। करावा। बडी शीशी।

करौती[1]—सज्ञा स्त्री० [हि० करौता] लकडी चीरने का औजार। आरी।

करौती[2]—सज्ञा स्त्री० [हि० करवा] १ शीशे का छोटा बरतन। करावा। उ०—(क) जाही सो लगत नैन, ताही खगत बैन, नख सिख लौं सब गात ग्रसति। जाके रँग राचे हरि सोइ है अंतर सग, काँच की करौती कै जल ज्यों लसति।—सूर (शब्द०)। (ख) वे अति चतुर प्रवीन कहा कहौं जिन पठई तो को बहरावन। सूरदास प्रभु जिय की होती को जानति काँच करौती मे जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन।—सूर (शब्द०)। २. काँच की भट्ठी।

करौना[1]—सज्ञा पुं० [हि० करोना = खुरचना] कसेरों की वह कलम जिससे वे बरतनों पर नक्काशी करते हैं। नक्काशी खोदने की कलम या छेनी।

करौना[2]—सज्ञा स्त्री० [सं० करमर्द, (प्रा) करवंद] दे० 'करौंदा'।

करौला(पु)—सज्ञा पुं० [हि० रौला + शोर] हँकवा करनेवाला। शिकारी। उ० एक समै सजिकै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए। 'आवत है सरजा सँभरो' एक ओर तें लोगन बोलि जनाए। भूषन भो भ्रम औरँग को सिव भोंसला भूप की धाक धकाए। धाय कै 'सिह' कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए।—भूषण ग्र० पृ० ६५।

करौली—सज्ञा स्त्री [हि० राजस्थान का एक नगर] १. राजस्थान का एक शहर। २. एक प्रकार की सीधी छुरी जो भोकने के काम में आती है। इसमे मूँठ लगी रहती है। यह करौली शहर मे अच्छी बनने से उसी के नाम से ख्यात है।

कर्कंधु—सज्ञा पुं० [स० कर्कन्धु] दे० 'कर्कंधू'।

कर्कंधू—सज्ञा पुं० [स० कर्कन्धू] १ बेर का पेड या फल। २ अधा कुआँ। सूखा कुआँ (को०)।

कर्क[1]—सज्ञा पुं० [सं०] १ केकडा। २ बारह राशियो मे से चौथी राशि। उ० अब मैं कहौं चद्र की धारा। कर्क सक्राति छेमास विचारा।—कबीर सा०, पृ० ८७६।

विशेष—इसमें पुनर्वसु का अतिम चरण तथा पुष्य और अश्लेषा नक्षत्र हैं। ३६० अक के १२ विभाग करने से एक एक राशि मोटे हिसाब से ३०° की मानी जाती है। कर्क पृष्ठोदय राशि है।

३ काकडासींगी। ४ अग्नि। ५ दर्पण। ६ घडा। ७ कात्यायन और सूत्र के एक भाष्यकार। ८ सफेद घोड़ा (को०)। ९ एक प्रकार का रत्न (को०)।

कर्क[2]—वि० १ सफेद। सुदर। अच्छा [को०]।

कर्क[3]—वि० [प्रा० कक्कर] कठोर। कठिन। परुष। उ०—फटे बीर बीर सुबीर सुभट्ट। मनो कर्क करवत्त चिहुरंत कट्ठ।—पृ० रा०, २५।४४६।

कर्कचिर्भटी—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की ककडी [को०]।

कर्कट—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्कटी, कर्कटी] १ केकड़ा। २ कर्क राशि। ३. एक प्रकार का सारस। करकरा। करकरिया। ४. लौकी। घीआ। ५ कमल की मोटी जड। भसीड। तराजू की डडी का मुडा हुआ सिरा जिसमे पलड़े की रस्सी बँधी रहती है। ७ सँड़सा। ८ वृत्त की त्रिज्या। ९ नृत्य में तेरह प्रकार के हस्तकों मे से एक।

विशेष—दोनों हाथ की उँगलियाँ बाहर भीतर मिलाकर कड़काते हैं। यह क्रिया आलस्य या शख बजाने का भाव दिखाने के लिये की जाती है।

कर्कटक—सज्ञा पुं० [सं०] १. केकडा। कर्क राशि। ३. वृत्त। ४. एक प्रकार की ईख। ५ अँकुशी। ६ हूक [को०]।

कर्कटकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] मादा केकडा [को०]।

कर्कटशृंगी—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृङ्गी] काकड़ासींगी।

करैयाⓟ†—वि० [हिं० करना+ऐया (प्रत्य०)] कर्ता। करनेवाला। कार्य करनेवाला। उ०—कहै कोई लाखो, करैया कोई एक है। —कबीर श०, भा० १, पृ० १०।

करैल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कारा, काला] १ एक प्रकार की काली मिट्टी जो प्राय तालो के किनारे मिलती है।

विशेष—यह बहुत कडी होती है, पर पानी पडने पर गलकर लसीली हो जाती है। इससे स्त्रियाँ सिर साफ करती हैं। कुम्हार भी इसे काम में लाते हैं।

२ वह भूमि जहाँ की मिट्टी करैल या काली हो।

करैल²—संज्ञा पुं० [सं० करीर] १ बाँस का नरम कल्ला या अँखुआ। २ डोम।

करैला—संज्ञा पुं० [हिं० करेला] दे० 'करेला'।

करैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेली] दे० 'करेली।

करैली मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करैल+मिट्टी] दे० 'करैल'।

करोट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवट] दे० 'करवट'।

करोⓟ—प्रत्य० [सं० कृतⓟ†कर] का। उ०—तान्हि करो पुत्र युवराजन्हि माँझ पवित्र।—कीर्ति०, पृ० १२।

करोट¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० करोटी] खोपडे की हड्डी। खोपडा।

करोट²†—संज्ञा पुं० [हिं० करवट] दे० 'करवट'। उ०—जागत जाति राति सब काटी। लेत करोट सेज की पाटी।—शकुतला पृ० १०८।

करोटन—संज्ञा पुं० [अ० क्रोटन] १ वनस्पति की एक जाति जिसके अतर्गत अनेक पेड़ और पौधे होते हैं।

विशेष—इस जाति के सब पौधों मे मजरी लगती है और फलों में तीन या छह बीज निकलते हैं। इस जाति के कई पेड दवा के काम मे भी आते हैं और दस्तावर होते हैं। रेंडी और जमालगोटा इसी जाति के पेड़ हैं।

२ एक प्रकार के पौधे जो अपने रग बिरगे और विलक्षण आकार के पत्तो के लिये लगाए जाते हैं।

करोटी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] खोपड़ी।

करोटी²ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवट] दे० 'करवट'। उ०—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषीं नँदरानी। विप्र बुलाइ स्वस्तिवाचन करि रोहिणि नैन सिरानी।—सूर (शब्द०)।

करोडी—वि० [सं० कोटि] सौ लाख की सख्या जो अको मे इस प्रकार लिखी जाती है—१००००००० ।

मुहा०—करोड़ की एक=बहुत सी बातों का तत्व। यथार्थ तत्व। बड़े अनुभव की बात। जैसे,—इस समय तुमने करोड़ की एक कही।

करोडखुख—वि० [हिं० करोड़+खुख] झूठमूठ लाखों करोड़ों की बात हाँकनेवाला। झूठा। गप्पी।

करोड़पति—वि० [हिं० करोड़+सं० पति] करोड़ो रुपए का स्वामी। वह जिसके पास करोड़ों रुपए हो। बहुत बडा धनी।

करोड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० करोड़+ई (प्रत्य०)] १. रोकड़िया। तहवील-दार। २. मुसलमानी राज्य का एक अफसर जिसके जिम्मे कुछ तहसील रहती थी। ३. करोड़पति। अत्यत धनी।

करोत—संज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० *करवत्त] लकडी चीरने का औजार।—आरा। उ०—जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की बात। सूर उदोत करोत सम, चीरि कियो विवि गात। नद० ग्र०, पृ० १४३।

करोदनाⓟ—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, हिं० कुरेदना] खरोचना। खुरचना। करोना। उ०—मिहिर नजर सो भावते रामु याद भरि मोद। अनखन खनि अनखन अरे मत मो मनहिं करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

करोधⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] दे० 'क्रोध'। उ०—जीतै पहिन अहार की दूजे और करोध। बहु मनुष्यो का सग तजि छाँड़ै प्रीति विरोध।—तेज०, पृ० १५६।

करोनाⓟ†—क्रि० स० [सं० क्षुरण=खरोंचना] १ खुरचना। खसोटना। उ०—लाल निठुर ह्वै बैठि रहे। प्यारी हाहा करति न मानत पुनि पुनि चरन गहे। नहिं बोलत नहिं चितवत मुख तन धरनी नखन करोवत।—सूर (शब्द०)।

२ पके हुए दूध या दही का अश जो पेंदी मे जमा रहता है और जिसे खुरचकर निकालते हैं। ३ लोहे या पीतल का बना खुर्पी के आकार का औजार जिससे खुरचते हैं।

करोनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करोना] १ पके हुए दूध या दही का वह अश जो बरतन में चिपका रह जाता है और खुरचने से निकलता है। २. खुरचन नाम की मिठाई। ३ लोहे या पीतल का बना हुआ खुर्पी के आकार का एक औजार जिससे दूध-बसौंधी आदि कडाही मे से खुरची जाती है।

करोरⓟ†—वि० [हिं० करोड़] दे० 'करोड'। उ०—कहना कोर किसोर की रोर हरन बरजोर। अष्ट सिद्धि नव निद्धि जुत करत समृद्ध करोर।—स० सप्तक, पृ० ३४४।

करोला¹ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० करवा] करवा। गडुआ। उ०—(क) लसत अमोले कनक करोले। भरे सुरभि जल धरे अतोले। रघुराज (शब्द०)। (ख) थार कटोरे कनक करोले। विमवा प्याले परम अमोले।—रघुराज (शब्द०)।

करोला²—संज्ञा पुं० [देश०] भालू। रीछ।—(हिं०)।

करौंछाⓟ†—वि० [हिं० कारा, काला+औंछा (प्रत्य०)] [स्त्री० करौंछी] काला। श्याम। उ०—केसर सो उबटी अन्हवाइ चुनी चुनरी चुटकीन सो कोछी। वेनी जु माँग भरे मुकता बडी वेनी सुगध फुलेल तिलोछी। औचक आए वे रोम उठे लखि मूरति नदलला की करोछी। ओछिल है कह्यो आली री तैं हहा देह गुलाल की पोती सो पोछी।—वेनी (शब्द०)।

करौंजीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० कालाजाजी] कलौंजी। मँगरेला। उ०—काथ करौंजी कारी जीरो। काइफरो कुचिला कनकीरो।—सूदन (शब्द०)।

करौंटⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवट] दे० 'करवट'।

करौंदा—संज्ञा पुं० [सं० करमर्द, प्रा० करमद्द, ⓟकरवंद] १ एक कटीला झाड।

विशेष—इसकी पत्तियाँ नीबू की तरह की, पर छोटी छोटी होती हैं। इसमे जूही की तरह के सफेद फूल लगते हैं—जिनमे भीनी भीनी गध होती है। यह बरसात मे फलता है। इसके फूल छोटे बेर के बराबर बहुत सुदर होते हैं जिसका कुछ भाग खूब

करेजवा†—संज्ञा पुं० [हिं० करेजा] कलेजा । उ०—कवन रोग दुहुँ छतियाँ उपजेउ माय । दुखि दुखि उठै करेजवा लगि जनु जाय ।—रहीम (शब्द०) ।

विशेष—पूर्वी क्षेत्रों में 'या', 'वा' प्रत्यय लगाकार विशिष्ट निर्देशार्थ व्यक्त किया जाता है ।

करेजा॰†—संज्ञा पुं० [सं० यकृत अथवा हिं० कलेजा] कलेजा । हृदय । उ०—(क) कीजो पार हरतार करेजे । गंधक देख अगिहि जिउ दीजे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मानो गिन्यो हेमगिरि शृंग पै सुकेलि करि कढ़ि कै कलक कलानिधि के करेजे तें ।—पद्माकर (शब्द०) ।

करेजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेजा] पशुओं के कलेजे का मास जो खाने में अच्छा समझा जाता है ।

यौ०—पत्थर की करेजी = पत्थर की खानों मे चट्टानों की तह मे से निकली हुई पपडी की सी वस्तु जो खाने मे सोंधी लगती है ।

करेणु—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी । २ कर्णिकार वृक्ष । कनेर ।

करेणुक—संज्ञा पुं० [सं०] करेणु नामक पौधे का विषैला फल [को०] ।

करेणुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी । मादा । हाथी ।

करेणुभू—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिशास्त्र के प्रवर्तक पालकाप्य मुनि [को०] ।

करेणुवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] चेदिराज की कन्या का नाम जो नकुल को व्याही गई थी ।

करेणुसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'करेणुभू' [को०] ।

करेणू—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी [को०] ।

करेता—संज्ञा पुं० [देश०] वरियारा । वला । खिरेंटी ।

करेतर—संज्ञा पुं० [सं०] धूप । लोहवान । [को०] ।

करेनुका॰—संज्ञा स्त्री० [सं० करेणुका] दे० 'करेणुका' । उ०—केसोदास । प्रवल करेनुका गमन हर मुकुत सुहसक सवद सुखदाई है ।—केशव० ग्र०, भा० १, पृ० १३७ ।

करेप—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेब] दे० 'करेब' । उ०—वे करेप की वनी नीकरें, जूतो पर अजगर की खाल । कमरो मे शेरो की खालें औ अपना सिर सजी दिवाल ।—वंदन, पृ० १४४ ।

करेव—संज्ञा स्त्री० [अ० क्रेप] एक करारा झीना रेशमी कपडा । उ०—पचरग उपट्यो दुपटो करेब को त्यों इत, वेल कारचोवी जामे सोहति मोहति चित ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६ ।

करेमुआ—संज्ञा पुं० [हिं० करेमू] दे० 'करेमू' । उ०—तालों में से भी करेमुआ और । प्रेमघन, भा० २, पृ० १८ ।

करेमु—संज्ञा पुं० [सं० कलम्बु] एक घास जो पानी में होती है ।

विशेष—यह पानी के ऊपर दूर तक फैलती है । इसके डठल पतले और पोले होते हैं, जिनकी गाँठों पर से दो लवी लवी पत्तियाँ निकलती हैं । लडके डठलों को लेकर वाजा बजाते हैं । इस घास का लोग साग बनाकर खाते हैं । करेमू अफीम का विष उतारने की दवा है । जितनी अफीम खाई गई हो, उतना करेमू का रस पिला देने से विष शात हो जाता है ।

करेर॰†—वि० [हिं० कड़ा, ॰करा + एर (प्रत्य०)] कडा । कठिन । कठोर । उ०—काया नगर सोहावन जहँ वसे आतम राम । मन पवन तहँ छाइव कठिन करेरो काम ।—गुलाल०, पृ० १३४ ।

करेरा॰—[हिं०] दे० 'करेर' ।

करेरुवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली वेल ।

विशेष—इसके पत्ते नीवू के आकार के होते हैं । चैत वैसाख मे इसमे हलके करौंदिया रग के फूल लगते हैं जिनकी केसर बहुत लंबी होती है फूलो के झड़ने पर इसमे परवल की तरह फल लगते हैं जिनमे वीज ही वीज भरे रहते हैं । यह खाने मे बहुत कड़ुआ होता है, यहाँ तक कि इसके पत्तो से भी वही कड़ुई गध निकलती है । फल की तरकारी बनाई जाती है । लोगों का विश्वास है कि आर्द्रा नक्षत्र के पहले दिन इसे खा लेने से साल भर फोडा फुसी होने का डर नहीं रहता । करेरुवा के पत्ते पीसकर घाव पर भी रखते हैं ।

करेल—संज्ञा पुं० [हिं० करेला] १ एक प्रकार का वड़ा मुगदर जो दोनों हाथो से घुमाया जाता है । इसका वजन दो मुगदरो के वरावर होता है । इसका सिरा गालाई लिये हुए होता है, इससे यह जमीन पर नहीं खडा रह सकता, दीवार इत्यादि से अड़ा कर रखा जाता है । २. करेल घुमाने की कसरत ।

क्रि० प्र०—करना ।

करेलनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] लकडी की वह फरुई जिससे घास का अटाला लगाते हैं ।

करेला—संज्ञा पुं० [सं० कारवेल्ल] १ एक छोटी वेल । उ०—भाव की भाजी सील की सेमा वने कराल करेला जी ।—कबीर श०, पृ० ११ ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पाँच नुकीली फाँकों मे कटी होती हैं । इसमे लवे लवे गुल्ली के आकार के फल लगते हैं जिनके छिलके पर उभडे हुए लवे लवे और छोटे वडे दाने होते हैं । इन फलों की तरकारी बनती है । करेला दो प्रकार का होता है । एक बैसाखी जो फागुन मे क्यारियो में वोया जाता है, जमीन पर फैलता है और तीन चार महीने रहता है । इसका फल कुछ पीला होता है, इसी से कलौंजी बनाने के काम मे भी आता है । दूसरा बरसाती जो वरसात मे वोया जाता है, झाड़पर चढ़ता है और सालों फूलता फलता है । इसका फल कुछ कुछ पतला और ठोस होता है । कहीं कहीं जगली करेला भी मिलता है जिसके फल बहुत छोटे और कडुए होते हैं । इसे करेली कहते हैं ।

२. माला या हुमेल की लवी गुरिया जो वडे दानों या कोंड़ेदार रुपयो के बीच मे लगाई जाती है । हुरें । ३ एक प्रकार की आतशवाजी ।

करेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० करेला] जंगली करेला जिसके फल बहुत छोटे छोटे और कडुए होते हैं ।

करेवर॰—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'करेनर' ।

करैत—संज्ञा पुं० [हिं० कराइत] दे० 'कराइत' ।

करुणागार--वि० [सं०] करुणा से ओतप्रोत। करुणामय। उ०—कहाँ वह करुणा करुणागार, विषयरस मे रत मेरे प्राण। पीठ पर लदा मोह का भार, कहाँ वह दया, करे जो त्राण।—मधुज्वाल, पृ० ५५।

करुणादृष्टि- संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दयादृष्टि। कृपा। २ नृत्य की छत्तीस दृष्टियों में से एक जिसमे ऊपर की पलक दबाकर अश्रुपात सहित नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि लाते हैं।

करुणाद्र(पु)—वि०[सं० करुणाद्र]करुणा से आर्द्र या द्रवित होनेवाला।

करुणानिधान- वि० [सं०] जिसका हृदय करुणा से भरा हो। दयालु।

करुणानिधि –वि० [सं०]जिसका हृदय करुणा से भरा हो। दयालु।

करुणापर वि० [सं०] करुणाकर। दयालु।

करुणामय--वि० [स०] जिसमे बहुत करुणा हो। दयावान। उ०—वह शुभ मन सा कर करुणामय अरु शुभ तरगिनी सोम सनी।—केशव (शब्द०)।

करुणार्द्र—वि० [स०] करुणा से पीडित। दुखी। द्रवित। उ०—राजा हरिश्चद्र को श्मशान मे रानी शैव्या से कफन माँगते हुए, राम जानकी को वनगमन के लिये निकलते हुए पढ़कर ही लोग क्या करुणार्द्र नही हो जाते ?—चितामणि, भा० २, पृ० ४४।

करुणावान—वि० [सं० करुणावान्] करुणामय। दयालु। उ०—जब तुम मुझे गभीर गोद मे लेते हो, हे करुणावान। मेरी छाया भी तब मेरा पा सकती है नही प्रमाण।—वीणा, पृ० २५।

करुणासिक्त--वि० [सं०] करुणा से द्रवित। करुणापूर्ण। उ०—नरेंद्र की 'युवक कर्क' पर कविता भी करुणासिक्त है।—हिं० आं० प्र०, पृ० २३३।

करुणी—वि० [सं० करुणिन्]१ दयनीय। दया का पात्र। २ दुखी। पीडित [को०]।

करुना(पु)- संज्ञा पुं० [स० करुणा] दे० 'करुणा'।

करुनाकार(पु)—वि०[सं० करुणाकर] दे० 'करुणाकर'। उ०—काकुस्थ करुनाकार। गुन निद्धि सुब्भट भार।—पृ० रा०, २५। ३६५।

करुनानिधि(पु)—वि० [स० करुणानिधि] दे० 'करुणानिधि'। उ०—देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले।—मानस०, १।१५०।

करुनामय(पु)--वि० [सं० करुणामय] दे० 'करुणामय'। उ०—ऐसेहि मोहिं करी करुनामय, सुर स्याम ज्यो सुत हित माई।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २४९।

करुर(पु)—[स० कटु] कड़ुआ। तीखा।

करुल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया।

विशेष—यह जल के किनारे रहती है और घोंघे आदि फोडकर खाया करती है। इसके डैने काले और छाती सफेद होती है। इसकी चोच बहुत लबी और नुकीली होती है। लोग इसका शिकार भी करते हैं।

करुवा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० करवा] दे० 'करवा'।

करुवा[2]†—संज्ञा पुं०[हिं० कडवा]दे० 'कडुआ'। उ०—सुंदर सुगधमय मंजरी मधुर तजि करुवे कुसुम कहो वाके मन भावें क्यो।—मोहन०, पृ० ४१।

करुवार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कलवारी] नाव खेने का एक प्रकार का डाँड़।

विशेष—इस डाँड़ के पत्ते मे थामने का बाँस और डाड़ों से लबा होता है। छोटी नावों में, जिनमे पतवार नही होती, वह माँझी इसे लेकर पीछे की तरफ बैठता है जो अच्छा खेना जानता हो, क्योकि नाव का सीधा ले जाना और घुमाना सब कुछ उसी के हाथ मे रहता है।

करुवार[2]—संज्ञा पुं० [देश०] लोहे का बद जिसके दोनों नुकीले छोर मुड़े होते हैं और जो दो लकड़ियो या पत्थरो के जोड़ को दृढ़ रखने के लिये जडा जाता है।

करू(पु)--वि० [हिं० कड़ू या कड़ुआ] दे० 'कड़ुआ'।

करूवेल(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं०कारवेल] इद्रायण की बेल या लता। उ०—कीन्हेसि ऊख मीठ रस भरी। कीन्हेसि करूवेल बहु फरी।—जायसी ग्र०, पृ० २।

करूर[1]†—वि० [हिं० कड़ुआ] दे० 'कड़ुआ'।

करूर[2](पु) –वि०[स० क्रूर]१. कठोर। कडा। उ०—चदेल बनाफर मुच्य सो सूर। बघेल सुगोहिल लोह करूर।—पृ० रा०, पृ० ४१। २ क्रूर। निर्दय। उ०—श्वास श्वास छीजत अवश्य दुष्कर काल करूर। रामा यातें ऊबरे समरथ साधु हजूर।—राम० धर्म०, पृ० २३८।

करूला†—संज्ञा पुं०[हिं० कड़ा+ऊला (प्रत्य०)]१ हाथ मे पहनने का कड़ा। २. एक प्रकार का मध्यम सोना जिसकी कड़े के आकार की कामी होती है। इसमे तोला पीछे चार रत्ती चाँदी होती है, इसी से यह कुछ सस्ता बिकता है। ३ मुँह मे भरे हुए पानी या और किसी पनीली वस्तु को जोर से मुँह से निकालना। कुल्ला।

करूष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम। उ०—पूरब मनंय करूष देश द्वै देव किए निरमाना। पूरन रहे धान्य धन जन ते सरित तड़ागहु नाना।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—रामायण के अनुसार यह गगा के किनारे गया था और राम के समय मे घोर वन था और ताडका नाम की राक्षसी रहती थी। महाभारत के समय मे यह देश बस गया था और इसका राजा दतवक्र था। वायुपुराण और मत्स्यपुराण में करूष को विध्य पर्वत पर बतलाया गया है। इससे विदित होता है कि वर्तमान शाहाबाद का जिला ही प्राचीन करूष देश है।

करेंसी--वि० [अं०] हाथो हाथ चलनेवाला। लेनदेन के व्यवहार मे धन की तरह काम आनेवाला। जैसे,—करेंसी नोट।

करेजा—संज्ञा पुं० [हिं० करेजा] दे० 'करेजा'। उ०—औटि करेज पानि भा लोहू।—चित्रा० पृ०, ३६।

करीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर या पतंगा। २. हाथी की सूँड़ का प्रारंभिक भाग। शुंडमूल [को०]।

करीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड का प्रारंभिक भाग। शुंडमूल [को०]।

करीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'करीरिका'।

करीरु, करीरू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर या पतंगा। २. हाथी का शुंडमूल [को०]।

करील—संज्ञा पुं० [सं० करीर] ऊसर और कँकरीली भूमि में होनेवाली एक कँटीली झाड़ी। उ०—(क) केतिक ये कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं।—रसखान (शब्द०)। (ख) दोष वसंत को दीजै कहा उलही न करील की डारन पाती।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—इस झाड़ी में पत्तियाँ नहीं होतीं, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली बहुत सी डंठलें फूटती हैं। राजपूताने और ब्रज में करील बहुत होते हैं। फागुन चैत में इसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गोल गोल फल लगते हैं जिन्हें टेंटी या कचड़ा कहते हैं। ये स्वाद में कसैले होते हैं और इनका अचार पड़ता है। करील के हीर की लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इससे कई तरह के हलके असबाब बनते हैं। रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं और जाल बुने जाते हैं। वैद्यक में कचड़ा गर्म, रूखा, पसीना लानेवाला, कफ, श्वास, वात, शूल, सूजन, खुजली और आँव को दूर करनेवाला माना गया है।

करीश, करीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों में श्रेष्ठ। गजराज।

करीषंकषा—संज्ञा स्त्री० [करीषङ्कषा] आँधी [को०]।

करीष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा गोबर जो जंगलों में मिलता है और जलाने के काम आता है। बनकंडा। अरना कंडा। जंगली कंडा। वन उपला। उ०—कछु है अब तो कह लाज हिये। कहि कौन विचार हथ्यार लिये। अब जाइ करीष की आगि जरौ। गरु बाँधि कै सागर बूढ़ि मरौ।—केशव (शब्द०)।

करीषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी [को०]।

करीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० करीश] दे० 'करीश'।

करीसा(पु)—वि० [देश०] चूर्ण करनेवाला। कुचलनेवाला। उ०—सुकज दुरग भगवान सरीसा, रिणमल जोधा दुयण करीसा।—रा० रू०, पृ० ३२९।

करुआ[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दारचीनी की तरह का एक पेड़ जो दक्षिण के उत्तरी कनाड़ा नामक स्थान में होता है।

विशेष—इसकी सुगंधित छाल और पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो सिर के दर्द आदि में लगाया जाता है। इसका फल दारचीनी के फल से बड़ा होता है और काली नागकेसर के नाम से बिकता है।

करुआ[2](पु)—वि० [सं० कटुक] [स्त्री० करुई] १. कडु०। उ०—सुनतहि लागत हमैं और इमि ज्यों करुई ... —सूर (शब्द०)। २. अप्रिय। उ०—कहहि फुर बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई।—तुलसी (शब्द०)।

करुआ[3]†—वि० [हिं० काला] काला। श्यामवर्ण का।

करुआइ(पु)—वि० [हिं० करुआ] दे० 'करुआ[2]'। उ०—बिनु बूझे करुआइ अस लगिहै बचन हमार। जब बूझै तब मीठे हो कहै कबीर पुकार।—कबीर सा०, पृ० ३९५।

करुआई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० करुआ+ई (प्रत्य०)] कड़ुआपन। उ०—(क) सूर, सुजान, सपूत सुलक्षण गनियत गुन गरुआई। बिनु हरिभजन इनारुन के फल तजत नहीं करुआई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६। (ख) घूमउ तजै सहज करुआई। अगरु प्रसग सुगंध बसाई।—तुलसी (शब्द०)।

करुआना(पु)—क्रि० अ० [हिं० करुआ से नाम०] १ कड़ुआ लगना। २ अप्रिय लगना। ३ गड़ना। दुखना।

करुई(पु)—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुआ] कडवी। कणुई। उ०—पहिले करुई सोइ अब मीठी।—जायसी ग्रं०, पृ० ११७।

करुखी—क्रि० वि० [हिं० कनखी] कनखी। तिरछी नजर। उ०—सूरदास प्रभु प्रिय मिली, नैन प्राण सुख भयो चितए करुखियनि अनकनि दिए —सूर (शब्द०)।

करुण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मनोविकार या दुःख जो दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होता है और दूसरे के दुःख को दूर करने की प्रेरणा करता है। दया। २. वह दुःख जो अपने प्रिय बंधु या इष्ट मित्र आदि के वियोग से उत्पन्न होता है। शोक।

विशेष—यह काव्य के नव रसों में से है। इसका आलंबन बंधु या इष्ट मित्र का वियोग, उद्दीपन मृतक का दाह या वियुक्त पुरुष की किसी वस्तु का दर्शन या उसका दर्शन, श्रवण आदि तथा अनुभाव भाग्य की निंदा, ठंढी साँस निकलना, रोना पीटना आदि है। करुण रस के अधिष्ठाता वरुण माने गए हैं।

३ एक बुद्ध का नाम। ४. परमेश्वर। ५ कालिका पुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम। ६. करना नीबू का पेड़।

करुण[2]—वि० करुणायुक्त। दयार्द्र।

करुणमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका [को०]।

करुणविप्रलंभ—संज्ञा पुं० [सं० करुणविप्रलम्भ] वियोग शृंगार [को०]।

करुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मनोविकार या दुःख जो दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होता है और जो दूसरों के दुःख को

करही। खग, कमान, वान, करियारी मय पूजि सुख भरही।—रघुराज (शब्द०)।

करिरत—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन की एक स्थिति [को०]।

करिल[1]ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोंपल] कोपल। नया कल्ला। उ०—ओहि भाँति पलुही सुखवारी। उठी करिल नइ कोंप सँवारी।—जायसी (शब्द०)।

करिल[2]—वि० [हिं० काला] दे० 'काला'। उ०—करिल केस विसहर विस भरे। लहरैं लेहि कँवल मुख धरे।—जायसी (शब्द०)।

करिवदन—संज्ञा पुं० [सं०]जिनका मुँह हाथी के ऐसा हो।—गणेश।

करिवर—संज्ञा पुं०[सं०]श्रेष्ठ हाथी। उ०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर वदन। करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—मानस, १।

करिवाँणⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कृपाण] कृपाण। छोटी तलवार। तलवार। उ०—सीगणि जोडलीयाँ करिवाँण।—बी० रासो०, पृ० ५८।

करिवैजयती—संज्ञा पुं० [करिवैजयन्ती] हाथी पर स्थापित झंडा या निशान [को०]।

करिशाव करिशावक - संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का वच्चा [को०]।

करिश्मा—संज्ञा पुं० [फा० किरिश्मह्] दे० 'करश्मा'। उ०—इस चमत्कार से दुनिया को चौंकाया। कुछ शक्ति करिश्मा आज हमें दिखलाओ।—सूत०, पृ० ६४।

करिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० करिस्कन्ध] हस्तिसेना। गजसेना [को०]।

करिहस्ताचार—संज्ञा पुं० [सं०]नृत्य मे देशी भूमिचार के ३५ भेदो मे एक जिसमे हस्त स्थानक रचकर दोनो पैर तिरछे करके जमीन पर रगडते हैं।

करिहाँ†—संज्ञा स्त्री० [पुं० कटिभाग] कमर। कटि। उ०—यो मिचकी मचकी न हहा लचकै करिहाँ मचकैं मिचकी के।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३०।

करिहाँव†—संज्ञा स्त्री० [सं० कटिभाग] १. कमर। कटि। २ कोल्हू का वह गड़ारीदार मध्य भाग जिसमे कनेठा और भुजेला घूमता है।

करिहाⓟ—संज्ञा स्त्री० [स० कटि, प्रा० कडि] दे० 'करिहाँ'। उ०—कीरट्टा सजि, सग चलैं बलकैं।—हम्मीर रा०, पृ० १२८।

करिहायँⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करिहा] कमर। कटि। उ०—कर जमाय करिहायँ नैन नभ ओर लगाए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २०५।

करींद्र—संज्ञा पुं० [सं० करीन्द्र] १ ऐरावत हाथी। २ बहुत बड़ा या विशाल हाथी।

करी[1]—संज्ञा पुं० [सं० करिन्] [स्त्री० करिणी] १. हाथी। उ०—दीरघ दरीन वसै केसौदास केसरी ज्यों केसरी को देखे बन करी ज्यो कँपत है।—केशव (शब्द०)।

करी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड>*काण्डिका] छत पाटने का शहतीर। धरन। कड़ी।

करी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कली] कली। अनखिला फूल। उ०—कहूँ सुगंध फनि कसि निरमरी। भा अलि सग कि अबहीं करी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ६४। २ १५ मात्राओं का एक छंद जिसको चौपाई या चौपैया भी कहते हैं। उ—चलत कहाँ मधुकर भूपाल। दखिनी आवत तुम पै हाल।—सूदन (शब्द०)।

करी[4]—वि० [सं० कर प्रत्य० का स्त्री०]१ करने या करानेवाली। जैसे, प्रलयकरी। २ प्राप्त करानेवाली। उत्पन्न करानेवाली। जैसे, भयंकरी।

करीन—वि० [अ० करीन] १. साथ रहने या बैठनेवाला। २ सदृश। समान। ३ मिला हुआ।

करीना[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़ने की छेनी। टाँकी।

करीना[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० केराना] केराना। मसाला। उ०—इत पर घर, उत है घरा, बनिज न आए हाट। कर्म करीना बेंचिकै, उठि करि चालो वाट।—कबीर (शब्द०)।

करीना[3]—संज्ञा पुं० [अ० करीन] १ ढग। तर्ज। तरीका। अदाज। चाल। २ क्रम। तरतीब। जैसे,—इन सब चीजों को करीने से रख दो। ३ रीति। व्यवहार। शऊर। सलीका। जैसे,—दस भले आदमियों के सामने करीन से बैठा करो। ४. हुक्के के नीचे का कपड़े से लपेटा हुआ वह भाग जो फरशी के मुँहड़े पर ठीक बैठ जाता है।

करीब—क्रि० वि० [अ० करीब]समीप। पास। नजदीक। निकट का। २ लगभग। जैसे—५००) के करीब तो चंदा आ गया है।

यौ०—करीब करीब = प्राय। लगभग। करीबतर निकटतम। पास का। करीबतरीन = सबसे निकटतम। बिलकुल पास का।

करीबन—क्रि० वि० [अ० करीबन्] लगभग। प्राय।

करीबी—वि० [अ० करीब+फा० ई (प्रत्य०)] नजदीकी या निकट सबधी।

करीबुलमर्ग—वि० [अ० करीबुलमर्ग] मरणासन्न।

करीम[1]—वि०[अ०]१. कृपालु। दयालु। २ क्षमाशील। ३ उदार।

करीम[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर। उ०—कर्म करीमा लिखि रहा होनहार समरत्थ।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—करीम लेना = भालू के नाखून काटना।—(कलदर)।

करीमभार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जगली घास जो चौपायो को हरी और सूखी खिलाई जाती है।

करीमुखⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० करी+मुख] हाथी के मुँहवाले, गणेश जी। उ०—साधुन को सुबसी करतार करीमुख के कर सीकर सोहै।—मति० ग्र०, पृ० ३६२।

करीमुननफस—वि० [अ० करीमुन्नफ्स] पुण्यात्मा। सदाचारी। नेकदिल। भला। उ०— जो पहचान कोई करीमुननफस। न हो कैद सो अनसरी के कफस।—कबीर म०, पृ० ३८६।

करीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाँस का अँखुआ। बाँस का नया कल्ला। २ करील का पेड़। उ०—धारयो दलन करीर तुम बहु रितुराजन पाय।—दीन० ग्र०, पृ० २१६। ३. घड़ा।

करीरक—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई [को०]।

तेल चोर कहँ तेल कराही, घृत चोरहि घृत माँझ गिराही ।—कबीर सा०, पृ० ४६७ ।

करिंगा(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] चमारो के नाच का विदूषक । उ०—झूम झूम बाँसुरी करिंगा बजा रहा, बेसुध सब हरिजन ।—ग्राम्या, पृ० ४४ ।

करिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० करीन्द्र] १. हाथियों में श्रेष्ठ । उत्तम हाथी । बडा हाथी । २. ऐरावत हाथी ।

करिंदा—संज्ञा पुं० [हिं० करिंदा] दे० 'कारिंदा' । उ०—सौंच करिंदा औ पटवारी धीरज नेम बिचारै ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२४ ।

करि¹—संज्ञा पुं०[सं० करिन][स्त्री० करिणी]सूँड वाला अर्थात् हाथी ।

करि²(पु)—प्रत्य० [हिं०] १. से । २. लिये । ३. द्वारा । उ०—तुम करि तोषित पोषित गात । तुम ही मानत ह्वै हैं तात ।—'नंद० ग्रं०' पृ० २३६ ।

करि³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर] दे० 'कर' । उ०—नरपति व्यास कहइ करि जोड तो तूठा तौतिसौ कोडि—बी० रासो, पृ० ३० ।

करिकट—संज्ञा पुं० [देश०] किलकिला नाम का पक्षी जो मछलियाँ पकडकर खाता है [को०] ।

करिआ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला] दे० 'काला' । उ०—बदन मे कुटिल खुलि बनौ, करिआ गाई में समाई मनोहर साँमरे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९२९ ।

करिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घाव जो नाखून की खरोंच से हो जाता है [को०] ।

करिकुंभ—संज्ञा पुं०[सं० करिकुम्भ] हाथी का माथा या मस्तक [को०] ।

करिकुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं० करिकुसुम्भ] नागकेशर का सुगंधित चूर्ण [को०] ।

करिखई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कारिख+ई (प्रत्य०)] श्यामता । कालापन ।

करिखा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कालिख] दे० 'कालिख' ।

करिगह†—संज्ञा पुं० [हिं० करगह] दे० 'करगह' ।

करिणी—संज्ञा स्त्री०[सं०] १ हस्तिनी । हथिनी । २. वह कन्या जो वैश्य पिता और शूद्र माता से उत्पन्न हुई हो । ३. हस्तिपिप्पली । गजपिप्पली (को०) ।

करित—संज्ञा पुं० [दे० या सं० कारित] वह पदार्थ जो आर्डर या आज्ञा देकर बनवाया गया हो [को०] ।

करिदारक—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह । शेर [को०] ।

करिनासिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा या वाद्य [को०] ।

करिनिका(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० कर्णिका] दे० 'कर्णिका' । उ०—अधि कमनीय करिनिका सब सुख सुंदर कंदर ।—नंद० ग्रं०, पृ०६ ।

करिनी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० करिणी] दे० 'करिणी' । उ०—सग लाइ करिनी करि लेहीं । मानहु मोहि सिखावन देहीं ।—मानस, ३।३१ ।

करिप—संज्ञा पुं० [सं०] महावत [को०] ।

करिपा—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा' । उ०—करि करिपा अब हेरिए दीन भक्त जोरे करन ।—श्यामा०, पृ० १५८ ।

करिपोत—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा [को०] ।

करिबंध—संज्ञा पुं० [सं० करिबन्ध] हाथी के बाँधने का खूँटा [को०] ।

करिबदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० करिवदन] दे० 'करिवदन' ।

करिबू—संज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के उत्तर ध्रुवीय प्रदेश का एक बारहसिंगा ।

विशेष—इससे वहाँ के निवासियों का बहुत सा काम चलता है । वे इसका मांस खाते हैं, इसकी खाल ओढ़ते हैं, खाल से तंबू या बरफ पर चलने का जूता बनाते हैं और हड्डी की छुरी बनाते हैं ।

करिमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह । शेर [को०] ।

करिमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजमुक्ता [को०] ।

करिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश [को०] ।

करिया¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ पतवार । कनवारी । उ०—सारँग स्यामहि सुरति कराइ । पौढ़े होहि जहाँ नँदनंदन ऊँचे टेर सुनाइ । गए ग्रीषम पावस ऋतु आई सब काहू चित चाइ । तुम बिनु ब्रजवासी यों जीवैं ज्यों करिया बिनु नाइ । तुम्हरे कह्यो मानिहैं मोहन चरन पकरि लै आइ । अबकी बेर सूर के प्रभु को नैननि आइ दिखाइ ।—सूर (शब्द०) । २. कर्णधार । माँझी । केवट । मल्लाह । ३ पतवार थामनेवाला माँझी । किलवारी धरनेवाला मल्लाह । उ०—(क) सुआँ न रहइ खुरकि जिव, अबहि काल सो आउ । सत्तुर अहइ जो करिया, कबहुँ सो बोरइ नाउ ।—जायसी(शब्द०) । (ख) सेतु मूल शिव शोभिजै केशव परम प्रकास । सागर जगत जहाज को करिया केशवदास ।—केशव (शब्द०) । (ग) जल बूडत नाव राखिहै सोई जोई करिया पूरो । करौ सलाह देव जो माँगै मैं कहा तुम तैं दूरो ।—सूदन (शब्द०) ।

करिया(पु)²†—वि० [हिं० काला] काला । श्याम । उ०—(क) ताके वचन बान सम लागे । करिया मुख करि जाहि अभागे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुलसी दुख दूनो दसा दुहू देखि कियो मुख दारिद कौ करिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

करिया³—संज्ञा पुं० [देश०] ईख का एक रोग जो रस सुखा देता है और पौधे को काला कर देता है ।

करिया⁴(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० काला] काला साँप । काला नाग । उ०—करिया काटे जिये रे भाई । गुरु काटे मरि जाई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १९ ।

करियाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करिया+ई (प्रत्य०)] १. कालापन । स्याही । कालिमा । श्यामता । २ कजली । कालिख ।

करीयाद—संज्ञा पुं० [सं० करियादस्] जलहस्ती[को०] ।

करियारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिकारी] १ कलियारी विष । २. लगाम । उ०—छठी भवन भूपति रानिन युत छठी कृत्य सब

क्रि० प्र०—पाना = निश्चित होना। ठहरना। तै पाना। जैसे,—उन दोनों के बीच यह बात करार पाई है।

करार³(पु)—वि० [सं० कराल] दे० 'कराल'। उ०—भिरे दूऊ भार तुटै वगतार, अकथ्यं करार कहै देव पार।—पृ० रा०, २४। १७१।

करार⁴(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० करारा = कौआ] दे० 'करारा'। उ०—प्रात समय वोल्ले करार सुभ कहिय पुर्व गनि। अगिनि कोन रिपु मरन पथिक आवइ दहिन मनि।—अकवरी० पृ० ३२६।

करारना(पु)—क्रि० अ० [अनु०। स० करट] काँ काँ शब्द करना। कौवे का वोलना। कर्कश स्वर निकालना। उ०—राधे भूलि रही अनुराग। तरु तरु रुदन करत मुरझानी ढूँढ़ि फिरी बन वाग। कुँवरि ग्रसित श्रीखंड अहि भ्रम चरण शिखीमुख लाग। वाणी मधुर जानि पिक वोलत कदम करारत काग।—सूर (शब्द०)।

करारा¹—संज्ञा पुं० [स० कराल = ऊँचा या हिं० कट = काटना + सं० आर = किनारा] १ नदी का वह ऊँचा किनारा जो जल के काटने से वने। उ०—जघन सघन जु भयानक भारे। महानदी के जनु कि करारे।—नद ग्र ०, पृ० २३९। २ ऊँचा किनारा। ३ टीला। ढूह।

करारा²—संज्ञा पुं० [सं० करट, प्रा० करह] कौआ। उ०—असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।—तुलसी (शब्द०)।

करारा³—वि० [हिं० कड़ा, कर्रा] १. छूने मे कठोर। कडा। २. दृढ़चित्त जैसे,—जरा करारे हो जाओ, रुपया निकल आवे। ३ खूब सेंका हुआ। आँच पर इतना तला या सेंका हुआ कि तोडने से कुर कुर शब्द करे। जैसे,—करारा सेव, करारा पापड़। ४. उग्र। तेज। तीक्ष्ण।

मुहा०—करारा दम = जो थका माँदा न हो। जो शिथिल न हो। तेज।

५. चोखा। खरा। जैसे,—करारा रुपया। ६. अधिक गहरा। घोर। जैसे,—उसपर वड़ी करारी मार पड़ी। ७ जिसका वदन कडा हो। हट्टा कट्टा। वलवान। जैसे,—करारा जवान।

करारा⁴—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की मिठाई।

करारापन—संज्ञा पुं० [हिं० करारा + पन (प्रत्य०)] कडाई। कड़ापन।

करारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० करार] करार। समझौता। उ०—हाथ पाँव कटि जाय करै ना सत करारी।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

कराल¹—वि० [सं०] १ जिसके वडे दाँत हो। २. डरावनी आकृति का। डरावना। भयानक। भीषण। ३ ऊँचा।

कराल²—संज्ञा पुं० १ राल मिला हुआ तेल। गर्जन तेल। २ दाँत का एक रोग जिसमे दाँतो में वडी पीडा होती है और वे ऊँचे नीचे और वेडौल हो जाते हैं।

करालमंच—संज्ञा पुं० [सं० करालमञ्च] सगीत मे एक ताल का नाम।

विशेप—इसमे तीन आघात और दो खाली होते हैं। इसके पखावज के वोल ये हैं—+ १०२० + घा केटे खुता केटेताग् गदि घेने नागदेत। घा।

कराला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल। सारिवा। भीषण या भयकर रूपवाली। २ दुर्गा। चडी (को०)।

करालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष। २. तलवार (को०)।

करालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। चडी।

कराली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं मे से एक।

कराली²—वि० डरावनी। भयावनी। उ०—परम कराली दूसरी लववान जिन केश। सहसन महा पिशाचिका देखि परी तेहि देश।—रघुराज (शब्द०)।

कराव—संज्ञा पुं० [हिं० करका] १ एक प्रकार का विवाह या सगाई। वैठावा। २ विधवा स्त्री से किया जानेवाला विवाह।

करावना—क्रि० स० [हिं० कराना] दे० 'करवाना'। उ०—अव ही तो तोसो आगे सेवा करावनी है।—दो सौ वावन०, भाग० १, पृ० २२७।

करावन—वि० [हिं० कराना] करानेवाला। करवानेवाला। उ०—जग जीवन घट घट वसै करन करावन सोय।—केशव० अमी०, पृ० १३।

करावल—संज्ञा पुं० [तु०] १ वे सैनिक या सैनिकों का दस्ता जिसका काम आगे जाकर शत्रुपक्ष के विपय मे सूचना लाना है। २ घुड़सवार। पहरेदार। ३ शिकारी।

करावा—संज्ञा पुं० [हिं० कराव] दे० 'कराव'।

कराह¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० करना + आह] वह शब्द जो व्यथा के समय प्राणी के मुँह से निकलता है। पीड़ा का शब्द। जैसे,—आह! ऊह! इत्यादि। उ०—या रोगी की तरह कराह कराहकर दिन विताते हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५४।

मुहा०—कराह उठना = दुःख या पीड़ा की गहरी अनुभूति प्रकट करना। अत्यधिक व्यवस्थित होना। उ०—भरी वासना सरिता का वह, कैसा था मदमत्त प्रवाह, प्रलय जलधि मे सगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।—कामायनी, पृ० १०।

कराह²(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कड़ाह'।

कराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कराहना] कराहने का भाव या क्रिया। कराह। उ०—इसी कराहट को कला मे लपेटकर दर्द भरे सगीत का रूप देना चाहते हैं।—वो दुनिया, प्रा०,

कराहत—संज्ञा स्त्री० [अ०] नफरत। घृणा।

कराहना—क्रि० अ० [हिं० कराह से नामिक धा०] व्यथा सूचक शब्द मुँह से निकालना। क्लेश या पीडा का शब्द मुँह से निकालना। आह आह करना। उ०—मरी डरी कि टरी व्यथा कहा खरी चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अव मुख आहि न आहि।—विहारी (शब्द०)।

कराहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कराह] दे० 'कड़ाहा'।

कराही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कराह का स्त्री०] दे० 'कड़ाही'। उ०—

हुए भूरा होता है और इसकी गरदन के नीचे का भाग सफेद होता है। यद्यपि संस्कृत कोषों मे 'कनाकुर' और 'क्रौंच' दोनो एक नही माने गए हैं तथापि अधिकाश लोग 'करांकुल' को ही 'क्रौंच' पक्षी मानते हैं।

करौंत—सज्ञा पुं०[सं० करपत्र, प्रा० करत्त] लकडी चीरने का आरा।

करौंती—सज्ञा पु० [हिं० करौंत] करौंत या आरा चलानेवाला।

करा(पु)[1]—सज्ञा स्त्री० [स० कला] दे० कला'। उ०—(क) कीन्हेसि पुरुप एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनो करा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुम हुत भयो पतग की करा। सिंहल दीप आय उडि परा।—जायसी (शब्द०)।

करा[2]—सज्ञा स्त्री० [?]सौरी या सवरी नाम की मछली जिसका मास खाया जाता है।

करा[3]†—सज्ञा पुं० [देश०] १ सन या मूँज का रेशा। २ दूब दल।

कराइत—सज्ञा पु० [स० किरात हिं० कारा, काला] एक प्रकार का काला साँप जो बहुत विषैला होता है।

कराइन†—सज्ञा पु० [हिं० खर+सं० अयन=घर] छप्पर के ऊपर का फूस।

कराई[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० केराना] दाल का छिलका। उर्द, अरहर आदि के उपर की भूसी।

कराई[2]—सज्ञा स्त्री०[हिं० कारा, काला]कालापन। श्यामता। उ०—मुख मुरली सिर मोर पखौआ वन वन धेनु चराई। जे जमुना जल रग रँगे हैं ते अजहूँ नहि तजत कराई।—सूर (शब्द०)।

कराई[3]—सज्ञा स्त्री०[हिं० करना] १ कराने या करने का भाव। २ करने या कराने की मजदूरी।

कराकुल—सज्ञा पुं०[स० कलाङ्कुर]दे० 'करॉकुल'। उ०— कोउ तलही मुर्गावी, कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६।

कराग(पु)—सज्ञा पुं० [स० कराग्र] कराग्र। हाथ। उ०—वधिया कराग खग वाहते, रूक जाग चतुरगिणी।—रा० रू०, पृ० ८५।

कराघात—सज्ञा पुं० [स०] हाथ का आघात। हाथ का प्रहार। उ०—एक लहर आ मेरे उर मे मधुर कराघातो से देगी खोल हृदय का तेरा चिर परिचित वह द्वार।—अनामिका, पृ० ३५।

कराड—सज्ञा पुं० [सं० क्रयार=खरीदनेवाला अथवा स० किराट] १ महाजन।—(हिं०)। २ वनियो की एक जाति जो पजाव के उत्तरपश्चिम भाग मे मिलती है। ये लोग महाजनी का व्यवसाय करते हैं।

कराडना(पु)—क्रि० अ०[सं० कराल] ऊँची आवाज मे बोलना। जोर से वोलना। उ०—करहा लव करांडिया वे वे अगुल कन्न। राति ज चीन्हो वेलडी, तिण लाखीणा पन्न।—ढोला०, दू० ४१३।

करात[1]—सज्ञा पुं० [अ० कीरात]एक तौल जो चार जौ की होती है।

विशेप—यह प्राय सोना, चाँदी या दवा तौलने के काम मे आती है। इसका वजन लगभग साढे तीन ग्रेन होता है।

करात[2]—सज्ञा स्त्री० [अ० कैरट] दे० 'कैरट'।

कराना—क्रि० स० [हिं० करना का प्रे० रूप] करने मे लगाना। कुछ करने के लिये उत्प्रेरित करना।

करावत—संज्ञा स्त्री० [अ० करावत] १ नजदीकी। समीपता। २ नाता। रिश्ता। रिश्तेदारी। संवध।

करावतदार—वि० [अ० करावत+फा० दार] रिश्तेदार। संबंधी।

करावतदारी—सज्ञा स्त्री० [अ० करावत+फा० दार+ई (प्रत्य०)] रिश्तेदारी। नातेदारी। अपनायत। संवध।

करावा—सज्ञा पु० [अ० करावा, सं० करका, हिं० करवा] शीशे का वडा वरतन जिसमें अर्क इत्यादि रखते हैं। काँच का छोटे मुँह का पात्र। शीशे की सुराही।

कराम(पु)—सज्ञा पु० [स० कर्म] दे० 'कर्म'। उ०—नामु दाम इस्नानु अरु काम। तिस मिलै पदारथ जिस लिखिया कराम।—प्राण०, पृ० १५३।

करामत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ प्रतिष्ठा। २ कृपा। ३ चमत्कार। ४ वुजुर्गी। ५ वडाई।

करामन कातवीन—सज्ञा पु० [अ० किरामा कातवीन] इस्लामी धर्म के अनुसार वे दैवी व्यक्ति जो लोगो के पुण्य या पाप कर्मों का लेखा जोखा तैयार करते हैं। उ०—करामन कातवीन की पुस्तक मे लिखा है कि इसराकील सदैव दुखी रहता है।—कवीर म०, पृ० २२०।

करामात—सज्ञा स्त्री० [अ० करामत' का वहु०] चमत्कार। अद्भुत व्यापार। करश्मा। जैसे,—वावा जी, कुछ करामात दिखाओ।

करामाति(पु)—वि०[हिं० करामाती]दे० 'करामाती'। उ०—दुहूँ करामाति सम गनो, आप और हम्मीर।—हम्मीर रा०, पृ० ६५।

करामाती—वि०[हिं० करामात+ई (प्रत्य०)]१ करामात दिखानेवाला। करश्मा दिखानेवाला। सिद्ध। २ करामत से सवधित। उ०—कई योगियो के साथ ख्वाजा मुइनुद्दीन का भी ऐसा ही करामाती दगल कहा जाता है।—इतिहास, पृ० १५।

करायजा†—सज्ञा पुं० [स० कुटज] १ कोरैया। २. इद्रजवा।

करायल[1]†—सज्ञा स्त्री० [स० काला] कलौंजी। मँगरैला।

करायल[2]—सज्ञा पुं० [स० कराल] तेल मिली हुई राल।

करायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पक्षी। सारस का एक छोटा प्रकार [को०]।

करार[1]—सज्ञा पुं० [सं० कराल=ऊँचा। हिं० = कट=कटना+स० आर=किनारा] नदी का ऊँचा किनारा जो जल के काटने से वनता है।

करार[2]—सज्ञा पुं० [अ० करार] १. स्थिरता। ठहराव।

क्रि० प्र०—पाना। —देना। —होना।

२ धैर्य। धीरज। [illegible] संतोप। उ०—अव दिन को करार [illegible] ।० २ पृ० ८८। ३ आराम। चैन। [illegible] दिन को नही करार। जल्दी मेरे रास्ते [illegible] भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ७[illegible] [illegible]।

करसमा(पु)—संज्ञा पुं० [फा० करिश्मह्] दे० 'करश्मा'। उ०—मुकामी सैन समभावें। करसमा देख दरसावें।—संत तुरसी०, पृ० ३६।

करसाइल(पु) - संज्ञा पुं० [हिं० करसायल] दे० 'करसायल' करसायर'।

करसाद—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ की दुबलता। २ किरणो का मंद पड़ना (को०)।

करसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कृषाण] किसान। खेतिहर। उ०—कुरुक्षेत्र सब मेदिनी खेत करै करसान। मोह मृगा सब चरि गया आस न रहि खलिहान।—कबीर (शब्द०)।

करसायर, करसायल—संज्ञा पुं० [सं० कृष्णसार] काला मृग। काला हिरण। उ०—घायल ह्वै करसायल ज्यो मृग ज्यों उतही उतरायल घूमे।—(शब्द०)।

करसी—संज्ञा स्त्री० [सं० करीष] १ उपले या कडे का टुकड़ा। उपलों का चूर। कडो की भूसी या कुनाई। कडे की कोर। २ कडा। उपला। उ०—सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे। गनिका गीध बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—करसी लेना=उपले या कडे की आग में शरीर को सिझाने का तप करना। उ०—सिर करवत तन करसी लै लै बहु सीझे तेहि आस। बहुत धूम घूँटत मैं देखे उतरु न देइ निरास।—जायसी ग्र० (गुप्त), १९६।

करसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह का कंगन (को०)।

करस्पर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे उत्प्लुत करण के ३६ भेदो मे से एक जिसमे गर्दन नीची करके उछलते तथा धरती पर गिर और कुक्कुट आसन रच दोनो हाथों को उलट देते हैं।

करस्थाली—संज्ञा पुं० [सं० करस्थालिन्] शिव (को०)।

करस्वन—संज्ञा पुं० [सं०] करताली। हाथ की ताली (को०)।

करहच(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० करहस] दे० 'करहस'।

करहत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० करहस] दे० 'करहस'।

करहज—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद मे नगण, सगण और एक लघु (न स ल अर्थात् ।।।+।।ऽ+।) होता है। इसी को करहस वीरवर या करहच भी कहते हैं। उ०—निसि लघु गुपाल। ससिहि मम बाल। लखत अरि कस। नचत करहस।

करहंज—संज्ञा पुं० [सं० कर+खञ्ज] खेत मे अनाज (अलसी, चना, मूँग, उरद आदि) का वह पौधा जो अधिक जोरदार जमीन मे पड़ने के कारण बड़ तो बहुत जाता है, पर जिसमे दाना बहुत कम पड़ता है।

करह(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० करभ] ऊँट। उ०—दादू करह पलाणि करि को चेतन चढ़ि जाइ। मिलि साहिब दिन देखतां साँझ पड़ै जिनि आइ।—दादू (शब्द०)। (ख) बन ते भगि बिहड़ै परा करहा अपनी बानि। बेदन करह कासों कहे को करहा को जानि।—कबीर (शब्द०)। (ग) ऊमर सुणि सुभ बीनती, दउडि म मार तुरंग। करहउ लंघियउ, कूटियउ, पाडायत बहुरंग।—ढोला०, दू० ६८७।

करह[2]—संज्ञा पुं० [कलि] फूल की कली। उ०—बाल विभूषन लसत पाइ मृदु मंजुल अंग विभाग। दसरथ सुकृत मनोहर निरखनि रूप करह जनु लाग।—तुलसी (शब्द०)।

करह कटग—संज्ञा पुं० [सं० देश०] गढ़ करग। यह अकबर के समय मे सूबा मालवा के १२ सरकारों मे से एक था।

करहनी(पु) संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन मे तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनो तक रहता है।

करहल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं करह] ऊँट। उ०—आँब कै बौरे चरहल करहल निबिया छोलि छोलि खाई।—कबीर ग्र०, पृ० १४८।

करहा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद सिरिस का वृक्ष।

करहा[2]—संज्ञा पुं० [सं० करभ] दे० 'करह'। उ०—द्वै घर चढ़ि गयो राँड को करहा।—कबीर ग्र०, पृ० ११२।

करहाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल।

करहाट—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की जड़। भसीड। मुरार। २ कमल का छत्ता। कमल की छतरी। उ०—अगद कूदि गए जहँ आसनगत लंकेश। मनु हाटक करहाट पर शोभित श्यामल वेश।—केशव (शब्द)। ३. मैनफल।

करहाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की मोटी जड। भसीँड। मुरार। २ कमल का छत्ता। कमल के फूल के भीतर की छतरी जो पहले पीली होती है, फिर बढ़ने पर हरी हो जाती है। उ०—(क) सुंदर मंदिर मे मन मोहति। स्वर्ण सिंहासन ऊपर सोहति। पंकज के करहाटक मानहु। है कमला विमला यह जानहु।—केशव (शब्द०)। (ख) सुंदर सेत सरोरुह मे करहाटक हाटक की दुति को है।—केशव (शब्द०)। ३. मैनफल।

करही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दाना जो पीटने के बाद बाल में लगा रह जाता है। उ०—कहुँ करही उबलत, सूखत, महजूम बनत कहूँ पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४। २ शीशम की तरह का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते शीशम के पत्तो से दूने बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत भारी होती और प्रायः इमारत के काम मे आती है।

करागण—संज्ञा पुं० [सं० कराङ्गण] १ बाजार। मेला। २ कर या चुंगी इकट्ठी करने का स्थान (को०)।

कराँ(पु) -संज्ञा पुं० [सं० कला] दे० 'कला'। उ०—कुँवर बतीसौ लक्खना सहस करा जस भान।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३०६।

कराँकुल—संज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर] पानी के किनारे की एक बड़ी चिड़िया। कूँज। पनकुकड़ी। क्रौंच। उ—(क) तहँ तमसा के विपुल पुलिन मे लख्यो करांकुल जोरा। विहरत मिथुन भाव महँ अति रत करत मनोहर शोरा।—रघुराज (शब्द०)। (ख) तहँ विचरत बन महँ मुनिराई। युगल करांकुल परे दिखाई।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इस चिड़िया के झुंड ठंडे पहाड़ी देशों से जाड़े के दिनो मे आते हैं। यह 'करं करं' शब्द करती हुई पंक्ति बाँधकर आकाश मे उड़ती है। इसका रंग स्याही और कुछ सुर्खी लिए

करवानक—संज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] चटक पक्षी। गौरैया। उ०—सारस से सूवा, करवानक से साहजादे, मोर से मुगुल मीर धीर ही धचै नहीं।—भूषण (शब्द०)।

करवाना- क्रि० स० [हिं० करना का प्रे० रूप] करने में लगाना। दूसरे को करने में प्रवृत्त करना।

करवार(पु)— संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] तलवार। उ०—फूले फदकत लै फरी पल कटाछ करवार। करत बचावत विय नयन पायक घाय हजार।—विहारी (शब्द०)।

करवाल—संज्ञा पुं० [सं० करवाल] १ नख। नाखून। २ तलवार।

करवालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०]छोटा डंडा। यष्टि। लगुड। दंड (को०)।

करवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] छोटी तलवार। कराली। उ०—कर करवाली सोह जथा काली विकराली।- गोपाल(शब्द०)।

करवावना—क्रि० स० [हिं० करवाना] दे० 'करवाना'। उ०—श्री ठाकुर जी को अपने कार्यार्थ श्रम नाहीं करवावनो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३१।

करवी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पशुओं का चारा। उ० —सारा गाँव सोता था पर सुजान करवी काट रहे थे।—मान०, भा० ५, पृ० १८५।

विशेष—यह प्राय ज्वार बाजरे के हरे या सूखे पौधों की होती है।

करवीर, करवीरक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कनेर का पेड। २ तलवार। खग। ३ श्मशान। ४ ब्रह्मावर्त देश में दृशद्वती के किनारे की एक प्राचीन राजधानी। ५ चेदि देश का एक नगर जहाँ के राजा शृगाल ने कृष्ण और बलराम को उस समय रोका था, जब वे जरासंध के भागने पर करवीर की ओर ससैन्य जा रहे थे।

करवीराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] खर राक्षस का एक सेनापति जिसे रामचद्र ने मारा था।

करवील†—संज्ञा पुं० [सं० करीर] करील। टेंटी का पेड़। कचड़ा।

करवैया(पु)†—वि० [हिं० करना+वैया (प्रत्य०)] करनेवाला।

करवोटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिडिया का नाम। उ०—करवोटी बागवगी नाक वासा वेसर दै श्यामा बया कूर ना गरूर गहियतु है (चिडिमारिन)।—रघुनाथ (शब्द०)।

करशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगली।

करशू—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय पर होनेवाला एक बड़ा सदाबहार पेड।

विशेष—यह अफगानिस्तान से लेकर भूटान तक होता है। इसकी लकडी बहुत दिनों तक रहती है और बड़ी मजबूत होती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम मे आती हैं। इसपर चीनी रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं।

करशूक—संज्ञा पुं० [सं०] नख। नाखून (को०)।

करश्मा—संज्ञा पुं० [फा० किरिश्मह्] चमत्कार। अद्भुत व्यापार। करामात।

करष[1]- संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] १. खिंचाव। मनमोटाव। अकस। तनाजा। तनाव। द्रोह। उ०—कत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू।—तुलसी (शब्द०)। २ क्रोध। अमर्ष। ताव। लडाई का जोश। उ०—बातहिं बात करष बढि आई। जुगुज अतुल बल पुनि तरुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

करष[2](पु)—संज्ञा पुं० [अ० कलक] दुख। व्यथा। उ०—सुण वाणी तन करष मिटे सह छक वंदे मन हरष छया।—रघु० रू०, पृ० ६८।

करषक(पु)--संज्ञा पुं० [सं० कर्षक] खेती से जीविका करनेवाला। किसान। खेतिहर। उ०--गइ बरषा करषक बिकन सूखत सालि सुनाज।—तुलसी ग्र०, पृ० ६७१।

करषना—क्रि० स० [सं० कर्षण] १ खींचना। तानना। घसीटना। उ०-(क) बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परी सरीर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुर तरु सुमन माल सुर बरषहिं।—मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी।—तुलसी (शब्द०)। २ सोख लेना। सुखाना। जज्ब करना। उ०—कोइ सिरजै पालै सहारै। कोइ बरषै करषै कोइ जारै।—रघुनाथ (शब्द०)। ३ बुलाना। निमंत्रित करना। आकर्षण करना। समेटना। इकट्ठा करना। बटोरना। उ०—सुनि वसुदेव देवकी हरषे। गोद लगाइ सकल सुख करषे —(शब्द०)।

करषा(पु) – संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] १ उत्तेजना। बढावा। उ०—(क) एकहि एक बढ़ावहिं करषा। —मानस, ३। १६१। (ख) करषा तजिकै परुषा बरषा हित मारुत घाम सदा सहिकै।—(शब्द०)। २ क्रोध। अमर्ष। ताव। लडाई का जोश।

करषेव(पु)—वि० [सं० कृश+इव] कृश। दुर्बल। कमजोर।

करसंपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथों की अंजलि। २ हाथ जोड़कर विनय करने की मुद्रा। उ०—सिर नाइ देव मनाय सब सन कहत करसपुट किएँ।— मानस, २। ३२६।

करसण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्षण] कृषि। खेती। उ०—ढ़ाठी एक सँदेशड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ। कण पाकउ करसण हुवउ भोग लियउ घरि आइ।—ढोला०, दू० १२१।

करसण†—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० कृष्ण'।

करसना(पु)--क्रि० स० [सं० कर्षण] दे० 'करसना'। उ०—या पर कृष्न चरन परसिहैं। इत तें अहि दुष्टहि करसिहैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २७६।

करसनी- संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह समस्त उत्तर भारत मे होती है। इसकी पत्तियाँ २-३ इंच लंबी होती हैं जिनपर भूरे रंग के रोएँ होते हैं। यह फरवरी और मार्च मे फूलती है। इसके पके फलों के रंग से एक प्रकार की बैंगनी स्याही बनती है। इसकी जड़ और पत्तियाँ दवा के काम आती हैं। इसको हीर भी कहते हैं।

कटि कटि मेखला समरपित क्रिसा अग मापित करल ।—वेलि०, दू० ६६ ।

करलव(पु)--सज्ञा पुं० [सं० कलरव] दे० 'कलरव' । उ०—कूँझडियाँ करलव कियउ, घरि पाछिले वरणेहि । सूती साजण सभरचा, द्रह भरिया नयणेहि ।—ढोला०, दू० ५४ ।

करला(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कल्ला] दे० 'कल्ला' ।

करली(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० करील] कल्ला । कोमल पत्ता । कनखा । उ०—वही भाँति पलही सुख बारी । उठी करलि नइ कोप सँवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

करलुरा—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काँटेदार लता जिसमे सफेद और गुलाबी फूल लगते हैं ।

विशेष—यह समस्त भारत मे पाई जाती है और फरवरी से मई तक फूलती तथा अगस्त सितवर मे फलती है । इसका फूल सुर्खी लिए भूरे रग का होता है और उसका अचार पडता हैं । हाथी इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ वडी रुचि से खाते हैं ।

करवँट—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो अवध, वगाल, दक्षिण और लका मे पाई जाती है ।

विशेष—इसमे ४-५ इच लवी पत्तियाँ लगती हैं और पीले फूल होते हैं । इसकी डाल छाजन या दौरियाँ वनाने के काम मे आती है ।

करवँदा(पु)--सज्ञा पुं० [सं० करमर्द] दे० 'करौदा' । उ०—वैर करवँदे हुँस सिहोर अनास ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७५ ।

करवट¹—सज्ञा स्त्री०[सं० करवर्त, प्रा० करवट्ट] हाथ के वल लेटने की मुद्रा । वह स्थिति जो पार्श्व के वल लेटने से हो । उ०—गइ मुरछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह । सचिव राम आगमन कहि विनय समय सम कीन्ह ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—फिरना ।—फेरना ।—वदलना ।—लेना ।

मुहा—करवट वदलना=(१) दूसरी ओर घूमकर लेटना । (२) पलटा खाना । और का और कर वैठना । (३) एक ओर से दूसरी ओर जाना । एक पक्ष छोडकर दूसरे पक्ष मे हो जाना । करवट लेना=(१)दूसरी ओर फिर कर लेटना । मुँह फेरना । पीठ फेरना । (२) और का और हो जाना । पलट जाना । (३) वेरुख होना । फिर जाना । विमुख होना । करवट खाना या होना=(१) उलट जाना । फिर जाना । (२) जहाज का किनारे लग जाना । (३) जहाज का टेढ़ा होना वा झुक जाना ।—(लश०) । करवट न लेना=किसी कर्तव्य का ध्यान न रखना । दम न लेना । साँस न लेना । सन्नाटा खीचना । जैसे,—इतने दिन रुपए लिए हो गए, अवतक करवट न ली । करवटें वदलना=वार वार पहलू वदलना । विस्तर पर वेचैन रहना । तडपना । विकल रहना । करवटो मे काटना=सोने का समय व्याकुलता मे विताना ।

करवट²—सज्ञा पुं०[सं० करपत्र, प्रा० करवत्त]१ एक दाँतेदार औजार जिससे वढई वडी वडी लकडियाँ चीरते हैं । करवत । आरा । २ पहले प्रयाग, काशी आदि स्थानो मे आरे वा चक्र रहते थे जिनके नीचे लोग फल की आशा से, प्राण देते थे, ऐसे आरे वा चक्र को 'करवट' कहते थे, जैसे, 'काशीकरवट' ।

मुहा०—करवट लेना=करवट के नीचे सिर कटाना । उ०—तिल भर मछली खाइ जो कोटि गऊ दे दान । काशी करवट लै मरै तौ हू नरक निदान ।—(शब्द०) ।

करवट³—सज्ञा पु०[देश०]एक प्रकार का वडा वृक्ष । जसूँद । नताउल ।

विशेष—इसका गोद जहरीला होता है और जिसमे तीर जहरीले करने के लिये वुझाए जाते हैं ।

करवट्ट(पु)—सज्ञा पुं०[सं० करपत्र, प्रा० करवत अथवा हिं० करवट] दे० 'करवट²'। उ०—गारी मति दीजो मो गरीविनी को जायो है । काशी करवट्ट लीनो द्रव्य हू लुटायो है ।—(शब्द०) ।

करवत—सज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] एक दाँतेदार औजार जिससे लकडी काटी जाती है । आरा । उ०—दादू सिरि करवत वहै, विसरै आतम राम ।—दादू०, पृ० ५२ ।

करवर(पु)†—सज्ञा स्त्री० [देश०] अलप । घात । विपत्ति । औचट । आफत । सकट । आपत्ति । कठिनाई । मुसीवत । जानजोखिम । उ०—(क) ईश अनेक करवरै टारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) क्यो मारीच सुवाहु महावल प्रवल ताडका मारी । मुनि प्रसाद मेरे राम लखन की विधि वडि करवरै टारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) कुँवरि सों कहति वृषभानु घरनी । वडी करवर टरी साँप सो ऊवरी, वात के कहत तोहि लगति जरनी ।—सूर (शब्द०) । (घ) वूझहु जाय तात सों वात । जव ते जनम भयो हरि तेरो कितने करवर टरे कन्हाई । सूर स्याम कुल देवनि तोको जहाँ तहाँ करि लिए सहाई ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि०प्र०—टलना ।—पडना ।

करवरना(पु)—क्रि० अ० [सं० कलरव, हिं० करवर, कलवल]कलरव या शोर करना । चहकार करना । चहकना । उ०—सारी सुआ जो रहचह करही । कुरहि परेवा औ करवरही ।—जायसी (शब्द०) ।

करवल—सज्ञा स्त्री० [देश०] जस्ता मिली हुई चाँदी । वह चाँदी जिसमे रुपए मे दो आने भर जस्ता मिला हो ।

करवा¹—सज्ञा पुं०[स० करक]१ धातु या मिट्टी का टोटीदार लोटा । वधना । उ०—इक हाथ करवा दुसर हाथ रसरी त्रिकुटी महल की डगरी पकरी ।—कवीर श०, भा० ३, पृ० ४० । २ जहाज मे लगाने की लोहे की कोनिया या घोडिया । —(लश०) ।

करवा²—सज्ञा पुं० [सं० कर्क=केकड़ा] एक प्रकार की मछली जो पंजाव, वगाल तथा दक्खिन की नदियो में पाई जाती है ।

करवा³(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कारा+वा (प्रत्य०)] श्याम रगवाला अर्थात् कृष्ण । उ०—मन लगाई प्रीति कीजै कर करवा सो व्रज वीथिन दीजै सोहनी ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १९६ ।

करवागौर—सज्ञा स्त्री० [हिं० करवा+गौर] दे० 'करवा चौथ' ।

करवाचौथ--सज्ञा स्त्री० [सं० करका चतुर्थी] कार्तिक कृष्ण चतुर्थी ।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ सौभाग्य आदि के लिये गौरी का व्रत करती हैं और सायकाल मिट्टी के करवे से चद्रमा को अर्घ्य देती हैं तथा पकवान के साथ करवे का दान करती हैं ।

करमाला†—संज्ञा पुं० [देश०] अमलतास ।

करमाली—संज्ञा पुं० [सं० करमालिन्] सूर्य । उ०—दीनदयाल दया कर देवा । करें मुनि मनुज सुरासुर सेवा । हिम तम करिकेहरि करमाली । दलन दोष दुख दुरित रुजाली ।—तुलसी (शब्द०)।

करमियां†—वि० [सं० कर्म+हिं० इया (प्रत्य०)] १ कर्मी । २ कर्मण्य ।

करमी—वि० [हिं० कर्मी] १ कर्म करनेवाला । २ कर्मठ । कर्मरत । उ०—महा कुटिल बड करमी गूहिया, ताते नरक अघोर बडपरिया ।—कबीर सा०, पृ० ४९६ ।

करमुँहा(पु)†—वि० [हिं० काला+मुँह]१ काले मुँहवाला । उ०—जरी लगूर सु राती उहां । निकसि जो भाग गए करमुँहा । —जायसी (शब्द०) । २ कलकी ।

करमुक्त[१]—वि० [सं०] कर से विमुक्त । जिसे या जिसपर कर न चुकाना पड [को०]।

करमुक्त[२]—संज्ञा पुं० फेंक कर प्रहार के काम आनेवाला हथियार [को०] ।

करमुखा(पु)—वि० [हिं० काला+मुख] [स्त्री० करमुखी] काले मुँहवाला । कलंकी । उ०—(क) सुरुज के दुख जो ससि होइ दुखी । सो कित दुख मानै करमुखी ।—जायसी (शब्द०) । (ख)कित करमुखे नयन भै हरा जीव जेहि बाट । सरवर नीर बिछोह ज्यों, तडक तडक हिय फाट ।—जायसी (शब्द०) ।

करमूल—संज्ञा पुं० [सं० कर+मूल] कलाई [को०]।

करमूली—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड ।

विशेष—यह गढवाल और कुमाऊँ मे अधिक होता है । इसकी लकडी कड़ी और ललाई लिए हुए भूरे रग को तथा वजन मे प्रति घनफुट २२ सेर के लगभग होती है । यह इमारतो मे लगती है और खेती के औजार बनाने के भी काम आती है । पहाडी लोग इस लकडी के कटोरे भी बनाते हैं ।

करमेस—संज्ञा पुं० [देश०] करगह की एक लकडी । कुलवाँसा । कुलर । अमैर । सुत्तुर ।

विशेष—यह ऊपर की ओर बँधी रहती है । इसी मे दो नचनियाँ लटकती हैं जो कंघियो की कांडी से बँधी रहती हैं । इन नचनियो को पैर से दबाकर जुलाहे ताने का सूत ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर किया करते हैं ।

करमैत(पु)—वि० [हिं० करम+ऐत (प्रत्य०)] उत्कृष्ट कर्म करनेवाला । उ०—हरनाथ जसो करमैत कुल, वयण लखे वध वविकयो —रा० रू०, पृ० १५७ ।

करमैती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० करम+ऐत (प्रत्य०)] कृष्ण की एक उपासिका भक्तिन जो शेखावती नगरी के राजा के पुरोहित परशुराम की कन्या थी ।

करमैल†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तोता ।

विशेष—यह साधारण तोते से कुछ बडा होता है । इसके परों पर लाल दाग होते हैं ।

करमोद—संज्ञा पुं०[सं० मोद+कर ?]एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है ।

करर—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक जहरीला कीडा जिसके शरीर मे वहुत सी गाँठें होती हैं । २ रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद । ३ एक प्रकार का जगली कुसुम वा बर्रे का पौधा ।

विशेष—यह उत्तरपश्चिम मे पजाब, पेशावर, आदि सूखे स्थानो मे बहुत होता है । जहाँ यह अधिक होता है वहाँ इसके बीज का तेल निकाला जाता है जो पोली का तेल कहलाता है । अफरीदियो का मोमजामा इसी तेल से बनाया जाता है । इसमे फूल बहुत अधिकता से लगते हैं । इसकी लकडी बहुत मुलायम होती है । इसकी टहनियाँ और पत्तियाँ चारे के काम मे आती हैं ।

कररना, कररानां(पु)—क्रि० अ० [अनु०] १. चरमराकर टूटना । मरमराकर टूटना । २ कर्णकटु शब्द करना । कर्कश शब्द बोलना । उ०—मधुर वचन कटु बोलिवो बिनु श्रम भाग ।—अभाग । कुहु कुहू कलकठ रव का का कररत काग ।—तुलसी (शब्द०) ।

करारा—संज्ञा पुं० [फा० गर्रा] गिराव । छर्रा । उ०—छींटैं छिरकत अग रग के उठत भभूके । मनमथगोलदाज मनों सो करारा फूके ।—व्रज० ग्रं०, पृ० २० ।

कररान(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] धनुष चलाने का शब्द । धनुष की टंकार । उ०—कररान धनुष सुन्नी । मरमरान वीर दुन्नी । —सूदन (शब्द०) ।

करारी[१]—संज्ञा पुं० [सं० कर्बुर] वनतुलसी । बबरी । ममरी । उ० — ऊधो तनिक सुयश श्रौनन सुन । कंचन कांच, कपूर करारि रस, सम दुख सुख, गुन औगुन ।—सूर (शब्द०) ।

करारी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० कुररी] बटेर की जाति की एक प्रकार की चिडिया ।

विशेष—यह साधारण बटेर से कुछ बडी और बहुत सुदर होती है । यह हिमालय में प्राय इसी जगह पाई जाती है । इसकी खाल का बहुत बडा व्यापार होता है ।

कररुह—संज्ञा पुं०[सं०] नख । नाखून ।

कररेचकरत्न—संज्ञा पुं०[सं०] नृत्य मे ५१ प्रकार के चालको या हाथ घमाने फिराने की मुद्राओ मे से एक जो बहुत कठिन समझी जाती है ।

विशेष—इसमे दोनो हाथो को कमर पर रख स्वस्तिक कर माथे पर ले जाते हैं तथा हाथो को मडलाकार करते हुए ऊपर लाते हैं । फिर एक हाथ नितब पर रखकर दूसरे हाथ को पहिए की तरह घुमाते हुए दोनो हाथो को झुलाते हैं और सिर सरल उतारी करके सीधा फैलाते हैं । फिर उद्वेष्ठित, प्रसारित आदि कई प्रकार के कंधो के पास दोनो हाथ घुमाते हैं । इसी प्रकार की और बहुत सी क्रियाएँ करते हैं ।

करल[१](पु)—संज्ञा पुं०[सं० कटाह] कडाह । कडाही । उ०—करल चढ़ै तेहि पाकहि पूरी । मूठी माँझ रहै सो जूरी ।—जायसी (शब्द०) ।

करल[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० करग्र] मुष्टि । उ०—(क) तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा त्रिवीह । ढोला थांकी मारुइ जाँणि बिलूछउ सीह ।—ढोला०, दू० ४५६ । (ख) स्यामा

करभोरु[2]—वि० जिसकी जाँघ हाथी की सूँड की सी मोटी हो। जिसकी जाँघ सुदर हो। सुदर जाँघवाली।

करम[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] १ कर्म। काम। करनी।

यौ०—करमभोग=अपने कर्मों का फल। वह दुःख जो अपने किए हुए कर्मों के कारण हो। करम धरम=आचार व्यवहार। उ०—जिसे अपने करम धरम की बातें कम मालूम थीं।—किन्नर०, पृ० १८।

मुहा०—करम भोगना=अपने किए का फल पाना।

२ कर्म का फल। भाग्य। किस्मत।

मुहा०—करम फूटना=भाग्य मद होना। भाग्य बुरा होना। किस्मत खोटी होना। करम टेढ़ा या तिरछा होना=दे० 'करम फूटना।' उ०—पालागौं छाडो अब अचल वार वार अचल करौं तेरी। तिरछे करम भयो पूरव को प्रीतम भयो पाँय की वेरी।—सूर (शब्द०)।

यौ०—करम का धनी या बली=(१)जिसका भाग्य प्रवल हो। भाग्यवान। (२)अभागा। बदकिस्मत—(व्यंग)। करमरेख=भाग्य का लिखा। वह बात जो किस्मत मे लिखी हो।

करम[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १ मिहरबानी। कृपा। उ०—करम उनका मदद जब तें न होवे। वली हरगिज विलायत कूँ न पावे।—दक्खिनी०, पृ० ११४। २ मुर नाम का गोंद या पश्चिमी गुग्गुल जो अरब और अफ्रिका से आता है। इसे 'बदा करम' भी कहते हैं।

करम[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड जो तर जगहों मे, विशेषकर जमुना के पूर्व की ओर, हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

विशेष—इसकी सफेद और खुरदरी छाल आध इच के लगभग मोटी होती है, जिसके भीतर से पीले रग की मजबूत लकडी निकलती है। इस लकडी का वजन प्रति घनफुट १८ से २५ सेर तक होता है। यह लकड़ी इमारतो मे लगती है और मेज, अलमारी आदि असबाव बनाने के काम में आती है। इस पेड को हलदू वा हरदू भी कहते हैं।

करमई—संज्ञा स्त्री० [देश] कचनार की जाति का एक झाड़ीदार पेड।

विशेष—यह दक्षिण मलाबार आदि प्रातो मे होता है। हिमालय की तराई मे गगा से लेकर आसाम तथा बगाल और बरमा में भी यह पाया जाता है। बबई मे इसकी चरपरी पत्तियाँ खाई जाती हैं। अन्य जगह भी इसकी कोंपलो का साग बनता है।

करमकल्ला—संज्ञा पुं० [अ० करम+हिं० कल्ला] एक प्रकार की गोभी जिसमे केवल कोमल कोमल पत्तो का बँधा हुआ संपुट होता है। इन पत्तो की तरकारी होती है। बँधी गोभी। पातगोभी। बदगोभी।

विशेष—यह जाडे मे फूलगोभी के थोड़ा पीछे माघ फागुन मे होता है। चैत मे पत्ते खुल जाते हैं और उनके बीच से एक डठल निकलता है जिसमे सरसो की तरह के फूल और पत्तियाँ लगती हैं। फलियो के भीतर राई के से दाने या बीज निकलते हैं।

करमचद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्म+हिं० चद] कर्म। उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। हमहि दिहल करि कुटिल करमचद मद मोल बिनु डोला रे।—तुलसी (शब्द०)।

करमज(पु)—वि० [सं० कर्मज अथवा हिं० करम+ज=(का)] दे० 'कर्मज'। उ०—संत चरण कर अस परतापा। मेटैं दोष दुख करमज दापा।—कबीर सा०, पृ० ४१०।

करमट्टा—वि० [पुं० कर+हिं० मट्ठा सुस्त या आलसी] कृपण। सूम। कजूस।

करमठ(पु)†—वि० [कर्मठ] १ कर्मनिष्ठ। २ कर्मकांडी। उ०—करमठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो, राम दुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)।

करमता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्म+ता (प्रत्य०)] दे० 'कर्म'। उ०—सकल करमता लाभ यह जीव जडयता माँहि।—रज्जब०, पृ० ६।

करमफरमा—वि० [अ० करम+फा० फर्मा] दयालु। मेहरबान।

करमरत(पु)—वि० [सं० कर्म+रत] कर्मठ। कर्मलीन उ०—विरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीचु।—तुलसी ग्र०, पृ० १०२।

करमरिआ—वि० [पुर्त० कलमरिया] समुद्र मे हवा के गिर जाने से लहरो का शात हो जाना।

करमरी—संज्ञा पुं० [सं० करमरिन्] आजीवन कारावास के लिये दडित बदी [को०]।

करमरेख—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्म+लेख] दे० 'कर्मरेख'। उ०—है करमरेख मूठियो मे ही। बेहतरी बाँह के सहारे है।—चुभते०, पृ० १०।

करमर्द, करमर्दक—संज्ञा पुं०[सं०]१ कराम्ल। आँवला। २ करौंदा।

करमसेंक—संज्ञा पुं० [हिं० कर्म+सेंकना] १ पंचो का हुक्का। बिरादरी का हुक्का। २. कम घी मे पके हुए कडे पराठे जो कठिनता से खाए जायँ।

करमहीन—वि० [सं० कर्म+हीन] दे० 'कर्महीन'। उ०—सकल पदारथ हैं जग माहीं। करमहीन नर पावत नाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

करमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्मा] एक भक्तिन का नाम।

विशेष—इसका मदिर जगन्नाथ जी मे बना है। इसकी खिचड़ी जगन्नाथ जी को भोग लगती है।

करमा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कैमा] दे० 'कैमा'।

करमा[3]—संज्ञा पुं०[देश०] कोल-भीलो के नृत्य एव गान की एक शैली।

करमात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] कर्म। भाग्य। किस्मत। नसीब। उ०—सुनु सजनी मेरी एक बात। तुम तौ अति ही करति बडाई मन मेरो सरमात। मोसो हँसति स्याम तुम एकै यह सुनि कै भरमात। एक अग को पार न पावति चकित होइ भरमात। वह मूरति है नैन हमारे लिखा नहीं करमात।—सूर (शब्द०)।

करमाल—संज्ञा पुं० [सं०] धूआँ [को०]।

करमाला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] उँगलियो के पोर जिनपर उँगली रखकर माला के अभाव मे जप की गिनती करते हैं।

करपा—संज्ञा पुं० [देश०] अनाज के तैयार पौधे जिनमे बाल लगी हो। लेहना। डाँठ।

करपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुग्रहण के लिये गहरी की हुई दोनो हाथो की सयुक्त हथेली [को०]।

करपात्री—वि० [स० करपात्रिन्] अन्न जल आदि के ग्रहण के लिये अजुलि ही जिसका वर्तन हो। विरक्त साधु [को०]।

करपान—संज्ञा पुं० [देश०] एक चर्मरोग जिसमें बच्चो के शरीर पर लाल लाल दाने निकल आते हैं।

करपाल—संज्ञा पुं० [स०] १ खग। २ तलवार। ३. लाठी। ४ गदा [को०]।

करपालिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ लाठी। सोंटा। २ तलवार [को०]।

करपिचकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [स०कर=हाथ+हिं० पिचकी(पिचकारी)] दोनों हाथो के योग से बनाई हुई पिचकारी। उ०—छिडके नाह नवोढ दृग, करपिचकी जल जोर। रोचक रँग लाली भई विय तिय लोचन कोर।—विहारी (शब्द०)।

विशेष—प्राय लोग दोनो हाथो के बीच मे, कई प्रकार से जल भरकर इस प्रकार और ऐसे दबाते हैं कि उसमे से पिचकारी सी छूटती है इसी को करपिचकी कहते हैं।

करपीडन—संज्ञा पुं० [स० करपीडन] पाणिग्रहण। विवाह। उ०—कर-पीड़न-प्रेम याम था। कह, स्वीकार कहूँ कि त्याग था?—साकेत, पृ० ३५८।

करपुट—संज्ञा पुं०[स०]१ समानार्थ हाथ जोडना। २ अजलि। दोनो हथेली मिलाकर किसी वस्तु के ग्रहणार्थ बनाया गड्ढा(को०)।

करपूर(पु)—संज्ञा पुं० [स० कर्पूर] दे० 'कपूर'। उ०—उशिर, गुलाब नीर, करपूर परसत, विरह-अनल-ज्वाल-जालन जगतु है।—नद० ग्र०, पृ० २६५।

करपृष्ठ—संज्ञा पुं० [स०] हथेली के पीछे का भाग।

करफूल—संज्ञा पुं० [हिं० कर+फूल] दे० 'दौना'।

करफ्यू—संज्ञा पुं०[अं० कर्फ्यू] १ घटा वजना जो निश्चित समय पर सायकाल सकेत के लिये बजता था, जिसके कारण रोशनी बुझा दी जाती थी और आग को ढक दिया जाता था। रोशनी बुझा देना। रोशनी की ऐसी व्यवस्था जिससे बाहर या ऊपर से प्रकाश का पता न चले।

विशेष—द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हवाई हमले की आशका के कारण इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी और साइरन बजाकर इसकी सूचना दी जाती थी।

२ विशेष प्रकार की राजकीय निषेधाज्ञा जिसके द्वारा घर से बाहर निकलना या किसी विशेष मार्ग या स्थान पर जाना आदि निषिद्ध होता है। करफ्यू आडर।

यौ०—करफ्यू आर्डर=प्रकाश हीनता का आदेश या करफ्यू की व्यवस्था।

करकचां—संज्ञा पुं० [देश०] बैलो पर लादने का दोहरा। थैला। बुरजी। गौन।

करवर(पु)—संज्ञा पुं० [स० कर्वर] चीता। उ०—डारी सारी नील की ओट अचूक, चुकै न। मो मन मृग करवर गहैं अहे अहेरी नैन।—विहारी र०, दो० ५०।

करवरना(पु)†—क्रि० अ० [स० कलरव] पक्षियो आदि का कलरव करना। उ०—सारो सुआ जो रहचह करहीं। कुरहिं परेवा औ करवरहीं।—जायसी (शब्द०)।

करवराना†—क्रि० अ० [हिं० कलवल से नाम०] हलचल करना। खडवडाना। चचल हो उठना।

करवला—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ अरब का वह उजाड मैदान जहाँ हुसैन मारे गए थे। २ वह स्थान जहाँ ताजिए दफन किए जायँ। ३. वह स्थान जहाँ पानी न मिले।

करवस—संज्ञा पुं० [देश०] दरियाई घोडे के चमडे का बना हुआ एक प्रकार का चाबुक।

विशेष—यह अफ्रिका के सिनार नगर मे बनता है और मिस्र मे बहुत काम में लाया जाता है।

करवाल—संज्ञा पुं० [स०] दे० १ 'करवाल'। २ हाथ की उँगलियो का नख [को०]।

करवी†—संज्ञा स्त्री० [स० खर्व] ज्वार के पेड़ जो काटकर चौपायो को खिलाए जाते हैं। कांटा। उ०—तहँ कढी मगरत्री अरिगन चरत्री चापट करबी सी काटैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० १९२।

करव्वी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० करबी] दे० 'मरवी'। उ०—कहँ सैन चहुवान मानहु करव्वी।—पृ० रासो, पृ० ८४।

करवुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्वुर या कर्बुर] दे० 'कर्बुर'।

करवूम(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की जीन या चारजामे में टँकी हुई रस्सी या तसमा जिसमे हथियार या और कोई चीज लटकाते हैं।

करभ—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० करभी] १ हथेली के पीछे का भाग। करपृष्ठ। २ ऊँट का बच्चा। ३ हाथी का बच्चा। ४ ऊँट। उ०—पच सहस सादी परे, करभ कढ्ढि सत पेत। डेठ अहन रण भुम मह, वही श्रोण मिलि रेत।—पृ० रासो, पृ० १५४। ५ नख नाम की सुगधित वस्तु। ६. कटि। कमर। ७. दोहे के सातवें भेद का नाम जिसमें १६ गुरु और १० लघु होते है। जैसे,—नए पशू तारे पगू सुनी पशुन की वात। मेरी पशुमति देखि कै काहे मोहिं बिनात। ८ कनिष्ठा (छिगुनी) अँगुली से लगाकर उसके नीचे तक हथेली का उभरा भाग (को०)।

करभा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जगली गाना जो प्राय कोल, भील आदि गाते हैं।

करभा[2]—संज्ञा पुं० [स० करभा] दे० 'करभ'। उ०—जानु जंघ, सुघटनि करभा, नहीं रभा तूल। पीत पट काछनी मानहुँ,जलज केसर झूल।—सूर०, १०।१७५५।

करभार—संज्ञा पुं० [स० कर+भार] कर का बोझ। भारी कर।

करभीर—संज्ञा पुं० [स०] सिंह।

करभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ मे पहनने का आभूषण। कडा या ककण जैसा गहना [को०]।

करभोरु[1]—संज्ञा पुं०[स०] हाथी की सूँड जैसा सुडौल जघा। उ०—पृथु नितव करभोरु कमल पद नख मणि चद्र अनूप। मानहु लब्ध भयो वारिज दल इदु किए दश रूप—सूर (शब्द०)।

विशेष—संज्ञा शब्दों के साथ 'करना' लगाने से बहुत सी क्रियाएँ बनती हैं। जैसे,—प्रशंसा करना, सुस्ती करना, अच्छा करना, बुरा करना, ढीला करना। सब भाववाचक और गुणवाचक संज्ञाओं में इसका प्रयोग हो सकता है। पर वस्तु या व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के साथ यह केवल कहीं कहीं लगता है और भिन्न भिन्न अर्थों में। जैसे,—गड्ढा करना, छेद करना, घास करना, दाना पानी करना, लकीर करना।

करनाई—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ करनाय] तुरही।

करनाट—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्णाट] दे॰ 'कर्णाट'। उ॰—करनाट हबस फिरंगहू विलायती बलख रूम अरि तिय छतियाँ दलति हैं।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ ८६।

करनाटक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्णाटक] कर्णाटक नामक देश का एक भाग।

विशेष—यह पूर्वी और पश्चिमी घाटों के बीच, दक्षिण में पालघाट से लगाकर उत्तर में बीदर तक फैला हुआ है। यहाँ प्रायः कन्नड भाषा बोली जाती है। आजकल इस प्रदेश का नाम मैसूर राज्य है।

करनाटकी[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्णाटकी] १ करनाटक प्रदेश का निवासी। २ कलाबाज। कसरत दिखानेवाला मनुष्य। ३ जादूगर। इंद्रजाली। उ॰—करनाटकी हाटकी सुंदर सभा तुरत बनाई। ढोल बजाय बखानि भूप कँह दिय आवर्त लगाई।—(शब्द॰)।

करनाटकी[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कर्णाटकी] करनाटक प्रदेश की भाषा। कन्नड भाषा।

करनाटी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्णाटी] दे॰ 'कर्णाटी'। उ॰—करनाटी, हंसावती, पदमावती, ससिवृता, इच्छिन पवाँरी, ये पंच पटरानी बुलवाय हजूर लई।—प॰ रासो पृ॰ ५५।

करनाल—संज्ञा पुं॰ [अ॰ करनाय] १. सिंघा। नरसिंहा। भोंपा। धूतू। उ॰—कहूँ भरे करनाल बीना मुरारी।—प॰ रासो, पृ॰ १७६। २ एक बड़ा ढोल जो गाड़ी पर लदकर चलता है। ३ एक प्रकार की तोप। उ॰—(क) भेजना है भेजो सो रिसालैं सिवराज जू की बाजी करनालैं परनालैं पर आयकै।—भूषण (शब्द॰)। (ख) तिमि घरनाल और करनालैं सुतरनाल जजालैं। गुरगुराव रहँकले तहँ लाये विपुल बयालैं।—रघुराज (शब्द॰)। ४ पंजाब का एक नगर।

करनास†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] दे॰ 'कटनास'। नीलकंठ पक्षी। उ॰—बहु करनास रहहिं तेहि पासा। देखि सो सगुन भाग जेहि बासा।—चित्रा॰, पृ॰ ६३।

करनि(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ करिणी] दे॰ 'करिनी'। उ॰—वारुनी बस घूर्न लोचन विहरत बन सचुपाए। मनहुँ महा गजराज विराजत, करनि जूथ सँग लाए।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ २५७।

करनिका(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कर्णिका] दे॰ 'कर्णिका'। उ॰—सोहत सब नैं सन्मुख ऐसें। कमल के बीच करनिका जैसे,—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २६४।

करनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ करना से व्यु॰] १ कार्य। कर्म। करतूत। करतब। उ॰—(क) करनी बयारी बोय कर, रहनी कर रखवार।—कबीर श॰, पृ॰ २१। (ख) देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत। प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत।—सूर (शब्द॰)। (ग) अपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।—तुलसी (शब्द॰)। २ मृतक क्रिया। अंत्येष्टि कर्म। मृतक संस्कार। उ॰—पितु हित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।—तुलसी (शब्द॰)। ३ मेमारों या कारीगरों का लोहे का एक औजार जिससे वे दीवार पर पलस्तर या गारा लगाते हैं। कन्नी। ४ विवाह में कन्या के निमित्त दी हुई संपत्ति।

करनैल—संज्ञा पुं॰ [अं॰ कर्नल] सेना का एक उच्च कर्मचारी। फौज का एक बड़ा अफसर।

करन्न(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कर्ण, प्रा॰ कण्ण, (पु) करन] दे॰ 'कर्ण'। उ॰—द्रोन सो भाऊ, करन्न करन्न सो, और नवै दल सो दल भार्‌यो।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ ६।

करन्नफूल(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ करनफूल] दे॰ 'करनफूल'। उ॰—करन्नफूल राजय, उनै कि भांन साजय।—हम्मीर रा॰, पृ॰ २४।

करन्नी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ करनी] दे॰ 'करनी'। उ॰—हुँहुँ सकर भैरव की करन्नी।—हम्मीर रा॰ पृ॰ ८५।

करन्यास—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मंत्रों को पढ़ते हुए दोनों हाथों द्वारा विशेष प्रकार की मुद्रा रचना। उ॰—नहिं संध्या सूत्र न करन्यास। नहिं होम न यज्ञ न व्रत उपास।—सुंदर ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ७८।

करपंकज, करपद्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰ करपङ्कज, करपद्म] दे॰ 'करकमल' (को॰)।

करपत्र, करपत्रक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आरा (को॰)।

करपना—क्रि॰ अ॰ [देश॰] पल्लवित होना। बढ़ना। लहलहाना।

करपर[1](पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कर्पर] खोपड़ी।

करपर[2](पु)—वि॰ [सं॰ कृपण] कंजूस।

करपरी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] पीठी की पकौड़ी। बरी। उ॰—भई मुगौछैं मिरचहिं परी। कीन्ह मुँगौरा औ करपरी।—जायसी (शब्द॰)।

करपलई(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ करपल्लवी] दे॰ 'करपल्लवी'।

करपल्लव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उँगली।

करपल्लवी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] उँगलियों के संकेत से शब्दों को प्रकट करने की विद्या।

विशेष—इस विद्या का सूत्र यह है—अहिफन, कमल, चक्र, टकार तरु, पर्वत, यौवन, शृंगार। अँगुरिन अच्छर, चुटकिन, मत्र। कहैं राम बूझें हनुमंत। जैसे,—कमल का आकार दिखाने से कवर्ग का ग्रहण होता है। उसके बाद एक उँगली दिखाने से 'क', दो से ख, इसी प्रकार और अक्षर समझ लिए जाते हैं।

करपल्लौ(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ करपल्लव] दे॰ 'करपल्लव'। उ॰—दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहाँ। दीन्हेसि करपल्लौ, बर बाहाँ।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ ४।

करघनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि+आधानी, अथवा सं० किङ्किणी] १. सोने या चाँदी का कमर में पहनने का एक गहना जो या तो सिकड़ी के रूप में होता है या घुँघरूदार होता है। अब घुँघरूवाली करधनी केवल बच्चों को पहनाई जाती है। तागड़ी। २. कई लड़ों का सूत जो कमर में पहना जाता है।

मुहा०—करधन टूटना = (१) सामर्थ्य न रहना। साहस छूटना। हिम्मत न रहना। (२) धन का बल न रहना। दरिद्र होना। करधन में बूता होना = कमर में ताकत होना। शरीर में बल होना। पौरुष होना।

करधनी[2]—संज्ञा पुं० [सं० कला+धान्य, हिं० *कल+धनी > करधनी] एक प्रकार का मोटा धान जिसके ऊपर का छिलका काला और चावल का रंग कुछ लाल होता है।

करधर[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर = वर्षोपल+धर = धारण करनेवाला] बादल। मेघ। उ०—करधर,की धरमैर सखी री,को सुक सीपज की वगपगति की मयूर की पीड पखी री।—सूर (शब्द०)।

करधर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] महुवे के फल की रोटी। महुअरी।

करन[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक ओषधि। जरिश्क।

विशेष—यह स्वाद में कुछ खटमिट्ठी होती है और प्राय चटनी आदि में डाली जाती है। यह दस्तावर भी है। यह रेचन के ओषधों में भी दी जाती है।

करन[2](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ कान। उ०—करन कटुक वटु वचन विसिष सम हिय हुए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४। २ राजा कर्ण। उ०—करन पास लीन्हेउ कै छदू। विप्र रूप धरि झिलमिल इदू।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—करन का पहरा = प्रभात या प्रातःकाल का समय,जो राजा कर्ण के पहरा देने का समय माना जाता है।

३ नाव का पतवार।

करन[3](पु)— वि० [सं० करण] करनेवाला। उ०—मर्जो श्री वल्लभ-सुत के चरन। नदकुमार भजन सुखदाइक, पतितन पावन करन।—नद० ग्रं०, पृ० ३२९।

करनधार(पु)—संज्ञा पुं०[सं० कर्णधार] दे० 'कर्णधार'।

करनफूल—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण+हिं० फूल] स्त्रियों के कान में पहनने का सोने चाँदी का एक गहना। तरौना। कौंप।

विशेष—यह फूल के आकार का बनाया जाता है और कान की लौ में बड़ा सा छेद करके पहना जाता है। करनफूल सादा भी होता है और जड़ाऊ भी।

करनवेध—संज्ञा पुं० [सं० कर्णवेध] बच्चों के कान छेदने का सस्कार अथवा रीति। उ०—करनवेध उपवीत विवाहा। सग सग सव भयउ उछाहा।

करना[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] एक पौधा। सुदर्शन। उ०—(क)मौल-सिरी बेइलि औ करना। सबै फूल फूले बहुबरना।—जायसी ग्र ०, पृ० १३। (ख) करना के करनफूल करन बीच धारे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४०।

विशेष—इसके पत्ते केवड़े के पत्ते की तरह लंबे लंबे पर बिना काँटे के होते हैं। इसमें सफेद सफेद फूल लगते हैं जिनमें हलकी मीठी महक होती है।

करना[2](पु)— संज्ञा पुं०[सं० करुण]बिजौरे की तरह का एक बड़ा नीबू।

विशेष—यह कुछ लंबोतरा होता है। इसे पहाड़ी नीबू भी कहते हैं। वैद्यक में इसको कफ,वायुनाशक और पित्तवर्धक बताया है।

करना[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० करण] किया हुआ काम। करनी। करतूत। उ०—अति अपार करता कर करना। बरन न कोई पावै बरना।—जायसी (शब्द०)।

करना[4]—क्रि० स० [सं० करण] १ किसी काम को चलाना। किसी क्रिया को समाप्ति की ओर ले जाना। निबटाना। भुगताना। सपराना। अमल में लाना। अजाम देना। सपादित करना। जैसे —यह काम चटपट कर डालो।

सयो०क्रि०—आना।—छोड़ना।—जाना।—डालना।—देखना।—दिखाना।—देना।—धरना।—पाना।—बैठना—रखना।—लाना।—लेना।

२ पकाकर तैयार करना। राँधना। जैसे, रसोई करना, दाल करना, रोटी करना।

विशेष—इसका प्रयोग ऐसी सज्ञाओं के साथ ही होता है जो तैयार की हुई वस्तुओं के नाम है, प्राकृत पदार्थों के नामों के साथ नहीं जैसे, दूध करना, पानी करना कोई नहीं कहता।

३ ले जाना। पहुँचाना। रखना। जैसे,—(क) इस किताब को जरा पीछे कर दो। (ख) इनको इनके बाप के यहाँ कर आओ। ४ धारण करना। उ०—कंबु कठ कौस्तुभ मनि धरे। सख चक्र आयुध कर करे।—नद० ग्र ०, पृ० २६७।

मुहा०—किसी वस्तु मे करना = किसी वस्तु मे घुसाना। डालना। जैसे,—तलवार म्यान मे कर लो। कर गुजरना = विलक्षण या साहसिक कार्य कर डालना।

५ पति या पत्नी रूप से ग्रहण करना। खसम या जोरू बनाना। जैसे,—उस स्त्री ने दूसरा कर लिया। ६ रोजगार खोलना। व्यवसाय खोलना। जैसे,—दलाली करना, दूकान करना, प्रेस करना।

विशेष—वस्तुवाचक सज्ञा के साथ इसका प्रयोग इस अर्थ मे दो चार इने गिने शब्दों के साथ ही होता है।

७ सवारी ठहराना। भाड़े पर सवारी लेना। जैसे, गाड़ी करना, नाव करना, पालकी करना। उ०—पैदल मत जाना, रास्ते में एक गाड़ी कर लेना। ८ रोशनी बुझाना। प्रकाश बुझाना। जैसे,—सवेरा हुआ चाहता है, अब दिया कर दो। ९ कोई रूप देना। किसी रूप में लाना। एक रूप से दूसरे रूप मे जाना। बनाना। जैसे,—(क) उन्होंने उस चाँदी के कटोरे को सोना कर दिया। (ख) गधे को मार पीटकर घोड़ा नहीं कर सकते। १० कोई पद देना। बनाना। जैसे,—कलक्टर ने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें तहसीलदार कर दिया। ११ किसी वस्तु को पोतना। जैसे,—स्याही करना, रग करना, चूना करना। १२. पशुओं का वध या जबह करना। जैसे—उसने आज १५ बकरियाँ की हैं। १३ सभोग करना। प्रसग करना।

करतारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० करतारी] दे० 'करताली'।

करताल—संज्ञा पुं० [सं०] १ दोनो हथेलियो के परस्पर आघात का शब्द। २ लकडी, कॉसे आदि का एक बाजा जिसका एक एक जोडा हाथ मे लेकर बजाते हैं। लकडी के करताल मे झाँझ या घुंघरू बँधे रहते हैं। उ०—अनहद बाजे बजे मधुर धुन बिन करताल तँबूरा।—कबीर श०, पृ० ८५। ३. झाँझ। मँजीरा।

करतालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथोडी। थपोडी। ताली [को०]।

करताली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दोनो हथेलियों के परस्पर आघात का शब्द। ताली। हथोडी २ करताल नाम का बाजा।

करती—संज्ञा स्त्री० [सं० कृति] गाय के मरे बछडे का, भूसा भरा हुआ चमडा जो बिल्कुल बछडे के आकार का होता है। इसे गाय के पास ले जाकर अहीर दूध दुहते हैं।

करतूा—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत सींचने की दौरी की रस्सियो के सिर पर लगी हुई लकडी जो हाथ मे रहती है।

करतूत—संज्ञा स्त्री० [हिं० करना+ऊत (प्रत्य०)] [सं० कर्तृत्व] १. कर्म। करनी। काम। जैसे,—यह सब तुम्हारी ही करतूत है। २ कला। गुण। हुनर। उ०—हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३५८।

करतूति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० करना+ऊत, आवत (प्रत्य०)] १ कर्म। करनी। काम। करतब। उ०—सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी।—मानस, १। २९।

क्रि० प्र०—करना।

२. कला। हुनर। गुण। उ०—कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु इतनिय विरंचि करतूती।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—दिखाना।

करतोया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी।

विशेष—यह जलपाईगोडी के जगलों से निकलकर रंगपुर होती हुई, बोगड़ा जिले के दक्षिण हुलहुलिया नदी मे मिलती है। यहाँ से इसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं। फूलझर नाम से एक शाखा अत्राई नदी मे मिलती है। कोई इसी फूलझर को करतोया की धारा मानते हैं। यह नदी बहुत पवित्र मानी गई है। वर्षा मे सब नदियो का अशुचि होना कहा गया है पर यह वर्षा काल मे भी पवित्र मानी गई है. इसी से इसका नाम सदानीरा' या 'सदानीरवहा' भी है। इसके विषय मे यह कथा है कि पार्वती के पाणिग्रहण के समय शिवजी के हाथ से गिरे हुए जल से इसकी उत्पत्ति हुई, इसी से इसका नाम 'करतोया' पड़ा।

करथरा—संज्ञा पुं० [देश०] हाला पहाड का सिलसिला जो सिंधु नदी के पार सिंध और बलूचिस्तान के बीच मे है।

करद¹—वि० [सं०] १. करदेनेवाला। मालगुजार। अधीन। जैसे,—करद राज्य। २ सहारा देनेवाला। उ०—रॉक सिरोमनि काकिनी भाव बिलोकत, लोकप को करदा है।—तुलसी (शब्द०)।

करद²—संज्ञा स्त्री० [फा० कारद] छुरा। चाकू। बड़ा छुरा। उ०—(क) करद मरद को चाहिए जैसी तैसी होय।—(शब्द०)। (ख) गरद भई है वह, दरद बतावै कौन, सरद मयक मारी करद करेजे मे।—बेनी प्रवीन (शब्द०)।

करद³—संज्ञा पुं० [सं०] १ मालगुजारी देनेवाला किसान।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो किसान मालगुजारी देते हो, उनको हलके सुधरे हुए खेत खेती करने के लिये दिए जायँ बिना सुधरे खेत उनको न दिए जायँ। जो खेती न करें, उनके खेत छीन लिए जायँ। गाँव के नौकर या बनिए उसपर खेती करें। खेती न करनेवाला सरकारी नुकसान दें। जो लोग सुगमता से कर दे दें, राजा उनको धान्य, पशु, हल आदि की सहायता दे।

२. कर देनेवाला राजा या राज्य। ३ वह घर जिसका राज्य को कर मिले।—(को०)।

करदम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम] दे० 'कर्दम'।

करदल, करदला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और कुछ पीलीपन लिए हुए होती है। इसकी टहनियो के सिरे पर छोटी छोटी पत्तियों के गुच्छे होते हैं। पतझड के बाद नई पत्तियाँ निकलने से पहले इसमे पीले रग के फूल लगते हैं जिनके बीच मे दो दो बीज होते हैं। हिमालय मे यह वृक्ष पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह मार्च अप्रैल मे फूलता है और इसके बीज खाए जाते हैं।

करदा—संज्ञा पुं० [हिं० गर्द] १ बिक्री की वस्तु मे मिला हुआ कूडा करकट या खूदखाद। जैसे, अनाज मे धूल, बरतन मे लगी हुई लाख। जैसे,—अनाज मे से इतना तो करदा गया।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

२ किसी वस्तु के बिकने के समय उसमे मिले हुए कूडे करकट का कुछ दाम कम करके या माल अधिक देकर पूरी करना।

क्रि० प्र०—काटना।—देना।

३ दाम मे वह कमी जो किसी वस्तु बिकने के समय उसमे मिले कूडे करकट आदि का वजन निकाल देने के कारण की जाय। धडा। कटौती।

क्रि० प्र०—कटना।—काटना।—देना।

४ पुरानी वस्तुओ को नई वस्तुओ से बदलने मे जो और धन ऊपर से दिया जाय। बदलाई। बट्टा। फेरवट। बाध।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्राय बरतनों को बदलने मे होता है।

करदाता—संज्ञा पुं० [सं० करदातृ] कर देनेवाला [को०]।

करदौना—संज्ञा पुं०[सं० कर+हिं० दौना] दौना नामक पौधा जिसकी पत्तियाँ तक सुगधित होती हैं।

करधई—संज्ञा स्त्री० [देश०] झाडीदार वृक्षविशेष। उ०—पहाडी के ऊपर करधई की घनी हलकी कत्थई रग की झाडी थी।—मृग०, पृ० ५०।

करधनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करधनी] दे० 'करधनी'।

विशेष—इसके चार भेद हैं—आवेष्ठित, उद्वेष्ठित, व्यावर्तित और परिवर्तित। जिसमें तिरछे फैले हुए हाथ की उँगलियां तर्जनी से आरभ कर एक एक करके हथेली में लगाते हुए हाथ को छाती की ओर लाएँ, उसे आवेष्ठित कहते हैं। जिसमे इसी प्रकार एक एक उँगली उठाते हुए हाथ को लाएँ उसे उद्वेष्ठित कहते हैं। जिसमें तिरछे फैले हाथ की उँगलियां कनिष्ठिका से आरभ कर एक एक करके हथेली मे मिलाते हुए छाती की ओर लाएँ, उसे व्यावर्तित कहते हैं और जिसमे इसी प्रकार उँगलियां उठाते हुए हाथ को लाएँ उसे परिवर्तित कहते हैं।

११. गणित (ज्योतिष) की एक क्रिया। १२. एक जाति।

विशेष—ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार करण वैश्य और शूद्रा से उत्पन्न हैं और लिखने का काम करते थे। तिरहुत में अब भी करण पाए जाते हैं।

१३. कायस्थो का एक अवातर भेद। १४. आसाम, बरमा और स्याम की एक जगली जाति। १५ वह सख्या जिसका पूरा पूरा वर्गमूल निकल सके। करणीगत संख्या। १६. देह (को०)। १७. क्षेत्र (को०)। १८. लिखित या लेख प्रमाण (को०)। १९. परमात्मा (को०)। २०. एक रतिबध (को०)। २१. धार्मिक कृत्य (को०)। २२ कारण। उद्देश्य (को०)। २३. उच्चारण (को०)। २४. करणी का कार्य या प्रयोग (को०)। २५. वराह मिहिर की एक कृति जिसमे ग्रहों की गति का विवेचन है (को०)।

यौ०—करणग्राम = इंद्रियसमूह। करणत्राण = सिर। करण विभक्ति = करण कारक का सूचक पद। करणविन्यय = उच्चारण की पद्धति।

करण[2]—वि० [स०] करनेवाला। उ०—दादू दुख दूरि करण, दूजा नहिं कोइ।—दादू०, पृ० ५३।

करण[3]ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ कान। उ०—अभु शासन गुण करौं करणालवित आज।—केशव (शब्द०)। २ कौरव पक्ष के एक महारथी जो कुती की कुमारी अवस्था मे उत्पन्न माने जाते है। कर्ण। उ०—मारयो करण गगसुत द्रौना। सबको मारि कियो दल सूना।—कबीर सा०, पृ० ५०।

करणाधिप—सज्ञा पु० [स०] १ करण अर्थात् इंद्रियों का स्वामी। मन। आत्मा। २ कार्याधिकारी [को०]।

करणाल†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'करनाल'। उ०—बीद चढ़े जी मे वलां, वज करणाल सुवेस।—रघु० रू०, पृ० ६४।

करणि—सज्ञा स्त्री० [स०] कार्य। कर्तृत्व। करनी। करतूत [को०]।

करणी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गणित मे वह संख्या जिसका पूरा पूरा वर्गमूल न निकल सके। वाहियात सख्या। २. मिश्रित अर्थात् दोगली जाति की स्त्री [को०]।

यौ०—करणीसुता = गोद ली हुई लडकी।

करणी[2]—वि० [सं० करणिन्] करणवाला। करण सहित।

करणीगर—सज्ञा पु० [सं० करणि + फा० गर] कार्यकर्ता। कर्ता। उ०—करणीगर तैं क्या किया, ऐसा तेरा नाम।—दादु ग्र०, पृ० ११७।

करणीय—वि० [स०] करने योग्य। करने के लायक। कर्तव्य।

करतव—संज्ञा पुं० [स० कर्तव्य] [वि० करतवी] १. कार्य। काम। करनी। करतूत। कर्म। उ०—(क) वचन विकार करतवऊ खुआर मन विगत विचार कलिमल को निधान है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जे जनमे कलिकाल कराला। करतव वायस, वेष मराला।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

२. कला। हुनर। गुण।

क्रि० प्र०—दिखाना। उ०—देखिए, अब क्या तमाशा होगा, कौन सा करतव दिखाया जाएगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६।

३. करामात। जादू।

करतविया—वि० [हिं० करतव + इया (प्रत्य०)] दे० 'करतवी'।

करतवी—वि० [हिं० करतव + ई (प्रत्य०)] १. काम करने वाला। पुरुषार्थी। २. निपुण। गुणी। ३. करामात दिखानेवाला। बाजीगर।

करतरीⓤ - सज्ञा स्त्री० [स० कर्तरी] दे० 'कर्तरी'।

करतल—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री० करतली] १. हाथ की गदोरी। हथेली। उ०—घटवहन से स्कध नत थे और करतल लाल। उठ रहा था श्वासगति से वक्षदेश विशाल।—शकु०, पृ० ७।

यौ०—करतलगत।

२ मात्रिक गणो में चार मात्राओं के गण (डगण) का एक रूप जिसमे प्रथम दो मात्राएँ लघु और अत मे एक गुरु होती है। जैसे, हरि जू। ३ छप्पय के एक भेद का नाम।

करतलध्वनि— सज्ञा स्त्री०[सं० करतल + ध्वनि] थपोड़ी। ताली[को०]।

करतली[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हथेली। २. हथेली का शब्द। ताली।

करतली[2]—सज्ञा स्त्री० [देश०] बैलगाड़ी मे हांकनेवाले के बैठने की जगह।

करतव्यⓤ†- -सज्ञा पुं० [स० कर्तव्य] दे० 'कर्तव्य'।

करता[1]— सज्ञा पु० [स० कर्ता] दे० 'कर्ता'। उ०—वा करता को सेइए, जिन सृष्टि उपाई।—धरम०, पृ० १०।

यौ०—करताखानदान = परिवार का प्रधान प्रबधक पुरुष। करता धरता = सस्था या कुटुब का प्रधान प्रबधसचालक।

करता[2]—सज्ञा पुं० १ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण मे एक नगण और एक लघु गुरु होता है। उ०—न लग मना। अधम जना। सिय भरता। जग करता। २. उतनी दूरी जहांतक बदूक से छूटी हुई गोली जा सकती है। गोली का टप्पा या पल्ला।

करतार[1]—सज्ञा पु० [सं० कर्तार] सृष्टि करनेवाला। ईश्वर। उ०—जड चेतन गुन दोष मय विस्व कीन्ह करतार। सत हस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार।—तुलसी (शब्द०)।

करतार[2]—सज्ञा पुं० [स० करताल] दे० 'करताल'।

करतारी[1]—सज्ञा स्त्री० [हिं० करतार] ईश्वर की लीला। उ०—केशव और की और भई गति, जानि न जाय कछू करतारी।—केशव (शब्द०)।

करग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पति। २ कर वसूल करनेवाला [को०]।

करघा—संज्ञा पुं० [फा० कारगाह] दे० 'करगह'।

करचग—संज्ञा पुं० [हिं० कर+चग] ताल देने का एक बाजा। एक प्रकार का डफ या बडी खँजरी जिसपर लावनीबाज प्राय ठेका देते हैं।

करच—क्रि० वि० [फा० किर्च] टुकडे टुकड़े। खड खड। उ०—(क) करच करच टुटि फुटि गयो ऐसें। हर सर हत्यो त्रिपुर रिपु जैसें।—नंद० ग्र०, पृ० २४२। (ख) करच करच ह्वै गयो लिलार। मुखतें चली रुधिर की धार।—नंद० ग्र०, पृ० २६८।

करछा¹—संज्ञा पुं० [सं० कर+√रक्षा] [स्त्री० करछी] बडी करछी।

करछा²—संज्ञा पुं० [हिं० करौंछा = काला] एक प्रकार की चिडिया। दे० 'करछिया'।

करछाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कर+उछाल] उछाल। छलाँग। कुलाँग। चौकडी। कुदान। कुलाँच। फलाँग।

करछिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० करौंछा+काला] पानी के किनारे रहनेवाली एक पहाडी चिडिया।

विशेष—यह हिमालय पर काश्मीर, नेपाल आदि प्रदेशों में होती हैं। जाड़े के दिनो मे यह मैदानो मे भी उतर आती है और पानी के किनारे दिखाई पड़ती है। यह पानी मे तैरती और गोता लगाती है। इसके पजों मे आधी ही दूर तक झिल्ली रहती है जिससे वस्तुओं को पकड़ भी सकती है। इसका शिकार किया जाता है, पर इसका मास अच्छा नही होता।

करछी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कलछी'।

करछुल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कलछी'।

करछुला—संज्ञा पुं० १. दे० 'कलछी'। २ भडभूजों की बडी कलछी जिसमे हाथ डेढ़ हाथ लबा लकड़ी का बेंट लगा रहता है और जिसमे चरवन भूनते समय उसमें गरम बालू डालते हैं।

करछुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० करछुल] दे० 'कलछी'।

करछैयाँ—वि० [हिं० काली+छाया] श्यामवर्ण। काले रग की आभा लिए हुए।

करछौंहा—वि० [हिं० करछा+औंहा (प्रत्य०)] दे० 'कलझँवाँ'। श्यामाभ। काली आभावाला। थोड़ा साँवले रगवाला। उ०—दमक रही उजियारी छाती, करछौंहे पर। श्याम घनो से झलक रही बिजली क्षण क्षण पर।—ग्राम्या, पृ० ७४।

करज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नख। नाखून। २. उँगली। उ०—(१) सिय अदेश जानि सूरज प्रभु लियो करज की कोर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ ज्यो तारागन भोर।—सूर (शब्द०)। (ख) करज मुद्रिका, कर ककन छवि, कटि किंकिन, नूपुर पग भ्राजत। नख सिख काति विलोकि सखी री शशि अरु भानु मगन तनु लाजत।—सूर (शब्द०)। ३ नख नामक सुगधित द्रव्य। ४. करज। कजा।

करज²—संज्ञा पुं० [अ० कर्ज] दे० 'कर्ज'। उ०—लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस लागा।—घट०, पृ० २७५।

करजदार—वि० [अ० कर्ज+फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'कर्जदार'। उ०—ससार में किसी करजदार को करज उतारने की सामर्थ्य नही होती तो वो साहूकार की दृष्टि बचाकर परदेश जाने का विचार करता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १४३।

करजोडी—संज्ञा स्त्री० [सं० करज्योडि] एक प्रकार की ओषधि जो पारा बाँधने के काम में आती है। हस्तजोडी। हत्याजडी। वि० दे० 'हत्था जडी'।

करज्योडि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम। करजोडी [को०]।

करट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौआ। उ०—कटु कुठाव करटा रटहिं फेकरहिं फेरु कुभाँति। नीच निसाचर मीचु बस अनी मोह मदमाँति।—तुलसी (शब्द०)। २. हाथी की कनपटी। हाथी का गडस्थल। ३. कुसुम का पौधा। ४ एकादशाहादि श्राद्ध। ५ दुर्दुरूढ। नास्तिक। ६. क्षुद्र या तुच्छ मनुष्य (को०)। ७. एक प्रकार का बाजा (को०)। ८ अधम ब्राह्मण (को०)।

करटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौआ। २ कर्णीरथ जिन्होने चोरी की कला और उसके शास्त्र का प्रवर्तन किया।

करटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठिनाई से दुही जानेवाली गाय। २ हाथी का गंडस्थल (को०)।

करटी—संज्ञा पुं० [सं० करटिन्] हाथी। उ०—मधुकर कुल करटीनि के कपोलनि तें उडि उड़ि पियत अमृत उडपति मैं।—मतिराम (शब्द०)।

करटु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस पक्षी। करकटिया [को०]।

करड करड—संज्ञा पुं० [अनु०] १ किसी वस्तु के बार बार टूटने या चिटकने का शब्द। २. दाँतो के नीचे पडकर बार बार टूटने का शब्द। जैसे,—कुत्ता करड करड करके हड्डी चबा रहा है।

करडा—वि० [हिं० कर्रा, कड़ड़ा] दे० कडा'। उ०—(क) दूजी दिस ताकें नही, पडै जो करडा काम।—दरिया० बानी, पृ० १२।

करण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याकरण में वह कारक जिसके द्वारा कर्ता क्रिया को सिद्ध करता है। जैसे—छडी से साँप मारो। इस उदाहरण में 'छडी' 'मारने' का साधक है, अत उसमे करण का चिह्न 'से' लगाया गया है। २. हथियार। औजार। ३. इंद्रिय। उ०—विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक से एक सचेता।—तुलसी (शब्द०)। ४ देह। ५ क्रिया। कार्य। उ०—कारण करण दयालु दयानिधि निज भय दीन डरे।—सूर (शब्द०)। ६. स्थान। ७ हेतु। ८. असाधारण कारण। ९. ज्योतिष में तिथियो का एक विभाग।

विशेष—एक एक तिथि में दो दो करण होते हैं। करण ग्यारह हैं जिनके नाम ये हैं—वव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, किंतुघ्न और नाग। इनके देवता यथाक्रम ये हैं—इंद्र, कमलज, मित्र, अर्यमा, भू, श्री, यम, कलि, वृष, फणी, मारुत। शुक्ल प्रतिप्रदा के शेषार्ध से कृष्ण चतुर्दशी के प्रथमार्ध तक वव आदि प्रथम सात करणों की आठ आवृत्तियाँ होती हैं। फिर कृष्ण चतुर्दशी के शेषार्ध से शुक्ल प्रतिप्रदा के प्रथमार्ध तक शेष चार करण होते हैं। १० नृत्य मे हाथ हिलाकर भाव बताने की क्रिया।

करकर[2]—वि० [हि० करकरा] १ दे० 'करकरा'। २ दे० 'करकट'। उ०—उसमें दुर्गंध से भरा हुआ कूड़ा करकर देखा।—कवीर म०, पृ० २५६।

करकरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर्क रेटु] एक प्रकार का सारस जिसका पेट तथा नीचे का भाग काला होता है और जिसके सिर पर एक चोटी होती है। करकटिया।

विशेष—इसका कंठ काला होता है और बाकी शरीर करज के रंग का खाकी होता है। इसकी पूँछ एक बित्ते की तथा टेढी होती है।

करकरा—वि० [सं० कर्कर] [स्त्री० करकरी] छूने मे जिसके रवे या कण उँगलियों में गड़ें। खुरखुरा। उ०—बालू जैसी करकरी उज्जल जैसी धूप। ऐसी मीठी कछु नहीं जैसी मीठी चूप।—कवीर (शब्द०)।

करकराता—वि०[हि० कड़कड़ाना]खुरखुरा। माडी इत्यादि से जिसमे करकराहट आ गई हो। उ०—आप लोगो के समान परम प्रियतम सफेद करकराता डुपट्टा ओढ़नेवाली अनाथ बाला ने ही सिखलाए होंगे।—भारतदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५४।

करकराना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [हि० कटकट] कटकटाना। उ०—डाबउ करेबउ करकरइ।—बी० रासो, पृ० ५६।

करकराना[2]—क्रि० अ० [हि० कडकड़ाना=अत्यंत कड़ा या कठोर होना] प्रचंड होना। कठोर होना। उ०—पास जाकर उनसे कहा अब रियासत नहीं है। अंग्रेजी करकरा उठी है। ठिकाने से काम करो, नहीं तो खाल टूटती फिरेगी।—झाँसी०, पृ० १८०।

करकराहट—संज्ञा पुं०[हि० करकरा+आहट (प्रत्य०)] १. कड़ापन। खुरखुराहट। २ आँख मे किरकिरी पड़ने की सी पीडा।

करकल†—संज्ञा पुं० [हि० करकट] १. कूडा। कतवार। २. किरकिरी। कन।

करकलश—संज्ञा पुं० [सं०] अंजलि [को०]।

करकसⓅ—वि० [सं० कर्कश] दे० 'कर्कश'।

करका—संज्ञा पुं० [सं०] ओला। वर्षा का पत्थर।

करकाघन—संज्ञा पुं० [सं० करका+घन] ओले बरसानेवाले बादल। उ०—'आह! घिरेगी हृदय लहलहे खेतो पर करकाघन सी। छिपी रहेगी अंतरतम मे, सबके तू निगूढ़ धन सी।—कामायनी पृ० ६।

करकायु—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम।

करकोटका—संज्ञा पुं० [सं० कर्कोटक] दे० 'कर्कोटक'।—प्रा० भा० प०, पृ० १६५।

करकोष—संज्ञा पुं० [सं० कर+कोष] अंजलि। चुल्लू [को०]।

करक्कना[1]Ⓟ†—क्रि० अ० [हि० करकना] दे० 'कड़कना'। उ०—धरक्कै धरत्नी करक्कै सुसोष।—प० रा०, पृ० ८५।

करक्कना[2]Ⓟ—क्रि० अ० [हि० करकना] दे० 'करकना'। उ०—भोरा भ्रमग लग्यो रहसि। काम करक्कै प्रानियौ।—पृ० रा०, ११९२०।

करखना[1]†—क्रि० अ०[सं० कर्षण]आवेश या जोश मे आना। उ०—ता दिन अखिल खलभलै खल खलक मैं, जा दिन सिवा जी गाजी नेक करखत हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० ४२।

करखना[2]†—क्रि० स० [सं० कर्षण] खींचना। आकर्षण करना। उ०—बहुरि निरखि रघुवरहि प्रेम मन करखइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२।

करखा[1]—संज्ञा पुं० [सं० कड़खा] १ दे० 'कड़खा'। २ एक छद जिसके प्रत्येक पद मे ८, १२, ८ और ६ के विराम से ३७ मात्राएँ होती हैं और अंत मे यगण होता है। उ०—नमो नरसिंह बलवंत प्रभु, संत हित काज, अवतार धारो। खंभ तें निकसि, भू हिरनकश्यप पटक, झटक दै नखन सो, उर बिदारो।

करखा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ष] १ उत्तेजना। बढ़ावा। २ रणगीत। उ०—जहँ आँगरे करखा कहैं। अति उँमगि आनंद को लहैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८। ३. लागडाँट। ताव। उ०—नैननि होड बदी बरखा सों। राति दिवस बरसत झर लाये दिन दूना करखा सों - सूर (शब्द०)। (ख) भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावहिं करषा।—तुलसी (शब्द०)।

करखा[3]†—संज्ञा पुं० [हि० कालिख] दे० 'कालिख'।

करगत—वि० [सं० कर+गत] हाथ मे रखा हुआ। हस्तगत। प्राप्त। प्रस्तुत। उ०—करगत वेदतत्व सब तोरे।—मानस, १। ४५।

करगता—संज्ञा पुं०[सं० कटि+गता] १ सोने या चाँदी की करधनी। २. सूत की करधनी। कटिसूत्र [को०]।

करगस[1]—संज्ञा पुं० [फा०] गिद्ध।

करगस[2]—संज्ञा पुं० [देश०] तीर। उ०—करगस सम दुर्जन वचन, रहै संत जन टारि।—कवीर सा०, पृ० ५०।

करगहⓅ—संज्ञा पुं० [फा० कारगाह] १ जुलाहों के कारखाने की वह नीची जगह जिसमें जुलाहे पैर लटकाकर बैठते हैं और कपड़ा बुनते हैं। २ जुलाहो का कपड़ा बुनने का यंत्र। ३. जुलाहों का कारखाना। उ०—करगह छोड तमाशे जाय। नाहक चोट जुलाहे खाय।—(शब्द०)।

करगहना—संज्ञा पुं० [सं० कर+हि० गहना] पत्थर या लकड़ी जिसे खिडकी या दरवाजा बनाने मे चौखटे के ऊपर रखकर आगे जोड़ाई करते हैं। भरेठा।

करगही—संज्ञा स्त्री० [हि० कारा, काला+अग] एक मोटा जडहन धान जो अगहन मे तैयार होता है।

करगी—संज्ञा स्त्री० [हि० कर+गहना] १. चीनी के कारखाने मे साफ की हुई चीनी बटोरने को खुरचनी। Ⓟ† २ बाढ। बूड़ा। उ०—राही ने पिपराही बही। करगी आवत काहु न कही।—जायसी (शब्द०)।

करगⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कराग्र] हथेली। हाथ। उ०—फेरे बग तुरंग री, तोले धग्ग करग्ग।—रा० रू०, पृ० ३२।

करग्रह—संज्ञा पुं० [सं०]१ पाणिग्रहण। ब्याह। २ कर वसूल करना या लगाना (को०)।

करग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'करग्रह' [को०]।

भूसी अलग करके भूनकर पीसते थे और उसको सत्तू एव दही मे मिलाकर नमक भोज्य पदार्थ बनाते थे। —हिंदु० सभ्यता, पृ० ८०।

करभक—संज्ञा पुं० [सं० करम्भक] १ दलिया। २. दही मे सना हुआ सत्तू [को०]।

करभका—संज्ञा स्त्री० [सं० करभका] १ सत्त। २ दही में सना सत्तू। ३ अनेक उपभाषाओं मे लिखित प्रलेख [को०]।

करभा—संज्ञा स्त्री० [स० करम्भा] १ शतावरी। २ दही मथने का पात्र [को०]।

करँही—संज्ञा स्त्री० [सं० कर+हिं० गहना] मोचियो या चमारो का एक हाथ लंबा, ६ अंगुल चौड़ा और ३ अंगुल मोटा एक औजार जिसपर जूता सिया जाता है।

कर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ।

मुहा०—कर गहना=(१) हाथ पकड़ना। (२) पाणिग्रहण या विवाह करना। कर मलना=हाथ मलना। पश्चाताप करना उ०— ननद देखि कै रहहि रिसाइ। तव चलिहहु कर मलि पछिताय।—जग० श०, पृ० ७०। २ हाथी की सूँड। ३ सूर्य या चद्रमा की किरण। ४ ओला। पत्थर। ५ प्रजा के उपार्जित धन मे से राजा का भाग। मालगुजारी। महसूल। टैक्स।

क्रि० प्र०—चुकना।—चुकाना।—देना।—बांधना।—लगना। —लगाना।—लेना।

६ करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

विशेष——इस अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्दो में होता है,। जैसे —कल्याणकर, सुखकर, स्वास्थ्यकर इत्यादि।

७ छल। युक्ति। पाखड। जैसे,—कर, वल, छन। उ०—कीरतन करत कर सपनेहू मयुरादास न मडियो।—नाभा (शब्द०)।

कर[2] —प्रत्य० [सं० कृत] का। उ०—(क) राम ते अधिक राम कर दासा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई। वह नहिं कीन्ह काहु कर होई।—जायसी ग्रं०, पृ० ३।

करइत[1]†—संज्ञा पु०[देश०]एक तरह का कीडा जो अनुमानतः छह अंगुल लंबा होता है और हवा में उडता है।

करइत[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० करैत] दे० 'करैत'।

करइला†—संज्ञा पुं० [हिं० करेला] दे० 'करेला'। उ०—दूरे पटाइग्र, सींचीग्र नीत। सहज न तेज करइला तीत।—विद्यापति, पृ० ४२३।

करई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० करवा+ई (प्रत्य०)] पानी रखने का एक प्रकार का टोंटीदार बरतन। छोटा करवा।

करई[2]—संज्ञा स्त्री० [स० करक] एक छोटी चिड़िया जो गेहूँ के छोटे छोटे पौधों को काट काटकर गिराया करती है।

करकटक—संज्ञा पुं० [स० करकण्टक] नख। नाखून।

करक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमंडलु। करवा। उ०—कहु मृगचर्म कतहु कोपीना। कहुँ कथा कहु करक नवीना।—श० दि० (शब्द०)। २ दाडिम। अनार। उ०—सहज रूप की राशि नागरी भूषण अधिक विराजै।... नासा नथ मुक्ता बिंबाधर प्रतिबिंबित अनसमूच। वीथ्यो कनकपाश शुक सुंदर करक बीज गहि चूँच।—सूर (शब्द०)। ३ कचनार। ४ पलाश। ५. वकुल। मौलसिरी। ६ करील का पेड़। ७ नारियल की खोपड़ी। ८ ठठरी। ९ हस्त। हाथ (को०)। १० कर। महसूल (को०)। ११ उपल। करका। ओला (को०)। १२ एक पक्षी का नाम (को०)। १३ उच्चघोष। ऊँची ध्वनि(को०)।

करक[2]—संज्ञा पुं० [अ० कलक] १ रुक रुककर होनेवाली पीड़ा। पीडा। व्याकुल। बेचैनी। २ कसक। चिनक। उ०—बावल बैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हाँरी बाँह। मूरख बैद मरम नहिं जाने, करक कलेजे माँह।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ७१।

करक[3]—संज्ञा पुं० [हिं० कडक] १ रुक रुककर और जलन के साथ पेशाब होने का रोग।

क्रि० प्र०—थामना।—पकडना।

२ वह चिह्न जो शरीर पर किसी वस्तु की दाव, रगड या आघात से पड़ जाता है। सॉट। उ०—दिग्गज कमठ कोल सहसानन धरत धरनि धर धीर। बारहिं बार अमरखत करखत करकै परी सरीर।—तुलसी (शब्द०)।

करक[4]†—संज्ञा पुं०[सं० कर्क]दे० 'कर्क'। उ०—दोय सक्रांत का भेद बताई। एक मकर दूजा करक कहाई।—कबीर सा०,पृ०५५६।

करकच[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है। २ टुकडा। खड। उ०—जगमग जगमग करै नग, जौ जराय सग होइ। काच करकचन विच खचे, भलौ कहै नहिं कोइ।—नद ग्रं०, पृ० ११७। ३ गिद्ध। चील।—तिनके तन को करकच छेदैं, बहुत भाँति चोंचन सो भेदैं।—कबीर सा०, पृ० ४६४।

करकच[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग [को०]।

करकचहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।

करकट—संज्ञा पुं० [हिं० खर+स० कट] कूडा। झाडन। बहारन। घास पात। घास फूस। कतवार।

यौ०—कूडा करकट।

करकटिया—संज्ञा स्त्री० [स० कर्करेटु] एक चिडिया। दे० 'करकरा'।

करकना[1]—क्रि० अ० [हिं० कड़क वा करक] किसी कड़ी वस्तु का कर कर शब्द के साथ टूटना। तड़कना। फटना। फूटना। चिटकना। उ०—फरकि फरकि उठैं बाँहैं अस्त्र बाहिबे को करकि करकि उठें करी बरुनर की।—हरिकेस (शब्द०)।

करकना[2]—क्रि० अ०[अ० कलक > हिं० करक से नाम०]रह रहकर दर्द करना। कसकना। सालना। खटकना। उ०—बचन विनीत मधुर रघुवर के। सर सम लगे मातु उर करके। —तुलसी (शब्द०)।

करकनाथ— संज्ञा पु० [सं० कर्करेटु] एक काला पक्षी जिसके विषय मे यह प्रसिद्ध है कि उसकी हड्डियाँ तक काली होती हैं।

करकमल—संज्ञा पुं० [सं०]कमल जैसे, सुंदर एव कोमल हाथ [को०]।

करकर[1]— संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है।

क्रि० प्र०—आना।

२. प्रलय। ३. आफत। विपत्ति। हलचल। खलबली। उपद्रव।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—उठाना।—टूटना।—ढाना।—बरपा करना।—मचना।—मचाना।—लाना।—होना।

मुहा०—कयामत का=(१) गजब का। हद दरजे का। (२) अत्यंत अधिक प्रभाव डालनेवाला। कयामत का सामना होना=भारी संकट आ जाना। उ०—और मैं तो थर थर काँपती थी कि जो कहीं उनको खबर हो गई तो कयामत ही का सामना होगा।—सैर कु०, पृ० १६। कयामत बरपा करना=कयामत ढाना। प्रलय मचाना। आफत लाना। उ०—सर्व कामत गजब की चाल से तुम। क्यों कयामत चले बपा करके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२०।

कयारी†—संज्ञा पुं० [हिं० कोयर] सूखी घास। सूखा चारा।

कयास—संज्ञा पुं० [अ० कयास] [वि० कयासी]। अनुमान। अटकल। सोच विचार। ध्यान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—कयास लगाना, लड़ाना वा दौड़ाना=अनुमान बाँधना। अटकलपच्चू विचार करना। खयाल दौड़ाना। कयास मे आना=समझ मे आना। मन मे बैठना।

कयासी—वि० [अ० कयास+फा० ई (प्रत्य०)] काल्पनिक। अनुमित। अनुमान के आधार पर माना हुआ या माननेवाला।

कयौ†—क्रि० स० [हिं० कहना का भूत कृ०, कह्यो] दे० 'कहा'। उ०—मुनसी कयौ नवाब सूँ, जीव रहै सुजवाब।—रा० रू०, पृ० ३३८।

करक¹—संज्ञा पुं० [सं० करङ्क] १ मस्तक। २. करवा। कमंडलु। ३. नरियरी। नारियल की खोपडी। ४ पंजर। ठठरी। उ०—(क) चारों ओर दौरे नर आए ढिग टरि जानी ऊँट के करक मध्य देह जा दुराई है। जग दुर्गंध कोऊ ऐसी बुरी लागी जामें वह दुर्गंध सो सुगंध लौं सराही है।—प्रिया (शब्द०)। (ख) कागा रे करक परि बोलइ। खाइ मास अरु लगही डोलइ।—दादू (शब्द०)।

करक²†—संज्ञा पुं० [देश०] भोज मे अनाहूत रूप मे डटने और भोजन किए विना न हटनेवाला व्यक्ति। कँगला।

करगण—संज्ञा पुं० [सं० करङ्गण] १ हाट। बाजार। २. मेला [को०]।

करँगा—संज्ञा पुं० [हिं० काला या कारा+अंग] एक प्रकार का मोटा धान।

विशेष—इसकी भूसी कुछ कालापन लिए होती है। यह क्वार महीने मे पकता है।

करँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० करँगा] दे० 'करँगा'।

विशेष—करँगी का दाना आकार मे कुछ छोटा होता है।

करंज—संज्ञा स्त्री० [हिं० करञ्ज] १. कजा। २. एक छोटा जंगली पेड जिसकी पत्तियाँ सीसम की सी पर कुछ बडी होती हैं। इसकी डाल बहुत लचीली होती है। इसकी टहनियों की लोग दातून करते हैं। ३ एक प्रकार की आतिशबाजी।

करज²—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग, फा० कुलंग] मुरगा।

यौ०—करजखाना।

करजखाना—संज्ञा पुं० [हिं० करज+फा० खानह् (घर)] वह स्थान जहाँ बहुत से मुरगे पले हों। पालतू मुरगों के रहने का स्थान। उ०—हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाडे पीलखाने और करजखाने कीस हैं।—भूषण (शब्द०)।

करंजा¹—संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] दे० 'कजा'।

करंजा²—वि० [स्त्री० करंजी] करज या कजे के रंग की सी आँखवाला। भूरी आँखवाला।

करंजुवा¹—संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] दे० 'करज' या 'कजा'।

करंजुवा²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार के अकुर जो बाँस, ईख या उसी जाति के और पौधों मे होते हैं और उनको हानि पहुँचाते हैं। घमोई। २. जौ के पौधे का एक रोग जो खेती को हानिकारक है।

करंजुवा³—वि० [सं० करञ्ज] करंज के रंग का। खाकी।

करंजुवा⁴—संज्ञा पुं० खाकी रंग। करंज का सा रंग।

विशेष—यह रंग माजू, कसीस, फिटकरी और नासपाल के योग से बनता है।

करंड¹—संज्ञा पुं० [सं० करण्ड] १ मधुकोश। शहद का छत्ता। २. तलवार। ३ कारडव नाम का हंस। ४. बाँस की बनी हुई टोकरी या पिटारी। डला। डली उ०—मन भुजंग गुरु गारडी राखै कील करड।—रज्जब०, पृ० २०।। ५ एक प्रकार की चमेली। हजारा चमेली।

करंड—संज्ञा पुं० [सं० कुरविन्द] कुरुल पत्थर जिसपर रखकर छुरी और हथियार आदि तेज किए जाते हैं।

करंडक—संज्ञा पुं० [सं० करण्डक] बाँस का बना छोटा पिटारा या बक्स [को०]।

करंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्डिका] बाँस की बनी छोटी पिटारी या पेटी [को०]।

करंडी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंडी] कच्चे रेशम की बनी हुई चादर।

करंडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्डी] बाँस की बनी छोटी पेटी या पिटारी [को०]।

करंडी³—संज्ञा पुं० [सं० करण्डिन्] मछली [को०]।

करंतीना—संज्ञा पुं० [अं० क्वारंटाइन] दे० 'क्वारंटाइन'।

करंदा†—संज्ञा पुं० [देश०] विना भोजन किए न टलनेवाला व्यक्ति। कँगला।

करंधय—वि० [सं० करन्धय] हाथ का चुंबन करनेवाला। हाथ चूमनेवाला [को०]।

करंब—संज्ञा पुं० [सं० करम्ब] [वि० करम्बित] मिश्रण। मिलावट।

करंबित—वि० [सं० करम्बित] १. मिश्रित। मिलवाँ। मिला हुआ। २ खचित। बना हुआ। गढ़ा हुआ।

करंभ—संज्ञा पुं० [सं० करम्भ] १. दही मे सना सत्तू। २ दलिया। ३. मिली जुली गंध। ४. पंक। उ०—जौ को कूटकर

कमोदिन(पु)†—सज्ञा स्त्री० [स० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—वद वेदरदी तें हुग्रा, दरदी कमोदिन क्या किया।—घट०, पृ० ११२।

कमोदिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। जल मे वसै कमोदिनी, चदा वसै ग्रकास —कवीर सा० सं०, पृ० ५३।

कमोरा—सज्ञा पुं० [स० कुम्भ + हिं० ग्रोरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कमोरी, कमोरिया] १ मिट्टी का एक वरतन जिसका मुँह चौडा होता है ग्रोर जिसमे दूध दुहा ग्रोर रखा जाता है तथा दही जमाया जाता है। २ घडा। कछरा। ३ मटका।

कमोरिया¹†—सज्ञा पुं० [स० कर्मार] छोटा, पतला ग्रोर हलका वाँस।

विशेष—यह मसहरी लगाने या ढावे की पाटन ग्रादि के काम ग्राता है।

कमोरिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं० कमोरा] छोटा कमोरा या मटकी।

कमोरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कमोरा] चौडे मुँह का छोटा मिट्टी का वरतन जिसमे दूध नही रखा जाता है। मटकी। गगरी। उ०—भली करी हरि माखन खायो। इतौ मानि लीनी ग्रपने सिर उवरो सो ढरकायो। राखी रही दुराइ कमोरी सो लै प्रगट दिखायो।—सूर (शब्द०)।

कमोला—वि० [स० कम्र] कमनीय। सुदर। उ०—कहाँ ग्रधर रँग सुरग ग्रमोला। कहाँ मदन वह सिहर कमोला।—हिंदी प्रमा०, पृ० २७६।

कमोवेश—वि० [फा०] थोडा वहुत। न्यूनाधिक। उ०—ग्रपनी थका देनेवाली गरीवी की जिंदगी को जिसे वे सुदूरपूर्व के रेगिस्तानो मे, जगलों मे, कमोवेस वसर करते रहे।—प्रेम ग्रोर गोर्की, पृ० ३७७।

कमौरी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कमोरी] दे० 'कमोरी'। उ०—ऊपर तें कृष्णागरु भरि भरि डारति कनक कमौरी।—छीत०, पृ० ४२।

कम्म(पु)—सज्ञा पुं० [स० कर्म, प्रा० कम्म] दे० 'कर्म'। उ०—कवहु एहु नहिं कम्म करिग्रई।—कीर्ति०, पृ० १८।

कम्मखत(पु)—वि० [फा० कम्वख्त] दे० 'कवखत'। उ०—भझ्भा भँखत फिरत कम्मखत रोय कै जनम गँवावैं।—पलटू० पृ० ७१।

कम्मर¹(पु)—सज्ञा स्त्री०[हिं० कमर] दे० 'कमर'। उ०—कम्मर को न कटारी दई।—भूपण ग्र०, पृ० ४६।

कम्मर²(पु)—सज्ञा पु० [सं० कम्वल] दे० 'कम्वल'। उ०—चिंता वाढै रोग लगा, छिन छिन तन छीजै। कम्मर गरुग्रा होय, ज्यो ज्यो पानी से भीजै।—पलटू०, पृ० ६६।

कम्मल—सज्ञा पुं० [स० कम्वल] दे० 'कवल'। उ०—परतु इस कम्मल को लाल टोपी का सत्यानाश हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५८।

कम्मा¹—सज्ञा पुं० [देश०] ताड़पत्र पर लिखा हुग्रा लेख।

कम्मा²—सज्ञा पुं० [स० कम, प्रा० कम्म] काम।

यौ०—दोहरकम्मा = वही काम फिर उसी प्रकार करना।

कम्मान(पु)—सज्ञा स्त्री० [फा० कमान] दे० 'कमान'। उ०—गहे वान कम्मान समसेर नेजे। सुनी वात कानै लिखी ग्रांख दीखे।—हम्मीर०, पृ० ५।

कम्युनिक—सज्ञा पु० [फ्रा०] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। वह सरकारी वक्तव्य जो समाचारपत्रो को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने एक कम्युनिक निकालकर इस समाचार का खडन किया।

कम्युनिज्म—सज्ञा पु० [ग्रं०] वह मतवाद या सिद्धात जिसमे सपत्ति का ग्रधिकार समष्टि या समाज का माना जाता है। व्यक्ति विशेष या व्यष्टि का स्वत्व नही माना जाता। समष्टिवाद।

कम्युनिस्ट—सज्ञा पुं० [ग्रं०] वह जो कम्युनिज्म या समष्टिवाद के सिद्धात को मानता हो। कम्युनिज्म के सिद्धात को माननेवाला।

कम्र—वि० [स०] १ कामी। कामुक। २ सुदर। उ०—तव ये लोचन मीन कम्र थे।—साकेत, पृ० ३४५।

कयथिनि(पु)—सज्ञा स्त्री०[हिं० कायथ का स्त्री०] दे० 'कथिन'। उ०—वानिन चली सेंदुर दिए मांगा। कयथिनि चली समाइ न ग्रांगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१।

कयथ्थ(पु)†—सज्ञा पुं० [स० कपित्थ, प्रा० कइत्थ] दे० 'कपित्थ' उ०—सुन् करि कदम कयथ्थ करील। कमोदनि कुदह केतकि वील।—पृ० रा०, पृ० २।३५५।

कयपूती—सज्ञा स्त्री० [मला० कयु + पेड + पूती = सफेद] एक सदावहार पेड जो सुमात्रा, जावा, फिलिपाइन ग्रादि पूर्वीय द्वीपसमूह मे होता है।

विशेष—जावा ग्रोर मैनिला ग्रादि स्थानो मे इसकी पत्तियो का तेल निकाला जाता है जिसकी महक वहुत कडी होती है ग्रोर जो वहुत साफ, कपूर की तरह उडनेवाला ग्रोर स्वाद में चरपरा होता है। यह तेल दर्द के लिये वहुत वहुत उपकारी है। गठिया के दर्द मे यह ग्रोर दवाग्रो के साथ मला जाता है।

कयर(पु)—सज्ञा पुं० [देश०] दे० १ 'कैर' या 'करील'। उ०—जिए मुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाला रूँख। ग्राके फोगे छाँहडी, छूँछा भांजइ भूख।—ढोला०, दू० ६६१।

कया(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० काया] दे० 'काया'। उ०—रानी उतर दीन्ह कै मया। जो जिउ जाइ रहै किमि कया।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० १५७।

कयाधू—सज्ञा स्त्री० [सं०] हिरण्यकशिपु की पत्नी ग्रोर प्रह्लाद की माता का नाम (को०)।

कयाम—सज्ञा पु० [ग्र० कयाम] १ ठहराव। टिकान। विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—होना।

२ टिकने की जगह। ठहरने की जगह। विश्राम स्थान। ठिकाना। ३ ठौर ठिकाना। निश्चय। स्थिरता। जैसे—उनकी वात का कुछ कयाम नही।

कयामत—सज्ञा पुं० [ग्र० कयामत] १ मुसलमानो, ईसाइयो ग्रोर यहूदियो के ग्रनुसार सृष्टि का वह ग्रतिम दिन जव सव मुर्दे उठकर खडे होंगे ग्रोर ईश्वर के सामने उनके कर्मों का लेखा रखा जायगा। ग्रतिम।

मे वह कर जो जमींदार गाँव मे उन बसनेवालों से वसूल करता है जो खेती नहीं करते।

कमीला—संज्ञा पुं० [सं० कम्पिल्ल] एक छोटा पेड जिसके पत्ते अमरूद की तरह के होते हैं और जिसमें बेर की तरह के फल गुच्छों में लगते हैं।

विशेष—यह पेड हिमालय के किनारे काश्मीर से लेकर नेपाल तक होता है, तथा बगाल (पुरी, सिंहभूमि), युक्तप्रदेश (गढवाल, कमाऊँ, नेपाल की तराई), पजाब (काँगडा), मध्यप्रदेश और दक्षिण में बराबर मिलता है। इसके फलो पर एक प्रकार की लाल लाल धूल जमी होती है जिसे झाडकर अलग कर लेते हैं। यह धूल भी कमीला के नाम से प्रसिद्ध है। यह रेशम रँगने के काम मे आती है। इसकी रँगाई इस प्रकार होती है—सेर भर रेशम को आध सेर सोडा के साथ थोडी देर तक पानी मे उबालते हैं। जब रेशम कुछ मुलायम हो जाता है, तब उसे निकाल लेते हैं और उसी पानी मे २० तोले कमीला (बुकनी) और ढाई तोले तिल का तेल, पाव पर फिटकरी और सोडा मिलाते हैं। फिर सब चीजों के साथ पानी को पाव घटे तक उबालते हैं। इसके अनंतर उसमे फिर रेशम डाल देते हैं और १५ मिनट पर उबा कर निकाल लेते हैं। निकालने पर रेशम का रग नारगी निकल आता है। कमीला फोडे फुंसी की मरहमों मे भी पडता है। यह खाने मे गरम और दस्तावर होता है। यह विषैला होता है। इससे ६ रत्ती से अधिक नही दिया जाता।

कमीवेशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] न्यूनता अधिकता। स्वल्पता या बाहुल्य।

कमीशन—संज्ञा पुं० [अं० कमिशन] १ चुने हुए कुछ विद्वानो की वह समिति जो कुछ समय के लिये किसी गूढ विषय पर विचार करने के लिये नियत की जाती है। आयोग। २ कोई ऐसी सभा जो किसी कार्य की जाँच या खोज के लिये नियत की जाय। आयोग।

क्रि० प्र०—बैठना।—बैठाना।

३ किसी दूर रहनेवाले व्यक्ति की गवाही लेने के लिये एक या अधिक वकीलों का नियत होना।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

४. दलाली। दस्तूरी। ५ एजेंट की हैसियत से काम करने का अधिकार।

कमीस—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमीज] दे० 'कमीज'।

कमुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कमुञ्जा] १ चोटी। वेणी। २ केशों का गुच्छा [को०]।

कमुआ—संज्ञा पुं० [हिं० काम] नाव खेने की डाँड का दस्ता।

कमुकदर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्मुक + दर] धनुष तोडनेवाले रामचद्र। उ०—व्याकुल लखि बदर, हँसि कमुकदर सब दसकधर नाश किय।—विश्राम (शब्द०)।

कमुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चोटी। वेणी। २ केशों का गुच्छा [को०]।

कमोदिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—उत्तम रंग सुमाल जनु फुलि कमुदिनी ताल।—पृ० रा०, १४।१८८।

कमून—संज्ञा पुं० [अ०] जीरा। जीरक। अजाजी।

कमूनी¹—वि० [फा० कमून = जीरा] जीरा सबधी। जीरे का। जिसमे जीरा मिला हो।

यौ०—जवारिश कमूनी = जीरे का अवलेह या चटनी।

कमूनी²—संज्ञा स्त्री० [फा०] एक यूनानी दवा जिसका प्रधान भाग जीरा है।

कमूल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमलाई'।

कमेटी—संज्ञा स्त्री० [अं० कमिटी] सभा। समिति। उ०—बुगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७८।

कमेडी—संज्ञा स्त्री० [अं० कॉमेडी] दे० 'कामेडी'। उ०—जिस नाटक के अंत मे सब बखेडा मिटकर आनद हो जाय उसे अंग्रेजी मे कमेडी कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ७।

कमेड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अ० कुमरी] पडुक जाति की एक चिडिया। उ०—और घणा ही आवसी चिडी कमेडी काग। हसा फेर न आवसी सुण समदर मंदभाग।—राम० धर्म०, पृ० ६६।

विशेष—यह सफेद कबूतर और पडुक से उत्पन्न होती है। रंग सफेद और गले मे कठीया हँसुली होती है। पैर लाल होते हैं और बोली मनोहर एवं गभीर होती है जिसमे 'केशव तू, केशव तू' सी ध्वनि निकलती है। यह प्राय उजाड स्थानो मे रहती है और इसका पालन अशुभ माना गया है।

कमेरा—संज्ञा पुं० [हिं० काम > कम + एरा (प्रत्य०)] १ काम करनेवाला। मजदूर। नौकर। २. मातहत नौकर।

कमेला¹—संज्ञा पुं० [हिं० काम + एला (प्रत्य०)] वह जगह जहाँ पशु मारे जाते हैं। वधस्थान। कसाईखाना। बूचडखाना [को०]।

मुहा०—कमेला करना = मारना। हनना।

कमेला²†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमीला'।

कमेहरा—संज्ञा पुं० [हिं० काम या देश०] कच्ची मिट्टी का साँचा जिसमे मठिया या कसकुट की चूडियाँ ढाली जाती हैं।

कमोड—संज्ञा पुं० [अं०] लोहे या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कडाही के आकार का एक प्रकार का अँगरेजी ढग का पात्र जिसमे पाखाना फिरते हैं। गमला।

कमोद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुमुद] दे० 'कुमुद'। उ०—कोइ कमोद परसहि कर पाया। कोई मलयागिरि छिरकहि काया।—पदमावत, पृ० ८७।

कमोदन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'।

कमोदिक—संज्ञा पुं० [सं० कामोद = एक राग + क] १. कामोद राग गानेवाला पुरुष। २ गवैया। उ०—वेगि चलो बलि कुँवरि सयानी। समय वसत विपिन रथ हय गय मदन सुभट नृप फौज पलानी। बोलत हँसत चपल बदीजन मनहुँ प्रशसित पिक वर बानी। धीर समीर रटत वर अलिगन मनहुँ कमोदिक मुरलि सुठानी।—सूर (शब्द०)।

यौ०—बालकमानी = घडी का एक बहुत पतली कमानी जिसके सहारे कौआ या चक्कर घूमता है।

२ झुकाई हुई लोहे की लचीली तीली। जैसे, छाते की कमानी, चश्मे की कमानी। ३. एक प्रकार की चमड़े की पेटी जिसके भीतर लोहे की लचीली पट्टी होती हैं और सिरो पर गद्दियाँ होती हैं।

विशेष—इसे आँत उतरनेवाले रोगी कमर मे इसलिये लगाते हैं जिसमे आँत उतरने का मार्ग बद रहे।

४ कमान के आकार की कोई झुकी हुई लकडी जिसमे दोनो सिरो के बीच में रस्सी, तार या बाल बँधा हो जैसे, सारगी की कमानी, (बढई के) बरमे की कमानी, हक्काकों की कमानी (जिससे नग या पत्थर काटने की सान घुमाई जाती है)। ५. बाँस की एक पतली फट्टी जो दरी बुनने के करघे मे काम आती है।

कमानीदार—वि० [फा०]जिसमे कमानी लगी हो। कमानीवाला। जैसे, कमानीदार एक्का।

कमायच—सज्ञा स्त्री० [हिं० कमायज] दे० 'कमायज। उ०—सितार कमायच अरु मुहचगा। ताल मृदग न फेरी सगा।—कबीर सा०, पृ० २४६।

कमायज—सज्ञा स्त्री० [फा० कमानचा] सारगी आदि बजाने की कमानी।

कमाल[1]—सज्ञा पुं० [अ०] परिपूर्णता। पूरापन।

मुहा०—कमाल को पहुँचाना = पूरा उतारना।

२. निपुणता। कुशलता। ३ अद्भुत् कर्म। अनोखा कार्य। उ०—बेगम साहब कमाल है। अल्ला जानता है कमाल है। —फिसाना०, ३, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

४ कारीगरी। सनअत। ५ कबीर के बेटे का नाम, जो कबीरदास ही की तरह फक्कड़ साधु था। कहते हैं, जो बात कबीर कहते थे, उसका उलटा ये कहते थे। जैसे, कबीर ने कहा—मन का कहना मानिए, मन है पक्का मीत। परब्रह्म पहिचानिए, मन ही की परतीत। कमाल ने कहा—मन का कहा न मानिए, मन है पक्का चोर। लै बोरै मजधार मे, देय हाथ से छोड। इसी बात को लेकर किसी ने कहा है कि 'बूडा बस कबीर का उपजा पूत कमाल'।

कमाल[2]—वि० १ पूरा। सपूर्ण। सब। २ सर्वोत्तम। पहुँचा हुआ। ३ अत्यत। बहुत। ज्यादा। उ०—विचारे तमाल कमाल सोच में पड काले पड गए—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६।

कमाला—सज्ञा पुं० [अ० कमाल] पहलवानो की आपसी कुश्ती।

विशेष—यह केवल अभ्यास बढ़ाने या हुनर दिखाने के लिये होती है और इसमे हार जीत का ध्यान नही रखा जाता।

कमालियत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १. परिपूर्णता। पूरापन। २. निपुणता। कुशलता।

कमालो(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० कपाली] दे० 'कपाली'। उ०—जुटे जद्दराण, उभै अप्रमाण। हुई वीर हक्क, कमाली किलक्क।—रा० रू०, पृ० १६१।

कमासुत—वि० [हिं० कमाना + सुत] १. कमानेवाला। कमाई करनेवाला। पैदा करनेवाला। २. उद्यमी।

कमाहक्कहू—वि० [अ० कमाहक्कहू] बखूबी। उचित रूप में। ठीक ठीक। उ०—आज जमाने की रफतार और चलन है, उसी पर कमाहक्कहू अमल करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

कमिक्षा(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० कामाक्षा] दे० कामाख्या'। उ०—कमह माह कमिक्षा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

कमिटी—सज्ञा स्त्री० [अ०] सभा। समिति।

कमिता—वि० [सं० कमितृ] [स्त्री० कमित्री] १ कामुक। कामी। २ कामना रखनेवाला। चाहनेवाला।

कमिया—सज्ञा पुं० [हिं० काम > कम + इया (प्रत्य०)] दे० 'कमकर'। उ०—अधिकाश जनता दास और कमिया थी।—मान०, पृ० १०५।

कमिश्नर—सज्ञा पु० [अ०] १. माल का वह बड़ा अफसर जिसके अधिकार में कई जिले हो। २ वह अधिकारी जिसको किसी कार्य के करने का अधिकारपत्र मिला हो। ३ आयुक्त।

कमिश्नरी—सज्ञा स्त्री० [अ० कमिश्नर] १. वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। २. डिवीजन। प्रमडल। जसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। २. कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी मे मामला चल रहा है। ३. कमिश्नरी का काम या पद। जैसे—उन्होने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

कमीण(पु)—वि० [फा० कमीन] दे० 'कमीना'। उ०—कौन आपनी कमीण बिचारा, किसकूं पूजै गरीब पियारा।—दादू०, पृ० ६२८।

कमी—सज्ञा स्त्री० [फा०]१ न्यूनता। कोताही। घटाव। अल्पता। जैसे,—अभी पचास मे दस की कमी है।

क्रि० प्र०—करना।

२. हानि। नुकसान। टोटा। घाटा। जैसे,—उन्हें इस साल ५) सैकड़े की कमी आई।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना —होना।

कमीज—सज्ञा स्त्री० [अ० कमीस, फा० शेमीज] एक प्रकार का कुर्ता।

विशेष—इसमे कली और चौबगले नही होते। पीठ पर चुनन, हाथो मे कफ और गले मे कालर होता है। यह पहिनावा अँगरेजो से लिया गया है।

कमीन[1]—सज्ञा पु० [अ०] घात, शिकार या वार के लिये ओट।

कमीन[2]—वि० [फा०] नीच। अधम। खल। धूर्त। अकुलीन।

कमीनगाह—सज्ञा पु० [अ० कमीन + फा० गाह] वह स्थान जहाँ से ओट मे खडे होकर तीर या बदूक चलाई जाती है।

कमीना—वि० [फा० कमीनह्][स्त्री० कमीनी] ओछा। नीच। क्षुद्र।

कमीनापन—सज्ञा पुं० [हिं० कमीना + पन (प्रत्य०)] नीचता। ओछापन। क्षुद्रता।

कमीनीवाछ—सज्ञा स्त्री० [फा० कमीना + हिं० बाछ = उगाही]देहात

देना। कमान खींचना = कमान पर डोर चढ़ाकर उसके डोरे को तानकर खींचना। कमान चढ़ना = (१) दौरदौरा होना। जैसे—आजकल उनकी कमान चढ़ी हुई है। (२) त्योरी चढ़ना। क्रोध में होना। कमान चढ़ाना = कमान का चिल्ला चढ़ाना। कमान तानना = दे० 'कमान खींचना'।

२. इंद्रधनुष।

क्रि॰ प्र॰—निकलना।

३. मेहराबदार बनावट। मेहराब। ४. तोप। उ०—हमारे तो फूटी कपोलान कढ़नात नै, कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को।—हनुमन्नाटक, पृ० ३२। ५. बंदूक। उ०—परगन बाँधि कमानें डारीं। बज्र अगिन मुख दारू भरीं।—जायसी (शब्द०)।

क्रि॰ प्र॰—चढ़ना।—दगना।

५. मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—इसमें मालखंभ के गले की खाँच या मुँगरे की संधि पर एक ओर पैर और दूसरी ओर हाथ रखकर पेट को ऊपर उठाते हैं।

यौ०—कमान की लोटन = कमान करते समय मुँगरे पर एक हाथ से मुँगरा लपेटना और पाँव उड़ाकर मालखंभ से कमर-पेटे के समान नीचे आते हुए लिपट जाना।

६ कालीन बुननेवालों का औजार। ७ एक यंत्र जिससे दो तारों या वस्तुओं के बीच के कोणांश की दूरी अथवा क्षितिज से किसी तारे की ऊँचाई मापी जाती है।

विशेष—इसमे एक शीशा लगा रहता है जिसपर दोनो तारों की छाया ठीक नीचे ऊपर आ जाती है। इस शीशे के सामने एक दूरबीन लगी रहती है।

कमान²—संज्ञा स्त्री० [अं० कमांड] १. आज्ञा। हुक्म। फौजी काम की आज्ञा।

यौ०—कमान। अफसर।

२ नौकरी। ड्यूटी। फौजी काम।

मुहा०—कमान पर जाना = नौकरी पर जाना। लड़ाई पर जाना। कमान पर होना = काम पर जाना। लड़ाई पर होना। कमान बोलना = (१) नौकरी पर जाने की आज्ञा देना। (२) लड़ाई पर जाने की आज्ञा देना। कमान बोली जाना = काम या लड़ाई पर जाने की आज्ञा मिलना।

कमान अफसर—संज्ञा पुं० [अं० कमांडिंग आफिसर] फौज का वह अफसर जो कप्तान के मातहत, पर लेफ्टिनेंट से ऊपर होता है। कमानियर।

कमानअब्रू—वि० [फ़ा० कमांअब्रू] जिसकी भौंहे धनुष की तरह टेढ़ी और सुंदर हो।

कमानगर—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'कमगर'।

कमानगरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'कमगरी'।

कमानचा—संज्ञा पुं० [फा०] १ छोटी कमान। २ सारंगी बजाने की कमानी। ३ मिहराव। डाट। धुनकी।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

कमानदार¹—संज्ञा पुं० [अ० कमांडर] फौजी अफसर।

कमानदार²—वि० [फ़ा०] १. मेहराबदार। २. धनुर्धर।

कमानदुरुस्त—वि० [फ़ा० कमांदुरुस्त] कुशल। [illegible]।

कमाना¹—क्रि० स० [हिं० काम से नामिक] १. व्यापार या व्यवसाय से धन उपार्जित करना। काम धंधा करके रुपया पैदा करना।

मुहा०—कमाना धमाना = उद्यम व्यापार करना। काम धंधा करके रुपया पैदा करना।

संयो० क्रि०—रखना। लेना।

२. उद्यम या परिश्रम से किसी वस्तु को उपयोग के योग्य करना। सुधारना या काम के योग्य बनाना। जैसे, खेत कमाना, चमड़ा कमाना, लोहा कमाना।

यौ०—कमाई हुई हड्डी या देह = कसरत से पुष्ट किया हुआ शरीर। कमाया साँप = वह साँप जिसके विषैले दाँत उखाड़ लिए गए हों (मदारी)।

३. सेवा संबंधी छोटे मोटे काम करना। जैसे, पाखाना कमाना (उठाना), घर कमाना, दाढ़ी कमाना (मूँड़ना)। ४. कर्म संचय करना। कर्म करना। जैसे, पाप कमाना, पुण्य कमाना। उ०—जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो। सीतापति संमुख सुखी सब ठाँव समातो।—तुलसी (शब्द०)।

कमाना²—क्रि० अ० १. कुछ व्यवसाय करना। मेहनत मजदूरी करना। जैसे,—वह कमाने गया है। २ कसब करना। कसबीं कमाना। जैसे,—अब तो वह इधर उधर कमाती फिरती है।

कमाना³—क्रि० स० [हिं० कम से नाम०] कम करना। घटाना। (बाजारू)। जैसे,—इस सौदे में ५) और कमाओ तो हम इसे ले लें।

कमानिया¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमान + हिं० इया (प्रत्य०)] कमान चलानेवाला। धनुष चलानेवाला। तीरंदाज। उ०—बुंदेला चूकै कबहुँ को अरु चूकै सब कोइ। बखरजीत कमानियाँ चूक उनहुँ से होइ।—गिरिधर (शब्द०)।

कमानिया²—वि० [हिं० कमानी + इया (प्रत्य०)] १ जिसमें किसी प्रकार की कमानी लगी हो। २. जिसमें किसी प्रकार की मेहराब या अर्धवृत्त हो। मेहराबदार।

कमानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमान] [वि० कमानीदार] १. लोहे की तीली, तार अथवा इसी प्रकार की और कोई लची ली वस्तु जो इस प्रकार बैठाई हो कि दाब पड़ने से दब जाय और हटने पर फिर अपनी जगह पर आ जाय। उ०—कमर कमानी बार तार सो सुंदर ताहि सजायो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५८।

विशेष—कई फेंटों में फेरा हुआ पेचदार तार, पानी की भाँति बैठाई हुई पट्टियाँ आदि कमानी का काम देती हैं। कमानी कई कामों के लिये लगाई जाती है जैसे घड़ी में,

कमलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का बीज। कमलगट्टा। २. दे० 'कमलनयन'।

कमलाग्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी की वडी वहन दरिद्रता।

कमलानिवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ लक्ष्मी के रहने का स्थान। २. कमल का फूल। कमल।

कमलापति—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति विष्णु।

कमलालया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जिसका निवास कमल में हो। २ लक्ष्मी।

कमलावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मावती छंद का एक दूसरा नाम।

कमलासन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा। २ योग का एक आसन जिसे पद्मासन कहते हैं। दे० 'पद्मासन'।

कमलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमल। २ छोटा कमल। ३. वह तालाब जिसमें वहुत कमल हों।

कमलिनीकांत—संज्ञा पुं० [सं० कमलीनीकान्त] सूर्य [को०]।

कमलिनीवंधु—संज्ञा पुं० [सं० कमलिनीबन्धु] सूर्य [को०]।

कमली[1]—संज्ञा पुं० [सं० कमलिन्] ब्रह्मा।

कमली[2]—संज्ञा पुं० [हिं० कमरा] छोटा कंबल। उ०—शिशिरकणों से लदी हुई, कमली के भीगे हैं सव तार।—झरना, पृ० ५।

कमलेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके नेत्र कमल जैसे हों। विष्णु [को०]।

कमलेच्छन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कमलेक्षण] कमलनयन। विष्णु। उ०— चारि वरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के, पाइक मलेच्छन के काहे को कहाइयै।—कवित्त०, पृ० १००।

कमलेश—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति विष्णु।

कमलो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रमेल, यू० कमेल] ऊँट। सांडिया। उष्ट्र।—डिं०।

कमवाना—क्रि० स० [हिं० कमाना का प्रे० रूप] १. (धन) उपार्जन कराना। (रुपया) पैदा कराना। २ निकृष्ट सेवा कराना। जैसे,—पाखाना कमवाना (उठवाना)। दाढी कमवाना (मुडाना)। ३. किसी वस्तु पर मिहनत कराके उसे सुधरवाना या कार्य के योग्य वनवाना। जैसे, चमडा कमवाना, खेत कमवाना।

कमसखुन—वि० [फा० कम+सखुन] मितभाषी। अल्पभाषी। कम वोलनेवाला [को०]।

कमसमझी—संज्ञा स्त्री० [फा० कम+हिं० समझ] अल्पज्ञता। मूर्खता। नादानी। उ०—मेरी कमसमझी पर खीझकर रानी ने कहा।—ज्ञानदान, पृ० ३५।

कमसरियट—संज्ञा पुं० [अं०] सेना का वह विभाग जो सेना के रसद पानी का प्रवंध करता है। फौज के मोदीखाने का मुहकमा।

कमसिन—वि० [फा०] [संज्ञा स्त्री० कमसिनी] कम उम्र का। छोटी अवस्था का। अल्पवयस्क।

कमसिनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] लड़कपन। वचपन। कमउमरी। अल्पवयस्कता।

कमहा†—वि० [हिं० काम+हा (प्रत्य०)] १ काम करनेवाला। २ मजदूर।

कमहिम्मत—वि० [फा० कम+अ० हिम्मत] जिसमें साहस कम हो। डरपोक।

कमहैसियत—वि० अ० [फा० कम+अ० हैसियत] १ अप्रतिष्ठित। २ हीन आर्थिक स्थितिवाला। ३. अकुलीन।

कमांडर—संज्ञा पुं० [अं०] फौज का वह अफसर जो लेफ्टिनेंट के ऊपर और कप्तान के मातहत होता है। कमान। कमान अफसर।

यौ०—कमांडर इन चीफ।

कमांडर-इन चीफ—संज्ञा पुं० [अं० कमांडर इन चीफ] फौज का सवसे वडा अफसर। प्रधान सेनापति। सेनाध्यक्ष।

कमांण(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] धनुष। उ०—सतगुरलई कमांण करि, वाहण लागा तीर। एक जु वाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर।—कवीर ग्रं०, पृ० १।

कमांच†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कमाच'। उ०—का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच। काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच।—संतवाणी०, पृ० ७५।

कमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंदर्य। लावण्य। छवि [को०]।

कमाइच†—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] १ छोटी कमान। कमानचा। २ सारंगी वजाने की कमानी। उ०—वीना वेनु कमाइच गहे। वाजे तहँ अमृत गहगहे।—जायसी (शब्द०)।

कमाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमाना] १. कमाया हुआ धन। अर्जित द्रव्य। उ०—गहा वाँह उवारूँ तोहि राई। यहि हसन की अहै कमाई।—कवीर सा०, भा० ४, पृ० ५५७।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

१. कमाने का काम। व्यवसाय। उद्यम। धंधा। जैसे,—दिन भर किस कमाई में रहते हो।

कमाऊ—वि० [हिं० कमाना] उद्यम व्यापार में लगा रहनेवाला। धनोपार्जन करनेवाला। कमानेवाला। कमासुत। जैसे,—कमाऊ पूत।

कमागर†—संज्ञा पुं० [हिं० कमगर] दे० 'कमगर—'१.। उ०—जनहरिया सतगुर इसा जिसा कमागर होय। शब्द मशकला फेर करि दाग न राखै कोय।—राम० धर्म०, पृ० ५४।

कमाच—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रेशमी कपडा। उ०—काम जो आवै कामरी का लै करै कमाँच।—तुलसी (शब्द०)।

कमाची[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमची] दे० 'कमची'।

कमाची[2]—संज्ञा स्त्री० [फा० कमानचा] कमान की तरह झुकाई हुई तीली।

कमाचीदार—वि० [फा०] कमानीदार। घुमावदार। कमचीदार। उ०—अपने कमाचीदार गोन को, जो किसी वडे छाते से कम नहीं होते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६१।

कमान[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ धनुष। कमठा।

यौ०—कमानगर।

मुहा०—कमान उतारना = कमान का चिल्ला या रोदा उतार

लघु और गुरु, यथाक्रम होते हैं। यथा—'धिधिकट धाकिट धिमि-धरि, थरकु, गिडि गिडि, दिदिगन थो'। ११ दीपक राग का दूसरा पुत्र। इसकी भार्या का नाम जयजयवंती है। १२. मात्रिक छंदों मे छह मात्राओ का एक छद जिसके प्रत्येक चरण में गुरु लघु गुरु लघु (ऽ। ऽ।) होता है। जैसे, दीनबधु। शील सिधु। १३. छप्पय के ७१ भेदों मे से एक। इसमे ४३ गुरु, ६६ लघु, १०९ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं। १४ एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसका प्रत्येक चरण एक नगण का होता है। जैसे,—न वन, भजन, कमल, नयन। १५ काँच का एक प्रकार का गिलास जिसमे मोमबत्ती जलाई जाती है। १६ एक प्रकार का पित्त रोग जिसमे आँखें पीली पड जाती हैं और पेशाब भी पीला आता है। पीलू। कमला। काँवर। १७. मूत्राशय। मसाना। मुतवर।

कमल(पु)[2]—सज्ञा पुं०[स० कपाल या देश०] शिर। मस्तक। उ०—(क) कर वापट फूटे कमल, नाखै नयणा नीर।—बाकी ग्र०, भा० २, पृ० २०। (ख) गोयदराज गहिलौत आइ। बैठो सु कुँअर कमल नवाइ।—पृ० रा०, ६।१३४। (ग) वेढ कमल लीधौ खग वाहे।—रा० रू०, पृ० २६०।

कमलअडा सज्ञा पु० [स० कमल = हिं० अडा] कमलगट्टा।

कमलकंद सज्ञा पु० [सं० कमलकन्द] कमल की जड। भिस्सा। भसीड। मुरार।

कमलक—सज्ञा पुं० [सं०] लघु आकार का कमल। छोटा कमल [को०]।

कमलगट्टा—सज्ञा पु० [सं० कमल + ग्रन्थिक, > प्रा० *कमल + गट्ठअ] कमल का बीज। पद्मबीज। कमलाक्ष।

विशेष—कमल के बीज छत्ते मे से निकलते हैं। इनका छिलका कडा होता है। छिलके के भीतर सफेद रग की गिरी निकलती है जिसे वैद्य लोग ठडी और मूत्रकारक मानते हैं तथा वमन, डकार आदि कई रोगो मे देते हैं। कमलगट्टा पुष्टई मे भी पड़ता है।

कमलगर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] कमल का छत्ता।

कमलज—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलजात—सज्ञा पु० [स०] ब्रह्मा। उ०—दिखि महिमा जनुमनि तात की। सुधि बुधि गई कमलजात की।—नंद० ग्रं०, पृ० २६२।

कमलनयन[1]—वि० [स०] [स्त्री० कमलनैनी] जिसकी आँखें कमल की पखडी की तरह बडी और सुदर हों। सुदर नेत्रवाला।

कमलनयन[2]—सज्ञा पु० १. विष्णु। २ राम। ३ कृष्ण।

कमलनाभ—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कमलनाल—सज्ञा स्त्री० [स०] कमल की डंडी जिसके ऊपर फूल रहता है। मृणाल।

कमलपाणि—वि० [स०] जिसके हाथ कमल के समान हों। उ०—विनायक एक हूर्वे आवै ना पिनाक ताहि, कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई।—केशव (शब्द०)।

कमलबध—सज्ञा पुं०[सं० कमलबन्ध]एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरो को एक विशेष क्रम से लिखने पर कमल के आकार का चित्र बन जाता है।

कमलबंधु—सज्ञा पु० [स० कमलबन्धु] सूर्य।

कमलबाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० कमल + बाई] एक रोग जिसमे शरीर, विशेषकर आँखें पीली पड जाती है।

कमलभव—सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मा।

कमलभू—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलमूर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कमल + मूल] दे० 'कमलमूल'। उ०—तिरपुटिय भाल शिल कमलमूर। इह भाँति ताव तप तपनि जूर।—पृ० रा०, १।४८६।

कमलमूल—सज्ञा पु० [स०] १ भसीड। मुरार। २ मस्तकस्थित सहस्रदल कमल का मूल भाग।

कमलयोनि—सज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा।

कमलवन—सज्ञा पु० [सं०] कमलो का पुज या समूह [को०]।

कमलवायु—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्याधि जिसमे शरीर, विशेषकर आँखें पीली पीली पड जाती हैं। पीलिया। पाडुरोग। दे० कमलबाई।

कमलसभव—सज्ञा पु० [सं० कमलसम्भव] ब्रह्मा [को०]।

कमला[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ लक्ष्मी। उ०—होती है ज्यों चाह दीनजन को कमला की। यों चितातुर चित्त मे शकुनला की।—शकु०, पृ० ९०। २ धन। ऐश्वर्य। ३ एक प्रकार की बडी नारगी। संतरा। ४ एक नदी का नाम जो तिरहुत मे है। दरभगा नगर इसी के किनारे पर है। ५ एक वर्णवृत्त का नाम। दे० 'रतिपद'।

कमला[2]—सज्ञा पु० [स० कम्बल] १. एक कीड़ा जिसके ऊपर रोएँ होते हैं। मनुष्यो के शरीर में इसके छू जाने से खुजलाहट होती हैं। झाँझा। सूँडी। २. अनाज या सडे फल आदि में पडनेवाला लबा सफेद रग का कीड़ा। ढोला। ढोनट।

कमलाई—सज्ञा पुं० [स० कमल = कमल के समान लाल] एक पेड का नाम जो राजपूताने की पहाडियों और मध्य प्रात म होता है।

विशेष—यह पेड मियाने कद का होता है और जाड़े मे इसके पत्ते झड जाते है। इसके हीर की लकडी चीरने पर लाल और फिर सूखने पर कुछ भूरी हो जाती है। यह बहुत चिकनी और मजबूत होती है तथा गाडी और कोल्हू बनाने के काम मे आती है। अलमारियाँ और आरायशी सामान भी इसके अच्छे बनते हैं। पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। हाथी इसे बडे चाव से खाते है। छाल चमडा रँगने के लिये तथा गोंद कागज बनाने और कपडा रँगने के काम आती है। इसे कमून भी कहते हैं।

कमलाकर—सज्ञा पु० [सं०] सरोवर। तालाब। पुष्कर।

कमलाकात—सज्ञा पु० [सं० कमलाकान्त] विष्णु। लक्ष्मीपति।

विशेष—यह शब्द राम, कृष्ण आदि विष्णु के अवतारो के लिये भी आता है।

कमलाकार[1]—सज्ञा पु० [सं०] छप्पय का एक भेद। इसमे २७ गुरु, ९८ लघु, १२५ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती है।

कमलाकार[2]—वि० [सं०] [स्त्री० कमलाकारा] कमल के आकार का।

कमरिया²‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमरा] दे० 'कमली' या 'कमरी'।

कमरिया³†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमर] दे० कमर'।

कमरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कमरा] दे० 'कमली'।

कमरी²—संज्ञा पुं० [हिं०] एक रोग जिसके कारण घोडे सवार या वोझ को देर तक पीठ पर लेकर नही चल सकते, उनकी पीठ दवने या काँपने लगती है।

कमरी³—वि० [हिं० कमर] चलने मे पीठ मारनेवाला (घोडा)। कमजोर या कच्ची पीठ का (घोडा)। कुवड़ा।

विशेष—कमरी घोडे की पीठ कमजोर होती है, इसी से यह बोझ या सवारी लेकर दूर तक नहीं चल सकता, थोड़ी ही देर मे उसकी पीठ कँप जाती है और बार बार पीठ कँपाता है। ऐसा घोडा ऐबी समझा जाता है।

कमरी⁴—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ चरखी की मूँडी मे लगी हुई डेढ़ वालिश्त की लवी लकडी। २ छोटी फतुई। सलूका।

कमरी⁵—संज्ञा पु० [देश०] जहाज जिसकी कमर टूट गई हो। टूटा जहाज।

कमरू†—संज्ञा पु० [स० कामरूप] दे० 'कामरू'। उ०—कमरू माह कमिक्षा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

कमरेंगा—संज्ञा पुं० [देश०] वगाल की एक प्रकार की मिठाई।

कमर्शल—वि० [अं०] व्यापार सबधी। व्यापारिक।

कमल¹—संज्ञा पु० [सं०] पानी मे होनेवाला एक पौधा।

विशेष—यह प्राय ससार के सभी भागों मे पाया जाता है। यह झीलो, तालावो और गड्हो तक मे होता है। यह पेड वीज से जमता है। रग और आकारभेद से इसकी वहुत सी जातियाँ होती हैं, पर अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग के कमल देखे गए हैं। कही कही पीला कमल भी मिलता है। कमल की पेडी पानी मे जड से पाँच छ अँगुल के ऊपर नही आती। इसकी पत्तियाँ गोल गोल वडी थाली के आकार की होती हैं और वीच के पतले डठल मे जडी रहती हैं। इन पत्तियो को पुरइन कहते हैं। इनके नीचे का भाग जो पानी की तरफ रहता है, वहुत नरम और हलके रंग का होता है। कमल चैत वैसाख मे फूलने लगता है और सावन भादो तक फूलता है। फूल लंबे डठल के सिरे पर होता है तथा डठल या नाल मे वहुत से महीन महीन छेद होते हैं। डठल का नाल तोडने से महीन सूत निकलता है जिसे वटकर मदिरो मे जलाने की वत्तियाँ वनाई जाती हैं। प्राचीन काल मे इसके कपड़े भी वनते थे। वैद्यक में लिखा है कि इस सूत के कपडे से ज्वर दूर हो जाता है। कमल की कली प्रात काल खिलती है। सब फूलो की पखडियो या दलों का सख्या समान नहीं होती। पखडियो के वीच मे केसर से घिरा हुआ एक छत्ता होता है। कमल की गध भौंरे को वडी प्यारी लगती है। मधुमक्खियाँ कमल के रस को लेकर मधु वनाती हैं जो आँख के रोग के लिये उपकारी होता है। भिन्न भिन्न जाति के कमल के फूलो की आकृतियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। उमरा (अमेरिका) टापू मे एक प्रकार का कमल होता है जिसके फल का व्यास १५ इंच और पत्ते का व्यास साढे छह फुट होता है। पखडियों के झड जाने पर छत्ता वढ़ने लगता है और थोडे दिनों मे उसमे वीज पड जाते हैं। वीज गोल गोल लवोतरे होते हैं तथा पकने और सूखने पर काले हो जाते हैं और कमलगट्टा कहलाते हैं। कच्चे कमलगट्टे को लोग खाते हैं और उसकी तरकारी वनाते हैं, सूखे दवा के काम आते हैं। कमल की जड मोटी और सूराखदार होती है और भसीड, भिस्सा या मुरार कहलाती है। इसमे से भी तोडने पर सूत निकलता है। सूखे दिनो में पानी कम होने पर जड अधिक मोटी और वहुतायत से होती है। लोग इसकी तरकारी वनाकर खाते हैं। अकाल के दिनो में गरीव लोग इसे सुखाकर आटा पीसते हैं और अपना पेट पालते हैं। इसके फूलो के अकुर या उसके पूर्वरूप प्रारभिक दशा मे पानी से वाहर आने से पहले नरम और सफेद रग के होते हैं और पौनार कहलाते हैं। पौनार खाने मे मीठा होता है। एक प्रकार का लाल कमल होता है जिसमे गध नहीं होती और जिसके वीज से तेल निकलता है। रक्त कमल भारत के प्राय सभी प्रातो मे मिलता है। इसके सस्कृत मे कोकनद, रक्तोत्पल हल्लक इत्यादि कहते हैं। श्वेत कमल काशी के आसपास और अन्य स्थानो मे होता है। इसे शतपत्र, महापद्म, नल, सीताबुज इत्यादि कहते है। नील कमल विशेषकर कश्मीर के उत्तर और कहीं कही चीन मे होता है। पीत कमल अमेरिका, साइवेरिया, उत्तर जर्मनी इत्यादि देशो मे मिलता है।

यौ०—कमलगट्टा। कमलज। कमलनाल। कमलनयन।

पर्या०—अरविंद। उत्पल। सहस्रपत्र। शतपत्र। कुशेशय। पकज पकेरुह। तामरस। सरस। सरसीरुह। विपप्रसून। राजीव। पुष्कर। पकज। अभोरुह। अभोज। अबुज। सरसिज। श्रीवास। श्रीपूर्ण। इदिरालय। जलजात। कोकनद। वनज इत्यादि।

विशेष—जलवाचक सब शब्दो मे ज', 'जात' आदि लगने से कमलवाची शब्द वनते हैं, जैसे, वारिज, नीरज कज आदि।

२ कमल के आकार का एक मासपिंड जो पेट मे दाहिनी ओर होता है। क्लोमा।

मुहा०—कमल खिलना = चित्त आनदित होना। जैसे,—आज तुम्हारा कमल खिला है।

३ जल। पानी। उ०—हृदयकमल नैनकमल, देखिकै कमलनैन, होहुँगी कमलनैनी और हौं कहा कहौं।—केशव (शब्द०)। ४. ताँवा। ५ [स्त्री० कमली] एक प्रकार का मृग। ६ सारस। ७ आँख का कोया। डेला। ८ कमल के आकार का पहल काटकर वना हुआ रत्नखड। ९ योनि के भीतर कमलाकार अँगूठे के अगले भाग के वरावर एक गाँठ जिसके ऊपर एक छेद होता है। यह गर्भाशय का मुख या अग्रभाग है। फूल। धरन। टणा।

मुहा०—कमल उलट जाना = वच्चेद नी या गर्भाशय के मुँह का अपवर्तित हो जाना जिससे स्त्रियाँ वध्या हो जाती हैं।

१० ध्रुवताल का दूसरा भेद जिसमे गुरु, लघु, द्रुत, द्रुतविराम,

कमरख—संज्ञा पुं० [सं० कर्मरङ्ग, प्रा० कम्मरग] १. मध्यम आकार के एक पेड का नाम जो हिंदुस्तान के प्राय सभी प्रांतों में मिलता है। कर्मरग। कमरग।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अँगुल डेढ अँगुल चौडी, दो अंगुल लंबी और कुछ नुकीली होती हैं तथा सीको में लगती हैं। यह जेठ असाढ़ मे फूलता है। फूल झड जाने पर लंबे लबे पांच फाँकोंवाले फल लगते हैं, जो पूस माघ मे पकते और पककर खूब पीले होते हैं। कच्चे फल खट्टे और पक्के खटमिठे होते हैं। इनमे क्षार बहुत होता है, इसीलिये पक्के फलो मे चूना लगाकर खाते है। फल अधिकतर अचार चटनी आदि के काम में आता है। कच्चे फल रँगाई के काम मे भी आते हैं। इससे लोहे के मुर्चे का रग दूर हो जाता है। वैद्य लोग इसके फल, जड और पत्तियो को औषध के काम लाते हैं। खाज के लिये यह अत्यंत उपयोगी माना जाता है।

२ उक्त पेड के फल का नाम।

कमरखी¹—वि० [हिं० कमरख]कमरख के जैसा। कमरख के समान फाँकदार। जिसमें कमरख के ऐसी उभडी हुई फाँकें हों। जैसे, कमरखी गिलास। कमरखी चिलम।

कमरखी²—संज्ञा स्त्री० किसी गोल चीज के किनारे पर कटी हुई कँगूरेदार फाँकें।

क्रि० प्र०—काटना।—काढ़ना।—बनाना।

कमरचंडी(प)—संज्ञा स्त्री०[फ़ा० कमर+सं० चण्डी]तलवार।—डिं०।

कमरटूटा—वि० [फ़ा० कमर+हिं० टूटना] १. कुब्ज। कुबडा। २. नामर्द। सुस्त।

कमरतेगा—संज्ञा पु० [फ़ा० कमर+हिं० तेग] कुश्ती का एक पेंच।

कमरदोआल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमर+दोआल] चमडे का वह तसमा जिससे घोड़े की पीठ पर जीन आदि कसी जाती है।

कमरपट्टी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमर+हिं० पट्टी] एक पतली पट्टी जो अँगरखे, सलूके आदि के घेरे मे छाती के नीचे और कमर के ऊपर चारो ओर लगाई जाती है।

कमरपेटा—संज्ञा पु० [फ़ा० कमर+हिं० पेटा] १. मालखभ की एक कसरत।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है। एक मे तो बेंत कमर मे लपेटते और उसके छोर को दोनो अँगूठों को तानकर ऐसा खींचते हैं कि एँड़ी चूतड़ के पास लग जाती है और कसरत करनेवाला अपनी धड नीचे झुकाकर हाथ छोडता हुआ झोका खाता है। दूसरी मे पहले मालखभ पर सीधी पकड़ से चढते हैं। फिर जब पूर्वकाय नीचा होता है, तब कसरत करनेवाला एक तरफ की टाँग से मालखभ को लपेटता और खूब दबाता है तथा रियारी की पकड करता हुआ बराबर रहने देता है।

यौ०—कमर लपेटे की उलटी = मालखभ की एक कसरत।

विशेष—इसमे पहले कमरलपेटा बाँधकर अगला धड़ हाथ समेत पीठ पर उलटा लटकाता और दूसरी ओर निकालकर बाँएँ पैर की जाँघ और पिडली के बीच फँसाता है फिर बाँएँ हाथ के पजे को विपक्षी के बाँएँ हाथ के घुटने के पास भीतर से अडाता और दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी भुजा निकालकर या आगे बढाकर हुफ्ते के पेंच से उसे चित्त करता है।

कमरबद¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [भाव० संज्ञा कमरबदी] १. लंबा कपडा जिससे कमर बाँधते हैं। पटुका। २ पेटी। ३ इजारबद। नाडा। ४ वह रस्सी या डोरी जो किसी पदार्थ के मध्य भाग के चारों ओर लपेटी जाय।

क्रि० प्र०—बाँधना।— लगाना।

५ लहासी जिसमें एक जहाज को दूसरे जहाज से बाँधते हैं या जिसमें लगर बाँधते हैं। ६ जहाज के किनारे अँवठ से नीचे बाहर की तरफ चारों ओर कँगनी की तरह निकले हुए तख्ते जिनमे कुलावे लगे रहते हैं। ये तख्ते बाहर से जहाज की मजबूती के लिये लगाए जाते हैं। ७. जहाज के किनारे बाहरी तरफ की रगीन लकीरें या धारियाँ।

कमरबद²—वि० कमर कसे हुए। तैयार। मुस्तैद। कटिबद्ध।

कमरबदी—संज्ञा स्त्री०[फ़ा०]लडाई की तैयारी। मुस्तैदी। सनद्धता।

कमरबंध—संज्ञा पु० [फ़ा० कमर+सं० बन्ध] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब दोनो पहलवानो की कमर परस्पर बँधी रहती है। और दोनों ओर से पूरा जोर लगता रहता है, तब खिलाडी विपक्षी को छाती के बल से अपनी ओर खीचकर दबाता है। और बाहरी टाँग मारकर चित्त करता है।

कमरबल्ला—संज्ञा पु० [फ़ा० कमर+बल्ला] खपडे की छाजन मे वह लकड़ी का पटुका जो तडक के ऊपर और कोरो के नीचे लगाई जाती है। कमरबस्ता।

कमरबस्ता—वि०[फ़ा० कमरबस्तह]१ तैयार। प्रस्तुत। कटिबद्ध। सनद्ध। २ हथियारबद। ३ दे० 'कमरबल्ला'। उ०—कमरबस्ता हिम्मत का भारी किया। अटल कस्द की हत मतारी किया।—दक्खिनी०, पृ० १४७।

कमरा¹—संज्ञा पु० [लै० कैमेरा] १ कोठरी। २ फोटोग्राफी का एक औजार जो संदूक के ऐसा होता है और मुँह पर लेंस या प्रतिबिंब उतारने का गोल शीशा लगा रहता है।

विशेष—इस संदूक को आवश्यकतानुसार फैला या सिकोड सकते

हैं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) नई कमनैत नई ये कमान नए नए वान नई नई चोटें।—(शब्द०)।

कमनैती—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान + हिं० ऐती (प्रत्य०)] तीर चलाने की विद्या। तीरदाजी। धनुर्विद्या। उ०—(क) तिय कत कमनैती पढ़ी, विन जिह भौंह कमान। चित चल वेझे चुकति नहि, वक विलोकनि वान।—विहारी (शब्द०)। (ख) निरखत वन घनश्याम कहि, मैंटन उठति जु वाम। विकल वीच ही करत जनु, करि कमनैती काम।—पद्माकर (शब्द०)।

कमवख्त—वि० [फा० कमवख्त] भाग्यहीन। अभागा। वदनसीव। उ०—किसी तरह यह कमवख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद वखुद पस्त हो जाते।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२१।

कमवख्ती—संज्ञा स्त्री० [फा० कमवख्ती] वदनसीवी। दुर्भाग्य। अभाग्य।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—कमवख्ती का मारा = दुर्भाग्यग्रस्त [को०]।

कमयाव—वि० [फा०] जो कम मिले। दुष्प्राप्य। दुर्लभ।

कमरग—संज्ञा पुं० [हिं० कमरख] दे० 'कमरख'।

कमरद—वि० [फा० कम + हिं० रिंध या रद] कम उवाला। कच्चा। जो ठीक से सीझा न हो। रूखा। मोटा। उ०—सहज सून्य, चिंता नाम आवरण, वरण, त्रिकुटी, वासा विवेक घर, अजपा द्वार, निहकाम पैसार, सतोप निसार, कमरद अहार, अगम व्योहार। इन चित मारग जीव अनुसरै तो स्वरूप युक्त भोगवै।—गोरख०, पृ० २३४।

कमर[1]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पेड़ू और चूतर के ऊपर होता है। शरीर के वीच का घेरा जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कटि।

यौ०—कमरकस। कमरदोआल। कमरवद। कमरवस्ता।

मुहा०—कमर करना = (१) घोड़ो का इस प्रकार कमर उछालना कि सवार का आसन उखड़ जाय। (२) कवूतर का कलावाजी करना। कमर कसना = (१) किसी काम को करने के लिये तैयार होना। उद्यत होना। उतारू होना। तत्पर होना। कटिवद्ध होना। (२) चलने को तैयारी करना। गमनोद्यत होना। (३) किसी काम को करने की दृढ प्रतिज्ञा करना। सकल्प करना। इरादा करना। उ०—दूसरा उसी को अश्लील मानकर वाद करने के लिये कमर कस लेता है।—रस क० (विशेष), पृ० ४। कमर खोलना = (१) कमरवद उतारना। पटका खोलना। (२) विश्राम करना। दम लेना। सुस्ताना। ठहरना। (२) किसी काम को करने का इरादा छोड़ देना। सकल्प छोडना। (४) किसी उद्यम से मन हटाना। किसी उद्योग का ध्यान छोड देना। निश्चित वैठना। (५) हिम्मत हारना। हतोत्साह होना। कमर टूटना = आशा टूटना। निराश होना। उत्साह का न रहना। जैसे,—जव से उनका लडका मरा है, तव से उसकी कमर टूट गई। कमर तोड़ना = हताश करना। निराश करना। कमर वाँधना = (१) कमर में पट्टा या दुपट्टा वाँधना। कमरवद वाँधना। पेटी लगाना। (२) दे० 'कमर कसना'। उ०—खैरख्वाही कर उसकी ख्वारी पर कमर वाँधी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५१। कमर वैठ जाना = दे० 'कमर टूटना'। कमर सीधी करना = अोठँगकर विश्राम करना। लेटकर थकावट मिटाना।

२ कुश्ती का एक पेंच जो कमर या कूल्हे से किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—कमर की टँगड़ी = कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जव शत्रु पीठ पर रहता है और उसका वायाँ हाथ कमर पर होता है, तव खिलाडी अपना भी वायाँ हाथ उसकी वगल मे से ऊपर चढ़ाकर कमर पर ले जाता है और वाईं टँगड़ी मारते हुए चूतड से उठाकर उसे सामने गिराता है।

३ किसी लवी वस्तु के वीच का वह भाग जो पतला या धँसा हुआ हो। जैसे—कोल्हू की कमर = कोल्हू का गडारीदार मध्य भाग जिसपर कनेठ और भुजेला घूमते हैं। ४ अँगरखे या सलूके आदि का वह भाग जो कमर पर पड़ता है। लपेट।

यौ०—कमरपट्टी।

कमर[2]—संज्ञा पुं० [अ० कमर] चाँद। चद्र। चद्रमा। उ०—वैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई। अफसोस अय कमर कि न मुतलक खवर हुई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५५।

कमरकश संज्ञा पुं० [फा०] वहादुर। वीर पुरुष।

कमरकस[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कमर + फा० कश] पलास का गोंद। ढाक का गोंद। चुनिया गोंद।

विशेष—यह गोंद पलास के पेड से आपसे आप भी निकलता है और छीलकर भी निकाला जाता है। इसके लाल लाल चमकीले टुकडे वाजारो मे विकते हैं जो स्वाद मे कसैले होते हैं। यह गोंद पुष्टई की दवाओ मे पड़ता है। वैद्यक मे इसे मलरोधक तथा सग्रहणी और खाँसी को दूर करनेवाला माना जाता है।

कमरकसा[2]—संज्ञा पुं० [फा० कमर + हिं० कसना] १ करधनी। २ पेटी। कमरवद। ३ फेंटा।

कमरकसाई—संज्ञा स्त्री० [फा० कमर + हिं० कसना] वह रुपया पैसा जो सिपाही लोग अगले समय मे अपने असामियो को पेशाव पाखाने की छुट्टी देने के वदले मे वसूल करते थे।

कमरकोज—वि० [फा० कमर + अ० कौज = झुकना] कुवड़ा। कमर-टूटा। कुब्ज।

कमरकोट—संज्ञा पुं० [फा० कमर + हिं० कोट] १ कमर भर या और ऊँची दीवार जो प्राय किसी और नगरो की चारदीवारियो (परकोटे या शहरपनाह) के ऊपर होती है और जिसमे कँगूरे और छेद होते हैं। २ रक्षा के लिये घेरी हुई दीवार।

कमरकोटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कमरकोट'।

कमरकोठा—संज्ञा पुं० [फा० कमर + हिं० कोठा] कोठे की वह कड़ी या धरन जो दीवार के वाहर निकली हो।

की पतली लचीली धज्जी। तीली। २. पतली लचदार छड़ी ३. पंजा लड़ाने में हाथ का झटका जिससे उँगलियाँ टूट जाती हैं।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. लकड़ी आदि की पतली फट्टी।

कमच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० कामाक्षा] आसाम प्रांत में कामरूप की एक देवी। उ०—कौन्हें देस कमच्छा देवी तहाँ बसैं इसमाइल जोगी।—(शब्द०)।

कमजर्फ—वि० [फ़ा० कम + अ० ज़र्फ़] अयोग्य। कुपात्र। ओछा। नीच (डिं०)।

कमजात—वि० [फ़ा० कमज़ात] तुच्छ वंश का। नीच जाति का। उ०—कोचत करेजन कजाकी कमजात काम कानन कमान तान तानन दिखावतो।—श्यामा०, पृ० १३५।

कमजोर—वि० [फ़ा० कमज़ोर] दुर्बल। निर्बल। अशक्त।

कमजोरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमज़ोरी] निर्बलता। दुर्बलता। नाताकती। अशक्तता।

कमटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा काँटेदार पौधा।

कमटी¹—संज्ञा स्त्री० [तु० कमची] पेड़ की पतली लचीली टहनी।

कमटी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कमठी = बाँस] बाँस या लकड़ी की लचीली धज्जी। फट्टा।

कमठ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कमठी] १ कछुआ। कच्छप। उ०—दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।—मानस, १।२६०। २ साधुओं का तूंबा। ३ बाँस। ४. सलाई का पेड़। ५ एक दैत्य का नाम। ६. एक पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा रहता था।

कमठा—संज्ञा पुं० [सं० कमठ = बाँस] १ धनुष। कमान। उ०—बैठी छाती की हड्डी अब, झुकी रीढ़ कमठा सी टेढ़ी।—ग्राम्या, पृ० २६। २ जैनियों के एक महात्मा का नाम जिसने तपोबल से महान निर्जरा प्राप्त की थी।

कमठान—संज्ञा पुं० [सं० कम + स्थान] बखार। कोठार। गल्ली उ०—काफी अन्न एकत्र किया जा रहा है और शीघ्र ही किले के कमठाने में जमा कर लिया जायगा।—झाँसी०, पृ० ३१।

कमठी¹—संज्ञा पुं० [सं०] कछुई। उ०—कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी। समुचि गात गोवत कमठी ज्यों हहरि हृदय बिकल भई भारी।—तुलसी (शब्द०)।

कमठी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कमठ = बाँस] बाँस की पतली लचीली धज्जी। फट्टी।

कमतर—वि० [फ़ा०] थोड़ा। कम। न्यूनतम। नपूर।

कमतरीन—वि० [फ़ा०] बहुत ही कम। न्यूनतम। बहुत छोटा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः नम्रता दिखलाने के लिये भी करते हैं।

कमतवज्जही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कम + अ० तवज्जुही] लापरवाई। अन्यमनस्कता (डिं०)।

कमती¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कम + ती (प्रत्य०)] कमी। घटती। जैसे—(क) दाम में कुछ कमती पड़ती नहीं करेंगे। (ख) उनके यहाँ कुछ कमती है।

कमती²—वि० कम। थोड़ा। जैसे—वह सौदा कमती देता है।

कमतोला—वि० [फ़ा० कम + हिं० तौला] कम तौलने या डाँडी मारनेवाला।

कमदणी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—धैण कँमलाणी कमदणी, हिमहर ऊगइ आइ।—ढोला०, दू० १२६।

कमदिला—वि० [फ़ा० कम + दिल] कमहौसला। कमजोर दिलवाला। छोटे दिलवाला। तंगदिल। उ०—वे गुरुद्वार गरीब मालिक कम-दिला दिलदार।—दरिया बानी, पृ० २८।

कमध—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] दे० 'कबंध'। उ०—धप धरि रिपु सीस करि निर्दलै सीस गुड़ मेलिह तो कमध मेले —पृथ्वी० रा० (मू०), भा० १, पृ० १०५।

कमधज्ज—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध + ज] सिर कट जाने पर भी लड़नेवाला व्यक्ति और उसकी वंशपरंपरा के लोग। राठौर। उ०—दिल्ली वै थानह राज राठौर प्रभनं। ता उप्पर कमधज्ज सेन पंचौ चतुरंग।—पृ० रा०, ११३२१।

कमन¹—वि० [सं०] १ कामुक। कामी। २ लालची। सुंदर (डिं०)।

कमन²—संज्ञा पुं० १ कामदेव। २ अशोक वृक्ष। ३ ब्रह्मा (डिं०)।

कमन³—सर्व [हिं० कौन] दे० 'कौन'। उ०—लाखि पुरुष पदारि पवभर कमन नहि सो रे।—विद्यापति, पृ० ६।

कमनचा—संज्ञा पुं० [हिं० कमचा] दे० 'कमचा'।

कमनजर—वि० [फ़ा० कम + अ० नजर] कमहौसला दृष्टिवाला। अदूरदर्शी।

कमनसीब—वि० [फ़ा० कम + अ० नसीब] हतभाग्य। मंदभाग्य। अभागा।

कमनसीबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कम + अ० नसीबी] भाग्यहीनता। बदकिस्मती।

कमना—क्रि० अ० [फ़ा०] कम होना। न्यून होना। घटना। उ०—दाँउ अनत नहिं पर झूमन नहिं उर कमन कोप न थोर। बहु बिधि बदअन करहु मदन तन् बराबर जोर।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कमिहै नहिं यह अब सुहाई। बचन मानि मन अब धर जाई।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग अशुद्ध और व्याकरणविरुद्ध है।

कमनी—वि० [सं० कमनीय] दे० 'कमनीय'। उ०—कमनी कुंदन बिनु अब कीक।—श्यामा०, पृ० १२५।

कमनीय—वि० [सं०] १ कामना करने योग्य। २. मनोहर। सुंदर। उ०—" कमनीय कविकर्म कौशल, कल्पना की उड़ान और विद्या विद्वता की आवश्यकता है।—रस क० (भू०) पृ० ३।

कमनैत—वि० [फ़ा० कमान + हिं० ऐत (प्रत्य०)]; [संज्ञा कमनैती] कमान चलानेवाला। तीरंदाज। उ०—(क) मानो करि अब कौ पहुँच दीनी भान कमनैत बिन रोदा का कमान हैं

कमगरी—संज्ञा पुं० [फा० कमानगर] १ कमान बनाने का पेशा या हुनर। २ हड्डी बैठाने का काम। ३ गुणीवरी। ४ कार्यकुशलता [को०]।

कमचा—संज्ञा पुं० [फा० कमानचह्] बढ़ई का कमान की तरह का एक टेढ़ा औजार जिसमें बँधी रस्सी को बरमे में लपेटकर उसे घुमाते हैं।

कमडल—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डलु] दे० 'कमडलु'। उ०—ब्रह्म कमडल मडन, भव खडन सुर सरवस।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

कमडली¹—वि० [हिं० कमडल+ई (प्रत्य०)] १ कमडलु रखनेवाला। साधु। वैरागी। २ पाखडी। आडबरी।

कमडली²—संज्ञा पुं० ब्रह्मा। उ०—मुख तेज सहस दस मडली बुधि दस सहस कमडली। नृप चहूँ ओर सोहित भली मडलीक को मडली।—गोपाल (शब्द०)।

कमडलु—संज्ञा पुं० [सं०] १ सन्यासियों का जलपात्र जो धातु, मिट्टी, तुमड़ी, दरियाई नारियल आदि का होता है। २. पाकर या पक्कड़ का पेड़। उ०—कमडलु चौंटी चामर तोरा अर्घा पूला तिलपइती आ जम आटहृन।—वर्ण०, पृ० १२।

कमडलुतरु—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डलुतरु] पाकर या पाकड का वृक्ष। वह वृक्ष जिसकी लकडी से कमडलु बनाया जाता है [को०]।

कमडलुधर—संज्ञा पुं० [सं० कमण्डलुधर] शिव। महादेव। शकर [को०]।

कमद¹ ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] बिना सिर का धड़। कबध। उ०—(क) शीश सिखै साँई लखै, भल बाँका असवार। कमँद कबीरा किलकिया, केता किया शुमार।—कबीर (शब्द०)। (ख) जब लग धर पर सीस है, सूर कहावै कोय। माथा टूटै धर लरै, कमँद कहावै सोय।—कबीर (शब्द०)।

कमद²—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ रेशम, सूत या चमडे की फदेदार रस्सी जिसे फेंककर जंगली पशु आदि फँसाए जाते हैं। लडाई में इससे शत्रु भी बाँधे और खीचे जाते थे। फदा। पाश। २ फदेदार रस्सी जिसे फेंककर चोर, डाकू आदि ऊँचे मकानों पर चढ़ते हैं। फदा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—फेंकना।—लगाना।

कमध—संज्ञा पुं० १. दे० 'कबध'। २ कलह। लडाई। झगडा। ३. ⓟ राठौर। उ०—कुल महिमा करण कपण बुध बल पीढ़ी वध। सारा सूर जवासियाँ कुल रखवाल कमध।—रा० रू०, पृ० १०।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

कम¹—वि० [फा०] १. थोडा। न्यून। तनिक। अल्प। उ०—क्या कज अदाइयाँ हैं क्या कम निगाहियाँ हैं।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४३।

यौ०—कमअक्ल = अल्पबुद्धि का। कमजोर। कमजात। कमसिन = थोडी अवस्था का।

मुहा०—कम से कम = अधिक नही तो इतना अवश्य। जैसे,—कम से कम एक बार यहाँ हो तो आइए। (इस मुहावरे के साथ 'तो' प्राय: आता है।)

२ बुरा। जैसे,—कमबख्त। कमअसल।

कम²—क्रि० वि० प्राय नहीं। बहुधा नहीं। जैसे—(क) वे अब कम आते हैं। (ख) वे अब कम मिलते हैं।

कम³ ⓟ†—क्रि० वि० [हिं० किमि] कैसे। क्योंकर। उ०—बनारो कम छडइ ठामि ?—बी० रासो, पृ० ६०।

कमअक्ल—वि० [अ०] बेवकूफ। नासमझ। कम बुद्धिवाला [को०]।

कमअसल—वि० [फा० कम+अ० अस्ल] वर्णसंकर। दोगला।

कमउम्र—वि० [फा० कम+अ० उम्र] अल्पवयस्क। कम अवस्था का। छोटी उम्र का।

कमकर—संज्ञा पुं० [सं० कर्मकार] १. कार्यकर्ता। २ श्रमिक। काम करनेवाला व्यक्ति। उ०—यहाँ कमकर और कामचोर श्रेणियाँ न थीं।—मानव०, पृ० २७। ३ दस्तकार।

कमकस—वि० [फा० कम+कसना] काम से जी चुरानेवाला। काहिल। सुस्त। कामचोर। उ०—जिस देश के बहुत मनुष्य सावधान और उद्योगी होते हैं, उसकी उन्नति होती जाती है, और जिस देश में असावधान और कमकस विशेष होते हैं, उसकी अवनति होती जाती है।—परीक्षागुरु (शब्द०)।

कमकीमत—वि० [फा० कम+अ० कीमत] कम दाम का। थोड़े मूल्य का। सस्ता [को०]।

कमखर्च—वि० [फा० कम+खर्च] किफायतसार। अल्पव्ययी [को०]।

मुहा०—कमखर्च बाला नशीं = सस्ती और बढ़िया।

कमखाब—संज्ञा पुं० [फा० कमख्वाब] एक प्रकार का मोटा और गफ रेशमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबत्तू के बेल बूटे बने होते हैं। यह एकरुखा और दोरुखा दोनों तरह का होता है। इसका थान चार आने चार गज का होता है और बड़े दामों पर बिकता है। यह काशी में बुना जाता है।

कमखुराक—वि० [फा० कम+खुराक] स्वल्पाहारी। मिताहारी। कम खानेवाला।

कमखोरा—संज्ञा पुं० [फा० कमखोर] चौपायों के मुँह का एक रोग जिसमें वे खाना नही खा सकते।

कमख्वाब¹—संज्ञा पुं० [फा० कमख्वाब] दे० 'कमखाब'। उ०—(क) हीरा मोती धँसते धँसते, जरी और कमख्वाब।—हिम०, पृ० ५४। (ख) बनारस के कमख्वाब वगैरे अब तक सब देशों में प्रसिद्ध हैं—श्रीनिवास ग्रं० (निवे०) पृ० १२।

कमख्वाब²—वि० [फा०] कम सोनेवाला। थोडा सोनेवाला [को०]।

कमगो—वि० [फा० कम+गो] मितभाषी। कम बोलनेवाला।

कमचा¹—संज्ञा पुं० [तु० कमची] दे० 'कमची'।

कमचा²—संज्ञा पुं० [फा० कमानचह्] दे० 'कमचा'।

कमची—संज्ञा स्त्री० [तु०, सं० कञ्चिका] १ बाँस, झाऊ आदि की पतली लचीली टहनी जिससे टोकरी बनाई जाती है। बाँस

मुहा०—रूह कब्ज होना=होश गुम होना।

२ दस्त का साफ न होना। मलावरोध। ३ मुसलमान राज्य के समय का एक नियम जिसके अनुसार कोई फौजी अफसर फौज की तनखाह के लिये किसी जमींदार से सरकारी लगान वसूल करता था।

विशेष—वह दो प्रकार का होता था (१) लाकलामी और (२) अमानी या वसूली। कब्ज लाकलामी वह कहलाता था जिसके अनुसार फौजी अफसर को तनखाह का नियमित रुपया पहले ही देना पड़ता था, चाहे उसे उस जमींदार से उतना वसूल हो या न हो। कब्ज अमानी या वसूली वह कहलाता था जिसके अनुसार वह फौजी अफसर उतना रुपया वसूल करता था जितना वह कर सके। इसके लिये उस फौजी अफसर को ५) सैंकड़ा कमीशन भी मिलता था। इस दस्तूर को अकबर ने बंद कर दिया था, परंतु अवध के नवाबों ने इसे फिर जारी किया था।

४. वह शाही हुक्मनामा जिसके अनुसार वह फौजी अफसर उक्त रुपया वसूल करता था।

यौ०—कब्जदार।

कब्जकुशा—वि० [अ० कब्ज+फा कुशा] रेचक। कब्जनिवारक।

कब्जा—संज्ञा पु० [अ० कब्जह्] १ मूँठ। दस्ता। जैसे—तलवार का कब्जा। दराज का कब्जा।

मुहा०—कब्जे पर हाथ डालना=(१) तलवार खींचने के लिये मूँठ पर हाथ ले जाना। (२) दूसरे की तलवार की मूँठ को पकड़ लेना और उसे तलवार न निकालने देना। दूसरे की तलवार को साहस से पकड़ना। कब्जे पर हाथ रखना=किसी के मारने के लिये तलवार की मूँठ पकड़ना। तलवार खींचने पर उतारू होना।

२ लोहे या पीतल की चद्दर के बने हुए दो चौखूँटे टुकड़े जो पकड़ में जुड़े रहते हैं और सलाई पर घूम सकते हैं। इनसे दो पल्ले या टुकड़े इस प्रकार जोड़े जाते हैं जिसमें वे घूम सकें। किवाड़ों और संदूकों आदि में ये जड़े जाते हैं। नर-मादगी। पकड़। ३ दखल। अधिकार। वश। इख्तियार।

यौ०—कब्जादार।

क्रि० प्र०—करना।—जमना।—पाना।—मिलना।—होना।

मुहा०—कब्जा उठना=अधिकार का जाता रहना।

४ डंड। भुजदंड। डांड़। बाजू। मुश्क। ५ कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यदि विपक्षी कलाई पकड़ता है तो खिलाड़ी दूसरे हाथ से उसपर चोट करता है अथवा अपने खाली हाथ से उसकी कलाई पर झटका देता है और अपना हाथ खींच लेता है। इसे 'गट्टा' या 'पहुँचा' भी कहते हैं।

कब्जादार[1]—संज्ञा पु० [अ० कब्जह्+फा० दार (प्रत्य०)] [भाव० संज्ञा कब्जादारी] १. वह अधिकारी जिसका कब्जा हो। २. दखीलकार असामी (अवध)।

कब्जादार[2]—वि० जिसमें कब्जा लगा हो।

कब्जियत—संज्ञा स्त्री० [अ० कब्जियत] पायखाने का साफ न आना। मलावरोध।

कब्जुलवसूल—संज्ञा पुं० [अ०] वह कागज जिसपर तनखाह पानेवाले की भरपाई लिखी हुई हो।

कब्र—संज्ञा स्त्री० [अ० क़ब्र] १ वह गड्ढा जिसमें मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि अपने मुर्दे गाड़ते हैं। २ वह चबूतरा जो ऐसे गड्ढे के ऊपर बनाया जाता है।

यौ०—कब्रिस्तान।

मुहा०—अपनी कब्र खोदना=अपने विनाश का कार्य करना। कब्र का मुँह झांकना या झांक आना=मरते मरते बचना। उ०—वह कई बार कब्र का मुँह झाँक चुका है। कब्र में पैर या पाँव लटकाना=मरने को होना। मरने के करीब होना। बहुत बुड्ढा होना। कब्र में तीन दिन भारी=मुसलमानों का खयाल है कि कब्र में मुर्दे का तीन दिन तक हिसाब किताब होता है। कब्र में साथ ले जाना=मरते दम तक या मरकर भी न भूलना। कब्र से उठकर आना=मरते मरते बचना। पुनर्जीवन या नवजीवन।

कब्रिस्तान—संज्ञा पु० [अ० कब्र+फा० स्तान] वह स्थान जहाँ बहुत सी कब्रें हों। वह स्थान जहाँ मुर्दे गाड़े जाते हों।

कब्ल—अव्य० [अ० कब्ल] पूर्व। पहले। पेश्तर।

यौ०—कब्ल अज वक्त=समय से पूर्व।

कभी—क्रि० वि० [हिं० कब+ही] १ किसी समय। किसी घड़ी। किसी अवसर पर। जैसे,—(क) तुम वहाँ कभी गए हो? (ख) हम वहाँ कभी नहीं गए हैं।

विशेष—'कब' का प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ क्रिया निश्चित होती है। जैसे,—तुम वहाँ कब गए थे? 'कभी' का प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ क्रिया और समय दोनों अनिश्चित हों। जैसे तुम वहाँ कभी गए हो?

मुहा०—कभी का=बहुत देर से। कभी कभी=कुछ काल के अंतर पर बहुत कम। कभी कभार=कभी कभी। कभी न कभी=किसी न किसी समय। आगे चलकर अवश्य किसी अवसर पर। जैसे,—कभी न कभी तुम अवश्य हमसे माँगने आओगे। कभी कुछ कभी कुछ=एक ढंग पर नहीं। (इस वाक्य का व्याकरण संबंध दूसरे वाक्य के साथ नहीं रहता, जैसे, उनका कुछ ठीक नहीं, कभी कुछ कभी कुछ)।

कभुवक(५)†—क्रि० वि० [हिं० कबहुँक] दे० 'कबहुँक'। उ०—कभुवक तेरा बाप है कभुवक तेरा पूत।—सहजो०, पृ० ३३।

कभू(५)—क्रि० वि० [हिं० कभी] दे० 'कभी'। उ०—करतु सरस जलकेलि कभू मीनहिं गहि लावतु।—सुजान०, पृ० ७।

कमंगर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० कमानगर] १ कमान बनानेवाला। कमान-साज। २ हड्डियों को बैठानेवाला। हाथ, पाँव या किसी जोड़ की उखड़ी हुई हड्डी को मलकर या दबा से असली जगह पर ले जानेवाला। ३. चितेरा। मुसौवर। चित्रकार।

कमगरा[2]—वि० किसी फन का उस्ताद। दक्ष। कुशल। निपुण। कारीगर।

कविताई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कविता+ई (प्रत्य॰)] दे॰ 'कविताई'। उ॰—पढ़ै पुरान गरंथ रात दिन, करै कविताई सोई।—जग॰ बानी॰, पृ॰ ३३।

कवित्थ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'कपित्थ'।

कविनाह—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कविनाथ] कविश्रेष्ठ। उ॰—प्रेम कथन ते जानिए, बरनत सब कविनाह।—मति॰ ग्रं॰, पृ॰ ३५४।

कविराइ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कविराज] दे॰ 'कविराय'।

कविराव—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कवि+हिं॰ राव] दे॰ 'कविराज'। उ॰—उपजत जाहि विलोक कै चित्त बीच रस भाव। ताहि बखानत नायका, जे प्रवीन कविराव।—मति॰ ग्रं॰, पृ॰ २७३।

कविल[1]—वि॰ [सं॰] भूरापन लिए पीला (को॰)।

कविल[2]—संज्ञा पुं॰ भूरापन लिए पीला रंग (को॰)।

कविली—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] मटर का एक प्रकार।

कवीर[1]—संज्ञा पुं॰ [अ॰ अबीर=बड़ा, श्रेष्ठ] १ एक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त का नाम।

यौ॰—कबीरपंथी।

२ एक प्रकार का गीत या पद जो होली में गाया जाता है और प्रायः अश्लील होता है। उ॰—अररर कबीर। तब के बाभन वे रहे पढ़ते वेद पुरान। अब के बाभन अस भये जो लेत घाट पर दान। भला हम साँच कहे मे ना डरवै।

कवीर[2]—वि॰ [अ॰] श्रेष्ठ। बड़ा। जैसे अमीर कबीर। उ॰—अल्ला है वह कबीर उल् अकबर। याने बुजुर्ग है वह बरतर।—दक्खिनी॰, पृ॰ ३०३।

कबीरपंथ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कबीर+पंथ] कबीर का चलाया संप्रदाय।

कबीरपंथी—वि॰ [हिं॰ कबीर+पंथी] कबीर का मतानुयायी। कबीर संप्रदाय का। जैसे,—कबीरपंथी साधु।

कबीरबड़—संज्ञा पुं॰ [अ॰ अबीर=बड़ा+सं॰ वट=बड़] नर्मदा के किनारे भड़ोंच के पास का एक बड़ का पेड़ जिसका फैलाव या घेरा १४००० हाथ है और जिसके नीचे ७००० आदमी बड़े आराम से टिक सकते हैं।

कबील—संज्ञा पुं॰ [अ॰ क़बील] १ मनुष्य। आदमी। २ समूह। समुदाय।

कबीला[1]—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ कबीलह्] १ स्त्री। जोरू। २ जाति। ३ परिवार। ४ घर। ५. स्वजन। ६ परंपरा ७ वर्ग। श्रेणी।

कबीला[2]—संज्ञा पुं॰ [अ॰ कबीलह्] १ कुल या वंश। २ जाति। ३. घर। ४. स्वजन। परिवार। ५ वर्गश्रेणी। ६. जंगली या असभ्य जनजातियों का छोटा बड़ा समूह जिसका कोई एक नायक या सरदार होता है।

कबीला[3]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'कमीला'।

कबुर—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ कब्र] दे॰ 'कब्र'।

कबुलवाना—क्रि॰ स॰ [अ॰ कबूल से नाम॰] कबूल करवाना। स्वीकार करवाना।

कबुलाना—क्रि॰ स॰ [अ॰ कबूल से नाम॰] कबूल कराना। उ॰—भगवत भक्ति करन कबुलाई। तुरत आपन सदन सिधाई।—रघुराज (शब्द॰)।

कबुलि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] किसी जानवर का पिछला भाग या हिस्सा (को॰)।

कबू—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ कभू>कभी] दे॰ 'कभी'। उ॰—ऐसा भगत मैं कबू न पाया। नामदेव ने देव दुगाया।—दक्खिनी॰, पृ॰ १६।

कबूतर—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰, तुलनीय सं॰ कपोत] [स्त्री॰ कबूतरी] एक पक्षी।

विशेष—यह कई रंगों का होता है और इसके आकार भी कुछ भिन्न भिन्न होते हैं। पैर में तीन उँगलियाँ आगे और एक पीछे होती हैं। यह अपने स्थान को अच्छी तरह पहचानता है और कभी भूलता नहीं। यह झुंड में चलता है। मादा दो अंडे देती है। केवल हर्ष के समय यह गुटरगूँ का अस्पष्ट स्वर निकालता है। पीड़ा के समय और दूसरे अवसरों पर नहीं बोलता। इसे मार भी डालें तो यह मुँह नहीं खोलता। गिरहबाज, गोला, लोटन, लक्का, शीराजी, बुगदादी इत्यादि इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। शिखावाले कबूतर भी होते हैं। गिरहबाज कबूतरों से लोग कभी कभी चिट्ठी भेजने का भी काम लेते हैं।

क्रि॰ प्र॰—उड़ाना=कबूतरबाजी करना।

कबूतरखाना—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ कबूतरखानह्] वह स्थान जहाँ पाले हुए बहुत से कबूतर रखे जाते हैं। कबूतरों का बड़ा दरबा।

कबूतरझाड़—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कबूतर+झाड़] चिरचिटे की तरह की एक झाड़ी।

कबूतरबाज—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ कबूतरबाज] कबूतर पालने का शौकीन।

कबूतरी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ कबूतर] १ कबूतर की मादा। २ नाचनेवाली। ३. सुंदर स्त्री।—(बाजारू)।

कबूद[1]—वि॰ [फ़ा॰] नीला। आसमानी। कासनी।

कबूद[2]—संज्ञा पुं॰ १. नीला या आसमानी रंग। २ जवनोतन का एक भेद जिसे 'नीलकंठी' भी कहते हैं।

कबूदी—वि॰ [फ़ा॰] नीला। आसमानी।

कबूल[1]—संज्ञा पुं॰ [अ॰ कबूल] [संज्ञा कबूलियत, कबूली] स्वीकार। अंगीकार। मंजूर।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

यौ॰—कबूलसूरत। कबूलसूरत=सुंदर। रूपवान।

कबूल[2]—संज्ञा पुं॰ [?] ताजक ज्योतिष के १६ योगों में से एक।

कबूलना—क्रि॰ स॰ [अ॰ कबूल से नाम॰] स्वीकार करना। सकारना। मंजूर करना।

कबूलियत—संज्ञा पुं॰ [अ॰ कबूलियत] वह दस्तावेज जो पट्टा लेनेवाला पट्टे की स्वीकृति में ठेका या पट्टा देनेवाले को लिख दे। स्वीकारपत्र।

कबूली—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ कबूली] चने की दाल की खिचड़ी अथवा पुलाव।

कब्ज—संज्ञा पुं॰ [अ॰ क़ब्ज] १. ग्रहण। पकड़। अवरोध।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

कवाइद—संज्ञा पुं० [ग्र० कवायद] दे० 'कवायद'। उ०—काहि कवाइद कहत हैं वांधत किमि जल सोत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७३५।

कवाड—संज्ञा पुं० [स० कर्पट प्रा० कप्पट = चिथड़ा] [संज्ञा कवाड़ी] १ रद्दी चीज। काम में न ग्रानेवाली वस्तु। ग्रगड खगड।

यौ०—काठ कवाड़। कूड़ा कवाड़ = ग्रगड खगड चीज। टूटी फूटी वस्तु। तुच्छ वस्तु।

२ ग्रड वड काम। व्यर्थ का व्यापार। तुच्छ व्यवसाय।

कवाडखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कवाड़ + फा० खानह्] वह स्थान जहाँ वहुत सी टूटी फूटी या ग्रव्यवस्थित रूप मे वस्तुएँ रखी गई हों [को०]।

कवाडा—संज्ञा पुं० [हिं० कवाड] व्यर्थ की वात। झंझट। वखेडा।

कवाडिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कवाड़] १ टूटी फूटी, सडी गली चीजें वेचनेवाला ग्रादमी। ग्रगड खगड वेचनेवाला मनुष्य। तुच्छ व्यवसाय करनेवाला पुरुष।

कवाडिया[2]—वि० क्षुद्र। नीच।

कवाड़ी—संज्ञा पुं०, वि० [हिं० कवाड] [स्त्री० कवाड़िन] दे० 'कवाडिया'।

कवाव—संज्ञा पुं० [ग्र०] सीखों पर भूना हुग्रा मास।

विशेष—खूव वारीक कटे या कूटे हुए मास को वेसन मे मिलाकर नमक ग्रौर मसाले देकर गोलियाँ वनाते हैं। इन गोलियो को लोहे की सीख मे गोदकर घी का पुट देकर कोयले की ग्राँच पर भूनते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—भूनना।—लगना।—लगाना।—होना।

मुहा०—कवाव करना = जलाना। दुख देना। कष्ट पहुँचाना। कवाव लगना = कवाव पकना। कवाव होना = (१) भुनना। जलना। (२) क्रोध से जलना। जैसे,—तुम्हारी वात सुनकर तो देह कवाव हो जाती है।

कवावचीनी—संज्ञा स्त्री० [ग्र० कवावा + हिं० चीनी] १. मिर्च की जाति की एक लिपटनेवाली झाडी जो सुमात्रा, जावा ग्रादि टापुग्रो तथा भारतवर्ष में भी कहीं कहीं होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुछ कुछ वेर की सी पर नुकीली होती हैं ग्रौर उनकी खडी नसें उमडी हुई मालूम होती हैं। इसमे मिर्च के से गोल गोल फल गुच्छो मे लगते हैं। ये फल मिर्च से कुछ मुलायम ग्रौर खाने मे कडुए ग्रौर चरपरे होते हैं। इनके खाने के पीछे जीभ वहुत ठढी मालूम होती है। वैद्यक मे इसे दीपन, पाचक ग्रौर रेचक कहा है।

२ कवावचीनी का फल।

कवावी—वि० [ग्र० कवाव + फा० ई (प्रत्य०)] १ कवाव वेचनेवाला। १. कवाव खानेवाला। मासभक्षी।

यौ०—शरावी कवावी = मद्य-मास-भोजी।

कवाय(पु)—संज्ञा पुं० [ग्र० कवा] एक ढीला पहनावा। उ०—एक दोस्त हमहूँ किया, जेहि गल लाल कवाय। सव जग धोवी धोइ मरे, तो भी रग न जाय।—कवीर (शब्द०)।

कवायली—संज्ञा पुं० [ग्र० कवाइली] १. कवीलो या फिरको मे रहनेवाले लोग। किसी कवीले का व्यक्ति।

कवार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कारोवार या कवाड] १. व्यापार। रोजगार। उद्यम। व्यवसाय। लेनदेन। उ०—(क) एहि परिपालउँ सव परिवारू। नहिं जानउँ कछु ग्रउर कवारू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रानिन दिए वसन मनि भूषण राजा सहन भडार। मागध सूत भाट नट याचक जहँ तँह करहिं कवार।—तुलसी (शब्द०)। २ दे० 'कवाड़'।

कवार[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड या झाड़ी।

कवारना†—क्रि० स० [देश०] उखाडना। उत्पाटन करना।

कवाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर का रेशा जिसे वटकर रस्सा वनाते हैं।

कवाला—संज्ञा पुं० [ग्र० कवालह्] वह दस्तावेज जिसके द्वारा कोई जायदाद एक के ग्रधिकार से दूसरे के ग्रधिकार मे चली जाय, वयनामा, दानपत्र इत्यादि।

यौ०—कवालानवीस। कवाला नीलाम। काट कवाला = वैनामा मियादी। कवाला लिखना = ग्रधिकार दे देना। कवालेदार = जायदाद का ग्रधिकारपत्रधारी।

मुहा०—कवाला लिखाना या कवाला लेना = किसी जायदाद पर कब्जा करना। ग्रधिकार मे लाना। मालिक वनना। जैसे,—क्या तुमने उस घर का कवाला लिखा लिया है?

कवालानवीस—संज्ञा पुं० [ग्र० कवालह् + फा० नवीस] कवाला लिखने का काम करनेवाला मुहर्रिर।

कवालानीलाम—संज्ञा पुं० [फा० कवाला + पुर्त० लीलाम] नीलाम में विको हुई जायदाद की वह सनद जो नीलाम करनेवाला ग्रपनी ग्रोर से उसके खरीदनेवाले को दे। नीलाम का सर्टिफिकेट।

कवाहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [ग्र० कवाहत] दे० 'कवाहत'।

कवाहत—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] १ वुराई। खरावी। २. मुश्किल। दिक्कत। तरद्दुद। ग्रडचन। झझट। वखेडा। उ०—हमारे वसूल तो शाह साहव यह हैं कि निकाह मे कोई कवाहत नहीं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६१।

क्रि० प्र०—उठाना।—मे डालना।—मे पड़ना।

कवि†[1]—संज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि'। उ०—सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४४।

कवि[2]†—क्रि० वि० [हिं० कभी] दे० कभी उ०—कवि उत्तरि कवि पच्छिम धावै, सिलमल दीप मनु जाय समावै।—प्राण०, पृ० ४५।

कविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम [को०]।

कवित[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० कवित्त] दे० 'कवित्त'।

कवित[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कवित्व] कवित्व। कविकर्म। काव्य।

कविता[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कवयितृ, कवयिता] कविता करनेवाला। कवि। उ०—ज्ञानी गुनी चतुर ग्रौर कविता, राजा रक नरेश।—कवीर श०, भा० १, पृ० ६।

कविता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कविता] दे० 'कविता'।

मुहा०—कब का कब के, कब से = देर से। विलंब से। जैसे,—हम यहाँ कब के बैठे हैं, पर तुम्हारा पता नहीं। (जब क्रिया एकवचन हो तो 'कब का' और जब बहुवचन हो तो 'कब के' का प्रयोग होता है)। कब कब = कभी कभी। बहुत कम। उ०—कब कब मँगरू बोवै धान। सूखा डाला है भगवान।—(शब्द०)। कब ऐसा हो, कब ऐसा करें = ज्योंही ऐसा हो त्योंही ऐसा करें। जैसे,—वह तो इसी ताक में हैं कि कब बाप मरें, कब मालिक हो। कब नहीं = बराबर। सदा। जैसे,—हमने तुम्हारी बात कब नहीं मानी।

२ कदापि नहीं। नहीं। जैसे,—वह हमारी बात कब मानेंगे? (अर्थात् नहीं मानेंगे)।

मुहा०—कब का = कभी नहीं। नहीं। जैसे,—वह कब का देनेवाला है? (अर्थात् नहीं देनेवाला है।)

कब२(पु)—संज्ञा पु० [सं० कवि] दे० 'कवि'। उ०—गुण गज बंध तणा कब गावै।—रा० रू०, पृ० १६।

कबक—संज्ञा [फा०] चकोर।

कबज(पु)—संज्ञा पुं० [अ० कब्जह] दे० 'कब्जा'। उ०—काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर।—दादू०, पृ० ३८०। (ख) जालिम मिलै इजरयाल कबज करै जो जाना।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

कबड्डी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ लडकों के एक खेल का नाम।

विशेष—इसमें लडके दो दलों में होकर मैदान में मिट्टी का एक ढह बनाते हैं जिसे पाला या डाँडमेड कहते हैं। फिर एक दल पाले के एक ओर और दूसरा दूसरी ओर हो जाता है। एक लडका एक ओर से दूसरी ओर 'कबड्डी कबड्डी' कहता हुआ जाता है और दूसरे दल के लड़कों को छूने की चेष्टा करता है। यदि वह लडका किसी दूसरे दल के लडके को छूकर पाले के इस पार बिना साँस तोड़े चला आता है, तो दूसरे पक्ष के वे लड़के जिन जिनको इसने छुआ था, मर जाते हैं। अर्थात् खेल से अलग हो जाते हैं। यदि इसे दूसरे दल के लडके पकड़ लें और उसकी साँस उनके हद्द में ही टूट जाय तो उलटा वह मर जाता है। फिर दूसरे दल से एक लडका पहले दल की ओर 'कबड्डी कबड्डी' करता जाता है। यह तब तक होता रहता है जबतक किसी दल के सब खिलाडी शेष नहीं हो जाते। मरे हुए लड़के तबतक खेल से अलग रहते हैं जबतक उनके दल का कोई लडका विपक्षी के दल के लडकों में से किसी को न मार डाले। इसे वे जीना कहते हैं। यह जीना भी उसी क्रम से होता है जिस क्रम से वे मरे थे।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—कबड्डी खेलना = कूदना। फाँदना। कबड्डी खेलते फिरना = बेकाम फिरना। इधर उधर घूमना।

२ काँपा। कपा।

कबडिया—संज्ञा पुं० [हिं० कबाड़] [कबडिन] अवध की एक मुसलमान जाति का नाम जो तरकारी बोती और बेचती है।

कबर१—वि० [सं० कर्बुर] मिश्रित रंगोंवाला। चितकबरा।

कबर२—संज्ञा पुं० [सं० कवर] १. व्याख्याता। २ चोटी। ३ अम्ल। ४ नमक।

कबर३—संज्ञा स्त्री० [अ० कब्र] दे० 'कब्र'।

कबर४(पु)—अव्य [हिं० कब] कब तक। किस समय।

कबरस्तान—संज्ञा पुं० [अ० कब्र + फा० स्तान] दे० 'कब्रिस्तान'।

कबरा१—वि० [सं० कबर, प्रा० कब्बर] [स्त्री० कबरी] १ सफेद रग पर काले, लाल, पीले आदि दागवाला। जिसके शरीर का रग दोरंगा हो। चितला। उ०—कलुआ कबरा मोतिया झबरा बुचवा मोहि देखावै।—मलूक०, पृ० २५। २ कल्माष। शबला। अबलक।

विशेष—इस रग के लिये यह आवश्यक है कि या तो सफेद रग पर काले, पीले, लाल आदि दाग हों या काले पीले, लाल आदि रंगों पर सफेद दाग हों।

यौ०—चितकबरा।

कबरा२—संज्ञा पुं० [हिं० कौर] करील की जाति की एक प्रकार की फैलनेवाली झाडी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है कौर।

विशेष—इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। इसका व्यवहार ओषधि के रूप में भी होता है।

कबरिस्तान—संज्ञा पुं० [अ० कब्र + फा० स्तान] दे० 'कब्रिस्तान'।

कबरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोटी। जूडा। उ०—हौं बूझ्यों कबरीन सो क्यों कारी दरसाइ। कही जु रवि सनमुख रहै, सो कारो ह्वै जाय।—स० सप्तक, पृ० २८३।

कबरीमणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सिर का आभूषण। चूडामणि। २ सर्वश्रेष्ठ। उ०—प्रेम पगे चखि चार फल, कौशल्या के लाल। भक्तन की कबरीमणी शबरी करी कृपाल।—राम० धर्म०, पृ० २६१।

कबल—क्रि० वि० [अ० कब्ल] पहले। पूर्व में। पेश्तर। जैसे,—मैं आपके पहुँचने के कबल ही वहाँ से चला जाऊँगा।

कबलु—संज्ञा पुं० [सं० कमल] दे० 'कमल'। उ०—उलटे कबलु पवाले काया।—प्राण०, पृ० ७८।

कबहुँ†—क्रि०वि० [हिं० कब + हुँ] कभी। किसी समय। उ०—कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदुगाता।—मानस, ५।

कबहुँक†—क्रि० वि० [हिं० कबहुँ + क (प्रत्य०)] कभी। किसी समय। उ०—सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनाथ।—मानस।

कबाँण—संज्ञा स्त्री० [फा० कमान] दे० 'कमान'। उ०—सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पोगल दोडेह। सासधण लाल कबाँण ज्यँउ, ऊभी कड मोडेह।—ढोला०, दू० ८३।

कबा—संज्ञा पुं० [अ० कबा] एक प्रकार का पहनावा जो घुटनों के नीचे तक लंबा और कुछ कुछ ढीला होता है। यह आगे से खुला होता है और इसकी आस्तीन ढीली होती है। उ०—खोलकर बंदेकबा का मुल्के दिल गारत किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६७।

कफनचोर—संज्ञा पुं० [अ० कफन + हिं० चोर] १. कब्र खोदकर कफन चुरानेवाला। २ भारी चोर। गहरा चोर। ३. दुष्ट। वदमाश।

कफन दफन—संज्ञा पुं० [अ० कफ़न + दफ़न] अत्येष्टि। अतिम सस्कार [को०]।

कफनाना—क्रि० स० [अ० कफ़न से नाम०] गाड़ने या जलाने के लिये मुर्दे को कफन मे लपेटना।

कफनी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० कफन] वह कपडा जिसे मुर्दे के गले मे डालते हैं।

कफनी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० कर्पट] साधुओ के पहनने का एक कपड़ा जो बिना सिला होता है और उसके बीच मे सिर जाने के लिये छेद रहता है। मेखला।

कफपा—संज्ञा पुं० [फा० कफ़पा] पैर का तलवा।

कफल—वि० [सं०] श्लेष्मायुक्त। कफग्रस्त। कफवाला।

कफली—संज्ञा पुं० [हिं० खपली] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं। वि० दे० 'खपली'।

कफविरोधी—संज्ञा पुं० [स० कफविरोधिन्] काली मिर्च [को०]।

कफश—संज्ञा पुं० [फ़ा० कफश] १ जूता। नालदार जूता।

कफशबरदार—संज्ञा पुं० [फा० कफशबरदार] तुच्छ सेवक। जूता सवाहक।

कफस—संज्ञा पुं० [अ० कफ़स] १ पिंजरा। २ कावुक। दरवा। ३ वदीगृह। कैदखाना। उ०—रिहा करता कहीं सैयाद हमको मौसिमे गुल मे। कफस मे दम जो घबराता है सर दे दे पटकते हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८४७। ४ बहुत तंग और सकुचित जगह जहाँ वायु और प्रकाश न पहुँचता हो। ५ शरीर या कायापिंजर (ला०)।

कफा—संज्ञा पुं० [फा० कफा] रज। पीडा। क्लेश।

कफातिसार—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का अतिसार।

विशेष—इसमे रोगी का मल सफेद, गाढा, चिकना कफमिश्रित एव दुर्गंधयुक्त होता है।

कफावद—संज्ञा पुं० [फा कफा = गर्दन का पिछला भाग + हिं० वद] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी के नीचे आने पर पहलवान दाहिनी तरफ बैठकर अपना वायाँ हाथ विपक्षी की कमर मे डालकर अपने दाहिने हाथ और दाहिनी टाँग से विपक्षी की गर्दन दबाता है और वाएँ हाथ से उसका जाघियाँ पकड़कर उसे उलटकर चित कर देता है।

कफारि—संज्ञा पुं० [सं०] सोठ [को०]।

कफालत—संज्ञा पुं० [अ० कफ़ालत] जिम्मेदारी। जमानत।

यौ०—कफालतनामा = जमानतनामा।

कफाशय—संज्ञा पुं० [स०] वह स्थान जहाँ पर कफ रहता है।

विशेष—वैद्यकशास्त्रानुसार ये स्थान पाँच हैं—आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और सधियाँ।

कफिला—संज्ञा पुं० [अ० कफ] लकडी या लोहे की कोनिया जो जहाजों मे आड़े और वेडे शहतीरो को जोडने के लिये लगाई जाती है।

कफी¹—वि० [सं० कफिन्] कफ की अधिकता से पीडित। कफी। कफप्रदान। श्लैष्मिक।

कफी²—संज्ञा पुं० हाथी [को०]।

कफील—संज्ञा पुं० [अ० कफ़ील] जामिन। जिम्मेवार।

क्रि० प्र०—होना।

कफेदस्त—संज्ञा पुं० [फा० कफदस्त] हथेली [को०]।

कफेलु—वि० [सं०] कफप्रधान। कफी। श्लैष्मिक।

कफोणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कफोणी। कोहनी। टिहुनी।

कफोदर—संज्ञा पुं० [स०] कफ से उत्पन्न पेट का एक रोग।

विशेष—इस रोग मे शरीर मे सुस्ती, भारीपन और सूजन हो जाती है, भोजन मे अरुचि रहती है, खाँसी आती है और पेट भारी रहता है, मतली मालूम होती है और पेट मे गुड़गुड़ाहट रहती है तथा शरीर ठढा रहता है।

कफ्फ—संज्ञा पुं० [सं० कफ] दे० 'कफ' उ०—कबीर वैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई वाँहि। वैद न वेदन जानही, कफ्फ करेजे माँहि।—क० सा० सं०, पृ० ७६।

कवंध—संज्ञा पुं० [सं० कबन्ध] १ पीपा। कडाल। २. बादल। मेघ। ३ पेट। उदर। ४ जल। ५. बिना सिर का धड़। रुड। उ०—(क) कूदत कवध के कदव वव सी करत धावत देखावत हैं लाघो राम वान के। तुलसी महेश विधि लोकपाल देवगण देखत विमान चढे कौतुक मसान से।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अपनो हित रावरे से जो पै सूझै। तो जनु तनु पर अछत सीस सुधि क्यो कवंध ज्यो जूझै।—तुलसी (शब्द०)। ६. एक दानव जो देवी का पुत्र था। उ०—आवत पथ कवध निपाता। तेहि सव कही सीय की वाता।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसका मुँह इसके पेट मे था। कहते हैं, इद्र ने एक बार उसे वज्र से मारा था और इसके सिर और पैर इसके पेट मे घुस गए थे। इसे पूर्वजन्म का नाम विश्वावसु गंधर्व लिखा है। रामचद्र जी से और इससे दडकारण्य मे युद्ध हुआ था। रामचद्र जी ने इसके हाथ काटकर इसे जीता ही जमीन मे गाड दिया था।

७. राहु। ८. एक प्रकार के केतु।

विशेष—ये सख्या मे ९६ हैं और आकृति मे कबंध से वतलाए गए हैं। ये काल के पुत्र माने गए हैं और इनके उदय का फल दारुण वतलाया गया है।

९ एक गंधर्व का नाम। १० एक मुनि का नाम।

कवधी¹—वि० [सं० कवधिन्] जलवाला (वादल) [को०]।

कवधी²—संज्ञा पुं० १ मरुत। २ कात्यायन ऋषि [को०]।

कव¹—क्रि० वि० [स० कदा, हिं० कव] १ किस समय? किस वक्त? जैसे, तुम कव घर जाओगे?

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रश्न मे होता है।

कपोलकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनगढ़ंत। बनावटी बात। गप्प।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपोलकल्पित—वि० [सं०] बनावटी। मनगढ़ंत। झूठ।

कपोलपालि, कपोलपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपोलदेश। कपोलस्थान। कपोलभित्ति। गंडस्थल। उ०—कोमल कपोलपाली में सीधी सादी स्मितरेखा, जानेगा वही कुटिलता जिसने भौं में बल देखा।—आँसू, पृ० २२।

कपोलराग—संज्ञा पुं० [सं०] गालों पर की लाली [को०]।

कपोला—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

कप्तान—संज्ञा पुं० [अं० कैप्टेन] १ जहाज या सेना का एक अफसर। २ दल का नायक। अधिपति। जैसे,—क्रिकेट का कप्तान।

कप्प(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपि] दे० 'कपि'।

कप्पड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट] दे० 'कप्पर'। उ०—चोर वरन्ने कप्पडे सावंर घण आणेह।—ढोला०, दू० १३९।

कप्पना(पु)—क्रि० स० [सं० कल्पन > प्रा० कप्पण] दे० 'काटना'। उ०—कहि सुंदर अपना वधनु कप्पै सोई बंधनु खोलै।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २७५।

कप्पर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट] कपड़ा। वस्त्र। उ०—कर खग खप्पर विगत कप्पर पुहुमि उप्पर नचत हैं। वैताल भूत पिशाच केती संग गहि महि रचत हैं।—रघुराज (शब्द०)।

कप्परिय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कार्पटिक] खप्परधारी। भिक्षुक। उ०—सहस सत्त कप्परिय भेष कीनों तिन वार।—पृ० रा०, २५।३५५।

कप्फा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कफ़ = झाग, गाज] १ अफीम का पसेव जिसमें कपड़ा डुबोकर मदक बनाने के लिये सुखाते हैं। २ वह वस्त्र जिसे किसी बरतन के मुँह पर बाँधकर उसके ऊपर अफीम सुखाई जाती है। साफी। छनना।

कप्याख्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधद्रव्य। धूप [को०]।

कप्यास¹—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर का चूतड़।

कप्यास²—वि० [सं०] लाल। रक्त।

कफ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह गाढ़ी लसीली और अंठेदार वस्तु जो खाँसने या थूकने से मुँह से बाहर आती है तथा नाक से भी निकलती है। श्लेष्मा। बलगम। २. वैद्यक के अनुसार शरीर के भीतर की एक धातु जिसके रहने का स्थान आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधि हैं।

विशेष—इन स्थानों में रहनेवाले कफ का स्थान क्रमशः क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मा है। आधुनिक पाश्चात्य मत से इसका स्थान साँस लेने की नलियाँ और आमाशय है। कफ कुपित होने से दोषों में गिना जाता है।

यौ०—कफकारक। कफकृत। कफक्षय।

कफ²—संज्ञा पुं० [अं० कफ] कमीज़ या कुर्ते की आस्तीन के आगे की वह दोहरी पट्टी जिसमें बटन लगाते हैं।

यौ०—कफदार। जैसे—कफदार कुर्ता।

कफ³—संज्ञा पुं० [अ० कफ्फ़ फ़ा० कफ़] लोहे का वह अर्धचंद्राकार टुकड़ा जिससे ठोककर चकमक से आग झाड़ते या निकालते हैं। नाल। उ०—काया कफ, चकमक झारों बारबार। तीन बार धुआँ भया, चौथे परा अँगार।—कबीर (शब्द०)। २ झाग। फेन।

कफ⁴—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली। पंजा।

कफकर—वि० [सं०] कफ उत्पन्न करनेवाला [को०]।

कफकारक—वि० [सं०] दे० 'कफकर' [को०]।

कफकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] थूक। लार [को०]।

कफक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष्मा। तपेदिक [को०]।

कफगंड—संज्ञा पुं० [सं० कफगण्ड] गले का एक रोग [को०]।

कफगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा० कफगीर] हथेली की तरह की लंबी डाँडी की कड़छी जिससे दाल, घी आदि का झाग निकालते हैं।

कफगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का एक रोग जिसमें उदर में गाँठ पड़ जाती है [को०]।

कफघ्न—वि० [सं०] कफविनाशक [को०]।

कफचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० कफचह्] छोटा कफगीर। चमचा।

कफज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कफ की वृद्धि या संचय से उत्पन्न होनेवाला ज्वर [को०]।

कफणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहनी [को०]।

कफदार—संज्ञा पुं० [अं० कफ + फ़ा० दार] कड़ाहट के लिये कपड़े में जहाँ भी कफ डाला जाय।

कफन—संज्ञा पुं० [अ० कफ़न] वह कपड़ा जिसमें मुर्दा लपेटकर गाड़ा या फूँका जाता है।

यौ०—कफनखसोट। कफनचोर। कफनकाठी।

मुहा०—कफन को कौड़ी न होना या रहना = अत्यंत दरिद्र होना। कफन को कौड़ी न रखना = (१) जो कमाना वह खा लेना। धन संचित न करना। (२) अत्यंत त्यागी होना। (साधु के लिये)। कफन फाड़कर उठना = (१) मुर्दे का उठना। मुर्दे का जी उठना। (२) सहसा उठ पड़ना। कफन फाड़कर बोलना या चिल्लाना = सहसा जोर से चिल्लाना। कफन सिर से बाँधना = मरने पर तैयार होना। जान जोखिम में डालना।

कफनकाठी—संज्ञा पुं० [अ० कफन + हिं० काठी] अंत्येष्टि कर्म की व्यवस्था [को०]।

कफनखसोट—वि० [अ० कफन + हिं० खसोट] [संज्ञा कफनखसोटी] १. कंजूस। मक्खीचूस। अत्यंत लोभी। सूमड़ा।

विशेष—पूर्व काल में डोम श्मशान में मुर्दों का कफन फाड़कर कर की तरह लेते थे, इसीलिये उन्हें कफनखसोट कहते थे।

२ दूसरे के माल को जबरदस्ती छीनकर हड़प जानेवाला।

कफनखसोटी—संज्ञा स्त्री० [अ० कफन + हिं० खसोटना] १ डोमों का कर जो श्मशान पर मुर्दों का कफन फाड़कर लेते थे। उ०—जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान। कफनखसोटी को करम, सब ही एक समान।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २ इधर उधर से भले या बुरे ढंग से धन एकत्र करने की वृत्ति। ३. कंजूसी। सूमड़ापन।

मे कोकन से दक्खिन पश्चिमी घाट तक और लंका, टनासरम, वर्मा आदि स्थानो मे होता है। इसका पत्ता तेजपात और छाल दारचीनी है। इससे भी कपूर निकलता है।

वरास—यह वोर्नियो और सुमात्रा में होता है और इसका पेड़ बहुत ऊँचा होता है। इसके सौ वर्ष से अधिक पुराने पेड के बीच से तथा गांठो मे से कपूर का जमा हुआ डला निकलता है और छिलको के नीचे से भी कपूर निकलता है। इस कपूर को वरास, भीमसेनी आदि कहते हैं और प्राचीनो ने इसी को अपक्व कहा है। पेड मे कभी कभी छेव लगाकर दूध निकालते हैं जो जमकर कपूर हो जाता है। कभी पुराने पेड की छाल फट जाती है और उससे आप से आप दूध निकलने लगता है जो जमकर कपूर हो जाता है। यह कपूर वाजारो मे कम मिलता है और महँगा विकता है। इसके अतिरिक्त रासायनिक योग से कितने ही प्रकार के नकली कपूर वनते हैं। जापान मे दारची कपूरी के तेल से (जो लडकियो को पानी मे रखकर खीचकर निकाला जाता है) एक प्रकार कपूर का वनाया जाता है। तेल भूरे रग का होता है और वार्निश के काम आता है।

कपूर स्वाद मे कड़ुआ, सुगध मे तीक्ष्ण और गुण मे शीतल होता है। यह कृमिघ्न और वायुशोधक होता है और अधिक मात्रा मे खाने से विष का काम करता है।

पर्या०—घनसार। चद्र। सिताभ।

मुहा०—**कपूर खाना** = विष खाना। उ०—वूडे जलजात कर कदली कपूर खात दाडिम दरकि अंग उपमा न तौलै री। तेरे स्वास सौरभ को त्रिविध समीर धीर विविध लतान तीर वन वन डोलै री।—वेनी प्रवीन (शब्द०)।

कपूरकचरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कपूर+कचरी] एक वेल जिसकी जड़ सुगंधित होती है और दवा के काम मे आती है। आसाम के पहाड़ी लोग इसकी पत्तियो की चटाई वनाते हैं। इसकी जड खाने में कडुई, चरपरी और तीक्ष्ण होती है तथा ज्वर हिचकी और मुँह की विरसता को दूर करती है।

पर्या०—गधपलाशी। गंधमूली। गधोली। सितरुती।

कपूरकाट—सज्ञा पुं० [हिं० कपूर+काट] एक प्रकार का महीन जड़हन धान जिसका चावल सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

कपूरमणि—सज्ञा पुं० [स० कर्पूरमणि] १ एक प्रकार का रत्न। २ एक प्रकार का श्वेत पाषाण जो औषध के काम आता है [को०]।

कपूरा—सज्ञा पु० [हिं० कपूर = कपूर के ऐसा सफेद] भेड, वकरी आदि चौपायो का अडकोश।

कपूरी१—वि० [हिं० कपूर] १ कपूर का वना हुआ। २ हलके पीले रग का।

कपूरी२—सज्ञा पु० १ एक रंग जो कुछ हलका पीला होता है और केसरी फिटकरी और हरसिंगार के फूल से वनता है। २ एक प्रकार का पान जो वहुत लवा और चौडा होता है। इसके किनारे कुछ लहरदार होते हैं।

कपूरी३—सज्ञा स्त्री० एक प्रकार की वूटी जो पहाडो पर होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लंवी लवी होती हैं जिनके बीच मे सफेद लकीर होती है। इसकी जड़ मे से कपूर की सी सुगंध निकलती है।

कपोत—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कपोतिका, कपोती] १. कवूतर। २. परेवा।

यौ०—धूम्रकपोत। चित्रकपोत। हरितकपोत। कपोतमुद्रा।

३. पक्षी मात्र। चिडिया।

यौ०—कपोतपालिका। कपोतारि।

४ भूरे रग का कच्चा सुरमा।

कपोतक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा कवूतर। २ हाथ जोडने का एक ढग। ३ सुरमा धातु [को०]।

कपोतकीया—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या स्थान जहाँ कवूतरो की वहुतायत हो [को०]।

कपोतपालिका, कपोतपाली—सज्ञा स्त्री० [स०] १. कावुक। कवूतरो का दर्वा। २. कवूतरो के वैठने की छतरी। चिडियाखाना।

कपोतवका—सज्ञा स्त्री० [सं० कपोतवङ्का] ब्राह्मी वूटी।

कपोतवर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी इलायची।

कपोतवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] सचयहीन वृत्ति। रोज कमाना रोज खाना।

कपोतव्रत—सज्ञा स्त्री० [सं०] चुपचाप दूसरे के अत्याचारो को सहना। दूसरे के पहुँचाए हुए अत्याचार या कष्ट पर चूँ न करना। उ०—है इत लाल कपोतव्रत कठिन प्रीति की चाल। मुख सो आह न भाखिहौं निज सुख करो हलाल (शब्द०)।

विशेष—कवूतर कष्ट के समय नही वोलता, केवल हर्ष के समय गुटर गूँ की तरह का अस्फुट स्वर निकालता है।

कपोतसार—सज्ञा पुं० [स०] सुरमा (धातु)।

कपोताघ्रि—सज्ञा स्त्री० [सं० कपोताङ्घ्रि] १. गधद्रव्य। २. प्रवाल विद्रुम। मूँगा। उ०—सुपिरा नटी नली धमनि कपोताघ्रि परवाल।—अनेकार्थ०, पृ० ६४।

कपोताजन—सज्ञा पुं० [स० कपोताञ्जन] सुरमा (धातु)।

कपोतारि—सज्ञा पुं० [सं०] वाज पक्षी।

कपोती१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. कवूतरी। २. पेडुकी। ३. कुमरी।

कपोती२—वि० [स०] कपोत के रंग का। खाकी। धूमले रग का। फाख्तई रग का। नीले रग का।

कपोल१—सज्ञा पुं० [स०] गाल। उ०—तोहि कपोल वाएँ तिल परा। जेइँ तिल देख सो तिल तिल जरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १९३।

यौ०—कपोलकल्पना। कपोलकल्पित।

कपोल२—सज्ञा पुं० [सं०] नृत्य या नाटय मे कपोल की चेष्टाएँ।

विशेष—ये सात प्रकार की होती हैं—(१) कुचित (लज्जा के समय) (२) रोमाचित (भय के समय)। (३) कपित (क्रोध के समय)। (४) फुल्ल (हर्ष के समय)। (५) सम (स्वाभाविक)। (६) क्षाम (कष्ट के समय)। (७) पूर्ण (गर्व या उत्साह के समय)।

एक कन्या। ६ रेणुका नाम की सुगंधित ओषधि। ७ मध्य प्रदेश की एक नदी।

कपिलाक्षा संज्ञा स्त्री०[सं०] १. एक प्रकार की मृगी। २ एक प्रकार का शिशपा वृक्ष [को०]।

कपिलागम—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्यशास्त्र।

कपिलाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ आचार्य कपिल। २ विष्णु [को०]।

कपिलाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र जिनका घोड़ा सफेद है।

कपिलोमफला—संज्ञा पुं० [सं०] केवाँच। कपिकच्छु [को०]।

कपिलोह—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल [को०]।

कपिवक्त्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारद [को०]।

कपिश[1]– वि० [सं०] १. काला और पीला रंग मिलाने से जो भूरा रंग बने उस रंग का। मटमैला। उ०—पुरइन कपिश निचोल विविध रंग विहँसत सचु उपजावै। सूर स्याम आनंद कंद की शोभा कहत न आवै।—सूर (शब्द०)। २ पीला भूरा। लाल भूरा। बादामी। उ०—कपिश केश कर्कश लगूर खल दल बल भानन।—तुलसी (शब्द०)।

कपिश[2]—संज्ञा पुं० १ भूरा या बादामी रंग। २ लाल और काले रंग का मिश्रित रंग। ३. धूप द्रव्य। ४ एक प्रकार का वाण। ५ एक प्रकार का पद्य।

कपिशांजन—संज्ञा पुं० [सं० कपिशाञ्जन]एक प्रकार की मदिरा[को०]।

कपिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का मद्य। २ एक नदी का नाम जिसे आजकल कसाई कहते हैं और जो मेदिनीपुर के दक्षिण मे पड़ती है। रघुवंश में लिखा है कि रघु इसी नदी को पार करके उत्कल देश मे गए थे। ३ कश्यप की एक स्त्री जिससे पिशाच उत्पन्न हुए थे। ४ माधवी लता (को०)।

कपिशाक—संज्ञा पुं० [सं०] करमकल्ला।

कपिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपिशा की बनी मदिरा। २ एक देव [को०]।

कपिशित—वि० [सं०] भूरा या कपिश किया हुआ [को०]।

कपिशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मदिरा [को०]।

कपिशीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मद्य [को०]।

कपिशीर्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दीवार का सबसे ऊपरी भाग जो कपि के शीर्ष या सिर जैसा हो। कौसीस [को०]।

कपिशीर्ष[2]—वि० कपि के शीर्ष तुल्य प्रभाग से युक्त [को०]।

कपिशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल [को०]।

कपिशीर्ष्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वाद्ययंत्र [को०]।

कपिष्ठल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम, और उनके गोत्र के लोग [को०]।

कपिष्ठल संहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की एक संहिता [को०]।

कपिस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपिश] १ पीले भूरे रंग का। २. रेशमी। उ०—कनक कपिश अंबर, संवर करत मान भग।—छीत०, पृ० ५३।

कपींद्र—संज्ञा पुं० [सं० कपींद्र] १ हनुमान। २ सुग्रीव। ३ जाम्बवान्।

कपी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँपना] घिर्नी। गिरनी।

कपी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] वानरी। मर्कटी [को०]।

कपी[3]—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० कपि] बंदर। शाखामृग। वानर।

कपीज्य—संज्ञा पुं०[सं०]१. राम। २. सुग्रीव। ३ क्षीरिका नामक वृक्ष।

कपीतन—संज्ञा पुं० [सं०] अनेक वृक्षों के नाम। जैसे—अश्वत्थ, आमड़ा, शिरीष, बिल्व आदि।

कपीश—संज्ञा पुं० [सं०] वानरों का राजा। जैसे—हनुमान, सुग्रीव, वालि इत्यादि।

कपीष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

कपुच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] १ मुंडन के बाद शिखा रखने का संस्कार। चूड़ाकर्म। २. काकपक्ष [को०]।

कपुष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कपुच्छल' [को०]।

कपूत—संज्ञा पुं० [सं० कुपुत्र] वह पुत्र जो अपने कुलधर्म के विरुद्ध आचरण करे। बुरी चाल चलन का पुत्र। बुरा लड़का। उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाखन को बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—तुलसी (शब्द०)।

कपूती संज्ञा स्त्री० [हिं० कपूत] पुत्र के अयोग्य आचरण। नालायकी।

कपूर—संज्ञा पुं० [सं० कर्पूर, पा० कप्पूर, जावा कापूर] एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित द्रव्य जो वायु मे उड़ जाता है और जलाने से जलता है।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार कपूर दो प्रकार का होता है। एक पक्व दूसरा अपक्व। राजनिघंटु और निघंटुरत्नाकर मे पोतास, भीमसेन, हिम इत्यादि इसके बहुत भेद माने गए हैं और इनके गुण भी अलग अलग लिखे हैं। कवियों और साधारण गँवारों का विश्वास है कि केले मे स्वाती की बूँद पड़ने से कपूर उत्पन्न होता है। जायसी ने पद्मावत मे लिखा है—'पड़ै धरनि पर होय कचूरू। पड़ै कदलि महँ होय कपूरू'। आजकल कपूर कई वृक्षों से निकाला जाता है। ये सबके सब वृक्ष प्राय दारचीनी की जाति के हैं। इनमे प्रधान पेड़ दारचीनी कपूरी मियाने कद का सदाबहार पेड़ है जो चीन, जापान, कोचीन और फारमूसा (ताइवान) मे होता है। अब इसके पेड़ हिंदुस्तान मे भी देहरादून और नीलगिरि पर लगाए गए हैं और कलकत्ते तथा सहारनपुर के कंपनी बागों मे भी इनके पेड़ हैं। इससे कपूर निकालने की विधि यह है—इसकी पतलीपतली टहनियों और डालियों तथा जड़ों के टुकड़े बंद बर्तन में जिसमे कुछ दूर तक पानी भरा रहता है, इस ढंग से रखे जाते हैं कि उनका लगाव पानी से न रहे। बर्तन के नीचे आग जलाई जाती है। आँच लगने से लकड़ियों मे से कपूर उड़कर ऊपर के ढक्कन मे जम जाता है। इसकी लकड़ी भी संदूक आदि बनाने के काम मे आती है।

दालचीनी जीलानी—इसका पेड़ ऊँचा होता है। यह दक्खिन

विशेष—यह रग हल्दी, टेसू और ग्रमहर के सयोग से बनता है। हरसिंगार से भी यह रग बनाया जाता है।

कपासी[3]—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ भोटिया बादाम।

विशेष—इसका पेड मभोले डील का होता है। इसकी लकडी गुलाबी रंग की होती है जिससे कुरसी, मेज आदि बनते हैं। इसका फल खाया जाता है और भोटिया बादाम के नाम से प्रसिद्ध है।

२ एक प्रकार का झाड या छोटा वृक्ष।

विशेष—यह प्राय सारे भारत, मलयद्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाडे मे फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

कपाहण—सज्ञा पु०[स० कार्पापण] सोने, चाँदी या ताँबे का सिक्का। उ०—दम या कपाहण पास हों तो निकालो।—वँ० न०, पृ०।

कपिंजल[1]—सज्ञा पु० [स० कपिञ्जल] १ चातक। पपीहा। २. गौरा पक्षी। ३ भरदूल। भरुही। ४ तीतर। ५ एक मुनि का नाम।

कपिंजल[2]—वि० पीला। पीले रग का। हरताली रग का।

कपिंद(ु)—सज्ञा पु० [सं० कपीन्द्र] दे० 'कपींद्र'। उ०—रामकृपा बलु पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहु गिरिंदा—मानस, ५।३५।

कपि—सज्ञा पु० [सं०] १ बदर। २ हाथी। गज। ३. करंज। कजा। ४ शिलारस नाम की सुगधित ओपधि। ५ सूर्य। ६. एक प्रकार का धूप(को०)। ७. एक ऋषि का नाम (को०)।

कपिकदुक—सज्ञा पु० [स० कपिकन्दुक] खोपडा। कपाल।

कपिकच्छु—सज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच। करेंच। मर्कटी। वानरी। कौंछ।

कपिकच्छुरा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'कपिकच्छु'।

कपिकेतन, कपिकेतु—सज्ञा पुं० [स०] अर्जुन जिनकी ध्वजा पर हनुमान जी थे।

कपिकेश—वि० [सं०] भूरे बालोंवाला [को०]।

कपिचूड़—सज्ञा पुं० [स० कपिचूड] [स्त्री० कपिचूड़ा] आमड़ा [को०]।

कपिजंधिका—सज्ञा स्त्री० [स० कपिजङ्घिका] चींटी की एक जाति। तैलपिपीलिका [को०]।

कपितैल—सज्ञा पु० [स०] तुरुष्क नामक गंधद्रव्य। लोबान। शिलारस [को०]।

कपित्थ—सज्ञा पु० [सं०] १. कैथे का पेड २. कैथे का फल। उ०—नाथ, बली हो कोई कितना, यदि उसके भीतर है पाप। तो गजभुक्त कपित्थ तुल्य वह निष्फल होगा अपने आप।—साकेत, पृ० ३८०। ३ नृत्य मे एक प्रकार का हस्तक जिसमे अँगूठे की छोर को तर्जनी की छोर से मिलाते हैं।

कपिध्वज—सज्ञा पुं० [स०] अर्जुन। उ०—जयति कपिध्वज के कृपालु कवि, वेद पुराण विधाता व्यास।—साकेत, पृ० ३६६।

कपिनाशन—सज्ञा पु० [स०] एक मादक पेय [को०]।

कपिपति—सज्ञा पुं० [स०] १ सुग्रीव। २. हनुमान। उ०—कपिपति रीछ निसाचर राजा। अगदादि जे कीस समाजा।—मानस।

कपिप्रभा—सज्ञा स्त्री० [स०] केवाँच। कौंछ।

कपिप्रभु—सज्ञा पु० [स०] १ राम। २ सुग्रीव [को०]।

कपिप्रिय—सज्ञा पु० [स०] कैथ।

कपिरथ—सज्ञा पु० [स०] १. श्रीरामचद्र जी। २. अर्जुन।

कपिल[1]—वि० [स०] भूरा। मटमैला। तामडा रग का। २. सफेद। जैसे,—कपिला गाय।

कपिल[2]—सज्ञा पु० १, अग्नि। २ कुत्ता। ३ चूहा। ४. शिलाजतु। शिलाजीत। ५ महादेव। ६ सूर्य। ७ विष्णु। ८. एक प्रकार का सीसम। बरना। ९ एक मुनि जो साख्यशास्त्र के आदिप्रवर्तक माने जाते हैं। इनका उल्लेख ऋग्वेद मे है। उ०—आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला।—मानस, १०. पुराण के अनुसार एक मुनि जिन्होंने सगर के पुत्रो को भस्म किया था। ११. कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम। कपिल देश।—वृहत्० पृ० ८५।

कपिलता[1]—सज्ञा स्त्री० [स० कपि + लता] १ केवाँच। कौंछ। २ गजपिप्पली।

कपिलता[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भूरापन। मटमैलापन। २ ललाई ३ पीलापन। ४ सफेदी।

कपिलत्व—सज्ञा पु० [स०] १ ललाई। उ०—कपिलत्व या तीक्ष्ण के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि माणवक है।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३३६। २ दे० 'कपिलता'।

कपिलद्रुम—सज्ञा पु० [स०] काक्षी नामक एक वृक्ष जिसकी लकड़ी सुगधित होती है [को०]।

कपिलधारा—सज्ञा पु० [स०] १ काशी का एक तीर्थ स्थान। २ गया का एक तीर्थस्थान।

कपिलवस्तु—सज्ञा पुं० [स०] गौतमबुद्ध का जन्मस्थान। यह स्थान नैपाल की तराई मे बस्ती जिले में था।

कपिलस्मृति—सज्ञा स्त्री० [स०] सांख्यसूत्र [को०]।

कपिलांजन—सज्ञा पु० [सं० कपिलाञ्जन] शिव [को०]।

कपिला[1]—वि० स्त्री० [स०] १ कपिला रग की। भूरे रग की। मटमैले रग की। २ सफेद रग की। जैसे,—कपिला गाय। ३. जिसके शरीर मे सफेद दाग हो। जिसके शरीर मे सफेद फूल पड़े हों। जैसे, कपिला कन्या (मनु)। ४ सीधी सादी। भोली भाली।

कपिला[2]—सज्ञा स्त्री० १ सफेद रग की गाय। उ०—जिमि कपिलहिं घालै हरहाई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस रग की गाय बहुत अच्छी और सीधी समझी जाती है।

२. एक प्रकार की जोंक। ३ एक प्रकार की चींटी। माटा। ४. पुडरीक नामक दिग्गज की पत्नी। ५. दक्ष प्रजापति की

कपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि०- कपाली, कापालिक] १ खोपड़ा। खोपड़ी।
यौ०—कपालक्रिया। कपालमाला। कपालमोचन।
२ ललाट। मस्तक। ३ अदृश्य। भाग्य।
मुहा०—कपाल खुलना=(१) भाग्य उदय होना। (२) सिर खुलना। सिर से लोहू निकलना।
४ घड़े आदि के नीचे या ऊपर का भाग। खपड़ा। खर्पर। ५ मिट्टी का एक पात्र जिसमे पहले भिक्षुक लोग भिक्षा लेते थे। खप्पर। ६ वह बरतन जिसमे यज्ञो मे देवताओ के लिये पुरोडाश पकाया जाता था।
यौ०—पचकपाल। अष्टकपाल। एकादशकपाल। कपालसभव रत्न=(१) गजमुक्ता। (२) नागमणि। उ०—कपालसभव रत्न हाथी के सिर से निकली मणि या नाग के सिर से निकली मणि०।—वृहत्, पृ० १६५।
७ वह बर्तन जिसमे भड़भूजे दाना भूनते हैं। खपड़ी। ८. अडे के छिलके का आधा भाग। ९ कछुए का खोपड़ा। १० ढक्कन। ११ कोढ़ का एक भेद।

कपाल अस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कपालास्त्र'।

कपालक[1]—संज्ञा पुं० [सं० कापालिक] दे० 'कापालिक'।

कपालक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] प्याला। [को०]।

कपालक[3]—वि० प्याले के आकार का [को०]।

कपालकेतु—[सं०] बृहत्सहिता के अनुसार एक केतु।
विशेष—इसकी पूँछ धुएँदार प्रकाशरश्मि तुल्य होती है। यह आकाश के पूर्वार्ध मे अमावस्या के दिन उदय होता है। इस तारे के उदय से भारी अनावृष्टि होती है और अकाल पड़ता है।

कपालक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतसस्कार के अतर्गत एक कृत्य जिसमें जलते हुए शव की खोपड़ी को बाँस या किसी और से फोड़ देते हैं।

कपालचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य मे एक प्रकार की क्रिया जिसमे सिर को नीचे जमीन पर टेककर और पैर ऊपर करके चलते हैं।

कपालनलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तकुली। २. घिरनी जिसमे सूत लपेटा या भरा जाय [को०]।

कपालभाती—संज्ञा स्त्री० [सं०]हठयोग की एक क्रिया। इसमे वेगपूर्वक पूरक और रेचक नलिका द्वारा श्वास खींचा और छोड़ा जाता है [को०]।

कपालभाथी—संज्ञा स्त्री० [सं० कपालभाती] दे० 'कपालभाती'। उ०—त्राटक निरपै नौली फेरैं। कपालभाथी नीके हेरैं। —सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १०३।

कपालमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काली। दुर्गा [को०]।

कपालमाली—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

कपालमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] काशी का एक तालाब जहाँ लोग स्नान करते हैं।

कपालसधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कपालसन्धि] ऐसी सधि जिसमे किसी पक्ष को दबना न पड़े। समान सधि। समान शर्तों पर हुई सधि [को०]।

कपालसश्रय—संज्ञा पुं० [सं०]वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच मे न हो और दोनो का मित्र बना रहे।

कपालसोधनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कपाल + हिं० सोधनी]हठयोग की एक क्रिया। उ०—बायें सेती रेचिये हौरे हौरे जान। कपाल-सोधनी जानिये चरणदास पहिचान।—अष्टाग०, पृ० ७७।

कपालास्त्र—संज्ञा पुं०[सं०]१ एक प्रकार का अस्त्र। २. ढाल[को०]।

कपालि—संज्ञा पुं० [सं० कपालिन्] शिव [को०]।

कपालिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कापालिक] दे० 'कापालिक'।

कपालिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खोपड़ी। २. घड़े के नीचे या ऊपर का भाग। ३ दाँतो का एक रोग जिसमे दाँत टूटने लगते हैं। दतशर्करा। ४. काली। रणचडी। ५. दुर्गा (को०)।

कपालिनी—संज्ञा स्त्री०[सं०] दुर्गा। शिवा।

कपाली—संज्ञा पुं० [सं० कपालिन्] [स्त्री० कपालिनी] १ शिव। महादेव। २. भैरव। उ०—करैं केलि काली कपाली समेतं। —हम्मीर०, पृ० ५९। ३ ठीकरा लेकर भीख माँगनेवाला भिक्षुक। ४ एक वर्णसकर जाति जो ब्राह्मणी माता और धीवर बाप से उत्पन्न मानी जाती है। कपरिया।

कपास—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्पास] [वि कपासी] एक पौधा जिसके ढेढ से रुई निकलती है।
विशेष—इसके कई भेद हैं। किसी किसी के पेड़ ऊँचे और बड़े होते हैं, किसी का झाड़ होता है, किसी का पौधा छोटा होता है, कोई सदाबहार होता है, और कितने की काश्त प्रति वर्ष की जाती है। इसके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार के होते हैं और फूल भी किसी का लाल, किसी का पीला तथा किसी का सफेद होता है। फूलो के गिरने पर उनमे ढेंढ़ लगते हैं, जिनमे रूई होती है। ढेंढ़ो के आकार और रग भिन्न भिन्न होते हैं। भीतर की रूई अधिकतर सफेद होती है, पर किसी किसी के भीतर की रूई कुछ लाल और मटमैली भी होती है और किसी की सफेद होती है। किसी कपास की रुई चिकनी और मुलायम और किसी की खुरखुरी होती है। रुई के बीच मे जो बीज निकलते हैं वे बिनौले कहलाते हैं। कपास की बहुत सी जातियाँ है, जैसे, नरमा, नदन, हिरगुनी, कील, बरदी, कटेली, नदम, रोजी, कुपटा, तेलपट्टी, खानपुरी इत्यादि।
क्रि० प्र०—ओटना=चरखी मे रूई डालकर बिनौले को अलग करना। उ०—आए थे हरिभजन को ओटन लगे कपास। —(शब्द०)।
मुहा०—दही के धोखे कपास खाना=और को और समझना। एक ही प्रकार की वस्तुओ के बीच धोखा खाना।

कपासी[1]—वि० [हिं० कपास] कपास के फूल के रंग के समान बहुत हलके पीले रग का।

कपासी[2]—संज्ञा पुं० एक रग जो कपास के फूल के रग जैसा बहुत हलका पीला होता है। उ०—खसखसी, कपासी, गुलनासी। —प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११८।

करनेवाला एक कीड़ा। दे० 'कपटा'। २ तमाखू के पौधो में लगनेवाला एक रोग जिसे 'कोढ़ी' भी कहते हैं।

कपड़कोट—संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ा + कोट] डेरा। खीमा। तंबू।

कपड़खसोट—संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ + खसोट] दूसरो का वस्त्र तक छीन लेनेवाला व्यक्ति। बहुत धूर्त या लोभी व्यक्ति।

कपड़गंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा + गंध] कपड़े के जलने की दुर्गंध।

कपड़छन, कपड़छान[१]—संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ा + छानना] किसी पिसी हुई बुकनी को कपड़े मे छानने का कार्य। मैदे की तरह महीन करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपड़छन, कपड़छान[२]—वि० कपड़े से छाना हुआ। मैदे की तरह महीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपड़द्वार—संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ा + द्वार] कपड़ो का भंडार। वस्त्रागार। तोशाखाना।

कपड़धूलि—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा + धूलि] एक प्रकार का बारीक रेशमी कपड़ा। करेब।

कपड़मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा + मिट्टी] धातु या औषधि फूँकने के संपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा या रूई पीसकर या सानकर लपेटने की क्रिया। कपडौटी। गिल हिकमत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपड़विदार—संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ा + विदारण] १ कपड़ा ब्योंतनेवाला दरजी। २. रफूगर।—(डिं०)।

कपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट, प्रा० कप्पट, कप्पड] १ रूई, रेशम, ऊन या सन के तागों से बुना हुआ आच्छादन। वस्त्र। पट।

यौ०—कपड़ा लत्ता = व्यवहार के सब कपड़े।

मुहा०—कपड़ों से होना = मासिक धर्म से होना। रजस्वला होना। एकवस्त्रा होना। उ०—उसका नाम पवनरेखा सो अति सुंदरी और पतिव्रता थी। आठो पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे। एक दिन कपड़ो से भई तो पति की आज्ञा लेकर रथ मे चढ़कर वन मे खेलने को गई।—लल्लू (शब्द०)। कपड़े आना = मासिक धर्म से होना। जैसे,—आज तो उसे कपड़े आए हैं।

२. पहनावा। पोशाक।

क्रि० प्र०—उतारना।—पहनना।

यौ०—कपड़ा लत्ता = पहनने का सामान। जैसे,—जो आदमी आए थे, सब कपड़े लत्ते से थे।

मुहा०—कपड़ों मे न समाना = फूले अंग न समाना। आनंद से फूलना। कपड़े उतार लेना = वस्त्रमोचन करना। खूब लूटना। कपड़े छानना = पल्ला छुड़ाना। पिंड छुड़ाना। पीछा छुड़ाना। कपड़े रँगना = गेरुआ वस्त्र पहनना। योगी होना। विरक्त होना।

कपड़ौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा + औटी (प्रत्य०)] दे० 'कपड़ मिट्टी'।

कपनी[१]—वि० [सं० कम्पन] कप पैदा करनेवाली। जैसे,—कपनी बाई।

कपनी[२]—संज्ञा स्त्री० कँपकँपी। कपन। उ०—भूप को सुध नही अपनी। गगन चढ़ते लगी कपनी।—संत तुरसी०, पृ० ६४।

कपरिया—संज्ञा पुं० [सं० कपाली] एक नीच जाति। उ०—ताल पखावज वो मँगाने। गाइन गुनी कपरिया आने।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २१०।

कपरौटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ौटी] दे० 'कपड़ौटी'।

कपर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव की जटा। जटाजूट। २ कौड़ी।

कपर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कपर्दिका] १ (शिव का) जटाजूट। २. कौड़ी।

कपर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा। भवानी। उ०—हमारे मामा के एक पड़े साहूकार की जीविका थी पर उससे उनको जन्म भर मे एक कपर्दिका भी नही मिली।—श्रीनिवास ग्रं० पृ० ४४।

कपर्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा। भवानी। उ०—जै जयति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि। जै मधुकैटभ छलनि देवि जै महिप विमर्दिनि।—भूषण (शब्द०)।

कपर्दी[१]—संज्ञा पुं० [सं० कपर्दिन्] [सं० कपर्दिनी] १. जटाजूटधारी शिव। २. ११ रुद्रो मे से एक का नाम।

कपर्दी[२]—वि० [सं० कपर्द + ई (प्रत्य०)] जटाजूटधारी। उ०—वह कपर्दी और जटाधारी है।—प्रा० भा० प०, पृ० १४६।

कपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० कपिश] १. एक प्रकार की चिकनी मिट्टी जिससे कुम्हार वर्तन पर रंग चढ़ाते हैं। काविस। २. गारा। लेई।

कपसेठा—संज्ञा पुं० [हिं० कपास + एठा] [स्त्री० अल्पा० कपसेठी] कपास के सूखे हुए पेड जो इंधन के काम मे लाए जाते हैं।

कपसेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कपसेठा] सं० 'कपसेठा'।

कपाट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कपाटी] किवाड़। पाट। उ०—नाम पाहरू राति दिनु ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित जाहि प्रान केहि बाट।—मानस, ५।३०।

यौ०—कपाटबद्ध। कपाटमगल।

कपाटवद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरो को विशेप रूप से लिखने से किवाड़ो का चित्र बन जाता है।

कपाटमंगल—संज्ञा पुं० [सं० कपाटमङ्गल] द्वार बंद करना। (वल्लभकुल)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपाटवक्षा—वि० [सं० कपाटवक्षस्] जिसकी छाती किवाड़ की तरह हो। चौड़ी छातीवाला।

कपाटसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० कपाटसन्धि] दरवाजे के पल्ले का जोड़ [को०]।

कपाटसंधिक—संज्ञा पुं० [सं० कपाटसन्धिक] सुश्रुत के अनुसार कान के १५ प्रकार के रोगो मे से एक।

कपार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कपाल] दे० 'कपाल'। उ०—सेस डार टूटि पलल कपार।—विद्यापति, पृ० ४४०।

मुहा०—कपार मारना = दे० 'मूँड़ मारना'। उ०—पुरुप आज्ञा अस भयउ अपारा। मारहु धर्म के माँझ कपारा।—कवीर सा०, पृ० ६।

कन्याशुल्क--संज्ञा पुं० [सं०] कन्याधन ।

कन्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कन्या को (विवाह के निमित्त) पकड ले जाना या उडा ले जाना [को०] ।

कन्यिका-- संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । कुमारी ।

कन्युप--संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की कलाई के नीचे का भाग [को०] ।

कन्वास—संज्ञा पुं० [अं० कैनवस] सूत, सन, पट्ट, आदि का वस्त्र जो तंबू, पाल या चित्र बनाने के काम में लिया जाता है । उ०—अपने चित्र के लिये बड़े कन्वास की जरूरत मुझे नहीं लगी ।—सुनीता (प्र०), पृ० ८ ।

कन्सरवेंसी--संज्ञा स्त्री० [अं०] सरकारी निरीक्षण या देखरेख । जैसे,--कसरवेंसी इस्पेक्टर ।

कन्सरवेटर--संज्ञा पुं० [अं० कजरवेटर] देखरेख करनेवाला । निरीक्षक । जैसे,—जगल विभाग का कंसरवेटर ।

कन्सरवेटिव¹—संज्ञा पुं० [अं० कजरवेटिव] १ वह जो राज्य या शासनप्रणाली मे क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्तन का विरोधी हो । वह जो प्रजासत्तात्मक शासनप्रणाली का विरोधी हो । टोरी । २ वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातो का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातो का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन का विरोधी हो । वह जो परपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक सस्थाओ और रीति रिवाज का समर्थक और पक्षपाती हो । वह जो कुसस्कार या अदूरदर्शिता से सच्ची उन्नति का विरोधी हो ।

कन्सरवेटिव²—वि० जो देश की नागरिकता और धार्मिक सस्थाओ मे क्रांतिकारी परिवर्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्तन का विरोधी हो । जो परपरा से चली आई हुई सामाजिक या धार्मिक सस्थाओ या रीति रिवाज का समर्थक और पक्षपाती हो । परिवर्तनविमुख । समाजविरोधी । सनातनी । पुराणप्रिय । लकीर का फकीर । जैसे,—बालविवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्हीं लोगो ने किया जो कन्सरवेटिव थे ।—लकीर के फकीर थे ।

कन्ह(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण । उ०—ध्यान सुप्रति प्रति कन्ह देव देवाधिदेव वर ।—पृ० रा०, २ । ३४० । २ पृथ्वीराज का एक सामत ।

कन्हड़ी(पु) – संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाटी] दे० 'कर्णाटी' ।

कन्हाई – संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण जी ।

कन्हावर(पु)--संज्ञा पुं० [स्कन्ध + आवर (आवरण = दुपट्टा) हिं० कंधावर] दे० 'कंधावर' ।

कन्हैं – अव्य० [हिं० कने] दे० 'कने' ।

कन्हैया¹ – संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] १. श्रीकृष्ण । २. अत्यत प्यारा आदमी । प्रिय व्यक्ति । उ० —आछे रहो राजराज राजन के महाराज, कच्छ कुल कलश हमारे तो कन्हैया हो । —पद्माकर (शब्द०) । ३ बहुत सुदर लडका । बाँका आदमी । ४ एक पहाड़ी पेड जो पूर्वी हिमालय पर आठ हजार फुट की ऊँचाई पर होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है और उसमे हरी या लाल धारियाँ पड़ी रहती हैं । आसाम मे इसकी लकड़ी की किश्तियाँ बनाई जाती हैं । इसके चाय के सदूकचे भी बनते हैं । कोई कोई इसे इमारत के काम मे भी लाते हैं ।

कन्हैया²(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध (पु)कध] दे० 'कंधा' । उ०—तहँ हम कन्हैया कूदिकै गज की कन्हैया पर परयो । —हिम्मत०, पृ० ३५ ।

कन्हैर†--संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'कनेर' । उ०--चपक चमेली और केतकी कन्हैर वुही, तामे बाँन साजिकै उमग सरसायो है ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४१३ ।

कप¹--संज्ञा पुं० [अं०] प्याला ।

कप²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण । २ दैत्यो की एक जाति [को०] ।

कप³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कपि] दे० 'कपि' । उ०—हेर कप भाग अगलार हरखे ।--रघु रू०, पृ० २१ ।

कपट— संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कपटी] १ अभिप्राय साधन के लिये हृदय की बात को छिपाने की वृत्ति । छल । दभ । धोखा । उ०—(क) जो जिय होत न कपट कुचाली । केहि सुहात रथ, बाजि, गजाली ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सती कपट जानेउ सुरस्वामी । सबदरसी सब अतरजामी । –मानस, १।५३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

यौ० – कपटचक = चिडिया फँसाने के लिये बिखेरा दाना । फँसान की युक्ति । कपटतापस = बनावटी या बना हुआ साधु । कपटनाटक = ठगना । धोखेबाजी । कपट व्यवहार करना । कपटप्रबध = धोखा देने की योजना । कपटवेश = बनावटी भेस । कपटलेख्य = द्वियर्थक या जाली दस्तावेज ।

२ दुराव । छिपाव ।

क्रि० प्र०--करना ।—रखना ।

कपटना—क्रि० स० [सं० कल्पन, क्लृप्त अथवा हिं० कपट से नामिक धातु] १ काटकर अलग करना । काटना । छाँटना । खोंटना । उ०—(क) कपट कपट डारयो निपट कै औरन सो मेटी पहचान मन मैं हूँ पहिचान्यो है । जीत्यो रति रण,मथ्यो मनमथ हूँ को मन केशोराइ कौन हूँ पै रोष उर आन्यो है ।—केशव (शब्द०) । (ख) पापी मुख पीरो करै, दासन की पीर हरै, दुख भव हेत कोटि भानु सी दपट है । कपट कपट डार रे मन गँवार झट, देखु नव नट कृष्ण प्यारे को सुपट है ।—गोपाल (शब्द०) । २ काटकर अलग निकालना । धीरे से निकाल लेना। किसीवस्तु काकुछ भाग निकालकर उसे कम करना। जैसे, —जो रुपए मुझे मिले थे, तुमने तो उनमें से ५) कपट लिए ।

कपटा—संज्ञा पुं० [हिं० कपटना] [स्त्री० कपटी] एक प्रकार का कीडा जो धान के पौधे मे लगता है और उसे काट डालता है ।

कपटिक —वि० [सं०] कपटी । धोखेबाज । बदमाश । दुष्ट [को०] ।

कपटी¹—वि० [सं० कपटिन्] कपट करनेवाला । छली । धोखेबाज । धूर्त । दगाबाज । उ०– (क) कपटी कुटिल नाथ मोहि चिन्हा ।--तुलसी (शब्द०) । (ख) सेवक शठ नृप कृपिन कुनारी । कपटी मित्र शूल सम चारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कपटी²– संज्ञा स्त्री० [हिं० कपटना] १. धान की फसल को नष्ट

कन्ना²—वि० [स्त्री० कन्नी] (लकड़ी या फल) जिसमें कन्ना लगा हो। काना। जैसे,—कन्ना भटा, कन्नी ईख।

कन्नासी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कनासी'।

कन्नी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन्ना] १. पतंग या कनकौए के दोनों ओर के किनारे।

मुहा०—कन्नी खाना या मारना = पतंग का उड़ते समय किसी ओर झुका रहना। पतंग का एक ओर झुककर उड़ना।

विशेष—इस प्रकार उड़ने से पतंग बढ़ नहीं सकती।

२. वह धज्जी जो पतंग की कन्नी में इसलिये बाँधी जाती है कि उसका वजन बराबर हो जाय और वह सीधी उड़े।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

३. किनारा। हाशिया। कोर।

मुहा०—किसी की कन्नी दबाना = (१) किसी के अधीन या वशीभूत होना। किसी के दावे में होना। (२) दबना। सहमना। धीमा पड़ना। (३) झेंपना। लजाना।

४. धोती चद्दर आदि का किनारा। हाशिया। जैसे, लाल कन्नी की धोती।

यौ०—कन्नीदार = किनारेदार।

कन्नी²—संज्ञा पुं० [सं० करण] राजगीरों का एक औजार जिससे वे दीवार पर गारा पन्ना लगाते हैं। करनी।

कन्नी³—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध] १. पेड़ों का नया कल्ला। कोंपल। २. तमाकू के वे छोटे छोटे पत्ते या कल्ले जो पत्तों के काट लेने पर फिर से निकलते हैं। ये अच्छे नहीं होते। ३. हेंगे या पटैल के खींचने के लिये रस्सियों की मुद्धी में लगी हुई खूँटी जिसे हेंगे के सूराख में फँसाते हैं।

कन्नी⁴—वि० [हिं० कन्न + ई (प्रत्य०)] कान की। उ०—सुरति सिमृति दुइ कन्नीं मुदा।—कबीर ग्रं०, पृ० २२८।

कन्नौज—संज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० कण्णउज्ज] फर्रुखाबाद जिले का एक नगर या कसबा जो किसी समय विस्तृत साम्राज्य की राजधानी था। आजकल यहाँ का इत्र प्रसिद्ध है।

कन्नौजी¹—वि० [हिं० कन्नौज + ई (प्रत्य०)] कन्नौज संबंधी। कन्नौज की।

कन्नौजी²—संज्ञा स्त्री० कन्नौज की भाषा का नाम।

कन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्वाँरी लड़की। अनब्याही लड़की। २ पुत्री। बेटी।

कन्यस—संज्ञा पुं० [सं०] सबसे छोटा भाई [को०]।

कन्यसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली [को०]।

कन्यसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबसे छोटी बहन।

कन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अविवाहित लड़की। क्वाँरी लड़की।

विशेष—पराशर के अनुसार १० वर्ष की लड़की का नाम कन्या है।

यौ०—पंचकन्या = पुराण के अनुसार वे पाँच स्त्रियाँ जो बहुत पवित्र मानी गई हैं—अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा, मंदोदरी। नवकन्या = तंत्र के अनुसार वे नौ जातियों की स्त्रियाँ जो चक्रपूजा के लिये बहुत पवित्र मानी गई हैं—नटी, कापालकी (कपड़िया), वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रा, ग्वालिन और मालिन।

२. पुत्री। बेटी।

यौ०—कन्यादान। कन्याराशी। कन्यावेदी।

३. १२ राशियों में से छठी राशि जिसकी स्थिति उत्तरा फाल्गुनी के दूसरे पाद के आरंभ से चित्रा के दूसरे पाद तक है। ४. घीक्वार। ५ बड़ी इलायची। ६. बाँझ ककोली। ७ वाराही कंद। गेठी। ८ एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें चार गुरु होते हैं। ९. एक तीर्थ या पवित्र क्षेत्र का नाम। दे० 'कन्याकुमारी'।

कन्याकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या + कुमारी] भारत के दक्षिण में रामेश्वर के निकट का अंतरीप। रासकुमारी। केपकुमारी।

कन्यागत—संज्ञा पुं० [सं०] 'कनागत'।

कन्याग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह द्वारा विधिपूर्वक कन्या का ग्रहण [को०]।

कन्याजात—वि० [सं०] क्वाँरी कन्या से उत्पन्न। कानीन।

कन्याट¹—वि० [सं०] कन्या का पीछा करनेवाला।

कन्याट²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंतःपुर। २. वह व्यक्ति जो कन्या का पीछा करता हो [को०]।

कन्यादान—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह में वर को कन्या देने की रीति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

कन्याधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो स्त्री को अविवाहिता [illegible] कन्या अवस्था में मिला हो। एक प्रकार का स्त्रीधन।

विशेष—अधिकारिणी के अविवाहिता मरने पर इस [illegible] अधिकारी भाई होता है।

कन्यापाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमारी लड़कियों को [illegible] रोजगार करनेवाला पुरुष। २. बंगाल की [illegible] जो अब पाल कहलाती हैं।

कन्यापुर—संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। जनानखाना।

कन्याभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० कन्याभर्तृ] १. दामाद। [illegible] कार्तिकेय [को०]।

कन्याराशी—वि० [सं० कन्याराशि] १. जिसके [illegible] कन्या राशि में हो। २ चौपट। [illegible] कमजोर। कायर।

कन्यालोक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के [illegible] झूठ जो कन्या के विवाह के संबंध [illegible]

कन्यावानी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या + हिं० [illegible] समय बरसता है जब सूर्य कन्या [illegible] समझी जाती है [illegible]

कन्यावेदी—संज्ञा [illegible] जमाई

कन्याव्रतस्या

गीतिका मे सब स्वरो का समारोह है।—गीतिका (सम्मति)

कनेव—संज्ञा पुं० [हिं० कोर+एब] चारपाई का टेढ़ापन।

विशेष—यह टेढ़ापन दो कारणों से होता है। एक तो पायों के छेद टेढ़े होने से चारपाई सालने मे कन्नी हो जाती है। दूसरे बुनते समय ताने के छोटे रखने से चार पाई मे कनेव पड जाता है।

क्रि० प्र०—निकलना।—पडना।

मुहा०—कनेव छेदना = पाए के छेदों को टेढ़ा छेदना जिससे चारपाई कन्नी हो जाय। जैसे—बढई ने पायो को कनेव छेदा है।

कनै(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कनक, प्रा० कणय] दे० 'कनक'। उ०—वै जो मेघ गढ़ लाग अकासाँ। बिजरी कनै कोटि चहुँ पासा।—जायसी ग्र०, पृ० २२६।

कनैल—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार] दे० 'कनेर'।

कनोई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान का मैल। खूँट।

कनोखा[1]—वि० [हिं० कनखा] दे० 'कनखा' २।

कनोखा[2]—वि० [हिं० काना > कन + आँख > अखा] १ वक्र दृष्टि वाला। २ कटाक्षयुक्त।

कनोतर—वि० [हिं० कोन = नौ + सं० उत्तर] दलालो की बोली में 'उन्नीस'।

कनोज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० (पु)कनउज्ज] दे० 'कन्नौज'।

कनौजिया[1](पु)—वि० [हिं० कन्नौज + इया (प्रत्य०)] १ कन्नौज निवासी। २ जिसके पूर्वज कन्नौज के रहनेवाले रहे हों या कन्नौज से आए हों। जैसे, कनौजिया ब्राह्मण, कनौजिया नाऊ, कनौजिया भडभूँजा।

कनौजिया[2]—संज्ञा पुं० कनौजिया ब्राह्मण।

कनौठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कोन + औठा (प्रत्य०)] १. कोना। २. बगल। किनारा।

कनौठा[2]—संज्ञा पुं० [सं० कनिष्ठ] १ भाई बंधु। २ पट्टीदार।

कनौड, कनौडा—वि० [हिं० काना + औडा (प्रत्य०)] १. काना। २ जिसका कोई अंग खडित हो। अपग। खोड़ा। जैसे,—हाथ पाँव से कनौडा कर दिया। ३ कलकित। निंदित। बदनाम। उ०—जेहि सुख हित हम भई कनौडी। सो सुख अब लूटत है लौंडी।—विश्राम (शब्द०) ४ क्षुद्र। तुच्छ। दीन हीन। नीच हेठा। उ०—प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि। जाचक जगत कनावडो कियो कनौडी दानि।—तुलसी (शब्द०)। ५ लज्जित। सकुचित। शर्मिदा। उ०—तुरत सुरत कैसे दुरत? मुरत नैन जुरि नीठ। डौड़ी दै गुन रावरे, कहत कनौडी डीठ।—बिहारी (शब्द०)। ६ दबैल। एहसानमद। उपकृत। उ०—कपि सेवा बस भए कनौडे, कह्यो पवनसुत आउ। देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

कनौती[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + औती (प्रत्य०)] दे० 'कनौती'। उ०—अर्जो करति उरझनि मनो, लगी कनौती कान।—घनानद पृ० २७०।

कनौती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान + औती (प्रत्य०)] १ पशुओ के कान या उनके कानो की नोक। उ०—(क) उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था, वहाँ जो मेरे सामने एक हिरनी कनौतियाँ उठाए हुए हो गई थी, उसके पीछे मैंने घोडा बगछुट फेंका था।—इशाअल्ला खाँ (शब्द०)। (ख) चलत कनौती लई दबाई।—शकुतला, पृ० ८०।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—कनौतियाँ उठाना या खडा करना = कान खड़ा करना। चौकन्ना होना। उ०—कनौती खडी कर हमारी नाई तकै।—भस्मावृत०, पृ० २६।

२ कानों के उठाने या उठाए रखने का ढग। जैसे,—इस घोडे की कनौती बहुत अच्छी है।

मुहा०—कनौतियाँ बदलना = (१) कानों को खडा करना। (२) चौकन्ना होना। चौंककर सावधान होना।

३ कान मे पहनने की बाली। मुरकी।

कन्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ मूर्छा। बेहोशी [को०]।

कन्न[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] दे० 'कान'। उ०—कन्न पडाय न मूड मुडाया।—प्राण०, पृ० १११।

कन्नड—संज्ञा पुं० [प्रा० कण्णाड] १ दक्षिण भारत का एक प्रदेश। २ एक भाषा का नाम जो कन्नड प्रदेश मे बोली जाती है। ३ कन्नडवासी व्यक्ति।

कन्नडश्याम—संज्ञा पुं० [हिं० कन्नड़ + श्याम] दे० 'कनरश्याम'।

कन्ना[1]—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ड] [स्त्री० कन्नी] १ पतग का वह डोरा जिसका एक छोर काँप और ठड्ढे के मेल पर और दूसरा पुछल्ले के कुछ ऊपर बाँधा जाता है। इस तागे के ठीक बीच मे उडानेवाली डोर बाँधी जाती है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।—साधना।

मुहा०—कन्ने ढीले होना या पडना = (१) थक जाना। शिथिल होना। ढीला पडना। (२) जोर का टूटना। शक्ति और गर्व मे रहना। मानमर्दन होना। कन्ने से कटना = (१) पतग का कन्ने के स्थान से कट जाना। (२) मूल से ही विच्छिन्न हो जाना।

२. पतग का छेद जिसमे कन्ना बाँधा जाता है।

क्रि० प्र०—छेदना।

३. किनारा। कोर। औंठ। ४ जूते के पंजे का किनारा। जैसे,—मेरे जूते का कन्ना निकल गया। ५ कोल्हू की कातर के एक छोर के दोनो ओर गी हुई लकडियाँ जो कोल्हू से भिडी रहती हैं और उससे रगड़ खाती हुई घूमती हैं। इन लकड़ियो मे एक छोटी और दूसरी बडी होती है।

कन्ना[2]—संज्ञा पुं० [सं० कण] १ चावल का कन। २ चावल की धल जो चावल के घिसने या छोटे छोटे कणो के चूर्ण हो जाने पर चावल मे मिली रह जाती है।

कन्ना[3]—संज्ञा पुं० [सं० कणक = वनस्पति का एक रोग, प्रा० कण्णग्र] वनस्पति का एक रोग जिससे उसकी लकडी तथा फल आदि मे कीडे पड जाते हैं, और लकड़ी या फल खोखले होकर तथा सडकर बेकाम हो जाते हैं।

भूमि विराज रघुपति अतुलबल कोसलधनी। श्रमबिंदु मुख राजीवलोचन अरुण तन सोणित कनी।—तुलसी (शब्द०)।

कनी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। बालिका [को०]।

कनीचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शकट। २. गुंजा [को०]।

कनीज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कनीज, मि० सं० कनी, कन्या कन्यका] दासी। सेविका। लौंडी। बाँदी। उ०—दाढ़ी के बालों में से उसने देखा तो होगा कि कैसी है मेरी कनीज, वह मेरी अबाबील।—वदन०, पृ० ५१।

कनीन—वि० [सं०] युवक। तरुण [को०]।

कनीनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ लड़का। युवक। २ आँखों का तारा या पुतली [को०]।

कनीनका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुमारी। कन्या। २. आँखों की पुतली [को०]।

कनीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँख की पुतली या तारा। उ०—औरे ओप कनीनिकनु गनी घनी सिरताज। मनी धनी के नेह की बनी छनी पट लाज।—बिहारी र० दो० ४। २. कन्या। ३ कानी उँगली (को०)।

कनीनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कनीनिका' [को०]।

कनीयस¹—वि० [सं० कनीयस्] [वि० स्त्री० कनीयसी] लघुतर। अल्पतर। [को०]।

कनीयस²—संज्ञा पुं० १ ताँबा। २ छोटा भाई। ३ कामातुर प्रेमी [को०]।

कनीर—संज्ञा पुं० [हिं० कनेर] कनेर का वृक्ष या फूल। उ०—कबिरा तहाँ न जाइए जहाँ कपट का हेत। जानूँ कली कनीर की तन राती मन सेत।—कबीर ग्रं०, पृ० ६६।

कनु (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण, (पु) कन] दे० 'कण'।

कनुका (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कनिका] कण। दाना उ०—यों कवि 'ब्रह्म' बनी उपमा जल के कनुका चुवैं बार के छोरनि। मानहु चंदहि चूसन नाग अमी निकस्यो बहि पूँछ की ओरनि।—अकबरी, पृ० ३८६।

कनुआ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कान'। उ०—क्या होया जु कनूआ फूटा। क्या हो या जु अहीते छूटा।—प्राण०, पृ० २७४।

कनूका (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कनुका'।

कने†—क्रि० वि० [सं० कोण] १ पास। ढिग। निपट। समीप। उ०—(क) मीत तुम्हारा तुम्ह कने तुमही लेहु पिछानि। दादू दूर न देखिये प्रतीबिंब ज्यों जानि।—दादू० (शब्द०)। (ख) जब आके बुढ़ापे ने किया हाय य कुछ कष्ट। अब जिसके कने जाते हैं लगते हैं उसे जष्ट।—नजीर (शब्द०)। (ग) वेद बिपिन बूटी बचन हरिजन किमियाकार। खरी जरा तिनके कने खोटी गहत गँवार।—विश्राम (शब्द०)। २. ओर। तरफ। जैसे,—आज किस कने जाओगे?

विशेष—यद्यपि यह क्रि० वि० है, यद्यपि 'यहाँ वहाँ' आदि के समान यह संबंधकारक के साथ भी आता है। जैसे,—उनके कने।

कनेखी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] दे० 'कनखी'।

कनेठा¹†—संज्ञा पुं० [हिं० कान+एठा (प्रत्य०)] कातर में लगी हुई वह लकड़ी जो कोल्हू से रगड़कर खाती हुई उसके चारों ओर घूमती है। कान।

कनेठा²—वि० [हिं० काना+एठा (प्रत्य०)] १. काना। २. भेंगा। ऐंचा ताना।

विशेष—यह शब्द काना शब्द के साथ प्राय आता है। जैसे,—काना कनेठा।

कनेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+ऐंठना] कान मरोड़ने की सजा। गोशमाली। कान उमेठना।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—लगना।—लगाना।

कनेनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दलालों की बोली में 'रुपया'।

कनेर—संज्ञा पुं० [सं० कर्णेर] एक पेड़।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक बित्ता लंबी और आध अंगुल से एक अंगुल तक चौड़ी और नुकीली होती हैं। ये कड़ी, चिकनी और गहरे हरे रंग की होती हैं तथा दो दो पत्तियाँ एक साथ आमने सामने निकलती हैं। डाल में से सफेद दूध निकलता है। फूलों के विचार से यह दो प्रकार का है, सफेद फूल का कनेर और लाल फूल का कनेर। दोनों प्रकार के कनेर सदा फूलते रहते हैं और बड़े विषैले होते हैं। सफेद फूल का कनेर अधिक विषैला माना जाता है। फूलों के झड़ जाने पर आठ दस अंगुल लंबी पतली पतली फलियाँ लगती हैं। फलियों के पकने पर उनके भीतर से बहुत छोटे छोटे बीज मदार की तरह रूई में लगे निकलते हैं। कनेर घोड़े के लिये बड़ा भयंकर विष है, इसी लिये संस्कृत कोशों में इसके अश्वघ्न, हयमार, तुरगारि आदि नाम मिलते हैं। एक और पेड़ होता है जिसकी पत्तियाँ और फल कनेर ही के ऐसे होते हैं। उसे भी कनेर कहते हैं, पर उसकी पत्तियाँ पतली छोटी और अधिक चमकीली होती हैं। फूल भी बड़ा और पीले रंग का होता है तथा हलकी लालिमा से युक्त पीले रंग का भी होता है। फूलों के गिर जाने पर उसमें गोल गोल फल लगते हैं जिनके भीतर गोल गोल चिपटे बीज निकलते हैं।

वैद्यक में दो प्रकार के और कनेर लिखे हैं—एक गुलाबी फूल का, दूसरा काले रंग का। गुलाबी फूलवाले कनेर को लाल कनेर ही के अंतर्गत समझना चाहिए, पर काले रंग का कनेर सिवाय निघंटु रत्नाकर ग्रंथ के और कहीं देखने या सुनने में नहीं आया है। वैद्यक में कनेर गरम, कृमिनाशक तथा घाव, कोढ़ और फोड़े फुंसी आदि को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या०—करवीर। शतकुंभ। अश्वमारक। शतकुंद। स्थल-कुमुद। शकुंद। चंडात। लगुड। भूतद्रावी।

कनेरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हस्तिनी। हथिनी। करेणु। २. वेश्या [को०]।

कनेरिया—वि० [हिं० कनेर] कनेर के फूल के रंग का। कुछ श्यामता लिए लाल रंग का।

कनेरी—संज्ञा स्त्री० [अं० कैनरी (टापू)] प्राय. तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर कोमल और मधुर होता है और जो इसीलिए पाली जाती है। इसकी कई जातियाँ और रंग हैं, पर प्राय पीले रंग की कनेरी बहुत सुंदर होती है। उ०—उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेरी की वो एक ही मीठी तान नहीं, अपितु उनकी

मे जाते हैं। इसी से 'कन्यागत' नाम पडा। इस समय श्राद्धादि पितृकर्म करना अच्छा समझा जाता है।

२ श्राद्ध।

क्रि० प्र०—करना।

कनात—संज्ञा स्त्री० [तु० कनात] मोटे कपडे की वह दीवार जिससे किसी स्थान को घेरकर आड़ करते हैं। उ०—(क) तुग मेरु मदर सम सुदर भूपति शिविर सोहाये। विमल विख्यात सोहात कनातन वड वितान छवि छाये।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इसे खडा करने के लिये इसमे तीन तीन, चार चार हाथ पर बाँस की फट्टियाँ सिली रहती हैं जिनके सिरो पर से रस्सियाँ खीचकर यह खड़ी की जाती है।

क्रि० प्र०—खड़ी करना।—खींचना।—घेरना।—लगना।—लगाना।

कनाना†—क्रि० अ० [हि० किनाना या कियाना] ऊख की फसल में कना नामक रोग लगना।

कनार—संज्ञा पुं० [देश०] घोडो का जुकाम (सर्दी)।

कनारा†—संज्ञा पुं० [हि० कन्नड़ की अ० वर्तनी] मदरास प्रात का एक भाग।

कनारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हि० किनारा का स्त्री०] दे० 'किनारी'।

कनारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हि० कनारा+ई (प्रत्य०)] मदरास प्रात के कनारा नामक प्रदेश की भाषा। कन्नड। २. कनारा का निवासी। कन्नडी।

कनारी[3]—संज्ञा स्त्री० [देश] काँटा।

विशेष—यह पालकीवाले कहारो की बोली का शब्द है।

कनाल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पजाब मे जमीन की एक नाप जो घुमावँ के आठवें भाग या बीघे की चौथाई के बराबर होती है।

कनाल[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] नहर।

कनावडा ⓟ—संज्ञा पुं० [हि० कनौड़ा] दे० 'कनौडा'। उ०—वानर विभीषण की ओर को कनावडो है सो प्रसग सुने अंग जरै अनुचर को।—तुलसी (शब्द०)।

कनासी[1]—संज्ञा स्त्री० [देशी०] लद्दाख और कश्मीर के बीच की कश्मीरी वर्ग की एक बोली।

कनासी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण+आशी] १. रेती जिससे हुक्के-वाले नारियल के हुक्के या मुँह चौडा करते हैं। २ बढ़ई की रेती जिससे आरे की दाँती निकाली या तेज़ की जाती है।

कनिआरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णिकार, प्रा० कण्णिआर] कनकचपा का पेड़। उ०—अति व्याकुल भई गोपिका ढूँढति गिरधारी। बूझति हैं वन वेलि सो देखे वनवारी। जाही जूही सेवती करना कनिआरी। वेलि चमेली मालती बूझति द्रुम डारी।—सूर (शब्द०)।

कनिक—संज्ञा पुं० [सं० कणिक] १ गेहूँ। २ गेहूँ का आटा। उ०—वहुल कोडि कनिक थोड, घविक पेचाँ दीस घोड़ँ।—कीर्ति०, पृ० ६८।

कनिका ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कणिका] किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। उ०—मुख आँसू माखन के कनिका निरखि नैन सुख देत। मनु शशि श्रवत सुधा निधि मोती उडुगण अवलि समेत।—सूर (शब्द०)।

कनिगर ⓟ—संज्ञा पुं० [हि० कानि+फा० गर] अपनी मर्यादा का ध्यान रखनेवाला। अपनी कीर्तिरक्षा का ध्यान रखनेवाला। अपने सुयश को रक्षित रखनेवाला। नाम की लाज रखने-वाला। उ०—तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ, देखिए न दास दुखी तो से कनिगर के।—तुलसी ग्र०, पृ० २५६।

कनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [हि० काँध या कना] गोद। कोरा। उछग। उ०—(क) सादर सुमुखि विलोकि राम सिसु रूप अनूप भूप लिये कनियाँ।—तुलसी (शब्द०)।

कनिया†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कनियाँ'। उ०—कनिया लगाई धूरि ऐसे सुवनान की।—शकुतला, पृ० १४०।

कनियाना[1]—क्रि० अ० [हि० कोना०, पू० हि० कोनियाना] आँख बचाकर निकल जाना। कतराकर चला जाना। कतराना।

कनियाना[2]—क्रि० अ० [हि० कन्नी, कन्ना] पतग का किसी ओर झुक जाना। कन्नी खाना।

कनियाना[3]†—क्रि० अ० [हि० कनिया से नाम] गोद लेना। गोद मे उठाना।

कनियार—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार] कनकचपा।

कनिष्ठ[1]—वि० [सं०][वि० स्त्री० कनिष्ठा] १ बहुत छोटा। अत्यत लघु। सबसे छोटा। जैसे,—कनिष्ठ भाई। २ पीछे का। जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। ३. उमर मे छोटा। ४ हीन। निकृष्ट।

कनिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कनिष्ठ। सबसे छोटा [को०]।

कनिष्ठक[1]—वि० [सं०] कनिष्ठ। सबसे छोटा [को०]।

कनिष्ठक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक तृण। तिनका [को०]।

कनिष्ठा[1]—वि० [सं०] १ बहुत छोटी। सबसे छोटी। जैसे, कनिष्ठा भगिनी। २ हीन। निकृष्ट। नीच।

कनिष्ठा[2]—संज्ञा स्त्री० १. दो या कई स्त्रियो मे सबसे छोटी या पीछे की विवाहिता स्त्री। २. नायिकाभेद के अनुसार दो या अधिक स्त्रियो मे वह स्त्री जिसपर पति का प्रेम कम हो। ३ छोटी उँगली। छिगुनी। कनगुरी। ४. कनिष्ठ या छोटे भाई की स्त्री (को०)।

कनिष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँचो उँगलियो मे से सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली। छिगुनी।

कनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० कणिका] १ छोटा टुकडा। किरिच। २. हीरे का बहुत छोटा टुकडा। जैसे,—यह कनी उसने पचास रुपए की खरीदी है।

मुहा०—कनी खाना या चाटना=हीरे की कनी निगलकर प्राण देना। हीरे की किरिच खाकर आत्मघात करना। जैसे—अनी के वस कनी खाना।

३. चावल के छोटे छोटे टुकडे। किनकी। जैसे,—इस चावल में बहुत कनी है। ४. चावल का मध्य भाग जो कभी कभी नही ही गलता या पकाने पर गलने से रह जाता है। जैसे—चावल की कनी, बर्छी की अनी। ५. बूँद। छोटी बूँद। उ०—सग्राम

'ग्रार्डर' प्राप्त करने का उद्योग करना। जैसे,—मिस्टर शर्मा गगा ग्रायर्न फैक्टरी के लिये वाहर कनवासिंग कर रहे हैं, पिछले महीने उन्होंने बीस हजार रुपये के ग्रार्डर भेजे हैं।

कनवी—सज्ञा स्त्री० [स० कण, हि० कन] एक प्रकार की कपास जिसके विनौले बहुत छोटे होते हैं। यह गुजरात में होती है।

कनवेनसन—सज्ञा पु० [ग्रं० कनवेंशन] समेलन। प्रसभा।

कनवैसर—सज्ञा पुं० [ग्रं०] दे० 'कनवासर'।

कनवैसिंग—सज्ञा स्त्री० [ग्रं०] दे० 'कनवासिंग'।

कनवोकेशन—सज्ञा स्त्री० [ग्रं० कन्वोकेशन] यूनीवर्सिटी का वह सालाना जलसा जिसमें वी० ए० ग्रादि की उपाधि परीक्षा में उत्तीर्ण ग्रेजुएटो को डिपलोमा ग्रादि दिए जाते हैं। विश्वविद्यालय के पदवीदान का महोत्सव। दीक्षांत-समारोह।

कनव्रत(पु)—सज्ञा पु० [स० कण+व्रत] उछभोजी। कण बटोरने का व्रती। उ०—मुप करत सोभित जोस, जनु चुनत कनव्रत ग्रोस।—पृ० रा०, १४।१४७।

कनसट—सज्ञा पु० [ग्रं० कन्सर्ट] वृदवाद्य। सामुदायिक वादन। उ०—कनसर्ट का कमाल ग्राप लोगो ने देखा होगा।—रस० क०, पृ० ६।

कनसलाई—सज्ञा स्त्री० [हि० कान+हि० सलाई] १ कनखजूरे की तरह एक छोटा कीडा। छोटा कनखजूरा। २. कुश्ती का एक पेंच।

विशेप—जब विपक्षी के दोनों हाथ खिलाडी की कमर पर होते हैं ग्रौर वह पेट के नीचे घुसा होता है, तब खिलाड़ी ग्रपना एक हाथ उसकी वगल मे ले जाकर उसकी गर्दन पर चढ़ाता है ग्रौर ग्रपने धड को मरोडता हुग्रा उसे टांग मारकर चित्त कर देता है।

कनसार—सज्ञा पु० [हि० काँसा+ग्रार (प्रत्य०)] ताम्रपत्र पर लेख खोदनेवाला।

कनसाल—सज्ञा पुं० [हि० कोन+सालना] चारपाई के पायो के वे छेद जो छेदते समय कुछ तिरछे हो जाँय ग्रौर जिनके तिरछेपन के कारण चारपई मे कनेव ग्रा जाय।

कनसीरी—सज्ञा स्त्री० [देश०] हावर नामक पेड। वि० 'हावर'।

कनसुग्रा—सज्ञा पु० [सं० कर्ण+श्रव, या हि०] दे० 'कनसुई'। उ०—माजि इकोसी ह्वै रहौं कनसुवो लग ऊँ।—घनानद, पृ० ३१४।

कनसुई—सज्ञा स्त्री० [स० कर्ण+श्रव या हि० कान+सुनना] ग्राहट। टोह।

मुहा०—कनसुई या कनसुइयाँ लेना=(१) छिपकर किसी की वात सुनना। ग्रकनना। (२) भेद लेना। टोह लेना। ग्राहट लेना। (३) सगुन विचारना।—लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ वूझत गनक वुलाइ के। मुनि ग्रनुकूल मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइ के।—तुलसी (शब्द०)।

विशेप—स्त्रियाँ चलनी में गोवर की गौर रखकर पृथिवी पर फेंकती हैं। यदि वह गौर सीधी गिरती है तो सगुन मनाता है ग्रौर यदि उलटी या टेढ़ी गिरती है तो ग्रसगुन।

कनस्टर—सज्ञा पुं० [ग्रं० कनिस्टर] दे० 'कनस्तर'। उ०—टीन के कनस्टरो पर चढे।—प्रेमघन०, पृ० ७१।

कनस्तर—सज्ञा पु० [ग्रं० कनिस्टर] टीन का चौखूँटा पीपा जिसमे घी तेल ग्रादि रखा जाता है।

कनहरि(पु)—सज्ञा पु०[स० कर्णधार, प्रा० कण्णधार]दे० 'कर्णधार'। उ०—(क)नौवें नाम निरजन नौका कनहरि गुनहिं चलावे।—गुलाल०, पृ० १२८। (ख)गुरु सतगुरु कह कनहरी।—दरिया०, पृ० ६३। (ग) जेहि चाहो भव तें काढ़न ह्वै कनहरिया गुरु सेवक।—भीखा श०, पृ० ८६।

कनहा—सज्ञा पुं० [हि० कन=ग्रनाज+हा (प्रत्य०)] फसल कूतनेवाला कमचारी।

कनहार(पु)—सज्ञा पु० [सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] पतवार पकड़नेवाला मल्लाह केवट। उ०—राम वाहुवल सिंधु ग्रपारू। चहत पार, नहिं कोउ कनहारू।—तुलसी (शब्द०)।

कना[१]—सज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। सवसे छोटी लडकी [को०]।

कना[२]—सज्ञा पु० [स० कण] दे० 'कन'।

कना[३]—सज्ञा पु० [स० काण्ड] सरकडा। सरपत।

कना[४]—क्रि० वि० [सं० कोण] समीप। जैसे,—मेरे कने ग्राग्रो। उ०—चाहि विना चिंतामणि क्या दें। त्यूँ सेवक स्वामी कना क्या ले।—रज्जव० पृ० १२।

कना[५]—संज्ञा पुं० [हि० कौना, कीर्यां=कीडा] ईख मे होनेवाला एक रोग जिससे ईख पर पतलोई के ग्रदर कीडे लग जाते हैं ग्रौर उसकी वाढ मारी जाती है।

कनाग्रत—सज्ञा पु० [ग्रं० कनाग्रत] संतोप। सब्र। उ०—नमक रोटी पर कनाग्रत कर वदो की खिदमत कवूल कीजिये।—प्रेमघन०, पृ० १३४।

कनाई—सज्ञा स्त्री० [स० काण्ड] १. वृक्ष या पौधे की पतली डाल या शाखा। २. कल्ला। टहनी।

क्रि० प्र०—निकलना।—फूटना।

मुहा०—कनाई काटना=(१) रास्ता काटकर दूसरे रास्ते निकल जाना। सामना वचाकर दूसरा रास्ता पकडना। (२) किसी काम के लिये कहकर मौके पर निकल जाना। चालवाजी करना।

३ पगहे के गेरांव के वे दोनो भाग जिन्हें मिलाकर जानवर बाँधे जाते हैं। ४. ग्राल्हा की किसी एक घटना का वर्णन।

कनाउडा(पु)—वि० [हि० कनौड़ा] दे० 'कनौडा'। उ०—प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचान। जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि।—तुलसी (शब्द०)।

कनाखी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हि० कनखी] दे० 'कनखी' सज्ञा। उ०—(क) पुनि तिनमैं नख रेखैं देखैं। सांसन भरैं कनाखिन देखैं।—नंद० ग्र०, पृ० १५१। (ख) सखि तन कुँवरि कनाखि चहै।—नंद० ग्र०, पृ० १३७।

कनागत—सज्ञा पुं० [सं० कन्यागत] १. क्वार के महीने का ग्रँधेरा पाख। पितृपक्ष। उ०—ग्राय कनागत फूले कांस। वाह्मन कूदैं सौ सौ वांस। (शब्द०)।

विशेप—प्राय. यह पक्ष उस समय पड़ता है जब सूर्य कन्या राशि

कनफुँका[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] १ कान फूँकनेवाला गुरु। २ कान फुँकाने वाला चेला। उ०— कनफुँका चिढाकसी लूटे जोगेसर लूटे करत विचार।—कवीर (शब्द०)।

कनफुसका—संज्ञा पुं० [हिं० कान+फुसकना] [स्त्री० कनफुसकी] १. फुस फुस करनेवाला। कान मे धीरे से बात कहनेवाला। २. चुगुलखोर। पीठ पीछे धीरे धीरे लोगो की बुराई करनेवाला।

कनफुसकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+फुसकी] दे० 'कानाफूसी'।

कनफूल†—संज्ञा पु० [हिं० कन+फूल] फूल के आकार का कान का गहना। तरवन। उ०—कनवेसर कनफूल वन्यो है छवि कापै कहि आवै जू।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४४६।

कनफेड†—संज्ञा पुं० [हिं० कनपेड़ा] दे० 'कनपेडा'।

कनफेशन—संज्ञा पु० [अं० कनफेशन] पाप, अपराध, गलती, बुराई आदि कवूल करना। उ०—मुझे कभी ईसाइयो की तरह कनफेशन करना हो तो गिरजे मे जाकर नही रेलगाडी में ही करूँ।—नदी० पृ० ३६।

कनफोडा—संज्ञा पुं० [स० कर्णस्फोटटक] एक लता जो दवा के काम मे आती है। यह खाने मे कड़वी और गुण मे ठडी और विपघ्न होती है।

पर्या०—त्रिपुटा। चित्रपर्णी। कोपलता। चद्रिका।

कनवतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन+बतियाँ] कानाफूसी। निंदा जो खुलकर न की जाय। उ०—इधर नोहरी के विषय मे कनवतियाँ होती रहीं।—गोदान, पृ० २५२।

कनवाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन+बात] कान में मुह लगाकर वात कहना। उ०—कछुक अनूठी मिस वनाय ढिग आय करत कनवाती।—घनानद०, पृ० ५६६।

कनविधा—संज्ञा पु० [हिं० कन+वेधना] १ कान छेदनेवाला। २ जिसका कान छेदा हुआ हो।

कनभेडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सन का पौधा जो अमेरिका से भारत मे लाया गया है।

विशेष—ववई प्रात मे इसकी खेती बहुत होती है। इसको 'वनभेंडी' भी कहते हैं। यह अव प्राय हर जगह होता है। इसके रेशे आठ नौ फुट लवे और पटसन से कुछ घटिया होते हैं। इसके पत्ते, फल और फूल भिंडी की तरह होते हैं।

कनमनाना—क्रि० अ० [अनु०] १ सोने की अवस्था मे व्याकुलता के कारण कुछ हिलना डुलना। २ किसी प्रकार की गति करना। विशेपत कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोडी चेप्टा करना। जैसे,—तुम्हारे सामने इतना वडा अनर्थ हो गया और तुम कनमाए तक नही।

कनमैलिया—संज्ञा पुं० [हिं० कान+मैल+इया (प्रत्य०)]। वह जो लोगो के कान का मैल निकालता हो।

कनय(५)—संज्ञा पुं० [स० कनक] सोना। स्वर्ण। उ०—वह जो मेघ, गढ लाग अकासा। विजुरी कनय कोट चहुँ पासा।—जायसी (शब्द०)।

कनयर(५)—संज्ञा पु० [स० कर्णिकार, प्रा० कण्णिआर] दे० 'कनेर'।

कनयून—संज्ञा पुं० [स० कण+ऊन] एक प्रकार का सफेद काश्मीरी चावल जो उत्तम समझा जाता है।

कनरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुलू नाम का पेड जिससे कतीरा निकलता है। दे० 'गुलू'।

कनरश्याम—संज्ञा पुं० [हिं० कान्हड़ा+श्याम] सपूर्ण जाति का एक सकर राग जिससे सव शुद्ध स्वर लगते हैं।

कनरस—संज्ञा पुं० [हिं० कान+रस] १ सगीत का स्वाद। गाना वजाना सुनने का आनंद। २ गाना वजाना या वात सुनने का व्यसन। सगीत की रुचि। उ०—कनरस वतरस और सवै रस झूठहि डोलै हो।—रै० वानी, पृ० ७०।

कनरसिया—संज्ञा पु० [हिं० कान+हिं० रसिया] गाना वजाना सुनने का शौकीन। सगीतप्रिय। नादप्रिय।

कनराना†—क्रि० अ० [हिं०] अलग विलग होना। उ०—हिंदू तुरक दोउ रह तूरी, फूटी अरु कनराई —कवीर ग्र०, पृ० १०६।

कनवई†—संज्ञा स्त्री० [स० कण] सेर का सोलहवाँ भाग। छटाँक।

कनवज(५),† कनवज्ज—संज्ञा पु० [स० कान्यकुब्ज] दे० 'कन्नौज'। उ०—(क) या सम दो सावँत वली, कनवज गये रिसाय।—प० रा०, पृ० ७६। (ख) रिधू गोद कनवज्ज रहायो। मय चमू सग दरसण आयो।—रा० रू०, पृ० १२।

कनवाँ†—वि० [हिं० काना] १ काना। २ एक आँख से देखनेवाला।

यौ०—कनवाँ घूँघट†—घूँघट का वह वनाव जिसमे स्त्रियाँ पूरा मुँह छिपाए हुए हाथ की उँगलियो के प्रयोग द्वारा केवल एक आँख से देखने का काम लेती हैं।

कनवाँसा—संज्ञा पुं० [स० कन्या+वश, फा० नवासा] [स्त्री० कनवाँसी] दौहित्र का पुत्र। नाती वा नवासे का पुत्र।

कनवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कनवई] दे० 'कनवई'।

कनवारा—संज्ञा पु० [देश०] पालना। उ०—पीछे तख्त पर लिया जच्चा कूँ विठाय वच्चे कूँ कनवारे मे ल्याकर सुलाया।—दक्खिनी०, पृ० ३४४।

कनवास—संज्ञा पु० [अ० कैनवस] एक मोटा कपडा जिससे नावों के पाल और जूते आदि वनते हैं। यह सन या पटसन से वनता है।

कनवासर—संज्ञा पुं० [अ० कैनवैसर] प्रचारक। वह जो लोगो को पक्ष मे करने के समझाने बुझाने का काम करे। वह जो 'वोट', 'आर्डर' आदि माँगने या सग्रह करने का काम करे। कैनवैसिंग करनेवाला।

कनवासिंग—संज्ञा स्त्री० [अ० कैनवैसिंग] १ वोटरो या मतदाताओ से वोट माँगना। वोट पाने के लिये उद्योग करना। लोगो को पक्ष मे करने के लिये समझाना बुझाना। लोकमत को पक्ष मे करने का उद्योग करना। जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर मे उनके लिये वडे जोरो से कनवासिंग कर रहे हैं, उन्हीं को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी सभावना है। (ख) उन्हें सभापति पद पर वैठाने के लिये खूव कनवासिंग हो रही है। २. किसी कपनी या फर्म के लिये माल आदि का

पतग की डोरी को फँसाना जिसमे रगडकर खाकर दोनो मे से कोई पतग कट जाय । कनकौवा बढ़ाना = कनकौवे की डोर ढीली करना जिससे वह हवा मे और ऊपर या आगे जा सके । कनकौवे से दुमछल्ला बड़ा = मुख्य वस्तु की अपेक्षा उसके उपसर्ग या पुछल्ले का बडा होना ।

यौ०—कनकौवाबाज = पतग उडानेवाला । कनकौवेबाजी ।

कनखजूरा—संज्ञा पु० [हिं० कान + खर्जूर = एक कीड़ा] लगभग एक बालिश्त का एक जहरीला कीडा ।

विशेष—इसके बहुत से पैर होते हैं । इसकी पीठ पर बहुत से गडे पडे रहते हैं । यह कई रगो का होता है । लाल मुँहवाले बडे और जहरीले होते हैं । कनखजूरा काटता भी है और शरीर मे पैर गडाकर चिपट भी जाता है । इसे गोजर भी कहते हैं ।

कनखा[1]—संज्ञा पु० [हिं०] १. कोपल । २. शाखा । डाल ।

कनखा[2]—वि० [हिं० कानी, > कन + अंखा > खा] दे० 'कनखी' । ऐंचा ताना देखनेवाला । वक्रदृष्टिवाला ।

कनखियां†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] दे० 'कनखी' ।

कनखियाना—क्रि० स० [हिं० कनखी] १ कनखी से देखना । तिरछी नजर से देखना । २ आँख से इशारा करना । कनखी मारना ।

कनखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोन + आँख] १. पुतली को आँख के कोने पर ले जाकर ताकने की मुद्रा । इस प्रकार ताकने की क्रिया कि औरो को मालूम न हो । दूसरो की दृष्टि बचाकर देखने का ढग । उ०—(क) देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेह निरवाहि । ढीली अँखियन ही इतै कनखियन चाहि ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) ललचौहैं, लजौहैं, हँसौहैं चितै हित सों चित चाय बढाय रही । कनखी करिके पग सो परिकै फिर सूने निकेत मे जाय रही ।—भिखारीदास (शब्द०) । २. आँख का इशारा ।

क्रि० प्र०—देखना ।—मारना ।

मुहा०—कनखी मारना = (१) आँख से इशारा करना । (२) आँख के इशारे से किसी को कोई काम करने से रोकना । कनखियों लगना = छिपकर देखना । ताकना । झाँपना ।

कनखुरा— संज्ञा पु० [देश०] रीहा नाम की घास जो आसाम देश मे बहुत होती है । बगाल मे इसे 'करकुह' भी कहते हैं ।

कनखैयाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखी] तिरछी नजर ।

क्रि० प्र०—देखना ।—लगना ।—निहारना ।—हेरना ।

मुहा०—कनखैयन लगना = छिपकर देखना । ताडना । झाँपना । उ०—धुनि किंकिन होति जगैगी सबै सुक सारिका चौकि चितै परिहैं । कनखैयन लागि रही हैं परोसिन सो सिसकी सुनिकै डरिहैं ।—लाल (शब्द०) ।

कनखोदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन (कान से बना) + खोदनी = खोदनेवाली] लोहे, ताँबे आदि के कडे तार का बना हुआ एक उपकरण ।

विशेष—इसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोडा हुआ होता है जिससे कान मे की मैल निकाली जाती है । प्राय हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी आकार का रखते हैं ।

कनगुज्झा†—संज्ञा पुं० [देश०] चपेटा । थप्पड ।

कनगुरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कानी + अँगुरी या अँगुरिया] कनिष्ठिका उँगली । सबसे छोटी उँगली । छिगुनिया । छिगुली । उ०—अब जीवन के है कपि आस न कोइ । कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

कनछेदन—संज्ञा पु० [हिं० कान + छेदना] हिंदुओ का एक संस्कार जो प्राय मुडन के साथ होता है और जिसके बच्चो का कान छेदा जाता है । कर्णवेध ।

कनटक†—संज्ञा पु० [हिं० कन + टकटक] कृपण । कजूस । उ०—बाप कनटक, पूत हातिम ।—कहावत ।

कनटोप—संज्ञा पु० [हिं० कन + टोप या तोपना] कानों को ढँकने वाली टोपी । उ०—उस टोपी के जिसके तीन भाग मे उठे कनपटे जाडो मे नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं । —किन्नर०, पृ० ३९ ।

कनतूतुर—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बडा मेढक जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है ।

कनधारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] मल्लाह । केवट । खेनेवाला । उ०—जाके होय ऐस कनधारा । तुरत बेगि सो पावै पारा । —जायसी (शब्द०) ।

कनन—वि० [स०] एकाक्ष । काना । एक आँखवाला [को०] ।

कनपटा—संज्ञा पु० [स० कर्ण + पट] १ दे० 'कनपटी' । २ कर्णपट । कर्णच्छद । उ०—उठे कनपटे जाडो मे नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं ।—किन्नर, पृ० ३९ ।

कनपटी—संज्ञा स्त्री० [स० कर्ण + पट] कान और आँख के बीच का स्थान । उ०—विजय की कनपटी लाल हो गई ।—ककाल, पृ० ७८ ।

कनपेडा—संज्ञा पुं० [हिं० कान + पेड़—जड़ + आ (प्रत्य०)] कान का एक रोग जिसमे कान की जड के पास चिपटी गिल्टी निकल आती है । यह गिल्टी पक भी जाती है ।

कनफटा[1] - संज्ञा पु० [हिं० कान + फटना] गोरखनाथ के अनुयायी योगी जो कानों को फडवाकर उनमे बिल्लोर, मिट्टी, लकडी आदि की मुद्राएँ पहनते हैं । उ०—(क) पडित ज्ञानी चतुर जरै कनफटा उदासी ।—पलटू०, भा० १, पृ० १०४ । (ख) गोरखपंथी कनफटे भी कहलाते हैं ।—गोरख०, पृ० २४० ।

कनफटा[2]—वि० जिसका कान फटा हो ।

कनफुँकवा†—वि० [हिं० कन + फुँकवा] दे० 'कनफुँका' । उ०—और यही दशा केवल विशुद्ध दीक्षागुरु या कनफुँकवा ब्राह्मणो की है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२३ ।

कनफुँका[1]—वि० [हिं० कान + फूँकना] [स्त्री० कनफुँकी] १. कान फूँकनेवाला । दीक्षा देनेवाला । उ० — (क) कनफुँका गुरु जगत का राम मिलावन और । —चरण० बानी, पृ० ११ । (क) कनफुकवाँ गुरु हद्द का बेहद का गुरु और । बेहद का गुर हद मिलै, लहै ठिकाना ठौर ।—कबीर (शब्द०) । २ जिसका कान फूँका गया हो । जिसने दीक्षा ली हो । जैसे,—कनफुँका चेला ।

कनकटा—वि० [हिं० कन+कटा] १. जिसका कान कटा हो। बूचा।—वर्ण०, पृ० १। २. कान काट लेनेवाला। जैसे,—वह कनकटा आया, नटखटी मत करो। (लडको को डराने के लिये कहते हैं।)

कनकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन+कटी] कान के पीछे का एक रोग।

विशेष—इसमे कान का पिछला भाग जड के निकट लाल होकर कट जाता है और उसमे जलन और खुजली होती है।

कनकदंड—संज्ञा पुं० [सं० कनकदण्ड] राजच्छत्र [को०]।

कनकनंदी—संज्ञा पुं० [सं० कनकनन्दिन्] एक प्रकार के शिवगण।

कनकना[1]—वि० [हिं० कन+क-ना (प्रत्य०)] जरा से आघात से टूट जानेवाला। 'चीमड़' का उल्टा। उ०—नेहिन के मन काँच-से अधिक कनकने आँइ। दृग ठोकर के लगत ही टूक टूक ह्वै जाँइ —रसनिधि (शब्द०)।

कनकना[2]—वि० [हिं० कनकनाना] [वि० स्त्री० कनकनी] १ जिससे कनकनाहट उत्पन्न हो। २ चुनचुनानेवाला। ३ अरुचिकर। नागवार। ४ चिड़चिड़ा। थोड़ी बात पर चिढनेवाला।

कनकनाना[1]—क्रि० अ० [हिं० काँद, पुं० हिं० कान] [संज्ञा कनकनाहट] १ सूरन, अरवी आदि वस्तुओ के स्पर्श से मुँह हाथ आदि अंगो मे एक प्रकार की वेदना या चुनचुनाहट प्रतीत होना। चुनचुनाना। जैसे,—सूरन खाने से गला कनकनाता है। २ चुनचुनाहट या कनकनाहट उत्पन्न करना। गला काटना। जैसे,—वासुकी सूरन बहुत कनकनाता है। ३ अरुचिकर लगना। नागवार मालूम होना। जैसे,—हमारी बातें तुम्हें बहुत कनकनाती हैं।

कनकनाना[2]—क्रि० अ० [हिं० कान>कन] कान खड़ा करना। चौकन्ना होना। जैसे,—पैर की आहट पाते ही हिरन कनकनाकर खड़ा हुआ।

कनकनाना[3]—क्रि० अ० [हिं० गनगनाना] गनगनाना। रोमांचित होना।

कनकनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनकना+आहट (प्रत्य०)] कनकनाने का भाव। कनकनी।

कनकनिकष—संज्ञा पुं० [सं०] कसौटी [को०]।

कनकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनकना] कनकनाहट।

कनकपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक आभूषण। झुमका।

कनकपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] सोने का पीढ़ा। स्वर्णमय आसन [को०]।

कनकपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कनक+पुरी] रावण की लका जो सोने की मानी गई है।

कनकप्रभ—वि० [सं०] सोने जैसी कांतिवाला। सोने जैसी चमक दमक से युक्त [को०]।

कनकप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती लता।

कनकप्रसवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णकेतकी [को०]।

कनकफल—संज्ञा पुं० [सं०] १ धतूरे का फल। २. जमालगोटा।

कनकभंग—संज्ञा पुं० [सं० कनकभङ्ग] स्वर्णखंड। सोने का टुकड़ा या डला [को०]।

कनकरंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० कनकरम्भा] स्वर्णकदली [को०]।

कनकरस—संज्ञा पुं० [सं०] १ हरताल। २ तरल स्वर्ण [को०]।

कनकशक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

कनकसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] सोने का हार। सोने का तार [को०]।

कनकसेन—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जिन्होने सन् २०० ई० में वल्लभी संवत् चलाया था और जो मेवाड़ वंश के प्रतिष्ठाता माने जाते हैं।

कनकस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोने की खान [को०]।

कनका[1]—संज्ञा पुं० [सं० कणिका] कण। कनिका। कनकी।

कनकाचल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोने का पर्वत। २. सुमेरु पर्वत।

कनकाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कोषाध्यक्ष। खजांची [को०]।

कनकनी—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की एक जाति। उ०—चले बहुत बैसक सुल्तानी। तीख तुरग बाँक कनकानी।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इस जाति के घोड़े डील डौल मे गधे से कुछ ही बड़े पर बहुत कदमबाज और तेज होते हैं।

कनकाभ—वि० [सं०] सोने जैसी कांति। उ०—कनकाभ धूल झर जाएगी, ये रंग कभी उड जाएँगे।—नील०, पृ० ६०।

कनकालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णघट। सोने का घड़ा [को०]।

कनकाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा या धतूरे का पेड़ [को०]।

कनकी—संज्ञा स्त्री० [सं० कणिक] १ चावलों के टूटे हुए छोटे छोटे टुकड़े। २ छोटा कण।

कनकुटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुटकी] रेवद चीनी जाति का एक एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह खसिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा और रँगाई के काम मे आती है।

कनकूट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुरकुड'।

कनकूत—संज्ञा पुं० [सं० कण+हिं० कूत] बँटाई का एक ढंग।

विशेष—इसमे खेत मे खड़ी फसल की उपज का अनुमान किया जाता है और किसान को उस अटकल के अनुसार उपज का भाग या उसका मूल्य जमींदार को देना पड़ता है। यह कनकूत या तो जमींदार स्वयं या उसका नौकर अथवा कोई तीसरा करता है।

कनकैया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनकौवा] दे० 'कनकौवा'।

कनकौवा—संज्ञा पुं० [हिं० कन्ना+कौवा] १ कागज की बड़ी पतंग। गुड्डी। २ एक प्रकार की घास जो प्राय मध्यभारत और बुंदेलखंड मे होती है।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—काटना।—बढ़ाना।—लड़ाना।

मुहा०—कनकौवा काटना = किसी बढ़ी हुई पतंग की डोरी को अपनी बढ़ी हुई पतंग की डोरी से रगड़कर काटना। कनकौवा लड़ाना = किसी बढ़ी हुई पतंग की डोरी मे अपनी बढ़ी हुई

कद्रू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार कश्यप की एक स्त्री जिससे सर्प पैदा हुए थे। उ०—कद्रू विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देव।—मानस, २।१९। २. सोमपात्र।—प्रा० भा० प०, पृ० १४१।

कद्रूक—संज्ञा पुं० [सं०] बैल की पीठ पर उठा हुआ मासल भाग। डिल्ला [को०]।

कद्वद—वि [सं०]१ बुराई करनेवाला। २. भ्रष्टवक्ता। अस्पष्टवक्ता [को०]।

कद्वर—संज्ञा पुं० [सं०] छाछ। मठा [को०]।

कधीं—क्रि० वि० [हिं० कद+ही (प्रत्य०)] कभी। किसी समय। उ०—(ख) मो के माहि कधी नहिं परिहै।—घट०, पृ० २३६। (ख) नही इश्क जिस वह बडा कूड है। कधीं उससे मिल बैसिया जाये ना।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

यौ०—कधी कधार=कभी कभी। भूले भटके।

कन[1]—संज्ञा पुं० [सं० कण *कन] १ किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। जर्रा। उ०—विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिअ हीरा।—मानस, १।२५८। अन्न का एक दाना। उ०—जैसे कन विहीन लै धान। धमकि धमकि कूटत अयान।—नंद० ग्रं०, पृ० २६६। ३ अन्न की किनकी। अनाज के दाने का टुकडा। ४ प्रसाद। जूठन। ५ भीख। भिक्षान्न। उ०—कन दैव्यो सौंप्यो ससुर बहू थोरहथी जान। रूप रहचटे लगि लग्यौ माँगन सब जग आन।—विहारी (शब्द०)। ६ बूँद। कतरा। उ०—निज पद जलज विलोकि सोक रत नयननि वारि रहत न एक छन। मनहु नील नीरज ससि सभव रवि वियोग दोउ स्रवत सुधा कन।—तुलसी (शब्द०)। ७ चावलो की धूल। कना। जैसे,—इन चावलो में बहुत कन है। ८. वालू या रेत के कण। उ०—अह कन के माला कर अपने कौने गूँथ बनाई।—सूर (शब्द०)। ९. कनखे या कली का महीन अकुर जो पहले रवे जैसा दिखाई पड़ता है। १० शारीरिक शक्ति। हीर। सत। जैसे,—चार महीने की बीमारी से उनके शरीर में कन नही रहा।

कन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण > हिं० कान का समासगत रूप] कान। जैसे,—कनपेडा, कनपटी, कनछेदन, कनटोप।

कनअँखिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखियाँ] दे० 'कनखिया'। उ०—कन अँखियो से वडे की तरह देखकर मुस्कराता था।—श्री निवास ग्रं०, पृ० २९०।

कनअँगुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गुल=हाथ+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'कनउँगली'। उ०—कन अँगुरी ऊधर विन लागै।—कबीर सा०, पृ० १५६८।

कनई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड या कन्दल] कनखा। नई शाखा। कल्ला। कोपल।

कनई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम, कंदो(पु), कांदो(पु), कांदव(पु), कंदई(पु)]गीली मिट्टी। गिलावा। हीला। कीचड।

कनउँगली—संज्ञा स्त्री० [सं० कनीयान, हिं० कानी+हिं० उँगली] कानी उँगली। सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका।

कनउड़(पु)—वि० [हिं० कनौडा] दे० 'कनौड़ा'। उ०—हमैं आजु लग कनउड काहु न कीन्हेउ। पारवती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ।—तुलसी (शब्द०)।

कनक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। सुवर्ण। स्वर्ण। उ०—अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।—मानस १।१०१।

यौ०—कनककदली। कनककार। कनकक्षार। कनकाचल। कनकवल्ली=स्वर्णलता या सोने की वेल। उ०—मानहु सूर कनकवल्ली जुरि, अमृत बूँद पवन मिस झारति।—सूर०, १०। १७५३। कनरेखा=सूर्य की आभा से प्रभात या सायकाल आकाश मे पड़नेवाली सुनहली रेखा। उ०—प्रथम कनकरेखा प्राची के भाल पर।—अनामिका, पृ० ७७।

२. धतूरा। उ०—कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।—विहारी (शब्द०)। ३ पलास। टेसू। ढाक। ४. नागकेसर। ५ खजूर। ६ छप्पय। छंद का एक भेद। ७ चंपा(को०)। ८. कालीय नाम का वृक्ष (को०)।

कनक[2]—संज्ञा पुं० [सं० कणिक=गेहूँ का आटा] १ गेहूँ का आटा। कनिक। २. गेहूँ।

कनक[3]—संज्ञा स्त्री० [फा० खुनुकी] नमी। आर्द्रता। शीतलता। उ०—रात भीज जाने से हवा मे कनक आ गई थी।—अभिशप्त, पृ० १२६।

कनककदली—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का केला।

कनककली—संज्ञा पुं० [सं० कनक+हिं० कली] कान में पहनने का एक गहना। लौंग। उ०—चौतनी सिरन, कनककली कानन कटि पट, पति सोहाए।—तुलसी (शब्द०)।

कनककशिपु(पु), कनककसिपु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कनक=हिरण्य+ +कशिपु] दे० 'हिरण्यकशिपु'। उ०—कनककसिपु अरु हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति-मद-मोचन।—मानस, १।१२२।

कनककूट—संज्ञा पुं० [सं० कनक+कूट] सुमेरु पर्वत।

कनकक्षार—संज्ञा पु० [सं०] सोहागा।

कनकगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

कनकशैल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कनकगिरि'।

कनकचपा—संज्ञा पुं० [सं० कनक+हिं० चंपा] मध्यम आकार का एक पेड।

विशेष—इसकी छाल खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियो और फल के दलो के नीचे की हरी कटोरी रोएँदार होती है। इसके पत्ते वड़े और कुम्हडे, नेनुए आदि की तरह होते हैं। फल इसके खूब सफेद और मीठी सुगंध के होते हैं। यह दलदलों में प्रायः होता है। वसंत और ग्रीष्म मे फूलता है। इसकी लकडी के तख्ते मजबूत और अच्छे होते हैं। इसे कनियारी भी कहते हैं।

कनकजीरा—संज्ञा पु० [सं० कनक+हिं० जीरा] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनो तक रह सकता है।

विशेष—यह बरमा और आसाम मे बहुत होता है। इसकी लकडी जहाज बनाने मे बहुत काम आती है। इसके पेड सडको के किनारे लगाए जाते हैं।

३ काले और लाल रग का एक हिरन जिसका स्थान महाभारत आदि मे कबोज देश लिखा गया है।

यौ०—कदलीपत्र=केले का पत्ता।—वर्ण०, पृ० ३१।

कदली[2]—सज्ञा पुं० [स० कदलिन्] हिरन का एक भेद [को०]।

कदलीक्षता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ परवल। पटोल। २ सुदर स्त्री। सुदरी [को०]।

कदा—क्रि० वि० [सं०] कब। किस समय।

मुहा०—यदा कदा=कभी कभी। अनिश्चित समय पर।

कदाकार—वि० [सं०] बुरे आकार का। बदसूरत।

कदाख्य—वि० [सं०] बदनाम।

कदाच(पु)—क्रि० वि० [स० कदाचन] शायद। कदाचित्। उ०—कौन समो इन बातन को रण राम दहै घर मे पटरानी। राम के हाथ मरे दशकधर तें यह बात सु काहे ते जानी। और कदाच बने यहि भाँति तो आज बने कहु कौन सी हानी। देह छुटे हू न सीय छुटी चलिहै जग मे युग चार कहानी।—हनुमान (शब्द०)।

कदाचन—क्रि० वि० [स०] १ किसी समय। कभी। २ शायद।

कदाचार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० कदाचारी] बुरी चाल। बुरा आचरण। बदचलनी।

कदाचारी—वि० [स० कदाचारिन्] बुरे आचरणवाला। कुचाली [को०]।

कदाचि(पु)—क्रि० वि० [स० कदाचित्] दे० 'कदाचित्'। उ०—जौ कदाचि मोहि मारहि तौ पुनि होउँ सनाथ।—मानस, ४१७।

कदाचित्—क्रि० वि० [स०] कभी। शायद कभी।

कदाचित(पु)—क्रि० वि० [स० कदाचित्] कभी। शायद कभी। उ०—अस सयोग ईस जब करई। तबहु कदाचित सो निरुअरई।—मानस, ७। ११७।

कदापि—क्रि० वि० [सं०] कभी भी। किसी समय। हर्गिज।

विशेष—इसका प्रयोग निषेधार्थक शब्द 'न' या 'नहीं' के साथ ही होता है। जैसे,—ऐसा कदापि नहीं हो सकता,।

कदामत—सज्ञा स्त्री० [अ० कदामत] १ प्राचीनता। पुरानापन। २ प्राचीन काल। सनातन।

कदाहार[1]—सज्ञा पुं० [स०] दूषित या निकृष्ट भोजन [को०]।

कदाहार[2]—सज्ञा पुं० [स० कदा+आहार] अनियमित समय का भोजन। जब तब भोजन करना [को०]।

कदियक(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'कभी'। उ०—कदियक आवै कोटडी छिपतो छिपतो छैल।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० १३।

कदी[1]—वि० [अ० कद=हठ] हठी। जिद्दी।

कदी[2]—क्रि० वि० [स० कदा] कभी। उ०—करै कमाई जो कछू, कदी न निष्फल जाय।—कबीर सा०, पृ० ४६६।

कदीम[1]—वि० [अ० कदीम] पुराना। प्राचीन। पुरातन। उ०—यकीन जय मे बई बन्दा हूँ कदीम।—दक्खिनी०, पृ० ६१।

कदीम[2]—सज्ञा पुं० [देश०] लोहे के छड जो जहाजों मे बोझ इत्यादि उठाने के काम मे आते हैं।

कदीमी—वि० [अ० कदीम+फा० ई (प्रत्य०)] प्राचीन काल का। पुराने समय का। पुरातन। उ०—खानेजाद कदीमी कहियो तुहीं आसरो मेरो।—चरण० बानी०, पृ० ६१।

कदुष्ण—वि० [सं०] इतना गर्म कि जिसके छूने से त्वचा न जले। थोडा गर्म। शीरगर्म। सीतगरम। कोसा।

कदूरत—सज्ञा पुं० [अ० कुदूरत] रजिश। मनमोटाव। कीना।

क्रि० प्र०—आना।—रखना।—होना।

कदे(पु)†—अव्य० [हिं०] कब। कभी। किस समय। उ०—(क) जब मिलौं राव हम्मीर तुम, बहुरि ममै ह्वै है कदे।—हम्मीर रा०, पृ० १३६। (ख) सेवक भाव कदे नहि चौरैं।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

कद्द[1]—सज्ञा स्त्री० [अ० कद्द] वैमनस्य। द्वेष। हठ। [को०]।

कद्द[2]—सज्ञा पु० [अ० कद] दे० 'कद' ४। उ०—कारे कद्द भारे भीम दीरघ दतारे जौन, जलधर धारैं ज्यो फुहारैं फुफकारैं ते।—हम्मीर०, पृ० २३।

कद्दावर—वि० [हिं० कद+फा० आवर (प्रत्य०)] बडे डील डौल का। लबा चौडा।

कद्दी(पु)†[1]—वि० [हिं० कदी] दे० 'कदी'-१।

कद्दी(पु)†[2]—क्रि० वि० [हिं० कदी] दे० 'कदी'-२।

कद्दू—सज्ञा पुं० [फा०] १ लौकी। लौवा। घिया। गडेल। उ०—आजकल कद्दू (काशीफल) के स्वर्णिम पुष्प भी खिले थे।—किन्नर०, पृ० ७२। २ लिंग।—(बाजारू)।

कद्दूकश—सज्ञा पु० [फा०] लोहे पीतल आदि की छोटी चौकी जिसमे ऐसे लबे छेद होते हैं, जिनका एक किनारा उठा और दूसरा दबा होता है। इस पर कद्दू को रगडकर रायते आदि के लिये उसके महीन टुकडे करते हैं।

कद्दू दाना—सज्ञा पु० [फा०] पेट के भीतर के छोटे छोटे सफेद कीडे जो मल के साथ गिरते हैं।

कद्र—सज्ञा पुं० [अ० कद्र] १ गुण की परख। २ कीमत। ३ सत्कार। आदर।

कद्रदान—वि० [अ० कद्र+फा० दान (प्रत्य०)] गुणग्राहक। गुण पहचाननेवाला।

कद्रदानी—सज्ञा स्त्री० [अ० कद्र+फा० दानी (प्रत्य०)] गुण की परख। गुणज्ञता। गुणग्राहकता। उ०—मोटे अक्षरो मे राजासाहब की कद्रदानी और उदारता की प्रशसा के साथ खिलाडी को विजयपत्र देने का समाचारपत्र था।—अभिशप्त, पृ० ६८।

कद्रु[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षपुत्री और कश्यप की पत्नी जो नागो की माता थी [को०]।

कद्रु[2]—वि० [पुं०] १. पीतवर्ण। २. बहुरगी। ३. धब्बेदार [को०]।

कद्रुज—सज्ञा पु० [सं०] सर्प। नाग। साँप।

मुहा०—कदम पर कदम रखना=(१) ठीक पीछे चलना। पीछे लगना। (२) अनुकरण करना। नकल करना। पैरवी करना।

४. चलने में एक पैर से दूसरे पैर तक का अंतर। पैंड। पग। फाल। जैसे,—वह जगह यहाँ से १०० कदम होगी। ५ घोड़े की एक चाल जिसमें केवल पैरों में गति होती है और पैर बिलकुल नपे हुए और थोड़ी थोड़ी दूर पर पड़ते हैं।

विशेष - इसमें सवार के बदन पर कुछ भी झटका नहीं पहुँचता। कदम चलाने के लिये बाग खूब कड़ी रखनी पड़ती है।

क्रि० प्र०—निकलना=कदम की चाल सिखाना।

६ क्रम। उपक्रम। ७ किसी कार्य के निमित्त किया जानेवाला प्रयत्न। कार्यसाधन की चेष्टा। ८ काम। कार्य।

कदमचा—संज्ञा पुं०[अ० कदम+फा० चा]१ पैर रखने का स्थान। २ पाखाने की वे खुड्डियाँ जिनपर पैर रखकर बैठते हैं। खुड्डी।

कदमबाज—वि० [अ०] १ कदम की चाल चलनेवाला (घोड़ा)। २ बदचलन।

कदमबोसी—संज्ञा स्त्री० [अ० कदम+फा० बोसी] कदम चूमना। चरण चूमना। सम्मान का प्रदर्शन करना। सम्मान या आदर करना।

कदमा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कदम] एक प्रकार की मिठाई जो कदंब के फूल के आकार की बनती है।

कदर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ लकड़ी चीरने का आरा। २ अंकुश। ३. वह गाँठ जो हाथ या पैर में काँटा या कंकड़ी चुभने या अधिक रगड़ से पड़ जाती है और कड़ी होकर बढ़ती है। चाँई। ठेकी। गोखरू। ४ सफेद खैर। ५ छेना (डिं०)। ६ एक पेड़ का नाम जो कभी कभी खदिर के स्थान पर यज्ञयूप के काम आता था (डिं०)।

कदर²—संज्ञा स्त्री० [अ० कद्र]१. मान। मात्रा। मिकदार। जैसे,—तुम्हारे पास इस कदर रुपया है कि तुम एक अच्छा रोजगार चला कर सकते हो। २ मान। प्रतिष्ठा। बड़ाई। आदर सत्कार जैसे,—(क) उस दरबार में उनकी बड़ी कदर है। (ख) तुम्हारे यहाँ चीजों की कदर नहीं है।

यौ०—कदरदान। बेकदर।

कदरई७—संज्ञा स्त्री० [हिं० कादर] कायरपन।

कदरज¹—संज्ञा पुं० [सं० कदर्य] एक प्रसिद्ध पापी। उ०—गणिका अरु कदरज ते जग मँह अघ न करत उबर्यो। तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हर भवन धर्यो।—तुलसी(शब्द०)।

कदरज²७—वि० दे० 'कदर्य'।

कदरदान—वि० [अ० कद्र+फा० दान] कदर करनेवाला। गुणग्राहक। उ०—सराहन की भीमाकाली तो द्वापरकाल से उनकी कदरदान है।—किन्नर०, पृ० ५४।

कदरदानी—संज्ञा स्त्री० [अ० कद्र+फा० दानी] गुणग्राहकता।

कदरमस७—संज्ञा स्त्री० [सं० कदन+हिं० मस (प्रत्य०)] मारपीट। लड़ाई। उ०—पावहु करहु कदरमस साजू। पर्ाहि दवाम नहीं तह राजू।—जायसी (शब्द०)

कदराई७—संज्ञा स्त्री० [हिं० कादर+ई (प्रत्य०)] कायरपन। भीरुता। कायरता। उ०—नृपहि केरि गई नदराई। सुर मुनि बरन केरि कदराई।—तुलसी (शब्द०)।

कदराना७—क्रि० अ०[हिं० कादर से नाम०] कायर होना। डरना। भयभीत होना। कदियाना। उ०—(क) समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तात प्रेमवश जनि कदराहू। समुझि हृदय परिणाम उछाहू।—तुलसी (शब्द०)।

कदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कद=बुरा+रव=शब्द] एक पक्षी जो डीलडौल में मैना के बराबर होता है। उ०—(क) धनी परेवा पाँड़ुक हेरी। कोहा कदरी उत्तर बगेरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) सब छोड़ो जात तूती औ कदरी न आन की। यारो कुछ अपनी फिक्र करो अब दाल की।—नजीर (शब्द०)।

कदर्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] निकम्मी वस्तु। कूड़ा करकट।

कदर्य²—वि० १ कुत्सित। बुरा। २ निष्प्रयोजन (डिं०)।

कदर्थन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कष्ट या पीड़ा देना। सताना। २ तिरस्कार। अपमान। ३ दुर्गति। दुर्दशा (डिं०)।

कदर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कदर्थित] १ दुर्गति। दुर्दशा। बुरी दशा। उ०—(क) हा हा करै तुलसी दया निधान राम ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नरपिशाचों का नाश, दमन और उत्पीड़न देखकर समाज हर्षविह्वल हो जाता है और वहीं महात्माओं की कदर्थना देखकर कलेजा थाम लेता है —रस क०, पृ० २६। २ कष्ट देना। सताना (डिं०)। ३ अपमान। तिरस्कार। अवहेलना। (डिं०)।

कदर्थित—वि०[सं०]१. जिसकी बुरी दशा की गई हो। दुर्गतिप्राप्त। २ जिसकी विडंबना की गई हो। जिसकी खूब गत बनाई गई हो। जैसे—वे उस सभा में खूब कदर्थित किए गए। ३ पीड़ित। संतप्त (डिं०)।

कदर्य¹—वि० [संज्ञा कदर्यता] जो स्वयं कष्ट उठाकर और अपने परिवार को कष्ट देकर धन इकट्ठा करे। कंजूस। मक्खीचूस।

कदर्य²—संज्ञा पुं० [सं०] वह कंजूस राजा जो कोश इकट्ठा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी राज्य की भलाई में न खर्च करे। (डिं०)।

कदर्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंजूसी। सूमपन।

कदल—संज्ञा पुं० [सं०] कदली वृक्ष। केला (डिं०)।

कदलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कदल' (डिं०)।

कदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृश्नि। २. डिंडिका। ३. शाल्मलि (डिं०)।

कदलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झंडा। ध्वजा। पताका। २. कदल एक वृक्ष (डिं०)।

कदली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ केला। उ०—जन पवन कदली जिमि कांपी। कुवरी दसन जीभ तब चाँपी।—मानस २। २४। २. एक पेड़।

विशेष—यह धनाश्री, कनाड़ा, टोल, अभीरी, मधुमाध और केदार को मिलाकर बनता है। इसमे सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कदंबद—संज्ञा पुं० [सं० कदम्बद] सरसो के बीज का पौधा [को०]।

कदंबपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० कदम्बपुष्पी] गोरखमुंडी [को०]।

कदंबब्रह्ममंडल—संज्ञा पुं० [सं० कदम्बब्रह्ममण्डल] ग्रहण का मंडल [को०]।

कदंबयुद्ध—संज्ञा पुं० [कदम्बयुद्ध] एक प्रकार की रतिक्रीडा [को०]।

कदंबरि(पु), कदंबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कादंबरी[3]'। उ०—बिना कदंबरि के पिए, त्रास न मन सो जात।—इन्द्रा०, पृ० ३४।

कदंबवायु—संज्ञा पु० [कदम्बवायु] सुगंधित पवन [को०]।

कदंश—संज्ञा पु० [सं०] बुरा या निकृष्ट अंश।

कद[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० कद्] [वि० कद्दी] १ ईर्ष्या। द्वेष। शत्रुता। जैसे,—वह न जाने क्यो, हमसे कद रखता है। २. हठ। जिद। जैसे,—उनको इस बात की कद हो गई है।

कद[2]—संज्ञा पुं० [सं० क=जल+द=ददाति] बादल। मेघ।

कद[3]—वि०[सं०]१ जल देनेवाला। २ आनंद या हर्ष देनेवाला।[को०]।

कदां[4]—अव्य० [सं० कदा] कब। किस दिन। किस समय। उ०—पुरष जनम तू कद पामेला, गुण कद हरि रा जासी।—रघु० रू०, पृ० १६।

कद[5]—संज्ञा पु० [अ० कद] डील। ऊँचाई। उ०—बामन बामन मृदु कुमुद गनै अंजन से जैतकर अंजन के कद हैं।—मतिराम ग्र० पृ० ३५४।

यौ०—कद्दआदम=मानव शरीर के बराबर ऊँचा।

विशेष—इसका प्रयोग साधारणत प्राणियो और पौधो के लिये ही होता है।

कदक—संज्ञा पु० [सं०] १ डेरा। २ चँदवा। चाँदनी।

कदक्षर—संज्ञा पु० [सं० कद्+अक्षर] १ कुत्सित वर्ण। २. बुरा लिखावट या लिपि [को०]।

कदध्व(पु)—संज्ञा पु० [सं० कदध्वन्] खोटा मार्ग। कुपथ। बुरा रास्ता।

कदध्व—संज्ञा पु० [सं० कदध्वन्] खराब मार्ग या पथ [को०]।

कदन—संज्ञा पुं०[सं०] १ मरण। विनाश। २. युद्ध। संग्राम। जैसे, कदनप्रिय। ३ हिंसा। पाप। ४। दुख। उ०—कदन विदन अकदन तुदा गहन वृजन क्लेश आहि। दुख जनि दे अब जान दे बैठी कत अनखाहि।—नंददास (शब्द०)। ५ मारनेवाला। घातक।

विशेष—इस अर्थ मे यह यौगिक या समस्त पद के अंत मे आता है। जैसे, मदनकदन कमकदन।

६ छुरिका। छुरी (को०)।

कदन्न—संज्ञा पु० [सं०] वह अन्न जिसका खाना शास्त्रो मे वर्जित या निषिद्ध है अथवा जिसका खाना वैद्यक मे अपथ्य या स्वास्थ्य के लिये हानिकारक माना गया है। कुत्सित अन्न। बुरा अन्न। कुअन्न। मोटा अन्न। जैसे,—कोदो, केसारी, मसूर।

यौ०—कदन्नभुक्। कदन्नभोजी।

कदपत्य—संज्ञा पु० [सं० कद्+अपत्य] कुपुत्र। कपूत [को०]।

कदबां—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] दे० 'कदंब'।

कदम[1]—संज्ञा पुं० [कदम्ब] १ एक सदाबहार पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए के से पर उससे छोटे और चमकीले होते हैं। इसमें बरसात में गोल गोल लड्डू के से पीले फूल लगते हैं। पीले पीले किरनो के झड जाने पर गोल गोल हरे फल रह जाते हैं जो पकने पर कुछ कुछ लाल हो जाते हैं। ये फल स्वाद मे खटमीठे होते हैं और चटनी अचार बनाने के काम मे आते हैं। इसकी लकडी की नाव तथा और बहुत सी चीजें बनती हैं। प्राचीन काल मे इसके फलो से एक प्रकार की मदिरा बनती थी, जिसे कादंबरी कहते थे। श्रीकृष्ण को यह पेड़ बहुत प्रिय था। वैद्यक में कदम को शीतल, भारी, विरेचक, सूखा, तथा कफ और वायु को बढानेवाला कहा है।

प०र्या०—नीप। प्रियक। हरीप्रिय। पावृषेण्य। वृत्तपुष्प। सुरभि। ललना। प्रिया। कर्णपूरक। महाढच।

यौ०—कदमखंडिका=कदम वाटिका। वह स्थान जहाँ कदम के वृक्ष अधिक हो। उ०—(क) कहूँ कुटी कहुँ सघन कुटी कहुँ कदम खंडिका छाई।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४०८। (ख) सो सेवा सो पहोंचि गोविन्द स्वामी की कदम खंडी मे जाते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६०।

२ एक घास का नाम।

कदम[2]—संज्ञा पुं० [अ० कदम] १ पैर। पाँव। पग।

मुहा०—कदम उखड़ना=भाग जाना। हट जाना। कदम उखडना=(१) तेज चलना। जैसे,—कदम उठाओ, दूर चलना है। (२) उन्नति करना। कदम उठाकर तेज चलना=तेज या शीघ्र चलना। कदम चूमना=अत्यत आदर करना। जैसे,—अगर तुम यह काम कर दो तो तुम्हारे कदम चूम लूँ। उ०—सब वजादार तेरे आके कदम चूमते हैं।—श्यामा०, पृ० १०२। कदम छूना=(१) पैर पकडना। दंडवत करना। प्रणाम करना। (२) शपथ खाना। जैसे,—आप के कदम छू कर कहता हूँ, मेरा इससे कोई संबंध नहीं है। (३) विनती करना। खुशामद करना। जैसे,—वह बार बार कदम छूने लगा, तब मैने उसे छोड दिया। (४) बडा या गुरु मानना। गुरु बनाना। कदम डगमगाना या लड़खडाना=डावाँडोल होना। ढीला पडना। शिथिल होना। मगर यहाँ पर हमारा भी कदम डगमगाने लगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०। कदम पकड़ना या लेना=(१) पैर पकड़ना। प्रणाम करना। आदर से पैर लगना। (२) बड़ा या गुरु मानना। आदर करना। (३) विनती करना। खुशामद करना। कदम बढाना या कदम आगे बढ़ना=(१) तेज चलना। (२) उन्नति करना। कदम मारना=(१) दौड़ धूप करना। (२) यत्न या उपाय करना। कदम रखना=प्रवेश करना। दाखिल होना। पैर रखना।

२ पदचिह्न। चरणचिह्न।

मुहा०—कदम ब कदम चलना=(१) साथ साथ चलना। (२) अनुकरण करना। कदम भरना=चलना। डग बढ़ाना।

३. धूल या कीचड़ में बना हुआ पैर का चिह्न।

(१) कथा होना। (२) कथा प्रारंभ होना। कथा वंठाना = कथा कहने के लिये किसी व्यास को नियुक्त करना।

यौ०—कथामुख। कथारंभ। कथोदय। कथोद्घात = कथा का प्रारंभिक भाग। कथापीठ = कथा का मुख्य भाग।

३ उपन्यास का एक भेद।

विशेष—इसमे पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका होती है। पूर्वपीठिका मे एक वक्ता और एक या अनेक श्रोता वनाए जाते हैं। श्रोता की ओर से ऐसा उत्साह दिखलाया जाता है कि पढनेवालों को भी उत्साह होता है। वक्ता के मुँह से सारी कहानी कहलाई जाती है। कथा की समाप्ति मे उत्तरपीठिका होती है। इसमें वक्ता और श्रोता का उठ जाना आदि उत्तरदशा दिखाई जाती है।

४. वात। चर्चा। जिक्र।

क्रि० प्र०—उठना।—चलना।—चलाना।

५. समाचार। हाल। ६ वादविवाद। कहासुनी। झगडा।

मुहा०—कथा चुकाना = (१) झगड़ा मिटाना। मामला खतम करना। (२) काम तमाम करना। मार डालना। उ०—मेघनाद रिस आई, मंत्र पढि कै चलाइयो वाण ही मे नाग फांस वडी दुख दाइनी। काहे की लराई, उन कथा की चुकाई जैसे पारा मारि डारत है पल मे रसाइनी।—हनुमान (शब्द०)।

कथाकार—संज्ञा पु० [स०] कथावाचक। उ०—ब्रज मे अव भी जो कथाकार अर्थात् श्रीमद्भागवत आदि की कथा वाँचने आते हैं।—पोद्दार अभि० ग्र०, ४८१।

कथाकोविद—वि० [स०] कथा कहने मे कुशल। उ० — कथाकोविद ग्रामवृद्धों मे उसी प्रकार के माधुर्य का अनुभव किया था।—रस०, पृ० १३।

कथाकौशल—संज्ञा पुं० [स०] १ कथा कहने की प्रवीणता। चौंसठ कलाओं मे एक कला। उ०—कथाकौशल, सूचीकर्म, शास्त्रविद्या, एवंविध चतुष्पष्टि कला कलाकुशल नायक देपु।—वर्ण०, पृ० २१। २ कहानी रचना का कौशल।

कथानक—संज्ञा पु० [स०] १. कथा। २. छोटी कथा। वड़ी कथा का साराश। कहानी। किस्सा।

कथानिका—संज्ञा स्त्री० [स०] उपन्यास का एक भेद।

विशेष—इसमे सव लक्षण कथोपन्यास ही के होते हैं, पर अनेक पात्रों की वातचीत से प्रधान कहानी कहलाई जाती है।

कथापीठ—संज्ञा पुं० [स०] कथा की प्रस्तावना।

कथाप्रवंध—संज्ञा पुं० [सं० कथाप्रबंध] कथा की गठन या वंदिश। उ०—सो सव हेतु कहव मैं गाई। कथाप्रवंध विचित्र वनाई।—मानस, १, ३३।

कथाप्रसग—संज्ञा पुं० [सं० कथाप्रसङ्ग] १ अनेक प्रकार की वातचीत। उ०—तव नारद सवही समुझावा। पूरव कथा प्रसंगु सुनावा।—मानस, १।१६८। २ वातचीत का क्रम। ३ विषवैद्य। विषचिकित्सक। संपेरा। मदारी।

कथामुख—संज्ञा पु० [स०] आख्यान या कथाग्रंथ की प्रस्तावना।

कथावस्तु—संज्ञा स्त्री० [स०] नाटक या आख्यान आदि का कथन या कहानी। वि० दे० 'वस्तु'—५।

कथावार्ता—संज्ञा स्त्री० [स०] अनेक प्रकार की वातचीत।

कथिक¹—संज्ञा पुं० [हिं० कथक] दे० 'कत्थक'।

कथिक²—वि० [स०] १. कथन या वर्णन करनेवाला। २ कहानी कहनेवाला [को०]।

कथित¹—वि० [स०] १ कहा हुआ। २. अपुष्ट कथन।

कथित²—संज्ञा पु० [स०] मृदग के वारह प्रवंधो मे से एक प्रवंध।

कथी(ु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कथित] कथनी।

कथीर—संज्ञा पुं० [स० कस्तीर, पा० कत्थीर] राँगा। हिरनखुरी राँगा। उ०—(क) कचन केवल हरिभजन दूजी कथा कथीर।—कबीर (शब्द०)। (ख) अव तो मैं ऐसा भया निरमोलिक निज नाम। पहले काच कथीर था फिरता ठामहि ठाम।—कबीर (शब्द०)। (ग) जहँ वह वीरज परयो सुनीजै। रेस भईं तहं की सव चीजें। ता आगे की चीजें रुपो। होत भई पुनि लोह अनूपो। जहँ वह वीरज कोमल छायो। तहँ कथीर भो राँग सोहायो।—पद्माकर (शब्द०)।

कथोल—संज्ञा पु० [हिं० कथीर] दे० 'कथीर'।

कथीला—संज्ञा पुं० [हिं० कथीर] दे० 'कथील'।

कथोद्घात—संज्ञा पुं० [स०] १. प्रस्तावना। कथाप्रारंभ। २ (नाटक मे) सूत्रधार की वात, अथवा उसके मर्म को लेकर पहले पात्र का रंगभूमि मे प्रवेश और अभिनय का आरंभ। जैसे,—रत्नावली मे सूत्रधार की वात को दोहराते हुए यौगधरायण का प्रवेश। सत्य हरिश्चद्र मे' सूत्रधार के 'जो गुन नृप हरिचद मे' इस वाक्य को सुनकर और उसके अर्थ को ग्रहण करके इद्र का 'यहाँ सत्य भय एक के' इत्यादि कहते हुए रगभूमि मे प्रवेश।

कथोपकथन—संज्ञा पु० [सं०] १. वातचीत। गुफ्तगू। २ वादविवाद।

कथ्था(ु)—संज्ञा स्त्री० [स० कथा] कथा। वार्ता। कहानी। उ०—आदि अत जसि कथ्था अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २४।

कथ्य—वि० [स०] कहने योग्य। कथनीय। जो कहना उचित हो।

कदंव—संज्ञा पु० [सं० कदम्ब] १. एक प्रसिद्ध वृक्ष। कदम। २ समूह। ढेर। झुड। उ०—(क) यदि विधि करेहु उपाय कदंवा। फिरहि तो होय प्राण अवलवा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सोहत हार हिये हीरन को हिमकर सरिस विशाला। अंवरेख कौस्तुभ कदंव छवि पद प्रलंव वनमाला।—रघुराज (शब्द०)। ३. एक प्रकार का तृण। देवताडक (को०)। ४. सरसों का पौधा (को०)। ५. धूलि (को०)। ६ सुगध (को०)।

कदंवक—संज्ञा पुं० [स० कदम्बक] दे० 'कदंव'।

कदंवकोरक न्याय—संज्ञा पु० [स० कदम्बकोरक न्याय] दे० 'न्याय' [को०]।

कदंवनट—संज्ञा पु० [स० कदम्बनट] एक राग।

कत्थ[2]—सज्ञा पु० [सं० कथा] कथा । बात । चर्चा । उ०—तब बोल्यो दुजराज विचार । सुनि ससिवृत कत्थ इक सार ।—पृ० रा०, २५ । ७६ ।

कत्थई—वि० [हिं० कत्था > कत्थ + ई (प्रत्य०)] खैर के रग का । खैरा (रग) ।

विशेष—यह रग हर्रे, कसीस, गेरू, कत्थे और चूने से बनता है। इसमे खटाई या फिटकरी का बोर नही दिया जाता ।

कत्थक—सज्ञा पुं०[सं० कथक]१. जाति जिसका काम गाना, बजाना और नाचना है। २. नृत्य की एक शैली । उ०—कत्थक हो या कथकली या बालडास ।—कुकुर०, पृ० १० ।

कत्थन—सज्ञा पुं० [सं०] डीग मारना [को०] ।

कत्थना—सज्ञा स्त्री० [स०] डींग [को०] ।

कत्था—सज्ञा पुं० [स० क्वाथ] १. खैर के पेड की लकड़ियो को उबालकर निकाला हुआ रस जिसे जमाकर कतरे काटते हैं। ये कतरे पान मे खाए जाते हैं। वि० दे० खैर'। २ खैर का पेड । कथकीकर ।

कत्थित—वि० [सं०] डीग मे कथित [को०] ।

कत्थितव्य—वि० [सं०] अभिमान के साथ कथन योग्य [को०] ।

कत्ल—सज्ञा पुं० [अ० कत्ल] दे० 'कतल' ।

कत्ल-आम—संज्ञा पुं० [अ० कत्ल आम] सब लोगों की वह हत्या जो बिना किसी छोटे बड़े या अपराधी का विचार किए की जाय ।

कत्सवर—सज्ञा पुं० [सं०] कधा [को०] ।

कथ—अव्य० [स० कथम्] १ किस रूप मे । कैसे । किस प्रकार । कहाँ से । २ साश्चर्य प्रश्न मे प्रयुक्त [को०] ।

कथंकथित—सज्ञा पुं० [सं० कथङ्कथित] प्रश्नकर्ता । अन्वेषक व्यक्ति ।

कथचित्—क्रि० वि० [सं० कथञ्चित] शायद ।

कथभूत—वि० [सं० कथम्भूत] कैसा । किस प्रकार का [को०] ।

कथभूती—वि० [सं० कथम्भूत + ई (प्रत्य०)] कथभूत से संबध रखनेवाला । उ०—यह, किसी सस्कृत मे लेख का कथभूती अनुवाद न हो ।—इतिहास०, पृ० ४०४ ।

कथ[1]†—सज्ञा पु० [हिं० कत्था] कत्था । खैर ।

कथ[2]Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [सं० कथा] दे० 'कथा' । उ०—एक दिवस कवि चद कथ, कही अप्पनें भोन ।—पृ० रा०, १ । ७६२ ।

कथक—सज्ञा पु० [सं०] १ कथा कहनेवाला । किस्सा कहनेवाला । २ पुराण बाँचनेवाला । पौराणिक । ३ नाटक की कथा का वर्णन करनेवाला । एक पात्र या नट । ५ दे० 'कत्थक' । उ०—वैरगिया नाला जुलुम जोर । नौ कथक नचावत तीन चोर ।—हिंदी प्र०, पृ० । ५ प्रतिवादी (को०) । ६ मुख्य अभिनेता । सूत्रधार (को०) ।

कथकली—सज्ञा पुं० [मल०] दक्षिण भारत की एक भावनृत्य शैली । विशेष—इसमे पार्श्व मे कथा गाई जाती है जिसे नर्तक मुद्राओ द्वारा अभिव्यक्त करता है ।

कथकीकर—सज्ञा पुं०[हिं० कत्था + कीकर] कीकर की जाति का वह वृक्ष जिसकी छाल से कत्था या खैर निकलता है। खैर का पेड।

कथक्कड—सज्ञा पुं०[सं० कथा + कड़(प्रत्य०)]बहुत कथा कहनेवाला।

कथडी—सज्ञा स्त्री०[हिं० कथरी]दे० 'कथरी' । उ०—खिसक गई कधों की कथडी, ठिठुर रहा अब सर्दी से तन ।—ग्राम्या, पृ० ६६।

कथन—सज्ञा पुं० [स०] १. कहना । बखान । बात । उक्ति ।

यौ०—कथनानुसार ।

२ उपन्यास का एक भेद ।

विशेष—इसमे पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका नहीं होती, पर कहनेवाले के नाम आदि का पता प्रसग से चल जाता है। कहनेवाला अचानक कथा प्रारभ करता है और कहनेवाले की वक्तृता की समाप्ति के साथ ग्र थ समाप्त हो जाता है।

कथनाⓅ—क्रि० स० [स० कथन] १. रचकर बात करना। उ०—जिमि जिमी तापस कथइ उदासा । तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा । —तुलसी (शब्द०) । २. कहना । बोलना । उ०—(क) बेणु बजाय रास वन कीन्हो अति आनँद दरसायो। लीला कथत सहसमुख तोऊ अजहूँ पार न पायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) उ० कथा, कवि चद सु उप्पम थोर। विराजत पतिय कतिय चोर ।—पृ० रा०, २१ । ३६ । ३ निंदा करना । बुराई करना ।

कथनीⓅ—सज्ञा स्त्री० [सं० कथन + ई (प्रत्य०)] १ बात । कथन। कहना । उ०—(क) कथनी थोथी जगत मे करनी उत्तम सार। कहै कवीर करनी भली उतरै भव जग पार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) करनी है पातर कथनी है दोना ।—धरम०, पृ० ६५ । २. हुज्जत । बकवाद ।

क्रि० प्र०—कथना ।—करना ।

कथनीय—वि० [स०] १ कहने योग्य । वर्णनीय । उ०—रामहि चितव भाव जेहि सीया । सो सनेह सुख नहि कथनीया ।—तुलसी (शब्द०) । २. निंदनीय । बुरा ।

कथमपि—क्रि० वि० [स० कथम् + अपि] किसी प्रकार । जैसे तैसे। बहुत कठिनता से । उ०—वैष्णव ग्र थो मे उपलब्ध उल्लेख, उनके जीवनवृत्त विषयक हमारी जिज्ञासा को कथमपि शात नही करते ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १६७ ।

कथरी—सज्ञा पुं० [पु० कन्था + री (प्रत्य०)] वह बिछावन या ओढ़ना जो पुराने चिथडो को जोड़ जोडकर सीने से बनता है। गुदडी । उ०—पातक पीन कुदारिद दीन मलीन धरे कथरी करवा है ।—तुलसी (शब्द०) ।

कथातर—सज्ञा पुं० [स० कथान्तर] दूसरी कथा । किसी कथा के अतर्गत अन्य गौण कथा ।

कथा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह जो कही जाय । बात ।

विशेष—न्याय मे यथार्थ निश्चय या विपक्षी के पराजय के लिये जो बात कही जाय। इसके तीन भेद हैं—वाद, जल्प, वितडा।

यौ०—कथोपकथन = परस्पर बातचीत ।

२ धर्मविषयक व्याख्यान या आख्यान । उ०—हरि हर कथा विराजति बेनी ।—मानस, १ । २ ।

क्रि० प्र०—करना ।—कहना ।—बाँचना ।—सुनना ।—सुनाना । —होना । उ०—पहिलै ताकर नावँ लै कथा करौं औगाहि । जायसी ग्र ०, पृ० १ ।

मुहा०—कथा उठना = कथा बद या समाप्त होना । कथा बैठना =

परमाने हैं। ब्रह्मनंदमय ते अनामय अभय अब तेरे पद मेरे अवलंब ठहराने हैं।—चरण (शब्द०)।

कतिक(पु)†—क्रि० [सं० कति+एक अथवा सं० कति+क] (प्रत्य०)] १ कितना। कितेक। किस कदर। दे० 'कितक'। २. थोडा। ३ बहुत। ज्यादा। अनेक।

कतिवा[२]—क्रि० वि० [स०] अनेक प्रकार का। बहुत भांति का। कई किस्म का।

कतिवा[३]—क्रि० वि० कई तरह से। अनेक प्रकार से। बहुत भांति से।

कतिपय- वि० [सं०] १ कितने ही। कई एक। २. कुछ थोडे से।

विशेष—संस्कृत मे यह सर्वनाम माना गया है। हिंदी में यह सख्यासूचक विशेषण है।

कतिया—सज्ञा स्त्री० [हिं०] १ कैंची। दे० 'काती'। २ छोटी तलवार। कत्ती। उ०—(क) वे पतियाँ लिखि भेजति यों, मन की छतिया कतिया सी खगी है।—नट०, पृ० ४१। (ख) मैं सुणी सजन की वतियाँ। मेरे चनी कलेजे कतियाँ।—राम० धम०, पृ० ३१।

कती(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० काती] दे० 'कतिया'। उ०—स्वर्ण के खडग्ग, पडे, हत्थ पग्ग। कती धार कैसी, जरी दत जैसी। —रा० रू०, पृ० १६१।

कतीव(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कतेव'। उ०—बहुतक देखा पीर औलिया पढे कतीव पुराना।—कबीर ग्र०, पृ० ३३८।

कतीरा—सज्ञा पुं० [देश०] गुलू नामक वृक्ष का गोंद।

विशेष—यह खूब सफेद होता है और पानी मे घुलता नहीं और गोंदो की तरह इसमे लसीलापन नहीं होता। यह बहुत ठंडा समझा जाता है और रक्तविकार तथा धातुविकार के रोगों मे दिया जाता है। बोतल मे वद करके रखने से इसमे सिरके की सी गध आ जाती है।

कतील—वि० [अ० कतील] कत्ल किया गया। निहत। उ०—अब सुन हाल असहावे फील। किस तरह किया हक उनको कतील।—दक्खिनी०, पृ० २२०।

कतूहल(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कुतूहल] दे० 'कुतूहल'। उ०—ढोल उ मारु एकठा करइ कतूहल केलि।—ढोला०, दू० ५५५।

कतेक(पु)†—वि० [सं० कति+एक] १ कितने। कुछ। २ अनेक। थोड़े से।

कतेव(पु)—सज्ञा स्त्री० [अ० किताब] १ पुस्तक। किताब। २ धर्म ग्र थ। उ०—वेद कतेब पार नहिं पावत, कहन सुनन सो न्यारा।—कबीर बा०, पृ० ४७। (ख) कुरान कतेबा इलम सब पढ़ि करि पूरा होइ। दादू०, पृ० ४७।

कतोहर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० कुतूहल या कौतूहल] दे० 'कुतूहल'। उ०—चल्यो धरम तब मानसरोवर। बहुत हरष चित करत कतोहर। —कबीर सा०, पृ० १२४।

कतौनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कतावनी] १. कातने की क्रिया या भाव। २. कातने की मजदूरी। ३. किसी काम मे अनावश्यक रूप से बहुत अधिक विलब करना। ४ निरर्थक और तुच्छ काम।

कत्तई—वि० [अ० कतई] १. दे० 'कतई'—[२]। २. बदमाश।

कत्तर—सज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की चोटी बाँधने की डोरी।

कत्तरी†—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्तरी] कैंची।—देशी०, पृ० ३०।

कत्तल—सज्ञा पुं० [हिं० कतरा] १ कटा हुआ टुकड़ा। २. पत्थर का छोटा टुकडा जो गढाई मे निकलता है।

यौ०—कत्तल का बघार = किसी तरल पदार्थ को पत्थर या ईंट के तपाए हुए टुकड़े से छौंकना।

कत्ता—सज्ञा पुं० [सं०, या कर्तृ का वृहदार्थक रूप] १ बंसफोरों का एक औजार जिससे वे लोग बाँस वगैरह काटते या चीरते हैं। बाँका। बाँक। २. छोटी टेढी तलवार उ०—चौकत चकत्ता जाके कत्ता के कराकनि सो सेल की सराकनि न कोऊ जुरे जंग है।—सूदन (शब्द०)। ३. (चौपड का) पासा। कावतैन।

कत्तार(पु)—सज्ञा स्त्री० [अ० कतार] दे० 'कतार'। उ०—संवच दिन्न अति उंट अच्छ। कत्तार भार फवकार कच्छ।—पृ० रा०, ३। ११।

कत्तारी—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का सदाबहार वृक्ष। कत्तावा।

विशेष—यह हिमालय मे हजारा से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम मे भी पाया जाता है। इसकी टहनियाँ बहुत लबी और कोमल होती हैं और इसके पत्ते प्राय. एक बालिश्त लबे होते हैं। इसके फूल, जो जाडे मे फूलते हैं, मधुमक्खियो के लिये बहुत आकर्षक होते हैं।

कत्ताल—वि० [अ० कत्ताल] १ बहुत अधिक कत्ल करनेवाला। जल्लाद। उ०—रही ताबो ताकत न कत्ताल को। चला भाग तब काल पत्ताल को।—कबीर मं०, पृ० ६८। २ माशूक। प्रेमपात्र [को०]।

कत्तावा(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कत्तारी'।

कत्तिन—सज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] कातने का काम करनेवाली। उ०—चाची जैसी कत्तिनों के सूत को कभी तो एक सौ दस नबर का करार देते हैं।—रति०, पृ० ६६।

कत्ती—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्तरी] १. चाकू। छुरी। २ छोटी तलवार। ३' कटारी। पेशक। ४. सोनारों की कतरनी। ५. वह पगडी जो कपडे को बत्ती के हमान वटकर बाँधी जाती है। उ०—कत्ती बटि कसी पाग कत्ती सिर टेढ़ी लसै बड़ी मुख रत्ती ऐसे पत्ती जदुपति के।—गोपाल (शब्द०)।

कत्तेव(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० कतेब] दे० 'कतेब' २। उ०—कोइ वेद मस्त कतेब मस्त कोइ मक्के में कोइ काशी मे।—राम० धर्म०, पृ० ६५।

कत्थ[१]—सज्ञा पुं० [हिं० कत्था] कसेरे की स्याही। लोहे की स्याही। —(रँगरेज)।

विशेष—१५ सेर पानी मे आध सेर गुड या शक्कर मिलाकर घड़े मे रख देते हैं। फिर उस घड़े मे कुछ लोहचून छोडकर उसे धूप में उठने के लिये रख देते हैं। थोड़े दिनों मे यह उठने लगता है और मुँह पर गाज जमा हो जाता है। जब यह स्याही मायल भूरे रंग का हो जाता है, तब यह पक्का हो जाता है और रँगाई के काम के योग्य हो जाता है। इसे लोहे की स्याही कहते हैं।

कतरी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश०)।

कतल—संज्ञा पुं० [अ० कत्ल] वध। हत्या।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

कतलवाज—संज्ञा पुं० [अ० कत्ल+फा० बाज] वधिक। जल्लाद। संहारक। मारनेवाला। उ०—आई तजिहौं तो ताहि तरनि-तनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पदमाकर घरीक ही में घनश्याम काम को कतलवाज कुंज ह्वै है काती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

कतला—संज्ञा पुं० [देश० या अ० कातिला] एक प्रकार की मछली जो बड़ी नदियों में पाई जाती है।
विशेष—इसकी लंबाई छह फुट तक की होती है। यह मछली बड़ी बलवती होती है और पकड़ते समय कभी कभी मछुओं पर आक्रमण करके उन्हें गिरा देती और काट लेती है।

कतलाम—संज्ञा पुं० [अ० कत्ले+आम] सर्वसाधारण का वध। सबका वध। बिना विचारे अपराधी, निरपराध, छोटे बड़े सबका संहार। सर्वसंहार। उ०—जहा परै कतलाम करै सब नित नव जोवनवारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४।

कतली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] १ मिठाई पकवान आदि के चौकोर काटे हुए छोटे टुकड़े। २ चीनी की चाशनी में पागे हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज।

कतवाना—क्रि० स० [हिं० कातना का प्रे० रूप] किसी दूसरे से कातने का काम लेना। कातने में लगाना।

कतवार¹—संज्ञा पुं० [हिं० पतवार=पताई] १ कूड़ा करकट। उ०—मैली गली भरी कतवारन।—भारतेंदु ग्र० भा०२, पृ०३३३। २ बेकाम की वस्तु। काम में न आने लायक वस्तु।

कतवार²†—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] [स्त्री० कतवारी] कातनेवाला। उ०—मन के मते न चालिए छोडि जीव की बानि। कतवारी के सूत ज्यों उलटि अपूठा आनि।—कबीर (शब्द०)।

कतवारखाना—संज्ञा पुं० [हिं० कतवार+फा० खानह्] वह स्थान जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो। कूड़ाखाना।

कतहुँ†—अव्य० [हिं० कत+हुँ] कहीं। किसी स्थान पर। किसी जगह। उ०—मूँदहु आँखि कतहुँ कोउ नाही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सखि हे कतहुँ न देखि मधाई।—विद्यापति, पृ० १६४।

कतहूँ†—अव्य० [हिं० कतहुँ] दे० 'कतहुँ'।

कता—संज्ञा स्त्री० [अ० कतअ] १ बनावट। आकार। उ०—छपन छपा के रवि इवै भा के दंड उतंग उड़ाके। विधि कता के बंधे पताके छुवैं जे रवि रथ चाके।—रघुराज (शब्द०)। २ ढंग। वजा। जैसे,—तुम किस कता के आदमी हो। ३. कपड़े की काट छाँट। जैसे,—तुम्हारे कोट की कता अच्छी नहीं है। ४ काट। उ०—उलही प्रीति लतासु, इश्क फूल सो डहडही।—देखन प्रान कता सु, देखत ही जिय रह सही।—ब्रज० ग्र०, पृ० १।

मुहा०—कता करना = कपड़े को किसी नाप के अनुसार काटना। कपड़े को ब्योंतना। जैसे,—दर्जी ने तुम्हारा अंगा कता किया या नहीं।

यौ०—कताकलाम = बात काटना। बात के बीच में बोल बैठना। कता तअल्लुक = संबंधविच्छेद। बिलगाव। कता नजर = संबंध तोड़ लेना। दृष्टि हटा लेना।

कताई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] १ कातने की क्रिया।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
२ कातने की मजदूरी। कतौनी।

कतान—संज्ञा पुं० [हिं० √कत=कतना] १ प्राचीन काल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था।
विशेष—यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चाँदनी पड़ने से फट जाता था।
२ एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्राय बनारसी साड़ियों और दुपट्टों में होता है। ३ एक प्रकार का बढ़िया रेशम जिससे काशी शिल्क के कपड़े या बनारसी साड़ियाँ तैयार होती हैं।

कताना—क्रि० स० [हिं० कातना का प्रे० रूप] किसी अन्य से कातने का काम कराना। कतवाना।

कतार—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ पंक्ति। पाँति। श्रेणी। लैन। उ०—कँधो विराट स्वरूप सुवृक्ष पै, मुक्ति मरालनि केरि कतार है।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५७६। २ यूथ। समूह। झुंड। उ०—सुजन सुखारे करे पुण्य उजियारे अति पतित कतारे भवसिंधु ते उतारे हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

कतारा¹—संज्ञा पुं० [सं० कान्तार, प्रा० कतार] [स्त्री० अल्पा० कतारी] एक प्रकार की लाल रंग की ऊख जो बहुत लंबी होती है। इसका छिलका मोटा और गूदा नर्म होता है। इसका गुड़ बनता है। उ०-ऊख कतारे और पौढ़े बहुत हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७।

कतारा²—संज्ञा पुं० [हिं० कटार] इमली का फल।

कतारी¹†—संज्ञा स्त्री० दे० 'कतार'। [हिं० कतार+ई (प्रत्य०)] उ०—तैसी भूमि सबै हरियारी। तैसी सीतल बहत बयारी। डोलत कीर कतारी। तैसी दादुर की धुनि न्यारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १२४।

कतारी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतारा] कतारे की जाति की ईख जो उससे छोटी और पतली होती है।

कति—वि० [सं०] १. (गिनती में) कितने। उ०—(क) मीत रही तुम्हरे नहि दारा। अब दिखाहि पोडसहि हजारा। कहहु मीत कुल की कुशलाई। सुता सुवन कति में सुखदाई।—रघुराज (शब्द०)। (ख) आँचर चीर धरइ हँसि हेरी। नहि नहि वचन भनब कति बेरी।—विद्यापति०, पृ० ७५। २ किस कदर (तौल या माप में)। ३ कौन उ०—भरत कीन नृप पद पालन पै राम राय को थतिक। राम देव राजा नहिं दूसर इंद्र एक सुर कतिक।—देवस्वामी (शब्द०)। ४ बहुत से। अगणित। उ०—जाहि के उदोत लहि जगमग होत जग जोत के उमग जामें अनु अनुमाने हैं। चेत के निचय जातें चेतन अचेत चय, लय के निलय जामें सकल समाने हैं। विश्वाधार कति जामें स्थिति है चराचर की, ईति की न गति जामें श्रुति

कतन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरनी] १. दे० 'कतरनी'। २. दे० 'चरखी'।

कतफल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कत[१]' (को०)।

कतमाल—संज्ञा पुं० [स०] अग्नि (को०)।

कतरछाँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना+छाँटना] कतरब्योंत। कमी वेशी। काटछाँट।

कतरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] कपड़े, कागज या धातु की चद्दर आदि के वे छोटे छोटे रद्दी टुकड़े जो काटछाँट के पीछे बच रहते हैं। जैसे, पान की कतरन। कपडे की कतरन।

कतरना[१]—क्रि० स० [स० कर्तन] [संज्ञा कतरन, कतरनी] १ किसी वस्तु को कैंची से काटना। २ (किसी औजार से) काटना।

कतरना[२]—संज्ञा पु० १. वडी कतरनी। वडी कैंची। २ वात काटनेवाला व्यक्ति। वतकट आदमी।

कतरनाल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घिन्नी जिसपर दोहरी गडारी होती है।—(लश०)।

कतरनी—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतरना] १. वाल, कपड़े आदि काटने का एक औजार। कैंची। मिकराज। उ०—(क) कपट कतरनी पेट मे, मुख वचन उचारी।—धरम०, पृ० ७२।

मुहा०—कतरनी की जवान चलना=वकवाद करना। दूसरे की वात काटने को वहुत वकवाद करना।

१ लोहारो और सोनारो का एक औजार जिससे वे धातुओं की चद्दर, तार, पत्तर आदि काटते हैं। यह सँडसी के आकार की होती है, केवल मुँह की ओर इसमें कतरनी रहती है। काती। ३ तँवोलियो का एक औजार जिससे वे पान कतरते हैं।

विशेष—इसमे लोहे की चद्दर के दो वरावर लंवे टुकड़े या वाँस या सरकडे के सोलह सत्रह अगुल के फाल होते हैं जिन्हें दाहिने हाथ में लेकर पान कतरते हैं।

४ जुलाहो का एक औजार जिससे वे सूत कातते हैं। ५ मोचियों और जीनगरो की एक चौड़ी नुकीली सुतारी जिससे वे कडे स्थान मे छोटी सुतारी जाने के लिये छेद करते हैं। ६. सादे कागज या मोंमजामे का वह टुकड़ा जिसे छीपी वेल छापते समय कोना वनाने के लिये काम मे लाते हैं। जहाँ कोने पर पूरा छाप नहीं लगाना होता, वहाँ इसे रख लेते हैं। चंवी। पत्ती। ७ एक मछली जो मलावार देश की नदियो मे होती है।

कतरव्योत—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतरना+व्योंत] १. काटछाँट। २ उलटफेर। हेरफेर। इधर का उधर करना।

क्रि० प्र०—करना।—मे रहना।—होना।

३ उधेडवुन। सोचविचार।

क्रि० प्र०—करना।—मे रहना।—होना।

४ दूसरे के सौदे सुलुफ मे से कुछ रकम अपने लिये निकाल लेना। जैसे,—वाजार से सौदा लाने मे नौकर कुछ न कुछ कतरव्योत करते हैं। ५ हिसाव किताव वैठाना। युक्ति। जोडतोड। जैसे,—ऐसी कतरव्योत करो कि इतने ही मे काम वन जाय।

मुहा०—कतरव्योंत से=हिसाव से। समझ वूझकर। सावधानी से। जैसे,—वे ऐसी कतरव्योत से चलते हैं कि थोड़ी आमदनी मे अपनी प्रतिष्ठा वनाए हुए हैं।

कुतरवाँ—वि० [हिं० कतरना+वाँ (प्रत्य०)] घुमावदार। औरेवदार। टेढ़ा। तिरछा।

यौ०—कतरवाँ चाल=(१)टेढी चाल। वक्र गति। (२) अटपटी चाल।

कतरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरवाना+वाई (प्रत्य०)] कतरवाने की क्रिया। २. कतरवाने की मजदूरी।

कतरवाना—क्रि० स० [हिं० कतरना] कतरने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को कतरने मे प्रवृत्त करना।

कतरा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० कतरना] १ कटा हुआ टुकड़ा। खड। जैसे,—तीन चार कतरे सोहन हलुआ खाकर वह चला गया। २. पत्थर का छोटा टुकड़ा जो गढ़ाई मे निकलता है।

कतरा[२]—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की वड़ी नाव जिसमे माँझी खड़े होकर डाँड़ चलाते हैं। यह पटेले के वरावर लवी पर उससे कम चौडी होती है। इसपर पत्थर आदि लादते हैं।

कतरा[३]—संज्ञा पुं० [अ० कत्रह्] वूँद। विंदु। उ०—गुज से कुल कतरे से दरिया वन जावैं। अपने कों खोए तव अपने को पावैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८।

कतराई—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतराना]१. कतरने का काम। २ कतरने की मजदूरी।

कतराना[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] १ किसी वस्तु या व्यक्ति को वचाकर किनारे से निकल जाना। जैसे,—वह मुझे देखते ही कतरा जाता है। उ०—अवासी इस मकान पर कतरा के एक गली मे जाने लगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६। २ नाक भौं सिकोडना। आपत्ति करना। उ०—कमी इन सादे भावो को भोडे और ग्राम्य कह कतराएँगे।—प्रेमघन०, पृ० ३३६।

सयो० क्रि०—जाना।

कतराना[२]—क्रि० स०[हिं० कतरना का प्रें० रूप] कटाना। कटवाना। छँटवाना।

सयो० क्रि०—डालना।

कतरारसाज—संज्ञा पुं०[सं० कतरना+रसा?]खँडरा नाम का पकवान जो वेसन से वनता है।

कतरी[१]—संज्ञा स्त्री० [स० कर्त्तरी=चक्र] १. कोल्हू का पाट जिसपर आदमी वैठकर वैलो को हाँकता है। कातर। २. पीतल का वना हुआ एक ढलवाँ जेवर जिसे नीच जाति की स्त्रियाँ हाथों मे पहनती हैं। ३. लकड़ी का वना हुआ एक औजार जिससे राज कारनिस जमाते हैं। यह औजार एक फुट लंवा, तीन इंच चौडा और चौथाई इंच मोटा होता है।

कतरी[२]—संज्ञा स्त्री०[हिं० कतरना]१. जमी हुई मिठाई का कटा हुआ टुकडा। उ०—वादशाह ने कहा कि डर नहीं है, हर एक एक एक लड्डू और एक एक कतरी माजून की खावे और वहाँ से वाहर आवे।—हुमायूँ०, पृ० ५४। २. कतरने या छाँटने का औजार। कैंची।—(लश०)।

कणजा—संज्ञा पुं० [हिं० कजा] 'कजा' या कजा की गूदी जो ज्वर और चर्मरोग मे उपयोगी है। उ०—कौंसी कणजा काचनग बंधत ताई माँहि। जन रज्जब शीतल समै अस्तक छाडै नाहि।—रज्जब०, पृ० १६।

कणजीरक—संज्ञा पुं० [स०] सफेद जीरा।

कणजीरा—संज्ञा पुं० [स० कणजीरक] दे० 'कणजीरक'।

कणप—संज्ञा पुं० [स०] बरछा। भाला [को०]।

कणप्रिय—संज्ञा पुं० [स०] गौरेया चिड़िया। वाह्यन चिरैया।

कणभक्ष—संज्ञा पुं० [स०] वैशेषिक दर्शनकार कणाद मुनि [को०]।

कणभक्षक—संज्ञा पुं० [स०] १ कणाद मुनि। २ एक पक्षी [को०]।

कणभुक्—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणभक्ष'।

कणभुज—संज्ञा पुं० [स० कणभुक्] दे० 'कणभक्ष'।

कणमणना—क्रि० अ० [हिं० कनमनाना] दे० 'कनमनाना'। उ०—मारू तोइण कणमणइ, साल्हकुमर बहु साद।—ढोला० दू० ६०५।

कणा—संज्ञा स्त्री० [स०] पीपल। पिप्पली।

कणाच†—संज्ञा पुं० [देश०] केवाँच। करेंच। कौंछ।

कणाटीन—संज्ञा पुं० [स०] खजन पक्षी [को०]।

कणाटीर—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणाटीन' [को०]।

कणाटीरक—संज्ञा पुं० [स०] दे० कणाटीन' [को०]।

कणाद—संज्ञा पुं० [स०] १ वैशेषिक शास्त्र के रचयिता एक मुनि। उलूक मुनि। २ सुनार।

कणामूल—संज्ञा पुं० [स०] पिपरामूल।

कणासुफल—संज्ञा पुं० [स०] अकोल।

कणिक—संज्ञा पुं० [स०] १ कण। उ०—गुरु मुख कणिक प्रीति से पावै। ऊँच नीच के भरम मिटावै।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ४१०। २ अनाज की बाली। ३ गेहूँ का आटा। ४ शत्रु। ५ अग्निमथ वृक्ष [को०]।

कणिका—संज्ञा स्त्री० [स०] किनका। टुकड़ा। जर्रा। उ०—जिसकी कृपाकणिका के प्रसाद से यह शुभ अवसर। प्रेमघन०, पृ० ४६६।

कणियर†(पु)—संज्ञा पुं० [स० कर्णिकार] दे० 'कनेर'।

कणिश—संज्ञा पुं० [स०] अनाज की बाल। जौ, गेहूँ आदि की बाल।

कणिष्ठ—वि० [स०] सबसे छोटा। अति सूक्ष्म [को०]।

कणी—संज्ञा स्त्री० [स०] १ कणिका। कनी। २ एक अन्न [को०]।

कणीक—वि० [स०] बहुत छोटा। अत्यल्प।

कणीची—संज्ञा स्त्री० [स०] १ शब्द। ध्वनि। २ एक वृक्ष। ३ शकट। ४ पुष्पित लता [को०]।

कणीसक(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० कणिश] अनाज की बाल। जौ, गेहूँ इत्यादि की बाल।—(डिं०।)

कणेर—संज्ञा पुं० [स०] कनियार या कर्णिकार का पेड़ [को०]।

कणेरा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ हस्तिनी। २. वेश्या [को०]।

कणेरु—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणेर'।

कणैठी—(पु) वि० [स० कनिष्ठ] छोटा भाई। दे० 'कनिष्ठ'। उ०—राजा के कणैठी वीर ऊदं पेत छोड्या।—शिखर० पृ० ४६।

कण्ण—संज्ञा पुं० [स० कर्ण, प्रा० कण्ण] कर्ण। कान। उ०—कण्ण समाइअ अमिय तुज्झु कहन्ते कन्त।—कीर्ति०, पृ० ५६।

कण्व—संज्ञा पुं० [स०] १ एक मत्रकार ऋषि जिनके बहुत से मत्र ऋग्वेद मे हैं। २ शुक्ल यजुर्वेद के एक शाखाकार ऋषि। इनकी सहिता भी है और ब्राह्मण भी। सायणाचार्य ने इन्हीं की सहिता पर भाष्य किया है। ३ कश्यप गोत्र मे उत्पन्न एक ऋषि जिन्होने शकुतला को पाला था।

कत¹—संज्ञा [स०] १. निर्मली। २ रीठा।

कत²—संज्ञा पुं० [अ० कृत] देशी कलम की नोक की आड़ी काट। क्रि० प्र०—काटना।—देना।—मारना।—रखना। लगाना। यौ०— कतगीर।—कतजन।

कत³—अव्य० [स० कुत, पा० कुतो] क्यो। किसलिये। काहे को। उ०—कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई।—तुलसी (शब्द०)।

कत⁴—वि० [स० कियत्] १ कितना। कितना। २ अधिक।

कतअन्—अव्य० [अ० कतअन्] सर्वथा। बिलकुल। हर्गिज [को०]।

कतई¹—क्रि० वि० [अ० कतई] नितात। निपट। बिलकुल। जैसे,—मैं उनसे कतई कोई तअल्लुक नही रखना चाहता। उ०—बादलो मे सूरज का कही कही कतई कोई आभास।—ठडा० पृ० ३४।

कतई²—वि० [अ०] १. अतिम। २ पूर्ण। ३. पक्का। यौ०—कतई इनकार = सर्वथा इनकार। कतई फैसला = अतिम निर्णय। कतई हुक्म = पक्का आदेश।

कतक¹—संज्ञा पुं० [स०] १ निर्मली। २ रीठा।

कतक²—वि० [हिं०] दे० कतिक'।

कतकर—संज्ञा स० [हिं० कातना + कर] कताई का काम करनेवाला। उ०—हिंदुस्तानी कतकरो और जुलाहो का सफाया कर दिया।—मान०, पृ० ३२५।

कतकी†—वि० [स० कार्तिकी] कार्तिका सबधी। उ०—कतकी मे गगा नहान की बढी उमगें।—अपरा, पृ० १६६।

कतगीर—संज्ञा पुं० [अ० कत + फा० गीर] दे० 'कतजन'।

कतजन—संज्ञा पुं० [अ० कतजन] लकड़ी या हाथीदाँत का बना हुआ एक छोटा सा दस्ता जिसपर कलम की नोक रखकर उसपर कत रखते हैं।

कतना¹—क्रि० अ० [हिं० कातना] काता जाना।

कतना‡²—क्रि० वि० [हिं०] दे० कितना'। उ०—कतने जतने घर अए लाढ़ु, केकर दधि दुध काजे।—विद्यापति, पृ० १६४।

कतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कातना] १ सूत कातने की टेकुरी। ढेरिया। २ वह टोकरी जिसमे सूत काटने के सामान रखे जाते हैं।

कतन्ना†—संज्ञा पुं० [हिं० कतरना] दे० 'कतरना'।

कढलाना†Ⓟ—क्रि० स० [स० काढना + लाना] घसीटना। घसीटकर बाहर करना। उ०—नाहिनै काँचो कृपानिधि, करौ कहा रिसाइ। सूर तबहुँ न द्वार छाँडै डारिहौ कढराइ।—सूर (शब्द०)।

कढवाना—क्रि० स० [हिं० काढना का प्रे० रूप] दे० 'कढाना'।

कढाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ाही] दे० 'कड़ाही'।

कढाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० काढना] १ निकालने की क्रिया। २ निकालने की मजदूरी। निकलवाई। ३ बूटा कसीदा निकालने का काम। ४ बूटा कसीदा बनाने की मजदूरी।

कढाना—क्रि० स० [हिं० काढ़ना का प्रे० रूप] निकलवाना। बाहर कराना। खिंचवा लेना। उ०—सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढाइ बिपति सहि मरई।—तुलसी (शब्द०)।

कढाव¹—संज्ञा पुं० [हिं० काढ़ना] १ बूटे कसीदे का काम। २ बेल बूटों का उभार।

कढाव²†—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] १ दे० 'कडाह'। २ सिखों का कड़ा प्रसाद अर्थात् हलुआ जो कड़ाह में बनता है। उ०—याही गुरु ने कड़ाव बखानी।—घट०, पृ० ३२२।

कढावना Ⓟ†—क्रि० स० [हिं० काढना का प्रे० रूप] निकलवाना। बाहर करना। खिंचवाना। उ०—पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तौ धरि जीभ कढावउँ तोरी।—तुलसी (शब्द०)।

कढ़ाह प्रसाद—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ाह + सं० प्रसाद] दे० 'कड़ा प्रसाद' उ०—घी निचुड़ते कढ़ाह प्रसाद (हलवे) की अपेक्षा चासनी में तैरते रसगुल्ले उसे अधिक लुभाने लगे।—भस्मावृत०, पृ० ६६।

कढिरानाⓅ—क्रि० स० [हिं० कढलाना] दे० 'कढ़लाना'।

कढिलना—क्रि० अ० [स० कल्ल] रोग या दुःख से कराहना। पड़े रहकर छटपटाना। लेटे हुए घुसना या रिघुरना।

मुहा०—कढ़िल कढ़िलकर मरना = घुल घुलकर मरना। उ०—कढिल कढिलकर मौत पा चुके।—बगाल०, पृ० ६२।

कढिहार—वि० [हिं० काढ़ना + हार (प्रत्य०)] १. उद्धारक। निकालनेवाला। उ०—अस अवसर नहिं पाइहौं, धरौ नाम कढिहार।—कबीर सा०, पृ० ५।

कढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कढ़ना = गाढ़ा होना] एक प्रकार का सालन। उ०-दाल भात घृत कढ़ी सलोनी अरु नाना पकवान। आरोगत नृप चारि पुत्र मिलि अति आनंद निधान।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इसके बनाने की रीति यों है—आग पर चढ़ी हुई कड़ाही में घी, हींग, राई और हलदी की बुकनी डाल दे। जब सुगंध उड़ने लगे तब उसमें नमक, मिर्च समेत मठे में घोला हुआ बेसन छोड़ दे और मंदी आंच से पकावे। कोई कोई इसमें बेसन की पकौडी भी छोड़ देते हैं। यह सालन पाचक दीपक, हल्का और रुचिकर है। कफ वायु और बद्धकोष्ठ का नाश करता है।

मुहा०—कढी का सा उबाल = शीघ्र ही घट जानेवाला जोश। (कढी में एक ही बार उबाल आता है और शीघ्र ही दब जाता है)। कढ़ी में कोयला = (१) अच्छी वस्तु में कुछ छोटा सा दोष। (२) दाल में काला। कुछ मर्म की बात। कोई भेद। बासी कढ़ी में उबाल आना = (१) बुढापे में पुनः युवावस्था की सी उमंग आना। (२) छोड़े हुए कार्य को पुनः करने के हेतु तत्पर होना।

कढुआ¹—वि० [हिं०] दे० 'कढुवा¹'।

कढुआ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कढुआ²'।

कढुवा¹—वि० [हिं० काढना] निकाला हुआ।

कढुवा²—संज्ञा पुं० १ रात का बचा हुआ भोजन जो बच्चों के वास्ते सवेरे के लिये रख छोड़ते हैं। २ कर्जा। ऋण।

क्रि० प्र०—काढ़ना।—देना।—लेना।

३ मटके में से पानी निकालने का छोटा बरतन। बोरना। बोरका। पुरवा।

कढ़ई¹—वि० [हिं० काढना] कहीं से निकालकर या उडकर लाई स्त्री।

कढ़ई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० काढना] वह लघु पात्र जिससे सामान निकालने का काम लिया जाय।

कढेरना—संज्ञा पुं० [हिं० काढना] सोने चाँदी या पीतल ताँबे इत्यादि में बर्तनों पर नक्काशी करनेवालों का एक औजार जिससे वे लोग गोल गोल लकीरें डालते हैं।

कढैया¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ाही] दे० 'कड़ाही'।

कढैया²† —संज्ञा पुं० [हिं० काढना] १ निकालनेवाला। २ उद्धार करनेवाला। उबारनेवाला। बचानेवाला।

कढैल¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० कढैया-¹'।

कढैल²†—संज्ञा पुं० दे० 'कढैया-²'।

कढोरनाⓅ—क्रि० स० [स० कर्षण, प्रा० कड्ढ] कढ़लाना। घसीटना। उ०—(क) तोरि यमकातरि मंदोदरी कढोरि आनी रावन की रानी मेघनाद महतारी है। भीर बाहु पीर की निपट राखी महावीर कौन के सँकोच तुलसी के सोच भारी है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करषि कढोरि दूरि लै गए। बहुत काठ दै दाहत भए।—नंद० ग्र०, पृ० २३६।

सयो० क्रि०—डालना।—लाना।

मुहा० —कलेजा कढोरना = हृदय कुरेदना। जी कढोरना = मन को बेचैन करना

कढोलना क्रि० स० [हिं०] दे० 'कढोरना'।

कण—संज्ञा पुं० [स०] १ किनका। रवा। जर्रा। अत्यंत छोटा टुकड़ा। २ चावल की बारीक टुकड़ा। कना। ३. अन्न के कुछ दाने। दो चार दाने। ४ भिक्षा। दे० कन'। उ०—कण दैनो सौंप्यो ससुर बहु थोरहथी जानि।—बिहारी (शब्द०)।

कणकच†—संज्ञा पुं० [देश०] १ केवाँच। कौंछ। कपिकच्छु। २ करंज। कंजा।

कणगच—संज्ञा पुं० [हिं० कणकच] दे० 'कणकच'।

कणगज—संज्ञा पुं० [हिं० कणकच] दे० 'कणकच'।

विपत्ति और कठिनाई मे धीरचित्त। जैसे,—यह कड़ए जी के आदमी का काम है।

२ तीक्ष्ण। झालदार। जैसे, कड़आ तमाकू, कड़आ तेल। ३ तीखी प्रकृति का। गुस्सैल। तुदमिजाज। झल्ला। अक्खड़। जैसे,—कड़ुआ आदमी। उ०—कड़ुए से मिलिए, मीठे से डरिए।

मुहा०—कड़ुआ होना = नाराज होना। बिगड़ना। जैसे,—इतनी ही बात पर वे मुझसे कड़ुए हो गए।

४ क्रोध से भरा। जैसे कड़ुआ मिजाज, कड़ुई निगाह।

क्रि० प्र०—होना = नाराज होना। बिगड़ना।

५ अप्रिय। जो भला न मालूम हो। जो न भावे। जैसे,— कड़ुई बात।

मुहा०—कड़ुआ करना = (१) धन बिगाड़ना। रुपए लगाना। जैसे,—जहाँ इतना खर्च किया वहाँ दो रुपए और कड़ुए करेंगे। (२) कुछ दाम खड़ा करना। औने पौने करना। जैसे,— माल बहुत दिनो से पड़ा था, ५) कड़ुए किए। कड़ुवा मुँह = वह मुँह जिससे कटु शब्द निकले। कटुभाषी मुख। उ०— खीरा को मुँख काटि कै मलियत लोन लगाय। रहिमन कड़ुए मुखन को चहिए यही उपाय।—रहीम (शब्द०)। कड़ुआ होना = बुरा बनना। जैसे,—तुम क्यो सबसे कड़ुए होते हो?

६. विकट। टेढ़ा। कठिन। जैसे,—उस पार जाना जरा कड़ुआ काम है।

मुहा०—कड़ुए कसैले दिन = (१) बुरे दिन। कष्ट के दिन। (२) दोरसे दिन जिनमे रोग फैलता है।—जैसे,—क्वार, कातिक या फागुन, चैत। (३) गर्भ का आठवाँ महीना जिसमे गर्भ गिरने का भय रहता है। कड़ुआ घूँट = कठिन काम।

कड़ुआ तेल—संज्ञा पु०[हिं० कड़ुआ + तैल] सरसो का तेल जिसमे बहुत झाल होती है।

कड़ुआना—क्रि० अ० [हिं० कड़ुआ से नाम०] १. कड़ुआ लगना। जैसे,—तरकारी मे मेथी अधिक हो गई, इससे कड़ुआती है। २ बिगड़ना। रिसाना। खीझना। ३ नींद रोकने के कारण आँख मे किरकिरी पड़ने का सा दर्द होना।

कड़ुआहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ुआ + हट (प्रत्य०)] कड़ुआपन।

कड़ुई रोटी या खिचड़ी—संज्ञा स्त्री०[हिं०]वह भोजन जो मृतक के घर के प्राणियों के पास उसके संबंधी दो तीन दिनो तक भेजते हैं।

कड़ुवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ुआ + ई (प्रत्य०)] १ कटुता। २ बुराई। उ०—जगन्नाथ के दरस न करके अजहुँ न गई कड़ुवाई।—कबीर सा०, पृ० ४६।

कड़ूँगा—वि० [हिं० कड़ा + अंग] मोटा। तगड़ा। अक्खड़।

कड़ू—वि० पु० [सं० कटु या कटुक] दे० 'कड़ुआ'।

कड़ूला—संज्ञा पु० [हिं० कड़ + ऊला (प्रत्य०)] हाथ या पैर मे पहनने का बच्चों का, छोटा कड़ा।

कड़ेदम—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + अ० दम] दृढ़। अविचल। उ०— आदमी कड़ेदम चाहिए, जिसका अन्याय देखे उसे डाँट दे।— फाया०, पृ० १२५।

कड़ेरा—संज्ञा पु० [हिं० कड़ा] खरादनेवाला। जो किसी वस्तु को खरादकर ठीक करे। उ०—ग्रीव मयूर केर जस ठाढी। कोंड फेर कड़ेरै काढी।—जायसी (शब्द०)।

कड़ेलोट—संज्ञा पु० [हिं० कड़ा + लोटना] मालखम की कसरत। विशेष—इसमे ऊधतरी करके हाथ को मोगरे पर लाते और उसी पर बदल तौलकर ऐसे उड़ते हैं कि सिर मोगरे के पास कंधे के आसरे रहता है और पाँव पीठ पर से उलटे उड़कर नीचे आता है।

कड़ेलोटन—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ेलोट] 'दे० कड़ेलोट'।

कड़ोड़ा—संज्ञा पुं०[हिं० करोड़ा] बहुत बड़ा अधिकारी जिसके अधीन बहुत से लोग हों। बहुत बड़ा अफसर।

कड़ोर†—संज्ञा पुं०[हिं० करोड़] १. कोटि। करोड़। २ बहुसख्यक। उ०—पाँच भाइ रस भग करतु हैं, इन बस परिय कड़ोरी।—जग० श०, पृ० ८०।

कड्ढना—क्रि० स० [हिं०] दे० काढ़ना'। निकालना। उ०—कड्ढी हुसैन जो जीव आस।पृ० रा०, २६।

कड्ढा†(पु)—वि०[हिं० काढ़ना]ऋण लेनेवाला। कर्ज काढनेवाला।

कड्ढू†—वि० [हिं०] दे० 'कड्ढा'।

कढ़ेरना—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] काढना। निकालना।

कढत—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'कढ़ना'] १ निकासी। खपत। २ कढने या काढ़ने की क्रिया या भाव। बाहर निकलने या निकालने की क्रिया या भाव।

कढना—क्रि० अ० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढन] १ निकलना। बाहर आना। खिंचना। २ उदय होना। ३ बढ जाना। किसी बात मे किसी से बढकर प्रमाणित होना। ४. (प्रतिद्वंद्विता मे) निकल जाना (आगे)। बढ़ जाना (आगे)।

मुहा०—कढ़ जाना = किसी के साथ चले जाना। यार के साथ चले जाना। कुटुंब छोड़कर उपपति करना। उ०—गोकुल के कुल को तजिकै भजिकै वन वीथिन मे बढि जइए। ज्यों पदमाकर कुंज कछार विहार पहारन मे चढि जइए। हैं नँद-नंद गोविंद जहाँ तहाँ नंद मे मंदिर मे मढि जइए। यों चित चाहत एरी भटू मनमोहनै लेके कहूँ कढ़ि जइए।—पद्माकर (शब्द०)।

कढना[२]—क्रि० अ०[हिं० गाढ़ा]दूध का औटाया जाकर गाढा होना।

कढनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्षणी, प्रा० कड्ढनी]मथानी को घुमाने की रस्सी। नेती।

कढनी[२]—संज्ञा स्त्री०[हिं० काढ़ना = निकलना]बरसात में जमीन की वह अंतिम जुताई जिसके बाद अनाज बोया जाता है।

क्रि० प्र०—काढ़ना (जोतना)।

कढनी[३]—वि० स्त्री० [हिं० काढ़ना = निकालना] निकालने वाली। यह प्रयोग समस्त पद के अंत मे आता है। जैसे,—कसीदा-कढ़नी, खूँटकढ़नी।

कढ़राना—क्रि० स० [हिं० कढ़लाना] दे० 'कढ़लाना'।

क्रि०प्र०—चढ़ना = आँच पर रखा जाना।—चढ़ाना = आँच पर रखना।

कड़ाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ाह] छोटा कड़ाहा, जो लोहे पीतल, चाँदी आदि का बनता है।

क्रि० प्र०—चढ़ना = आँच पर रखा जाना।—चढ़ाना = आँच पर रखना।

मुहा०—कड़ाही करना = कड़ाही चढ़ाना। मनौती पूरी होने पर किसी देवी देवता की पूजा के लिये हलवा पूरी करना। कड़ाही मे हाथ डालना = अग्निपरीक्षा देना।

यौ०—कड़ाही पूजन = किसी शुभ कार्य के निमित्त पकवान बनाने के लिये कड़ाही चढ़ाने के पहले उसकी पूजा करना।

कडि¹Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कली] १ कली। उ०—कसतूरी कडि केवडी मसकत जाय महक्क।—ढोला०, दू० ११३। २ दे० 'कड़ी'।

कडि²—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि, प्रा० कडि] कमर। उ०—अरि चौडी कडि पातली।—बी०, रासो० पृ० ७७।

कडि³—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडा] ककण। उ०—घोडा वँसे ज्यो हाँसला। कडि सोनहरी, हाथे जोड़ी।—बी० रासो, पृ० ११।

कडिचालⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० कटि + चालन] दे० 'कटिचालन'। कमर लचकाना। कमर नचाना। उ०—कडिचालउ गोरी करइ।—बी० रासो०, पृ० १०१।

कडितम्—संज्ञा पुं० [कन्नड] दक्षिण भारतीय व्यापारियो के हिसाब की वही।—भा० प्रा० लि०, पृ० १४६।

कडितुल—संज्ञा पुं० [सं० कडितुल] १ खड्ग। तलवार। २ बलि का चाकू या छुरी (को०)।

कडियल¹—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] ऊपर से फूटा हुआ मटके वा घड़े आदि का टुकडा जिसमे आग रखकर दवाई जाती है।

कडियल²—वि० [हिं० कडा] कडा। हट्टा। कट्टा।

यौ०—कडियल जवान = हट्टा-कट्टा जवान।

कडिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड, हिं० कांडी] अरहर का सूखा पेड। जो फसल झाड लेने के बाद बच रहता है। कांडी। रहटा।

कडिया²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० कर्णधार] १ करिया। केवट। २. पतवार।—उ०—राम राम डगमगी छोडाई, निर्भय कडिया लैया।—मलूक०, पृ० ३।

कडियालीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० करियारी] करियारी। लगाम। उ०—कबीर माया पापणी हरि सू करै हराम। मुखि कडियाली कुमति की, कहण न देई राम।—कबीर ग्र०, पृ० ३२।

कडिहर्‌—संज्ञा स्त्री० [प्रा० कडि + हर] कमर।

कड़िहार¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] २ दे० 'कर्णधार'। २ निकालनेवाला। उद्धारक। उ०—चत्रभुज चके जी सहते जी मीर चौके तुम मही चार ही कड़िहार जग मे वचन यह निश्चय कही।—कबीर सा०, पृ० १९६।

कड़िहार²Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] कर्णधार। केवट। पार लगानेवाला। उ०—(क) कौन नाम हंसन कहै, कौन देउँ कड़िहार। कौन नाम नारिन कहै, जाते होइ उवार।—कबीर श०, पृ० ८५४।

कड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कटकी, प्रा० कडई कडी] १ जंजीर या सिकडी की लड़ी का एक छल्ला। २ छोटा छल्ला जो किसी वस्तु को अटकाने वा लटकाने के लिये लगाया जाय। जैसे, पखा कडियो में लटक रहा है। ३. लगाम। उ०—हरि घोडा ब्रह्मा कड़ी वासुकि पीठि पलान। चाँद सुरुज दोउ पायडा, चढसी सत सुजान।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २४। ४ गीत का एक पद। ५ छंद। विभाग। उ०—यही सोच मे तो चौकड़ी की कडी बीत गई।—श्यामा०, पृ० १०६।

कडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १ छोटी धरन। उ०—घर की कड़ी और किवाड तक वेंच दी गई।—ठेठ०, पृ० ४३।

मुहा०—कड़ीबोलना = धरन से चिटकने की सी आवाज निकलना जो रहनेवाले के लिये अशकुन समझा जाता है।

२ भेड बकरी आदि चौपायो की छाती की हड्डी।

कडी³—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडा = कठिन] कठिनाई। दिक्कत। सकट। दुःख। मुसीबत।

क्रि० प्र०—उठाना। झेलना।—सहना।

कडी⁴—वि० स्त्री० [हिं० कडा = कठिन] कठिन। कठोर। सख्त।

मुहा०—कड़ी धरती = (१) वह प्रदेश जहाँ के लोग हट्टे कट्टे हो। (२) भूत प्रेत के रहने की जगह। कड़ी दृष्टि वा आँख रखना = पूरी निगरानी रखना। ताक मे रहना। जैसे,—देखना उस लडके पर कडी आँख रखना, कहीं जाने न पावे। कडी दृष्टि वा आँख का होना = (१) पूरी निगरानी होना। (२) कोप का भाव रहना। जैसे,—उन दिनो समाचारपत्रो पर सरकार की कडी आँख थी। कडी सुनाना = खोटी खरी सुनाना।

यौ०—कड़ी कैद = सपरिश्रम कारागार।

कडीदार¹—वि० [हिं० कडी + दार (प्रत्य०)] जिसमे कडी हो। छल्लेदार।

कडीदार²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कसीदा जो कडियो की लडी की तरह का होता है।

विशेष—कपडे के नीचे से सुई ऊपर निकालकर धागे के पिछले भाग मे फदा इस प्रकार बनावें कि तागा घूमकर अर्थात् फदा बनाता हुआ धागे के पिछले भाग के नीचे से जाय। फिर सुई की नोक के नीचे से तागे का दूसरा फदा देकर सुई को बाहर निकाले।

कडुआ—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुअ] [स्त्री० कडुई] १ कटु। स्वाद मे उग्र और अप्रिय। जिसका तीक्ष्ण स्वाद जीभ को असह्य हो। जैसे, नीम, इद्रायन, चिरायता आदि का।

क्रि० प्र०—लगना।

यौ०—कडुआ कसैला = अरुचिकर। कटु। बुरा। कडुआ जहर = (१) जहर सा कडुआ। बहुत कडुआ। (२) अत्यत अरुचिकर। बहुत बुरा लगनेवाला। कडुआ जी = कडा जी।

टेकी यूनी है कहिं घास कडव की फूली है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

कडला†—संज्ञा पुं० [हिं०] १ 'कठुला'। २ बच्चों के हाथ या पाँव मे पहनाया जानेवाला छोटा कडा।

कडवा¹—वि० पुं०[सं० कटुक, प्रा० कडुअ] १ कडआ। कटु। २ तीता। ३ अप्रिय।

कडवा²—संज्ञा पुं० [प्रा० कडवक] गीत की टेक या कडी जिसे सब मिलकर गाते हैं। उ०—यह कड़वा सपूरन गोपालदास ने श्री गुसाईं जी के आगे गाइ सुनायो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६।

कडवाना—क्रि० अ० [हिं० कडवा से नाम०] दे० 'कडवाना'। स्वाद मे कडवा लगना।

कडवी¹—वि० [हिं० कडवा का स्त्री०] दे० 'कडुई'।

यौ०—कडवी खिचडी, कडवी रोटी=मृत व्यक्ति के सबधियो द्वारा उसके कुटुंबियो को भेजा जानेवाला खाना।

कडवी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] ज्वार का पेड जिसके भुट्टे काट लिए गए हो और जो चारे के लिये छोड़ दिया गया हो। उ०—श्याम और एशिया के पूर्वी देशो मे घोडे शाम और सुबह कड़वी और जो खाते हैं और बीच मे कुछ नही।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

कडहन—संज्ञा पुं० [हिं० कठधान]एक प्रकार का धान। एक प्रकार का मोटा चावल।

कडा¹—संज्ञा पुं०[सं० कटक][स्त्री० कडी] १ हाथ या पाँव मे पहनने का चूडा। उ०—दुसेन्या दरस्सी कडे काठली सी।—रा० रू०, पृ० ३२। २ लोहे और किसी धातु का चुल्ला या कुडा। जैसे, कडाल का कडा। ३. एक प्रकार का कबूतर।

कडा²—वि० [सं० कडु] [स्त्री० कडी] १ कठोर। कठिन। सख्त। ठोस। जिसकी सतह दबाने से न दबे या मुश्किल से दबे। जो दबाने से जल्दी न दबे। जिसमे कोई वस्तु जल्दी गड न सके अथवा जिसे सहज मे तोड वा काट न सकें। जो कोमल या मुलायम न हो।

मुहा०—कड़ा लगाना=लदाव की छत बनाना। कडी छत या पाटन=लदाव की छत। वह छत जो केवल चूने और ईंटो से पीटी गई हो, कडी वा शहतीर के आधार पर न हो, जैसे, शिवाले का गुंबद।

२ जिसकी प्रकृति कोमल न हो। रूखा। ३ जो नियम मे किसी प्रकार का शील सकोच न करे। उग्र। दृढ। जैसे, कड़ा हाकिम। जैसे,—जरा कडे हो जाओ, रुपया मिल जाय।

मुहा०—कडा पडना=दृढ़ता दिखाना। दबगी से काम लेना। न दबना। जैसे,—कडा पडने से काम कहीं बनता भी है और कहीं बिगडता भी है।

४ कसा हुआ। चुस्त। जैसे, कडा जूता, कड़ा बधन, कड़ी कमान। ५ जो गीला न हो। कम गीला। जैसे, कड़ा आटा। ६ हृष्ट पुष्ट। तगडा। दृढ। जैसे,—उनकी अवस्था तो अधिक है, पर वे अभी कडे हैं। ७ साधारण से अधिक। जोर का। प्रचड। तेज। अधिक। जैसे, कडा झोका, कडी धूप, कडी भूख, कडी प्यास, कडी मार, कडा दाम, कडी आवाज, कडी चोट। ८. सहनेवाला। झेलनेवाला। धीर। विचलित न होनेवाला। जैसे, कड़ा जी, कड़ा कलेजा। जैसे—(क) जी कडा करके सब सहो। (ख) जी कडा करके दवा पी जाओ। ९ जिसका करना सहज न हो। दुष्कर। दु साध्य। मुश्किल। जैसे, कडा काम, कडा सवाल, कडा परचा, कडा परिश्रम, कड़ा कोस, कडी मजिल। १० तीव्र प्रभाव डालनेवाला। तेज। जैसे, कडी दवा, कडी महक, कडी शराब। ११ असह्य। बुरा लगनेवाला। जैसे, कडी बात, कडा बरताव। १२ कठोर। कर्कश। जैसे, कडा स्वर। कड़ी बोली।

कडाई—संज्ञा स्त्री०[हिं० कडा+आई (प्रत्य०)]कडा होने का भाव। कठोरता। कड़ापन। सख्ती।

कडाकड—क्रि०वि० [हिं० कड़कड] कडकड की लगातार ध्वनि करते हुए। उ०—धक्को की धड़ाधड अड ग की अडाअड़ में, ह्वै रहे कड़ाकड सुदतो की कडाकड़ी।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३०७।

कडाकडी—वि०[हिं० कटा+कटी]घोर। तुमुल। उ०—सुदर बाढ़ाली वहै, होइ कडाकडि मार।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७४०।

कडाका—संज्ञा पुं० [हिं० कड़कड] १ किसी कडी वस्तु के टूटने या टकराने का शब्द। उ०—(क) रेवडी कडाका पापड पडाका।—हरिश्चद्र (शब्द०)। (ख) कुंदन के ऊपर कडाके उठे ठौर ठौर।—भूषण ग्रं०, पृ० ३३०।

मुहा०—कडाके का=जोर का। तेज। प्रचड। जैसे, कडाके का जाड़ा, कडाके की गर्मी, कडाके की भूख।

२ उपवास। लघन। फाका। जैसे,—कई कड़ाके के बाद आज खाने को मिला है।

कडाकुल—संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'करांकुल'। उ०—पर वे तो नौकरी कर कडाकुल पक्षियो की भाँति।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६८।

कडा प्रसाद—संज्ञा पुं०[हिं० कड़ाह+सं० प्रसाद]प्रसाद रूप मे सिखो द्वारा बाँटने के लिये कडाह मे बननेवाला हलुआ।

कडाबीन—संज्ञा स्त्री०[तु० कराबीन] १ चौडे मुँह की बदूक जिसमे बहुत सी गोलियाँ भरकर छोडते हैं। २ छोटी बदूक जिसे कमर मे बाँधते हैं। इसे झोका भी कहते हैं। उ०—(क) कडाबीन कर मन को बस कर मारो मोह निदाना।—कबीर श०, पृ० ३८। (ख) अष्टभुजा पर छोडे स कडाबिनिया रे हरी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२।

कडार¹—वि० [सं०] १ घमडी। २ दभी। ३ धृष्ट [को०]।

कडार²—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाहा'।

कडाह†—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाहा'।

कडाहा—संज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] [स्त्री० अल्पा० कडाही] आँच पर चढाने का लोहे का बहुत बडा गोल बरतन जिसके दो ओर पकडने के लिये कुडे लगे रहते हैं। इसमे पूरी, हलवा इत्यादि बनाते हैं।

कठ्ठिंयां(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठा] १. सीमा। २. घेरा।

कडकर—संज्ञा पु० [सं० कडङ्कर] तृण। मूंग आदि द्विदल धान्यों का डंठल [को०]।

कडंग—संज्ञा पु० [सं० कडङ्ग] एक तरह की शराब।

कडंगर—संज्ञा पु० [सं० कडङ्गर] दे० 'कडंकर' [को०]।

कडंगा—संज्ञा पु० [हिं० कड़ा+अंग+आ (प्रत्य०)] मोटा। तगड़ा। अक्खड।

कड—वि०[सं०] १ वाणीविहीन। गूंगा। २. कर्कश। ३ श्रुतिकटु। ४ अबोध। मूर्ख [को०]।

कड[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १ कुसुम। बर्रे। २. कुसुम का बीज।

कड[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि, प्रा० कडि] कटि। कमर। उ०—पाछे अवरंग हल्लियौ कड बांधे समसेर।—रा० रू०, पृ० ४१।

कडक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक [को०]।

कडक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़कड] १, कडकडाहट का शब्द। कठोर शब्द। जैसे,—बिजली की कडक। २. तड़प। दपेट। जैसे,—वीरों की कडक। ३ गाज। वज्र। ४. घोडे की सरपट चाल।

क्रि० प्र०—जाना।—दौड़ना।

५ पटेबाजी का वह हाथ जो विपक्षी के दाहिने पैर को बाईं ओर मारा जाय।

क्रि० प्र०—मारना।

६ कसक। दर्द जो रुक रुककर हो। ७ रुक रुककर और जलन के साथ पेशाब उतरने का रोग।

क्रि० प्र०—थामना।—पकड़ना।

कडकड़—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दो वस्तुओं के आघात का कठोर शब्द। घोर शब्द। जैसे,—ताशे या बादल की गरज का। २. कड़ी वस्तु के टूटने या फूटने का शब्द। जैसे,—वह हड्डी को कडकड चबा गया।

कडकडाता—वि० [हिं० कड़कड़][स्त्री० कड़कड़ाती] १ कड़कड शब्द करता हुआ। २. कडाके का। बहुत तेज। घोर। प्रचंड। जैसे,—कडकडाता जाडा, कडकड़ाती धूप।

कडकडाना[1]—क्रि० अ० [अ० कड़] १ कड कड़ शब्द करना। घोर नाद करना। २ तोड़ना। चूर चूर करना। जैसे—छाती पर चढ़कर तुम्हारी हड्डियाँ कडकड़ा देंगे। उ०—जहाँ कड़कडै वीर, गजराज हय हड़हड़ै, धड़हड़ै धरनि ब्रह्माड गाजै।—सुदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८६।

कडकडाना[2]—क्रि० स० [अनु०] घी को साफ और सोंधा करने के लिये थोडी देर तक हलकी आंच पर तपाना।

कडकडाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडकड़] १. कड़कड़ शब्द गाज। घोर नाद।

कडकना—क्रि० अ० [हिं० कड़कड] १ कड़कड शब्द करना। गडगडाना। जैसे,—बादल कडकना। २ चिटकने का शब्द होना। ३. जोर से शब्द करना। दपेटना। जैसे,—इतना सुनते ही वे कडककर बोले। ४ चिटकना। फटना। दरकना। ५. आवाज के साथ टूटना। ६. कड़े रेशमी कपडे का तह पर से कट जाना।

कड़कनाल—संज्ञा पुं०[हिं० कड़क+नाल]वह चौड़े मुहडे की तोप जिससे बड़ा भयकर शब्द होता है और जो शत्रुसेना को डराने और भडकाने के लिये छोड़ी जाती है।

कड़कबांका—संज्ञा पु०[हिं० कडक+बांका] १ वह जवान जिसकी दपट से लोग दहिल जायँ। २ नोक झोक का जवान। बांका तिरछा जवान। छैला।

कड़कबिजली—संज्ञा स्त्री०[हिं० कड़क+बिजली]१. एक गहना जिसे स्त्रियां कान मे पहनती हैं। इसकी बनावट चंद्राकार होने से इसे 'चांदबाला' भी कहते हैं। २. तोड़ेदार बिजली जिसकी आवाज बड़ी कडी हो। ३. एक यत्र जिसके द्वारा बिजली उत्पन्न करके वात, लकवा आदि के रोगियों के शरीर मे दौडाई जाती है।

कड़कस(पु)—वि० [सं० कर्कश अथवा कड़ा+कस] दे० 'कर्कश'। उ०—उठ कड़कस शत्रुघण उप आए। आतुर उमै अयोध्या आए।—रघु०, रू० पृ० ११२।

कडका—संज्ञा पुं० [हिं० कड़क] कडाके की आवाज। उ०—बिजुली चमक भई उँजियारी। कड़वा घोर सोर अतिभारी।—घट०, पृ० ३७८।

कड़खा—संज्ञा पु० [हिं० कडक] वीरो की प्रशसा से भरे लड़ाई के गीत जिनको सुनकर वीरो को लड़ने की उत्तेजना होती है। उ०—(क) मिरदग और मुहचग चग सुढग सग बजावहीं। करताल दै दै ताल मारू ख्याल कडखा गावहीं।—गोपाल (शब्द०)। (ख) मोरा बैरी कड़खा गावै मनमथ विरद बखानि।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५०२।

कडच्छु(पु)—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कलछी'।—देशी०, पृ० ८२।

कड़छा—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० कडछी] लोहे की बडी कलछुल या कलछी।

कडखैत—संज्ञा पु० [हिं० कड़खा+ऐत (प्रत्य०)] १ कडखा गानेवाला पुरुष। भाट। चारण। उ०—कोकिला कडकि उचरत कडखैत ही बदत बदी विरद भवँर आगे बढे। भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७०।

कडत्र—संज्ञा पुं०[सं०] कलत्र। पत्नी। २ नितब। ३ एक प्रकार का पात्र [को०]।

कड़बध(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कटिबन्ध] किंकिणी। करधनी। उ०—छक कड़बध सुचगा छाजै। पट अग राजै पुण पीत।—रघु० रू०, पृ० २५३।

कड़बड़ा[1]—वि० [सं० कर्बर = कबरा] जिसका कुछ भाग सफेद और कुछ दूसरे रग का हो। कबरा। चितकबरा। जैसे,—कड़बडी दाढी।

कडबड़ा[2]—संज्ञा पुं० वह मनुष्य जिसकी दाढी के कुछ बाल काले और कुछ सफेद होते हो।

कडवा—संज्ञा पु० [हिं० कड़ा] कोई गोल वस्तु, जैसे पुराना तवा कडाही आदि जो हल के फाल के ऊपर इसलिये बांध दी जाती है कि वह बहुत गहरा न धँसे।

कड़वी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़बा] दे० 'कडवी'। उ०—कही वल्ली

कठिना²—वि० भोजन पकाने के मिट्टी के वर्तन सबंधी [को०]।

कठिनाई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० कठिन+हिं० आई (प्रत्य०)] १ कठोरता। सख्ती। २. मुश्किल। क्लिष्टता। ३ असाध्यता। दु साध्यता।

कठिनिका—संज्ञा स्त्री०[स०]१ कानी उँगली। छिगुनी। कनिष्ठिका। २ खड़िया मिट्टी [को०]।

कठिनी—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० कठिनिका'।

कठियल†—सज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+यल (प्रत्य०)] खडाऊँ। उ०—कठियल दिय सिर धरिय, प्रणाम कर, भिल गय वल निज नगर मजार।—रघु० रू०, पृ० १२०।

कठिया¹—वि० [हिं० काठ] जिसका छिलका मोटा और कडा हो। जैसे,—कठिया वादाम, कठिया गेहूँ, कठिया कसेरू।

यौ०—कठिया गेहूँ=एक गेहूँ जिसका छिलका लाल और मोटा होता है। इसे 'ललिया' भी कहते हैं। इसके आँटे मे चोकर बहुत निकलता है।

कठिया²—सज्ञा स्त्री०[देश०] एक प्रकार की भाँग जो झेलम नदी के किनारे बहुत होती है।

कठियाना—क्रि० अ० [हिं० काठ से नाम०] काठ की तरह कडा हो जाना। सूखकर कडा हो जाना।

कठी†—सज्ञा स्त्री०[हिं० काठ] मशाल। मशाल की लकडी। उ०—खेतों मे पानी लगाने के लिये जो लोग कठी लिए रात रात भर भूतों की भाँति घूमते दिखाई पडते हैं।—किन्नर०, पृ० ६६।

कठीर(पु)—सज्ञा पु० [सं० कठीरव] सिंह।—(डिं०)।

कठुआना—क्रि० अ० [हिं० काठ से नाम०] काठ सा कठोर या कड़ा हो जाना।

कठुर—वि० [सं०] क्रूर। कठोर [को०]।

कठुला—संज्ञा पु० [हिं० कठ=ला० (प्रत्य०)] १. गले की माला जो वच्चो को पहनाई जाती है। दे० 'कठला'। उ०—कठुला कंठ व्रज केहरि नख राजै नसि विंदुका मृगमद भाल। देखत देत असीस व्रज जन नर नारी चिरजीवो जसोदा तेरो वाल।—सूर (शब्द०)। २ माला। हार। उ०—(क) भलं भूंजि कै नेक सु खाक सी कै दुख दीरघ देवन के हरिहौं। सितकठ के कठन को कठुला दसकठ के कंठन को करिहौं।—केशव (शब्द०)। (ख) मधि हीरा दुहूँ दिशि मुकुतावलि कठुला कठ विराजा। बधु कवु कहँ भुज पसारि जनु मिलन चहत द्विज राजा।—रघुराज (शब्द०)।

कठुवाना—क्रि० अ० [हिं० काठ से नाम०] १. काठ की तरह कड़ा हो जाना। सूखकर कड़ा हो जाना। २ ठढक से हाथ पैर आदि का ठिठुरना।

कठूमर—सज्ञापुं०[स० काष्ठ√उदुम्बर, हिं० कठ+ऊमर]जंगली गूलर जिसके फल वहुत छोटे छोटे और फीके होते हैं।

कठेठ, कठेठा†(पु)—वि०, पुं०[हिं० काठ+एठ(प्रत्य०),हिं०काठ+ऐठा (प्रत्य०)] [स्त्री० कठेठी] १ कडा। कठोर। कठिन। दृढ़। सख्त। उ०—वैर कियो शिव चाहत हौं तव लौं अरि वाह्यो कटार कठेठो।—भूषण (शब्द०)। २ अधिक वलवाला। दृढ़ाग। तगडा।

कठेठी—वि०, स्त्री० [हिं० कठेठा] कठोर। कडी। उ०—(क) माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये वातें।—केशव (शब्द)। (ख) माखन सी जीभ मुख कज सो कुँवरि, कहु काठ सी कठेठी वात कसे निकरति है।—केशव (शब्द०)। (ग) जी की कठेठी अमेठी गँवारिन नेकु नहीं हँसि कै हिय हेरी।—ठाकुर (शब्द०)।

कठेर¹—वि० [स०] कष्टग्रस्त। पीडित [को०]।

कठेर²—सज्ञा पुं० निर्धन। रक [को०]।

कठेल—सज्ञा पु० [हिं० काठ+एल (प्रत्य०)] १ धुनियों की कमान जिसमें ऊन या रूई धुनते समय धुनकी को वाँधकर लटकाते हैं। २. कसेरो का काठ का एक औजार जिसमे एक गड्ढा होता है। इस गड्ढे में धातु का पात्र रखकर उसे गोल करते हैं।

कठैला—संज्ञा पु० [हिं० काठ + ऐला(प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कठैली] कठौता। काठ का वरतन।

कठैली—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठैला] काठ का एक छोटा वतन। कठैला की तरह छोटा वर्तन।

कठोदर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+उदर] पेट का एक रोग जिसमे पेट बढ़ता और कडा रहता है।

कठोर—वि०[स०] १ कठिन। सख्त। कडा। २ निर्दय। निष्ठुर। वेरहम।

यौ०—कठोरगर्भा=वह स्त्री जिसका गर्भ पूर्ण विकसित हो। कठोरहृदय।

कठोरता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कडाई। सख्ती। २ निर्दयता। निष्ठुरता। वरहमी।

कठोरताई(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठोरता+ई (प्रत्य०)] (कठोरता का विगड़ा हुआ रूप)१ कठोरता। कठिनता। २ निर्दयता।

कठोरपन—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठोर+पन (प्रत्य०)] १ कठोरता। कडापन। सख्ती। २ निर्दयता। निष्ठुरता। उ०—जनु कठोरपन धरे शरीरू। सिखइ धनुप विद्या वर वीरू।—तुलसी (शब्द०)।

कठोरत्व—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कठोरपन'। उ०—तव उनका वास्तविक, स्थूल, अप्रसाध्य, अव्याकृत कठोरत्व प्रकट हो जाता है।—विश्वप्रिया पृ० ६०।

कठोल—वि० [सं०] कठोर [को०]।

कठौत—सज्ञा स्त्री० [सं० काष्ट+पात्र, हिं० कठ+औत (प्रत्य०)] छोटा कठौता।

कठौता—सज्ञा पुं० [सं० काष्ठ+पात्र, हिं० कठ+औता (प्रत्य०)] काठ का एक वडा वरतन जिसकी वारी वहुत ऊँची और ढालुआँ होती है। उ०—केवट राम रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लै आवा।—तुलसी (शब्द०)।

कठौती—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठौता] छोटा कठौता।

कठ्ठना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'कठठना'।

कठमुल्लापन– संज्ञा पुं० [हिं० कठमुल्ला+पन (प्रत्य०)] कट्टरता। दुराग्रह। उ०—याद रखिए कठमुल्लापन जिस तरह धर्म मे घातक सिद्ध हुआ है उसी तरह साहित्य मे भी सिद्ध होगा।—कुंकुम (भू०), पृ० ८।

कठमूरति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काष्ठ+मूर्ति] १. काठ की मूर्ति। २. जगन्नाथ जी की मूर्ति। उ०—गयो जहाँ कठमूरति आहीं। कबीर का रूप भयो तेहिं पाही।- कबीर सा०, पृ० ७०।

कठर—वि० [सं०] सख्त। कड़ा [को०]।

कठरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठगृह, हिं० कटहरा] दे० 'कटहरा' वा 'कटघरा'।

कठरा[2]—सं० पुं० [हिं० कठ+रा (प्रत्य०)] १ काठ का संदूक। २ काठ का बरतन। कठौता।

कठरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठेली] दे० 'कठेली'।

कठरेती–संज्ञा स्त्री० [हिं० कठ+रेती] काठ या लकड़ी रेतने का औजार।

कठला—संज्ञा पुं० [सं० कंठ+ला (प्रत्य०)] एक प्रकार की माला या कंठा जैसी चीज।

विशेष—यह बच्चो को पहनाया जाता है और इसमे चाँदी या सोने की चौकियाँ तागे मे गुथी होती हैं। बीच बीच मे बाघ के नख, नजरबट्टू, तावीज आदि नजर से बचाने के लिये गुथे रहते हैं।

कठलोनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठ+लवनी] (पुं० कठलोना) कठौती। कठडी। उ०—कठलोनि बीस सोवन मटाइ। पल्लान ऊंच दावन चढाइ।—पृ० रा०, १४। १२३।

कठवत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कठौता'।

कठवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा की एक उपनिषद्।

विशेष—इसमे दो अध्याय हैं। पहले अध्याय मे नचिकेता की गाथा है। नचिकेता के पिता 'विश्वजित्' यज्ञ करके सर्वस्वदान देते समय बूढी गाय देने लगे। पुत्र ने पूछा—पिता! मुझे किसको दोगे? तीन बार पूछने पर पिता ने चिढ़कर कहा—'तुम्हें यमराज को देंगे'। इतना सुनते ही लड़का यमलोक पहुँचा। वहाँ यमराज ने उसे ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया, उसी का वर्णन पहले अध्याय में है। दूसरे अध्याय मे ब्रह्म का लक्षण बतलाया गया है।

कठवा†—संज्ञा पुं० [हिं० कठ+वा (प्रत्य०)] १ काठ। २ तुलसीदास (ला० तुलसी शब्द के कारण)। उ०—सार सार सब अँधरा कहि गा कठवो कहिस अनूठी। बची खुची सब जोलहा कहि गा अवर कहै सब झूठी (लोक०)।

कठसरैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] दे० 'कटसरैया'।

कठसेमल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सेमल] सेमल की जाति का एक प्रकार का वृक्ष।

कठसोला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ=सोला] सोला की जाति की एक प्रकार की भाड़ी या छोटा पौधा।

विशेष—यह प्राय सारे भारत, स्याम और जापान मे होता है। वर्षा ऋतु में इसमे सुदर फल लगते हैं।

कठहंडी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ+हण्डी] काठ की हंडी जो अचार आदि रखने के काम आती है। उ०—खँडरा खठि खँडोई खडी। परी एकोतर सँ कठहंडी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३१३।

कठहँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+हँसी] जबरदस्ती की हँसी। बनावटी हँसी। कठोर हँसी। व्यग हँसी। उ०—बावन कठहँसी हँसते हुए कहता—मैला०, पृ० २६८।

कठहुज्जत—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+अ० हुज्जत] व्यर्थ का झगड़ा या वादविवाद। वतंगड़।

कठा[1](पु)—क्रि० वि० [सं० कथम्] दे० 'कहाँ'। उ०—(क) कठा तक जीव हिज जाएं। रघु० रू० पृ० २४३।—(ख) कोटडियो वाघो कठै, आसो डाभी आज।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ५८।

कठा[2](पु)—वि० [सं० कष्ट+ प्रा० कट्ठ, हिं० कठ+आ (प्रत्य०)] कष्टयुक्त। दुखी। उ०—अस परजरा विरह कर कठा। मेघ स्याम भै धुआँ जो उठा—जायसी ग्र० (गुप्त),।—पृ० ३७०।

कठारा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ+किनारा+हिं० आरा (प्रत्य०)] नदी या ताल का किनारा।

कठारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठ+आरी (प्रत्य०)] १ काठ का बरतन। २ कमडल। उ०—उनके ऊपर सब साधुओं ने अपनी गुदडी तथा कठारी इत्यादि लाद ली।—कबीर मं०, पृ०१५४।

कठिंजर—संज्ञा पुं० [सं० कठिञ्जर] तुलसी वृक्ष [को०]।

कठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेतखरी। खरिया [को०]।

कठिन[1]—वि० [सं०] १ कडा। सख्त। कठोर। २. मुश्किल। दुष्कर। दुःसाध्य। ३. क्रूर। निर्दय (को०)। ४. तीक्ष्ण। उग्र (को०)। ५. कष्ट देनेवाला। कष्टकारक (को०)।

कठिन[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन] १ कठिनता। २ कष्ट। सकट। उ०—महा कष्ट दस मास गर्भ बसि अधोमुख सीस रहाई। इतनी कठिन सही तब निकस्यो अजहूँ न तू समुझाई।—सूर (शब्द०)।

कठिन[3]—संज्ञा पुं० [सं०] झाडी [को०]।

कठिनई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठिन] १ कड़ाई। २ कठोरता। उ०—(क) ऊधो जो तुम हमहिं बतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो।—सूर (राधा०), पृ० ५५३। (ख) पाई तुम मृदुताई भई कठिनई दूरि।—दीन० ग्रं०, पृ० ६२। ३ सकट।

कठिनता—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन] १ कठोरता। कडापन। सख्ती। २. मुश्किल। असाध्यता। ३ निर्दयता। बेरहमी। ४. मजबूती। दृढता।

कठिनताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठिन+हिं० ताई (प्रत्य०)] दे० 'कठिनाई' या 'कठिनता'।

कठिनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कठिनता'।

कठिनपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० कच्छप। कछुआ [को०]।

कठिना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चीनी की बनी मिठाई। २ भोजन पकाने का मिट्टी का बरतन [को०]।

कठघरा—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + घर]१ काठ का जँगलेदार घर । २ बड़ा पिंजड़ा जिसमें जंगली जानवर रखा जा सके । दे० 'कटघरा' । उ०—जब जिम कठघरे से नीचे उतरे तो मुंशी जी आँखों में आँसू भरे उनके पास आए ।—काया०, पृ० २१५ ।

कठघोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + घोड़ा] १ काठ का बना घोड़ा । खेलतमाशे के लिये बना काठ का घोड़ा । १ लिल्ली घोड़ी [को०] ।

कठजामुन—संज्ञा पुं०[हिं० कठ + जामुन] छोटी और कसैली जामुन जो गला पकड़ती है । नटिया जामुन ।

कठठना(पु)‡—क्रि० अ० [सं० कर्षण, पा० कड्डन] दे० 'कढ़ना' । निकलना । आगे बढ़ना । उ०—कठ्ठी यें घटा करे कालाढखि समुद्दे आयहो सामुद्दे ।—बेलि०, दू० १८२ ।

कठडा—संज्ञा पुं०[हिं० कठघरा]१ कटघरा । कटहरा । २ काठ का बड़ा संदूक । ३ काठ का बड़ा बरतन । कठौता ।

कठतार(पु)—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + सं० ताल]दे० 'करताल' । उ०—तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की । नंद ग्रं०, पृ० ३२ ।

कठताल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सं० ताल] दे० 'करताल' । उ०—बजत चटक कटतार, तार अस मृदुल मुजर ढकार ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६३ ।

कठपुतला—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + पुतला] १ काठ का पुतला । २ वह व्यक्ति जो दूसरों के निर्देश या संकेत पर किसी महत्वपूर्ण पद पर रहकर कार्य करे (ला०) ,

कठपुतली—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + पुतली] १ काठ की बनी हुई पुतली । काठ की गुड़िया या मूर्ति जिसको तार द्वारा नचाते हैं ।

यौ०—कठपुतली का नाच = एक खेल जिसमें काठ की पुतलियाँ तार या घोड़े के बाल के सहारे नचाई जाती हैं । २ वह व्यक्ति जो दूसरे के कहे पर काम करे, अपनी बुद्धि से कुछ न करे । जैसे,—वे तो उन लोगों के हाथ की कठपुतली हो रहे ।

यौ०—कठपुतली सरकार = वह सरकार जो किसी बाहरी शक्ति द्वारा प्रेरित हो ।

कठप्रेम—संज्ञा पुं० [हिं० कठ + सं० प्रेम] वह प्रेम जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाय । उ०—नेह कथें सठ नीर मथें, हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहैं ।—घनानंद, पृ० ११८ ।

कठफुला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + फूल] कुकुरमुत्ता । खुमी ।

कठफोड़वा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + फोड़ना] खाकी रंग की एक चिड़िया ।

विशेष—यह अपनी चोंच से पेड़ों की छाल को छेदती रहती है और छाल के नीचे रहनेवाले कीड़ों को खाती है । इसके पंजे में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती है । जीभ इसकी लंबी कीड़े की तरह की होती है । यह कई रंग का होता है । यह मोटी डालों पर पंजों के बल चिपक जाता है और चक्कर लगाता हुआ चढ़ता है । जमीन पर भी कूद कूदकर कीड़े चुगता है । दुम इसकी बहुत छोटी होती है ।

कठफोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + फोड़ना] दे० 'कठफोड़वा' ।

कठफोरा‡—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + फोड़] दे० 'कठफोड़वा' ।

कठबंदा—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + सं० बन्ध] काठ का ढाँचा या ठाठ ।

कठबंधन—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + सं० बन्धन] काठ की वह बेड़ी जो हाथी के पैर में डाली जाती है । अँदुआ ।

कठबनिया—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बनिया] लोभी बनिया । हीन बनिया ।

कठबाँस—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बाँस] पास पास गाठोंवाला बाँस ।

कठबाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + बाँस + ई (प्रत्य०)] दे० 'कटबाँसी' ।

कठबाप—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बाप] सौतेला बाप ।

विशेष—यदि कोई पुरुष किसी ऐसी विधवा से विवाह करे जिसके पहले पति से कोई संतति हो तो वह पुरुष (विधवाविवाह-कर्ता) विधवा की उस संतति का कठबाप कहलाएगा ।

कठबेर—संज्ञा पुं०[हिं०काठ + बेर]घूँट नाम का पेड़ या झाड़ जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है । वि० दे० 'घूँट' ।

कठबेल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बेल] कैथ का पेड़ ।

कठबैठी—संज्ञा पुं० [हिं० कठ + बैठी] पहेली । बुझौवल ।

क्रि० प्र०—करना । —बुझाना । —कहना ।

कठबैद—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + सं० वैद्य]अनाड़ी वैद्य । अताई वैद्य ।

कठबैस—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बैस] बैसवाड़े के बाहर का बैस क्षत्रिय । वे क्षत्रिय जो अपने को बैस कहते हैं पर बैसवाड़े में रहते नहीं । हीन क्षत्रिय ।

कठभगत—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + सं० भक्त] ढोंगी भक्त । वंचक भगत । भक्तों के लक्षण मात्र धारण करनेवाला व्यक्ति ।

कठभेमल—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + भेमल]एक प्रकार का छोटा वृक्ष । कक्की । फिरसन ।

विशेष—प्राय सारे उत्तरी भारत और बरमा में यह पाया जाता है । यह वर्षा ऋतु में फलता और जाड़े में फलता है । इसकी पत्तियाँ प्राय चारे के काम में आती हैं ।

कठमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

कठमलिया—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + माला + इया (प्रत्य०)] १ काठ की माला या कंठी पहननेवाला वैष्णव । २ झूठमूठ कंठी पहननेवाला । बनावटी साधु । झूठा संत । उ०—कर्मठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञानविहीन । तुलही त्रिपथ विहाय गो रामदुवारे दीन ।—तुलसी (शब्द०) ।

कठमस्त, कठमस्ता—वि० [हिं० कठ + फा० मस्त] १ सडमुसंड । मस्त । २ व्यभिचारी ।

कठमस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कठमस्त] मुसंडापन । मस्ती ।

कठमाटी—संज्ञा स्त्री०[हिं० काठ + माटी] कीचड़ की मिट्टी जो बहुत जल्दी सूखकर कड़ी हो जाती है ।

कठमुल्ला—संज्ञा पुं०[हिं० काठ + अ० मुल्ला]१. कट्टरपंथी मौलवी । २ अपने मत या सिद्धांत के प्रति अत्यंत आग्रहशील या दुराग्रही व्यक्ति ।

कटोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा का अल्पा०] १ छोटा कटोरा। प्याली। बेलिया। उ०— कटोरी सा मुँह बाकर कहने लगे कि भाई । प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०२। २ अँगिया का वह जुड़ा हुआ भाग जो स्तन के नाप का होता है और जिसके भीतर स्तन रहते हैं। ३ कटोरी के आकार की वस्तु। ४ तलवार की मूठ के ऊपर का गोल भाग। ५ फूल में बाहर की ओर हरी पत्तियों का कटोरी के आकार का वह अंश जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं।

कटोल[1]—वि० [सं०] कड़वा। कटु (को०)।

कटोल[2]—संज्ञा पुं० १ कड़वापन। कटुता। २ चांडाल। निम्न वर्ग का एक व्यक्ति (को०)।

यौ०—कटोलवीणा = एक प्रकार की वीणा जिसे चांडाल बजाते थे।

कटौती—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १. किसी रकम को देते हुए उसमें से कुछ बँधा हक वा धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना। जैसे — पल्लेदार या ठेकेदार का हक, डंडावन, मंदिर, गोशाला आदि। २ काटना या कमी करना।

यौ०—कटौती का प्रस्ताव = किसी विभाग के कार्य आदि के विषय में असंतोष व्यक्त करने के अभिप्राय से उसकी माँग से घटाकर छोटी रकम देने का प्रस्ताव।

कटौसी† —संज्ञा पुं० [हिं० कटवाँसी] दे० 'कटवाँसी'।

कट्टर(पु)—वि० [हिं० काटना] १ काट खानेवाला। कटहा। उ०— मग्न जानि भूनगर कट्टर बड़े तुषार।—पृ० रा०, २५। ५७८। २ अपने विश्वास के प्रतिकूल बात को न सहनेवाला। अंधविश्वासी। ३ हठी। दुराग्रही।

कट्टहा—संज्ञा पुं० [सं० कट = शव + हिं० हा (प्रत्य०)] महाब्राह्मण। कट्टिया महापात्र। उ०—कट्टहों (महाब्राह्मणों) को दान देने से इन तीनों बातों में से एक का भी साधन नहीं होता।—श्यामबिहारी (शब्द०)।

कट्टा[1]—वि० [हिं० काठ] १ मोटा ताजा। हट्टाकट्टा। २ बलवान। बली।

कट्टा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] सिर का कीड़ा। जूँ। ढील।

कट्टा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चा। जबड़ा।

मुहा०—कट्टे लगना = (१) किसी दूसरे के कारण अपनी वस्तु का नष्ट होना या उसका दूसरे के हाथ लगना। स्वामी की इच्छा के विरुद्ध किसी वस्तु का दूसरे के हाथ आना। जैसे,— इतने दिनों की रखी चीज आज तेरे कट्टे लगी। (२) किसी ऐसी वस्तु का नष्ट होना या हाथ से निकल जाना जो दूसरे की नजर में खटकती हो। जैसे,—मेरे पास एक मकान बचा था, वह भी तेरे कट्टे लगा।

कट्टा†[4]—वि० [हिं० 'कटना' का भूतकालीन रूप] (१) काटा हुआ। कटा हुआ। जैसे,—मुड़कट्टा वीर।

कट्टारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। छुरी। —देशी०, पृ० ८१।

कट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] कटार (को०)।

कट्टारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कसाई की छुरी (को०)।

कट्ठा—संज्ञा पुं० [हिं० काठ] १ जमीन की एक नाप जो पाँच हाथ चार अंगुल की होती है।

विशेष—इससे खेत नापे जाते हैं। यह जरीब का बीसवाँ भाग है। कहीं कहीं बिस्वासी को भी कट्ठा कहते हैं।

२ धातु गलाने की भट्ठी। दबका। ३ अन्न कूतने का एक बरतन जिसमें पाँच सेर अन्न आता है। ४ एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है। ५ लाल गेहूँ जो प्राय मध्यम श्रेणी का होता है।

कट्ठीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कठीर'। उ०—लोहानौ कट्ठीर सेन बधे भुअ लुक्की।—पृ० रा०, १२।७७

कट्फल—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल (को०)।

कट्या†—संज्ञा पुं० [हिं०] महाब्राह्मण। कट्टहा। उ०— कट्या को खाय उकटचा को न खाय (लोक०)।

कट्याना(पु)—क्रि० अ० [हिं० कटियाना] [स्त्री० कठयानी] कटियाना। कंटकित होना। रोमांचित होना। उ०—पूछे क्यों रूखी परति सगबग रही सनेह। मनमोहन छवि पर कटी कहै कट्यानी देह।—बिहारी (शब्द०)।

कट्वर[1]—वि० [सं०] घृणित हेय (को०)।

कट्वर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ द्राब। २ चटनी। ३ अचार (को०)।

कठगर—वि० [हिं० काठ + अग] मोटा और कड़ा।

यौ०—काठकंठगर = कड़ी और कार्य में न आने योग्य वस्तु।

कठजर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ + पिञ्जर] काठ का पिंजरा। उ०— अठारह भार कोट कठजरा।—गोरख० पृ० १२१।

कठ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि। २ एक यजुर्वेदीय उपनिषद् जिसमें यम और नचिकेता का सवाद है। ३ कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। ४ कठ का अनुगामी और शिष्य वर्ग (को०)।

कठ[2]—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ हिं० काठ का समस्त रूप] १ काठ। लकड़ी। जैसे, कठपुतली, कठकीली (केवल समस्त पदों में)। २. एक पुराना बाजा जो काठ का बनता था और चमड़े से मढ़ा जाता था। ३ (केवल समस्त पदों में फल आदि के लिये) जंगली। निकृष्ट जाति का। जैसे, कठकेला, कठजामुन, कठमूर।

कठकरेज†[1]—वि० [हिं० काठ + कलेजा] दे० 'कटकरेजी'। उ०— वह तो बहुत दिनों से जानता था इस बात को कि कचहरीवाले काम पड़ने पर कैसे कठरेज बन जाते हैं।—शराबी, पृ० ६०।

कठकरेजी[2] कठकलेजी—वि० [हिं० काठ + करेजी] १ कड़े दिलवाला। हिम्मती। साहसी। उ०—सच कहूँ, तुम बड़े कठकलेजी हो। नाना०, भा० १, पृ० १८। २ निर्मम। क्रूर। हृदयहीन।

कठकीली—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + कीली] पच्चड़।

कठकेला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + केला] एक प्रकार का केला जिसका फल रूखा और फीका होता है।

कठकोला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + कोलना = खोदना] कठफोड़वा।

कठगुलाब—संज्ञा पुं० [हिं० कठ + गुलाब] एक प्रकार का जंगली गुलाब जिसके फूल छोटे छोटे होते हैं।

विशेष— इसका प्रयोग पूरब में होता है जहाँ दही को स्त्रीलिंग बोलते हैं।

कटुकद—संज्ञा पुं० [सं० कटकन्द] १ अदरक। आदी। २ लहसुन। लशुन। ३ मूली।

कटुक—वि०[सं०]१ कड़ुआ। कटु। २ जो चित्त को न भावे। जो बुरा लगे। उ०—अरी मधुर अधरान ते कटुक वचन जनि बोल। तनक खटाई ते घटै लखि सुबरन को मोल।—रसनिधि (शब्द०)।

कटुकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कशता। उजड्डपन [को०]।

कटुकत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च, सोंठ और पीपल, इन तीन वस्तुओं का वर्ग।

कटुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कटुकीट—संज्ञा पुं० [सं०] मच्छर। डाँस। मशा।

कटुक्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] टिट्टिभ [को०]।

कटुग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुग्रन्थि] १. सोंठ। २ पिपरा मूल।

कटु चातुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं०] चार कडवी वस्तुओं का समूह, अर्थात् इलायची, तज, तजपात और मिर्च।

कटुच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] तगर वृक्ष [को०]।

कटुछदक—संज्ञा पुं० [सं० कटुछन्दक] उत्कट या तीक्ष्ण गंध अथवा स्वादवाला कद। जैसे,—अदरक, मूली, लहसुन, प्याज आदि [को०]।

कटुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वापन। कडवाई।

कटुतिक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूनिंब। चिरायता। २ सण का पौधा। सनई [को०]।

कटुतिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नितलौकी [को०]।

कटुतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुतुण्डी] कटु तरोई [को०]।

कटुतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुतुम्बी] तितलौकी [को०]।

कटुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ुआपन।

कटुदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटी नाम का पौधा [को०]।

कटुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भड़भाँड। सत्यानाशी [को०]।

कटुफल—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल।

कटुबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पीपल [को०]।

कटुभग—संज्ञा पुं० [सं० कटुभङ्ग] सोंठ [को०]।

कटुभगा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुभङ्गा] एक प्रकार की जगली भाँग जिसकी पत्तियाँ खाने में बहुत कड़वी होती हैं [को०]।

कटुभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

कटुभाषी—वि० [सं० कटुभाषिन्] कडवी बात बोलनेवाला [को०]।

कटुमजरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुमञ्जरिका] अपामार्ग। चिचिडा [को०]।

कटुर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छाछ। मट्ठा [को०]।

कटुर[2]—वि० चपल। हेय [को०]।

कटुरस—संज्ञा पुं० [सं० कटु+रस] छह प्रकार के रसों में से एक। कड़ुआ रस [को०]।

कटुरस[2]—वि० जिसका रस या स्वाद कड़वा हो [को०]।

कटुरव—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक। दादुर।

कटुवचन—संज्ञा पुं० [सं० कटु+वचन] कडवी बात। उ०—अति कटुवचन कहति कैकेयी।—मानस, २.०।

कटुविपाक—वि० [सं०] पाचन में अम्लरसवर्धक [को०]।

कटुस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसो [को०]।

कटूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कडवी बात। अप्रिय बात।

कटूमर—संज्ञा स्त्री० [सं० कटु+उदुम्बर अथवा हिं० कट या कठ+ऊमर] जगली गूलर का वृक्ष। कटगूलर।

कटूरना—क्रि० अ० [हिं० कटु+घूरना] किसी को बुरे भाव से देखना। तीक्ष्ण दृष्टि से देखना।

कटेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा] भटकटैया।

कटेली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो बगाल प्रांत में बहुतायत से होती है।

कटेहर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+घर] हल के नीचे की वह लकडी जिसमें फाल बैठाया रहता है। खोंपा।

कटैया[1]—वि० [हिं० काठ×ऐया (प्रत्य०)काटना]१ काटनेवाला। जो काट डाले। उ०—एक कृपाल तहाँ तुलसी दसरत्थ के नदन बदि कटैया।—तुलसी (शब्द०)। २ फसल काटनेवाला।

कटैया[2]—संज्ञा पुं० १ काटनेवाला व्यक्ति। २. फसल काटनेवाला आदमी।

कटैया[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टक] भटकटैया। उ०—दूध आक को पात कटैया, काल अगिनि की जान।—चरण० बानी, पृ० २६।

कटैया[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटिया] लवनी। फसल की कटाई।

कटैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीमती पत्थर। उ०—लोहे और फिटकिरी की वहाँ खानें हैं, और माणक, लहसनिया, नीलम, कटैला, गोमेदक, बिल्लौर नदियों के बालू में मिलता है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

कटोर—संज्ञा पुं०[सं०]मिट्टी का एक छोटा छिछला पात्र या बरतन। कसोरा [को०]।

कटोरदान—संज्ञा पुं० [हिं० कटोरा+दान (प्रत्य०)] पीतल का एक ढक्कनदार बरतन जिसमें तैयार भोजन आदि रखते हैं।

कटोरा—संज्ञा पुं०[हिं०काँसा+ओरा(प्रत्य०)=कँसोरा या सं०कटोरा] एक खुले मुँह, नीची दीवार और चौड़ी पेंदी का छोटा बरतन। साधु का प्याला। बेला।

मुहा०—कटोरा चलाना=मत्रबल से चोर या माल का पता लगाने के लिये कटोरा खसकाना।

विशेष—इसमें एक आदमी मत्र पढ़ता हुआ पीली सरसों डालता जाता है और औरों से कटोरे को खूब दबाने के लिये कहता जाता है। कटोरा अधिक दाब पडने से किसी न किसी ओर खसकता जाता है। लोगों का विश्वास है कि कटोरा वहीं रुकता है जहाँ चोर या माल रहता है। कटोरा सी आँख= बडी बडी और गोल आँख।

कटोरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा+इया (प्रत्य०)] दे० 'कटोरी'।

कटाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ कड़ाह। बड़ी कड़ाही। २ कछुए का खपड़ा। ३. कूआँ। ४. नरक। ५. झोपडी। ६. भैंस का पँडवा जिसके सींग निकल रहे हों। ७ टूह। ऊँचा टीला। ८. कुआँ। कूप (को०)। ९ शूर्प। सूप (को०)। १०. टूटे घड़े का टुकड़ा या खंड (को०)। ११. पुंज। समूह। ढेर राशि (को०)। १२ नरक (को०)।

कटाहक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह। कड़ाहा।

कटिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. कतरन। २ किसी विवरण का काटकर संकलित अंश। उ०—लेखक कुछ अखबारों की कटिंग की बात करेगा। ३ काट छाँट।

कटिंजरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटिञ्जरा] संगीत में एक ताल का नाम।

कटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कमर। लंक।

यौ०—कटिचालन। कटिजेव। कटितट। कटिदेश। कटिबंध। कटिबद्ध। कटिशूल। कटिसूत्र।

२ देवालय का द्वार। ३ हाथी का गंडस्थल। ४ पीपल। पिप्पली। ५. नितंब। चूतड़।

कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नितंब (को०)।

कटिचालन—संज्ञा पुं० [सं० कटि+चालन] कमर लचकाना। कमर नचाना। कमर की गति व्यंजित करना।

कटिजेव—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि+फा० जेब] किंकिणी। करधनी। उ०—पंजर की खंजरीट नैनन को किधौं मीन मानस को केशोदास जलु है कि जारु है। अंग को कि अगराग गेड़ुआ कि गलसुई किधौं कटिजेव ही को उर को कि हारु है।—केशव (शब्द०)।

कटितट—संज्ञा पुं० [सं०] कमर। कटिभाग (को०)।

कटित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ करधनी। मेखला। २ धोती (को०)।

कटिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ कटि। कमर। २ नितंब (को०)।

कटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी (को०)।

कटिप्रोथ—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब (को०)।

कटिबंध—संज्ञा पुं० [सं० कटिबन्ध] १ कमरबंद। २. गरमी सरदी के विचार से किए हुए पृथ्वी के पाँच भागों में से कोई एक। जैसे,—उष्ण कटिबंध।

कटिबद्ध—वि० [सं०] १. कमर बाँधे हुए। २. तैयार। तत्पर। उद्यत।

कटिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १ नगों वा जवाहिरात को काटछाँटकर सुडौल करनेवाला। हक्काक। २ छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ चौपायों का चारा।

कटिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कँटिया'।

कटियाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० काँटा] हर्ष, प्रेम आदि में मग्न होने के कारण रोओं का काँटे के समान खड़ा हो जाना। कंटकित होना। पुलकित होना।

कटियाली†—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारि] भटकटैया।

कटिरोहक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के कटि भाग की ओर आसीन व्यक्ति जो फीलवान न हो (को०)।

कटिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लौकी का एक भेद (को०)।

कटिसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] करगता। कमर में पहनने का डोरा। मेखला। सूत की करधनी। उ०—कल किंकिणि कटिसूत्र मनोहर। बाहु विशाल विभूषण सुंदर।—तुलसी (शब्द०)।

कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कटि। कमर। २. पिप्पली (को०)।

कटीतल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की टेढ़ी तलवार (को०)।

कटीर—संज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा। २ नितंब में पड़नेवाला गड्ढा (को०)।

कटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब (को०)।

कटीरा—संज्ञा पुं० [हिं० कतीरा] दे० 'कतीरा'।

कटील—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे वरदी, निमरी और बँगई भी कहते हैं।

कटीला¹—वि० [हिं० काँटा या काट+ईला] [स्त्री० कटीली (प्रत्य०)] १. काट करनेवाला। तीक्ष्ण। चोखा। २ बहुत तीव्र प्रभाव डालनेवाला। गहरा असर करनेवाला। जैसे,—कटीली बात। उ०— अँखियाँ तोरि कटीली देखि के फाटे छतिया। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२। ३. मोहित करनेवाला। उ०—नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह। काँटे लौं कसकति हिये वहै कटीली भौंह।—बिहारी (शब्द०)। ४ नोकझोंक का। आनबानवाला। जैसे—कटीला जवान।

कटीला²—वि० [हिं० काँटा] १. काँटेदार। काँटों से भरा हुआ। २ नुकीला। तेज।

कटीला³—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] एक नुकीली लकड़ी जो दूध देनेवाले पशुओं के बच्चों की नाक पर इसलिये बाँध दी जाती है जिसमें वे अपनी माता का दूध न पी सकें।

कटीला⁴—संज्ञा पुं० [हिं० कतीरा] दे० 'कतीरा'।

कटु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. छह रसों में एक जिसका अनुभव जीभ से होता है। चरपरा। कड़ुआ।

विशेष—इंद्रायन, चिरायता, मिर्च, पीपल, मूली, लहसुन, कपूर आदि का स्वाद कटु कहलाता है।

२ कड़वाहट। कड़वापन (को०)। ३ काव्य में रस के विरुद्ध वर्णों की योजना। जैसे,—शृंगार में ट, ठ, ड आदि वर्ण।

कटु²—वि० १. कड़वा। २. जो मन को न भावे। बुरा लगनेवाला। अनिष्ट। जैसे,—कटु वचन। उ०—देखहि रात भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कल्पना।—तुलसी (शब्द०)। ३. बुरा या उद्वेगजनक।

कटुआ—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] १ काले रंग का एक कीड़ा जो धान की फसल को जमते ही काट डालता है। बाँका। २. नहर की बड़ी शाखाओं अर्थात् राजवहा में से काटकर लिए हुए पानी की सिंचाई। ३. गले का एक गहना जिसके किनारे कटे हुए होते हैं। दे० 'कटवा'। ४ †मुसलमान।

कटुआ²†—वि० [हिं० कटना] कई खंडों में कटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। उ०—कटुआ कटुआ मिला सुवासू। सीझा अनबन भाँति गरासू।—जायसी (शब्द०)।

कटुई दही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना+दही] वह दही जिसके ऊपर की साढ़ी काट या उतार ली गई हो। छिनुई दही। छिक्का।

कटहा[1]—संज्ञा पुं०[सं० कट+हा] महापात्र । महाब्राह्मण । मृत्येष्टि-क्रिया के समय का दान लेनेवाला व्यक्ति ।

कटहा[2]—वि०[हिं० काटना+हा (प्रत्य०)][स्त्री० कटही] १ जिसका स्वभाव दाँतों से काट खाने का हो । काट खानेवाला (पशु) । २ बात बात पर बिगड़नेवाला (ला०) ।

कटा[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] मार काट । वध । हत्या । कत्ल-आम । उ०—(क) चोरे चख चोरन चलाक चित चोरी भयो, लूटि गई लाज कुलकानि को कटा भयो ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) घनघोर घटा की छटा लखिबे मिस, ठाढ़ी अटा पैं कटा करती हो ।—ठाकुर (शब्द०) ।

कटा[2]—वि० [हिं० 'कटना' का भूतकालिक रूप] कटा हुआ । जैसे,—कटा फल । दे० 'कटना' ।

कटाइकⓅ—वि० [हिं० 'कटना'] काटनेवाला । उ०—साँकरे मे सेइबे सराहिबे सुमिरबे को, राम सो न साहिब न कुमति कटाइको ।—तुलसी (शब्द०) ।

कटाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] १ काटने का काम । जैसे—सिक्के के किनारे की कटाई रोकने के लिये उसे अब किटकिटी-दार बनाया गया है । २ फसल काटने का काम । ३ फसल काटने की मजदूरी ।

कटाई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकी] भटकटैया । कँटेरी ।

कटाउⓅ—संज्ञा पुं०[हिं० कट+आउ (प्रत्य०)] दे० 'काट' । उ०—रचे हथौड़ा रूपइँ ढारी । चित्र कटाउ अनेग सँवारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३७ ।

कटाकट—संज्ञा पुं० [हिं० कटा+कट] १ कटकट शब्द । २ लड़ाई ।

कटाकटी—संज्ञा स्त्री०[हिं० कटा+कटी]१ मार काट । २ लड़ाई । झगड़ा । वाद विवाद ।

कटाकु—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी [को०] ।

कटाक्ष—संज्ञा पुं०[सं०] १ तिरछी चितवन । तिरछी नजर । उ०—कोए न लाँघि कटाक्ष सकैं, मुसक्यानि न ह्वै सकैं ओठनि बाहिर । २ व्यंग्य । आक्षेप । ताना । तंज । जैसे,—इस लेख मे कई लोगो पर अनुचित कटाक्ष किए गए हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

३ (रामलीला) काले रंग की छोटी छोटी पतली रेखाएँ जो आँख की दोनो बाहरी कोरो पर खींची जाती हैं । ऐसे कटाक्ष रामलीला मे राम, लक्ष्मण आदि की आँखो के किनारे बनते हैं । हाथियो के शृंगार मे भी कटाक्ष बनाए जाते हैं ।

कटाखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कटाक्ष] दे० 'कटाक्ष' । उ०—अगिन बान तिल जानहु सूझा । एक कटाख लाख दुइ जूझा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९२ ।

कटाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कट या घास फूस की आग ।

विशेष—प्राचीन काल मे राजपत्नी वा ब्राह्मणी के गमन आदि के प्रायश्चित्त या दंड के लिये लोग कटाग्नि मे जलते या जलाए जाते थे । कहते हैं, कुमारिल भट्ट गुरुसिद्धांत का खंडन करने के प्रायश्चित्त के लिये कटाग्नि मे जल मरे थे ।

कटाच्छⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कटाक्ष, प्रा० कटाच्छ] दे० 'कटाक्ष' । उ०—कृपाकटाक्ष कमल कर फेरत सूर जननि सुख देत ।—सूर०, १०।१५८ ।

कटाछⓅ—संज्ञा पुं० [सं० कटाक्ष, प्रा० कटाच्छ] दे० 'कटाक्ष' । उ०—अरु तक विसाल रँगीले रसाल निलोकन मैं न कटाछ करी ।—घनानंद०, पृ० ११६ ।

कटाछनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'मार काट' ।

कटाटक—संज्ञा पुं० [सं० कटाटङ्क] शिव [को०] ।

कटान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कट+आन (प्रत्य०)] कटने की क्रिया या भाव । कटाई ।

कटाना—क्रि० स० [हिं० काटना का प्रे० रूप] १ काटने के लिये नियुक्त करना । काटने मे लगाना । २ डसवाना । दाँतों से नोचवाना । ३ थोड़ा घूमकर आगे निकल जाना । बगल देकर आगे निकल जाना ।—(गाड़ीवान) ।

कटार—संज्ञा पुं० [सं० कट्टार] [स्त्री० अल्पा० कटारी] १ एक बालिश्त का छोटा तिकोना और दुधारा हथियार जो पेट मे हूला जाता है । उ०—आधी रात लुगति जब आवति हूं विरह कटार ।—श्यामा०, पृ० ८५ । २. एक प्रकार का वनबिलाव । कटास । खीखर ।

कटारा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कटार] १ बड़ा कटार । २ इमली । इमली का फल ।

कटारा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] ऊँटकटारा ।

कटारिया—संज्ञा पुं० [हिं० कटार] एक रेशमी कपड़ा जिसमे कटार की तरह की धारियाँ बनी रहती हैं ।

कटारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटार] १ छोटा कटार । २ नारियल के हुक्के बनानेवालो का वह औजार जिससे वे नारियल को खरचकर चिकना करते हैं । ३ (पालकी उठानेवाले कहारो की बोली मे) रास्ते मे पड़ी हुई नोकदार लकड़ी ।

कटाली—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारी] भटकटैया ।

कटाव—संज्ञा पुं० [हिं० काटना] १ काट । काट छाँट । कतर ब्योंत । २ काटकर बनाए हुए बेल बूटे ।

यौ०—कटाव का काम = (१) पत्थर या लकड़ी पर खोदकर बनाए हुए बेल बूटे । २ कपड़े के कटे हुए बेल बूटे जो दूसरे कपड़े पर लगाए जाते है ।

कटावदार—वि० [हिं० कटाव+फा० दार (प्रत्य०)] जिस पर खोद वा काट कर चित्र और बेल बूटे बनाए गये हों ।

कटावन—संज्ञा पुं० [हिं० कटना] १ कटाई करने का काम ।

मुहा०—कटावन पड़ना या लगना = (१) किसी दूसरे के कारण अपनी वस्तु का नष्ट होना या उसका दूसरे के हाथ लगना । (२) किसी ऐसी वस्तु का नष्ट होना या हाथ से निकल जाना जो दूसरे की नजर मे खटकती हो । दे० 'कट्टे लगना' ।

२ किसी वस्तु का कटा हुआ टुकड़ा । कतरन ।

कटास—संज्ञा पुं०[हिं० कटाना]एक प्रकार का वनबिलाव । कटार । खीखर ।

कटासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुर्दों के गाड़ने की जगह । कब्रिस्तान ।

संघर्ष। उ०—राजकुमार शेरसिंह उसका बेटा प्रतापसिंह आदि की अनसमझी में आपस में वह कटमकटा हुई कि पाँच बरस के भीतर भीतर उसके वंश में सिवाय दिलीपसिंह नामी बालक के कोई न रहा—श्रीनिवासी ग्रं० पृ० २३८।

कटमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूरी शराब [को०]।

कटर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कट = नरकट या घास फूस] एक प्रकार की घास जिसे पनवान भी कहते हैं।

कटर²—वि० [अं०] काटनेवाला। जैसे, नेलकटर = नाखून काटने का एक औजार।

कटर³—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमें डाँड़ा नहीं लगता, और जो तख्तीदार चरखियों के सहारे चलती है। २ पनसुइया। छोटी नाव।

कटरना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कटरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० कटहरा] छोटा चौकोर बाजार।

कटरा²—संज्ञा पुं० [सं० कटाह] भैंस का नर बच्चा।

कटरा³—संज्ञा पुं०[सं० कर्त्तन्]छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ चौपायों का चारा। उ०—अचरा न चरै बेन कटरा न पाई।—गोरख०, पृ० १८८।

कटरिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो आसाम में बहुतायत से होता है।

कटरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] धान की फसल का एक रोग।

कटरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० कट = नरकट] किसी नदी के किनारे की नीची और दलदली जमीन जिसके किनारे नरकट आदि होता है।

कटरेती—संज्ञा स्त्री०[हिं० काटना + रेतना]लकड़ी रेतने का औजार।

कटलेट—संज्ञा पुं० [अं०] मांस की सेंकी या तली टिकिया। उ०—(क) बहुत मैं हूँ, कहकर उसने काँटे से कटलेट का एक टुकड़ा मुँह में डाला।—सन्यासी, पृ० २४२। (ख) जमीन पर पड़े कटलेट के एक टुकड़े को उठाकर मुँह में डालने के लिये छटपटा रहा था।—जिप्सी पृ० १८६।

कटल्लू—संज्ञा पुं० [देश०] १ गुंडा। कसाई। २ मुसलमान के लिये एक घृणासूचक शब्द।

कटवाँ—वि० [हिं० कटना + वाँ (प्रत्य०)] जो काटकर बना हो। जिसमें कटाई का काम हो। कटा हुआ।

मुहा०—कटवाँ ब्याज = वह ब्याज जो मूलधन का कुछ अंश चुकता होने पर शेष अंश पर लगे।

कटवाँसी—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बाँस या काँट + बाँस] एक प्रकार का प्रायः ठोस और कँटीला बाँस जिसकी गाँठें बहुत निकट निकट होती हैं।

विशेष—यह सीधा बहुत कम जाता है और बहुत घना होता है तथा गाँव और कोट आदि के किनारे लगाया जाता है।

कटवा¹—संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके गलफड़ों के पास काँटे होते हैं। इन काँटों से वह चोट करती है।

कटवा²—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठक, हिं० कठुआ] गले का एक गहना जिसके किनारे कटे हुए होते हैं। उ०—गले में कटवा, कठा, हँसली। उर में हुमेल, कल चंपकली।—ग्राम्या, पृ० ४०।

कटसरैया—संज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] अडूसे की तरह का एक कँटीदार पौधा।

विशेष—इसमें पीले, लाल, नीले और सफेद कई रंग के फूल लगते हैं। लाल फूलवाली कटसरैया को संस्कृत में 'कुरबक' पीले फूलवाली को 'कुरंटक', नीले फूलवाली को 'आर्त्तगल' और सफेद फूलवाली को 'सैरेयक' कहते हैं। कटसरैया कातिक में फूलती है।

कटहर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कण्टफल, कण्टकफल] दे० 'कटहल'।

कटहरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० कटघरा] कटघरा। उ०—तमाशा करनेवालों में से एक शख्स ने, जिसमें यह शेर छिपे हुए थे, एक कटहरे का दरवाजा खोला।—फिसाना०, पृ० १०।

कटहरा²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तरी भारत और आसाम की नदियों में पाई जाती है।

कटहरी¹—संज्ञा स्त्री०[हिं० कटहल] छोटा कटहल।

यौ०—कटहरी चंपा।

कटहरी²—वि० [हिं० कटहल] १. कटहल संबंधी। २ कटहल की गंधवाला।

कटहरी चंपा—संज्ञा पुं० [हिं०] मधुर और तीव्र गंधवाला एक पुष्प जो हलके पीलेपन के साथ हरे रंग का होता है।

कटहल—संज्ञा पुं० [सं० कण्टफल या कण्टकफल] १ एक सदा बहार घना पेड़ जो भारतवर्ष के सब गरम भागों में लगाया जाता है तथा पूर्वी और पश्चिमी घाटों की पहाड़ियों पर आपसे आप होता है।

विशेष—इसकी अंडाकार पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी, कड़ी मोटी और ऊपर की ओर श्यामता लिए हुए हरे रंग की होती हैं। इसमें बड़े बड़े फल लगते हैं जिनकी लंबाई हाथ डेढ़ हाथ तक की और घेरा भी प्रायः इतना ही होता है। ऊपर का छिलका बहुत मोटा होता है जिसपर बहुत से नुकीले कँगूरे होते हैं। फल के भीतर बीच में गुठली होती है जिसके चारों ओर मोटे मोटे रेशों की कथरियों में गूदेदार कोए रहते हैं। कोए पकने पर बड़े मीठे होते हैं। कोयों के भीतर बहुत पतली झिल्लियों में लपटे हुए बीज होते हैं। फल माघ फागुन में लगने और जेठ असाढ़ में पकते हैं। कच्चे फल की तरकारी और अचार होते हैं और पके फल के कोए खाए जाते हैं। कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है, जड़ और तने में भी फल लगते हैं। इसकी छाल से बड़ा लसीला दूध निकलता है जिससे रबर बन सकता है। इसकी लकड़ी नाव और चौखट आदि बनाने के काम में आती है। इसकी छाल और बुरादे को उबालने से पीला रंग निकलता है जिससे बरमा के साधु अपना वस्त्र रँगते हैं। २ इस पेड़ का फल।

कटहुला—संज्ञा पुं० [हिं० कटहल] कटहल के ऊपर के दानों जैसी कानेवाले आभूषण।

कटना—क्रि० अ० [सं० कर्त्तन, प्रा० कट्टन] १ किसी धारदार चीज की दाब से दो टुकड़े होना। शस्त्र आदि की धार के धँसने से किसी वस्तु के दो खड होना। जैसे,—पेड़ कटना, सिर कटना।

मुहा०—कटती कहना = लगती हुई बात कहना। मर्मभेदी बात कहना।

२ पिसना। महीन चूर होना। जैसे,—भाँग कटना, मसाला कटना। ३ किसी धारदार चीज का धँसना। शस्त्र आदि की धार का घुसना। जैसे,—उसका ओठ कट गया है। ४ किसी वस्तु का कोई अंश निकल जाना। किसी भाग का अलग हो जाना। जैसे,—(क) बाढ़ के समय नदी का बहुत सा किनारा कट गया। (ख) उनकी तनख्वाह से २५) कट गए। ५ युद्ध मे घाव खाकर मरना। लड़ाई मे मरना। जैसे,—उस लडाई मे लाखो सिपाही कट गए।

सयो० क्रि०—जाना।—मरना।

६ कतरा जाना। ब्योता जाना। जैसे,—मेरा कपडा कटा न हो तो वापस दो। ७ छीजना। छँटना। नष्ट होना। दूर होना। जैसे,—पाप कटना, ललाई कटना, मैल कटना, रग कटना। ८ समय का बीतना। वक्त गुजरना। जैसे,—रात कटना, दिन कटना, जिंदगी कटना। जैसे,—किसी प्रकार रात तो कटी। ९ खतम होना। जैसे,—बातचीत करते चलेंगे, रास्ता कट जायगा। १० धोखा देकर साथ छोड देना। चुपके से अलग हो जाना। खिसक जाना। जैसे—थोडी दूर तक तो उसने मेरा साथ दिया, पीछे कट गया। उ०—लोभ मोह दोऊ कट भागे सुन सुन नाम अजीत।—कबीर श० पृ०, ८४।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

११ शरमाना। लज्जित होना। झेंपना। जैसे,—मेरी बात पर वे ऐसे कटे कि फिर न बोले। उ०—मैं तो कट गई। मेरा दिल ही जानता है कि किस कदर रज हुआ।—फिसाना० पृ० ३५८। १२ जलना। डाह से दुखी होना। ईर्ष्या मे पीडित होना। जैसे—उसको रुपया पाते देख ये लोग मन ही मन कट गए। १३ मोहित होना। आसक्त होना। जैसे—वे उसकी चितवन से कट गए। उ०—पूछो क्यो रूखो परति सगबग रही सनेह। मनमोहन छवि पर कटी कहै कट्यानी देह।—बिहारी (शब्द०)। १४ व्यर्थ व्यय होना। फजूल निकल जाना। जैसे—तुम्हारे कारण हमारे १०) यो ही कट गए। १५ बिकना। खपना। १६ प्राप्त होना। आय होना। जैसे—आजकल खूब माल कट रहा है। १७ कलम की लकीर से किसी लिखावट का रद होना। मिटना। खारिज होना। जैसे—उसका नाम स्कूल से कट गया है। १८ ऐसे कामो मे तैयार होना जो बहुत दूर तक लकीर के रूप मे चले गए हों। जैसे—नहर कटना। १९ ऐसी चीजो का तैयार होना जिसमे लकीर के द्वारा कई विभाग हुए हो। जैसे—क्यारी काटना। २० बाँटनेवाले के हाथ पर रखी हुइ ताश की गड्डी मे से कुछ पत्तो को इसलिये उठाया जाना जिसमे हाथ मे बची हुइडी के अंतिम पत्ते से बाँट आरभ हो। २१. ताश की गड्डी का पहले या इस प्रकार फेंटा जाना कि उसका पहले से लगा हुआ क्रम न बिगडे।—(जादू)। २२ एक सख्या के साथ दूसरी सख्या का ऐसा भाग लगना कि शेष न बचे। जैसे—यह सख्या सात से कट जाती है। २३ चलती गाडी मे से माल चोरी होना या लुटना। जैसे—कल रात को उस सुनसान रास्ते मे कई गाडियाँ कट गई। २४ श्रम करना। उ०—तुम दिन भर कम घिसते हो क्या कि और कटने की सोचते हो।—सुखदा०, पृ० ७७।

कटनास—सज्ञा पुं० [देश० या सं० कीट+नाश या काष्ठ+नारी] नीलकठ। उ०—बहु कटनास रहैं तेहि बासा। देखि सो पाव भाग जेहि पासा।—उसमान (शब्द०)।

कटनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] १ काट। उ०—करत जात जेती कटनि बढि रस सरिता सोत। आलवाल उर प्रेम तरु तितो तितो दृढ होत।—बिहारी (शब्द०)। २ प्रीति। आसक्ति। रीझन। उ०—फिरत जो अटकट कटनि बिन रसिक सुरस न खियाल। अनत अनत नित नित हितनि कत सकुचावत लाल।—बिहारी (शब्द०)।

कटनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] १ काटने का औजार। २ काटने का काम। फसल की कटाई का काम। उ०—कटनी के घूँघुर रुनझुन।—वीणा०, पृ० १९।

क्रि० प्र०—करना।—पडना। होना।

मुहा०—कटनी मारना = बैशाख ज्येष्ठ मे अर्थात् जोतने के पहले कुदाल से खेतो की घास खोदना।

३ एक ओर से भागकर दूसरी ओर और फिर उधर से मुडकर किसी और ओर, इसी प्रकार आडे तिरछे भागना। कटनी।

क्रि० प्र०—काटना।—मारना।

मुहा०—कटनी काटना = इधर से उधर और इधर से इधर भागना। दाहिनी से बाईं ओर बाईं से दाहिनी ओर भागना।

कटपटना—क्रि० अ० [हिं० कटना+पटना] बन जाना। उ०—पुनि पुनि उठि चरनन लटपटे। कीटन के जुकोट कटपटे नद ग्र०, पृ० २२५।

कटपीस—सज्ञा पुं० [अ०] नए कपडो का वह टुकडा जो थान बड़ा होने के कारण उसमे से काट लिया जाता है।

कटपूतन—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रेत।

कटफरेस—सज्ञा पुं० [अ० कट+फ्रेश] वह नया ताजा माल जिसमे समुद्र मे गिरने के कारण दाग पड जायँ अथवा जो गाँठ या बकस खोलते समय कहीं से कट जाय। ऐसे माल का दाम कुछ घट जाता है।

कटभी—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लबे होते हैं और फल अड खरबूजे के समान छोटे होते हैं। इसका व्यवहार औषध मे होता है। वैद्यक मे यह प्रमेह, बवासीर, नाडीव्रण, विष, कृमि, कुष्ठ और कफ का नाशक कहा गया है। करभी। हरिसल।

कटमकटा—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] मारकाट। कठोर युद्ध या

कटकई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कटक+ई (प्रत्य०)] १. कटक। सेना। फौज। लशकर। उ०—मुख सुखहि लोचन श्रवहिं शोक न हृदय समाइ। मनहु करुण रस कटकई उतरी अवध बजाइ। —तुलसी (शब्द०)। २ चढ़ाई। सेना का साज। दे० 'कटकाई'। उ०—भइ कटकई सरद ससि आवा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४७।

कटककारी—संज्ञा पु०[सं० कटक+कारिन्]सेना सघटित या सज्जित करनेवाला व्यक्ति। सेनापति। उ०—विविध को सोध अति रुचिर मदिर निकर सत्व गुन प्रमुख त्रय कटककारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८८।

कटकट—संज्ञा पुं० [अनु०] १ दाँतों के बजने का शब्द। उ०—तब लै खम मैं मारो भयो शब्द अति भारी। प्रगट भए नरहरि वपु धरि हरि कटकट करि उच्चारी।—गोपाल (शब्द०)। लड़ाई झगड़ा। वाद विवाद।

कटकटना(पु) क्रि० अ० [अनु०] दे० 'कटकटाना'।

कटकटाना—क्रि० अ० [हिं० कटकट] दाँत पीसना। उ०—कटकटान कपि कुजर भारी। दोउ भुजदंड तमकि महि मारी। —तुलसी (शब्द०)।

कटकटिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटकट] एक प्रकार की बुलबुल।
विशेष—जाडे मे यह पहाड से उतरकर मैदान मे आ जाती है और पेड पर या दीवार के खोडरे मे घोंसला बनाती है।

कटकटिया—वि० [हिं० कटकट] १. कटकट ध्वनि करनेवाला। २. झगड़ालू।

कटकना—संज्ञा पुं०[हिं०]१ अधिकार। इजारा। २ दे० 'कटखना'। ३. चालबाजी। मक्कारी।

कटकनेदार- संज्ञा पु० [हिं० कटकना+फ़ा० दार (प्रत्य०)] सिकमी काश्तकार।

कटकवाला—संज्ञा पु० [हिं० कटना+अ० कबाला] मियादी बै।

कटकरंज—संज्ञा पुं० [सं० कटकरञ्ज]कजा नाम का पौधा। वि० दे० 'कजा'।

कटकाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटक+आई (प्रत्य०)] १ सेना। फौज। २ दलबल के साथ चलने की तैयारी। उ०—चहुँ दिसि आन सांटिया फेरी। भै कटकाई राजा केरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ५४।

कटकाना—क्रि० स० [हिं० कटकटाना] फोडना। कडकडाना। उ०—आँगलिया कटका करूँ। पाई तला सूमाझिम्र रात। —बी० रा०, पृ० ६६।

कटकार—वि० [सं०] वैश्य द्वारा शूद्रा मे उत्पन्न संतति।—प्रा० भा० प०, पृ० ४०४।

कटकी—संज्ञा पुं० [सं० कटकिन्] पहाड [को०]।

कटकीना—संज्ञा पुं० [हिं० कटकना] दे० 'कटखना'।

कटकुट—वि०[हिं० कटना+कूटना]कटाकुटा। काटी गई (लिखावट, जो अधिक काटने के कारण अस्पष्ट हो गई हो। उ०—उन मंत्रों मे किसी प्रकार का प्रभाव नहीं रहा। सब ग्रंथ कटकुट हो गए।—कबीर म०, पृ० ४५६।

कटकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तृणशाला। पर्णशाला। फूस की झोपडी।

कटकोल—संज्ञा पुं० [सं०] पीकदान।

कटक्कट(पु)—संज्ञा पु०[हिं० कटकट]कटकट की ध्वनि। उ०—मिलेवर हिंदु तुरक्क सुतार, कटक्कट वज्जिय लोह करार।—पृ० रा० २४।२३३।

कटखना[1]—वि०[हिं० काटना+खाना] १. काट खानेवाला। दाँत से काटनेवाला। २ (ला०) हथकडेबाज। चालबाज। मक्कार।

कटखना[2]—संज्ञा पुं० कतर ब्योंत। युक्ति। चाल। हथकडा। जैसे,—(क) वह वैद्यक के अच्छे कटखने जानता है। (ख) तुम कटखने मे मत आना।
यौ०—कटखनेबाजी।

कटखन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० कटखना] १ काढने के लिये बनाया या छापा गया खाका। २ छात्रों के अभ्यासार्थ हलके बिंदुओं से अंकित अक्षर।

कटखादक—वि० [सं०] भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला। अशुद्ध वस्तु को भी खा लेनेवाला। सर्वभक्षी।

कट ग्लास—संज्ञा पु०[अं०]मजबूत काँच जिसपर नक्काशी कटी हो।

कटघरा- संज्ञा पु०[हिं० काठ+घर] १ काठ का घर जिसमे जँगला हो। काठ का घेरा जिसमे लोहे वा लकडी के छड लगे हों। २. बड़ा भारी पिंजड़ा। ३ अदालत मे वह स्थान जहाँ विचार के समय अभियुक्त और अपराधी खडे किए जाते हैं।

कटजीरा—संज्ञा पुं० [सं० कणजीरक] काला जीरा। स्याह जीरा। उ०—कूट कायफर सोंठि चिरैता कटजीरा कहुँ देखत। आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहि बुधि अवरेखत।—सूर (शब्द०)।

कटडा—संज्ञा पु० [सं० कटार] भैंस का पेंडवा।

कटत—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटती]दे० 'कटती'। १ कटने की क्रिया या भाव। २ बाजार में किसी चीज की होती खपत।

कटताल—संज्ञा पुं०[हिं० काठ+ताल] काठ का बना हुआ एक बाजा जिसे 'करताल' भी कहते हैं। उ०—(क) कसताल कटताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग। मधुर खजरी, पटह, पणव, मिलि सुख पावत रत भग।—सूर (शब्द०)। (ख) बचे सिर के करिकें कटताल। रचे जिनि तडद नाच कराल।—सुजान०, पृ० ३४।

कटयला—संज्ञा पुं० [हिं० कटताल] दे० 'कटताल' वा 'करताल'।

कटती—संज्ञा स्त्री०[हिं० कटना] बिक्री। फरोख्त। जैसे, इस बाजार में माल की कटती अच्छी नहीं।

कटनसा—संज्ञा पुं०[हिं० काटना+नाश अथवा सं० काष्ठ+नाश]१. काटने और नष्ट करने की क्रिया। उ०—पेड तिलौरी और जल हंसा। हिरदय पैठि विरह कटनंसा।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'कटनास'।

कटन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मकान की छाजन या छत [को०]।

कटन[2]—संज्ञा पुं० [हिं० काटन] दे० 'कतरन'।

विशेष—कजावा वह जालीदार घेरा है जिसे स्त्रियों के लिये बनाया जाता है।

कजिया—संज्ञा पुं० [अ० कजिया] झगड़ा। लड़ाई। टंटा। बखेड़ा। दगा। उ०—(क) कजिया में नित नवो कलेस।—चौकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ११०। (ख) फारबिसगंजवालों का कजिया फैसला होनेवाला है।—मैला० पृ० ३४४।

कजी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १ टेढ़ापन। टेढ़ाई। २ दोष। ऐब। नुक्स। कसर। उ०—यह विचारि सिव पूजा तजी। लगी प्रगट सेवा में कजी।—अर्ध०, पृ० २५।

कज्ज(पु)—अव्य० [सं० कार्य, प्रा० कज्ज] लिये। वास्ते। निमित्त। उ०—(क) विष से विषयन को तजियै तो डूबन ही के कज्ज।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५५१। (ख) जब चालय प्रिथिजरा नृप, महुवे कज्ज रिसाय।—प० रा०, पृ० ५०।

कज्जर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कज्जल] दे० 'कज्जल'। उ०—जनु सिखिर कज्जर स्रग।—प० रा०, पृ० ५८।

कज्जल—संज्ञा पुं० [सं०][वि० कज्जलित] १. अंजन। काजल। २. सुरमा। उ०—नाग नरलोकनि की बात औरई विधान, कज्जल कलित जामें जहर समान है।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १०१। ३ कालिख। स्याही।

यौ०—कज्जलध्वज = दीपक। कज्जलगिरि। उ०—सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरु पनारे।—मानस, ६।६८।

४ बादल। ५ एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। उ०—प्रभु मम ओरी देख लेव। तुम मम नाही और देव (शब्द०)।

कज्जलध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक (को०)।

कज्जलरोचक—संज्ञा पुं० [सं०] दीअट। दीपाधार (को०)।

कज्जलवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कदली + वन] दे० 'कजली वन'। उ०—मारू चाली मंदिरां, चढउ बादल माँहि। जाँणे गयंद उलट्टियउ, कज्जलवन मँह जाहि।—ढोला०, दू० ५३८।

कज्जलित—वि० [सं०] १ काजल लगा हुआ। आँजा हुआ। अंजन युक्त। २ काला। स्याह।

कज्जली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गंधक और पारे के योग से बना द्रव्य। २ मछली। ३ स्याही (को०)।

कज्जाक—संज्ञा पुं० [तु० कज्ज़ाक़] १ डाकू। लुटेरा। उ०—कज्जाक अजल का लूटे है दिन रात बजाकर नक्कारा।—राम० धर्म०, पृ० ८९। २ चालाक।

कज्जाकी—संज्ञा स्त्री० [तु० क़ज़ाक़ + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. कज्जाक की वृत्ति। लूटमार। मारकाट। २ चालाकी।

कज्ञसिस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कासीस] दे० 'कसीस'।—वर्ण० पृ० ६।

कज्ञोण(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'कौन'। उ०—फरमान भेल कजोण चाहि, तिरहुति लेलि जन्हि साहि।—कीर्ति०, पृ० ५८।

कज्ञोन—सर्व० [हिं०] दे० 'कौन'। उ०—हरि हरि कज्ञोने एकन हमे पाप। जेसये सुखद ताहि तह ताप।—विद्यापति, पृ० ३४२।

कटंकट—संज्ञा स्त्री० [सं० कटङ्कट] १ आग। अग्नि। २. सोना। सुवर्ण। ३. चित्रक वृक्ष। ४. गणेश। ५ शिव (को०)।

कटंकटेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटङ्कटेरी] दारुहल्दी (को०)।

कटंब—संज्ञा पुं० [सं० कटम्ब] १ संगीत का एक वाद्य या बाजा। २ वाण। तीर (को०)।

कटभर—संज्ञा स्त्री० [सं० कटम्भर] कटभी वृक्ष (को०)।

कटभरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटम्भरा] १ नागबला, राहिणी, मूर्वा, कलंबिका आदि अनेक पौधों के नाम। २ हथिनी। हथिनी (को०)।

कट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी का गंडस्थल। २ गंडस्थल। ३ नरकट या नर नाम की घास। ४. नरकट की चटाई। दरमा। उ०—छाय गए शबरी की कुटी प्रभु नृत्य नटी सी करै जहँ प्रीती। टटी फटी कट दीनी बिछाइ बिदा कै दई मनो भिक्त की भीनी।—रघुराज (शब्द०)। ५. टट्टी। ६ खस, सरकंडा आदि घास।

यौ०—कटाग्नि।

७ शव। लाश। ८ शव उठाने की टिकठी। अरथी। ९ श्मशान। १०. पासे की एक चाल। ११ लकड़ी का तख्ता। १२ समय। अवसर। १३ नितंब। श्रोणि (को०)। १४ कटि (को०)। १५ आधिक्य (को०)। १६ प्रथा। रीति (को०)। १७ शर नामक पौधा (को०)। १८ घास (को०)। १९. पुष्परस। पराग (को०)।

कट²—संज्ञा पुं० [हिं० कटना] १ एक प्रकार का काला रंग जो टीन के टुकड़ों, लोहचून, हड़, बहेड़े, आँवले और कसीस आदि से तैयार किया जाता है। २ काट का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार यौगिक शब्दों में होता है, जैसे,—कटखना कुत्ता।

कट³—संज्ञा पुं० [अं०] काट। तराश। ब्योंत। कता। जैसे,—कोट का कट अच्छा नहीं। उ०—आज बहुत दिनों बाद उन्हें देखा था, वह भी स्वदेशी कट पोशाक में।—सन्यासी०, पृ० ३२१।

कट⁴—वि० [सं०] १ अतिशय। बहुत। २ उग्र। उत्कट।

कटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सेना। दल। फौज। २ राजशिविर। ३ चूड़ा। कंकड़। कड़ा। उ०—(क) देव आदि मध्यांत भगवंत त्वम् सर्वगतमीश पश्यंत जे ब्रह्मवादी। यथा पटतंतु घट मृत्तिका सर्प स्रग दारु करि कनक कटकांगदादी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिन अंगद बिन हार कटक के लखि न परे नर कोई।—रघुराज (शब्द०)। ४. पैर का कड़ा।—डिं०। ५ पर्वत का मध्य भाग। ६. नितंब। चूतड़। ७ सामुद्रिक नमक। ८ घास फूस की चटाई। गोदरी। सथरी। ९ जंजीर की एक कड़ी। १० हाथी के दाँतों पर चढ़े हुए पीतल के बंद या साम। ११ चक्र। १२. उड़ीसा प्रांत का एक प्रसिद्ध नगर। १३ पहिया। १४ समूह। उ०—सदाचार, जप, जोग, बिरागा। सभय विवेक कटकु सबु भागा।—मानस १।८४। १५ स्वर्ण (को०)। १६. राजधानी (को०)। १७. समुद्र (को०)।

कजरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'कजली–१' उ॰—औरहु कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोवत।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ५४२।

कजरी²—संज्ञा पुं॰ [स॰ कज्जल] एक धान जो काले रंग का होता है। उ॰—कपूर काट कजरी रतनारी। मधुकर, ढेला, जीरा सारी।—जायसी (शब्द॰)।

कजरीआरन(पु)—संज्ञा पु॰ [हिं॰ कजरी+आरन] दे॰ 'कजली वन'। उ॰—नै पिंगला गए कजरी आरन।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त॰), पृ॰ २५१।

कजरी वन†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजरी+वन] दे॰ 'कजली वन'।

कजरी बाज—संज्ञा पु॰ [हिं॰ कजरी+फा॰ बाज] कजली गाने या रचनेवाला। कजली प्रेमी।

कजरौटा¹†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काजर+औटा(प्रत्य॰)] दे॰ 'कजलौटा'।

कजरौटा²—वि॰ [हिं॰ कजलौटा] काला। श्यामल। कजरारा। उ॰—सो वाही समै वा वैष्णव के लरिका ने देख्यो तो प्रथम अनेक सोने रूपे की सिंगवारी और बडे बडे कजरौटे नेत्रवारी गायें दीखी।—दो सौ बावन॰, भा॰ १,—पृ॰ ३२५।

कजरौटी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कजरौटा का स्त्री॰] दे॰ 'कजलौटी'। उ॰—भावने के रस रूपहि सोधि लै नीकें भरचो उर कै कजरौटी।—घनानद, पृ॰ ५५।

कजलबाश—संज्ञा पुं॰ [तु॰] मुगलों की एक जाति जो बडी लडाकी होती है।

कजला¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काजल] १ दे॰ 'कजरा'। २ एक काला पक्षी। मटिया।

कजला²—वि॰ दे॰ 'कजरा'।

कजलाना¹—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ काजल] १ काला पड़ना। साँवला होना। २ आग का झँवाना। आग का बुझना।

कजलाना²—क्रि॰ स॰ काजल लगाना। आँजना।

कजलित(पु)—वि॰ [स॰ कज्जलित या हिं॰ कजलाना] दे॰ 'कज्जलित'। उ॰—युवति वृंद कजलित नैनन सिंदूर दिये सिर।—प्रेमघन॰, पृ॰ ३२।

कजली¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ काजल] १. कालिख। २ एक साथ पिसे हुए पारे और गंधक की बुकनी। ३. गन्ने की एक जाति जो वर्दवान में होती है। ४. काली आँखवाली गाय। ५. वह सफेद भेड जिसकी आँखों के किनारे काले बाल होते हैं। ६ पोस्ते की फसल का एक रोग जिसमें फूलते समय फूलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और फसल को हानि पहुँचाती है। ७ एक प्रकार की मछली।

कजली²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ कज्जली] १ एक त्योहार।

विशेष—यह बुंदेलखंड में सावन की पूर्णिमा को और मिर्जापुर, बनारस आदि में भादों वदी तीज को मनाया जाता है। इसमें कच्ची मिट्टी के पिंडों में गोदे हुए जौ के अंकुर किसी ताल या पोखरे में डाले जाते हैं। इस दिन से कजली गाना बंद हो जाता है।

२ मिट्टी के पिंडों में गोदे हुए जौ से निकले हुए हरे हरे अंकुर या पौधे जिन्हें कजली के दिन स्त्रियाँ ताल या पोखरे में डालती हैं और अपने सखियों को बाँटती हैं। ३ एक प्रकार का गीत जो बरसात में सावन वदी तीज तक गाया जाता है।

मुहा॰—कजली खेलना=स्त्रियों का झुंड या घेरा बनाकर घूम घूमकर झूलते हुए कजली गाना।

कजली तीज—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजली+तीज] भादों वदी तीज।

कजली वन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कदलीवन] १ केले का जंगल। २ आसाम का एक जंगल जहाँ हाथी बहुत होते थे।

कजलीबाज—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कजली+फा॰ बाज] कजली गाने या रचनेवाला। कजली प्रेमी। उ॰—कजलीबाज लोग अपनी बनाई कजलियों को ।—प्रेमघन॰, पृ॰ ३५४।

कजलौटा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ काजल+औटा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ अल्पा॰ कजलौटी] १ काजल रखने की लोहे की छिछली डिबिया जिसमें पतली डाँडी लगी रहती है। २ डिबिया जिसमें गोदना गोदने की स्याही रखी जाती है।

कजलौटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कजलौटा] छोटा कजलौटा।

कजही†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'कायजा'।

कजा¹(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ काञ्जी] काँजी। माँड।

कजा²—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ कज़ा] मौत। मृत्यु। उ॰—कजा से बच गया मरना नहीं तो ठाना था।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ २१।

मुहा॰—कजा करना=मर जाना।

यौ॰—कजा ए इलाही=ईश्वरीय इच्छा। ईश्वरेच्छा।

कजाक¹—संज्ञा पुं॰ [तु॰ कज्जाक़] १. लुटेरा। डाकू। बटमार। उ॰—(क) प्रीतम रूप कजाक से समसर कोई नाहिं। छवि फाँसी दै दृग गरे मन धन को लै जाहिं।—रसनिधि (शब्द॰)। (ख) मन धन तो राख्यो हुतो मैं दीवे को तोहिं। नैन कजाकन पै अरे क्यों लुटवायो मोहि।—रसनिधि (शब्द॰)। २. कजाकिस्तान नामक प्रदेश का निवासी।

कजाक²†—वि॰ १ धूर्त। छल कपट करनेवाला। २. चालाक। चालबाज।

कजाकार—क्रि॰ वि॰ [अ॰ कजा+फा॰ 'ए कार'] संयोगवश। अचानक। उ॰—फकीरों गरीबाँ बिचारे तुम्हें। कजाकार अ ए हैं नाहक तुम्हें।—दक्खिनी॰, पृ॰ २०६।

कजाकी—संज्ञा स्त्री॰ [तु॰ कज्जाक़+फा॰ ई (प्रत्य॰)] १ लुटेरापन। लूटमार। उ॰—फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नेकु रहैं न। ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन।—बिहारी (शब्द॰)। २ छल कपट। धोखेबाजी। धूर्तता। उ॰—सहित भला कहि चित अली लिये कजाकी माहिं। कला लला की ना लगी चली चलाकी नाहिं। शृं॰—सत॰ (शब्द॰)।

कजात¹(पु)—क्रि॰ वि॰ [स॰ कदाचित्] दे॰ 'कदाच'। उ॰—जो हारौ तौ देस दिय, अनुचर होई अपार। जौ कजात जीतहि नृपति, तौ तुम हूजौ पार।—प॰ रा॰, पृ॰ १०५।

कजावा—संज्ञा पुं॰ [फा॰ कजावह्] ऊँट की वह काठी जिसके दोनों ओर एक एक आदमी के बैठने की जगह और असबाब रखने के लिये जाली रहती है।

रहते हो। काछियों की बस्ती। २ वह स्थान जहाँ काछी लोग साग भाजी आदि बोते हो।

कछु(पु)†—वि० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०—(क) तदपि कही गुर बारहि बारा। समुझि परत कछु मति अनुसारा।—मानस, १।३१। (ख) ता समै परमेसुरी कछु कार्यार्थ वहाँ आई।—दो सौ बावन०, पृ० १।

मुहा०—कछु और(पु) = कुछ दूसरा ही। उ०—तब तो सनेह कछु और हो, अब तो कछु औरे भई।—पृ० रा०, ७१६५।

कछुआ—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] [स्त्री० कछुई] एक जलजंतु जिसके ऊपर बड़ी कड़ी ढाल की तरह खोपड़ी होती है। कच्छप।

विशेष—इस खोपड़ी के नीचे वह अपना सिर और हाथ पैर सिकोड़ लेता है। इसकी गर्दन लंबी और दुम बहुत छोटी होती है। यह जमीन पर भी चल सकता है। इसकी खोपड़ी की ढाल खिलौने आदि बनते हैं।

कछुइक(पु)—वि०[हिं० कछु+एक] थोड़ा सा। किंचित्। कुछ कुछ। कुछ एक। उ०—(क) सुमना जाती मल्लिका, उत्तम गंधा आस। कछु इक तुव तन बास सों मिलति जासु की बास।—नंद० ग्रं०, पृ० १०५। (ख) दत्तात्रय सुकदेव जी कहे कछु इक बैन।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८७।

कछुक[1](पु)—वि० [हिं० कछु+एक] कुछ थोड़ा। उ०—(क) कछुक दिवस जननी धरु धीरा।—मानस, ५।१६। (ख) नाहिन कछुक दरिदता जाकें।—नंद ग्रं०, पृ० २१२।

कछुक[2]—क्रि० वि० थोड़ा सा। कुछ कुछ। जरा सा। उ०—आंछल ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुटाऊँ।—घनानंद०, पृ० ३४३।

कछुवा—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] दे० 'कछुआ'। उ०—कमठ ध्यान कछुवा मत ताको। ऐसी सुरत नाम से राखो।—घट०, पृ० २१७।

कछोटा—संज्ञा पुं० [हिं० काछ+ओटा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कछोटी] कछनी। काछनी।

क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना। उ०—अचल पट कटि में खोंस कछोटा मारे। सीता माता थी आज नई छवि धारे।—साकेत, पृ० २०३।

कछौहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कछार'।

कज[1](पु)—अव्य० [सं० कार्य प्रा० कज्ज] दे० 'काज'। उ०—हमहिं बहुत अभिलाष देव वीरानि दरस कज।—पृ० रा० ६।१४८।

कज[2]—संज्ञा पुं० [फा०] १. टेढ़ापन। जैसे,—उनके पैर में कुछ कज है।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

मुहा०—कज निकालना = टेढ़ापन दूर करना। सीधा करना। २ कसर। दोष। दूषण। ऐब।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—कज निकलना = (१) दोष दूर करना। (२) दोष बतलाना। दूषण दिखाना।

यौ०—कजअब्रू = कुटिल भ्रूवाला। धनुपाकार भौंहवाला। कजफहम = उलटी सीधी समझवाला। नासमझ। कजरफ्तार = टेढ़ी चालवाला। वक्रगामी।

कजअदा—वि० [फा०] १ कुटिल हावभाववाला। बेमुरौवत। २. दुःशील।

कजअदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] हावभाव का बाँकपन। दुःशीलता। बेमुरौवती। उ०—जुल्फों का बल बनाना, आँखें चुरा के चलना। क्या कजअदाइयाँ हैं क्या कमनिगाहियाँ हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

कजक—संज्ञा पुं० [फा०] हाथी का अंकुश।

कजकोल—संज्ञा पुं० [फा०] भिक्षुकों का कपाल या खप्पर।

कजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना, कछनी] वह औजार जिससे ताँबे या पीतल के बरतनों को खुरचकर साफ करते हैं। खरदनी।

कजपूती—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कयपूती'।

कजफहम—वि० [फा० कज+अ० फहम] उलटी समझवाला। वक्र बुद्धि। नासमझ। मूर्ख [को०]।

कजफहमी—संज्ञा स्त्री० [फा० कज+अ० फहम+फा० ई (प्रत्य०)] दे० 'कजफहम'। उलटी समझ। मूर्खता। उ०—पीसता है माहरुओं को सदा, कैसी कजफहमी पै चर्खे मीर है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८६१।

कजरा[1]—संज्ञा पुं०[हिं० काजर] १ दे० 'काजल'। २ काली आँखोंवाला बैल।

कजरा[2]—वि० [हिं० काजल] [स्त्री० कजरी] काली आँखोंवाला। जिसकी आँखों में काजल लगा हो या ऐसा मालूम हो कि काजल लगा है जैसे,—कजरा बैल।

कजराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० काजल+आई (प्रत्य०)] कालापन। उ०—(क) गई ललाई अधर ते कजराई अँखियान। चदन पक न कुचन में आवति बात तियान।—शृ० सत०, (ख) सितारों की जलन से बादलों को आँच कब आई। न चंदा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई।—ठंडा०, पृ० ७६।

कजरारा—वि० [हिं० काजर+आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कजरारी] १ काजलवाला। जिसमें काजल लगा हो। अंजनयुक्त। उ०—(क) फिर फिर दौरत देखियत निचले नैंकु रहै न। ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कजरारे दृग की घटा जब उनवैं जेहि ओर। बरसि सिरावैं पुहुमि उर रूप झलान झकोर।—रसनिधि (शब्द०)। २ काजल के समान काला। काला। स्याह। उ०—(क) वह सुधि नेकु करो पिय प्यारे। कमल पात में तुम जल लीनो जा दिन नदी किनारे। तहँ मेरो आय गयो मृगछौना जाके नैन सहज कजरारे।—प्रताप (शब्द०)। (ख) गरजैं गरारे कजरारे अति दीह देह जिनहिं निहारे फिरैं वीर करि धीर भंग।—गोपाल (शब्द)।

कजरियाना—क्रि० स० [हिं० काजर से नाम०] दे० 'काजर'। १ बच्चों को नजर लगना बचाने के लिये माथे पर काजल की बिंदी लगाना। २ रात या अँधेरा दिखलाने के लिये चित्र में काला रंग भरना।

से एक निधि। ४. एक रोग जिसमे तालु मे वतौढी निकल आती है। ५ एक यंत्र जिससे मद्य खीचा जाता है। ६ कुश्ती का एक पेंच। ७ एक नाग। ८ विश्वामित्र का एक पुत्र। ९ तुन का पेड। १० दोहे का एक भेद जिसमे ८ गुरु और ३२ लघु होते हैं। जैसे—एक छत्र एक मुकुट मणि, सब वरनन पर जोइ। तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोइ।—तुलसी (शब्द०)।

कच्छपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०]१ एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें पाँच छह फोडे निकलते हैं जो कछुए की पीठ ऐसे होते हैं और कफ और वात से उत्पन्न होते हैं।—माधव०, पृ० १८७। २ प्रमेह के कारण उत्पन्न होनेवाली फुडियो का एक भेद। ये फुडियाँ छोटी छोटी शरीर के कठिन भाग मे कछुए की पीठ के आकार की होती हैं। इनमे जलन होती है। कच्छपी।

कच्छपी—संज्ञा स्त्री०[सं०]१ कच्छप की स्त्री। कछुई। २. सरस्वती की वीणा का नाम। ३ एक प्रकार की छोटी वीणा। ४ दे० 'कच्छपिका—२'।

कच्छशेप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के दिगवर जैन।

कच्छा¹—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ = नाव का एक भाग] १. एक प्रकार की वडी नाव जिसके छोर चिपटे और वडे होते हैं। इसमे दो पतवारें लगती हैं। २. कई वडी वडी नावो, विशेषत पटैलो को एक मे मिलाकर तैयार किया हुआ वडा वेडा या नाव।

मुहा०—कच्छा पाटना = कई कच्छो या पटैलो को एक साथ बाँधकर पाटना।

कच्छा²—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] दे० 'कच्छ ६'

कच्छार—संज्ञा पुं०[सं०]एक देश जो वृहत्सहिता के अनुसार शतभिष, पूर्वाभाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद के अधिकृत देशो मे है। कच्छ।

कच्छिला—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ + हिं० इला (प्रत्य०)] कच्छ देश निवासी एक जाति। उ०—चारण कच्छ देसाँ जाति कच्छिला कहाया।—शिखर०, पृ० १०५।

कच्छी¹—वि० [हिं० कच्छ] १ कच्छ देश का। कच्छ देश सबंधी। २ कच्छ देश मे उत्पन्न।

कच्छी²—संज्ञा पुं० [हिं० कच्छ] घोडे की एक प्रसिद्ध जाति जो कच्छ देश मे होती है। इस जाति के घोडो की पीठ गहरी होती है। उ०—तरक्कत घाय परे पाइ कच्छी। मनो नीर मुक्के तरफ्फत मच्छी।—पृ० रा०, १२।१०५।

कच्छु†—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] कछुआ।

कछ¹Ⓤ†—वि० [हिं० कुछ]दे० 'कुछ'। उ०—कहत रविदास तोहिं सुझत न कछ काम, धाँम, धँन, धरा धाम, धनि मँनि दुख दंद मे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२।

कछ²Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० कक्ष] दे० 'कक्ष'। उ०—नासिका कछ इंद्री के मूआ।—प्राण०, पृ० २३।

कछना¹—संज्ञा पुं० [हिं० काछना] घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती।

क्रि० प्र०—काछना।

कछना²—क्रि० स० [हिं० काछना] धोती को घुटने के ऊपर चढाकर पहनना। उ०—स्याम रंग फुलही सिर दीन्हें स्याम रग कछनी कछ लीन्हे।—लाल (शब्द०)।

कछनिⓊ—संज्ञा स्त्री०[हिं० कछनी] दे० 'कछनी'—१। उ०—लाल की लाल कछनि छवि ऐसी।—नद० ग्र०, पृ० १२६।

कछनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] १. घुटने के ऊपर चढाकर पहनी हुई धोती। उ०—पीतावर की कछनी काछे मोर मुकुट सिर दीन्हे।—गीत (शब्द०)।

क्रि० प्र०—काछना। —बाँधना। —मारना।

२ छोटी धोती। उ०—स्याम रग कुलही सिर दीन्हे। स्याम रग कछनी कछ लीन्हे।— लाल (शब्द०)। ३ रासलीला आदि मे पहनने का घाघरे की तरह का एक वस्त्र जो घुटने तक आता है। ४ वह वस्तु जिससे कोई चीज काछी जाय।

कछमछाना†—क्रि० अ० [हिं० कसमसाना]दे० 'कसमसाना'। उ०—फिर भी जाने क्या बात थी कि दूल्हा रह रहकर कछमछा उठता था।—नई०, पृ० ४३।

कछरा—संज्ञा पुं०[सं० क = जल + क्षरण = गिरना][स्त्री०अल्प० कछरी] चौडे मुँह का घड़ा या वरतन जिसमे पानी, दूध या अन्न रखा जाता है। इसकी अँवठ ऊँची और दृढ़ होती है। उ०—बाँधे न मैं वछरा लैं गरैयन छोर भरचो कछरा सिर फूटिहै।—वेनि (शब्द०)।

कछराली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ककराली'।

कछरी— संज्ञा स्त्री० [हिं० कछरा का अल्पा०] छोटा कछरा।

कछवारा—संज्ञा पुं० [हिं० काछी + वाड़ा] १ काछियो की बस्ती या टोला। २. काछी का खेत जिसमे तरकारियाँ बोई जाती हैं।

कछवाह—संज्ञा पुं०[सं० कच्छ + हिं० वाह (प्रत्य०)] दे० 'कछवाहा'। उ०—जानत जहान ऐंड करि मुलतानिन सौं, कीनो कछवाह कामधुन को बचाव है।—मति० ग्रं०, पृ० ४३५।

कछवाहा—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ + हिं० वाहा (प्रत्य०)] राजपूतो की एक जाति।

कछवी केवल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बिखुरने से सफेद हो जाती है। भटकी।

कछान—संज्ञा पुं०[हिं० काछना]घुटने के ऊपर चढाकर धोती पहनना।

कछार—संज्ञा पुं०[सं० कच्छ + हिं० आर (प्रत्य०)] १ समुद्र या नदी के किनारे की भूमि जो तर या नीची होती है। नदियो की मिट्टी से पटकर निकली हुई जमीन जो बहुत हरी भरी रहती है। खादर। दियारा। उ०—एरे दगावाज मेरे पातक अपार तोहि गगा के कछार मे पछारि छार करिहौं।—पद्माकर (शब्द०)। २ आसाम प्रात का एक भाग।

कछारना—संज्ञा पुं० [हिं० कचारना] दे० 'कचारना'। फीचना। प्रक्षालन करना। उ०—नल से पानी भरने, उनकी धोती कछार देने या रसोई के वरतन मल देने के सब काम छोटे जमादार लोग कर देते हैं।—फूलो०, पृ० २४।

कछावतारⓊ—संज्ञा [सं० कच्छ + अवतार]कच्छपावतार। उ०—कछावतार किद्दय। लछम्मि जीत लिद्द य।—पृ० रा० १०।१२०

कछियाना—संज्ञा पुं० [हिं० काछी] १. वह स्थान जहाँ काछी लोग

कच्ची चाँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + चाँदी] चोखी चाँदी। बिना मेल की चाँदी। खरी चाँदी।

कच्ची चीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] वह चीनी जो गलाकर खूब साफ न की गई हो।

कच्ची जबान—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + फा० जबान] दुर्वचन। गाली। अपशब्द।

कच्ची जाकड—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + जाकड] वह बही जिसमे उस माल के लेनदेन का ब्योरा हो जो निश्चित रूप से न बिक गया हो।

कच्ची नकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + अ० नक्ल] वह नकल जो सरकारी नियम के विरुद्ध किसी सरकारी कागज या मिसिल से खानगी तौर पर सादे कागज पर उतरवाई जाय।

विशेष—यह नकल निज के काम मे आ सकती है, पर किसी हाकिम के सामने या अदालत मे पेश नहीं हो सकती।

कच्ची निकासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + निकासी] वैसी कुल आमदनी जिसमे खर्च का अश पृथक् न किया गया हो।

कच्ची नींद—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + नींद] वह नींद जो पूरी न हो सके। झपकी। आरभिक नींद।

कच्ची पेशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची = फा० पेशी] मुकद्दमे की पहली पेशी जिसमे कुछ फैसला नहीं होता।

कच्ची बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + बही] वह बही जिसमे किसी दुकान या कारखाने का ऐसा हिसाब लिखा हो जो पूर्ण रूप से निश्चित न हो।

कच्ची मिती—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + मिती] १ वह मिती जो पक्की मिती के पहले आवे।

विशेष—लेनदेन मे जिस दिन हुडी का दिन पूजता है, उसे मिती कहते हैं। उसका दूसरा नाम पक्की मिती भी है। उसके पूर्व के दिनो को कच्ची मिती कहते हैं।

२ रुपए के लेनदेन मे रुपए लेने की मिती और रुपए चुकाने की मिती।

विशेष—इन दोनो मितियो का सूद प्राय नहीं जोडा जाता।

कच्ची रसोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची = रसोई] केवल पानी मे पकाया हुआ अन्न। अन्न जो दूध या घी मे न पकाया गया हो।

कच्ची रोकड—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + रोकड] वह बही जिसमे प्रति दिन के आय व्यय का कच्चा हिसाब दर्ज रहता है।

कच्ची शक्कर—संज्ञा पुं० [हिं० कच्ची = शक्कर] वह शक्कर जो केवल राब की जूसी निकालकर सुखाने से बनती है। खाँड।

कच्ची सडक—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची = सडक] वह सडक जिसमे ककड आदि न पिटा हो।

कच्ची सिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्ची + सिलाई] १ वह दूर दूर पड़ा हुआ डोभ या टाँका जो बखिया करने के पहले जोड़ो को मिलाए रहता है। यह पीछे खोल दिया जाता है। लगर। कोका। २ किताबो की वह सिलाई जिसमे सब फरमे एक साथ हाशिए पर से सी दिए जाते हैं। इस सिलाई की पुस्तक के पन्ने पूरे नहीं खुलते। जिल्दबदी मे इस प्रकार की सिलाई नहीं की जाती।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

कच्चू—संज्ञा स्त्री० [स० कच्चू] १ अरुई। घुइयाँ। बडा।

कच्चे पक्के दिन—संज्ञा पुं० [हिं०] १. चार पाँच महीने का गर्भकाल। २ दो ऋतुओ की सधि के दिन।

कच्चे बच्चे—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा बच्चा का बहुव०] बहुत छोटे छोटे बच्चे। बहुत से लडके बाले। जैसे,—इतने कच्चे बच्चे लिए हुए तुम कहाँ फिरोगे। २ सतति। उ०—कला कल्पना की नूतन सृष्टि मे है, प्रकृति के ज्यो के त्यो चित्रण मे नहीं। काव्य कल्पना का लोक है। ये सब उक्त बल बूटेवाली इनकी धारणा के कच्चे बच्चे हैं।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १६६।

विशेष—यह शब्द बहुवचन के रूप मे ही प्रचलित है।

कच्छ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जलप्राय देश। अनूप देश। २ नदी आदि के किनारे की भूमि। कछार। उ०—सीतल मृदुल बालुका स्वच्छ। इत ये हरे हरे तृन कच्छ।—नद ग्र०, पृ० २६४। (ख) आवहु बठहु भोजन करें। इन ये बच्छ कच्छ मे चरें।—नंद ग्र०, पृ० २७४। (ग) गिरि कदर सरवरह सरित कच्छह घन गुच्छह।—पृ० रा० ६।१०२। ३ [वि० कच्छी] गुजरात के समीप एक अतरीप। कच्छभुज। उ०—(क) कुकन कच्छ परोट बट्ट सिंधू सरभगा।—पृ० रा० १२।१३०, (ख) चारण कच्छ देश जाति कच्छिला कहाया।—शिखर०, पृ० १०५। ४. कच्छ देश का घोडा। ५ धोती का वह छोर जिसे दोनो टाँगो के बीच से निकालकर पीछे खोस लेते हैं। लाँग। ६ सिक्खो का जाँघिया जो पच ककार (कघी, केश, कच्छ, कडा और कृपाण) मे गिना जाता है।

मुहा०—कच्छ की उखेड = कुश्ती का एक पेंच जिसमे पट पडे हुए को उलटते हैं। इसमे अपने बाएँ हाथ को विपक्षी के बाएँ बगल से ले जाकर उसकी गर्दन पर चढाते हैं और दाहिने हाथ को दोनो जाँघो मे से ले जाकर उसके पेट के पास लँगोट को पकडते हैं और उखेड देते हुए गिरा देते हैं। इसका तोड़ यह है—अपनी जो टाँग प्रतिद्वद्वी की ओर हो, उसे उसकी दूसरी टाँग मे फँसाना अथवा झट घूमकर अपने खुले हाथ से खिलाड़ी की गर्दन दबाते हुए छलाँग मारकर गिराना।

७ छप्पय का एक भेद जिसमे ५३ गुरु, ४६ लघु, कुल ९९ वर्ण और १४२ मात्राएँ होती हैं। ८ तुन का पेड। उ०—(क) राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हरी के अतिरिक्त बबूल, कच्छ की छाल, धावडा के पत्ते आदि उपयोगी चीजें यहाँ काफी पाई जाती हैं।—शुक्ल० अभि० ग्र० (विविध), पृ० १८।

कच्छ[2] (पु)—संज्ञा पुं० [स० कच्छप] कछुआ। उ०—नहिं तब मच्छ कच्छ बाराहा।—कबीर श०, पृ० १४६।

कच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कच्छपी] १. कछुआ। २. विष्णु के २४ अवतारो मे से एक। उ०—परम रूपमय कच्छप सोई।—मानस, १।२४७। ३ कुबेर की नव निधियो मे

कच्चा जोड़—संज्ञा पुं॰[हिं॰ कच्चा+जोड़]बरतन बनानेवालों की बोली में वह जोड़ जो राँगे से जड़ा गया हो। कच्चा टाँका।

विशेष—यह जोड़ उखड़ जाता है और बहुत दिनों तक रहता नहीं।

कच्चा टाँका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+टाँका] दे॰ 'कच्चा' जोड़।

कच्चा तागा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+तागा]१ कता हुआ तागा जो बटा न गया हो। २ कमजोर चीज। नाजुक चीज।

कच्चा धागा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+धागा] दे॰ 'कच्चा तागा'।

कच्चा नील—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+नील] एक प्रकार का नील। नीलबरी।

विशेष—कारखाने मे मथाई के बाद हौज में पराप्त का गोंद मिला कर नील छोड़ दिया जाता है। जब वह नीचे जम जाता है, तब ऊपर का पानी हौज के किनारे के छेद से निकाल दिया जाता है। पानी के निकल जाने पर नीचे के गड्ढे में नील के जमे हुए माँठ या कीचड़ को कपड़े मे बाँधकर रात भर लटकाते हैं। सवेरे उसे खोलकर राख पर धूप में फैला देते हैं। सूखने पर इसी कच्चा नील या नीलबरी कहते हैं। इसमे पक्के नील से कम मेहनत लगती है, इसी से यह सस्ता बिकता है।

कच्चापन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+पन (प्रत्य॰)] कच्चे होने की स्थिति या भाव। कचाई। अपरिपक्वता। उ॰—मुख के उस कच्चेपन से, मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा, कौमार्य की पुष्टि हो रही थी।—पिंजरे॰, पृ॰ ४७।

कच्चा पैसा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+पैसा] वह छोटा ताँबे का सिक्का या पैसा जिसका प्रचार सब जगह न हो और जो राज्यानुमोदित न हो। जैसे, गोरखपुरी, बालासाही, मद्धूसाही नानकसाही।

कच्चा बाना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+बाना] १. रेशम का वह डोरा जो बटा न हो। २ वह रेशमी कपड़ा जिसपर कलफ न किया गया हो।

कच्चा माल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+माल] १ वह रेशमी कपड़ा जिसपर कलफ न किया गया हो। २ झूठा गोटा पट्टा। ३. वे मूल द्रव्य जिनका उपयोग विविध शिल्पों में उत्पादन कार्य के लिये होता है। जैसे चीनी मिल के लिय गन्ना, वस्त्र मिल के लिये रूई, कागज मिल के लिये बाँस, ईख की छोई, सन और लोह के कारखानो के लिये कच्चा लोहा आदि 'कच्चा माल' हैं।

कच्चा मोतियाबिंद—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+मोतियाबिंद] वह मोतियाबिंद जिसमें आँख की ज्योति बिल्कुल नहीं मारी जाती, केवल धुँधला दिखाई देता है। ऐसे मोतियाबिंद मे नश्तर नहीं लगता।

कच्चा रेजा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+रेजा] दे॰ 'कच्चा माल-१'।

कच्चा शोरा—संज्ञा पुं॰[हिं॰ कच्चा+शोरा]वह शोरा जो उबाली हुई नोनी मिट्टी के खारे पानी में जम जाता है। इसी को फिर साफ करके कलमी शोरा बनाते हैं।

कच्चा हाथ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कच्चा+हाथ] वह हाथ जो किसी काम मे बैठा न हो। बिना मँजा हुआ हाथ। अनभ्यस्त हाथ।

कच्चा हाल—संज्ञा पुं॰[हिं॰ कच्चा+हाल]सच्ची कथा। पूरा और ठीक ब्योरा।

कच्ची[1]—वि॰ [हिं॰ कच्चा का स्त्री॰] कच्चा। अपरिपुष्ट। उ॰—इस लौंडे की उम्र अभी कच्ची है।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ८७।

कच्ची[2]—संज्ञा स्त्री॰कच्ची रसोई। केवल पानी में पकाया हुआ अन्न। अन्न जो दूध या घी मे न पकाया गया हो। 'पक्की' का प्रतिलोम शब्द। सखरी। जैसे,—हमारा उनका कच्ची का व्यवहार है।

विशेष—द्विजातियों मे लोग अपने ही संबध या बिरादरी के लोगों के हाथ की कच्ची रसोई खा सकते हैं।

कच्ची असामी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कच्ची+असामी] वह काम या जगह जो थोड़े दिनों के लिये हो। चंदरोजा जगह।

कच्ची कली—संज्ञा स्त्री॰[हिं॰ कच्ची=कली] १. वह कली जिसके खिलने मे देर हो। मुँहबँधी कली। २ स्त्री जो पुरुष समागम के योग्य न हो। अप्राप्तयौवना। ३ जिस स्त्री से पुरुषसमागम न हुआ हो। अछूती।

मुहा॰—कच्ची कली टूटना=१ थोड़ी अवस्थावाले का मरना। २ बहुत छोटी अवस्थावाली या कुमारी का पुरुष से संभोग होना।

कच्ची कुर्की—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कच्ची+कुर्की] वह कुर्की जो प्राय महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशंका से जारी करते हैं जिसमें मुकदमे का फैसला होने तक मुद्दालेह अपना माल असबाब इधर उधर न कर दे। वि॰दे॰ 'कुर्की'।

कच्ची गोटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कच्ची+गोटी] चौसर के खेल मे वह गोटी जो उठी तो हो पर पक्की न हो। चौसर मे वह गोटी जो अपने स्थान से चल चुकी हो, पर जिसने आधा रास्ता पार न किया हो। उ॰—कच्ची बारहि बार फिरासी। पक्की तो फिर थिर न रहासी।—जायसी (शब्द॰)।

विशेष—चौसर मे गोटियों के चार भेद हैं।

मुहा॰—कच्ची गोटी खेलना=नातजुर्बेकार रहना। अशिक्षित बने रहना। अनाड़ीपन करना। जैसे,—उसने ऐसी कच्ची गोटियाँ नहीं खेली हैं जो तुम्हारी बातों मे आ जाय।

कच्ची गोली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कच्ची+गोली] मिट्टी की गोली जो पकाई न गई हो। ऐसी गोली खेलने मे जल्दी टूट जाती है।

मुहा॰—कच्ची गोली खेलना=नातजुर्बे रहना। नातजुरबेकार होना। अनाड़ीपन करना। उ॰—यहाँ किसी ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं। क्या मुफ्त की अशर्फियाँ हैं।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ ५५३। दे॰ 'कच्ची गोटी खेलना'।

कच्ची घड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ कच्ची+घड़ी] काल का एक माप जो दिन रात के साठवें अंश के बराबर होता है। २४ मिनट का काल। दंड।

हृदय जिसमे कष्ट, पीडा आदि सहने का साहस न हो। 'कडा जी' का उलटा। जैसे,—(क) उसका बडा कच्चा जी है, चीर फाड़ नहीं देख सकता। (ख) लडाई पर जाना कच्चे जी के लोगों का काम नही है। कच्चा करना=(१) डराना। भयभीत करना। हिम्मत छुडा देना। (२) कच्ची सिलाई करना। लगर डालना। सलगा भरना। कच्चा होना=(१) अधीर होना। हतोत्साह होना। हिम्मत हारना। (२) लगर पडना। कच्ची सिलाई होना।

७. जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। अप्रामाणिक। नि सार। अयुक्त। बेठीक। जैसे, कच्ची राय, कच्ची दलील, कच्ची जुगुत।

मुहा०—कच्चा करना=(१)अप्रामाणिक ठहराना। झूठा सावित करना। जैसे,—उसने तुम्हारी सब बातें कच्ची कर दीं। (२) लज्जित करना। शरमाना। नीचा दिखलाना। जैसे,—उसने सबके सामने तुम्हें कच्चा किया। कच्चा पड़ना=(१) अप्रामाणिक ठहरना। नि सार ठहरना। झूठा ठहरना। जैसे,—(क) यहाँ तुम्हारी दलील कच्ची पडती है। (ख) यदि हम इस समय तुम्हें रुपया न देंगे तो हमारी बात कच्ची पड़ेगी। (२) सिटपिटाना। सकुचित होना। जैसे, हमे देखते ही वे कच्चे पड गए। कच्ची पक्की=भली बुरी। उलटी सीधी। दुर्वाक्य। दुर्वचन। गाली। जैसे,—बिना दो चार कच्ची पक्की सुने वह ठीक काम नही करता। कच्ची बात=अश्लील बात। लज्जाजनक बात। झूठी बात। उ०—(क) क्यो भला बात हम सुनें कच्ची, है न बच्चे न कान के कच्चे।—चुभते०, पृ० १७। (ख) कहै सेख तुम बेगम सच्चिय। ऐसी बात कहो मत कच्चिय।—हम्मीर रा०, पृ० ३९।

८. जो प्रामाणिक तौल या माप से कम हो। जैसे,—कच्चा सेर, कच्चा मन, कच्चा बीघा, कच्चा कोस, कच्चा गज।

विशेष—एक ही नाम के दो मानों में जो कम या छोटा होता है, उसे कच्चा कहते हैं। जैसे,—जहाँ नवरी सेर से अधिक वजन का सेर चलता है, वहाँ नवरी को ही कच्चा कहते हैं।

९ जो सर्वांगपूर्ण रूप मे न हो। जिसमें काट छाँट की जगह हो। जैसे,—कच्ची वही, कच्चा मसविदा। १०. जो नियमानुसार न हो। जो कायदे के मुताबिक न हो। जैसे, कच्चा दस्तावेज। कच्ची नकल। ११. कच्ची मिट्टी का बना हुआ। गीली मिट्टी का बना हुआ। जैसे,—कच्चा घर। कच्ची दीवार।

मुहा०—कच्चा पक्का=इमारत या जोडाई का वह काम जिसमे पक्की ईंटें मिट्टी के गारे से जोड़ी गई हों।

१२ अपरिपक्व। अपटु। अव्युत्पन्न। अनाडी। जिसे पूरा अभ्यास न हो।—(व्यक्तिपरक)। जैसे—वह हिसाब मे बहुत कच्चा है। १३ जिसे अभ्यास न हो। जो मँजा न हो। जो किसी काम को करते करते जमा या बैठा न हो।—वस्तु-परक)। जैसे, कच्चा हाथ। १४ जिसका पूरा अभ्यास न हो। जो मँजा हुआ न हो। जैसे,—कच्चा खेत, कच्चे अक्षर। जैसे,—जो विषय कच्चा हो उसका अभ्यास करो।

कच्चा[२]—सज्ञा पुं० १. दूर दूर पर पडा हुआ तागे का वह डोम जिसपर दरजी बखिया करते हैं। यह डोभ या सीवन पीछे खोल दी जाती है।

क्रि० प्र०—करना। होना।

२ ढाँचा। खाका। ढड्ढा। ३ मसविदा। ४ कनपटी के पास नीचे ऊपर के जबडो का जोड जिसमे मुँह खुलता और बद होता है। ५ जबडा। दाढ़।

मुहा०—कच्चा बैठना=दाँत बैठना। मरने के समय ऊपर से नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि वे अलग न हो सकें।

६ बहुत छोटा ताँबे का सिक्का जिसका चलन सब जगह न हो। कच्चा पैसा। ७ अधेला। ८ एक रुपए का एक दिन का व्याज जो एक 'कच्चा' कहलाता है।

विशेष—ऐसे १०० कच्चो का ३१/४ तक्का माना जाता है। पर प्रत्येक ३०० कच्चो का दस पक्का लिया जाता है। देशी व्यापारी इसी रीति पर व्याज फैलाते हैं।

कच्चाअसामी—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+असामी] १. वह आदमी जो किसी खेत को दो ही एक फसल जोतने के लिये ले। ऐसे असामी का खेत पर कोई अधिकार नही होता। २ जो लेनदेन के व्यवहार मे दृढ़ न रहे। जो अपना वादा पूरा न करता हो। ३ जो अपनी बात पर दृढ़ न रहे। जो समय पर किसी बात से नट जाय।

कच्चा कागज—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+अ० कागज] १ एक प्रकार का कागज जो घोटा हुआ नही होता। यह शरबत, तेल आदि के छानने के काम मे आता है। २ वह दस्तावेज जिसकी रजिस्ट्री न हुई हो।

कच्चा काम—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+काम] वह काम जो झूठे सलमे सितारे या गोटे पट्टे से बनाया गया हो। झूठा काम।

कच्चा कोढ—सज्ञा पुं० [स० कच्चा+कोढ] १ खुजली। २ गरमी। आतशक।

कच्चा गोटा—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+गोटा] झूठा गोटा।

कच्चा घडा—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+घड़ा] १ वह घडा जो आवें मे न पकाया गया हो।

मुहा०—कच्चे घड़े मे पानी भरना=अत्यत कठिन काम करना।

२. घडा जो खूब पका न हो। सेवर घडा।

मुहा०—कच्चे घड़े की चढ़ना=शराब या ताडी आदि को पीकर मतवाला होना। नशे में चूर होना। गहागड्ड नशा चढना। पागल होना। उन्मत्त होना। बहकना।

कच्चा चिट्ठा—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+चिट्ठा] वह गुप्त वृत्तात जो ज्यो का त्यों कहा जाय। पूरा और ठीक ठीक व्यौरा।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा खोलना=गुप्त भेद खोलना। गुप्त बातो को पूरे व्यौरे के साथ प्रकट करना। उ०—चलो, बस अब बहुत न बको। नही तो मैं जाके बेगम साहब से जड दूँगी कच्चा चिट्ठा।—सैर०, पृ० २८।

कच्चा चूना—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+चूना] चूने की कली जो पानी मे न बुझाई गई हो।

कच्चा जिन—सज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+अ० जिन=भूत] १ जड। मूर्ख। २ हठी आदमी। ३ पीछे पड़ जानेवाला आदमी। वह जिसे गहरी धुन हो।

कचूमर—संज्ञा पुं०[हिं० कुचलना]१. कुचलकर बनाया हुआ अचार। कुचला। २ कुचली हुई वस्तु। भर्ता। भुर्ता।

मुहा०—कचूमर करना या निकालना=(१) खूब कूटना। चूर चूर करना। कुचलना। २ असावधानी या अत्यंत अधिक व्यवहार के कारण किसी वस्तु को नष्ट करना। बिगाडना। नष्ट करना।—जैसे, तुम्हारे हाथ मे जो चीज पडती है, उसी का कचूमर निकाल डालते हो। ३. मारते मारते बदम कर देना। खूब पीटना। भुरकुस निकालना।

कचूर¹—संज्ञा पुं० [सं० कर्चूर]हल्दी की जाति का एक पौधा। नर कचूर। जरवाद उ०—परे पुहुमि पर होइ कचूरू। परै केदली महँ होइ कपूरू।—जायसी (गुप्त), पृ० ३३१।

विशेष—यह ऊपर से देखने मे बिलकुल हल्दी की तरह का होता है, पर हल्दी की जड और इसकी जड या गाँठ मे भेद होता है। कचूर की जड या गाँठ सफेद होती है और उसमे कपूर की सी कडी महक होती है। यह पौधा सारे भारतवर्ष में लगाया जाता है और पूर्वीय हिमालय की तराई मे आपसे आप होता है। वैद्यक के अनुसार कचूर रेचक, अग्निदीपक और वात तथा कफ को दूर करनेवाला है। यह खाँसी, हिचकी और बवासीर मे दिया जाता है।

पर्या०—कर्चूर। द्राविड। कर्श्य। गंधमूलक। गवसार। वेध-मूख। जटाल।

मुहा०—कचूर होना=कचूर की तरह हरा होना। खूब हरा होना (खेती आदि का)।

कचूर²—संज्ञा पुं० [हिं० कचोरा] [स्त्री० कचूरी] कचुल्ला कटोरा। उ०—(क) नयन कचूर प्रेम मद भरे। भई सुदिष्टि योगी सो ढरे।—जायसी (शब्द०)। (ख) मांगी भीख खपर लइ मुए न छोडे बार। बूझ जो कनक कचूरी भीख देहु नहिं मार।—जायसी (शब्द०)।

कचेरा—संज्ञा पुं० [हिं० काँच] दे० 'कँचेरा'।

कचेल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह डोर जिसमे कागजपत्र, ग्रंथ रखे जायँ। २. वह आवरण या जिल्द जिसमे कागजपत्र सुरक्षित रखे जायँ [को०]।

कचेहरी—संज्ञा पुं० [हिं० कचहरी] दे० 'कचहरी'।

कचैडी(पु)†—संज्ञा स्त्री०[हिं० कचहरी] दे० 'कचहरी'। उ०—चाढ़ी करै कचैडी चढिया।—बाँकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १०९।

कचोक—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोकना] कोई नोकदार चीज चुभने या गडने की क्रिया या भाव।

कचोकना—क्रि० स० [अनु०] किसी नुकीली चीज को चुभाना या गडाना। चुभाना।

कचोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोटना] रह रहकर बार बार होनेवाली वेदना। कचोटने की क्रिया या भाव। उ०—उसे देखने के लिये उठता हृदय कचोट।—झरना, पृ० ७३।

कचोटना—क्रि० अ० [अनु०]मन के भीतर की वेदना का उमडना। किसी की याद मे दुख का होना। उ०—हृदय कचोटने लगता है।—ककात, पृ० १३।

कचोना—क्रि० स० [हिं० कच=धँसाने का शब्द]चुभाना। धँसाना।

कचोरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० काँसा+ओरा (प्रत्य०)][स्त्री०कचोरी] कटोरा। प्याला। उ०—(क) पान लिए दासी चहुँ ओरा। अमिरित दानी भरे कचोरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) मुकुलित केश सुदेश देखियत नील बसन लपटाए। भरि अपनें कर कनक कचोरा पीवत प्रियहि चखाए।—सूर (शब्द०)।

कचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचोरा+ई (प्रत्य०)] छोटा कटोरा। प्याली। कटोरी।

कचौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कचौरी'।

कचौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचरी]एक प्रकार की पूरी जिसके भीतर उरद आदि की पीठी भरी जाती है। यह कई प्रकार की होती है। जैसे—सादी, खस्ता आदि। उ०—पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्वल सुदर सौरी।—सूर० (राधा०), पृ० ४२०।

कच्चट—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलीय पौधा [को०]।

कच्चपच्च—संज्ञा पुं०[अनु०] दे० 'कचपच'। भीड़। शोरगुल। बच्चो का कोलाहल।

कच्चर¹—वि०[सं०]गर्द से भरा हुआ। मैला कुचैला। मल से दूषित।

कच्चर²—संज्ञा पुं० पानी मिला मखनिया दूध।

कच्चा¹—वि०[सं० कषण=कच्चा]१ बिना पका। जो पका न हो। हरा और बिना रस का। अपक्व। जैसे—कच्चा फल।

मुहा०—कच्चा खा जाना=मार डालना। नष्ट करना। (क्रोध मे लोगों की यह साधारण बोल चाल है।) जैसे, तुमसे जो कोई बोलेगा उसे मैं कच्चा खा जाऊँगा। उ०—क्या महमूद के अत्याचारो का वर्णन पढकर जी मे यह नहीं आता है कि वह सामने आता तो उसे कच्चा खा जाते।—रस०, पृ० १०१।

२ जो आँच पर न पका हो। जो आँच खाकर गला न हो या खरा न हो गया हो। जैसे,—कच्ची रोटी, कच्ची दाल, कच्चा घडा, कच्ची ईंट। ३. जो अपनी पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो। जो पुष्ट न हुआ हो। अपरिपुष्ट। जैसे,—कच्ची कली, कच्ची लकडी, कच्ची उमर।

मुहा०—कच्चा जाना=गर्भपात होना। पेट गिरना। कच्चा बच्चा=वह बच्चा जो गर्भ के दिन पूरे होने के पहले ही पैदा हुआ हो।

४. जो बनकर तैयार न हुआ हो। जिसके तैयार होने मे कसर हो। ५. जिसके सस्कार या संशोधन की प्रक्रिया पूरी न हुई हो। जैसे—कच्ची चीनी कच्चा शोरा। ६. अदृढ। कमजोर। जल्दी टूटने या बिगडनेवाला। बहुत दिनो तक न रहनेवाला। अस्थायी। स्थिर। जैसे,—(क) कच्चा धागा कच्चा काम, कच्चा रग। उ०—(क) कच्चे बारह बार फिरासी। पक्के तौ फिर थिर न रहासी।—जायसी ग्र०(गुप्त०), पृ० ३३२। (ख) ऐसे कच्चे नहीं कि हमपर किसी का दाँवपेंच चले।—फिसाना०, भा० १, पृ० ९।

मुहा०—कच्चा जी या दिल=विचलित होनेवाला चित्त। वह

कचलोदा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोदा] कच्चे आटे का पेडा। लोई। जैसे,—वह रोटी नहीं जानता, कचलोदे उठाकर सामने रख देता है।

कचलोन—संज्ञा पुं०[हिं० काँच+लोन] एक प्रकार का लवण।
विशेष—यह काँच की भट्ठियों में जमे हुए क्षार से बनता है। यह पानी में जल्दी नहीं घुलता और पाचक होता है।

कचलोहा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोहा] १ कच्चा लोहा। २ अनाडी का किया हुआ वार। हलका हाथ।

कचलोही—संज्ञा स्त्री०[हिं० कचलोहा का स्त्री०] दे० 'कचलोहा'।

कचलोहू—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोहू] वह पनछा या पानी जो खुले जख्म से थोडा थोडा निकलता है। रसधातु।

कचवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा=बहुत छोटा+अंश] खेत मापने का एक मान जो बीघे का आठ हजारवाँ भाग होता है। बीस कचवाँसी का एक विश्वासी होता है।

कचवाट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचाहट] १ खिन्नता। विराग। २ नफरत। चिढ।

कचहरी—संज्ञा स्त्री०[देश० अथवा सं० कष+गृह=कषगृह > कशघरी > कछहरी > कचहरी अथवा सं० कृत्य=कर्तव्य+गृह > कच्चघरी > कचहरी]१ गोष्ठी। जमावडा। जैसे,—तुम्हारे यहाँ दिन रात कचहरी लगी रहती है। २ दरबार। राजसभा। उ०—अमरसिंह राजा को नामा। लागी कचहरी बहु विधि धामा।—कबीर सा०, पृ० ४५५।
क्रि० प्र०—उठना। —करना। —बैठना। —लगना। —लगाना।
३ न्यायालय। अदालत।
क्रि० प्र०—उठना। —करना। —लगाना।—
मुहा०—कचहरी चढ़ना=अदालत तक मामला ले जाना।
४ न्यायालय का दफ्तर। ५ दफ्तर। कार्यालय।

कचा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हथिनी। २ शोभा। सौंदर्य [को०]।

कचा[2]Ⓟ—वि०[हिं० कच्चा]दे० 'कच्चा'। उ०—अद्भुत नर्तक नहिं कछु कचे। सप फननि पर ताडव नचे।—नंद० ग्रं०, पृ०२८१।

कचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा+ई (प्रत्य०)] १ कच्चापन। उ०—सनै सनै थल पक पिटाई। बीरुध तुननि की गई कचाई।—नंद० ग्रं० पृ० २६१। २ नातजुर्बेकारी। अनुभव की कमी। उ०—ललन सलोने अरु रहे अति सनेह सो पागि। तनक कचाई देति दुख सूरन लो मुख लागि।—बिहारी (शब्द०)।

कचाकचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दूसरे के बाल पकडकर खीचना। केशाकेशी [को०]।

कचाकु[1]—वि० [सं०] १ दुःशील। उद्दंड। २ कुटिल। ३ असह्य (को०)। ४ दुष्प्राप (को०)।

कचाकु[2]—संज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

कचाटुर—संज्ञा पुं०[सं०] वनमुरगी जो पानी या दलदल के किनारे की घासो मे घूमा करती है।

कचाना†—क्रि० अ० [हिं० कच्चा] १ कचियाना। पीछे हटना। सकपकाना। हिम्मत हारना। भयभीत होना। डरना।

कचायँध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा+गंध] कच्चेपन की महक।

कचायन—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचकच] किचकिच। लडाई झगड़ा।

कचार[1]—संज्ञा पुं०[हिं० कछार] नदी के किनारे उस स्थान का जल जहाँ कीचड या दलदल के कारण बबूले उठते हैं और जहाँ नाव नहीं चढ सकती।

कचार[2]‡—संज्ञा स्त्री० [कचरा या कचडा] खाद।
क्रि० प्र०—काढ़ना।—डालना।—फेंकना।— हटाना।

कचार[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचारना] कचारने का काम या भाव।

कचारना—क्रि० स० [अनु०] कपडे को पटककर धोना। कपडा धोना।

कचालू—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+आलू] १ एक प्रकार की अरुई। बडा। २ एक प्रकार की चाट। उबाले हुए आलू या बडे के कतरे जिसमे नमक, मिर्च खटाई आदि चरपरी चीजें मिली रहती हैं। ३ कमरख, अमरूद, जोरे, ककडी आदि के छोटे छोटे टुकड़े जिनमे नमक, मिर्च मिली रहती हैं।
मुहा०—कचालू करना या बनाना।=खूब पीटना।

कचावट—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+आवट (प्रत्य०)]कच्चे आम के पन्ने की अमावट की तरह जमाई हुई खटाई।

कचाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] कच्चापन। कचाई। कच्चे होने की अवस्था या भाव।

कचाहिंद—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचायन] किचकिच। लडाई झगड़ा।

कचिया[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना] दाँती। हँसिया।

कचिया[2]—संज्ञा दे० [सं० काँच] एक प्रकार का नमक जो काच से बनाया जाता है। काच लवण। दे० 'कचलोन'।

कचियाना—क्रि० अ० [हिं० कच्चा] १ दिल कच्चा करना। साहस छोडना। हिम्मत हारना। तत्पर न रहना। २. डर जाना। पीछे हटना। २ लज्जित होना। शर्माना। झेंपना।
संयो० क्रि०—जाना।

कचौचो[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री०[हिं० कचपची] कृत्तिका। २. कचपचिया। उ०—कानन कुडल खूँट औ खूँटी। जानहुँ परी कचोची टूटी।—जायसी (शब्द०)।

कचौचो[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा का अ पा०] कनपटी के पास दोनो जबडो का जोड जिससे मुँह खुलता और बंद होता है। है। जबडा। दाढ़।
मुहा०—कचौची बटना=दाँत पीसना। किचकिचाना। कचौची लेना=मरने के समय का दाँत पीसना। कचौची बँधना=दाँत बैठना।

कचु—संज्ञा पुं० [सं०] कद शाक। घुइयाँ। बडा [को०]।

कचुल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० कसोरा, कचोरा+ऊला (प्रत्य०)] वह कटोरा जिसकी पेंदी चौडी हो।

कचूमर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० कठूमर'।

लोगों का भर जाना। गिचपिच। गुत्थमगुत्था। २ दे० 'कचकच'।

कचपचिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कचपची'। उ०—पहिरे खुभी सिंहल दीपी। जनों भरी कचपचिया सीपी।—जायसी ग्रं०, पृ० ४५।

कचपची—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचपच] १. बहुत से छोटे छोटे तारों का पुंज जो एक गुच्छे के समान दिखाई पड़ता है। कृत्तिका नक्षत्र। उ०—तेहि पर सीस जो कचिपचि भरा। राजमँदिर सोने नग जरा —जायसी (शब्द०)। २ दे० 'कचवची'।

कचपेंदिया—वि० [हिं० कच्चा+पेंदी] १ पेंदी का कमजोर। २. अस्थिर विचार का। बात का कच्चा। जिसकी बात का कुछ ठीक ठिकाना न हो। ओछा।

कचवची—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचपच] चमकीले बुंदे जिन्हें स्त्रियाँ शोभा के लिये मस्तक, कनपटी और गाल पर चिपकाती हैं। चोरिया। सितारा। तारा। चमकी। उ०—धानि कचवची टीका सजा। तिलक जो देख ठाउँ जिउ तजा।—जायसी (शब्द०)।

कचभार—संज्ञा पुं० [सं०] १ केश का भार या बोझ। उ०—सुमन भई महि में फरै, जब सुकुमारि विहार। तब सखियाँ सगहि फिरैं, हाथ लिए कचभार।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १०६।

कचमाल—संज्ञा पुं० [सं०] धुआँ (को०)।

कचरई ग्रमौवा—संज्ञा पुं० [हिं० कचरी+ग्रमौवा] एक प्रकार का ग्रमौवा रंग जो ग्राम की कचरी के रंग का सा ग्रर्थात् हरापन लिए हुए बादामी होता है।

विशेष—इसकी चाह लोग रंग के लिये उतनी नहीं करते जितनी सुगंध के लिये करते हैं। बड़े बड़े ग्रादमियों के लिहाफ ग्रौर रजाई के ग्रस्तर इस रंग में प्रायः रँगे जाते हैं। पहले कपड़े को हल्दी के रंग में रँगकर हर्रे के जोशादे में डुबाते हैं। इसके पीछे उसे कसीस में डुबोकर फिटकिरी मिले हुए ग्रनार के जोशादे में रँगते हैं। इस रंग के तीन भेद होते हैं—संदली, सुफ़ीयानी ग्रौर मलयगिरि।

कचर कचर[1]—संज्ञा पुं० [ग्रनु० या देश०] १ कच्चे फल खाने का शब्द। जैसे—(क) ग्राल पका नहीं, कचर कचर करता है। (ख) वह सारी ककड़ी कचर कचर खा गया। २ कचकच। बकवाद। बतौम्भा।

कचर कचर[2]—क्रि० वि० दे० 'कचरना'। कुचल कुचलकर। चबाकर। उ०—खूब मजे में मास कचर कचर खाना ग्रौर चैन करना।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ७१।

कचरकूट—संज्ञा पुं० [हिं० कचरना+कूटना] १. खूब पीटना ग्रौर लतियाना। मारकूट।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

३. खूब पेट भर भोजन। इच्छाभोजन। उ०—तो कोई गोश्त रोटी ग्रौर कबाब की कचरकूट मचा चला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—मचना।—मचाना।

कचरघान—संज्ञा पुं० [हिं० कचरना+घान] १ बहुत सी ऐसी वस्तुग्रों का इकट्ठा होना जिनसे गड़बड़ी हो। २ बहुत से लड़के वाले। कच्चे बच्चे। ३ घमासान। ४ मारपीट।

कचरना(पु)†—क्रि० स० [सं० कच्चरण=बुरी तरह चलना या ग्रनु० कच] १ पैर से कुचलना। रौंदना। दबाना। उ०—चलो चलु चलो चलु विचलु न बीच ही तें कीच बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं। ग्ररे दगाबाज मेरे पातक ग्रपार तोहि गंगा के कछार में पछारि छार करिहौं।—पद्माकर (शब्द०)। २ सानना। उ०—लोग समझते हैं कि साला मूँगफली के तेल में ग्राटा कचर कर ठगने लगा है।—वो दुनिया०, पृ० १५५। ३ खूब खाना। चबाना।

मुहा०—कचर कचरकर खाना=खूब पेट भर खाना।

कचर पचर—संज्ञा पुं० [ग्रनु०] १ गिचपिच। २ दे० 'कचपच'।

कचरा—संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा] १ कच्चा खरबूजा। २ फूट का कच्चा फल। ककड़ी। ३ सेमल का डंडा या ढोंढ। ४ कूड़ा-खाद। कूड़ा करकट। रद्दी चीज। ५ रुई का खूद ग्रा बिनौला जो धुनने पर ग्रलग कर दिया जाता है। ६ उरद या चने की पीठी। ७ सेवार जो समुद्र में होती है। पत्थर का झाड़। जरस। जर।

कचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] १ ककड़ी की जाति की एक बेल जो खेतों में फैलती है। पेंहटा। पेहँटुल। गुरम्ही। सेंधिया।

विशेष—इसमें चार पाँच ग्रंगुल के छोटे छोटे ग्रंडाकार फल लगते हैं जो पकने पर पीले ग्रौर खटमीठे होते हैं। कच्चे फलों को लोग काटकर सुखाते हैं ग्रौर भूनकर सोंधाई या तरकारी बनाते हैं। जयपुर की कचरी खट्टी बहुत होती है ग्रौर कड़ुई कम। पच्छिम में सोंठ ग्रौर पानी में मिलाकर इसकी चटनी बनाते हैं। यह गोश्त गलाने के लिये उसमें डाली जाती है।

२ कचरी या कच्चे पेंहटे के सुखाए हुए टुकड़े। ३ सूखी कचरी की तरकारी। उ०—पापरबरी फुलौरी कचौरी। कूरबरी कचरी ग्रौ मिथौरी।—सूर० (शब्द०)। ४ काटकर सुखाए हुए फल मूल ग्रादि जो तरकारी के लिये रखे जाते हैं। उ०—कुँदरू ग्रौर ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेड़ा सौरे।—सूर (शब्द०)। ५ छिलकेदार दाल। ६ रुई का बिनौला या खूद।

कचलपट—वि० [हिं० काछ+लपट] दे० 'कछलंपट'।

कचला†—संज्ञा पुं० [सं० कच्चर=मलिन] १ गीली मिट्टी। गिलावा। २ कीचड़।

कचलू—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं। हिंदुस्तान में इसके चौदह भेद मिलते हैं जिनकी पहचान केवल पत्तियों में होती है, लकड़ियों में कुछ भेद नहीं होता। इसकी लकड़ी सफेद, चमकदार ग्रौर कड़ी होती है। प्रति घनफुट २१ सेर वजन में होती है। यह पेड़ यमुना के पूर्व में हिमालय पर्वत पर ५००० से ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। पेड़ देखने में बहुत सुंदर होता है। इसकी पत्तियाँ शिशिर में झड़ जाती हैं ग्रौर बसंत में पहले निकल ग्राती हैं। इसके तख्ते मकानों में लगते हैं ग्रौर चाय के संदूक बनाने के काम में ग्राते हैं।

कग्गद(पु)--सज्ञा पुं० [हिं० कागद] दे० 'कागद' । उ०—सुनिय राज चहुग्रान वर दीय कग्गद फिर तेह ।--पृ० रा०, ५।१०३ ।

कग्गर(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० कागद, कागर] दे० 'कागद' । उ०—समर सिंघ रावर दिसा दै कग्गर चहुग्रान ।—पृ० रा०, २६।५२ ।

कघुती —सज्ञा स्त्री० [हिं० कागज] मध्य और पूर्वी हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी । अरैली ।

विशेष—यह नेपाल, भूटान, बरमा, चीन और जापान मे बहुत अधिक होती है । नेपाली कागज इसी के डठलो से बनता है और नेपाल मे इसीलिये यह झाड़ी बहुत लगाई जाती है ।

कचगन--सज्ञा पुं० [स० कचङ्गन]मुक्त हाट । खुली बाजार । वह हाट जहाँ कोई सीमाशुल्क या कर न लागू हो [को०] ।

कचगल—सज्ञा पुं० [सं० कचङ्गल] समुद्र । सागर [को०] ।

कच[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बाल (विशेपतया सिर का) । उ०—घोर कच विरथ कीन्ह महि गिरा ।—मानस, ३।२३ । २ सूखा फोड़ा या जख्म । पपडी । ३ झुड । ४ अँगरखे का पल्ला । ५ बादल । ६ वृहस्पति का पुत्र । वि० दे० 'देवयानी' । ७ सुगधवाला । ८ कुश्ती का एक पेंच जिसमे एक आदमी दूसरे की बगल मे से हाथ ले जाकर उसके कधे पर चढाता है और गर्दन को दबाता है ।

मुहा०—कच बांधना=किसी की बगल से हाथ ले जाकर उसके कधे पर चढाना और उसकी गरदन को दबाना ।

९ मेघ । बादल (को०) ।

कच[2]—सज्ञा पुं० [अनु०] १ धँसने या चुभने का शब्द । जैसे,--उसने कच से काट लिया । कांटा कच से चुभ गया । २ कुचले जाने का शब्द ।

कच[3]--वि० [हिं० कच्चा का अल्पा० समास रूप[दे० 'कच्चा' । जैसे,—कचदिला=कच्चे दिल का । कच्ची पेंदी का । ढुलमुल । कचलहू=रक्त का पछा । लसिका । कचपेंदिया=(१) कच्ची पेंदीवाला । (२) ढुलमुल । जिसकी बात का ठिकाना न हो ।

कचका†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कचट] वह चोट जो दबने से लगे । कुचल जाने की चोट ।

क्रि० प्र० --लगना ।

कचकच--सज्ञा पुं० [अनु०] वाग्युद्ध । बकवाद । झकझक ।

क्रि० प्र० करना ।—मचाना ।—लगाना ।—होना ।

कचकचाना--क्रि० अ० [अनु० कचकच] १ कचकच शब्द करना । धँसाने या चुभाने का शब्द करना । खूब दांत धँसाना । जैसे,—उसने कचकचाकर दांत से काट लिया । २ दांत पीसना । दे० 'किचकिचाना' ।

कचकड—सज्ञा पुं० [हिं० कच्छ=कछुआ+सं० काण्ड=हड्डी] १ कछुए का खोपडा । २ कछुए या ह्वेल की हड्डी जिससे चीन जापान मे खिलौने बनते हैं । ३ सेल्युलाइड ।

कचकड़ा--सज्ञा पुं० [हिं० कचकड़] दे० 'कचकड़' ।

कचकना†—क्रि० अ० [हिं० कचक+ना (प्रत्य०)] १ कुचलना। दबना । २. ठेस लगना । ठोकर खाना ।

सयो० क्रि०—उठना ।--जाना ।

कचकाना†—क्रि० स० [हिं० कचकना] १ कच से धँसाना। भोकना । २ किसी खरी पतली चीज को हाथ से दबाकर तोडना या फोडना ।

कचकेला—सज्ञा पुं० [हिं० कठकेला] एक प्रकार का केला जिसके फल बडे बडे और खाने मे रूखे या फीके होते हैं ।

कचकोल—सज्ञा पुं० [फा० कजकोल] १ दरियाई नारियल का भिक्षापात्र जिसे फकीर लिये रहते हैं । उ०—सो कचकोल साबित तवक्कुल किया ।—दक्खिनी०, पृ० १८६ । २ कपाल । कासा ।

कचग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] केश पकडना । कामकेलि की एक क्रिया । उ०--बिथरी अलक मुकताली छवि छांडि मांग, मुख छवि अडी कला कचग्रह गेरे म ।—पजनेस०, पृ० १९ ।

कचट—सज्ञा स्त्री० [हिं० कचोट] दे० १ 'कचक' । २ चुभन । उ०—उन गीतो मे आशा, उपालभ, वेदना और स्मृतियो की कचट, ठेस और उदासी भरा रहती ।—आकाश०, पृ० १०७।

कचडा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कचरा' ।

कचदिला—वि० [हिं० कच्चा+फा० दिल+हिं० आ (प्रत्य०)] कच्चे दिल का । जो कडे जी का न हो । जिसे किसी प्रकार का कष्ट, पीडा आदि सहने का साहस न हो ।

कचनार--सज्ञा पु० [स० काञ्चनार] पतली पतली डालियो का एक छोटा पेड़ ।

विशेप—यह कई तरह का होता है और भारतवर्ष मे प्राय हर जगह मिलता है । यह लता के रूप में भी होता है । इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर दो भागो मे कटी होती हैं । यह पेड अपनी कली के लिये प्रसिद्ध है । कली की तरकारी होती है और अचार पडता है । कचनार वसत ऋतु मे फलता है । फूलो मे भीनी भीनी सुगंध रहती है। फूलो के झड जाने पर इसमे लबी लबी चिपटी फलियाँ लगती हैं । कचनार कई प्रकार के फूलवाले होते हैं । किसी मे लाल फूल लगते हैं किसी मे सफेद और किसी मे पीले । लाल फूलवाले को ही सस्कृति मे काचनार कहा जाता है । काचनार शीतल और कसैला समझा जाता है और दवा मे बहुत काम आता है। कचनार की जाति के बहुत पेड होते हैं । एक प्रकार का कचनार कुराल या कदला कहलाता है जिसकी गोद 'सेम की गोद' या 'सेमला गोद' के नाम से बिकती है । यह कतीरे के तरह की होती है और पानी मे घुलती नही । यह देहरादून की ओर से आती है और इद्रिय जुलाब तथा रज खोलने की दवा मानी जाती है । एक प्रकार का कचनार वनराज कहलाता है जिसकी छाल के रेशो की रस्सी बनती है ।

कचप —सज्ञा पुं० [सं०] १ तृण । २ शाकपत्र [को०] ।

कचपच--सज्ञा पुं० [अनु०] १. थोड़े से स्थान मे बहुत सी चीजा या

=जो बहुत तमाखू पीता हो। हुक्के की लतवाला। कक्कड़वाला =वह आदमी जो पैसे लेकर लोगों को हुक्का पिलाता फिरता हो।

कक्का¹—संज्ञा पुं० [सं० केकय] एक देश जिसे प्राचीन काल में केकय कहते थे। यह अब काश्मीर के अंतर्गत एक प्रांत है। यहाँ के रहनेवाले कक्करवाले या गक्कर कहलाते हैं।

कक्का²—संज्ञा पुं० [सं०] नगाड़ा। दुंदुभी।

कक्का†³—संज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काका'।

कक्का⁴—संज्ञा पुं० सिख जिनके यहाँ कंघे, केस कड़ा, कच्छ कड़ाह इन पंच ककारों का व्यवहार है।

कक्की¹ (पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। वि० दे० 'कठमेमल'।

कक्की²—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] दे० गाँसीदार दाग।

कक्कोल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कोल] दे० 'ककोल'।

कक्खट—वि० [सं०] कठिन। कठोर।

कक्खरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया [को०]।

कक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ काँख। बगल। २ काँछ। कछोटा। लाँग। ३ कछार। कच्छ। ४ कास। ५. जगल। ६ सूखी घास। ७ सूखा वन। ८ भूमि। ९ भीत। पाखा। १० घर। कमरा। कोठरी। ११. पाप। दोष। १२ एक रोग। काँख का फोड़ा। कखरवार। १३ दुपट्टे का वह आँचल या छोर जिसे पीठ पर डालते हैं। आँचल। १४ दर्जा। श्रेणी।

यौ०—समकक्ष=बराबरी का।

१५ तराजू का पल्ला। पलरा। पलड़ा। १६ बेल। लता। १७ पेटी। कमरबंद। पटुका। १८ अंतःपुर। रनिवास[को०]। १९. जंगल का भीतरी भाग (को०)। २ दलदली भूमि (को०)। २१. सेना का दक्षिण और वाम पार्श्व (को०)। २२ कटिबंध (को०)। २३ नौका का एक भाग (को०)। २४ ग्रह का पथ। ग्रहकक्षा (को०)। २५. गुप्त या छिपने का स्थान (को०)। २६ प्राचीर। चहारदीवारी (को०)। २७ महिष। भैंसा (को०)। २८ तारा (को०)। २९ फाटक। द्वार (को०)।

कक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ परिधि। २ ग्रह के भ्रमण करने का मार्ग। वह वर्तुलाकार मार्ग जिसमें कोई ग्रह या उपग्रह भ्रमण करता है। उ०—इस ग्रहकक्षा की हलचल री, तरल गरल की लघु लहरी।—कामायनी, पृ० ५। ३ तुलना। समता। बराबरी। ४ श्रेणी। दर्जा। ५ ड्योढ़ी। देहली। ६ काँख। ७ कखरवार। एक रोग जिसमें बगल में फोड़ा होता है। ८ किसी घर की दीवार या पाख। ९ काँछ। कछोटा। १० हाथी बाँधने की रस्सी। ११ एक तौल। रत्ती। १२ कमर। कटि (को०)। १३ पटुका। कटिबंध (को०)। १४ प्राचीर। चहारदीवारी (को०)। १५ प्रांगण। आँगन (को०)। १६ अंतःपुर (को०)। १७ आपत्ति। विरोध (को०)। १८. शकट या छकड़े का एक भाग (को०)। १९ पल्ला। पलड़ा (को०)।

कक्षापट—संज्ञा पुं०[सं०]१. कछोटा। २. कौपीन या कटिवस्त्र[को०]।

कक्षावेक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंतःपुर निरीक्षक। २ चित्रकार। ३ अभिनेता। ४ कवि। ५ राजकीय माली या उद्यानपाल। द्वारपाल। दरबान। ७ लंपट। दुराचारी। ८ प्रेमी या प्रेमिका। ९ भावा वेश। भावशक्ति [को०]।

कक्षी—संज्ञा पुं० [सं० कक्षिन्] दे० 'कच्छी'। उ०—दूराजी अरब्बी तुरक्की अ कक्षी।—पृ० रा० (उ०), पृ० १६७।

कक्षीवत—संज्ञा पुं० [सं० कक्षीवत्] दे० 'कक्षीवान्'।

कक्षीवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

कक्षोत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

कक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आँगन। २ चमड़े की रस्सी। ताँत। नाड़ी। ३. हाथी बाँधने की रस्सी। ४ महल। अंतःपुर। ५ ड्योढ़ी। ६ हौदा। अमारी। ७ घुँघची। ८ समानता। सादृश्य। ९ रत्ती। १० उद्योग। ११ अँगुली। उँगली (को०)। १२ आँचल। अंचल (को०)। १३ घेरा। प्राचीर (को०)। १४ उपरना। दुकूल (को०)।

कखवाली—संज्ञा स्त्री०[हिं० कख+वाली (प्रत्य०)] दे० 'कखराली'।

कखौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० कख+औरी (प्रत्य०)] १ दे० 'काँख'। २ बगल का फोड़ा। काँख का फोड़ा।

कगदही—संज्ञा स्त्री०[हिं०कागद+ही (प्रत्य०]१ बस्ता जिसमें कागज पत्र बँधे हों। २ कागज, किताब आदि का ढेर।

कगर¹—संज्ञा पुं० [सं० क=जल+अग्र=काग्र>कगर]१ कुछ उठा हुआ किनारा। कुछ ऊँचा किनारा। २ बाट। औंठ। बारी। ३ मेड। डाँड। ४ छत या छाजन के नीचे दीवार में रीढ़ सी उभड़ी हुई लकीर जो खूबसूरती के लिये बनाई जाती है। कारनिस। कँगनी।

कगर²—क्रि०वि०[हिं० कगार]१ किनारे पर। किनारे। २ समीप। निकट। ३ अलग। दूर। उ०—जसुमति तेरो बारो अतिहि अचगरो। दूध दही माखन लै डारि दियो नगरो। लियो दियो कछु सोऊ डारि देहु कगरो।—सूर० (शब्द०)।

कगही(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० ककइ, (पु)ककही] दे० 'कंघी'। उ०—लिये अतर कगही करन, सरस सुगंध समाज। चुटिया गुथन कारनै हिय हुलसत व्रजराज।—व्रज०, ग्र०, पृ० १४८।

कगार—संज्ञा पुं० [हिं० कगर] १ ऊँचा किनारा। २ नदी का करारा। ३. ऊँचा टीला।

कगिरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से रबड़ बनता है। वि० दे० 'रबड़—२'।

कगेडी—संज्ञा पुं०[देश०] एक पेड़ का नाम जो हिंदुस्तान में प्राय सब जगह होता है। इसकी लकड़ी इमारतों में नहीं लगती।

कगार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कगर'।

कग्ग¹(पु)—वि० [सं० काक, हिं० काग] धृष्ट। ढीठ। उ०—सकट व्यूह सजि सुभग कग्ग चामंड अग्ग करि।—पृ० रा० (उ०), पृ० ६२२।

कग्ग²(पु)—संज्ञा पुं०[सं० काक, प्रा० कग्ग]दे०'काग'। कौआ। वायस। उ०—धर कारन विक्रम कियो कग्गामिव भक्खन।—पृ० रा०, १८।३२।

ककवा†—संज्ञा पुं० [हिं० ककई का पुं०] दे० 'कघा'।

ककसा†—संज्ञा स्त्री० [सं० कक्षा, प्रा० कक्खा] काँख।

ककसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कश, प्रा० कक्कसा] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिंधु आदि नदियों में होती है। इसका मांस रूखा होता है।

ककहरा—संज्ञा स्त्री० [क+क+ह+रा (प्रत्य०)] क से ड़ तक वर्णमाला। वरतनिया।

विशेष—बालकों को पढ़ाने के लिये एक प्रकार की कविता होती है जिसके प्रत्येक चरण आदि में प्रत्येक वर्ण क्रम से आता है। ऐसी कविताओं में प्रत्येक वर्ण दो बार रखा जाता है, जैसे—क का कमल किरन में पावै। ख खा चाहै खोरि मनावै।—कबीर (शब्द०)।

ककहा—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कती, प्रा० ककइ, ⓤ †ककही का पुं०] दे० 'कघा'।

ककही¹†—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० ककई] १ एक प्रकार की कपास जिसकी रुई कुछ लाल होती है। २ चौवगला।

ककही²†—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कघी'।

कका ⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काका'।

ककाटिका—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के पीछे का भाग [को०]।

ककार—संज्ञा पुं० [सं०] व्यंजन का प्रथम वर्ण। 'क' अक्षर या उसकी ध्वनि।

ककी—संज्ञा पुं० [सं० काकी] मादा 'कौआ'। उ०—कक ककी भृत पील कुरंग। अवर चर सर छेदे अंग।—रा० रू०, पृ० ६७।

ककुजल—संज्ञा पुं० [ककुञ्जल] चातक पक्षी [को०]।

ककुदर—संज्ञा पुं० [सं० ककुन्दर] जघनकूप [को०]।

ककुत्स्थ—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा।

विशेष—पुराणानुसार एक समय देवताओं और राक्षसों में युद्ध हुआ था। देवताओं ने उस समय अयोध्या के राजा से सहायता माँगी। राजा की सवारी के लिये इंद्र बैल बनकर आया। राजा ने उस बैल की पीठ पर चढ़कर लड़ाई में जा असुरों को परास्त किया। तबसे उसका नाम ककुत्स्थ पड़ गया। वाल्मीकीय रामायण में ककुत्स्थ को भगीरथ का पुत्र लिखा है, पर कहीं उसे इक्ष्वाकु का पुत्र और कहीं सोमदत्त का पुत्र भी लिखा है।

ककुद्¹—वि० [सं०] प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

ककुद्²—संज्ञा पुं० १ बैल के कंधे का कूबड़। डिल्ला। २ राजचिह्न। उ०—ककुद साधु के अंग।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ११६।

ककुद¹—वि० दे० 'ककुद' [को०]।

ककुद²—संज्ञा पुं० [सं०] दे० ककुद' [को०]।

ककुद्मान्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैल। २. पर्वत। ३ ऋषभ नाम की एक ओषधि।

ककुद्मी¹—वि० [सं० ककुद्मिन्] चोटीवाला। डिल्लेवाला [को०]।

ककुद्मी²—संज्ञा पुं० १ डिल्लयुक्त बैल। २ विष्णु। ३ रैवतक नामक राजा की पुत्री जो बलराम को ब्याही थी [को०]।

ककुप्, ककुभ्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दिशा। २ शोभा। सौंदर्य। ३ चंपक की माला। ४ शास्त्र। ५ एक रागिनी। ६ आकाश का चतुर्थांश। ७ श्वास। ८ अनलंकृत केश या पूँछ, जैसे लटकते हुए बाल [को०]।

ककुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्जुन का पेड़। २ वीणा का एक अंग। वीणा के ऊपर का वह अंग जो मुड़ा रहता है। प्रसेवक।

विशेष—कोई कोई नीचे के तूँबे को भी ककुभ कहते हैं।

३ एक राग। ४ एक छंद जो तीन पदों का होता है। इसके पहले पद में ८, दूसरे में ९ और तीसरे में १८ वर्ण होते हैं। ५ दिशा। ६ कुटज फूल (को०)। ७ दैत्यों के एक राजा का नाम [को०]।

ककुभविलावल—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ + बिलावल] एक मिश्रित राग।

ककुभा—संज्ञा पुं० [सं०] १ दिशा। २. दक्ष की एक पुत्री जो धर्म की पत्नी थी। ३ मालकोस राग की पाँचवी रागिनी जो संपूर्ण जाति की है। इसे दिन के दूसरे पहर में गाना चाहिए।

ककुम्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके तीन चरणों में पाँच पाँच और एक में छह वर्ण होते हैं।

ककुल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० काबा'। उ०—ककुल बबुन मिव देखिए रे, वीरँनु, कहूँ न दिखांइ, राजा आतई रे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३३।

ककून—संज्ञा पुं० [अ० ककूल] रेशम के कीड़े द्वारा निर्मित कावा।

ककेड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कटक, ककटक] एक बेल जिसके फल साँप के आकार के होते हैं और तरकारी के काम में आते हैं। चिचड़ा।

ककेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] उदर में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा। उदरकृमि।—माधव०, पृ० ७१।

ककैया†—वि० [हिं० ककही] कघी के आकार की (ईंट)।

विशेष—यह शब्द ईंट के एक भेद के लिये प्रयुक्त होता है जो बहुत छोटी होती है और जिसे लखावरी या लखौरी भी कहते हैं।

ककोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] खेखसा। ककरौल। उ०—कुँदरू और ककोडा कोरे। कचरी चार चचेंडा सौरे।—सूर० (शब्द०)।

ककोणि—संज्ञा पुं० [सं० कोकमद, > प्रा० कोकणअ > (वर्णविपर्यय) ककोणय, < ककोणई = लाल अथवा देश०] रक्त। खून। उ०—श्रोणित रक्त ककोणि पुनि रुधिर असृक क्षतजात।—नंद ग्रं०, पृ० ९२।

ककोरना†—क्रि० स० [हिं० कोड़ना] खरोंचना। खुरचना। खुरेदना।

ककोरा ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० ककोड़ा] दे० 'ककोड़ा'।—सूर० (राधा०), पृ० ४२०।

कक्कड़—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] १ सूखी या सेंकी हुई सुरती का भुराभुरा चूर जिसमें पीनेवाला तमाखू मिला रहता है। इसे छोटी चिलम पर रखकर पीते हैं। २ दे० 'काकड़'।

यौ०—कक्कड़खाना = (१) जहाँ कई आदमी बैठकर हुक्का पीते हों। (२) चडूखाना। भटियारखाना। बुरी जगह। कक्कड़बाज

पर मल्लिका गुविंद कैधौं चंद माफ बुध कुरविंद रूप चेरो री। —पजनेस०, पृ० २३।

कइलासवासी—संज्ञा पुं०[सं० कैलास+वासिन्] १ कैलास मे रहने वाले। शंकर। उ०—कइलासवासी उमा करति खवासी दासी मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३२।

कइसे(पु)†—क्रि० वि० [हिं० कैसे] दे० 'कैसे'। उ०—कइसेहु विरह न छाडइ, भा ससि गहन गिरास।—पदमावत, पृ० ११०।

कई¹—वि० [सं० कति, प्रा० कइ] एक से अधिक। अनेक। जैसे,—कई बार। कई आदमी।

यौ०—कई एक=अनेक। बहुत से। कई बार=कितने बार। कइ दफा।

कई²—वि० [सं० कृत, (पु)किम्र, (पु)क्यि] की हुई। उ०—अपराध छमिवो वोल पठए बहुत हौं ढीठचो कई।—मानस, १।३२६।

कई³—क्रि० स० [हिं० कहना का भूत कृ०, ‡ कैना (खड़ी)] कही। उ०—जा री जा सखि भवन आपुने लाख बात की एकु कई री।—नंद ग्रं०, पृ० ३६७।

कई(पु)⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० काई] दे० 'काई'। उ०—सरिता सजम स्वच्छ सलिल सब, फाटी काम कई।—सूर०, १०।३३८२।

कउ(पु)—प्रत्य० [हिं०] का। को। की। उ०—राजमती कउ रचउ वीवाहो।—बी० रा०, पृ० १५।

कउड़ा—वि०[हिं० कड़ुवा] दे० 'कडुवा'। उ०—चरण तृण भिमवरण वसिग्रा कउड़ा मीठा खाय।—प्राण०, २८३।

कउडि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कौड़ी] दे० कौडी'। उ०—कउडि पठओले पावनहि घोर।—विद्यापति, पृ० ५६।

कउण(पु)—सर्व० [हिं० कौन] कौन। उ०—कउण सुआवै कउण सुजाय।—प्राण०, पृ० ७७।

कउतुक(पु)—संज्ञा पुं०[सं० कौतुक]दे० 'कौतुक'। उ०—मन विद्यापति कामे रमनि रति, कउतुक बुझ रसमंत।—विद्यापति, पृ० ३८।

कउल¹(पु)—संज्ञा पु० [सं० कमल, (पु)कँवल, (पु)क्वल] दे० 'कौन'। कमल। उ०—घरहर वरपे सर भरे, सहज ऊपजे कउलु।—प्राण०, पृ० ६६।

कउल²—संज्ञा पुं० [अ० कौल] दे० 'कौल—२'। उ०—जनमत मरत अनेक प्रकार वसित कउल पुनि वार वार।—मीखा० श०, पृ० ८२।

कउलति(पु)—संज्ञा पु०[अ० क्वूलियत]अगीकार। स्वीकार। उ०—कउलति कए हरि आनल नेह।—विद्यापति, पृ० ४०४।

कउवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० कौवा] दे० 'कौवा'। उ०—आँखि निर्माणी क्या करइ कउवा लवइ निलज्ज।—ढोला०, दू० ५२०।

ककदा—संज्ञा पुं० [सं० ककन्द] सोना [को०]।

ककई—सज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कुती, प्रा० कंकइ] दे० 'कघी'।

ककड़ासीगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काकड़ासींगी] दे० 'काकड़ासीगी'।

ककडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटी, प्रा० कक्कटी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक वेल जिसमें लंबे लवे फल लगते हैं।

विशेष—यह फागुन चैत में वोई जाती है और वैसाख जेठ में फलती है। फल लवा और पतला होता है। इसका फल कच्चा तो बहुत खाया जाता है, पर तरकारी के काम में भी आता है। लखनऊ की ककडियाँ वहुत नरम, पतली और मीठी होती हैं।

२ ज्वार या मक्के के खेत मे फैलनेवाली एक वेल जिसमे लवे लवे और वडे फल लगते हैं।

विशेष—ये फल भादो मे पककर आपसे आप फूट जाते हैं, इसी से 'फूट' कहलाते हैं। ये खरबूजे ही की तरह होते हैं, पर स्वाद मे फीके होते हैं। मीठा मिलाने से इनका स्वाद बन जाता है।

मुहा०—ककड़ी के चोर को कटारी से मारना=छोटे अपराध या दोप पर कडा दड देना। निष्ठुरता करना। ककड़ी खीरा करना=तुच्छ समझना। तुच्छ वनाना। कुछ कदर न करना। जैसे,—तुमने हमारे माल को ककडी खीरा कर दिया।

ककना†—सज्ञा पु० [सं० कङ्कण] दे० 'कगन'। उ०—नेह विगरही दोहरी सजनी, ककना अकिल के द्वार हो।—कबीर श०, पृ० १३४।

ककनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कँगनी] १ दे० 'कँगनी'। २ गोल चक्कर जिसके वाहरी किनारे पर दाँत या नुकीले कँगूरे हो। ददानेदार चक्कर। ३ कँगनी के आकार की एक मिठाई।

ककनू(पु)—सज्ञा पुं० [अ० क़कनूस] एक पक्षी। उ०—ककनू पंखि जैस सर साजा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५८।

विशेष—इसके संबध मे प्रसिद्ध है कि यह बहुत मधुर गाता है और अपने गान से ही उत्पन्न अग्नि मे जल जाता है।

ककमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० काक=कौवा+मारना] एक प्रकार की बडी लता, जो अवध, बगाल और दक्षिण भारत में होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चार से आठ इच तक लंबी होती हैं। फूल नीलापन लिए पीले रग के और बहुत सुगधित होते हैं। इसमे छोटे छोटे तीक्ष्ण फल लगते हैं जो मछलियो और कौवो के लिये मादक होते हैं। विलायत में जौ की शराब मे इसका मेल दिया जाता है।

ककर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी। वाज [को०]।

ककराली—सज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष, पा० कक्ख हिं० काँख+वाली (प्रत्य०)] काँख का एक फोडा। वह गिल्टी जो वगल मे निकलती है। कहराली। कखवाली। कँखौरी।

ककरासीगी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० काकड़ासींगी] दे० 'काकडासीगी'।

ककरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ककड़ी] दे० 'ककडी' उ०—ककरी कचरी अरु कचनारयो। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयो। —सूर० (राधा०), पृ० ४२०।

ककरेजा—सज्ञा पुं० [हिं० काकरेजा] दे० 'काकरेजा'।

ककरेजी—संज्ञा पुं० [हिं० ककरेजी] दे० 'काकरेजी'।

ककरौल—सज्ञा पुं० [सं० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] ककोड़ा। खेखसा।

ढोलह करइ कंत्राइयउ, आयउ पूगल पासि।—ढोला०, दू० ५२२।

कँमलणी(पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० कमलिनी, प्रा० कमलिणी] दे० 'कमलिनी'। उ०—घँण कँमलाणी, कमलणी सूरिज ऊगइ आइ।—ढोला०, दू० १३०।

कँमलाणी(पु)—क्रि० अ० [स० कु+म्लान, प्रा० कुमण]कुम्हलाना। मुरझा जाना। उ०—(क) घँण कँमलाणी, कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ।– ढोला०, दू० १२६। (ख) काटत बेलि कूप ले मेल्ही, सीचताडी कँमलाणी।—कबीर ग्र ०, पृ० १८२।

कँरवुए—सज्ञा पुं० [स० कलम्वक,(पु)|करँवुआ, करेमुआ]दे० 'करेमू'। उ०—निकले कमल सरो मे और कँरवुए लहरे।—अपरा०, पृ० १९४।

कँलगी(पु)—सज्ञा स्त्री० [फा० कँलगी] दे० 'कलगी'। उ० -कँलगी औ नवरतन पन्हावा। ताह सचिव कँ कोरि चढावा।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २७२।

कँवरि—सज्ञा स्त्री० [स० कुमारी,(पु)|कुँअरि] दे० 'कुमारी'। उ०— चद्रकला देवलि कँवरि, पारसि महिमा साह।—हम्मीर रा० पृ० ११६।

कँवरी|—सज्ञा स्त्री० [हिं० कोर ?] तमोलियो की भाषा मे पचास पान की एक गड्डी। (चार कवरी की एक ढोली होती है।)

कँवल—सज्ञा पु० [सं० कमल,(पु)|कवल, केवल] दे० 'कमल'।

कँवलककडी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कँवल+ककड़ी] कमल की जड। भसींड। मुरार।

कँवलगट्टा—सज्ञापुं०[स०कमला+ग्रन्थि>हिं०गट्टा]कमल का बीज।

कँवलवाव—सज्ञा पु० [हिं० फमल+वायु] दे० 'कमलवायु'।

कँवला—सज्ञा पुं० [स० कमल] दे० 'कमल—१'। उ०—पदुमावति कँवला ससि जोती।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८५।

कँवारी—वि० [सं० कुमारी] कुँआरी। क्वारी। उ०—वह भी तो दुलहन बनेगी कभी और खुल जायेंगी मेढियाँ, उसकी कच्ची कँवारी सभी मेढ़ियाँ।—वदनवार, पृ०, ५१।

कँवासा—सज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कँवासी] लडकी के लडके का लड़का। नाती का लडका।

कँसुला—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा] [स्त्री० अल्पा० कँसुली] काँसे का एक चौखूँटा टुकडा जिसके पहलो मे गोल गड्ढे होते हैं। इस पर सोनार घुँघरू आदि के बोरो की खोरिया बनाते हैं। पाँसा। किरकिरा।

कँसुली—सज्ञा स्त्री० [हिं० कँसुला का स्त्री०] दे० 'कँसुला'।

कँसुवा—सज्ञा पुं० [हिं० कांस] एक कीडा जो ईख के नए पौधो को नष्ट करता है।

कँसेरा—सज्ञा पुं० [हिं० कांसा+एरा (प्रत्य०)] दे० 'कसेरा'। उ०—हाट करे भो प्रयम प्रवेश, अष्टधातु घटना पञ्जारे, कँसेरी पसराँ कांस्य कञ्जारा।—कीर्ति०, पृ० २८।

कँहार|—सज्ञा पुं० [स० कर्मधार>कम्महार>कँहार हिं० कहार] दे० 'कहार'। उ०—चपल पालकी के कँहार सरवान महाउत। प्रेमघन०, पृ०१२।

क¹—सज्ञा पुं० [स०]१. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३ कामदेव। ४ सूर्य। ५ प्रकाश। ६ प्रजापति। ७ दक्ष। ८ अग्नि। ९. वायु। १० राजा। ११ यम। १२ आत्मा। १३. मन। १४ शरीर। १५ काल। समय। १६ धन। १७ मयूर। १८ शब्द। १९ ग्रंथि। गाँठ। २० जल। उ०—ति न नगर न नागरी, प्रतिपद हस क हानि।—केशव (शब्द०)।

यौ०—कज=कमल। कद=बादल।

२१ गरुड (को०)। २२ आनद। सुख (को०)। २३ मस्तक (को०)। २४ सुवर्ण (को०)। २५ पक्षी (को०)। २६ केश। बाल (को०)। २७ केशगुच्छ (को०)। २८ स्त्री का करण या क्रिया (को०)। २९ दुग्ध। दूध (को०)। ३० कृपणता। (को०)। ३१ विष (को०)। भय (को०)।

क²(पु)|—वि० [हिं०] १ का। उ०—सुवा क बेल पवन होइ लागा।—जायसी ग्र ० (गुप्त), पृ० २३९। २ को। उ०—राम निकाई रावरी, है सबही को नीक। जो यह साची है सदा, तौ नीको तुलसीक।—मानस, १।२९।

क³(पु)—अव्य० [फा० कि] की। या। अथवा। उ०—कागल नहीं क मस नही, नही क लेखणहार।—ढो ०, दू० १४०।

कइ¹(पु)—प्रत्य० [हिं० की] १ की उ०—शोभा दशरथ भवन कइ, को कवि बरनै पार।—मानस, १।२९७। २ को। के लिये। उ०—तोहि सम हित न मोर ससारा। बहे जात कइ भइसि अधारा।—मानस, २।२३।

कइ²(पु)—वि०[स० कति, प्रा० कइ] १ कितनी। उ०—जनम लाभ कई अवधि अघाई।—मानस०, २।५२।

कइ³(पु)—क्रि० वि० [सं० कदा, प्रा० कया, (पु)|कद] कब। उ० –कइ परणे रुपमणी किमान।—वेलि०, पृ० १९८।

कइ(पु)⁴—अव्य० [फा० कि] या। अथवा। उ०—जइ तूँ ढोला नावियउ कइ फागुन कइ चेत्रि।—ढोला०, दू० १४६।

कइक(पु)—वि० [हिं० कई+एक] अनेक। कई। उ०—राम दिन कइक ता ठौर अवरो रहे, आइ वल्वल तहाँ दई देखाई।—सूर० (राधा०), पृ० ५८५।

कइकाँण(पु)—सज्ञा स्त्री०[देश०] केकाण। घोडा। उ०—एही भली न करहला, करहलिया कइकाँण।—ढोला०, दू० ६२७।

कइकुल(पु)—सज्ञा पुं० [स० कवि+कुल] कविसमूह। कविवर्ग। उ०—अक्खर रस बुज्झनिहार नहि कइकुल भिक्खारि भउँ।—कीर्ति०, पृ० १८।

कइत¹|—सज्ञा स्त्री० [हिं० कित] ओर। तरफ।

कइत²|—सज्ञा पुं० [स० कपित्थ प्रा० कइत्थ] कैथ। कैथा।

कइथिन(पु)|—सज्ञा स्त्री० [हिं० कायथ का स्त्री०] दे० 'कायथ'। उ०—कइथिनि चली समाहि न आँगा।—पदमावत, पृ० ८४।

कइनां—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्चिका] बाँस की टहनी या शाखा।

कइर(पु)—सज्ञा पु० [स० कवर] दे० 'करील'। उ०—कइ कइराँ ही पारणउ, अइ दिन यूँ ही टाल।—ढोला०, दू० ४३०।

कइलास—सज्ञा पुं०[स० कैलास] दे० 'कैलास'। उ०—समु कइलास

कँटोर—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कंठीरव'। उ०—संग मिलियौ जोधौ सिवो, कजइण नवो कँटोर।—रा० रू०, पृ० ५२८।

कँटीला—वि० [हिं० काँट+ईला] (प्रत्य०)] [स्त्री० कँटीली] काँटेदार। जिसमे काँटे हो। उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई से बीत वहार। अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार।—बिहारी (शब्द०)।

कँटेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारि] भटकटैया।

कँटेला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ+केला] एक प्रकार का केला जिसके फल बडे और रूखे होते हैं। यह हिंदुस्तान के सभी प्रांतो मे होता है। कटकेला। कठकेला।

कँठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] दे० 'कंठ'। उ०—जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागी। चंदा जैस स्याम कँठ लागी।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३३५।

कँठला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कंठ+ला (प्रत्य०)] गले मे पहनने का बच्चो का एक गहना। उ०—मणि गन कँठला कंठ, मंद्धि केहरि नख सोहत।—पृ० रा०, १।७१७।

कँठहरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कठहार का अल्पा० रूप] कंठी। उ०—सूर सगुन बाँटि गोकुल मे अब निर्गुन को ओपतो। ताकी छार छार कँठहरिया जो ब्रज जातो दूसरो।—सूर (शब्द०)।

कँठीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कठीर'। उ०—मनो मदमत्त कँठीर गुंजार।—पृ० रा०, २।२२८।

कँडरा—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] मूली, सरसों आदि के बीच का मोटा डठल जिसमे फूल निकलते है। इसका लोग साग बनाते और अचार डालते हैं।

कँडहार(पु)†—संज्ञा पुं०[सं० कर्णधार]१ केवट। नाविक। माँझी। कर्णधार। उ०—(क) जा कहँ अइस होहिं कँडहारा।—जायसी ग्रं०(गुप्त०),पृ० १३२। (ख) बहुत पार नहिं कोउ कँडहारू।—मानस १।२६०।

कँडिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कडिया'। उ०—कँडिया बिच घाल्यो कमध।—नट०, पृ० १।२७२।

कँडिहारा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] दे० 'कँडहार'। उ०—सतगुरु भव तारण कँडिहारा।—कबीर सा०, पृ० ४३०।

कँडुवा—संज्ञा पुं० [हिं० काँदो या सं० कण्डु] बालवाले अन्नो का एक रोग। इसमें बाल पर काली काली एक चिकनी वस्तु जम जाती है जिससे उसके दाने मारे जाते हैं। यह रोग गेहूँ, ज्वार बाजरे आदि की बालो मे होता है। कजुवा। भीटी।

क्रि० प्र०—लगना। मारना।

कँडेरा—संज्ञा पुं० [सं० कड+हिं० एरा] [स्त्री० कँडेरिन] एक जाति जो पहले तीर कमाने बनाती थी और अब रुई धुनती है। धुनिया।

कँणयर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार, हिं० कनेर] कनेर। उ०—घण कँणयर री कब ज्यउँ, सूकी तोड सुरत्त।—ढोला०, दू० १३५।

कँदराना†—क्रि० अ० [सं० कर्दम] मैलयुक्त हो जाना।

कँदरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्दम] १ गीली मिट्टी। २. कूटी ईंटो या सुर्खी।

कँदारा—संज्ञा पुं० [प्रा० कडि+सं० धार] कमर पर पहननेवाला एक तागा। करधनी। करगता।

कँदु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कन्दुक] दे० 'कंदुक'।

कँदुआ—संज्ञा पुं० [हिं० काँदो] बालवाले अन्नो का एक रोग जिससे बाल पर काली भुकड़ी जम जाती है और दाना नही पडता। कडोर।

कँदूरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दूरी] कुँदरू। बिंवा।

कँदूरी²—संज्ञा पुं० [फा०] वह खाना जिसे मुसलमान बीबी फातमा या किसी पीर के नाम का फातिहा करते हैं।

कँदेलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] कम दूध देनेवाली भैंस।

कँदैला—वि० [हिं० काँदो, पू० हिं० कँदई+ऐला (प्रत्य०)] मलिन। गँदला। मलयुक्त। उ०—जनम कोटि को कँदैलो हृद हृदय थिरातो।—तुलसी (शब्द०)।

कँधाई†—संज्ञा पुं०[हिं० कन्हाई] दे० 'कन्हाई'। उ०—मोहि नद के कँधाई बोल भाई रे हरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१०।

कँधावर—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंधा+आवर (=आवरण) (प्रत्य०)] १. वह चद्दर या दुपट्टा जो कधे पर डाला जाता है।

मुहा०—कँधावर डालना=किसी पट या दुपट्टे को जनेऊ की तरह कधे पर डालना।

विशेष—विवाह आदि मे कपडे पहनाकर ऊपर से एक दुपट्टा ऐसा डालते हैं कि इसका एक पल्ला बाएँ कंधे पर रहता है और दूसरा छोर पीछे होकर दाहिने हाथ की बगल से होता हुआ फिर बाएँ कधे पर आ पडता है। इसे कँधावर कहते हैं।

२. जूए का वह भाग जो बैल के कधे के ऊपर रहता है। ३ हुडुक या ताशे की वह रस्सी जिससे उसे गले मे लटकाकर बजाते हैं।

कँधेली—संज्ञा स्त्री०[हिं० कंधा+एली (प्रत्य०)]१. घोडागाडी का एक साज जिसे घोडे को जोतते समय उसके गले मे डालते हैं। इसके नीचे कोई मुलायम या गुलगुली चीज टँकी रहती है जिसमे घोडे के कधे मे रगड नहीं लगती है। २ घोड़े या बैल को पीठ पर रखने का सुँडका या गद्दी। यह चारजामे या पलान के नीचे इसलिये रखी जाती है कि उनकी पीठ पर रगड न लगे।

कँधैया—संज्ञा पुं०[सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, हिं० कान्ह, कन्हैया] १. दे० 'कन्हैया'। उ०—हय दाबि कन्हैया, सुमिरि कँधैया, सुगज कँधैया पर पहुँची।—हिम्मत०, छ० २०६।

कँधैया(पु)—संज्ञा पुं०[सं० स्कन्ध, प्रा० कन्ध, हिं० कध+ऐया(प्रत्य०) दे० 'कधा'।

कँपकँपी—संज्ञा स्त्री०[हिं० काँपना] थरथराहट। काँपना। संचलन।

कँपना—क्रि० अ० [सं० कम्पन] १ हिलना। डोलना। सचलित होना। काँपना। २ भयभीत होना। डरना।

कँवाना(पु)—क्रि० स० [सं० कम्ब से नाम०] छडी से मारना। उ०—

खाते हैं। कँगनी के पुराने चावल रोगी को पथ्य की तरह दिए जाते हैं।

पर्या०—काकन। ककुनी। प्रियगु। कगु। टाँगुन। टँगुनी।

कँगनीदुमा¹—वि० [हिं० कँगनी + फा० दुम] जिसकी दुम मे गाँठें हों। गठीली पूँछवाला।

कँगनीदुमा²—सज्ञा पुं० वह हाथी जिसकी दुम मे गाँठें हों। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

कँगल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कग'।—डिं०।

कँगला—वि० [स० कङ्काल] [स्त्री० कगली] दे० 'कँगाल'।

कँगसी—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कुनी = कँगही] पजा गठना। कस्कन। कैंची।

क्रि० प्र०—बाँधना। गठना।

यौ०—कगसी की उडान = मालखम मे एक प्रकार की सादी पकड जिसमे दोनो हाथो से कँगसी बाँधकर या पंजा गठकर उडना पडता है।

कँगही(पु)†—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कघी'। उ०—कँगही के देत प्यारी कसकत मसकत, पुनकि ललकि तन स्वेद बरसत है।—व्रज०, ग्र० पृ० १५८।

कँगारू—सज्ञा पु० [अ०] एक जतु।

विशेष—यह ग्रास्ट्रेलिया, न्यूगिनी ग्रादि टापुग्रो मे होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। बडी जाति का कँगारू ६-७ फुट लबा होता है। मादा नर से छोटी होती है ग्रौर उनकी नाभि के पास एक थैली होती है। जिसमे वह कभी कभी ग्रपने बच्चो को छिपाए रहती है। कँगारू की पिछली टाँगें लम्बी ग्रौर ग्रगली बिलकुल छोटी ग्रौर निकम्मी होती हैं। इसकी पूँछ लबी ग्रौर मोटी होती है। पैरो मे पजे होते हैं। गर्दन पतली कान लबे ग्रौर मुँह खरगोश की तरह होता है। यह खाकी रग का होता है, पर ग्रगला हिस्सा कुछ स्याही लिए हुए ग्रौर पिछला पीलापन लिए होता है। इसका ग्रागे का धड पतला ग्रौर निबल ग्रौर पीछे का मोटा ग्रौर दृढ होता है। यह १५ से २० फुट तक की लबी छलाँग मारता है ग्रौर बहुत डरपोक होता है। ग्रास्ट्रेलियावाले इसका शिकार करते हैं।

कँगुरिया†—सज्ञा स्त्री० [हिं० कँगुरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'कनगुरिया'।

कँगुरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] कानी ग्रगुली।

कँगूरा—सज्ञा पु० [फा० कुँगूरह] [वि० कँगूरेदार] १ शिखर। चोटी। उ०—कौतुकी कपीश कूदि कनक कँगूरा चढि रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।—तुलसी (शब्द०)। २ कोट या किले की दीवार मे थोड़ी थोडी दूर पर बने हुए स्थान जिसका सिरा दीवार से कुछ ऊँचा निकला होता है। ग्रौर जहाँ से छिपे सिपाही निशाना लगाते हैं। बुर्ज। उ०—कोट कँगूरन चढि गए कोटि कोटि रणधीर।—तुलसी (शब्द०)। ३ मदिर ग्रादि का ऊपरी कलश ग्रादि। ४ कँगूरे के ग्राकार का छोटा रवा। ५ नथ के चदक ग्रादि पर का वह उभाड जो छोटे छोटे रवो को शिखराकार रखकर बनाया जाता है।

कँगूरेदार—वि० [हिं० कँगूरा + फा० दार] जिसमे कँगूरे हों। कँगूरेवाला।

कँगोई(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कँगही'। उ०—कबी कपडे कँगोई जो धोने वाल। हया माने हो कँगोई को देवे डाल।—दक्खिनी०, पृ० २७१।

कँघेरा—सज्ञा पुं० [हिं० कघा + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कँघेरिन] कघा बनानेवाला। ककहगर।

कँचुग्रा—वि० [हिं० कच्चा] दे० 'कच्चा १'। उ०—तितु लागे कँचुग्रा फल मोती।—कबीर ग्र०, पृ० ४०५।

कँचुली†—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्चुली] केंचुल।

कँचुवा†—सज्ञा पुं० [स० कञ्चुक, प्रा० कचुग्र] १. कुर्ता। २ चोली।

कँचेरा—सज्ञा पुं० [स० काँच + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कँचेरिन] काँच का काम करनेवाला। एक जाति जो काँच बनाती है ग्रौर उसका काम करती है। इस जाति के लोग प्राय मुसलमान होते हैं पर कहीं कहीं हिंदू भी मिलते हैं।

कँचेली—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्चुक या देश०] एक वृक्ष का नाम।

विशेष—यह हजारा, शिमला ग्रौर जौसार मे होता है। वृक्ष मियाना कद का होता है। लकडी सफेद रग की ग्रौर मजबूत होती है, मकान मे लगती है तथा खेत के ग्रौजार बनाने के काम ग्राती है। पत्ते चौपायो को खिलाए जाते हैं। बरसात मे इसके बीज बोए जाते हैं।

कँचोरा(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कचोरा'।—वर्ण०, ११।

कँजिग्राना—क्रि० ग्र० [हिं० कडा] ग्रगारे का ठढा पडना। झँवाना। मुरझाना।

कँजुवा—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'कँडवा'।

कँटबाँस—सज्ञा पुं०[स० कण्टक + वश हिं० काँट + बाँस] एक प्रकार का बाँस जिसमे बहुत काँटे होते हैं ग्रौर जो पोला कम होता है। इसकी लाठी ग्रच्छी होती है।

कँटाय—सज्ञा स्त्री० [स० कन्टाक] एक प्रकार का कँटीला पेड।

विशेष—इसकी लकडी के यज्ञपात्र बनते हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी ग्रौर फल बेर के समान गोल होते हैं, जो दवा के काम ग्राते हैं।

कँटाल—सज्ञा पुं० [हिं० काँट + ग्राल (प्रत्य०)] दे० 'कटारा'। ऊँटकटारा। उ०—करहा नीरूँ जउ चरइ, कटालउ नइ फोग।—ढोला०, दू० ४२८।

कँटिया—सज्ञा स्त्री०[स० कण्टकी, कण्टकिका, हिं० काँटी] १ काँटी। छोटी कील। २ मछली मारने की पतली नोकदार ग्रँकुसी। ३ ग्रँकुसियों का गुच्छा जिससे कुएँ मे गिरी हुई चीजें गगरा, रस्सा ग्रादि निकालते हैं। ४ किसी प्रकार का ग्रँकुसा जिससे वस्तु फँसाई या उलझाई जाय। ५. एक प्रकार का गहना जो सिर पर पहना जाता है। ६ इमली की वे छोटी फलियाँ जिनमे बीज न पडे हों। कतुली।

कँटियारी—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्टकारी] भटकटैया।

विशेष—यह गांधार के पास था। यहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। २. तांत्रिक लोगों के मत से खंभा का नाम। ३ शंख (को०)। ४ हाथी (को०)।

कंभारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्भारी] गंभारी का पेड़।

कंभु—संज्ञा पुं० [सं० कम्भु] खस। उशीर (को०)।

कंमाल—संज्ञा पुं० [सं० कं+माल] मुंडमाल। उ०—किलकार काली किलकिलै, कंमाल धारक बिलकुलै।—रघु० रू० पृ० २२३।

कंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. कांसा। २. प्याला। छोटा गिलास या कटोरा। ३. सुराही। ४. मँजीरा। झाँझ। ५ कांसे का बना हुआ बर्तन या चीज। ६ मथुरा के राजा उग्रसेन का लड़का जो श्रीकृष्ण का मामा था और जिसको श्रीकृष्ण ने मारा था।

यौ०—कंसजित्, कंसनिषूदन=कृष्ण।

कंसक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कसीस। २ कांसे का बना पात्र।

कंसताल—संज्ञा पुं० [सं०] झाँझ। उ०—कंसताल कठताल बजावत शृंग मधुर मुँहचंग।—सूर (शब्द०)।

कंसपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कांसे का बर्तन। उ०—कंसपात्र को होइ पुनि, सदन मध्य आभास।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १८०। २ एक नाप जिसे आढक भी कहते थे। यह चार सेर की होती थी।

कंसमथन—संज्ञा पुं० [सं०] कंसहंता। श्रीकृष्ण। उ०—जामैं पुनि-पुनि अवतरै, कंसमथन प्रभु अंस।—भूषण ग्रं०, पृ० २।

कंसरटिना—संज्ञा पुं० [अं०] संदूक के आकार का एक अंगरेजी बाजा जिसमें भाथी होती है। और जो दोनों हाथों से खींच खींच कर बजाया जाता है।

कंसरवेटिव—वि० [अं० कंजर्वेटिव] १ परंपरा से प्रचलित रीति के अनुसार ही कार्य करनेवाला और उसमें सहसा परिवर्तन का विरोधी। पुरानी लकीर का फकीर। उ०—राजा साहिब यदि कंसर्वेटिव थे तो बाबू साहिब लिबरल।—प्रेमघन०, पृ० ४११। २ इंगलैंड के पार्लमेंट में वह राजनीतिक दल जो निर्धारित राज्यप्रणाली में कोई परिवर्तन या प्रजातंत्र के सिद्धांतों का प्रसार नहीं चाहता।

कंसर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १ कई एक बाजों का एक साथ मिलकर बजना या कई एक गवैयों का स्वर मिलाकर गानाबजाना। २. भिन्न भिन्न प्रकार के बजते हुए बाजों का समूह। ३. कई गानेवालों या बजानेवालों के स्वर का मेल।

कंसर्टीना—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'कंसरटिना'।

कंसासुर—संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा का कंस नामक राजा जो असुर कहा जाता था। उ०—वही धनुष रावन संवारा। वही धनुष कंसासुर मारा।—जायसी (शब्द०)।

कँउधा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक। उ०—मनि कुंडल चमकहिं अति लोने। जनि कउधा लउकहिं दुहुँ कोने।—जायसी (शब्द०)।

कँकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक नदी का नाम।

विशेष—यह नैपाल की पूर्वी सीमा है और यह सिक्किम से नैपाल को अलग करती है।

कँकड़ीला—वि० [हिं० कंकड़+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० कँकड़ीली] कंकड़ मिला हुआ। जिसमें कंकड़ हों। जैसे,—कँकड़ीली जमीन, कँकड़ीला घाट।

कँकरीला—वि० [हिं० कंकड़] [स्त्री० कँकड़ीली] कंकड़ मिला। हुआ। जिसमें कंकड़ अधिक हों। उ०—फिरि फिरि धूलि उड़ै गहै, पिय कँकरीली गैल।—बिहारी (शब्द०)।

कँकरेत[१]—वि० [हिं० कांकर+एत (प्रत्य०)] कँकरीला।

कँकरेत[२]—संज्ञा स्त्री० [अं० कांक्रीट] कंकड़ जिसे छत पर डालकर गच पीटते हैं। छर्रा। बजरी।

कँखवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांख+वारी (प्रत्य०)] वह फुड़िया जो कांख में होती है। कँखवार। कँखवाली। कँखौरी। ककराली।

कँखौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कांख+औरी (प्रत्य०)] १ कांख। कुक्षि। २. दे० 'कँखवारी'।

कँगना[१]—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] [स्त्री० कँगनी] १ दे० कंकण'। उ०—गियँ अभरन पहिरे जहँ ताई। औ पहिरैं कर कँगन कनाई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२२। २ वह गीत जो कंकण बाँधते या खोलते समय गाया जाता है।

कँगना[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कु] एक प्रकार की घास जिसे बैल, घोड़े आदि बहुत खाते हैं। यह पहाड़ी मैदानों में अधिक होती है। साका।

कँगनी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कँगना] १. छोटा कँगना। आभूषण-विशेष। लाह की मोटी लाल या पीली चूड़ी। २. छत या छाजन के नीचे दीवार में रीढ़ सी उभड़ी हुई लकीर जो खूबसूरती के लिये बनाई जाती है। कगर। कार्निस। ३ कपड़े का वह छल्ला जो नैचाबंद नैचे की मुहनाल के पास लगाते हैं। ४. गोल चक्कर जिसके बाहरी किनारे पर दांत या नुकीले कँगूरे हों। दानेदार चक्कर। ५ ऐसे चक्कर पर गोल उभड़े हुए दाने।

कँगनी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] एक अन्न का नाम।

विशेष—यह समस्त भारतवर्ष, बर्मा, चीन, मध्य एशिया और योरप में उत्पन्न होता है। यह मैदानों तथा ६००० फुट तक की ऊँचाई पहाड़ों में भी होता है। इसके लिये दोमट अर्थात् हलकी सूखी जमीन बहुत उपयोगी है। आकृति, वर्ण और काल के भेद से इसकी कई जातियाँ होती हैं। रंग के भेद से कँगनी दो प्रकार की होती है—एक पीली और दूसरी लाल। यह अषाढ़ सावन में बोई और भादों क्वार में काटी जाती है। इसकी एक जाति चेना या चीनी भी है जो चैत बैसाख में बोई और जेठ में काटी जाती है। इसमें १२-१३ बार पानी देना पड़ता है, इसीलिये लोग कहते हैं—'बारह पानी चेन, नाहीं तो लेन का देन'। कँगनी के दाने सावां से कुछ छोटे और अधिक गोल होते हैं। यह दाना चिड़ियों को बहुत खिलाया जाता है। पर किसान इसके चावल को पकाकर

कंपू—संज्ञा पुं० [अ० कैंप] १ वह स्थान जहाँ फौज रहती हो। छावनी। उ०—कंपू बन बाग के कदर कप्तान पड़े।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२०। २ वह स्थान जहाँ लड़ाई के समय फौज ठहरती है। पड़ाव। जनस्थान। ३ डेरा। खेमा। ४. फौज। सेना। दे० 'कंपनी'।

मुहा०—कंपू का बिगड़ा हुआ = (१) लुच्चा या गुंडा। (लश०)। (४) बागी।

कंपोज—संज्ञा पुं० [अ० कंपोज] शब्दों और वाक्यों के अनुसार टाइप के अक्षरों को जोड़ना। जैसे,—(क) आज प्रेस में कितना मैटर कंपोज हुआ। (ख) तुमने कल कितनी गेली कंपोज की थी?

क्रि० प्र०—करना। होना।

कंपोजिंग—संज्ञा स्त्री० [अ० कंपोजिंग] १ कंपोज करने का काम। २ कंपोज करने की मजदूरी। कंपोज कराई।

कंपोजिंग स्टिक—संज्ञा स्त्री० [अ० कंपोजिंग स्टिक] कंपोजिटर का एक औजार जिसपर अक्षर बैठाए जाते हैं।

कंपोजिटर—संज्ञा पुं० [अ० कंपोजिटर] छापेखाने का वह कर्मचारी जो छापने के मैटर के अक्षरों को छापने के लिये क्रम से बैठाता है।

कंपोजिटरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंपोजिटर+ई (प्रत्य०)] कंपोजिटर का पद। जैसे,—कंपोजिटरी का खयाल छोड़ो। २ कंपोजिटर का काम।

कंपौंडर—संज्ञा पुं० [अ० कंपाउडर] दवा बनानेवाला। डाक्टर को दवा तैयार करने में सहायता पहुँचानेवाला।

कंपौंडरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंपौंडर+ई (प्रत्य०)] १ कंपौंडर का काम। २ कंपौंडर का काम करने की उजरत। ३ कंपौंडर का पद।

कंप्र—वि० [सं० कम्प्र] काँपता हुआ। हिलता हुआ। चल। स्फूर्त। तेज [को०]।

कंफहम—वि० [फा० कम+फहम] १ कम अक्ल। २ मूर्ख। उ०—कंफहम आदमी की राय मुस्तहकिम नहीं होती।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३१।

कंब(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बा] छड़ी। यष्टि। हाथ में शौक से रखने की छड़ी। उ०—धँण कँणयररी कंब ज्यउँ, सूकी तोड़ सुरत्ति।—ढोला०, दू० १३५।

मुहा०—कंब लगाना = छड़ी या लकड़ी से मारना। उ०—मारू मन चिंता धरइ करहइ कंब लगाइ।—ढोला०, दू० ६३४।

कंबखत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'कमबख्त'।

कंबडी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बा+हिं० डी (प्रत्य०)] दे० 'कंब'। उ०—सड सड बाहि म कंबडी रोंगी देह म चूरि।—ढोला० दू०, ४६२।

कंबर¹(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कम्बल (पु) कम्पर] पुं० 'कंबल'। उ०—वैसेंई कंबर अंबर हार। वैसेंई सहज आहार बिहार।—नंद ग्रं०, पृ० २६५।

कंबर²—वि० [सं० कर्बुर, कम्बु] अनेक वर्णों का चित्र। चितकबरा [को०]।

कंबर³—संज्ञा पुं० चितकबरा रंग। मिश्रित रंग। चित्रवर्ण [को०]।

कंबल—संज्ञा पुं० [सं० कम्बल] [स्त्री० अल्पा० कमली] १ ऊन का बना हुआ मोटा कपड़ा जिसे गरीब लोग ओढ़ते हैं। यह भेड़ों के ऊन का बनता है और इसे गड़ेरिए बुनते हैं। उ०—पहिरण ओढ़ण कंबला साठे पुरिसे नीर।—ढोला० दू० ६६२। २ एक कीड़ा जो बरसात में दिखाई देता है और उसके ऊपर काले रोएँ होते हैं। कमला। ३ जलप्रवाह।—अनेकार्थ०, पृ० ६१६। ४ सास्ना। लहरी (को०)। ५ एक प्रकार का हिरन (को०)। ६ भीत। दीवार (को०)। ७ जल। पानी (को०)।

कंबलक—संज्ञा पुं० [सं० कम्बलक] १ ऊनी वस्त्र या कपड़ा। २. कंबल [को०]।

कंबलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बलिका] १ कमली। २ एक प्रकार की हरिणी [को०]।

कंबली¹—वि० [सं० कम्बलिन्] १ कंबल से ढँका हुआ। १ कंबल युक्त। कंबलवाला [को०]।

कंबली²—संज्ञा पुं० बैल [को०]।

कंबि—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बि] दे० 'कंबी' [को०]।

कंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बिका] प्राचीन काल का एक बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

कंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बी] २ कलछी। २ बाँस की गाँठ। ३ बाँस का अंकुर [को०]।

कंबु¹—वि० [सं० कम्बु] चितकबरा। अनेक वर्णों का [को०]।

कंबु²—संज्ञा पुं० १ शंख। उ०—उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवा।—मानस, १।२३३।

यौ०—कंबुकंठ। कंबुग्रीव।

२ शंख की चूड़ी। ३ घोंघा। ४ हाथी। ५ चित्रवर्ण (को०)। ६ कंकण। कँगना (को०)। ७ नलिका। नली (हड्डी की) (को०)।

कंबुकंठ—वि० [सं० कम्बुकण्ठ] शंख जैसी गर्दनवाला [को०]।

कंबुकंठी—वि० स्त्री० [सं० कम्बुकण्ठी] शंख की जैसी गरदनवाली [को०]।

कंबुक—संज्ञा पुं० [सं० कम्बुक] १ कंबु। शंख। उ०—जब तें तेरे कुच रुचिर, हरि हरे भरि नैन। कनक कलस, कंबुक कहुद नीके लगत न।—राम च०, पृ० २५७। वह जो अधम हो (को०)।

कंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुका] १ अश्वगंधा नाम का वृक्ष। २ गर्दन। ग्रीवा [को०]।

कंबुकाष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुकाष्ठा] अश्वगंधा [को०]।

कंबुग्रीव—वि० [सं० कम्बुग्रीव] शंख जैसी गर्दनवाला [को०]।

कंबुग्रीवा—वि० [सं० कम्बुग्रीवा] शंख जैसी गर्दनवाली [को०]।

कंबुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुपुष्पी] शंखपुष्पी [को०]।

कंबुमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कम्बुमालिनी] शंखपुष्पी [को०]।

कंबू—संज्ञा पुं० [सं० कम्बू] १ चोर। २ लुटेरा। ३ कंगन (को०)।

कंबोज—संज्ञा पुं० [सं० कम्बोज] [वि० कांबोज] १ अफगानिस्तान के एक भाग का प्राचीन नाम।

जाकर बाएँ कंधे पर से ले जाना। उ०—डोनत दिमाग इन्नी डग देत दीठि नाग देरे कर डारन डरीवन कँधेला की।—पजनेस (शब्द०)।

कन ⓤ—संज्ञा पु० [सं० कर्ण] कान। कर्ण। उ०—डुलै कन नाही मिन्नीका सुग्रीव।—पृ०, रा०, २५।२०६।

कंप¹—संज्ञा पुं० [सं० कम्प] १ कँपकँपी। काँपना। २ शृंगार के सात्विक अनुभावों मे से एक। इसमे शीत, कोप और भय आदि से अकस्मात् सारे शरीर मे कँपकँपी सी मालूम होती है। ३ शिल्पशास्त्र मे मंदिरो या स्तंभो के नीचे या ऊपर की कँगनी। उभडी हुई कँगनी।

यौ०—कंपज्वर = शीतज्वर। जुडी। कंपमापक = भूकंप मापक यंत्र। कंपवायु = एक प्रकार की वातव्याधि जिसमे मस्तक और सब अंगो मे वायु के दोष से कंपन होता है।—माधव०, पृ० १४६। कंपविज्ञान = भूकंप संबंधी विज्ञान।

कंप²—संज्ञा पु० [सं० कंप] पड़ाव। लशकर। डेरा। उ०—साथ मे कंप बहुत बडा है।—हुमायूँ०, पृ० ८०।

कंपनि—संज्ञा पुं० [सं० कम्पति] समुद्र। उ०—सरिता तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस।—मानस, ६१५।

कंपन—संज्ञा पु० [सं० कम्पन] [वि० कंपित] १ काँपना। थरथराहट। कँपकँपी। २ शिशिर काल (को०)।

कंपना ⓤ—क्रि० अ० [सं० कम्पन] १ काँपना। थरथराना। २ हिल उठना। उ०—(क) भएउ कोप कंपेउ त्रैलोका।—मानस, १।८७। (ख) फागुन कंप्या रूख।—बी० रासो, पृ० ६२। (ग) कंपत चैतन रूप कहा जर जरत समूरे।—हम्मीर रा०, पृ० २२।

कंपनी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ व्यापारियो का वह समूह जो अपने संयुक्त धन से नियमानुसार व्यापार करता हो। २ इगलैंड के व्यापारियो का वह समूह जो सन् १६०० ई० मे बना था।

विशेष—रानी एलीजाबेथ प्रथम की आज्ञा पाकर इस समूह ने भारतवर्ष मे व्यापार करना प्रारंभ किया। इसने यहाँ पहले कोठियाँ बनाई, फिर जमीदारी खरीदी और बढते बढते देश के बहुत से प्रांतो पर अधिकार कर लिया।

यौ०—कंपनी कागद = प्रामिसरी नोट।

३ सेना का वह भाग जिसमे १८०० सैनिक होते हैं। ४ मडली। जत्था।

कंपमान—वि० [सं० कम्पमान] दे० 'कंपायमान'।

कंपस ⓤ—संज्ञा पु० [अं० कंपास] दे० 'कंपास'। कुतुबनुमा। दिग्दर्शक। उ०—तोही सो अरुझे खरे कंपस से जुग नैन।—श्यामा०, पृ० १७४।

कंपा¹—संज्ञा पुं० [सं० कम् (=गाँठ) + पाश या हिं० कंप] बाँस की पतली पतली तीलियाँ जिनमे बहेलिए लासा लगाकर चिडियो को फँसाते है। उ०—लीलि जाते बरही बिलोक बेनी बनिता की जो न होती यू बनि कुसुमसर कंपा की।—(शब्द०)।

विशेष—यह दस पाँच पाली पतली तीलियो का कूँचा होता है। इसे पतले बाँस के सिरे पर खोसकर लगाते हैं और फिर उस बाँस को दूसरे मे और उसे तीसरे मे इसी तरह खोसते जाते है। इससे पेड़ पर बैठी हुई चिड़ियों को फँसाते हैं। बाँस को खोचा और कूँचे को कंपा कहते है।

मुहा०—कंपा मारना या लगाना = (१) चिडियो को कंपे से मारना या फँसाना। (२) धोखे मे किसी को अपने वश मे करना। फँसाना। दाँव पर चढाना। उ०—अब तुम माशा अल्लाह से सयानी हो। नेक बद समझ सकती हो। अगर यहाँ कंपा न मारा तो कुछ भी न किया।—सैर०, पृ० २८।

कंपा² संज्ञा स्त्री० [सं० कम्पा] १ काँपना। २ भय। डर। ३. हिलना। आंदोलन (को०)।

कंपाउंड—संज्ञा पु० [अं०] १ अहाता। चहारदीवारी के भीतर की खुली जगह। घेरा। २ दवाइयो का मिश्रण।

कंपाउंडर—संज्ञा पु० [अं०] डाक्टर का सहायक जो औषधियो के मिलने का कार्य करता है। औषधयोजक। २. डाक्टरी के कार्य मे आवश्यक उपकरण जुटानेवाला और निर्देश के अनुसार डाक्टर का सहायक।

कंपाउंडरी—संज्ञा स्त्री० [अं० कंपाउंडर + वि० ई (प्रत्य०)] १ कंपाउंडर का कार्य। २ कंपाउंडर की वृत्ति।

कंपाक—संज्ञा पु० [सं० कम्पाक] हवा। वायु (को०)।

कंपाना ⓤ—क्रि० स० [हिं० कँपना का प्रे०] १ हिलाना। हिलाना-डोलाना। २ भय दिखाना। डराना।

कंपायमान वि० [सं० कम्पायमान] हिलता हुआ। कंपित।

कंपास—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशाओ का ज्ञान होता है। दिग्दर्शक। कुतुबनुमा।

विशेष—यह एक छोटी सी डिबिया होती है जिसमे चुबक की एक छोटी सी सूई होती है जिसका सिरा सदा उत्तर को रहता है। इसमे लोगो को दिशाओं का ज्ञान होता है। यह समुद्र मे माझियो और स्थल मे नापनेवालों और नकशे बनानेवालो के लिये बडा उपयोगी है।

यौ०—कंपासघर = जहाज मे वह स्थान जहाँ कंपास रहता है।

२ परकार। ज्यामिति के काम मे आनेवाला एक मापयंत्र। ३ एक यंत्र जिससे पैमाइश मे लैन डालते समय समकोण का अनुमान किया जाता है। अ० राइटैंगिल।

मुहा०—कंपास लगाना = (१) नापना। (२) ताक झाँक करना। फँसाने की बात मे रहना।

कंपित—वि० [सं० कम्पित] काँपता हुआ। अस्थिर। चलायमान। चचल। उ०—छोभित सिंधु, सेष सिर कंपित पवन भयो गति पंग।—सूर० ९।१५८। २ भयभीत। डरा हुआ।

कंपिल—संज्ञा पु० [सं० कम्पिल्ल, काम्पिल्य] फर्रुखाबाद जिले का एक पुराना नगर। कंपिला।

विशेष—यह पहले दक्षिण पाचाल की राजधानी था और यहाँ द्रौपदी का स्वयंवर हुआ था।

कंपिल्ल—संज्ञा पु० [सं० कम्पिल्ल] कमीला।—बृ० सं०, पृ० २५६।

कंपीटीशन—संज्ञा पुं० [अं० कंपिटीशन] प्रतिद्वंद्विता। स्पर्धा। उ०—अच्छी सरकारी नौकरी की राह मे कंपीटीशन की कसौटियाँ हैं।—प्रभिशप्त०, पृ० ७१।

कदुक—सज्ञा पुं० [म० कन्दुक] १. गेंद ।
यौ०—कन्दुकतीर्थ ।
२ गोल तकिया । गलतकिया । गेंडुग्रा । ३ सुपारी । पुंगीफल । ४ एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे चार यगण ग्रौर एक लघु होता है। जैसे—यूचौ गाइ कै कृष्ण को राधिका साथ । भजो पाद पाथोज नंके सदा माथ ।—(शब्द०)।

कदुकतीर्थ—सज्ञा पुं० [सं० कन्दुकतीर्थ] व्रज का एक तीर्थ जहाँ श्रीकृष्ण जी ने गेंद खेली थी ।

कदुगृह—सज्ञा पुं० [स० कन्दुगृह] पाकशाला ।

कदुपक्व—वि० [स० कन्दुपक्व] भाड मे भुना हुग्रा (ग्रन्न) ।

कदू(पु)—सज्ञा पु० [स० कर्दम, प्रा० कद्दम, (पु) काँदो, (पु)कदो] दे० 'काँदो' । कीचड । उ०—ग्रगनि जु लागी नीर मैं, कदू जलिया झारि ।— कबीर ग्र०, पृ० ११ ।

कदूरी[१]—सज्ञा पुं० [हिं०] १ कुंदरू के ग्राकारवाला । २. ववासीर का मसा ।—माधव०, पृ० ५५ ।

कदूरी—सज्ञा पुं० [फा०] वह खाना जिससे मुसलमान वीवी फातमा या किसी पीर के नाम का फातिहा करते हैं ।

कदेव—सज्ञा पुं० [देश०] पुन्नाग या सुलताना चपा की जाति का एक वृक्ष ।
विशेष—यह उत्तरी ग्रौर पूर्वी वगाल मे होता है। इसकी लकडी मजवूत होती है ग्रौर नाव या जहाज का मस्तूल बनाने के काम मे ग्राती है ।

कदोई—सज्ञा पुं० [स० कान्दविक] १ एक जाति । २. मिठाई बनानेवाला । ३ हलवाई ।—ग्रर्ध०, पृ० ४ ।

कदोट, कदोट्ट—सज्ञा पुं० [सं० कन्दोट, कन्दोट्ट] १. सफेद कमल । २ नील कमल [को०] ।

कदोत—सज्ञा पु० [स०कन्दोत] श्वेत कमल [को०] ।

कदोरा—सज्ञा पुं० [प्रा० कणि+स० वोरक] १ कमर मे पहनने का सूत्र । करगता । २ करधनी ।

कद्रप(पु)—सज्ञा पुं० [स० कन्दर्प] दे० 'कदर्प, । उ०—सरस परस्पर मुदित, उदित कद्रप तन चीने ।—हम्मीर रा०, पृ० ४३ ।

कध[१](पु)—सज्ञा पुं०[स० स्कन्ध] १ दे० 'कधा' । २ डाली । उ०—ग्रव्यक्त मूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने पट्कध शाखा पचवीस ग्रनेक पर्ण सुमन घने ।—तुलसी (शब्द०)। ३ योग शास्त्र मे प्रसिद्ध नाडियो का एक पुतला जिसका शास्त्रीय नाम कद है ।—प्राण०, पृ० २० ।

कध[२](पु)—सज्ञा पुं० [स० कन्ध] १. मेघ । वादल । २ मुस्ता । मोथा [को०] ।

कधनी—सज्ञा स्त्री० [स० कटिवन्धनी] कमर मे पहनने का एक गहना । किंकिणी । मेखला ।

कधर—सज्ञा पु० [सं० कन्धर] १ गरदन । ग्रीवा । उ०—मैं रघुवीर दूत दसकंधर ।—मानस०, ६।२० । २ वादल । ३ मुस्ता । मोथा ।

कधरा—सज्ञा स्त्री० [कन्धरा] दे० 'कदर[१]' ।

कधरावध—सज्ञा पुं०[स० कन्धरावध] कधा काटने का दड (को०)।
विशेष—किले मे घुसने या सेंध लगाने के लिए चद्रगुप्त मौर्य ग्रादि के समय मे यह दड प्रचलित था। प्राय लोग २०० पण देकर इस दड मे वच जाते थे ।

कधा—सज्ञा पुं० [स० स्कंध, प्रा० कंध] १ मनुष्य के शरीर का वह भाग जो गले ग्रौर मोढे के वीच मे है ।
मुहा०—कधा देना = (१) ग्ररथी मे कधा लगाना । ग्ररथी का कधे पर लेना या लेकर चलना । शव के साथ श्मशान तक जाना । (२) सहारा देना । सहायता देना । मदद देना । कधा वदलना = (१) वोझ को एक कधे से दूसरे कधे पर लेना । (२) वोझ को दूसरे कधे पर से ग्रपने कधे पर लेना । कधा भरना, कधा भर ग्राना = वोझ के कारण पालकी ढोनेवाला के कधे का फूल जाना या भारीपन जान पडना । कधा लगना = पहले पहल या दूर तक पालकी ग्रादि ढोने से कधे का कल्लाना । कधे की उडान = मालखम की एक कसरत जिसमे कधे के वल उडते हैं ।
२ वाहुमूल । मोढा ।
मुहा०—कधे से कधा छिलना = वहुत ग्रधिक भीड होना । जैसे,—मदिर के फाटक पर कधे से कधा छिलता था, भीतर जाना कठिन था ।
३. वैल की गर्दन का वह भाग जिसपर जुग्रा रखा जाता है ।
मुहा०—कधा डालना = (१) वैल का ग्रपने कधे से जुग्रा फेंकना । जुग्रा डालना । (२) हिम्मत हारना । थक जाना । साहस छोडना । कधा लगना = जूए की रगड से कधे का छिल जाना । उ०—लग गया कधा वला से लग गया ।—चुभते०,पृ० ३७ । कधे से कधा मिलाना = ग्रवसर पडने पर पूर्ण सहयोग देना ।

कधाना(पु)—क्रि० ग्र० [हिं० कधा] १ कधे पर लेना । २ कधा लगाना । उ०—भनत गणेश महापात्र को खिताव दै के, पालकी चढ़ाय लै ग्रकवर कधाते हैं ।—ग्रकवरी०, पृ० ७५ ।

कधार[१]—सज्ञा पुं० [स० गान्धार, मि० फा० कदहार][वि० कधारी] ग्रफगानिस्तान के एक नगर ग्रौर प्रदेश का नाम ।—हुमायूं०, पृ० ५ ।

कधार(पु)[२]—सज्ञा पुं० [स० कर्णधार, प्रा० कण्णधार] [वि० कधारी] केवट । मल्लाह । उ०—(क) जो लै भार निवाह न पारा । सो का गरव करे कधारा ।—जायसी (शब्द०)। (ख) राम प्रताप सत्य सीता को यहै नाव कधार । विनु ग्रधार छन न ग्रवलव्यो ग्रावत भई न वार ।—सूर (शब्द०)।

कधारी[१]—वि० [हिं० कधार] जो कधार देश मे उत्पन्न हुग्रा हो। कधार का (घोडा, ग्रनार ग्रादि) ।

कधारी[२]—सज्ञा पुं० घोडे की एक जाति जो कधार देश मे होती है।

कधारी[३]—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण+धारिन्] मल्लाह । केवट । माँझी ।
यौ०—कधारी जहाज = डाकुग्रो का जहाज (लश०) ।

कधेला—सज्ञा पु० [हिं० कधा+एला (प्रत्य०)] स्त्रियो की साडी का वह भाग जो कधे पर पड़ता है ।
मुहा०—कंधेला डालना = साड़ी के छोर को सिर पर से न ले

निहारे ।—तुलसी (शब्द०)। २. अंकुश। ३. सोंठ। शुंठी (को०)। ४ मेघ। बादल (को०)।

कदर²Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० कन्द] मूल। जड़।

कदरफⓊ—संज्ञा पुं० [सं० कन्दर्प] दे० 'कदर्प'। उ०—कठण लहरि कंदरफ की पलटू गुर जी।—रामानंद०, पृ० १५।

कदरा—संज्ञा स्त्री०[सं० कन्दरा]१ गुफा। गुहा। उ०—मानहुँ पर्वत कदरा, मुख सब गये समाइ।—सूर०, १०।४३१। २ घाटी। उपत्यका (को०)।

कदराकर—संज्ञा पुं० [सं० कन्दराकर] पर्वत।—डिं०।

कदराल—संज्ञा पुं० [सं० कन्दराल] अखरोट।

कदरियाⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्द] दे० कद। मूल। जड़।

कदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरी] दे० 'कदरा' (को०)।

कदर्प—संज्ञा पुं० [सं० कंदर्प] १. कामदेव।

यौ०—कदर्पकूप=भग। योनि। कन्दर्पज्वर=काम का ज्वर। कदर्पदहन=शिव। कदर्पमथन=शिव। कंदर्पमुषल, कदर्पमुसल=लिंग। शिश्न। कंदर्पशृंखल=(१) रतिच्छद। (२) एक प्रकार का रतिबंध।

२ संगीत मे रुद्रताल के ११ भेदो मे से एक। ३ संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमे क्रम से दो द्रुत, एक लघु और दो गुरु होते हैं। इसके पखावज के बोल इस प्रकार हैं—तक जग धिमि तक थोकृत थोकृत ऽ धिधिगत थो थो ऽ। ४. प्रणय। प्यार (को०)।

कदल¹—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] १ नया अँखुआ। उ०—नवल विकच कंदल कुल कलिका जगमोहन अकुलावै।—श्यामा०, पृ० ११६। २. कपाल। ३ सोना। ४. वादविवाद। कचकच। वाग्युद्ध। ५. निंदा। उ०—नगले मचे गारि कंदल धरहलि हरहलि चोट।—वर्ण० पृ० २१६। युद्ध। उ०—सालुले विदल कंदल समत्र।—रा० रू०, पृ० ७३। ७ मधुर ध्वनि या स्वर (को०)। ८. एक प्रकार का केला।

कंदल²—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा] दे० कंदरा'। उ०—पग टोडर कदल ही जु ठयो।—पृ० रा०, १।५५३।

कदला¹—संज्ञा पुं०[सं० कन्दल=सोना] १ चाँदी की वह गुल्ली या लंबा छड जिससे तारकश तार बनाते है। पासा। रैनी। गुल्ली।

विशेष—तार बनाने के लिये चाँदी को गलाकर पहले उसका एक लंबा छड बनाया जाता है। इस छड के दोनों छोर नुकीले होते हैं। अगर सुनहला तार बनाना होता है, तो उसके बीच मे सोने का पत्तर चढा देते है, फिर इसका बत्री मे खींचते हैं। इस छड़ को सुनार गुल्ली और तारकश कदला, पासा और रैनी कहते हैं।

मुहा०—कदला गलाना=(१) चाँदी और सोना मिलाकर एक साथ गलाना। (२) सोने या चाँदी का पतला तार।

यौ०—कदलाकश। कदलाकचहरी।

कदला²—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] एक प्रकार का कचनार। दे० 'कचनार'।

कदला³Ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० कन्दरा] कदरा। गुफा। उ०—दिवयो सुवीर कहला रोह।—पृ० रा०, १।३६८।

कदला कचहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन्दला+कचहरी] वह जगह जहाँ कदलाकशी का काम होता है। तार का कारखाना। कंदले का कारखाना।

कदलाकश—संज्ञा पुं०[सं० कन्दला+फा० कश] तार खींचनेवाला। जो तारकशी का काम करता हो। तारकश।

कंदलाकशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कन्दला+फा० कश +ई (प्रत्य०)] तार खींचने का काम।

कदलित—वि० [सं० कन्दलित] १ प्रस्फुटित। खिला हुआ। २ उद्गत। निकला हुआ (को०)।

कंदलिवासⓊ—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल=सोना+वास=निवास] हिरण्यगर्भ। परमात्मा। ब्रह्म। उ०—काया माहै कदलिवासा। काया माहै है कैलासा।—दादू०, पृ० ६४१।

कदली—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दली] १. एक पौधा जो नदियों के किनारे पर होता है। बरसात मे इसमे सफेद सफेद फूल लगते है। २ केला (को०)। ३ हिरन की एक किस्म (को०)। ४ पताका (को०)। ५ कमलगट्टा (को०)।

कदलीकुसुम—संज्ञा पुं० १ [सं० कन्दलीकुसुम] कुकुरमुत्ता। २ केले का फूल (को०)।

कदवघन—संज्ञा पुं० [सं० कन्दवर्धन] सूरन। ओल (को०)।

कदशूरण—संज्ञा पुं० [सं० कन्दशूरण] ओल। जमीकद (को०)।

कदसार—संज्ञा पुं० [सं० कन्दसार] १ नदनवन। इंद्र का बगीचा। २. हिरन की एक जाति।

कंदा—संज्ञा पुं० [सं० कन्द] १ दे० 'कद'। २ शकरकद। गंजी। † ३ घुइयाँ। अरुई।

कदाकारी—संज्ञा स्त्री० [फा० कन्दहकारी] वे बेलबूटे जो सोने, चाँदी लकडी या पत्थर पर बनते हैं। नक्काशी।—पा० सा०, पृ० १२६।

कदालु—संज्ञा पुं० [सं० कन्दालु] वनकद। जगली कद (को०)।

कदिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दिरी] लाजवती। लजालू या लजाधुर नाम का पौधा (को०)।

कदी संज्ञा पुं० [सं० कन्दिन्] १ सूरन। ओल। २ मूली।—देशी०, पृ० ८०।

कदीत—संज्ञा पुं०[प्रा०] जैन मत के अनुसार एक प्रकार के देवगण जो वाणव्यतर के अतर्गत हैं।

कदील¹—संज्ञा स्त्री०[अ० कन्दील] अबरक, कागद या मिट्टी का वह घेरा जिसमे रखकर दीपक जलाते हैं और ऊँचाई पर टाँग देते हैं।

कदील²—संज्ञा पुं० [हिं० कडाल] जहाज मे वह स्थान जहा पानी रहता है और लोग पायखाना फिरते और नहाते हैं। सेतखाना।

कंदीलची—संज्ञा पुं०[अ० कदील+ तु० ची (प्रत्य०)] वह आदमी जो मस्जिद म कदल जलाने का काम करता हो।

कदु—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० कन्दु] १ भट्ठी। भट्ठा। ३. लोहे का कड़ाही। ४ तवा। ५ गेंद। ६. पका हुआ अथवा भुना हुआ अन्न (को०)।

कडूरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डूरा] केवाँच [को०]।

कडूल[१]—वि० [सं० कण्डूल] खुजली पैदा करनेवाला। सुरसुरी उत्पन्न करनेवाला। [को०]।

कडूल[२]—संज्ञा पुं० सूरन। ओल। जमीकद [को०]।

कडोव—संज्ञा पुं० [सं०] कीडे की दशा को प्राप्त रोएँदार अपूर्ण पतग। डिंम। कमला। झाँझा। इल्ली [को०]।

कडोल—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोल] १ बेत या बाँस का बना टोकरा। २ बड़ी दौरी या दौरा। ३ भाडारगृह। ४ ऊँट [को०]।

कडोलक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोलक] १ डलिया। टोकरा। टोकरी। २. भाडारगृह [को०]।

कडोलवीणा—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोलवीणा] चाडालवीणा। किंगरी।

कडोर—संज्ञा पुं० [सं० कण्डु या देश० अथवा हिं० कांडो] १ अन्न का एक रोग।

विशेष—यह रोग प्राय ऐसे अन्नो को होता है जिसमे बाल लगती है, जैसे धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि। बाल मे काले रग की चिकनी धूल या भुकडी बैठ जाती है। इससे बाल मे दाने नहीं पडते और फसल को बडी हानि होती है। कँडुआ और कँजुआ भी कहते हैं।

२ दे० 'कडौरा'।

कडोप—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोप] १ डिंभ। इल्ली। २ बिच्छू [को०]।

कडौरा—संज्ञा पुं० [हिं० कडा + औरा (प्रत्य०)] १ वह स्थान जहाँ कडा पाथा जाता है। गोहरौर। २ वह घर जिसमे कडे रखे जाते हैं। गोठौला। ३ कडो का ढेर जिसके ऊपर से गोबर छोप देते हैं। बठिया।

कत[१]—वि० [सं० कन्त] प्रसन्न। आनदित [को०]।

कत[२] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कान्त] १ पति। स्वामी। उ०—मदन लाजवश तिय नयन देखत बनत एकत। इँचे खिचे इत उत फिरत ज्यो दुनारि को कत।—पद्माकर (शब्द०)। २ मालिक। ईश्वर। उ०—तू मेरा हौं तेरा गुरु सिष कीया मत। दूनो भूल्या जात है दादू बिसरया कत।—दादू (शब्द०)।

कतरि (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कान्तार] वन। जगल।

कता (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कान्त] दे० 'कत'। उ०—(क) तब जान्यो कमला के कता।—सूर० (राधा०), पृ० ८५०। (ख) जैसे कता घर रहे वैसे रहे विदेस (कहावत)।

कतार (पु)—संज्ञा पुं० [सं० कान्तार] जगल। वन।

कति (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कान्ता] दे० 'काता'। उ०—कहै कंति सम कत, तत पावन बड कव्विय।—पृ० रा० १।७।

कतित—संज्ञा पुं० [देश०] एक पुरानी राजधानी जिसके खडहर मिर्जापुर के पश्चिम गगा के किनारे पर हैं और जहाँ इस नाम का एक गाँव भी है। मिथ्यावासुदेव की राजधानी यहीं थी।

कतु[१]—वि० [सं० कान्त, कन्तु] प्रसन्न।

कतु[२]—संज्ञा पुं० १ कामदेव। २. हृदय। ३ अन्न का भाडार। ४ प्रेमी [को०]।

कथ (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कान्त] दे० 'कत[२]'। उ०—कथ बुलाय केकेई कहियो, श्राप वचन पूरीजै आस।—रघु० रू०, पृ० १००।

कथा—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्था] १. गुदडी। उ०—फारि पटोर सो पहिरौं कथा। जो मोहिं कोउ दिखावै पथा।—जायसी (शब्द०) २ कथडी। कथरी (को०)। ३ भीत। दीवार (को०)। ४ नगर। शहर (को०)। ५ जोगियो का पहनावा या परिधान (ला०)।

कथाधारी—वि० [सं० कन्थाधारिन्] कथा धारण करनेवाला योगी। जोगी [को०]।

कथारी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

कथी—संज्ञा पुं० [सं० कन्थिन्] गुदडी पहननेवाला व्यक्ति। फकीर। उ०—जोगि जती अरु आवहिं कथी। पूछै पियहि जान कोइ पथी।—जायसी (शब्द०)।

कद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जड जो गूदेदार और बिना रेशे की हो। जैसे—सूरन, मूली, शकरकद इत्यादि।

यौ०—जमीकद। शकरकद। बिलारीकद।

२ सूरन। ओल। कांद। उ०—चार सवा सेर कद मँगाओ। आठ अश नरियर लै आओ।—कबीर सा०, पृ० ५४६। ३. बादल। घन। उ०—यज्ञोपवीत विचित्र हेममय मुक्तामाल उरसि मोहि भाई। कद तडित बिच ज्यो सुरपति धनु निकट बलाक पाँति चलि आई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—आनदकद।

४ तेरह अक्षरो का एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे चार यगण और अत मे एक लघु वर्ण होता है (य य य य ल)। जैसे,—हरे राम हे राम हे राम हे राम। करो मो हिये मे सदा आपनो धाम।—(शब्द०)। ५ छप्पय छद के ७१ भेदो मे से एक जिसमे ४२ गुरु ६८ लघु, ११० वर्ण और १५२ मात्राएँ, अथवा ४२ गुरु ६४ लघु, १०६ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं। ६ योनि का एक रोग जिसमे बतौरी की तरह गाँठ बाहर निकल आती है। ७ शोथ। सूजन (को०)। ८ गाँठ (को०)। ९. लहसुन (को०)।

कद[२]—संज्ञा पुं० [फा०] जमाई हुई चीनी। मिस्री। उ०—हक मे आशिक के तुभन बाँका वचन। कद है नेशकर है शक्कर है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ ३९।

यौ०—कलाकद। गुलकद।

कदक—संज्ञा पुं० [सं० कन्दक] पालकी [को०]।

कदगुडुची—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दगुडुची] एक प्रकार की गुडुची। पिंडालू। बहुच्छिन्ना [को०]।

कदन—संज्ञा पुं० [सं० कन्दन] नाश। ध्वस।

कदमूल—संज्ञा पुं० [सं० कन्दमूल] १ कद और मूल। २ तीन बार हाथ ऊँचा एक पौधा।

विशेष—इसका पत्ता सेमल के पत्ते सा होता है। इसकी जडी मोटी, लबी और गूदेदार होती है। इसकी डालियाँ जमीन मे लगती हैं। नैपाल की तराई मे पहाडो के किनारे यह बहुत मिलता है। लकडी पोली और निकम्मी होती है। जड को लोग उबालकर या तरकारी बनाकर खाते हैं।

कदर[१]—संज्ञा पुं० [सं० कन्दर] [स्त्री० कन्दरा] १ गुफा। गुहा। उ०—कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं

कठील—संज्ञा पुं०[सं० कण्ठील]१. ऊँट । २. वह पात्र जिसमें मथने का काम किया जाय [को०] ।

कठीला—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठीला] मथन का पात्र [को०] ।

कठेकाल—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठेकाल] शिव । महादेव [को०] ।

कठौष्ठ्य—वि०[सं०] ध्वनि या वर्ण जो एक साथ कंठ और ओठ के सहारे से बोला जाय ।

विशेष—शिक्षा में 'ओ' और 'औ' कंठोष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं ।

कठ्य¹—वि० [सं०] १ गले से उत्पन्न । २ जिसका उच्चारण कंठ से हो । ३. गले या स्वर के लिये हितकारी । जैसे,—कठ्य औषध ।

कठ्य²—संज्ञा पुं० १ वह वर्ण जिसका उच्चारण कंठ से होता है । हिंदी वर्णमाला में ऐसे आठ वर्ण हैं—अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग । २ वह वस्तु जिसके खाने से स्वर अच्छा होता है या गला खुलता है । गले के लिये उपकारी औषध ।

विशेष—सोंठ, कुलंजन, मिर्च, वच, राई, पीपर, पान । गुटिका करि मुख में दिए सुर कोकिला समान ।—वैद्यजीवन(शब्द०) ।

कडन—संज्ञा पुं० [सं० कण्डन]१ कूटना । २ पिटाई । ३. कुटाई । ४ भूसी अलग करना [को०] ।

कडनी—संज्ञा स्त्री०[सं० कण्डनी] १ ऊखल । २ मूसल [को०] ।

कडम—वि० [अ० कडेम] १ बेकार । २ नष्ट । ३. भ्रष्ट । उ०—लाख मन चावल कडम हो गया ।—अभिशप्त, पृ० ५२ ।

कडरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोटी नस । मोटी नाडी ।

विशेष—सुश्रुत में सोलह कडराएँ मानी गई हैं जिनसे शरीर के अवयव फैलते और सिकुडते हैं ।

कडसरी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० कण्ठश्री] दे० 'कठश्री' । उ०—कडसरी ग्रीवा श्रुत कुडल, चदण निले तिलक दुत चंद ।—रघु० रू०, पृ० २५३ ।

कडहार—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] दे० 'कर्णधार' । उ०—करे जीव भव पार कडहार सो ।—कबीर ग्रं०, पृ० १३२ ।

कडा¹—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्दन = मलत्याग] [स्त्री० अल्पा० कडी] १. १ सूखा गोबर जो ईंधन के काम में आता है ।

मुहा०—कडा होना =(१) सूखना । दुर्बल होना । ऐंठ जाना । (२) मर जाना । जैसे,—ऐसा पटका कि कडा हो गया ।

२ लंब आकार में पथा हुआ सूखा गोबर जो जलाने के काम में आता है । ३ सूखा मल । गोटा । सुद्दा ।

कडा²—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] मूँज के पौधे का डठल जिसके चिक, कलम, मोढे आदि बनाए जाते हैं । सरकंडा ।

कडानक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डानक] शिव का एक अनुचर [को०] ।

कडारी—संज्ञा पुं०[सं० कर्णधारिन्] १. जहाज का माँझी । (लश०)। २ नाव खेनेवाला । कर्णधार ।

कडाल¹—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोल] लोहे और पीतल आदि की चद्दर का बना हुआ कूपाकार एक गहरा बरतन जिसका मुँह गोल और चौडा होता है । इसमें पानी रखा जाता है ।

कडाल²—संज्ञा पुं० [सं० करनाल, फा० करनाय] एक बाजा जो पीतल की नली का बनता है और मुँह में लगाकर बजाया जाता है । नरसिंहा । तुरही । तूरी ।

कडाल³—संज्ञा पुं० [हिं० कड = मूँज] जोलाहों का एक कंघीनुमा औजार जिसपर ताना फैलाकर पाई करते हैं ।

विशेष—यह दो सरकंडो का बनता है । दो बराबर बराबर सरकंडों को एक साथ रखकर बीच में बाँध देते हैं । फिर उनको आडे कर आमने सामने के भागों को पतली रस्सी से तानते और ऊपर के सिरों पर तागा बाँधकर नीचे के सिरों को जमीन में गाड देते हैं । इस तरह कई एक को दूर दूर पर गाड़कर उनके सिरे पर बँधे तागों पर ताना फैलाते हैं ।

कडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डिका] १ वेद की ऋचाओं का समूह । २. वैदिक ग्रंथों का एक छोटा वाक्य, खड या अवयव । पैरा ।

कडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्ड]१ बाँस की डोलची । २ पिटारी ।

कडिल—वि० [सं० कण्डिल] प्रमत्त । मधुमत्त [को०] ।

कडी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडा] १ छोटा कडा । गोहरी । उपली । २ सूखा मल । गोटा । सुद्दा । ३ वह पात्र जिसमें कडी जलाई जाय । अँगीठी । उ०—दोनों बच्चे मुश्की और हफ़ज़ा कडी (अँगीठी) को घेरकर बैठे रहे ।— फूलो०, पृ० ८१ ।

कडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० करण्ड] पीठ पर बाँधी जानेवाली वह टोकरी जिसमें बैठकर या सामान लादकर लोग बदरीनाथ, हिमालय पहाड पर यात्रा करते हैं ।

कडील—संज्ञा स्त्री० [फा० कदील] मिट्टी, अबरक या कागज की बनी हुई लालटेन जिसका मुँह ऊपर होता है । इसमें दीया जलाकर लटकाते हैं ।

कडीलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडील या पुर्त० गडील] १ वह ऊँचा घरहरा जिसके ऊपर रोशनी की जाती है ।

विशेष—यह समुद्र में उन स्थानों पर बनाया जाता है जहाँ चट्टानें रहती हैं और जहाज के टकराने का डर रहता है । जहाजों का ठीक मार्ग बतलाने का काम भी इससे लेते हैं । प्रकाश स्तंभ (लाइट हाउस) ।

२ वह बाँस जिसपर कडील लटकाई जाय ।

कडु—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डु] खुजली । खाज ।

कडुक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डुक] १ मिनावाँ । २ तमाल । उ०—कालकध तापिच्छ पुनि कंडुक सोह तमाल ।—अनेक (शब्द०) ।

कडुघ्न¹—वि० [सं० कण्डुघ्न] खुजली मिटानेवाला [को०] ।

कडुघ्न²—संज्ञा पुं० सफेद सरसों ।

कडुर—वि० [सं० कण्डुर] खुजली पैदा करनेवाला [को०] ।

कडू—संज्ञा [सं० कण्डू] दे० 'कडु' ।

कडूयन—संज्ञा पुं० [सं० कण्डूयन] खुजलाहट [को०] ।

कडूयनक—वि० [सं० कण्डूयनक] खुजली पैदा करनेवाला [को०] ।

कडूयनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डूयनी] रगडने के काम आनेवाला एक प्रकार का ब्रुश [को०] ।

कडूया—संज्ञा स्त्री० [पुं० कण्डूया] खुजली [को०] ।

कंठत्राण—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठत्राण] लड़ाई में गले की रक्षा के लिये बनी हुई लोहे की जाली या पट्टी (को०)।

कंठदबाव—संज्ञा पुं० [हिं० कंठ + दबाव] कुश्ती का एक पेंच जिसमें खिलाड़ी एक हाथ से अपने प्रतिद्वंदी के कंठ पर थाप मारता है और दूसरे हाथ से उसका उसी तरफ का पैर उठाकर उसे भीतरी अड़ानी टाँग मारकर चित कर देता है। इसे कंठभेद भी कहते हैं।

कंठनीलक—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठनीलक] १ मशाल। २ लूक। लुकारी। लुक्क (को०)।

कंठभंग—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठभङ्ग] हकलाना। हकलाहट (को०)।

कंठमणि—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठमणि] १ गले में पहना गया रत्न। उ०—गजमुकुता कर हार कंठमनि मोहइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८। २ घोड़े की एक भँवरी जो कंठ के पास होती है। ३ अत्यंत प्रिय वस्तु (को०)।

कंठमाला—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठमाला] गले का एक रोग जिसमें रोगी के गले में लगातार छोटी गिल्टियाँ या फुड़ियाँ निकलती हैं।

कंठला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० कंठ + ला (प्रत्य०)] १ गले में पहनने का बच्चों का एक गहना। कठुला।

विशेष—नजरबट्टू, बाघ का नख, दो चार तावीज आदि को तागे में गूथकर बालकों को उनके रक्षार्थ पहनाते हैं।

२ घेरा डालना। घेरा। उ०—ऊडछा उप्परि कंठला करि परामप्पुरि अरुखुरे।—पृ० रा० ४।१४।

कंठला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कंठला] बेंत की बनी डलिया (को०)।

कंठली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंठला] दे० 'कंठला'—२। उ०—दुसेन्या दरम्सी कडे कंठली मी।—रा० रू०, पृ० ३२।

कंठशालुक—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठशालुक] एक रोग जिसमें गले के भीतरी कफ के प्रकोप से बेर बराबर गाँठ उत्पन्न हो जाती है। यह गाँठ खुरखुरी होती है और काँटे की नाईं चुभती है।

कंठशुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठशुण्डी] गले की ग्रंथि का शोथ या सूजन (को०)।

कंठशूल—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठशूल] घोड़े के गले की एक भौंरी जो दूषित मानी जाती है।

कंठशोभा—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ + शोभा] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं और लघु अक्षरों की स्थानसमता बनी रहती है। जैसे,—फिरे हय बक्खर पक्खर से। मेने फिर इंदुज पंख कसे।—पृ० रा०, ६।३२।

कंठशोष—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठशोष] १. कंठ सूखना। गला सूखना। २ व्यर्थ विवाद (को०)।

कंठश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गले का एक गहना जो सोने का और जड़ाऊ होता है। २ पोत की कंठी। गुरिया। घूटा।

कंठसरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठश्री] दे० 'कंठश्री—१'। उ०—कंठसरी बहु भाँति मिलि मुकताहलाँ।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३, पृ० ३६।

कंठस्थ—वि० [सं० कण्ठस्थ] १ गले में अटका हुआ। कंठगत। २ जबानी। जिह्वाग्र। कंठ। कंठाग्र।

कंठहार—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठहार] गले में पहनने का एक गहना। हार।

कंठा—संज्ञा पुं० [हिं० कंठ] [स्त्री० अल्पा० कंठी] वह भिन्न भिन्न रंगों की रेखा जो तोते आदि पक्षियों के गले के चारों ओर निकल आती है। हँसली। २ गले का एक गहना जिसमें बड़े बड़े मनके होते हैं। ये मनके सोने, मोती या रुद्राक्ष के होते हैं। ३ कुरते या अँगरखे का वह अर्धचंद्राकार भाग जो गले पर आगे की ओर रहता है। (दर्जी)। ४ वह अर्धचंद्राकार कटा हुआ कपड़ा जो कुरते या अंगे के कंठे पर लगाया जाता है। ५ पत्थर या मोढ़े की पीठ का वह जो भाग उपान और कारनिस के बीच में हो।

कंठाग्र—वि० [सं० कण्ठाग्र] कंठस्थ। जबानी। बरजबान।

कंठाग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठग्रहण] कंठश्लेष। कंठालिंगन। गले लगाना। उ०—दूरि थकाँ ही मज्जणाँ कंठग्रहण करंति।—ढोला०, दू०, २१४।

कंठारूँधन—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठ + रोध] १ साँस रुकना। २ मृत्यु के निकट की अवस्था। उ०—कंठारूँधन भए मोह में लागा अजहूँ।—पलटू०, भा० १, पृ० २६।

कंठाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाव। नौका। २ कुदाल। बेलचा। ३ युद्ध। लड़ाई। ४ मथन का पात्र। ५ ऊँट। ६ एक खाद्य। कंद। सूरन। ७ पटेला। सरावन। ८ थैला (को०)।

कंठाला—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठाला] वह पात्र जिसमें मथने का काय किया जाय (को०)।

कंठिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लड़ीवाला हार (को०)।

कंठी[1]—वि० [सं० कण्ठिन्] कंठ या ग्रीवा संबंधी (को०)।

कंठी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठी] १ कंठ। गला। २ हार। छोटे दानों का हार। ३ घोड़े की गर्दन की रस्सी (को०)।

कंठी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंठा का अल्पा० रूप] १ छोटी गुरियों का कंठा। २ तुलसी चंपा आदि के छोटे छोटे मनियों की माला जिसे वैष्णव लोग गले में बाँधते हैं।

मुहा०—कंठी उठाना या छूना = कंठी की सौगंध खाना। कसम खाना। कंठी तोड़ना = (१) वैष्णवत्व का त्याग। मास मछली फिर खाने लगना। (२) गुरु छोड़ना। कंठी देना = चेला करना या चेला बनाना। कंठी बाँधना = (१) चेला बनाना। चेला मूँड़ना। (२) अपना अंधभक्त बनाना। (३) वैष्णव होना। भक्त होना। (४) मद्य, मांस छोड़ना। (५) विषयों को त्यागना। कंठी लेना = (१) वैष्णव होना। भक्त होना। (२) मद्य, माँस छोड़ना। (३) विषयों को त्यागना।

३ तोते आदि पक्षियों के गले की रेखा। हँसली। कंठी।

कंठीर—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कंठीरव'। उ०—सीत मेह मारुत तप सहणो शकल वतो कंठीर रहैं।—रघु० रू०, पृ० १०२।

कंठीरव—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] १ सिंह। २ कबूतर। ३ मतवाला हाथी। ४ स्पष्ट उक्ति। स्पष्टार्थक शब्दों में कथन (को०)।

कटर--सज्ञा पु० [ग्रं० डिकैंटर] १. शीशे की बनी हुई सुदर सुराही जिसमे शराब और सुगध आदि पदार्थ रखे जाते हैं। यह अच्छे शीशे की होती है, इसपर बेल बूटे भी होते हैं। इसकी डाट शीशे की होती है। करावा। २ चौडे मुँह की शीशी या बोतल। ३ कनस्टर (बोल०)।

कटल--सज्ञा पु० [स० कण्टल] बबूल [को०]।

कटा--सज्ञा पु०[स० काड] डेढ बालिश्त की एक पतली लकडी जिसके एक छोर पर चमडे का एक टुकडा लगा रहता है जिससे चूडिहारे चूडी रँगते हैं।

कटाइन¹--सज्ञा स्त्री०[स० कण्टक + हि० आइन (प्रत्य०)]१. चुडैल। भुतनी। डाइन। २ लडाकी स्त्री। दुष्टा स्त्री। कर्कशा स्त्री।

कटाइन²†--वि० [देश०] १ नकद। २. ठीक ठीक। पक्का।

कटाप-- सज्ञा पु० [स० कटोप] किसी वस्तु का अगला हिस्सा जो भारी हो भारी सिरा।

यौ०- कटापदार = जिसका आगा भारी हो। जैसे,--कटापदार जूता।

कटाफल--सज्ञा पु० [स० कण्टाफल] कटहल [को०]।

कंटाल--सज्ञा पु०[स० कण्टालु]एक प्रकार का रामबाँस या हाथीचक जो बबई, मदरास, मध्यभारत और गगा के मैदानो मे होता है। इसकी पत्तियों के रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं।

कटालु--सज्ञा पु० [स० कण्टालु] अनेक वनस्पतियो के नाम। जैसे, वार्ताकी, वश, बबुर और बृहती (को०)।

कटाह्वय--सज्ञा पु० [स० कण्टाह्वय] पद्म की जड [को०]।

कटिका--सज्ञा स्त्री० [स० कण्टक] १ पतली छोटी नोकदार नत्थी करने की तीली। २ पिन। ३ आलपिन।

कटी¹-- वि० [स० कण्टिन्] काँटेवाला। कटकयुक्त [को०]।

कटी²--सज्ञा पु० अनेक वृक्षो के नाम, जैसे,--अपामार्ग, खदिर, गोक्षुर आदि [को०]।

कटूनमेट-- सज्ञा स्त्री० [अ० कैंटूनमेंट] वह स्थान जहाँ फौज रहती हो। छावनी।

कटोप--सज्ञा पु० [हि० कान+तोप] एक प्रकार की टोपी जिससे सिर और कान ढके रहते हैं। इसमे एक चँदिया के किनारे छह सात अगुल चौडी दीवाल लगाई जाती है जिसमे चेहरे के लिये मुँह काट दिया जाता है।

कंट्रैक्ट-- सज्ञा पु० [अ०] ठेका। ठीका। इजारा।

कंट्रैक्टर--सज्ञा पु० [अं०] ठेकेदार या ठीकेदार।

कंट्रोल--सज्ञा पु० [अ०] १ नियंत्रण। काबू। जैसे--इतनी बडी सभा पर कट्रोल करना हँसी खेल नही। २ किसी वस्तु के समुचित वितरण के लिये सरकारी अधिकार।

यौ०--कट्रोल आफिस = वह कार्यालय जहाँ से कट्रोल की कार्यवाही का सचालन होता है। कट्रोल शॉप = कंट्रोल की दूकान।

कठ--सज्ञा पु० [स० कण्ठ] [वि० कठ्य] १ गला। टेंटुआ। उ०--मेली कठ सुमन की माला।--मानस, ८।८।

यौ०--कठमाला।

मुहा०--कठ सूखना = प्यास से गला सूखना।

२ गले की वे नलियाँ जिनमे भोजन पेट मे उतरता है और आवाज निकलती है। घाँटी।

यौ०--कठस्थ। कठाग्र।

मुहा०--कठ करना या रखना = कठस्थ करना या रखना। जबानी याद करना या रखना। कठ खुलना = (१) रुँधे हुए गले का साफ होना। (२) आवाज निकलना। कठ फूटना = (१) वर्णो के स्पष्ट उच्चारण का आरभ होना। आवाज खुलना। बच्चो की आवाज साफ होना। (२) बकारी फूटना। बक्कुर निकलना। मुँह से शब्द निकलना। (३) घाँटी फूटना। युवावस्था आरभ होने पर आवाज का बदलना। कठ बैठना या गला बैठना = आवाज का बेसुरा हो जाना। आवाज का भारी होना। कठ होना = कठाग्र होना। जबानी याद होना। जैसे,-- उनको यह सारी पुस्तक कठ है।

३ स्वर। आवाज। शब्द। जैसे,--उसका कठ बडा कोमल है। उ०--अति उज्वला सब बालहु बसे। शुक केकि पिकादिक कठहु रसे।--केशव (शब्द०)। ४ वह लाल नीली आदि कई रगो की लकीर जो सुग्गो, पडुक आदि पक्षियो के गले के चारो ओर जवानी मे पड जाती है। हँसली। कठा। उ०--(क) राते श्याम कठ दुइ गीवाँ। तेहि दुई फद डरो मठ जीवाँ।--जायसी (शब्द०)।

मुहा०--कठ फूटना = तोते आदि पक्षियो के गले मे रगीन रेखाएँ पडना। हँसली पडना या फूटना। उ०--हीरामन हौं तेहिक परेवा। कठ फूट करत तेहि सेवा।--जायसी (शब्द०)।

५ किनारा। तट। तीर। काँठा। जैसे,-- वह गाँव नदी के कठ पर बसा है। ६ अधिकार मे। पास। उ०--निज कठन पुरसान। पृ० रा०, १३।११०। ७ मैनफल का पेड। मदन वृक्ष।

कठकुब्ज-- सज्ञा पु० [सं० कण्ठकुब्ज] सनिपात रोग का एक भेद।

विशेष--यह तेरह दिन तक रहता है। इसमे सिर मे पीडा और जलन होती है, सारा शरीर गरम रहता और दर्द करता है।

कठकूजिका--सज्ञा स्त्री० [स० कण्ठकूजिका] वीणा।

कठकूणिका-- सज्ञा [स० कण्ठकूजिका] वीणा।

कठगत--वि० [स० कण्ठगत] गले मे प्राप्त। गले मे स्थित। गले मे आया हुआ। गले मे अँटका हुआ।

मुहा०--प्राण कठगत होना = प्राण निकलने पर होना। मृत्यु का निकट आना। उ०--प्राण कठगत भयउ भुवालू।--तुलसी (शब्द०)।

कठत--क्रि० वि० [सं० कण्ठत.] १ कठ या गले से। २ खुले रूप मे या स्पष्टतया [को०]।

कठतलासिका--सज्ञा स्त्री० [स० कण्ठतलासिका] रस्सी या चमडे की पट्टी जो घोडे के गले मे रहती है [को०]।

कठतालव्य--वि० [स० कण्ठतालव्य] (वर्ण) जिनका उच्चारण कठ और तालु स्थानो से मिलकर हो।

विशेष--शिक्षा मे 'ए' और 'ऐ' को कठतालव्य वर्ण या कठतालव्य कहते हैं। इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है।

कजल सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का पक्षी।

कजा[1]—सज्ञा पुं० [स० करञ्ज] १ एक कँटीली झाडी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिस की पत्तियो से कुछ मिलती जुलती कुछ अधिक चौडी होती है। इसके फूल पीले पीले होते हैं। फलो के गिर जाने पर कँटीली फलियाँ लगती हैं। इनके ऊपर का छिलका कडा और कँटीला होता है। एक एक फली मे एक से तीन चार तक बेर के बराबर गोल गोल दाने होते है। दानो के छिलके कडे और गहरे खाकी धुएँ के रग के होते हैं। के लड़के इन के दानो से गोली की तरह खेलते हैं। वैद्य लोग इसकी गूदी को औषध के काम मे लाते हैं। यह ज्वर और चमरोग मे बहुत उपयोगी होती है। अँगरेजी दवाइयो मे भी इसका प्रयोग होता है। इससे तेल भी निकाला जाता है जो खुजली की दवा है। इसकी फुनगी और जड भी काम मे आती है। यह हिंदुस्तान और बर्मा मे बहुत होता है और पहाडो पर २५००० फुट की ऊँचाई तक तथा मैदानो और समुद्र के किनारे पर होता है। इसे लोग खेतो के बाड पर भी रूँधने के लिये लगाते है।

पर्या०—गटाइन। करजुवा। कुबेराक्षी। क्रकचिका। वारिणी। कटकिनी।

२ इस वृक्ष का बीज।

कजा[2]—वि० [देश० अथवा स० कञ्ज सेवार के रग का, काही या खाकी रग का] [स्त्री० कजी] १ कजे के रग का। गहरे खाकी रग का। जैसे,—कजी आँख।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग आँख ही के लिये होता है।

२ जिसकी आँख कजे के रग की हो। उ०—ऐचा ताना कहे पुकार। कजे से रहियो हुशियार। (कहा०)।

कजार—सज्ञा पुं० [स०] १ मोर। २ उदर। ३ हाथी। ४ मुनि ५ सूर्य। ६ ब्रह्मा (को०)।

कजावलि—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण मे भगण, नगण और दो जगण और एक लघु (भ न ज ज ल) होता है। इसे पकजवाटिका और एकावली भी कहते हैं। उ०—भानुज जल महँ आय परे जब। कजअवलि विकसैं सर में तब। त्यो रघुवर पुर आय गए तब। नारिन नर प्रमुदे लखिके सब (शब्द०)।

कजासा—सज्ञा पु० [हिं० गाँजना] कूडा।

कजिका—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्जिका] १ ब्राह्मणयष्टिका वृक्ष। २ बम्हनेटी। दे० 'भारगी'।

कजिनी—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्जिनी] वेश्या।

कजूस—वि० [स० कण+हिं० चूस] [सज्ञा कजूसी] जो धन का भोग न करे। जो न खाय और न खिलावे। कृपण। सूम। मक्खीचूस।

कजूसी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कजूस] कृपणता। सूमपन। उदारता का अभाव।

कट[1]—वि० [स० कण्ट] काँटे से युक्त (को०)।

यौ०—कटपत्रफला=ब्रह्मदण्डी नाम का पौधा। कटफल=(१) कटहल। (२) धतूरा। (३) लताकरज। (४) गोखरू।

कट[2]—सज्ञा पु० [हिं० काँटा] दे० 'काँटा'।

कटक—सज्ञा पुं० [स० कण्टक] [वि० कटकित] १ काँटा। उ०—ध्वज कुलिस अकुस कज जुत बन फिरत कटक किन लहे।—मानस, ७।१३। २ सूई की नोक। ३ क्षुद्र शत्रु। ४. वाममार्गवालो के अनुसार वह पुरुष जो वाममार्गी न हो या वाममार्ग का विरोधी हो। पशु। ५ विघ्न। बाधा। बखेडा। ६ रोमाच। ७ ज्योतिष के अनुसार जन्मकुडली मे पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। ८ बाधक। विघ्नकर्ता। उ०—जो निज गो-द्विज देव धर्म कर्मो का कटक।—साकेत पृ० ४१७। ९ वख्तर। कवच।—डिं०।

यौ०—निष्कटक

कटकद्रुम—सज्ञा पुं० [स० कण्टद्रुकन] १ कँटीली वृक्ष। २ कँटीली झाडी। ३ शाल्मलि वृक्ष। सेमल का पेड (को०)।

कटकफल—सज्ञा पुं० [स० कण्टकफल] १ कटहल। २ गोखरू। ३ एरड या रेंड़ का पेड। ४ धतूरा (को०)।

कटकशोधन—सज्ञा पुं० [स० कण्टकशोधन] दे० कटकोद्धरण'। —कौटिल्य अर्थ०, पृ० २००।

कटकश्रेणी—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकश्रेणी] दे० 'कटकारी (को०)।

कटकार—सज्ञा पु० [स० कण्टकार] [स्त्री० कटकारी] १ सेमल। २ एक प्रकार का बबूल। विकक। बची। ३ भटकटैया। कटेरी।

कटकारिका—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकारिका] दे० 'कटकारी' (को०)।

कटकारी—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकारी] १ भटकटैया। २. कटेरी। छोटी कटाई। ३ सेमल।

कटकाल—सज्ञा पु० [स० कण्टकाल] १ कटहल। २ काँटो का घर।

कटकालुक—सज्ञा पु० [स० कण्टकालुक] जवासा।

कटकाशन—सज्ञा पु० [स०] ऊँट।

कटकाष्ठील—सज्ञा पु० [स० कण्टकाष्ठील] एक तरह की मछली।

कटकाह्वय—सज्ञा पु० [स० कण्टकाह्वय] दे० कटाह्वय' (को०)।

कटकित—वि० [स० कण्टकित] १ रोमाचित। पुलकित। उ०—होति अति उससि उसासन तें, सहज सुवासन शरीर मजु लागे पौन।—देव (शब्द०)। २ काँटेदार। उ०—कमल कटकित सजनी कोमल पाय। निशि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाय। तुलसी (शब्द०)।

कटकिनी[1]—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकिनी] भटकटैया (को०)।

कटकिनी[2]—वि० १ कँटीली। २ व्यग्रकारी। ३ चुभनेवाली (को०)।

कटकिल—सज्ञा पु० [स० कण्टकिल] एक तरह का कँटीला बाँस (को०)।

कटकी[1]—वि० [स० कण्टकिन्] काँटेदार। कँटीला।

कटकी[2]—सज्ञा पु० १. छोटी मछली। कँटवा। २ खैर का पेड। ३ मैनफल का पेड। ४ बाँस। ५. बैर का पेड। ६ गोखरू। ७. काँटेदार पेड।

कटकी[3]—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकी] भटकटैया।

कटकोद्धरण—सज्ञा पु० [स० कण्टकोद्धरण] १. काँटा निकालना। २ विघ्ननिवारण। ३ शत्रु का दमन। ४ राष्ट्र या समाजद्रोहियो का अनुशासन।—मनु०, अ० ९।

मुहा०—कंचन बरसना = (किसी स्थान का) समृद्धि और शोभा से युक्त होना। उ०—तुलसी वहाँ न जाइए कंचन बरसैं मेह।—तुलसी (शब्द०)।

२ धन। संपत्ति। उ०—(क) कंचन कंचन सब कोउ कहँ पहुँचै बिरला कोय। इक कंचन इक कामिनी दुर्गम घाटी दोय।—कबीर (शब्द०)। (ख) बंचक भगत कहाय राम के। किंकर कंचन कोह काम के।—तुलसी (शब्द०)। ३ धतूरा। ४ एक प्रकार का कचनार। रक्त कांचन। ५. [स्त्री० कंचनी] एक जाति का नाम जिसमें स्त्रियाँ प्रायः वेश्या का काम करती हैं।

कंचन²—वि० १ नीरोग। स्वस्थ। २ स्वच्छ। सुंदर। मनोहर।

कंचनपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनपुरुष] सोने के पत्र पर खोदी हुई पुरुष की एक मूर्ति जो मृतक कर्म में महाब्राह्मण को दी जाती है। यज्ञपुरुष को भी कांचनपुरुष कहते हैं।

कंचनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचनार] एक छोटी जाति का कचनार। इसकी पत्तियाँ और फूल छोटे होते हैं।

कंचनी—संज्ञा स्त्री०[सं० कञ्जिनी = वेश्या अथवा सं० कंचन + हिं० ई (प्रत्य०)] वेश्या। उ०—सेवक द्विज दच्छिना, कंचनी कवि धन पावत।—प्रेमघन, पृ० ३३।

कंचा (पु)—वि०[हिं० कच्चा] दे० 'कच्चा'। उ०—कहे दरिया परिपंच फंदा रचा इसिक मासूक बिनु रहत कंचा।—सं० दरिया, पृ० ७३।

कंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] १. बाँस की शाखा। २ फुंसी। छोटा फोड़ा।

कंची (पु)—वि० [हिं० कच्ची] दे० 'कच्ची'। उ०—रज औ बिंद की कंची काया।—स० दरिया, पृ० १६७।

कंचु—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] दे० 'कंचुकी'। उ०—स्वर्ण सूत्र से रजत हिलोरें कंचु काढ़ती प्रात।—गुंजन, पृ० ८८।

कंचुक—संज्ञा पुं० [सं० कंचुक] [स्त्री० कंचुकी] १ जामा। चोलक। चपकन। अचकन। २ चोली। अँगिया। ३ वस्त्र। ४. बख्तर। कवच। ५. केंचुल। ६. कंचुक के आकार का कवच जो घुटने तक होता था (को०)। ७ भूसी या छिलका (को०)। ८. तसमा। चमड़े का पट्टा (को०)।

कंचुकालु—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुकालु] सर्प। साँप [को०]।

कंचुकित—वि०[सं० कञ्चुकित]१ जो कंचुकयुक्त हो। २ जो कवच धारण किए हो। ३ कई या अनेक पर्तोंवाला (मोती) [को०]।

कंचुकी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] १. अँगिया। चोली। उ०—कबहिं गुपाल कंचुकी फारी कब भए ऐसे जोग।—सूर०, १०।७७८। २ केंचुल। उ०—सुंदर पानी कंचुकी नीकसि भागो साँप।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७१०।

कंचुकी²—संज्ञा पुं०[सं० कञ्चुकिन्]१ रनिवास के दास दासियों का अध्यक्ष। अंतःपुररक्षक।

विशेष—कंचुकी प्रायः बड़े बूढ़े और अनुभवी ब्राह्मण हुआ करते थे जिनपर राजा का पूरा विश्वास रहता था।

२ द्वारपाल। नकीब। ३. साँप। ४ छिलकेवाला अन्न, जैसे—धान, जौ चना इत्यादि। ५. व्यभिचारी। लंपट (को०)।

कंचुरि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुली] केंचुल। उ०—नैना हरि अंग रूप लुबधे रे माई। लोक लाज कुल की मर्यादा बिसराई। जैसे चंदा चकोर, मृगी नाद जैसे। कंचुरि ज्यों त्यागि फनिक फिरत नहीं तैसे।—सूर (शब्द०)।

कंचुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका] अँगिया। चोली [को०]।

कंचुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुली] केंचुल। उ०—(क) विषै कर्म की कंचुली पहिर हुआ नर नाग।—कबीर ग्र०, पृ० ४१। (ख) माँग तें मुकुतावलि टरि, अलक संग अरुझि रही उरगिनि सत फन मानौं कंचुलि तजि दीनी।—सूर० १०।१६६४।

कंचू (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कंचुकी'—१'। उ०—हेरे सिय एम उमग हियो, कंचू कंज श्रीफतनू कढ़ियो।—रघु रू०, पृ० ११३।

कंचूवा—संज्ञा स्त्री०[सं० कञ्चुक] दे० 'कंचुवा–२'। उ०—(क) सिर साडी गलि कंचुवउ हुवउ निचोवण जोग।—ढोला० दू० ८३। (ख) रतन जडित की कांचली औ कसी कंचूवउ परड हो सुमीड।—बी० रासो, पृ० ६६।

कंछा—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका = बाँस की पतली टहनी या हिं० कनखा, मि० तु० 'कमचा'] पतली डाल। कनखा। कल्ला।

कंज—संज्ञा पुं० [सं० कञ्ज] १ ब्रह्मा। २ कमल।

यौ०—कंजज = ब्रह्मा। उ०—कंजज की मति सी बड़भागी। श्री हरि मंदिर सों अनुरागी।—केशव (शब्द०)।

३ चरण की एक रेखा जिसे कमल या पद्म कहते हैं। यह विष्णु के चरण में मानी गई है। ४. अमृत। ५. सिर के बाल। केश।

कंज अवलि—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्ज + आवलि] दे० 'कंजावलि'।

कंजई¹—वि० [हिं० कंजा] कंजे के रंग का। धुएँ के रंग का। खाकी।

कंजई²—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का रंग। खाकी रंग। २ वह घोड़ा जिसकी आँख कंजई रंग की होती है।

कंजक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पक्षी विशेष। ३ मैना [को०]।

कंजड़—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० कालंजर] [स्त्री० कंजड़िन, कंजड़ी, कंजरी] एक अनार्य जाति।

विशेष—यह भारतवर्ष के अनेक स्थानों में विशेषकर बुंदेलखंड में पाई जाती है। इस जाति के लोग रस्सी बटते, सिरकी बनाते और भीख माँगते हैं।

कंजन—संज्ञा पुं० [सं० कञ्जन] १ कामदेव। १ पक्षीविशेष। ३ मैना [को०]।

कंजनाभ—संज्ञा पुं० [सं० कञ्जनाभ] दे० 'पद्मनाभ' [को०]।

कंजर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। उदर। २ हाथी। ३ सूर्य। ४ ब्रह्मा। ५ मयूर। मोर। ६ संन्यासी [को०]।

कंजर²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कंजड़'।

कंजरवेटिव—वि०[अं० कंजर्वेटिव] १ परंपरावादी। २. अनुदार। ३. ब्रिटेन का एक राजनीतिक दल और उसका सदस्य।

कंजरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ कंजड़ जाति की स्त्री। २ वेश्या।

विशेष—इसके फल शीतलचीनी से बड़े और कड़े होते हैं। ये दवा के काम मे आते हैं और तेल के मसालो मे पडते हैं।

कंकोली—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कोली] दे० 'कंकोल' [को०]।

कंख—संज्ञा पुं० [सं० कङ्ख] १ आनंद। २ पाप का या फल का भोग [को०]।

कंग(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कट] कवच। जिरह। बख्तर।—डिं०।

कंग[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] दे० 'कंकु'।

कंगण—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] १ लोहे का एक चक्र जिसे अकाली सिक्ख सिर मे बाँधते है। २ दे० 'कंकण'।

कंगन—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] कंकण।

मुहा०—कंगन खोलना = (१) दो आदमियों का एक दूसरे के पंजे को मरोड़ना। (२) पंजा मिलाना। पंजा फँसाना। हाथ कंगन को आरसी क्या = प्रत्यक्ष बात के लिये किसी दूसरे प्रमाण की क्या आवश्यकता है।

कंगल[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] कंग। कवच। उ०—(क) कटै कंगल अंग ओ जीन बाजी।—हं० रासो, पृ० १३२। (ख) वह्व फुट्टत पक्खर कंगलय।—हं० रासो, पृ० १०१।

कंगल[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कंग' उ०—लै कंगल धावैं तेग बचावैं पैज बुरावैं वीर छल।—प० रासो, पृ० १८६।

कंगारू—संज्ञा पुं० [अं० कंगरू] एक प्रकार का जानवर जो आस्ट्रेलिया में पाया जाता है।

विशेष—इसकी मादा के पेट मे एक बहिर्मुखी थैली होती है जिसमे अपने बच्चे को रखकर वह चलती है।

कंगाल—वि० [सं० कङ्काल] [स्त्री० कंगालिन (क्व०)] १ भुक्खड़। अकाल का मारा। उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यो कंगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी० (शब्द०)। २ निर्धन। दरिद्र। गरीब। रंक। उ०—डाक्टरो प्रयत्न से वह फिर सचेत हुई और कंगाल से धनी हुई।—सरस्वती (शब्द०)।

यौ०—कंगाल गुंडा = वह पुरुष जो कंगाल होने पर भी व्यसनी हो। कंगाल बाँका = दे० 'कंगाल गुंडा'।

कंगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंगाल] निर्धनता। दरिद्रता। गरीबी।

मुहा०—कंगाली मे आटा गीला होना = अभाव की दशा मे और अधिक संकट पडना। निर्धनता मे घोर अभाव का अनुभव करना।

कंगु—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गु] कँगनी धान्य (भावप्रकाश मे इसके चार प्रकार कहे गए हैं)।

कंगुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गुनी] दे० 'कंगु' [को०]।

कंगुर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कंगूरा'। उ०—वह्व कंगुर कंगुर वीर अरे।—हं० रासो०, पृ० ७७।

कंगुरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कंगूरा'। उ०—इस मसजिद मे तीन कंगुरा।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२।

कंगुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गुल + हिं० ई (प्रत्य०) = कङ्गुली + हिं इया (प्रत्य०)] कनगुरिया।

कंगुल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गुल] हाथ [को०]।

कंगुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० कङ्गुष्ठ] दे० 'कङ्कुष्ठ' [को०]।

कंगूरा—संज्ञा पुं० [फा० कंगूरह] बुर्ज या गुंबद।

यौ०—कंगूरेदार = जिसमे कंगूरा हो।

कंघा—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कत प्रा० कंकअ] [स्त्री० अल्पा० कंघी] १ लकडी, सींग आदि की बनी हुई चीज जिसमे लंबे पतले दाँत होते हैं। इससे सिर के बाल झाडे या साफ किए जाते हैं। १ बड़े आकार की कंघी। २. जुलाहों का एक औजार जिससे वे करघे मे भरनी के तागो को कसते है। बय। बौला। बैसर। दे० 'कंघी'–२।

कंघी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती, प्रा० कंकई] १ छोटा कंघा।

मुहा०—कंघी चोटी = बनाव सिंगार। कंघी चोटी करना = बाल सँवारना। बनाव सिंगार करना।

२ जुलाहों का एक औजार।

विशेष—यह बांस की तीलियों का बनता है। पतली, गज डेढ गज लंबी दो तीलियाँ चार से आठ अंगुल के फासले पर आमने सामने रखी जाती है। इनपर बहुत सी छोटी छोटी तथा बहुत पतली और चिकनी तीलियाँ होती हैं जो इतनी सटाकर बाँधी जाती हैं कि उनके बीच एक तागा निकल सके। करघे मे पहले ताने का एक एक तार इन आडा पतली तीलियों के बीच से निकाला जाता है। बाना बुनते समय इसे जोलाहे राछ के पहले रखते है। ताने मे प्रत्येक बाना बुनने पर बाने को गँसने के लिए कंघी को अपनी ओर खींचते हैं जिससे बाने सीधे और बराबर बुने जाते हैं। बय। बौला। बैसर।

३ एक पौधे का नाम।

विशेष—यह पाँच छह फुट ऊँचा होता है इसकी पत्तियाँ पान के आकार की पर अधिक नुकीली होती हैं और उनके कोर दंदानेदार होते हैं पत्तियो का रंग भूरापन लिए हलका हरा होता है। फूल पीले पीले होते हैं। फूलों के झड जाने पर मुकुट के आकार के डेँढ़ लगते हैं जिनमे खडी खडी कमरखी या कँगनी होती है। पत्तों और फलों पर छोटे छोटे घने नरम रोएँ होते हैं जो छूने मे मखमल की तरह मुलायम होते हैं। फल पक जाने पर एक एक कमरखी के बीच कई कई काले दाने निकलते हैं। इसकी छाल की रेशे मजबूत होते हैं। इसकी जड, पत्तियां और बीज सब दवा के काम मे आते हैं। वैद्यक मे इसको वृष्य और ठंडा माना है। संस्कृत मे इसे अतिबला कहते हैं।

पर्या०—अतिबला। बलिका। कंकती। विककता। घंटा। शीता। शीतपुष्पा। वृष्यगंधा।

कंच[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कंचन'। सत सो पूर है सूर माँडे रहै कंच कुच आदि नहि ओर आवै।—गुलाल०, पृ० १०६।

कंच[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० काच] दे० 'काँच'।

कंचकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] दे० 'कंचुकी'। उ०—पीत कंचकी सधि, पडि कस अंग उपट्टिय। पृ० रा०, २५।१६२।

कंचन—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चन] १ सोना। सुवर्ण।

कंकतिका—संज्ञा स्त्री०[सं० कङ्कतिका]१ कघी । २ केशप्रसाधिनी [को०] ।

कंकती—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कती] दे० 'कंकतिका' ।

कंकत्रोट—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कत्रोट] [स्त्री० कंकत्रोटी] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है । कौआ मछली ।

कंकन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण]१. 'कंकण'[१] । उ०—दीन्ही हार गरें, कर 'कंकन' मोतिनि थार भरे—सूर०१०।१७। दे० 'कंकण' । उ०—कर कंपै कंकन छूटै ।–सूर० ६।२५।

कंकपत्र—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कपत्र] १ कंक का पर । २ वाण ।

कंकपत्री—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कपत्रिन्] वाण । तीर ।

कंकपर्वा—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कपर्वन्] एक प्रकार का साँप ।

कंकपृष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कपृष्ठी] एक प्रकार की मछली ।

कंकमुख—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कमुख] एक प्रकार की सँडसी जिससे चिकित्सक किसी के शरीर में चुभे हुए काँटे को निकालते हैं ।

कंकर[१](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] दे० 'कंकड़' ।

कंकर[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं०किङ्कर]सेवक । दास । उ०—विनु गुर जम कंकर वसि परै । प्राण०, पृ० ३५ ।

कंकरीट—संज्ञा स्त्री० [अं० कांक्रीट] १ एक मसाला जो गच पीटने के समय छत पर डाला जाता है । चूना या सीमेंट, कंकड, बालू इत्यादि से मिलकर बना हुआ गच पीटने का मसाला । छर्रा. बजरी ।

विशेष—चूने या सीमेंट में चौगुने या पचगुने कंकड़, ईंट के टुकड़े, बालू आदि मिलाकर यह बनाया जाता है ।

२ छोटी छोटी कंकडी जो सडकों में बिछाई और कूटी जाती है ।

कंकरोल—संज्ञा पुं०[सं० कङ्करोल]एक वृक्ष का नाम । निकोचक[को०]

कंकल—संज्ञा पुं० [सं० कुंकल] चव्य या चाव का पौधा ।

विशेष—यह मलक्का द्वीप में बहुत होता है । भारतवर्ष के मलाबार प्रदेश में भी होता है । इसका फल गजपीपर है । लकडी भी दवा के काम में आती है । जड को चैकठ कहते हैं । बंगाल में जड और लकडी रँगने के काम में आती है । इसका अकेला रंग कपडे पर पीलापन लिए हुए बादामी होता है और कसूम के साथ मिलने में लाल बादामी रंग आता है ।

कंका—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्का] राजा उग्रसेन की लडकी जो कंक की बहिन थी । यह वसुदेव के भाई को ब्याही थी ।

कंकारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

कंकाल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्काल] १ ठठरी । अस्थिपंजर । शरीर की हड्डियों का ढाँचा ।

यौ०—कंकालास्त्र ।

कंकालकाय—वि० [सं० कङ्कालकाय] १ हड्डियों के ढाँचे से शरीर-वाला । २. अत्यंत दुर्बल । उ०—वे दीन क्षीण कंकालकाय । —तुलसी०, पृ० १७ ।

कंकालमाली[१]—वि० [सं० कङ्कालमालिन्] हड्डी की माला पहनने-वाला । जो हड्डी की माला पहने हो ।

कंकालमाली[२]—संज्ञा पुं० [स्त्री० कङ्कालमालिनी] १ शिव । महादेव । २ भैरव ।

कंकालय—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कालय] देह । शरीर [को०] ।

कंकालशर—संज्ञा पुं०[सं०]वह वाण जिसके सिरे पर हड्डी लगी हो ।

कंकालशेष—वि० [सं० कङ्कालशेष] १ जो हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया हो । २ अतिकृश । उ०—कंकालशेष नर मृत्युप्राय । —अनामिका, पृ० २४ ।

कंकालास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कालास्त्र] एक अस्त्र का नाम जो हड्डी से बनता था ।

कंकालिनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कालिनी] दुर्गा का एक रूप ।

कंकालिनी[२]—वि० उग्र स्वभाव की । कर्कशा । झगडालू । लडाकी । दुष्टा । उ०—कंकालिनि कूवरी, कलकिनि कुरूप तैसी चेटकनि चेरी ताके चित्त को चहा कियो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कंकाली[१]—संज्ञा पुं०[सं० कङ्काल + हिं० ई (प्रत्य०)][स्त्री० कंकालिन] एक पिछडी जाति जो गाँव गाँव किंगरी बजाकर भीख माँगती फिरती है । उ०—यश कारण हरिचंद नीच घर नारि समर्प्यो । यश कारण जगदेव सीस कंकालिहि अर्प्यो ।—बैताल (शब्द०) ।

कंकाली[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कालिनी] दुर्गा का एक रूप । उ०—कर गहि कपाल पीवै रुधिर कंकाली कौतुक करै ।—हम्मीर०, पृ० ५८ ।

कंकाली[3]—वि० कर्कशा । लडाकी ।

कंकु—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] कगु नामक अन्न । कँगनी ।

कंकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कुष्ठ] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी ।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती है । कहते हैं, यह सफेद और पीली दो प्रकार की होती है । सफेद को नालिक और पीली को रेणुक कहते हैं । रेणुक ही अधिक गुणवाली समझी जाती है । वैद्यक के अनुसार यह गुरु, स्निग्ध, विरेचक, तिक्त, कटु, उष्ण, वर्णकारक और कृमि, शोथ, गुल्म तथा कफ की नाशक होती है ।

पर्या० —कालकुष्ठ । विरंग । रंगदायक । रेचक । पुलक । शोधक । कालपालक ।

कंकुष—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कुष] भीतरी शरीर । आभ्यंतर देह [को०] ।

कंकेरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पान जो कडुआ होता है ।

कंकेरु—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केरु] कौआ ।

कंकेल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केल] बथुआ ।

कंकेलि—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केलि] अशोक का पेड ।

कंकेल्ल—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केल्ल] दे० 'कंकेलि' [को०] ।

कंकेल्लि—संज्ञा पुं० [सं० कङ्केल्लि] दे० 'कंकेलि' [को०] ।

कंकोल—संज्ञा पुं०[सं० कङ्कोल]१. शीतल चीनी के वृक्ष का एक भेद । उ०—चंदन वदन योग तुम, धन्य द्रुमन के राय, देत कुंकुज कंकोल लो, देवन सीस चढाय ।—दीनदयाल (शब्द०) । २ कंकोल का फल । इसे कंकोल मिर्च भी कहते हैं । उ०— शशियुत डील जिती कंकोल ।—रत्नपरीक्षा (शब्द०) ।

क

क—हिंदी वर्णमाला का पहला व्यंजन वर्ण। इसका उच्चारण कंठ से होता है। इसे स्पर्श वर्ण भी कहते हैं। ख, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं।

क—संज्ञा पुं० [सं० कम्] १ जल। २ विष। ३ अग्नि। ४. तनय। ५ रत्न। ६ मेघ। ७ पुष्प। उ०—मेघ पुष्प जिन सर्वमुख क कचय रंग तोय।—नंद ग्रं०, पृ० ५०। ८ मस्तक। उ०—सिंधु मथ के पत्र जन दो बने चक्र अनूप। देख क को छवि छावत सकल सोभा रूप।—सूर (शब्द०)। ९ सुख। १० काम। ११ सोना। उ०—क० सुख, क जल, क अनल, क गिर क पुनि काम। क कंचन ते प्रीति तजि, सदा कहो हरिनाम। —नंददास (शब्द०)। १२ केश (को०)। १३ अंग (को०)। १४ कृपणता। कंजूसी (को०)। १५ दुग्ध। दूध (को०)।

कक—संज्ञा पुं० [सं० कङ्क] [स्त्री० कंका, कंकी (हिं०)] १ एक मांसाहारी पक्षी जिसके पंख वाणों में लगाए जाते थे। सफेद चील। काक। उ०—खग, कंक, काक, शृगाल। कट कटहि कठिन कराल।—तुलसी (शब्द०)। २ एक प्रकार का आम जो बहुत बड़ा होता है। ३ यम। ४ क्षत्रिय। ५ युधिष्ठिर का उस समय का कल्पित नाम जब वे ब्राह्मण बनकर गुप्त भाव से विराट के यहाँ रहे थे। ६ एक महारथी यादव जो वसुदेव का भाई था। ७ कंस के एक भाई का नाम। ८ एक देश का नाम।—वृ० सं०, पृ० ८३। ९ एक प्रकार के केतु जो वरुण देवता के पुत्र माने जाते हैं।

विशेष—ये संख्या में ३२ हैं और इनकी आकृति बाँस की जड़ के गुच्छे की सी है। ये अशुभ माने जाते हैं।

१० बगला। ११ शरीर। उ०—विपिकन वीर अत्यंत उंक। जिन पिप्पि कंक अनसक संक।—पृ० रा०, ६।७७। १२ युद्ध। उ०—करि कंक संक आसुरनि डर।—पृ० रा०, २।२८५ १३ तीक्ष्ण लोहा। १४ वृक्षविशेष (को०)। १५ एक प्रकार का आम (को०)। १६ मिथ्या ब्राह्मण। अब्राह्मण होते हुए अपने को ब्राह्मण कहनेवाला व्यक्ति (को०)। १७ द्वीप। १८ विभागों में से एक (को०)।

यौ०—कंकत्रोट। कंकपत्र। कंकपर्वा। कंकपृष्ठी। कंकमुख।

कंकट—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कट] कवच। सनाह। वर्म। उ०—दृढ सु ध्रम्म राजेंद्र। दुष्ट कंकट सिर कहे।—पृ० रा०, १।४१५। २ अंकुश (को०)। ३ सीमा। हद (को०)।

कंकटक—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कटक] १ कवच। वर्म। सनाह। २ अंकुश (को०)।

कंकटकर्मांत—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कटकर्मान्त] तारों से कवच (बख्तर) बनाने का कारखाना (को०)।

कंकड—संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर] [स्त्री० अल्पा० कंकडी] [वि० कंकडीला] १ एक खनिज पदार्थ। कंकड जो जलाकर चूना बनाया जाता है।

विशेष—यह उत्तरी भारत में पृथ्वी के खोदने से निकलता है। इसमें अधिकतर चूना और चिकनी मिट्टी का अंश पाया जाता है। यह भिन्न भिन्न आकृति का होता है, पर इसमें प्राय नह या परत नहीं होती। इसकी सतह खुरदरी और नुकीली होती है। यह चार प्रकार का होता है।—(क) तेलिया अथवा काले रंग का, (ख) दुधिया, अर्थात् सफेद रंग का। (ग) बिछुआ, अर्थात् बहुत नुकीला और (घ) छर्रा, अथवा छोटी छोटी कंकड़ी। यह प्राय सड़क पर कूटा जाता है। छत की गच और दीवार की नींव में भी दिया जाता है।

२ पत्थर का छोटा टुकड़ा। ३ किसी वस्तु का वह कठिन टुकड़ा जो आसानी से न पिस सके। खँगड़ा। ४ सूखा या सेंका हुआ तमाखू जिसे गाँजे की तरह पानी मिलाकर रखकर पीते हैं। ५ रवा। डला। जैसे,—एक कंकड़ी नमक लेते आओ। ६ जवाहिरात का छोटा बराबड और बेडौल टुकड़ा।

मुहा०—कंकड पत्थर = बेकाम की चीज। कूड़ा करकट।

कंकडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कंकड़ का अल्पा० रूप] १ छोटा कंकड़। अँकड़ी। २ कण। छोटा टुकड़ा।

विशेष—दे० 'कंकड़'।

कंकण—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] १ कलाई में पहनने का आभूषण कंगना। कड़ा। खड़ुआ। चूड़ा। उ०—हू कर कंकण दर्पण देखें।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८६। २ एक धागा जिसमें सरसों आदि की पुटली पीले कपड़े में बाँधकर लोहे के एक छल्ले के साथ विवाह के समय से पहले दूल्हा या दुलहिन के हाथ में रक्षार्थ बाँधते हैं।

विशेष—विवाह में देशाचार के अनुसार चोकर, सरसों, अजवायन आदि की नौ पोटलियाँ पीले कपड़े में लाल तागे से बाँधते हैं। एक तो लोहे के छल्ले के साथ दूल्हा या दुलहिन के हाथ में बाँध दी जाती है और शेष आठ मसल, चाकी, ओखली, पीढ़ा, हरिस, लोढ़ा कलश आदि में बाँधी जाती है।

३ एक प्रकार का षाडव राग जो गांधार से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर वर्जित है। इसमें प्राय मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग होता है। इसके गाने का समय दोपहर के उपरांत संध्या तक होता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—खोलना।—पहनना।—पहनाना।

४ ताल के आठ भेदों में से एक। ५ आभूषण। मंडन (को०)। ६ मुकुट। ताज (को०)।

कंकणास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कणास्त्र] वाल्मीकि के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र (को०)।

कंकणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कणी] १ घुँघरूदार करधनी। क्षुद्रघंटिका। २ आभूषण जिसमें घुँघरू हों (को०)।

कंकणी²—वि० [सं० कङ्कणिन्] कंकड नामक आभूषणवाला (को०)।

कंकणीका—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कणीका] दे० 'कंकणी' (को०)।

कंकत—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कत] १ बाल सँवारने का कंघा। २ एक प्रकार का विषाक्त जीव। ३ नागबला। अतिबला (को०)।

औष्ट्रक¹—वि० [सं०] ऊँट संबंधी। ऊँट विषयक [को०]।

औष्ट्रक²—संज्ञा पुं० ऊँटों का झुंड। उ०—बैलों के झुंड के लिये औक्षक, ऊँटों के झुंड के लिये औष्ट्रक प्रचलित थे।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

औष्ट्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँटगाड़ी [को०]।

औष्ट्रिक¹—वि० [सं०] ऊँट से प्राप्त या मिला हुआ, जैसे, दूध [को०]।

औष्ट्रिक²—संज्ञा पुं० तेली [को०]।

औष्ठ—वि० [सं०] ओठ के आकार का। ओष्ठाकृति [को०]।

औष्ठ्य—वि० [सं०] ओंठ से संबंधित।

औष्ठ्यवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ओष्ठ्यवर्ण' [को०]।

औष्ठ्यस्थान—वि० [सं०] (वर्ण या शब्द) जो ओठ से उच्चरित हो [को०]।

औष्ठ्यस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ स्थानीय स्वर। वे स्वर जिनका उच्चारण ओठ से हो। उ, ऊ, स्वर (को०)।

औष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] उष्णता। उष्मा। गर्मी [को०]।

औष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'औष्ण' [को०]।

औष्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] गर्मी की स्थिति। ऊष्मा [को०]।

औस (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवश्याय] दे० 'ओस'। उ०—अरुन उदै लौ तरुनई अंग अंग झलकी आइ। छिन छिन विय तन औस सी मिटत नरकई जाइ।—स० सप्तक, पृ० ३७०।

औस²—संज्ञा स्त्री० [हिं० उमस] दे० 'उमस'।

औसत—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह संख्या जो कई स्थानों की भिन्न भिन्न संख्याओं को जोड़ने और उस जोड़ को, जितने स्थान हों उतने से भाग देने पर निकलती हो। बराबर का परता। समष्टि का सम विभाग। सामान्य। जैसे,—एक मनुष्य ने एक दिन १०), दूसरे दिन २०), तीसरे दिन १५) और चौथे दिन ३५), कमाए, तो उसकी रोज की औसत आमदनी २०) हुई। २ माध्यमिक। दरमियानी। साधारण। मामूली। जैसे,—वह औसत दरजे का आदमी है।

औसतन्—क्रि० वि० [हिं० औसत] सामान्य रूप से। साधारणत।

औसना†—क्रि० अ० [हिं० उमस+ना (प्रत्य०)] १. गरमी पड़ना। ऊमस होना। २. देर तक रखी हुई खाने की चीजों में गंध उत्पन्न होना। बासी होकर सड़ना।

क्रि० प्र० जाना।

३. गरमी से व्याकुल होना।

क्रि० प्र०—जाना।

४. फल आदि का भूसे आदि में दबकर पकना।

औसर (पु)—संज्ञा पुं० १ दे० 'अवसर'। उ०—अटक हीण असपती, पाप छित औसर पायो। रद करवा रज्जियाँ, दुरद जेहो मद आयो।—रा० रू०, पृ० १६। २. बारी। पारी। उ०—पाँच पति एक नारि औसरे सों मानी है।—राम०, पृ० १३१।

औसाण (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'औसान'। उ०—दादू जिन प्राण पिंड हमको दिया, अंतर सेवें ताहि। जे आवै औसाण सिरि, सोई नाव सबाहि।—दादू०, पृ० ३६।

औसान¹—संज्ञा पुं० [सं० अवसान] १. अंत। २ परिणाम। उ०—जेहि तन गोकुल नाथ भज्यो। ऊधो हरि बिछुरत ते बिरहिनि सो तनु तबहिं तज्यो। अब औसान घटत कहि कैसे मन उपजी परतीति—सूर (शब्द०)।

औसान² (पु)—संज्ञा पुं० सुधबुध। होशहवास। चेत। धैर्य। प्रत्युत्पन्न-मति। उ०—सुरसरि सुवन रन भूमि आए। बाण वर्षा लागे करन अति क्रोध ह्वै पार्थ औसान तब भुलाए।—सूर(शब्द०)।

मुहा०—औसान उड़ना, औसान खता होना, औसान जाता रहना, औसान भूलना=सुधबुध भूलना। बुद्धि का चकराना। धैर्य न रहना। मतिभ्रम होना। उ०—पूँछ राखी चापि रिसनि काली काँपि, देखि सब साँप औसान भूले। पूँछ लीनी झटकि, धरनि सों गहि पटकि फूँ कह्यो लटकि करि क्रोध फूले।—सूर (शब्द०)।

औसाना—क्रि० स० [हिं० औसना] फल या और किसी वस्तु को भूसे आदि में दबाकर पकाना।

औसाफ—संज्ञा पुं० [अ० औसाफ] खासियत। गुण। विशेषता। उ०—तीन लोक जाके औसाफ। जनका गुनह करै सब माफ।—मूलक०, पृ० ३।

औसि (पु)—क्रि० वि० [सं० अवश्य] दे० 'अवश्य'।

औसी (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओली'।

औसेर (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवसेर'। उ०—बन मापक मुरली की टेर। आवति ब्रजवासिनी औसेर।—घनानद, पृ० २२८।

औहठा†—वि० [हिं०] दे० 'औघट'। उ०—औहठ पटणि ताके दस द्वार।—प्राण०, पृ० ११।

औहठी (पु)—वि० [सं० अप+हठिन्] बुरे हठवाला। हठी। जिद्दी। उ०—औहठी हठीले हने बदरजहान रिपु कौतुक कों विविध विमान छिति छ्वै रहे।—राम०, पृ० ११६।

औहत—संज्ञा स्त्री० [सं० अपघात या अवहन=कुचलना, कूटना] अपमृत्यु। कुगति। दुर्गति। उ०—औहत होय मरौं नहिं झूरी। यह सठ मरौ जो नेरहि दूरी।—जायसी (शब्द०)।

औहाती (पु)†—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अहिवाती'।

ओरी²—[illegible] १ [illegible]। २ [illegible] पर्वा[illegible] [illegible] हवि में [illegible] (डिं॰)।

ओलंदेज—[illegible] [illegible] १ [illegible] के पुत्र। २. [illegible] [illegible]।

ओलंबु—[illegible] [अ॰ अवलम्ब] दे॰ 'अवलंब'। उ॰—[illegible] [illegible] नाम लिय [illegible] [illegible] मौन हौं। [illegible] [illegible] पोषण करि [illegible] मौन हौं।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ५०६।

ओलमा—[illegible] [अ॰ उपालम्भ] दे॰ 'ओलमा'। उ॰—[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] परि [illegible] पूछइ वाह।—[illegible], पृ॰ ६०।

ओर—[illegible] [देश॰] [illegible]।

ओरग॰—[illegible] [अ॰ अवलग्न, प्रा॰ ओलग्ग] सेवा। उ॰—[illegible] [illegible] [illegible] विरह [illegible] निनि [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एक तुम्हारी [illegible]।—राम॰ [illegible], पृ॰ १८३।

ओलग॰—[illegible] [अप॰ अवलग्न] प्रयाण। दूर गमन।

ओलना—[illegible] [हिं॰ अकुलाना, उबलना] जलना। तपना। [illegible]।

ओलग—[illegible] [स॰ उपल] दे॰ 'ओला'। उ॰—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। ओला जब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—राम॰ ग्रं॰, पृ॰ २५८।

ओलाद—[illegible] [अ॰ [illegible] का बहुव॰] १ [illegible]। संतति। २ [illegible]। [illegible]।

ओलादोला—[illegible] [देश॰] [illegible] [illegible] बात का ध्यान या चिंता न [illegible] [illegible]। [illegible]—आप बाहर ओलादोला आदमी [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] उसे निहाल कर दिया।

ओलामौला—[illegible] [हिं॰ ओला + मौला] मनमौजी।

ओलान—[illegible] [illegible] १ [illegible]। [illegible]। [illegible]। २ पानी [illegible] (डिं॰)।

ओलिक—[illegible] [अ॰ अवलि] दे॰ 'अवली'। उ॰—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ओलि।—[illegible] [illegible], पृ॰ ६१।

ओलिया—[illegible] [अ॰ वली का बहुव॰] मुसलमान मत के सिद्ध [illegible] [illegible]। उ॰—[illegible] [illegible] मुनि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।—कबीर ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ६६।

ओली²—[illegible] [illegible] [illegible]] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]।

ओलू—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

ओ[illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

ओ[illegible]—[illegible] [illegible] [illegible]] १. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (डिं॰)।

ओ[illegible]—[illegible] [illegible] दे॰ ओलाद।

औलिभाई—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] ठगों की बोली का एक शब्द।

विशेष—ठग लोग जब किसी को देखकर यह जानना चाहते हैं कि यह ठग है या मुसाफिर, तब वे उससे यदि वह हिंदू हुआ तो 'औलि भाई राम राम' और यदि मुसलमान हुआ तो 'औलि खाँ सलाम' कहते हैं। यदि उसने ठगों की बोली में ही जवाब दिया तब वे समझ जाते हैं कि यह भी ठग है।

औलोती—संज्ञा स्त्री॰[हिं॰ ओलती] दे॰ 'ओलती'। उ॰—दुनिया न्याय मरै मरि जाइ। घर जाजरो बलींडो टेढ़ो, औलोती डरराइ।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ ८६।

औल्बण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अधिकता। प्राबल्य। प्रतिशयता (को॰)।

औवल¹—वि॰ [अ॰] १. पहला। प्रथम। २ प्रधान। मुख्य। ३ सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम। उ॰—सुना है मंजिले औवल की पहली रात भारी है—भारतेंदु ग्र ०, भा॰ २, पृ॰ ८४८।

औवल²—संज्ञा पुं॰ आरंभ। शुरू।

औवल³—क्रि॰ वि॰ प्रथमत। पहले।

औशि—क्रि॰ वि॰ [स॰ अवश्य] दे॰ 'अवश्य'।

औशीर¹—संज्ञा पुं॰[सं॰] १ उशीर अर्थात् खस या तृण की चटाई। २ चँवर या पंखा। ३ खस की जड (को॰)। ४ खस का लेप (को॰)। ५ पंखे या चँवर की डाडी (को॰)। ६ बैठने का आसन (को॰)।

औशीर² –वि॰ उशीर या खस का बना हुआ अथवा उससे सबधित।

औशीरिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. अँखुआ। अकुर। जलाधार। जल का पात्र (को॰)।

औषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ कडआपन। कडवाहट। २ काली मिर्च (को॰)।

औषणशौंडी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ औषणशौण्डी] १ सोंठ। २ काली मिर्च (को॰)।

औषद, औषदि—संज्ञा स्त्री॰ [स॰ औषध, औषधि] दे॰ 'औषधि'।

औषध—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वह द्रव्य जिससे रोगनाश हो। रोग दूर करनेवाली वस्तु या दवा।

यौ॰—औषधालय = चिकित्सालय। औषधसेवन = दवा का सेवन। औषधोपचार = चिकित्सा। दवादारू।

२. विष्णु का नाम (को॰)। ३. एक खनिज द्रव्य (को॰)।

औषधि, औषधी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'ओषधि, ओषधी'।

औषधिराई—संज्ञा पुं॰[हिं॰ औषधि + राई = राजा] औषधियों का राजा चंद्रमा। एक ओर प्रभु औषधिराई। प्रसारत। निशचर हो जाई।—चतुराा, पृ॰ ६५।

औषर, औषरक—संज्ञा पुं॰[सं॰ ऊसर] क्षुद्रिया नोन। खारा नमक। रेह का नमक। २ चुंबक पत्थर (को॰)।

औषस—वि॰ [सं॰] उषा से सबधित। उषा कालीन (को॰)।

औषसी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] उषा काल। भोर। प्रभात (को॰)।

औष्ट्र¹—वि॰ [सं॰] ऊँट से संबधित या उससे प्राप्त (को॰)।

औष्ट्र²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ ऊँटों का झुंड। २ ऊँट का स्वभाव। ३. ऊँट का चमड़ा (को॰)।

राजा। (३) मुगलवंश का अंतिम प्रतापी नरेश। यह शाहजहाँ का तृतीय पुत्र था। इसका शासनकाल ईस्वी १६५८ से १७०७ तक था। ग्रंथों में ओरंग, औरंग और नौरंग आदि इसके नाम प्राप्त होते हैं। औरंगनशीन = सिंहासनारूढ़।

औरंगोटंग—संज्ञा पुं० [मला०] दे० 'ओरंगोटंग'।

और¹—अव्य० [सं० अपर, प्रा० अवर] एक संयोजक शब्द। दो शब्दों या वाक्यों को जोड़नेवाला शब्द। जैसे—(क) घोड़े और गधे चर रहे हैं। (ख) हमने उनको पुस्तक दे दी और घर का रास्ता दिखला दिया।

और²—वि० १ दूसरा। अन्य। भिन्न। जैसे,—यह पुस्तक किसी और मनुष्य को मत देना।

मुहा०—**और और** = अन्यान्य। विभिन्न। दूसरे प्रकार के। उ०—अनेक भावों के और और आलंबन खड़े होते रहते हैं।—रस०, पृ० ३६। **और का और** = (१) कुछ का कुछ। विपरीत। अंडबंड। जैसे—वह सदा और का और समझता है। **और का और होना** = भारी उलट फेर होना। विशेष परिवर्तन होना। उ०—द्विज पतिया दे कहियो स्यामहिं। अब ही और को और होत कछु लागै बारा। ताते मैं पाती लिखी तुम प्रान अधारा।—सूर (शब्द०)। **और क्या** = (१) हाँ। ऐसा ही है। जैसे,—(क) प्रश्न—क्या तुम अभी आओगे? उत्तर—और क्या? (ख) क्या इसका यही अर्थ है? उत्तर—और क्या?

विशेष—ऐसे प्रश्नों के उत्तर में इसका प्रयोग नहीं होता जिनके अंत में निषेधार्थक शब्द 'नहीं' या 'न' इत्यादि भी लगे हों, जैसे,—तुम वहाँ जाओगे या नहीं?

(२) आश्चर्यसूचक शब्द। (३) उत्साहवर्धक वाक्य। **और तो और** = (१) और बातों को जाने दो। और सब तो छोड़ दो। जैसे,—और तो और पहले आप इन्हीं को करके देखिए। (२) दे० 'और तो क्या'। (३) दूसरों का ऐसा करना तो उतने आश्चर्य की बात नहीं। दूसरों से या दूसरों के विषय में ऐसी संभावना हो भी। जैसे,—(क) और तो और, स्वयं सभापति जी नहीं आए। (ख) और तो और यह छोकड़ा भी हमारे सामने बातें करता है। **और ही कुछ होना** = सबसे निराला होना। विलक्षण होना। उ०—वह चितवनि औरै कछू जिहि बस होत सुजान।—बिहारी (शब्द०)। **और तो क्या** = 'और बातें तो दूर रहीं। और बातों का तो जिक्र ही क्या। उचित तो बहुत कुछ था। जैसे,—और तो क्या, उन्होंने पान तंबाकू के लिये भी न पूछा। **और लो, और सुनो** = यह वाक्य किसी तीसरे से उस समय कहा जाता है जब कोई व्यक्ति एक के उपरांत दूसरी और अधिक अनहोनी बात कहता है या कहनेवाले पर दोषारोपण करता है। **और सौ और**(ए) = दे० 'और का और'। उ०—अधर मधुर मधु सहित मुख हुतो सबन सिर मौर। सो अब बगरे फलन ज्यौं भयौ और सौं और।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६३।

२. अधिक। ज्यादा। विशेष। जैसे,—अभी और कागज लाओ, इतने से काम न चलेगा।

औरग¹—वि० [सं०] उरग या साँप का। सर्प संबंधी [को०]।

औरग²—संज्ञा पुं० आश्लेषा नाम का नक्षत्र [को०]।

औरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. स्त्री। महिला। २ जोरू। पत्नी।

औरना(ए)†—क्रि० अ० [हिं० और = अधिक + ना (प्रत्य०)] १. आगे की ओर बढ़ना। अग्रसर होना। २ दिखाई पड़ना। लौकना। सूझना।

औरभ्र¹—वि० [सं०] मेष या भेड़ संबंधी। भेड़ का [को०]।

औरभ्र²—संज्ञा पुं० १ भेड़ का मांस। २ ऊन का वस्त्र। कंबल [को०]।

औरभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] मेष समूह। भेड़ों का झुंड [को०]।

औरभ्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेषपाल। गड़ेरिया। २ मेष संबंधी कोई भी कार्य या वस्तु [को०]।

औरस¹—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार १२ प्रकार के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ पुत्र। अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र।

औरस²—वि० जो अपनी विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हो। जायज। वैध।

औरसना(ए)—क्रि० अ० [सं० अव या अप = बुरा + रस + हिं० ना (प्रत्य०)] विरस होना। अनखना। रुष्ट होना। उदासीन होना।

औरसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाहिता स्त्री से उत्पन्न कन्या।

औरस्य—सं० पुं० [सं०] औरस पुत्र।

औराना(ए)†—क्रि० स० [सं० आ + वरण, हिं० बरना या हिं० 'औराना'] अर्जित करना। सीख कर समाप्त करना। जानना। वरण करना। सीखना। उ०—नैहर महँ जिन गुन औरावा। ससुरे जाय सोइ सुख पावा।—चित्रा०, पृ० २२३।

औरासना(ए)—क्रि० अ० [हिं० औरसना] दे० 'औरसना'। उ०—खंजन नैन सुरँग रस माते·· बसे कहूँ सोइ बात कही सखि रहे इहाँ केहि नाते। सोइ संज्ञा देखत औरासी विकल उदास कला ते।—सूर (शब्द०)।

औरासी(ए)†—वि० [सं० अप + राशि] १. बुरी या निकृष्ट राशि में पैदा होनेवाला। २ विचित्र। बेढंगा। विलक्षण। उ०—बिसरो सूर विरह दुख अपनो अब चली चाल औरासी।—सूर (राधा), २८७७।

औरेब—संज्ञा पुं० [सं० अव = विरुद्ध + रेख > रेह > रेअ > रेब या फा० उरेब] १ वक्र गति। तिरछी चाल। २. कपड़े की तिरछी काट। ३ पेंच। उलझन। ४ पेंच की बात। चाल की बात। उ०—दीनी है मधुप सबहिं सिख नीकी। हमहूँ कछुक लखी है तब की औरेबैं नँदलाल की।—तुलसी (शब्द०)। ५ किंचित् दोष या त्रुटि। साधारण खराबी।

मुहा०—**औरेब सुधारना** = उलझन दूर करना।

यौ०—**औरेबदार** = टेढ़ा काटवाला।

और्णिक—वि० [सं०] ऊर्ण या ऊन से संबंधित। ऊन से बननेवाला। ऊनी [को०]।

और्द्ध्वदेह—संज्ञा पुं० [सं०] अंत्येष्टि कर्म [को०]।

और्द्ध्वदेहिक, और्द्ध्वदैहिक—वि० [सं०] मरने के पीछे का। अंत्येष्टि।

यौ०—**और्द्ध्वदैहिक कर्म** = प्रेतक्रिया। दसगात्र, सपिंड दान आदिक कर्म।

और्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़वानल। २. नोनी मिट्टी का नमक। ३. पौराणिक भूगोल का दक्षिण भाग जहाँ संपूर्ण नरक है और दैत्य रहते हैं। ४. पंच प्रवर मुनियों में से एक। ५. भृगुवंशीय ऋषि।

औपनिषद¹—वि० [सं०] उपनिषद् संबंधी। उपनिषद् में बताया हुआ [को०]।

औपनिषद²—संज्ञा पुं० १ परब्रह्म। २ उपनिषद् का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति। उपनिषद् का अनुयायी [को०]।

औपनिषदिक—वि० [सं०] १ उपनिषद् संबंधी या उपनिषद् के समान। उ०—वैदिक साहित्य से औपनिषदिक साहित्य की विशेषताएँ निम्न निर्दिष्ट हैं।—सं० दरिया (भू०), पृ० ५६। २ उपनिषद् के अध्यापन से गुजर बसर करनेवाला।

औपनिषदिक कर्म²—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वे कर्म जो शत्रु का नाश करनेवाले कहे गए हैं। शत्रुनाशक कार्य।

औपनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओप] दे० 'ओपनी'।

औपन्यासिक¹—वि० [सं०] १ उपन्यास विषयक। उपन्यास संबंधी। २ उपन्यास में वर्णन करने योग्य। ३ अद्भुत। विलक्षण। ४ उपन्यास की बातों के समान।

औपन्यासिक²—संज्ञा पुं० [सं०] उपन्यास लिखनेवाला। उपन्यास लेखक। जैसे, शरत बाबू बँगला के प्रसिद्ध औपन्यासिक हैं।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में बंगालियों की देखादेखी होने लगा है।

औपपत्तिक—वि० [सं०] १ उपपत्ति संबंधी। २. युक्ति या तर्क द्वारा सिद्ध होनेवाला। तर्कसाध्य। युक्तिसंगत। ३ सैद्धांतिक।

औपपत्तिक शरीर—संज्ञा पुं० [सं०] देवलोक और नरक के जीवों का नैसर्गिक या सहज शरीर। लिंगशरीर।

औपम्य—संज्ञा पुं० [सं०] उपमा का भाव। समता। बराबरी। तुल्यता।

औपयिक¹—वि० [सं०] १ न्याय के योग्य। २ ठीक। उपयुक्त। ३ प्रयास द्वारा प्राप्त।

औपयिक²—संज्ञा पुं० १ साधन। ढंग। तरीका। उपाय [को०]।

औपयोगिक—वि० [सं०] उपयोग या प्रयोग में आनेवाला। उपयोग संबंधी [को०]।

औपराजिक—वि० [सं०] राजप्रतिनिधि से संबंधित [को०]।

औपरिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] वात्स्यायन कामसूत्र में वर्णित रतिक्रिया का एक प्रकार [को०]।

औपल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० औपला, औपली] १ उपल या पत्थर संबंधी। २ प्रस्तर निर्मित। पत्थर का बना हुआ। ३ पत्थर से प्राप्त होनेवाला (कर आदि) [को०]।

औपवस्त—संज्ञा पुं० [सं०] उपवास। फाका [को०]।

औपवस्त्र, औपवस्त्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपवास के उपयुक्त भोजन। २ उपवास [को०]।

औपवासिक—वि० [सं०] १ उपवास काल में दिया जानेवाला (धन आदि)। २. उपवास में किया जानेवाला [को०]।

औपवाह्य¹—वि० [सं०] सवारी करने योग्य। सवारी के काम में आनेवाला [को०]।

औपवाह्य²—संज्ञा पुं० १. राजा की सवारी का हाथी। २ राजा की कोई भी सवारी, जैसे, रथ, अश्व आदि [को०]।

औपशमिक—वि० [सं०] १ शांतिकारक। शांतिदायक। २ उपशम अर्थात् शांति संबंधी (को०)।

यौ०—औपशमिक भाव = जैन संप्रदाय में वह भाव जो अनुदयप्राप्त कर्मों के शांत न होने पर उत्पन्न हो, जैसे,—गँदला पानी रीठी डालने से साफ हो जाता है।

औपश्लेषिक (आधार)—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में अधिकरण कारक के अंतर्गत तीन आधारों में से वह आधार जिसके किसी अंश हो से दूसरी वस्तु का लगाव हो। जैसे,—वह चटाई पर बैठा है। वह बटलोई में पकाता है। यहाँ चटाई और बटलोई औपश्लेषिक आधार हैं।

औपसर्गिक¹—वि० पुं० [सं०] १ उपसर्ग संबंधी। २ उपसर्ग के रूप में होनेवाला (को०)। ३ छूत से उत्पन्न होनेवाला। रोग आदि (को०)। ४ दुःख आदि का सामना करने में समर्थ।

औपसर्गिक²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का सन्निपात।

औपस्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार आदि के आधार पर जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०]।

औपस्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रखी। गणिका। वेश्या [को०]।

औपस्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। संभोग। सहवास [को०]।

औपहारिक¹—वि० [सं०] १ उपहार संबंधी या उपहार के काम में आनेवाला [को०]।

औपहारिक²—संज्ञा पुं० भेंट। उपहार [को०]।

औपाधिक—वि० [सं०] १ उपाधि संबंधी। २ विशिष्ट स्थितियों में होनेवाला। विशेष धर्म से संबद्ध। ३ उपाधिजन्य। ४ (न्याय०) विशेष परिस्थिति या कार्य की करणभूत परिस्थिति [को०]।

औपायनिक—वि० [सं०] १ उपायन या उपहार संबंधी। २ उपहार या नजराने में प्राप्त। ३ उपहार में दिया जानेवाला [को०]।

औपासन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह वैदिक अग्नि जो उपासना के लिये हो। गृह्याग्नि। २ कृत्य जो औपासन अग्नि के पास किया जाय। ३. पितरों को देय पिंड [को०]।

औपासन²—वि० [सं०] १ गार्हपत्य अग्निसंबंधी। २ अर्चन या पूजा संबंधी। ३ पावन। पवित्र [को०]।

औपेंद्र—वि० [सं० औपेन्द्र] उपेंद्र या विष्णु संबंधी [को०]।

औम¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवम] अवम तिथि। वह तिथि जिसकी हानि हुई हो। उ०—गनती गनवे तें रहे छत हू अछत समान। अलि अब ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान।—बिहारी (शब्द०)।

औम²—वि० १ उमा संबंधी। २. सन का बना हुआ [को०]।

औमक, औमिक—वि० [सं०] सन का बना हुआ। सन का [को०]।

औमीन—संज्ञा पुं० [सं०] सनई का खेत। सन का खेत।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २८६।

औरंग—संज्ञा पुं० [फा०] १ राजसिंहासन। २ बुद्धिमानी।

यौ०—औरंगजेब = (१) राजसिंहासन की शोभा। (२) शासक।

औद्दालक[1]—संज्ञा पुं० [सं० उद्दालक] १ दीमक और विलनी आदि बाँबी के कीड़ों के बिल से निकला हुआ चेप या मधु। २. एक तीर्थ का नाम।

औद्दालक[2]—वि० उद्दालक के वंश का।

औद्धत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उग्रता। अक्खड़पन। उजड्डपन। २. अविनीतता। अशालीनता। धृष्टता। ढिठाई।

औद्भिज्ज[1]—वि० [सं०] धरती से उत्पन्न या प्राप्त [को०]।

औद्भिज्ज[2]—संज्ञा पुं० खारा नमक [को०]।

औद्भिद[1]—वि० [सं०] १ (कुएँ से) निकलनेवाला। धरती के अंदर से फूटने या व्यक्त होनेवाला। २. विजयी [को०]।

औद्भिद[2]—संज्ञा पुं० १. प्रपात या झरने का जल। २ पहाड़ी नमक। खारा नमक [को०]।

औद्योगिक—वि० [सं०] उद्योग संबंधी।

औद्वाहिक[1]—वि० [सं०] १. विवाह संबंधी। २ विवाह का। विवाह में प्राप्त।

औद्वाहिक[2]—संज्ञा पुं० १ विवाह में ससुराल से मिला हुआ धन जिसका बटवारा नहीं होता। २ विवाह में स्त्री को भेंट या उपहार स्वरूप मिला धन।

औध[1]—संज्ञा पुं० [सं० अवध] पुं० 'अवध'। उ०—सग सुमामिन भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६१।

औध[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि'। उ०—औध अनल तन तिनको मदर चहूँ दिसि ठाठ ठयो।—कबीर ग्रं०, पृ० २६४।

औधमोहरा—संज्ञा पुं०[सं० उर्द्ध + हिं० मोहड़ा]सिर उठाकर चलनेवाला हाथी।

औधस—वि० [सं०] [वि० स्त्री० औधसी] थन या स्तन से संबंध रखनेवाला, जैसे, दूध [को०]।

औधस्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूध। दुग्ध [को०]।

औधान—संज्ञा पुं० [सं० अवधान, हिं० अवधान, अउधान] गर्भ। अउधान। उ०—लै कन्या ऋषि घरहिं सिधाये। भृगुकुल हरि औधानहि आये।—कबीर सा०, पृ० ३२।

औधि—संज्ञा स्त्री०[सं० अवधि]दे० 'अवधि'। उ०—आवन के दिन तीस कहे गति औधि की ठीक तपी परसों।—गंग०, पृ० ८३।

औधूत—संज्ञा पुं० [सं० अवधूत] दे० 'अवधूत'। उ०—करता है सो करेगा, दादू साखी भूत। कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता औधूत।—दादू०, पृ० ४५७।

औन—संज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] दे० 'अवनि'। उ०—अरु साधुन के दुम्मह कौन। जिनके नहि ममता मति औन।—नद० ग्रं०, पृ० २२२।

औनापौना[1]—वि० [सं० ऊन (कम) + हिं० पौना (¾ भाग)] आधा-तीहा। थोड़ा बहुत। अधूरा।

औनापौना[2]—क्रि० वि० कमती बढ़ती पर।

मुहा०—औनेपौने करना = कमती बढ़ती दाम पर बेच डालना। जितना मिले उतने पर बेच डालना।

औनि, औनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] दे० 'अवनि'। उ०—मृग की मानौ चचल छौनी। पावन करति फिरति छवि औनी।—नद० ग्रं०, पृ० १२०।

यौ०—औनिप = दे० अवनिप। औनिवाल = पृथिवीपुत्र मंगल। उ०—जावक सुरग मैं न, इगुर के रंग मैं न, इद्रवधू अंग मैं न, रंग औनिपाल मैं।—गंग०, पृ० २८।

औन्नत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उन्नति। उत्थान। २ उच्चता। ऊँचाई [को०]।

औप—संज्ञा पुं० [हिं० ओप] दे० 'ओप'। उ०—अंग वर्म चर्म सु कौन। सिर टोप औप सु दौन।—ह० रासो, पृ० १२३।

औपकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० औपकार्या] निवास। डेरा। पड़ाव। खेमा [को०]।

औपक्रमिक—वि० [सं०] उपक्रम संबंधी। प्रारंभिक [को०]।

औपक्रमिक निर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्हत या जैन दर्शन में दो निर्जराओं में से एक। वह निर्जरा या कर्मक्षय जिसमें तपोबल द्वारा कर्म का उदय कराकर नाश किया जाय।

औपग्रतिक, औपग्रहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रहण। उपराग। २. ग्रहणग्रस्त सूर्य या चंद्रमा [को०]।

औपचारिक—वि० [सं०] १ उपचार संबंधी। २ जो केवल कहने सुनने के लिये हो। बोलचाल का। जो वास्तविक न हो। जैसे,—यदि देह से आत्मा अभिन्न हुआ तो 'मेरा देह', इस प्रकार की प्रतीति किस प्रकार हो सकती है। इसके उत्तर में यही कहना है कि 'राहु का सिर' इत्यादि प्रतीति की नाईं 'मेरा देह', इस प्रकार औपचारिक प्रतीति हो जाती है।

औपटा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० औपटी] दे० 'अटपटी'। उ०—हाय कछु औपटी उदेग आगि जागि जाति, जब मन लागि जात काहू निरमोही सों।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ३१।

औपदेशिक—वि० [सं०] १ उपदेश संबंधी। २ उपदेश या शिक्षा द्वारा जीविका चलानेवाला। ३ उपदेश द्वारा कमाया या प्राप्त (धन) [को०]।

औपद्रविक—वि० [सं०] १ उपद्रव संबंधी। २ रोगादि के लक्षणों से संबंध रखनेवाला [को०]।

औपधर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मविरोधी विचार या मत [को०]।

औपधिक[1]—वि० [सं०] १ धोखा देनेवाला। धोखेबाज। छली। २ धोखा देकर किया जानेवाला (कार्य)।

औपधिक[2]—संज्ञा पुं० धोखा देकर धन लेनेवाला पुरुष। ठग।

औपनिधिक—वि० [सं०] १ उपनिधि या धरोहर संबंधी। २ शुक्रनीति के अनुसार विश्वास पर किसी के यहाँ रखा हुआ (धन)।

औपनिवेशिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उपनिवेश में रहनेवाला व्यक्ति। वह जो उपनिवेश में रहता है। जैसे,—दक्षिण अफ्रिका के भारतीय औपनिवेशिक।

औपनिवेशिक[2]—वि० उपनिवेश का। उपनिवेश संबंधी। जैसे,—औपनिवेशिक शासन। औपनिवेशिक सचिव। औपनिवेशिक स्वराज्य आदि।

जायँगे उतने ही मुरजीवा की तरह रत्न और मोती लेकर आवेंगे।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २०५।

औडुंवर—संज्ञा पुं० [सं० औडुम्वर] दे० 'औदुंवर' (को०)।

औडुपिक[1]—वि० [सं०] नाव से (नदी आदि) पार करनेवाला (को०)।

औडुपिक[2]—संज्ञा पुं० नौका के यात्री (को०)।

औडुलोमि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि वा आचार्य जिनका मत वेदांत सूत्रों में उदाहृत किया गया है।

औड्र—संज्ञा पुं० [सं०] उडीसा प्रदेश का निवासी। उडीसा का रहने वाला (को०)।

औढर—वि० [सं० अव+हिं० ढार या ढाल] जिस ओर मन में आवे उसी ओर ढल पडनेवाला। जिसकी प्रकृति का कुछ ठीक ठिकाना न हो। मनमौजी। उ०—देत न अघात रीझि जात पात आक ही के भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं।—तुलसी (शब्द०)।

औढरदानी[1]—वि० [हिं० औढर+दानी] बहुत अधिक देनेवाला।

औढरदानी[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं० औढर+दानी] शिव। शंकर। जो तरंग में आकर विना विचारे सेवकों की कामना पूर्ण करते हैं। उ०—औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे।—तुलसी (शब्द०)।

औणक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक गीत।

औतरना(पु)—क्रि० अ० [सं० अवतरण] दे० 'अवतरना'। उ०—(क) मीन की मराल की ममोले मृग मुकुर की मानिनी मनोज जग जीतिवे औतरी है।—गग०, पृ० ३७। (ख) औसर बीतें फिरि पछतावें। औतरि औतरि या तें आवे।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २२०।

औतार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवतार] दे० 'अवतार'। उ०—मलखान अवतार मेरो सुलिख्यौ।—प० रासो, पृ० ८४।

औतारी(पु)†—वि० [हिं० अवतारी] दे० 'अवतारी'।

औत्कंठ्य—संज्ञा पुं० [सं० औत्कण्ठ्य] १ उत्कंठा। उत्सुकता। २ आकांक्षा। इच्छा। ३ चिंता (को०)।

औत्कर्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्षता। उच्चता। श्रेष्ठता (को०)।

औत्क्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्सुकता। उत्कंठा। इच्छा (को०)।

औत्तमर्णिक—वि० [सं०] शुक्र नीति के अनुसार दूसरे से सूद ब्याज पर दिया हुआ (धन)।

औत्तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १४ मनुओं में से तीसरा।

औत्तर—वि० [सं०] १ उत्तरी। उत्तर दिशा संबंधी। २ उत्तर में रहने या होनेवाला (को०)।

औत्तरेय—संज्ञा पुं० [सं०] अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा से उत्पन्न परीक्षित नरेश (को०)।

औत्तानपाद, औत्तानपादि—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तानपाद के पुत्र हरिभक्त ध्रुव। २ ध्रुव नाम का तारा (को०)।

औत्तापिक—वि० [सं०] १ उत्ताप संबंधी। २ उत्तापजन्य।

औत्पत्तिक—वि० [सं०] १ उत्पत्ति संबंधी। २ स्वाभाविक। सहज। जन्मजात।

औत्पातिक—वि० [सं०] उत्पात या उपद्रव संबंधी (को०)।

औत्स—वि० [सं०] उत्स, प्रवाह या झरना। संबंधित (को०)।

औत्सर्गिक—वि० [सं०] १ उत्सर्ग संबंधी। २ सहज। स्वाभाविक। ३ व्याकरण में सामान्य रूप से मान्य या सामान्यत: स्वीकार्य (नियम)। ४ त्यागनेवाला। छोडनेवाला। ५ सामान्य (को०)।

औत्सुक्य—संज्ञा पुं० [सं०] उत्सुकता। उत्कंठा। हौसला।

औथरा(पु)—वि० [सं० अवस्थल+क (प्रत्य०)] उथला। छिछला। उ०—अति अगाध अति औथरो नदी कूप सर बाय। सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय।—बिहारी (शब्द०)।

औदक[1]—वि० [सं०] जल संबंधी। जलवाला। जलीय (को०)।

औदक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह उपनिवेश जिसमें जल की बहुतायत हो।

औदकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उदकना] उछलना। चौंकना।

औदनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ कौटिल्य के अनुसार पका चावल अर्थात् भात दाल बेचनेवाला। २ भात पकानेवाला रसोइया (को०)।

औदयिक[1]—वि० [सं० उदय] उदय संबंधी।

औदयिक[2]—संज्ञा पुं० जैन मतानुसार वह भाव या विचार जो पूर्वसंचित कर्मों के कारण चित्त में उठता है।

औदर—वि० [सं०] पेट संबंधी। २ पाचन क्रिया संबंधी (को०)।

औदरिक—वि० [सं०] १ उदर संबंधी। बहुत खानेवाला। पेटू।

औदर्य—वि० [सं०] उदर संबंधी। पेट का। औदरिक।

औदश्वित—संज्ञा पुं० [सं०] मट्ठा जिसमें आधा पानी मिलाया गया हो। छाछ (को०)।

औदसा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवदशा] बुरी दशा। दुर्दशा। दुःख। आपत्ति।

क्रि० प्र०—**फिरना**=बुरे दिन आना।

औदान†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवदान] वह वस्तु जो मोल लेनेवाले को ऊपर से दी जाती है। घाल। घलुआ।

औदार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उदारता। २ सात्विक नायक का एक गुण। ३. अर्थसंपत्ति। अर्थवत्ता (को०)। ४ महत्ता। श्रेष्ठता (को०)।

औदासीन्य, औदास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदासीनता'।

औदीच्य[1]—वि० [सं०] उत्तर संबंधी। उत्तरी (को०)।

औदीच्य[2]—संज्ञा पुं० गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

औदुंवर[1]—वि० [सं० औदुम्वर] उदुंवर या गूलर का बना हुआ। २ ताँबे का बना हुआ।

औदुंवर[2]—संज्ञा पुं० १ गूलर की लकडी का बना हुआ यज्ञपात्र। २ १४ यमों में से एक। ३ एक प्रकार के मुनि जिनका यह नियम होता था कि सवेरे उठकर जिस दिशा की ओर पहले दृष्टि जाती थी, उसी ओर जो कुछ फल मिलते थे, उस दिन उन्हीं को खाते थे। ४ गूलर का फल (को०)। ५ गूलर की लकडी (को०)। ६ ताँबा या ताम्रपात्र (को०)। ७ एक प्रकार का कोढ (को०)।

औदुंवरक—संज्ञा पुं० [सं० औदुम्वरक] गूलर का जंगल (को०)।

औदुंवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० औदुम्वरी] गूलर के वृक्ष की शाखा या लकड़ी (को०)।

औछाना(पु)†—क्रि० स० [सं० अवछादन] आच्छादित करना। छा जाना। फैलना। उ०—छत्रे अकास एम औछायो। वण आयो किरि वरण वण।—वेलि०, दू० १४४।

औछार—संज्ञा पुं० [देश०] ओहार। झूल। हाथी आदि की पीठ पर डाला जानेवाला आवरण या पट जो नीचे तक झूलता रहता है। उ०—जरकस जराव औछार मढि, मुरराज द्विपन सोनात पढि।—पृ० रा०, १८।८३।

औछाह†—संज्ञा पुं० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] दे० 'उछाह'। उ०—भावसिंघ सबल का माडण सवाई। औछाह सों लागै जाकूँ साह की लड़ाई।—रा० रू०, पृ० १२२।

औज[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० औज] दे० 'औज'।

औज[2]—संज्ञा स्त्री० [अ० ओज] ऊँचाई। उत्कर्ष। बुलंदी। उ०—सआदत का जिस औज है आशियाँ, निभा देख अँधारा उजाला तमाम।—दक्खिनी०, पृ० १४५।

औजक(पु)†—क्रि० वि० [हिं० औझक] दे० 'औचक'।

औजकमाल—संज्ञा पुं० [अ०] संगीत में एक मुकाम (फारसी-राग) का पुत्र।

औजड—वि० [सं० अव या अप+जड] उजड्ड। अनाड़ी। उ०—काल सचाना, नर चिड़ा औजड औ औचित।—कबीर (शब्द०)।

औजस—संज्ञा पुं० [सं०] सोना। तैजस। स्वर्ण [को०]।

औजसिक[1]—वि० [सं०] ओजयुक्त। ओजस्वी। उत्साही [को०]।

औजसिक[2]—संज्ञा पुं० वीर पुरुष। ओजस्वी व्यक्ति।

औजस्य[1]—वि० [सं०] उत्साहवर्धक। बलवर्धक। ताकतवर। शक्ति बढानेवाला [को०]।

औजस्य[2]—संज्ञा पुं० १ ओज का भाव। २. बल। शक्ति। ३. उत्साह [को०]।

औजार—संज्ञा पुं० [अ० वजर का बहु व० औजार] वे यंत्र जिनसे वैज्ञानिक, इंजिनियर, छात्र, लोहार, बढई आदि अपना काम करते है। हथियार। राछ।

औजूद(पु)—संज्ञा पुं० [अ० वुजूद] तन। शरीर। जिस्म। देह। उ०—दादू मालिक कह्या अरवाह सौं, अरवाह कह्या औजूद। औजूद आलम सौं कह्या हुकम खबर मौजूद।—दादू०, पृ० ४२०।

औज्ज्वल्य—संज्ञा पुं० [सं०] उजलापन। उज्वलता [को०]।

औझक(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'औचक'।

औझड[1]—क्रि० वि० [सं० अव+हिं० झड़ी] लगातार। निरंतर। उ०—होय बेअकलि तन की सुधि जाई। औझड भरमे राहि न पाई।—प्राण०, पृ० १५६।

मुहा०—औझड़ मारना या लगाना=वार पर वार करना। धडाधड़ चाँटे लगाना।

औझड†[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १ सयाना। वृद्ध। गुणी। २ उजाड़। वीरान स्थान। उ०—बडी बड़ आँखी किछु सूझै नाहीं। राह छाँड औझड क्यो पाही।—प्राण०, पृ० ३२।

औझर—क्रि० वि० [हिं० औझड़] लगातार। अनवरत। उ०—हिरना बिरुझेऊ सिंह ते औझर खुरी चलाय। झारखंड झीना परयो सिंहा चले पराय।—गिरिधर (शब्द०)।

औटन—संज्ञा स्त्री० [सं० आवर्त्तन प्रा० आउट्टन, आवट्टन] १ उबाल। ताव। २ ताप। गर्मी। उ०—कनक पान कित जोवन कीन्हा। औटन कठिन विरह वह दीन्हा।—जायसी (शब्द०)। ३. तवाकू काटने की छुरी। ४. औटने का भाव या क्रिया। ५. औटने की वस्तु।

औटना[1]—क्रि० स० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आउट्टन, आवट्टन] १ दूध या किसी और पतली चीज को आँच पर चढाकर धीरे धीरे चलाना और गाढा करना। उ०—औट्यो दूध कपूर मिलायो प्यावत कनक कटोरे। पीवत देखि रोहिणी यशुमति डारत है तृन तोरे—सूर (शब्द०)। २. पानी, दूध या और किसी पतली चीज को आँच पर गरम करना। खौलाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल तरल पदार्थों के लिये होता है।

३. (पु)व्यर्थ घूमना। इधर उधर हैरान होना।

औटना[2]—क्रि० अ० १ किसी तरल वस्तु का आँच या गरमी खाकर गाढा होना। २. खौलना।

औटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० औटना] कलछी या चम्मच जिससे आँच पर चढ़े हुए दूध या और किसी तरल पदार्थ को हिलाते या चलाते हैं।

औटपाई(पु)—वि० स्त्री० [हिं० औटपाय] शरारती। नटखट। उ०—चुँहटि जगाई अधराति औटपाई आनि।—घनानंद, पृ० २०६।

औटपाय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० औठपाय] दे० 'औठपाय'।

औटाना—क्रि० स० [हिं० औटना का प्रे० रूप] दूध या किसी और पतली चीज को आँच पर चढ़ाकर धीरे धीरे हिलाना और गाढ़ा करना। खौलाना। उ०—(क) लखि द्विज धर्म तेल औटायो। वरत कराह माँझ डरवायो।—विश्राम (शब्द०)। (ख) पय औटावत महँ इक काला। कढे रंगपति विभव विशाला।—रघुराज (शब्द०)।

औटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० औटना] वह पुष्टई जो गाय को ब्याने पर दी जाती है। २. पानी मिलाकर पकाया हुआ ऊख का रस।

औठपाय†—संज्ञा पुं० [देश०] उत्पात। शरारत। नटखटी। उ०—अनगने औठपाय रावरे गने न जाहिं वेऊ आहिं तमकि करैया अति मान की। तुम जोई सोई कहौ, वेऊ जोई साई सुनैं, तुम जीभ पातरे वे पातरी हैं कान की।—केशव (शब्द०)।

औड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड=गड्ढा] दे० 'औंड़'।

औड—वि० [सं०] आर्द्र। तर। गीला [को०]।

औडन(पु)—संज्ञा पुं०[हिं० ओड़ना] दे० 'ओड़न'। उ०—पग उभारि दल रारि तारि कढ्ढन दुज्जन वै। औडन हुयह धपि धाधि अत चालुक्कन खै।—पृ० रा०, १२।३३२।

औडव[1]—वि० [सं०] नक्षत्र संबधी। तारायों से संबद्ध [को०]।

औडव[2]—संज्ञा पुं० संगीत मे एक राग का नाम [को०]।

औडा—क्रि० वि० [हिं० औंड़ा] गहरे। अंदर की ओर। भीतर। उ०—विषय के अंदर पहुँच जाने की योग्यतावाले जितने औंडे

ओखा†—संज्ञा स्त्री० [सं० उषर] दे० 'ओखल'।

ओखद†—संज्ञा पुं० [सं० औषध] दे० 'ओषध'।

ओखध—संज्ञा स्त्री० [सं० औषध] दे० 'ओषधि'। उ०—इसके पीछे उसने अपनी झोली मे से कोई ओखध निकाली।—ठेठ०, पृ० ३८।

ओखल†—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊषर] वह भूमि जो परती से आबाद की गई हो।

ओखा—संज्ञा पुं० [हिं० ओखा] गाय का चमडा। गाय का चरसा।

ओगत¹ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अवगति या अपगति] दुर्दशा। दुर्गति। क्रि० प्र०—करना। होना।

ओगत²—वि० [सं० अवगत] दे० 'अवगत'।

ओगतिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अपगति] अवगति। अधोगति। उ०—ज्ञान हीन ओगति भयो मरि नरकहिं जाई।—भीखा० श०, पृ० ६७।

ओगनⓟ—वि० [सं० अवगुण] दे० 'औगुन'। उ०—आये ओगन एक के गुन सब जाय नसाय।—दीन० ग्र०, पृ० ८४।

ओगम्मⓟ—वि० [सं० अपगम] दे० 'अगम'। उ०—जहाँ न मानुस सचरे निरजन जान मरम्म। जबू दीप के मानई, भरतखड ओगम्म।—चित्रा०, पृ० १५६।

ओगाह—वि० [सं० अवगाह] दे० 'अवगाह'। उ०—अति ओगाह थाह नहि पाई। विमल नीर जहँ पुहुमि देखाई।—चित्र०, पृ० ६०।

ओगाहनाⓟ—क्रि० अ० [सं० अवगाधन, प्रा० ओगाहण, हिं० अवगाहना] दे० 'अवगाहना'।

ओगी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ रस्सी वटकर बनाया हुआ कोडा जो पीछे की ओर मोटा और आगे की ओर बहुत पतला होता है। इसे घोडो को चक्कर देते समय उनके पीछे जोर जोर से हवा मे फटकारते हैं। जिसके शब्द से चौंक कर वे और तेजी से दौड़ते हैं। २ बैल हाँकने की छडी। पैना। ३. कारचोबी के जूते के ऊपर का चमडा।

ओगी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अवगर्त] हाथी, शेर, भेडिए आदि को फँसाने का गड्ढा जो घास फूस से ढँका रहता है।

ओगुनⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण'।

ओगुनीⓟ†—वि० [सं० अवगुणिन्] १ निर्गुणी। २ दोषी। ऐबी।

ओघ—संज्ञा पुं० [सं०] जलप्लावन। बाढ [को०]।

ओघटⓟ†—वि० [हिं० अवघट] दे० 'अवघट'। उ०—साधो अजब नगर अधिकाई। ओघट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जाई।—चरण० बानी०, भा० २, पृ० १३७।

यौ०—ओघट घाट, ओघट घाटी = अटपटा मार्ग। दुर्गम मार्ग। उ०—बकनाल की ओघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई।—कबीर० श०, पृ० ७८।

ओघड—संज्ञा पुं० [सं० अघोर = भयानक, शिव] [स्त्री० ओघडिन] १. अघोर मत का पुरुष। अघोरी। २ काम मे सोचविचार न करनेवाला मनमौजी। ३ बुरा शकुन। अपशकुन (ठगो की बोली)। ४ अविवेकी। विवेकरहित व्यक्ति।

यौ०—ओघड़पथ = दे० 'अघोर पंथ'। ओघडपथी = दे० 'अघोरपथी'। ओघडमार्ग = दे० 'अघोरमार्ग'।

ओघड²—वि० [सं० अव + घट्ट] अडबड। उलटा पलटा। अटपट।

ओघर—वि० [सं० अव + घट] १ अटपट। अनगढ़। अडबड। उलटा-पलटा। 'सुघर' का प्रतिकूल। २ अनोखा। विलक्षण। उ०—(क) कुजविहारी नाचत नीकें लाडिली नचावति नीके। ओघर ताल धरे श्रीश्यामा मिलवत तातायेई तायेई गावत सँग पी के।—हरिदास (शब्द०)। (ख) बलिहारी वा रूप की लेति सुघर औ ओघर तान दै चुबन आकर्षति प्रान।—सूर (शब्द०)। (ग) मोहन मुरली अधर धरी। ओघर तान बँधान सरस सुर अरु उमगि भरी।—सूर (शब्द०)।

ओघी†—संज्ञा स्त्री० [देश० ओगी ?] वह जगह जहाँ नए घोडो को सिखलाने के लिये चक्कर दिलाया जाता है।

ओघूरनाⓟ—क्रि० अ० [सं० अवघूर्णन] चक्कर खाना। घूमना।

ओचक—क्रि० वि० [सं० अव + चक = भ्राति] अचानक। एकाएक। सहसा। एकबारगी। उ०—(क) खेलत ओचक ही हरि आए। जननी बाँह पकरि बैठाए।—सूर (शब्द०)। (ख) ओचक आय जोबनवाँ अति दुख दीन। छुटिगो सग गोइयवाँ नहि भल कीन।—रहीम (शब्द०)।

ओचट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अवोच्चाट, हिं० उचटना = हटना] ऐसी स्थिति जिसमे निस्तार का उपाय जल्दी न सूझे। अडस। सकट। कठिनता। साँकरा। उ०—रसखान सो केतो उचाटि रही, उचटी न सकोच की ओचट सों। अलि कोटि कियो अटकी न रही, अटकी अँखियाँ लटकी लट सों।—रसखान (शब्द०)।

मुहा०—ओचट मे पडना = सकट मे पडना। जैसे—साँप जब ओचट मे पडता है तभी काटता है।

ओचट²—क्रि० वि० १. अचानक। अकस्मात्। उ०—इक दिन सब करती रही जमुना मे असनान। चीर हरे तहँ आइकै ओचट स्याम सुजान।—विश्राम (शब्द०)। २ अनचीते मे। भूल से। उ०—स्वारथ के साथी तज्यो, तिजरा को सो टोटको ओचट उलटि न हेरो।—तुलसी (शब्द०)।

ओचाट†—संज्ञा पुं० [सं० उच्चाटन] दे० 'उच्चाटन'। उ०—थभन मोहन वसिकरन छाडो ओचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारभ की वाट।—गोरख०, पृ० १३०।

ओचितⓟ—वि० [सं० अव = नहीं + चिन्ता] निश्चित। बेखबर। उ०—काल सचाना नर चिड़ा ओजड औ ओचित।—कबीर (शब्द०)।

ओचिती—संज्ञा स्त्री० [सं०] औचित्य। उपयुक्तता। योग्यता।

ओचित्य—संज्ञा पुं० [सं०] उचित का भाव। उपयुक्तता। उ०—विपक्षी की प्रतिकूलता ही हर पक्ष को औचित्य की सीमा के बाहर नही जाने देती।—द्विवेदी (शब्द०)।

ओछ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दारुहल्दी की जड।

ओछकीⓟ†—वि० [सं० अवचकित हिं० ओचक + ई (प्रत्य०)] चौंकी हुई। उ०—छकी सी घुमति कछु ओछकी सी बात करै।—गग०, पृ० ५२।

औंड़ुपु—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, प्रा० उड=गड्ढा] गड्ढा खोदनेवाला। मिट्टी खोदनेवाला। मिट्टी उठानेवाला मजदूर। बेलदार। उ०—चले जाहु ह्यां को करै हाथिन को ब्योपार। नहिं जानत यहि पुर बसैं धोबी, औड़, कुम्हार।—बिहारी (शब्द०)।

औंडा[1]—वि० [सं० कुण्ड, प्रा० उड] [वि० स्त्री० औंड़ी] गहरा। गंभीर। उ०—(क) तब तिन एक पुरस भरि औंडी। एक एक योजन लांबी चौड़ी।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) यो कहूँ गोवर्धन के निकट जाय दो औंडे कुंड खुदवाए।—लल्लू (शब्द०)। (ग) यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्णचंद्र सबको साथ लिए वहाँ गए जहाँ वह औंडी महाभयावनी गुफा थी।—लल्लू (शब्द०)।

औंडा[2]—वि० [हिं० औंडना=उमडना] [वि० स्त्री० औंडी] उमड़ा हुआ। चढा हुआ। बढा हुआ। उ०—आवत जात ही होय है साँझ वहै जमुना भतरौंड लौं औंडी।—रसखान (शब्द०)।

औंडाबौंड़ा†—वि० [हिं०] दे० 'अंडबंड'।

औंडी—वि० [हिं० औंधी] उलटी। औंधी। उ०—(क) फेरी नृत्य डौंडी यह औडी बात जानि महा, कही राजा रंक पढे नीकी ठौर जानि कै।—भक्तमाल (श्रीभक्ति०), पृ० ५१३। (ख) कर स्वतंत्र अधिकार सभी पिटवायी डौंडी। धूर्त चला जो जाल (चाल) पडी वह कभी न औंडी।—कविता० कौ०, भा० २, पृ० ३५७।

औंदनाुपु†—क्रि० अ० [सं० उन्मादन] १. उन्मत्त होना। बेसुध होना। उ०—देव कहै आप औंदे बूझति प्रसंग आगे सुधि न सँभारैं बूझि आनँद परस्पर।—देव (शब्द०)। २ व्याकुल होना। घबराना। अकुलाना। उ०—देत दुसह दुख पवन मोहिं अचल चाह उडाय। कसु कामिनि करिकै कृपा, औंदिय सुधि बिसराय।—रघुराज (शब्द०)।

औंदानाुपु—क्रि० अ० [सं० उद्वेजन] ऊबना। व्याकुल होना। दम घटने के कारण घबराना। उ०—ब्रह्मा गुरु सुर असुर के मधिक विष नहिं जान। मरैं सकल औंदाइ कै संधिक विप करि पान।—कबीर (शब्द०)।

औंधना[1]—क्रि० अ० [सं० अध॰ या अवधा] उलट जाना। उलटा होना।

औंधना[2]—क्रि० स० उलट देना। उलटा कर देना। उ०—जीति सबै जग औंधि धरे हैं मनोज महीप के दुंदुभी दोऊ।—(शब्द०)।

औंधा[1]—वि० [सं० अध. या अव+अध] [वि० स्त्री० औंधी] १. उलटा। पट। जिसका मुँह नीचे की ओर हो। जैसे, औंधा बरतन। उ०—औंधा घडा नहीं जल डूबै सूधे सों घट भरिया। जेहि कारन नर भिन्न भिन्न करु गुरु प्रसाद ते तरिया।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—औंधी खोपड़ी का=मूर्ख। जड। कूढमग्ज। उ०—कबिरा औंधी खोपडी, कबहूँ धापै नाहिं। तीन लोक की संपदा कब आवै घर माँहि।—कबीर (शब्द०)। **औंधी समझ**=उलटी समझ। जड बुद्धि।—**औंधे मुँह**=मुँह के बल। नीचे मुँह किए। **औंधे मुँह गिरना**=(१) मुँह के बल गिरना। (२) बेतरह चूकना या धोखा खाना। झटपट बिना सोचे समझे कोई काम करके दुःख उठाना। जैसे,—वे चले तो थे हमें फँसाने, पर आप ही औंधे मुँह गिरे। (३) भूल करना। भ्रम में पड़ना। जैसे,—रामायण का अर्थ करने में वे कई जगह औंधे मुँह गिरे हैं। **औंधा हो जाना**=(१) गिर पडना (२) बेसुध होना। अचेत होना।

२. नीचा। उ०—राजा रहा दृष्टि कै औंधी। रहि न सका तब भाँट रसौंधी।—जायसी (शब्द०)। ३ वह जिसे गुदाभजन कराने की आदत हो। गांडू (बाजारू)।

औंधा[2]—संज्ञा पुं० एक पकवान जो बेसन और पीठी का नमकीन तथा आटे का मीठा बनता है। उलटा। चिल्ला। चिलडा।

औंधाना—क्रि० स० [सं० अध करण ?] १. उलटना। उलट देना। पट कर देना। अधोमुख करना। उ०—औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरत बिललात। बीचहिं सूखि गुलाब गो छीटौ छुई न गात।—बिहारी (शब्द०)। २ नीचा करना। लटकाना। उ०—बुधि बल विक्रम विजय बडापन सकल बिहाई। हारि गए हिय भूप बैठि सीसन औंधाई।—रघुराज (शब्द०)।

औंरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ग्रँवला'।

औंस—संज्ञा पुं० [अं० आउंस] दे० 'आउंस'।

औंसना—क्रि० अ० [सं० उष्म+√कृ, हिं० उमसना] उमस होना।

औंहरा†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवरोध, प्रा० ओरोह] अटकाव। रुकावट। बाधा। विघ्न।

औ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनंत। शेष। २ शब्द या ध्वनि (को०)। ३. चार की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

औ[2]—संज्ञा स्त्री० विश्वंभरा। पृथ्वी।

औ[3]ुपु—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

औ[4]—सर्व० [हिं०] यह। उ०—औ मेलूँ अवरा तणौ, असुरा करण अकाम। सिवौ नचितौ एण सूँ, राजड ने जगराम।—रा० रू०, पृ० २५५।

औकन—संज्ञा स्त्री० [देश०] राशि। ढेर।

विशेष—औकन ज्वार के उन बालो वा भुट्टो के ढेर को कहते हैं जिनसे दाने निकाल लिए गए हों। इस ढेर को एक बार फिर बचाखुचा दाना निकालने के लिये पीटते हैं।

औकात[1]—संज्ञा पुं० [अ० वक्त का बहु व०] समय। वक्त।

औकात[2]—संज्ञा स्त्री० (एक व०) १. वक्त। समय।

यौ०—औकात बसरी=जीवननिर्वाह।

मुहा०—औकात जाया करना=समय नष्ट करना। औकात बसर करना=जीवन निर्वाह करना।

२. हैसियत। बिसात। बिसारत। जैसे,—अपनी औकात देखकर खर्च करना चाहिए। उ०—क्यो कर निभेगी हमसे मुलाकात आपकी। वल्लाह क्या जलील है औकात आपकी।—शेर०, भा० १, पृ० २६५।

औक्ष, औक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभसमूह। बैलों का झुंड।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

ओहट(ए)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओट, देश० ओहट्ट=अवगुंठन या देश] ओट। ओझल। उ०—(क) ओहट होहु रे नाँट भिखारी। का तू नाहि देहि अति गारी।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५। (ख) ओहट होसि जोगि तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १३८।

ओहटना(ए)—क्रि० अ० [सं० अवघटन] ओझल होना। ओट होना। बीतना। उ०—अवह रात ओहटै, सूर परभात दरस्सै।—रा० रू०, पृ० ३६१।

ओहदा—संज्ञा पुं० [अ०] पद। स्थान। उ०—जो जिसके मुनासिब था गर्दूं ने किया पैदा। यारों के लिये ओहदे चिड़ियों के लिये फंदा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२८।
यौ०—ओहदेदार।

ओहदेदार—संज्ञा पुं० [अ० ओहदा + फ़ा० दार (प्रत्य०)] पदाधिकारी हाकिम। कार्यकर्ता। कर्मचारी। अधिकारी।

ओहना—क्रि० स० [सं० अपवारण] १. डंठलों आदि को ऊपर उठाकर हिलाते हुए उनके दानों का ढेर लगाने के लिये नीचे गिराना। बरही करना। २. तितर बितर करना।

ओहनि(ए)—संज्ञा पुं० [सं० उधस्] थन। गाय का स्तन। अयन। उ०—चरि न सकति ओहनि के भार। स्रवति स्रवत दूध की धार।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

ओहर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उधर'।

ओहरना—क्रि० अ० [सं० अवहरण] बढ़ती और उमड़ती हुई चीज का घटना। उतार पर होना।

ओहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० हारना] थकावट।

ओहा—संज्ञा पुं० [सं० उधस्] गाय का थन।

ओहार—संज्ञा पुं० [सं० अपवार] रथ या पालकी के ऊपर पड़ा हुआ कपड़ा। परदा। उ०—(क) सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी।—मानस, १।३४७। (ख) तब पालकी निकट सिधारे। करि कै विनय ओहार उघारे।—रघुराज (शब्द०)।

ओहि(ए), ओही(ए)—सर्व० [हिं० वह] १ वह। २ उसको। उसे। उ०—(क) ना ओहि पूत न पिता न माता।—जायसी ग्रं०, पृ० ३। (ख) आन भाँति नहिं पावौं ओही।—मानस, १।१३२।

ओहू(ए)—सर्व० [हिं० वह] वह भी। उ०—जो जनतेउँ बन बधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।—मानस०, ६।६०।

ओहो—अव्य० [सं० अहो] १ एक आश्चर्यसूचक शब्द। २. एक आनंदसूचक शब्द।

औ

औ—संस्कृत वर्णमाला का चौदहवाँ और हिंदी वर्णमाला का ग्यारहवाँ स्वर वर्ण। इसके उच्चारण का स्थान कंठ और ओष्ठ है। यह स्वर अ + ओ के संयोग से बना है।

औंगकी—संज्ञा पुं० [मला०] गिब्बन की जाति का एक बंदर। जो सुमात्रा टापू में होता है।
विशेष—यह बंदर कई रंग का होता है, पर विशेष कर ऊदापन लिए हुए पीले रंग का होता है। इसके पैर की उँगलियाँ मिली होती हैं। यह प्रायः जोड़े के साथ रहता है। इसका स्वभाव सुशील और डरपोक है, पर यह बड़ा चालाक होता है।

औंगना—क्रि० स० [सं० अवाञ्जन] बैलगाड़ी के पहिये की धुरी में तेल देना।

औंगा(ए)—वि० [सं० अवाक् या मूक] [स्त्री० औंगी] १. मूक। गूँगा। २ न बोलनेवाला। चुप्पा। उ०—सुनि खग कहत अब औंगी रहि सुनुन्हि प्रेम सब न्यारो। गए ते प्रभु पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी (शब्द०)।

औंगी—संज्ञा [सं० अवाक्] चुप्पी। गूँगापन। खामोशी।

औंघना—क्रि० अ० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह अथवा प्रा० √उंघ, √उंघ ओंघ] ऊँघना। अलसाना। झपकी लेना।

औंघाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह या प्रा०] हलकी नींद। तंद्रा। झपकी।

औंचना—क्रि० अ० [सं० अवाङ या प्रा० √उंघ] दे० 'औंघना'।

औंजना¹(ए)—क्रि० अ० [सं० उद्वेजन=व्याकुल होना] ऊबना। व्याकुल होना। अकुलाना। उ०—एक करै धौंज, एक कहै काढ़ौ सौंज, एक औंजि पानी पी कै कहै बनत न आवनो। एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े, एक देखत है ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७५।

औंजना²—क्रि० स० [?] एक बरतन से दूसरे बरतन में डालना। उँडेलना। उलटना।

औंटन—संज्ञा पुं० [सं० आकुट्टन, प्रा० आउट्टण, आवट्टन=छेदन करना या सं० अवघट्टन] १ लकड़ी का ठीहा जिसपर चौपायों का चारा काटा जाता है। २ वह ठीहा जिसपर ऊख की गँडेरी काटी जाती है।

औंटना—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० आवर्तन, प्रा० आउट्टण] दे० 'औटाना'।

औंटाना—क्रि० स० [सं० आवर्तन, प्रा० आउट्टण] दे० 'औटाना'।

औंठ¹(ए)—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ] दे० 'ओठ'। उ०—हसति कहति बात, फूल से झरत जात औंठ अवदात राती देख मन मोहिये।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८६।

औंठ²—संज्ञा स्त्री० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] उठा हुआ किनारा। उभरा हुआ किनारा। बारी। जैसे—गड्ढे की औंठ। रोटी की औंठ।
मुहा०—औंठ उठाना=परती पड़े हुए खेत को जोतना।

औंठा—संज्ञा पुं० [हिं० अँगूठा] स्त्रियों के पैर के अँगूठे में पहनने का एक आभूषण। उ०—बिछुवा पहिरिन औंठा पहिरिन।—कबीर श०, पृ० १५१।

यौ०—ओष्ठोपमफल, ओष्ठोपमफला, ओष्ठफला, ओष्ठभा = बिंबाफल । कुँदरू ।

ओष्ठक१—वि० [सं०] ओठों की रक्षा करनेवाला (को०) ।

ओष्ठक२—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ (को०) ।

ओष्ठोकोप, ओष्ठप्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ पर होनेवाला एक रोग (को०) ।

ओष्ठजाह—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ का मूल या जड़ (को०) ।

ओष्ठपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] कोमल ओठ (को०) ।

ओष्ठपाक—संज्ञा पुं० [सं०] सर्दी के कारण ओठों का फटना (को०) ।

ओष्ठपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ओठों को खोलते समय बननेवाला गड्ढा (को०) ।

ओष्ठपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] बंधूक नामक वृक्ष (को०) ।

ओष्ठरोग—संज्ञा पुं० [सं०] ओठ से संबंधित कोई भी बीमारी (को०) ।

ओष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिंबाफल । कुँदरू । २ कुँदरू की लता ।

ओष्ठ्य—वि० [सं०] १ ओठ संबंधी । २ जिसका उच्चारण ओंठ से हो ।

यौ०—ओष्ठ्यवर्ण ।

ओष्ठ्यवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ण जिनके उच्चारण में ओठों की सहायता लेनी पड़ती है । यथा, उ, ऊ, प, फ, ब, भ, और म ।

ओष्ण—वि० [सं०] ईषत् उष्ण । कुनकुना । थोड़ा गरम (को०) ।

ओस—संज्ञा स्त्री० [सं० अवश्याय, पा० उस्साव, प्रा० उस्सा] हवा में मिली हुई भाप जो रात को सर्दी से जमकर और जलबिंदु के रूप में हवा से अलग होकर पदार्थों पर लग जाती है । शीत । शबनम । उ०—ओस ओस सब कोई कहै आँसु कहै न कोय । मोंहि बिरहिन के सोग मे रैन रही है रोय ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५७६ ।

विशेष—जब पदार्थों की गर्मी निकलने लगती है, तब वे तथा उनके आसपास की हवा बहुत ही ठंडी हो जाती है । उसी से ओस की बूँदें ऐसी ही वस्तुओं पर अधिक देखी जाती हैं जिनमे गर्मी निकालने की शक्ति अधिक है और धारण करने की कम, जैसे घास । इसी कारण ऐसी रात को ओस कम पड़ेगी जिसमें बादल न होंगे और हवा तेज न चलती होगी । अधिक सरदी पाकर ओस ही पाला हो जाती है ।

मुहा०—ओस चाटने से प्यास न बुझना = थोड़ी सामग्री से बड़ी आवश्यकता की पूर्ति न होना । उ०—अजी ओस चाटने से कहीं प्यास बुझी है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६ । ओस पड़ना या पड़ जाना = (१) कुम्हलाना । बेरौनक हो जाना । (२) उमंग बुझ जाना । (३) लज्जित होना । शरमाना । ओस का मोती = शीघ्र नाशवान । जल्दी मिटनेवाला । उ०—यह संसार ओस का मोती बिखर जात इक छिन में ।—कबीर (शब्द०) ।

ओसर१—संज्ञा पुं० [सं० अवसर, प्रा० ओसर] समय । मौका । अवसर । उ०—कहन स्याम संदेश एक मैं तुम पै आयो, कहन समय संकेत कहूँ ओसर नहिं पायो, ।—नंद० ग्रं० पृ० १७३ ।

ओसर२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओसरिया' ।

ओसरा†—संज्ञा पुं० [सं० अवसर, प्रा० ओसर] १ बारी । दाँव । उ०—सो एक दिवस या वैष्णव को ओसरा आयो ।—दो सौ बावन०, पृ० ८ । २ दूध दुहने का समय ।

ओसरिया१†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपसर्या] वह भैंस जो गर्भ धारण करने योग्य हो चुकी हो, परंतु अभी गाभिन न हुई हो । जवान । बिना ब्याई भैंस ।

ओसरिया२†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपशालिका, देश० ओसरिया] दे० 'ओसारा' ।

ओसरी(ꣳ)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवसर] पारी । बारी । दाँव । उ०—अबकै हमारी ओसरी निज भाग तें बिधि ने दई ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८ ।

ओसाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओसाना] १ ओसाने का काम । दायें हुए गल्ले को हवा में उड़ाने का काम, जिससे भूसा और अन्न अलग हो जाता है । २ ओसाने का काम की मजूरी ।

ओसान१†—संज्ञा पुं० [हिं० ओसाना] ओसाने का काम । ओसाई ।

ओसान२—संज्ञा पुं० [सं० अवसान, प्रा० ओसाण] दे० 'अवसान' ।

ओसाना—क्रि० स० [सं० आवर्षण प्रा० आवस्सन अथवा उत्सारण सं० उत्सारण प्रा० उसारण] दायें हुए गल्ले को हवा में उड़ाना, जिससे दाना और भूसा अलग अलग हो जाय । बरसाना । डाली देना ।

मुहा०—अपनी ओसाना = इतनी अधिक बातें करना कि दूसरे को बात करने का समय ही न मिले । बातों की झड़ी बाँधना । जैसे—तुम तो अपनी ही ओसाते हो, दूसरे की सुनते ही नहीं । किसी को ओसाना = किसी को खूब फटकारना ।

ओसार१—संज्ञा पुं० [सं० अवसर = फैलाव] फैलाव । विस्तार । चौड़ाई । अवकाश ।

ओसार२—वि० चौड़ा ।

ओसार३—संज्ञा पुं० [सं० उपशाल] दे० 'ओसारा' ।

ओसारा—संज्ञा पुं० [सं० उपशाला अथवा देशी ओसार = गोवाड़ा] [स्त्री० अल्पा० ओसारी] १ दालान । बरामदा । उ०—राति ओसारे में सोय रही कहि जाति न एती ममानि सताई ।—रघुनाथ (शब्द०) २ ओसारे की छाजन । सायबान । उ०—ढलनी हुई अटारी कोठा निदान टपका । बाकी था एक ओसारा सो वह भी आन टपका ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३९५ ।

क्रि० प्र०—लगाना । लटकाना ।

ओसीसा—संज्ञा पुं० [सं० उत्+शीर्षक या उष्णीश] दे० 'उसीसा' ।

ओसुर(ꣳ)—संज्ञा पुं० [सं० असुर] दे० 'असुर' । उ०—तज गया गहवल खाय ताणा भभक ओसुर भागिया ।—रघु० रू०, पृ० १२६ ।

ओह१—अव्य० [सं० अहह] १ आश्चर्यसूचक शब्द । २. दुःखसूचक शब्द । ३ बेपरवाई का सूचक शब्द ।

ओह२—सर्व० [हिं०] दे० 'वह' । उ०—(क) यम का ठेंगा है बुरा ओह नहिं सहिया जाइ ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५३ । (ख) काया हाँडी काठ की ना ओह चढ़ै बहोरि ।—कबीर ग्रं०, पृ० १२१ ।

ओला[२]—वि॰ १ ओले के ऐसा ठंढा। बहुत सर्द। २ मिस्री का बना हुआ लड्डू जिसे गरमी मे ठडक के लिये घोलकर पीते हैं।

ओला[३]—सज्ञा पुं॰ [देश॰] कांगडा जिले मे होनेवाला एक प्रकार का बबूल जिसकी लकडी से खेती के औजार बनते हैं।

ओला[४]—सज्ञा पुं॰[हिं॰ ओल] १ परदा। ओट। २ भेद। गुप्त बात।

ओला[५]—प्रत्य॰ [हिं॰] हिंदी का एक प्रत्यय जो कतिपय शब्दो के अत मे लगकर किसी वस्तु के लघु रूप का बोधक होता है। जैसे, आम से अमोला।

ओलारना(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'उलराना'।

ओलिक(पु)† सज्ञा पुं॰ [हिं॰ ओल=आड, ओट, प॰ ओल्ला] ओट। परदा। उ॰—नील निचोल दुराइ कपोल विलोकति ही करि ओलिक तोही।—केशव ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ५२।

ओलिगार्की—सज्ञा स्त्री॰ [अ॰] १ वह सरकार जिसमे राजसत्ता या शासनसूत्र इने गिने लोगो के हाथो मे हो। कुछ लोगो का राज्य या शासन। स्वल्पव्यक्तितत्र। २ ऐसे लोगो का समाज।

ओलिया(पु)—सज्ञा पुं॰ [अ॰ औलिया] दे॰ 'औलिया'। उ॰—आहि आहि करत औरगसाह ओलिया।—भूषण ग्र॰, पृ॰ १११।

ओलियाना[१]†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ओली=गोद] ओली मे भरना। गोद मे भरना।

ओलियाना[२]†—क्रि॰स॰ [हिं॰ हूलना] प्रविष्ट करना। घुसेड़ना। घुसाना। जैसे,—पेट मे सीग ओलियाना।

ओली—सज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ओल+ई (प्रत्य॰)]१ गोद। उ॰—अपनी ओली मे बैठाकर मुख पोछा, हवा करने लगी।—श्यामा॰ पृ॰ ७१।

मुहा॰—ओली लेना=गोद लेना। दत्तक बनाना।

२ अचल। पल्ला। उ॰-देहि री काल्हि गई कहि दैन पसारहु ओलि भरौ पुनि फेंटी।—केशव ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ३०।

मुहा॰—ओली ओडना=आँचल फैलाकर कुछ माँगना। विनयपूर्वक कोई प्रार्थना करना। विनती करना। उ॰—(क) ऐंड सो ऐंडाई जिनि अचल उडात, ओली ओडति हौं काहू की जू डीठि लगि जायगी।—केशव (शब्द॰)। (ख) बोली न हौं वे बुलाइ रहे हरि पाँय परे अरु ओलियौ ओडी।—केशव ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ११।

३ झोली। उ॰—(क) ओलिन अबीर, पिचकारि हाथ। सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ।—तुलसी (शब्द॰)। (ख)

दसन बसन ओली भरियै रहै गुलाल, हँसनि लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।—घनानद, पृ॰ ७०। ४ खेत की उपज का अदाज करने का एक ढग जिसमे एक बिस्वे का परता लगाकर बीघे भर की उपज का अनुमान किया जाता है।

ओलौना[१](पु)†—सज्ञा पुं॰ [स॰ तुलना से नामिक धातु] उदाहरण। मिसाल। तुलना।

ओलौना[२](पु)†—क्रि॰ अ॰ उदाहरण देना। दृष्टात देना।

ओल्ल[१]—सज्ञा पु॰ [सं॰] जमानत [को॰]।

ओल्ल[२]—वि॰ आर्द्र। गीला [को॰]।

ओल्ह(पु)†—सज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ओल] ओट। आड। उ॰—(क) तिणकै ओल्है राम है, परवत मेरै भाइ। सतगुरु मिलि परचा भया तब हरि पाया घट माँहि।—कबीर ग्र॰, पृ॰ ८१। (ख) ढूँढत ढूँढत जग फिरचा, तिण कै ओल्हैं राम।—कबीर ग्र॰ पृ॰ ८१।

ओवडना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [देशी] दे॰ 'उमडना' उ॰—आवरत मेघ सम ओवडे घडी पच वग्गी खडग।—रा॰ रू॰, पृ॰ २५०।

ओवर—सज्ञा पुं॰ [अ॰] १ समाप्त। खत्म। उ॰—मैच ओवर हो गया।—चद॰ ख॰, पृ॰ ४१। २ क्रिकेट के खेल मे पाँच या छह गेंद दिए जाने भर का समय।

क्रि॰ प्र॰—होना।

विशेष—जब एक ओवर समाप्त हो जाता है, तब गेंद दूसरी तरफ से दिया जाता है और खिलाडियो की जगहें बदल दी जाती हैं।

ओवरकोट—सज्ञा पुं॰[अ॰] बहुत लबा कोट जो जाडे मे सब कपडों के ऊपर पहना जाता है। लबादा। उ॰—कुँअर साहब का ओवरकोट लिए खेल मे दिन भर साथ रहा।—आँधी, पृ॰ ३९।

ओवरसियर—सज्ञा पुं॰[अ॰] इजीनियरी के मुहकमे का एक कार्यकर्ता जिसका काम बनती हुई इमारतो, सडको आदि की निगरानी और मजदूरो की देख रेख करना है।

ओवा—सज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ओआ'।

ओष—सज्ञा पु॰ [सं॰] १ जलन। दाह। २ भोजन पकाना [को॰]।

ओषण—सज्ञा पुं॰ [सं॰] तिक्तता। तीखा स्वाद [को॰]।

ओषणी—सज्ञा स्त्री॰ [स॰] एक प्रकार का शाक [को॰]।

ओषद(पु)—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ औषध] दे॰ 'ओषध'। उ॰—सोच घटै कोइ साधु की सगत रोग घटै कछु ओषद खाए।—गग॰, पृ॰ ११८।

ओषध†—सज्ञा स्त्री॰ [सं॰ औषधि] दवा। ओषध। उ॰—कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू। कीन्हेसि बहु ओषध बहु रोगू।—जायसी (शब्द॰)।

ओषधि, ओषधी—सज्ञा स्त्री॰ [स॰] १ वनस्पति। जडी बूटी जो दवा मे काम आवे। उ॰—ज्वर इमारे ने उन्हें थोडे ही दिनो मे निर्बल कर दिया, पर ओषधी अच्छी की। श्यामा॰, पृ॰ ६२। २. पौधे जो हर एक बार फलकर सूख जाते हैं। जैसे,—गेहूँ, जौ इत्यादि।

यौ॰—ओषधिपति। ओषधीश।

ओषधिगर्भ—सज्ञा पुं॰ [स॰] १. चद्रमा। २ सूर्य [को॰]।

ओषधिधर—सज्ञा पुं॰ [सं॰] १ चद्रमा। २ कपूर। ३ वैद्य [को॰]।

ओषधिपति—सज्ञा पुं॰ [स॰] १ चद्रमा। २ कपूर।

विशेष—ओषधिवाची शब्दो मे 'स्वामी' वाची शब्द लगाने से चद्रमा या कपूरवाची शब्द बनते हैं।

ओषधीश—सज्ञा पुं॰ [स॰] १ चद्रमा। २ कपूर।

ओपर—सज्ञा पुं॰ [स॰ औपर] छुटिया नोन। रेह का नमक।

ओष्ठ—सज्ञा पुं॰ [स॰] १ होठ। ओठ। लब। २. दो या दो सख्या का सूचक शब्द।

ओरौं—संज्ञा पुं० [दिश०] एक प्रकार का बहुत लंबा बांस जो आसाम और ब्रह्मा (बर्मा) में होता है।

विशेष—वहाँ यह घर तथा छकड़े बनाने के काम में आता है। इससे खाने के डंडे भी बनते हैं। इसकी ऊँचाई १२० फुट तक की होती है और घेरा २५-३० इंच।

ओलंदेज—संज्ञा पुं० [फ्रं० ओलांदेज, अ० हालैंड] [वि० ओलंदेजी] हालैंड देश का निवासी व्यक्ति।

ओलंदेजी—वि० [फ्रं० ओलांदेज] हालैंड देश संबंधी। हालैंड देश का। उ०—इंगलिस्तानी औ दरियानी कच्छी ओलंदेजी। औरहु विविध जाति के वाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज (शब्द०)।

ओलंबा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ] दे० 'ओलंभा'। उ०—सो वाचाल भयो विज्ञानी। लखि कूरेश उचित नहिं जानी। रामानुज को दियो ओलंबा। कीन्ह्यो काह धर्म अवलंबा।—रघुराज (शब्द०)।

ओलंभा—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ प्रा० उवालंभ] उलाहना। शिकायत। गिला। उ०—सच है बुद्धिमान मनुष्य जो करना होता है वही करता है परंतु औरों का ओलंभा मिटाने के लिये उनके सिर मुफ्त का छप्पर जरूर धर देता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २६६।

ओल¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। जिमीकंद।

ओल²—वि० [सं० आर्द्र, प्रा० उल्ल] गीला। भोदा।

ओल³—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रोड] १ गोद। २ आड़। ओर। ३ शरण। पनाह। उ०—जाकें मीत नंदनंदन से ढकि लइ पीत पटोलें। सूरदास ताकों डर काको हरि गिरिधर के ओलें।—सूर० १।२५६। ४ किसी वस्तु या प्राणी का किसी दूसरे के पास जमानत में उस समय तक के लिये रहना जब तक उस दूसरे व्यक्ति को कुछ रुपया न दिया जाय या उसकी कोई शर्त न पूरी की जाय। उ०—टीपू ने अपने दोनों लड़कों को ओल में लार्ड कार्नवालिस के पास भेज दिया।—शिवप्रसाद (शब्द०)

क्रि० प्र०—देना। में देना।—में लेना।

५ वह वस्तु या व्यक्ति जो दूसरे के पास जमानत में उस समय तक रहे जब तक उसका मालिक या उसके घर का प्राणी उस दूसरे आदमी को कुछ रुपया न दे या उसकी कोई शर्त पूरी न करे।—(क) बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७६। (ख) राजहि चली छुड़ावै तहँ रानी होइ ओल।—जायसी ग्रं०, पृ० २८७। (ग) बने विसाल अति लोचन लोल। चितै चितै हरि चारु विलोकनि मानों माँगत हैं मन ओल।—सूर०, १०।६३०।

क्रि० प्र०—देना। उ०—एक ही ओल दै जाहु चली झगरो नगरो मिटि बात परै सन।—घनानंद, पृ० ।लेना उ०—तोप रहकला माल सब लै ओल निवाया।—सूदन (शब्द)।

६ बहाना। मिस। उ०—बैठी वह गुरु लोगन में लखि लाल गए करि कै कछु ओलो।—देव (शब्द०)। ७ कोना। उ०—घर में धरे सुमेरु से अजहूँ खाली ओल।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३१६।

ओलक—संज्ञा पुं० [हिं० ओल = ओट] आड़। ओट। उ०—देखत रूप अनूप वह बढ़त दृगन दग जोत। फिर कैसे वह साँवरो आखिन ओलक होत।—स० सप्तक, पृ० ३५४।

ओलग—वि० [सं० अपलग्न, अप०, ओलग्ग, राज०, ओलगो, हिं० अलग] दूर। पृथक्। अलग। उ०—आतम तुझ पासइ अछइ, ओलग रूड़ा रख्ख।—ढोला० दू०, ११४।

ओलगना(पु)—क्रि० अ० [सं० अपलग्न, अप० ओलग्ग] अलग होना। दूर होना। प्रस्थान करना। उ०—ढाढी रात्यूँ ओलग्या गाया बहु बहु भत।—ढोला० दू० १८६।

ओलगी—वि० [अप० ओलग्ग] दे० 'ओलग'। उ०—रहि रहि राव ओलगी तू जाई, माड़ुरी गइली तु करह पठाई।—बी० रासो, पृ० ३६।

ओलचा—संज्ञा पुं० [सं० उलचना] १ खेत का पानी उलीचने का चम्मच के आकार का काठ का बरतन। हाथा। २ दौरी जिससे किसी ताल का पानी ऊपर खेत में ले जाते हैं।

ओलची—संज्ञा स्त्री० [सं० आल] आलू बालू नाम का फल। गिलास।

ओलती—संज्ञा स्त्री० [देशज] १ ढलुवाँ छप्पर का वह भाग जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। उ० —नित सावन डीठि मुवैंठक में टपकै बदनी तिहि ओलतियाँ।—घनानंद, पृ० ८८।

मुहा०—ओलती तले का भूत = घर का भेदिया। निकटवर्ती व्यक्ति जो घर का सारा भेद जानता हो।

ओलना¹—क्रि० स० [हिं० ओल = आड़] १ परदा करना। ओट में देना। उ०—लोल अमोल कटाक्ष कलोल अलोकिक सो पट ओलि कै फेरे।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७३। २ आड़ना। रोकना। ३ ऊपर लेना। सहना। उ०—केसोदास कौन बड़ी रूप कुलकानि पै अनोखो एक तेरे ही अनूप उर ओलियै।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७६।

ओलना²—क्रि० स० [सं० शूल, हिं० हूल] धुसाना। चुभाना। उ०—ऐसी ह्वै हैं ईन पुनि आपने कटाछ मृगमद घनसार सम मेरे उर ओलिहैं।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ४६।

ओलमना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ओरमना' या 'उलमना'।

ओलरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उलरना'।

ओलराना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलारना'।

ओलहना—संज्ञा पुं० [हिं०] 'उलाहना'।

ओला¹—संज्ञा पुं० [सं० उपल] गिरते हुए मेह के जमे हुए गोले। पत्थर। बिनौली। इंद्रोपल। उ०—पाला कहीं, ओले कहीं, लगता कहीं कुछ रोग है।—भारत०, पृ० ६४।

विशेष—इन गोलों के बीच में बर्फ की कड़ी गुठली सी होती है जिसके ऊपर मुलायम बर्फ की तह होती है। पत्थर कई आकार के गिरते हैं। पत्थर पड़ने का समय प्रायः शिशिर और वसंत है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना। उ०—गड़गड़ाहट बढ़ने लगी, ओला पड़ने की संभावना थी।—आंधी, पृ० ११८।

होते। चलते समय इसके तलवे और पंजे अच्छी तरह से जमीन पर नहीं पडते। यदि कोई इसे सताता है तो यह बडी भयकरता से उसका सामना करता है।

ओर¹—सज्ञा स्त्री० [स० अवार = किनारा] १ किसी नियत स्थान के अतिरिक्त शेप विस्तार जिसे दाहिना, बाँया, ऊपर, नीचे, पूर्व, पश्चिम आदि शब्दों से निश्चित करते हैं। तरफ। दिशा।

यौ०—**ओर पास** = आस पास। इधर उधर।

विशेष—जब इस शब्द के पहले कोई सख्यावाचक शब्द आता है, तब इसका व्यवहार पुल्लिग की तरह होता है। जैसे,—घर के चारो ओर। उसके दोनो ओर। उ०—नैन ज्यो चक्र फिरै चहुँ ओरा।—जायसी ग्र०, पृ० ७५।

२—पक्ष। जैसे,—(क) यह उनकी ओर का आदमी है। (ख) हम आपकी ओर से बहुत कुछ कहेंगे।

ओर²—सज्ञा पुं० १ अत। सिरा। छोर। किनारा। उ०—(क) देखि हाट कछु सूझ न ओरा। सबै बहुत किछु दीख न थोरा।—जायसी ग्र०, पृ० ३१। (ख) गुन को ओर न तुम बिखै औगुन को मो माहि।—ब्रज० ग्र०, पृ० ११।

मुहा०—**ओर आना** = नाश का समय आना। उ०—हँसता ठाकुर खाँसता चोर। इन दोनो का आया ओर। **ओर निभाना या निबाहना** = अत तक अपना कर्तव्य पूरा करना। उ०—(क) पुरुष गभीर न बोलहि काहू। जो बोलहि तो ओर निबाहू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रनतपाल पालहि सब काहू। देहु दुहुँ दिसि ओर निबाहू।—तुलसी (शब्द०)।

२ आदि। आरभ। जैसे, ओर से छोर तक। उ०—(क) ओर दरिया भी कौन जिसका ओर न छोर।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३०। (ख) ओर तें याने चराई पैहैं अब ब्यानी बराइ मो भागिन आसौं।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१८।

ओरती†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओरमना] दे० 'ओलती'। उ०—रोवति भई न साँस सँभारा। नैन चुवहि जस ओरति धारा।—जायसी (शब्द०)।

ओरमना(पु)—क्रि० अ० [स० अवलम्बन] लटकना। झुकना।

ओरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ओराना'।

ओरमा—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर से नाम धातु] एक प्रकार की सिलाई जो आँवठ जोडने के काम मे आती है।

विशेष—जब आँवठों को मोडकर कहीं सीना होता है, तब दोनो आँवठो की कोरो को भीतर की ओर मोडकर परस्पर मिला देते हैं। फिर आगे की ओर मे सूई को दोनो आँवठो या कोरो मे से डालकर ऊपर को निकाल लेते हैं। फिर धागे को उन कोरो के ऊपर लाकर सूई डालते हैं।

ओरमाना—क्रि० स० [हिं० ओरमना] लटकाना। उ०—तेल फुलेल चमक चटकाई। टेढी पाग छोर ओरमाई।—घट०, पृ० ३००।

ओरवना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ओरमना] बच्चा देने का समय निकट आ जाना (चौपायो के लिये)। जैसे,—गाय का ओरवना।

ओरहना†(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलहना'। उ०—ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहि।—तुलसी ग्र० पृ० ४३२।

ओरहा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'होरहा'।

ओराँव¹—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक जाति जो प्राचीन काल मे चपारन, पलामू आदि के आसपास रहती थी। उ०—ओराँव आदि जाति मे जलाने की प्रथा चलती थी।—प्रा० भा० प० (भू०, पृ०, 'घ')। २ ओराँव जाति की बोली या भाषा।

ओरा¹—सज्ञा पुं० [स० उपल, हिं० ओला] दे० 'ओला'। उ०—(क) ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यो ढलि कूलि।—कबीर ग्र०, पृ० २५६। (ख) ओछी उपमानि को गरुर ओरे लौं गरै।—घनानद, पृ० ३५।

ओरा²—वि० [हिं० ओला] उज्वल। उ०—गोरे रँग ओरे सु दृग भए अरुन अनभग।—पद्माकर ग्र०, पृ० ५१।

ओराना†—क्रि० अ० [हिं० ओर (= अत) से नाम धातु का प्रे० रूप] अत तक पहुँचना। समाप्त होना। खतम होना। उ०—(क) जो चाहै जो लेय जायगी लूट ओराई।—पलटू०, पृ० ६। (ख) नदी सुखानी प्यास ओरानी टूटि गया गढ़ लका।—सं० दरिया, पृ० ११२।

ओराहना†—सज्ञा पुं० [हिं० उरहना] दे० 'उलहना'।

ओरिजिनल—वि० [अ०] मौलिक। मूल से सबद्ध।

ओरिजिनल साइड—सज्ञा पुं० [अ०] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जहाँ प्रेसीडेंसी नगर के दीवानी मामले दायर किए जाते हैं तथा उन मामलो का विचार होता है जिन्हे प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट दौरा सुपुर्द करते हैं। इन फौजदारी मामलो का विचार करने के लिये प्राय प्रतिमास एक दौरा अदालत बैठती है। इसे ओरिजिनल जूरिस्डिक्शन भी कहते हैं।

ओरिया¹—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'ओरी'।

ओरिया²—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर = सिरा] वह लकडी जो ताना तानते समय खूँटी के पास गाडी जाती है।

ओरिया³(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर] तरफ। ओर। उ०—कब ऐहैं स्याम बसीवाला हमरी ओरिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६४।

ओरी¹†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर = सिरा + ई (प्रत्य०)] ओरती। ओलती। उ०—(क) ओरी का पानी बरेंडी जाय। कडा बूडै सिल उतराय।—कबीर (शब्द०)।

ओरी²—अव्य० [हिं० ओ, री] स्त्रियो को पुकारने का एक सबोधन।

विशेष—बुदेलखड मे इस शब्द से माता को भी पुकारते है, और माता शब्द के अर्थ मे भी इसका व्यवहार करते हैं।

ओरी(पु)**³**—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओर] ओर। तरफ। उ०—हम तुम हिलि मिलि करि एक सग ह्वै चलैं गगन की ओरी।—जग० श०, पृ० ७५।

ओरौता†—वि० [हिं० ओर + औता (प्रत्य०)] १ अत। समाप्त। २ जिसका अंत या समाप्ति होने को हो। अतिम। अंत का।

ओरौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओरमना] ओलती।

२ आरंभ। शुरू।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ओप—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओप्पा, हिं० ओपना] १ चमक। दीप्ति। आभा। कांति। झलक। सुंदरता। शोभा। उ०—(क) मलिन देह, वेई बसन, मलिन विरह कें रूप। पिय आगम औरें चढ़ी आनन ओप अनूप।—बिहारी र०, दो० १६३। (ख) भीनें पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार। सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार।—बिहारी र०, दो० १६। २. जिला। पालिश। उ०—ए री प्रानप्यारी तेरी जानु कै सुजानु विधि ओप दीन्हो अपनी तमाम सुघराई को।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ६५।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ओपची—संज्ञा पु० [हिं० ओप(=चमक)+तु० ची (प्रत्य०)=वाला] वह जोधा जिसके शरीर पर झिलिम चमकता है। कवचधारी योद्धा। रक्षक योद्धा। उ०—(क) किते बीर तनुत्रान को अंग साजें। किते ओपची ह्वै धरे ओप गाजें।—सूदन (शब्द०)। (ख) जिरही सिलाही ओपची उमडे हथ्यारन को लिये।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११।

यौ० ओपचीखाना=चौकी।

ओपति†—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—जल है सूतक थल है सूतक, सूतक ओपति होई।—कबीर ग्रं०, पृ० २८८।

ओपना¹—क्रि० स० [सं० आवपन=सब बाल मुड़ाना, हिं० ओप] माँजना। साफ करना। जिला देना। चमकाना। पालिश करना। उ०—(क) केशवदास कुंदन के कोश ते प्रकाशमान, चितामणि ओपनी सों ओपि कै उतारि सी।—(केशव शब्द०)। (ख) जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी। दान, सत्य, सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी।—राम चं०, पृ० ३।

ओपना²—क्रि० अ० १ झलकना। चमकना। उ०—जिती हुती हरि के अवगुन की ते सबही तोपी। सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यौं, अधिक ओप ओपी।—सूर (शब्द०)।

ओपनि㉦—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओप'।

ओपनिवारी㉦—वि० [हिं० ओपनि+वारी(प्रत्य०)] चमकानेवाली। प्रकाशित करनेवाली। द्योतित करनेवाली। उ०—हँसत सुआ पहँ आइ सो नारी। दीन्ह कसौटी ओपनिवारी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५।

ओपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओप+नी (प्रत्य०)] माँजने की वस्तु। पत्थर या ईंट का टुकड़ा जिससे तलवार या कटारी इत्यादि रगड़कर साफ की जाती है। उ०—केशोदास कुंदन के कोश ते प्रकाशमान, चितामणि ओपनी सों ओपि कै उतारी सी।—केशव (शब्द०)।

ओपम㉦—संज्ञा पु० [सं० उपमा, प्रा० उप्पम] दे० 'उपमा'। उ०—पाती बंधिय कन्ह चप, इह ओपम करि अप्पि।—पृ० रा०, ५।१६७।

ओपाना—क्रि० अ० [हिं० ओप] दूध में धुएँ की गंध आना।

ओपासम—संज्ञा पु० [अं०] दक्षिण अमेरिका में रहनेवाला बिल्ली की तरह का एक जंतु।

विशेष—यह रात को घूमता और छोटे छोटे जीवों का शिकार करता है। इसके ५० दाँत होते हैं। मादा एक बेर में कई बच्चे देती है। चलते समय बच्चे माँ की पीठ पर सवार हो जाते हैं और उसकी पूँछ में अपनी पूँछ लपेट लेते हैं।

ओपिका㉦—वि० स्त्री० [हिं० ओप+इक (प्रत्य०)] ओपयुक्त। कांतियुक्त। विभूषित। शृंगारित। उ०—प्रदित असोक भरी सोक भरी दिति और दोष भरी पूतना अदोष करी ओपिका।—सुजान०, पृ० ३।

ओपित㉦—वि० [हिं० ओप+इत (प्रत्य०)] कांतियुक्त। विभूषित। उ०—तमो गुन ओप तन ओपित, विरूप नैन, लोकनि विलोप करे, कोप के निकेत हैं।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५२।

ओपी¹㉦—वि० [हिं० ओप+ई (प्रत्य०)] कांतियुक्त। सुंदर। उ०—कुब्जा त्रिभंगी ओपी हम सब बुरी हैं गोपी।—ब्रज ग्रं०, पृ० ४३।

ओपी²㉦—क्रि० वि० डूबी हुई। लीन। निमग्न। उ०—गावत गोरी रस में ओपी गोप बजावत तारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१३।

ओफ—अव्य० [अ० उफ या अनु०] पीड़ा, खेद, शोक और आश्चर्य-सूचक शब्द। ओह। उफ।

ओबरी¹㉦—संज्ञा स्त्री० [सं० उप विवर] छोटा घर। छोटा कमरा। कोठरी। उ०—(क) कागज केरी ओबरी मसु के कर्म कपाट। —कबीर ग्रं०, पृ० ३५०। (ख) बिलग जनि मानो ऊधौ कारे। वह मथुरा काजर की ओबरी जे आवें ते कारे।—सूर० १०।३७६२। (ग) खिसि करि खिसी तू, निसीथ कोऊ साथ जैहै, ओबरी के मेलत पगार जाइ चढी है।—घन, पृ० ६२।

ओबरी²㉦—संज्ञा स्त्री० समूह। ढेरी। उ०—हीरा की ओबरी नहीं मलयागिरि नहिं पाँति। सिंहन के लेंहड़ा नहीं साधु न चलैं जमाति।—कबीर (शब्द०)।

ओभना—क्रि० अ० [हिं० ऊभना] दे० 'ऊभना'। उ०—कोउ कहु कछु वृंदावन सोभा। तापर भैया अजगर ओभा।—नंद ग्रं०, पृ० २६१।

ओभा—संज्ञा स्त्री० [सं० अवभा, प्रा०, ओभास] शोभा। कांति। चमक। उ०—(क) होतहि छोटा व्रज की सोभा। देखो सखि कछु औरहि ओभा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१। (ख) होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५५।

ओम्—संज्ञा पु० [सं०] १ प्रणव। ओंकार। २ दे० 'ओं'।

ओरंगोटंग—संज्ञा पु० [मला० ओराग ऊतान=जंगली मनुष्य, मरा० ओरांगोटा=कपि आकृति का मनुष्य] सुमात्रा और बोर्नियो आदि द्वीपों में रहनेवाला एक बंदर या बनमानुष।

विशेष—यह लगभग चार फुट ऊँचा होता है। इसका रंग लाल और भुजाएँ बहुत लंबी होती हैं। टाँगें छोटी होती हैं। यह बंदर पेड़ों ही पर अधिक रहता है। इसके चेहरे पर बाल नहीं

पग्रराग ओदे वसन अँगोछि।—सूर०, १०।६०६। (ख) विरहिनि ओदी लाकडी सपचे औ धुँधुआय। छूटि पडौं या विरह से जो सिगरो जरि जाय।—कबीर सा०, पृ० १६।

ओदात†—संज्ञा पुं० [सं० अवदात] दे० 'अवदात'। उ०—हरित, मजिष्ठ, लोहित, श्वेत (ओदात) या मिश्रित '।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २०१।

ओदादार(पु)†—वि०[फ़ा० ओहदेदार]दे० 'ओहदेदार'। उ०—ओदादार आगै छा जका नें दूरि कीना। माटा काम छोटा आदम्या नैं सौंप दीना।—शिखर०, ११०।

ओदारना†—क्रि० स० [सं० अवदारण या उद्दारण] १ विदीर्ण करना। फाडना। २ छिन्न भिन्न करना। ढाना। नष्ट करना।

ओदासी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० उदासी] विरक्त पुरुष। त्यागी पुरुष। उ०—ना इहु गिरही ना ओदासी। ना इहु राज न भीख मँगासी।—कबीर ग्र०, पृ० ३०१।

ओद्रक(पु)†—संज्ञा पुं०[सं० उदक] दे० 'उदक'। उ०—सामद्र उहोला ओद्रका, जाए हिलोला हल्लियो।—रा० रू०, पृ० १६४।

ओध¹—संज्ञा पुं० [सं० ओधस्] थन। स्तन [को०]।

ओध(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] सीमा। हद। पराकाष्ठा। उ०—भूपन भनत भौंसिला भूपाल भूमि तेरी करतूति रही अद्भुत रस ओध है।—भूषण ग्र०, पृ० १०६।

ओधण†—संज्ञा पुं० [सं० अघस, हिं० ओधा] मोटे लंबे लकड़े, जो गाडी के नीचे लगे रहते हैं। उ०—वडके ओधण वधियाँ, पैसे पई पताल।—बाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ३८।

ओधना—क्रि० अ० [सं० आबन्धन] १ बँधना। लगना। फँसना। उलझना। उ०—रोव रोव तन तासों ओधा। सूतहि सूत वेधि जिउ सोधा।—जायसी ग्र०, पृ० ११२। २ काम में लगना या फँसना। उ०—सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे।—मानस, २।३२२।

ओधना²(पु)—क्रि० स० नाँधना। ठानना। उ०—भारत ओइ जूझ जो ओधा। होहिं सहाय आइ सब जोधा।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

ओधा†—संज्ञा पुं० [अ० ओहदा] १. पद। अधिकार। २ अधिकारी मालिक।

यौ०—ओधावार=ओहदेदार। उ०—ओधादार बोल्या आगि पैंसे तो निमडिगो।—शिखर०, पृ० ४८।

ओधायत†—संज्ञा पुं० [अ० ओहदा, राज० ओदा, ओधा+आयत= वाला या युक्त] हाकिम। अधिकारी। उ०—अवरही कारखाने तिस तिसके ओधायत अपनी अपनी जिनसूँ ले आय। —रघु० रू०, पृ० २८१।

ओधू(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवधूत, पु० हिं० अवधू] योगियों का एक भेद। अउधूत। उ०—ये इंद्रिय दवें सु ओधू। ये इंद्रिय दवें सु योधू।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १४६।

ओधे—संज्ञा पुं०[सं० उपाध्याय] अधिकारी। मालिक।

ओनत(पु)†—वि० [सं० अवनत] नत। नम्र। झुका हुआ। उ०—उठे कोप जनु दारिवँ दाखा। भई ओनत प्रेम के साखा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६०।

ओन(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'उन'। उ०—ओनहूँ सिस्टि जौं देव परेवा। तजा राज कजरी बन सेवा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०८।

ओनइस(पु)†—वि०[सं० ऊनविंश] दे० 'उनइस' और 'उन्नीस'। उ० —बारह ओनइस चारि सताइस। जोगिन पछिउँ दिसा गनाइस।—जायसी ग्र०, पृ० १६८।

ओनचन†—संज्ञा स्त्री० [सं० उदञ्चन, या अवाञ्चन, अवाञ्चन हिं० ऐंचना] वह रस्सी जो चारपाई के पैताने की ओर बिनन को खींचकर कडा रखने के लिये लगी रहती है।

ओनचना—क्रि० स० [हिं० ऐंचना] चारपाई के पायताने की खाली जगह में लगी हुई रस्सी को बिनन को कड़ी रखने के लिये खींचना।

ओनतिस†—वि०[सं० ऊनत्रिंश] दे० 'उनतिस'। उ०—बीस अठाइस ओनतिस भाता। उत्तर पछिउँ जो नेह नाता।—जायसी ग्र०, पृ० १६८।

ओनवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अवनमन या उन्नयन] दे० 'उनवना'। उ०—ओनवत आइ सेन सुलतानी। जानहु परलय आव तुलानी।—जायसी ग्र०, पृ० २६०।

ओनवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० ओनवना का प्रे० रूप] नीचे नमाना। झुकाना। उ०—मेहरी सेम रँनि के आवँ। तर पड़ कै पुरुख ओनवावँ।—जायसी ग्र०, पृ० ३८३।

ओना†¹—संज्ञा पुं० [सं०उद्गमन, प्रा० उग्गवन] तालावों में पानी के निकलने का मार्ग। निकास। उ०—गावनि बजावति नचत नाना रूप करि जहाँ तहाँ उमगत आनंद को ओनो सो। केशव (शब्द०)।

मुहा०—ओना लगना=तालाब में इतना पानी भरना कि ओन की राह से बाहर निकल चले। जैसे,—आज इतना पानी बरसा है कि कीरत सागर में ओना लग जायगा। उ०—जमुना जल जाति उराति हुती, यहै जानति ही घर घेर हैं होनों। गग कहै सोइ देखियै ताहि हौं जाहि जु ये जिय लाग्यो है ओनो।—गग०, पृ० ८२।

ओनाड(पु)†—वि० [देशज] १ जोरावर। बलवान।—(डिं०) २ ऐंठनेवाला। उ०—प्रभू के ओनाड आचू के उदार।—रघु० रू०, पृ० २४१।

ओनाना¹†—क्रि० स० [सं० अवनमन] १ दे० 'उनाना'। २ कान लगाकर सुनना।

ओनाना²—क्रि० अ० [सं० आकर्णन, अकर्णन] सुनाई पडना। श्रवणगोचर होना। उ०—हेरत घातें फिरैं चहुधा तें ओनात हैं बातें दैवाल तरी सों।—भिखारी ग्र०, भा १, पृ० २५।

ओनामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० ॐ नम सिद्धम्] १. अक्षरारंभ। उ०—पढ़ो मन ओनामासी धम।—कबीर श०, पृ० ३।

विशेष—बच्चों से पाठ आरंभ कराने से पहले 'ओ नम. सिद्धम्' कहलाया जाता है। इसका रूप ओनामासीग और ओनामा सीधम भी मिलता है। जैसे,—२१ साल तक घर में रहे ओनामासीध। बाप पढ़े न हम।—किन्नर०, पृ० ६७।

ओढाना—क्रि० स० [हिं० ओढ़ना] ढाँकना । कपड़े से आच्छादित करना । उ०—(क) कामरी ओढ़ाय कोऊ साँवरो कुँवर मोहिं बाँह गहि लायो छाँह बाँह की पुलिन ते । —देव (शब्द०) । (ख) नीरा चौंककर उठी और एक फटा सा कंबल उस बुड्ढे को ओढाने लगी । —आँधी, पृ० १०७ ।

ओढौनी(पु), ओढ़ौनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओढना] दे० 'ओढ़नी' । उ०—भूरि कूर की पूरि बिलोचन सूँघि सरोरुह ओढि ओढौनी ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६६ ।

ओत[1]—संज्ञा स्त्री० [स० अवधि पु० हिं० औध, औधि] १ कष्ट की कमी । आराम । चैन । उ०—(क) नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि, होत न विसोक ओत पावै न मनाक सो । —तुलसी ग्रं०, पृ० १७७ । (ख) भली वस्तु नागा लगै काहू भाँति न ओत । अँ उद्वेग सुवस्तु अरु देश काल तें होत । —देव (शब्द०) । २ आलस्य । ३. किफायत ।

क्रि० प्र० —पड़ना ।

ओत[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाप्ति या हिं० आवन]प्राप्ति । लाभ । नफा । बचत । जैसे,—जहाँ चार पैसे की ओत होगी वहाँ जायँगे ।

यौ०[3]—ओत कसर = नफा नुकसान । जैसे—इनमे कौन सी ओत कसर है ।

ओत[3]—संज्ञा पुं० [स०] ताने का सूत ।

ओत[4]—वि० [स०] बुना हुआ । गुँथा हुआ ।

यौ०—ओतप्रोत ।

ओत[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओट] दे० 'ओट' । उ०—साहि तनै सरजा के भय सो भगाने भूप, मेरु में लुकाने ते लहत जाय ओत हैं । —भूषण ग्रं०, पृ० १६ ।

ओतनी(पु)†— वि० [अ० वतनी] देश का । स्वदेश संबंधी । अपने देश का । उ०—अरे हाँ, पलटू बडे खेलाडी यार हमारे ओतनी । —पलटू०, पृ० ७६ ।

ओतप्रोत[1]—वि०[स०]एक मे एक बुना हुआ । गुथा हुआ । परस्पर लगा और उलझा हुआ । बहुत मिला हुआ । इतना मिला हुआ कि उसका अलग करना असमव सा हो । उ०—ओतप्रोत है जहाँ मनुज का जीवन मद मत्सर से ।—पथिक, पृ० १३ ।

ओतप्रोत[2]—संज्ञा पु० १ ताना बाना । २ एक प्रकार का विवाह जिसमे एक आदमी अपनी लडकी का विवाह दूसरे के लडके के साथ करता है और वह दूसरा भी अपनी लडकी का विवाह पहले के लडके के साथ करता है ।

ओता(पु)†—वि० [हिं० उतना] [स्त्री० ओती] उतना । उ०—(क) मोहिं कुसल कर सोच न ओता । कुसल होत जौं जनम न होता ।— जायसी ग्रं०, पृ० ६३ । (ख) कहौं लिलार दुइज कै जोती । दुइजहि जोति कहाँ जग ओती ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८३ ।

ओतान(पु)†—संज्ञा पुं० [स० श्रवण] श्रुत राग या सुनने से उत्पन्न अनुराग । उ०—सुनि राजन लग्गो ओतान । लग्गे मीनकेतु कृत बान ।—पृ० रा० २५।२८ ।

ओतारा(पु)†—संज्ञा पुं० [स० अवतरण, हिं० उतारा] दे० 'उतारा' । उ०—पेखे पुर वासियाँ, धणी अणजीत धरा रो । जादम गोयंद तणै, बाग कीधो ओतारो ।—राज० रू०, पृ० ३५१ ।

ओताल(पु)†—क्रि० वि० [सं० उद् + त्वर] शीघ्र । जल्दी । उ०—पडही लहराँ मिस पगा, त्यौं हुँदा ओताल ।—बाँकी० ग्रं० भा० ३, पृ० ६६ ।

ओतु[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ ताना । २ बिडाल । मार्जार [को०] ।

ओतु[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिल्ली ।

ओतू—संज्ञा पुं० [सं० ओतु] ओतु । ताना । उ०—'बुनने की करघी 'तसर' कहलाती थी, ताना 'ओतु' और बाना तंतु' कहलाता था' ।— हिंदु सभ्यता, पृ० ७६ ।

ओतो(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ओता' ।

ओत्ता[1]— वि० [हिं०] दे० 'ओता' या 'उतना' ।

ओत्ता[2]†—संज्ञा पु० [स० अवस्था] उस पटरे का पावा जिसपर दरी बुननेवाले बैठते हैं ।

ओथ —संज्ञा पु० [अ०] शपथ । प्रतिज्ञा ।

ओद[1](पु)†—संज्ञा पु० [स० आर्द्र,प्रा० उद्द या सं० उद = जल] नमी । तरी । गीलापन । सील ।

ओद[2]—वि० गीला । आर्द्र । नम । उ०—आनँदकद सकल सुखदायक, निसि दिन रहत केलि रस ओद ।—सूर०, १०।११६ ।

ओदक—संज्ञा पु० [स०] जल मे रहनेवाला जतु । जलप्राणी [को०] ।

ओदन—संज्ञा पु० [स०] पका हुआ चावल । भात । उ०—(क) जल लौं हौं जीवौं जीवन भर सदा नाम तव जपिहौं । दधि ओदन दोना भरि दैहौं अरु भाइनि मैं थपिहौं ।—सूर०, ६।१६४ । (ख) भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ । —मानस, १।२०३ । २ बादल । मेघ [को०] ।

ओदनपाकी—संज्ञा स्त्री० [स०] नीलझिंटिका [को०] ।

ओदनाह्वया, ओदनाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओदनिका' ।

ओदनिका—संज्ञा स्त्री०[स०] १ बला नामक ओषधि । २. महासमंगा नामक एक पौधा [को०] ।

ओदनी—संज्ञा स्त्री० [स०] बला । बरियारा । बीजबंध ।

ओदनीय, ओदन्य—वि० [स०] १ ओदन सबंधी । २ ओदन के योग्य [को०] ।

ओदर[1]†—संज्ञा पुं० [सं० उदर] दे० 'उदर' । उ०- (क) जब रहली जननी के ओदर परन सँभारल हो ।—धरम०, पृ० ४५ । (ख) पुनि वह जोति मातु घट आई । तेहि ओदर कादर बहु पाई ।—जायसी ग्रं०, पृ० १६ ।

ओदरना(पु)†—क्रि० अ०[स० अवदारण, हिं० ओदारना] १ विदीर्ण होना । फटना । २ छिन्न भिन्न होना । ढहना । नष्ट होना । जैसे,—घर ओदरना । उ०—फूटहिं कोट फूट जनु सीसा । ओदरहिं बुरुज जाहिं सब पीसा ।—जायसी ग्रं०, पृ० २३४ ।

ओदा—वि०[सं० आर्द्र,प्रा० उद्द, हिं० ओद या स० उद = जल] [वि० स्त्री० ओदी]गीला । नम । तर । उ०—(क) उत्तम विधि सों मुख

ओड़चा†— संज्ञा पुं० [हिं० ओलचर] दे० 'ओलचा'।

ओड़न(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ओड़ना] १ ओड़ने की वस्तु। वार रोकने की चीज। उ०—कुंकुम बीर कमधज्ज नम्म ओडन सब [illegible]।—पृ० रा०, ६१।२०१३। २ ढाल। फरी। उ०—कुंवर धर्म रथ पर दीन्हा। कुंवरै वे ओड़न पर लीन्हा।—[illegible] (शब्द०)।

ओड़ना—क्रि० स० [सं० ओड़न = हटाना या हिं० ओट + ना (प्रत्य०)] १ रोकना। वारण करना। आड़ करना। उ०—[illegible] ओड़ियहि हाथ असनिहु के घाये।—मानस, २।३०७। २. ऊपर लेना। सहना। उ०—दूसरी [illegible] ही होइ [illegible] गई है। राख्यो भले [illegible] फनि पै फूल सो ओढ़ लई है।—राम [illegible], पृ० १२१। ३ (कुछ लेने के लिये) फैलाना। पसारना। रोपना। उ०—(क) [illegible] मातु, सहिदानि मुद्रिका दई प्रीति करि नाथ। [illegible] सोक निवारहु ओड़हु दच्छिन हाथ।—सूर० ९।८३। (ख) [illegible] के कीजै कहो कौनै नहिं ओड़यो हाथ।—[illegible], पृ० १२८। (ग) अचल ओड़ि मनावहिं [illegible]। विघ्न निवारि विवाह करावहु [illegible]।—रघुराज (शब्द०)।

ओडव—संज्ञा पुं० [सं०] राग का एक भेद जिसमें 'सा ग म ध नि' ये पाँच स्वर लगते हैं। इसमें ऋषभ और पंचम वर्जित हैं। मलार आदि राग इसके अंतर्गत हैं।

यौ०—ओडव षाडव = संगीत में ओडव का एक भेद। इसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में छह स्वर प्रयुक्त किए जाते हैं। ओडव संपूर्ण = यह भी ओडव का एक भेद है। जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में संपूर्ण अर्थात् सात स्वरों का प्रयोग किया जाता है।

ओड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, प्रा० उंड][स्त्री० ओड़ी] १ दे० 'ओड़ा'। २ [illegible] टोकरा जिसमें तमोली पान रखते हैं। खाँचा। बड़ा टोकरा। उ०—[illegible] ओड़ी रे [illegible] पर काचड़ा पुरीप।—[illegible] भा० २, पृ० ५७। ३ एक गँचिया का मान जिससे [illegible], चूना नापा जाता है।

ओड़ा²—संज्ञा पुं० [सं० ऊन, प्रा० ऊण] कमी। अकाल। टोटा।

मुहा०—ओड़ा पड़ना = (१) अप्राप्य होना। अकाल पड़ना। २. मिटना।

ओड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना जोते बोए उत्पन्न होनेवाला धान। तिन्नी। तीनी (डिं०)।

ओड़िया²—संज्ञा पुं० [हिं० उड़िया] दे० 'उड़िया'।

ओड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओड़िका' (डिं०)।

ओडेसी—संज्ञा पुं० [यू०] [illegible] प्राचीन यूनानी भाषा का एक [illegible] ग्रंथ [illegible] ओडेसी या यूलिसिस नामक नायक [illegible] की [illegible]

ओढ़ौनी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ओढ़नी'। उ०—[illegible]—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१६।

ओड्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ उड़ीसा देश। २ उस देश का निवासी। ३. गुड़हर का फूल। देवीफूल। अड़हुल।

ओढ—वि० [सं०] समीप या नजदीक लाया हुआ (को०)।

ओढन†—संज्ञा पुं० [हिं० ओढ़ना] ओढ़ने का वस्त्र। उ०—लोमह ओढ़न डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।—मानस, ७।४०।

ओढना¹—क्रि० स० [सं० अवा या उपा + वेष्ठन, प्रा० ओवेट्ठण] १ कपड़े या इसी प्रकार की और वस्तु से देह ढकना। शरीर के किसी भाग को वस्त्र आदि से आच्छादित करना। जैसे,—रजाई ओढ़ना, दुपट्टा ओढ़ना, चद्दर ओढना। उ०—मारग चलत अनीति करत है, हठ करि माखन खात। पीतांवर वह सिर तें ओढत, अंचल दै मुसुकात।—सूर०, १०।३३८। २ अपने ऊपर लेना। सहना। उ०—परै सो ओढै सीस पर सीखा सनमुख जोइ। दृढ निस्चै हरि को भजै होनी होइ सो होइ।—मीखा०, श०, पृ० ९४। ३ जिम्मे लेना। भागी बनना। अपने सिर लेना। जैसे,—उनका ऋण हमने अपने ऊपर ओढ लिया। उ०—बोलै नहीं रह्यो दुरि बानर द्रुम में देह छिपाइ। कै अपराध ओढ अब मेरो कै तू देहि दिखाइ।—सूर०, (शब्द०)।

मुहा०—ओढ़ैं या बिछावैं ? = क्या करें ? किस काम में लावैं ? उ०—तुमहु बचन अनि हमैं न भावैं। जोग कहा ओढ़ैं कि बिछावैं।—सूर०, १०।४०९४।

ओढना²—संज्ञा पुं० ओढने का वस्त्र। उ०—मधूलिका का छाजन टपक रहा था। ओढने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी।—आँधी, पृ० ११७।

यौ०—ओढ़ना बिछौना = (१) ओढ़ने और बिछाने का वस्त्र। (२) व्यवहार की वस्तुएँ। सरंजाम। टटघट।

मुहा०—ओढ़ना उतारना = अपमानित करना। इज्जत उतारना। ओढ़ना ओढ़ाना = रांड स्त्री के साथ सगाई करना (छोटी जाति)। ओढ़ना गले में डालना = बाँधकर न्यायकर्ता के पास ले जाना। अपराधी बनाकर पकड़ रखना।

विशेष—पहले यह रीति थी कि जब छोटी जाति की स्त्रियों के साथ कोई अत्याचार करता था तब वे उसके गले में कपड़ा डालकर चौधरी के पास ले जाती थीं।

ओढ़ना बिछौना बनाना = हर वक्त या बेपरवाही से काम में लाना।

ओढ़नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओढ़ना] स्त्रियों के ओढने का वस्त्र। उपरनी। फरिया। उ०—देख लजाई स्वच्छ मधूक कपोल में, खिसक गई उर से जरतारी ओढ़ना।—मधु०, पृ० ११।

मुहा०— ओढ़नी बदलना = बहनापा जोड़ना। सखी बनाना। बहन का संबंध स्थापित करना।

ओढ़र(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं० ओढ़ना या ओढ़ = ओट, सहारा] बहाना। मिस। उ०—मुनि कोउ ओढ़र जनि करहू। निज कुल रीति हृदय महँ धरहू। सैन बैन सब गोपिन केरे। करि ओढ़र आवें नित नेरे।—विश्राम (शब्द०)।

ओढ़वाना—क्रि० स० [हिं० ओढ़ाना का प्रे० रूप] कपड़े से ढकवाना।

ओझा[1]—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय, प्रा० उवज्झाओ, उवज्झाअ, ओज्झाय] [स्त्री० ओझाइन] सरजूपारी, मैथिल और गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

ओझा[2]—संज्ञा पुं० भूत प्रेत झाड़नेवाला। सयाना। उ०—भए जीउँ बिनु नाउत ओझा। विष भइ पूरि, काल भए गोझा।—जायसी (शब्द०)।

ओझाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओझा+ई (प्रत्य०)] ओझा की वृत्ति। झाड़फूँक। भूत प्रेत झाड़ने का काम।

ओझैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओझा+ऐत+ई (प्रत्य०)] दे० 'ओझाई'।

ओट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० उट=घास फूस या सं० आ+वृत्ति=आवरण, या सं० ओणन>ओडन>ओट अथवा देश० ओहट्ट=अवगुंठन] १ रोक जिससे सामने की वस्तु दिखाई न पड़े या और कोई प्रभाव न डाल सके। विक्षेप जो दो वस्तुओं के बीच कोई तीसरी वस्तु आ जाने से होता है। व्यवधान। आड़। ओझल। जैसे,—वह पेड़ों की ओट में छिप गया। उ०—लता ओट तब सखिन लखाए।—मानस, १।२३१।

मुहा०—आँखों से ओट होना=दृष्टि से छिप जाना। ओट में=बहाने से। हीले से। जैसे,—धर्म की ओट में बहुत से पाप होते हैं। २ शरण। पनाह। रक्षा। उ०—(क) बडी है राम नाम की ओट। सरन गऐं प्रभु काढि देत नहिं, करत कृपा कै कोट।—सूर०, १।२३२। (ख) तन ओट के नाते जु कबहूँ ढाल हम आडी नहीं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४। ३ वह छोटी सी दीवार जो प्राय राजमहलों या बड़े बड़े जनाने मकानों के मुख द्वार के ठीक आगे, अंदर की ओर परदे के लिये बनी रहती है। घूँघट की दीवार। गुलामगर्दिश।

ओट[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कुसुमोदर नाम का एक वृक्ष।

विशेष—इसमें बरसात के दिनों में सफेद और पीले सुगंधित फूल तथा ताड़ की तरह के फल लगते हैं। इन फलों के अंदर चिकना गूदा होता है और इनका व्यवहार खटाई के रूप में होता है। वैद्यक में यह फल रुचिकर, श्रम-शूल-नाशक, मलरोधक और विषघ्न कहा गया है।

पर्या०—भव। भव्य। भविष्य। भवन। वक्त्रशोधन। लोमक। संपुटांग। कुसुमोदर।

ओटन—संज्ञा पुं० [सं० आ+वर्तन, हिं० ओटना] चरखी के दो डंडे जिनके घूमने से रुई में से बिनौले अलग हो जाते हैं।

ओटना—क्रि० स० [सं० आवर्तन, पा० आवट्टन, प्रा० आउट्टण] १ कपास को चरखी में दबाकर रुई और बिनौलों को अलग अलग करना। उ०—यहि विधि कहीं कहा नहिं माना। मारग माहि पसारिनि ताना। रात दिवस मिलि जोरिन ताना। ओटत कातत भरम न भागा।—कबीर (शब्द०)। २ बार बार कहना। अपनी ही बात कहते जाना। जैसे,—तुम तो अपनी ही ओटते हो दूसरे की सुनते ही नहीं। ३ रोकना। आड़ना। अपने ऊपर सहना। उ०—(क) दास को जो डारी चोट ओट लई अंग में ही नहीं मैं तो जाहुँ विजय मूरति बताई है।—प्रिया० (शब्द०)। (ख) मुरि मुसुकाइ जो पिछौहैं चोट ओटी है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २०९। ४ अपने जिम्मे लेना। अपने ऊपर लेना।

ओटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओटना] कपास ओटने की चरखी। चरखी जिसमें कपास के बिनौले अलग किए जाते हैं। बेलनी।

ओटपाय—संज्ञा पुं० [सं० अष्टपाद, प्रा० अट्ठपाव] दे० 'अठपाव'। उ०—चाड सिर चढत बढत अति नाडिलो ह्वै कैसे गनै बनै जेब ओटपाय तब के।—घनानंद०, पृ० ४६।

ओटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ओट] १. परदे की दीवार। पतली दीवार जो केवल परदे के वास्ते बनती है। उ०—(क) मन अरपण कीयैं हरि मारग। चाहै प्रज ओटे चडी।—वेलि०, दू० १३६। (ख) चाहै मुख अगणि ओटे चढ़ि।—वेलि०, दू० १५५। २ परकोटा। घेरा। बाँध। उ०—तन सरवर जल बीर रस ओटा बधि सुरधि।—पृ० रा०, ५।१६६। ३ आड। ओट। उ०—देखत रूप ठगौरी सी लागत नैननि सैन निमेष की ओटा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४१। †४ ब्राह्मणी। बमनी। बनकुस।

ओटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ओटना] कपास ओटनेवाला आदमी।

ओटा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] जाँत के निकट पिसनहारियों के बैठने का चबूतरा।

ओटा[4]—संज्ञा पुं० [हिं० गोंठना] सोनारों का एक औजार जिससे वे बाजूबंद के दाँतों की खोरिया बनाते हैं। इसे गोटा भी कहते हैं।

ओटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओटना] चरखी। कपास ओटने की कल।

ओठँगन†—संज्ञा पुं० [हिं० ओठँगना] दे० 'उठँगन'।

ओठँगना—क्रि० अ० [सं० *अवस्थाङ्गन>प्रा० *ओट्ठागन या हिं० उठना+अंग] १ किसी वस्तु से टिककर बैठना। सहारा लेना। टेक लगाना। उठँगना। २ थोड़ा आराम करना। कमर सीधी करना।

ओठँघना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ओठँगना'। उ०—सब चौपारिन्ह चंदन खंभा। ओठँधि सभापति बैठे सभा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६।

ओठँघाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उठँगाना'।

ओठ[1]†—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] दे० 'ओंठ'। उ०—मुझे प्यास लगी थी, ओठ चाटने लगी।—कंकाल, पृ० २१३।

ओठ[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० औंठ] वह खेत जो परती छोड़ते हैं। उ०—सिमटा पानी खेतों का, ओठ पर चले हल।—अपरा, पृ० १९५।

ओड[1](पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ओट] दे० 'ओट'। उ०—गरब अगिन गहिरे सब जरा। बिनती ओड खरग निसतरा।—चित्रा०, पृ० ६५५।

ओड[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवार] दे० 'ओर[2]'। उ०—(क) कबीर तासूँ प्रीति करि जो निरबाहै ओड़ि।—कबीर ग्रं०, पृ० ८८। (ख) माननि मान अ.बहु कर ओड। रयनि बहति है रहलि अछ थोड़।—विद्यापति, पृ० १२२।

ओड[3]—संज्ञा पुं० [हिं० औंड या देश०] १ वह जो गदहों पर ईंट, चूना मिट्टी आदि ढोता हो। गदहों पर माल ढोनेवाला व्यक्ति। दे० 'औंड'। —वर्णं०, पृ० १।

ओडक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ओडव' (को०)।

ओछाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० ओछा + ई (प्रत्य०)] नीचता। क्षुद्रता। छिछोरापन। खोटाई। उ०—हमहिं ओछाई भई जबहिं तुमको प्रतिपाले। तुम पूरे सब भाँति मातु पितु सकट घाले।—सूर (शब्द०)।

ओछाड†—वि० [प्रा० ओच्छाय = आच्छादन करना] रक्षा करनेवाला। रक्षक। पालक। उ०—सगत सुखी कर सेवगा, अखिल जगत ओछाड।—बाँकी ग्र०, भा० १, पृ० ४८।

ओछापन—संज्ञा पुं० [हिं० ओछा + पन (प्रत्य०)] नीचता। क्षुद्रता। छिछोरापन।

ओछार†--संज्ञा स्त्री० [हिं० बौछाड़] दे० 'बौछाड'।

ओज[1]—वि० [सं० ओजस्] विषम। अयुग्म (को०)।

ओज†[2]--संज्ञा पुं० [हिं० ओजना = सहना] कृपणता। किफायतदारी। कार्पण्य। जैसे,— वह बहुत ओज से खर्च करता है।

ओज[3]—संज्ञा पु० [सं०] [वि० ओजस्वी, ओजित] १ बल। प्रताप। उ०— तेज ओज और बल जो वदान्यता कदम्ब सा।— लहर, पृ० ५६। २ उजाला। प्रकाश। उ०—कामना की किरन का जिसमे मिला हो ओज। कौन हो तुम, इसी भूले हृदय की चिर खोज।—कामायनी। ३ कविता का वह गुण जिससे सुननेवाल के चित्त में आवेश उत्पन्न हो।

विशेष—वीर और रौद्र रस की कविता मे यह गुण अवश्य होना चाहिए। टवर्गी अक्षरो की अधिकता, सयुक्ताक्षरो की बहुतायत और समासयुक्त शब्दो से यह गुण अधिक आता है। परुषावृत्ति मे यह गुण होता है।

४ शरीर के भीतर के रसो का सार भाग। ५ ज्योतिष मे विषम राशियाँ (को०)। ६ शस्त्रकौशल। ७ गति। वेग (को०)। ८ पानी (को०)। ९ प्रत्यक्ष होना। आविर्भाव होना (को०)। १० धातु का प्रकाश (को०)। ११ जननशक्ति या जीवन शक्ति (को०)।

ओजक(पु)—संज्ञा पु० [हिं० उझकना] उछल कूद। क्रीडा। आनद। उ०--लाडो लाडी जाय लडावण रात्यूँ ओजक सारै। जन हरिराम फिरै मन फीटी ध्यान न हरि का धारै।—राम० धर्म०, पृ० १७३।

ओजना—क्रि० स० [सं० अवरुध्य्, प्रा० ओरुज्झ, हिं० ओझल] रोकना। ऊपर लेना। सहना। स्वीकार करना।

ओजसीन—वि० [सं०] मजबूत। शक्तिशील। ताकतवर (को०)।

ओजस्वान्--वि० [सं०] १ शक्तिशाली। ताकतवर। २ दीप्त। चमकीला। ज्योतित (को०)।

ओजस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज। कांति। दीप्ति। प्रभाव।

ओजस्वी—वि० [सं० ओजस्विन्] [वि० स्त्री० ओजस्विनी] १ शक्तिमान्। तेजवान्। प्रभावशाली। २ प्रतापी। द्योतित। दीप्त। चमकीला (को०)।

ओजित—वि० [सं०] १ बलवान्। प्रतापी। तेजवान। शक्तिशाली। २ उत्तेजित। जिसमें जोश आया हो। ओजयुक्त।

ओजिष्ठ—वि० [सं०] अत्यत उग्र। अत्यधिक शक्तिशाली (को०)।

ओजीय--वि० [सं०] दे० 'ओजिष्ठ' (को०)।

ओजूद– संज्ञा पुं० [अ० वजूद] शरीर। तन। जिस्म। उ०—तजो कुलती मेटो भग। अहनिसि रापो ओजुद बधि। सरब सजोग आवै हाथि। गुरु राखै निरवाण समाधि।—गोरख०, पृ० ७४।

ओजोन—संज्ञा पुं० [फ्रेंच] कुछ घना किया हुआ अम्लजन तत्व।

विशेष—इसका घनत्व अम्लजन से १½ गुना होता है। इसमे गध दूर करने का विशेष गुण है। गरमी पाने से ओजोन साधारण अम्लजन के रूप मे हो जाता है। ओजोन का बहुत थोडा अश वायु मे रहता है। नगरो की अपेक्षा गाँवों की वायु मे ओजोन अधिक रहता है। सागरतट पर तथा पहाडो पर यह बहुत मिलता है इसका सकेत 'ओ'३ है।

ओजोन पेपर—संज्ञा पु० [फ्रें० ओजोन + अ० पेपर] एक प्रकार का कागज जिसके द्वारा यह परीक्षा हो सकती है कि वायु मे ओजोन है या नही।

ओजोनबकस—संज्ञा पुं० [फ्रें० ओजो + अ० बाक्स] वह सदूक जिसमे ओजोन पेपर रखकर परीक्षा करते हैं कि यहाँ की हवा मे ओजोन है या नही। यह बकस ऐसा बना होता है कि इसके भीतर हवा तो जा सकती है, पर प्रकाश नही जा सकता।

ओझ[1]--संज्ञा पुं० [सं० उदर, हिं० ओझर] १ पेट की थैली। पेट। २ आँत।

ओझ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ओझा] दे० 'ओझा'। उ०—तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि सुनु ओझ। सुरसरिगत सोई सलिल सुरा सरिस गगोझ।—तुलसी ग्र०, पृ० १०८।

ओझइत†—संज्ञा पुं० [हिं० ओझा + ऐत > अइत (प्रत्य०)] दे० 'ओझा'।

ओझइती†--संज्ञा स्त्री० [हिं० ओझइत] दे० 'ओझैती'।

ओझकना(पु)†--क्रि० अ० [हिं० उझकना] चौंकना। चमकना। ऊ०--सूती सपनै ओझकी बोली अटपट बैन। जन हरिया घर आँगनै सही पधारे सैन। रा० धर्म०, पृ० ६७।

ओझडी†—संज्ञा स्त्री० [दे० प्रा० ओज्झरी] दे० 'ओझरी'।

ओझर--संज्ञा पुं० [सं० उदर, प्रा० ओज्झरी, पुं० हिं० ओवर, ओझर] [स्त्री० अल्पा० ओझरी] १ पेट। २ पेट के भीतर की वह थैली जिसमे खाए हुए पदार्थ भरे रहते हैं। पचौनी।

ओझराना(पु)†--क्रि० अ० [सं० अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झन] उलझना। अरुझाना। लिपटना। उ०—अधर सुखाएल केस ओझराएल नीलि नलिन दल तहु।—विद्यापति, पृ० ३०५।

ओझरी—संज्ञा स्त्री० [दे० प्रा० ओज्झरी] ओझर। पचौनी। उ०— ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधेमूँड के कमडलु खपर किए कोरि कै।—तुलसी ग्र०, पृ० १६५।

ओझल[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अव = नहीं + हिं झलक] ओट। आड। उ०--अब तो रूप की ओझल से इसे निशक बातचीत करते देखूँगा।—शकुतला, पृ० १४।

ओझल[2]—वि० लुप्त। गायब। उ०—दिल ओझल मेरा दिल जानी। —धरनी०, पृ० १८।

पड़ना । कष्ट सहने पर उतारू होना । जैसे —अब तो हम ओखली में सिर दे ही चुके हैं, जो चाहे सो हो ।

ओखा¹(पु)—संज्ञा पुं॰[सं॰√ओख् = वारण करना, बचाना] मिस । व्याज । बहाना । हीला । उ॰— (क) देखिबे को नँदनंदन को, ननदी नँदगाँव चलौं केहि ओखे ।— बेनी प्रवीन (शब्द॰) । (ख) नेकौ अनखाति न अनख भरी आँखिन, अनोखी अनखीली रोख ओखे तें करति है ।—देव (शब्द॰) ।

ओखा²—वि॰ [सं॰ √ओख् = 'सूखना', प॰ ओखा = टेढ़ा, कठिन] वि॰ स्त्री॰ ओखी] १. रूखा सूखा । २ कठिन । विकट । टेढ़ा । उ॰—सुनु, नीको न नेह लगवानो है, फिर जो पै लगै तो निबाहनो है । अति ओखी है प्रीति की रीति, अरी नहिं जोस को रोस सुहावनो है ।—सुंदरी सर्वस्व (शब्द) । ३ खोटा । जिसमें मिलावट हो । चोखा का उलटा । ४ झीना । जिसकी बिनावट दूर दूर हो । विरल । ५ ओछा । हलका । साधारण ।

ओखाण(पु)†—संज्ञा पुं॰[हिं॰ उपाख्यान, प्रा॰ उवक्खाण]उपाख्यान । कथा । कहानी । उ॰—उलटा समझे राम ओखाणो साचो करयो । शरणागत दुखताम यह कारण अबही भयो ।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ २६६ ।

ओखापन— संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ओखा+पन (प्रत्य॰)] दे॰ 'ओछापन' ।

ओग(पु)—संज्ञा पुं॰[सं॰ उद्+√ग्रह हिं॰ उगहना]उगहनी । कर । चंदा । महसूल । उ॰—काहे को हमसो हरि लागत । पैंडो देहु बहुत अब कीनो सुनत हँसेंगे लोग । सूर हमैं मारग जनि रोकहु घर तें लीजै ओग ।—सूर (शब्द॰) ।

ओगण¹—वि॰ [सं॰] सामर्थ्ययुक्त । सघटित [को॰] ।

ओगण²(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अवगुण] दे॰ 'अवगुण' ।—(डिं॰) ।

ओगरना¹†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ अवगरण] पानी या और किसी तरल वस्तु का धीरे धीरे टपकना या निकलना । निचुड़ना । रसना ।

ओगरना²—क्रि॰ स॰ निकालना । बाहर करना । प्रकट करना । उ॰—सत्त सब्द के नेजा बाँध्यो ओगरत नाम अगारी हो ।—गुलाल॰, पृ॰ २६ ।

ओगल¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] परती भूमि ।

ओगल²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ओगरना, या प्रा॰ ओग्गाल = छोटा प्रवाह] एक प्रकार का कुआँ ।

ओगला†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] कूटू । फाफर । उ॰—फाफड़ या फाफड़ा यहाँ ओगला कहा जाता है—किन्नर॰, पृ॰ ७० ।

ओगार(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ उगाल] पान की पीक । उ॰—लाल यह सुंदर बीरी लीजै । हँसि हँसि कै नंदलाल अरोगी मुख ओगार मोहिं दीजै ।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ १२७ ।

ओगारना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ अवगारण] कुएँ का पानी निकाल डालना । कुआँ साफ करना । छानना ।

ओगुण(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अवगुण] दे॰ 'अवगुण' । उ॰—अग अपार हुवै जो अवगुण, तोपिण नाह न नाह तजै ।—रघु॰ रू॰, पृ॰ १०२ ।

ओघ—संज्ञा पुं॰[सं॰] १. समूह । ढेर । उ॰—खिल निंदक अघ ओघ नसाए । लोक बिलोक बनाइ बसाए ।—मानस, १।१६ ।

यौ॰ अघौघ = पापों का समूह ।

२ किसी वस्तु का घनत्व । ३. बहाव । धारा । उ॰—(क) सुनु मुनि उहाँ मुबाहु लखि निज दल खंडित गात । महा बिकल पुनि रुधिर के ओघ बिपुल तन जात ।—रामाश्वमेध (शब्द॰) । (ख) साहस उमड़ना या वेगपूर्ण ओघ सा । —लहर, पृ॰ ६६ । ४ सांख्य के अनुसार एक प्रकार की तुष्टि । कालतुष्टि ।

विशेष—'काल पा के सब काम आप हो हो जायगा', इस प्रकार सतोष कर लेने को कालतुष्टि या 'ओघ' कहते हैं ।

५ सातत्य । नैरंतर्य । अविच्छिन्नता (को॰) । ६. परंपरा या परंपरागत निर्देश (को॰) । ७ समग्र । संपूर्ण (को॰) । ८ नृत्य का एक भेद (को॰) । ९ द्रुत लय (को॰) । १०. गीत के साथ बजाई जानेवाली तीन वाद्य विधियों में से एक । शेष दो के नाम तत्व और अनुगत हैं (को॰) ।

ओघात(पु)—वि॰[सं॰ अवघट]दे॰ 'अवघट' । उ॰—इसे घाट ओघाट किन्ने हमीर ।—हम्मीर रा॰, पृ॰ १५२ ।

ओछ(पु)†—वि॰ [उच्छ] दे॰ 'ओछा' । उ॰—ओछ जानि कै काहुहि जिनि कोइ गरब करेइ । ओछे पर जो दैउ है जीति पत्र तेइ देइ ।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ ११४ ।

ओछना¹— क्रि॰ स॰ [हिं॰ ओछ+ना (प्रत्य॰)] दे॰ 'ऊँछना' । उ॰—मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी । काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वैं लोटी ।—कविता कौ॰, भा॰ १, पृ॰ ६६ ।

ओछना(पु)†²—क्रि॰ स॰ [सं॰ अङ्गोञ्छन] दे॰ 'अँगोछना' ।

ओछना†(पु)³—क्रि॰ स॰ [सं॰ अवाञ्चन] दे॰ 'ओड़छना' ।

ओछव(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उत्सव, प्रा॰ उच्छव] दे॰ 'उत्सव' । उ॰—जोधा जैत कमानै जादव, इल मछरीक करे ब्रव ओछव । —राज॰ रू॰, पृ॰ ३२३ ।

ओछा— वि॰ [सं॰ तुच्छ, प्रा॰ उच्छ] [स्त्री॰ ओच्छी] १. जो गंभीर न हो । जो उच्चाशय न हो । तुच्छ । क्षुद्र । छिछोरा । बुरा । खोटा । उ॰—(क) ये उपजे ओछे नक्षत्र के लपट भए बजाइ । सूर कहा तिनकी संगति जे रहे पराएँ जाइ ।—सूर॰, १०।२३६६ । (ख) ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन । दीरघ होहिं न नैकहूँ फारि निहारें नैन ।—बिहारी र॰,दो॰६० ।

यौ॰—ओछी कोख = ऐसी कोख या पेट जिससे जनम लड़के न जिएँ । ओछी नजर = अदूरदर्शिता । हलकी निगाह । निम्न विचार । उ॰—दिल साजना दुमेल, नीचे सग ओछी नजर ।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ६१ ।

२. जो गहरा न हो । छिछला । उ॰—देवलि जाँउँ तो देवी देखौं तीरथ जाँउँ त पाँणी । ओछी बुद्धि अगोचर बाँणी नहीं परम गति जाणी ।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ १५४ । ३ हलका । जोर का नहीं । जिसमें पूरा जोर न लगा हो । जैसे,—ओछा हाथ पड़ा नहीं तो बचकर न निकल जाता । उ॰—सहसा किसी ने उसके कंधे पर छुरी मारी, पर वह ओछी लगी ।—कंकाल, पृ॰ १७८ । ४ छोटा । कम । जैसे,—ओछा अँगरखा, ओछी पूँजी । उ॰—या बाई ने वस्तु बडी पाई है और पात्र तो ओछो है ।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पृ॰ ३१७ ।

ओठ हिलना = मुँह से शब्द निकलना । ओठ हिलाना = मुँह से शुद्ध निकालना ।

ओडा¹ⓤ—वि० [स० कुड, प्रा० उड] गहरा ।

ओडा²—सज्ञा पुं० [स्त्री० ओंडी] १. गड्ढा । गढ़ा । गर्त । उ०—ओगुन की ओडो, महाभोडो मोह की कनोडी, माया की मसूरती है मूरती है मैल की ।—राम० धर्म०, पृ० ६७ । २ चोरों की खोदी हुई सेंध ।

ओघ†—सज्ञा [सं० बन्ध] वह रस्सी जिससे छाजन पूरी होने के पहले लकडियाँ अपनी अपनी जगहो पर कसी रहती हैं ।

ओ¹—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा ।

ओ²—अव्य० १ एक सबोधनसूचक शब्द । जैसे,—ओ लडके ! इधर आओ । २ सयोजक शब्द । और । ३ विस्मय या आश्चर्यसूचक शब्द । ओह । ४ एक स्मरणसूचक शब्द । जैसे,—ओ ! हाँ ठीक है, आप एक बार हमारे यहाँ आए थे ।

ओ³ⓤ—सर्व० [हिं०] दे० 'वह' । उ०—उसकूँ कर कर सनाथ नामदेव दीनानाथ ओ गाई लियी सात उस वक्त चल दिये ।—दक्खिनी०, पृ० ५० । २ यह । उ०—राणी राजानूँ कहइ ओ म्हाँ नातरउ कीध ।—ढोला०, दू० ६ ।

ओअ॑ⓤ—सज्ञा पुं० [सं० ओम्] दे० 'ओम्' । उ०—पहिले आरति विराजै, ओअ सोह ध्यान लगावै ।—धरनी०, पृ० १८ ।

ओ ओ—अव्य० [हिं०] दे० 'ओह' । उ०—वह इतना डर जाता कि उसके मुँह से ओ ओ छोडकर सीधी बात न निकलती ।—रस० क० (भू०), पृ० ३० ।

ओआ—सज्ञा पुं० [देश०] हाथी फँसाने का गड्ढा । ओप ।

ओई¹—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड का नाम ।

ओई²—सर्व० [हिं० वह, ओहि] दे० 'वह' । उ०—अधम के उधारन तुम चारो जुग ओई । मोते अब अधम आहि कवन धौं वडोई ।—सतवाणी०, भा० २, पृ० १२६ ।

ओक¹—सज्ञा पुं०[सं० ओकस्]१ घर । स्थान । निवासस्थान । उ०—(क) सूर स्याम काली पर निरतत आवत हैं ब्रज ओक ।—सूर०, १०।५६५ । (ख) ओक की नीव परी हरि लोक विलोकत गग तरग तिहारे ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३४ । २ आश्रय । ठिकाना । उ०—(क) ओक दै विसोक किए लोकपति लोकनाथ रामराज भयो धरम चारिहु चरन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८० । (ख) सेनानी के सटपट, चद्र चित चटपट, अति अति अटपट अतक के ओक है ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १४५ ।

यौ०—जलौक = जल मे आश्रय या घरवाली । जोक ।

३ नक्षत्रो या ग्रहो का समूह । ४. समूह । ढेर । उ०—घर घर नर नारी लसैं दिव्य रूप के ओक ।—मतिराम (शब्द०) । ५ पक्षी (को०) । ६ वृपल । शूद्र (को०) । ७ आनद (को०) ।

ओक²—सज्ञा पुं० [हिं० वूक = अजली] अँजुरी । अजलि । उ०—(क) वैरी की नारि विलखति गग यो सूखि गयो मुख जीभ लुठानी । काढिये म्यान ते ओक करौ प्रिय तैं जु कह्यो तरवारि कें पानी ।—गग०, ११२ । (ख) अरी पनघटवा आनि अरैं । अटपटि प्यास भरो व्रजमोहन पलकनि ओक करैं ।—घनानद, पृ० ४६७ ।

क्रि० प्र०—लगाना । जैसे,—'ओक लगाकर पानी पी लो ।

ओक³—सज्ञा स्त्री०['ओ ओ' से अनु० + √कृ > क] वमन करने की इच्छा । मतली ।

ओकण, ओकणि—सज्ञा पुं० [सं०] १ खटमल । २ केशकीट । ढील । जूँ (को०) ।

ओकणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ओकण', 'ओकणि' (को०) ।

ओकना—क्रि० अ० [अनु० ओ + हिं० करना या हिं० ओक + ना] १ ओ ओ करना । कै करना । २ भैंस की तरह चिल्लाना ।

ओकपति—सज्ञा पुं० [सं० ओक पति] सूर्य या चद्रमा । पू०—नागरी स्याम सो कहति बानी । रुद्रपति, छुद्रपति, लोकपति, ओकपति, धरनिपति, गगनपति अगम बानी ।—सूर०, १०।१६४७ ।

ओकस्—सज्ञा [स०] घर । गृह । दे० 'ओक' ।

यौ०—वनोकस् दिवौकस् ।

ओकाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओक + आई (प्रत्य०)] १ वमन । कै । २ वमन करने की इच्छा । मतली ।

ओकार—सज्ञा पुं०[स०]'ओ' अक्षर ।

ओकारात—वि० [सं० ओकारात] जिसके अत मे 'ओ' अक्षर हो । जैसे,—फोटो, ठेगो ।

ओको†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओकाई' ।

ओकुल—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधभुना या तप्त किया हुआ गेहूँ (को०) ।

ओकुली—सज्ञा स्त्री० [सं०] आँटे की रोटी (को०) ।

ओकूवⓤ—वि०[अ० उकूफ]वाकिफ । जानकार । वुद्धिमान । उ०—चार भेद तिणरा चवै कवियण वड ओकूव ।—रघु० रू०, पृ० ६७ ।

ओकोदनी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'ओकण' (को०) ।

ओक्कणी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'ओकण' (को०) ।

ओक्य¹—वि० [स०]१ गृह के अनुकूल । २ गृह सबधी (को०) ।

ओक्य²—सज्ञा पुं० १ आनद । प्रसन्नता । २ विश्राम स्थान । आश्रय । ३ गृह । मकान (को०) ।

ओखद¹ⓤ†—सज्ञा पुं० [स० औषध]दे० 'औषध' । उ०—(क) विरह महाविस तन वसइ ओखद दियइ न आइ ।—ढोला०, दू० १२७ । (ख) जनहु वइद ओखद लेइ आवा । रोगिया रोग मरत जिउ पावा ।—पदुमा०, पृ० ११० ।

ओखरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओखली' ।

ओखल¹†—सज्ञा पुं० [स० ऊषर] परती भूमि । ऊसर ।

ओखल²†—सज्ञा पुं० [स० उलूखल] ऊखल । ओखली ।

ओखली—सज्ञा स्त्री० [स० उलूखलिका, प्रा० ओक्खली] काठ या पत्थर का बना हुआ गहरा बरतन जिसमे धान या और किसी अन्न को डालकर भूसी अलग करने के लिये मूसल से कूटते हैं । कांडी । हावन ।

मुहा०—ओखली मे सिर देना = अपनी इच्छा से किसी झझट मे

ऐसन¹(पु)† —वि० [हिं० ऐसा] दे० 'ऐसा'। उ०—लोभ मोह सब दूरि बहावो ऐसन अदल चलावा। धर्म० श०, पृ० ७०।

ऐसन²—क्रि० वि० दे० 'ऐसे'।

ऐसा—वि० [स० ईदृश, अप० अइस] [स्त्री० ऐसी] १ इस प्रकार का। इस ढग का। इस भाँति का। इसके समान। जैसे,—तुमने ऐसा आदमी कहीं देखा है ?

मुहा०—ऐसा तैसा या ऐसा वैसा = साधारण। तुच्छ। अदना। नाचीज। जैसे,—हमें क्या तुमने कोई ऐसा वैसा आदमी समझ रक्खा है। (किसी की) ऐसी तैसी = योनि या गुदा (एक गाली)। जैसे,—उसकी ऐसी तैसी, वह क्या कर सकता है ? ऐसी तैसी करना = बलात्कार करना। (गाली)। जैसे,—तुम्हारी ऐसी तैसी करूँ, खडे रहो। ऐसी तैसी मे जाना = भाड मे जाना। चूल्हे मे जाना। नष्ट होना। (बेपरवाई सूचित करने के लिये)। जैसे,—जब समझाने से नहीं मानते तब अपनी ऐसी तैसी मे जायँ।

ऐसे—क्रि० वि० [हिं० ऐसा] इस ढव से। इस ढग मे। इस तरह से जैसे,—वह ऐसे न मानेगा।

ऐहलौकिक—वि० [स०] दे० 'ऐहिक' [को०]।

ऐहिक¹-वि०[स०][वि०स्त्री० ऐहिकी] इस लोक से सबध रखनेवाला। जो पारलौकिक न हो। सासारिक। दुनियावी। स्थानीय।

ऐहिक²—सज्ञा पु० सासारिक व्यापार या कर्म [को०]।

ऐहिकदर्शी—वि० [स० ऐहिकदर्शिन] ससार को समझनेवाला। दुनियादार [को०]।

ओ

ओ—सस्कृत वर्णमाला का तेरहवाँ और हिंदी वर्णमाला का दसवाँ स्वर वर्ण। इसका उच्चारणस्थान ओष्ठ और कंठ है। इसके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और अननुनासिक भेद होते हैं। सधि मे अ + उ = ओ होता है।

ओ—अव्य०[स० ओम्]१ एक अर्द्धागीकार या स्वीकृतिसूचक शब्द। हाँ। अच्छा। तथास्तु। २. परब्रह्मवाचक शब्द जो प्रणव मत्र कहलाता है।

विशेष—यह शब्द बहुत पवित्र माना जाता है और वेदमत्रो के पहले तथा पीछे बोला जाता है। माडूक्य उपनिषद् मे इसी शब्द की व्याख्या भरी हुई है। यह ग्रथ के आरंभ मे भी रखा जाता है। पुराण मे 'ओम्' के अ, उ और म् क्रम से विष्णु, शिव और ब्रह्मा के वाचक माने गए हैं।

ओकार—सज्ञा पुं० [स० ओङ्कार] १ 'ओ' शब्द। २ 'ओ' शब्द का निर्देश या उच्चारण। ३ सोहन चिडिया। ४ सोहन पक्षी का पर जिससे फौजी टोप की कलँगी बनती है।

ओकारनाथ—सज्ञा पु०[स० ओङ्कारनाथ]शिव के द्वादश ज्योतिर्लिगो मे से एक। इनका मदिर मध्यप्रदेश के माधाता नामक ग्राम में है।

ओग(पु)†—सज्ञा पु० [स० ओम्] दे० 'ओम्'। उ०—ब्रह्म ऋद्धि ओंग पद सारा।—कबीर श०, पृ० ५१।

ओइछना†—क्रि० स० [ओ + अवाञ्चन] वारना। न्योछावर करना।

ओकना—क्रि० अ० [हिं० ओकाई] दे० 'ओकना'।

ओगन†—सज्ञा पु० [सं० अञ्जन] गाडी के पहिए की धुरी मे लगाने के काम आनेवाला तेल।—(बोल०)।

ओगना—क्रि० स० [स० अञ्जन या हिं० 'ओंगन' से] गाडी की धुरी मे चिकनाई लगाना जिसमे पहिया आसानी से फिरे।

ओगा—संज्ञा पु० [स० अपामार्ग] लटजीरा। अज्जाझारा। चिचडा। अपामार्ग।

ओछना—क्रि० स० [स० उञ्छन, हिं० ऊँछना] दे० 'ऊँछना'। उ०—वह अँचल धूल पोछते, कर कघी पर बाल ओंछते।—साकेत, पृ० ३३८।

ओझल†—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'ओझल'। उ०—देवनदन ने देखा, इतनी बातो के कहने पीछे वह जोत फिर ओझल हो गई।—ठेठ०, पृ० ८१।

ओटना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ओटना'।

ओठ†—सज्ञा पु० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] मुँह के बाहरी उभडे हुए छोर जिनसे दाँत ढँके रहते हैं। लब। होठ। रदच्छद। रदपट। उ०—हरदम सिर पर मौत खडी है ओठो पर ईश्वर है।—पथिक, पृ० ४२।

मुहा०—ओठ उखाडना = परती खेत को पहले पहल जोतना। ओंठ काटना = दे० ओठ चबाना'। ओठ चबाना = क्रोध और दु ख से ओठ को दाँतो के नीचे दबाना। क्रोध और दु ख प्रकट करना। ओठ चाटना = किसी वस्तु को खा चुकने पर स्वाद की लालसा रखना। जैसे,—उस दिन कैसी अच्छी मिठाई खाई थी, अबतक ओठ चाटते होग। ओठ चूसना = अधर चुबन करना। ओठ पपडाना = ओठ पर खुश्की क कारण चमडे की सूखी हुई तह बँध जाना। ओठो पर आना या होना = जबान पर होना। कुछ कुछ स्मरण आने के कारण मुँह से निकलने पर होना। वाणी द्वारा स्फुरित होने के निकट होना। जैसे,—(क) उनका नाम ओठो ही पर है, मैं याद करके बतलाता हूँ। (ख)उनका नाम ओठो पर आ के रह जाता है। (अर्थात् थोडा बहुत याद आता है और कहना चाहते हैं पर भूल जाता है)। ओठों पर मुस्कराहट या हँसी आना दिखाई देना = चेहरे पर हँसी देख पडना। ओठ फटना = खुश्की के कारण ओठ पर पपडी पडना। ओठ फडकना = क्रोध क कारण ओठ काँपना। ओठ मलना = कडई बात करनेवाले को दड देना। मुँह मसलना। जैसे,—अब ऐसी बात कहोगे तो ओठ मल देंगे। ओठो मे कहना = धीमे और अस्पष्ट स्वर मे कहना। मुँह से साफ शब्द न निकलना। ओठो मे मुसकराना = बहुत थोडा हँसना। ऐसा हँसना कि बहुत प्रकट न हो।

यौ०—ऐरा गैरा नत्थू खैरा = ऐरा गैरा। ऐरे गैरे पँचकल्यान। ऐरे गैरे पँचकल्यानी = इधर उधर के बिना जाने बूझे आदमी। उ०—ऐरे गैरे पँचकल्यान बहुत देखे हैं तुम कौन हो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०३।

ऐरापति㉮—संज्ञा पुं० [सं० ऐरावत] ऐरावत हाथी। उ०—सुरगण सहित इंद्र ब्रज आवत। धवल बरन ऐरापति देख्यो उतरि गगन तें धरणि धसावत।—सूर (शब्द०)।

ऐराव—संज्ञा पुं० [अ०] शतरंज में बादशाह को किश्त बचाने के लिये किसी मोहरे को बीच में डाल देना। अरदब।

ऐरालू—संज्ञा पुं० [सं० इरा = जल + आलु] एक प्रकार की पहाड़ी ककड़ी जो तरबूज की तरह होती है। यह कुमाऊँ से सिकिम तक होती है।

ऐरावण—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

ऐरावत—संज्ञा पुं० [सं०] १ इरावान् मेघ बिजली से प्रदीप्त बादल। २ इंद्रधनुष। ३ बिजली। ४ इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है। ५ एक नाग का नाम। ६ नारंगी। ७ लकुच। बड़हर। ८ संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। ९ चंद्रमा का उत्तरी मार्ग (को०)।

ऐरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐरावत हाथी की स्त्री। बिजली। ३ रावी नदी। ४ ब्रह्म (ब्रह्मा देश) की एक प्रधान नदी। ५ वटपत्री का पौधा। ६ चंद्रमा की एक वीथी जिसमें आश्लेषा, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र पड़ते हैं।

ऐरिण—संज्ञा सं० पुं० [सं०] १ सेंधा नमक। २ रेह से भरी जमीन। ऊसर (को०)।

ऐरिस्टोक्रैसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १ एक प्रकार की राजसत्ता या शासनसूत्र जो बड़े बड़े भूम्यधिकारियों (सरदारों) या ऐश्वर्यसंपन्न नागरिकों के हाथों में रहती है। सरदार तंत्र। कुलीन तंत्र। अभिजात तंत्र। २ ऐसे लोगों की समष्टि या समाज। अभिजात समाज। कुलीन समाज।

ऐरेय—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न की बनी हुई एक प्रकार की शराब (को०)।

ऐल¹—संज्ञा पुं० [सं०] इला का पुत्र पुरूरवा।

ऐल²㉮—संज्ञा पुं० [हिं० अहिला] १ बाढ़। बूड़ा। २. अधिकता। बहुतायत। उ०—भूखन भनत साहि तनै सरजा के पास आइबे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है।—भूषण (शब्द०) ३ समूह। झुंड। दल। उ०—तीखे तेगवाही औ सिपाही चढ़े घोड़न पै स्याही चढ़े अमित अरिदन की ऐल पै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३१०। ४ शोरगुल। हलचल। खलबली। उ०—खलनि के खैल भैल, मनमथ मन ऐल, सैलजा के सैल गैल गैल प्रति रोक है।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६५।

ऐल³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ प्राय एक फुट लंबी होती हैं। अलई। भरू।

विशेष—यह देहरादून रुहेलखंड, अवध और गोरखपुर की नम जमीन में पाई जाती है। प्राय खेतों आदि के चारों ओर इसकी बाढ़ लगाई जाती है। कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में भी आती हैं।

ऐलक—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'एलक'।

ऐलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक गंधद्रव्य। २ दे० 'एलवालुक' (को०)।

ऐलविल—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर। एलविल (को०)।

ऐलान—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एलान'² (को०)।

ऐश¹—संज्ञा पुं० [अ०] आराम। चैन। भोग विलास। उ०—'अमीरों को ऐश के सिवाय और क्या काम है।'—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १०२।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—ऐश व आराम, ऐशो आराम, ऐश व इशरत, ऐशो इशरत = सुख चैन। भोग विलास।

ऐश²—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐशी] १ ईश। (शिव) संबंधी। २ दैविक। ईश्वरीय। ३ ईश (राजा) संबंधी। राजकीय (को०)।

ऐशगाह—संज्ञा पुं० [अ०] केलिभवन। विलासगृह (को०)।

ऐशान—वि० [सं०] १. शिव संबंधी। २ ईशान कोण संबंधी (को०)।

ऐशानी—वि० [सं०] १. दुर्गा (को०)। २ ईशान कोण संबंधी।

ऐशिक—वि० [सं०] १. ईश संबंधी। दैविक। २ शिव संबंधी (को०)।

ऐशू—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनका मुँह बँध जाता है, वे पागुर नहीं कर सकते।

ऐश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईशत्व। प्रभुत्व। २ शक्ति (को०)।

ऐश्वर—वि० [सं०] १ शिव संबंधी। २ ईश्वरीय। दैविक। ३ शक्तिशाली। ४ राजकीय (को०)।

ऐश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ विभूति। धन संपत्ति। २ अणिमादिक सिद्धियाँ। ३ प्रभुत्व। आधिपत्य। ४. ईश्वरता (को०)। ५ शक्ति। ताकत (को०)। ६ राज्य (को०)।

क्रि० प्र०—भोगना।

यौ०—ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्ययुक्त = संपन्न। वैभवशाली।

ऐश्वर्यवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐश्वर्यवती] वैभवशाली। संपत्तिवान्। संपन्न।

ऐषीक¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक शस्त्र जो त्वष्टा देवता का मंत्र पढ़कर चलाया जाता है।

ऐषीक²—वि० [सं०] सरकंडा या बेंत का (शर)। सरकंडा या बेंत संबंधी (को०)।

यौ०—ऐषीक पर्व = महाभारत के सौप्तिक पर्व का एक अंश।

ऐष्टक¹—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञार्थ ईंटों को चुनना या उन ईंटों को क्रमबद्ध करना (को०)।

ऐष्टक²—वि० ईंटोंवाला। ईंटों का बना हुआ (मकान) (को०)।

ऐष्टिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐष्टिकी] इष्टि अर्थात् यज्ञ से संबंध रखनेवाला। यज्ञ या उत्सव संबंधी (को०)।

ऐस¹㉮†—वि० [हिं०] दे० 'ऐसा'। उ०—मास न, वास न, मानुष अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी ग्रं० पृ० ३०४।

ऐस²—संज्ञा दे० [अ० ऐश] दे० 'ऐश'। उ०—सजन लगी है। कछू कबहूँ सिंगारन को, लखन लगी है कहूँ ऐस बैस वारी की—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०१।

ऐन⁴—वि० १ ठीक। उपयुक्त। सटीक। जैसे,—(क) तुम ऐन वक्त पर आए। (ख) मार्गशीर्ष की ऐन पूर्णिमा को जीवन मे आया। —अपलक, पृ० १६। २. बिल्कुल। पूरापूरा। जैसे—आपकी ऐन मेहरबानी है।

ऐनक—संज्ञा स्त्री० [अ० ऐन = आँख] आँख मे लगाने का चश्मा। उ०—अजन अँखियो मे मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय। —कविता कौ०, भा० २, पृ० ६५।

ऐनस—संज्ञा पुं० [सं०] पाप। एनस [को०]।

ऐना†—संज्ञा पुं० [फा० आईनह् > आईना > हिं०अइना] दे० 'आईना'।

ऐनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र।

यौ०—ऐनिवंस [सं० ऐनिवंश] = सूर्यवंश। उ०—मन सकल्पत आप कल्पतरु सम सोहर वर। जन मन वाछित देव तुरंत द्विज ऐनिवंस वर।—तुलसी (शब्द०)।

ऐनीता—संज्ञा पुं० [फा० आईनह्] वंदर को शीशा या दर्पण दिखाना (कलदरो की वोली)।

ऐन्य—वि० [सं०] १ सूर्य सवधी। २ स्वामी या मालिक सवधी [को०]।

ऐपन—संज्ञा पुं० [सं० लेपन अथवा देशी आइप्पण = चावल का चूर्ण। गृह का भूषण] एक मागलिक द्रव्य। यह चावल और हल्दी को एक साथ गीला पीसने से बनता है। देवताओ की पूजा मे इससे छापा लगाते हैं और घडे पर चिह्न करते हैं। उ०—(क) रूपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहि नित भीति। फलै सकल मनकामना तुलसी प्रीति प्रतीति।—तुलसी ग्र०, पृ० १४१। (घ) वेतिक सोने की डीडि केसर सो मारी मीडि ऐपन की पीडि जोति चपाऊ लजायो है।—गग०, पृ० २३।

ऐपरि(पु)†—अव्य० [सं० एतदुपरि] दे० 'ऐपरि'। उ०—ऐपरि कवि इक ठौर बतावैं। जब वलि मे कछु गाथा गावैं।—नद० ग्र०, पृ० १३७।

ऐपैं(पु)—क्रि० वि० [हिं० ऐ + पै] इतने पर भी। एते पै। उ०—(क) ऐपैं कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।—घनानद०, पृ० ४६८। (ख) उपजे वनिक कुल सेवे कुल अच्युत को, ऐपे नहि वने एक तिया रहे पास है।—(भक्तमाल) श्रीभक्ति०, पृ० ५५६।

ऐब—संज्ञा पुं० [अ०] १ दोष। दूषण। नुक्स। उ०—ऐब अपने घटाओ पै खबरदार रहो। घटने से न उनके बढ़ जाए गरूर। —कविता कौ०, भा० ४ पृ० ६०१।

मुहा०—ऐब निकालना = दोष दिखाना (किसी वस्तु मे)। उ०—अगर चाहा निकालो ऐब तुम अच्छे से अच्छे मे। जो ढूँढोगे तो अकबर मे भी पाओगे हुनर कोई।—शेर०।

२ अवगुण। कलक। बुराई। उ०—यहाँ के दुकानदारो मे यह बडा ऐब है कि जलन के मारे दूसरे के माल को बारह आने का जाँच देते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १७४।

मुहा०—ऐब लगाना = कलक लगाना। दोषारोपण करना (किसी व्यक्ति पर)।

यौ०—ऐबजोई। ऐबदार। ऐबपोशी। ऐबहुनर = गुण दोष।

ऐबजो—वि० [फा०] दोष ढूँढनेवाला। छिद्रान्वेषी।

ऐबजोई—संज्ञा स्त्री० [फा०] दोष ढूँढना। छिद्रान्वेषण।

ऐबदार—वि० [फा०] दोषयुक्त। दोषी। पापी। उ०—कहि कवि गग तुम करुनानिधान कान्ह, कोटि जो है ऐबदार और द्वार भयो है—गंग०, पृ० ५।

ऐबपोशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] ऐब पर पर्दा डालना। दोष छिपाना [को०]।

ऐबारा†—संज्ञा पुं० [हिं० बार < सं० द्वार = दरवाजा] १ वाडा जिसमे भेंड बकरियाँ रखी जाती हैं। २ वह घेरा जिसके भीतर जगल मे चौपाए रखे जाते हैं। गोवाड। ठाढा।

ऐबी—वि० [अ०] १ दूषणयुक्त। खोटा। बुरा। २ नटखट। दुष्ट। शरीर। ३ विकलाग, विशेषतः काना।

ऐभ—वि० [सं०] इभ अर्थात् हाथी सबधी [को०]।

ऐमेचर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो कलाविशेष पर विशेष रुचि और अनुराग के कारण शौकिया तौर से उसका अभ्यास करता है और अपनी कलाभिज्ञता दिखाकर धन उपार्जन नही करता। शौकीन। जैसे—(क) ऐमेचर ड्रामटिक क्लब। (ख) 'वह ऐमेचर होने पर भी वडे वडे ऐक्टरो के कान काटता है।'

ऐया†—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्य्या, प्रा० अज्जा] १ वडी बूढी स्त्री। दादी। २. सास।

ऐयाम—संज्ञा पुं० [अ० योम (दिन) का बहु व०] दिन। समय। मौसिम। वक्त। उ०—यादे ऐयाम बेकारारिए दिल, वह भी या रब अजब जमाना था।—शेर० पृ० १९७।

ऐयार—संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० ऐयारा] १ चालाक। धूर्त। उस्ताद। धोखेबाज। छली। उ०—(क) ऐयार नजर मक्कार अदा त्योरी की चढ़ावत वैसी ही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२७। (ख) उसे ऐयार पाया यार समझे जौक हम जिसको।—शेर० पृ० ४१३। २ वह व्यक्ति जो चालाकी से अनोखे काम करता हो। बहुगुण युक्त गुप्तचर या कार्यकर।

ऐयारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] चालाकी। धूर्तता। छल। ऐयार का कार्य।

ऐयाश—वि० [अ०] [संज्ञा ऐयाशी] १. बहुत ऐश या आराम करनेवाला। २. विषयी। लपट। इंद्रियलोलुप।

ऐयाशी—संज्ञा स्त्री० [अ०] विषयासक्ति। भोग विलास।

ऐरण† —संज्ञा पुं० [सं० आहनन, आ + घनवा आ + घरण] दे० 'अहरन'। निहाई। उ०—लोहा होय तो ऐरण मगाऊँ घण की चोट दिराऊँ।—राम० धर्म०, पृ० ४४।

ऐरन—संज्ञा पुं० [अं० इयररिंग] कान का एक आभूषण।

ऐराक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० एराक] दे० 'एराक'।

ऐराकी(पु)—दे० [अ० ऐराकी] दे० 'एराकी'।

ऐराखी†(पु)—वि० [हिं० ऐराखी] दे० 'एराकी'। उ०—ऐराखी धर धोरिय जाए। पच वछेरा लगैं सुहाए।—प० रा०, पृ० ११७।

ऐरागैरा—वि० [अ० + गैर] १ बेगाना। अजनबी (व्यक्ति) जिससे कुछ वास्ता न हो। २. इधर उधर का। तुच्छ।

ऍडवर्टिजमेंट—संज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन। सार्वजनिक सूचना। इश्तहार।

ऍडवांस—संज्ञा पुं० [अं०] १ अग्रिम। पेशगी। २ अग्रगामी। प्रगतिशील।

ऍडवाइजर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो परामर्श या सलाह देता हो। परामर्शदाता। सलाह देनेवाला। सलाहकार। जैसे,—लीगल ऐडवाइजर।

ऍडवाइजरी वि० [अं०] सलाह या परामर्श देनेवाली। जैसे,—ऐडवाइजरी कौंसिल।

ऍडविड—संज्ञा पुं० [सं०] १ कुवेर। २. मगल ग्रह [को०]।

ऍडवोकेट—संज्ञा पुं० [अं०] अदालत मे किसी का पक्ष लेकर बोलनेवाला। वकील।

ऍडवोकेट जनरल—संज्ञा पुं०[अं०]वह सरकारी वकील जो हाइकोर्टों मे सरकार का पक्ष लेकर बोलता है। वह सरकार का वेतनभोगी कर्मचारी होता है।

ऍड(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंड] दे० 'ऍंड'। उ०—तिन मधि मुग्ध वैस की वाला। ऍड सो कहति भई तिहि काला।—नद० ग्र०, पृ० ६६।

ऍडा- क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ऍठा', 'ऐडा'। उ०—ऐड़ो रहै निसक तासु हाँसी करि डोलै।—दीन० ग्र०, पृ० १६४।

ऍडाना†—क्रि० अ० [हिं० ऐंड] इठलाना। ठसक दिखाना। उ०—यह जग है सपने सुपने की देखि कहा ऐडानो।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ४७।

ऍडिशनल—वि० [अं०] अतिरिक्त। जैसे,—ऐडिशनल मैजिस्ट्रेट।

ऍडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एड़ी' उ०—वह चंचल चाल जवानी की ऊँची ऐडी नीचे पजे।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२८।

ऍण—वि० [सं०] [स्त्री० ऐणी]हिरन से सबधित। जैसे,—मृगचर्म, ऊन आदि [को०]।

ऍणिक—वि० [सं०] [स्त्री० ऐणिकी] कृष्णसार या काले मृग का शिकार करनेवाला। हिरन मारनेवाला [को०]।

ऍणेय[1]—वि० [स्त्री० ऐणिकी] काली हरिणी से उत्पन्न या उससे सबधित [को०]।

ऍणेय[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार की रतिक्रिया। एकवध। रति का एक आसन [को०]।

ऍत(पु)†—वि०[हिं०]दे० 'एत' और 'इतना'। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जेखिउँ ऐत सहहु केहि काजा।—जायसी(शब्द०)।

ऐतरेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋग्वेद का एक ब्राह्मण।

विशेष—इसमें ४० अध्याय और आठ पचिकाएँ हैं। पहले १६ अध्यायों मे अग्निष्टोम और सोमयाग का वर्णन है। १७-१८ वें अध्याय मे गवामयन का विवरण है जो ३६० दिनो मे पूरा होता है। १९२४ तक द्वादशाह यज्ञ की विधि और होता के कर्तव्य का वर्णन है, २५वें अध्याय मे अग्निहोत्रविधान और भूलो के लिये प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था है। २६ से ३० अध्याय तक सोमयाग मे होता के सहायक का कर्तव्य तथा शिल्पशास्त्र के कुछ विषय वर्णित हैं। ३३ अध्याय से ४० अध्याय तक राजा को गद्दी पर बिठाने तथा पुरोहित के और और कामो का वर्णन है। शुन शेप की कथा ऐतरेय ब्राह्मण की है। [को०]।

२ एक अरण्यक जो वानप्रस्थो के लिये है।

विशेष—इसके पाँच अरण्यक अर्थात् भाग हैं। प्रथम भाग में, जिसमे पाँच अध्याय और २२ खड हैं, सोमयाग का विचार है। दूसरे अरण्यक के ७ अध्याय और २६ खड हैं जिनमे से तीसरे अध्याय मे प्राण और पुरुष का विचार है और चार अध्यायो मे ऐतरेय उपनिषद् है। तीसरे अरण्यक मे (२ अध्याय १२ खड) में सहिता के पदपाठ और क्रमपाठ के अर्थ को अलकारो द्वारा प्रकट किया है। चौथे अरण्यक मे एक अध्याय है जिसको आश्वलायन ने नष्ट किया था। पाँचवें अरण्य के ३ अध्याय और १४ खड हैं जो शौनक ऋषि द्वारा प्रकट हुए हैं।

ऍतरेयी—वि०[सं० ऐतरेयिन्]ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन करनेवाला ऐतरेय का अध्येता [को०]।

ऍतिहासिक—वि०[अ०] १ इतिहास सबधी। जो इतिहास से हो। जो इतिहास से सिद्ध हो। उ०—मैंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अध्ययन करना चाहा।—ककाल, पृ० ७२। २ जो इतिहास जानता हो।

ऍतिह्य—संज्ञा पुं०[सं०]प्रत्यक्ष, अनुमान आदि चार प्रमाणो के अतिरिक्त, अर्थापत्ति और सभव आदि जो चार प्रमाण माने गए हैं उनमे से एक। परपरासिद्ध प्रमाण। इस बात का प्रमाण कि लोक मे बराबर बहुत दिनो से ऐसा सुनते आए हैं।

विशेष—यह शब्दप्रमाण के अंतर्गत ही आ जाता है। न्याय में ऐतिह्य आदि को चार प्रमाणो से अलग नही माना है, उनके अतर्गत ही माना है।

ऍतु(पु)†—संज्ञा पुं०[सं० अयुत]दस हजार की सख्या। उ०—अट्ठारह घृति छब्बिस ऐतु इकीस सैं उपर चव्वालिस। बावन ऐतु बयालिस सैं अट्ठासी विधि अतिघृति उनईस।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २३६।

ऍन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अयन] घर। निवास। उ०—प्रान के ऐन मे नैन में बैन मे ह्वै रह्यो रूप गुन नाम तेरो।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २३४।

ऍन[2]—संज्ञा पुं० [सं० एण] [स्त्री० ऐनी] मृग। हिरण। उ०—(क) जिन्हें देखिकै ऐन की सेन लाजी।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८०। (ख) ऐनि नैनि ऐनी भई वेनी गुही गुपाल।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६।

ऍन[3]—संज्ञा पुं० [अ०] आँख। नयन। उ०—जगजीवन गहि चरन गुरु ऐनन निरखि निहारि।—जग० बानी, पृ० १३१। २ अरबी लिपि का एक अक्षर जो इस प्रकार C लिखा जाता है और जिसके उपर एक विंदु लगाकर गैन बनाते हैं। उ०—नाम जगत सम ममुभु जग वस्तु न करु चित चैन। बिंदु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन।—स० सप्तक, पृ० ३९२ ३ स्रोत। चश्मा (को०)।

ऐकमत्य—संज्ञा पुं० [सं०] मतैक्य। एकमत होना। एक ही राय का होना [को०]।

ऐकराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] एकछत्र राज्य। पूर्ण प्रभुत्व [को०]।

ऐकशफ—वि० [सं०] [स्त्री० ऐकशफी] ऐसे पशु का (दुग्ध आदि) जिसके खुर फटे न हों [को०]।

ऐकश्रुत्य—संज्ञा पुं० [सं०] एकस्वरता। उतार चढाव की ध्वनि के बिना बोलना। उदासी लानेवाला स्वर [को०]।

ऐकाग—संज्ञा पुं० [सं० ऐकाङ्ग] अगरक्षक सैनिक [को०]।

ऐकातिक—वि० [सं० ऐकान्तिक] १ पूर्ण। पक्का। २ बिना प्रतिबंध का। निश्चित। संदेहरहित। एकदम [को०]।

ऐकागारिक¹—वि० [सं०] एक ही घर मे रहनेवाला।

ऐकागारिक²—संज्ञा पुं० १ एक ही गृह का मालिक। २ चोर।

ऐकाग्र—वि० [सं०] दे० 'एकाग्र' [को०]।

ऐकाग्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] एकाग्रता। स्थिरबुद्धिता [को०]।

ऐकात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकता। आत्मा की एकता। २. एकात्मता। तद्रूपता। तादात्म्य। ३. परमात्मा मे विलय [को०]।

ऐकाधिकरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ सबंध की एकता। एक ही विषय से संबधित होना। २ तर्क मे साध्य के द्वारा हेतु मे व्याप्ति [को०]।

ऐकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरवर्ण 'ऐ' या उसकी ध्वनि [को०]।

ऐकार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ अर्थ की समानता। २ प्रयोजन की एकता [को०]।

ऐकाहिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐकाहिकी] १ क्षणभगुर। एकदिवसीय। अल्पकालीन। २ जिसकी स्थिति एक ही दिन की हो। जैसे, यज्ञ, उत्सव, ज्वर आदि [को०]।

ऐक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी राजा, राजसभा, व्यवस्थापिका सभा या न्यायालय द्वारा स्वीकृत सर्वसाधारण सबधी कोई विधान। राजविधि। कानून। आईन। जैसे—प्रेस ऐक्ट। पुलिस ऐक्ट। म्युनिसिपल ऐक्ट। २ नाटक का एक अश या विभाग। अक।

ऐक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] नाटक में अभिनय करनेवाला। नाटक का कोई पात्र बननेवाला। अभिनेता।

ऐक्टिंग¹—संज्ञा स्त्री० [अं०] नाटक मे किसी पार्ट या भूमिका का अभिनय करना। रूपाभिनय। चरित्राभिनय, जैसे—'महाभारत नाटक मे वह दुर्योधन के रूप मे बहुत ही सुदर और स्वाभाविक ऐक्टिंग करता है'।

क्रि० प्र०—करना।

ऐक्टिंग²—वि० [अं०] स्थानापन्न। किसी की एवजी पर काम करनेवाला।

ऐक्ट्रेस—संज्ञा स्त्री० [अं०] रगमच पर अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री। नटी।

ऐक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक का भाव। एकत्व। २ एका। मेल। ३. एकत्रीकरण। जोड। समाहार।

ऐक्षव—संज्ञा पुं० [सं०] ईख से उत्पन्न—(१) गुड। (२) राब। (३) चीनी। (४) एक प्रकार की मदिरा (को०)।

ऐक्ष्वाक¹—वि० [सं०] इक्ष्वाकु से संबधित। इक्ष्वाकु का [को०]।

ऐक्ष्वाक²—संज्ञा पुं० [सं०] १ इक्ष्वाकु का वंशज। २. इक्ष्वाकु वश द्वारा शासित देश [को०]।

ऐक्ष्वाकु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० ऐक्ष्वाक'¹।

ऐगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण'। उ०—हैं जो पांच नग तोपहँ लेइ पाँचो कहँ भेंट। मकु सो एक गुन मानै, सब ऐगुन धरि मेट।—जायसी ग्र०, पृ० २३९।

ऐचो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंचना] चडू की या मदक पीने की नली। बबू।

ऐच्छिक—वि० [सं०] १. जो अपनी, इच्छा पसन्द पर निर्भर हो। उ०—गगन में गूँजकर ऐच्छिक करो गान।—आराधना, पृ० ३४। २ अपनी इच्छा या पसंद से लिया या दिया जानेवाला। वैकल्पिक। जैसे,—उन्होने सस्कृत ऐच्छिक विषय लिया है।

ऐजन—अव्य० [अ० अयजन्] तथा। तदेव। वही।

विशेष—सारिणी या चक्र मे जब एक ही वस्तु को कई बार लिखना रहता है तब केवल ऊपर एक बार उसका नाम लिखकर नीचे बराबर ऐजन, ऐजन लिखते जाते हैं। साधारण लिखा-पढी मे ऐसे स्थल पर " का व्यवहार किया जाता है।

ऐटेस्टिंग अफसर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह अफसर जिसके सामने निर्वाचन सबंधी 'वोट' लिखे जाते हैं और जो साक्षी स्वरूप रहता है। वोट लिखे जाने के समय साक्षी स्वरूप उपस्थित रहनेवाला अफसर। २ जो अधिकारी किसी के हस्ताक्षर अथवा बयान को प्रमाणित करे।

ऐड¹—वि० [सं०] १ ताजगी देने वाला। शक्तिवर्धक। २ भेड से सबधित [को०]।

ऐड²—संज्ञा पुं० इडा का पुत्र। पुरुरवा [को०]।

ऐडक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐडकी] भेड से सबधित। मेष सबधी [को०]।

ऐडक²—संज्ञा पुं० [सं०] भेड की एक जाति [को०]।

ऐडमिनिस्ट्रेटर—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह अधिकारी जिसके अधीन किसी राज्य या रियासत या बडी जमींदारी का प्रबंध हो। २ किसी सस्थान का प्रबधक। प्रशासक। ३ नगरपालिका या कारपोरेशन का प्रबंधक।

ऐडमिनिस्ट्रेशन—संज्ञा पुं० [अं०] १ प्रबंध। व्यवस्था। बन्दोबस्त। २. शासन। हुकुमत। ३ राज्य। सरकार।

विशेष—गवर्नरी, प्राविन्शल गवर्नमेंट या प्रादेशिक सरकार कहलाती है और चीफ कमिश्नरी लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन या स्थानीय सरकार कहलाती है।

ऐडमिरल—संज्ञा पुं० [अं०] सामुद्रिय या जलसेना का प्रधान सेनापति। नौसेना का प्रधान।

ऐडमिरल्टी—संज्ञा स्त्री० [अं०] ऐडमिरल का पद या विभाग।

यह, रामनाम लेत जीभ ऐंडीबेंडी जाति है।—गग०, पृ० ६।

ऐंडा[1]—वि० [हिं० ऐंडना] [स्त्री० ऐंडी] टेंडा। ऐंड़ा हुआ।

मुहा०— अग ऐंडा करना=ऐंठ दिखाना। बेपरवाई और घमंड दिखाना। उ०—यह ग्वारन को गाँव बात नहिं सूधे बोलैं। बसैं पसुन के सग अग ऐंडे करि डोलें।—दीनदयाल (शब्द०)।

ऐंडा[2]—सज्ञा पुं० [स० प्राढक] १ बाट। बटखरा। अँहडा। २ सेंध। नकब।

ऐंडाना—क्रि० अ० [हिं० ऐंडना] १ अँगडाना। अँगड़ाई लेना। बदन तोडना। उ० —कबहूँ श्रुति कडू करैं आरस सों ऐंडाइ। केसोदास बिलास सों बार बार जमुहाइ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २४। २ इठलाना। अकड दिखाना। बल दिखाना। उ०—ज्यों सावन ऐंडात भुजा ठोंकि सब शूरमा।—केशव (शब्द०)।

ऐंढा[1]—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गँडासा।

ऐंढा[2]—सज्ञा पुं० [हिं० ऐंडा=सेंध] सेंध। सधि। नकब। उ०—अब मैं यहाँ ठहरूँगा तो ऐंढ़े का चोर बन जाऊँगा।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५३।

ऐंदव[1]—वि० [सं० ऐन्दव] [वि० स्त्री० ऐंदवी] चद्रमासबधी। इदु सबधी।

ऐंदव[2]—सज्ञा पुं० मृगशिरा नक्षत्र (जिसके देवता चद्रमा हैं)। २ चाद्र मास। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से आरभ होकर पूर्णिमा को समाप्त होनेवाला महीना। ३ चाद्रायण नाम का व्रत।

ऐंदवी—सज्ञा स्त्री० [स० ऐदन्वी] सोमराजी [को०]।

ऐंद्र[1]—वि० [स० इन्द्र] [वि० स्त्री० ऐंद्री] इद्रसबधी।

ऐंद्र[2]—सज्ञा पुं० १ इद्र का पत्र —(१) अर्जुन, (२) वालि। २ ज्येष्ठा नक्षत्र। ३ एक सवत्सर का नाम (को०)। ४. यज्ञ मे इद्र का भाग (को०)। ५ वन अदरक (को०)।

ऐंद्रजाल—सज्ञा पु० [स० ऐन्द्रजाल] इद्रजाल। बाजीगरी [को०]।

ऐंद्रजालिक[1]—वि०[स० ऐन्द्रजालिक] इद्रजाल करनेवाला। मायावी।

ऐंद्रजालिक[2]—सज्ञा पुं०[स्त्री० ऐन्द्रजालिकी]जादूगर। बाजीगर[को०]।

ऐंद्रजालिक कर्म —सज्ञा पुं० [स० ऐन्द्रजालिक कर्म] जादू के काम। माया के काम। ऐसे काम जिनमे लोग धोखा खाए।

विशेष—कौटिलीय अर्थशास्त्र के औपनिषदिक खड के दूसरे प्रकरण मे इस प्रकार के अनेक उपाय बताए हैं, जिनसे मनुष्य कुरूप हो जाता था, बाल सफेद हो जाते थे, वह कोढी की तरह या काना हो जाता था, आग मे जलता नहीं था, अतर्द्धान हो सकता था और उसकी छाया नहीं पडती थी।

ऐंद्रलुप्तिक—वि० [स० ऐन्द्रलुप्तिक] [स्त्री० ऐंद्रलुप्तिकी] खल्वाट। गजा [को०]।

ऐंद्रशिर—सज्ञा पुं०[स० ऐंद्रशिर]एक प्रकार का हस्ती। एक जाति का हाथी [को०]।

ऐंद्रि— सज्ञा पुं० [स० ऐन्द्रि] १ इद्र का पुत्र—(१) जयत, (२) वालि, (३) अर्जुन। २ वायस। काग (को०)।

ऐंद्रिय[1]—वि० [स० ऐन्द्रिय] दे० 'ऐंद्रियक'।

ऐंद्रिय[2]—सज्ञा पु० इद्रियों का जगत्। विषय [को०]।

ऐंद्रियक—वि० [स० ऐन्द्रियक] इद्रियग्राह्य। जिसका ज्ञान इद्रियों से हो। इद्रियसबधी।

ऐंद्रियक[2]—सज्ञा पुं० दे० 'ऐंद्रिय[2]'।

ऐंद्री— सज्ञा स्त्री० [स० ऐन्द्री] १ इद्राणी। शची। २ दुर्गा। ३. इंद्रवारुणी। ४ इलायची। ५ इद्र सबधी एक वैदिक ऋचा (को०)। ६ पूर्व दिशा (को०)। ७ ज्येष्ठा नक्षत्र (को०)। ८ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी (को०)। ९ पौष शुक्ला अष्टमी(को०)। १० अभाग्य। दुर्भाग्य (को०)। ११ ककडी (को०)।

ऐंधन[1]—वि० [सं० ऐन्धन] इंधन से युक्त। इंधन से उत्पन्न (अग्नि) [को०]।

ऐंधन[2]—सज्ञा पु० सूर्य का एक नाम [को०]।

ऐंपरि(पु)†—अव्य० [स० एतद् याइयत्+उपरि] इसपर। इतने पर। उ०—ऐंपरि रिपुहि अलप न जानियै। मर्म दुखद बहुतै मानियै। —नद० ग्र०, पृ० २३३।

ऐंहडा†—सज्ञा पुं० [हिं० ऐंडा] सेंध। नकब। ऐंडा।

ऐ[1]—सज्ञा पुं० [स०] शिव।

ऐ[2]—अव्य० [स० अयि वा हे] एक सबोधन। उ०—ऐ बेगम साहब, यह क्या सामने बजा रहे हैं।—फिसाना०, भा०३, पृ० १५।

विशेष—इस अर्थ मे इस शब्द का उच्चारण सस्कृत से भिन्न 'अय्' की तरह होता है।

ऐ[3]†—सर्व०[स० एतव, हिं० यह]यह। उ०—राम वरण रूप ऐ सह वरणाँ सिरताज।—रघु० रू०, पृ० २।

ऐक—वि० [स०] एक से सबद्ध। एक का। एकसबधी [को०]।

ऐककर्म्य—सज्ञा पुं० [स०] १ जैन दर्शन के अनुसार कर्म का एकत्व। २. निश्चित कर्मफल।

ऐकत(पु)—वि० [सं० एकान्त] अकेला। एकाकी। उ०—ऐकत छाँड़ि जाहि घर घरनी तिन भी बहुत उपाया। कहै कबीर कछु समझि न परई, विषम तुम्हारी माया।—कबीर ग्र०, पृ० १५३।

ऐकद्य—वि० [स०] तत्काल। तुरत। साथ साथ [को०]।

ऐकध्य—सज्ञा पुं० [स०] एक समय या घटना [को०]।

ऐकपत्य—सज्ञा पु० [स०] १ पूर्ण प्रभुता। सर्वोच्च शक्ति। २ एकतंत्र शासन। एकाधिपत्य [को०]।

ऐकपदिक[1]—वि०[सं०][वि० स्त्री० ऐकपदिकी] एक पदवाला। सरल पदवाला।

एकपदिक[2]—सज्ञा पुं० [सं०] निघटु पर यास्क की टीका के नैगम खड का नाम [को०]।

ऐकपद्य—सज्ञा पुं० [स०] १ शब्दों की एकता। २ एक शब्द या पद मे गठित होना [को०]।

ऐकभाव्य—सज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति या उद्देश्य की एकता। सम या एकभाव का होना [को०]।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।

३. कुटिल भाव। द्वेष। विरोध। उ०—या दुनियाँ मे आइके छाँडि देइ तू ऐंठ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६७।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रखना।

ऐंठवैंठ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंठ + गोइँठा] तनन। खिचना। घमंड करना। उ०—जो पै ऐंठिवैंठि जाइ कालि की बिटौनी ग्वारि, तो पै देखवारि दूती काहे कों कहाइहौं।—गंग०, पृ० ६८।

क्रि० प्र०—जाना।—होना।

ऐंठन—संज्ञा स्त्री० [सं० आवेष्ठन, पा० आवेट्ठन] १ वह स्थिति जो रस्सी या उसी प्रकार की और लचीली चीज को लपेटने या मरोड़ने से प्राप्त होती है। घुमाव। लपेट। पेंच। मरोड़। बल। जैसे—रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं गई।

यौ०—उलटी ऐंठन = वह ऐंठन जिसका घुमाव दाहिनी ओर से बाईं ओर को हो। वामावर्त ऐंठन सीधी ऐंठन = वह ऐंठन जो बाएँ से दाहिने गई हो। दक्षिणावर्त ऐंठन।

२ खिंचाव। अकड़ाव। तनाव। ३ कुंडल। कुंडलि। तशन्नुज।

ऐंठना¹—क्रि० स० [सं० आवेष्ठन, पा० आवेट्ठन या हिं० ऐंठ + ना (प्रत्य०)] १ घुमाव देना। बटना। बल देना। मरोड़ना। घुमाव के साथ तानना या कसना।

सयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—ऐंठे की बेल = पत्थर के खंभे पर बनी हुई वह बेल जो उसके चारो ओर लिपटी हो।

२ दबाव डालकर वसूल करना।

सयो० क्रि०—लेना।

३ धोखा देकर लेना। फँसना। उ०—हम खुशामदी नहीं हैं कि किसी की झूठी प्रशंसा करके कुछ ऐंठा चाहें।—प्रताप० ग्र०, पृ० ७१५।

संयो० क्रि०—रखना।—लेना।

ऐंठना²—क्रि० अ० १. बल खाना। पेंच खाना। खिंचाव। घुमाव के साथ तनना। २ तनना। खिंचना। अकड़ना। जैसे,—हाथ पाँव ऐंठना।

मुहा०—पेट ऐंठना = पेट या आँतों में मरोड़ या दर्द होना।

३ मरना। ४ अकड़ दिखाना। घमंड करना। इतराना। उ०—अब भरि जनम महलिया, तकब न ओहि। ऐंठल गो अभिमनिया तजि के मोहि।—रहीम (शब्द०)। ५ टेढ़ी सीधी बातें करना। टर्राना। उ०—तबहीं तें उनि हमहिं भुलायौ गई उतहि कों धाइ। अब तौ तरकि तरकि ऐंठति है लेनी लेति बनाइ।—सूर०, १०।२४०५।

ऐंठमेठ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंठना] घुमाव। मरोड़। वक्रता। तिरछापन। उ०—तनु ऐंठिमेंठि भौंह कि बाल। मूरछ्यो मैन जग वही ख्याल।—पृ० रा०, १।४२१।

ऐंठवाना—क्रि० स० [हिं० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठन की क्रिया दूसरे से करवाना।

ऐंठा¹—संज्ञा पुं० [हिं० ऐंठना] रस्सी बटने का [illegible]।

विशेष—इसमे एक लकड़ी होती है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इस छेद मे एक लट्टूदार लकड़ी पड़ी रहती है। लकड़ी के एक छोर से दूसरे ओर तक एक ढीली रस्सी बँधी रहती है जिसके बीच बटी जानेवाली रस्सी बाँध दी जाती है। लकड़ी के एक छोर पर एक लंगर बँधा रहता है। छेद में पड़ी हुई लकड़ी को घुमाने से बिनी जानेवाली रस्सी में ऐंठन पड़ती जाती है।

२. घोंघा।

ऐंठा²—वि० ऐंठा हुआ। घमंडी। नाराज।

ऐंठाना—क्रि० स० [हिं० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठने की क्रिया दूसरे से करवाना।

ऐंठागुइँठा†(पु)—वि० [हिं० ऐंठा + गुइँठा] घमंड से भरा हुआ। पकड़ा हुआ। उ०—पाँच तत्त का जामा पहिरे ऐंठागुइँठा डोलै। जनम जनम का है अपराधी कबहूँ साँच न बोलै।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।

ऐंठू—वि० [हिं० ऐंठना] अकड़बाज। ऐंठ रखनेवाला। अभिमानी। टर्रा।

ऐंड¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंठ] १ ऐंठ। ठसक। गर्व। उ०—रँगी सुरत रँग पिय हियैं लगी जगी सब राति। पैंड पैंड पर ठठुकि कै ऐंड भरी ऐंडाति।—बिहारी र०, दो० १८३। २. पानी का भँवर।

ऐंड²—वि० निकम्मा। नष्ट।

यौ०—ऐंड हो जाना = निकम्मा हो जाना। नष्टभ्रष्ट हो जाना। टूट फूट जाना। गया बीता होना।

ऐंडदार—वि० [हिं० ऐंड + फा० दार] १ ठसकवाला। गर्वीला। घमंडी। उ०—जेते ऐंडदार दरबार सरदार सब ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भो।—मतिराम (शब्द०)। २. शानदार। बाँका। तिरछा। उ०—सखा सरदार ऐंडदार सोहैं संग संग करैं सतकार पुरजन सुख हेतु है।—रघुराज (शब्द०)।

ऐंडना¹—क्रि० अ० [हिं० ऐंठना] १. ऐंठना। बल खाना। २. अँगड़ाना। अँगड़ाई लेना। ३ इतराना। घमंड करना। उ०—धन जोबन मद ऐंडो ऐंडो ताकत नारि पराई। लालच लुब्ध स्वान जूठन ज्यों सोऊ हाथ न आई।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—ऐंडा ऐंडा फिरना या डोलना = इतराया फिरना। घमंड में फूलकर घूमना। उ०—जिन पै कृपा करी नँदनंदन सो ऐंडो काहे नहिं डोलै।—सूर (शब्द०)।

ऐंडना²—क्रि० स० १ ऐंठना। बल देना। २ बदन तोड़ना। अँगड़ाना। उ०—उठे प्रात गाथा मुख भाषत आतुर रैनि बिहानी। ऐंडत अंग, जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी।—सूर० १०।११७०।

ऐंडबैंड़(पु)—वि० [हिं० बेंडा + ऐंडा (अनु०)] [वि० स्त्री० ऐंडी बेंडी] टेढ़ा। तिरछा। उ०—(क) ऐंड़ सों ऐंडाइ अति अंचल उड़ाइ ऐसी छाँडि ऐंडबैंड चितवन निरमोलिए।—केशव (शब्द०)। (ख) देखो देखो पूरबिले पाप को प्रताप

काती मेह । आडवर अति दाखवर, आस न पूरइ तेह ।—ढोला० दू० ३३६ । (ख) एक उजाथर कलहि एहवा, माथी सह आखाढसिध ।—वेलि०, दू० ७८ ।

एहसान—संज्ञा पुं० [अ०] वह भाव जो उपकार करनेवाले के प्रति होता है । कृतज्ञता । निहोरा । उ०—कहो हुआ एहसान कौन सा किसी व्यक्ति पर मेरा ।—पथिक, पृ० ६४ । २. उपकार । भलाई । नेकी ।

एहसानफरामोश—वि० [अ० एहसान+फा० फरामोश] [संज्ञा स्त्री० एहसानफरामोशी] कृतघ्न । अकृतज्ञ । उ०—पर यह एहसानफरामोश आदमी मोघा चला गया ।—रंग०, पृ० ६०० ।

एहसानमंद—वि० [अ०] निहोरा माननेवाला । उपकार माननेवाला कृतज्ञ ।

एहाता—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहाता' ।

एहि—सर्व० [हिं० एह] 'एह' का वह रूप जो हिंदी की विभाषाओं और बोलियों में उसे विभक्ति के पहले प्राप्त होता है । उ०—एहि मह रघुपति नाम उदारा ।—मानस १।१० ।

एहो—अव्य० [हिं० हे, हो] संबोधन शब्द । हे । ऐ ।

ऐ

ऐ—संस्कृत वर्णमाला का बारहवाँ और हिंदी या देवनागरी वर्णमाला का नवाँ स्वर वर्ण । इसका उच्चारण स्थान कंठ और तालु है ।

विशेष—हिंदी में इसका उच्चारण दो ढंग से होता है । संस्कृत या तत्सम शब्दों में तो 'ऐ' का उच्चारण संस्कृत के अनुसार ही कुछ 'इ' लिए हुए 'अइ' के ऐसा होता है जैसे ऐरावत' । पर हिंदी शब्दों में इसका उच्चारण 'य' लिए हुए 'अय्' की तरह होता है, जैसे—'ऐसा' । यह प्रवृत्ति पश्चिम की है । पूरब की प्रांतिक बोलियों में या मराठीभाषी आदि के हिंदी उच्चारण में 'ऐसा' में भी 'ऐ' का उच्चारण संस्कृत ही की तरह रहता है ।

ऐं—अव्य० [सं० अये या ऐ] १. एक अव्यय जिसका प्रयोग अच्छी तरह न सुनी या समझी हुई बात को फिर से कहलाने के लिये होता है । जैसे—ऐं, क्या कहा ? फिर तो कहो । २ एक अव्यय जिससे आश्चर्य सूचित होता है । जैसे—ऐं ! यह क्या हुआ ?

ऐंगुद[1]—वि० [सं० ऐङ्गुद] इंगुदी वृक्ष से उत्पन्न । इंगुदी संबंधी । इंगुदीयुक्त [को०] ।

ऐंगुद[2]—संज्ञा पुं० इंगुदी के फल की गिरी [को०] ।

ऐंग्लो—वि० [अ०] अँगरेजों से संबंधित । इंग्लैंड से संबंधित ।

यौ०—ऐंग्लोइंडियन=(१) वह जो भारत, बर्मा आदि में उत्पन्न हो । (२) यूरोपीय और एशियाई दंपति की संतान । ऐंग्लोबर्मीज । ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल=वह पाठशाला जहाँ अँगरेजी तथा देशी दोनों भाषाओं की पढ़ाई हो ।

ऐंच Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अव+√अञ्च्, हिं० खींचना, या खेंच पू० हिं० हींचना] खिंचाव । तनाव । ऐंठ । उ०—कंसदलन पर ओर उत, इत राधाहित जोर । चलि रहि सकै न स्याम चित ऐंच लगी दुहुँ ओर ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३६ ।

ऐंचना—क्रि० स० [सं० अवाञ्चन हिं० खींचना, पू० हिं० हींचना] १ खीचना । तानना । उ०—(क) नीलांवर कर ऐंचि लियौ हरि मनु बादर तें चंद उजारचो ।—सूर० १०।८०७ । (ख) रह्यो ऐंचि, अंतु न लहै अवधि दुसासनु वीरु । आलो, बाढ़त बिरहु ज्यों पंचाली कौ चीरु ।—बिहारी र०, दो० ४०० । २. अपने जिम्मे लेना । जिसका रुपया अपने यहाँ बाकी हो उसका कर्ज अपने जिम्मे लेना । ओढ़ना । ओटना । जैसे—अब आप इनसे अपने रुपए का तगाजा न करें मैं उसे अपनी ओर ऐंच लेता हूँ । ३ अनाज की भूसी अलग करने के लिये फटकारना ।

ऐंचाऐंची—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंचना] खींचा खींची । ऐंचातानी । उ०—(क) दस बटपार बाट पारत नित इंद्रजाल बगराय । तिनकी अति ऐंचाऐंची में परि पुनि कछु न बसाय ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २९९ । (ख) अँचरा की ऐंचाऐंची, अँगिया की खेंचाखेंची, छतिया की छुवा छुई मान छुटि जाइगो ।—गंग०, पृ० ७९ ।

ऐंचाखेंची—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंचना+खेंचना] ऐंचातानी । ऐंचाऐंची उ०—ऐंचाखेंची से सबहिन कै परिगै भयकाभोरी ।—जग० श०, पृ० ७७ ।

ऐंचाताना—वि० [हिं० ऐंचना+तानना] [वि० स्त्री० ऐंचातानी] जिसकी पुतली देखने में दूसरी ओर को खींचती हो । जो देखने में उधर देखता हुआ नहीं जान पड़ता जिधर वह वास्तव में देखता है । भेंगा । उ०—सौ में फुली सहस में काना । सवा लाख में ऐंचाताना । ऐंचाताना कहै पुकार । कंजे से रहियो हुशियार ।

ऐंचातानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंचना+तानना] खींचाखींची । घसीटा घसीटी । अपनी अपनी ओर लेने का प्रयत्न । उ०—इक इक नाम बिना वह कानी, हो रही ऐंचातानी ।—कबीर ग्रं०, भा० १, पृ० ६८ ।

ऐंचीला—वि० [हिं०] लचकदार । लचीला । खिंच सकनेवाला । खिंचने लायक ।

ऐंछना Ⓟ—क्रि० स० [सं० प्रोञ्छन=चुनना] १ झाड़ना । साफ करना । २ (बालों में) कंघी करना । ऊँछना । उ०—मोरहि मातु पठावति लालन सबल कछक खवाई । पोछि शरीर, ऐंछि कारे कच भूषन पट पहराई ।—रघुराज (शब्द०) ।

ऐंठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऐंठन] १ अहंकार की चेष्टा । अकड़ । ठसक । २ गर्व । घमंड । उ०—पर आशा की ओर कहाँ तक ऐंठ सहूँ मैं ।—साकेत, पृ० ४०१ ।

कहि रमानिवासा। हरपि चले कुभज रिषि पासा।—मानस ३।६ (क)।

विशेष—इस पद का प्रयोग प्रार्थना को स्वीकार करने या माँगा हुआ वरदान देने के समय होता है।

एवं[२]—अव्य० और। ऐसे ही और। इसी प्रकार और।

एव—अव्य० [स०] १ एक निश्चयार्थक शब्द। ही। उ०—वलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव। मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव।—तुलसी ग्र०, पृ० १३२। २ भी।

एवज—सज्ञा पु० [अ० एवज] १. वदला। प्रतिफल। प्रतिकार। २ परिवर्तन। वदला।

क्रि० प्र०—देना। उ०—'और मैं उसका भी एवज दिया चाहता था'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३४३।—मिलना।—लेना।

३ स्थानापन्न पुरुष। दूसरे की जगह पर कुछ काल तक के लिये का काम करनेवाला आदमी।

यौ०—एवज मुआवजा=अदल वदल।

एवजी—सज्ञा पु० [फा० एवजी] स्थानापन्न पुरुष। दूसरे की जगह पर कुछ काल के लिये काम करनेवाला आदमी।

एवजीदार—वि० [फा० एवजी+दार (प्रत्य०)] दूसरे की जगह पर कुछ समय के लिये काम करनेवाला। स्थानापन्न। उ०—जै दिन काम न करें तैं दिन पूरी तनख्वाह एवजीदार को दें।—प्रताप० ग्र० पृ० ४६१।

एवड़(पु)†—सज्ञा पु० [देश०] दे० 'रेवड़'। उ०—आडवले आघोफरइ, एवड माँहि असन्न।—ढोला०, दू०, ४३६।

एवाल(पु)†—सज्ञा पु० [स० अविपाल] गडेरिया। आभीर। उ०—ढोलइ करह विमासियउ, देखे वीस वसाल। ऊँचे थलइ ज एकलो वच्चालइ एवाल।—ढोला० दू०, ४३५।

एवेन्यू—सज्ञा पु० [अ०] १ वह स्थान जो वृक्ष, लता आदि से आच्छादित हो। कुज। २ रास्ता। मार्ग। जैसे,—चितरंजन एवेन्यू।

एशिया—सज्ञा पु० [यू० (यह शब्द इवरानी शब्द 'असु' से निकला है जिसका अर्थ है 'वह दिशा जहाँ से सूर्य निकले अर्थात् पूर्व] पाँच वडे भूखडो मे से एक भूखड जिसके अतर्गत भारतवर्ष, फारस, चीन, ब्रह्मा, इत्यादि अनेक देश हैं।

एशियाई—वि० [यू० एशिया+हिं० ई (प्रत्य०)] एशिया का। एशिया सवधी। उ०—हिंदू मुस्लिम एक हैं दोनो। यानी ये दोनो एशियाई हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४३।

यौ०—एशियाई रूम। एशियाई रूस। एसियाई कोचक।

एषण—सज्ञा पु० [स०] १ इच्छा। अभिलाषा। चाहना। २ लेने का यत्न करना। पाने का प्रयास करना। ३ दवाना। ४. रोग की जाँच करना। ५ लोहे का वाण [को०]।

एषणा—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० एषणीय, एषतव्य] १. इच्छा। आकाक्षा। अभिलाषा। उ०—सवके पीछे लगी हुई हैं कोई व्याकुल नई एषणा।—कामायनी, पृ० २६६। २. याचना। माँगना (को०)।

एषणासमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] जैनो मे ४२ दोषरहित वस्तुओ के आहार का नियम। दूषणरहित आहार का ग्रहण।

एषणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] सर्राफ की तराजू [को०]।

एषणी[१]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दे० 'एषणिका'। २ लोहे की सलाख। लोहशलाका [को०]।

एषणी[२]—वि० [स० एषणिन्] चाहने या इच्छा रखनेवाला [को०]।

एषणीय—वि० [सं०] चाहने या प्राप्त करने योग्य [को०]।

एषा—सज्ञा स्त्री० [स०] चाह। आकाक्षा। इच्छा [को०]।

एषिता—वि० [स० एषितृ] चाहनेवाला। अभिलाषुक। इच्छा करनेवाला [को०]।

एषी—वि० [स० एषिन्] दे० 'एषिता'।

एष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] चाहना। इच्छा (को०)।

एष्य—वि० [स०] १ चाहने योग्य। प्रस्तुत करने योग्य। ३. निरीक्षण करने योग्य [को०]।

एसिड—सज्ञा पु० [अ०] तेजाब। अम्लक्षार। द्राव।

एसीवादी—सज्ञा पु० [प्रा०] जैन सप्रदाय मे वाणव्यतर नामक देवगण के अतर्गत एक देवता।

एसेंब्ली—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सभा। परिषद्। मडल। मजलिस। व्यवस्थापिका सभा। जैसे—लेजिस्लेटिव एसेंब्ली। २ समूह। जमाव। मजमा।

एसेंस—सज्ञा पु० [अ०] १ रासायनिक प्रक्रिया से खीचा हुआ फलो फूलो की सुगध आदि का सार। पुष्पसार। अतर। २ वनस्पति आदि का खीचा हुआ सार। अरक। ३ सुगध। ४. रूह।

एस्टिमेट—सज्ञा पु० [अ०] अदाज। तखमीना। अनुमान। जैसे,—'इसमे कितना खर्च पडेगा, इसका एस्टिमेट दीजिए'।

क्रि० प्र०—देना।—वताना।—लगाना।

एस्पराटो, एस्परातो—सज्ञा दे० [अ०] यूरोप आदि के प्रचलित एक नवीन कल्पित अतरराष्ट्रीय भाषा। उ०—'सरस्वती की किसी पिछली सख्या मे हमने एस्पराटो भाषा के विषय मे कुछ लिखा है'।—सरस्वती, अप्रैल, १९०५, पृ० १२१।

एह[१](पु)—सर्व० [स० एष, अप० एह] यह। उ०—स्वारथ परमारथ रहित सीताराम सनेह। तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एह।—तुलसी ग्र०, पृ० ६१।

एह[२]—वि० यह।

एहतमाम—सज्ञा पु० [अ० एहतिमाम] १ प्रबंध। २. निरीक्षण।

एहतियात—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सावधानी। होशियारी। चौकसी। बचाव। २ परहेज।

एहतियातन—वि० [अ०] होशियारी से। एहतियात के तौर पर। सुरक्षा की दृष्टि से।

एहतियाती—वि० [अ०] एहतियात सबधी। जिसमे एहतियात का खयाल रहे। हिफाजत सबधी [को०]।

यौ०—एहतियाती काररवाई=खतरे से वचने के लिये की जानेवाली काररवाई। हिफाजत सबधी व्यवस्था।

एहतिलाम—सज्ञा पु० [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

एहवा(पु)†—वि० [स० एष, अप० एह+वा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० एहवी] दे० 'एसा'। उ०—(क) पिय खोटौरा एहवा, जेहा

एर्वारु, एर्वारुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ककडी [को०]।

एल—संज्ञा पुं० [अ०] कपडे की एक नाप जो ४५ इंच की होती है। इससे अधिकतर विलायती रेशमी कपडे और मखमल आदि नापे जाते हैं।

एलक[1]—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'एडक' [को०]।

एलक[2]—संज्ञा पु० [सं० एलक = मेढ या मेड के चमडे का बना हुआ] १ चलनी जिसमे आटा चालते हैं। २ मैदा चालने का आखा।

एलकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० एला + केश] एक तरह का बैंगन जो बगाल मे होता है।

एलकोहल—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रसिद्ध मादक तरल पदार्थ जो कोई चीजो का खमीर उठाकर बनाया जाता है। फूल शराब।
विशेष—इसका कोई रग नही होता। इसमे स्पिरिट की सी महक आती है। यह पानी मे भली भाँति घुल जाता है और स्वाद मे बहुत तीक्ष्ण होता है। इसमे गोद, तेल तथा इसी प्रकार के और अनेक पदार्थ बहुत सहज मे घुल जाते हैं, इसलिये रग आदि बनाने तथा औषधि मे इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है। शराब इसी से बनती है। जिस शराब मे इसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह शराब उतनी ही तेज होती है।

एलची—संज्ञा पु० [तु०] वह जो एक राज्य का सदेशा लेकर दूसरे राज्य मे जाता है। दूत। राजदूत। उ०—लखि हजरति फरमाँन उलटि एलची पठाए।—ह० रासो० पृ०, ५६।

एलचीगरी—संज्ञा पु० [फा०] दौत्य। दूतकर्म।

एलवालु, एलवालुक—संज्ञा पु० [सं०] १ कपित्थ की सुगधित छाल। २ एक दानेदार पदार्थ [को०]।

एलविल—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर।

एला[1]—संज्ञा पु० [सं०, मल० एलाम्] १ इलायची तथा उसका पेड। २ शुद्ध राग का एक भेद। ३ वनरीठा। ४ आमोद प्रमोद। विलास। क्रीडा।

एला[2]—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियो की चटनी बनाई जाती है। वि० दे० 'रसौलू'।

एलागंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० एलागन्धिका] कैथ या कपित्थ की छाल [को०]।

एलान[1]—संज्ञा पु० [सं०] नारगी [को०]।

एलान[2]—संज्ञा पु० [अ०] मुनादी। घोषणा। सार्वजनिक घोषणा या सूचना।

एलापर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा। रास्ना। [को०]।

एलार्म—संज्ञा पु० [अ०] विपद् या खतरे का सूचक शब्द या सकेत।
यौ०—एलार्मघड़ी = वडी घडी जो नियत समय पर टन टन का शब्द करके सूचित करती है। एलार्म चेन। एलार्म वेल एलार्म सिगनल।

एलार्मचेन—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह जजीर जो रेलगाडियो के अदर लगी रहती है और किसी प्रकार की विपद् की आशका होने पर जिसे खीचने से ट्रेन खडी कर दी जाती है। खतरे की जजीर। विपद्सूचक शृ खला।

एलार्म वेल—संज्ञा पु० [अ०] वह घटा जो विपद् या खतरे की सूचना देने के लिये बजाया जाता है। विपद्सूचक घटा। खतरे का घटा।

एलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एलीका] एला। इलायची। उ०—इत लवग नव रग एलि इत झोलि रही रस। इत कुरवक केवरा केतकी गंध बधु बस।—नद० ग्र०, पृ० ९३।

एलिमवार(पु)†—वि० [फा० इल्मवार] ज्ञानवाला। ज्ञानी। उ०—दरिया जो कहँ दल एलिमवार है पार कहा सब सुध्न सुनायो।—सं० दरिया, पृ० ६५।

एलीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची [को०]।

एलुक—संज्ञा पु० [सं०] १ एक सुगधित द्रव्य। २ ओषधि में प्रयुक्त एक पौधा या द्रव्य [को०]।

एलुला, एलुवा—संज्ञा पु० [अ० या अ० एलो] कुछ विशेष प्रकार से सुखाया और जमाया हुआ घीकुवाँर का दूध या रस। मुसब्बर।

एलेक्टर—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'निर्वाचक'।

एलेक्टरेट—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'निर्वाचकसघ'।

एलेक्टेड—वि० [अ०] दे० 'निर्वाचित'।

एलेक्ट्रिक—संज्ञा स्त्री० [अ०] विद्युत्। बिजली।

एलेक्शन—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'निर्वाचन'।

एल्क—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का बहुत बडा बारहसिंगा जो यूरोप और एशिया मे मिलता है।
विशेष—यह घोडे से ऊँचा होता है। इसे थूथन होता है। इसकी गरदन इतनी छोटी होती है कि यह जमीन पर की घास आराम से नही चर सकता। इससे यह पेड की पत्तियाँ और डालियाँ खाता है। इसकी टाँगें चलते समय छितरा जाती हैं। यह न हिरन की तरह दौड सकता और न कूद सकता है। इसकी घ्राणशक्ति बहुत तीव्र होती है।

एल्डरमैन—संज्ञा पु० [अ०] म्यूनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य जिसका दर्जा मेयर या प्रधान के या डिप्टी मेयर के बाद और साधारण कौन्सिलर या सदस्य से ऊँचा होता है जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के एल्डरमैन।
विशेष—इगलैंड आदि देशो मे एल्डरमैन को म्युनिसिपैलिटी सदस्य होने के सिवा स्थानिक पुलिस मैजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त होते हैं। सन् १७२६ ई० मे बबई, मद्रास और कलकत्ता आदि मे जो मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे, उनमें भी एल्डरमैन थे।

एल्युमिनम—संज्ञा पु० [अ० एलुमीनियम] एक प्रकार की बहुत हल्की सफेद धातु जिससे बर्तन, कल पुर्जे आदि बनते हैं। अलुमीनियम। अलमोनियम।

एल्वालु, एल्वालुक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'एलवालु' [को०]।

एव[1]—क्रि० वि० [सं० एवम्] ऐसा ही। इसी प्रकार।
यौ०—एवगुण = ऐसे गुणोवाला। एवविध = इस प्रकार का। इस रूप या ढग का। ऐसा। उ०—एवविध तुम, जीवन कुकुम, चढ़ी देह पर द्रुम हो।—पाराधना, पृ० ९०। एवभूत = इस प्रकार का। एवमस्तु = ऐसा ही हो। उ०—एवमस्तु

करना। २ हुंडी या चेक की पीठ पर हस्ताक्षर करके उसे हस्तांतरित करना। ३ सकारना। स्वीकार करना।
क्रि० प्र०—करना।—कराना।

एनमद(ॻ)—संज्ञा पुं० [सं० एणमद] मृगमद। कस्तूरी। उ०—यों होत है जाहिरे तो हिये स्याम, ज्यों स्वर्नसीसी भरयो एनमद वाम।—भिखारी ग्रं०, भा० १ पृ० २०१।

एनस—संज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २. अपराध।

एनामेल—संज्ञा पुं० [अं०] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का लेप जो चीनी मिट्टी या लोहे आदि के बरतनों तथा धातु के और अनेक पदार्थों पर लगाया जाता है।
विशेष—यह कई रंगो का होता है और सूखने पर बहुत अधिक कडा तथा चमकीला हो जाता है। कभी कभी यह पारदर्शी भी बनाया जाता है।

एनी—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बडा पेड जो दक्षिण में पश्चिमी घाट पर होता है।
विशेष—इसकी लकडी मकानो मे लगती है तथा असबाब बनाने के काम मे आती है। इसके हीर की लकडी मजबूत और कुछ पीलापन लिए हुए भूरी होती है। एनी ही का दूसरा भेद डील है जिसकी लकडी बहुत चमकदार होती है तथा जिसके बीज और फल कई तरह से खाए जाते हैं।

एप्रिल—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'अप्रैल'।
यौ०—एप्रिल फूल।

एप्रवर—संज्ञा पुं० [अं०] किसी फौजदारी के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियो के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। अपराधी साक्षी। मुजरिम इकरारी। इकबाली गवाह। सरकारी गवाह।
विशेष—एप्रूवर मामला हो जाने पर छोड दिया जाता है।

एफीडेविट—संज्ञा पुं० [अं०] १ शपथ। हलफ। २ हलफनामा।

एबा—संज्ञा पुं० [अ० अबा] दे० 'अबा'। उ०—एबा और कदा पहिनना छोडा।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २५८।

एम(ॻ)†—क्रि० वि० [गुज०] ऐसा। इस तरह। उ०—अहे सीस ईस करारत दीसं। जुरत मरद्द मचे एम कद्द।—पृ० रा०, २।२६।

एमन—संज्ञा पुं० [सं० यवन, फा० यमन] एक संपूर्ण जाति का राग जो कल्याण और केदारा राग के मिलाने से बना है।
विशेष—इसमे तीव्र मध्यम स्वर लगता है और यह रात के पहले पहर मे गाया जाता है। इसको लोग श्री राग का पुत्र मानते हैं। कोई इसे कौआली के ठेके से बजाते हैं और कोई झपताल के।
यौ०—एमन कल्याण। एमन चौताल। एमन धमार। एमन रूपक।

एमिग्रेशन—संज्ञा पुं० [अं०] एक देश से या दूसरे देश या राज्य मे बसने के लिये जाना। देशांतराधिवास। उत्प्रवास। परदेशगमन।

एम्बुलेंस—संज्ञा पुं० [अं०] १ युद्ध क्षेत्र का अस्पताल जिसमें घायलों की मरहम पट्टी आदि की जाती है। मैदानी अस्पताल। २. एक प्रकार की गाड़ी जिसमें घायलों या बीमारों को आराम से लेटाकर अस्पताल आदि मे पहुँचाते हैं।

एम्बुलेंसकार—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'एम्बुलेंस'-२।

एरंग—संज्ञा पुं० [सं० एरङ्ग, एलङ्ग] एक प्रकार का मत्स्य [को०]।

एरंड—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड] रेंड। रेंडी। उ०—तेल के लिये सिल भी और एरंड भी कम नहीं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८।
यौ०—एरंडपत्रिका। एरंडफला। एरंडबीज।

एरंडक—संज्ञा पुं० [सं० एरण्डक] दे० 'एरंड' [को०]।

एरंडखरबूजा—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड + हिं० खरबूजा] पपीता। रेंड खरबूजा।

एरंडपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डपत्रिका] रेंड की जाति का एक वृक्ष। दंतीवृक्ष [को०]।

एरंडफला—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डफला] दे० 'एरंडपत्रिका' [को०]।

एरंडबीज—स्त्री० पुं० [सं० एरण्डबीज] रेंडी।

एरंडसफेद—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड + हिं० सफेद] मोगली। बाग बरंडा।

एरंडा—संज्ञा स्त्री० [एरण्डा] पिप्पली।

एरंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक झाड़ी जो सुलेमान पर्वत और पश्चिम हिमालय के ऊपर ६०० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इसकी छाल, पत्ती और लकडियाँ चमडा सिझाने के काम मे आती हैं। इसे तुगा, आमी या दरेगड़ी भी कहते हैं।

एरफेर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'हेरफेर'।

एराक—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० एराकी] १ फारसी संगीत के अनुसार बाहर मोकामों या स्थानों मे से एक। २ अरब देश का एक प्रदेश जहाँ का घोड़ा अच्छा होता है।

एराकी¹—वि० [फा०] एराक देश का। एराक का।

एराकी²—संज्ञा पुं० वह घोडा जिसकी नस्ल एराक देश की हो। यह अच्छी जाति के घोडों मे गिना जाता है।

एराफ—संज्ञा पुं० [अ० एराफ़ = स्वर्ग और नरक के बीच का स्थान] जहाज का पेंदा।—(लश०)।

एराब—संज्ञा पुं० [अ० एराफ] जहाज का पेंदा।

एरिसा(ॻ)†—क्रि० वि० [सं० ईदृश, ईदृशी] दे० 'ईदृश।' उ०—ईखे पित मात एरिसा अवयव विमल विचार करैं वीवाह।—बेलि० दू०, ४०।

एरे—अव्य० [अनु०] अरे। हे (संबो०)। उ०—एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गंगा की कछार मे पछार छार करिहौं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५५।

एरोड्रोम—संज्ञा पुं० [अं०] हवाई अड्डा।

एरोप्लेन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की उड़ने की मशीन। वायुयान। हवाई जहाज।

एत[2]—वि० [सं०] १ मिश्रित रंग का। २ चमकता हुआ। ३ आगत। आया हुआ। ४ गतिशील। गमनशील [को०]।

एत[3]—संज्ञा पुं० १ हिरन। मृग। मृग की ऊँचाई। ३ मिश्रित रंग [को०]।

एतक(प)—वि० [सं० एतावत्, प्रा० एत्तिअ, एत्तिक] इतना। एतना। उ०—एनत कष्ट सहा दुख अगा।—कबीर सा०, पृ० २८२।

एतकाद—संज्ञा पुं० [अ० एतकाद] विश्वास। भरोसा। उ०—मत रंज कर किसी को कि अपने तो एतकाद। दिल ढाय कर जो काबा बनाया तो क्या हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६८।

क्रि० प्र०—जमना = दृढ़ विश्वास या भरोसा होना।

एतत्, एतद्—सर्व० [सं०] यह।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक या समस्त पद बनाने ही में अधिक होता है, जैसे—एतद्देशीय, एतद्विषयक।

एतदनुसार—क्रि० वि० [सं० एतद् + अनुसार] इसके अनुसार। इसके समान। इसके मुआफिक। 'एतदनुसार आज हमारी होली है।'—प्रताप० ग्र०, पृ० ५०२।

एतदर्थ—क्रि० वि० [सं०] १ इसके लिये। इसके हेतु। २ इसलिये। इस हेतु।

एतदवधि—अव्य० [सं०] इस सीमा तक। अब तक [को०]।

एतदाल—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० मुअतदिल] १ बराबरी। समता। न कमी न अधिकता। १ फारसी के मुकाम नामक राग का पुत्र।

एतद्देशीय—वि० [सं०] इस देश का। इस देश से संबंध रखनेवाला। उ०—अत वे जो बातें नियत कर गए हैं।' एतद्देशीय जलवायु एवं प्रकृति के अनुकूल ही नियत कर गए हैं।—प्रताप० ग्र०, पृ० ६७२।

एतद्विषयक—वि० [सं०] इस संबंध का। इस विषय से संबद्ध। उ०—एतद्विषयक कानून बनाने की नौबत आई तब कान खड़े हुए हैं'—प्रताप ग्र०, पृ० ४०८।

एतन—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्वास। निःश्वास। २ एक प्रकार की मछली।

एतना(प)—वि० [सं० एतावत्] [स्त्री० एतनी] दे० 'इतना'। उ०—(क) एकता कहत छीक भइ बाएँ।—मानस, २।१६२। (ख) एतना बोल कहत मुख, उठी विरह कै आगि—जायसी ग्र०, पृ० ६०।

एतनिक(प)†—वि० [सं० एतावत्, प्रा० एत्तणिअ] दे० 'इतनक'। उ०—(क) एतनिक दोस विरंचि पिउ रूठा। जो पिउ आपन कहै सो झूठा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १७८।

एतबार—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। प्रतीति। धाक। साख। उ०—आप जो कुछ करार करते हैं। कहिए हम एतबार करते हैं।—शेर०, भा० १, पृ० १८४।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—होना।

मुहा०—(किसी का) एतबार उठना = किसी के ऊपर से लोगों का विश्वास हटना। (किसी का) अविश्वास होना। जैसे,—'उनका एतबार उठ गया है इससे उन्हें कहीं उधार भी नहीं मिलता। एतबार खोना—अपने ऊपर से लोगों का विश्वास हटाना। जैसे,—तुमने अपनी चाल से अपना एतबार खो दिया। एतबार जमाना = विश्वास उत्पन्न होना।

एतबारी—वि० [अ०] विश्वसनीय। विश्वास करने योग्य [को०]।

एतमाद—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। प्रतीति। भरोसा। उ०—जान, तुझ प कुछ एतमाद नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा है।—कविता कौ०, भा० ८, पृ० ४८।

एतराज—संज्ञा पुं० [अ०] विरोध। आपत्ति। नुक्ताचीनी।

एतलो‡—वि० [हिं०] दे० 'एतना। उ०—जान सुणते एतली, दूजा आया दूत।—रा० रू०, पृ० १७७।

एतवार—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार] दे० 'इतवार'।

एतवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतवार] १ वह दान जो रविवार को दिया जाता है। २ पैसा जो मदरसों के लड़के प्रति रविवार को गुरु जी या मौलवी साहब को देते हैं। ३ एतवार संबंधी कार्य या वस्तु।

एता(प)†—वि० [सं० इयत्] [स्त्री० एती] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) काहे को एता किया पसारा, यह तन जरि बरि ह्वै है छारा।—कबीर ग्र०, पृ० ११८। (ख) देखि री हरि के चंचल तारे। कमल मीन कौं कहँ एती छवि खंजन हू न जात अनुहारे।—सूर०, १०।१७६७।

एतादृश—वि० [सं० एतादृश] [वि० स्त्री० एतादृशी] ऐसा। इसके समान।

एतादृस(प)—वि० [सं०] दे० 'एतादश'। उ०—ससर एतादृस प्रबंध, निवानू—मानस २।१६८।

एतावत्(प)—वि० [सं०] इतना [को०]।

एतावता—क्रि० वि० [सं०] इस कारण। इसलिये। अत। उ०—'एतावता मैं यह नहीं कह सकता कि इस विषय पर उसमें क्या लिखा है।—हम्मीर० (भू०), पृ० ४।

एतिक(प)†—वि० स्त्री० [सं० एतावत, प्रा० एत्तिअ, एत्तिक (प्रो०)] इतनी। उ०—जेतिक सैल सुमेरु धरनि में भुजभरि आन मिलाऊँ। सप्त समुद्र देउँ छातीतर, एतिक देह बढ़ाऊँ।—सूर० ६।१०७।

एथ(प)†—क्रि० वि० [सं० अत्र, प्रा० अत्थ] दे० 'यत्र'। उ०—लागा घर्घ लेणई, आयो कुमले एथ।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० २६।

एध—संज्ञा पुं० [सं०] इंधन। ईंधन [को०]।

एधस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ ईंधन। २ वृद्धि। अभ्युदय [को०]।

एधित—वि० [सं०] १ वर्द्धित। पूर्ण। भरा हुआ [को०]।

एन(प)—संज्ञा पुं० [सं० एण] [स्त्री० एनी] दे० 'एण'। उ०—(क) कहै कवि गग कुल एननि को चैनहर नीलपट ओट नैना ऐसे दमकत हैं।—गग०, पृ० १०। (ख) एनी की अँखियनि ते नीकी अँखियानि।—स० सप्तक, पृ० २५१।

एनडोर्स—संज्ञा पुं० [अ० एनडोर्स] १. हुंडी आदि की पीठ पर हस्ताक्षर

एटम—संज्ञा पुं० [अं०] अणु।

यौ०—एटमबम = अणुबम। एक महाविध्वंसक आयुध। द्वितीय महायुद्ध के आखिरी वर्ष अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर इसका पहले पहल प्रयोग किया था।

एटर्नी—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'अटरनी'।

एड[1]—वि० [सं०] बहरा [को०]।

एड[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेष [को०]।

एड[3]—संज्ञा पुं० [अं०] सहायता। मदद।

एडक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० एडका] १. मेष। भेडा। २. जंगली बकरा।

एडगज—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड। चक्रमर्द।

एडवांस—वि० [अं० ऐडवांस] अग्रिम। उ०—मैंने तत्काल एडवांस भाडा चुकाकर रसीद लेकर उसे ठीक कर लिया।—सन्यासी, पृ० ११४।

एडवोकेट—संज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकील जो साधारण वकीलों में पद में बडा हो और जो पुलिस कोर्ट से लेकर हाईकोर्ट तक में बहस कर सके। वकील।

एडवोकेट जनरल—संज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट जनरल] सरकार का प्रधान कानूनी परामर्शदाता और उसकी ओर से मामलों की पैरवी करनेवाला। महाधिवक्ता।

विशेष—भारत में बंगाल, मद्रास और बंबई में एडवोकेट जनरल होते थे। इन तीनों में बंगाल के एडवोकेट जनरल का पद बडा था। बंगाल सरकार के सिवा भारत सरकार भी (कौंसिल के बाहर) कानूनी मामलों में इनसे सलाह लेती थी। जजों की भाँति इन्हें भी सम्राट नियुक्त करते थे।

एडिटर—संज्ञा पुं० [अं०] संपादक। किसी समाचारपत्र, पत्रिका या पुस्तक को ठीक करके उसे प्रकाशित करने योग्य बनानेवाला। उ०—(क) चूरन खावैं एडिटर जात, जिनके पेट पचै नहिं बात।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६६३। (ख) 'खास अपने शहर की खबर, और वह भी एडिटर हो के, झूठी छापे।—प्रताप० ग्रं०, पृ० १७६।

यौ०—एडिटरपोशी = अपने अनुकूल करने के लिये संपादकों का पोषण। उ०—दाँत पीसी हाय हाय, एडिटरपोशी हाय हाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७८।

एडिटरी—संज्ञा स्त्री० [अं० एडिटर + हिं० ई (प्रत्य०)] संपादन। किसी ग्रंथ या पत्र को प्रकाशित करने के लिये ठीक करने का काम। उ०—'पंच' की एडिटरी चिरकीन के शागिर्दों का काम नहीं'।—प्रताप०, ग्रं०, पृ० ६११।

एडीकांग—संज्ञा पुं० [अं०] १ वह कर्मचारी जो सेना के प्रधान सेनापति की आज्ञा का प्रचार करता हो और काम पडने पर उसकी ओर से पत्रव्यवहार भी करता हो। एडीकांग प्रधान शरीररक्षक का काम भी करता है। २ प्रधान शरीररक्षक।

एड—संज्ञा स्त्री० [सं० एडूक = हड्डी या हड्डी की तरह कडा,] टखनी के पीछे पैर की गद्दी का निकाला हुआ भाग। एडी।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

मुहा०—एड़ करना = (१) एड लगाना। (२) चल देना। रवाना होना। एड़ देना या लगाना = (१) लात मारना। (२) घोडे को आगे बढाने के लिये एड से मारना। (घोडे को) आगे बढाना। (३) उभाडना। उसकाना। उत्तेजित करना। (४) अडंगा लगाना। चलते हुए काम में बाधा डालना।

एडक—संज्ञा पुं० [सं० एडक] [स्त्री० एडका] भेडा। मेढा।

एडी—संज्ञा स्त्री० [सं० एडूक = हड्डी या हड्डी की तरह कडा, हिं० एड] टखनी के पीछे पैर की गद्दी का निकला हुआ भाग। एड़। उ०—बार बार एडी अलगाय कै उचकि लफी, गई लचि बहुरि पयोधर विदेह सो।—कविता कौ०, भा० २, पृ० ६६।

मुहा०—एडी घिसना या रगडना = (१) एडी को मल मलकर धोना। उ०—मुँह धोवति एडी घसति, हसति अनँगवति तीर।—बिहारी र०, दो० ६६७। (२) रीघना। बहुत दिनों से क्लेश या दुःख में पडा रहना। कष्ट उठाना। जैसे—'वे महीनों से चारपाई पर पडे एडियाँ घिस रहे हैं। (३) खूब दौडधूप करना। अगतोड परिश्रम करना। अत्यंत यत्न करना। जैसे—'व्यर्थ एडियाँ घिस रहे हो कुछ होने जाने का नहीं। एडी चोटी पर से वारना = (१) सिर और पाँव पर से न्योछावर करना। तुच्छ समझना। नाचीज समझना। कुछ कदर न न करना। (स्त्रियाँ०)। जैसे—ऐसों को तो मैं एड़ी चोटी पर वार दूँ। उ०—एडी चोटी पै मुए देव को कुरबान करूँ।—इंशा (शब्द०)। एडीदेख = चश्मबददूर। तेरी आँख में राई लोन। जब कोई ऐसी बात कहता है जिससे बच्चे को नजर या भूत प्रेत लगने का डर होता है तब स्त्रियाँ यह वाक्य बोलती हैं)। एड़ी से चोटी तक = सिर से पैर तक। एडी चोटी का पसीना एक होना या करना = अति परिश्रम करना। श्रम पडना।

एडीटर—संज्ञा पुं० [अं०] दे० एडीटर'। उ०—'इस अखबार के एडीटर को पहले लाला मदनमोहन से अच्छा फायदा हो चुका था'।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३८४।

एड्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'अड्रेस'।

एढा(पु)—वि० [सं० आढ्य या देशी] बलवान्। बली।—(डिं०)।

एण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० एणी] १ हिरण की एक जाति जिसके पैर छोटे और आँखें बडी होती हैं। यह काले रंग का होता है। कस्तूरीमृग।

यौ०—एणतिलक, एणभृत्, एणलांछन = चंद्रमा।

एणहक—संज्ञा पुं० [सं०] मकरराशि [को०]।

एणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिरणी [को०]।

एणीदाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर। एक प्रकार का सन्निपात।—माधव०, पृ० २१।

एणीपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

एणीपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीला कीडा।

एत(पु)[1]—वि० [सं० इयत्] दे० एता'। उ०—छोरि उदर तें दुमह दाँवरी डारि कठिन कर बेंत। कहि धौं री तोहिं क्यों करि आवै सिसु पर तामस एत।—सूर० १०।३४६।

एक्ट हृदय मे भरा था। इससे रक्त का घूट भीतर ही भीतर पिया किए।—प्रताप० ग्र०, पृ० ६७।

एक्टिंग—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] अभिनय। नकल करना।

एक्यानबे[1]—वि० [सं० एकनवति, प्रा० एक्काणउइ] नब्बे और एक।

एक्यानबे[2]—संज्ञा पुं० नब्बे और एक की संयुक्त संख्या का बोध करानेवाला अंक, जो इस प्रकार लिखा जाता है—९१।

एक्यावन[1]—वि० [सं० एकपञ्चाश, प्रा० एक्कावन्न] पचास और एक।

एक्यावन[2]—संज्ञा पुं० पच्चास और एक की संख्या का बोधक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५१।

एक्यासी[1]—वि०[सं० एकाशीति, प्रा० एक्कासीइ] अस्सी और एक।

एक्यासी[2]—संज्ञा पुं० एक और अस्सी की संख्या का बोधक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८१।

एक्सचेंज—संज्ञा पुं० [ग्रं० इक्सचेंज] १ बदला। परिवर्तन। २ वह स्थान जहाँ नगर के व्यापारी और महाजन परस्पर लेनदेन या क्रय विक्रय के लिये इकट्ठे होते हैं।

एक्सपर्ट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। किसी विषय मे पारगत। विशेषज्ञ।

एक्सपोज—संज्ञा पुं० [ग्रं० एक्सपोज] १ किसी वस्तु को इसलिये दूसरी वस्तु के सामने या निकट रखना जिससे उसपर उस दूसरी वस्तु का प्रभाव पड़े। २ फोटोग्राफी मे प्लेट को कैमरे मे लगाकर अक्स लेने के लिये लेंस का मुँह खोलना।

एक्सपोर्ट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] दे० 'निर्यात'। जैसे—एक्सपोर्ट ड्यूटी।

एक्सप्रेशन—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] भाव भगिमा। अभिव्यक्ति। उ०—उनके चेहरे का एक्सप्रेशन देखते नही, एक भरपेट भोजन-प्राप्त गँवार की तरह हँस रहे हैं।—सन्यासी, पृ० १८७।

एक्सप्लोसिव—संज्ञा पुं०[ग्रं०]भभक उठनेवाला पदार्थ। विस्फोटक पदार्थ। गधक बारूद आदि। जैसे—एक्सप्लोसिव ऐक्ट।

एक्सरे—संज्ञा पुं० [ग्रं०] एक विद्युत्किरण जिसकी सहायता से शरीर के भीतरी भागों का चित्र लिया जाता है। उ०—एक्स रे की तरह उसके शरीर के वाह्यावरण को भेदकर उसके मर्म का अणु अणु देख लेगी।—सन्यासी, पृ० ३७५।

एक्साइज—संज्ञा पुं०[ग्रं० एक्साइज]वह टैक्स या कर जो नमक और आबकारी की चीजो पर लगता है। नमक और आबकारी की चीजो पर लगनेवाला टैक्स या कर। महसूल। चुगी।

यौ०—एक्साइज डिपार्टमेंट=आबकारी विभाग। एक्साइज ड्यूटी=मादक द्रव्यो आदि पर लगनेवाला कर।

एखनी—संज्ञा स्त्री० [फा० यखनी] मास का रसा। मास का शोरबा।

यौ०—एखनी पुलाव=वह पुलाव जिसमे एखनी डालते हैं।

एगानगी—संज्ञा स्त्री० [फा० यगानगी] १ एका। मेल। २ मित्रता मैत्री। हेलमेल।

एगाना—वि०[फा० यगानह]जो बेगाना न हो। अपना। आत्मीय। उ०—(क) मातु पिता सुत बाधवा सम कहत एगाना रे। कहे दरिया सतगुर बिना जम हाथ बिकाना रे।—सं० दरिया पृ० १६७। (ख) 'जितने ही एगाने मिलें अच्छा ही है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३८।

एग्जामिनेशन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] परीक्षा। इम्तिहान।

एग्जिबिट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १ प्रदर्शनी आदि मे दिखाई जानेवाली वस्तु। २ वह जो अदालत मे किसी मामले में प्रमाण-स्वरूप दिखाई जाय। अदालत मे किसी मामले के संबंध में प्रमाणस्वरूप उपस्थित की जानेवाली वस्तु। जैसे—'नं०' ३० एग्जिबिट एक तेज छुरा था।'

एग्जिबिशन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] प्रदर्शनी। नुमायश। जैसे—'एयायर एग्जिबिशन'।

एजाज—संज्ञा पुं०[ग्र० ऐजाज] चमत्कार। अद्भुत कार्य। करिश्मा।

एजुकेशन—संज्ञा पुं० [ग्रं०] शिक्षा। तालीम।

यौ०—एजुकेशन डिपार्टमेंट=शिक्षाविभाग।

एजुकेशनल—वि० [ग्रं०] शिक्षासंबंधी।

एजंट—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १ वह आदमी जो किसी की ओर से उसका कोई काम करता हो। मुख्तार। २ वह आदमी जो किसी कोठी, कारखाने या व्यापारी की ओर से माल बेचने या खरीदने के लिये नियुक्त हो। ३ वह राजपुरुष या अफसर जो (अँगरेज) सरकार (या बड़े लाट) के प्रतिनिधि के रूप में किसी (देशी) राज्य मे रहता हो। ४ दे० एजेंट गवर्नर जनरल।

एजेंट गवर्नरजनरल—संज्ञा पुं० [ग्रं०] भारत मे अंग्रेजी शासन काल का वह राजपुरुष या अफसर जो बड़े लाट के एजेंट या प्रतिनिधि रूप से कई देशी राज्यो की राजनीतिक दृष्टि से देखभाल करता था।

एजेंडा—संज्ञा पुं० [ग्रं०] किसी सभा का कार्यक्रम।

एजेंसी—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] १ आढत। वह स्थान जहाँ किसी कारखाने या कपनी का माल एजेंट के द्वारा बिकता हो। २ वह स्थान जहाँ एजेंट या गुमाश्ते किसी कपनी या कारखाने के लिये माल खरीदते हो। ३ वह स्थान जहाँ शासक या सरकार या गवर्नरजनरल (बड़े लाट) या स्वामी का एजेंट या प्रतिनिधि रहता था या जहाँ उसका कार्यालय है। ४ वह प्रांत जो राजनीतिक दृष्टि से एजेंट के अधिकारयुक्त था। जैसे—राजपूताना एजेंसी, मध्यभारत एजेंसी।

विशेष—अँग्रेजो के शासनकाल मे हिंदुस्तान मे पाँच रेजिडेंसियाँ (हैदराबाद, मैसूर, बड़ोदा, काश्मीर और सिकम मे) और चार एजेंसियाँ (राजपूताना, मध्यभारत, बिलोचिस्तान तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रात मे) थी। एक एक एजेंटी के अतर्गत कई राज्य थे। इन एजेंसियो मे सब मिलाकर कोई १७५ राज्य या रियासतें थीं। प्रत्येक एजेंसी मे गवर्नर जनरल या बड़े लाट का एजेंट या प्रतिनिधि रहता था। इन एजेंटो के सहायतार्थ रियासतो मे पोलिटिकल अफसर रहते थे। जिस स्थान पर ये लोग रहते वहाँ प्राय अँगरेज सरकार की छावनी होती थी और कुछ फौज रहती थी।

एकाष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ का आठवाँ दिन [को०]।

एकाष्ठी—संज्ञा पु० [सं०] १ बक वृक्ष। २ मदार। ३ एक बीज का विनौला [को०]।

पर्या०—एकाष्ठीन। एकाष्ठीला।

एकाह—वि० [सं०] एक दिन में पूरा होनेवाला। जैसे—'एकाह पाठ'। एकाह यज्ञ'।

एकाहिक—वि० [सं०] एक दिन का। एक दिन में पूरा होनेवाला। एकाह।

एकीकरण—संज्ञा पु० [सं०] एक करना। मिलाकर एक करना। गड्डबड्ड करना।

एकीकृत—वि० [सं०] एक किया हुआ। मिलाया हुआ।

एकीभवन, एकीभाव—संज्ञा पु० [सं०] १. मिलना। मिलाव। एक होना। २ एकत्र होना। इकट्ठा होना।

एकीभूत—वि० [सं०] १ मिला हुआ। मिश्रित। जो मिलाकर एक हो गया हो। २ जो इकट्ठा हुआ हो।

एकेंद्रिय—संज्ञा पु० [सं० एकेन्द्रिय] १ सांख्य शास्त्र के अनुसार उचित और अनुचित दोनों प्रकार के विषयों से इंद्रियों को हटाकर उन्हें अपने मन में लीन करना। २. जैन मतानुसार वह जीव जिसके केवल एक ही इंद्रिय अर्थात् त्वचामात्र होती है, जैसे जोंक, केचुआ आदि।

एकेश्वरवाद—संज्ञा पु० [सं०] जगत् की उत्पत्ति और नियमन करनेवाला ईश्वर एक ही है, वह सिद्धांत या मत। उ०—'यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ'।—इतिहास, पृ० ६६।

एकेश्वरवादी—वि० [सं० एकेश्वरवादिन्] एकेश्वरवाद को माननेवाला। संसार का सर्जन, स्थिति, संहार करनेवाली शक्ति 'ईश्वर' एक ही है, इस विचार या मत को माननेवाला। उ०—'हमारा धर्म मुख्यत एकेश्वरवादी है—वह ज्ञानप्रधान है'।—कंकाल, पृ० १०५।

एकोतर(पु)—वि० [सं० एकोत्तर] दे० 'एकोत्तर'। उ०—पान एकोतर लैहै जाई। असंख्य जन्म का कर्म नशाई।—कबीर सा०, पृ० ५५२।

एकोतरसो(पु)—वि० [सं० एकोत्तरशत, अप० एकोत्तरसय] एक सौ एक। उ०—उनकर सुमिरण जो तुम करिहौ। एकोतरसो पुरुषा लै तरिहौ।—कबीर सा०, पृ० ४००।

एकोतरा[1]—संज्ञा पु० [सं० एकोत्तर] एक रुपया सैकड़ा ब्याज।

एकोतरा[2]—वि० एक दिन अंतर देनेवाला। जैसे—'एकोतरा ज्वर'।

एकोत्तर—वि० [सं०] एक से अधिक [को०]।

एकोदक—संज्ञा पु० [सं०] वह संबंधी जो एक ही पितर को जल देता हो [को०]।

एकोद्दिष्ट (श्राद्ध)—संज्ञा पु० [सं०] वह श्राद्ध जो एक के उद्देश्य से किया जाय। यह प्राय वर्ष में एक बार किया जाता है।

एकोहं—सर्व० [सं० एकोहम्] मैं एक हूँ। मैं अकेला हूँ। उ०—गा गा एकोह बहुस्याम। हर लिए भेद, भव भीति भार।—युगांत, पृ० ५६।

यौ०—एकोह बहुस्यामि।

एकौंटंट—संज्ञा पुं० [अ० अकाउन्टेन्ट] दे० 'अकाउंटेंट'। उ०—किसी एकौंटेंट की जगह खाली है, आप सिफारिश कर दें तो शायद वह जगह मुझे मिल जाय।—काया०, पृ० २६८।

एकौझा(पु)†—वि० [सं० एक] अकेला। एकाकी। उ०—जो देवपाल राउ रन गाजा। मोहि तोहि जूझ एकौझा राजा।—जायसी (शब्द०)।

एकौतना†—क्रि० अ० [हिं० एक+पत्ता] धान या गेहूँ में उस पत्ते का निकलना जिसके गाभ में बाल हो। धान आदि का फूटने पर आना। गरभाना।

एकौसा(पु)—वि० [सं० एक+आवास, प्रा० ओवास, अप० ओसास] १ अकेला। एकाकी। २ एक ही वासवाला। एक ही के प्रति रागवाला। उ०—चलौ न बलाइ लेउँ आगे तें एकौसे होहु, ताही के सिधारौ जाके निसि बसि आए हौ।—गंग०, पृ० ५७।

एक्का[1]—वि० [सं० एकक] १ एकवाला। एक से संबंध रखनेवाला। २ अकेला।

यौ०—एक्का दुक्का = अकेला। दुकेला।

एक्का[2]—संज्ञा पु० १ वह पशु या पक्षी जो झुंड छोड़कर अकेला चरता या घूमता हो।

विशेष—इसका व्यवहार उन पशुओं या पक्षियों के संबंध में आता है जो स्वभाव से झुंड बाँधकर रहते हैं। जैसे, एक्का सूअर, एक्का मुर्ग।

२ एक प्रकार की दोपहिया गाड़ी जिसमें एक बैल या घोड़ा जोता जाता है। ३ वह सिपाही जो अकेले बड़े बड़े काम कर सकता है और जो किसी कठिन समय में भेजा जाता है। ४ फौज में वह सिपाही जो प्रतिदिन अपने कमान अफसर के पास रमन (फौज) के लोगों की रिपोर्ट करे। ५ बड़ा भारी मुगदर जिसे पहलवान दोनों हाथों से उठाते हैं। ६ बाँह पर पहिनने का एक गहना जिसमें एक ही नग होता है। ७ वह बैठकी या शमादान जिसमें एक ही बत्ती जलाई जाती है। इक्का। ८ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें एक ही बूटी या चिह्न हो। एक्की।

एक्कावान—संज्ञा पु० [हिं० एक्का+वान (प्रत्य०)] [संज्ञा एक्कावानी]। एक्का हाँकनेवाला। वह पुरुष जो एक्का चलाता हो।

एक्कावानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक्कावान+ई (प्रत्य०)] १ एक्का हाँकने का काम। २ एक्का हाँकने की मजदूरी।

एक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक्का+ई (प्रत्य०)] १ वह बैलगाड़ी जिसमें एक ही बैल जोता जाय। २ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें एक ही बूटी हो।

विशेष—यह पत्ता प्राय सबसे प्रबल माना जाता है और अपने रंग के सब पत्तों को मार सकता है।

एक्जिबिशन—संज्ञा स्त्री० [अं० एग्जीबिशन] प्रदर्शनी। नुमाइश।

एक्ट—संज्ञा पु० [अं० ऐक्ट] नियम। कानून। उ०—'दुष्ट रेलवे

एकाच्—वि० [सं०] एक स्वरवाला (शब्द) [को०]।

एकाच्छरी(पु)—वि०[स० एकाक्षर+हिं० ई (प्रत्य०)]दे० 'एकाक्षरी'। उ०—भाषा करि एकाच्छरी समझौ बुद्धि अगाधि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५४३।

एकात्म—वि० [स० एकात्मन्] एकहृदय। एकप्राण। अभिन्न [को०]।

एकात्मता—सज्ञा स्त्री०[स०] १ एकता। अभेद। २ मिल मिलाकर एक होना। एकमय होना।

एकात्मवाद—सज्ञा पुं० [स०] वह सिद्धात जिसमे आत्मा और परमात्मा के एकाकार की मान्यता है। जीव ब्रह्म के ऐक्य का सिद्धात। अद्वैतवाद [को०]।

एकादश[1]—वि० [स०] ग्यारह।

एकादश[2]—सज्ञा पुं० ग्यारह की सख्या का बोध करानेवाला अक—११।

एकादशाह—सज्ञा पुं० [स०] मरने के दिन से ग्यारहवाँ दिन।

विशेष—उस दिन हिंदू मृतक के लिये वृषोत्सर्ग करते हैं, महाब्राह्मण खिलाते हैं तथा शय्यादान इत्यादि देते हैं।

एकादशी—सज्ञा स्त्री०[स०] प्रत्येक चाद्र मास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि।

विशेष—वैष्णव मत के अनुसार एकादशी के दिन अन्न खाना दोष है। इस दिन लोग अनाहार या फलाहार व्रत करते हैं। व्रत के लिये दशमीविद्धा एकादशी का निषेध है और द्वादशीविद्धा ही ग्राह्य है। वर्ष मे चौबीस एकादशी होती हैं जिनके जिनके नाम अलग हैं, जैसे, भीमसेनी, प्रबोधिनी, हरिशयनी, उत्पन्ना इत्यादि।

मुहा०—एकादशी मनाना=भूखे रहना। बिना भोजन के रहना। उ०—इस महँगी से नित एकादशी मनाते, लडके वाले सब घर मे हैं चिल्लाते।—कविता कौ०, भा० २, पृ० ३७।

एकादसी—(पु)†—सज्ञा स्त्री० [स० एकादशी] दे० 'एकादशी'। उ०—(क) 'यो ऐसें करत बोहोत दिन बीते। तब एक एकादसी आई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० २७। (ख) एकादसी गाल मह आवै, द्वादसि काम कपोल समावै।—चित्रा०, पृ० २१६।

एकाध—वि० [हिं० एक+आधा] कुछ। स्वल्प। थोड़ा। इक्का दुक्का। उ०—(क) 'उत्तर मे सिसकियो के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड जाती थी'।—आँधी', पृ० ३८। (ख) 'यार यह तो होता रहेगा, एकाध तान तो उडे'।—प्रताप० ग्र० पृ० ६।

एकाधिक—वि० [स०] एक से अधिक। अनेक [को०]।

एकाधिकार—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति या दल का अधिकार। एक का प्रभुत्व। उ०—एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित्त। अपरा, पृ० ६३।

एकाधिप—सज्ञा पुं० [स०] सपूर्ण देश का एकमात्र शासक। एकमात्र स्वामी [को०]।

एकाधिपति—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'एकाधिप' [को०]।

एकाधिपत्य—सज्ञा पुं०[स०]एकमात्र अधिकार। पूर्ण प्रभुत्व। उ०—'जब से श्यामदुलारी चली गई, धामपुर मे तहसीलदार का एकाधिपत्य था।—तितली, पृ० १३६।

एकानन—वि० [स० एक+आनन=मुख] एक मुखवाला। उ०—एकानन हम, चतुरानन तू, अत कहु क्या और विशेष।—कविता कौ०, भा० २, पृ० १५२।

एकान्विति—सज्ञा पुं० [स०] एक मे अन्वित अर्थात् युक्त होना। ऐक्य। एकत्व। उ०—उनमे एकान्विति और नबंध की सच पूछिए जगह ही नही रहती।—आचार्य०, पृ० १२८।

एकाब्दा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्ष की बछिया [को०]।

एकायन[1]—वि० [स०] १ एकाग्र। २ एकमात्र या एक के गमन योग्य। जिसको छोड और किसी पर चलने लायक न हो (मार्ग आदि)।

एकायन[2]—सज्ञा पुं० १ नीतिशास्त्र। २ विचारो की एकता(को०)। ३ एकमात्र मार्ग (को०)। ४ एकात स्थान (को०)।

एकार[1](पु)†—क्रि० वि० [हिं० एकाकार] एक समान। एक सदृश। एक सा। उ०—परदल पिण जोपि पदमणी परणे। आगैंद उभै हुआ एकार।—वेलि०, दू०, १३८।

एकार[2]—सज्ञा पुं० [स०] 'ए' अक्षर तथा उसकी ध्वनि [को०]।

एकार्गल—सज्ञा पुं० [स०] ज्योतिष मे एक योग [illegible]।

एकार्णव—सज्ञा पुं० [स०] जलप्लावन। जलप्रलय [को०]।

एकार्थ—वि० [स०] समान अर्थवाला।

एकार्थक—वि० [स०] समानार्थक।

एकावली[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ एक अलकार जिसमे पूर्व और पूर्व के प्रति उत्तरोत्तर वस्तुओ का विशेषण भाव से स्थापन अथवा निषेध दिखलाया जाय।

विशेष—इसके दो भेद हैं। पहला वह जिसमे पूर्वकथित वस्तुओं के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से स्थापन किया जाय। जैसे—सुबुद्धि सो जो हित आपुनो लखै, हितौ वही हूँ परदु ख ना जहाँ। परौ वहै आश्रित साधु भाव जो जहाँ रहैं केशव साधुता वही। यहाँ सुबुद्धि का विशेषण 'हित आपनो लखै और 'हित' का 'परदु ख ना जहाँ रखा गया है। दूसरा वह जिसके पूर्वकथित वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से निषेध किया जाय। जैसे—शोभित सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जे पढ़ै कछ नाही। ते न पढे जिन साधु न साधत, दीह दया न दिखै जिन मांही। सो न दया जु न धर्म न सो जहँ दान वृथा ही। दान न सो जहँ साँच न केशव, साँच न सो, जु बसै छल छाही।

२ एक छद। दे० 'पकजवाटिका।' ३ मोतियो की एक हाथ लबी माला। एक तार की माला जिसमे मोतियो की सख्या नियत न हो। उ०—'अभयकुमार ने एक क्षण मे अपने गले से मुक्ता की एकावली निकालकर अजलि मे ले ली।' इद्र०, पृ० १३४।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यदि इस माला के बीच मे मणि होती थी तो इसकी 'यष्टी' सज्ञा थी।

एकावली[2]—वि० एक लर का। एकहरा।

निर्जन स्थान में रहनेवाला। अकेले मे रहनेवाला। सबसे न्यारा रहनेवाला। उ०—'फिर एकातवासी लोग भी परम धर्म से क्योंकर न्यारे होंगे।'—प्रताप० ग्र ०, पृ० १०३।

एकातस्वरूप —वि० [सं० एकान्तस्वरूप] असंग। निर्लिप्त।

एकातिक—वि० [सं० एकान्तिक] एकदेशीय। जो एक ही स्थान के लिये हो। जिसका व्यवहार एक से अधिक स्थानों या अवसरों पर न हो सके। जो सर्वत्र न घटे। एकदेशीय। जैसे—एकातिक नियम।

एकाती—संज्ञा पुं० [सं० एकान्तिन्] एक प्रकार का भक्त जो भगवत्प्रेम को अपने अंतःकरण मे रखता है, प्रकट नहीं करता फिरता।

एका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

एका²—संज्ञा पुं० [सं० एकता, > प्रा० *एकग्रा, > हिं०] ऐक्य। एकता। मेल। अभिसंधि। जैसे—(क) उन लोगो मे बडा एका है। (ख) उन्होंने एका करके माल का लेना ही बंद कर दिया। उ०—ऐसें केऊ जुद्ध जीते सिंघ सुजान नें। तब मलार ह्वै सुद्ध कूरम सों एको कियो।—सुजान०, पृ० ३५।

एकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक + आई (प्रत्य०)] १. एक का भाव। एक का मान। इकाई। लघुतम घटक अंग। २. वह मात्रा जिसके गुणन या विभाग से और दूसरी मात्राओं का मान ठहराया जाता है। जैसे—किसी लबी दीवार को मापने के लिये कोई लंबाई ले ली और उसका नाम गज फुट इत्यादि रख लिया। फिर उस लंबाई को एक मानकर जितनी गुनी दीवार होगी उतने ही गज या फुट लंबी वह कही जायगी। ३ अंकों की गिनती में पहले अंक का स्थान। ४ उस स्थान पर लिखा हुआ अंक।

विशेष—अंकों के स्थान की गिनती दाहिनी ओर से चलती है, जैसे—हजार, सैकड़ा, दहाई, एकाई। एक स्थान पर केवल ९ तक की संख्या लिखी जा सकती है। संख्या के अभाव मे शून्य रखा जाता है, जैसे '१०'। इसका अभिप्राय यह है कि इस संख्या में केवल एक दहाई (अर्थात् दस) है और एकाई के स्थान पर कुछ नही है। इसी प्रकार १०५ लिखने से यह अभिप्राय है कि इस संख्या मे एक सैकडा, शून्य दहाई और पाँच एकाई है।

एकाएक—क्रि० वि० [हिं० एक, मि० फा० यकायक] अकस्मात्। अचानक। सहसा। उ०—एकाएक मिलै गुरु पूरा मूल मंत्र तब पावै।—धरम०, पृ० ७६।

एकाएकी¹ ⓟ†—क्रि० वि० [हिं० एकाएक] अकस्मात्। सहसा। अचानक। एकाएक। उ०—'सहृदयों को इस पत्र का एकाएकी अंत हो जाना अत्यंत कष्टदायक होगा।'—प्रताप० ग्रं०, पृ० ७२३।

एकाएकी²—वि० अकेला। तनहा। उ०—एकाएकी रमै अवनि पर दिल का दुविधा खोइवे। कहै कबीर अलमस्त फकीरा आप निरंतर सोइवे।—कबीर (शब्द०)।

एकाकार¹—संज्ञा पुं० [सं० एक + आकार] मिल मिलाकर एक होने की क्रिया। एकमय होना। भेद का अभाव। जैसे 'वहाँ सर्वत्र एकाकार है, जाति पाँति कुछ नहीं है।

एकाकार²—वि० एक आकार का। समान रूप का। मिल जुल-कर एक।

एकाकी—वि० [सं० एकाकिन्] [स्त्री० एकाकिनी] अकेला। तनहा। उ०—देवविग्रह एकाकी धर्मोन्मत्त काला पहाड के अश्वारोहियों से घिर गया।—इद्र०, पृ० ११७।

एकाक्ष¹—वि० [सं०] [स्त्री० एकाक्षी] जिसे एक ही आँख हो। काना। २ एक ही अक्ष या धुरीवाला (को०)।

यौ०—एकाक्ष रुद्राक्ष = वह रुद्राक्ष जिसमे एक ही आँख या बिंदी हो। एकमुख रुद्राक्ष। एकाक्षपिंगल।

एकाक्ष²—संज्ञा पुं० १. कौआ। २ शुक्राचार्य। ३ शिव (को०)।

एकाक्षपिंगल—संज्ञा पुं० [सं० एकाक्षपिङ्गल] कुबेर।

एकाक्षर¹—वि० [सं०] एक अक्षरवाला (को०)।

एकाक्षर²—संज्ञा पुं० १ एक अक्षरवाला मंत्र 'ॐ'। २ एक उपनिषद् (को०)।

एकाक्षरी—वि० [सं० एकाक्षरिन्] एक अक्षर का। जिसमे एक ही अक्षर हो। एक अक्षरवाला। जैसे—'एकाक्षरी मंत्र'।

यौ०—एकाक्षरी कोश = वह कोश जिसमे अक्षरों के अलग अलग अर्थ दिए हों जैसे 'ए' से वासुदेव, 'इ' से कामदेव इत्यादि।

एकागरⓟ†—वि० [सं० एकाग्र] एक ओर स्थिर। चंचलता रहित। एकाग्र। उ०—चाँद सुरज एकागर करिकै उलटि उरध अनुसेरे।—भीखा श०, पृ० ८।

एकाग्र¹—वि० [सं०] १ एक ओर स्थिर। चंचलता से रहित। २. अनन्यचित्त। जिसका ध्यान एक ओर लगा हो।

यौ०—एकाग्रचित्त। एकाग्रदृष्टि। एकाग्रभूमि। एकाग्रमन।

एकाग्र²—संज्ञा पुं० योग मे चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं मे से एक जिसमे चित्त निरंतर किसी एक ही विषय की ओर लगा रहता है। ऐसी अवस्था योगसाधना के लिये अनुकूल और उपयुक्त कही गई है। दे० 'चित्तभूमि'।

एकाग्रचित्त—वि० [सं०] स्थिरचित्त। जिसका ध्यान बँधा हो। जिसका मन इधर उधर न जाता हो, एक ही ओर लगा हो। उ०—'मैंने भी आज इस मामले को बडे एकाग्रचित्त से विचारा था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६९।

एकाग्रचित्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थिरचित्त होने की स्थिति या भाव। उ०—पर यह उन्हीं का साध्य है जिन्हें एकाग्रचित्तता का अभ्यास हो।'—प्रताप० ग्रं०, पृ० ५२३।

एकाग्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चित्त का स्थिर होना। अचंचलता। उ०—'उसे कल्पना की एकाग्रता ने पाना के पैरों की चाँप तक सुनवा दी'।—तितली, पृ० ६८। २ योगदर्शन के अनुसार चित्त की एक भूमि जिसमे किसी प्रकार की चंचलता या अस्थिरता नहीं रह जाती और योगी का मन बिलकुल शांत रहता है।

एकाग्रदृष्टि—वि० [सं०] एक बिंदु पर दृष्टि केंद्रित रखनेवाला (को०)।

एकाग्रभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की अवस्था जिसमे किसी वस्तु पर चित्त एकाग्र हो जाता है (को०)।

जमाना। एकाधिकार। जैसे—'रूई के व्यापार को उन्होंने एकहत्था कर लिया'।

क्रि० प्र०—करना।

एकहत्थो—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+हाथ] मालखभ की एक कसरत।

विशेष—इसमे एक हाथ उलटा कमर पर ले जाते हैं और दूसरे हाथ से पकड के ढग से मालखभ मे लपेटकर उड़ते हैं। कभी कभी कमर पर के हाथ मे तलवार और छुरा भी लिए रहते हैं।

यौ०—**एकहत्थो छूट**=मालखभ की एक कसरत जिसमे किसी तरह की पकड करके मालखभ पर एक ही हाथ की थाप देते हुए कूदते हैं। **एकहत्थो निचली कमान**=मालखभ की कसरत के समान उतरने की वह विधि जिसमे खिलाडी एक ही हाथ से मालखभ पकडता है। खिलाडी का मुँह नीचे की ओर झुकता है और छाती उठी रहती है। **एकहत्थी पीठ की उडान**=मालखभ की एक कसरत जिसमे खिलाडी मालखभ को एक बगल मे दबाकर दूसरा हाथ पीछे की ओर से ले जाकर दोनो हाथ बाँधकर पीठ के बल उलटा उडता है और उलटी सवारी बाँधता है।

एकहत्थो हुलूक—संज्ञा पु० [देशी०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे विपक्षी जब बगल मे आता है तब खिलाड़ी अपने उस बगल के हाथ को उसकी गरदन मे लपेटता है और दूसरे हाथ से उस हाथ को तानते हुए गरदन दबाकर बगली टाँग से चित करता है।

एकहरा—वि० [स० एक+स्तर, हिं० हरा (प्रत्य०) या स० एक+घर, प्रा० हर] [स्त्री० एकहरी] एक परत का। जैसे—एकहरा अगा।

यौ०—**एकहरा बदन**=वह शरीर जो मोटा न हो। दुबला पतला शरीर। न मोटानेवाली देह।

एकहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकहरा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे जब विपक्षी सामने खडा होकर हाथ मिलाता है तब खिलाडी उसका हाथ पकडकर अपनी दाहिनी तरफ झटका देकर दोनो हाथों से उसकी दाहिनी रान निकाल लेता है।

एकहल्य—वि० [स०] एक बार जोता हुआ [को०]।

एकहस्तपादवध—संज्ञा पुं० [स०] एक हाथ और एक पैर काट लने का दड।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार चद्रगुप्त के समय मे जो लोग ऊँचे वर्ण के लोगो तथा गुरुओ के हाथ पैर मरोड देते थे या सरकारी घोडे गाडियों पर बिना आज्ञा के चढते थे, उनको यह दड दिया जाता था। जो लोग इस दड से बचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पडता था।

एकहस्तवध—संज्ञा पुं० [स०] एक हाथ काटने का दड।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार जो लोग नकली कौडी, पासा आदि बनाकर खेलते थे या हाथ की सफाई से बाजी जीतते थे, उनको यह दड दिया जाता था। जो लोग इस दड से बचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पडता था।

एकहाञ्ज—संज्ञा पुं०[स०] नृत्य का एक भेद। एक प्रकार का नाच।

एकहायन—वि० [सं०] एक वर्ष की अवस्थावाला [को०]।

एकाक—वि० [स० एकाङ्क] दे० 'एकाकी' [को०]।

एकाकी—वि०[स० एकाङ्किन्]एक अकवाला (नाटक) आधुनिक नाटक की एक विशेष विधा।

एकाग¹—वि० [स० एकाङ्ग] एक अग का। जिसे एक अग हो।

एकाग²—संज्ञा पुं० १ बुध ग्रह। २ चदन। ३ विष्णु (को०)। ४ सिर (को०)। ५ अगरक्षक। शरीररक्षक (को०)।

एकागघात—संज्ञा पु० [स० एकाङ्गघात] एक प्रकार का रोग जिसमे शरीर का एक अग सुन्न हो जाता है [को०]।

एकागदर्शिता—संज्ञा स्त्री० (स० एकाङ्गदर्शिता] किसी एक ही पक्ष पर ध्यान देने की वृत्ति। एकतरफा देखना। दृष्टि सकीर्णता। उ०—'इसी प्रकार की एकागदर्शिता के कारण कवि के कर्मक्षेत्र से सहृदयता धक्के देकर निकाल दी गई।—रस०, पृ० १०३।

एकागवध—संज्ञा पुं० [स० एकाङ्गवध] कौटिल्य के अनुसार एक अग काटने का दड।

एकागवात—संज्ञा पुं० [स० एकाङ्गवात) पक्षाघात। लकवा [को०]।

एकागिका—संज्ञा स्त्री० (स० एकाङ्गिका) चदन के योग से तैयार किया हुआ एक मिश्रण [को०]।

एकागी—वि० [स० एकाङ्गिन] १ एक ओर का। एक पक्ष का। एकतरफा। जैसे—एकागी प्रीति। उ०—'तुम्हारी भक्ति अभी एकागी है'।—इतिहास, पृ० ६७। २ एक ही पक्ष पर अडनेवाला। हठी। जिद्दी। ३ एक ओपधि जो कडवी, शीतल और स्वादिष्ट होती है। यह पित्त, वात, ज्वर, रुधिर-दोप आदि को नष्ट करती है। ४ एक अगवाला। ५ असमाप्त। अपूर्ण (को०)।

एकाड—संज्ञा पुं० (स० एकाण्ड) एक प्रकार का घोडा [को०]।

एकात¹—वि० (स० एकान्त) १ अत्यत। बिल्कुल। नितात। अति। २ अलग। पृथक्। अकेला। ३ अपवादरहित। निरपवाद (को०)। ४ एकनिष्ठ।

एकात²—संज्ञा पुं० १ निर्जन स्थान। निराला। सूना स्थान। २. अकेलापन। तनहाई (को०)।

एकातकैवल्य—संज्ञा पुं० [स० एकान्तकैवल्य] मुक्ति का एक भेद। जीवन्मुक्ति।

एकातता—संज्ञा स्त्री० [स० एकान्तता] अकेलापन। तनहाई।

एकातर¹—वि०[स० एकान्तर] एक का अतर देकर पडने या होनेवाला। एक के बाद होनेवाला [को०]।

एकातर²—संज्ञा पु० एक दिन का अतर देकर आनेवाला ज्वर। अँतरा या अँतरिया ज्वर [को०]।

एकातवास—संज्ञा पुं० [स० एकान्तवास] निर्जन स्थान मे रहना। अकेले मे रहना। सबसे न्यारा रहना। उ०—'आठ बरस के दीर्घ एकातवास के बाद सौंदर्य के चुनाव मे भाग लेने के लिये सालवती बाहर आ रही है'।—इद्र०, पृ० १४६।

एकातवासी—वि० (स० एकान्तवासिन्) (स्त्री० एकान्तवासिनी)

आचार्यों, ग्रंथों या शास्त्रों के वाक्यों या उनके आशयों का परस्पर मिल जाना।

एकवासा—संज्ञा पुं० [सं० एकवासस्] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो नग्न के अंतर्गत हैं।

एकविंश—वि० [सं०] इक्कीसवाँ [को०]।

एकविंशति¹—वि० [सं०] एक और बीस। इक्कीस [को०]।

एकविंशति²—संज्ञा स्त्री० २१ की संख्या [को०]।

एकविसति(पु)—वि० [सं० एकविंशति] इक्कीस। उ०—तब एकविंसति वेर मैं बिन छत्र की पृथ्वी रची।—रामचं०, पृ० ४१।

एकविध—वि० [सं०] एक ही प्रकार का। एक ही विधि का। साधारण [को०]।

एकविलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बृहत्संहिता के अनुसार पश्चिमोत्तर दिशा में एक देश जो उत्तराषाढ़ श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों के अधिकार में है। २. कुवेर (को०)। ३ कौआ (को०)।

एकवृंद—संज्ञा पुं०[सं० एकवृन्द] गले का एक रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार से गले में गिल्टी या सूजन हो जाती है। इस गिल्टी या सूजन में दाह और खुजली भी होती है तथा यह पकने पर भी कड़ी रहती है।

एकवेणी—वि०[सं०]१ जो (स्त्री) शृंगार की रीति से कई चोटियाँ बनाकर सिर न गुँथाए बल्कि एक ही चोटी बनाकर बालों को किसी प्रकार समेट ले। २ वियोगिनी। जिसका पति परदेश गया हो। ३ विधवा।

एकशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसके खुर फटे न हों, जैसे—घोड़ा, गदहा।

एकशासन—संज्ञा सं० [सं०] वह शासन व्यवस्था जिसमें सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में हो। एकतंत्र [को०]।

एकशेष—वि० [सं०] १ एकमात्र बचा हुआ। उ०—कर भस्मीभूत समस्त विश्व को एकशेष, उड़ रही धूल, नीचे अदृश्य हो रहा देश।—अनामिका, पृ० ८४। २ द्वंद्व समास का एक भेद जिसमें दो या अधिक पदों में से एक ही शेष रह जाता है। जैसे—पितरौ = माता और पिता [को०]।

एकश्रुत—वि० [सं०] एक बार का सुना हुआ [को०]।

यौ०—एकश्रुतधर = एक बार का सुना हुआ याद रखनेवाला।

एकश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदपाठ करने का वह क्रम जिसमें उदात्तादि स्वरों का विचार न किया जाय।

एकषष्ठि—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एकसठ' [को०]।

एकसठ¹—वि०[सं० एकषष्ठ, एकषष्टि, पा० एकसट्ठि, प्रा० एकसट्ठ] साठ और एक।

एकसठ²—संज्ञा पुं० वह अंक जिससे एकसठ की संख्या का बोध हो—६१।

एकसत्ताक—वि०[सं०]एक ही की सत्ता या अधिकारवाला। एक के तंत्र का, जैसे, एकसत्ताक शासन या राज्य।

एकसत्तावाद—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें सत्ता ही प्रधान वस्तु ठहराई गई है।

विशेष—योरोप में इस मत का प्रधान प्रवर्तक पर्मेंडीज था। यह समस्त संसार को सत्स्वरूप मानता था। इसका कथन था कि सत् ही नित्य वस्तु है। यह एक अविभक्त और परिमाणशून्य वस्तु है। इसका विभाजक असत् हो सकता है, पर, असत् कोई वस्तु नहीं। ज्ञान सत् का होता है असत् का नहीं। अत ज्ञान सत्स्वरूप है। सत् निर्विकल्प और अविकारी है अत इंद्रियजन्य ज्ञान केवल भ्रम है, क्योंकि इंद्रिय से वस्तुएँ अनेक और विकारी देख पड़ती हैं। वास्तविक पदार्थ एक सत् ही है पर मनुष्य अपने मन से असत् की कल्पना कर लेता है। यही सत् और असत् अर्थात् प्रकाश और तम सब संसार का कारण रूप है। यह मत शंकराचार्य के मत से बिलकुल मिलता हुआ है। भेद केवल यही है कि शंकर ने सत् और असत् को ब्रह्म और माया कहा है।

एकसर¹(पु)†—वि० [सं० एकशस् या हिं० एक + सर (प्रत्य०)] १ अकेला। उ०—एकसर आइ मढ़ी महँ सोवा। ढूँढ़त फिरहि रतन जनु खोवा।—चित्रा०, पृ० ३२। २ एक पल्ले का।

एकसर²—वि० [फ़ा० यकसर] एक सिरे से दूसरे सिरे तक। बिलकुल। तमाम।

एकसाँ—वि० [फ़ा० यकसाँ] १ बराबर। समान। तुल्य। २. समतल। हमवार।

एकसाक्षिक—वि० [सं०] जिसका एक ही साक्षी (गवाह) हो [को०]।

एकसार्थ—अव्य० [सं०] एक साथ [को०]।

एकसाला—वि० [फ़ा० यकसाला] जो एक साल तक वैध हो। जिसकी अवधि एक साल तक हो [को०]।

एकसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवल एक ही उपाय से होनेवाली सिद्धि।

एकसूत्र¹—वि० [सं०] [संज्ञा एकसूत्रता] एक रूप। आपस में संबद्ध [को०]।

एकसूत्र²—संज्ञा पुं० डमरू [को०]।

एकसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] इकलौता लड़का [को०]।

एकस्थ—वि० [सं०] १ एक व्यक्ति या स्थान पर केंद्रित। २. मिला हुआ। एकत्र [को०]।

एकहजारी—संज्ञा पुं० [फ़ा० यकहजारी] १ एक हजार सेना का स्वामी। २ मुगल बादशाहों द्वारा दिया जानेवाला एक पद। उ०—इनको एकहजारी का पद और आठ सौ घोड़े प्रदान किए थे।—अकबरी०, पृ० ४६।

एकहत्तर¹—वि० [एकसप्तति, पा० एकसत्तरि, एकहत्तरि] सत्तर और एक।

एकहत्तर²—संज्ञा पुं० सत्तर और एक की संख्या का बोध करानेवाला अंक जो इस तरह लिखा जाता है—७१।

एकहत्था—संज्ञा पुं०[हिं० एक + हाथ] किसी विषय विशेषकर व्यापार या रोजगार को अपने हाथ में करना, दूसरे को न करने देना। किसी व्यापार या बाजार पर अपना एकमात्र अधिकार

एकरदन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश। उ० कदन अनेकन विघन को एकरदन गनराउ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३।

एकरस—वि० [सं०] एकढंग का। न बदलनेवाला। समान। उ०—(क) सिसु, किसोर, विरधौ तनु होइ। सदा एकरस आतम सोइ।—सूर० ७।२। (२) सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।—मानस, ३।३३। २. एकमेक। एक दिल।

एकरसता—संज्ञा स्त्री० [सं० एकरस+ता (प्रत्य०)] समानता।

एकरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही रात में पूरा होनेवाला यज्ञ [को०]।

एकरार—संज्ञा पुं० [अ०] १ स्वीकार। हामी। स्वीकृति। मंजूरी। २ प्रतिज्ञा। वादा।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।—होना।

यौ०—एकरारनामा=वह पत्र जिसमें दो या दो से अधिक पुरुष परस्पर कोई प्रतिज्ञा करें। प्रतिज्ञापत्र।

एकरुखा—वि० [हिं० एक+फा० रुख] [वि० स्त्री० एकरुखी] १ एक तरफ रुखवाला। एक तरफ मुँहवाला। २ जिसमें कोई कार्य (कपड़े आदि में बेल बूटे) एक ही तरफ किया गया हो। एकतरफा।

एकरूप—वि० [सं०] १ एक ही रूप का। समान आकृति का। एक ही रंग ढंग का। उ०—एकरूप तुम भ्राता दोऊ।—मानस, ४।८। २ ज्यों का त्यों। वैसा ही। जैसे का तैसा। कोरा। उ०—एक रूप ऊधो फिरि आए हरि चरनन सिर नायो।—सूर (शब्द०)।

एकरूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समानता। एकता। २ सायुज्य मुक्ति।

एकरूपी—वि० [सं० एकरूपिन] १ [स्त्री० एकरूपिणी] समान रूप का। एक तरह का। एक सा।

एकरेज—संज्ञा पुं० [अं०] एकड़ के आधार पर लगनेवाली मालगुजारी या भूमिकर। उ०—(क) एकरेजा तो लगा है, वह भी नहीं देना चाहता। (ख) एकरेज तो तुमको देना ही चाहिए।—तितली, पृ० ३८।

एकलगा— संज्ञा पुं० [हिं० एक+लगा=लँगड़ा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी सामने खड़ा होता है। तब खिलाड़ी अपने दाहिने हाथ से विपक्षी की बाईं बाँह ऊपर से लपेट अपने बाएँ हाथ से विपक्षी का दाहिना पहुँचा पकड़ अपनी दाहिनी टाँग को, विपक्षी की बाईं टाँग पर रखता है और उसको एकबारगी उठाता हुआ विपक्षी को बाँह से दबाकर झुकाकर चित्त कर देता है।

एकलगाडंड—संज्ञा पुं० [हिं० एक+अलग (=ओर, तरफ,+डंड] एक प्रकार की कसरत या डंड जिसे करते समय एक ही हाथ पर बहुत जोर देकर उसी ओर सारा शरीर झुकाकर दंड करते हैं और दूसरी ओर का पाँव उठ कर हाथ के पास ले जाते हैं।

एकल(पु)—वि० [सं०] १ अकेला। २ अद्वितीय। एकला। उ०—वेद पुरान कुरान कितेबा नाना भाँति बखानी। हिंदू तुरक जैन अरु जोगी एकल काहु न जानी।—कबीर (शब्द०)।

एकलडी†(पु) —वि० [सं० एकल+हिं० डी (प्रत्य०)] अकेला। एकाकी। एकला। उ०—महि मोराँ मंडन करइ, मनमथ अंगि न माइ। हूँ एकलडी किम रईऊँ, मेह पधारउ माइ।—ढोला० दू०, २६३।

एकलत्तीछपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकलत्ती+छपाई] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी के हाथ और पाँव जमीन पर टिके रहते हैं और उसकी पीठ पर खिलाड़ी रहता है तब वह विपक्षी की पीठ पर अपना सिर रखकर बाएँ हाथ को उसकी पीठ पर ले जाकर पेट के पास लँगोट पकड़ता है और दाहिने पाँव से उसके दाहिने हाथ की कुहनी पर थाप मारता है और उसे लुढ़काकर चित्त करता है।

एकलवेगा†—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत। इसे घणकंठ भी कहते हैं।

एकलव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक निषाद का नाम जिसने द्रोणाचार्य की मूर्ति को गुरु मानकर उसके सामने शस्त्राभ्यास किया था।

एकला(पु)† —वि० [सं० एकल, प्रा० एक्कल] [स्त्री० एकली] अकेला। उ०—कई आलम किए हैं कत्ल उनने। करे क्या एकला हातिम बेचारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

एकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० एकलिङ्ग] १ शिव का एक नाम। एक शिवलिंग जो मेवाड़ के महाराणाओं और गहलौत राजपूतों का प्रधान कुलदेव है। २ कुबेर। ३ वह शिवलिंग जो पाँच कोश के भीतर अकेला हो (को०)।

एकलेखा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का फूल या उसका पौधा।

एकलौ†—संज्ञा पुं० [सं० एकला] ताश या गंजीफे का एक्का।

एकलौता—वि० [सं० एकज (=अकेला)+पुत्र, प्रा० उत्त] [स्त्री० एकलौती] अपने माँ बाप का एक ही (लड़का)। जिसके और भाई न हो।

एकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह वचन जिससे एक का बोध होता हो।

यौ०—एकवचनांत=एकवचन की विभक्तिवाला।

एकवर्ण—वि० [सं०] १. एक रंगवाला। २ एक रूपवाला। एक समान। ३ एक वर्ण या जातिवाला। ३. जो वर्ण, जाति आदि भेदों से अलग हो [को०]।

एकवर्ण—संज्ञा पुं० १ समान रूप, रंग या आकृति। २. ब्राह्मण। ३ ऊँची जाति [को०]।

एकवर्षी—वि० [सं० एकवर्षिन्] एक ही वर्ष तक रहनेवाला। वर्ष में एक ही बार फूलने फलनेवाला [को०]।

एकवसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'एकवस्त्रा'।

एकवस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जो एक ही वस्त्र पहने। रजस्वला [को०]।

एकवाँज—संज्ञा स्त्री० [सं० एक+वन्ध्या, प्रा० वंझा] वह स्त्री जिसे एक बच्चे के पीछे और दूसरा बच्चा न हुआ हो। काकवंध्या।

एकवाक्य—वि० [सं०] एक राय। एक विचार। एक मत।

एकवाक्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐकमत्य। परस्पर दो या अधिक लोगों के मत का मिल जाना। २ मीमांसा में दो या अधिक

एकपेटिया—वि०[हिं० एक+पेट+इया (प्रत्य०)]सिर्फ पेट पर काम करनेवाला । उ०—'सो श्री गुसाईं जी वाको गरीब जानि एक-पेटिया करि दीये' ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ११२ ।

एकप्राण—वि० [सं०]एक दिल । जो मिलकर एक जैसे हो गए हों। एकाकार । उ०—बन गए स्थूल, जगजीवन से हो एक प्राण ।—युग०, पृ० १५ ।

एकफर्दा—वि० [फा०] जिस (खेत या जमीन) में वर्ष में केवल एक ही फसल उपजे । एकफसला ।

एकफसला—वि० [फा० यकफसली] दे० 'एकफर्दा' ।

एकबद्धी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+बद्धी] नाव ठहराने का लोहे का लंगर जिसमें केवल दो आँकुड़े हों ।

एकबद्धी²—वि० [हिं०] एक बाध या रस्सी का ।

एकबारगी—क्रि० वि० [फा० यकबारगी] १ एक ही दफे में। एक ही साथ । एक ही समय में । जैसे—'सब पुस्तकें एक-बारगी मत ले जाओ एक एक करके ले जाओ । २ अचानक। अकस्मात् । जैसे—'तुम एकबारगी आ गए इससे मैं कोई प्रबंध न कर सका ।' ३ बिल्कुल । सारा । जैसे—'आपने तो एकबारगी दवात ही खाली कर दी ।

एकबारी—वि० [फा० यकबार] दे० 'एकबारगी' । उ०—एकबारी धक से होकर दिल की फिर निकली न साँस ।—शेर०, भा० १, पृ० १२१ ।

एकबाल—संज्ञा पुं० [अ० इकबाल] १ प्रताप । सौभाग्य । ३ स्वीकार । हामी ।

यौ०—एकबाल दावा=(१) मुद्दई या महाजन के दावे की स्वीकृति में मुद्दामलेह की ओर से लिखा हुआ स्वीकारपत्र जो अदालत में हाकिम के सामने उपस्थित किया जाता है । एकरार दावा । (२) राजीनामा ।

एकभाव—वि० [सं०] १ एकनिष्ठ । २ परस्पर समान भाव वाला [को०] ।

एकभुक्त¹—वि०[सं०] जो रात दिन में केवल एक बार भोजन करे।

एकभुक्त²—संज्ञा पुं० एकबार भोजन करने का व्रत [को०] ।

एकभूम—वि० [सं०] एक मंजिल या एक खंडवाला [को०] ।

एकमंजिला—वि० [हिं० एक+फा० मंजिल] जिसमें एक ही मंजिल हो । एकतल्ला ।

एकमत(पु)—वि० [हिं० एक+मत=सलाह] दे० 'एकमन' । उ०—अजहूँ आइ सँभारहु कंता । बिरहा जाड भए एकमंता ।—चित्रा०, पृ० १७२ ।

एकमत—वि० [सं०] एक या समान मत रखनेवाले । एक राय के । जैसे,—'सब ने एकमत होकर उस बात का विरोध किया' । उ०—एकमत होइ कै कीन्ह बिचारा । बिलंब न करिय धरम बेवहारा ।—चित्रा०, पृ० १६६ ।

एकमति—वि० [सं०] एकमत । एक राय का । उ०—अंग अंग सुभग अति चलति गजराज गति कृष्ण सौं एकमति जमुन जाहीं ।—सूर०, १०।७५१ ।

एकमत्त(पु)—वि०[सं० एकमात्र, प्रा० एकमत्त] एकमात्रिक । उ०—एकमत्त लहु मनि गुरु को दुमत्त गनि याहीं से उदाहरन हेरि लै हृदय जाँचि ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६७ ।

एकमना—वि० [सं० एकमनस] १. एक तरह के विचारवाले। एकचित्त । किसी एक ओर ही मन को लगानेवाला [को०] ।

एकमात्र—अव्य० [सं०] एक ही । केवल एक । अकेला । उ०—(क) 'वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है' ।—आँधी, पृ० ११४ । (ख) जय जयति लच्छमी जगत की एकमात्र सुख सार जो ।- कविता कौ०, भा० २, पृ० १६६ ।

एकमात्रिक—अव्य० [सं०] एक मात्रा का । जिसमें केवल एक ही मात्रा हो । जैसे—एकमात्रिक छंद ।

एकमुँहा—वि० [सं० एकमुख] एक मुँह का ।

यौ०—एकमुँहा दहरिया=फूल या काँसे का एक गहना जिसे लोधियों और काछियों की स्त्रियाँ पहनती हैं । इसके ऊपर रवा और नीचे सूत होता है ।

एकमुख—वि०[सं०] १ उद्देश्य की ओर प्रवृत्त । २ एक दरवाजे वाला । ३ एक की प्रधानता से युक्त [को०] ।

एकमुखविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सबके हाथ एक दाम पर बेचना । बँधी कीमत पर बेचना ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में पण्य बाहुल्य अर्थात् माल की पूरी आमदनी होने पर व्यापारियों को माल बँधी कीमत पर बचना पड़ता था । वे भाव घटा बढ़ा नहीं सकते थे ।

एकमुखी—वि० [सं०] एक मुँहवाला ।

यौ०—एकमुखी रुद्राक्ष=वह रुद्राक्ष जिसमें फाँकवाली लकीर एक ही हो ।

एकमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शालपर्णी । २ अलसी । तीसी ।

एकमेक—वि० [हिं०] दो या इनसे अधिक के मिलकर एक होने का भाव । एकाकार या तद्रूप होना । उ०—धरती अंबर जायँगे, बिनसैंगे कैलास । एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास ।—कबीर सा०, भा० १, पृ० २१ ।

एकमेव—वि० [सं०] एकमात्र । एक ही । उ०—'अपना सुख त्यागना उनके दुख में साथी होना एकमेव कर्तव्य है ।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१ ।

एकमोला—वि० [हिं० एक+मोल] १ एक मूल्यवाला । निश्चित दाम का । २. कहे हुए दाम में कमी बेशी न करनेवाला ।

एकरंग—वि० [हिं० एक+रंग] १ एक रंगढंग का । समान । २ जिसका भीतर बाहर एक हो । जो बाहर से भी वही कहता या करता हो जो उसके मन में हो । कपटशून्य । साफ दिल । ३ जो चारों ओर एक सा हो । जैसे—'दो-रंगी छोड़ दे एकरंग हो जा ।'

एकरंगा¹—वि० [हिं०] एक रंगवाला । जिसमें एक ही रंग हो ।

एकरंगा²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कपड़ा जो लाल रंग का होता है ।

एकरंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १ एकरूपता । २ निष्कपटता [को०] ।

ओर २ कोस उत्तर तंग २ कोस दक्षिण जाऊँगा। यदि वह किसी दिशा मे निर्धारित नियम के विरुद्ध अधिक चला जाय और अपने मन मे यह समझ ले कि मैं अमुक दिशा मे नही गया उसके बदले इसी ओर अधिक च ा गया तो वह एकदिशा परिमाणातिक्रमण का नाम अतिचार हुआ।

एकदृक्—वि० [स०] १ काना। २ समदर्शी। ३ ब्रह्मज्ञानी। तत्वज्ञ।

एकदृक्[2]—सज्ञा पु० १ शिव। २ कौवा।

एकदृष्टि—वि० सज्ञा पुं० [स०] दे० 'एकदृक्' [को०]।

एकदेशी—वि० [एकदेशिन] दे० 'एकदेशीय'।

एकदेशीय—वि० [स०] एक देश का। एक ही स्थान से संबध रखनेवाला। जो एक ही अवसर या स्थल के लिये हो। जिसको सब जगह काम मे न ला सकें। जो सर्वत्र न घटे। जो सर्वदेशीय या बहुदेशीय न हो। जैसे,—एकदेशीय नियम, एकदेशीय प्रवृत्ति एकदेशीय आचार। उ०—'एक नया फैशन टाल्स्टाय के समय से चला है वह एकदेशीय है।'—रस०, पृ० ६४।

यौ०—**एकदेशीय समास** = षष्ठी तत्पुरुष समास का एक भेद।

एकदेह—सज्ञा पु० [स०] १ बुध ग्रह। २ गोत्र। वश। ३ दपती।

एकधर्मा—वि० [स० एकधर्मन्] समान गुण, धर्म या स्वभाववाला [को०]।

एकधर्मी[1]—वि० [सं० एकधर्मिन्] दे० 'एकधर्मा'।

एकनयन[1]—वि० [स०] काना। एकाक्ष। उ०—मुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी।—मानस, ३।२।

एकनयन[2]—सज्ञा पुं० १ कौवा। २ कुबेर। ३ शिव (को०)। ४ शुक्र ग्रह (को०)।

एकनायक—सज्ञा पु० [स०] शिव [को०]।

एकनिष्ठ—वि० [स०] जिसकी निष्ठा एक मे हो। जो एक ही से सरोकार रखे। एक पर श्रद्धा रखनेवाला।

एकनेत्र, एकनेत्रक—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

एकन्नी—सज्ञा स्त्री० [हिं० एक+आना] ब्रिटिश भारत का निकल धातु का एक छोटा सिक्का जो एक आने या चार पैसे मूल्य का होता है। आजकल यह ६ नए पैसे के मूल्य का है।

एकपक्षी, एकपक्षीय—वि० [स०] एक ओर का। एकतरफा।

एकपटा—वि० [हिं० एक+पाट=चौडाई] [स्त्री० एकपटी] एक पाट का। जिसकी चौडाई मे जोड़ न हो। जैसे, एकपटी चादर। उ०—भेद न विचारयो गुजमालै औ गुलीक मालै नीली एकपटी अरु मीली एकलाई मे।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४६।

एकपट्टा—सज्ञा पुं० [हिं० एक+पट्टा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी सामने होता है तब उसका पाँव जघे मे से उठाकर बगली बाहरी ठोकर दूसरे पाँव मे लेकर उसे चित करते हैं।

एकपत्नी—वि० स्त्री० [स०] जो एक ही की पत्नी हो। पतिव्रता।

एकपत्नीव्रत—सज्ञा पुं० [स०] १ एक को छोड दूसरी स्त्री से विवाह या प्रेम सबध न करने का व्रत। २ केवल एक विवाहिता पत्नी को छोडकर और किसी स्त्री से विवाह या प्रेम सबध न करने का व्रत। उ०—'राम की तरह एकपत्नीव्रत कर सकूँगा तो कर लूँगा।—इद्र०, पृ० ५०।

एकपत्नीव्रती—वि० [स० एकपत्नीव्रत] एकपत्नीव्रत का पालन करनेवाला। उ०—चिरजीव सयोग योगी अरोगी। सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी।—रामच०, पृ० १५८।

एकपत्रिका—सज्ञा स्त्री० [स०] गधपत्रा। दौना [को०]।

एकपद[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ बृहत्सहिता के अनुसार एक देश। यह आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रो के अधिकार मे है। २ वैकुठ। ३ कैलास। ४ रतिक्रिया का एक आसन (को०)।

एकपद[2]—वि० लँगडा। एक पैरवाला [को०]।

एकपदी[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] पगडडी। रास्ता। गली।

एकपदी[2]—वि० एक पद या चरणवाला (छद०) [को०]।

एकपर्णा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गा। २. एक देवी। ३ एक पत्तेवाला पौधा [को०]।

एकपर्णिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा।

एकपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा।

एकपलिया (मकान)—सज्ञा पुं० [हिं० एक+पल्ला+इया (प्रत्य०)] वह मकान जिसमे बँडेर नही लगाई जाती बल्कि लबाई की दोनो आमने सामने की दीवारो पर लकडियाँ रखकर छाजन की जाती है। छाजन की ढाल ठीक रखने के लिये एक ओर की दीवार ऊँची कर दी जाती है।

एकपाटला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ देवी। २ दुर्गा [को०]।

एकपाठी—वि० [स० एकपाठिन्] एक ही बार पढकर या सुनकर पाठ याद कर लेनेवाला [को०]।

एकपात्—सज्ञा पु० [स०] १ विष्णु। २ सूर्य। ३ शिव।

एकपात[1]—वि० [सं०] अचानक होनेवाला [को०]।

एकपात[2]—सज्ञा पुं० मत्र का पहला शब्द या प्रतीक [को०]।

एकपाद[1]—वि० [स०] लँगडा। एक टाँगवाला [को०]।

एकपाद[2]—सज्ञा पु० १ विष्णु। २ शिव [को०]।

एकपादवध—सज्ञा पुं० [स०] एक पैर काट देने का दड।

विशेष—जो लोग साधारण द्रव्य की चोरी करते थे उनको एक पैर काट लेने का दड मिलता था। प्राय ३०० पण देकर वे इस दड से मुक्त भी हो सकते थे।

एकपिंग—सज्ञा पुं० [स० एकपिङ्ग] कुबेर।

एकपिंगल—सज्ञा पुं० [स० एकपिङ्गल] कुबेर।

एकपुत्रक—सज्ञा पुं० [स०] कौडिल्ला पक्षी।

एकपेंचा[1]—वि० [फा०] एक पेंच का। जिसमे एक ही पेंच या ऐंठन हो।

एकपेंचा[2]—सज्ञा पुं० एक प्रकार की पगड़ी जो बहुत पतली होती है। इसकी चाल दिल्ली की ओर है। इसे पेंचा भी कहते हैं।

मढा हुआ तूँबा लगा रहता है और दूसरे छोर पर एक खूँटी होती है। डंडे के एक छोर से लेकर दूसरे छोर की खूँटी तक एक तार बँधा रहता है जो मढे हुए चमडे के बीचोबीच घोडिया पर से होकर जाता है। तार को अँगूठे के पासवाली उँगली (तर्जनी) से बजाते हैं।

एकताल - वि० [स० एक+ताल] दे० 'एक' शब्द का मुहावरा 'एकतार'।

एकताला—संज्ञा पु० [स० एकताल] बारह मात्राओं का एक ताल। इसमे केवल तीन आघात होते हैं। खाली का इसमे व्यवहार नहीं होता। एकताला का तबले का बोल यह है - धिन् धिन् धा, धा[२] दिनता तादेत् धागे तेरे केटे धिन्+ता, धा।

एकतालिका—संज्ञा स्त्री० [स०] सालग अर्थात् दो रागों से मिलकर बने हुए रोगों मे से एक।

एकतालीस[१]—वि० [स० एकचत्वारिंशत, पा० एकचत्तालीसा, एकत्तालीस] गिनती में चालीस और एक।

एकतालीस[२]—संज्ञा पु० ४१ की संख्या का बोध करानेवाला अक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४१।

एकति(पु)—क्रि० वि० [स० एकत्र] दे० 'एकत'। उ०—खजन मीन कमल नरगिस मृग सीप भौंर सर साधे। मनु इनके गुन एकति करिकै अजन गुन दै बाधे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४१४।

एकतीर्थी[१]—संज्ञा पु० [स० एकतीर्थिन्] वह जिसने एक ही आश्रय में एक ही गुरु से शिक्षा पाई हो। गुरुभाई।

एकतीर्थी[२]—वि० १ एक ही तीर्थ मे नहानेवाला। २ एक ही सप्रदाय, विचार या पथ को माननेवाला [को०]।

एकतीस[१]—वि० [स० एकत्रिंश, पा० एकतीसा] गिनती मे तीस और एक।

एकतीस[२]—संज्ञा पुं० ३१ की सख्या का बोधक अक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३१।

एकतोभोगी मित्र—संज्ञा पु० [स०] कौटिल्य मत से वह वश्य मित्र जो एक साथ एक ही को लाभ पहुँचा सके, अर्थात् अमित्र को नहीं। उभयतोभोगी का उलटा।

एकत्य(पु)—वि० [स० एकस्थ] दे० 'एकत्र'।

एकत्र—क्रि० वि० [स०] एकट्ठा। एक जगह। उ०—वक्षस्थल पर एकत्र धरे, ससृति के सब विज्ञान ज्ञान।—कामायनी, पृ० १६८।

मुहा०—एकत्र करना = बटोरना। संग्रह करना। उ०—सुखसाधन एकत्र कर रहे जो उनके संबल मे हैं।—कामायनी, पृ० १८२। एकत्र होना = जमा होना। कट्ठा होना। जुड़ना। जुटना। उ०—हुई एकत्र इस मेरी अगलतिका मे।—चद्दर, पृ० ६०।

एकत्रा—संज्ञा पुं० [स० एकत्र] कुल जोड। मीजान। टोटल।

एकत्रिंशत्—वि०, संज्ञा पु० [स०] दे० एकतीस'।

एकत्रित—वि०[स० एकत्र से हिं०]जो इकट्ठा किया गया हो या जो इकट्ठा हुआ हो। जुटा हुआ। सगृहीत। उ०—और लोग भी एकत्रित थे, कैसी बातें होती थीं।—प्रेम०, पृ० १८।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

एकत्व—संज्ञा पु० [स०] ऐक्य। एकता। उ०—'हमारी आत्मा और परमात्मा का एकत्व अर्थात् आत्मिक सुख का जनक हमारा प्यारा प्रेम तो कहीं जाता ही नहीं।'—प्रताप० ग्र०, पृ० १०३।

एकत्वभावना—संज्ञा स्त्री०[स०]जैन शास्त्रानुसार आत्मा की एकता का चितन। जैसे—जीव अकेला ही कर्म करता है और अकेला ही उसका फल भोगता है अकेले ही जन्म लेता और मरता है। इसका कोई साथी नहीं, स्त्रीपुत्रादि सब यहीं रह जाते हैं। यहाँ तक कि उसका शरीर भी यहीं छूट जाता है। केवल उसका कर्म ही उसका साथी होता है, इत्यादि बातों का सोचना।

एकदंडा—संज्ञा पुं० [स० एकदण्ड] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पीठ के डडे की तोड का तोड है। इसमे शत्रु जिस ओर को कुदा मारता है, खिलाडी उसकी दूसरी ओर का हाथ झट गर्दन पर से निकाल कर कुदे मे फँसा हुआ हाथ खूब जोर से गर्दन पर चढाता है। फिर गर्दन को उखेडते हुए पुट्ठे पर से लेकर टाँग मारकर गिराता है। तोड—खिलाडी के तरफ को टाँग से भीतरी अडानी खिलाडी की दूसरी टाँग पर मारे और दूसरी तरफ के हाथ से टाँग को लपेट कर पिछली बैठक करके खिलाडी को पीछे सुलाने को तोड कहते हैं।

एकदंडी—संज्ञा पुं० [स० एकदण्डिन्] सन्यासियों का वह वर्ग जिसकी उपाधि हस है [को०]।

एकदंत[१]—वि० [स० एकदन्त] एक दाँतवाला। उ०—'आदिदेव श्री एकदत गणेश जी को प्रणाम करके श्री पुष्पदंताचार्य ने महिम्न में जिनकी स्तुति की है'।—प्रताप० ग्र०, पृ० १६३।

एकदंत[२]—संज्ञा पुं० [स० एकदन्त] गणेश।

एकदंता—वि० [स० एकदन्तक] [स्त्री० एकदन्तकी] एक दाँतवाला। जिसके एक दाँत हो।

एकदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [स०] गणेश [को०]।

एकदरा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+फा० दर=द्वार] एक दर का दालान।

एकदस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+फा० दस्ती=हाथ संबधी] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमे खिलाडी एक हाथ से विपक्षी का हाथ दस्ती से खींचता है और दूसरे हाथ से झट पीछे से उसी तरफ की टाँग का मोजा उठाता है और भीतरी अडानी से टाँग मारकर गिराता है।

एकदा—क्रि० वि० [स०] एक समय। एक बार। उ०—जोरि तुरँग रथ एकदा रवि न लेत विश्राम।—शकुतला, पृ० ८३।

एकदिशा परिमाणातिक्रमण—संज्ञा पुं०[स०] जैनशास्त्रानुसार दिशा संबधी बाँधे नियम का उल्लघन करना।

विशेष—प्रत्येक श्रावक का यह कर्तव्य है कि वह नित्य यह नियम कर लिया करे कि आज मैं अमुक अमुक दिशा में इतनी इतनी दूर से अधिक न जाऊँगा। जैसे किसी श्रावक ने यह निश्चय किया कि आज मैं १ कोस पूरब, १½ कोस पश्चिम

राजकर्मचारी जिसका काम प्रबंध करना हो। नियमों का पालन करानेवाला कर्मचारी। आमिल। अधिशासी अधिकारी।

एकजीक्यूटिव कमेटी—संज्ञा स्त्री० [अं० एग्जीक्यूटिव कमिटी] प्रबंध कारिणी समिति। प्रबंध समिति।

एकजीक्यूटिव काउंसिल—संज्ञा स्त्री० [अं० एकजीक्यूटिव काउंसिल] कार्यकारिणी सभा। वह सभा जो निश्चित नियमों के पालन का प्रबंध करती है। अधिशासी समिति।

एकजीव—वि० [सं०] १ एकरूप। अभिन्न। समान [को०]।

एकटंगा—वि० [हिं० एक+टाँग] एक टाँगवाला। लँगड़ा।

एकट[1]Ⓟ—वि० [सं० एकस्थ, एकल्, दे० एकल]। उ०—एकट चीता रड़ीले नीता और छुटीले सब आमा।—दक्खिनी०, पृ० १६।

एकट[2]—संज्ञा पुं० [अं० एक्ट] नियम। कानून। आईन।

एकटकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकटक] स्तब्ध दृष्टि। टकटकी।

एकटगाⓅ—वि० [हिं०] अनिमेष। एकटक। उ०—राम जपै रुचि साधु कौं, साधु जपै रुचि राम। दादू दोन्यूं एकटग यहु आरंभ यहु काम।—दादू०, पृ० ११८।

एकटाⓅ—वि० [सं० एकस्थ, एकत या एक, मि० बँ० एकटा, एकटि] एक। एक सा। एकत्र। उ०—गुरु धनि धन ह्वै पाइए शिष्य सुलक्षण लेहि। उभय अभागी एकटे कहा लेय कहा देहि।—रज्जब०, पृ० १४।

एकट्ठा—वि० [सं० एकस्थ] [वि० स्त्री० एकट्ठी] दे० 'इकट्ठा'।

एकठा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० एक+काठ=एककठा] एक प्रकार की नाव जो एक लकड़ी की होती है।

एकठा[2]Ⓟ—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० एकठी] दे० 'एकट्ठा'। उ०—(क) गउखे बइठा एकठा, मालवणी नइ ढोल।—ढोला० दू०, ५४३। (ख) सातौं धात मिलाइ एकठी तामैं रंग निचोया।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८७८।

एकठोⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'एकट्ठा'। उ०—और वह बटोरयौ माखन सब एकठो करि कै घी तायौ।—दो सौ बावन०, भा०, २, पृ० ४।

एकड़—संज्ञा पुं० [अं० एकर] पृथ्वी की एक माप जो १[3/5] बीघे या ३२ बिस्से के बराबर होती है।

एकडाल[1]—वि० [हिं० एक+डाल] १ एक मेल का। एक ही तरह का एक ही टुकड़े का बना हुआ।

एकडाल[2]—संज्ञा पुं० वह कटार या छुरा जिसका फल और बेंट एक ही लोहे का हो।

एकडेमी—संज्ञा स्त्री० [अं० एकाडमी] १ शिक्षालय। विद्यालय। स्कूल। २ वह सभा या समाज जो साहित्य, ललितकला, शिल्पकला या विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुआ हो। विज्ञान समाज।

एकणⓅ†—वि० [सं० एकल ?] एक। एक ही। उ०—अकबर एकण बार दागल की सारी दुनी। पृथ्वीराज (शब्द०)।

एकतंत्र—वि० [सं० एकतन्त्र] जिस व्यवस्था में शासन सूत्र एक आदमी के हाथ में हो। उ०—एकतंत्र शासन होते हुए भी राजा परोपकारी तथा प्रजाहितैषी होते थे।—पू० म० भा०, पृ० १०१।

यौ०—एकतंत्र शासन प्रणाली=वह शासन पद्धति जिसमें केवल राजा की इच्छा पर शासन चलता हो।

एकत—क्रि० वि० [सं० एकतस्] एक ओर से।

एकतⓅ—क्रि० वि० [सं० एकत्र, प्रा० एकत्त] एकत्र। एक जगह। इकट्ठा। उ०—(क) नहिं हरि लौं हियरा धरौं नहिं हर लौं अरधंग। एकत ही करि राखियैं अंग अंग प्रति अंग।—बिहारी र०, दो० ६९४। (ख) कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ। जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ-दाघ निदाघ।—बिहारी र०, दो० ४८६।

एकतन—क्रि० वि० [हिं० एक+तन=ओर, तरफ] दे० 'इकतन'। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यो ब्रज के बिच भारी।—सूर०, १०।३५१६।

एकतरफा—वि० [फ़ा०] १ एक ओर का। एक पक्ष का। २ जिसमें तरफदारी की गई हो। पक्षपातग्रस्त। ३ एकरुखा। एक पार्श्व का।

मुहा०—एकतरफा डिगरी=वह व्यवस्था जो प्रतिवादी का उत्तर बिना सुने दी जाय। वह डिगरी जो मुद्दालेह के हाजिर न होने के कारण मुद्दई को प्राप्त हो। **एकतरफा फैसला**=एकतरफा डिगरी। **एकतरफा राय या विचार**=एक ही पक्ष की बात सुनकर बनी हुई धारणा।

एकतरा—संज्ञा पुं० [सं० एकोत्तर, या एकान्तर] एक दिन अंतर देकर आनेवाला ज्वर। अँतरा।

एकतल्ला—वि० [हिं०] एक मंजिलवाला। जैसे, एकतल्ला मकान।

एकता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐक्य। मेल। २ समानता। बराबरी।

यौ०—एकताचारी=अभिन्नता का व्यवहार या आचरण। आत्मीयता। उ०—ता पाछें वा ब्रजवासिनी तें श्री गोवर्धन-नाथ जी तें एकताचारी भई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६।

एकता[2]—वि० [फ़ा० यकता] अकेला। एकका। अद्वितीय। बेजोड़। अनुपम। जैसे—'वह अपने हुनर में एकता है।' उ०—'कोई मुर्ग लड़ाने में एकता, कोई किस्सा खा।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

एकताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० एकता+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'एकता'।

एकतान—वि० [सं०] तन्मय। लीन। एकाग्रचित्त। उ०—'तुझमें इस तरह एकतान हुई उस बाला को देख मैंने अपना प्रयास सफल समझा।'—सरस्वती (शब्द०)।

एकतानता—संज्ञा स्त्री० [सं० एकतान+ता (प्रत्य०)] तल्लीनता। तन्मयता। उ०—'वास्तव में विषय और विषयी की यह एकतानता कोई दुर्लभ या निराली वस्तु नहीं है।'—आचार्य०, पृ० १४८।

एकतारा—संज्ञा पुं० [हिं० एक+तार] एक तार का सितार या बाजा।

विशेष—इसमें एक डंडा होता है जिसके एक छोर पर चमड़े से

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ [को०]।

[illegible]—वि० [सं०] एक बार जोता हुआ (खेत) [को०]।

एककोश[illegible] वि० [सं० एककोशिन्] १. एक ही कोश का बना हुआ (प्राणी) [को०]।

[illegible] संज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म। परमात्मा [को०]।

[illegible]—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+गाछ+ई (प्रत्य०)] वह नाव जो एक ही पेड के तने को खोखला करके बनाई गई हो।

एकग्राम—वि० [सं०] एक ही गाँव मे रहनेवाला। एक गाँव का [को०]।

एकचक्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य का रथ (जिसमे एक ही पहिया माना गया है)। २ सूर्य।

एकचक्र²—वि० १ एक चक्कावाला। एक पहियावाला (को०)। २ एक राजा द्वारा शासित (को०)। ३. चक्रवर्ती। उ०—चल्यो सुभट हरिकेश सुवन स्यामक को भारी। एकचक्र नृप जोग दोय भुज सरधनुधारी।—गोपाल (शब्द०)।

एकचक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी जो आरा के पास थी। यहाँ बकासुर रहता था। पांडव लोग लाक्षागृह से वचकर यही रहे थे और यही भीम ने बकासुर को मारा था।

एकचक्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाडी जिसमें एक ही पहिया हो[को०]।

एकचर¹—वि० [सं०] १ अकेले चरनेवाला। झुंड मे न रहनेवाला। एक्का। २. अकेला। एकाकी (को०)। ३ एक समय या एक साथ चलनेवाला।

एकचर²—संज्ञा पुं० १ जतु या पशु जो झुंड मे नही रहते अकेले चरते हैं, जैसे, सिंह, साँप। २ गैंडा। ३ यति (को०)।

एकचश्म¹—वि० [हिं० एक+फा० चश्म] एक आँखवाला। काना [को०]।

एकचश्म²—संज्ञा पुं० वह चित्र जिसमे चेहरे का एक ही पक्ष दीख पडता है [को०]।

एकचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतिव्रता स्त्री [को०]।

एकचारी—वि० [सं० एकचारिन्] दे० 'एकचर'।

एकचित्त¹—वि० [सं० एकचित्त] १ स्थिरचित्त। एकाग्रचित्त। जैसे—'मैं कथा कहता हूँ एकचित होकर सुनो।' २. समान विचार का। एक दिल। खूब हिलामिला। जैसे—'तुम दोनो एकचित हो।'

एकचित²—संज्ञा पुं० १ एक ही बात या विचार पर दृढ रहनेवाला चित्त। उ०—जागि सुरति सपन मिट गयऊ। दुइचित मेटि एकचित भयेऊ।—कबीर सा०, पृ० १५३८। २ एकाग्रता।

एकचेता—वि० [सं० एकचेतस्] दे० 'एकचित्र' (को०)।

एकचोवा—संज्ञा पुं० [फा०] वह खेमा या डेरा जिसमे केवल एक चोब या खभा लगे।

एकछत⑤—वि० [हिं० एकछत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—रावन अस तैंतीस कोटि सब एकछत राज करे।—घट०, पृ० २६५।

एकछत्र¹—वि० [सं० एकच्छत्र] बिना और किसी के आधिपत्य का (राज्य)। जिसमे कही और किसी का राज्य या अधिकार न हो। पूर्ण प्रभुत्वयुक्त। अनन्यशासनयुक्त। निष्कंटक। उ०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जिनि कोउ। एकछत्र रिपुहीन महि राज कलपसत होउ।—मानस, १।१६४।

एकछत्र²⑤—क्रि० वि० एकाधिपत्य के साथ। पूर्ण प्रभुत्व के साथ। उ०—बैठ सिंहासन गरमहिं गूजा। एकछत्र चारऊ खंड भूजा।—जायसी (शब्द०)।

एकछत्र³—संज्ञा पुं० [सं०] शासन या राज्यप्रणाली का वह भेद जिसमे किसी देश के शासन का सारा अधिकार अकेले एक पुरुष को प्राप्त होता है और वह जो चाहे सो कर सकता है।

एकज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ जो द्विज न हो। शूद्र। २ राजा। ३. सगा भाई [को०]।

एकज²—वि० [एक+एव, प्रा० ज्जेव जेव] एक ही। एकमात्र। उ०—थली जो चरता मिरिगला वेधा एकज सौन। हम तो पथी पथ सिर हरा चरेगा कौन।—कबीर (शब्द०)।

एकजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी। उग्रतारा [को०]।

एकजद्दी—वि० [फा०] जो एक ही पूर्वज से उत्पन्न हुए हो। सपिंड या सगोत्र।

एकजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० एकजन्मन्] १ शूद्र। २ राजा।

एकजबान—वि०[हिं० एक+फा० जबान] एक विचार। एक मत। २ एक वाक्य [को०]।

एकजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगी बहन [को०]।

एकजाई—वि०[फा० यक+जा=जगह, स्थान+हिं० ई (प्रत्य०)]एक स्थान में सीमित। एक जगह का। उ०—अरे एकजाई तूँ तो हाज़िर रहता है हर जा।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६१।

एकजात—वि० [सं०] एक माँ बाप से पैदा हुआ। सहोदर [को०]।

एकजाति¹—वि० [सं०] एक ही जाति या वंश का [को०]।

एकजाति²—संज्ञा पुं० शूद्र [को०]।

एकजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का। समान जाति का। उ०—राजनीति विषयिणी छोटी बडी एक जातीय तथा बहुजातीय सभाओ, उपदेशको और समाचारपत्रो का प्रादुर्भाव इसी उद्देश्य से हुआ है।—प्रताप० ग्र०, पृ० ३६७।

एकजीक्यूटिव—वि० [अं० एग्जीक्यूटिव] १ प्रबंध विषयक। कार्य संपादन संबंधी। अमलदरामद या काररवाई से संबंध रखनेवाला। २ प्रबंध करनेवाला। अमलदरामद करनेवाला। आमिल। कार्य मे परिणत करनेवाला।

विशेष—शासन के तीन विभाग हैं—नियम, न्याय और प्रबंध। विचारपूर्वक नियम निर्धारित करना अर्थात् कानून बनाना और आवश्यकतानुसार समय समय पर उनका संशोधन करना नियम या लेजिस्लटिव विभाग का काम है। उन नियमो के अनुसार मुकदमो का फैसला करना या मामलो मे व्यवस्था देना न्याय या जुडिशियल विभाग का काम है। उन नियमो का ठुक या अपनी निगरानी मे पालन कराना प्रबंध या एकजीक्यूटिव विभाग का काम है।

एकजीक्यूटिव आफिसर—संज्ञा पुं० [अं० एग्जक्यूटिव आफिसर] वह

एक के दस सुनाना=एक कडी वात के बदले दस कड़ी वातें सुनाना। एक जान=खूब मिला जुला। जो मिलकर एक रूप हो गया हो। (अपनी और किसी की) एक जान करना=(१) किसी की अपनी सी दशा करना। (२) मारना और मर जाना। जैसे—'अब फिर तुम ऐसा करोगे तो मैं अपनी और तुम्हारी जान एक कर दूंगा'। एक जान दो कालिव=एक प्राण दो शरीर। अत्यत घनिष्ठ। गहरी दोस्ती। जैसे—'इन दोनो साहिवों मे एक जान दो कालिव का मुआमला है।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२। एक टाँग फिरना=वरावर घूमा करना। बैठकर दम भी न लेना। एक टक=(१) विना आँख की पलक मारे हुए। अनिमेष। स्थिर दृष्टि से। नजर गडाकर। उ०—(क) भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा।—मानस, २।१६५। (ख) उदित विमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि।—मानस, २।३०२। एक टक आसा लगाना=लगातार बहुत दिन से आसरा बँधा रहना। उ०—जन्म तें एकटक लागि आसा रही विषय विष खात नहिं तृप्ति मानी। सूर०, १।११०। एक ताक=समान। वरावर। भेदरहित। तुल्य। उ०—सखन सग हरि जेंवत छाक। प्रेम सहित मैया दै पठयौ सबै बनाए है एक ताक।—सूर० (शब्द०)। एक तार=वि० (१) एक ही नाप का। एक ही रूप रग का। समान। वरावर। (२) (क्रि० वि०) समभाव से। वरावर। लगातार। उ०—का जानौं कव होयगा हरि सुमिरन एक तार। का जानौं कव छाँडिहै यह मन विषय विकार।—दादू (शब्द०)। एक तो=पहले तो। पहिली वात तो यह कि। जैसे—(क) 'एक तो वह यों ही उजड्ड है दूसरे आज उसने भाँग पी ली है'। (ख) 'एक तो वहाँ भले आदमियो का सग नहीं दूसरे खाने पीने की भी तकलीफ'। एक दम=(१) विना रुके। एक क्रम से। लगातार। जैसे—(क) 'यह सडक एकदम चुनार चली गई है'। (ख) 'एक दम घर ही चले जाना वीच मे रुकना मत।' (२) फौरन। उसी समय। जैसे—'इतना सुनते ही वह एकदम भागा।' (३) एक वारगी। एक साथ। जैसे—'एकदम इतना बोझ मत लादो कि वैल चल ही न सके। उ०—'साधारण लोग कहेंगे, कहाँ का दरिद्र एकदम से आ गया जो घर की चीजें वेच डालते हैं।'—प्रताप० ग्र०, पृ० । (४) विल्कुल। नितात। जैसे—'हमने वहाँ का आना जाना एकदम वद कर दिया'। (५) जहाज मे यह वाक्य कहकर उस समय चिल्लाते हैं जब बहुत से जहाजियों को एक साथ किसी काम मे लगाना होता है। एक दिल=(१) खूब मिला जुला। जो मिलकर एक रूप हो गया हो। जैसे,—'सब दवाओं को खरल मे घोटकर दिल कर डालो।' (२) एक ही विचार का। अभिन्नहृदय। एक दीवार रुपया=हजार रुपए। (दलाल)। एक दूसरे, का, पर, मे, से=परस्पर। जैसे—(क) 'वे एक दूसरे का वडा उपकार मानते हैं।' (ख) 'वहाँ कोई एक दूसरे से वात नहीं कर सकता'। (ग) मित्र एक दूसरे मे भेद नहीं मानते'। (घ) 'वे एक दूसरे पर हाथ रखे जाते थे। एक न चलना या एक एक नहीं चल पाना=कोई युक्ति सफल न होना। एक न मानना=विरोध मे कोई वात न सुनना। एक पास=पास पास। एक ही जगह। परस्पर निकट। उ०—(क) रचौ सार दोनों एक पासा। होय जुग जुग आवहिं कैलासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जलचर वृद जाल अतरगत सिमिटि होत एक पासा।—तुलसी (शब्द०)। एक पेट के=सहोदर। एक ही माँ से उत्पन्न (भाई)। एक व एक=अकस्मात। अचानक। एकवारगी। एक वात=(१) दृढ प्रतिज्ञा। जैसे—'मर्द की एक वात'। (२) ठीक वात। सच्ची वात। जैसे—'एक वात कहो। मोलचाल मत करो।' एकमएका होना=एक दिल होना। खूब मिलजुल जाना। उ०—एकम एका होन दे बिनसन दे कैलास। धरती अवर जान दे मा में मेरे दास।—कबीर सा०, सं०, भा १, पृ० २१। एक मामला=कई आदमियों मे परस्पर इतना हेलमेल कि किसी एक का किया हुआ दूसरों को स्वीकार हो। जैसे—'हमारा उनका तो एक मामला है'। एक मुँह से कहना, बोलना आदि=एकमत होकर कहना। एक स्वर से कहना। जैसे—सब लोग एक मुँह से यही वात कहते हैं।' एक मुँह होकर कहना बोलना इत्यादि=एक मत होकर कहना। एक मुश्त या एक मुट्ठ=एक साथ। एक वारगी। इकट्ठा (रुपये पैसे क सबध मे)। जैसे—जो कुछ देना हो एकमुश्त दीजिए, थोडा थोड़ा करके नहीं।' एकमेक होना=एकाकार होना। परस्पर मिलाकर एक समान होना। एक लख्त=एकदम। एकवारगी। एक समझना=भेद न मानना। अभिन्न समझना। उ०—'वादल और आसमान को यह लोग एक समझते हैं।' सैर०, भा० १, पृ० १२। एक सा=समान। वरावर। एक से एक, एक ते एक=एक से एक बढकर। जैसे,—'वहाँ एक से एक महाजन पडे हैं।' उ०—एक ते एक महा रनधीरा।—मानस (शब्द०)। एक से इक्कीस होना=बढ़ना। उन्नति करना। फलना फूलना। एक स्वर से कहना या बोलना=एकमत होकर कहना। जैसे—'सब लोग स्वर से इसका विरोध कर रहे हैं।' एक होना=(१) मिलना जुलना। मेल करना। जैसे—'ये लड़के अभी लडते हैं, फिर एक होंगे।' (२) तद्रूप होना।

एकइस(पु)†—वि० [स० एकविंशति] इक्कीस'। उ०—एकइस खड महल के भीतर।—धरम०, भा० १, पृ० ६६।

एकक—वि०[सं०]१ अकेला। विना किसी व्यक्ति के साथ। २ वही।

एककपाल—सज्ञा पुं० [स०] वह पुरोडाश जो यज्ञ मे एक कपाल में पकाया जाय।

एककलम—क्रि० वि० [फा० यक+अ० कलम] एक वार ही। पूर्णरूपेण। पूरी तरह से।

एककालिक—वि० [सं०] एक ही समय मे होनेवाला। एक काल का। एक समय का [को०]।

एककालीन—वि० [सं०] दे० 'एककालिक' [को०]।

एककुंडल—सज्ञा पुं० [सं० एककुण्डल] १ बलराम। २ कुबेर। ३ शेषनाग [को०]।

मूँगा से अंडी का रेशम कुछ घट कर होता है। इसे अंडी या एँडी भी कहते हैं।

२. इस कीड़े का रेशम। अंडी। मूँगा।

एँड़ी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'एड़ी'। उ॰—क्या बुरे से बुरे दुखों को सह, एँडियाँ ही घिसा करेंगे हम।—चुभते॰, पृ॰ २३।

एँडुआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ एँडना] [स्त्री॰ अल्पा॰ एँडुई] रस्सी, कपड़े आदि का बना हुआ गोल मेंडरा जिसे गद्दी की तरह सिर पर रखकर मजदूर लोग बोझ उठाते हैं। गेंडुरी। विड़ुआ। बिना पेंदे के बरतनों के नीचे भी एडुआ लगाया जाता है जिसमें वे लुढ़क न जायँ।

ए¹—संज्ञा पु॰ [सं॰] विष्णु।

ए²—अव्य॰ [हिं॰] एक अव्यय जिसे संबोधन या बुलाने के लिये प्रयोग करते हैं। उ॰—ए ! बिधिना जो हमैं हँसती अब नेक कही उतको पग धारैं।—रसखान (शब्द॰)।

ए³(पु)—सर्व॰ [सं॰ एष, > प्रा॰ एह] यह। उ॰—दुरै न निघरघट्यौ दियैं ए रावरी कुचाल। विषु सी लागति है बुरी, हँसी खिसी की लाल।—बिहारी र॰, दो॰ ४८२।

एकक(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ एक+अङ्क] निश्चय। इकक। इकआँक। उ॰—ये गेह के लोग यों कातकी न्हान कौं ठानिहैं काल्हि एकक ही गौन।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २४५।

एकंग—वि॰ [सं॰ एक+अङ्ग=एकाग] अकेला। तनहा।

एकगा—वि॰ [सं॰ एक+अङ्ग=ओर, तरफ] एक ओर का। एकतरफा।

एकगी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ एक+अंगी] मुठिया लगा हुआ दो डेढ़ गज लंबा लट्टूदार डंडा जिसे हाथ में लेकर लकड़ी खेलनेवाले लकड़ी खेलते हैं। इसी डंडे से वार भी करते हैं और रोकते भी हैं।

एकगी²—वि॰ [सं॰ एकाङ्गी] एक ओर या पक्ष का। एकतरफा। एकांगी। उ॰—चंद की चाह चकोर मरै अरु दीपक चाह जरै जो पतगी। ये सब चाहैं, इन्हैं नहिं कोऊ, सो जानिए प्रीति की रीति एकगी।—(शब्द॰)।

एकँड़िया¹—संज्ञा पु॰ [सं॰ एकाण्ड] १. वह घोड़ा या बैल जिसके एक ही अंडकोष हो। २. वह लहसुन की गाँठ जिसमें एक ही अंडी हो। एकपुतिया लहसुन।

एकँड़िया²—वि॰ एक अंडे का।

एकत(पु)—वि॰ [सं॰ एकान्त] जहाँ कोई न हो। एकांत। निराला। सूना। जैसे—एकांत स्थान में मैं तुमसे कुछ कहूँगा। उ॰—आइ गयो मतिराम तहाँ घर जानि एकत अनद से चंचल।—मतिराम (शब्द॰)।

एकतर(पु)—वि॰ [सं॰ एकान्तर] एक के अंतरवाला। एक व्यवधानवाला। उ॰—बाँगी सुरग सोधि करि आँणी आँणे नौ रँग धागा। चद सूर एकतरि कीया सीवत बहु दिन लागा।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ १६०।

२-१८

एक—वि॰ [सं॰] १. एकाइयों में सबसे छोटी और पहली संख्या। वह संख्या जिसमें जाति या समूह में से किसी अकेली वस्तु या व्यक्ति का बोध हो। २ अकेला। एकता। अद्वितीय। बेजोड़। अनुपम। जैसे—वह अपने ढंग का एक आदमी है। उ॰—प्रभु कौ देखौ एक सुभाई। अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ।—सूर॰, १।८। ३ कोई। अनिश्चित। किसी। जैसे—सबको एक दिन मरना है। उ॰—एक कहैं अमल कमल मुख सीता जू को, एक कहैं चद्र सम आनंद को कद री।—रामच॰, पृ॰ ५३। ४. एक प्रकार का। समान। तुल्य। जैसे—एक उमर के चार पाँच लड़के खेल रहे हैं। उ॰—एक रूप तुम भ्राता दोऊ।—मानस, ४८।

मुहा॰—एक अक या एक आँक=एक बात। ध्रुव बात। पक्की बात। निश्चय। उ॰—(क) मुख फेरि हँसैं सब राव रंक। तेहि धरे न पैहू एक अक।—कबीर (शब्द॰)। (ख) जाउँ राम पहिं आयेसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।—मानस, २।१७८। एक अनार सौ बीमार=किसी चीज के अनेक चाहनेवाले। एक आँख देखना=समान भाव रखना। एक ही तरह का बर्ताव करना। एक आँख न भाना=तनिक भी अच्छा न लगना। नाम मात्र पसद न आना। उ॰—'हमें यह बातें एक आँख नहीं भातीं, जब देखो धमचख मची हुई है।'—सैर॰, पृ॰ ३२। एक आध (वि॰)=थोड़ा। कम। इक्का दुक्का। जैसे—(क) सब लोग चले गए हैं एक आध आदमी रह गए हैं। (ख) अच्छा एक आध रोटी मेरे लिये भी रहने देना। एक एक=(१) हर एक। प्रत्येक। जैसे—एक एक मुहताज को दो दो रोटियाँ दो। (२) अलग अलग। पृथक् पृथक्। जैसे—एक एक आदमी आवे और अपने हिस्से को उठा उठा चलता जाय। (३) बारी बारी। क्रमशः। जैसे—एक एक लड़का मदरसे से उठे और घर की राह ले। एक एक करके=एक के पीछे दूसरा। धीरे धीरे। जैसे,—यह सुन सब लोग एक एक करके चलते हुए। एक एक के दो दो करना=(१) काम बढ़ाना। जैसे—एक एक के दो दो मत करो झटपट काम होने दो। (२) व्यर्थ समय खोना। दिन काटना। जैसे—वह दिन भर बैठा हुआ एक एक के दो दो किया करता है। उ॰—कहना, एक एक के दो दो कर रहे हैं और नहीं।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ २६०। एक ओर या एक तरफ=किनारे। दाहिने या बाएँ। जैसे—'एक तरफ खड़े हो, रास्ता छोड़ दो।' एक और एक ग्यारह करना=मिलकर शक्ति बढ़ाना। एक और एक ग्यारह होना=कई आदमियों के मिलने से शक्ति बढ़ना। एक कलम=बिल्कुल। सब। एकदम। जैसे—(क) 'साहब ने उनको एक कलम बरखास्त कर कर दिया'। (ख) 'इस खेत में एक कलम ईख ही बो दी गई'। एक के स्थान पर चार सुनना=एक कड़ी बात के बदले चार कड़ी बातें सुनना। उ॰—'वरच एक के स्थान पर चार सुनने ही पर सन्नद्ध होते हैं।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ २८५।

ऋषिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम [को०]।

ऋषिपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋषिपञ्चमी] भाद्र शुक्ल पंचमी। इस तिथि को स्त्रियाँ व्रतोपवास आदि करती हैं।

ऋषिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में वाराणसी के निकट एक वन का नाम। वर्तमान सारनाथ [को०]।

ऋषिप्रोक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मापपर्णी नामक पौधा [को०]।

ऋषिमित्र—वि० [सं०] ऋषियों में सूर्य के समान तेजस्वी। उ०—हँसि के कह्यो ऋषिमित्र। अब बैठ राजपवित्र।—राम च०, पृ० १०।

ऋषियज्ञ—संज्ञा पुं०[सं०] ऋषियों के ऋण से मुक्ति पाने के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०]।

ऋषिराई(पु)—वि० [सं० ऋषिराज] ऋषियों में श्रेष्ठ। ऋषिराज।

ऋषिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यलोक के पास का एक लोक [को०]।

ऋषिस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषियों की स्तुति या प्रार्थना। २ एक दिन में होनेवाला यज्ञविशेष [को०]।

ऋषिस्वाध्याय—संज्ञा पुं०[सं०]वेदों का अध्ययन या आवृत्ति[को०]।

ऋषिहृदय—संज्ञा पुं०[सं०] ऋषियों के समान शुद्ध हृदयवाला[को०]।

ऋषीक—संज्ञा पुं०[सं०] १ ऋषि का पुत्र। २ दे० 'ऋषिक' [को०]।

ऋषीश—वि० [सं०] ऋषियों में श्रेष्ठ। उ०—आसपास, ऋषीश शोभित सूर सोदर साथ।—राम० च०, पृ० १७६।

ऋषीश्वर—वि०[सं०]दे० 'ऋषीश'। उ०-तरनी यह पवि ऋषीश्वर की सी।—राम च०, पृ० ८८।

ऋपु¹—वि० [सं०] १ बड़ा शक्तिशाली। २ बुद्धिमान। चतुर। ३ गता। जानेवाला [को०]।

ऋपु²—संज्ञा पुं० १ सूर्य की किरण। २ जलती हुई अग्नि ३ उल्का। मशाल। ४ ऋषि [को०]।

ऋष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ खड्ग। तलवार। २ शस्त्र। हथियार। ३ दीप्ति। कांति। ४ एक वाद्य (को०)। ५ दुधारी तलवार (को०)।

ऋष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक देश जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में है।

ऋष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मृग जिसके पैर श्वेत होते हैं और जो कुछ काले रंग का होता है। ऋश्य। २ एक प्रकार का कोढ़।

ऋष्यकेतन, ऋष्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध।

ऋष्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋष्यगन्धा] दे० 'ऋक्षगंधा'।

ऋष्यगता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ऋष्यप्रोक्ता' [को०]।

ऋष्यप्रोक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सतावर। २ शूकशिंबी। केवाँच (को०)। ३ अतिबला (को०)।

ऋश्यजिह्—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़ का एक प्रकार।

ऋष्यमूक—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पर्वत [को०]।

ऋष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] चितकबरा या श्वेत पैरोंवाला मृग [को०]।

ऋष्यशृंग—संज्ञा पुं० [सं० ऋष्यशृङ्ग] एक ऋषि जो विभांडक ऋषि के पुत्र थे।

विशेष—इनकी उत्पत्ति एक मृगी से कही गई है। इनको एक छोटी सींग थी जिससे इनका यह नाम पड़ा। अंग देश के लोमपाद राजा की पालिता कन्या शांता, जो दशरथ की पुत्री थी, इनको ब्याही गई थी।

ऋष्व¹—वि० [सं०] विशाल। उच्च। शिष्ट [को०]।

ऋष्व²—संज्ञा पुं० १ इंद्र। अग्नि [को०]।

ऋहत्—वि० [सं०] छोटा। दुर्बल [को०]।

ए

ए—संस्कृत वर्णमाला का ग्यारहवाँ और देवनागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर वर्ण। शिक्षा में यह संध्यक्षर माना गया है और इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है। यह अ और इ के योग से बना है, इसीलिये यह कंठतालव्य है। संस्कृत में मात्रानुसार इसके केवल दीर्घ और प्लुत दो ही भेद होते हैं, पर हिंदी में इसका ह्रस्व या एकमात्रिक उच्चारण भी सुना जाता है। जैसे,—एहि विधि राम सबहि समुझावा।—तुलसी। भाषा वैज्ञानिक इसे स्पष्ट करने के लिये इसके ऊपर एक टेढ़ी 'ए' की मात्रा '`' लगाते हैं। पर इसके लिये कोई और संकेत नहीं माना गया है। मौके के अनुसार ह्रस्व पढ़ा जाता है। प्रत्येक के सानुनासिक और निरनुनासिक दो भेद होते हैं।

एँगुर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंगुर'। उ०—भ्रमरक कै तनु एँगुर कीन्हा। सो तुम फेरि अगिनि महँ दीन्हा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२१।

एँचपेंच—संज्ञा पुं०[फा० पेच या सं० प्रति+√अञ्च; प्रा० √अइंच+फा० पेंच] १ उलझाव। उलझन। घुमाव फिराव। अटकाव। २ टेढ़ी चाल। चाल। घात। गूढ़ युक्ति।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—होना।

एंजिन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'इंजन'। उ०—पुतलीघर में एंजिन चलाते हुए देखो साहब की अपेक्षा खेत में हल चलाते हुए किसान में अधिक स्वाभाविक आकर्षण है।—रस०, पृ०, १४३।

एँडाबेंडा—वि० [हिं० बेंड़ा+अनु० एँड़ा, या हिं० ऐंडा+बेंडा] [स्त्री० एँड़ीबेंडी] उलटा सीधा। अंडबंड।

मुहा०—एँड़ी बेंड़ी सुनाना=भला बुरा कहना। फटकारना।

एँडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डिका प्रा० एअंडिआ] १ एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

विशेष—यह कीड़ा अंडी के पत्ते खाता है। यह पूर्वी बंगाल तथा आसाम के जिलों में होता है। जो कीड़े नवंबर, फरवरी और मई में रेशम बनाते हैं उनका रेशम बहुत अच्छा समझा जाता है।

ऋद्धिकाम—वि० [स०] समृद्धि । चाहनेवाला [को०] ।
ऋद्धिमान—वि० [स० ऋद्धिमान्] सपन्न । प्रतिष्ठित ।
ऋद्धिसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] समृद्धि और सफलता ।
विशेष—ये गणेश जी की दासियाँ मानी जाती हैं ।
ऋधिसिधि(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० ऋद्धिसिद्धि] दे० 'ऋद्धिसिद्धि' । उ०—ऋधि सिधि विधि चारि सुगति जा विनु गति अगति ।—तुलसी ग्र० पृ० ३६० ।
ऋन—सज्ञा पुं० [स० ऋण] दे० 'ऋण' । उ०—पाही खेती, लगनवट, ऋन कुव्याज, मग खेत । वैर बडे सों आपने किए पांच दु ख हेत—तुलसी ग्र०, पृ० १४३ ।
ऋनियाँ(पु)—वि० [हिं० ऋन+इया (प्रत्य०)] ऋणी । कर्जदार । देनदार । उ०—साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय ऋनियाँ कहाए हौं विकानो ताके हाथ जू ।—तुलसी ग्र०, पृ० २०२ ।
ऋनी(पु)†—वि० [स० ऋणी] दे० 'ऋणी' । उ०—पूरव तप वहु कियो कष्ट करि इनको बहुत ऋनी हौं ।—सूर (शब्द०) ।
ऋभु—सज्ञा पुं० [स०] १ एक गण देवता । २ देवता । ३ देवों का अनुचर वर्ग(को०) । ४ शिल्पी । रथकार(को०) । ५ अर्ध देवता के रूप मे कथित सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, वाज और विभ्वन जिनका बोध ज्येष्ठ ऋभु के नाम से होता है ।
ऋभुक्ष—सज्ञा पु० [स० ऋभुक्षन्] १ इद्र । २ स्वर्ग । ३ वज्र ।
ऋश्य—सज्ञा पु० [स०] १ सफेद पैरोवाला मृग । २ हनन । वध । ३ दु ख देना । कष्ट पहुँचाना । पीडन ।
ऋश्यकेतन, ऋश्यकेतु—सज्ञा पु० [स०] १ कामदेव । प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध [को०] ।
ऋश्यद—सज्ञा पुं० [सं०] हरिन को पकडने के लिये खुदा हुआ गर्त [को०] ।
ऋश्यमूक—सज्ञा [स०] पर्वतविशेष [को०] ।
ऋषभ—सज्ञा पुं० [सं०] १ बैल । वृषभ ।
विशेष—पुरुष या नर आदि शब्दों के आगे उपमान रूप मे समस्त होने से सिंह, व्याघ्र आदि शब्दों के समान यह शब्द भी श्रेष्ठ का अर्थ देता है । जैसे, पुरुषर्षभ=पुरुषश्रेष्ठ ।
२ नक्र या नाक नामक जलजतु की पूँछ । ३ राम की सेना का एक बदर । ४ बैल के आकार का दक्षिण का एक पर्वत जिस पर हरिश्याम नामक चदन होता है (वाल्मीकीय) । ५ संगीत के सात स्वरों मे से दूसरा ।
विशेष—इसकी तीन श्रुतियाँ हैं—दयावती, रजनी और रतिका । इसकी जाति क्षत्रिय, वर्ण पीला, देवता ब्रह्मा, ऋतु शिशिर, वार सोम, छद गायत्री तथा पुत्र मालकोश है । यह स्वर बैल के समान कहा जाता है पर कोई कोई इसे चातक के स्वर के समान मानते हैं । नाभि से उठकर कठ और शीर्ष को जाती हुई वायु से इसकी उत्पत्ति होती है । ऋषभ (कोमल) के स्वरग्राम बनाने से विकृत स्वर इस प्रकार होते हैं—ऋषभ स्वर । गाधार—ऋषभ । तीव्र मध्यम—गाधार । पंचम—मध्यम । धैवत—पचम । निषाद—धैवत । कोमल ऋषभ—निषाद ।
६. लहसुन की तरह की एक ओषधि या जडी जो हिमालय पर होती है । इसका कद मधुर, वलकारक और कामोद्दीपक होता है । ७ नर जानवर । जैसे, अजर्षभ=बकरा (को०) । ८ वाराह की पूँछ (को०) । ९ विष्णु का एक अवतार (को०) ।
ऋषभक—सज्ञा पु० [स०] अष्टवर्ग की ओषधियों मे से एक [को०] ।
ऋषभकूट—सज्ञा पु० [स०] एक पर्वत का नाम [को०] ।
ऋषभतर—सज्ञा पु० [स०] छोटा या जवान बैल [को०] ।
ऋषभदेव—सज्ञा पु० [स०] १ भागवत के अनुसार राजा नाभि के पुत्र जो विष्णु के २४ अवतारों मे गिने जाते हैं । २ जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ।
ऋषभध्वज—सज्ञा पुं० [स०] शिव । महादेव ।
ऋषभी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह स्त्री जिसका रग रूप पुरुष की तरह हो । २ गाय (को०) । ३ विधवा (को०) । ४ कपिकच्छु । केवाँच (को०) । ५ दे० 'शिराला' 'शिरालक' (को०) ।
ऋषि—सज्ञा पु० [स०] १ वेदमत्रों का प्रकाश करनेवाला । मत्रद्रष्टा । आध्यात्मिक और भौतिक तत्वों का साक्षात्कार करनेवाला ।
विशेष—ऋषि सात प्रकार के माने गए हैं—(क) महर्षि, जैसे व्यास । (ख) परमर्षि जैसे भेल । (ग) देवर्षि जैसे नारद । (घ) ब्रह्मर्षि, जैसे वसिष्ठ । (च) श्रुतर्षि, जैसे सुश्रुत । (छ) राजर्षि, जैसे ऋतुपर्ण और (ज) काडर्षि, जैसे जैमिनि । एक पद ऐसे सात ऋषियों का माना गया है जो कल्पात प्रलयों मे वेदों को रक्षित रखते हैं । भिन्न भिन्न मन्वतरों मे सप्तर्षि के अतर्गत भिन्न भिन्न ऋषि माने गये हैं । जैसे, इस वैवस्वत मन्वतर के सप्तर्षि ये हैं—कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम जमदग्नि और भरद्वाज । स्वायंभुव मन्वतर के—मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ ।
यौ०—ऋषिऋण । ऋषिकल्प=ऋषितुल्य । ऋषिकुमार=ऋषि का पुत्र । ऋषिगिरि=मगध का एक पर्वत । ऋषिपचमी । ऋषिमित्र । ऋषिराज । ऋषिवर्य । ऋषिसाह्वय=ऋषिपत्तन । ऋषिस्वाध्याय ।
ऋषिऋण—सज्ञा पु० [सं० ऋषि+ऋण] ऋषियों के प्रति कर्तव्य ।
विशेष—वेद के पठनपाठन से इस ऋण से उद्धार होता है ।
ऋषिक—सज्ञा पु० [स०] १ निम्न श्रेणी या स्तर का ऋषि । २ प्राचीन काल का एक जनपद और उसके निवासी [को०] ।
ऋषिकुल—सज्ञा पु० [सं०] १ ऋषि का वश । २ ऋषि का आश्रम । ३ गुरुकुल [को०] ।
ऋषिकुल्या—सज्ञा स्त्री० [स०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत के तीर्थयात्रा पर्व मे है ।
ऋषिचाद्रायण—सज्ञा पु० [स० ऋषिचान्द्रायण] एक विशिष्ट प्रकार का व्रत [को०] ।
ऋषिजागल—सज्ञा पुं० [स० ऋषिजाङ्गल] [स्त्री० ऋषिजाङ्गलिका] ऋक्षगंधा नामक पौधा [को०] ।
ऋषितर्पण—सज्ञा पु० [स०] ऋषियों की तृप्ति के निमित्त किया जानेवाला तर्पण या जलदान [को०] ।

ऋतुपति कोसलपुर विहरत सहित समाज ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६५ ।

ऋतुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के एक राजा जो नल के सखा थे और पासा खेलने में बड़े निपुण थे ।

ऋतुपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं की आवृत्ति । ऋतुओं का आवागमन [को०] ।

ऋतुपा—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०] ।

ऋतुप्राप्त—वि० [सं०] फलनेवाला (वृक्ष) । फल देनेवाला (पेड़) ।

ऋतुप्राप्ता—वि० [सं०] (स्त्री) जिसे रजोदर्शन हो चुका हो ।

ऋतुप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजोदर्शन [को०] ।

ऋतुफल—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुविशेष में होनेवाले फल [को०] ।

ऋतुभाग—संज्ञा पुं० [सं०] छठा हिस्सा [को०] ।

ऋतुमती—वि० स्त्री० [सं०] १ रजस्वला । पुष्पवती । मासिक-धर्म-युक्ता ।

विशेष—धर्मशास्त्र और आयुर्वेद के अनुसार रजोदर्शन के उपरांत तीन दिन तक स्त्री को ब्रह्मचर्यपूर्वक रखना चाहिए, पति का मुख न देखना चाहिए चटाई इत्यादि पर सोना चाहिए, हाथ पर अथवा कटोरे या दोने में खाना चाहिए, आँसू न गिराना चाहिए, नाखून न कटाना चाहिए, तेल उबटन और काजल न लगाना चाहिए, दिन को सोना न चाहिए बहुत भारी शब्द न सुनना चाहिए, हँसना और बहुत बोलना भी न चाहिए । चौथे दिन स्नान करके सुंदर वस्त्र और आभूषण धारण करना और पति का मुख देखकर सब व्यवहार करना चाहिए ।

२ (स्त्री) जिसका ऋतुकाल हो । जिस (स्त्री) के रजोदर्शन के उपरांत के १६ दिन न बीते हों और गर्भाधान के योग्य हो ।

ऋतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] किसी भी ऋतु का पहला दिन [को०] ।

ऋतुराज—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का राजा वसंत । उ०—मानहु चयन मयनपुर आयउ प्रिय ऋतुराज ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४८ ।

ऋतुलिंग—संज्ञा पुं० [सं० ऋतुलिङ्ग] १ ऋतुबोधक चिह्न । २ रजस्राव के लक्षण [को०] ।

ऋतुवती(पु)—वि० स्त्री० [सं० ऋतुमती] दे० 'ऋतुमती' ।

ऋतुविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह विज्ञान जिसमें वायुमंडल में होनेवाले परिवर्तनों के आधार पर आँधी, वर्षा आदि का अनुमान लगाया जाता है । २ आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक शाखा ।

ऋतुविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतु के अनुसार वायुमंडल का न होना । जैसे, वसंत ऋतु में पानी का बरसना ।

ऋतुवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का आवागमन [को०] ।

ऋतुवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजोदर्शन या उसके बाद १६ दिनों तक गर्भाधान के लिये उपयुक्त समय [को०] ।

ऋतुसंधि—संज्ञा स्त्री०[सं० ऋतुसन्धि] १ दो ऋतुओं का संधिकाल । २. पक्ष की अंतिम तिथि-पूर्णिमा और अमावस्या [को०] ।

ऋतुसंहार—संज्ञा पुं० [सं०] कालिदास का षड्ऋतु-वर्णन-विषयक प्रसिद्ध खंडकाव्य ।

ऋतुसात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतु के अनुसार आहार [को०] ।

ऋतुस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष यज्ञ [को०] ।

ऋतुस्नाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जो रजोदर्शन के चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हुई हो [को०] ।

ऋतुस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ऋतुस्नाता] रजोदर्शन के चौथे दिन का स्त्रियों का स्नान । रजस्वला का चौथे दिन का स्नान ।

विशेष—रजोदर्शन के उपरांत तीन दिन तक स्त्री अपवित्र रहती है । चौथे दिन जब वह स्नान करती है तब कुटुंब के लोगों तथा घर की सब खाने पीने की वस्तुओं को छूने पाती है । स्नान के पीछे स्त्री को पति या उसके अभाव में सूर्य का दर्शन करना चाहिए ।

ऋत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ परिपुष्ट वीर्य । २ गर्भाधान का उपयुक्त अवसर [को०] ।

ऋत्विक—संज्ञा पुं०[सं० ऋत्विक्] दे० 'ऋत्विज्' । उ०—दैव विवाह यज्ञ में ऋत्विक को दान । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५७ ।

ऋत्विज्—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आर्त्विजी] यज्ञ करनेवाला । वह जिसका यज्ञ में वरण किया जाय ।

विशेष—ऋत्विजों की संख्या १६ होती है जिसमें चार मुख्य हैं—(क) होता (ऋग्वेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (ख) अध्वर्यु (यजुर्वेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (ग) उद्‌गाता (सामवेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (घ) ब्रह्मा (चार वेदों का जाननेवाला और पूरे कर्म का निरीक्षण करनेवाला । इनके अतिरिक्त बारह और ऋत्विजों के नाम ये हैं—मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता, अच्छावाक्, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्ता, ग्रावस्तुत्, उन्नेता, पोता और सुब्रह्मण्य ।

ऋत्विज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऋत्विज्] दे० 'ऋत्विज्' । उ०—अब चलूँ वेदी पर बिछाने के लिये ये दाभ मुझे ऋत्विज ब्राह्मणों को देने हैं ।—शकुंतला, पृ० ४३ ।

ऋद्ध¹—वि० [सं०] १ संपन्न । वृद्धिप्राप्त । समृद्ध । २ संग्रह किया हुआ । जमा किया हुआ (अन्न) ।

ऋद्ध²—संज्ञा पुं० १ पैड़ से मलकर या दायँकर अलग किया हुआ धान । संपन्न धान्य । २ विष्णु (को०) । ३ उत्कर्ष । वृद्धि (को०) । ४ विशिष्ट अथवा प्रत्यक्ष फल (को०) ।

ऋद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक ओषधि या लता जिसका कंद दवा के काम में आता है ।

विशेष—यह कंद कपास की गाँठ के समान और बाईं ओर को कुछ घूमा रहता है तथा इसके ऊपर सफेद रोईं होती है । यह बलकारक, त्रिदोषनाशक, शुक्रजनक, मधुर, भारी तथा मूर्छा को दूर करनेवाला है ।

पर्या०—प्राणप्रिया । वृष्या । प्राणदा । संपदाह्वया । सिद्धा । योग्या । चेतनीया । रथागी । मंगल्या । लोककांता । जीवश्रेष्ठा । यशस्या ।

२ समृद्धि । बढ़ती । ३. आर्या छंद का एक भेद जिसमें २६ गुरु और ५ लघु होते हैं । ४. गणेश की एक दासी जो समृद्धि की देवी मानी जाती है (को०) । ५ पार्वती (को०) । ६ लक्ष्मी (को०) । ७. पत्नी (को०) । ८. सफलता । सिद्धि (को०) ।

ऋणमोक्षित--संज्ञा पुं०[सं०] स्मृति मे लिखे हुए १५ प्रकार के दासो मे से एक। वह जो अपना ऋण चुकाने मे असमर्थ होकर अपने महाजन का अथवा उस महाजन को रुपया चुकानेवाले का दास हो गया हो।
ऋणलेख्य पत्र—संज्ञा पुं०[सं०] लेन देन के व्यवहार का वह पत्र जो साक्षियो के सामने लिखा गया हो। दस्तावेज।
ऋणविद्युत्—संज्ञा पुं० [सं० ऋण+विद्युत्] विकर्षण करनेवाली बिजली। धन विद्युत् का विलोम।
ऋणशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋण का साफ होना। कर्ज का अदा होना।
ऋणशोध--संज्ञा पुं० [सं० ऋण+शोध] ऋण चुकाना। कर्ज अदा करना। उ०—मानव की शीतल छाया मे ऋणशोध करूँगा निज कृति का।—कामायनी, पृ० ७६।
ऋणशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋणशोध'।
ऋणसमुद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज की वसूली [को०]।
ऋणांतक—संज्ञा पुं० [सं० ऋणान्तक] मगल ग्रह [को०]।
ऋणात्मक—वि० [सं०] ऋणरूप। 'नेगेटिव' का अर्थानुवाद। बहुधा 'विद्युत्' का विशेषण [को०]।
ऋणादान—संज्ञा पुं० [सं०] दिया हुआ कर्ज वापस मिलना [को०]।
ऋणानपाकरण—संज्ञा पुं०[सं०]कर्ज चुकाना। ऋण या उधार चुकता करना [को०]।
ऋणापनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋणापकरण' [को०]।
ऋणापनोदन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का चुकता हो जाना। कर्ज की अदायगी [को०]।
ऋणार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दूसरा ऋण चुकाने के लिये लिया जाय।
ऋणिक—वि० [सं०] ऋणी। कर्जदार।
ऋणिया‡--वि० [सं० ऋणिन्] ऋणी।
ऋणी—वि० [सं० ऋणिन्] १. जिसने ऋण लिया हो। कर्जदार। देनदार। अधमर्ण। २. उपकृत। उपकार माननेवाला। अनुगृहीत। जिसे किसी उपकार का बदला देना हो। जैसे—इस विपत्ति से उद्धार कीजिए, हम आपके चिर ऋणी रहेंगे।
ऋणोद्ग्रहण--संज्ञा पुं० [सं०] किसी भी प्रकार से कर्ज को चुकता करा लेना [को०]।
ऋतंभर--वि०, संज्ञा पुं०[सं० ऋतम्भर]सत्य का धारण तथा पालन करनेवाला। परमेश्वर [को०]।
ऋतभरा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतम्भरा] सदा एक समान रहनेवाली बुद्धि [को०]।
ऋत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ उछवृत्ति। २ मोक्ष। ३ जल। ४ कर्म का फल। ५. यज्ञ। सत्य। ७ ईश्वरीय नियम। ८. ब्रह्म। ९ एक आदित्य। १० सूर्य। ११. प्रिय भाषण। अनुकूल कथन (को०)।
ऋत[2]—वि० १ दीप्त। २. पूजित। ३. सच्चा। ४ उचित। योग्य। ५ अनुकूल।
ऋतधामा[1]—वि० [सं० ऋतधामन्] सत्य मे वास करनेवाला। सत्य तथा पवित्र आचरणवाला [को०]।
ऋतधामा[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।
ऋतध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।
ऋतपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋतुपर्ण'।
ऋतपेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक एकाह यज्ञ जो छोटे छोटे पापो के नाश के लिये किया जाता है।
ऋतवादी—वि०[सं० ऋतवादिन्]सत्यवादी। सच बोलनेवाला [को०]।
ऋतव्य—वि० [सं०] ऋतु सबधी। मौसमी [को०]।
ऋतव्रत--वि० [सं०] सत्य का व्रत लेनेवाला। सत्यवादी [को०]।
ऋतिकर—वि० [सं० ऋतिङ्कर] १ कष्टद। २. भाग्यहीन [को०]।
ऋति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गति। २ स्पर्द्धा। ३ निंदा। ४ मार्ग। ५. मंगल। कल्याण। ६ स्मृति। याददाश्त (को०)। ७ दुर्भाग्य। अभाग्य (को०)। ८ कष्ट। दु.ख (को०)। ९. आक्रमण [को०]। १० सत्य। सच्चाई (को०)।
ऋति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नरमेध यज्ञ मे पूज्य एक देव। २. आक्रामक शत्रु या सेना [को०]।
ऋतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ घृणा। २. लज्जा। ३ निंदा [को०]।
ऋतु--संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राकृतिक अवस्थाओ के अनुसार वर्ष के दो दो महीनो के छह विभाग। मौसम। उ०—सिगरी ऋतु शोभित शुभ्र जहीं।—राम च०, पृ० ८०।
विशेष—ऋतुएँ छह हैं—(क) वसत (चैत और वैसाख), (ख) ग्रीष्म (जेठ और आषाढ), (ग) वर्षा (सावन और भादो), (घ) शरद (क्वार और कार्तिक), (च) हेमत (अगहन और पूस), (छ) शिशिर (माघ और फागुन)।
२ रजोदर्शन के उपरात वह काल जिसमे स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य होती हैं। ३. उपयुक्त समय या काल (को०)। ४. समुचित या सुनिश्चित व्यवस्था (को०)। ५ विष्णु (को०)। ६ मास। महीना (को०)। ७ दीप्ति। प्रकाश (को०)। ८ छह की सख्या (को०)।
ऋतुकर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
ऋतुकाल—संज्ञा पुं० [सं०] रजोदर्शन के उपरात के १५ दिन जिसमे स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य रहती हैं। इनमे से प्रथम चार दिन तथा ग्यारवाँ और तेरहवाँ दिन गमन के लिये निषिद्ध है।
यौ०—ऋतुकालाभिगामी = दे० 'ऋतुगामी'।
ऋतुगमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऋतुगामी] ऋतुकाल मे स्त्री के पास जाना। ऋतुमती स्त्री के साथ सभोग करना।
ऋतुगामी—वि० [सं० ऋतुगामिन्] ऋतुकाल मे स्त्री के पास जानेवाला [को०]।
ऋतुचर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुओ के अनुसार आहार विहार की व्यवस्था।
ऋतुदान—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुमती स्त्री के साथ सतान की इच्छा से सभोग। गर्भाधान।
ऋतुनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओ का स्वामी। वसत ऋतु। उ०—मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनि वेष बनाए है मैन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३५।
ऋतुपति--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋतुनाथ'। उ०—जनु रतिपति

कडिका । ३ स्तोत्र । स्तुति । उ०—लगे पढन रच्छा ऋचा ऋषिराज विराजे ।—तुलसी ग्र ०, पृ० २७१ ।

ऋचीक—संज्ञा पुं० [स०] भृगुवंशीय एक ऋषि जो जमदग्नि के पिता थे । विश्वामित्र के पिता गाधि ने अपनी सत्यवती नाम की कन्या इन्हें व्याही थी ।

ऋचीष—संज्ञा पुं० [स०] १ एक नरक का नाम । २ कडाही [को०] ।

ऋच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [स० ऋक्ष] १ भालू । रीछ । उ०—घायल वीर विराजत चहुँदिसि, हरषित सकल ऋच्छ अरु बनचर । —तुलसी ग्र ०, पृ० ४०० । २ दे० 'ऋक्ष' ।

यौ०– ऋच्छपति = जाववान् ।

ऋच्छका—संज्ञा स्त्री० [स०] अभिलाषा । इच्छा [को०] ।

ऋच्छरा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ बेडी । २ वेश्या [को०] ।

ऋजिमा—संज्ञा स्त्री० [स० ऋजिमन्] सरलता [को०] ।

ऋजीक[1]–-वि० [स०] १ मिश्रित । मिला हुआ । २ पृथक् किया हुआ । हटाया हुआ । ३ भ्रष्ट [को०] ।

ऋजीक[2]—संज्ञा पुं० [स०] १ इद्र का नाम । २ साधन । ३ एक पर्वत का नाम । ४ धूम्र । धुआँ [को०] ।

ऋजीप—संज्ञा पुं०[स०]१ लोहे का तसला या कडाही । २ सोमलता की । सीठी ३ सीठी । ४ एक नरक का नाम । ५ जल ।

ऋजु—वि० [स०] [स्त्री० ऋज्वी] १ सीधा । जो टेढा न हो । अवक्र । उ०—ऋजु प्रशस्त पथ बीच बीच मे, कहीं लता के कुज घने । —कामायनी, पृ० १८२ । २ सरल । सुगम । सहज । जो कठिन न हो । ३ सीधे स्वभाव का । सरल चित्त का । अकुटिल । ४ अनुकूल । प्रसन्न ।

ऋजुकाय[1]–-वि० [स०] सीधे शरीरवाला [को०] ।

ऋजुकाय[2]—संज्ञा पुं० कश्यप ऋषि [को०] ।

ऋजुक्रतु[1]— वि० [स०] सही और उचित ढग से काम करनेवाला । सुकर्मी [को०] ।

ऋजुक्रतु[2]—संज्ञा पुं० इद्र का नाम ।

ऋजुग[1]–-वि०[स०]अपने आचरण एव व्यवहार के प्रति ईमानदार । सदाचारी [को०] ।

ऋजुग[2]—संज्ञा पुं० [स०] १ इपु । तीर । वाण । २ सदाचारी व्यक्ति [को०] ।

ऋजुता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सीधापन । टेढ़ेपन का अभाव । २ सरलता । सुगमता । ३ सरल स्वभाव । सिधाई । सज्जनता ।

ऋजुनीति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ सदाचार । २ मार्गदर्शन [को०] ।

ऋजुमिताक्षरा–-संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'मिताक्षरा' [को०] ।

ऋजुरोहित–-संज्ञा पुं० [स०] इद्र का सीधा और लाल रग का धनुष [को०] ।

पर्या०—इद्रायुध । शक्रधनु ।

ऋजुलेखा–-संज्ञा स्त्री० [स०] सीधी रेखा [को०] ।

ऋजुसूत्र— संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन मे वह 'नय' या प्रमाणो द्वारा निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति जो अतीत और अनागत को नहीं मानती, केवल वर्तमान ही को मानती है ।

ऋज्वी –संज्ञा स्त्री० [स०] १ सरल स्वभाव की तथा सीधी स्त्री । २ ग्रहो की गति या चाल [को०] ।

ऋण[1]—संज्ञा पुं० [स०] १ किसी से कुछ समय के लिये कुछ द्रव्य लेना । व्याज पर मिला हुआ धन । कर्ज । उधार ।

क्रि० प्र०—करना ।–-काढ़ना ।—चुकाना ।–-देना ।—लेना ।

मुहा०–-ऋण उतरना = कर्ज अदा होना । ऋण चढ़ना = कर्ज होना । जैसे,–-उनके ऊपर बहुत ऋण चढ गया है । ऋण चढ़ाना = जिम्मे रुपया निकालना । ऋण पटाना = धीरे धीरे कर्ज का रुपया अदा होना । ऋण पटाना = धीरे धीरे उधार लिया हुआ रुपया चुकता करना । जैसे,–-हम चार महीनो में यह ऋण पटा देंगे । ऋण मढ़ना = ऋण चढाना । देनदार बनाना । जैसे,—'वह हमारे उपर ऋण मढकर गया है ।'

२ किसी उपकार के बदले मे किसी के प्रति आवश्यक या कर्तव्य रूप से किया जानेवाला कार्य । वह कार्य जिसका दायित्व किसी पर हो । ३ किसी का किया हुआ उपकार या एहसान । ४ घटाने या बाकी निकालने का चिह्न (—) (गणित) । ५ किला । दुर्ग (को०) । ६ भूमि । जमीन (को०) । ७ पानी । जल (को०) ।

यौ०—ऋणकर्ता, ऋणग्राही = कर्ज लेनेवाला । ऋणद, ऋणदाता, ऋणदायी = कर्जा चुकता करनेवाला । ऋणमुक्त । ऋण-मुक्ति = ऋणशुद्धि ।

ऋण[2]—वि० खाते, गणित आदि मे जो ऋण के पक्ष का हो ।

ऋणग्रस्त–-वि० [स०] कर्ज से लदा हुआ [को०] ।

ऋणग्रस्तता–-संज्ञा स्त्री० [स०] कर्ज से लद जाने की स्थिति [को०] ।

ऋणच्छेद—संज्ञा पुं० [स०] कर्ज को चुकाना [को०] ।

ऋणत्रय—संज्ञा पुं० [स०] तीन प्रकार का ऋण—देवऋण, ऋषि-ऋण और पितृऋण [को०] ।

ऋणदान –संज्ञा पुं० [स०] कर्ज चुकाना [को०] ।

ऋणदास—संज्ञा पुं० [स०] ऐसा दास जो उस व्यक्ति की दासता करता हो जिसने उसका कर्ज चुकता करके उसे खरीद लिया हो [को०] ।

ऋणनिर्मोक्ष—संज्ञा पुं० [स०] पितृऋण से मुक्ति [को०] ।

ऋणपत्र—संज्ञा पुं० [स०] लेन देन के व्यवहार का पत्र जिसपर गवाहो के समक्ष ऋण लेने और देने की व्यवस्था लिखी रहती है । तमस्सुक । रुक्का । दस्तावेज [को०] ।

पर्या०–-ऋणलेख्य । ऋणलेख्य पत्र ।

ऋणमत्कुण—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'ऋणमार्गण' [को०] ।

ऋणमार्गण—संज्ञा पुं० [स०] जिसने कर्जदार से महाजन का रुपया अदा करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया हो । प्रतिभू । जामिन ।

ऋणमुक्त–-वि० [स०] जो कर्ज अदा कर चुका हो । उऋण । ऋण-रहित । उ०—तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिए ।—भारतेंदु ग्र ०, भा० १, पृ० २८८ ।

ऋणमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] कर्ज अदायगी [को०] ।

ऋणमोक्ष–-संज्ञा पुं० [स०] कर्ज से छुटकारा । ऋण का चुकता हो जाना [को०] ।

चुपचाप बैठ रहता है। उ०—क्या बाहर की ठेलापेली ही कुछ कम थी, जो भीतर भी भावों का ऊहापोह मचा। —मिलन० पृ० १६० ।

विशेष—यह बुद्धि का गुण कहा गया है जिसमे किसी विचार को ग्रहण किया जाता है।

ऊहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] झाड़ू। बुहारी [को०]।

ऊही[1]—वि० [सं० उहिन्] ऊहा करनेवाला। तर्क वितर्क करनेवाला।

ऊही(पु)[2]—सर्व० दे० 'वही'। उद—जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ। उहाँ लगे मो लग्गसी, ऊही लाख पसाउ। ढोला०, दू० ७४।

ऊह्य—वि० [सं०] जो ऊहा करने योग्य हो। तर्क्य। तर्कनीय [को०]।

ऋ

ऋ—एक स्वर जो वर्णमाला का सातवाँ वर्ण है। इसकी गणना स्वरो मे है और इसका उच्चारण स्थान संस्कृत व्याकरणानुसार मूर्द्धा है। इसके तीन भेद हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इनमे से भी एक एक के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन तीन भेद हैं। इन नौ भेदों मे भी प्रत्येक के अनुनासिक और निरनुनासिक दो दो भेद हैं। इस प्रकार ऋ के कुल अठारह भेद हुए।

ऋंजासन—संज्ञा पु० [सं० ऋञ्जसान] मेघ। बादल [को०]।

ऋ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवमाता। अदिति। २ निंदा। बुराई।

ऋ[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग [को०]।

ऋकार—संज्ञा पु० [सं०] 'ऋ' स्वर और उसकी ध्वनि [को०]।

ऋक्[1]—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. ऋचा। वेदमत्र। २ स्तुति। स्तोत्र। ३ पूजा(को०)। ४ कांति। प्रभा। रोचिस् (को०)।

ऋक्[2]—संज्ञा पुं० ऋग्वद।

ऋक्ण—वि० [सं०] आहत। चोट खाया हुआ। क्षत [को०]।

ऋक्तंत्र—संज्ञा पु० [सं० ऋक्तन्त्र]सामवेद का परिशिष्ट भाग [को०]।

ऋक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ धन। सुवर्ण। सोना। ३ दाय धन। विरासत। वर्सा। किसी सबधी की सपत्ति का वह भाग जो धर्मशास्त्र के अनुसार मिले। ४ हिस्से की जायदाद। हिस्सा।

ऋक्थग्राह—संज्ञा पु०[सं०] किसी के द्वारा छोड़ी हुई सपत्ति को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। उत्तराधिकारी। वारिस [को०]।

ऋक्थभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिस्सा। दाय। २. सपत्ति या जायदाद का भाग [को०]।

ऋक्थभागी—संज्ञा पुं० [सं० ऋक्थभागिन्] दे० 'ऋक्थग्राह'।

ऋक्थहारी—संज्ञा पुं०[ऋक्थहारिन्] उत्तराधिकारी। वारिस [को०]।

ऋक्संहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद के मत्रों का सग्रह [को०]।

ऋक्ष—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० ऋक्षी] १ भाल। २. तारा। नक्षत्र। उ०—जनु ऋक्ष सर्व यहि-त्रास भगे। जिय जानि चकोर फँदान ठगे।—राम च०, पृ० १८। ३. मेष-वृष आदि राशि। ४. भिलावाँ। ५ श्योनाक वृक्ष। ६. रैवतक पर्वत का एक भाग।

ऋक्षगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋक्षगन्धा] महाश्वेता। जागली। क्षीर विदारी [को०]।

ऋक्षजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ का एक भेद। वह पीड़ायुक्त कोढ जो किनारों पर लाल, बीच मे पीलापन लिए काला, छूने में कड़ा और रीछ की जीभ के आकार का हो।

ऋक्षनाथ—संज्ञा पु०[सं०] १ नक्षत्रों के राजा चद्रमा। २ भालुओं के सरदार जाववान्।

ऋक्षनेमि—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु [को०]।

ऋक्षपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋक्षनाथ' [को०]।

ऋक्षप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। बैल [को०]।

ऋक्षर—संज्ञा पु० [सं०] १ पुरोहित। २ काँटा। ३. वर्षा। ४. वाष्प। भाप [को०]।

ऋक्षराज—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'ऋक्षनाथ' [को०]।

ऋक्षवान—संज्ञा पु० [सं०] ऋक्ष पर्वत जो नर्मदा के किनारे से गुजरात तक है। यह रैवतक पर्वत की चोटी से उत्पन्न अर्थात् उसी का एक भाग माना गया है।

ऋक्षविडंबी—संज्ञा पु० [सं० ऋक्षविडम्बिन्] ठग ज्योतिषी [को०]।

ऋक्षविभावन—संज्ञा पु० [सं०] ग्रहों एव नक्षत्रों की गति का निरीक्षण [को०]।

ऋक्षहरीश्वर—संज्ञा पु० [सं०] रीछ और बंदरों का राजा। सुग्रीव [को०]।

ऋक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०]।

ऋक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रीछ की मादा। मादा भालू [को०]।

ऋक्षोक—वि० [सं०] रीछ के समान मास खानेवाला [को०]।

ऋक्षोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अपदेवी [को०]।

ऋक्षेश—संज्ञा पुं० [सं०] हिमांशु। चद्रमा [को०]।

ऋखि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऋषि] दे० 'ऋषि'। उ०—गाधि के नद तिहारे गुरू जिनते ऋखि पेख किए उबरे हैं।—राम० च०, पृ० ४२।

ऋग(पु)—संज्ञा,पु० [सं० ऋग्] दे० 'ऋग्वेद'। उ०—(क) पढिवी परयो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३७। (ख) न हो सतोष इसपर भी तो उपमा तीसरी लेलो। युगल पदधारिणी त्रिगुणात्मिका ऋग की ऋचा समझे।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २३८।

ऋग्वेद—संज्ञा पु० [सं०] चार वेदो मे से एक। प्रथम वेद। वि० दे० 'वेद'।

ऋग्वेदी—वि० [सं० ऋग्वेदिन्] ऋग्वेद का जानने या पढनेवाला।

ऋचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेदमत्र जो पद्य मे हो। २ वेदमत्र।

ऊपण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ चीता या चित्रक। २ काली मिर्च। ३. सोंठ। शुंठी। ४ पिप्पली। ५ पिप्पलीमूल। ६ चव्य [को॰]।

ऊपद(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ओषधि] दे॰ 'ओषधि', 'ओषधी'। उ॰—काहरऊ पीवौ न ऊपद खाई, दाँत कष्ट वध्यो गोरडी।—वी॰ रासो॰, पृ॰ ६४।

ऊपधी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ओषधि] दे॰ 'ओषधि', 'ओषधी'। उ॰—ऊपधी सब्ब मनि सब्ब धात। वर वृष्ष लता फल पुह्‌प पात।—पृ॰ रा॰, १।२३३।

ऊपर[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह भूमि जहाँ रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न होता हो। ऊसर।

ऊपर[२]—वि॰ खारा। क्षार [को॰]।

ऊपरज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नोनी मिट्टी से तैयार किया हुआ नमक। २ एक प्रकार का चुवक [को॰]।

ऊपरना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ उसरना] हटना। उतरना। अलग होना। उ॰—तौ पाई जरिया सिर पर धरिया विस ऊपरिया तन तिरिया।—सुंदर ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २३०।

ऊपा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ प्रभात। सवेरा। २ अरुणोदय। पौ फटने की लाली। ३ बाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को ब्याही गई थी।

ऊपाकाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रात काल। सवेरा। तडका।

ऊपापति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध।

ऊपी—संज्ञा स्त्री॰[सं॰]नोना लगी हुई मिट्टी। रेहवाली जमीन [को॰]।

ऊष्म[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ गर्मी। २ भाप। ३ गरमी का मौसम।

ऊष्म[२]—वि॰ गर्म।

ऊष्मज[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'उष्मज'। उ॰—ऊष्मज खान विष्णु ने उत्पन्न किए।—कबीर मं॰, पृ॰ ४०।

ऊष्मज[२]—वि॰ [सं॰] १. गर्मी मे उत्पन्न। २ गर्मी से उत्पन्न होनेवाला।

ऊष्मप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अग्नि। २ एक पितृवर्ग [को॰]।

ऊष्मवर्ण—संज्ञा पुं॰[सं॰] 'श, ष, स, ह' ये अक्षर ऊष्म कहलाते हैं।

विशेष—शायद इस कारण कि इनमें उच्चारण के समय मुँह से गरम हवा निकलती है।

ऊष्मा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ऊष्मन्] १ ग्रीष्म काल। २ तपन। गर्मी। ३ भाप। ४ आवेश। क्रोध [को॰]।

ऊष्मायण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गरमी का मौसम [को॰]।

ऊसन[१]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का पौधा। जिससे तेल निकलता है।

विशेष—यह सरसों की तरह जौ और गेहूँ के साथ बोया जाता है और इनमें से तेल निकलता है जो जलाने के काम मे आता है। इसकी खली चौपायो को दी जाती है। इसे जेवा और तरमिरा भी कहते हैं।

ऊसन[२](पु)—वि॰ दे॰ 'उष्ण'। उ॰—सीत वायु ऊसन नहिं सरवत काम कुटिल नहिं होई।—रं॰ बानी, पृ॰ ११।

ऊसन[३]—वि॰ [सं॰ अवसन्त] आलसी। निश्चेष्ट। उ॰—करहा वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि। तू थाकट, हू ऊसनउ, भई भारी घर दूरि।—ढोला॰, दू॰ ४६७।

ऊसर[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ऊषर] वह भूमि जिसमे रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न हो। उ॰—ऊसर बरसे तृण नहिं जामा।—तुलसी (शब्द॰)।

मुहा॰—ऊसर मे कमल खिलाना=असभव कार्य को सभव कर दिखाना। उ॰—बीज को धूल मे मिलाकर भी, जो नहीं धूल मे मिला देते। ऊसरो मे कमल खिला देना, वे हँसी खेल हैं समझ लेते।—चुभते॰, पृ॰ ८।

ऊसर[२]—वि॰ (भूमि) जिसमे तृण या पौधा न उत्पन्न हो।

ऊससना(पु)—क्रि॰ अ॰ [सं॰ उच्छ्‌वास > हिं॰ 'उसास' से] उच्छ्‌वसित होना। आनदित होना। उ॰—ऊससे घणे उछाह, चाँप बाण धरे चाह। रघु॰ रू॰, पृ॰ ७६।

ऊसार(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उपशाल] दे॰ 'ओसार'। उ॰—पाडयो ऊसारै तेड्यो छइ राई, छानी उलगी माँई सूँ कही।—वी॰ रासो, पृ॰ ८३।

ऊसास(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ उसास] दे॰ 'उसास'। उ॰—ते ऊसास अगिनि की उषी। कुंवरि क देवी ज्वालामुखी।—नद॰ ग्रं॰, पृ॰, १३४।

ऊसे(पु)—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] वैसे। उस तरह के। उ॰—साहिब सेती रहो सुरखरू आतम बखसे ऊसे से।—सुंदर ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २३।

ऊह[१]—अव्य॰ [हिं॰] १ क्लेश या दु खसूचक शब्द। ओह। २ विस्मयसूचक शब्द।

ऊह[२]—संज्ञा सं॰ पुं॰ १ अनुमान। विचार। उ॰—संग सवा लाख सवार। गज त्योंही अमित तयार। वह सुतर प्यादे जूह। कवि को कहै करि ऊह।—रघुराज (शब्द॰)। २ तर्क। दलील। ३ परिवर्तन। फेरफार(को॰)। ४ परीक्षा (को॰)। ५ अध्याहार द्वारा अनुक्त पद की पूर्ति करना (को॰)। ६ तर्क की युक्ति। तर्कयुक्ति (को॰)।

ऊह[३]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] किंवदती। अफवाह।

ऊहन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ ऊहनीय] १ तर्क। दलील। २ परिवर्तन। बदलाव (को॰)। ३ सुधार (को॰)।

ऊहनी—संज्ञा स्त्री॰ [को॰] [सं॰] झाड़। बढनी [को॰]।

ऊहनीय—वि॰ [सं॰] १ तर्क करने योग्य। तर्कनीय। विचार योग्य २ परिवर्तन या सुधार योग्य (को॰)।

ऊहाँ(पु)—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ 'तहाँ' के वजन पर] दे॰ 'उहाँ'। उ॰—तब हरिवंश जी ऊहाँ दडवत करि परदेश के सर्व समाचार कहें—दो सौ बावन॰, भाग १, पृ॰ ७९।

ऊहा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'ऊह'।

ऊहापोह—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ऊह+अपोह] तर्क वितर्क। सोचविचार। जैसे,—इस कार्य की साधन सामग्री मेरे पास है या नहीं, अशक्त पुरुष इसी ऊहापोह मे कार्य का समय व्यतीत करके

छिनक मैं करौ, भरौ, सहारौ, । ऊर्ननाभि लौं फिरि विस्तारौ।—नंद ग्रं०, पृ० २२६ ।

ऊर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लहर । तरंग । उ०—ऊर्मि घूर्णित रे, मृत्यु महान, खोजता कहाँ कहाँ नादान ।—गीतिका, पृ० २७ ।

यौ०—ऊर्मिलाली = समुद्र ।

२ पीड़ा । दु ख ।

विशेष—ये छह हैं । जैसे,—एक मत से सर्दी, गर्मी, लोभ, मोह, भूख, प्यास । दूसरे मत से भूख, प्यास, जरा मृत्यु, शोक, मोह ।

३ छह की संख्या । ४. शिकन । कपड़े की सलोट । ५ धारा। प्रवाह या वेग (को०) । ६ पंक्ति । क्रम (को०) । ७ प्रकाश। ज्योति (को०) ।

ऊर्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ लहर । तरंग । २ अंगूठी । मुद्रिका । ३. दु ख (किसी खोई हुई वस्तु के लिये) । ४ मधुमक्खी की भनभनाहट । ५ कपड़े की सलोट [को०] ।

ऊर्मिमान—वि० [सं० ऊर्मिमत्] १ ऊर्मिल । लहरों से युक्त । तरंगायित । २. घुँघराले (केश) [को०] ।

ऊर्मिमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तरंगावली । लहरों का समूह । २ एक प्रकार का छंद [को०] ।

ऊर्मिमुखर—वि० [हिं० ऊर्मि + मुखर] लहरों से ध्वनित । लहरों की कलकल से गुंजित । उ०—क्या वही तुम्हारा देश, ऊर्मि-मुखर इस सागर के उस पार कनक किरण से छाया ग्रस्ता-चल पश्चिम द्वार ।—अनामिका, पृ० ५६ ।

ऊर्मिल—वि० [सं०] लहरीला । तरंगयुक्त । तरंगति । उ०—है ऊर्मिल जल निश्चलत्प्राण पर शतदल ।—तुलसी०, पृ० १ ।

ऊर्मिला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मण के पत्नी का नाम ।

ऊर्मिला[2]—वि० दे० 'ऊर्मिल' । उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिला, जैसे उतारी ।—अर्चना, पृ० १०८ ।

ऊर्मी—वि० [सं० ऊर्मिन्] तरंगमय । तरंगित [को०] ।

ऊर्म्य—वि० [सं०] ऊर्मिल । तरंगायित । लहराता हुआ [को०] ।

ऊर्म्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात [को०] ।

ऊर्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २ मेघ । बादल । ३. सरोवर । ताल । ४ कासार । ह्रद । झील । ५. वड़वानल । ६ पशु-शाला । ७ पितरों का एक वर्ग [को०] ।

ऊर्व[2]—वि० विस्तृत । वड़ा [को०] ।

ऊर्वरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उर्वरा' ।

ऊर्वरा[2]—वि० दे० 'उवरा' ।

ऊर्वशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उर्वशी' ।

ऊर्व्यंग—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्व्यङ्ग] छत्रक । कुकुरमुत्ता [को०] ।

ऊर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताड नामक घास [को०] ।

ऊलग[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय ।

ऊलग[2]—वि० [सं० उन्नग्न] उलग । नगा ।

२-१७

ऊलवना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलम्ब, प्रा० ओलव या ऊलव] अवलंबित करके । सहारा लिए हुए । उ०—ऊनवे सिर हत्थडा, चाहंदी रसलुब्ध विरह महाधण ऊमटचऊ थाह निहालड मुध्ध ।—ढोला०, दू० १५ ।

ऊलजलूल—वि० [देश०] १ असबद्ध । बेसिरपैर का । अंड वड । बेठिकाने का । अनुचित । उ०—जो मैं जानूँगा कि तूने भून के किसी ऊलजलूल काम मे रुपये धूल किए तो फिर उमर भर तेरी बात न मानूँगा । शिवप्रसाद (शब्द०) । २ अनाड़ी । अहमक । बसमझ । जैसे,—वह बड़ा ऊलजलूल आदमी है । ३ बेअदब । अशिष्ट ।

ऊलना—क्रि० अ० [सं० उल्लल् या उत् + √लल्] १ कूदना । उछलना । आनंदित होने के कारण उछलना, कूदना । ३ उमगित होना । उ०—साज सज्जि चल्यौ सुफुनि जनु ऊलौ दरियाव ।—पृ० रा० ६१।६२० । ४ अकुलाना । ५ आतुर होना ।

ऊला—वि० [हिं० ऊलना] उछाल । वेग । उ०—और भी बढ़ाये पैंग दोनों ओर ऊले से ।—साकेत, पृ० २७३ ।

ऊलर[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कश्मीर देश की एक झील ।

ऊलर(पु)†[2]—वि० [हिं०] झुका हुआ । घिरा हुआ । उ०—घमंड घटा ऊलर होइ आई, दामिनि दमक डरावे । संत० वाणी०, भा० २, पृ० ७३ ।

ऊलहना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत् + लस्, प्रा० उल्लस, उल्लर] १ विकसित होना । २ दे० 'उलसना' । उ०—दोप बसंत को दीजै कहा, उलही न करील की डारन पाती ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३८ ।

ऊला(पु)—अव्य० [हिं० ऊरे] इधर । इस ओर । उ०—ऐ राठौड हुवै ज्यां आगै भिडतां ऊला पैला भागै ।—रा०, रू०, पृ० ६० ।

ऊलालना(पु)—क्रि० स० [देश०] उछालना । उडाना । उ०—आडा डूँगर वन घणा ताह मिलीजइ केम । उलालीजइ मूँठ भरि मन सीचाणउ जेम ।—ढोला०, दू० २१२ ।

ऊली—वि० [हिं० ऊलना = उछलना = अस्थिर] छली । उ०—छछछा छाया देषनि भूली । छल बल करैं छलैंगी ऊली ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२१ ।

ऊलूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उलूक' ।

ऊवडना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उमडना' । उ०—ऊजलियाँ धारां ऊवडियो परनाले जल रूहिर पडै ।—वेलि०, दू० १२० ।

ऊवावाई(पु)†—अव्य० [देश०] ऊटपटांग । व्यर्थ । उ०—ऊपर तेरे पहिचानै, ऊवावाई जगतहिं जानै ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २१६ ।

ऊप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊसर भूमि । रेहवाली भूमि । २ नोनी मिट्टी । लोना मिट्टी । ३. अम्ल । क्षार । ४. दरार । छेद । ५. कान का छेद । ६. मलय पर्वत । ७ उषा । भोर । ८. वीर्य [को०] ।

ऊपक—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रत्यूष । भोर । २ नमक । ३ काली मिर्च [को०] ।

वल खडे होकर तप करते हैं। २ शरभ नामक सिंह जिसके आठ पैरों मे से चार पैर ऊपर को होते थे।

ऊद्ध्वंताल--सज्ञा पुं० [स०[सगीत मे एक ताल विशेप।

ऊद्ध्वंतिक्त—सज्ञा पुं० [स०] चिरायता।

ऊद्ध्वंदृष्टि[1]—वि० [स०] जिसकी दृष्टि ऊपर की ओर हो। महत्वाकाक्षी।

ऊद्ध्वंदृष्टि[1]—सज्ञा स्त्री० योग की एक क्रियाविशेप जिसमे दृष्टि ऊपर की ओर ले जाकर त्रिकुटी पर जमाते हैं[कौ०]।

ऊद्ध्वंदेव—सज्ञा पुं० [स०] विष्णु। नारायण।

ऊद्ध्वंदेह—सज्ञा स्त्री० [स०] मृत्यु के पश्चात् मिलनेवाला सूक्ष्म या लिगशरीर को।

ऊद्ध्वंद्वार--सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मरध्र। दसवाँ द्वार। ब्रह्माड का छिद्र।

विशेप—कहते हैं, इसमे प्राण निकलने पर मुक्ति होती है।

ऊद्ध्वंनयन[1]—सज्ञा पु० [स०] शरभ नामक जतु।

ऊद्ध्वंनयन[2]– वि० १ जिसके नेत्र ऊपर की ओर हो। २. महत्वाकाक्षी [कौ०]।

ऊद्ध्वंनेत्र—वि० [स०] १ जो ऊपर देख रहा हो। २ महत्वाकाक्षावाला [कौ०]।

ऊद्ध्वंपाद—सज्ञा पुं० [स०] शरभ नामक पौराणिक जतु।

विशेप—इसके आठ पैर माने गए हैं जिनमें से चार ऊपर को होते हैं।

ऊद्ध्वंपुड्र—सं० पुं०[स० ऊद्ध्वपुण्ड्र]खडा तिलक। वैष्णवी तिलक।

ऊद्ध्वंबाहु—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार के तपस्वी जो अपने एक बाहु को ऊपर की ओर उठाए रहते हैं। वह बाहु सूखकर बेकाम हो जाता है।

ऊद्ध्वंबृहती--सज्ञा स्त्री० [स०] एक वैदिक छद।—प्रा० भा० प०, पृ० १७२।

ऊद्ध्वंमडल—सज्ञा पुं० [स० उद्ध्वंमडल] वायुमडल का ऊपरी भाग, जो पृथ्वीतल से २० मील की ऊँचाई तक माना जाता है [कौ०]।

ऊद्ध्वंमथी[1]—वि० [स० ऊद्ध्वंमन्थिन्] १ जो अपने वीर्य को गिरने न दे। स्त्रीप्रसग से बचनेवाला। ऊद्ध्वंरेता।

ऊद्ध्वंमथी[2]—सज्ञा पु० ब्रह्मचारी।

ऊद्ध्वंमुख[1]—सज्ञा पुं० [स०] अग्नि। आग।

ऊद्ध्वंमुख[2]—वि० जिसका मुँह ऊपर की ओर हो।

ऊद्ध्वंमूल[1]—सज्ञा पुं० [स०] संसार। दुनिया। जगत्।

ऊद्ध्वंमूल[2]—वि० जिसकी जड ऊपर की ओर हो।

ऊद्ध्वंरेखा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार रामकृष्ण आदि विष्णु के अवतारो के ४८ चरणचिह्नो मे से एक चिह्न।

विशेप—अँगूठे और अँगूठे के निकटवाली अँगुली के बीच से निकलकर यह रेखा सीधे और लंबे आकार मे एँडी के मध्य भाग तक गई हुई मानी जाती है।

ऊद्ध्वंरेता[1]—वि० [सं० उद्ध्वंरेतस] जो अपने वीर्य को गिरने न दे। ब्रह्मचारी। स्त्रीप्रसंग से परहेज करनेवाला।

ऊद्ध्वंरेता[2]—सज्ञा पुं० १ महादेव। २ भीष्म पितामह। ३. हनुमान। ४ सनकादि। ५ सन्यासी।

ऊद्ध्वंलिगी—सज्ञा पुं० [सं० उद्ध्वंलिङ्गिन्] १ शिव। महादेव। २. ऊर्ध्वरेता। ब्रह्मचारी।

ऊद्ध्वंलोक—सज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश। २ वैकुठ। स्वर्ग।

ऊद्ध्वंवात—सज्ञा पुं० [स०] १ अधिक डकार आने का रोग। २ शरीर के ऊपरी भाग में रहनेवाला वायु (कौ०)।

ऊद्ध्वंवायु—सज्ञा स्त्री० [स०] १ डकार। २ शरीर के ऊपरी भाग मे रहनेवाली वायु (कौ०)।

ऊद्ध्वंशायी[1]—वि० [स० ऊद्ध्वंशायिन्] ऊपर की ओर मुँह करके सोनेवाला।

ऊद्ध्वंशायी[2]—सज्ञा पुं० शिव। महादेव।

ऊद्ध्वंशोधन--सज्ञा पुं० [स०] वमन। कै [कौ०]।

ऊद्ध्वंश्वास--सज्ञा पु० [स०] १ ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उल्टी साँस। २ श्वास की कमी या तगी।

क्रि० प्र०—चलना।—लगना।

ऊद्ध्वंसानु[1]--वि० [स०] १ अधिकाधिक ऊपर जानेवाला। २ आगे निकल जानेवाला।

ऊद्ध्वंसानु[2]—सज्ञा पुं० पर्वत की चोटी। पर्वतशिखर।

ऊद्ध्वंस्थ—वि० [स०] जो ऊपर हो। उच्च [कौ०]।

ऊद्ध्वंस्थिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अश्व का शिक्षण। घोड़ा निकालना या फेरना। २ अश्व की पीठ। ३ उच्चता। उदात्तता। ४ उत्थान। समुत्थान। ५ सीधा खडा होना। खड़े होने की स्थिति [कौ०]।

ऊद्ध्वंस्रोता—वि० [स०] स्त्री प्रसग से बचनेवाला। ऊद्ध्वंरेता। ब्रह्मचारी [कौ०]।

ऊद्ध्वांग—सज्ञा पु० [स० उद्ध्वाङ्ग] शरीर का ऊपरी भाग। सिर। मूँड। मस्तक।

ऊद्ध्वाकर्पण—सज्ञा पुं० [स०] ऊपर की ओर का खिंचाव।

ऊद्ध्वायन—सज्ञा पुं० [स०] १ ऊपर की ओर गमन। २ ऊपर की ओर उडने का कार्य। ३ स्वर्ग जाने का मार्ग [कौ०]।

ऊद्ध्वारोह—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्ध्वारोहण'।

ऊद्ध्वारोहण—सज्ञा पुं० [स०] ऊपर की ओर चढना। २ स्वर्गारोहण। स्वर्गगमन। ३ मरना। देहात। इतकाल।

ऊर्ध(पु)—क्रि० वि० [स० उद्ध्वं] दे० 'ऊर्ध्व'।

ऊर्ध्व[1]—क्रि० वि० [स०] दे० 'ऊद्ध्वं'।

ऊर्ध्व[2]– वि० दे० 'ऊद्ध्वं'।

ऊर्ध्वदृग—क्रि० वि० [स० ऊर्ध्वदृक्, ऊर्ध्वदृग्] आँख ऊपर किए हुए या उठाए हुए। उ०—ऊर्ध्वदृग गगन मे देखते मुक्ति मणि। —गीतिका पृ० २०।

ऊर्ध्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक विशेप प्रकार की प्राचीन नौका जो ३२ हाथ लबी, १६ हाथ चौडी और १६ हाथ ऊँची होती थी।

ऊर्नंनाभि(पु)—संज्ञा पुं० [स० 'ऊर्णनाभि'] दे० 'ऊर्णनाभि'। उ०—

ऊरुस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० उरुस्तम्भ] वात का एक रोग जिसमें पैर जकड जाते हैं।

ऊरुस्तंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊरुस्तम्भा] केले का पेड़ [को०]।

ऊरु¹(ए)—संज्ञा पुं० [सं० ऊरु] दे० 'ऊरु'। उ०—नीवी बंधन दृढ कै धरैं। ऊरु जमन बाँधि इव करैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १४६।

ऊरू²—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता। अलई।

ऊरुद्भव¹—संज्ञा पुं० [सं०] ऊरु से उत्पन्न वैश्य [को०]।

ऊरुद्भव²—वि० [सं०] जो ऊरु या जाँघ से उत्पन्न हो [को०]।

ऊरे(ए)†—वि० [हिं० ओर] इधर। पहले। उ०—अब श्री गुसाँई की सेवकिनी एक ब्राह्मनी, उज्जैन ते चार कोस ऊरे में एक ग्राम है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१३।

ऊर्ज¹—वि० [सं० ऊर्जस्, ऊर्ज] बलवान। शक्तिमान। बली।

ऊर्ज²—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऊर्जस्वल, ऊर्जस्वी] १. बल। शक्ति। २ कार्तिक मास। ३ एक काव्यालंकार जिसमें सहायकों के घटने पर भी अहंकार का न छोडना वर्णन किया जाता है। उ०—को बपुरा जा मिल्यो है त्रिभीषण ह्वै कुल दूषण जीवैंगो कौ लौं। कुंभ करन्न मरचो मघवा रिपु तौऊ कहा न डरो यम सौं यों। श्री रघुनाथ के गातन सुदरि जानहु तू कुशलात न तौ लौं। शाल सर्व दिगपालन को कर रावण के करवास है जौ लौं। (इसमें भाई और पुत्र के न रहने पर भी रावण अहंकार नहीं छोड़ता)।—केशव (शब्द०)। ४ अन्न का सारभूत रस (को०)। ५ पानी (को०)। ६ आहार। भोजन(को०)। ७ जीवन (को०)। ८ श्वास (को०)। ९ प्रयत्न। उद्योग (को०)। १० उत्साह (को०)। ११ प्रजनन शक्ति (को०)।

ऊर्जमेध—वि० [सं०] अत्यंत प्रतिभाशाली। अत्यंत चतुर [को०]।

ऊर्जस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल। शक्ति। पराक्रम। २. उमंग। उत्साह। ३ भोज्य वस्तु। आहार।

ऊर्जस्वल—वि० [सं०] १ बलवान्। बली। शक्तिमान्। २ श्रेष्ठ। उ०—करा रहे ऊर्जस्वल बल से नित्य नवल कौशल का मेल। साथ रहे हैं सुभट विकट बहु भय विस्मय साहस के खेल। —साकेत, पृ० ३७५। ३. तेजस्वी। तेजयुक्त (को०)।

ऊर्जस्वान्—वि० [सं० ऊर्जस्वत्] १ ऊर्जस्वी। २. रसीला। ३ खाद्ययुक्त [को०]।

ऊर्जस्वित—वि० [सं०] शक्तिशाली। श्रेष्ठ। कांतियुक्त। उ०—मैं तुम्हें पवित्र, उज्वल और ऊर्जस्वित पाता हूँ।—कंकाल, पृ० १११।

ऊर्जस्वी¹—वि० [सं० ऊर्जस्विन्] १ बलवान्। शक्तिमान्। २ तेजवान्। ३. प्रतापी।

ऊर्जस्वी²—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार। जहाँ रसाभास या भावाभास स्थायी भाव का अथवा भाव का अंग हो ऐसे वर्णन में यह अलंकार माना जाता है।

ऊर्जा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्जस्] १. शक्ति। बल। २ आहार। ३. उत्पत्ति। ४ दक्ष की पुत्री का नाम जो वशिष्ठ के साथ ब्याही गई थी [को०]।

ऊर्जित—वि० [सं०] १ शक्तिशाली। बलवान्। २ महान्। प्रतापी। ३. गौरवशाली। योग्य। उदात्तचरित्र। ४. गंभीर। उ०—दृश्य मेवाड के पवित्र बलिदान का ऊर्जित आलोक आँख खोलता था सबकी।—लहर, पृ० ६९।

ऊर्जी—वि० [सं०] जहाँ खाने पीने की वस्तुएँ अत्यधिक हों [को०]।

ऊर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊन। भेड या बकरी के बाल।

ऊर्णनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी। लूता।

ऊर्णनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी।

ऊर्णपट—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी [को०]।

ऊर्णम्रद—वि० [सं०] ऊन की तरह मुलायम [को०]।

ऊर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊन। २ चित्ररथ नामक गंधर्व की स्त्री। ३ भौंहों के मध्य की भौंरी [को०]।

ऊर्णापिंड—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्णापिण्ड] ऊन का गोला [को०]।

ऊर्णायु—संज्ञा पुं० [सं०] १ कंबल। ऊनी वस्त्र। २ एक गंधर्व का नाम। ३ भेंडा (को०)। ४. मकड़ा (को०)।

ऊर्णाविल—वि० [सं०] ऊनी [को०]।

ऊर्णावान्—वि० [सं० ऊर्णावत्] ऊनी [को०]।

ऊर्णासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊन का धागा [को०]।

ऊर्णुत—वि० [सं०] ढका हुआ [को०]।

ऊर्दर—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनाज नापने का पात्र। २ वीर। ३ राक्षस [को०]।

ऊर्द्ध्व¹—क्रि० वि० [सं०] ऊपर। ऊपर की ओर।

ऊर्द्ध्व²—वि० १ ऊँचा। ऊपर का। ऊपर की ओर किए हुए। २ खडा। ३ बिखराए हुए (बाल) [को०]।

विशेष—हिंदी में यौगिक शब्दों में ही यह प्राय आता है जैसे; उद्ध्वंगमन, उद्ध्वंरेता, ऊर्द्धश्वास।

ऊर्द्ध्व³—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिशाओं में से एक। सिर के ठीक ऊपर की दिशा। २. उच्चता। ऊँचाई [को०]।

ऊर्द्ध्व⁴—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

ऊर्द्ध्वकंठ—वि० [सं० उर्द्ध्वकण्ठ] उठी हुई गरदनवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृदंग।

ऊर्द्ध्वकर्ण—वि० [सं०] उपर को उठे हुए या खडे कानवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का ऊपरी भाग [को०]।

ऊर्द्ध्वकेश—वि० [सं०] १ खड़े बालोंवाला। २ बिखरे बालोंवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्च पद-प्राप्ति के लिये कार्य या क्रिया।

ऊर्द्ध्वग—वि० [सं०] १ ऊपर को जानेवाला। २ उठता हुआ। जो ऊपर को गया हो [को०]।

ऊर्द्ध्वांगुलि—वि० [सं० उर्द्ध्वाङ्गुलि] उँगलियों को ऊपर किए हुए [को०]।

ऊर्द्ध्वगति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपर की ओर चाल। २ मुक्ति।

ऊर्द्ध्वगति²—वि० ऊपर की ओर जानेवाला [को०]।

ऊर्द्ध्वगामी—वि० [सं० उर्द्ध्वगामिन्] १ ऊपर जानेवाला। २. मुक्त। निर्वाणप्राप्त।

ऊर्द्ध्वचरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार के तपस्वी जो सर के

ऊभा—वि० [हिं० ऊभना = खड़ा होना] खड़ा। स्थित। उ०—परी करै श्रो ऊभा धावै, वाहर भीतर दौडा आवै।—कबीर० सा०, पृ० ५४२।

ऊभासांसी—सज्ञा स्त्री० [हिं० ऊबना + सांस अथवा ऊभ + सास] दम घुटना। सांस फूलना। ऊबना।

ऊभि(पु)—वि० [हिं० ऊभ] दे० 'ऊभ'। उ०—निसँसि ऊभि भरि लीन्हेसि स्वांसा। भई अधार जियन कै आसा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८८।

ऊमती(पु)—वि० [स० उन्मत्त] १ उन्मत्त। पागल। विक्षिप्त। २ विचारहीन। उ०—चिल्हानी वुलि पत्ति सो, ऊमती वरजत। वड गुरजन वत्ती सुनी सो दिट्ठी दिपि कत।—पृ० रा०, ६१।१८५१।

ऊमक(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० उमग] झोक। उठान। वेग। उ०—इक ऊमक अरु दमक सहारै। लेहि सांस जब वीसक मारै।—लाल (शब्द०)।

ऊमट(पु)—सज्ञा पु० [देश०] क्षत्रियों का एक भेद। उ०—ऊमट अनेक अवनी निधान। अरवीन चढे आए अमान।—सूदन(शब्द०)।

ऊमटना(पु)—क्रि० स० [हिं० उमॅडना] दे० 'उमडना'। उ०—विरह महाघण ऊमटयउ, थाह निहालइ मुघ्घ।—ढोला० दू० १५।

ऊमना(पु)—क्रि० अ० [देश०] उमडना। उमगना। उ०—वरसत भूमि भूमि उनए वादर महि कहूँ चूमि चूमि। निसरि परी सौंपिनि सी नदिया वेगि चली ऊमि ऊमि।—देवस्वामी (शब्द०)।

ऊमर[1]—संज्ञा पुं० [स० उदुम्बर] १ गूलर। उदुवर। २ वनियों की एक जाति।

ऊमर(पु)[2]—सज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] दे० 'उम्र'। उ०—दौडे ऊमर पटका देती, छित जिमि वादल छाया।—रघु० रू०, पृ० १६।

ऊमरा—सज्ञा पुं० [हिं० ऊमर] दे० 'ऊमर'।

ऊमरि(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० ऊमर] दे० 'ऊमर'। उ०—तरु ऊमरि को आसन अनूप। यहु रचित हेय मय विश्वरूप।—राम० धर्म०, पृ० १५५।

ऊमस—सज्ञा स्त्री० [हिं० ऊमस] दे० 'उमस'।

ऊमहना—क्रि० अ० [हिं० उमहना] दे० 'उमहना'। उ०—साहिव मारू ऊमह्या, खोडइ होइ रहह।—ढोला० दू०, ३१७।

ऊमा†—सज्ञा [हिं०] दे० 'उवी'।

ऊमिरि—सज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] दे० 'उम्र'। उ०—वीती ऊमरि मोर वीती निसि न वियोग।—नट०, पृ० १०४।

ऊमी†—सज्ञा स्त्री० [स० उम्बी] जौ या गेहूँ की हरी वाल। दे० 'उवी'।

ऊर[1]—सज्ञा पुं० [देश०] पजाब मे धान वोने की एक रीति। जड़हन रोपना।

विशेष—वेहन के पौधे जब एक महीने के हो जाते हैं तब उन्हें पानी से भरे हुए खेत मे दूर दूर पर वैठाते हैं।

ऊर[2](पु)—वि० हिं० श्रोर] दे० 'ओर'। उ० —गरव करि ऊभो उइ सामग्यो राव, मो सरीखा नहीं ऊर भुवाल।—वी० रासो, पृ० ३२।

ऊर[3]—सज्ञा पुं० [हिं० ओर] ओर। अत।

ऊरज[1](पु)—सज्ञा पुं० [स० उरोज] दे० 'उरोज'। उ०—तरुनी, रमनी सुदरी, तनु ऊरज पुनि सोइ। तिय तोसी तिहुँ लोक मे रची विरचि न कोइ—नद० ग्र०, पृ० ८६।

ऊरज[2](पु)—सज्ञा पुं० [स० ऊर्ज] दे० 'ऊर्ज'।

ऊरण[1](पु)—सज्ञा पुं० [सं० आवरण] आवरण वस्त्र। कपडा। उ०—सुभ ऊरण जघ सुनोमय। पदकन्न अभूषण सज्ज लय।—पृ० रासो, पृ० १६४।

ऊरण[2](पु)—वि० [हिं० ऊऋण] दे० 'उऋण'। उ०—करमूं जग ऊरण करण पर दुख हरण पमार।—बाँकी० ग्र०, पृ० ७७।

ऊरध(पु)—वि० [सं० उर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व'।

ऊरधरेता(पु)—वि० [स० ऊर्ध्वरेतस] दे० 'ऊर्ध्वरेता'। उ०—अरु समुझाये योग ही वहु भाँति वहु अग। ऊरधरेता ही कही जीतन विद अनग।—भक्ति०, पृ० ५७।

ऊरम—सज्ञा स्त्री० [देश०] आरम कलाओं मे से एक। उ०—ऊरम वोलिये मन धूरम वोलिये पवन।—गोरख०, पृ० २०४।

ऊरमधूरम—वि० [हिं० ऊरम + धूरम] असबद्ध। असगत। उ०—ऊरम-धूरम जोती झाला।—गोरख०, पृ० २४१।

ऊरमी—सज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्मि] लहर। उ०—सरित सग करि छुभित सु सिधु। उमगि ऊरमी ह्वै गयो अधु।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

ऊरव्य—सज्ञा पुं० [स०] ऊरुज। वैश्य।

ऊरस—सज्ञा स्त्री० [स० विरस] विरस। स्वादहीन। उ०—नीरस निगोड़ो दिन भरै भीरु ऊरसो।—घनानद, पृ० १८८।

ऊरा—वि० [हिं० पूरा का अनु०] न्यून। कम। उ०—पूरन सार न कवहूँ ऊरा।—प्राण०, पृ० ३६।

ऊरी—सज्ञा स्त्री० [देश०] जुलाहों का एक औजार। दुतकला। सलाक।

ऊरु—सज्ञा पुं० [सं०] जानु। जघा। रान। उ०—रोक सकता हूँ ऊरुओं के वल से ही उसे, टूटे भी लगाम यदि मेरी कभी भूले से।—साकेत, पृ० ७३।

ऊरुग्लानि—सज्ञा स्त्री० [सं०] जाँघों की कमजोरी [को०]।

ऊरुज[1]—सज्ञा पुं० [स० ऊरु + ज] १ जघा से उत्पन्न वस्तु। २ वैश्य जाति जो कि ब्रह्मा के जघों से उत्पन्न कही जाती है।

ऊरुज[2]—वि० जो जाँघ से उत्पन्न हो [को०]।

ऊरुजन्मा—सज्ञा पुं० [स० ऊरुजन्मन्] वैश्य।

ऊरुफलक—सज्ञा स्त्री० [स०] जाँघ की हड्डी। कूल्हे की हड्डी [को०]।

ऊरुसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० ऊरुसन्धि] पट्टा। जाँघ का जोड [को०]।

ऊरुसभव—वि० [ऊरुसम्भव] जाँघ से उत्पन्न [को०]।

ऊरुस्कभ—सज्ञा पुं० [स० ऊरुस्कम्भ] दे० 'ऊरुस्तम' [को०]।

ऊपरी- वि० [हिं० ऊपर+ई (प्रत्य०)] १ ऊपर का। २. बाहर का। बाहरी। ३. जो नियत न हो। बँधे हुए के सिवा। गैर मामूली। ४ दिखौआ। नुमाइशी।

ऊपरीफसाद--संज्ञा पुं० [हिं० ऊपरी+अ० फसाद] भूतबाधा। प्रेतादि।

ऊपरोफेर—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपरी+फेर] दे० 'ऊपरी फसाद'।

ऊपलां—संज्ञा पु० [हिं० उपला] दे 'उपला'।

ऊपलो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ऊपरी'। उ०—दादू यह परिख सराफी ऊपली, भीतरि की यहु नांहि। अतरि की जानें नहीं, तावें खोटा खांहि।—दादू०, पृ० २८८।

ऊपलो(पु) - वि०[हिं० ऊपर+ओ(प्रत्य०)]ऊपर का। ऊपरी। उ०-थारो नाक सरीखा ऊपलो होठ।—बी० रासो, पृ० ७२।

ऊपाड़ना—क्रि० स० [हिं० उपाडना] दे० 'उपारना'। उ०--ऊपाडे आबू जिली, पर निंदारी पोट।--बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८।

ऊबंध[1](पु)—संज्ञा पुं० [स० उद्वध] बाँध। उ०—मुरभ थाँन मेवाड, राँण राजाँन सरीखा। मट्टुण देख ऊबंध, करै कुण वध परीखा। —रा० रू० पृ० २३।

ऊबंध[2]--वि० बंधरहित। मर्यादा रहित। उ०—सितर खाँन सकबंध, कटक अनमव छिलेकर। असपत हद सामंद, कीध ऊबंध प्रमेसर।—रा० रू०, पृ० १५३।

ऊबंधना(पु)--क्रि० स० [हिं० बाँधना] बाँधना। उ०—सूर्जे घर बाधो सकबंधी बाँधे पाप किया ऊबंधी।—रा० रू०, पृ० १४।

ऊब[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० उबना] कुछ काल तक निरंतर एक ही अवस्था मे रहने से चित्त की व्याकुलता। उद्वेग। घबडाहट। उ०—चहत न काहू सो न कहत काहू की सबकी सहत, उर अंतर न ऊब है।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ऊबकर साँस लेना=ठंडी साँस लेना। दीर्घ निश्वास खीचना। उ०—हाय धोय जब बैठो लीन्ह ऊबि के साँस। —जायसी (शब्द०)।

ऊब[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊम=हौसला, उमंग] उत्साह। उमंग। उ०—नदनंदन लै गए हमारी अब ब्रज कुल की ऊब। सूरश्याम तजि औरे सूझै ज्यो खेरे की दूब।—सूर (शब्द०)।

ऊबट[1]—संज्ञा पुं० [स० उद्=बुरा+वर्त्म, वट्ट=मार्ग] कठिन मार्ग। अटपट रास्ता। उ०--जब वर्षा में होत है मारग जल सयोग। बाट छाँडि ऊबट चलत सकल सयाने लोग।—गुमान (शब्द०)।

ऊबट[2]--वि० ऊबड़ खाबड। ऊँचा नीचा। उ०—ऊबट न गैल सदा सिंहन की गैल बनजोर के ले बैल मानों बोलें डकरात से। —हनुमान (शब्द०)।

ऊबड खावड—वि०[अनु०] ऊँचा नीचा। जो समथल न हो। अटपट।

ऊबटना(पु)—क्रि० अ० [उद्वृत] उत्पन्न होना। पैदा होना। उदित होना। उ०--काट जिका कुल ऊबटै आठ बाट इतफाक।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ६४।

ऊबना- क्रि० अ० [स० उद्वेजन, पा० उव्विजन, हिं० उबियाना] उकताना। घबराना। अकुलाना। कुछ काल तक एक ही अवस्था मे निरतर रहने से चित्त की व्याकुलता। उ०--ऊबत हौ डूबत डगत, हौ डोलत हौ बोलत न काहे प्रीति रीति न रितै चले। कहै पदमाकर- त्यों उससि उसासनि सो आंसुवै अपार आइ आँखिन इतै चले—। पद्माकर (शब्द०)।

ऊबर(पु)—वि० [हिं० उबरना] अतिरिक्त। अधिक।

ऊबरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उबरना] दे० 'उबरना'।

ऊबाँ(पु)- संज्ञा पु० [देश०] ऊसर। उ०—ऊबाँ जलबन कायराँ, विदर्ग कुल विवहार —बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ३५।

ऊबेड़ना—क्रि० स० [हिं० उबेरना] दे० उबेरना'। उ०—जेड़ो सीहा जाड, ऊबेडै ऊबहहरो।--बाकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १७।

ऊब्बट(पु)—संज्ञा पु० [हिं० ऊबट] दे० 'उबट'। उ०—बढ उब्बटं बाट थट्टे सुचल्ले।--ह० रासो, पृ० ६८।

ऊभ(पु)[1]--वि० [हिं० ऊभना=खड़ा होना] ऊँचा। उभरा हुआ। उठा हुआ। उ०—नर पीपर सिर ऊभ जो कीन्हा। पाकर तिन सूखे फर दीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

ऊभ[2](पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊब] १ व्याकुलता। ऊब। उ०—राजै लीन्ह ऊभ भर साँसा। ऐस बोल जनु बोल निरासा।—जायसी ग्र० (गुप्त०), पृ० ६८। २ उमस। गरमी। ३. हौसला। उमग। हुब्ब।

ऊभचूभ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊभ+चूभ] १ डूबना उतराना। २ आशा निराशा के मध्य की स्थिति।

क्रि० प्र० होना=उ०—व्यस्त महा कच्छप सी धरणी, ऊभ-चूभ थी विकलित सी।—कामायनी, पृ० १५।

ऊभचूभ[2]--क्रि० वि० पूर्ण रूप से या सराबोर (जल)।

ऊभट(पु)—संज्ञा पु० [हिं० उबट] दे० 'ऊबट'। उ०—पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव। निगुरा तो ऊभट चलै, जब तब करै कुदाव।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० १७।

ऊभना[1](पु)—क्रि० अ० [स० उद्भवन=ऊपर होना, गुज० ऊभुं= खडा होना] १ उठना। खडा होना। उ०—(क) बिरहिन ऊभी पथ सिर पथी पूछै धाय। एक शब्द कहो पीव का कबरे मिलेंगे आय।—कबीर (शब्द०)। (ख) एक खडा होना लहै इक ऊभा ही बिललाय। समरथ मेरा साँइया सूता देइ जगाय। --कबीर (शब्द०)। (ग) ऊभा मारूँ बैठा मारूँ मारूँ जागत सूता। तीन भवन मे जाल पसारूँ कहाँ जायगा पूता।—दादू (शब्द०)। (घ) करुणा करति मदोदरि रानी। चौदह सहस सुदरी ऊभी उठै न कंत महा अभिमानी।—सूर (शब्द०)। २. उत्पन्न होना। आना या लगना (लाज)। उ० —ढोलउ मन चलपथ थयउ ऊभउ साहइ लाज, साम्हउ बीसू आवियउ, आइ कियउ सुमराज।—ढोला० दू० १०५।

ऊभना[2]—क्रि० [हिं० ऊबना] घबडाना। व्याकुल होना।

ऊभरना(पु)--क्रि० अ०[हिं० उभरना]दे० 'उभरना'। उ०— उरमाल भलंभलण ऊभरिय।—रा० रू०, पृ० ३४।

ऊनोदरता तप७—संज्ञा पुं० [सं०] जैन लोगों का एक व्रत जिसमें प्रति दिन एक एक ग्रास भोजन घटाते जाते हैं।

ऊनौ७—वि० दे० 'ऊन'। उ०—रसहूँ लगि कल कत सौं कलह न कीजै काउ। कानहिं जो ऊनौ करै, सो सोनो जरि जाउ। —नंद० ग्र०, पृ० १५२।

ऊन्हाल—संज्ञा पुं० [सं० उष्णकाल, प्रा० उण्ह+आल=ऊण्हाल] उष्णकाल। ग्रीष्म ऋतु। उ०—कहिए मालवणी तणइ रहियइ साल्ह विमास। ऊन्हालउ ऊतारियउ, प्रगटचउ पावस मास। —ढोला० दू०, २४२।

ऊप—संज्ञा पुं० [सं० वप्] अन्न का एक तरह का ब्याज।

विशेष—इसका व्यवहार यों है कि बीज बोने के लिये जो अन्न किसान लेते हैं उसके बदले में फसल के अंत में प्रति मन दो तीन सेर अधिक देते हैं। कहीं कहीं ड्योढ़ा सवाई भी चलता है।

ऊप'७—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ओप'। उ०—(क) तौ निरमल मुख देखै जोग होइ तेहि ऊप।—जायसी (शब्द०)। (ख) अजब अनूप रूप चमक दमक ऊप, सुंदर सोभित अति सुहावनी।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० १४६।

ऊपजना७—क्रि० अ० [हिं० उपजना] दे० 'उपजना'। उ०—शब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेशा मोर।—दरिया० बानी०, पृ० ३।

ऊपट७—संज्ञा पुं० [सं० ऊप+पट] उपवस्त्र। उत्तरीय। वह चादर जो दीक्षा में गुरु देता है। उ०—ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय।—मलूक०, पृ० ३२।

ऊपडना७—क्रि० अ० [हिं० उपडना] दे० 'उपणना'। उ०—उत्तर दी भुईं जू ऊपडइ, पालउ पवन घणाह।—ढोला० दू०, २६६।

ऊपति७—संज्ञा, स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—तब वस भाव जरतित्त मान, संभरी हुत ऊपत्ति थान।—पृ० रा०, ५७।२६३।

ऊपना७—क्रि० अ०[हिं० उपना] दे० 'उपना'। उ०—वदन के ढिग मानौ ऊपनी है चंदनी।—सुंदर० ग्र० (जी०), पृ० १६८।

ऊपर—क्रि० वि० [सं० उपरि][वि० ऊपरी] १ ऊँचे स्थान में। ऊँचाई पर आकाश की ओर। जैसे,—तसवीर बहुत ऊपर है, नहीं पहुँचोगे। आधार पर। सहारे पर। जैसे,—(क) पुस्तक मेज के ऊपर है। (ख) मेरे ऊपर कृपा कीजिए। ३ ऊँची श्रेणी में। उच्च कोटि में। जैसे,—इनके ऊपर कई कर्मचारी हैं। ४ (लेख में) पहले। जैसे,—ऊपर लिखा जा चुका है कि । ५ अधिक। ज्यादा। जैसे,—हमें यहाँ आए दो घंटे से ऊपर हुए। ६ प्रकट में। देखने में। जाहिरी तौर पर। प्रत्यक्ष में। बाहर में। उ०—ऊपर हित अंतर कुटिलाई। —विश्राम (शब्द०)। ७ तट पर। किनारे पर। जैसे,—ताल के ऊपर, गाँव से थोड़ा हटकर, एक बड़ा भारी बड़ का पेड़ है। ८ अतिरिक्त। परे। प्रतिकूल। उ०—वर्णाश्रम कर मान यदि, तब लगि श्रुति कर दास। वर्णाश्रम ते त्यक्त जे श्रुति ऊपर तेहि वास।—(शब्द०)।

मुहा०—ऊपर ऊपर=बाला बाला। अलग अलग। निराले निराले। बिना और किसी को जताए। चुपके से। जैसे,—तुम ऊपर ऊपर रुपया फटकार लेते हो, हमें कुछ नहीं देते। ऊपर ऊपर जाना=लक्ष्य से बाहर जाना। निष्फल होना। व्यर्थ जाना। कुछ प्रभाव न उत्पन्न करना। जैसे,—मैं लाख कहूँ, मेरा कहना तो सब ऊपर ऊपर जाता है। ऊपर का दम भरना=ऊँची साँस चलना। उखड़ी साँस चलना। ऊपर की आमदनी=(१) वह प्राप्ति जो नियत या निश्चित से अधिक हो। बँधी तनख्वाह या आमदनी के सिवाय मिली हुई रकम। (२) इधर उधर से फटकारी हुई रकम। ऊपर की दोनों जाना=दोनों आँखें फूटना। उ०—ऊपर की दोनों गईं हिय की गई हेराय। कह कबीर चारिहुँ गईं तासों कहा बसाय।—कबीर (शब्द०)। ऊपर छार पड़ना=मर जाना। उ०—जौ लहि ऊपर छार न परे, तौ लहि यह तृष्णा नहीं मरे।—जायसी (शब्द०)। ऊपर टूट पड़ना=धावा करना। आक्रमण करना। ऊपर तले=(१) ऊपर नीचे (२) एक के पीछे एक। आगे पीछे। लगातार। क्रमश। ऊपर तले के=आगे पीछे के भाई या बहनें। वे दो भाई या बहनें जिनके बीच में और कोई भाई या बहन न हुई हो। पू० तरउपरिया (स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में बराबर खटपट रहा करती है।) ऊपर लेना=जिम्मे लेना। हाथ में लेना। (किसी कार्य का) भार लेना। जैसे,—तुम यह काम अपने ऊपर लोगे। ऊपरवाला=(१) ईश्वर। (२) अफसर। ऊँचे दरजे का। (३) भृत्य। सेवक। नौकर। चाकर। काम करनेवाला। (४) अपरिचित। बिना जाना बूझा आदमी। बाहरी आदमी। ऊपर से—(१) बलदी से। (२) इसके अतिरिक्त। सिवा इसके। (३) वेतन से अधिक। घूस। रिश्वत। ऊपर की आय। भेंट। नज्र। असाधारण आय। (४) प्रत्यक्ष में दिखाने के लिये। जाहिरी तौर पर। जैसे,—वह मन में कुछ और रखता है और ऊपर से मीठी मीठी बातें करता है। ऊपर से चला जाना=कचर के चले जाना। रौंदते हुए जाना। ऊपर ही से उसासें लेना=दिखावटी रंज या दुःख करना। उ०—जो न जानें ऊपर ही से उसके लिये उसासें लिया करते हैं। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५५। ऊपर होना=(१) बढ़ जाना। आगे निकल जाना। (२) बढ़कर होना। श्रेष्ठ होना। (३) प्रधान होना। जैसे,—(क) उन्हीं की बात सबके ऊपर है। (ख) भाग्य ही सबके ऊपर है।

ऊपरचूँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+चूँटना=खोंटना] बाल को ऊपर से काट लेना और डंठल को खड़ा रहने देना। छपका। ऊपरछँट।

ऊपरहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+देश० हार] गाँव से दूर स्थित कम उपजाऊ भूमि। उ०—गोहान की भूमि और ऊपरहार की भूमि में भी अंतर माना जाता है।—कृषि०, पृ० ५०।

ऊपरि७—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] दे० 'ऊपर'। उ०—वैष्णव को जीवमात्र ऊपरि दया राखी चाहिए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४१।

ऊदी सेम—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊदी+सेम] केवाँच।

ऊध—संज्ञा पुं० [सं० ऊधस्, ऊध] १ गुप्त स्थान जहाँ मित्र ही जा सकें। २ स्तन या छाती [को०]।

ऊधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुग्ध [को०]।

ऊधम—संज्ञा पुं० [सं० उद्धम=ध्वनित] उपद्रव। उत्पात। धूम। हुल्लड। हल्ला गुल्ला। शोर गुल। दंगा फसाद।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—जोतना।—मचाना।

ऊधमी—वि० [हिं० ऊधम] [स्त्री० ऊधमिन] ऊधम करनेवाला। उपद्रवी। शरारती। फसादी।

ऊधव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] दे० 'उद्धव'।

ऊधस्—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्तन। छाती। २ मित्रों के मिलने का गुप्त स्थान [को०]।

ऊधस्य(पु)—संज्ञा पुं०[सं० ऊधस्] दूध (डिं०)।

ऊधो(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] उद्धव। कृष्ण के सखा एक यादव।

मुहा०—ऊधो का लेना न माधो का देना=किसी से कुछ संबंध नहीं। किसी के देने लेने में नहीं। लगाव बझाव से अलग।

ऊधौ—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] दे० 'ऊधो'। उ०—ऊधौ को उपदेश सुनौ ब्रजनागरी। रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी।—नंद० ग्रं०, पृ० १७३।

ऊनंत(पु)—वि० [सं० उन्नत] दे० 'उन्नत'। उ०—बेटी राजा भोज की ऊनत पयोहरवाली वेस।—बी० रासो०, पृ० ६।

ऊन[१]—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ण] भेड बकरी आदि का रोयाँ। भेड के ऊपर का वह बाल जिससे कंबल और पहनने के गरम कपडे बनते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में उत्तराखंड वा हिमालय के तटस्थ देशों की भेडों का ऊन होता है। काश्मीर और तिब्बत इसके लिये प्रसिद्ध हैं। पंजाब, हजारा और अफगानिस्तान की कोच वा अरल नाम की भेड का भी ऊन अच्छा होता है। गढवाल, नैनीताल, पटना, कोयंबटूर और मैसूर आदि की भेडों से भी बढिया ऊन निकलता है।

ऊन और बाल में भेद यह है कि ऊन के तागे यों ही बहुत बारीक होते हैं अर्थात् उनका घेरा एक इंच के हजारवें भाग से भी कम होता है। इसके अतिरिक्त उनके ऊपर बहुत सी सूक्ष्म दिउली वा पत (जो एक इंच में ४००० तक आ सकती हैं) होती हैं। इसी कारण अच्छे ऊन की जो लोई आदि होती है उनके ऊपर थोड़े दिन के बाद महीन महीन गोल रवे से दिखाई पडने लगते हैं। प्राय बहुत सी भेड़ों में ऊन और बाल मिला रहता है। ऊन की उत्तमता इन बातों से देखी जाती है —रोएँ की बारीकी, उसकी गुरुचन, उसका दिउलीदार होना, उसकी लंबाई, मजबूती, मुलायमियत और चमक। भेड के चमडे की तह में से एक प्रकार की चिकनाई निकलती है जिससे ऊन मुलायम रहता है।

कश्मीर, तिब्बत और नैपाल आदि ठंडे देशों में एक प्रकार की बकरी होती है जिसके रोएँ के नीचे की तह में पशम या पशमीना होता है। इसी को काश्मीर में 'असली तूस' कहते हैं जो दुशाले आदि में दिया जाता है।

ऊन[२]—वि० [सं०] १ कम। न्यून। थोडा। २. तुच्छ। हीन। नाचीज। क्षुद्र।

ऊन[३]—संज्ञा पुं० मन छोटा करना। खेद। दुख। ग्लानि। रंज। उ०—(क) अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सुहाग तुम कहँ दिन दूना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जनि जननी मानहु मन ऊना। तुमतें प्रेम राम के दूना।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना=दुख मानना। रंज मानना। उ०—सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना।—तुलसी (शब्द०)।

ऊनक—वि० [सं०] १. न्यून। कम। २ हीन। मंद। तुच्छ। ३ दोषपूर्ण। दोषयुक्त [को०]।

ऊनत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊनता] दे० 'ऊनता'। उ०—त्रिकुटी चढ़ा अनंत सुख पाया, मन की ऊनत भागी।—दरिया० बानी०, पृ० ५७।

ऊनता—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊन] कमी। न्यूनता। घटी। हीनता।

ऊनमना(पु)—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—ऊनमियउ उत्तर दिसइ, गाज्यउ गहिर गंभीर।—ढोला० दू०, १८।

ऊनयना(पु)—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—गउखे बइठे एकठा मालवणी नई ढोल। अवर दीठउ ऊनयउ, तिय समारय बोल।—ढोला०, दू० २४३।

ऊनरना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उनरना'। उ०—ए पिया, काँहिर ऊनरे औरु काँहिर बरस्यौ जाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१४।

ऊनवना—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—एक सबद सौं ऊनवैं, बर्ष न लागै आइ। एक सबद सौं बीखरैं, आप आप कौं जाइ।—दादू०, पृ० ३६२।

ऊना[१]—वि० [सं० ऊन] [वि० स्त्री० ऊनी] १. कम। थोडा। छोटा। उ०—सूनो कै परमपद, ऊनो कै अनंत मद, नूनो कै नदीस नद, इंदिरा झुरै परी।—देव (शब्द०)। २. तुच्छ। नाचीज। हीन।

ऊना[२]—संज्ञा पुं० १ एक प्रकार की छोटी तलवार जो स्त्रियों के व्यवहार के लिये बनती है। उ०—मुरि मुरित कहुँ ना, उत्तम ऊना, सब तें दूना काट करै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

विशेष—इसका लोहा बहुत अच्छा और लचीला होता है। इसे रानियाँ अपने तकिए के नीचे रखती हैं।

ऊनित—वि० [सं०] घटाया हुआ। कम किया गया [को०]।

ऊनी[१]—वि० स्त्री० [सं० ऊन] १ कम। न्यून। थोडी।

ऊनी[२]—संज्ञा स्त्री० उदासी। रंज। खेद। ग्लानि। उ०—सौति सजोग न जानि परै मन मानती का उर मानती ऊनी। सुदर मंजुल मोतिन की पहिरो न भटू किन नाक नयूनी।—प्रताप (शब्द०)।

ऊनी[३]—[हिं० ऊन+ई (प्रत्य०)] ऊन का बना हुआ। (वस्त्र आदि)।

ऊढ—वि० [सं० ऊढ] [स्त्री० ऊढा] १ व्याहा हुआ। २ धारण किया हुआ।

ऊढकटक—वि०[स० ऊढकण्टक]जिसने कवच धारण किया हो [को०]।

ऊढना(पु)— क्रि० अ० [स० ऊह=सदेह पर विचार] १ तर्क करना। सोच विचार करना। अनुमान बाँधना। उ०—मृगमद नाहिन मृगन मैं ऊढत हैं दिन राति। तिल तरुनि के चिबुक मे सोई मृगमद भाति।—मुबारक (शब्द०)।

ऊढा—सज्ञा स्त्री० [स० ऊढा] १. विवाहिता स्त्री। २. परकीया नायिका का एक भेद। वह व्याही स्त्री जो अपने पति को छोड़ दूसरे से प्रेम करे।

ऊढि—सज्ञा स्त्री० [स० ऊढ़ि] १ विवाह। व्याह। २ ढोना। वहन करना [को०]।

ऊणहार(पु)—वि० [स० अनुहार] दे० 'उनहार'। उ०—घट घट के ऊणहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ।—दादू०, पृ० ४२३।

ऊत—वि० [स० अपुत्र, प्रा० अउत्त] १ बिना पुत्र का। नि सतान। निपूता।

यौ०—ऊत निपूता=नि सतान। बे औलाद।

विशेष—एक प्रकार की गाली है जिसे स्त्रियाँ बहुत देती हैं।

२ उजड्ड। बेवकूफ। उ०—टोटे मे भक्ती करै, ताका नाम सपूत। माया धारी मसखरे, केते ही गये ऊत।—कबीर० सा० स०, भा० १, पृ० ३६।

ऊत[2]—सज्ञा पुं० वह जो नि सतान मरने के कारण पिंड आदि न पाकर भूत होता है। उ०—ऊत के ऊत, उजाड के भूत। सीता के सराये, जनम के शरावी (शब्द०)।

ऊतभूत—सज्ञा पु० [हिं० ऊत+सं०भूत] भूत, प्रेत, पिशाच आदि। उ०—ऊत भूत को ध्यावना पाखड और परपच।—कबीर० म०, पृ० ५२७।

ऊतम(पु)—वि०[सं० उत्तम] दे० 'उत्तम'। उ०—नहिं को ऊतम नाही को हीना। सभ मैं एक जोति प्रभु कीना।—प्राण०, (शब्द०)।

ऊतर[1](पु)—सज्ञा पुं० [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर'। उ०—वहू दूबरी होत क्यो यों जब बूझो सास। ऊतर कढयो न बालमुख ऊँचे लेत उसास।—नद० ग्र०, पृ० २६६।

ऊतर[2](पु)—सज्ञा पु० [सं० उत्तर] बहाना। मिस। उ०—ऊतर कौन हू कै पदमाकर दै फिरै कुजगलीन में फेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

ऊतरु(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर'। उ०—आन की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदै मुख तिहि ऊतरु देई।—नद० ग्र०, पृ० १५०।

ऊतला(पु)—वि० [हिं० उतावला] चचल। वेगवान। तेज। उ०—पानी ते अति पातला, धूआँ ते अति झीन। पवनहुँ ते अति ऊतला, दोस्त कबीरा कीन।—कबीर (शब्द०)।

ऊति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रक्षा। २ उन्नति। ३. आनद। ४ बुनना। ५ सीना। ६ सिलाई की मजदूरी। ७ सहायता। ८ अभिलाषा या इच्छा। ९ खेल या क्रीडा। १० कृपा या अनुग्रह [को०]।

ऊतिम(पु)†—वि० [सं० उत्तम] दे० 'उत्तम'।

ऊती—सज्ञा स्त्री० [सं० ऊति] रक्षा करना। उ०—अवतारी अवतार धरन अरु जितक विभूती। इह सब आश्रय के अधार जग जिहि की ऊती।—नद० ग्र०, पृ० ४४।

ऊथल पथल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उथलपुथल'। उ०—भूचाल भूमि ऊथलपथल इस सु छत्रि पहु पंग दल।—पृ० रा०, ६० । २०३८।

ऊद[1]—सज्ञा पुं० [अ०] १ अगर का पेड। २ अगर की लकडी। ३ एक प्रकार का बाजा। बरतन।

ऊद[2]—सज्ञा पुं० [सं० उद्र] ऊदबिलाव।

ऊदबत्ती—सज्ञा स्त्री० [अ० ऊद+हिं० बत्ती] एक प्रकार की दक्षिण की बनी हुई अगरबत्ती। इसे सुगध के लिये लोग जलाते हैं।

ऊदबिलाव—सज्ञा पुं० [सं० उद्विडाल] नेवले के आकार का पर उससे बडा एक जतु जो जल और स्थल दोनो मे रहता है।

विशेष—यह प्राय नदी के किनारों पर पाया जाता है और मछलियाँ पकडकर खाता है। इसके कान छोटे, पजे जालीदार, नाखून टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती है। रग इसका भूरा होता है। यह पानी मे जिस स्थान पर डूबता है वहाँ से बडी दूर पर और बडी देर के बाद उतराता है। लोग इसे मछली पकडवाने के लिये पालते भी हैं।

यौ०—ऊदबिलाव की ढेरी=वह झगड़ा जो कभी न निपटे। सब दिन लगा रहनेवाला झगडा।

विशेष—कहते हैं, जब कई ऊदबिलाव मिलकर मछलियाँ मारते हैं तब वे एक जगह उनकी ढेरी लगा देते हैं और फिर बाँटने बैठते हैं। जब सबके हिस्से अलग अलग लग जाते हैं तब कोई न कोई ऊदबिलाव अपना हिस्सा कम समझकर फिर सबको मिला देता है और फिर बँटाई शुरू होती है।

ऊदर—सज्ञा पु० [सं० उदर] दे० 'उदर'। उ०—सवा लक्ष जीव भरों अहारा, तऊ न ऊदर भरै तुम्हारा।—कबीर० सा०, पृ० ६।

ऊदल[1]—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड। गुनबादला। बूटी।

विशेष—यह हिमालय की तराई के जगलो मे बहुत होता है। बरमा और दक्षिण मे भी होता है। इसकी छाल से बडा मजबूत रेशा निकलता है जिसे बटकर रस्सा बनाते हैं। दक्षिण मे हाथी बाँधने का रस्सा प्राय इसी का बनाते हैं।

ऊदल[2]—सज्ञा पुं०[हिं० उदयसिंह का सक्षिप्त रूप हिं०]महोबे के राजा परमाल के मुख्य सामतो मे से एक, जो अपने समय के बड़े भारी वीरो मे था। यह आल्हा का छोटा भाई और पृथ्वीराज का समकालीन था।

ऊदसोज— सज्ञा पुं० [अ० ऊद+फा० सोज] धूपदानी। अगरदान।

ऊदा[1]—वि० [अ० ऊद अथवा फा० कबूद] ललाई लिए हुए काले रग का। बैंगनी रग का।

ऊदा[2]—सज्ञा पु० ऊदे रग का घोडा।

ऊदी—वि० [हिं० ऊद+ई प्रत्य०] १ ऊद का या ऊद सबधी। २ ऊदी का रग। बैंगनी रग का।

ऊजतो (पु)—वि० [हिं०] दे० 'उजला'। उ०—नीरद नरद के दरद दलि देस करैं उपदेस ये ऊजती वेस साजिके।—दीन० ग्रं०, पृ० ४८।

ऊजन१ (पु)—वि० [स० विजन]। विजन। निर्जन। मानवरहित। उ०—जहँ देवी अविदा। नगर बाहर मठ ऊजन।—नंद० ग्र० पृ० २०८।

ऊजन२ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊज'। उ०—नित कोलाहल नित व्रज ऊजन।—घनानद, पृ० २९०।

ऊजना (पु)—क्रि० अ० [हिं० उ+कूजन > *उ+ऊजन > ऊजन] आह्लादित होना। उमंगित होना। उ०—आवैं कहूँ मनमोहन मो गली पूरव नागन को व्रज ऊजैं।—घनानंद, पृ० २०३।

ऊजम (पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यम, प्रा० उज्जम] दे० 'उद्यम'। उ०—ऊपडी धुडी रवि लागी अंबरि, खेतिए ऊजम भरिया खाद।—वेलि०, दू० १९३।

ऊजर१ (पु)—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उजला'। उ०—कबिरा पाँच बलधिया ऊजर जाहिं। बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै वाहि।—कबीर सा० स०, भा० १, पृ० २२।

ऊजर२ (पु)—वि० [हिं० उजड़ना] उजाड़। उजड़ा हुआ। बिना बस्ती का। उ०—(क) ऊधो कैसे जीवैं कमलनयन बिनु। तब तौ पलक लगत दुख पावत अब जो निरखि भरि जात अंग छिनु। जो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै। तो हम बिनु नंदलाल भए ऊधो कहि न प्रीति को जानै।—सूर (शब्द०)।

ऊजरा (पु)—वि० [हिं० उजला] दे० 'ऊजर' और 'उजला'।

ऊजरी (पु)—वि० स्त्री० [हिं० उजला] दे० 'उजला'। उ०—सेज ऊजरी, चंद तें निरमल, तापै कमल छए।—नंद ग्र०, पृ० ३४२।

ऊजल (पु)—वि० [हिं० उजला] दे० 'ऊजर'। उ०—मैं अति ऊजल, हौं प्रभु को प्रिय पाप न रंच गहौ गुनगाही।—दीन० ग्र०, पृ० १७२।

ऊजला (पु)—वि० [हिं० उजला] दे० 'उजला'। उ०—कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय।—कबीर० सा० सं०, पृ० ५७।

ऊजासड़ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उजाड+(स्वा० मध्यागम) स] दे० 'उजाड'। उ०—थल मथ्थइ ऊजासडक ये इण केहइ रंग। घण लीजइ, प्री मारिजइ, छाँडि विहाणउ सग।—ढोला० दू० ६३२।

ऊजू—संज्ञा पुं० [अ० वजू] नमाज पढ़ने से पहले मुँह हाथ धोना। उ०—न्हाइ धोइ नहिं अचारा। ऊजू तैं पुनि हूवा न्यारा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०४।

ऊझड (पु)—वि० [हिं०] दे० 'ऊजड'। ऊझड़ जाता बाट बतावै।—कबीर ग्र०, पृ० १३४।

ऊझल१ (पु)—वि० [सं० उज्ज्वल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—द्रुम नव पल्लव लागि, फूल खिले बहु भाँत के। रस ऊझल तन जागि, आगि मदन के गात के।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २२।

ऊझल२ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ओझल] दे० 'ओझल'। उ०—हरपट ऊझल मित्र तुम्हारा। पट उठाइ कब है उँजियारा।—इंद्रा०, पृ० १६१।

ऊटक नाटक—संज्ञा पुं० [सं० नाटक अथवा हिं० ऊटक (अनुकरणात्मकपुर्वद्विरुक्ति+सं० नाटक] इधर उधर का काम। वह काम जिसका कुछ निश्चय न हो। जैसे,—(क) बैठने से तो काम चलेगा नहीं, कुछ ऊटक नाटक करना ही होगा। (ख) वह ऊटक नाटक करके किसी प्रकार गुजर करता है।

ऊटना (पु)—क्रि० अ० [हिं० औटना=खलबलाना] १ उत्साहित होना। हौसला करना। मंसूबा बाँधना। उमग मे आना। उ०—(क) काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढाइवे को उर ऊटैं।—भूषण (शब्द०)। (ख) काढे तीर बीर जब ऊटयो। सर समूह सत्रुन पर छूटयो।—लाल (शब्द०)। (ग) भारत गाल कहा इतनो मनमोहन जू अपने मन ऊटे। रघुनाथ (शब्द०)। (ग) जूटैं लगे जान गन, ऊटैं लगे ज्वान जन, छूटैं लगे बान घन, लूटैं लगे प्रान तन।—गिरिधरदास (शब्द०)। २ तर्क वितर्क करना। सोच विचार करना।

ऊटपटाँग—वि० [हिं० अटपट+अंग अथवा हिं० ऊँट+पट (<सं० पृष्ठ)+अंग] १. अटपट। टेढामेढा। बेढंगा। बेमेल। असंबद्ध। बजोड। बेसिर पैर का। क्रमविहीन। अडबड। ऊलजलूल। उ०—तुम्हारे सब काम ऊटपटाँग होते हैं। २. निरर्थक। व्यर्थ। वाहियात। फजूल।

विशेष—दिल्ली मे 'ऊतपटाँग' बोलते हैं।

ऊठ (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उठान] १ उभार। उठाव। उ०—चातुरी चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारि मैं ऊठ अगेठी।—घनानद, पृ० ३७। २ उमग। उ०—रिस रूसनैं रूखि मै ऊठ अनूठि मे लागति जागति जोति महा।—घनानद, पृ० २२।

ऊठत (पु)—क्रि० वि० [हिं० उठना] उठते हुए। उ०—बैठत राम हि ऊठत रामहि, बोलत रामहि राम रह्यो हैं।—सुंदर० ग्र०, पृ० ५०२।

ऊठना (पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उठना'।—तब श्री गुसाँई जी गोविंददास कोटोरि कै कहे, जो गोविंददास, ऊठो तुमको नवनीतप्रिय जी के सदैव ऐसे ही दरसन होंगे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३८६।

ऊडना—क्रि० स० [सं० ऊढ] विवाह करना। शादी करना। उ०—बिरिध खाइ नवजोवन सौ तिरिया सो ऊड।—जायसी (शब्द०)।

ऊडा—संज्ञा पुं० [स० ऊन, प्रा० *उण* > ऊड़] १ कमी। टोटा। घाटा। गिरानी। अकाल। २ नाश। लोप।

क्रि० प्र०—पडना।

ऊडी१—संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ना] १ जुलाहो के डाँडे या सेठे मे लगा हुआ टेकुआ जिसपर लपेटे हुए सूत को जुलाहे पट्टी पर घूम घूम कर चढ़ाते जाते हैं। दुवकला। २. रेशम खोलनेवालो की चरखी जिसपर वे लोग संगल या रेशम के बड़े बड़े लच्छों को डालकर एक प्रकार की परेती पर उतारते हैं।

ऊडी२—संज्ञा स्त्री० [स० √ब्रुड (वर्ण विपर्यय)=डूबना, हिं० बूड़ना] १. बुड्डी। गोता।

क्रि० प्र०—मारना।

२. पनडुब्बी चिडिया। उ०—भौंह धनुक पल काजल बूडी। वह भइ धानुक हौं भयो ऊडी।—जायसी (शब्द०)।

गरम। उ०—ऊषण काल मह देह बिन मगरची तन ऊख। चातक बतियाँ ना रुची, अन जल नींचे रूख।—तुलसी (शब्द०)।

ऊन[2]ⓟ†—संज्ञा पुं० १ धूप। घाम। २ ग्रीष्म ऋतु। गर्मी के दिन।

ऊनⓟ[4]—संज्ञा स्त्री०[सं० उषा, प्रा० ऊस हिं० उख]उषा। सूर्योदय से पूर्व की वेला।

ऊखड—संज्ञा पुं० [उ० ऊपर] पहाड के नीचे की सूखी जमीन। भाभर (कुमाऊँ)।

उखधीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] वनस्पति, वनोषधि। उ०—पीलाणी धरा ऊखधी पाका, सरदि कालि एहवी सिरी।—वेलि०, दू० २०७।

ऊखल[1]—संज्ञा पुं० [सं० उलूखल] काठ या पत्थर का बना हुआ एक गहरा बरतन जिसमें रखकर धान और किसी अन्न की भूसी अलग करने के लिये मूसल से कूटते हैं। ओखली। काँडी। हावन। उ०—ऊखल तनिक तिरीछौ करिकै, डारि दिए तरु तिन मधि धरि कै।—नंद ग्रं०, पृ० २५१।

मुहा०—ऊखल मे सिर देना=झंझट मे जान बूझकर पडना। ऊखल मे सिर देकर मूसल से डरना क्या=झंझट मे जान-बूझकर पडने पर मुसीबतों की क्या चिंता।

ऊखल[2]—संज्ञा पुं० [सं० ऊरुवंल] एक प्रकार का तृण या घास।

ऊखाⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊषा] उषा। वाणासुर की कन्या का नाम जो अनिरुद्ध की पत्नी थी। उ०—जस ऊखा कहँ अनिरुध मिला। मेटि न जाइ लिखा पुरबिला।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५५।

ऊखाणाⓟ†—संज्ञा पुं० दे० 'उपखान'। उ०—(क) खाधो सो ही मीठ है, अग्र जनम किण दीठ। ऊखाणो अदता पढ़ै, पूरब पद दे पीठ।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० २७। (ख) ऊखाणो साचद भरे, गो गोना घर सून।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८८।

ऊखिⓟ†—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऊख'। उ०—कीन्हेसि ऊखि मीठि रस भरी। कीन्हसि करइ बेलि बहु फरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२३।

ऊगिलⓟ†—वि० [देश०] पराया। अपरिचित। उ०—रूपनिधान सुजान लखें बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है ऊगिल ज्यों खरकै पुतरीन में, सूल की मूल सलाक भई है।—घनानंद०, पृ० ५।

ऊगट—संज्ञा पुं० [सं० उद्वर्त, प्रा० उवट्ठ] दे० 'उबटना'। उ०—साविए ऊगट माँणिजइ, खिजमति करइ अनंत, मासू तन मडप रच्यउ, मिलण मुहावा कंत।—ढोला०, दू० ५३५।

ऊगनाⓟ—क्रि० अ० [सं० उद्+√गम्, हिं० उगना] दे० 'उगना'। उ०—(क) भरम बीज सब दुनिया, ऊग न सकै फेर।—दरिया० बानी०, पृ० ३। (ख) ना जानौं क्या होयगा ऊगे से परभात।—कबीर० सा० सं०, पृ० ३।

ऊगरⓟ†—क्रि० अ०[सं० उद्+√गृ प्रा० उग्गिल, राज० उगरणो उबरणो] बच रहना। निकलना। उ०—आव धरा दस अनम्यउ, महलाँ ऊपर मेह। बाहर थाजइ ऊगरइ भीगा माँझ घरेह।—ढोला, दू० २७२।

ऊगरा[1]—वि० [हिं० ओगरना] खाली उबाला हुआ।

ऊगरा[2]—संज्ञा पुं० खाली उबाला हुआ भोजन।

ऊगालना†ⓟ—क्रि० अ० [सं० उद्गार, प्रा० उग्गाल, उग्गार] जुगाली करना। पगुराना। उ०—तत तणक्कइ, पी पियइ, करहउ ऊगालेह।—ढोला०, दू० ६३१।

ऊघट—संज्ञा सं०[हिं०] दे० 'अवघट'। उ०—हम न जाएब तुम पासे, जाएब ऊघट घाटे कन्हैया।—विद्यापति, पृ० ३४९।

ऊचल—वि० दे० 'उच्च'। उ०—तइ जओ काम हृदय अनुपाम। रोएल घट ऊचल कए ठाम।—विद्यापति, पृ० ४०९।

ऊचाला—संज्ञा पुं० [सं० उच्चलन, प्रा० उच्चालो] १ स्थानांतर गमन। २ अकाल पडने पर मरुस्थल की जातियो द्वारा पशुओं के साथ किसी साधनसपन्न स्थान मे जाकर बसना। उ०—पिंगल उचालऊ कियउ नल नखर चइदेस। ढोला०, दू० २।

ऊचित—वि० [हिं०] दे० 'उचित'। उ०—तातें आपको मोहोर धरनो ऊचित नाही हतो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७३।

ऊचेड तीⓟ—वि० [सं० उर्ध्वंश्चलन्ती] निकलनेवाली। बाहर करनेवाली। उ०—सिंधु परइ सउ जोअणे, नीची खिवई निहल्ल। उर मेहदी सज्जणाँ, ऊचेडती सल्ल। ढोला०, दू० १९१।

ऊछजना—क्रि० स० [हिं० उ+छजना] ऊपर की ओर करना। उठाना। उ०—छोह घणे ऊछज छरा, केहर फाड़ै डाच।—बाकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ११।

ऊछवⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव'। उ०—पहिरावणी राजा करी। उछव गुडी भोज दुवारि।—बीसल० रास०, पृ० ११२।

ऊछाहⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] दे० 'उत्साह'। उ०—सजि सिंगार आनद मढी बढी सरस ऊछाह। रगमहल फूली फिरति चितवत मग चित चाह।—स० सप्तक, पृ० ३८९।

ऊछेदⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उच्छेद] उच्छेद। खडन। उ०—गुरु के शब्द ऊछेद को कहत सकल हम जान।—कबीर सा०, ८७४।

ऊछेर—क्रि० अ० [सं० उत्त+श्रि० प्रा० उच्छेर] ऊँचा होना। उठना। वर्धित होना। उ०—फुल उछेर कुवाट, पैला घर वाछैं पिसण।—बाकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६१।

ऊजⓟ—संज्ञा पुं० [देश०] उपद्रव। ऊधम। अंधेरे। उ०—हमारो दान मारयो इनि रातिनी बेचि बेचि जात। घेरौ सखा जान ज्यों न पावै छियो जिनि। देखो हरि के ऊज उठाइबे की बात रातिबिराति बहु बेटी कोऊ निकसति है पुनि। श्रीहरिदास के स्वामी की प्रकृति ना फिरि छिपा छाडो किनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—मचाना।

ऊजड—वि०[सं० उत्+ज्वालित या उज्वलित] उजडा हुआ। ध्वस्त। वीरान। बिना बस्ती का।

ऊँड़े—वि० [दि० अ०] गहरे। उ०—कस्तूरी कूडे भरी, मेली ऊँडे ठाँय।—दरिया० बानी०, पृ० ३९।

ऊँदरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उन्दुर] चूहा। मूसा।

ऊँवा¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'औंधा'। उ०—ऊँधे खोरे काचे भाडे। इन महि अम्रित टिकै न पाडे।—प्राण० पृ० २६५।

मुहा०— ऊँवा ताला मारना = उलटा ताला बंद करना। दिवाले का द्योतन। उ०—ए बाजै देवालिया, ऊँवा ताला मार।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६।

ऊँवा²(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० औंधा] १ ढालुवाँ किनारा। ढाल। २ तालाब में चौपायों के पानी पीने का घाट जो ढालुवा होता है। गऊघाट।

ऊँनमना—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना'। उ०—ऊँनमि विआई बादली वर्षण लगे अँगार।—कबीर ग्रं०, पृ० ८०।

ऊँभरा(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उमरा'। उ०—और बधाई उंमरा करी आइ सुरतान।—पृ० रा०, ६।२१०।

ऊँवरा(पु)—सञ्ज्ञा पुं०[अ० उमरा]दे० 'उमराव'। उ०—अकब्बर लक्खाँ ऊँवरा, कीधा साथ कमंध।—रा० रू०, पृ० ६६।

ऊँहूँ—अव्य० [देश०] कभी नहीं। हर्गिज नहीं।

विशेष—जब लोग किसी प्रश्न के उत्तर में आलस्य से वा और किसी कारण से मुँह खोलना नहीं चाहते तब इस अव्यक्त शब्द से काम लेते हैं।

ऊ¹—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ महादेव। २ चंद्रमा।

ऊ²(पु)—अव्य० [सं० अपि (संहिता दशा में उ)=भी] भी। उ०—तुलसीदास ग्वालिन अति नागरि, नटनागर मनि नदलला ऊ।—तुलसी (शब्द०)।

ऊ³(पु)—सर्व० [सं० अवस् या असौ > *प्रा० अहउ > वह, उह ओह, ऊ, अथवा प्रा० *अव > वह, ऊ, उह, ओह] वह। उ०—(क) लगन जिसका जिस जिस धात सूँ है। ऊ नई किसका खुदा की जात सूँ है।—दक्खिनी०, पृ० ११५। (ख) ऊ गति काहू बिरले जाना।—कबीर० सा०, पृ० ६०६।

ऊआना(पु)—क्रि० अ० [सं० उदयन] उगना। उदय होना। निकलना। उ०—(क) भयो रजायस मारहु सुआ। सूर न आउ बद जह ऊआ।—जायसी (शब्द०)। (ख) नासा देखि लजान्यो सूआ। सूक आय बेसर होय ऊआ।—जायसी (शब्द०)।

ऊआबाई—वि० [हिं० आव बाव, सं० वायु = हवा ?] अडबड। बे सिरपैर का। निरर्थक। व्यर्थ। उ०—जन्म गवायो ऊआबाई भोजन। भजे न चरण कमल यदुपति के रह्यो विलोकत छाई।—सूर (शब्द०)।

ऊक¹(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्का] १. उल्का। टूटता तारा। उ०—ऊक पात दिकदाह दिन फेकरहिं स्वान सियार। उदित केतु गत हेतु महि कपति बारहिं बार।—तुलसी (शब्द०)। २. लुक्क लुआठा। उ०—धरी एक झरि सार बहु ज्यों अगि संजुक्ता ऊक।—पृ० रा०, १०।३३।

३. दाह। जलन। आंच। ताप। तपन। ताव। उ०—कहाँ लौं मानै अपनी चूक। बिनु गुपाल सखि री यह छतियाँ ह्वै न गईं द्वै टूक। तन मन धन यौवन ऐसे सब भए भुअंगम फूँक। हृदय जरत है दावानल ज्यों कठिन विरह की ऊक। जाकी मणि सिर ते हरि लीनी कहा कहत अति मूक। सूरदास ब्रज वास बसी हम मनो दाहिनो सुक।—सूर (शब्द०)।

ऊक²—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० चूक का अनुकरण अथवा सं० अव + कृ√ (अवकृत)] भूल। चूक। गलती। उ०—सुंदर इस औजूद में इश्क लगाई ऊक। आशिक ठंडा होइ तब आइ मिलै माशूक।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २६१।

ऊक³—वि० [सं० उत्कट] उत्कट। तीव्र। उ०—प्रति ऊक गंध रघु रस्स बासि।—पृ० रा०, ५७। २५२।

ऊकटना—क्रि० अ० [हिं० 'उकठना']। उ०—उत्तर आज स उत्तरउ, ऊकटिया सारेह। वेलाँ वेलाँ परहरइ, एकल्लाँ मारेह।—ढोला०, दू० २९५।

ऊकटु(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उत्कट] दे० 'उत्कट'।

ऊकठना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्त + कर्ष, हिं० कढ़ना] बाहर निकलना। उ०—उत्तर आज स वज्जियउ ऊकठियइ केकाँण कामणि। कामकमेडि, ज्यउँ हइ लागउ सीचाण।—ढोला०, दू० २९७।

ऊकना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं०] चूकना। भूल करना। गलती करना। उ०—अपनो हित मानि सुजान सुनो धरि कान निदान तें ऊकिए ना। निज प्रेम की पोखनिहारि बिसारि अनीति झरोखनि झूकिए ना।—घनानंद (शब्द०)।

ऊकना²—(पु)—क्रि० स० छोड़ देना। भूल जाना। उ०—दूर दूर पै काज द्वै, परे एक सँग आय। ऊकन जोग न एक हू, इनमे परत लखाय।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

ऊकना³(पु)—क्रि० स० [सं० उल्का, हिं० ऊक] जलाना। दाहना। भस्म करना। तपाना। उ०—ए ब्रजचंद्र, चलो किन वा व्रज लूकैं बसंत की ऊकन लागी। त्यो पदमाकर पेखो पलासन पावक सौं मनो फूँकन लागी।—पदमाकर (शब्द०)।

ऊकपात(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्का + पात] दे० 'उल्कापात'।—उ०—ऊकपात, दिकदाह दिन फेकरहिं स्वान सियार। तुलसी ग्रं०, पृ० ८९।

ऊकरडी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवकर, अवस्कर, प्रा० अवक्कर, उक्कर > उकर + डी (प्रत्य०)] १ अशुचि राशि। २ घूरा। वह स्थान जहाँ मैला इकट्ठा किया जाता है। उ०—करहउ कूड़ईं मन थकइ, पग राखीयउ जांण। ऊकरडी डोका चुगइ अपस डँमायउ आंण।—ढोला०, दू० ३३६।

ऊकलता(पु)—सञ्ज्ञा, स्त्री० [सं० आकुलता] १ व्यग्रता। २ त्वरा। जल्दीबाजी। उ०—ऊकलता बूकी मती, है नह कोतक हास।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३३।

ऊकलना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकलना'। उ०—कलकलिया कुत किरण कलि ऊकलि। वरजित विसिख विवरजित पाउ।—वेलि०, दू० ११९।

ऊकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊ + कार] 'ऊ' अक्षर या उसकी ध्वनि [को०]।

ऊख¹—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इक्षु] ईख। गन्ना। दे० 'ईख'।

ऊख(पु)²—वि० [सं० उष्म > प्रा० उखम् > हिं० ऊख] तपा हुआ।

२ जोर से (शब्द करना)। उ०—अवसर हार्‌यो रे तैं हारचो। हरि भजु विलंब छांड़ि सूरज प्रभु ऊंचे टेरि पुकारचा।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—ऊंचे नीचे पैर पडना = व्यभिचार मे फँसना।

विशेष—खड़ी बोली मे वि० 'नीचा' से क्रि० वि० 'नीचे' तो बनाते हैं। पर 'ऊँचा' से 'ऊँचे' नही बनाते। पर व्रजभाषा तथा और और प्रातिक बोलियो मे इस रूप का क्रि० वि० की तरह प्रयोग बराबर मिलता है।

ऊँचो(पु)—वि० [स० उच्च] दे० 'ऊँचा'। उ०—ऐसो ऊंचो दुरग महाबली को जामैं, नखतावली सो बहस दीपावली करति है।—भूषण ग्र०, पृ० १२।

ऊंछ—सज्ञा पु० [देश०] एक राग का नाम। उ०—ऊंछ अडाने के सुर सुनियत निपट नाप की लीन। करत बिहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन।—सूर (शब्द०)।

ऊंछना—क्रि० अ० [स० उच्छन = बीनना] कघी करना।

ऊँट—सज्ञा पुं० [स० उष्ट्र, प्रा० उट्ट] [स्त्री० ऊँटनी] एक ऊँचा चौपाया जो सवारी और बोझ लादने के काम मे आता है।

विशेष—यह गरम और जलशून्य स्थानो अर्थात् रेगिस्तानी मुल्को मे अधिक होता है। एशिया और अफ्रीका के गरम प्रदेशो मे सर्वत्र होता है। इसका आदि स्थान अरब और मिस्र है। इसके विना अरबवालो का कोई काम नहीं चल सकता। वे इसपर सवारी ही नही करते वल्कि इसका दूध, मास, चमडा सब काम मे लाते हैं। इसका रग भूरा, डील बहुत ऊँचा (७-८ फुट), टाँगें और गरदन लबी, कान और पूँछ छोटी, मुँह लवा और होठ लटके हुए होते हैं। ऊँट की लवाई के कारण ही कभी कभी लवे आदमी को हँसी मे ऊँट कह देते हैं। ऊँट दो प्रकार का होता है—एक साधारण या अरबी और दूसरा बगदादी। अरबी ऊँट की पीठ पर एक कूव होता है। ऊँट भारी बोझ उठाकर सैकडों कोस की मजिल तै करता है। यह बिना दाना पानी के कई दिनो तक रह सकता है। मादा को ऊँटनी या साँडनी कहते हैं। यह बहुत दूर तक बराबर एक चाल चलने से प्रसिद्ध है। पुराने समय मे इसी पर डाक जाती थी। ऊँटनी एक बार मे एक बच्चा देती है और उसे दूध बहुत उतरता है। इसका दूध बहुत गाढा होता है और उसमें से एक प्रकार की गध आती है। कहते हैं, यदि यह दूध देर तक रखा जाय तो उसमें कीडे पड जाते हैं।

मुहा०—ऊँट किस करवट बैठता है = मामला किस प्रकार निवटता अथवा क्या नतीजा निकलता है। **ऊँट की कौन सी कल सीधी** = बेढगो के काम मे कहीं भी सलीके का न होना। **ऊँट से आदमी होना** = बेढगे से सलीकेदार होना। उ०—जो कहीं छह महीने हमारी जूतियाँ सीधी करो तो ऊँट से आदमी बन जाओ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। **ऊँट की चोरी और झुके झुके** = छिप न सकनेवाली बात को छिपाने का यत्न। **ऊँट के गले मे बिल्ली बाँधना** = ऐसा जोड बैठा देना जिसका कोई मेल ही न हो। १. **ऊँट का पाद होना** = बेफायदा बात। निरर्थक बात। उ०—करनी को रस मिटि गयो भयो न आतम स्वाद। भई बनारसि की दशा जथा ऊँट को पाद।—अर्ध०, पृ० ५४। **ऊँट के मुँह मे जीरा** = अधिक भोजन करनेवाले को स्वल्प सामग्री देना। बडी जरूरत के सामने स्वल्प सामग्री की व्यवस्था। **ऊँट निगल जायँ, दुम से हिचकियाँ** = दावा बडी बडी बातो का और व्यवहार मे उलझन तनिक सी बात पर। २ **ऊँट मक्के को भागता है** = स्वभाव आदत का शिकार होना। **ऊँट बैल का साथ** = बेमेल साथ। अनमेल सगति। उ०—ऊँट बैल का साथ हुआ है। कुत्ता पकडे हुए जुवा है।—आराधना पृ० ७२।

ऊँटकटारा—सज्ञा पुं० [स० उष्ट्रकण्ट] एक कँटीली झाडी जो जमीन पर फैलती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ भँडभाँड की तरह लवी लबी और काँटेदार होती हैं। डालियों मे गडनेवाली रोईं होती है। ऊँटकटारा ककरीली और ऊसर जमीन मे होता है। इसे ऊँट बडे चाव से खाते हैं। इसकी जड को पानी मे पीसकर पिलाने से स्त्रियो को शीघ्र प्रसव होता है। इसको कोई कोई बलवर्द्धक भी मानते हैं।

पर्याय—ऊँटकटीरा, ऊँटकटेला, कटालु, करमादन, उत्कटक, शृगार, तीक्ष्णाग्र।

ऊटकटाल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं० ऊँटकटारा] दे० 'ऊँटकटारा'। उ०—दूजा दोवड चोवडा, ऊँट कटालउ खाँण, जिण मुख नागर वेलियाँ, सो करहउ केकाँण।—ढोला०, दू० ३०६।

ऊँटकटाला(पु)—सज्ञा पु०[हिं० ऊँटकटारा]दे० 'ऊँटकटारा'। उ०—मन गमता पाया नही ऊँटकटाला खाइ।—ढोला०, दू० ४२७।

ऊँटकटीरा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊँटकटारा'।

ऊँटनाल—सज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँट + नाल] छोटी तोप जो ऊँट पर से चलाई जाती है। उ०—जगी जामगी त्यों चलैं ऊँटनालैं।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०।

ऊँटनी—सज्ञा स्त्री० [स० उष्ट्री] मादा ऊँट [को०]।

यौ०—**ऊँटनी सवार** = साँडनी सवार। सदेशवाहक। हरकारा।

ऊँटवान—सज्ञा पुं० [हिं० ऊँट + वान (प्रत्य०)] ऊँट चलानेवाला।

ऊँठ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊँट'। उ०—तोप हजार पचीस री, भार तणाँ सो ऊँठ।—रा० रू०, पृ० २७२।

ऊँडा¹†(पु)—सज्ञा पुं० [स० कुड] १ वह बरतन जिसमे धन रखकर भूमि मे गाड दें। २ चहबच्चा। तहखाना। उ०—(क) है कोई मुसलमान समझावै। ई मन चचल चार पाहरू छूटा हाथ न आवै। जोरि जोरि धन ऊँडा गाडे जहाँ कोई लेन न पावै।—कबीर (शब्द०)। (ख) ऊँडा चित्तरू सम दशा साधूगण गभीर। जो धोखा विरचै नही सोही सत सधीर।—कबीर (शब्द०)।

ऊँडा²—वि० गहरा। गभीर। उ०—(क) ऊँडा पाणी कोहरइ थल चढि जाइ निट्ठ। मारवणी कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ।—ढोला०, दू० ५३३। (ख) कस्तूरी कडे भरी, मे नी उडे ठाँय। दरिया छानी क्यों रहै, साख भरै सब गाँय।—दरिया० बानी०, पृ० ३९।

उहासना(पु)—क्रि० अ० [सं० उल्लासन] प्रसन्न होना। प्रमुदित होना। उ०—जब क्रीडत जल केलि चित्त कैमास उहासै।—पृ० रा०, ५८।२।

उहि†—सर्व० [हिं०] दे० 'वह'। उ०—सखि सौं कहु सखि उहि गृह ग्रतर। अब ते हौं सोऊँ न सुतंतर।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

उहीं†—सर्व० [हिं०] दे० 'वहीं'।

उहूल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उल्लोल] तरग। लहर। मौज।—डिं०।

उहैं†—सर्व० [हिं०] दे० 'वहीं'।

उह्ल—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। साँड। अनड्वान [को०]।

ऊ

ऊ—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का छठा अक्षर या वर्ण जिसका उच्चारण स्थान ओठ है। यह दो मात्राओं का होने से दीर्घ और तीन मात्राओं का होने से प्लुत होता है। अनुनासिक और निरनुनासिक के भेद से इन दोनों के भी दो दो भेद होंगे। इस वर्ण के उच्चारण में जीभ की नोक नहीं लगती।

ऊँख†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ऊख', 'ईख'।

ऊँग†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ऊँघ'।

ऊँगना†—संज्ञा पुं० [देश०] १ चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कान बहते हैं और उनका शरीर ठंढा हो जाता है और खाना पीना छूट जाता है। २ बैलगाड़ी आदि की धुरी में तेल देना। ओंगना।

ऊँगलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँगुली'। उ०—द्वादस ऊँगलि सास उलटै बैठत बाय।—प्राण०, पृ० ४१।

ऊँगा—संज्ञा पुं० [सं० अपामार्ग] [स्त्री० अल्पा ऊँगी] अपामार्ग। चिचड़ा। अज्झाझारा।

ऊँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँगा] चिचड़ी। अपामार्ग।

ऊँघ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवाङ्=नीचे मुख, प्रा० उघइ=सोता है] उँघाई। निद्रागम। झपकी। अर्धनिद्रा।

ऊँघ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओंगन] बैलगाड़ी के पहिए की नाभि और धुरकीली के बीच पहनाई हुई सन की गेंड़री। यह इसलिये लगाई जाती है जिसमें पहिया कसा रहे और धुरकीली की रगड़ से कटे नहीं।

ऊँघन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघ] ऊँघ। झपकी।

ऊँघना—क्रि० अ० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह] झपकी लेना। नींद में झूमना। निद्रालु होना।

ऊँच†—वि० [सं० उच्च] १. ऊँचा। ऊपर उठा हुआ। २. बड़ा। श्रेष्ठ। उत्तम।

यौ०—ऊँच नीच=छोटा बड़ा। आला अदना।

३ उत्तम जाति या कुल का। कुलीन। उ०—दानव, देव, ऊँच अरु नीचू।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ऊँच नीच=कुलीन अकुलीन। सुजाति। उ०—वहाँ पर ऊँच नीच का कुछ भी विचार नहीं है।

मुहा०—ऊँच नीच न सोचना=भला बुरा न सोचना। उ०—बेगम—तसवीर की जरूरत ही क्या है? अ०—हमारी खुशी। बेगम—तुम ऊँच नीच नहीं सोचते और यह ऐब है।—सैर कु०, पृ० ३६।

ऊँचा—वि० [सं० उच्च] [स्त्री० ऊँची] १. जो दूर तक ऊपर की ओर गया हो। उठा हुआ। उन्नत। बुलंद। जैसे,—ऊँचा पहाड़। ऊँचा मकान।

मुहा०—ऊँचा नीचा=(१) ऊबड़ खाबड़। जो समथल न हो। उ०—ऊँच नीच में बोई कियारी। जो उपजी सो भई हमारी।—(शब्द०)। (२) भला बुरा। हानि लाभ। जैसे,—मनुष्य को ऊँचा नीचा देखकर चलना चाहिए। **ऊँचा नीचा दिखाना, सुझाना या समझाना**=(१) हानि लाभ बतलाना। (२) उलटा सीधा समझाना। बहकाना। जैसे—उसने ऊँचा नीचा सुझाकर उसे अपने दाँव पर चढ़ा लिया। **ऊँचा नीचा सोचना या समझना**=हानि लाभ विचारना। उ०—बड़ा हुआ तो क्या हुआ बढ़ गया जैसे बाँस। ऊँच नीच समझे नहीं किया बस का नाश।—कबीर (शब्द०)।

२. जिसका छोर ऊँचे तक न हो। जो ऊपर से नीचे की ओर कम दूर तक आया हो। जिसका लटकाव कम हो, जैसे ऊँचा कुरता, ऊँचा परदा। जैसे,—तुम्हारा अँगरखा बहुत ऊँचा है। ३ श्रेष्ठ। महान्। बड़ा। जैसे,—ऊँचा कुल। ऊँचा पद। जैसे,—(क) उनके विचार बहुत ऊँचे हैं। (ख) नाम बड़ा ऊँचा कान दोनों बूचा।

मुहा०—**ऊँचा नीचा या ऊँची नीची सुनाना**=खोटी खरी सुनाना। भला बुरा कहना। फटकारना।

४ जोर का (शब्द)। तीव्र (स्वर)। जैसे,—उसने बहुत ऊँचे स्वर से पुकारा।

मुहा०—**ऊँचा सुनना**=केवल जोर की आवाज सुनना। कम सुनना। जैसे,—वह थोड़ा ऊँचा सुनता है, जोर से कहो। **ऊँचा सुनाई देना या पड़ना**=केवल जोर की आवाज सुनाई देना। कम सुनाई पड़ना। जैसे,—उसे कुछ ऊँचा सुनाई पड़ता है। **ऊँची दुकान फीका पकवान**=नाम या रूप के अनुरूप गुण का अभाव। **ऊँची साँस**=लंबी साँस। दुखभरी साँस।

ऊँचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँचा+ई (प्रत्य०)] १. ऊपर की ओर का विस्तार। उठान। उच्चता। बलंदी। २ गौरव। बड़ाई। श्रेष्ठता।

ऊँचि(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ऊँचा' में। उ०—इहाँ ऊँचि पदवी हुती गोपीनाथ कहाय। अब जदुकुल पावन भयो, दासी' जूठन खाय।—नंद० ग्रं०, पृ० १८३।

ऊँचे †(पु)—क्रि० वि० [हिं० ऊँचा] १ ऊँचे पर। ऊपर की ओर। उ०—ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।—बिहारी (शब्द०)।

उसीसा(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उत्+शीर्ष+क] १ सिरहाना। २ तकिया।

उसीसी—संज्ञा स्त्री॰ [स॰ उत्शीर्षक, पा॰ उस्सीसक, प्रा॰ उस्सीस= 'तकिया'] तकिया। उ॰—उतनी कहत कुँवरि उपवानी। सहचरि दौरि उसीसी आनी।—नद॰ ग्र॰, पृ॰ १४१।

उसीसो—संज्ञा पुं॰ [स॰ उद्+शीर्ष] तकिया। उ॰—उपवर्हन, उपधान पुनि कदुक सोई छीन। मृदुल उसीसो उठँगि कै, वैठी तिय रिस नीय।—नद॰ ग्र॰, पृ॰ ८१।

उसूल—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १ सिद्धात। उ॰—सब बातें काम के पीछे अच्छी लगती हैं जो सब तरह का प्रबध बँध रहा हो, काम के उसूलो पर दृष्टि हो, भले बुरे काम और भले बुरे आदमियो की पहचान हो, तो अपना काम किए पीछे घडी की दिल्लगी मे कुछ बिगाड नही है।—श्रीनिवास ग्र॰, पृ॰ १०६। २ दे॰ 'वसूल'।

उसूली¹—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ वसूली] उगाहना। मालगुजारी या अन्य कर अथवा ऋण दिया हुआ धन वसूल करना।

उसूली²—वि॰ सिद्धातवादी। वसूल का पक्का।

उसेना(पु)—क्रि॰ स॰ [स॰ उष्ण] उबालना। उसनना। पकाना।

उसेय—संज्ञा पुं॰ [देश॰] खसिया और जयतिया की पहाडियो पर होनेवाला एक प्रकार का बाँस जिसकी ऊँचाई ५०-६० फुट, घेरा ५-६ इच और दल की मोटाई एक इच से कुछ कम होती है, इससे दूध या पानी रखने के चोंगे बनाते हैं।

उस्तति(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ उ (आदिस्वरागम)+सं॰ स्तुति] प्रार्थना। विनय। स्तुति। उ॰—मेरी यह इच्छा है जो सतिगुरु जी की उस्तति सुणाईए जी।—प्राण॰, पृ॰ २२०।

उस्तरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'उस्तुरा'।

उस्तवार—वि॰[फा॰]दृढ़। पक्का। उ॰—खुदा सूँ जो कोई निपट है, उस्तवार। सो उन पर खुदा भोत धरता है प्यार।—दक्खिनी॰, पृ॰ २९२।

उस्ताद¹—संज्ञा पुं॰ [फा॰] [स्त्री॰ उस्तानी] गुरु। शिक्षक। अध्यापक। मास्टर।

उस्ताद²—वि॰ १. चालाक। छली। धूर्त। गुरुघटाल। उ॰—वह बडा उस्ताद है, उससे बचे रहना। २ निपुण। प्रवीण। विज्ञ। दक्ष। जैसे,—इस काम में वह उस्ताद है। उ॰—तब उसको वे अपने उस्ताद के निकट ले गए।—कबीर सा॰, पृ॰ ९८२।

उस्तादी—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰] १ गुरुआई। शिक्षक की वृत्ति। मास्टरी। २ चतुराई। निपुणता। ३ विज्ञता। ४ चालाकी। धूर्तता।

उस्तानी—संज्ञा पुं॰ [फा॰] १ गुरुआनी। गुरुपत्नी। २ जो स्त्री किसी प्रकार की शिक्षा दे। ३. चालाक स्त्री। ठगिन।

उस्तुरा—संज्ञा पुं॰ [फा॰]छुरा। अस्तुरा। बाल बनाने का औजार।

उस्नररसिम(पु)—संज्ञा पु॰ [सं॰ उष्णरश्मि] सूर्य। उ॰—मिहिर तिमिर हर प्रभाकर उस्नररसिम तिम्मस।—अनेकार्थ॰, पृ॰ १०२।

उस्साक(पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰ उश्शाक, इश्क का बहुव॰] १ प्रेमी लोग। २. राग के एक स्थान का नाम जो दो घड़ी दिन रहते गाया जाता है। उ॰—गोरे दे ना लयारदी बातें दिल उस्साक दुखाँदा कातूँ।—नट॰, पृ॰ १२८।

उस्र¹—संज्ञा पु॰ [स॰] १ किरण। मरीचि। रश्मि। २. साँड। वृषभ। ३. देव। ४ सूर्य। ५ दिन। ६ दो अश्विनीकुमार [को॰]।

उस्र²—वि॰ १. प्रभावान्। तेजस्वी। चमकीला। २. प्रभात सबधी [को॰]।

उस्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ प्रात काल। उषाकाल। २ प्रकार। ३ चमकीला तारा। ४. गाय [को॰]।

उस्रिक—संज्ञा पुं॰[स॰] १ बछडा। छोटा बैल। २ बूढ़ा बैल [को॰]।

उस्रिका—संज्ञा स्त्री॰ [स॰] गाय [को॰]।

उस्रिय—संज्ञा पुं॰ [स॰] १ बैल। २ देवता [को॰]।

उस्रिया—संज्ञा स्त्री॰ [स॰] १ गाय। २ प्रभा। ३ बछडा। ४ दूध [को॰]।

उस्वाँस(पु)—संज्ञा पुं॰[हिं॰] दे॰ 'उसाँस'। उ॰—स्वाँस उस्वाँस का प्रेम प्याला पिया, गगन गरजै जहाँ बजै तूरा।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ६३।

उस्वास(पु)—संज्ञा पुं॰ [स॰ उच्छ्वास] दे॰ 'उच्छ्वास'। उ॰—स्वास उस्वास उठैं सब रोम चलै दृग नीर प्रखडित धारा। सुदर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्‌यो रस पी मतवारा।—सुदर ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ २५।

उस्सास—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'उच्छ्वास'। उ॰—नाम ते अज्जपा जाप ओऊँ। नाम तें सास उस्सास सोऊँ।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ १२९।

उस्सीस—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उपशीर्षक,(पु) उसीस] दे॰ 'उसीसा'। उ॰—नर घर वर मसनद सीस उस्सीस धराइअ।—सुजान॰, पृ॰ २३।

उह(पु)†¹—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'वह'। उ॰—उहै ब्रह्म गुरु सत उह वस्तु विराजत येक। वचन विलास विभाग त्रय वधन भाव विवेक।—सुदर ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ४।

उह²(पु)—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'उस'। उ॰—सो वह लरिकिनी कौ दुःख देखि कै श्रीनाथ जी ने श्रीगुसाँई जी सो कह्यो, जो वह बनिया वैष्णव की बेटी उह गाँव मे है। सो वाको दुःख मो तें सह्यो जात नाहीं।—दो सौ बावन॰, भा॰ २, पृ॰ ३८।

उहदा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ओहदा'।

उहदेदार†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] 'ओहदेदार'।

उहवाँ†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ वहाँ] वहाँ। उस जगह। उस स्थान पर। उ॰—चित चोखा मन निर्मला, दयावत, गभीर। सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर।—कबीर सा॰ सं॰, पृ॰ १०।

उहाँ(पु)†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'वहाँ'। उ॰—तब नारायनदास उहाई स्नान करे।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पृ॰ १०६।

उहार(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ओहार'। उ॰—नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं। नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं।—तुलसी ग्र॰, पृ॰ ६३।

उसनना—क्रि० स० [सं० उष्ण] १ उबालना। पानी के साथ आग पर चढाकर गरम करना। २ पकाना।

उसनाना—क्रि० स० [हिं० उसनना का प्रेरणा०] उबलवाना। पकवाना।

उसनीस(पु)—सज्ञा पु० [स० उष्णीष] दे० 'उष्णीष'।

उसनोदक(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उष्णोदक] दे० 'उष्णोदक'। उ०—अष्टगध उसनोदक सो असनान कराए।—नद० ग्र०, पृ० २०४।

उसमा†—संज्ञा पु० [अ० वसमह्] उबटन। बटना।

उसमान—सज्ञा पु० [अ०] मुहम्मद के चार सखाओ मे से एक।

उसरना¹—क्रि० अ० [स० उत्+सरण (जाना), प्रा० उस्सर] १. हटना। टलना। दूर होना। स्थानातरित होना। उ०—(क) कर उठाय घूँघुट करत उसरत पट गुभ्रगोट। सुख मोटैं लूटी ललन लखि ललना की लोट।—बिहारी (शब्द०)। (ख) उसरि बैठि कुकि कागरे जो वलवीर मिलाय। तौ कचन के कागरे पालूँ छीर पिलाय।—स० सप्तक०, पृ० २५४। (ग) उनका गुण और फल नित्य के कामो मे ऐसे अधिक विस्तार से पाया जाता है कि जिसका ध्यान से उतरना असभव सा है।—गोल विनोद (शब्द०)। २ बीतना। गुजरना। उ०—सघन कुज ते उठे भोर ही श्यामा श्याम खरे। जलद नवीन मिली मनो दामिनि बरषि निशा उसरे।—सूर (शब्द०)।

उसरना²—क्रि० स० [स० विस्मरण] विस्मृत होना। भूलना। याद न रहना।

उसबुँध(पु)—सज्ञा पु० [स० उषबुंध]दे० 'उपबुंध'। उ०—पावक, वह्नि दहन, ज्वलन, शिखी, धनजय, होइ। सक, उसबुँध, वायुसख वीतहोत्र पुनि सोइ।—नद० ग्र०, पृ० ९४।

उसरौडी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक चिडिया। २ ऊसर से उगने वाली एक प्रकार की घास जो सूख जाने पर कड़ी हो जाती है और पैरो मे चुभती है।

उसलना(पु)—क्रि० अ० [स० उत्+सरण, प्रा० उस्सर] १ दे० 'उसरना¹'। उ०—ऐल फैल मैल खलक मे गैल गैल गजन की ठेल पेल सैल उसलत है। तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है।—भूषण ग्र० पृ० ८८। २ तरना। उतराना। पानी के भीतर से ऊपर आना। उ०—टिग बूडा उसला नही, यही अँदेशा मोहिं। सलिल मोह की धार मे, क्या निंद आई तोहिं।—कबीर (शब्द०)।

उसवास(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास, प्रा० उस्सास=ऊँची साँस] १. उद्वेग। आवेश। चित्त की चचलता। उ०-जन जीवन उसवास मिटिगा, दरस सतगुरु पायो।—जग० बानी, पृ० ४५। २. दु ख। उ०—कर उसवास मनै मे देखे यह सुगध धौं कहा बसाना।—कबीर (शब्द०)।

उससना(पु)—क्रि० स० [स० उत्+सरण] १, खिसकना। टलना। स्थानातरित होना। उ०—(क) गोरे गात उससत जो असित पट और प्रगट पहिचानै। नैन निकट ताटक की शोभा मडल कविन बखानै।—सूर० (शब्द०)। (ख) वैसिये सु हिलि मिलि, वैसी पिय संग, अग मिलत न कँहू मिस, पीछे उससति जाति।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। २ साँस लेना। दम लेना। उ०—एक उसास ही के उससे सिगरेई सुगंध बिदा कर दीन्हे।—केशव (शब्द०)। तैयारी करना। बनाना। उ०—कूप उसास्यो कुभ मैं पानी भरयौ अटूट। सुदर तृषा सबै गई धाए चारयो पूट।—सुदर० ग्र०, भा २, पृ० ७६०।

उसाँस(पु)—सज्ञा पु० [स० उछ्वास, (पु)उसाँस] दे० 'उसास'।

उसाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ओसाना'।

उसारना(पु)—क्रि० स० [स० उद्+सरण (जाना)] १ उखाडना। हटाना। टालना। उ०—(क) विहँसि रूप वसुदेव निहारै। कोटि जामिनी तिमिर उसारै।—लाल (शब्द०)। (ख) रछी कपि भुडन के मुडन उतारो कहो कोटले उसारो पै न हारों रहो टेक ही।—हनुमान (शब्द०)। २ मकान अथवा दीवार आदि खडी करना।

उसारा(पु)—संज्ञा पु० [सं० उपशालाग्रव] दे० 'ओसारा'।

उसारि—सज्ञा स्त्री० [सं० उपशालाग्रव, प्रा० ओसार] दे० 'ओसारा'। उ०—कहा चुनावै मड़ियाँ, लवा भीति उसारि। घर तो साढे तीन हाथ, घना तो पौने चार।—कबीर सा०, पृ० १५।

उसालना(पु)—क्रि० स० [स० उत्+सारण] १. उखाडना। २. हटाना। टलना। ३ भगाना। उ०—अपने वरणधर्म प्रति पालो। साहन के दल दौरि उसालो।—लाल (शब्द०)।

उसास—सज्ञा स्त्री० [हिं० उ+सास (स० श्वास)] १ लबी साँस। ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उ०—(क) वियुरचो जावक सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँस। सलज हँसौंही लखि लियो, आधी हँसी उसास।—बिहारी (शब्द०)। (ख) अजब जोगिनी सी सबै, भुकी परत चहुँ पास। करिहैं काय प्रवेश जनु, सब मिलि ऐंचि उसास।—(शब्द०)। २ साँस। श्वास। उ०—पल न चलें जकि सी रही, थकि सी रही उसास। अब ही तन रितयो कहा, मन पठयो केहि पास।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—भरना।—लेना।

३. दु खसूचक या शोकसूचक श्वास। ठढी साँस।

उसासी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उसास] दम लेने की फुरसत। अवकाश। छुट्टी। उ०—केहू नहि गिरिराजहि धारा। हमरै सुत भारू कह ठहरा। लेहु लेहु अब ते कोइ लेहू। लालहि नेकु उसासी देहू।—विश्राम (शब्द०)।

उसिनना†—क्रि० स० [स० उष्ण] दे० 'उसनना'।

उसिर(पु)—सज्ञा पुं० [स० उशीर] दे० 'उशीर'।—उसिर, गुलाब नीर, करपूर परसत, विरह अनल ज्वाल जालन जगतु है।—मति० ग्र०, पृ० २९५।

उसीर(पु)—सज्ञा पुं० [स० उशीर] दे० 'उशीर'। उ०—(क) हे प्रियवदा तू किसके लिये उसीर का लेप और नालसहित कमल पत्ते लिए जाती है।—शकुतला, पृ० ४३। (ख) चंदन लेप, उसीर रस उलटो जारत गात।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८७।

उसीला(पु)—सज्ञा पुं० [अ० वसीलह] दे० 'वसीला'।

उसीस(पु)—सज्ञा पु० [स० उत्शीर्षक] तकिया। उपधान (को०)।

उपाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोर। प्रभात। तड़का।
उपापति—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध।
उषारमण—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध [को०]।
उषित[1]—वि० [सं०] १ जला हुआ या दग्ध। २ बसा हुआ। आबाद। ३ जो ताजा या टटका न हो। बासी। ४. फुर्तीला तेज [को०]।
उषित[2]—संज्ञा पुं० वस्ती या आबादी [को०]।
उपीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०]।
उपीरक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०]।
उपीरक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०]।
उपीरक[3]—वि० [सं०] उशीरविक्रेता। खस वेचनेवाला [को०]।
उषेश—संज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध [को०]।
उष्टर(पु)—संज्ञा पुं०[सं० उष्ट्र]दे० 'उष्ट्र'। उ०—सूकर स्वान सियाल रासभा उष्टर जानो। हरि वेमुख मति अध काल भख उनही मानो।—राम० धर्म०, पृ० २४५।
उष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँट। क्रमेलक। २ रथ। ३ डिल्ल या ककुद्वाला सांड। ४ महिप। भैंसा। ५ वैलगाडी [को०]।
उष्ट्रकांडी—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्ट्रकाण्डी] १ उटटीं नाम का पौधा। २ रक्तपुष्पी [को०]।
उष्ट्रग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] अर्श नामक रोग। ववासीर का मर्ज।
उष्ट्रपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०]मदनमाली नामक पुष्प या लता [को०]।
उष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊँटनी। २ शराव रखने का एक वर्तन [को०]।
उष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँटनी। मादा ऊँट [को०]।
उष्ण[1]—वि० [सं०] १ तप्त। गरम। २ तासीर मे गरम। उ०—यह औषध उष्ण है। ३ सरगरम। फुर्तीला। तेज। आलस्यरहित।
उष्ण[2]—संज्ञा पुं० १ ग्रीष्म ऋतु। २ प्याज। ३ एक नरक का नाम।
उष्णक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रीष्म काल। २ ज्वर। बुखार।
उष्णक[2]—वि० १ गरम। तप्त। २ ज्वर युक्त। ३. तेज। फुरतीला।
उष्णकटिबंध—संज्ञा पुं० [सं० उष्ण कटिबन्ध] पृथ्वी का वह भाग जो कर्क और मकर रेखाओ के बीच मे पडता है। इसकी चौडाई ४७ अंश है अर्थात् भूकम्प रेखा से २३½ अंश उत्तर और २३½ अंश दक्षिण। पृथ्वी के इस भाग मे गरमी बहुत पडती है।
उष्णकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।
उष्णघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी। आतपत्र।
उष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी। ताप।
उष्णत्व—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी।
उष्णनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नामक नदी [को०]।
उष्णवारण—संज्ञा पुं० [सं०] छत्र। छाता। छतरी [को०]।
उष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी [को०]।
उष्णालु—वि० [सं०] १ ताप से पीडित। गरमी खाया हुआ। २. गरमी सहन न कर सकनेवाला [को०]।
उष्णासह—संज्ञा पुं० [सं०] जाडा। जाडे की ऋतु [को०]।
उष्णिक—संज्ञा पुं० [सं० उष्णिह्] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सात अक्षर होते हैं। यह वैदिक छंद है। प्रस्तार से इसके १२८ भेद होते हैं।
उष्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मांड जो भात के पक जाने पर उससे गाढ़े पानी के रूप में निकाला जाता है। २ लप्सी। उ०—मध्यम वर्ग यवागू (४।२।१३६ लप्सी) भी खाता था। इसी का दूसरा नाम उष्णिका (५।२।७१) था।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४६।
उष्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्णिमन्] गरमी। उष्णता [को०]
उष्णीष—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पगडी। साफा। २ मुकुट। ताज। ३ महल का गुंवद। प्रासादशिखर [को०]।
उष्णीषी[1]—वि० [सं० उष्णीषिन्] उष्णीष या मुकुट धारण करने वाला [को०]।
उष्णीषी[2]—संज्ञा पुं० १ शिव का नाम। २. एक चक्राकार भवन [को०]।
उष्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ गर्मी। ताप। २ धूप। ३ गरमी की ऋतु। वसंत (को०)। ५ क्रोध (को०)।
उष्मक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म ऋतु। गरमी का मौसम [को०]।
उष्मज[1]—संज्ञा पुं० [सं०]छोटे छोटे कीडे जो पसीने, मैल और सडी गली चीजों से पैदा हो जाते हैं। जैसे—खटमल, मच्छर, किलनी, जूँ, चीलर इत्यादि।
उष्मज[2]—वि० गर्मी या पसीने के कारण उत्पन्न होनेवाले [को०]।
उष्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १ भृगु के पुत्र का नाम। २ पितृदेव। श्राद्ध ग्रहण करनेवाला। पितृपितामहादि [को०]।
उष्मस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वाष्पस्नान। गरम किए हुए जल में स्नान [को०]।
उष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० उष्मन्] १ गर्मी। ग्रीष्म ऋतु। २ धूप। ३. रिस। क्रोध। ४ उष्म वर्ण श् ष् स्, ह् अक्षर [को०]।
उष्मागम—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म ऋतु [को०]।
उष्मान्वित—वि० [सं०] क्रुद्ध। क्रोध मे भरा हुआ [को०]
उस—सर्व० उभ० [सं० अमुष्य > प्रा० अमुस्स, अउँस्स अथवा सं० *अवस्य] यह शब्द 'वह' शब्द का वह रूप है जो विभक्ति लगने पर बनता है, जैसे, उसने, उसको, उससे, इसमे इत्यादि।
उसकन—संज्ञा पुं० [सं० उत्कर्षण = खींचना, रगड़ना, अथवा देशी (बँ० रू० उकसन)] घास पात या पयाल का वह पोटा जिसमे बालू आदि लगाकर बरतन मांजते हैं। उबसन।
उसकना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकसना'।
उसकाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकसाना'।
उसकारना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकसाना'। उ०—टेढ़ी पाग बाँधि बार बार ही मुरेरैं मूँछ बाँह उसकारैं अति धरत गुमान है।—सुंदर०, ग्रं०, भा० २, पृ० ४२२।
उसन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उष्ण] उष्ण। गरम। उ०—सीतर हुत सो गा तुम्ह सगा, रहौ उसन मम दाहत अगा।—चित्रा० पृ० १६७।

उल्हवरा(पु)—वि० [सं० उत्+लस] उल्लसित करनेवाला। उ०—चदन देह कपूर रस सीतल गंग प्रवाह, मनरजन तन उल्हवरा कदे मिलेसी नाह।—ढोला०, दू० १६१।

उल्हास(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उल्लास] उल्लास। आनद। उ०—सद्गुरु बहुत भाँति समझायो भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५७।

उवठान(पु)—सज्ञा पु० [सं०उपस्थान, प्रा० उवट्ठाण] बैठने का कार्य या स्थिति। एक स्थान मे विशेष रूप से स्थित रहना। उ०—इद्रावति मन मो वसी, की मन सो उवठान। है तैंसो वह को नहीं, जैसो कहेउँ वखान।—इंद्रा०, पृ० ६६।

उवना[1](पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उअना', 'उगना'। उ०—गढ गाँजर तें कूच कर, वीचहि सिविर कराय। दिनकर उवत सो चलिवा, सायागढ कहँ आय।—प० रा०, पृ० १५६।

उवना[2](पु)—क्रि० अ० [स० उदय, प्रा० उग्रग्र] दे० 'ऊगना'। उ०—पियहि निरखि व्रजवाल उवौं सब एकहि काला। ज्यों प्रानन्हि कै आए उझकहिं इंद्रिय जाला।—नंद ग्र०, पृ० ४५।

उवनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० उवना] उदय। प्रकाश। उ०—चद से वदन भानु भई वृषभानु जाई उवनि लुनाई की लवनि की सी लहरी।—देव (शब्द०)।

उवानी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अवानी] आगमन। उ०—जवई सरद उवानी जानी। कुँवरि सहचरी तन मुसुकानी।—नद० ग्र०, पृ० ३८।

उवारा—सज्ञा पु० [हिं० उवारना] रक्षा। हिफाजत। देखभाल। उ०—इन कहि सौंप दीन्ह जिव मारा। सव जीवन को करें उवारा।—कवीर सा० पृ० ६६६।

उवारी—सज्ञा स्त्री० [देश०] कर। महसूल। मालगुजारी। उ०—वारमल मे निकट का सारा इलाका 'दासपल्ला' कहलाता था जो एक धनिक जमींदार के अधीन था। यह जमींदार मराठो को कोई उवारी नहीं देता था।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० ११६।

उशत्—वि० [स०] १. सुदर। नेत्ररजन। २. प्रिय। मनचाहा। ३ पवित्र। निर्मल। निष्पाप। ४. अपवित्र। अश्लील [को०]।

उशती[1]—वि० स्त्री० [स०] दे० 'उशत्'।

उशती[2]—सज्ञा स्त्री० १ कडवी वात। ऐसी उक्ति जिससे श्रोता के मन को चोट पहुँचे। अशुभ कथन [को०]।

उशना—सज्ञा पुं० [सं० उशनस्] शुक्राचार्य का एक नाम।

उशवा—सज्ञा पुं० [अ०] एक पेड़ जिसकी जड रक्तशोधक है। हकीम लोग इसका व्यवहार करते हैं।

उशाना—सज्ञा स्त्री० [वै०स०] १. इच्छा। अभिलाषा। चाहना। २. सोमलता जिससे सोमरस निकाला जाता है। ३ रुद्र की एक पत्नी का नाम [को०]।

उशिज—संज्ञा पुं० [स०] कक्षीवान् के पिता का नाम [को०]।

उशी—सज्ञा स्त्री० [स०] इच्छा। कामना। ख्वाहिश [को०]।

उशीनर—सज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन भारत के अतर्गत एक राज्य का नाम। गाधार देश या मध्यदेश। उशीनर देश का निवासी (को०)।

उशीनरी—संज्ञा स्त्री० [स०] उशीनर देश की रानी। उशीनरवासियों की शासिका [को०]।

उशीर—संज्ञा पुं० [स०] खस। गाँडर या कतरे की जड।

यौ०—उशीर बीज = हिमालय का एक खड।

उशीरक—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

उशीरिक—वि० [सं०] खस वेचनेवाला। उशीर का व्यापारी [को०]।

उशीरी[1]—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे प्रकार की घास [को०]।

उशीरी[2]—वि० उशीर रखनेवाला [को०]।

उश्न(पु)—वि० [स० उष्ण] गरम। तापमय। जलता हुआ। उ०—उश्न शीत नाँही तहि घामा। सूर्ज जपत नही तहि कामा।—प्राण०, पृ० २६८।

उश्वास(पु)—सज्ञा पुं०[स० उच्छ्वास]दे० 'उच्छ्वास'। उ०—श्वास उश्वासा सुमिरले दादू नाम कवीर।—कवीर म०, पृ० ४१३।

उश्शाक—सज्ञा पुं० [अ० उश्शाक, आशिक का बहुव०] प्रेमी लोग। प्रेम करनेवाले। उ०—फौज उश्शाक देख हर जानिब। नाजनी साहव दिमाग हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

उष—सज्ञा पुं० [सं०] १ पांशुज लवण। खारी मिट्टी से निकाला हुआ नमक। २. गुग्गुल। ३. रात्रिशेष। प्रभात। सवेरा। दिन। ४ कामी पुरुष। ५ खारी मिट्टी [को०]।

उषण—सज्ञा पुं० [स०] १ काली मिर्च। मरीच। २ पिप्पलीमूल। पीपर [को०]।

उषणा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ पीपर। पिप्पलीमूल। २. सोठ। शुठ [को०]।

उषती—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उशती' [को०]।

उषना—क्रि० अ०[स० उष्=‘गरम होना’] तपना। उ०—ते उस्वास अगिनि की उपी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी।—नद० ग्र०, प० १३४।

उषप—संज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ चित्रक [को०]।

उषर्बुध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २ चीते का पेड। ३ चीता (को०)। ४. वच्चा। शिशु (को०)।

उषर्बुध[2]—वि० प्रात काल जागनेवाला। उषा वेला मे निद्रा त्याग कर उठ जानेवाला (को०)।

उषस्—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उषा'।

उषसी—सज्ञा स्त्री० [स०] दिनात। संध्या। द्वाभा [को०]।

उषसुत—सज्ञा पु० [स०] पाशुज लवण। नोनी मिट्टी से निकाला हुआ नमक।

उषा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. प्रभात। वह समय जब दो घंटे रात रह जाय। ब्राह्म वेला। २. अरुणोदय की लाली। ३ वाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही गई थी।

यौ०—उषाकाल। उषापति।

उषाकल—संज्ञा पुं० [स०] मुर्गा। कुक्कुट [को०]।

उल्लिखित--वि० [स०] १ खोदा हुआ। उत्कीर्ण। २ छीला हुआ। खरादा हुआ। ३ ऊपर लिखा हुआ। ४ खींचा हुआ। चित्रित। नक्श किया हुआ। लिखित।

उल्ली--संज्ञा स्त्री० [स०] सघ। गिरोह [को०]।

उल्लीढ--वि० [स०] १ रगड़कर साफ किया हुआ। खराद पर चढाया हुआ। २ पालिश किया हुआ [को०]।

उल्लुंचन--संज्ञा पुं० [सं० उल्लुञ्चन] १ उखाड़ना। २ काटना। ३ बाल नोचना या खींचना [को०]।

उल्लुंठन--संज्ञा पुं० [स० उल्लुण्ठन] १ कुढ़कना। २ आक्षेप। करना। व्यग्य करना [को०]।

उल्लुंठा--संज्ञा स्त्री० [स० उल्लुण्ठा] १ लुढकन। २ आक्षेप। काकूक्ति। व्यग्य [को०]।

उल्लुंठित--वि० [स० उल्लुण्ठित] रगड़ा हुआ। घर्षित [को०]।

उल्लू--संज्ञा पुं० [स० उलूक] १. दिन मे न देखनेवाला एक पक्षी। कुचकुचवा। कुम्हार का डिगरा। खूसट।

विशेष--यह प्राय भूरे रग का होता है। इसका सिर बिल्ली की तरह गोल और आँखें भी उसी की तरह बड़ी और चमकीली होती हैं। ससार मे इसकी सैकड़ो जातियाँ हैं पर प्राय सब की आँखो के किनारे पर भौंरी के समान चारो ओर ऊपर को फिरे होते हैं। किसी किसी जाति के उल्लू के सिर पर चोटी होती है और किसी किसी के पैर मे अँगुलियो तक पर होते हैं। ५ इच से लेकर २ फुट तक ऊँचे उल्लू ससार मे होते हैं। उल्लू की चोच कँटिए की तरह टेढी और नुकीली होती है। किसी किसी जाति के कान के पास के पर ऊपर को उठे होते हैं। सब उल्लुओ के पर नरम और पजे दृढ होते हैं। ये दिन को छिपे रहते हैं और सूर्यास्त होते ही उड़ते हैं और छोटे बड़े जानवरो और कीड़े मकोड़ो को पकडकर अपना पेट भरते हैं। इसकी बोली भयावनी होती है और यह प्राय ऊजड स्थानो में रहता है। लोग इसकी बोली बुरा समझते हैं और इसका घर मे या गाँव मे रहना अच्छा नही मानते। तात्रिक लोग इसके मास का प्रयोग उच्चाटन आदि प्रयोगो मे करते हैं। प्राय सभी देश और जातिवाले इसे अभक्ष्य मानते हैं।

मुहा०--उल्लू का गोश्त खिलाना = बेवकूफ बनाना। मूर्ख, बनाना।

विशेष--लोगो की धारणा है कि उल्लू का मास खाने से लोग मूर्ख हो जाते या गूँगे बहरे हो जाते हैं।

उल्लू बनाना = किसी को बेवकूफ साबित करना। उ०--हम तुम मिल जाय तो पौ बारह है। इनको मिल के उल्लू बनाओ।--फिसाना०, पृ० १६५। उल्लू बोलना = उजाड होना। उजड़ जाना। उ०--किसी समय यहाँ उल्लू बोलेंगे (शब्द०)।

२. निर्बुद्धि। बेवकूफ। मूर्ख।

क्रि० प्र०--करना।--बनना।--बनाना।--होना।

उल्लेख--संज्ञा पुं० [स०] [वि० उल्लेखक, उल्लेखनीय, उल्लेखित, उल्लेख्य] १ लिखना। लेख। २ वर्णन। चर्चा। जिक्र। जैसे,--इस बात का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

क्रि० प्र०--करना। होना

३ एक काव्यालकार जिसमे एक ही वस्तु का अनेक रूपों मे दिखाई पड़ना वर्णन किया जाय।

विशेष--इसके दो भेद हैं, प्रथम और द्वितीय। प्रथम--जहाँ अनेक जन एक ही वस्तु को अनेक रूपो मे देखें वहाँ प्रथम भेद है, जैसे,--वारन तारन वृद्ध तिय, श्रीपति जुवतिन भूमि। दर्शनीय बाला जनन लखे कृष्ण रंगभूमि (शब्द०)। अथवा जानत सौति अनीति है, जानत सखी सुनीति। गुरुजन जानत लाल है, प्रीतम जानत प्रीति (शब्द०)। पहले उदाहरण में एक ही कृष्ण को वृद्धा स्त्रियो ने हाथी का उद्धार करनेवाला और युवतियो ने लक्ष्मी के साथ रमण करनेवाला देखा और दूसरे उदाहरण मे एक ही नायिका को सौत ने अनीति रूप मे और गुरुजनो ने लज्जा रूप मे देखा। पहला उदाहरण शुद्ध उल्लेख का है क्योकि उसमे और अलकार का आभास नही है, पर दूसरा उदाहरण सकीर्ण उल्लेख का है क्योकि एक ही नायिका मे सुनीति और लज्जा आदि कई अन्य वस्तुओ का आरोप होने के कारण उसमे रूपक अलकार भी मिल जाता है। द्वितीय--जहाँ एक ही वस्तु को एक ही व्यक्ति कई रूपों मे देखें वहाँ द्वितीय भेद होता है। जैसे,--कजन अमलता में, खजन चपलता मे, छलता मे मीन, कलता मे बड़े ऐन के।--------यामे झूठी है न प्यारे ही मे आह लागिबे मे प्यारी जू के नैन ऐन तीखे बान मैन के (शब्द०)।

उल्लेखन--संज्ञा पु० [स०] १ लिखना। उल्लेख करना। २ चित्रकारी करना। ३ रेखाएँ खीचना। ४ रगड़ना। खरोचना। ५ वमन करना। ६ गाड़ना ७ खड़ा करना। ऊपर उठाना [को०]।

उल्लेखनीय--वि० [स०] लिखने योग्य। उल्लेख योग्य।

उल्लेखी--वि० [स० उल्लेखिन्] १ विदीर्ण करनेवाला। फाड़नेवाला। २ वेग से चलनेवाला।

उल्लेख्य--वि० [स०] १ उल्लेख करने योग्य। लिखने योग्य। २ कहने योग्य। कथनीय। बताने योग्य [को०]।

उल्लोच--संज्ञा पु० [स०] १ वितान। चद्रातप। चँदोवा। २. आच्छादन। व्यवधान [को०]।

उल्लोल¹--वि० [स०] जोरो से हिलता या काँपता हुआ। अतिशय चचल [को०]।

उल्लोल²--संज्ञा पुं० ऊँची लहर। कल्लोल। हिलोरा। हिल्लोल [को०]।

उल्व--संज्ञा पुं० [स०] १ झिल्ली जिसमे बच्चा बँधा हुआ पैदा होता है। आँवला। अँवरी। २ गर्भाशय।

उल्वण¹--वि० [स०] अद्भुत। विलक्षण। उ०--उल्वण, दारुण, घोर अरु उत्कट, उग्र, कराल।--नद० ग्र० पृ०, १११।

उल्वण²--संज्ञा पुं० [स०] १ आँवल। वह हल्की झिल्ली, जो बच्चे को, जब वह माँ के गर्भ में रहता है, चारो ओर से घेरे रहती है। उल्व। अँवरी २ वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

उल्हना⁽ᵖ⁾†--क्रि० स० [हिं०] दे० उलहना'। उ०--नददास ज्यो स्याम तमालहि, कनकलता उलहए।--नद० ग्र०, पृ० ३४८।

उल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह झिल्ली, जिसमे गर्भस्थ शिशु लिपटा रहता है। २ गर्भाशय। ३ गुफा। कदरा [को०]।

उल्वण¹—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य के समय की हाथों की एक मुद्रा। २ गर्भाशय। आंवल [को०]।

उल्वण²—वि० १. प्रचुर। पुष्कल। अत्यधिक। २. दृढ़। शक्तिमान। बलिष्ठ [को०]।

उल्वण³—क्रि० वि० जोरों से। प्रबल रूप मे [को०]।

उल्व्य¹—पुं० संज्ञा [सं०] १ त्रिदोप। वात, पित्त और कफ मे किसी एक का आधिक्य या दोष। २. विपत्ति [को०]।

उल्व्य²—वि० गर्भाशय मे रहनेवाला [को०]।

उल्मुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगारा। अँगार। २ लुआठ। उल्का। ३ एक यादव का नाम। ४ महाभारत मे आया हुआ एक महारथी राजा।

उल्लघन—संज्ञा पुं० [सं० उल्लङ्घन] १. लांघना। डाँकना। अतिक्रमण। २ विरुद्ध आचरण। न मानना। पालन न करना। जैसे,— बडो की आज्ञा का उल्लघन न करना चाहिए।

उल्लघन(पु)—क्रि०स० [सं० उल्लङ्घन] दे० 'उलंघना'।

उल्लघित—वि० [सं० उल्लङ्घित] १. लांघा हुआ। तोडा हुआ। २ अतिक्रमण किया हुआ [को०]।

उल्लफन—संज्ञा पुं० [सं० उल्लम्फन] कूदना। कुदान [को०]।

उल्लबित—वि० [सं० उल्लम्बित] खडा हुआ। उठा हुआ [को०]।

उल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मदिरा [को०]।

उल्लकसन—संज्ञा पुं०[सं०]रोमाच होना। रोएँ खडे हो जाना [को०]।

उल्लल—वि० [सं०] १ हिलता हुआ। काँपता हुआ। अस्थिर। २. रोएँदार। ३ अनेक रोगों से पीडित या ग्रस्त [को०]।

उल्ललित—वि० [सं० उत्+ललित] १ कपित। क्षुब्ध किया हुआ। २ खडा किया हुआ। उठाया हुआ [को०]।

उल्लस—वि० [सं० उत्+लस] १ दमकता हुआ। चमकीला। २ प्रसन्न। हर्षित। बाहर होता हुआ। प्रकट होता हुआ [को०]।

उल्लसन—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उल्लसित, उल्लासी]१ हर्ष करना। खुशी करना। २ रोमाच।

उल्लसित—वि० [सं०] १ प्रसन्न। हर्षित। २ चमकता हुआ। ३. बाहर निकाला हुआ (खग)। ४ हिलता हुआ। आदोलित। कंपित [को०]।

उल्लाघ¹—वि० [सं०]१ रोग से छुटकारा पाता हुआ। २ चतुर। कुशाग्रबुद्धि। कौशली। ३ पवित्र। ४. प्रसन्न। हर्षयुक्त। ५ दुष्ट। ६ काला [को०]।

उल्लाघ²—संज्ञा पुं० काली मिर्च [को०]।

उल्लाघता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वस्थता। स्वास्थ्य [को०]।

उल्लाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ काकूक्ति। २. आर्तनाद। कराहना। बिलखाना। ३. दुष्टवाक्य। ४ सकेत। इशारा (को०)। ५ आवेग मे स्वर का परिवर्तन (को०)।

उल्लापक—वि० [सं०][वि० स्त्री० उल्लापिका]खुशामदी। ठकुरसुहाती करनेवाला।

उल्लापन—संज्ञा पुं०[सं०][वि० उल्लापक]खुशामद। ठकुरसुहाती। उपचार। तोषामोद।

उल्लापिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपरी स्तर। ऊपर की तह [को०]।

उल्लापिक²—वि० १ खुशामद करनेवाला। २. बतानेवाला। प्रकट करनेवाला [को०]।

उल्लापी—वि०[सं० उल्लापिन्]उल्लाप करनेवाला। खुशामदी [को०]।

उल्लाप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपरूपक का एक भेद। यह एक अंक का होता है। २ सात प्रकार के गीतों मे एक। जब सामगान मे मन न लगे तब इसके पाठ का विधान है (मिताक्षरा)।

उल्लाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक अर्धसम छद जिसके पहले और तीसरे चरण मे १५ मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण मे १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे —यह कवित कहा विन रुचिर मति। मति सो कहा विनही विरति। कह विरतिउ लाल गोपाल के। चरननि होय जु प्रीति अति (शब्द०)।

उल्लाला—संज्ञा पुं० [सं० उल्लाल] एक मात्रिक छद जिसके प्रत्येक चरण मे १३ मात्राएँ होती हैं। इसे चद्रमणि भी कहते हैं। जैसे,— सेवहु हरि सरसिज चरण, गुणगण गावहु प्रेमकर। पावहु मन मे भक्ति को, और न इच्छा जानि यह (शब्द०)।

उल्लास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उल्लासक, उल्लासित] १ प्रकाश। चमक। झलक। २ हर्ष। सुख। आनद। ३ ग्रथ का एक भाग। पर्व। ४ एक अलकार जिसमे एक के गुण या दोप से दूसरे मे गुण या दोप दिखलाया जाता है इसके चार भेद हैं—(क) गुण से गुण होना। जैसे—न्हाय सत पावन करें, गग धरें यह आश (शब्द०)। (ख) दोप से दोप होना। जैसे,—जरत निरखि परपर घसन सो, बाँस अनल उपजाय। जरत आप सकुटुब अन, वन हू देत जराय (शब्द०)। (ग) गुण से दोप होना। जैसे—करन ताल मदवश करी, उडवत अलि अवलीन। ते अलि विचरहिं सुमनवन, है करि शोभाहीन (शब्द०)। (घ) दोप से गुण होना। जैसे,—मूँघ चप अरु चाट झट, फेंक्यों बानर रत्न। चंचलता वश जिन वरचो जेहि फोरन को यत्न (शब्द०)।

विशेष—कोई कोई (क) और (ख) को हेतु अलकार या सम अलकार और (ग) और (घ) को विचित्र या विषम अलंकार मानते हैं।—उनके मत से यह अलकारातर है।

उल्लासक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उल्लासिका] आनद करनेवाला। आनदी। मौजी।

उल्लासना(पु)—क्रि० स० [सं० उल्लासन] १ प्रकाशित करना। प्रकट करना। २. प्रसन्न करना। उ०—(क) प्रबल तेज तिर्हिं जगत जीव रक्षा उल्लासिय।—मतिराम ग्र०, पृ० ४९३। (ख) चद्र उदय सागर उल्लासा। हरहिं सकल नभ केर विनासा।—शकर दिग्विजय (शब्द०)।

उल्लासित—वि० [सं०] १ खुश। हर्षित। मुदित। प्रसन्न। २. उद्धत। २ स्फुरित।

उल्लासी—वि० [सं०उल्लासिन्] [वि० स्त्री० उल्लासिनी] आनदी। सुखी। मौजी।

उल्लिंगित—वि० [सं० उल्लिङ्गित] प्रख्यात। मशहूर [को०]।

उलेटना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ उलटना] दे॰ 'उलटना'।

उलेटा†—वि॰ [हिं॰ उलटा] दे॰ 'उलटा'।

उलेडना(पु)†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ उडेलना] ढरकाना। उडेलना। ढालना। उ॰—गारी होरी देत देवावत, व्रज मे फिरत गोपिकन गावत। थकि गए वाटत नारे पँडे, नव केसर के माट उलेंडे।—सूर॰ (शब्द॰)।

उलेल[1](पु)—संज्ञा [सं॰ उद्-लाल, प्रा॰ उल्लल] १. उमंग। जोश। तेजी। उछलकूद। उ॰—(क) ठठके सब जड से भए मरि गई हिय की उलेल। प्राननाथ के विनु रहे माटी के सी खेल।—काष्ठजिह्वा (शब्द॰)। (ख) क्यो याके ढिग भाव ताव भापत उलेल को। सुकवि कहत यह हँसत ग्राचमनकरि फुलेल को।—व्यास (शब्द॰)। २ वाढ।

उलेल[2](पु)—वि॰ [हिं॰] वेपरवाह। अल्हड। ग्रनजान।

उलेंडना(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'उलेडना'।

उल्का—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १ लूक। लुग्राठा।

यौ॰—उल्कामुख। उल्काजिह्वा।

३ मशाल। दस्ती। ३ दिया। चिराग। ४ एक प्रकार के चमकीले पिंड जो कभी कभी रात को ग्राग की लकीर के समान ग्राकाश मे एक ग्रोर से दूसरी ग्रोर को वेग से जाते हुए ग्रथवा पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पडते हैं।

विशेष—इनके गिरने को 'तारा टूटना' या 'लूक टूटना' कहते हैं। उल्का के पिंड प्राय किसी विशेष ग्राकार के नही होते। ककड या झाँवे की तरह ऊवड़खावड़ होते हैं। इनका रग प्राय काला होता है ग्रौर उनके ऊपर पालिश या लूक की तरह चमक होती है। ये दो प्रकार के होते हैं—एक धातुमय ग्रौर दूसरे पाषाणमय। धातुमय पिंडो की परीक्षा करने से उनमें विशेष ग्रश लोहे का मिलता है, जिसमे निकल भी मिला रहता है। कभी कभी थोडा ताँवा ग्रौर राँगा भा मिलता है। इनके ग्रतिरिक्त सोना, चाँदी ग्रादि वहुमूल्य धातुएँ कभी नही पाई जाती। पाषाणमय पिंड यद्यपि चट्टान के समान होते है, तथापि उनमें भी प्राय लोहे के वहुत महान कण मिले रहते हैं। यद्यपि किसी किसी मे उज्जन या उद्जन (हाइड्राजन) ग्रौर ग्राविसजन के साथ मिला हुग्रा कारवन भी पाया जाता है जो सावयव द्रव्य (जैसे, जीव ग्रौर वनस्पति) के नाश से उत्पन्न कारवन से कुछ मिलता है। पर ऐसे पिंड केवल पाँच या छह पाए गए हैं, जिनमे किसी प्रकार की वनस्पति की नसो का पता नही मिला है। धातुवाले उल्का कम गिरते देखे गए हैं। पत्थरवाले ही ग्रधिक मिलते हैं। उल्कापिंड मे कोई ऐसा तत्व नहीं है जो इस पृथ्वी पर न पाया जाता हो। उनकी परीक्षा से यह वात जान पडती है कि वे जिस वडे पिंड से टूटकर ग्रलग हुए होगे, उनपर न जीवो का ग्रस्तित्व रहा होगा, न जल का नामोनिशान रहा होगा। वे वास्तव मे 'तेजसभव' हैं। ये कुछ कुछ उन चट्टान या धातु के टुकडो से मिलतेजुलते हैं जो ज्वालामुखी पर्वतों के मुँह से निकलते हैं। भेद इतना ही होता है कि ज्वालामुखी पर्वत से निकलते टुकड़ो मे लोहे के ग्रश मोरचे के रूप मे रहते हैं ग्रौर उल्कापिंडो मे धातु के रूप मे। उल्का का वेग प्रति सेकेंड दस मील से लेकर चालीस पचास मील तक का होता है। साधारण उल्का छोटे छोटे पिंड हैं जो ग्रनियत मार्ग पर ग्राकाश मे इधर उधर फिरा करते हैं। पर उल्काग्रो का एक वडा भारी समूह है जो सूर्य के चारों ग्रोर केतुग्रो की कक्षा मे घूमता है। पृथ्वी इस उल्का क्षेत्र में से होकर प्रत्येक तैंतीसवें वर्ष कन्या राशि पर ग्रर्थात् १४ नववर के लगभग निकलती है। इस समय उल्का की झडी देखी जाती है।

उल्काखड जव पृथ्वी के वायुमडल के भीतर ग्राते हैं तव वायु की रगड़ से वे जलने लगते हैं ग्रौर उनमे चमक ग्रा जाती है। छोटे छोटे पिंड तो जलकर राख हो जाते हैं ग्रौर घडघडाहट का शब्द भी होता है। जव उल्का वायुमडल के भीतर ग्राते हैं ग्रौर उनमे चमक उत्पन्न होती है तभी वे हमे दिखाई पडते हैं। उल्का पृथ्वी से ग्रधिक से ग्रधिक १०० मील के ऊपर ग्रथवा कम से कम ४० मील के ऊपर से होकर जाते दिखाई पडते हैं। पृथ्वी के ग्राकर्पण से ये नीचे गिरते हैं। गिरने पर इनके ऊपर का भाग गरम होता है। लदन, पेरिस, वरलिन, वियना ग्रादि स्थानो मे उल्का के वहुत से पत्थर रखे हुए हैं।

६. फलित ज्योति मे गौरी जातक के ग्रनुसार मगला ग्रादि ग्राठ दशाग्रो मे से एक। यह छह वर्षों तक रहती है।

उल्काचक्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ उत्पात। विघ्न। २ हलचल।

उल्काचिह्न—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक राक्षस का नाम।

उल्काधारी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उल्काधारिन्] मशालची। मशाल दिखाने वाला व्यक्ति [को॰]।

उल्कापात—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तारा टूटना। लूक गिरना। २. उत्पात। विघ्न वाधा।

उल्कापाती—वि॰ [सं॰ उल्कापातिन्] [वि॰ स्त्री॰ उल्कापातिनी] दंगा मचानेवाला। हलचल करनेवाला। उत्पाती। विघ्नकारी।

उल्कापाषाण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पत्थर या धातु का वह ठोस पिंड जो उल्का के रूप मे ग्राकाशमार्ग से होता हुग्रा धरती पर ग्रा गिरता है [को॰]।

उल्कामाली—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उल्कामालिन्] भगवान शकर के एक गण का नाम [को॰]।

उल्कामुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ उल्कामुखी] १ गीदड। २. एक प्रकार का प्रेत जिसके मुँह से प्रकाश या ग्राग निकलती है। ग्रगिया वैताल।

उल्कुषी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. उल्का। लूक। २. मशाल [को॰]।

उल्था—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ उलथना] भाषातर। ग्रनुवाद। तरजुमा। उ॰—इसमे यह शका न करना कि मैंने किसी मत की निंदा के हेतु यह उल्था किया है।—भारतेंदु ग्र॰, भा॰ १, पृ॰ ५०।

उलांकी—संज्ञा पुं० [हिं० उलांक] डाक का हरकारा ।

उलाँघना㉮†—क्रि० स० [सं० उल्लघन, प्रा० उल्लघण] १ लाँघना । डाँकना । फाँदना । २ अवज्ञा करना । न मानना । विरुद्ध आचरण करना । ३ चाबुक सवारों की बोली मे पहले पहल घोडे । पर चढना ।

उला㉮—संज्ञा स्त्री० [स० उरण या म० उरभ्र प्रा० उरब्भ] भेड का बच्चा । मेमना ।—डिं० ।

उलाक—वि० [स० उल्लघन] चपत । रफूचक्कर । उ०—नाक ह्वै निकाम जाको देखत उलाक होत नाक सुख खोय गिरे नरक गटाक दे ।—राम० धर्म०, पृ० ८४ ।

उलाटना†—क्रि० स० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना' ।

उलाथना㉮— क्रि० अ० [हिं०] उलथना । हटना । दूर जाना । उलटना । उतरना । उ०—आजुणंउ घन दीहणउ साहिब कउ मुख दिट्ठ, माथा भार उलाथियउ आँख्याँ अमी पयट्ठ ।—ढोला०, दू० ५३१ ।

उलार—वि० [हिं० ओलरना = लेटना] जिसका पिछला हिस्सा भारी हो । जो पीछे की ओर झुका हो । जिसके पीछे की ओर बोझ अधिक हो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गाडी आदि के सबध मे होता है । जब गाडी मे आगे की अपेक्षा पीछे अधिक बोझ हो जाता है तब वह पीछे की ओर झुक जाती है और नही चलती । इसी को उलार कहते हैं ।

उलारना[१]†—क्रि० स० [हिं० उलरना] उछालना । नीचे ऊपर फेंकना । उ०—दीन्हे शकुनी अक्ष उलारी । किंकर भए धरमसुत हारी ।—सबल (शब्द०) ।

उलारना[२]—क्रि० स० [हिं० ओलरना] दे० 'ओलारना' ।

उलारा—संज्ञा पुं० [हिं उलरना] वह पद जो चौताल के अत मे गाया जाता है ।

उलाह㉮—संज्ञा पुं० [स० उल्लास] उल्लास । उमग । जोश । उत्साह । उ०—कैसो मिलाप लियो इन मानि मिले मग आनि अनेक उलाह ।—घनानद०, पृ० ११८ ।

उलाहना[१]—संज्ञा पुं० [स० उपालभ, प्रा० उवालभ, ओलभ] १ किसी की भूल या अपराध को उसे दु खपूर्वक जताना । किसी से उसकी ऐसी भूल चूक के विषय मे कहना सुनना जिससे कुछ दु ख पहुँचा हो । शिकायत । गिला । जैसे,—जो हम उनके यहाँ न उतरेंगे तो वे जब मिलेंगे तब उलाहना देंगे ।—

क्रि० प्र०—देना ।

२ किसी के दोष या अपराध को उससे सबध रखनेवाले किसी और आदमी से कहना । शिकायत । जैसे, —लडके ने कोई नटखटी की है तभी ये लोग उसके बाप के पास उलाहना लेकर आए हैं ।

क्रि० प्र०—देना ।—लाना ।—लेकर आना ।

उलाहना[२]㉮†—क्रि० स० [हिं० उलाहना] १ उलाहना देना । गिला करना । २ दोष देना । निंदा करना । उ०—मोहि लगावत दोष कहा है । तैं निज लोचन क्यो न उलाहै ।—प्रतापनारायण (शब्द०) ।

उलिंद—संज्ञा पुं० [सं० उलिन्द] १ शिव । एक देश [को०] ।

उलिगण㉮†—वि० [स० अलग्न] दे० 'अलग' । बाहर गया हुआ । मुसाफिर । युद्ध पर गया हुआ । उ०—जिण सिरजइ उलिगण घर नारि, जाइ दिहाडउ झूरिताँ ।—बी० रासो, पृ० १ ।

उलिचना†㉮—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलीचना' ।

उलीचना—क्रि० स० [स० अवनेजन, उल्लु चन, पा० ओणेजन] १ पानी फेंकना । हाथ या बरतन से पानी उछालकर दूसरी ओर डालना । जैसे,—नाव से पानी उलीचना । उ०—(क) पेंड काटि तें पालव सींचा । मीन जियन हित वारि उलीचा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पानी बाढ़ो नाव मे घर मे बाढो दाम, दोऊ करन उलीचिए यही सयानो काम ।—गिरिधर (शब्द०) । (ग) दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीची ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उलुबा—संज्ञा स्त्री० [स० उलुम्बा] हरी पकी बालवाले जौ या गेहूँ का भूना हुआ पौधा । उबी । ऊमी ।

उलुप—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उलप' [को०] ।

उलुपी—संज्ञा पुं० [स० उलुपिन्] दे० 'उलपी' [को०] ।

उलुप्य—वि० [स०] दे० 'उलप्य' [को०] ।

उलू㉮—संज्ञा पुं० [स० उलूक] दे० 'उलूक' । उ०—(क) हेरैं गयो हुमाय जो कोई । उलू मिला जो सरवस खोई ।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २६६ । (ख) कर तोर पुरुष रैनि को राऊ । उलू न जान दिवस कर भाऊ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७७ ।

उलूक[१]—संज्ञा पुं० [स०] १. उल्लू । २ इद्र । ३ दुर्योधन का एक दूत । यह उलूक देश के राजा कितव का पुत्र था और महाभारत मे कौरवो की ओर था । ४ उत्तर पर्वत का एक प्राचीन देश जिसका वर्णन महाभारत मे आया है । ५ कणाद मुनि का एक नाम ।

यौ०—उलूकदर्शन = कणाद मुनि का वैशेषिक दर्शन ।

उलूक[२]㉮—संज्ञा पुं० [स० उल्का] लूक । लौक । उ०—जोरि जो धरी है बेदरद द्वारे होरी तौन मेरी बिरहाग की उलूकनि लौ लाय आव ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उलूखल—संज्ञा पुं० [स०] १. ओखली । २ खल । खरल । चट्टू । ३ गुग्गुल ।

उलूखलक—संज्ञा पुं० [स०] १ छोटी ओखली । २ गुग्गुल ।

उलूत—संज्ञा पुं० [सं०] अजगर की जाति का एक साँप ।

उलूप—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उलप' [को०] ।

उलूपी—संज्ञा पुं० [स०] १ ऐरावतवशी कौरव्य नाम की कन्या जिससे अर्जुन ने अपने १२ वर्ष के वनवास मे विवाह किया था । इसी का पुत्र बभ्रुवाहन था । २ मछली । सूस (को०) । ३ दे० 'उलपी' (को०) ।

उलेखना†㉮—क्रि० अ० [स० उल्लेख] पहचानना । जानना । उ०—कै बहुतै कै एक जहँ, एक वस्तु को देखि । बहु विधि करि उल्लेख है, सो उल्लेख उलेखि ।—भूषण ग्रं० पृ० १८ ।

उलथा—संज्ञा पुं० [हिं० उलटना] १ एक प्रकार का नृत्य। नाचने के समय ताल के अनुसार उछलना।
क्रि० प्र०—मारना।
२ कलाबाजी। कलैया। ३ गिरह मारकर कलाबाजी के साथ पानी मे कूदना। उलटा। उडी।
क्रि० प्र०—मारना।—लेना।
४ एक स्थान पर बैठे बैठे इधर उधर अग फेरना। करवट बदलना।
क्रि० प्र०—मारना।—लेना। जैसे,—भैंस पानी मे पडी पडी उलथा मारा करती है।
दे० 'ललथा'।

उलथाना(पु)— क्रि० अ० [हिं० उलथना] दे० 'उलथना'। उ०—लहरें उठी समुँद उलथना। भूला पथ सरग नियराना।—जायसी (शब्द०)।

उलद(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अव+द्रव (ण) अथवा हिं० उलदना] प्रस्रवण। झडी। वर्षण। उ०—देख्यो गुजरेठी ऐसे प्रात ही गली मे जात स्वेद भरयो गात मात घन की उलद से।—रघुराज (शब्द०)।

उलदना¹(पु)†—क्रि० स० [सं० अवद्रवण अथवा हिं० उलटना] १ उडेलना। उझिलना। ढालना। गिराना। बरसाना। उ०—(क) गाज्यो कपि गाज ज्यो विराज्यो ज्वाल जाल जुत, भाजे धीर वीर अकुलाइ उठ्यो रावनो। धावो धावो धरो सुनि धाए जातुधान धारि, वारि धारउलदें जलद ज्यो न सावनो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उलदत मद, अनुमद ज्यो जलधि जल, बल हद भीम कद काहू के न आह के।—भूषण (शब्द०)। (ग) लैं तुवा सरजू जल आनी। उलदत मुहरें सब कोइ जानी। रघुराज (शब्द०)।

उलदना²(पु)—क्रि० स० [प्रा० उल्लदिय=लादा हुआ या आक्रात] लादना। ऊपर लादना। उ०—मन ही मे लादै उलदै अनत न जाय। मनहिं की पैदा मनहिं मे खाय।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।

उलप—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोमल घास का एक प्रकार या भेद। २ विस्तीर्ण लता [को०]।

उलपराजि, उलपराजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास की ढेरी [को०]।

उलपराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलपराजि' [को०]।

उलपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलप' [को०]।

उलपी—संज्ञा पुं० [स० उलपिन] शिशुमार। सूँस [को०]।

उलप्य¹—वि० [स०] वि० स्त्री० उलप्या उलप घास सबधी या उलप घास मे रहनेवाला [को०]।

उलप्य²—संज्ञा पुं० [स०] रुद्र [को०]।

उलफत—संज्ञा स्त्री० [अ० उल्फत] प्रेम। मुहब्बत। प्यार। प्रीति।

उलमना(पु)†—क्रि० अ० [स० अवलम्बन न० पा० प्रा० ओलम्बन=लटकना] लटकना। झुकना। उ०—अँगुरिन उचि भरु भीत दै उलमि चितै चख लोल। रुचि सो दुहूँ दुहून के चूमे चारु कपोल।—विहारी (शब्द०)।

उलमा—संज्ञा पुं० [अ० आलिम का बहु० व०] आलिम लोग। विद्वज्जन। उ०—मजहब के मामले मे उलमा के सिवा और किसी को दखल देने का मजाज नहीं है।—काया०, पृ० ४७।

उलमाय(पु)—संज्ञा पु० [अ० उलमा] दे० 'उलमा'। उ०—उलमाय फकीरान की तकरीर मे देखो —कबीर म०, पृ० ४६७।

उलरना¹(पु)†—क्रि० अ० [सं० उद्+लर्व=डोलना या उल्ललन, प्रा० उल्लर=ऊपर को चलना] १ कूदना। उछलना। उ०—बिनहिं लहे फल फल भूल सो उलरत हुलसन। मनहुँ पाइ रवि रतन तारिहैं सो निज कुल सत (शब्द०)। २ नीचे ऊपर होना। ३ झपटना। उ०—कह गिरिधर कविराय बाज पर उलरै घुघुकी। समय समय की बात बाज कहँ घिरवै फुदकी।—गिरिधर (शब्द०)।

उलरना†(पु)²—क्रि० अ० [प्रा० ओल्लरण] पड़ जाना। सो जाना। उ०—इक दिन पाँव पसारि उलरना, समुझि देखि निश्चै करि मरना।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३३४।

उलरुआल—संज्ञा पुं० [हिं० उलरना] बैलगाडी के पीछे लटकती हुई एक लकडी जिससे गाडी उलार नही होती अर्थात् पीछे की ओर नही दबती।

उललना(पु)—संज्ञा क्रि० अ० [हिं० उडलना] १ ढरकना। ढलना। २ उलटना। पलटना। इधर उधर होना।

उलवा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उलूक, हिं० उल्लू] दे० 'उल्लू' उ०—उलवा मारै काग कौं काकु सु हनै उलूक। सुदर बैरी परस्पर सज्जन हस कहूँक।—सुदर ग्र०, भा० २ पृ० ७८६।

उलवी—संज्ञा स्त्री० [सं० उद+वी] एक प्रकार की मछली जिसके पर वा पाँख का व्यापार होता है। इसके पर से एक प्रकार की सरेस निकलती है।

उलसना(पु)†—क्रि० अ० [सं० उल्लसन] शोभित होना। सोहना। उ०—छवि उलसी तुलसी की माल। बनि रही पदार्जत विशाल।—नद० ग्र०, पृ० २६७।

उलहना¹†(पु)—क्रि० अ० [सं० उल्लसन] १ उमडना। निकलना। प्रस्फुटित होना। उ०—(क) दोप बसत को दीजे कहा उलही न करील की डारन पाती—पद्माकर (शब्द०)। (ख) उलटे महि अकुर मजु हरे। बगरी तहँ इद्रवधू गन ये। (शब्द०)। २ उमडना। हुलसना। झूलना। उ०—(क) केलि भवन नव बेलि सी दुलही उलही कन, बैठि रही चुप चद लखि तुमहिं बुलावत कत, उ०—पद्माकर (शब्द०)। (ख) काजर भीनी कामनिधि दीठ तिरीछी पाय भरयो। मजरिन निलक तरु मनहुँ रोम उलहाय।—हरिश्चद्र (शब्द०)।

उलहना²(पु)†—क्रि० स० [स० उपलम्भ, प्रा० उवालभ, उवालभ] दे० 'उलाहना'।

उलहाना¹—संज्ञा पुं० [स० उल्लसन] उल्लासित करना। बढाना। उ०—मनो कुलहा रघुवस को चारु दुरयो जिय उहलता उलहावै।—उत्तर०, पृ० १८।

उलहाना²(पु)—क्रि० अ० उल्लसित होना। उमडना। बढना। उ०—दुष्ट सुभाव वियोग खिस्याने सग्रह कियो सहाई। सूखी लकरी बायु पाई कै चलो अगिन उलहाई।—भारतें ग्र०, भा० २ पृ० ५४२।

उलाँक—संज्ञा पुं० [हिं० लाँघना स० उत्√लङ्घ प्रा० उल्लघ] १ चिट्ठी पत्री आने जाने का प्रबध। डाक। २ पटेला नाव।

उलाँकपत्री—संज्ञा पु० [हिं० उलाक+स० पत्र] पोस्टकार्ड या चिट्ठी।

सो भ्रम भूल हू न कीजे मान हाँतो करि हियहू सो होत हिय हानिए। लोक मे अलोक ग्रान नीकहू लगावत हैं सीता जू को दूत गीत कैसे उर ग्रानिए। ग्रांखिन जो देखियत सोई साँची केशवराइ कानन की सुनी साँची कबहूँ न मानिए। गोकुल की कुलटा ये यों ही उलटावति हैं ग्राज लौं तो वैसी ही हैं काल्हि कहा जानिए।—केशव (शब्द०)। ३. फेरना। दूसरे पक्ष मे करना। उ०—(क) ग्रव लखहु करि छल कलह नृप सो भेद बुद्धि उपाइ कै। परवत जनन सो हम विगारत राक्षसहि उलटाइ कै—हरिश्चद्र (शब्द०)।

उलटा पलटा—वि० [हिं० उलटा + पलटना] इधर का उधर। ग्रडवड। वसिर पैर का। विना ठीक ठिकाने। वेतरतीव।

उलटा पलटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटा + पलटी = पलटने या फेरने का कार्य] १ फेर फार करना। ग्रदल वदल। इधर का उधर होना। नीचे ऊपर होना। उ०—वहरात उरोजन के उपरा हियहार करै उलटा पलटी (प्रत्य०)।

उलटा पुलटा†—वि० [हिं० उलटा + पुलटा] 'दे० उलटा पलटा'।

उलटा पुलटी‡—वि० [हिं० उलटा + पुलटी = पलटने या फेरने का कार्य] दे० 'उलटा पुलटा'। उ०—(क) उलटा पुलटी वजै सो तार। काहुहि मारै काहुहि उवार।—कवीर (शब्द०)। (ख) सखी तुम वात कही यह साँची। तुमहीं उलटी कहौ, तुम्हहि पुलटी कहौ तुम्हहि रिस करति मैं कछु न जानौं। —सूर (शब्द०)।

उलटामाँच—संज्ञा पुं० [हिं० उलटा + माँच < ग्र० मार्च] जहाज का पीछे की ग्रोर हटना या चलना।

उलटाव—संज्ञा पुं० [हिं० उलट + ग्राव (प्रत्य०)] १. पलटाव। फेर। २ घुमाव। चक्कर।

उलटावसी(५)‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटवाँसी] दे० 'उलटवाँसी'। उ०—उलटावसी जो कही कवीरा। रमज रेखता में मत धीरा।—घट०, पृ० २४७।

उलटासुलटा—वि० [हिं० उलटा + सुलटा] उलटा सीधा। क्रमरहित। वेतरतीव। उ०—उलटे सुलटे वचन कै, सिष्य न मानै दुक्ख। कहै कवीर ससार मे, सो कहिये गुरमुक्ख।—कवीर सा० स०, भा० १, पृ० १६।

उलटी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटना] १. वमन। कै। २ मालखम की एक कसरत जिसमे खिलाडी की पीठ मालखम की ग्रोर ग्रौर सामना देखनेवालो की ग्रोर रहता है। खिलाडी दोनो पैरों को पीछे फेंककर मालखम मे लिपटता है ग्रौर ऊपर चढता उतरता है। कलैया।

उलटी[२]—वि० स्त्री० [हिं० उलटा का स्त्री० रूप] १ विपरीत। विरुद्ध।

उलटी[३]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उलटा'। उ०—पने की गाँठ भिगाने से उलटी कडी होती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३७६।

उलटी काँगसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी + देश० काँगसी] मालखभ की एक कसरत जिसमे पजा उलटकर उँगलियाँ फँसाई जाती हैं।

उलटी खडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी + खड़ी] मालखम की एक कसरत जिसमे खडे होकर दोनो पैरो को ग्रागे से सिर पर उडाते हुए पीठ पर ले जाते हैं ग्रौर फिर उसी जगह पर लाते हैं जहाँ से पैर उडाते हैं।

उलटी चीन—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटा + चेन = चुनना] नैचा वाँधने का एक भेद जिसमे कपडे की मुडी हुई पट्टी नर पर लपेटते हैं।

उलटी वगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी + वगली] मुगदल की एक कसरत जो वल ग्रदाजने के लिये की जाती है। इसमे पीठ पर से छाती पर मुगदल ग्राता है तो भी मुट्ठी ऊपर ही रहती है।

उलटी रुमाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी + फा० रुमाल] मुगदल भाँजने का एक भेद।

विशेष—यह प्रकार की रुमाली है, भेद केवल यह है कि इसमे मुगदलो की झोक ग्रागे की होती है। रुमाली के समान इसमे भी मुगदल को मुठिया उलटी पकडनी चाहिए।

उलटी सरसो—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी + सरसो] वह सरसो जिसकी फलियो का मुँह नीचे होता है। यह जादू टोना, मत्र तंत्र के काम ग्राती है। टेरो।

उलटी सवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटी + सवाई] वह जंजीर जिससे जहाज की ग्रनी या नोक के नीचे सवदरा वँधा रहता है।

उलटे—क्रि० वि० [हिं० उलटा] विरुद्ध क्रम से। ग्रौर क्रम से। वेठिकाने। ठीक ठिकाने के साथ नहीं। उ०—कह विचार चलु सुपथ मग ग्रादि मध्य परिनाम। उलटे जपे जरा मरा सूधे राजा राम।—तुलसी (शब्द०)। २ विपरीत व्यवस्थानुसार। विरुद्ध न्याय से। जैसे होना चाहिए उससे ग्रौर ही ढग से। जैसे, (क) उलटे चोर कोतवाल को डाँटे। (ख) उसने उलटे ग्रपने ही पक्ष की हानि की।

विशेष—क्रियाविशेषण मे भी 'उलटा' ही का प्रयोग ग्रधिकतर होता है। 'ग्र' कारात विशेषण के 'ग्रा' को क्रि० वि० मे 'ए' कर देने के भी नियम का पालन खड़ी वोली मे कभी कभी नहीं होता पर पूर्वीय प्रात की भाषाग्रो मे वरावर होता है। जैसे,—'ग्रच्छा' का क्रि० वि० 'ग्रच्छे' खडी वोली मे नहीं होता पर पूर्वीय भाषा मे वरावर होता है।

उलट्टना(५)—क्रि० ग्र० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना'। उ०—मारू चाली मंदिराँ चदउ वादल माँहि। जाँणे गयंद उलट्टियउ कज्जल वन मँहि जाँहि। ढोला० दू०, ५३८।

उलठ पलठ(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलट पलट] दे० 'उलट पलट'।

उलठना—(५)क्रि० ग्र० ग्रौर स० [हिं० उलटना] दे० 'उलटना'।

उलठाना(५)—क्रि० स० [हिं० उलटाना] दे० 'उलटाना'।

उलथना[१]†(५)—क्रि० ग्र० [हिं० उलटना] ऊपर नीचे होना। उथल पुथल होना। उलटना। उ०—उलथहि सीप मोति उतराही। चुगहि हस ग्रौ केलि कराही।—जायसी ग्र०, पृ० १२।

उलथना[२](५)†—क्रि० स० उपर नीचे करना। उलट पुलट करना। मथना। उलट फेर करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उलट पलट[२]—वि० १ परिवर्तित। बदला हुआ। २ इधर का उधर किया हुआ। अड बड। अव्यवस्थित। गडबड। अस्त व्यस्त।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—देना।—होना।

उलट पुलट—संज्ञा पुं०, [हिं० वि०] दे० 'उलट पलट'।

उलट फेर—संज्ञा पुं० [हिं० उलटना+फेर] परिवर्तन। अदल बदल। हेर फेर। जैसे,–(क) समय का उलट फेर। (ख) इन दो तीन महीनों के बीच न जाने कितने उलट फेर हो गए।

उलटबाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उलटा+सं० बाशी या वासी=बोली] सीधे न कहकर घुमा फिराकर या उलटकर कही हुई बात या व्यंजना। जैसे,—फील रबाबी बलदु पखावज कौआ ताल बजावैं। पहिरि चोलना गदहा नाचै भैंसा भगति करावैं।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०७।

उलटा[१]—वि० [हिं० उलटना] [स्त्री० उलटी] १ जो ठीक स्थिति में न हो। जिसके ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर हो। औंधा। जैसे—उलटा घडा। (ख) बैताल पेड से उलटा जा लटका।

मुहा०—उलटा तवा=अत्यंत काला। काला कलूटा। जैसे,–उसका मुह उलटा तावा है। उलटा लटकना=किसी वस्तु के लिये प्राण देने पर उतारू होना। जैसे,तुम उलटे लटक जाओ तो भी तुम्हें वह पुस्तक न देंगे। उलटी टाँगे गले पडना=(१) अपनी चाल से आप खराब होना। आपत्ति मोल लेना। लेने के देने पडना। (२) अपनी बात से आप ही कायल होना। उलटी साँस चलना=साँस का जल्दी जल्दी बाहर निकलना। दम उखडना। साँस का पेट मे समाना। मरने का लक्षण दिखाई देना। उलटी साँस लेना=जल्दी जल्दी साँस खींचना। मरने के निकट होना। उलटे मुँह गिरना=दूसरे की हानि करने के प्रयत्न मे स्वयं हानि उठाना। दूसरे को नीचा दिखाने के बदले स्वयं नीचा देखना।

२ जो ठिकाने से न हो। जिसके आगे का भाग पीछे अथवा दाहिनी ओर का भाग बाईं ओर हो। इधर का उधर। क्रम विरुद्ध। जैसे,—उलटी टोपी। उलटा जूता। उलटा मार्ग। उलटा हाथ। उलटा परदा (अँगरखे का)। उ०—उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना। तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—उलटा घडा बाँधना=और का और करना। मामले को फेर देना। ऐसी युक्ति रचना कि विरुद्ध चाल चलनेवाले की चाल का दुरा फल घूमकर उसी पर पडे। उलटा फिरना या लौटना=तुरत लौट पडना। विना छड भर ठहरे पलटना। चलते चलते घूम पडना। जैसे,–तुम्हें घर पर न पाकर वह उलटा फिरा, दम मारने के लिये भी न ठहरा। उलटा हाथ=बाँया हाथ। उलटी गंगा बहना=अनहोनी बात होना। उलटी गंगा बहाना=जो कभी नहीं हुआ हो, उसको करना। विरुद्ध रीति चलाना। उलटी माला फेरना=मारण या उच्चाटन के लिये जप करना। बुरा मानना। अहित चाहना। उलटे काँटे तौलना=कम तौलना। डाँडी मारना। उलटे छुरे से मूँडना=उल्लू बनाकर काम निकालना। बेवकूफ बनाकर लूटना। झँसना। उलटे पाँव फिरना=तुरत लौट पडना। बिना क्षण भर ठहरे पलटना। चलते चलते घूम पडना। उलटे हाथ का दाँव=बाएँ हाथ का खेल। बहुत ही सहज काम।

३ कालक्रम मे जो आगे का पीछे और पीछे का आगे हो। जो समय से आगे पीछे हो। जैसे,— उसका नहाना खाना सब उलटा। ४ अत्यंत असमान। एक ही कोटि मे सबसे अधिक भिन्न। विरुद्ध विपरीत। खिलाफ। बरअक्स। जैसे —हमने तुमसे जो कहा था उसका तुमने उल्टा किया। ५ उचित के विरुद्ध। जो ठीक हो उससे अत्यंत भिन्न। अडबड। अयुक्त। और का और। बेठीक। जैसे,--उलटा जमाना। उलटी समझ। उलटी रीति। उ०—सहित विषाद परस्पर कहहीं, विधि करतब सब उलटे अहहीं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—उलटा जमाना=वह समय जब भली बात बुरी समझी जाय और कोई नियत अवस्था न हो। अधेर का समय। उलटा सीधा=बिना क्रम का। अंडबंड। बेसिर पैर का। बिना ठीक ठिकाने का। अव्यवस्थित। भला बुरा। जैसे,—(क) उन्होने जो उलटा सीधा बतलाया वही तुम जानते हो।(ख) हमसे जैसा उलटा सीधा बनेगा, हम कर लेंगे। उलटी खोपडी का=औंधी समझ का। जड। मूर्ख। उलटी पट्टी पढ़ाना=टेढी सीधी समझाना। और की और सुझाना। भ्रम मे डालना। बहकाना। उलटी सुनना=जैसा न हो वैसा सुनना। विपरीत सुनना। उ०— आपने जो बात सुनी है उलटी ही सुनी है।—सैर० पृ० १६। उलटी सीधी सुनना=भला बुरा सुनना। गाली खाना। जैसे —तुम बिना दस पाँच उलटी सीधी सुने न मानोगे। उलटी सीधी सुनाना=खरी खोटी सुनाना। भला बुरा कहना। फटकारना।

उलटा[२]—क्रि० वि० १ विरुद्ध क्रम से। और तौर से। बेठिकाने। ठीक रीति से नहीं। अडबड। २ जैसा होना चाहिए उससे और ही प्रकार से। विपरीत व्यवस्था के अनुसार। विरुद्ध न्याय से। जैसे,—(क) उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। (ख) तुम्ही ने काम बिगाडा, उलटा मुझे दोष देते हो।

उलटा[३]—संज्ञा पुं० १ एक पकवान। पपरा। पोपरा।

विशेष—यह चने या मटर के बेसन से बनाया जाता है। बेसन को पानी मे पतला घोलते हैं, फिर उसमे नमक, हलदी, जीरा आदि मिलाते हैं। जब तवा गरम हो जाता है तब उसपर घी या तेल डालकर घोले हुए बेसन को पतला फैला देते हैं। हैं। जब यह सूखकर रोटी की तरह हो जाता है तब उलटकर उतार लेते हैं। २ एक पकवान। गोझा।

विशेष--यह आटे और उरद की पीठी से बनता है। आटे का चकवा बनाते हैं फिर उसमे पीठी भरकर दोमड देते हैं। इससे पानी की भाप से पकाते हैं। ३. विपरीत।

उलटाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० उलटना] १ पलटना। लौटाना। पीछे फेरना। उ०—बिहारीलाल, आवहु, आई छाकि। भई अबार गाइ बहुरावहु उलटावहु दै हाँक।—सूर (शब्द०)। (ख) जो शोक सों भइ मातुगन की दिशा सो उलटाइहैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. और का और करना या कहना। अन्यथा करना या कहना। उ०—हरि से हितू

विशेष—गद्य मे इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग अकेले नहीं होता, या तो 'पड़ना' के साथ होता है अथवा 'आना' और 'जाना' के साथ केवल इन रूपों मे—'उलटा जा रहा है', 'उलटा चला आ रहा है', 'उलटा जा रहा है' और 'उलटा चला जा रहा है।'

४ इधर का उधर होना। अंडबंड होना। अस्त व्यस्त होना। क्रमविरुद्ध होना। जैसे,—यहाँ तो सब प्रबंध ही उलट गया है। उ०—जाने प्रात निपट अलसाने भूखन सब उलटाने। करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस सिथिलाने।—सूर (शब्द०)।

सयो० क्रि०—जाना।

५. विपरीत होना। विरुद्ध होना। और का और होना। जैसे—आजकल जमाना ही उलट गया है।

सयो० क्रि०—जाना।

६. फिर पड़ना। क्रुद्ध होना। विरुद्ध होना। जैसे,—मैं तो तुम्हारे भले के लिये कहता था तुम मुझपर व्यर्थ ही उलट पड़े।

संयो० क्रि०—पड़ना।

विशेष—केवल 'पड़ना' के साथ इस अर्थ मे यह क्रिया आती है।

७. ध्वस्त होना। उखड़ना पुखड़ना। बरबाद होना। नष्ट होना। बुरी गति में पहुँचना। जैसे,—एक ही बार ऐसा घाटा आया कि वे उलट गए। उ०—इसकी बातों से तो प्राण मुँह को आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

सयो० क्रि०—जाना।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ मे यह क्रिया आती है।

८ मरना। बेहोश होना। बेसुध होना। जैसे,—(क) वह एक ही डंडे में उलट गया। (ख) भाँग पीते ही वह उलट गया।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ मे यह क्रिया आती है।

९ गिरना। धरती पर पड़ जाना। जैसे,—हवा से खेत के धान उलट गए।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. घमंड करना। इतराना। जैसे,—थोड़े ही से धन मे इतने उलट गए।

विशेष - केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ मे यह क्रिया आती है।

११ चौपायों का एक बार जोड़ा खाकर गर्भ धारण न करना और फिर जोड़ा खाना। १२ (किसी अंग का) मोटा या पुष्ट होना। जैसे,—चार ही दिनों की कसरत मे उसका बदन या उसकी रान उलट गई।

उलटना[2]—क्रि० स० १ नीचे का भाग ऊपर और ऊपर का भाग नीचे करना। औंधा करना। लौटना। पलटना। फेरना। जैसे—यह घड़ा उलटकर रख दो। २. औंधा गिराना। ३ पटकना। दे मारना। गिरा देना। फेंक देना। जैसे,—पहले पहलवान ने दूसरे को हाथ पकड़ते ही उलट दिया। ४. किसी लटकती हुई वस्तु को समेटकर ऊपर चढ़ाना। जैसे,—परदा उलटा दो। ५ इधर का उधर करना। अंडबंड करना। अस्त व्यस्त करना। घालमेल करना। जैसे,—तुमने तो हमारा किया कराया सब उलट दिया। ६ विपरीत करना। और और का करना। जैसे,—(क) उसने तो इस पद का सारा अर्थ उलट दिया। (ख) कलक्टर ने तहसील के इंतजाम को उलट दिया।

संयो० क्रि०—देना।

७ उत्तर प्रत्युत्तर करना। बात दोहराना। जैसे,—(क) बड़ों की बात मत उलटा करो। उ०—आवत गारी एक है उलटत होय अनेक। कहै कबीर नहिं उलटिए वही एक की एक।—कबीर (शब्द०)।

८ खोदकर फेंकना। उखाड़ डालना। खोदना। खोदकर नीचे ऊपर करना। जैसे,—यहाँ की मिट्टी भी फावड़े से उलट दो। उ०—बेगि देखाउ मूढ़ न तु आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

९ बीज मारे जाने पर फिर से बोने के लिये खेत को जोतना।

१० बेसुध करना। बेहोश करना। जैसे,—भाँग ने उलट दिया है, मुँह से बोला नहीं जाता है।

संयो० क्रि०—देना।

११ कै करना। वमन करना। जैसे,—खाया पीया सब उलट दिया। १२ उँडेलना। अच्छी तरह डालना। ऐसा ढालना कि बरतन खाली हो जाय। जैसे,—उसने सब दवा गिलास मे उलट दी।

सयो क्रि०—देना।—लेना।

१३ बरबाद करना। नष्ट करना। जैसे,—लड़की के व्याह के खर्च ने उन्हें उलट दिया। १४ रटना। जपना। बार बार कहना। जैसे,—तू रात दिन क्यों उसी का नाम उलटती रहती है।

विशेष—माला फेरने या जपने को 'माला उलटना' भी बोलते हैं, इसी से यह मुहावरा बना है।

उलटना पलटना[1]—क्रि० स० [अवलुण्ठन परिलुण्ठन प्रा० उल्लट्ठ पलट्ठ] १ इधर उधर फेरना। नीचे ऊपर करना। जैसे,—(क) सब असबाब उलट पलट कर देखो, घड़ी मिल जायगी। उ०—उलटा पलटा न उपजे ज्यों खेतन मे बीज।—कबीर (शब्द०)। २ अडबड करना। अस्त व्यस्त करना। ३ और का और करना। बदल डालना। जैसे,—नए राजा ने सब प्रबंध ही उलट पलट दिया।

उलटना पलटना[2]—क्रि० अ० इधर उधर पलटा खाना। घूमना फिरना। उ०—(क) आप अपुनपो भेद बिनु उलटि पलटि अरुझाइ, गुरु बिनु मिटइ न दुगदुगी अनबनियत न नसाइ।—कबीर (शब्द०)। (ख) उलटि पलटि कपि लंका जारी।—(शब्द०)।

उलट पलट[1]—संज्ञा पुं० [हिं० उलट+पुलट] १ हेर फेर। अदल-बदल। फेर फार। परिवर्तन। २ अव्यवस्था। गड़बड़ी।

क्रि० प्र०—डालना।—पडना।

३ पेच। चक्कर। समस्या। व्यग्रता। चिंता। तरद्दुद।

मुहा०—उलझन मे डालना = झंझट मे फँसाना। वखेडे मे डालना। जैसे,—तुम क्यों व्यर्थ अपने को उलझन मे डालते हो। उलझन मे पडना = फेर मे पड़ना। चक्कर मे पडना। आगा पीछा करना।

उलझना—क्रि० अ० [हिं० उलझन] १ फँसना। अटकना। किसी वस्तु से इस तरह लगना कि उसका कोई अंग घुस जाय और छुडाने मे जल्दी न छूटे। जैसे, काँटे मे उलझना। (उलझना का उलटा सुलझना)।

सयो० क्रि०—जाना।

२ लपेट मे पडना। गुथ जाना। (किसी वस्तु मे) पेँच पडना। बहुत से घुमावो के कारण फँस जाना। जैसे,—रस्सी उलझ गई है, खुलती नहीं है।

सयो० क्रि०—जाना।

३ लिपटना। उ०—मोहन नवल शृंगार विटप सों उरझी आनंद वेल।—सूर (शब्द०)।

सयो० क्रि०—जाना।

४ किसी काम मे लगना। लिप्त होना। लीन होना। जैसे—(क) हम तो अपने काम मे उलझे थे इधर उधर ताकते नहीं थे। (ख) इस हिसाब मे क्या है जो घटो मे उलझे हो।

सयो० क्रि०—जाना।

५ प्रेम करना। आसक्त होना। जैसे, वह लखनऊ मे जाकर एक रडी से उलझ गया।

सयो० क्रि०—जाना।

६ विवाद करना। तकरार करना। लडना-झगडना। छेडना। जैसे,—तुम जिससे देखो उसी से उलझ पडते हो।

सयो० क्रि०—जाना।—पडना।

७ कठिनाई मे पडना। अडचन मे पडना। ८ अटकना। रुकना। जैसे,—वह जहाँ जाता है वहीं उलझ रहता है।

मुहा०—उलझना सुलझना = फँसना और खुलना। उलझना पलझना = बुरी तरह फँसना और निकालने मे और फँसते जाना। उ०—यह संसार काँटे की गाडी उलझ पलझ मर जाता है।—कबीर श०, भा० १, पृ० २१। उलझना सुलझना = अच्छी तरह फँसना। उ०—ब्राह्मण गुरु हैं जगत के करम भरम का माहिं। उलझि पुलझि के मरि गए चारिउ वेदन माहिं।—कबीर (शब्द०)। उलझा सुलझा = टेढ़ा सीधा। भला बुरा। उ०—बेसुरी बे ठेकाने की उलझी सुलझी तान सुनाऊँ।—इंशाअल्ला (शब्द०)। उलझना उलझाना = बात बात मे दखल देना। उ०—जब तक लाला जी लिहाज करते हैं, तब तक ही उनका उलझना उलझाना बन रहा है।—परीक्षागुरु (शब्द०)।

उलझा[1]—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलझन'।

उलझा[2]—सज्ञा पुं० [देश०] १ हूल। २ शूल। पीड़ा। उ०—वीर वियोग के ये उलझा निकासै जिन रे जिकरा हियरा तें।—ठाकुर०, पृ० ४।

उलझाना[1]—क्रि० स० [हिं० उलझना] १ फँसाना। अटकाना। २ लगाए रखना। लिप्त रखना जैसे।—वह लोगो को घंटों बातो ही मे उलझा रखता है। ३ लकडी आदि मे बल डालना या टेढा करना।

उलझाना[2]—क्रि० अ० [हिं० उलझना] उलझना। फँसना। उ०—जीव जजालों मढ़ि रहा उलझानो मन सूत। कोइ एक सुलझै सावधौ गुरु बाह अवधूत।—कबीर (शब्द०)।

उलझाव—सज्ञा पुं० [हिं० उलझ + आव (प्रत्य०)] १ अटकाव। फँसाव। २ झगडा। बखेडा। झंझट। ३ चक्कर। फेर।

उलझेड—सज्ञा पुं० [हिं० उलझ + एड (प्रत्य०)] उलझन। उ०—इसको दा लझेड न सुलझेगा ज्यानी वड़े।—नट०, पृ० १२७।

उलझेडा—सज्ञा पुं० [हिं० उलझेड] १ अटकाव। फँसाव। २ झगडा बखेडा। झझट। ३ खीचातानी।

उलझौहाँ—वि० [हिं० उलझ + औहा (प्रत्य०)] १ अटकानेवाला। फँसानेवाला। २ वश मे करनेवाला। लुभानेवाला। उ०—होत सखि ये उलझौंहे नैन। उरझि परत सुरझ्यो नहिं जानत सोचत समुजत हैं न।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

उलटकवल—सज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा या झाडी जो हिंदुस्तान के गरम भागो मे पनीली भूमि मे होती है।

विशेष—इसकी रेशेदार छाल पानी मे सडाकर या यों ही छीलकर निकाली जाती है। छाल सफेद रंग की होती हैं। पौधे से साल में दो तीन बार छह या सात फुट की डालियाँ छाल के लिये काटी जाती हैं। छाल को कूटकर रस्सी बनाते हैं। जड़ की छाल प्रदर रोग मे दी जाती है।

उलटकटेरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उष्ट्र कट] ऊँटकटारा। ऊँटकटाई।

उलटन—सज्ञा पुं० [हिं० उलटना] लौटने का कार्य या स्थिति। उ०—दुरि मुरि भगन बचावत छवि सों आवन उलटन सोहै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८१।

उलटना—क्रि० अ० [सं० उलण्ठन या अवलुण्ठन] १ ऊपर नीचे होना। ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर होना। औंधा होना। पलटना। जैसे, यह दावात कैसे उलट गई।

सयो० क्रि०—जाना।

२ फिरना। पीछे मुड़ना। घूमना। पलटना। जैसे—मैंने उलटकर देखा तो वहाँ कोई न था। उ०—जेहि दिसि उलटै सोई जनु खावा। पलटि सिंह तेहि ठाऊँ न आवा।—जायसी (शब्द०)।

सयो० क्रि०—पड़ना।

विशेष—गद्य में पूर्वकालिक रूप मे 'पडना' के साथ संयुक्त रूप ही मे यह क्रिया अधिक आती है।

३ उमडना। टूट पडना। उलझ पडना। एकबारगी बहुत सख्या मे आना या जाना। जैसे—तमाशा देखने के लिये सारा शहर उलट पडा। उ०—नयन बाँक सर पूज न कोऊ मन समुद्र अस उलटहिं दोऊ।—जायसी (शब्द०)।

जिसका मुँह ऊपर की ओर हो। उ०--हमरे देसवा उर्वमुख कुइयाँ साँकर वाकी खोरिया।--धरम० श०, पृ० ३५।

फ़--संज्ञा पुं० [अ० उर्फ़] चलतू नाम। पुकारने का नाम।

पु--संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्मि] दे० 'ऊर्मि'।

ला--संज्ञा स्त्री० [सं० उर्मिला] १. सीता जी की छोटी बहिन जो लक्ष्मण जी से व्याही थी। उ०--(क) माडवी श्रुतिकीर्ति उर्मिला कुँअरि लईं हँकारि कै।--तुलसी (शब्द०)। २ एक गंधर्वी जिसकी पुत्री सोमदा से ब्रह्मदत्त उत्पन्न हुआ जिसने कपिला नगरी बसाई।

उर्वट--संज्ञा पुं० [सं०] १ बछड़ा। २ वर्ष [को०]।

उर्वर--वि० [सं०] उपज या पैदा करनेवाला [को०]।

उर्वरक--संज्ञा पुं० [सं० उर्वर+क] खाद जो खेतों की उपज बढाने के लिये रासायनिक ढग से तैयारी की जाती है।

उर्वरता--संज्ञा स्त्री० [सं० उर्वर+ता (प्रत्य०)] १ उर्वर होने की स्थिति। उपजाऊपन। २ अधिक उपजाऊ होना।

उर्वरा[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ उपजाऊ भूमि। २ पृथ्वी। भूमि। ३ एक अप्सरा। ४ सूत या ऊन आदि की ढेरी या गड्डी (को०)। ५ घुँघराले वाल (हास परिहास मे) (को०)।

उर्वरा[2]--वि० स्त्री० उपजाऊ। जरखेज।

यौ०--उर्वरा शक्ति।

उर्वराजित्--वि० [सं०] उपजाऊ भूमि को अधिकार मे करनेवाला [को०]।

उर्वरापति--संज्ञा पुं० [सं०] खडी खेती या फसल का स्वामी [को०]।

उर्वरित--वि० [सं०] १ बहुत। अत्यधिक। २ अवशिष्ट। मुक्त [को०]।

उर्वरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह पत्नी जो बहुत सी अन्य स्त्रियों के साथ वरण के लिये दी गई हो। २ श्रेष्ठ स्त्री। ३. सूत या रेशा जो चरखे से निकाला गया हो [को०]।

उर्वर्य--वि० [सं०] उपजाऊ भूमि से संबंध रखनेवाला [को०]।

उर्वशी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिव्य अप्सरा। स्वर्ग की अप्सरा।

यौ०--उर्वशीतीर्थ। उर्वशीरमण, उर्वशीवल्लभ, उर्वशीसहाय = पुरुरवा नरेश का नाम।

उर्वशीतीर्थ--संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत मे वर्णित एक तीर्थ का नाम।

उर्वारु--संज्ञा पुं० [सं०] १ खरबूजा। २ ककडी।

उर्वारुक--संज्ञा पुं० [सं०] १ खरबूजा। २ ककड़ी। ३ कद्दू (को०)।

उर्विजा पु--संज्ञा पुं० [सं० उर्वी+जा] दे० 'उर्वीजा'।

उर्वी--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

यौ०--उर्वीजा। उर्वीतल। उर्वीधर, उर्वीपति, उर्वीभृत, उर्वीश। उर्वीश्वर = नरेश। राजा।

उर्वीजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी से उत्पन्न सीता।

उर्वीतल--संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी का तल। धरातल [को०]।

उर्वीधर--संज्ञा पुं० [सं०] १. शेष। २ पर्वत।

उर्वीरुह--संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष, पौधा आदि वनस्पति समूह [को०]।

उर्स--संज्ञा पुं० [अ०] १. मुसलमानों के मत के अनुसार किसी साधु, महात्मा, पीर आदि के मरने के दिन का कृत्य। २ मुसलमान साधुओं की निर्वाण तिथि।

उलंग- वि० [सं० उन्नग्न] नगा। उ०--दास गरीब उलग छवि अधर डाक कूदत।--कबीर म०, पृ० ५८८।

उलँगना† पु--क्रि० स० [सं० उल्लङ्घन] दे० 'उलघना'। उ०--व इब्लीस भुँई पर थे हमला किया। व सातों तबक सूँ उलँग कर गया।--दक्खिनी०, पृ० ३२८।

उलगन--पु संज्ञा पुं० [सं० उल्लङ्घन] दे० 'उलघन'।

उलघना पु† उलँघना--क्रि० स० [सं० उल्लघन प्रा० उल्लघण = लाँघना] १ नाँघना। डाँकना। फाँदना। उल्लघन करना। उ०--(क) ऊँचा चढि असमान को मेरु उलंघी उड़ि। पशु पक्षी जीव जतु सब रहा मेरु मे गूडि।--कबीर (शब्द०)। या भव पारावार को उलँघि पार को जाय, तिय छवि छाया ग्राहिनी गहै बीच ही आय।--बिहारी (शब्द०)। २ न मानना। अवहेलना करना। अवज्ञा करना। उ०--सतगुरु सबद उलघि करि जो कोई शिष जाय। जहाँ जाय तहँ काल है कह कबीर समुझाय--कबीर (शब्द०)।

उलका पु -संज्ञा स्त्री० [सं० उल्का] दे० 'उल्का'। उ० --मुख मे उलका लए फिरति हैं कुभिवा कारी।--श्यामा० (भू०), पृ० ५।

उलकैयाँ बिलुकैयाँ† पु--संज्ञा स्त्री० [हिं०] झाईं। झाँसापट्टी। दमपट्टी। लुकाछिपी।

क्रि० प्र०--देना। उ०--राजा तौ उकैलयाँ विलुकैया दै के निकरि आयौ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १०६।

उलगट†--संज्ञा स्त्री० [हिं० उल्लङ्घ+ट (प्रत्य०)] कूद। फाँद।

उलगना†--क्रि० अ० [सं० उल्लंघन] कूदना। लाँघना।

उलगाना†--क्रि० स० [सं० उल्लघन] [संज्ञा उलगट] कुदाना। फँदाना।

उलचना--क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलीचना'।

उलछना पु†--क्रि० स० [हिं० उलचना] १ हाथ से छितराना। बिखराना। २ उलीचना।

उलछा†--संज्ञा पुं० (हिं० उलचना) हाथ से छितराकर बीज बोने की रीति। छीटा। बखेरना। पबेरा।

विशेष--इसका उलटा सेव या गुल्ली है।

उलछार†--संज्ञा पुं० [हिं०] छीटने या बखेरने की क्रिया। २ ऊपर या अगल बगल फेंकना। ३ हूल आना। कै मालूम होना।

उलछारना पु†--क्रि० स० [हिं० उलछना या उछाल] १ ऊपर या अलग उछालना या फेंकना। २ कोई गुप्त वात सब पर प्रकट कर देना। ३ आरोप करना। इलजाम लगाना। ४. निंदा करना। बुराई करना।

उलझन--संज्ञा पुं० [सं० अवरुन्धन, 'अवरुध्यते' के रहित भाग 'ते' से पा० ओरुज्झन] १ अटकाव। फँसान। गिरह। गाँठ। २ बाधा। जैसे--तुम सब कामों मे उलझन डाला करते हो।

उरुहार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बहुमूल्य हार [को॰] ।

उरूक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का उल्लू [को॰] ।

उरूज—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १ ऊपर उठना । चढ़ना । २ बढ़ती । वृद्धि । उन्नति ।

यौ॰—उरूजोजवाल = (१) उन्नति-अवनति । (२) लाभ-हानि । वृद्धि ह्रास ।

उरूणस—वि॰ [सं॰] चौड़ी नाकवाला [को॰] ।

उरूसी¹—संज्ञा पुं॰ [?] एक वृक्ष जो जापान मे होता है । इसके धड़ से एक प्रकार का गोंद निकाला जाता है जिससे रंग और वारनिश बनती है ।

उरूसी²Ⓟ—संज्ञा स्त्री॰ [पुं॰ उरूस] दुलहन । उ॰—जब इस बज्म छब की उरूसी दिखाय, तो जोहर को ज्यो दिप मने जल्वा गाय ।—दक्खिनी॰, पृ॰ १३८ ।

उरेⒹⓅ—क्रि॰ वि॰ [वं॰ सं॰ अवार = निकट, इधर, सं॰ अवर] १ परे । आगे । दूर । ३ इधर । निकट उ॰—(क) श्री जगन्नाथराय जी तें उरे कोस वीस कोस पर एक ग्राम है ।—दोसौबावन॰, भा॰ २ पृ॰ १३ (ख) घरतें चलिकै दिल्ली के उरे को चल्यो ।—दो सौ बावन, भा॰ १, पृ॰ १६५ ।

उरेखना¹Ⓟ—क्रि॰ स॰ [हिं॰ अवरेखना] दे॰ 'अवरेखना' । उ॰—अवर पीत लसै चपला छवि अवुद मेचक अग उरेखे ।—मतिराम ग्र॰, पृ॰ ३३० ।

उरेखना²Ⓟ—क्रि॰ स॰ [सं॰ उल्लेखन या अवरेखन] 'उरेहना' । उ॰—यूसुफ मूरत हिएँ उरेखै, धरै ध्यान निज आगे देखै ।—हिंदी प्रेमा॰, पृ॰ २६६ ।

उरेझा†Ⓟ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ उलझन] दे॰ 'उलझन' । उ॰—परे जहाँ तहँ मुरझि भूप सब उरझि उरेझा ।—नंद॰ ग्र॰, पृ॰ २१० ।

उरेह†Ⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उल्लेख] चित्रकारी । नक्काशी । उ॰—(क) कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा, कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ।—जायसी (शब्द॰) । (ख) जावँत सबै उरेह उरेहे । भाँति भाँति नग लाग उवेहे ।—जायसी (शब्द॰) ।

उरेहना†Ⓟ—क्रि॰ स॰ [सं॰ उल्लेखन] १ खीचना । लिखना । रचना । उ॰—काहु न मूठ भरी वह देही, अस मूरति केंदैव उरेही ।—जायसी (शब्द॰) । २. सलाई से लकीर करना । रँगना । लगाना । उ॰—खेह उड़ानी जाहि घर हेरत फिरत सो खेहु, पिय आवहि अब दिष्ट तोहि अंजन नयन उरेहु ।—जायसी (शब्द॰) ।

उरेडनाⓅ†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ उडेलना] दे॰ 'उडेलना' ।

यौ॰—उरेंडाउरेंडी = उडेला उँडेली । छीनाझपट्टी मे गिराने का काम । उ॰—आनँदघन सों मिलि चलि दामिन नातर मचि है दधि की उरेंडाउरेंडी ।—घनानंद, पृ॰ ५२६ ।

उरैⓅ†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'उरे' । उ॰—छगन मगन वारे कन्हैया, नेंकु उरै धों आइ रे ।—नंद॰ ग्र॰, पृ॰ ३३९ ।

उरो—संज्ञा पुं॰ [सं॰] 'उरस्' का समास प्राप्त रूप ।

उरोगम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सर्प । साँप [को॰] ।

उरोग्रह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पार्श्व शूल [को॰] ।

उरोघात—संज्ञा पुं॰ [सं॰] छाती का दर्द [को॰] ।

उरोज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] स्तन । कुच । छाती ।

उरोबृहती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक छंद का नाम [को॰] ।

उरोभूषण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] छाती पर धारण किया जानेवाला एक अलंकार [को॰] ।

उरोरुह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उरोज । कुच । उ॰—नयनों मे निःसीम व्योम, औ उरोरुहों मे सुरसरि धार ।—पल्लव, पृ॰ ३९ ।

उरोविबध—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उरोविबध] श्वास रोग । दमा [को॰] ।

उरोहस्त—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बाहुयुद्ध या मल्लयुद्ध का एक भेद [को॰] ।

उर्जित—वि॰ [सं॰] १ वर्धित । शक्तिशाली । बलवान् । २ त्यक्त । छोड़ा हुआ । ३ गर्वी । अभिमानी । घमंडी [को॰] ।

उर्झेराⓅ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'उरझेरा' । उ॰—तीन सौ साठ पैंठ उर्झेरा । कैसे हुसन लेव उवेरा ।—कबीर सा॰, पृ॰ ८०४ ।

उर्ण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'ऊर्ण' ।

उर्णनाभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मकडा ।

उर्णा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'ऊर्णा' ।

उर्द†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'उरद' ।

उर्दपर्णी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ उर्द + सं॰ पर्णी] माषपर्णी । वन उर्दी ।

उर्दू¹—संज्ञा पुं॰ [तु॰] लश्कर । छावनी ।

उर्दू²—संज्ञा स्त्री॰ [तु॰] वह हिंदी जिसमें अरबी, फारसी भाषा के शब्द अधिक मिले हों और जो फारसी लिपि मे लिखी जाय ।

विशेष—तुर्की भाषा मे इस शब्द का अर्थ लश्कर, सेना का शिविर है । शाहजहाँ के समय से इस शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में होने लगा । उस समय बादशाही सेना मे फारसी, तुर्क और अरब आदि भरती थे और वे लोग हिंदी मे कुछ फारसी, तुर्की, अरबी आदि के शब्द मिलाकर बोलते थे । उनको इस भाषा का व्यवहार लश्कर के बाजार मे चीजों के लेनदेन में करना पड़ता था । पहले उर्दू एक बाजारू भाषा समझी जाती थी पर धीरे धीरे वह साहित्य की भाषा बन गई ।

यौ॰—उर्दू ए मुअल्ला = प्रशस्त या उच्च कोटि की उर्दू जिसमे अरबी फारसी शब्दों का अधिकतम प्रयोग हो । उर्दू बेगनी = बाजार मे खरीदी हुई स्त्रियाँ जो लड़ाई के वक्त अमीरों की बेगम का काम करती थीं ।—राज॰ इति॰, पृ॰ ७६६ ।

उर्दू बाजार—संज्ञा पुं॰ [तु॰ उर्दू + बाजार] १ लश्कर का बाजार । छावनी का बाजार । २ वह बाजार जहाँ सब चीजें मिलें ।

उर्द्धⓅ—वि॰ [सं॰ ऊर्ध्व] दे॰ 'ऊर्ध्व' । उ॰—अध को अधर धरा पै धरयो । उर्द्ध अधर जलधर मै करयो ।—नंद॰ ग्र॰, पृ॰ २६० ।

उर्द्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ऊदबिलाव [को॰] ।

उर्धⓅ—वि॰ [सं॰ ऊर्ध्व] दे॰ 'ऊर्ध्व' ।

उर्धबाहुⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ऊर्ध्वबाहु] जिसकी बाँह ऊपर उठी हो । उ॰—कोइ उर्धबाहु कर रहे उठाई ।—जग॰ श॰, पृ॰ ६६ ।

उर्धमुखⓅ†—वि॰ [सं॰ ऊर्ध्वमुख] ऊपर की ओर मुँहवाला ।

उराट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उरस्थल, > प्रा० *उरट्ठ, > हिं० उराठ] छाती। (डिं०)।

उराण -वि० [सं०] चौड़ा या विस्तृत करनेवाला। फैलानेवाला [को०]।

उराना†(पु)--क्रि० अ० [हिं० ओर+आना (प्रत्य०)] समाप्त होना। खतम होना। वि० दे० 'ओराना'। उ०—देखत उरै कपूर ज्यों उपै जाइ जनि लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी (शब्द०)।

उरमाथी--वि० [सं-] भेड़ को मारनेवाला (भेड़िया) [को०]।

उराय—संज्ञा पुं० [हिं० उराव] दे० 'उराव'।

उरारा(पु)—वि० [सं० प्रा० उराल]विस्तृत। विशाल। उ०—रूप भरे भारे अनूप अनियारे दृग कोरनि उरारे कजरारे बूँद ढरकनि। देव अरुनाई अरु नई रिसि की छबि सुधा मधुर अधर सुधा मधुर पलकनि।--देव (शब्द०)।

उराव--संज्ञा पुं० [सं० उरस्+आव (प्रत्य०)] चाव। चाह। उमग। उत्साह। हौसला। उ०--(क) जे पद कमल सुरसरी परसे तिहूँ भुवन यश छाव। सूर श्याम पद कमल परसिहौं मन अति बढ्यो उराव।--सूर (शब्द०)। (ख) तुलसी उराव होत सम को सुभाव मुनि को न बलि जाइ न बिकाइ बिन मोल को --तुलसी (शब्द०)। (ग) अति उराव महराज मगन अति जान्यो जात न काला।—रघुराज (शब्द०)।

उराह—संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का एक घोड़ा जिसका पैर काला हो।

उराहना--संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ] १ उपालभ। शिकायत। उ०—(क) भए बटाऊ नेह तजि बाद बकति बेकाज। अब अलि देत उराहनो, उर उपजति अति लाज।—बिहारी (शब्द०)। (ख) काहे को काहू को दीजै उराहनो आवैं इहाँ हम आपनी चाडैं।--देव (शब्द०)।

उरिण(पु)†—वि० [सं० उऋण] दे० 'उऋण'।

उरिन(पु)--वि० [सं० उऋण] दे० 'उऋण'। उ०—अब ह्वैहौं दै माथ उरिन तिहारे लोन सों —हम्मीर०, पृ० ८७।

उरिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] रीठा। रीठी। फेनिल।

उरी—अव्य [देशी०] दे० 'अरे'। उ०—भजो हो सतगुर नाम उरी।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ३८।

उरु जिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० उरुञ्जिरा] विपाशा नदी का नाम [को०]।

उरु¹--वि० [सं०] १ विस्तीर्ण। लंबा चौड़ा। २ विशाल। बड़ा। ३ श्रेष्ठ। बड़ा। महान्। ४ प्रचुर (को०)। ५ बहुल (को०)। ६. मूल्यवान्। क़ीमती (को०)।

उरु²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऊरु] जघा। जाँघ।

उरुकाल, उरुकालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक लता। महाकाल नाम की लता [को०]।

उरुकीर्ति- वि० [सं०] प्रसिद्ध। यशस्वी। अत्यंत नामी [को०]।

उरुकृत्—वि० [सं०] विस्तीर्ण या अधिक करनेवाला [को०]।

उरुक्रम¹—वि० [सं०] १ बलवान्। पराक्रमी। २ लंबे लंबे पाँव बढ़ानेवाला। लंबे डग भरनेवाला।

उरुक्रम²—संज्ञा पुं० १ विष्णु का वामन अवतार। २ सूर्य। ३. शिव (को०)। ४ लंबा डग (को०)।

उरुक्षय--संज्ञा पुं० [सं०] विस्तीर्ण निवास या वासस्थान [को०]।

उरुगव्यूति—वि० [सं०] विस्तृत क्षेत्र या स्थानवाला [को०]।

उरुगाय¹--वि० [सं०] १ जिसका गान किया जाय। २. प्रशसित। ३ जिसके डग लंबे हों। फैला हुआ।

उरुगाय²—संज्ञा पुं० १ विष्णु। २ सूर्य। ३. स्तुति। प्रशसा। ४. इंद्र (को०)। ५ सोम (को०)। ६ अश्विनीकुमार (को०)। ७ प्रशस्त स्थान (को०)।

उरुगुला--संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प। साँप [को०]।

उरुचक्षा—वि० [सं० उरुचक्षस्] दूरदर्शी [को०]।

उरुचक्र--वि० [सं०] चौड़े चक्के या पहियोंवाली (गाड़ी) [को०]।

उरुजना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उरझना'।

उरुजन्मा—वि० [सं० उरुजन्मन्] अच्छे कुल या वंश में उत्पन्न [को०]।

उरुज्रयस्—वि० [सं०] विशाल पथ में गमन करनेवाला। विस्तृत क्षेत्र में फैलनेवाला (अग्नि और इंद्र) [को०]।

उरुझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उरझना'।

उरुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विशालता। विस्तार [को०]।

उरुताप — संज्ञा पुं० [सं०] अधिक गरमी या ऊष्मा [को०]।

उरुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ विस्तीर्णता। २ विशालता [को०]।

उरुधार—वि० [सं०] १. चौड़ी धारा देनेवाला। २ अधिकता से बहनेवाला [को०]।

उरुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

उरुबिल—वि० [सं०] चौड़े मुँहवाला, जैसे घड़ा [को०]।

उरुबिल्व--संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ बुद्ध को सम्यक् बुद्ध या बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी। आजकल इस स्थान को बुद्ध गया कहते हैं।

उरुमार्ग— संज्ञा पुं० [सं०] विशाल पथ या राजमार्ग [को०]।

उरुरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात का अंतिम या उत्तर भाग [को०]।

उरुवा—संज्ञा पुं० [सं० उलूक, प्रा० उलूक] उल्लू की जाति की एक चिड़िया। रुरुआ।

उरुविक्रम—वि० [सं०] बलशाली। पराक्रमी [को०]।

उरुवु—संज्ञा पुं० [सं०] १ रेंड का वृक्ष। २. लाल एरंड [को०]।

उरुव्यचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तार [को०]।

उरुव्रज—वि० [सं०] विस्तृत स्थानवाला। विस्तृत [को०]।

उरुशंस—वि० [सं०] बहुप्रशसित। जिसकी प्रशसा बहुत लोग करें [को०]।

उरुस¹†—संज्ञा पुं० [हिं०] खटमल। उड़स।

उरुस²(पु)—संज्ञा पुं० [अ० उर्स] दे० 'उर्स'। उ०—रोजा करै निमाज गुजारै, उरुस करै और आतम मारै।—मलूक०, पृ० २२।

उरुसत्व—वि० [सं०] उदार [को०]।

उरुस्वान्—वि० [सं०] जिसकी आवाज ऊँची हो। ऊँची आवाज़वाला [को०]।

उरवी[illegible]—संज्ञा [illegible] [सं० उर्वी] १ [illegible] । २ [illegible] । उ०—[illegible] पर आगे उरबसी, [illegible] के उरबी हैं उरबसी समान । —[illegible]

उर्विज[illegible]—[illegible] [सं० उर्वी = पृथ्वी + ज = उत्पन्न] भौम । [illegible] । उ०—जो उर्विज [illegible] कहित तौ करि घटित [illegible] । [illegible] सेवन सरल सुनाय । —[illegible]

उर्वी(उ)—[illegible] [सं० उर्वी] दे० 'उर्वी' ।

उर[illegible]—[illegible] १ [illegible] । २ एक [illegible] कीटा (को०) । ३. दद्रुघ्न [illegible] (को०) ।

उरभ्रमारिका—[illegible] [सं०] एक जहरीला कीडा (को०) ।

उरमना(उ)—क्रि० [illegible] [सं० अवलम्बन, प्रा० ओलंबण] लटकना । उ०—[illegible] के विविध हार [illegible] उरमत उदार विच विच [illegible] स्याम हार उपमा शुक [illegible] ।—[illegible] (शब्द०) ।

उरमाना(उ)—क्रि० [illegible] [हिं० उरमना] लटकाना । टाँगना । उ०—[illegible] उर मे उमराई । —[illegible] (शब्द०) ।

उरमाल—[illegible] [फ़ा० रूमाल] [illegible] । उ०—लघु ढालें, लघु [illegible] लघु कर उरमालें ।—रघुराज (शब्द०) ।

उरमी—वि० [सं० ऊर्मिन्] शोक मोह आदि षट ऊर्मियों से युक्त । [illegible] शरीर, मन, जीवन सबकी शीत, ताप, लोभ, श्रम [illegible], पिपासा आदि लहरों से युक्त । उ०—जी भोजन नरमी [illegible] उरमी ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २[illegible] ।

उरल[illegible]—[illegible] [सं० [illegible] = भेड़] पश्चिमी पंजाब और हजारा [illegible] होती है ।

उरल२—वि० [सं० उदार, प्रा० उराल, उरल, राज० उरलो] [illegible] । उ०—[illegible] जिहाँ डूँगर नहिं [illegible] हीयउ उरलउ होइ ।—[illegible]

उरला१—वि० [सं० अपर, अवर + हिं० ला (प्रत्य०)] [illegible] । उत्तर । [illegible] ।

उरला२—वि० [सं० उदार, प्रा० उराल = विस्तृत, प्रचुर] विरला । [illegible] । उ०—[illegible] किया जिन योग [illegible] हो ।—[illegible]

उरला[illegible]—[illegible] । उ०—(क) [illegible] ।—प्राण०, [illegible] न पार । [illegible]

उर[illegible]—[illegible] (को०) ।

उर[illegible](उ)—[illegible] [सं० [illegible]] [illegible] । [illegible] (शब्द०) ।

उरस१—संज्ञा पुं० [सं० उरस्] १ छाती । वक्षस्थल । २ हृदय । चित्त।

उरस२—वि० [सं०] १ चौडी छातीवाला । २ सर्वश्रेष्ठ [को०] ।

उरस३(उ)—संज्ञा पुं० [फा० अर्श] आकाश । उ०—आरच गज चौदा सिद्धै, अर्द भुजां उग्राहि ।—बाँकी० ग्र ०, भा० १, पृ० १ ।

उरसना(उ)—क्रि० स० [हिं० उडसना] ऊपर नीचे करना । हिलाना । उथल पुथल करना । उ०—यशोदा मदन गोपाल सोआवै । स्वास उदर उरसति यो मानो दुग्ध सिंधु छवि पावै ।—सूर (शब्द०) ।

उरसा(उ)—संज्ञा पुं० [हिं० होरसा] दे० होरसा' । उ०—नाम तेरो आसन नाम तेरो उरसा नाम तेरो केसरि लै छिडका रे—रै० बानी, पृ० ६६ ।

उरसिज—संज्ञा पुं० [सं०] स्तन । छाती ।

उरसिसह—संज्ञा पुं० [सं०] कुच । स्तन । उरोज [को०] ।

उरसिल—वि० [सं०] विशाल वक्ष स्थलवाला । चौडी छातीवाला [को०] ।

उरस्क—संज्ञा सं० [सं०] छाती । वक्षस्थल ।

उरस्त्र, उरस्त्राण—संज्ञा पुं० [सं०] छाती का कवच [को०] ।

उरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का अग्र भाग ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि पक्ष कक्ष तथा उरस्य मे पाँच धनुष का अंतर होना चाहिए । व्यूहरचना के प्रसग मे पक्ष कक्ष तथा उरस्य मे भिन्न भिन्न प्रकार की सेनाओं के रखने के नियम बताए गए हैं ।

उरस्य१—वि० [सं०] १ वक्ष से संबध रखनेवाला । २. वक्ष से आने या होनेवाला । ३. जिसमे छाती का बल लगाया जाय । ४ सबल वक्षवाला । ५ अपने द्वारा पैदा । अपना उत्पादित । ६ अपना जन्मा । आत्मज (संतान) ।

उरस्य२—संज्ञा पु० १. पुत्र । २ सेना का अग्रभाग । ३. कुच । स्तन । ४. व्याकरण मे 'ह्' वर्ण और विसर्ग [को०] ।

उरस्वान्—वि० [सं० उरस्वत्] चौडी छातीवाला [को०] ।

उरहन(उ)—संज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ, हिं० उलाहना] दे० 'उलाहना' । उ०—(क) उरहन के मिस नद निकेत । आवत मुख छवि देखत हेत ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५ । (ख) सब ब्रजनारी उरहन आई ब्रजरानी के आगे । मैं नाही दधि खायो वाको सिसु ह्वै रोवन लागे ।—सूर (शब्द०) ।

उरहना(उ)—संज्ञा पुं० [सं० उपालभ प्रा० उवलभ] उलहना । शिकायत । उ०—इनके नित लेखियो छाँडयो तऊ न उबरन पावहिं । माखन कोरि चोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं ।—तुलसी० ग्रं०, पृ० ४३२ ।

क्रि० प्र०—करना । देना ।

उरहाना‡—वि० [देश०] नंगा । नंगा । उघारा । उ०—तब श्री गुसाईं जी वाही समें स्नान करि उरहाने पाइन पधारे ।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ११ ।

उरा१(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० उर्वी] पृथिवी ।

उरा२—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड [को०] ।

उराउ३(उ)—संज्ञा पुं० [हिं० उराव] दे० 'उराव' ।

सुंदर उर म उरझात। सोना नर मे ज्यू पतझार।—केशव (शब्द०)।

उरझना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उलझना] दे० 'उलझना'। उ०—ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत त्यों त्यों उरझत जात।—बिहारी र०, दो० ६७१।

उरझाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उलझाना'। उ०—स्मृति शास्त्र पुराण बखाना। नाम पकड़ जीव उरझाना।—कबीर सा०, पृ० ४४।

उरझेट—संज्ञा सं० [हिं० उलझना] उलझन। उ०—हरी [illegible] ना भरी परी हिए उरझेट।—शकुंतला, पृ० ८६।

उरझेटा†—संज्ञा पुं० [हिं० उरझना] दे० 'उलझेड़ा'।

उरझेर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उरझना] १. उलझेड़ा। उलझन। उ०—इक प्रजर उरझेर, परयो भाति सो गिर परि।—नट०, पृ० १६६। २ बखेड़ा। उ०—पानी को सो घेरि लियो पौन उरझेर लियो चक्र को सो फेरि फाँक फेनें कै गहत है।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४५०।

उरझेरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'उलझेड़ा'। उ०—सुन [illegible] का करे निबेरा। मेटा काल नगर उरझेरा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

उरझेरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उर+झेरी] हृदय की ज्वाला। मन की उलझन। व्याकुलता। उलझेड़ा। उ०—आनँदघन रसरिझवन जियत को प्रान पपीहा तरफरात है उरझेरी सो।—घनानंद, पृ० ३३२।

उरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेड़ा। मेढ़ा। २ एक असुर (को०)। ३ युरेनस नामक ग्रह।

विशेष—पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण एक धूमिल स्थिर तारे या नक्षत्र के समान जान पड़ता है। पृथ्वी से सूर्य जितनी दूरी पर है, उसकी अपेक्षा यह प्राय: १९ गुनी अधिक दूरी पर है। यद्यपि प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को बहुत दिनों पहले इसका ज्ञान था, तथापि पाश्चात्य ज्योतिषियों में से हर्शेल ने १७८१ ई० में इसका पता लगाया था। इसकी परिधि ३१००० मील है। प्राय: ८४ वर्ष और १ सप्ताह में इसका परिक्रमण होता है। इसके चार उपग्रह हैं, जिनमें से दो इतने छोटे हैं कि बिना बहुत अच्छी दूरबीन के दिखाई नहीं देते। युरेनस।

उरणक—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेष। मेढ़ा। २. मेघ। बादल (को०)।

[illegible]—संज्ञा पुं० [सं०] [illegible] (को०)।

उरणाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दद्रुघ्न नाम का पौधा (को०)।

पर्या०—उरणाक्षक। उरणाख्य। उरणाख्यक।

उरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ (को०)।

उरद—संज्ञा पुं० [सं० ऋद्धि, प्रा० उड्द] [स्त्री० अल्पा० उरदी] एक प्रकार का पौधा जिसकी फलियों के बीज और दानों की दाल होती है।

विशेष—इसके एक एक सींके में तीन तीन पत्तियाँ होती हैं। बरसात के दिनों में [illegible] होती है और [illegible] होती है। फलियों के भीतर ४-५ बीज काले रंग के होते हैं जिनके मुँह पर सफेद बिंदी होती है। उरद का [illegible] गोल है, [illegible] और [illegible]। यह [illegible] और [illegible] में डाला जाता है। [illegible] बड़ी पकौड़ी [illegible] बनानी चाहिए। इसकी [illegible] पापड़, कचौड़ी आदि बनती है।

पर्या०—माष। कुल्माष। मांसल।

मुहा०—उरद के आटे की तरह ऐंठना =(१) अकड़ना। नाराज होना। जैसे, तुम उरद के आटे की तरह ऐंठा करते हो। (२) घमंड करना। [illegible]। उ०—कुछ लोग यों ही धन में उरद के आटे की तरह ऐंठ जाते हैं। उरद पर सफेदी = बहुत कम। [illegible]। उ०—उनमें विद्या उतनी ही है जितनी उरद पर सफेदी।

विशेष—उरद का बीज काला होता है केवल उसके मुँह पर बहुत छोटी सी सफेद बिंदी होती है।

उरदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उरद का अल्पा० रूप] १ उरद की एक छोटी जाति।

विशेष—यह असाढ़ महीने में ज्वार, बाजरा, अरहर आदि के साथ बोई जाती है और क्वार कार्तिक में काटी जाती है। इसके बीज या दाने काले होते हैं। एक प्रकार की [illegible] उरदी होती है जो [illegible] हो जाती है।

२ वह गोल चिह्न जो [illegible] रहता है। ३ भौंह का एक [illegible] है।

उरदू—संज्ञा स्त्री० [तु० उर्दू] दे० 'उर्दू'। उ०—[illegible] एक प्रकार का नाटक है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० [illegible]।

उरधन(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्व + [illegible]] [illegible]। उ०—[illegible]।—प्राण०, पृ० २६।

उरध(पु)—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊपर। उ०—[illegible] निरंतर [illegible] पुकार [illegible]।—दरिया बानी, पृ० ७।

उरधमुख(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्वमुख] [illegible]। उ०—[illegible]।

उरधारना—क्रि० स० [हिं० उर+धारना] [illegible]। उ०—[illegible]।—सूर (शब्द०)।

उरन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उरण] [illegible]। उ०—[illegible]।

उरनाना(पु)—क्रि० [illegible] [हिं० [illegible]] दे० [illegible]। उ०—[illegible], पृ० [illegible]।

[illegible]—संज्ञा [illegible] [हिं० [illegible]] [illegible]। उ०—[illegible]।—[illegible], पृ० [illegible]।

उम्मेद—संज्ञा स्त्री० [फा०] आशा। भरोसा। आसार।
क्रि० प्र०—करना। बांधना। होना।
मुहा०—**उम्मेद होना**—संतान की आशा होना। गर्भ के लक्षण दिखाई देना। जैसे—इन दिनो लाला साहब के घर कुछ उम्मेद है, देखें लडका होता है कि लडकी। **उम्मेद से होना** = गर्भवती होना। जैसे—उनकी स्त्री उम्मेद से है।

उम्मेदवार—संज्ञा पुं० [फा०] १ आशा करनेवाला। आसरा रखनेवाला। २ नौकरी पाने की आशा करनेवाला। ३ काम सीखने के लिये और नौकरी पाने की आशा से किसी दफ्तर मे विना तनख्वाह काम करनेवाला आदमी। वह जो किसी स्थान या पद के लिये अपने को उपस्थित करता या किसी के द्वारा किया जाता है। ४ निर्वाचन मे चुने जाने के लिये खडा होनेवाला। जैसे—(क)। वे व्यवस्थापिका परिषद की मेबरी के लिये उम्मेदवार हैं। (ख) वे बनारस डिवीजन से कौंसिल के लिये उम्मीदवार खडे किए गए हैं।

उम्मेदवारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ आशा। आसरा। २ काम सीखने के लिये नौकरी पाने की आशा से बिना तनख्वाह किसी दफ्तर मे काम करना।

उम्र—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ अवस्था। वयस। २ जीवनकाल। आयु।
क्रि० प्र०—काटना। –गुजारना।—बिताना।
मुहा०—**उम्र टेरना** = किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे करना। किसी तरह दिन काटना।

उयना(पु)—क्रि० अ० [स० उदय प्रा० उअअ] उदय होना। उगना। उ०—उयेउ अरुन अवलोकहु ताता।—मानस, १।२३८।

उयवाना†—क्रि० अ० [देशी०] जँभाना। जँभाई लेना। उ०—उतनी कहत कुँअरि उयवानी। सहचरि दौरि उसीसी आनी।—नद० ग्र०, पृ० १४१।

उरग—संज्ञा पु० [सं० उरङ्ग] १ साँप। २ नागकेसर।

उरगम—संज्ञा पुं० [स० उरङ्गम] साँप।

उर—संज्ञा पुं० [सं०] 'उरस्' का समास मे प्रयुक्त रूप।

उर कपाट—संज्ञा पुं० [स०] कपाट के समान चौडा, दृढ़ वक्ष [को०]।

उर क्षत—संज्ञा पुं० [स०] वक्ष का रोग [को०]।

उर क्षतकास—संज्ञा पुं० [स०] क्षयकारक खाँसी [को०]।

उर क्षय—संज्ञा पुं० [स०] क्षय रोग। यक्ष्मा [को०]।

उर शूल—संज्ञा पुं० [स०] छाती का रोग।

उर शूली—वि० [स० उर शूलिन्] जिसे उर शूल हो [को०]।

उर सूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [स०] छाती पर स्थित रहनेवाला मोतियो का हार [को०]।

उर स्तभ—संज्ञा पुं० [स० उरःस्तम्भ] दमा [को०]।

उरःस्थल—संज्ञा पुं० [स०] वक्ष। छाती [को०]।

उर—संज्ञा पुं० [स० उरस्] १ वक्षस्थल। छाती।
यौ०—उरोज।
मुहा०—**उर आनना वा लाना** = छाती से लगाना। आलिंगन करना। उ०—(क) दिन दस गए वालि पहँ जाई। पूछेहु कुशल सखा उर लाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ताप सरसानी, देखैं अति अकुलानी, जऊ पति उर आनी तऊ सेज मे विलानी जात।—पद्माकर (शब्द०)। २ हृदय। मन। चित्त। उ०—करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन।—तुलसी (शब्द०)।
मुहा०—**उर आनना वा लाना** = मन में लाना। ध्यान करना। विचारना। समझना। उ०—उर आनहु रघुपति प्रभुताई।—तुलसी (शब्द०)। **उर धरना** = ध्यान मे रखना। ध्यान करना। उ०—जदि चरण उर धरि प्रभुताई। अगद चलेउ सर्वाह सिर नाई।—तुलसी (शब्द०)।

उरई†—संज्ञा स्त्री० [स० उशरी अथवा देश०] उशीर। खस।

उरकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० रुकना या उड़कना] रुकना। ठहरना। उ०—राघव चेतन चेतव महा। आइ उरकि राजा पहँ रहा।—जायसी (शब्द०)।

उरग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उरगी] १ साँप। २ पेट के बल चलनेवाला जीव।
यौ०—उरगराज। उरगस्थान। उरगाशन। उरगारि। उरगाराति।

उरगड्डी—संज्ञा स्त्री० [स० उर + हिं० गाडना] एक खूँटी जिसने जुलाहे पृथिवी मे ताना गाडने के लिये सूराख करते हैं।

उरगना—क्रि० स० [स० उरी कृत् > *हिं० उरक > उरग] स्वीकार करना। अगीकार करना। अँगेजना। उ०—प्राय भरत्य कहा धौं करैं जिय माँहि गुनै। जो दु ख देइ तौ लैं उरगौ यह बात सुनौ।—केशव (शब्द०)।

उरगभूषण—संज्ञा [स०] शिव [को०]।

उरगयव—संज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार का यव। २ एक प्रकार का मान [को०]।

उरगराज—संज्ञा पुं० [स०] १ वासुकि। २ शेषनाग [को०]।

उरगलता—संज्ञा स्त्री० [स०] नागवल्ली। पान।

उरगसारचदन—संज्ञा पुं० [सं० उरगसारचन्दन] एक प्रकार का चदन [को०]।

उरगस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल [को०]।

उरगाद—संज्ञा पुं० [स०] गरुड।

उरगाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उरुगाय] दे० 'उरुगाय'।

उरगारि—संज्ञा पुं० [स०] १ गरुड। २ मोर [को०]।

उरगाशन—संज्ञा पुं० [स०] १ गरुड। २ मोर [को०]।

उरगास्य—संज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार की कुदाल [को०]।

उरगिनी(पु)—संज्ञा पुं० [स० उरगी] सर्पिणी। नागिनी। उ०—घूमत हौ मनो प्रिया उरगिनी नव विलास श्रम से जब से हो। काजर अधरनि प्रगट देखियत नाग वेलि रँग निपट लसे हो।—सूर (शब्द०)।

उरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उरोज] कुच। स्तन। उ०—बाढत तो उर उरज भर भर तरुनई विकास। बोझनि सौतिनि के लिए आवतु रूँध उसास।—विहारी (शब्द०)।

उरजात—संज्ञा पुं० [स० उरस + जात] कुच। स्तन। उ०—अति

उमाकांत—संज्ञा पुं० [सं० उमाकान्त] पार्वती के प्रिय पति या शिव [को०]।

उमाकिनीⓅ†—वि० [हिं० उमाकना] उखाड़नेवाली। खोदकर फेंक देनेवाली। उ०—माया मोह नाशिनी उमाकिनी अविद्या मूल पापन की त्रासिनी है ज्ञान रस रासिनी।—रघुराज (शब्द०)।

उमागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] उमा के पिता हिमवान्। हिमालय [को०]।

उमाचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठ मास की शुक्ल चतुर्थी। जेठ सुदी चौथ [को०]।

उमाचनाⓅ†—क्रि० स० [सं० उन्मञ्चन = ऊपर उठाना] १. उमाड़ना। ऊपर उठाना। २. निकालना। उ०—लाज बस बाम छाम छाती पै छरी के, मानो नाभि त्रिवली तें दूजी नागिनि उमाची है।—(शब्द०)।

उमाट्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उमाकट' [को०]।

उमादⓅ—संज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० 'उन्माद'।

उमाधव—संज्ञा पुं० [सं० उमा + धवपति] शिव। उमापति [को०]।

उमाधोⓅ—संज्ञा पुं० [सं० उमाधव] पार्वती के पति। महादेव। शिव। उ०—हरो पीर मेरी रमाधो उमाधो। प्रबोधो उदो देहि श्री विंदुमाधो।—केशव (शब्द०)।

उमापति—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शंकर। शिव।

उमामहेश्वरव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष व्रत का नाम जिसमें पार्वती और शिव की कृपा के लिये उपासक अनुष्ठान या व्रतोपवास आदि करता है [को०]।

उमावन—संज्ञा पुं० [सं०] बाणपुर नामक नगर। शोणितपुर। देवीकोट [को०]।

उमासुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। २. गणेश [को०]।

उमाह—संज्ञा पुं० [सं० उद + √मह् = उमगाना, उत्साहित करना] उत्साह। उमंग। जोश। चित्त का उद्गार। उ०—(क) आयो सुवाह उमाह भरो रन जो सुरनाह को दान देवैया।—रघुराज (शब्द०)। (ख) जान देहु सब और चित्त के मिलि रस करन उमाहु। हरीचंद सूरत तो अपनी बारक फेरि दिखाहु।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

उमाहना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [हिं० उमहना] १. उमड़ना। उमगना। भरकर ऊपर आना। उ०—अगन अगन माहिं अनत के तुग तरग उमाहत आवें।—पद्माकर (शब्द०)। २. उमंग में आना। उद्गार से भरना। उ०—तैसहि राज समाज जोरि जन धावैं हरख उमाहे।—रघुराज (शब्द०)।

उमाहना[2]—क्रि० स० उमड़ाना। उमगाना। वेग से बढ़ाना। उ०—झलझलात रिस ज्वाल वदन सुत चहुँ दिसि चाहिय। प्रलय करन त्रिपुरारि कुपित जनु गन उमाहिय।—सूदन (शब्द०)।

उमाहलⓅ—वि० [हिं० उमाह + ल (प्रत्य०)] उमंग से भरा। उत्साहित। उ०—ब्रज घर घर अति होत कुलाहल। जहँ तहँ ग्वाल फिरत उमँगे सब अति आनद भरे जु उमाहल।—सूर १०।८२६।

उमिरियाⓅ†—स्त्री० [हिं० उमर > उमिर + इया (अल्पा० प्रत्य०)] दे० 'उम्र'। उ०—हमरी उमिरिया होरी खेलन की, पिय मोसों मिलि के बिछुरि गयो री।—धरम०, पृ० ५६।

उमेठन—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्वेष्ठन] ऐंठन। मरोड़। पेंच। बल।

उमेठना—क्रि० स० [सं० उद्वेष्ठन] ऐंठना। मरोड़ना।

उमेठवाँ—वि० [हिं० उमेठना] ऐंठना। ऐंठनदार। घुमावदार। मुरेरवाँ।

उमेड़ना—क्रि० स० [हिं० उमेठना] दे० 'उमेठना'।

उमाहउⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० उमाह + उ (प्रत्य०)] दे० 'उमाह'। उ०—आज उमाहउ मो घडउ, ना जाणू किव केण।—ढोला० दू० ५१८।

उमेद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० उम्मेद] उम्मीद। आशा। उ०—रावरे अनुग्रह को मेह बरसायो आय, एकौ बीज उग्यो नाहिं भाग यो दिखायतु। हा हा नटनागर उमेद फलफूल की यो प्यारे मीति खेत में तो रेत न लखायतु।—नट०, पृ० ८६।

उमेदवार—संज्ञा पुं० [फ़ा० उम्मेदवार] दे० 'उम्मेदवार'।

उमेदवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० उम्मेदवारी] दे० 'उम्मेदवारी'।

उमेलनाⓅ—क्रि० स० [सं० उन्मीलन] १. खोलना। उघाड़ना। २. प्रकट करना। ३. वर्णन करना। उ०—पदमावत जगरूप मनि कहँ लग कहौं उमेल। तेहि समुद महँ खायो हौं का जियो अकेल।—जायसी (शब्द०)।

उमैनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० उमहना] मनमाना आचरण करना। उमंग में आना। उमड़ना।

उम्दगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अच्छापन। भलापन। खूबी।

उम्दा—वि० [अ० उम्दह्] अच्छा। भला। उत्तम। श्रेष्ठ। बढ़िया।

उम्म—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. जन्म देनेवाली माता। २. जड़। मूल [को०]।

उम्मट—संज्ञा पुं० [देशी] एक देश का नाम। उ०—उम्मट के हुब रान जगनी जात अलाई।—सुजान०, पृ० ८।

उम्मत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. किसी मत के अनुयायियों की मंडली। उ०—कबीर सोई हुकुम हरम की उम्मत नियाहै जत। पैगंबर हुकम हरम के, बड़े शरम की बात।—कबीर० (शब्द०)। २. जमायत। समिति। समाज। फिरका। ३. औलाद। संतान (व्यंग्य)। ४. पैरोकार। समर्थक। अनुयायी।

उम्मस†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'उमस'।

उम्मी—संज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] १. गेहूँ या जौ की कच्ची बाल जिसमें से हरे दाने निकलते हैं। २. आग की लपट में जौ, गेहूँ की बालों को भूनकर खाने के लिये बनाई गई स्वादिष्ट वस्तु।

उम्मीद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'उम्मेद'। उ०—कहें पञाब ने सब हिंद की उम्मीद हुई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२।

मुहा०—उम्मीद बर आना = आकांक्षापूर्ति होना। अभीष्ट प्राप्ति होना। उ०—कोई उम्मीद बर नहीं आती। कोई सूरत नजर नहीं आती।—?

उमडना—क्रि० अ० [हिं० उमडना]१ पानी या और किसी द्रव वस्तु का अधिकता या बाहुल्य के कारण ऊपर उठना। भरकर ऊपर आना। उतराकर बह चलना। जैसे—बरसात मे नदी नाले उमडते हैं। उ०—नदियाँ नद लौं उमड़ी लतिका तरु डारन पै गुरवान लगी।—सेवक (शब्द०)। २ उठकर फैलना। छाना। घेरना। जैसे—बादल उमडना, सेना उमडना। उ०—(क) घनघोर घटा उमडी चहुँ ओर सो मेह कहै न रहौं बरसौं।—कोई कवि (शब्द०)। (ख) अनी बडी उमडी लखैं असि बाहक भट भूप।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—उमडना घुमडना = घूम घूमकर फैलना वा छाना। उ०—उमडि घुमडि घन बरसन लागे, इत्यादि।—(शब्द०)।

३ किसी आवेश मे भरना। जोश में आना। क्षुब्ध होना। जैसे—इतनी बातें सुनकर उसका जी उमड आया।

सयो० क्रि०—आना। —चलना।—जाना।—पडना।

उमडाना—क्रि० अ० [हिं० उमडना का प्रे० रूप] १ उमडने का कारण होना २ दे० 'उमडना'।

उमतⓊ—सज्ञा स्त्री० [अ० उम्मत] दे० 'उम्मत'। उ०—मेरी उमत करै हकतायत।—सं० दरिया, पृ० २२।

उमत्तⓊ—वि० [सं० उन्मत्त प्रा० उम्मत्त] मत्त। मतवाला। उ०—वढि सामत ससूर करै उच्छव उमत्त पर।—पृ० रा०, २४।३५७।

उमदगी—सज्ञा स्त्री० [अ०] अच्छापन। उत्तमता। खूबी।

उमदनाⓊ—क्रि० अ० [सं० पा० उन्मत्त प्रा० उम्मत्त] १ उमग मे भरना। मस्त होना। २ उमगना। उमडना। उ०—वद्दल उमद्द जैसे जलद्द। गोली वर बूँदे परि विहद्द।—सूदन (शब्द०)।

उमदा—वि० [अ० उमद्ह] [स्त्री० उमदी] अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

उमदानाⓊ— क्रि० अ० [सं० उन्मद] १ मतवाला होना। मद मे भरना। मस्त होना। मस्त होकर किसी ओर झुकना। उ०—(क) हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।—बिहारी० र०, दो० १७६। (ख) जोवन के मद उनमद मदिरा के मद मदन के मद उमदात बरबस पर।—देव (शब्द०)। (ग) माइ बाप तजि धी उमदानी हरषत चलो खसम के पास।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५४१। २ उमग मे आना। आवेश मे आना। जोश मे आना। उ०—चहु सुभट वढ़ि कै प्रान त्यागे विष्णु पुरते जात भे। सो देखि सगर करन महँ सब सुभट अति उमदात भे।—गोपाल (शब्द०)।

उमर[१]—सज्ञा स्त्री० [अ० उम्र] १ अवस्था। वय। २ जीवनकाल। आयु।

यौ०—उमरदराज = लबी उमरवाला।

उमर[२]—सज्ञा पुं० [अ०] बगदाद का एक खलीफा। हजरत मुहम्मद के बाद दूसरा खलीफा।

उमरती—सज्ञा स्त्री० [सं० अमृतिका] एक प्रकार का बाजा। दे० 'अँविरती'। उ०—बाज उमरती अति कहकहे। (पाठांतर) बाज उँवरती अति गह गहे।—जायसी (शब्द०)।

उमरा—सज्ञा पुं० [अ० अमीर का बहु व०]प्रतिष्ठित लोग। सरदार। उ०—लिखी पत्रि चारिहु दिसि धाए। जहँ लग उमरा वगि बुलाए।—जायसी (शब्द०)।

उमराऊⓊ—सज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'। उ०—चार प्रधान सात उमराऊ। प्रोहित दोय हिए मन भाऊ।—कबीर सा०, पृ० ५६३।

उमरायⓊ—सज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'।—अरे ते गुसुलखाने बीच ऐसे उमराय लै चले मनाय महाराज शिवराज को।—भूषण ग्र०, पृ० ६।

उमरावⓊ†—सज्ञा पुं० [अ० उमरा]प्रतिष्ठित लोग। सरदार। दरबारी। रईस।—महा महा जे, सुभट दैत्यदल बैठे सब उमराव। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो, मो सम्मुख को आव?—सूर (शब्द०)।

उमरी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] एक पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार बनाते हैं। यह मदरास, बबई तथा बगाल मे खारी मिट्टी के दलदलो के पास होता है। मचोल।

उमस—सज्ञा स्त्री० [सं० उष्म] गरमी। वह गरमी, जो हवा पतली पडने या न चलने पर मालूम होती है।

उमहनाⓊ—क्रि० अ० [सं० उन्नयन, प्रा० उम्महण अथवा सं० उद्+√मह=उभाडना] १ उमडना। भरकर ऊपर आना। उमगना। फूट चलना। उ०—(क) सोने सो जाको स्वरूप सवै कर पल्लव काति महा उमही है।—देव (शब्द०)। (ख) कान्ह भले जू भले समझायहौ मोह समुद्र को जो उमह्यौ है।—केशव आपने मानिक सो मन हाथ पराए दे कौने लह्यौ है।—केशव (शब्द०)। २ छाना घेरना। चारो ओर से टूट पडना। उ०—सघन विमान गगन भरि रहे। कौतुक देखन अम्मर उमहे।—सूर (शब्द०)। ३ उमग मे आना। जोश मे आना। उ०—गीत धत्रावति ही नँदलाल सो ऐठि उमेठन रग भरी सी। चारु महाकवि की कविता सी लसै रस मे दुलही उमही सी।—(शब्द०)।

उमहानाⓊ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उमाहना'।

उमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ हिमालय की पुत्री। शिव की स्त्री पार्वती।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि जब पार्वती शिव के लिये तप कर रही थी उस समय उनकी माता मेनका ने उन्हे तप करने से रोका था इसी से पार्वती का नाम उमा पडा, अर्थात उ (हे), मा (मत)।

२ दुर्गा। ३ हलदी। ४ अलसी। ५ कीर्ति। ६ काति। ७. ब्रह्मविद्या। ब्रह्मज्ञान। ८ चद्रकात मणि। ९ रात। रात्रि (को०)।

यौ०—उमाकात। उमागुरु = उमाचतुर्थी। उमाजनक। उमानाथ। उमाधव। उमासहाय = शिव। उमासुत।

उमाकट—सज्ञा पुं० [सं०] तीसी के फूल की धूल या पराग। अलसी के फूल का मकरद (को०)।

उमाकना†—क्रि० स० [देसज] उखाडना। खोदकर फेंक देना। नष्ट करना।

उभरौंहा—वि० [हिं० उभार+औंहा (प्रत्य०)] उभार पर आया हुआ। उभरा हुआ। उ०—भावुक उभरौंहा भयो, कछुक परयो भरुआइ। सीप हरा कैं मिसि हियौ निसि दिन हेरत जाइ।—बिहारी र०, दो० २५२।

उभाँखरा(पु)—वि० [स० उद्भावन, गुज० ऊभूँ+हिं० खरा=खडा] खडे रहनेवाले। कहीं न टिकनेवाले। भ्रमणशील। जिनका एक जगह निवास न हो। उ०—पहिरण-ओढण कवला, साठे पुरसे नीर। आपण लोक उभाँखरा गाडर छाली खीर।—ढोला० दू०, ६६२।

उभाड—संज्ञा पुं० [स० उद्भेद या उद्भरण हिं० उभरना] १ उठान। ऊँचापन। ऊँचाई। २ ओज। वृद्धि।

उभाडदार—वि० [हिं० उभाड+फा० दार (प्रत्य०)] उठा हुआ। उभरा हुआ। सतह से ऊँचा। फूला हुआ। जैसे—उस बरतन पर की नक्काशी उभाडदार है। २ भडकीला। जैसे—इस जेवर की बनावट ऐसी उभाडदार है कि लागत तो दस ही रुपए की है, पर सौ का जँचता है।

उभाडना—क्रि० स० [हिं० उभडना] १. किसी जमी वा रखी हुई भारी वस्तु को धीरे धीरे उठाना। उकसाना। जैसे—पत्थर जमीन में धँस गया है, इसको उभाडो। २ उत्तेजित करना। इधर उधर की बातें करके किसी बात पर उतारू करना। बहकाना। जैसे—उसी के उभाडने से तुमने यह सब उपद्रव किया है। ३. जगह से उठाना।

उभाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अभुआना, हुवुआना] अभुआना। सिर हिलाना और हाथ पैर पटकना जिससे सिर पर भूत का आना समझा जाता है। उ०—घूमन लगे समर मे घैंहा। मनहुँ उभात भाव भरि भैंहा।—लाल (शब्द०)।

उभार—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'उभाड़'।

उभारदार—वि० [हिं०] दे० 'उभाडदार'।

उभारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उभाडना'।

उभासना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्भासन, प्रा० उब्भासण.] प्रकाशित होना। घोषित होना। चमकना। उ०—दीप के तेज मे दीपक दोलत हीरे के तेज तें हीरो उभासैं। तैंसे हि सुदर आतम जानहुँ आपु के तेज से आपु प्रकासैं।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६१६।

उभिटना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्भिदन, प्रा० उब्भिडन] ठिठकना। हिचकना। भिटकना। उ०—जाहु नहीं अहो जाहु चले हरि, जात जितै दिन ही बिन बागे। देखि कहा रहे धोखे परे उभिटे कैसे देखिवो देखहु आगे।—केशव (शब्द०)।

उभियाना†—क्रि० स० [हिं० उभना] खडा करना। ऊपर उठाना।

उभेप(पु)—संज्ञा पु० [सं० उभयस्थ ?] सदेह। अनिश्चय। उ०—ऐसा अदभुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेपैं। मूसा हस्ती सौं लडै, कोई बिरला पेपै।—कबीर ग्र० पृ० १६१।

उभै—वि० [स० उभय] दे० 'उभय'।

उभौ(पु)—वि० [स० उभय] दे० 'उभय'। उ०—भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महा धुनि गर्जा।—मानस, ४।८।

उमग—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्=ऊपर+मङ्ग=चलना अथवा सं० उन्म-दाङ्ग, प्रा० *उम्मग्ग अथवा देशी०] १ चित्त का उभाड। सुखदायक मनोवेग। जोश। मौज। लहर। आनद। उल्लास। जैसे—आज उनका चित्त बडे उमग मे है। उ०—बसे जाय आनद उमग सो गैया सुखद चरावैं।—सूर (शब्द०)। २ उभाड। अधिकता। पूर्णता। उ०—आनंद उमग मन, जोवन उमग तन, रूप के उमग उमगत अग अग है—तुलसी (शब्द०)।

उमंगना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उमग+ना (प्रत्य०)] दे० 'उमगना'।

उमड—संज्ञा पु० [स० उद्=ऊपर+मण्ड=मांड़ (या मण्डन) या वा फेन] १. उठान। १ चित्त का उबाल। वेग। जोश।

उमडना—क्रि० अ० [हिं० उमड+ना (प्रत्य०)] दे० 'उमडना'। उ०—जलज अचल डेरा दए सिंह सुजान उमडि। निर्भै ह्वै कूरम नृपति पाछैं चल्यो घुमडि—सुजान, पृ० ३६।

उम-संज्ञा पुं० [स०] १. नगरी। नगर। पुरी। २. घाट। तट। घाट पर बनी हुई रक्षा चौकी [को०]।

उमत(पु)—वि०[स० उन्मत्त प्रा० उम्मत्त अथवा स० उन्मन्त्र=मत्रहीन] विचाररहित। मत्ररहित। उन्मत्त। उ०—ए सामत उमत-भुझ्झ देषत विरुझाने।—पृ० रा० ६६।४३७।

उमकना¹—क्रि० अ० [देश०] उखडना।

उमकना²(पु)—क्रि० अ०[हिं०उमगना] दे० उमगाना'। उ०—वहदत फसरत एकै रंग। ज्यो जल से जल उमकि तरग।—प्राण०, पृ० १३।

उमग(पु) संज्ञा स्त्री० [हिं० उमंग] दे० 'उमंग'।

उमगन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उ+मङ्ग] आनंद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता।

उमगना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उमग+ना] १ उमडना। उमडना। भरकर ऊपर उठना। बढ चलना। उ०—ऋधि, सिधि, सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अवुधि पहँ आई।—तुलसी (शब्द०)। २ उल्लास मे होना। हुलसना। जोश मे आना।

उमगा(पु)—वि० पुं० [स० उ+मङ्ग [स्त्री० उमगी] उमडा। उत्साहित हुआ। सीमा से बाहर हुआ। हद्द से निकला हुआ। सीमोल्लघित।

उमगाना—क्रि० स० [हिं० उमगना] उत्साहित होना। जोश मे भर जाना। उमगने का कारण होना।

उमगावन(पु)—वि० [हिं० उमगन] उमग भरनेवाला। आनदित करनेवाला। उ०—सोकहरन आनँदकरन, उमगावन सब गात।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४८२।

उमचना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उन्मञ्चन] १ किसी वस्तु पर तलवो से अधिक दाव पहुँचाने के लिये झटके के साथ शरीर के ऊपर उठाकर फिर नीचे गिराना। हुमचना। २ चौंक पडना। चौकन्ना होना। सजग होना।—सुनहु सखी मोहन कहा कीन्हो। उमचि जाति तब ही सब सकुचति बहुरि मगन ह्वै जाति। सूर श्याम सो कहो कहा यह कहत न बनत लजाति।—सूर (शब्द०)।

उमड—संज्ञा स्त्री० [स० उन्मण्डन] १ बाढ़। बढाव। भराव। २. घिराव। घिरन। छाजन। ३. धावा।

यौ०—उमड़ घुमड़।

उभचुभा†—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] डूबने उतारने की स्थिति, क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०-होना। उ०—वह अथाह अधकार के समुद्र मे उभचुभ हो रही थी।—कंकाल, पृ० १५६।

उभटना†—क्रि० अ० [हिं० उभरना] १ अहंकार करना। अभिमान करना। शेखी करना। २ रुक जाना। अड़ना।—रथ को चतुर चलावन हारो। खिन हाँकै खिन उभटै राखै नही प्रान को सारो।—रैं० बानी, पृ० ४२।

उभड़ना—क्रि० अ० [सं० उद्भिदन, अथवा उद्भरण, प्रा० उब्भरण] १ किसी तल वा सतह का आसपास की तरह से कुछ ऊँचा होना। किसी अंश का इस प्रकार ऊपर उठना कि समूचे से उसका लगाव बना रहे। उकसना। फूलना। जैसे—गिलटी उभड़ना। फोड़ा उभड़ना। उ०—नारंगी के छिलके पर उभड़े हुए दाने होते हैं। २ किसी वस्तु का इस प्रकार ऊपर उठना कि वह अपने आधार से लगी रहे। ऊपर निकलना। जैसे—तभी तो खेत मे अँखुए उभड रहे हैं। ३ आधार छोड़कर ऊपर उठना। उठना। जैसे—मेरा तो पैर ही नहीं उभड़ता चलूँ कैसे? ४ प्रकट होना। उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे—दर्द उभड़ना, ज्वर उभड़ना। ५ खुलना। प्रकाशित होना। जैसे—बात उभड़ना ६ बढ़ना। अधिक होना। प्रबल होना। जैसे—आजकल इसकी चर्चा खूब उभड़ी है। ७ वृद्धि को प्राप्त होना। समृद्ध होना। प्रतापवान् होना। जैसे—मरहठो के पीछे सिख उभड़े। ८ चल देना। हट जाना। भागना। उ०—अब यहाँ से उभड़ो। ९ जवानी पर आना। उठना। १० गाय, भैंस आदि का मस्त होना।

उभय—वि० [सं०] दोनो।

उभयचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कछुवा। २ मेढक [कौ०]।

उभयचर[2]—वि० जल और स्थल दोनो में समान रूप से रह सकने वाला (जीव) [कौ०]।

उभयत —क्रि० वि० [सं० उभयतस्] दोनो ओर से। दोनो तरफ से।

उभयतोदत—वि० [सं० उभयोदन्त] जिसके दोनों ओर दो दाँत निकले हो जैसे—हाथी सूअर आदि।

उभयतोमुख—वि० [सं०] दोनो ओर मुँह रखनेवाला। दोमुँहा [कौ०]।

उभयतोमुखी—वि० स्त्री० [सं०] दोनो ओर मुँहवाली।

यौ०—उभययतोमुखी गौ = ब्याती हुई गाय, जिसके गर्भ से बच्चे का मुँह बाहर निकल आया हो। ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य लिखा है।

उभयोतऽनर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी स्थिति जिसमे दो ही मार्ग हो और दोनो अनिष्टकर हो।

उभयतोभागी—संज्ञा पुं० [सं० उभयतोभागिन्] कौटिल्य मत से वह राजा जो अमित्र तथा आसार (साथी) दोनो का साथ ही उपकार करे।

उभयतोऽर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] जिधर लाभ की संभावना दिखाई पडती हो, उधर ही शत्रु की बाधा। ऐसा करते हैं तो भी बाधा, और वैसा करते हैं तो भी (कौ०)।

उभयत्र—क्रि० वि० [सं०] १. दोनो जगह। २ दोनो ओर। ३ दोनो विषयो मे [कौ०]।

उभयथा—क्रि० वि० [सं०] दोनो प्रकार मे [कौ०]।

उभयपदी—वि० [सं० उभयपदिन्] वह धातु जो परस्मैपदी और आत्मनेपदी दोनो रूप धारण करती है।

उभयवादी(५)—वि० [सं० उभयवादिन्] स्वर और ताल दोनों का बोध करानेवाला (बाजा, जैसे वीणा)।

उभयविपुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद। जिस आर्या के दोनो दलो के प्रथम तीन गणों मे पाद पूर्ण होते हैं उसे उभयविपुला कहते हैं।

उभयव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं०उभयव्यञ्जन] नपुंसक। क्लीव। स्त्री और पुरुष दोनो के चिह्न धारण करनेवाला व्यक्ति [कौ०]।

उभयसंभव—संज्ञा पुं० [सं० उभयसम्भव] संदेह। विकल्प [कौ०]।

उभयसुगंधगण—संज्ञा पुं० [सं० उभयसुगन्धगण] वे महकनेवाली वस्तुएँ, जिसकी सुगंध जलाने पर भी फैलती है, जैसे—चंदन, सुगंधवाला, अगरू, जटामासी, नख, कपूर, कस्तूरी इत्यादि।

उभयहस्ति—क्रि० वि०[सं०]दोनो हाथों मे समा सकने योग्य परिमाण-वाला। अंजली भर [कौ०]।

उभया—क्रि० वि० [सं०] दोनो प्रकार से [कौ०]।

उभयात्मक—वि० [सं० उभय+आत्मक] १. दोनो प्रकार की विशेषता लिए हुए। २ दोनो से रचित [कौ०]।

उभयान्वयी—वि० [सं० उभयान्वयिन्] व्याकरण के नियमानुसार (पद और वाक्य) दोनो से मिला हुआ। दोनो संबंधित [कौ०]।

उभयायी—वि० [सं० उभयायिन्] १ इस लोक और परलोक दोनो के लिये उपयोगी हो। २ जो दोनो लोको से संबद्ध [कौ०]।

उभयार्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दोनो अर्थ[कौ०]।

उभयार्थ[2]—वि० १ दो अर्थ रखनेवाला। २ जो विस्पष्ट न हो [कौ०]।

उभयालंकार—संज्ञा पुं० [सं० उभयालङ्कार] वह अलंकार जिसमें शब्दगत और अर्थगत दोनो प्रकार का चमत्कार हो।

विशेष—इसके दो प्रकार होते हैं—(१) संसृष्टि और संकर। जहाँ शब्दालंकार और अर्थालंकार तिलतंडुल न्याय से पृथक् अस्तित्व रखते हुए एकत्र स्थित होते हैं वहाँ संसृष्टि और जहाँ नीरक्षीर न्याय से एक दूसरे से घुलमिल जाते हैं वहाँ संकर नामक उभयालंकार होता है।

उभयाविमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा या राष्ट्रनायक जो परस्पर संघर्परत दो राजाओ मे से किसी एक का भी पक्ष ग्रहण नही करता।

उभयेद्यु—क्रि० वि० [सं० उभयेद्युस्] १. दोनो दिन। २. लगातार दो दिन [कौ०]।

उभयोन्नतोदर—वि०[सं०] जिसका पेटा दोनो ओर को निकला हो।

उभरना(५)—क्रि० अ० [सं० उद्भरण] दे० 'उभड़ना'। उ०—मो उभरल, इ गेल सुखाए। नाह वलोह मेघे भरि जाए।—विद्यापति, पृ० ४५६।

उठाना। उ०—(क) पुनि सलार कादिम मत माहाँ। खाडँ दान उवह नित वाहाँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) रघुराज लखे रघुनायक ते महा भीम भयानक दड गहे। सिर काटन चाहत ज्यों अवहीं करवाल कराल लिए उवहे।—रघुराज (शब्द०)। २ पानी फेंकना। उलीचना।

उवहना[२]⑤—क्रि० अ० ऊपर की ओर उठना। उभरना। उ०—जावत मवै उरेह उरेहे, भाँति भाँति नग लाग उवेहे।—जायसी

उवहना[३]⑤—क्रि० स० [स० उद्वहन=जोतना] जोतना। उ०—स्वारथ सेवा कीजिए। तातें भला न कोय। दादू उसर वहि उकरि कोठा भरै न कोय। दादू (शब्द०)।

उवहना[४]—वि० [देशज, मि० हिं० उवेना] विना जूते का। नंगा। उ०—रथ तें उतरि उवहने पायन। चलि भे रहहि हरहिं चित चायन। पद्माकर (शब्द०)।

उवहनि†, उवहनी—सज्ञा स्त्री०[स० उद्वहन, अव० उवहनि= रस्सी'] पानी खींचने की रस्सी। उ०—गगरिया मोरी चित सों उतरि न जाय। इक कर दरवा एक कर उवहनि, बतिया कहाँ अरथाय।—जग० वानी, पृ० ४८। (ख) जब जल से भर भारी गागर खींचती उवहनी वह, वरवस।—ग्राम्या, पृ० १८।

उवात⑤†—सज्ञा स्त्री० [स० उद्वान्त] उलटी। वमन। कै। उ०—वस तुम महा प्रसाद न पायो। अस कहि करि उवात दरसायो।—रघुराज (शब्द०)।

उवाना[१]—संज्ञा पुं० [हिं० उवहना=नगा अथवा उ=नहीं+वाना] वह जो कपडा बुनने मे राछ के वाहर रह जाता है। उ०—पाई करि कै भरना लीन्हो वे बाँधे को रामा। वे ये भरि तिहुँ लोकहि वाँधै कोई न रहे उवाना—कवीर (शब्द०)।

उवाना[२]—वि० विना जूते का। नगे पैर। उ०—मो हित मोहन जेठ की धूप मे आए उवाने परे पग छाले।—वेनी (शब्द०)।

उवाना[३]—क्रि० स० [हिं० ऊवना] १ तंग करना। नाकों दम कर देना। २ उवाने का कारण होना या वनना।

उवार—सज्ञा पु० [स० उद्धार] १ उद्धार। निस्तार। छुटकारा। वचाव। रक्षा। उ०—मन तेवान कै राघौ झूरा। नाहिं उवार जीउ डर पूरा।—जायसी ग्र०, पृ० २०४। (ख) गहत चरन कह वालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उवारा।—मानस, ६।३१। २ †ओहार। ३ †वचत।

उवारना—क्रि० स०[स० उद्धारण]उद्धार करना। छुडाना। निस्तार करना। मुक्त करना। रक्षा करना। वचाना। उ०—तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उवारा।—मानस, ५।२६।

उवारा—सज्ञा पुं० [स० उद् (म० उदक)=जल+वारण=रोक] वह जल का कुड जो कुओ पर चोपायो के जल पीने के लिये वना रहता है। निपान। चँवर। अँहरी।

उवाल—सज्ञा पुं० [हिं० उवलना] १ आँच पाकर फेन के सहित ऊपर उठना। उफान। जोश।

क्रि० प्र०—आना। —उठना।

२. जोश। उद्वेग। क्षोभ। जैसे—उसे देखते ही उनके जी मे ऐसा उवाल आया कि वे उसकी ओर दौड पडे।

उवालना—क्रि० स० [हिं० उवलना] १. पानी, दूध या और किसी तरल पदार्थ को आग पर रखकर इतना गरम करना कि वह फेन के साथ ऊपर उठ आवे। खौलाना। चुराना। जोश देना। जैसे,—दूध उवालकर पीना चाहिए। २. किसी वस्तु को पानी के साथ आग पर चढाकर गरम करना। जोश देना। उसिनना। जैसे—आलू उवाल डालो।

उवासी—सं० स्त्री० [स० उच्छ्वास] जँभाई।

उवाहना⑤—क्रि० स० [हिं० उवहना] दे० 'उवहना'।

उविठना—क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उवीठना'।

उवीछना†—क्रि० स० [देशी] उलीचना। पानी फेंकना।

उवीठना[१]—क्रि० स० [स० अव, पा० ओ+सं० इष्ट पा० इट्ठ=ओइट्ठ] जी भर जाने के कारण अच्छा न लगना। चित्त से उतर जाना। अधिक व्यवहार के कारण अरुचिकर हो जाना। उ०—(क) सुठि मोठी लाड मीठे, वै खात न कवहू उवीठे।—सूर०, १०।८०१। (ख) वचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे। यह जानतहु हृदय अपने सपने न अघाइ उवीठे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४३।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यद्यपि देखने मे कर्तृप्रधान की तरह है पर वास्तव मे है कर्मप्रधान।

संयो० क्रि०—जाना।

उवीठना[२]—क्रि० अ० ऊवना। घवराना। उ०—देव समाज के, साधु समाज के लेत निवेदन नाहि उवीठे।—(शब्द०)।

उवीधना⑤—क्रि० अ० [सं० उद्विद्ध, प्रा० उविद्ध] १ फँसना। उलझना। २ धँसना। गडना।

उवीधा— वि० [सं० उद्विद्ध] [स्त्री० उवीधी] १ धँसा हुआ। गड़ा हुआ। उ०—गरवीली गुनन लजीली ढीली भौंहन के, ज्यों ज्यों नई त्यो त्यों नई नेह नित ही। बीधी वात वातन, समीधी गात गातन, उवीधी परजक मे निसक अक हित ही।—देव (शब्द०)। २ छेदनेवाला। गडनेवाला। काँटो से भरा हुआ। झाड झंखाड वाला। उ०—कहुँ शीतल कहुँ उष्ण उवीधो। कहूँ कुटिल मारग कहुँ सीधो।—शं० दि० (शब्द०)।

उवेना⑤†—वि० [हिं०] नंगा। विना जूते का। उ०—तवलो मलीन हीन दीन सुख सपने न जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को। तवलो उवेने पाएँ फिरत पेट खलाए वाए मुँह सहत पराभौ देस देस को।—तुलसी (शब्द०)।

उवेरना⑤—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उवारना'। उ०—अलख अगोचर हो प्रभु मेरा। अव जीवन को करो उवेरा।—कवीर (शब्द०)।

उव्वहिका—सज्ञा स्त्री० [स० उद्वाहिका, प्रा० उव्वाहिका] जूरी। निर्णय मे सलाह देनेवाले व्यक्ति। उ०—सभ्यो का काम उव्वाहिका या जूरी का रह गया था।—भा० इ० रू०, पृ० १०१०।

उभइ⑤—वि० [स० उभय] दे० 'उभय'।

क्रि० प्र०—न करना ।

विशेष—यह शब्द प्राय शोक और पीडा के अवसरो पर अनायास मुँह से निकलता है ।

उफडना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उफनना] उवलना । उफान खाना । जोश खाना । उ०—काचा उछरई उफड़ई काया हांडी माँहि । दादू पर कामिलि रहहिं, जीव ब्रह्म होइ नाहि ।—दादू (शब्द०) ।

उफताद—सज्ञा स्त्री० [फा० उफताद] १ आपत्ति । मुसीवत । २ आरभ । शुरुआत । ३ घटना । सयोग (को०) ।

उफतदा—वि० [फा० उफ्तादह] १ परती पडा हुआ (खेत) । २ गिरा हुआ (को०) । ३ दीन । दुखी । दलित (को०) ।

उफनना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्+फेन या उत्+√फण=गमन, या स० उत्+हिं० फाल=गति चलना] १ उवलना । उठना । आँच या गरमी से फेन के साथ होकर ऊपर उठना । उ०—(क) उफनत छीर जननि करि व्याकुल, इहि विधि भुजा छडायो ।—सूर०, १०।६६० । (ख) उफनत दूध न धरयो उतारि । सीझी थूली चूल्हे दारि ।—सूर (शब्द०) । २ उमडना । उ०—अनुराग के रगन रूप तरगन अगन रूप मनो उफनी । (शब्द०) ।

उफनाना—क्रि० अ० [स० उत्+फेन या उत्+√फण्=गतौ] १ उवलना । किसी तरह की आँच या गरमी पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उ०—आँच पय उफनात सीचत सलिल ज्यो सकुचाइ । तुलसी ग्र०, पृ० ४२७ । २ पानी आदि का ऊपर उठना । हिलोर मारना । उमड़ना ।—भौंर भरी उफनात खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति ।—घनानद, पृ० १५ ।

उफान—सज्ञा पुं० [स० उत्+फेन या उत्+फण्] किसी वस्तु का आँच या गरमी पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उवाल ।

उवकना—क्रि० अ० [हिं० ओकना या उवाक] कै करना ।

उवका—सज्ञा पुं० [स०उद्वाहक, पा उव्वाहक] डोरी का वह फदा जिसमे लोटे या गगरे का गला फँसाकर कुँए से पानी निकालते हैं । अरिवन ।

उवकाई(पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं० ओकाई] उवात । मतली । कै ।

क्रि० प्र०—आना । लगना ।

उवछना†—क्रि० स० [स० उत्प्रोक्षण, प्रा० उप्पोक्खन, उप्पोच्छन] १ पछाडना । पछाडकर धोना । २ सिंचाई के लिये पानी खीचना ।

उवट¹—सज्ञा पुं० [स० उद्+वर्त्म>उव्वट=चलना फिरना] अटपट मार्ग । बुरा रास्ता । विकट मार्ग ।

उवट²—वि० ऊवड खावड । ऊँचा नीचा । अटपट ।—(क) जोरि उवट मुइँ परी भलाई । की मरि पथ चर्न नहिं जाई । (ख) सायर उवट सिखिर की पाटी । चढ़ी पानि पाहन हिय काटी ।—जायसी (शब्द०) ।

उवटन—सज्ञा पुं० [स० उद्वर्त्तन, प्रा० उव्वट्टन] १ शरीर पर मलने के लिये सरसों, तिल और चिरौंजी आदि का लेप । वटना । अभ्यग । उ०—तव महरि बाँहि गहि आनै । लै तेल उवटनो सानै ।—सूर०, १०।८०१ । (ख) उवटन उवटि अग अन्हवाइ । पठए, पट भूखननि वनाई ।—नद० ग्र०, पृ० २५६ ।

उवटना—क्रि० अ० [स० उद्वर्त्तन, प्रा० उव्वट्टण] वटना लगाना । उवटन मलना । उ०—(क) जननि उवटि अन्हवाइ कै अतिक्रम सो लीनो गोद । पौढाएँ पट पालने शिशु निरखि जननि मन मोद ।—सूर (शब्द०) । (ख) भाइन्ह सहित उवटि अन्हवाए । छरस असन अति हेतु जेंवाए ।—मानस, १।३३६ ।

उवना¹(पु)—क्रि० अ०[स० उदय>प्रा० उअअ, उवय]१ दे० 'उगना' ।

उवना²(पु)—क्रि० अ० [हिं० ऊवना] दे० 'ऊवना' ।

उवरना—क्रि० अ० [स० उद्+√वृ, प्रा० उव्वर] १ उद्धार पाना । निस्तार पाना । मुक्त होना । उ०—(क) आपुहि मूल फूल फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई । कहैं कवीर तेई जन उवरे जेहि गुरु लियो जगाई ।—कवीर (शब्द०) । (ख) भवसागर जो उवरन चाहे साईं नाम जिन छोडे ।—(शब्द०) । २ छूटना । वचना । उ०—धरी न काहू धीर सवके मन मनसिज हरे । जे राखे रघुबीर ते उवरे तेहि काल महुँ ।—मानस १।८५ । ३ शेष रहना । वाकी वचना । उ०—(क) फोरे सव वासन घर के दधि माखन खायो जो उवरयो सो डारयो रिस करिकै ।—सूर (शब्द०) । (ख) देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उवरयो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०५ ।

उवरा¹†—वि०[हिं० उवरना][वि० स्त्री० उवरी]१ वचा हुआ । फालतू ।

यौ०—उवरा-पवरा=वचा हुआ ।

२ जिसका उद्धार हुआ हो ।

उवरा²—संज्ञा पुं० वोने से वचा हुआ वीज जो हलवाहो और मजदूरों को बाँट दिया जाता है । विवरा । मुठिया ।

उवरी¹—सज्ञा स्त्री० [स० अपवारिका, प्रा० उव्वरिआ] दे० 'ओवरी' ।

उवरी²—सज्ञा स्त्री० [प्रा० उव्वूर= विषमोन्नत प्रदेश या हिं० उवरना] एक प्रकार की काश्तकारी ।

उवरी—वि० स्त्री० [हिं० उवरना] १ मुक्त । जिसका उद्धार हुआ हो । २ वची हुई । शेष ।

उवलना—क्रि० [स० उद्=ऊपर+वलन=जाना अथवा हिं० उ (=सं० उत्)+वल(=स०√ज्वल्>हिं० जल, वल)] १ ऊपर की ओर जाना । आँच या गरमी पाकर पानी, दूध आदि तरल पदार्थों का फेन के साथ ऊपर उठना । उफनाना । जैसे,—दूध जब उवलने लगे तब आग पर से उतार लो । २ उमडना । वेग से निकलना । जैसे,—सोते से पानी उवल रहा है ।

उवसन—सज्ञा पुं० [स० उद्वसन=ऊपर की छाल,] खर या नारियल की कूटी हुई जटा जिससे रगड़कर वरतन माँजते हैं । गुझना । जूना ।

उवसना†—क्रि० स० [सं० उद्वसन] १ वरतन माँजना । दे० 'उपासना' । २ उजड़ना । अपना निवासस्थान छोडकर अन्यत्र जा वसना ।

उवहनी—सज्ञा स्त्री० [स० उद्वहन, प्रा० उव्वहण,] कुएँ से गगरी या लोटा खीचने की रस्सी । पानी निकालने की डोरी ।

उवहना¹(पु)—क्रि० स० [स० उद्वहन, पा० उव्वहना+ऊपर उठाना] १ हथियार खींचना । (हथियार) म्यान से निकालना । शस्त्र

उपास्तमन—संज्ञा पु० [सं० उप+अस्तमन] सूर्यास्त [को०]।

उपास्तमय—क्रि० वि० [सं०] सूर्यास्त के आसपास। सूर्य के अस्त होने से कुछ पहले [को०]।

उपास्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सेवा। २ देवपूजा। ३ आराधना। उपासना [को०]।

उपास्त्र-संज्ञा पु० [सं०] छोटा हथियार। छोटा या लघु अस्त्र [को०]।

उपास्थित—वि० [सं०] १ चढा हुआ। २. खडा हुआ। ३ संतोषजनक [को०]।

उपास्य—वि० [सं०] पूजा के योग्य। आराध्य। जिसकी सेवापूजा की जाती हो।

यौ०—उपास्यदेव।

उपाहार—संज्ञा पु० [सं०] जलपान। नाश्ता।

उपाहित—वि० [सं०] १ परस्पर की संमति से किया हुआ। २ जिसका आरोप किया गया हो। आरोपित ३ पहना या धारण किया हुआ। ४ रखा हुआ [को०]।

उपेंद्र—संज्ञा पु० [सं० उपेन्द्र] १ इंद्र के छोटे भाई वामन या विष्णु भगवान्। कृष्ण।

उपेंद्रवज्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० उपेन्द्रवज्रा] ग्यारह वर्णों की एक वृत्ति जिसमे क्रमश जगण, तगण, जगण और अंत मे दो गुरु होते हैं। जैसे—अकंप धूम्राक्षहि जानि जूझ्यो। महोदरै रावण मंत्र बूझ्यो। सदा हमारे तुम मंत्रवादी। रहे कहा ह्वै अति ही विषादी —केशव (शब्द०)।

उपेक्षक—वि० [सं०] १ उपेक्षा करनेवाला। विरक्त होनेवाला। २. घृणा करनेवाला।

उपेक्षण—संज्ञा पु० [सं०][वि० उपेक्षणीय, उपेक्षित, उपेक्ष्य] १ त्याग करना। छोडना। विरक्त होना। उदासीन होना। दूर रहना। किनारा खींचना। २ घृणा करना। ३ आसन नीति का एक भेद। अवज्ञा प्रदर्शित करते हुए आक्रमण न करना।

उपेक्षणीय—वि० [सं०] १. त्यागने योग्य। दूर करने योग्य। २ घृणा करने योग्य।

उपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उदासीनता। लापरवाही। विरक्ति। चित्त का हटना। २ घृणा। तिरस्कार।

उपेक्षायान—संज्ञा पु० [सं०] शत्रु से छुट्टी पाकर उसके सहायक मित्रो पर चढ़ाई (कामद०)।

उपेक्षासन—संज्ञा पु० [सं०] शत्रु की उपेक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना, उसपर चढाई आदि न करना (कामदं०)।

उपेक्षित—वि० [सं०] जिसकी उपेक्षा की गई हो। जिसकी परवा न की गई हो। तिरस्कृत।

उपेक्ष्य—वि० [सं०] उपेक्षा के योग्य। दूर करने या त्यागने योग्य। घृणा के योग्य।

उपेखना(पु)—क्रि० स० [सं० उपेक्षण] उपेक्षा करना। अनादर करना। तिरस्कार करना।

उपेत—वि० [सं०] युक्त। सहित। उ०—राधा पद अंकिन विराजि रही मही महा, श्रीपति निवास हू तें दीपति उपेत है।—घनानंद, पृ० २७।

उपेय—वि० [सं०] उपायसाध्य। जो उपाय से सिद्ध हो। जिसके लिये उपाय करना उचित हो।

उपैना[1](पु)—वि०[देशी][स्त्री० उपैनी] खुला हुआ। नगा। आच्छादनरहित। उ०—जनु ता लगि तरवारि त्रिविक्रम, धरि करि कोप उपैनी।—सूर०, ६।११।

उपना[2]—क्रि० अ० [हिं०] उडना। लुप्त हो जाना। उ०—देखत दुरै कपूर ज्यों उपै जाइ जिन लाल। छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल।—बिहारी र०, दो० ८६।

उपोढ[1]—वि० [सं० उपोड] १ लाया हुआ। २ घनीभूत। दृढ। ३ एकत्र किया हुआ। एकत्रित। ४ व्यूह मे रचित। ५ आरंभ किया हुआ [को०]।

उपोढ[2]—संज्ञा पु० व्यूह [को०]।

उपोत—वि० [सं०] १ ढका हुआ। आच्छादित (कवच से) २. आवरण मे रखा हुआ [को०]।

उपोती—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका नाम का पौधा [को०]।

उपोदक[1]—वि० [सं०] पानी के पासवाला। जल का समीपवर्ती। जल के पास [को०]।

उपोदक[2]—संज्ञा पु० जल की निकटता। पानी का पडोस [को०]।

उपोदका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल के समीप होनेवाला पूतिका नाम का एक पौधा [को०]।

उपोदकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०]।

उपोदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०]।

उपोदीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०]।

उपोद्ग्रह—संज्ञा पु० [सं०] अंतर्दृष्टि। ज्ञान [को०]।

उपोद्घात—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी पुस्तक के आरंभ का वक्तव्य। प्रस्तावना। भूमिका। २. नव्य न्याय मे छह संगतियो मे से एक। सामान्य कथन से भिन्न निर्दिष्ट या विशेष वस्तु के विषय मे कथन।

उपोद्वलन—संज्ञा पु० [सं०] पुष्टि। समर्थन। ताईद [को०]।

उपोषण—संज्ञा पु० [सं०][वि० उपोषणीय,उपोषित, उपोष्य] उपवास। निराहार व्रत।

उपोषित[1]—वि० [सं०] १ उपवास किया हुआ। जिसने उपवास किया है। २ भूखा [को०]।

उपोषित[2]—संज्ञा पु० उपवास। व्रत। [को०]।

उपोसथ—संज्ञा स० [सं० उपवसथ, प्रा० उपोसथ] निराहार व्रत। उपवास।

विशेष—यह शब्द जैन और बौद्ध लोगो का है।

उप्पम—संज्ञा स्त्री० [देश०] मदरास प्रांत के तिनावली और कोयंबटूर जिलो में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की कपास।

उप्पर(पु)†—वि० [सं० उपर अथवा उपरि] दे० 'ऊपर'। उ०—दक्षिण उरु उप्परय प्रथम वामहि पग आनय।—सुदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ४२।

उफ—अव्य० [अ० उफ] आह। ओह। अफसोस।

यौ०—उफ ओह=विस्मयसूचक शब्द।

उपायी—वि० [सं० उपायिन्] १ उपाय करनेवाला। युक्ति रचनेवाला। २ पास जानेवाला (को०)। ३ सुरत के लिये पास जानेवाला (को०)।

उपायें(पु)†—क्रि० वि० [स० उपायेन]उपाय से। उ०—सो श्रम जाइ न कोटि उपायें।—मानस, १। ११।

उपारंभ—सज्ञा पुं० [स० उपारम्भ] आरंभ। शुरुआत [को०]।

उपार—सज्ञा पुं० [स०] १ निकटता। समीपता। २ भूल। ३ अपराध। ४ पाप [को०]।

उपारत—वि० [स०] १ प्रसन्न। खुश। २ लौटाया हुआ। ३ लगा हुआ। तल्लीन। ४ वार वार होनेवाला। ५ त्यक्त। अयुक्त [को०]।

उपारना(पु)—क्रि० स०[स० उत्पाटन, प्रा० उप्पाडण] दे० 'उपाटना'। उ०—(क) खाएसि फल अरु विटप उपारे।—मानस, ५।१८। (ख) सिआर का जओ सीग जनमए गिरि उपारव चाह।—विद्यापति, पृ० ३५०।

उपार्जक—वि० [स०] उपार्जन करनेवाला। कमानेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

उपार्जन—सज्ञा पुं० [स०][वि० उपार्जनीय, उपार्जित] कमाना। पैदा करना। लाभ करना। प्राप्त करना। उ०—आप कुछ उपार्जन किया ही नही, जो था वह नाश हो गया।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६५।

क्रि० प्र०— करना'—होना।

उपार्जना—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपार्जन' [को०]।

उपार्जनीय—वि० [स०] १ सग्रह करने योग्य। एकत्र करने लायक। २ प्राप्त करने योग्य।

उपार्जित—वि० [सं०] कमाया हुआ। प्राप्त किया हुआ। सगृहीत।

उपार्थ—वि० [स०] कम कीमत का। अल्प मूल्य का [को०]।

उपालभ—सज्ञा पुं० [स० उपालभ] [वि० उपालब्ध] ओलाहना। शिकायत। निंदा। उ०—यह उपालम आपको शोभा नही देता, करनेवाला सब दूसरा है।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० १८७।

उपालंभन—सज्ञा पुं० [स० उपालम्भन] [वि० उपालभनीय, उपालभित, उपालम्य, उपालब्ध] १ ओलाहना देना। २ निंदा करना। रक्षा के लिये जाना। बचाने के लिये जाना (को०)।

उपालि—सज्ञा पुं० [स०] गौतम बुद्ध के एक प्रधान शिष्य का नाम, जो पहले जाति का नाई था [को०]

उपाव(पु)†—सज्ञा पुं० [स० उपाय] दे० 'उपाय'। उ०—करत उपाय पूछत काहू, गुनत न खाटौ खारौ।—सूर० १।१५२

उपावणहार—वि०[स० उत्पादन, प्रा० उप्पावण + हिं० हार(प्रत्य०)] उत्पन्न करनेवाला। उ०—(क) अरे मेरा अमर पावणहार रे खालिक आसिक तेरा।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ६५। (ख) दादू सब जग मरि मरि जात है अमर उपावणहार।—दादू०, पृ० ३६५।

उपावर्तन—सज्ञा पुं० [स०] १ लौटना। २ चारो ओर चक्कर काटना। ३ पास आना। ४ रुक जाना। त्याग देना [को०]।

उपावृत्त—वि० [स०] १ लौटा हुआ। आया हुआ। २. विरत। ३. योग्य। उचित। ४. चक्कर खाया हुआ।

उपाव्याध—सज्ञा पुं० [स०] अरक्षित स्थान। वह स्थान जहाँ रक्षा का कोई उपाय या साधन न हो [को०]।

उपाशसनीय—वि० [स०] १ प्रतीक्षा के योग्य। २ अपेक्षा करने के योग्य [को०]।

उपाश्रय—सज्ञा पु० [स०] १ आश्रय। शरण। २ विश्रामस्थान। वह जगह जहाँ आराम किया जाय। ३ ग्राहक जन। ४ तकिया। मसनद [को०]।

उपाश्रित—वि० [स०] १ आश्रित। २ आधारित। आदृत। ३ परोक्षत आश्रित। ४ तकिया लगाया हुआ [को०]।

उपास(पु)†—सज्ञा पु० [स० उपवास] [वि० उपासा] खाना पीना छूटना। लघन। फाका। उ०—(क) बैठ सिंहासन गूँजै सिंह चरै नहिं घास। जब लग मिरग न पावै भोजन करै उपास। (शब्द०)। (ख) वहुत कुसुम मधुपान पिआसल जाएत तुअ उपासे।—विद्यापति, पृ० ४२६।

उपासक[1]—वि० [स०] [स्त्री० उपासिका] पूजा करनेवाला। आराधना करनेवाला। भक्त। सेवक।

उपासक[2]—सज्ञा पु० १ अनुचर। दास। सेवक। २ शूद्र। ३ भिक्षु। भिक्षु (बौद्ध)।

उपासकदशा—सज्ञा स्त्री० [स०] जैन धर्मग्रंथ के एक अंग का नाम [को०]।

उपासन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उपासी उपासित, उपासनीय, उपास्य] १ पास बैठना। २ सेवा मे उपस्थित रहना। सेवा करना। पूजा करना। आराधना करना। ३ अभ्यास के लिये बाण चलाना। तीरदाजी। शराभ्यास। ४ गार्हपत्य। अग्नि।

उपासना[1]—सज्ञा स्त्री० [स०] १. पास बैठने की क्रिया। २ सेवा। आराधना। पूजा। टहल। परिचर्या।

उपासना[2](पु)—क्रि० सं० [स०] उपासना करना। पूजा करना। सेवा करना। भजना। उ०—गौड देश पाखड मेटि कियो भजन परायन। करुनासिंधु कृतज्ञ भए अगतिन गति दायन। दशधा रस आक्रात महत जन चरण उपासे। नाम लेत निष्पाप दुरित तिहि नर के नासे।—प्रिया (शब्द०)।

उपासना[3]—क्रि० अ० [स० उपवास,(पु) उपास] १ उपवास करना। भूखा रहना। अन्न छोडना। २ निराहार व्रत रहना।

उपासनीय—वि० [स०] सेवा करने योग्य। आराधनीय। पूजनीय।

उपासा†[1]—वि० [हिं० उपास + आ (प्रत्य०)] उपवास या व्रत करनेवाला। भूखा।

उपासा[2]—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सेवा। टहल। २ भक्ति। पूजा। उपासना। ३ धार्मिक चिंतन [को०]।

उपासित—वि० [स०] १ जिसकी उपासना की गई हो। सेवित। पूजित। २ पूजा करनेवाला। उपासक [को०]।

उपासिता—वि० [स० उपासितृ] उपासक। आराधक। भजन पूजन करनेवाला [को०]।

उपासी—वि० [स० उपासिन] [वि० स्त्री० उपासिनी] उपासना करनेवाला। सेवक। भक्त। उ०—आनंदघन व्रजमडल मडन बड़संकेतउपासी।—घनानद, पृ० ४८५।

५ ्¹—वि० [स०] १ प्राप्त । उ०—इन्हें उपादि कहते हैं क्योंकि यह आलय से उपात्त है ।—सपूर्णा०, अभि० ग्र०, पृ० ३०१ । २. युक्तियुक्त (को०) । ३ अनुभूत (को०) । ४. समाविष्ट (को०) । ५ अतर्गत (को०) । ६. अतर्गणित (को०) । ७. प्रतिसंहृत (को०) । ८. वर्णित (को०) ।

त²—संज्ञा पुं० मदहीन हाथी [को०] ।

त्यय—संज्ञा पुं०[स०] १ प्रचलित रूढ़ि या परपरा का परित्याग । २ अशिष्टता । अभद्र आचरण [को०] ।

दान—संज्ञा पु० [स०] [वि० उपादेय] १ प्राप्ति । ग्रहण । स्वीकार । २ ज्ञान । परिचय । वोध । ३ अपने अपने विपयो से इद्रियो की निवृत्ति । ४. वह कारण जो स्वय कार्य रूप मे परिणत हो जाय । सामग्री जिससे कोई वस्तु तैयार हो । जैसे, घडे का उपादान कारण मिट्टी है । वैशेपिक मे इसी को समवायिकरण कहते हैं । साख्य के मत से उपादान और कार्य एक ही है । ५ साख्य की चार आध्यात्मिक तुष्टियो मे से एक, जिसमे मनुष्य एक ही वात से पूरे फल की आशा करके और प्रयत्न छोड देता है । जैसे, सन्यास लेने से ही विवेक हो जायगा, यह समझकर कोई सन्यास ही लेकर संतोप कर ले और विवेकप्राप्ति के लिये और यत्न न करे ।

उपादि—सज्ञा स्त्री० [स० उपाधि] दे० 'उपाधि' ।

उपादेय वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य । अगीकार करने योग्य । लेने योग्य । २ उत्तम । श्रेष्ठ । अच्छा ।

उपाधि—संज्ञा स्त्री० [स०] १ और वस्तु को और वतलाने का छल । कपट । २ वह जिसके सयोग से कोई वस्तु और की और अथवा किसी विशेप रूप मे दिखाई दे । जैसे, आकाश अपरिमित और निराकार पदार्थ है, पर घडे और कोठरी के भीतर परिमित और जुदा जुदा रूपों मे जान पड़ता है ।

विशेप—साख्य मे वुद्धि की उपाधि से ब्रह्म कर्ता देख पडता है । वास्तव मे है नही । इसी प्रकार वेदात में माया के संवध और असवंध से ब्रह्म के दो भेद माने गए हैं—सोपाधि ब्रह्म (जीव) और निरुपाधि ब्रह्म ।

३. उपद्रव । उत्पात । ४. कर्तव्य का विचार । धर्मचिंता । ५. प्रतिष्ठासूचक पद । खिताव ।

उपाधी—वि० [सं० उपाधि (लाक्ष०)][वि० स्त्री० उपाधिन] उपद्रवी। उत्पात करनेवाला ।—जो तू लंगर ढीठ उपाधी ऊधम रूप भयो ।—भारतेंदु ग्र ०, भा० २, पृ० ३७६ ।

उपाध्या—संज्ञा पु० [स० उपाध्याय] दे० 'उपाध्याय' ।

उपाध्याय—सज्ञा पुं० [स०][स्त्री० उपाध्याया, उपाध्यायानी, उपाध्यायी] १ वेद वेदाग का पढ़ानेवाला । २ अध्यापक । शिक्षक । गुरु । ३ ब्राह्मणों का एक भेद ।

उपाध्याया—सज्ञा स्त्री० [सं०] अध्यापिका । पढ़ानेवाली ।

उपाध्यायानी—सज्ञा स्त्री० [स०] उपाध्याय की स्त्री । गुरुपत्नी ।

उपाध्यायी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपाध्याय की स्त्री । गुरुपत्नी । २ अध्यापिका । पढानेवाली स्त्री ।

उपाध्व—सज्ञा पु० [स० उपाध्वन्] खेतों मे जानेवाली पगडंडी । डाँड़ । मेड़ [को०] ।

उपाध्वा—सज्ञा पु० [सं० उपाध्वन्] दे० 'उपाध्व' [को०] ।

उपान—सज्ञा स्त्री० [प्रा० उप्पयण=ऊँचा जाना या ऊपर जाना अथवा हिं० ऊपर+आन (प्रत्य०)] १ इमारत की कुर्सी । २. खभे के नीचे की वह चौकी जिसपर खंभा वैठाया जाता है । पदस्तल ।

उपानत्—सज्ञा पुं० [सं०] १. जूता । पनहीं । २ खडाऊँ ।

उपानत—संज्ञा पुं० [सं० उपानत्] दे० 'उपानत्' । उ०—(क) विरचि उपानत वेचत करई । आधो धन सतन कहे, भरई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) लघु लघु लसत उपानत लघु पद लघु धनुही कर माहीं ।—रघुराज (शब्द०) ।

उपानद—सज्ञा पु० [स०] हिंडोल राग का पुत्र या भेद ।

उपानना(पु)—क्रि० स० [हिं०] उत्पन्न करना । पैदा करना ।

उपानह—संज्ञा पु० [स० उपानह] जूता । पनही । उ०—धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानह को नही सामा ।—इतिहास, पृ० २०० ।

उपाना(पु)— क्रि० अ० [स० उत्पादन, पा० उत्पादन, प्रा० उप्पायण] १. उत्पन्न करना । पैदा करना । उ०—(क) जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध वनाई सग सहाय न दूजा ।—मानस, १।१८६ । (ख) अमृत की आपगा उपाई करतार है ।—श्यामा०, पृ० २९ । २ करना । सपादन करना । उ०—(क) तवहिं स्याम इक युक्ति उपाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) धर्मपुत्र जब जज्ञ उपायौ, द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौं ।—सूर (शब्द०) ।

उपानी—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्पन्न, प्रा० उप्पण, उत्पन्न[उत्पत्ति । सृष्टि । उ०—चलसी चद सूर पुनि चलसी, चलसी सर्वे उपानी । —दादू०, पृ० ५७२ ।

उपाप्ति—संज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राप्ति । २ पहुँच [को०] ।

उपावर्न्य(पु)—सज्ञा पु० [सं० उपवर्ण्य] दे० 'उपवर्ण्य' उ०—जहाँ अनादर आन को उपावर्न्य उपमेय । वरनत तहाँ प्रतीप है कोऊ सुकवि अजेय ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३७३ ।

उपाय—संज्ञा पु० [स०] [वि० उपायी, उपेय] १ पास पहुँचना । निकट आना । २ वह जिससे अभीष्ट तक पहुँचे । साधन । युक्ति तदवीर । ३ राजनीति मे शत्रु पर विजय पाने की युक्ति । ये चार हैं, साम (मैत्री), भेद (फूट डालना), दड (आक्रमण) और दान (कुछ देकर राजी करना) । ४ शृ गार के दो साधन साम और दान ।

उपायन—संज्ञा पु० [स०] १ भेंट । उपहार । नजराना । सौगात । २. पास आना (को०) । गुरु के पास जाना । शिष्य होना (को०) । ४. आरभ (को०) । ५. अध्यवसाय (को०) । ६. प्रवृत्ति (को०) ।

उपायिक—वि० [स०] १ उन्नति करनेवाला । २ वढाने या वृद्धि करनेवाला [को०] ।

उपहृत—वि० [सं०] १ भेंट किया हुआ। २ पास लाया हुआ। ३ परसा हुआ। ४ बलि दिया हुआ [को०]।

उपह्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ एकांत या निर्जन स्थान। २ पास। अंतिक। ३ समीपता। ४ सोमपात्र का टेढ़ा आकार। ५ रथ [को०]।

उपह्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुकारना। २ निमंत्रित करना। ३ नाम लेकर पुकारना। अनिमंत्रित करना [को०]।

उपांग—संज्ञा पुं० [सं० उपाङ्ग] १ अंग का भाग। अवयव। २ वह वस्तु जिससे किसी वस्तु के अंगों की पूर्ति हो। जैसे, वेद के उपांग, जो चार हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। ३ तिलक। टीका। ४ प्राचीन काल का एक बाजा जो चमड़ा मढ़कर बनाया जाता था।

उपांगगीत—संज्ञा पुं० [सं० उपाङ्गगीत] एक प्रकार का गीत [को०]।

उपांगललिता—संज्ञा स्त्री० [सं० उपाङ्गललिता] एक देवी जिनका व्रत आश्विन मास की शुक्ला पंचमी को रखा जाता है [को०]।

उपांजन—संज्ञा पुं० [सं० उपाञ्जन] १ गोबर से धरती को लीपना। २ चूने से सफेदी करना।

उपांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० उपान्त] [वि० उपांत्य] १ अंत के समीप का भाग। २ प्रांत भाग। आसपास का हिस्सा। ३ छोर। किनारा।

उपांत[2]—वि० अंतिम के पासवाला। अंतवाले से एक पहला [को०]।

उपांतिक[1]—वि० [सं० उपान्तिक] पासवाला। समीपवर्ती। पड़ोसी [को०]।

उपांतिक[2]—संज्ञा पुं० निकटता। समीपता। संनिधान। अंतरहीनता [को०]।

उपांतिम—वि० [सं० उपान्तिम] अंतवाले के समीपवाला। उपांत्य। उ०—'ज्ञानस्वरोदय' उनकी उपांतिम रचना थी।—सं० दरिया, पृ० ४१।

उपांत्य[1]—वि० [सं० उपान्त्य] १ अंतवाले के समीपवाला। अंतिम से पहले का।

उपांत्य[2]—संज्ञा पुं० १ आँख का कोना। २ समीपता [को०]।

उपांशु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ मंद स्वर में मंत्र का जप। २ मौन। ३ सोमरस के उपहार का नाम [को०]।

उपांशु[2]—क्रि० वि० १ मंद स्वर में। धीरे धीरे। २ व्यक्तिगत रूप में। रहस्यात्मक ढंग से [को०]।

उपांशुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] मौनता [को०]।

उपाइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपाय] दे० 'उपाय' उ०—(क) तौ सब दरसी सुनिय प्रभु करौ सो बेगि उपाइ।—मानस, १५९। (ख) श्रीमद करि जु अंध ह्वै जाइ। दारिद अंजन बढ़ौ उपाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५२।

उपाउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपाय] दे० 'उपाय'। उ०—रूँधहु करि उपाउ बर बारी।—मानस, २।१७।

उपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ योजना। उपक्रम। तैयारी। अनुष्ठान। २ यज्ञ में वेद पाठ। ३ यज्ञ के पशु का एक संस्कार। ४ कार्य आरंभ करने के लिये निमंत्रण या बुलावा (को०)।

उपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कारपूर्वक वेद का ग्रहण। वेदपाठ का आरंभ।

विशेष—यह वैदिक कर्म समस्त औषधियों के जम जाने पर श्रावण मास की पूर्णिमा को, या श्रवण नक्षत्र-युक्त दिन को या हस्त-नक्षत्र-युक्त पंचमी को गृह्यसूत्र में कही विधि से किया जाता है। उत्सर्ग का उलटा।

२ वेदाध्ययन आरंभ करने के पहले किया जानेवाला वैदिक कर्म

उपाकृत[1]—वि० [सं०] १ पास लाया हुआ। २ बुलाया हुआ। वेद मंत्रों के उच्चारण द्वारा निमंत्रित। ३ यज्ञ में हुत (बलि पशु)। ४ अमंगलजनक। ५ मंत्रों द्वारा पवित्र किया हुआ। ६ प्रस्तुत या तैयार किया हुआ [को०]।

उपाकृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ का बलिपशु, जो विहित प्रार्थना पाठ के समय मारा जाता है। २ दुर्दैव। अमंगल। ३ आरंभ। ४ यज्ञपशु का विहित संस्कार ५ निमंत्रण। आह्वान। बुलावा [को०]।

उपाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुरानी कथा। पुराना वृत्तांत। २ किसी कथा के अंतर्गत कोई और कथा। ३ वृत्तांत। हाल। ४ दूसरे से सुनी गई कथा या आख्यायिका को कहना (को०)।

उपाख्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपाख्यान' [को०]।

उपागत—वि [सं०] १ आया हुआ। २ घटित। लौटा हुआ। ४ प्रतिज्ञा किया हुआ। ५ अनुभूत। ६ सहा हुआ [को०]।

उपागम—संज्ञा पुं० [सं०] १ आगमन। आना। २ घटना। ३ प्रतिज्ञा। ४ समझौता। वचन बद्धता। ५ स्वीकृति। ६. पीड़ा। कष्ट। ७ अनुभूति [को०]।

उपाग्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुचित ढंग से विवाहित पत्नी [को०]।

उपाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंतिम के पासवाला भाग। २ गौण या अनुमुख्य सदस्य या व्यक्ति [को०]।

उपाग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपाकर्म'।

उपाटना(पु)—क्रि० स० [सं० उत्पाटन, प्रा० उप्पाडण] उखाड़ना। उ०—लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी, रघुकुल तिलक भुजा सोइ काटी।—मानस, ६।६७।

उपाड़†—संज्ञा पुं० [प्रा० उपाड, हिं० उपड़ना=उभरना] किसी तीव्र औषध आदि के कारण शरीर की खाल का उड़ने लगना।

मुहा०—उपाड़ करना=किसी दवा का शरीर पर छाले डालना या वहाँ की खाल उड़ाना।

उपाड़ना—क्रि० स० [सं० उत्पाटन, प्रा० उप्पाडण] दे० 'उपाटना'। उ०—(क) जोवण छत्र उपाडियउ राज न बइसऊ काइ।—ढोला० दू० २७। (ख) सो पिंजरे म ते काड उपाड उसके पर।—दक्खिनी०, पृ० ८८।

उपाती—संज्ञा स्त्री० [उत्पत्ति, प्रा० उप्पत्ति] उत्पत्ति। पैदाइश। उ०—सुन्नहि तें है सुन्न उपाती। सुन्नहि तें उपजेंहिबहु भाँती।—जायसी (शब्द०)।

उपस्नेहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गीलापन । आर्द्रता [को०] ।

उपस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ छूना । २ मेल । संपर्क । ३ स्नान । ४ आचमन [को०] ।

उपस्पर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपस्पर्श' [को०] ।

उपस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे या गौण स्मृतिग्रंथ । ये संख्या में अठारह हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) व्यास स्मृति, (२) सनत्कुमार स्मृति, (३) कश्यप स्मृति, (४) स्कंद स्मृति, (५) जावालि स्मृति, (६) कात्यायन स्मृति, (७) कपिंजल स्मृति, (८) जनक स्मृति, (९) नाचिकेत स्मृति, (१०) व्याघ्र स्मृति (११) जातूकर्ण्य स्मृति, (१२) शतजुं स्मृति, (१३) लौगाक्षि स्मृति, (१४) विश्वामित्र स्मृति, (१५) कणाद स्मृति, (१६) बौधायन स्मृति, आदि [को०] ।

उपस्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्री का मासिक स्राव । २ प्रवाह । धारा [को०] ।

उपस्वत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ जमीन या किसी जायदाद की पैदावार या आमदनी का हक । २. मालगुजारी [को०] ।

उपस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पसीना । २ नमी । आर्द्रता । ३. ऊष्मा । गर्मी [को०]

उपहंता—वि० [सं० उपहन्तृ] १ विपरीत प्रभाववाला । बाधक । २ आवेश में लानेवाला । ३ नष्ट करनेवाला (को०) ।

उपहत—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ । बरबाद किया हुआ । २ विगाडा हुआ । दूषित । ३ पीडित । संकट में पडा हुआ । ४ किसी अपवित्र वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध । ५ वज्रपात से आहत (को०) । ६ अनादृत । तिरस्कृत (को०) ।

उपहतक—वि० [सं०] अभागा । भाग्यहीन (को०) ।

उपहतात्मा—वि० [सं० उपहत+आत्मन्] विकृत मस्तिष्कवाला । जिसका दिमाग ठीक न हो [को०] ।

उपहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रहार । आघात । चोट । २ हत्या । वध (को०) ।

उपहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँखों की चकाचौंध । २ आखों द्वारा व्यक्त विकारी प्रेम [को०] ।

उपहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ लाना । उठाकर लाना । २ पकडना । ग्रहण करना । ३ देवता अथवा सामान्य व्यक्ति को भेंट या नजर देना । ४ शिकार की भेंट करना । ५ भोजन या खाद्य पदार्थ परोसना [को०] ।

उपह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ निमंत्रण । बुलाना । २ सूचना देना । ३ प्रार्थना करना [को०] ।

उपहसित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ हास के छह भेदों में से चौथा । नाक फुलाकर आँखें टेढी करते और गर्दन हिलाते हुए हँसना । २ व्यंग्य से भरा हास । उपहास (को०) ।

उपहसित[2]—वि० जिसका उपहास किया गया हो [को०] ।

उपहस्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पान रखने का डब्बा । पानदान । पनडब्बा । २. बटुआ [को०]।

उपहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । नजर । नजराना । उ०—(क) घरि घरि सुंदर वेष चले हरषित हिए । चँवर चीर उपहार हार मनि गन लिए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) आए गोप भेंट लै लै कै भूषण बसन सोहाए । नाना विधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाए ।—(शब्द०) । (ग) दीह दीह दिग्गजन के केशव मनहु कुमार । दीन्हे राजा दशरथहि दिग्पालन उपहार । -केशव (शब्द०) । २ शैवों की उपासना के नियम जो छह हैं—हसित, गीत, नृत्य हुडुक्कार, नमस्कार और जप ।

उपहारक —संज्ञा पुं० [सं०] १. वलि । देवता का उपहार । नैवेद्य । २ भेंट । नजर [को०] ।

उपहारसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० उपहारसंधि] वह संधि जिसमें संधि करने के पूर्व एक पक्ष को दूसरे को कुछ उपहार में देना पडे । (कामंद०) ।

उपाहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपहारक' [को०] ।

उपहारी—वि० [सं० उपहारिन्] १ भेंट देनेवाला । २ लानेवाला । ३ वलि देनेवाला [को०] ।

उपहार्य —संज्ञा पुं० [सं०] भेंट । नजर [को०] ।

उपहालक—संज्ञा पुं० [सं०] कुंतल देश का प्राचीन नाम [को०] ।

उपहास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपहास्य] हँसी ठट्ठा । दिल्लगी । २ निंदा । बुराई । उ०—पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास ।— मानस, १ । ८ ।
यौ०—उपहासजनक । उपहासार्ह ।

उपहासक[1]— वि० [सं०] दूसरों का उपहास करनेवाला । दिल्लगीबाज । मजाकिया [को०] ।

उपहासक[2]—संज्ञा पुं० १ विदूषक । २ भड । भाँड । ३ नट [को०] ।

उपहासास्पद—वि० [सं०] १ उपहास के योग्य । हँसी उडाने के लायक । २ निंदनीय ।

उपहासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उपहास] हँसी । ठट्ठा । निंदा उ०—सब नृप भए जोग उपहासी ।—मानस, १ । २५१ ।

उपहास्य—वि० [सं०] उपहास के योग्य । हँसी का पात्र । जिसकी मूढता की हँसी उडाई जा सके [को०] ।

उपहास्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हँसी उडाई जाने की पात्रता या योग्यता । उपहास भाजनता [को०] ।

उपहित—वि० [सं०] १ ऊपर रखा हुआ । स्थापित । २ धारण किया हुआ । ३ समीप लाया हुआ । हवाले किया हुआ । दिया हुआ । ४ सम्मिलित । मिला हुआ । ५ उपाधियुक्त । ६ कुछ लाभकारी [को०] ।

उपहिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊपर रखना । २. आत्मसमर्पण [को०] ।

उपही(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्+पथिन्, प्रा० उप्पहि = ऊपर जानेवाले] अपरिचित व्यक्ति । बाहरी या विदेशी आदमी । बायवी । अजनवी । उ०—(क) ये उपही कोउ कुँअर अहेरी । स्याम गौर धनुवान तूनधर चित्रकूट अब आय रहे री ।—तुलसी ग्रं० पृ० ३६४ । (ख) जानि पहिचानि बिनु आपु तें आपुने हुं प्रानहु तें प्यारे प्रियतम उपही ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४२ ।

उपहूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमंत्रण । आह्वान । पुकारना । २ लड़ने के लिये ललकार या चुनौती [को०] ।

उपस्कर– संज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करना। चोट पहुँचाना। २ दाल या तरकारी मे डालने का मसाला। ३ घर का सामान या सजावट की सामग्री। ४ वस्त्राभूषणादि। ५ जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थ। रसद या सामान (को०)।

उपस्करण– संज्ञा पुं० [सं०] १ सजाना। शृंगार करना। २. निंदा। ३ विकार। ४ ढेर। समूह। ५. वध करना। आघात पहुँचाना [को०]।

उपस्कार– संज्ञा पुं० [सं०] १ पूरक। किसी वस्तु मे कुछ और जोड देना। २ अध्याहार। व्यंजना। ३ शृंगार करना। सजावट। ४ आभूषण। ५ आघात। प्रहार। ३ संग्रह। समूह। ढेर। ७ उपस्कर [को०]।

उपस्कृत—वि० [सं०] १ प्रस्तुत। तैयार। २ निंदित। लांछित। ३ मारा हुआ। हत। ४ एकत्र किया हुआ। संगृहीत। ५ सज्जित। शृंगारित। ६ अध्याहृत। पूरित [को०]।

उपस्कृति – संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूर्ति। २ सजावट [को०]।

उपस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० उपस्तम्भ] सहारा। अवलंबन। २ जीवन का आश्रय (भोजन, निद्रा आदि) ३ प्रोत्साहन। उत्साह बढाना ४ आश्रय। आधार [को०]।

उपस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० उपस्तम्भन] दे० 'उपस्तंभ' [को०]।

उपस्तब्ध—वि० [सं०] १ जिसे सहारा दिया गया हो। आश्रित। २ रोका हुआ [को०]।

उपस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बिखेरना। छितराना। २ विस्तर। ३. फैली हुई वस्तु। ४ (यज्ञ की अग्नि के चारो ओर) घास फैलाना [को०]।

उपस्तीर्ण—वि० [सं०] फैला हुआ। बिखरा हुआ [को०]।

उपस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपपत्नी। रखेली। बिना व्याह के पत्नी के समान रख ली जानेवाली स्त्री [को०]।

उपस्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे या मध्य का भाग। २ पेड़। ३ पुरुषचिह्न। लिंग। ३. स्त्रीचिह्न। भग।
यौ०—उपस्थेंद्रिय।
५ गोद। क्रोड।

उपस्थ[2]—वि० निकट बैठा हुआ।

उपस्थदल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष [को०]।
विशेष—इस वृक्ष का नाम 'उपस्थदल' इसलिये पड़ा क्योंकि इसके पत्ते स्त्री जाननेंद्रिय के आकार के होते हैं।

उपस्थनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रियदमन। कामवासना पर अधिकार रखना [को०]।

उपस्थपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपस्थदल' [को०]।

उपस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १ नितंब। चूतड़। २ कूल्हा। ३ पेड़।

उपस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूल्हा। कटि। २. नितंब ३ पेड़।

उपस्थाता[1]—संज्ञा पुं० [सं० उपस्थातृ] १ अनुचर। दास। सेवक। २ यज्ञपुरोहित। ऋत्विक् [को०]।

उपस्थाता[2]—वि० १ आश्रित। उपनत। समय का पालन करनेवाला। ठीक समय पर आनेवाला [को०]।

उपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपस्थानीय, उपस्थित] १ निकट आना। सामने आना। २. अभ्यर्थना या पूजा के लिये निकट आना। ३ खड़े होकर स्तुति करना। खड़े होकर पूजा करना। उ०—दै दिनकर को अर्घ्य मंत्र पढि उपस्थान पुनि कीन्हें। गायत्री को जपन लगे पुनि ब्रह्म बीज मन दीन्हें।—रघुराज (शब्द०)।
विशेष—इस प्रकार का विधान प्राय सूर्य ही की पूजा मे है।
४. पूजा का स्थान। कोई पवित्र स्थान। ५ सभा। समाज। ६ प्रस्तुत राज्यकर इकट्ठा करना और पुराना बाकी वसूल करना। ७ अखाड़ा। मल्लशाला (को०)। ८ स्मृति। याददाश्त (को०)। ९ प्राप्ति (को०)। १० स्वीकृति। समझौता करना (प्रेमी की भांति) (को०)।

उपस्थानशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध धर्मानुसार प्रार्थनाभवन। विहार का प्रार्थनाकक्ष [को०]।

उपस्थापक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो विषय को विचार और स्वीकृति के लिये किसी सभा मे उपस्थित करता हो। २ स्मृति को जगानेवाला। ३ व्याख्याता। पढानेवाला। सिखानेवाला [को०]।

उपस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] पास रखना। २ तैयार करना। प्रस्तुत करना। ३ स्मृति का जागरण। याद आना। ४ सेवा [को०]।

उपस्थापना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीक्षित करना। (जैन मत के क्षपणक के रूप मे) [को०]।

उपस्थायक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दास। नौकर। २ बौद्ध धर्म को माननेवाला।

उपस्थायी—वि० [सं० उपस्थायिन्] १ पास खड़ा हुआ। २ प्रतीक्षा करनेवाला। ३ पास आनेवाला [को०]।

उपस्थित[1]—वि० [सं०] १ समीप बैठा हुआ। सामने या पास आया हुआ। विद्यमान। मौजूद। हाजिर।
क्रि० प्र०—करना=(१) हाजिर करना। सामने लाना। (२) पेश करना। दायर करना, जैसे,—अभियोग उपस्थित करना। होना=(१) आ पड़ना। जैसे,—बड़ा संकट उपस्थित हुआ। (२) ध्यान मे लाया हुआ। स्मरण किया हुआ। याद। जैसे—हमे वह सूत्र उपस्थित नही है।

उपस्थित[2]—संज्ञा पुं० १. द्वारपाल। दरबान। २ सेवा। ३ प्रार्थना। ४ आसनविशेष [को०]।

उपस्थिता—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम। इस वृत्त के प्रत्येक चरण मे एक तगण, जो जगण और अंत मे एक गुरु होता है। त, ज, ज, ग=ऽऽ।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽ। उ०—तीजी जग पावन कंस को। दं मुक्ति पठावत धाम को। बाकी लखि रानि उपस्थिता। दै ज्ञान करी सुख साजिता।—छंद० पृ० १५१।

उपस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्यमानता। मौजूदगी। हाजिरी। २ प्राप्ति। ३. पूर्ति। ४. स्मृति। स्मरण शक्ति। सेवा। ६ समीपता। निकटता [को०]।

उपस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] गीला करना। आर्द्र करना [को०]।

उपसंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौण संबंध। २. रूपांतरण। रूप में परिवर्तन या सुधार कर देना [को०]।

उपसरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ साथ साथ बढ़ना। सहवर्धन। २ शोषण। सोखना [को०]।

उपसवाद—संज्ञा पुं० [सं०] समझौता। ऐकमत्य [को०]।

उपसवीत—वि० [सं] १. ढका हुआ। २ लपेटा हुआ। [को०]।

उपसव्यान—संज्ञा पुं० [सं०] भीतरी पहनावा। अतर्वस्त्र [को०]।

उपसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रमुख संस्कारों के अतिरिक्त किए जानेवाले गौण संस्कार। २ सज्जित करना। सजाना ३ पवित्र करना [को०]।

उपसस्कृत—वि० [सं०] १. प्रस्तुत। तैयार। २. सज्जित। सजा हुआ। ३ भरा हुआ [को०]।

उपसहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे हटाना। २ अस्वीकार करना। नामजूर करना। ३. अलग करना। ४ आक्रमण करना। चढ़ाई करना [को०]।

उपसंहार—संज्ञा पुं० [सं०] १ हरण। परिहार २ समाप्ति। खातमा। जैसे—गुरु जी, कृपाकर हमारे भ्रम का उपसहार कीजिए। ३. किसी पुस्तक का अतिम प्रकरण। किसी पुस्तक के अत का अध्याय जिसमे उसका उद्देश सक्षेप में बतलाया गया हो। ४ साराश। निचोड़। ५ किसी दाँवपेंच या हथियार की रोक। महार। ६ किसी पुस्तक या लेख का अतिम अश (को०)। ७. विनाश। ध्वस। नाश (को०)। ८ समाप्ति। अत (को०)।

उपसहारी[१]—वि० [सं० उपसहारिन्] १ उपसहार करनेवाला। २. ग्रहण किया हुआ। ३ समझा हुआ। ४. पृथक किया हुआ [को०]।

उपसहारी[२]—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय शास्त्र के अनुसार एक हेतु।

उपसहित—वि० [सं०] १. मिला हुआ। सयुक्त। २ संबद्ध ३ घिरा हुआ [को०]।

उपसंहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समझ। बुद्धि। फहम। २ ग्रहण। ३ अत। परिपूर्णता। ४ निवृत्ति [को०]।

उपसा—संज्ञा स्त्री० [सं०अप+वास=महँक] दुर्गंध। बदबू।

उपसक्त—वि० [सं० उप+सक्त] १. लगा हुआ। सलग्न। २ आसक्त [को०]।

उपसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सबंध। मेल। २. सेवा। ३ पूजा। ४ पारितोषिक। भेंट। ५ सूचना [को०]।

उपसना—क्रि० स० [हिं० उपस+ना (प्रत्य०)] १ दुर्गंधित होना। २ सड़ना।

उपसम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपशम] दे० 'उपशम'। उ०—नेह न देह गेह सन कबहूँ। उपसम चिंतन समता सबहूँ।—नद० ग्र०, पृ० २१२।

उपसयना(पु)—क्रि० अ० [सं० अप+√सर् या उप+सद् हिं०] हटना। गायब होना। उ०—बहुरि न जानौं दहुँ का भई, दहुँ कविलास कि कहुँ उपसई।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५७।

उपसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. (गाय की तरह) जाना। गाय के पास साँड का गर्भ धारण कराने के लिये जाना। २ गाय का पहली बार गर्भ धारण करना [को०]।

उपसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के पास या किसी की तरफ। जाना। २ वह जिसके पास शरण पाने या रक्षा करने के लिये जाया जाय। ३ (बीमारी की हालत रक्त में) का हृदय की ओर तेजी से बहना [को०]।

उपसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह शब्द या अव्यय जो केवल किसी शब्द के पहले लगता है और उसमे किसी अर्थ की विशेषता ला देता है। जैसे अनु, अव, अप, उद् इत्यादि। २ अशकुन। ३ उपद्रव। दैवी उत्पात। ४ योगियों के योग मे होनेवाला विघ्न, जो पाँच प्रकार का कहा गया है—प्रतिभ, श्रावण, देव, भ्रम और आवर्तक। (मार्कंडेय पुराण०)। ५ ग्रहण (को०)। ६. मृत्यु का लक्षण (को०)। ७ भूत प्रेत आदि दुष्ट आत्माओं का आधिकार (को०)। ८ दुख। व्यथा (को०)।

उपसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ढालना। २. दैवी उत्पात। उपद्रव। ३. अप्रधान वस्तु। गौण वस्तु। ४. त्याग।

उपसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १ पास जाना। आगे बढ़ना [को०]।

उपसवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अप+सादन या उप+√सुव्] हट जाना। दूर चला जाना। उ०- पवन बाँधि उपसवहिं अकासाँ। मनसहिं जहाँ जाहिं तेहि पासाँ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८।

उपसागर—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा समुद्र का एक भाग। खाड़ी।

उपसादन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आदर। श्रद्धा। २ आदरपूर्वक पास जाना। ३ जिम्मेदारी लेना। भार ग्रहण करना।

उपसाना—क्रि० स० [हिं० उपसना] बासी करना। सड़ाना।

उपसिक्त—वि० [सं०] सींचा हुआ। भींगा हुआ। आर्द्र [को०]।

उपसीर—संज्ञा पुं० [सं०] खेत जोतने का हल [को०]।

उपसुंद—संज्ञा पुं० [सं०उपसुन्द] सुंद नामक दैत्य का छोटा भाई और निकुंभ दैत्य का पुत्र [को०]।

उपसूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धाय। धाई। धात्री [को०]।

उपसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का भौंरा। २ जुगनू। ३. सूर्यमडल [को०]।

उपसृष्ट—वि० [सं०] १. लिया हुआ। प्राप्त २. प्रेत, भूत आदि दुष्ट आत्माओं द्वारा पराभूत या अधिकृत। ३ ग्रहण किया हुआ। ग्रस्त [को०]।

उपसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सींचना। २ छिड़काव। छिड़कना। ३ रस। जूस [को०]।

उपसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सींचना या भिगोना। पानी छिड़कना। २. गीली चीज। रसा। ३ वह गीली चीज जिससे रोटी या भात खाया जाय। जैसे, दाल, कढ़ी, सालन इत्यादि।

उपसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूजा करना। पूजन। २ सेवा करना। ३. व्यवहार मे लाना। आनद लेना ४ अनुभव करना [को०]।

उपसेवी—वि० [सं० उपसेविन्] १ अभ्यास करनेवाला। २. सेवा करनेवाला [को०]।

उपशायक—वि० [सं०] क्रमानुसार सोनेवाला। अपनी बारी आने पर सोनेवाला [को०]

उपशायी— वि० [सं० उपशायिन्] दे० 'उपशायक [को०]।

उपशाल—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का चौपाल जहाँ बैठकर पचायत होती थी या गाँव भर के लोग उत्सव आदि मनाते थे। आए हुए साधु सन्यासी इसी मे बैठकर उपदेश देते तथा व्यास लोग कथा सुनाते थे [को०]।

उपशिंघन—संज्ञा पुं० [सं० उपशिङ्घन] १ सूँघना। १ सूँघने की वस्तु [को०]।

उपशिंघन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपशिंघन' [को०]।

उपशिक्षक--संज्ञा पुं० [सं०] सहायक अध्यापक। नायब मुदर्रिस [को०]।

उपशिष्य--संज्ञा पुं० [सं०] शिष्य का शिष्य। चेले का चेला।

उपशीर्षक--संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिसमे सिर मे छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं। चाईचूई। २ एक विशेष प्रकार का मोतियों का हार, जिसके बीच में समान आकार के पाँच बड़े मोती गुथे होते हैं (को०)। मुख्य या प्रधान शीर्षक के अंतर्गत आनेवाले छोटे शीर्षक (को०)।

उपशोभन--संज्ञा पुं० [सं०] सज्जित या अलकृत करना। सजाना [को०]।

उपशोभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अलकरण। साज सज्जा। सजावट [को०]।

उपशोभिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपशोभा' [को०]।

उपशोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुखाना। २ सूखना [को०]।

उपशोषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपशोषण' [को०]।

उपश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर से ढँक लेनेवाली कोई वस्तु [को०]।

उपश्रुत—वि० [सं०] १ सुना हुआ। २ प्रतिज्ञा किया हुआ। प्रतिज्ञात। राजी [को०]।

उपश्रुति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुनना। २ श्रवण सीमा जहाँ तक सुना जा सके। ३ स्वीकृति। ४ रात मे सुनी जानेवाली दिव्य वाणी जिसे देवता द्वारा भविष्यकथन करना कहा जाता है। ५ भविष्यकथन। ६ प्रतिज्ञा। वाग्दान। ७. अफवाह। लोकचर्चा। जनरव। ८ अतर्भाव। ९ एक देवी का नाम [को०]।

उपश्रोता—वि० [सं० उपश्रोतृ] सुननेवाला। श्रोता। पास से सुनने वाला [को०]।

उपश्लाघा--संज्ञा स्त्री० [सं०] शेखी। डीग। बढ़ चढकर बातें करना। अभिमान [को०]।

उपश्लिष्ट— वि० [सं०] १ पास रखा हुआ। २ मिला हुआ। ३ समीववर्ती [को०]।

उपश्लेष— संज्ञा पुं० [सं०] १ सपर्क। २ आलिंगन [को०]।

उपश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपश्लेष' [को०]।

उपश्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] दशम मनु ब्रह्मसावर्णि के पिता का नाम [को०]।

उपसक्रात—वि० [सं० उपसङ्क्रान्त] दूसरी ओर घूमा या मुड़ा हुआ [को०]।

उपसख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ योग। २ योग जो पूरक का काम करे।

विशेष—वार्तिककार कात्यायन के वार्तिकों पर प्रयुक्त एक पारिभाषिक शब्द 'उपसख्यान' है। इन वार्तिकों क रचना पाणिनी के सूत्रो मे न आनेवाले नियमो या विधियो के विधान के लिये हुई है। ये उन सूत्रों के आगे जोड दिए गए हैं, जिनमे शब्दसिद्धि के नियमो का अभाव है।

उपसग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रसन्न रखना। २ रक्षा करना। ३. एकत्र करना। ४ प्रणतिपूर्वक नमस्कार। चरण छूकर नमस्कार करना। ५ विनम्रता के साथ भाषण। ६ स्वीकार करना (पत्नी के रूप मे)। ७ तकिया। उपधान [को०]।

उपसगत—वि० [सं० उपसङ्गत] १ मिला हुआ। संमिलित। २ सयुक्त (मैथुन क्रिया के लिये) [को०]।

उपसगमन—संज्ञा पुं० [उपसङ्गमन] १ एकत्र होना। सामूहिक रूप मे इकट्ठा होना। २ सभोग। रतिक्रिया [को०]।

उपसगृहीत—वि० [सं० उपसङ्गृहीत] १ सग्रह किया हुआ। २ अधिकृत। अधिकार मे लाया हुआ [को०]।

उपसघात—संज्ञा पुं०[सं० उपसङ्घात]इकट्ठा करना। जुटाना [को०]।

उपसचार--संज्ञा पुं० [सं०उपसञ्चार] प्रवेश। पैठ [को०]।

उपसधान—संज्ञा पुं० [सं० उपसन्धान] १ जोडना। युक्त करना। २ मिलाना [को०]।

उपसध्य—क्रि० वि० [सं० उपसन्ध्य] सध्या के आसपास। सायकाल के कुछ पहले।

उपसन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १ लेटना। २ त्याग [को०]।

उपसपत्--संज्ञा स्त्री० [सं० उपसम्पत्, उपसम्पद्] बौद्ध धर्म की दीक्षा [को०]।

उपसपत्ति--संज्ञा स्त्री०[सं० उपसम्पत्ति]१ पास पहुँचना। २ अवस्थातर मे प्रवेश करना [को०]।

उपसपदा—संज्ञा स्त्री० [सं० उपसम्पदा] बौद्धधर्म की दीक्षा ग्रहण करना [को०]।

उपसपन्न--वि० [सं० उपसम्पन्न] १ पाया हुआ। लाभान्वित। २ पहुँचा हुआ। ३ उपचित। सचित किया हुआ। ४ परिचित। ५ पर्याप्त। काफी।

उपसपादक--संज्ञा पुं० [सं० उपसम्पादक] [स्त्री० उपसंपादिका] १ किसी कार्य मे मुख्य कर्ता का सहायक या उसकी अनुपस्थिति मे उसका कार्य करनेवाला व्यक्ति। २ किसी पत्र या पत्रिका के सपादक का सहायक।

उपसभाष--संज्ञा पुं० [सं० उपसम्भाष] १ बातचीत। वाणी द्वारा भावो और विचारो का आदान प्रदान। २. मित्रतापूर्ण अनुरोध [को०]।

उपसभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं० उपसम्भाषा] दे० 'उपसभाष' [को०]।

उपसयत--वि० [सं०] १ बिल्कुल मिला हुआ या सयुक्त। २. निरुद्ध [को०]।

उपसयम—संज्ञा पुं० [सं०] १ नियंत्रण। निरोध। २ विश्वसहार प्रलय [को०]।

क' उज्ञा पु० [स०] चोरो से या सदेह की स्थिति मे किसी माल का खरीदा या वेचा जाना ।

विशेप—वृहस्पति के अनुसार घर के भीतर, गांव के वाहर या रात मे किसी नीच जाति के आदमी से कम दाम में कोई वस्तु खरीदना उपविक्रय के अतर्गत है। ऐसा माल खरीदनेवाला अपराघी होता या। पर यदि वह खरीदने के पहले राज्य को सूचना दे देता या तो अपराधी नही होता या। (नारद)।

५ वच .—संज्ञा पु० [स०] प्रतिवेश। पडोस [को०]।

५ वद्या —संज्ञा स्त्री० [स०] १ गौण विद्या। साधारण व्यवहार मे आनेवाली विद्या। २ लौकिक विद्या या लोकज्ञान [को०]।

.विप—सज्ञा पुं० [स०] हलके विप। कम तेज जहर। जैसे, अफीम, धतूरा इत्यादि। एक मत से उपविप पांच हैं—(१) मदार का दूध, (२) सेंहुड का दूध, (३) कलिहारी या करियारी, (४) कनेर, (५) धतूरा, दूसरे मत से सात हैं—(१) मदार, (२) सेहुंड, (३) धतूरा, (४) कलिहारी या करियारी, (५) कनेर, (६) गुजा, (७) अफीम।

उपविप प्रणिधि—सज्ञा पु० [स०] विप या यत्र मत्र आदि द्वारा मनुष्यों को गुप्त रूप से मारनेवाला।

विशेप—कौटिल्य के समय मे ऐसे गुप्तचर उन लोगो के वध के लिये नियुक्त किए जाते थे जिनसे राजा असतुष्ट होता था, या जो वागी समझे जाते थे।

उपविपा—सज्ञा स्त्री० [स०] अतीस।

उपविष्ट—वि० [स०] वैठा हुआ।

उपविष्टक—सज्ञा पुं० [स०] आयुर्वेद के अनुसार वह गर्भस्थ भ्रूण, जो समय पूरा हो जाने पर भी गर्भ मे टिका रहता है [को०]।

उपवीणा—सज्ञा स्त्री० [स०] वीणा वाद्य की वड़ी तूंवीवाला निचला भाग [को०]।

उपवीणित—सज्ञा पु० [स०] वशी पर गान करना [को०]।

उपवीत—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपवीति] १. जनेऊ। यज्ञसूत्र। २. उपनयन सस्कार। उ०—करणवेध, चूडाकरण श्री रघुवर उपवीत, समय सकल कल्यानमय मजुल मंगल गीत।—तुलसी (शब्द०)।

उपवीतक—सज्ञा पु० [सं०] यज्ञोपवीत। जनेऊ [को०]।

उपवीती—वि० [स० उपवीतिन्] यज्ञसूत्र या जनेऊ पहननेवाला [को०]।

उपवीर—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का दैत्य [को०]।

उपवृहण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपवृंहण' [को०]।

उपवेद—सज्ञा पु० [स०] विद्याएँ जो वेदो से निकली हुई कही जाती हैं। ये चार हैं—(१) धनुर्वेद—जिसे विश्वामित्र ने यजुर्वेद से निकाला। (२) गधर्व वेद—जिसे भरतमुनि ने सामवेद से निकाला। (३) आयुर्वेद—धन्वतरि ने ऋग्वेद से निकाला। (४) स्थापत्य—जिसे विश्वकर्मा ने अथर्ववेद से निकाला।

उपवेवक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रास्ते चलते लोगो को तग करे या लूटे। गुडा। वदमाश [को०]।

उपवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपवेशन' [को०]।

उपवेशन—सज्ञा पु० [स०][वि० उपवेशित, उपवेशी, उपवेश्य, उपविष्ट] १. वैठना। २. स्थित होना। जमना। ३ हार मान लेना [को०]।

उपवेशित—वि० [स०] वैठाया हुआ।

उपवेशी—वि० [स० उपवेशिन्] १ वैठानेवाला। २ अपने को लगा देनेवाला [को०]।

उपवेष्टन—सज्ञा पु० [सं०] पूर्णतया लपेट देना। आवरितकरना। कपडे मे वांध देना। (पुस्तक आदि) [को०]।

उपवेष्टित—वि० [स] लपेटा हुआ। वेठन मे वंधा हुआ [को०]।

उपवैणव—सज्ञा पु० [सं०] दिन के तीन भाग, प्रभात, मध्याह्न और सध्याकाल। त्रिसध्य [को०]।

उपव्याघ्र—सज्ञा पु० [स०] एक छोटा शिकारी चीता [को०]।

उपव्रज—क्रि० वि० [स०] व्रज या चौपायो के रहने के स्थान के पास [को०]।

उपशम—सज्ञा पु० [स०] १ वासनाओं को दवाना। इद्रियनिग्रह। निवृत्ति। शाति। उ०—राम भलाई आपनी भल कियो न काको। चितवत भाजन कर लियो उपशम समता को।—तुलसी (शब्द०)। २ निवारण का उपाय। इलाज। चारा। उ०—कामानल को ताप यह हिय जारैगा तोहि। वृथा जरो, उपशम कछू सूझत नाही मोहि।—रत्नावली (शब्द०)।

उपशमक—वि० [स०] उपशमन करनेवाला [को०]।

उपशमन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उपशमनीय, उपशामित, उपशम्य] १. शाति रखना। दवाना। २ निवारण। उपाय से दूर करना।

उपशय[1]—सज्ञा पु० [स०] १ किसी वस्तु के व्यवहार से क्लेश का घटना या वढना देखकर रोग का अनुमान। यह रोगज्ञान के पाँच उपायो मे से एक है। निदान। २ सुख या आराम देनेवाली वस्तु या उपाय। अनुकूल औषध या पथ्य। मुआफिक इलाज। ३ पास सोना (को०)। ४ सहसा आक्रमण करने के लिये एकात स्थान (को०)।

उपशय[2]—वि० १. पास सोनेवाला। सात्वना देनवाला [को०]।

उपशया—सज्ञा स्त्री०[स०] काम मे लाने के लिये तैयार की हुई गीली मिट्टी [को०]।

उपशल्य—सज्ञा पु० [स०] १. नगर के आसपास की भूमि। २ गाँव का सिवान। ३ भाला।

उपशाति—सज्ञा स्त्री० [स० उपशान्ति] १ वासना का त्याग। इद्रियनिग्रह। २. विश्राति। ३. पोडा की निवृत्ति। ४ उपचार। इलाज [को०]।

उपशाखा—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी शाखा। टहनी [को०]।

उपशामक—वि० [स०] १ शात करनेवाला। २ (वाधा विघ्न का) निवारण करनेवाला [को०]।

उपशाय—सज्ञा पु० [स०] पहरे आदि के लिये कई व्यक्तियो का वारी वारी से सोना [को०]।

उपलिंग—संज्ञा पुं० [सं० उपलिङ्ग] उपलिङ्ग। १ अरिष्ट। उत्पात। २ दुर्लक्षण। भावी अमंगल का सूचक चिह्न [को०]।

उपलिप्त—वि० [सं०] लीपा हुआ। लेप किया हुआ [को०]।

उपलिप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्त करने की इच्छा। पाने की ख्वाहिश [को०]।

उपली—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपला का अल्पा० रूप] छोटा उपला। गोहरी। कडी। चिपडी।

उपलेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु से लीपना। किसी वस्तु की ऊपरी तह में कोई गीली चीज पोतना। २ गाय के गोबर से लीपना। ३ वह वस्तु जिससे लेप करें।

उपलेपन—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उपलेपित, उपलेप्य, उपलिप्त]लीपना। लीपने का कार्य।

उपलेपी—वि० [सं० उपलेपिन्] १ लीपने या पोतने का काम करनेवाला। २ बाधक। बाधा विघ्न डालनेवाला [को०]।

उपलोह—संज्ञा पुं० [सं०] एक गौण धातु [को०]।

उपलौह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपलोह' [को०]।

उपल्ला—संज्ञा पुं० [प्रा० उपरिल्ल=ऊपर का या हिं० ऊपर+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प उपल्ली] १ ऊपर की पर्त। वह तह जो ऊपर हो। किसी वस्तु का ऊपरवाला भाग।

उपवंग—संज्ञा पुं० [सं० उपवङ्ग] बंगाल से सटा हुआ एक प्राचीन जनपद [को०]।

उपवक्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० उपवक्तृ] १ यज्ञ का पुरोहित। २ ऋत्विक् [को०]।

उपवक्ता[2]—वि० प्रेरित या उत्साहित करनेवाला प्रेरक [को०]।

उपवट—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियासाल नाम का वृक्ष। चिरौंजी का पेड [को०]।

उपवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाग। बगीचा। कुंज। फुलवारी। २ छोटे छोटे जंगल। पुराणों में २४ उपवन गिनाए गए हैं।

उपवना(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्पादन, प्रा० उप्पायण] १ उदय होना। उगना। २ उपजना। पैदा होना। उ०—मोद भरी गोद लिए लालति सुमित्रा देखि देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७३।

उपवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म या विस्तृत वर्णन [को०]।

उपवर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपवर्ण' [को०]।

उपवर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] उपमान। वह जिससे उपमा दी जाय। उ०—जहँ प्रसिद्ध उपवर्त को पलटि कहत उपमेय। बरनत तहाँ प्रतीप हैं कविजन जगत अजेय।—(शब्द०)।

उपवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऊँची विशिष्ट संख्या [को०]।

उपवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्यायामशाला। अभ्यास स्थली। २ बसा हुआ या उजड़ा हुआ स्थान। ३ जिला या परगना। ४ राज्य। ५ दलदलीवाला भूमि [को०]।

उपवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेदांत के प्रधान भाष्यकारों या आचार्यों में से एक। २ शंकर स्वामी के एक पुत्र का नाम। इन्होंने मीमांसा दर्शन पर अनेक ग्रंथ प्रस्तुत किए [को०]।

उपवलिगत—वि० [सं०] १ सूजा या फूला हुआ। सूजनवाला। २ अश्रुपूर्ण। आँसू से डबडबाया हुआ [को०]।

उपवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतश्रवा नाम की लता [को०]।

उपवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ गाँव। बस्ती। २ यज्ञ करने के पहले का दिन जिसमें व्रत आदि करने का विधान है।

उपवसथीय—वि० [सं०] १ उपवसथ के लिये चुना हुआ (दिन)। २ उपवसथ संबंधी [को०]।

उपवसथ्य—वि० [सं०] दे० 'उपवसथीय' [को०]।

उपवसन—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्रत। उपवास करना। २ पास रहने की अवस्था [को०]।

उपवस्त—संज्ञा पुं० [सं०] व्रत। उपवास [को०]।

उपवस्ता—वि० (सं० उपवस्तृ) उपवास करनेवाला। व्रती [को०]।

उपवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन का अवलंब। जीने का सहारा। जैसे, भोजन, निद्रा आदि [को०]।

उपवहन—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँचे स्वर में स्पष्ट गायन आरंभ करने के पहले मंद और अस्पष्ट स्वर में गुनगुनाना [को०]।

उपवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ बातचीत करना। संबोधित करना। २ प्रशंसा करना। ३ इंद्रयव नामक धान्य [को०]।

उपवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाक्यखंड। किसी प्रधान वाक्य के भीतर आया वह वाक्यखंड जिसमें कोई समापिका क्रिया हो [को०]।

उपवाजन—संज्ञा पुं० [सं०] पंखा। व्यजन [को०]।

उपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवाद। निंदा।

उपवादी—वि० [सं० उपावादिन्] निंदा करनेवाला। लांछन लगानेवाला [को०]।

उपवास—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन का छूटना। फाका। जैसे, आज इन्हें तीन उपवास हुए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ वह व्रत जिसमें भोजन छोड दिया जाता है। ३ वे नीच जाति के लोग जिनको गाँव के मामलों में विशेष अधिकार न हो। वि० दे० 'ग्रामिक'। ४. समीप रहना (को०)। ५ यज्ञाग्नि जलाना (को०)। यज्ञकुंड (को०)।

उपवासक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] व्रत। उपवास [को०]।

उपवासक[2]—वि० उपवास करनेवाला। व्रती [को०]।

उपवासी[1]—वि० [सं० उपवासिन्] (वि० स्त्री० उपवासिनी) उपवास करनेवाला। निराहार रहनेवाला।

उपवासी[2]—संज्ञा पुं० नीच जाति का ग्रामीण, जिसे गाँव में विशेष अधिकार प्राप्त नहीं रहता [को०]।

उपवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] पास ले जाना [को०]।

उपवाही—वि० (सं०उपवाहिन्) वहनेवाला प्रवाहित होनेवाला [को०]।

उपवाह्य[1]—वि० [सं०] पास ले जाने योग्य। वहन करने या ढोने के योग्य [को०]।

उपवाह्य[2]—संज्ञा पुं० १ राजा की सवारी के काम आनेवाला हाथी। २ राजवाहन रथ, घोडा, हाथी आदि [को०]।

शिल्पक, (१४) विलासिका, (१५) दुर्मल्लिका, (१६) प्रकरणिका, (१७) हल्लीश, (१८) भाणिका।

२ ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं० उपरना] दे० 'उपरना'। उ०—पाछे श्री गुसाईं जी स्नान करि धोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै संखचक्र धरत हते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६।

रैना—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] दुपट्टा। चद्दर। उ०—सीस मोर मुकुट लकुट कर लीने ओढे पीत उपरैना जामें टँक्यो चारु गोवरू।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८२६।

उपरैनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ओढनी। उ० धोखे उपरैना के जो ओढे उपरैनी रहे ताही को लै दियो तोतो तबै लै अली गई। फूलन को हार लिए रही तासो मारि फेरि हायन पसारि कै सरापत चली गई।—रघुनाथ (शब्द०)।

उपरोक्त—वि० [हिं० ऊपर+सं० उक्त अथवा स० उपर्युक्त] ऊपर कहा हुआ। पहले कहा हुआ।

उपरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोक। अटकाव। २ आड। आच्छादन। ढकना।

उपरोधक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोकनेवाला। बाधा डालनेवाला। २ भीतर की कोठरी। गर्भागार। वासगृह।

उपरोधक²—वि० उपरोध करनेवाला। बाधक [को०]।

उपरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] रुकावट। अटकाव। अड़चन।

उपरोधी—संज्ञा पुं० [सं० उपरोधिन्] [स्त्री० उपरोधिनी] रोकनेवाला। बाधा डालनेवाला।

उपरोहित†—संज्ञा पुं० [सं० पुरोहित] दे० 'पुरोहित'। उ०—तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया।—मानस १।१६६।

उपरोहिती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरोहित] दे० 'पुरोहिती'। उ०—उपरोहिती करम अति मदा। वेद पुरान सुमृति कर निंदा।—मानस, ७।४८।

उपरौंछा—क्रि० वि० [हिं० ऊपर+औंछा (प्रत्य०)] १. ऊपर की ओर। २ ऊपर का।

उपरौटा—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपर+औटा (प्रत्य०)] (किसी वस्तु के) ऊपर का पल्ला। अतरौटा का उलटा।

उपरौठा†—वि० [हिं० ऊपर औठा (प्रत्य०)] ऊपर की ओर का। ऊपरवाला। जैसे—उपरौठी कोठरी।

उपरौना ⓟ—स्त्री० पुं० [हिं०] दे० 'उपरना'।

उपर्युपरि—क्रि० वि० [सं० उपरि+उपरि] ऊपर ऊपर। उ०—उपर्युपरि लेखक भी आशान्वित जान पड़ता है।—यो० उ० सा०, पृ० ६७।

उपलंभ—संज्ञा पुं० [सं० उपलम्भ] १ अनुभव। २. प्राप्ति। लाभ। ३ ध्वनि [को०]।

उपलंभक—वि० [सं० उपलम्भक] १ जानने या अनुभव करनेवाला। २ प्राप्त करनेवाला। लाभ उठानेवाला [को०]।

उपलभन—संज्ञा पुं० [सं० उपलम्भन] १. अनुभव। २. लाभ। प्राप्ति [को०]।

उपल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पत्थर। २ ओला। उ०—जिमि हिय उपल कृषी दलि गरहीं।—मानस, १।४।३। रत्न। ४. मेघ। बादल। ५. बालू। चीनी।

उपलक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपलक्ष्य'।

उपलक्षक¹—वि० [सं०] १. उद्भावना करनेवाला। २. अनुमान करनेवाला। ताडनेवाला। लखनेवाला।

उपलक्षक²—संज्ञा पुं० वह शब्द जो उपादान लक्षण से अपने वाच्य या अर्थ द्वारा निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्राय उसी कोटि की और वस्तुओं का भी बोध कराए। जैसे 'कौओं से अनाज को बचाना' इस वाक्य मे लक्षण द्वारा 'कौओं' शब्द से और पक्षी भी समझ लिए गए।

उपलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपलक्षक, उपलक्षित] १ बोध करानेवाला चिह्न। सकेत। २ शब्द की वह शक्ति जिससे उसके अर्थ से निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्राय उसी की कोटि की और और वस्तुओं का भी बोध होता है। यह एक प्रकार की अजहत्स्वार्था लक्षणा है। जैसे, 'खेत को कौओं मे बचाना' इस वाक्य मे कौओ शब्द से और और पक्षी भी समझ लिए गए।

उपलक्षित—वि० [सं०] १ अनुमानित। २ लक्ष्य किया हुआ। ३ सकेत से बताया हुआ। ४ शब्द की लक्षण शक्ति द्वारा उद्भावित [को०]।

उपलक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ सकेत। चिह्न। २. दृष्टि। उद्देश्य।
यौ०—उपलक्ष्य मे=दृष्टि से। विचार से। बदले मे। एवज मे। उ०—पडित जी को हिंदी के सुलेखक होने के उपलक्ष्य मे एक एड्रेस भी दिया गया था।—सरस्वती (शब्द०)।

उपलविप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] चमर नामक मृग, जिसे बालधि अर्थात् पूँछ प्रिय होती है [को०]।

उपलब्ध—वि० [सं०] १ पाया हुआ। प्राप्त। २ जाना हुआ।

उपलब्धा—वि० [सं० उपलब्धृ] १, प्राप्त करनेवाला। लाभ उठानेवाला। २. अनुभव करनेवाला। जाननेवाला [को०]।

उपलब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २ बुद्धि। ज्ञान।

उपलब्धिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायदर्शन के अनुसार एक प्रकार का हेत्वाभास रूप तार्किक खडन। जैसे, यह कहना कि 'शब्द अनित्य है क्योकि इनकी उत्पत्ति यत्नपूर्वक होती है'।

उपलभ्य—वि० [सं०] १. प्राप्त। प्राप्त हो सकने योग्य। २ आदरणीय। संमान के योग्य [को०]।

उपला—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०, अल्पा० उपली] ईंधन के लिये गोबर के सुखाए हुए टुकड़े। कडा। गोहरा।

उपलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राप्ति। २ ग्रहण [को०]।

उपलालन—संज्ञा पुं० [सं०] दुलराना। प्यार करना [को०]।

उपलालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्यास। तृषा। २ उत्पीड़न। ३. कुशासन। [को०]

उपराजा– संज्ञा पुं० [सं० उप+राजन्] प्राचीन काल मे राजसभा के एक अधिकारी का पद जिसे उपसभापति कहते हैं।

उपराठना(पु)—क्रि० स० [स० उपरक्त या उपरत, प्रा० उवरत्त, उवरय या देशज]पीठ फेरना। विमुख होना। उ०-(क) सखि हे रांजिद चालियउ पल्लाणियाँ दमाज। किंहि पुनवती साँमहुउ, ह्याँ उपराठउ आज।—ढोला० दू०, ३५०। (ख) श्री मारुवणी सामुहउ, म्हाँ उपराठउ अज्ज।—ढोला० दू० ३६३।

उपराना[1]†—क्रि० अ० [हिं० ऊपर] १ ऊपर आना। उठना। २. प्रकट होना। जाहिर होना। ३ उतराना।

उपराना[2]— क्रि० स० ऊपर करना। उठाना।

उपराम– संज्ञा पुं० [सं०] १ त्याग। उदासीनता। विराम। उ०—साधन सहित कर्म सब त्यागै, लखि विषसम विषयन तें भागै। नारी लखे होय जिय ग्लाना यह लक्षण उपराम बखाना।—(शब्द०)। २ आराम। विश्राम। उ०—नियमकाल तजि नित प्रति होई, राति दिवस उपराम न सोई।—श० दि० (शब्द०)। ३ निवृत्ति। छुटकारा।

उपराला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० उपर+ला (प्रत्य०)] पक्षग्रहण। सहायता। रक्षा। उ०— चहुँ दिसि घेरि कोटरा लीनो। जूझ लतीफ मास द्वै कीनो। उपराला करि सक्यो न कोई। सकित भयो लतीफ गढोई।—लाल (शब्द०)।

उपरावटा(पु)—वि० [स० उपरि+आवर्त्त या प्रा० उपल्ल (अध्यासित, आरूढ़) +हिं० आवटा (प्रत्य०)] तना हुआ। अकड़ा हुआ। जो अपना सिर गर्व से ऊँचा किए हो। उ०—कहा चलत उपरावटे अजहूँ खिसी न गात। कस सौंह दै पूछिए जिन पटके हैं सात।—सूर (शब्द०)।

उपराह(पु)†—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] दे० 'उपराही'। उ०—वदन उघारा है पुहुप, अली भँवहिं उपराहँ। की समुझत पति भार को, अहै छिपी पट माहँ।—इद्रा०, पृ० ४८।

उपराहना(पु)—क्रि० स० [हिं०] प्रशसा करना। सराहना।

उपराहाँ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० उपराही' उ०—लै मोती दोउ हाथ न माहाँ, झारू रतन सीर उपराहाँ।—इद्रा० पृ० ५।

उपराही[1](पु)—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] ऊपर। उ०—(क) छाडहि बान जाहि उपराही। गर्व केर सिर सदा तराही।—जायसी (शब्द०)। (ख) सेंदुर आग सीस उपराही। पहिया तरवन चमकत जाही।—जायसी (शब्द०)।

उपराही[2](पु)—वि० बढकर। बेहतर। श्रेष्ठ। उ०-(क) वह सुजोति हीरा उपराही। हीरा जाति सो तेहि परछाही।—जायसी ग्र०, पृ० ४४। (ख) कहँ अस नारि जगत उपराही। कहँ अस जीव मिलन सुख छाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ग) आम जो फरि कै नवै तराही, फल अमृत भा सब उपराही।—जायसी (शब्द०)।

उपरि—क्रि० वि० [स०] ऊपर।

यौ०—उपर्युक्त।

उपरिक—सज्ञा पुं० [स०] प्राचीन काल मे बडे अधिकारी के लिये प्रयुक्त पदवी। राज्यपाल। गवर्नर। उ०—हर्ष के ताम्रपत्रो मे राजस्थानीय, कुमारामात्य तथा उपरिक शब्द मिले हैं। यह कहना उचित है कि ये तीनो पदवियाँ गवर्नर के लिये प्रयुक्त की जाती थी।—पूर्व म० भा०, पृ० १९७।

उपरिकर—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का कर जो उन किसानो से लिया जाता था जिनका जमीन पर मौरूसी या अन्य किसी प्रकार का हक नही होता था।

उपरिचर[1]—सज्ञा पुं० [स०] १ एक वसु का नाम। २ दे० 'चेदिराज'। पक्षी। ४ वसुओ मे से एक [को०]।

उपरिचर[2]—वि० ऊपर चलनेवाला (जैसे पक्षी) [को०]।

उपरिचित—वि० ऊपर एकत्र किया हुआ। ऊपर सगृहीत [को०]।

उपरितन—वि० [स०] और ऊपर का। और ऊँचा [को०]।

उपरिष्ठा—सज्ञा पुं० [स०] परांठा। परौठा। परांवठा। उपराँठा।

उपरिसद[1]—सज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का वर्गविशेष [को०]।

उपरिसद[2]—वि० १ ऊपर लेटा हुआ। २ ऊपर बैठा हुआ [को०]।

उपरी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उपला] दे० 'ऊपरी' और उपली'।

उपरीउपरा—सज्ञा पुं० [हिं० ऊपर] १ एक ही वस्तु के लिये कई आदमियो का उद्योग। चढाउपरी। उपराचढी। २ एक दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा। स्पर्धा। उ०—(क) कटकटात भट भालु विकट मर्कट करि केहरि नाद। कूदत करि रघुनाथ सपथ उपरीउपरा करि बाद।—तुलसी (शब्द०)। (ख) विरुझे विरदैत जे खेत अरे न टरे हठि बैर बढावन के। रन रारि मची उपरीउपरा भले वीर रघुप्पति रावन के।—तुलसी ग्र०, पृ० १६१।

उपरीतक—सज्ञा पुं० [स०] रतिबंध विशेष, जिसमे कामी अपना एक पैर जांघ पर और दूसरा कधे पर रखकर कामिनी के साथ केलिक्रीडा करता है [को०]।

उपरुद्ध[1]—वि० [सं०] १ रोक दिया गया। बाधित। २ अवरुद्ध। घेरे मे ले लिया गया। अवरुद्ध। बदीकृत। कैद। ३ छिपाया हुआ। ४ रक्षित [को०]।

उपरुद्ध[2]—सज्ञा पुं० बदी। कैदी [को०]।

उपरुद्धसैन्य—सज्ञा पुं० [स०] शत्रु के द्वारा रोकी हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपरुद्ध हुधा परिक्षिप्त (सब ओर से घिरी हुई) सेना मे उपरुद्ध अच्छी है, क्योकि वह किसी एक ओर से निकलकर युद्ध कर सकती है। परिक्षिप्त सब ओर से घिर जाने के कारण ऐसा नही कर सकती।

उपरूढ—वि० [स०] १ बदला हुआ। २ (व्रण) भरा हुआ या अच्छा हुआ [को०]।

उपरूप—सज्ञा पुं० [स०] आयुर्वेद के अनुसार रोग का यत्किंचित् लक्षण। रोग का आरभिक लक्षण [को०]।

उपरूपक—सज्ञा पुं० [स०] नाटक के भेदो मे दूसरा भेद। छोटा नाटक। इसके १८ भेद हैं—(१) नाटिका, (२) त्रोटक, (३) गोष्ठी, (४) सट्टक, (५) नाट्यरासक, (६) प्रस्थानक, (७) उल्लाप्य, (८) काव्य, (९) प्रेंखण, (१०) रासक, (११) सलापक, (१२) श्रीगदित (श्रीरासिका), (१३)

उपरंजनीय—वि० [सं० उपरञ्जनीय] १. रँगने लायक। २ जिसपर प्रभाव डाला जा सके।

उपरंज्य—वि० [सं० उपरञ्ज्य] १ रँगने लायक। २. जिसपर प्रभाव पड़े।

उपरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० उपरन्ध्र] १ छोटा छेद। २ घोड़े की पसलियों के बीच का भाग जो गड्ढेनुमा दिखाई पड़ता है। [को०]।

उपर—अव्य० [सं० उपरि] दे० 'ऊपर'। उ०—(क) पुत्र सनेह मई रसमई। माया जननि उपर फिरि गई।—नंद० ग्रं०, पृ० २४३। (ख) तब वह ब्राह्मन उपर कैं घर खोलिकै आप नीचे रह्यौ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७०।

उपरक्त—वि० [सं०] १ जिसमें ग्रहण लगा हो। राहुग्रस्त। २ भोगविलास में फँसा हुआ। विषयासक्त। ३ उपरंजक या उपाधि की सन्निकटता के कारण जिसमें उसका गुण आ गया हो।

उपरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौकी। पहरा। २ फौजी तैयारी। सैनिक तैयारी (डिं)।

उपरत—वि० [सं०] १ विरक्त। उदासीन। हटा हुआ। २ मरा हुआ। मृत।

उपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विषय से विराग। विरति। त्याग। २. उदासीनता। उदासी। ३ मृत्यु। मौत।

उपरत्न—संज्ञा पु० [सं०] घटिया रत्न। कम दाम के रत्न या पत्थर।

विशेष—वैद्यक ग्रंथों के अनुसार वैक्रांतमणि, मोती का सीप, रक्षस, मरकत मणि, लहसुनिया, लाजा, गारुडिमणि (जहरमोहरा), शख और स्फटिक मणि ये नव उपरत्न माने गए हैं।

उपरना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपर+ना (प्रत्य०)] ऊपर से ओढ़ने का वस्त्र। दुपट्टा। चद्दर। उ०—पिअर उपरना काखा सोती।—मानस, १।३२७।

उपरना²†—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखड़ना।

उपरनी †—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरना] दे० 'उपरना'। उ०—झीने पट की चोवती, उपर उपरनी झीन।—माधवानल०, पृ० १९२।

उपरफट—वि० [हिं० ऊपर+फट (प्रत्य०)] ऊपरी। इधर उधर का। व्यर्थ का। निष्प्रयोजन। उ०—मेरी बाँह छाँडि दै राधा करत उपरफट बातैं। सूर स्याम नागर नागरि सौं करत प्रेम की बातैं।—सूर०, १०। १२९९।

उपरफट्टू—वि० [हिं० ऊपर+फट्टू (प्रत्य०)] १ ऊपरी। बालाई। नियमित के अतिरिक्त। बँधे हुए के सिवाय। जैसे—नौकरी के सिवाय उन्हें ऊपरफट्टू काम भी बहुत मिलते हैं। २ इधर उधर का। बठिकाने का। व्यर्थ का। फजूल। निष्प्रयोजन। जैसे, वह उपरफट्टू बातों मे बहुत रहा करता है, अपना काम नहीं देखता है।

उपरम—संज्ञा पु० [सं०] १. विरति। वैराग्य। उदासीनता। चित्त का हटना। २. निवृत्ति (को०)। ३ मृत्यु (को०)। ४ मेधा (को०)। वुद्धि (को०)।

उपरमण—संज्ञा पु० [सं०] १. विषय भोग से विरत हो जाना। २ वैदिक क्रियाओं से विराग या उदासीनता। ३ विश्रांति [को०]।

उपरवार¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+वार (प्रत्य०)] बाँगर जमीन। ऐसी भूमि जिसपर वर्षा का जल अधिक न ठहरे।

उपरवार²—वि० ऊपर स्थित (को०)।

उपरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक मे पारे के समान गुण करनेवाले पदार्थ।

विशेष—गधक, ईंगुर, अभ्रक, मैनसिल, सुर्मा, तूतिया, लाजवर्द, पत्थर, चुबक, पत्थर, फिटकरी, शख, खड़िया, मिट्टी, गेरू, मुल्तानी मिट्टी, कौड़ी, कसीस और बालू इत्यादि उपरस कहलाते हैं।

उपरहित†—संज्ञा पुं० [सं० पुरोहित, (पु) उपरोहित] दे० 'पुरोहित'।

उपरहिती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरहित] दे० 'पुरोहिती'।

उपराँठा†—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'पराँठा'।

उपरात—क्रि० वि० [हिं० ऊपर+सं० अन्त] अनतर। पीछे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग काल के ही सबध मे होता है।

उपरा†—संज्ञा पु० [सं०] उपला। कडा। गोहरा। उ०—और नाँतरु उपरा थापूँगी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६४।

उपराग—संज्ञा पु० [सं०] १ रग। २. किसी वस्तु पर उसके पास की वस्तु का आभास पड़ना। अपने निकट की वस्तु के प्रभाव से किसी वस्तु का अपने असल रूप मे भिन्न रूप मे दिखाई पड़ना। जैसे,—लाल कपड़े के ऊपर रखा हुआ स्फटिक लाल दिखाई पड़ता है। उपाधि।

विशेष—साख्य में बुद्धि के उपराग या उपाधि से पुरुष (आत्मा) कर्ता समझ पड़ता है, वास्तव मे है नहीं।

३ विषय मे अनुरक्ति। वासना। ४ चद्र या सूर्य ग्रहण। उ०—भएउ परब बिनु रवि उपरागा।—मानस, ६। १०१।

उपराचढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर+चढ़ना] किसी काम को करने या किसी चीज को लेने के लिये कई आदमियों का यह कहना कि हमी करें या हमी लें, दूसरा नहीं। एक ही वस्तु के लिये कई आदमियों का उद्योग। अहमहमिका स्पर्धा। उ०—एक पारिषद् ने हँसकर कहा—'महाराज'। यदि बहुत आदमी जाने को प्रस्तुत हैं तो बहुत अच्छी बात है। इस उपराचढ़ी मे आपकी सेना का व्यय कम होगा।—गदाधरसिंह (शब्द०)।

उपराज¹—संज्ञा पु० [सं०] राजप्रतिनिधि। वाइसराय। गवर्नर जनरल।

उपराज²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० उपार्जन] उपज। पैदावार।

उपराजना—क्रि० स० [सं० उपार्जन] १ पैदा करना। उत्पन्न करना। जनमाना। उ०—प्रथम जोति विधि ताकर साजी, औ तेहि प्रीति सिहिट उपराजी।—जायसी ग्र०, पृ० ४। २ रचना। बनाना। मानुष साज लाख मन साजा। होई सोइ जो विधि उपराजा।—जायसी ग्र०, पृ० ११९। ३ उपार्जन करना। कमाना। उ०—घटै बढ़ै मो शिला सदा ही, उपराजै धन दिन प्रति ताही।—रघुराज (शब्द०)।

बीच उपमावाचक शब्द का लोप करके बनता है। जैसे,—पुरुषसिंह, नरव्याघ्र, घनश्याम।

उपमिता—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'उपमित'।

उपमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा या सादृश्य से होनेवाला ज्ञान।

उपमित्र—संज्ञा स्त्री० पु० [सं०] बहिरंग साथी। साधारण मित्र [को०]।

उपमेत—संज्ञा पुं० [सं०] साखू नाम का पेड। शालवृक्ष [को०]।

उपमेय¹—वि० [सं०] उपमा के योग्य। जिसकी उपमा दी जाय। वर्ण्य। वर्णनीय।

उपमेय²—संज्ञा पुं० वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय। वह वस्तु जो किसी दूसरी वस्तु के समान बतलाई गई हो। जैसे, 'मुखकमल' मे मुख उपमेय है।

उपमेयोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा अलकार जिसमे उपमेय की उपमा उपमान हो और उपमान की उपमेय। जैसे,—पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उजारी है पूरनमासी।—देव (शब्द०)।

उपयंता—संज्ञा पुं० [सं० उपयन्तृ] [स्त्री० उपयन्त्री] वर। पति। वह जो अपना विवाह करनेवाला हो।

उपयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० उपयन्त्र] वैद्य या जर्राहो का एक यंत्र जिससे देह मे चुभकर रह जानेवाली काँटा आदि चीजें निकाली जाती हैं।

उपयना—क्रि० अ० [सं० उत्+पद् प्रा० उप्पज्ज, हिं० उपयना] उत्पन्न होना। पैदा होना। उ०—सुनि हरि हिय गरव गूढ उपयो है।—गीता०, ६।११।

उपयम—संज्ञा पुं० [सं०] १ विवाह। २ संयम। ३ आधार। आलंबन (को०)।

उपयमन—संज्ञा पु० [सं०] १. विवाह। २ संयम। ३ बटा हुआ कुश। ४. अग्नि के नीचे रखना (को०)। ५ अवलंबन। सहारा (को०)।

उपयाचक—वि० [सं० उप+याचक] १ माँगनेवाला। निवेदन करनेवाला। २ किसी युवती से विवाह की प्रार्थना करनेवाला। विवाहार्थी (को०)।

उपयाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ याचना करना। प्रार्थना करना। माँगना। मनौती [को०]।

उपयाचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपयाचन' [को०]।

उपयाचित¹—वि० [सं०] माँगा हुआ। प्रार्थित। निवेदित [को०]।

उपयाचित²—संज्ञा पुं० १ प्रार्थना। निवेदन। २ देवता की बलि। मनौती [को०]।

उपयान—संज्ञा पु० [सं०] १ पास आना। प्राप्त करना। प्राप्ति। उपलब्धि [को०]।

उपयापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पास लाना। २ विवाह [को०]।

उपयाम—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञपात्र विशेष। २. सोमरस निकालते समय पढ़े जानेवाले सूत्र या वैदिक मंत्र। ३ विवाह [को०]।

उपयायी—वि० [सं० उपयायिन्] १ समीप जानेवाला। २. किसी विशेष स्थिति या अवस्था को प्राप्त करनेवाला [को०]।

उपयुक्त—वि० [सं०] १ योग्य। ठीक। २ उचित। वाजिब। मुनासिब। ३ संबद्ध (को०)। ४ सहकारी अधिकारी (को०)। ५ उपयोग मे लाया हुआ (को०)।

उपयुक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ठीक उतरने का भाव। यथार्थता। २ योग्यता। ३ औचित्य।

उपयोग—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपयोगी, उपयुक्त] १ काम। व्यवहार। इस्तेमाल। प्रयोग। प्रयोजन। २ योग्यता। ३ फायदा। लाभ। ४ प्रयोजन। आवश्यकता।

यौ०—उपयोगवाद।

उपयोगवाद—संज्ञा पुं० [सं० उपयोग+वाद] वह सिद्धांत जिसके अनुसार जीवन के सब कार्यों का उद्देश्य अधिक से अधिक प्राणियो को अधिक से अधिक सुख पहुँचाना है। यह १९वीं शती के विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल का सिद्धांत है। (अ० यूटिलिटेरियनिज्म)।

उपयोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम मे आने की योग्यता लाभकारिता। उ०—अर्थशास्त्र यह नही बतलाता कि कौन कार्य करना उचित है और कौन अनुचित। वह तो केवल इतना ही बतलाता है कि जिस कार्य के करने से अधिक संतोष या उपयोगिता प्राप्त हो—चाहे वह कार्य अच्छा हो या बुरा—उसको ही करना चाहिए।—अर्थ०, पृ० २६।

उपयोगितावाद—संज्ञा पु० [सं०] अधिकाधिक लोगो के अधिकाधिक हित का सिद्धात। यह जान बेंथम द्वारा प्रतिपादित हुआ था। उ०—व्यक्तिवादी राज्य को उपयोगितावादी तर्क द्वारा भी उचित बताया गया था।—राजनीति० विचार, पृ० ६६।

उपयोगितावादी—वि० [सं० उपयोगितावादिन्] १ उपयोगितावाद के सिद्धांत को माननेवाला। २. उपयोगितावाद के सिद्धांत का प्रवर्तक।

उपयोगी—वि० [सं० उपयोगिन्] [वि० स्त्री० उपयोगिनी] १. काम देनेवाला। काम मे आनेवाला। प्रयोजनीय। मसरफ का। २ लाभकारी। फायदेमंद। उपकारी। ३ अनुकूल। मुवाफिक।

उपयोष—संज्ञा पु० [सं०] आनंद। सुख [को०]।

उपरंग—संज्ञा पु० [सं० उपराग, उपरङ्ग] १ ग्रहण। २. निंदा। परीवाद। ३ व्यसन। ४ ग्रहो की हलचल। उ०—अखर अभंगा सब उपरंगा नाहिन लघा आधारम्।—राम० धर्म०, पृ० २३०।

उपरंजक¹—वि० [सं० उपरञ्जक] [स्त्री० उपरंजिका] १ रँगनेवाला। २ प्रभाव डालनेवाला। असर डालनेवाला।

उपरंजक²—संज्ञा पुं० साख्य मे वह वस्तु जिसका आभास उसकी पासवाली वस्तु पर पडता है। वह वस्तु जिसके प्रभाव से उसके निकट की वस्तु अपने असली रूप से कुछ भिन्न दिखाई पडती है। उपाधि। जैसे, लाल कपडा जिसके कारण उसपर रखा हुआ स्फटिक लाल दिखाई पडता है।

उपरंजन—संज्ञा पु० [सं० उपरञ्जन] [वि० उपरंजक, उपरंजनीय, उपरंजित, उपरंज्य] १. रँगना। २ प्रभाव डालना। असर डालना।

उपभोग्य—वि० [स०] उपभोग के योग्य । व्यवहार के योग्य ।

उपभोज्य[1]—वि० [स०] १ खाने योग्य । २ व्यवहार मे लाने योग्य । आनद लेने योग्य [कौ०] ।

उपभोज्य[2]—सज्ञा पु० भोजन । आहार [कौ०] ।

उपमत्रण—सज्ञा पु० [स० उपमन्त्रण] १ सबोधन करना । आमत्रण । २ अपनी राय मे मिलाना । खुशामद करना [कौ०] ।

उपमंत्री[1]—सज्ञा पु० [सं० उप + मन्त्रिन्] १ वह मत्री जो प्रधान मत्री के नीचे हो । २ दूत [कौ०] ।

उपमंत्री[2]—वि० १. आमत्रण देनेवाला । २ अनुरोध करनेवाला । ३ स्वपक्ष मे मिलाने का यत्न करनेवाला [कौ०] ।

उपमंथनी—सज्ञा स्त्री० [सं० उपमन्थनी] चलाने की लकडी या डडा । वह लकडी जिससे आग को उलटा पलटा जाता है । [कौ०] ।

उपमथिता—वि० [स० उपमन्थितृ] उपमथन करनेवाला । (अग्नि को) खुड़ेरनेवाला [कौ०] ।

उपमज्जन—सज्ञा [स०] नहाना । स्नान । अवगाहन [कौ०] ।

उपमन्यु[1]—सज्ञा पु० [स०] गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि जो आयोदधौम्य के शिष्य थे ।

उपमन्यु[2]—वि० १ प्रतिभाशाली । व्युत्पन्नमति । २ उद्योगी [कौ०] ।

उपमर्द—संज्ञा पु० [स०] १ ममलना । रगडना । २ विनाश । वध । ३ अपमान । भर्त्सना । ४. आरोप का खडन । ५ हिलना । गति देना [कौ०] ।

उपमर्दक—वि० [सं०] १. नष्ट करनेवाला । २ आरोप का खडन (कौ०) ।

उपमर्दन—सज्ञा पु० [स०] १ दबाना । क्लेश देना [कौ०] ।

उपमा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उपमान, उपमापक, उपमित, उपमेय] १. किसी वस्तु, व्यापार या गुण को दूसरी वस्तु, व्यापार या गुण के समान प्रकट करने की क्रिया । सादृश्य । समानता । तुलना । मिलान । पटतर । जोड । मुशाबहत । उ०—सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरौं विदेहकुमारी ।—मानस, ११ २३० । २. एक अर्थालकार जिसमे दो वस्तुओ (उपमेय और उपमान) के बीच भेद रहते हुए भी उनका समान धर्म बतलाया जाता है । जैसे,—उसका मुख चद्रमा के समान है ।

विशेष—उपमा दो प्रकार की होती है पूर्णोपमा और लुप्तोपमा । पूर्णोपमा वह है जिसमे उपमा के चारो अग उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, और उपमावाचक शब्द वर्तमान हो । जैसे,—'हरिपद कोमल कमल से' इस उदाहरण मे 'हरिपद' (उपमेय), कमल (उपमान), कोमल (सामान्य धर्म) और 'से' (उपमासूचक शब्द) चारो आए हैं । लुप्तोपमा वह है जिसमे उपमा के चारो अगो मे से एक दो, या तीन न प्रकट किए गए हो । जिसके एक अग का लोप हो उसके तीन भेद हैं, धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता और वाचकलुप्ता जैसे,—(क) विज्जुलता सी नागरी, सजल जलद से श्याम (प्रकाश आदि धर्मों का लोप) । (ख) मालति सम सुदर कुसुम ढूँढेहु मिलिहै नाहि (उपमान का लोप) । (ग) नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन (उपमावाचक शब्द का लोप) । इसी प्रकार जिस उपमा के दो अगों का लोप होता है उसके चार भेद हैं—वाचकधर्मलुप्ता, धर्मोपमानलुप्ता, वाचकोपमेयलुप्ता, वाचकोपमानलुप्ता, जैसे,—(क) धरनधीर रन टरन नहि करन करन अरि नाश । राजत नृप कुजर सुभट यस तिहुँ लोक प्रकाश (सामान्य धर्म और वाचक शब्द का लोप) । (ख) रे अलि ! मालति सम कुसुम ढूँढेहु मिलिहै नाहि (उपमान और धर्म का लोप) । (ग) अटा उदय हो तो भयो छविधर पूरनचद (वाचक और उपमेय का लोप) ।

उपमा[2](पु)—सज्ञा स्त्री० [गु० उपमान=वर्णन, दृष्टात] वर्णन । बयान । प्रशसा । उ०—जो गई भेसि पाई । या प्रकार सगरे व्रजवासी वहू की उपमा करने लागे ।—दो० सौ बावन०, भा० २, पृ० ३ ।

उपमाता[1]—सज्ञा पु० [स०उपमातृ] [स्त्री० उपमात्री] उपमा देनेवाला । मिलान करनेवाला ।

उपमाता[2]—सज्ञा स्त्री० [स०]दूध पिलानेवाली स्त्री । दाई । धाय [कौ०] ।

उपमाति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निवेदन । आग्रह । २. तुलना । ३ मारण [कौ०] ।

उपमाद[1]—सज्ञा पु० [सं०] १ हर्ष । खुशी । २. उपभोग [कौ०] ।

उपमाद[2]—वि० खुश करनेवाला । हर्ष पहुँचानेवाला [कौ०] ।

उपमान—सज्ञा पु० [स०] १ वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय । वह जिसके समान कोई दूसरी वस्तु बतलाई जाय । वह जिसके धर्म का आरोप किसी वस्तु मे किया जाय । जैसे,—'उसका मुख कमल के समान है' इस वाक्य मे 'कमल' उपमान है । २ न्याय मे चार प्रकार के प्रमाणो में से एक । किसी प्रसिद्ध पदार्थ के साधर्म्य से साध्य का साधन । वह निश्चय जो किसी वस्तु को किसी अधिक परिचित वस्तु के कुछ समान देखकर होता है । जैसे—'गाय नीलगाय की तरह होती है' इस बात को सुनकर यदि कोई जगल मे गाय की तरह का कोई जानवर देखेगा तो समझेगा कि यह नील गाय है । वास्तव मे उपमान अनुमान के अतर्गत आ जाता है । इसी से योग मे तीन ही प्रमाण माने गए हैं प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द । ३. २३ मात्राओ का एक छद जिसमें १३वी मात्रा पर विराम होता है । उ०—अब बोलि ले हरिनामै, काल जात बीता । हाथ जोरि विनती करौं, नाहि जात रीता ।—छद०, पृ० ५२ ।

उपमानलुप्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] वि० दे० 'उपमा' ।

उपमाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] समता करना । बराबरी दिखाना ।

उपमालिनी—संज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्णवृत का नाम [कौ०] ।

उपमित[1]—वि० [स०] जिसकी उपमा दी गई हो । जो किसी वस्तु के समान बतलाया गया हो । जिसपर उपमा घटती हो । जैसे, 'उसका मुख कमल के ऐसा है' इसमे मुख उपमित है ।

उपमित[2]—सज्ञा पुं० कर्मधारय के अंतर्गत एक समास जो दो शब्दो के

उपपार्श्व—संज्ञा पुं० [स०] १ कधा। २ बगल। विपरीत पक्ष। ४ छोटी पसली [को०]।

उपपीडन—संज्ञा पुं० [स० उपपीडन] १ दबाना। २ कष्ट देना। चोट पहुँचाना। ३ पीडा। कष्ट। मानसिक व्यथा [को०]।

उपपीडित—वि० [स० उपपीडित] १. दबाया हुआ। २ कष्ट पहुँचाया हुआ [को०]।

उपपुर—संज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० उपपुरी] नगर का बाहरी भाग। उपनगर [को०]।

उपपुराण—संज्ञा पुं० [स०] १८ मुख्य पुराणो के अतिरिक्त और छोटे पुराण।

विशेष—ये भी गिनती मे १८ हैं। (१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल, (७) मानव, (८) औशनस, (९) वरुण, (१०) कालिक, (११) शाव, (१२) नदा, (१३) सौर, (१४) पराशर, (१५) आदित्य, (१६) माहेश्वर, (१७) भार्गव और (१८) वाशिष्ठ।

उपपुरी—संज्ञा स्त्री० [स०] नगर का उपात। नगर का परिवेश। परिसर [को०]।

उपपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १. जँभाई। २. पूरा मुँह खोलकर सांस लेना [को०]।

उपपौरिक—वि० [सं०] [स्त्री० उपपौरिकी] नगर के उपात मे रहनेवाला। उपपुर का निवासी [को०]।

उपप्रदर्शन—संज्ञा पुं० [स०] सकेत करना। इगित करना। निर्देशन। बताना [को०]।

उपप्रदान—संज्ञा पु० [स०] १ देना। सौंपना। २ घूस। रिश्वत। ३. भेंट [को०]।

उपप्रधान—संज्ञा पुं० [स०] प्रधान का सहायक। प्रधान का सहयोगी।

उपप्रमुख—संज्ञा पुं० [स०] उपाध्यक्ष।

उपप्रश्न—संज्ञा पुं० [स०] किसी बडे और गंभीर प्रश्न के भीतर निकल आनेवाला छोटा प्रश्न। अप्रधान या अमुख्य प्रश्न [को०]।

उपप्रेक्षण—संज्ञा पु० [स०] उपेक्षा करना या परवाह न करना [को०]।

उपप्रैप—संज्ञा पुं० [स०] १ निमत्रण। २. सूचनापत्र [को०]।

उपप्लव—संज्ञा पु० [स०] [वि० उपप्लवित, उपप्लवी, उपप्लव्य] उपप्लुत] १ बाढ़। २ उत्पात। हलचल। हगामा। बलवा। ३ कोई प्राकृतिक घटना जैसे ग्रहण, भूकप, आदि। ४ आँधी। तूफान। ५ भय। खतरा। ६ विघ्न। बाधा ७ राहु। ८ शिव (को०)। ९ संदेह। विचिकित्सा (बौद्ध)।

उपप्लवी—वि० [स० उपप्लविन्] [स्त्री० उपप्लविनी] १. उपद्रव मचानेवाला। हलचल मचानेवाला। आफत ढानेवाला। २ डुबानेवाला। तराबोर करनेवाला। ३ जिसपर या जहाँ पर आफत आई हो। ४ जिसपर ग्रहण लगा हो।

उपप्लुत—वि० [सं०] १ भयकर रूप से आक्रात। २. ग्रस्त (राहु से)। ३ उत्पात से पूर्ण। ४ सींचा हुआ। जलप्लावित। ५. आँसू से भरी (आँखें)। ६. रौंदा हुआ। मसला हुआ [को०]।

उपप्लुता—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का रोग [को०]।

उपबध—संज्ञा पुं० [सं० उपबन्ध] १ सबध। २ कामशास्त्र के अनुसार एक आसन। ३ अनुबध। प्रयोग [को०]।

उपबरहन(पु)—संज्ञा पुं० [स० उपबर्हण] दे० 'उपबर्हण' (को०)। उ०—उपबरहन बर बरनि न जाहीं, स्रग सुगध मनि मदिर माही।—मानस, १।३५६।

उपबर्ह—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपबर्हण' [को०]।

उपबर्हण—संज्ञा पुं० [स०] १ तकिया। २ दबाना। निपीडन [को०]।

उपबहु—वि० [स०] थोडे। अल्पसख्यक [को०]।

उपबाहु—संज्ञा पुं० [स०] पहुँचा। हाथ का कोहनी से नीचे का भाग [को०]।

उपबृहण—संज्ञा पुं० [स०] परिवर्धित। बढाना [को०]।

उपबृहित—वि० [स०] अभिवर्धित। बढाया हुआ। २. युक्त। सयुक्त [को०]।

उपबृही—वि० [स० उपबृंहिन्] न्यूनता या कमी को पूरा करनेवाला। पूरक [को०]।

उपबैन(पु)—संज्ञा पु० [स० उपवचन, (पु)उपवयन] उपवचन। उपकथन। उपवाक्य। उ०—जिते बाल उपबैन भूठे उचारैं। धरे नाम छत्री न सस्त्र पचारैं।—पृ० रा०, १२।४७३।

उपभग—संज्ञा पु० [सं० उपभङ्ग] १ भागना। पीछे हटना। २ छद का एक खड या टुकडा [को०]।

उपभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोली। जनपदीय भाषा। प्रातीय भाषा के क्षेत्र के अतर्गत किसी छोटे भूभाग मे बोली जानेवाली जनभाषा [को०]।

उपभुक्त—वि० [स०] १ जिसका भोग किया गया हो। व्यवहार किया हुआ। काम मे लाया हुआ। वर्ता हुआ। २ जूठा। उच्छिष्ट।

यौ०—उपभुक्त धन = वह जिसने अपने धन का उपयोग किया हो।

उपभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपभोग। २. ग्रह की दैनिक गति [को०]।

उपभूषण—संज्ञा पु० [स०] हलका या छोटा गहना। लघु आभूषण [को०]।

उपभृत—वि० [स०] १ पास लाया हुआ। २ उपलब्ध [को०]।

उपभेद—संज्ञा पु० [स०] प्रधान भेद या प्रकार के भीतर किए गए लघु प्रकार। शाखाभेद [को०]।

उपभोक्तव्य—वि० [स०] उपभोग के योग्य। उपभोगक्षम [को०]।

उपभोक्ता—वि० [वि० उपभोक्तृ] [वि० स्त्री० उपभोक्तृ] उपभोग करनेवाला। व्यहार का सुख उठानेवाला। काम में लानेवाला।

उपभोग - संज्ञा पु० [स०] [वि० उपभोगी, उपभोग्य, उपभुक्त] १ किसी वस्तु के व्यवहार का सुख। मजा लेना। २ व्यवहार। काम में लाना। बर्तना। सुख की सामग्री। विलास की वस्तु। ४. विषय भोग (को०)। ५ स्त्रीप्रसग (को०)। ७ फलप्राप्ति (को०)।

उपभोगी—वि० [सं० उपभोगिन्] उपभोग करनेवाला [को०]।

(३)—वि० [हिं०√उपन+इत (प्रत्य०)] उत्पन्न। उ०—छकेई रहत रैनिद्यौस प्रेम प्यास ग्रास, कीनी नेम घरम कहानी उपनेत है।—घनानद, पृ० ६०।

पनेता—वि० सज्ञा, पु० [स०उपनेतृ][स्त्री०उपनेत्री] १. लानेवाला। पहुँचानेवाला। २ उपनयन करानेवाला। आचार्य। गुरु। ३ नेता का प्रधान सहायक (को०)।

पनेत्र—सज्ञा पु० [स०] चश्मा [को०]।

पन्न—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उप्पण्ण] दे० 'उत्पन्न'। उ०—मारू देस उपन्नियाँ, ताँह का दत सुसेत। कूँझ बचा गोरगिया, खजर जेहा नेत।—ढोला०, दू०, ४५७।

पन्ना[१]—सज्ञा पु० [स०] [हिं० उपरना] दे० 'उपरना'।

पन्न[२]—वि० [स० उत्पन्न, प्रा०उप्पण्ण] उत्पन्न। उ०—सुचा मन साचु न मैला होई, आपे आय उपन्ना सोई।—प्राण०, पृ० २२१।

उपन्यस्त—वि० [स०] १ पास रखा हुआ। २ धरोहर रखा हुआ। अमानत रखा हुआ। ३ उल्लिखित। दर्ज। कहा हुआ।

उपन्यास—सज्ञा पु० [स०] [वि० उपन्यस्त] १ वाक्य का उपक्रम। बधान। बात की लपेट। बात का लच्छा। २ कल्पित आख्यायिका। कथा। नावेल। ३. धरोहर। गिरवी। ४ प्रसादन (को०)। ५ प्रसग। सदर्भ। सकेत (को०)। ६. प्रस्तावना। भूमिका। उपोद्घात [को०]। ७ नियम। विधान (को०)।

उपन्याससधि— सज्ञा स्त्री० [स० उपन्याससधि] वह सधि जो किसी कल्याणकारी कर्म की इच्छा से की जाय (कामद०)।

उपपक्ष—सज्ञा पु० [स०] १. कक्षा। २ काँख। कुक्षि। ३. काँख का बाल [को०]।

उपपति—सज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिससे कोई दूसरे को ब्याही हुई स्त्री प्रेम करे। जार। यार। आशना।

उपपतित— वि० [सं०] उपपातक करनेवाला। छोटा पाप करनेवाला [को०]।

उपततिरस—सज्ञा पु० [स० उपपति+रस] पर पुरुष का प्रेम। उ०—जो कही उपपति-रस नहिं स्वच्छ, सब कोउ निंदत मरु अति तुच्छ।— नद० ग्रं०, पृ० ३२१।

उपपत्ति— सज्ञा स्त्री० [स०] १ हेतु द्वारा किसी वस्तु की स्थिति का निश्चय। २ प्राप्ति। सिद्धि। प्रतिपादन। घटना। चरितार्थ होना। मेल मिलना। सगति। ३. युक्ति। हेतु। ४. समाधान (को०)। ५ आश्रय। आधार (को०)। ६ सन्निकर्ष। सपर्क (को०)। ७ उचित होना। युक्तता (को०)। ८. साधन (को०)। ९. सिद्धात (को०)। १० प्रमाण। प्रक्रिया (गणित) (को०)। ११ समाधि (को०)। १२ सयोग (को०)।

उपपत्तिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे दो कारणों की प्राप्ति। बिना वादी के कारण और निगमन आदि का खडन किए हुए प्रतिपादन करना। प्रतिवादी का यह कहना कि जिस प्रकार वादी के दिए हुए कारण से वह बात हो सकती है, उसी प्रकार हमारे दिए हुए कारण से भी यह बात हो सकती है। जैसे,—एक कहता है शब्द अनित्य है क्योंकि उसकी उत्पत्ति होती है। दूसरा कहता है जिस प्रकार उत्पत्ति धर्मवाला होने से शब्द अनित्य कहा जा सकता है उसी प्रकार स्पर्शवाला न होने से नित्य भी हो सकता है।

उपपत्नी—सज्ञा स्त्री० [स०] बिना विवाह किए ही जिस स्त्री को पत्नी के समान रख लिया जाय। रखेली (को०)।

उपपथ—क्रि० वि० [स०] सडक के पास। राजमार्ग के समीप [को०]।

उपपद—सज्ञा पु० [स०] १ पहले कहा गया शब्द। वह शब्द जो पहले आ चुका है। २ स्थितिविशेष मे लाना। ३ उपाधि। पदवी [को०]।

उपपद समास—सज्ञा पु० [स०] वह समास जो नाम या सज्ञा के साथ कृदत के मिलने से होता है। जैसे—स्वर्णकार, हलधर आदि [को०]।

उपपन्न—वि० [स०] १ पास आया हुआ। पहुँचा हुआ। २ शरण मे आया हुआ। शरणागत। ३ प्राप्त। लब्ध। पाया हुआ। मिला हुआ। ४. युक्त। सपन्न। ५ उपयुक्त। मुनासिब। ६. पूर्ण (को०)। ७ सभव (को०)। ८ प्रमाणित। सिद्ध किया हुआ [को०]।

उपपर्शुका—सज्ञा स्त्री० [स०] अमुख्य पसली [को०]।

उपपात—सज्ञा पुं० [स०] १ अप्रत्याशित घटना। २. दुर्घटना। विपत्ति। विनाश। [को०]।

उपपातक—सज्ञा पु० [सं०] छोटा पाप। उ०—जे पातक उपपातक अहहीं, करम बचन मन भव कवि कहहीं।—मानस, २।१६७।

विशेष—मनु के अनुसार परस्त्रीगमन, गुरुसेवात्याग, आत्मविक्रय, गोवध आदि उपपातक हैं।

उपपाद—सज्ञा पुं० [स०] बडे स्तभ के ऊपर लगा हुआ उसका सहायक छोटा खभा [को०]।

उपपादक—वि० [स०] १. सिद्ध करनेवाला। २ प्रकट करनेवाला। ३. अच्छी तरह विचारा हुआ [को०]।

उपपादन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपपादक, उपपादित, उपपन्न, उपपादनीय, उपपाद्य] १. सिद्ध करना। साबित करना। ठहराना। प्रतिपादन। युक्ति देकर समर्थन करना। २. सपादन कार्य को पूरा करना।

उपपादनीय—वि० [स०] प्रतिपादनीय। सिद्ध करने योग्य। साबित करने योग्य।

उपपादित—वि० [स०] १ जिसका उपपादन या समर्थन किया गया हो। प्रतिपादित। सिद्ध किया हुआ। साबित किया हुआ। ठहराया हुआ। २ दिया हुआ। प्रदान किया हुआ [को०]। ३. चिकित्सा किया हुआ (को०)।

उपपादुक[१]—वि० [स०] १. जिसके पैर मे पादुका हो। जूते पहना हुआ। २. जिसके पैरों मे नालें लगी हों (घोडा आदि) ३. स्वत सभूत। स्वयभू [को०]।

उपपादुक[२]—सज्ञा पुं० परमात्मा। ईश्वर [को०]।

उपपाद्य—वि० [स०] प्रतिपादन के योग्य। सिद्ध किए जाने योग्य।

उपपाप—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपपातक' [को०]।

उपना᪤—क्रि० अ० [स० उत्पन्न, प्रा० उप्पण्ण] १ उत्पन्न होना। उ०—कुधर सहित चढ़ो विसिष, वेगि पठयो सुनि हरि हिय गरव गूढ़ उपयो है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६८। २ जन्म ग्रहण करना। जनमना।

उपनागरिका—सज्ञा स्त्री० [स०] अलंकार में वृत्ति अनुप्रास का एक भेद जिसमें कान को मधुर लगनेवाले वर्ण आते हैं। इसमें ट ठ ड ढ को छोड 'क' से लेकर म तक सब वर्ण, तथा अनुसार रहित अक्षर रह सकते हैं। समास इसमें या तो न हों और हों भी तो छोटे छोटे। जैसे—कजन, खजन, गजन हैं अलि अजन हूँ मन रजनहारे।— (शब्द०)।

उपनाना᪤—क्रि० स० [हिं० 'उपना' का सक० रूप] उत्पादन करना। पैदा करना।

उपनाम—सज्ञा पुं० [स० उपनामन्] १ दूसरा नाम। प्रचलित नाम। २ पदवी। तखल्लुस। उपाधि।

उपनाय—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपनयन' [को०]।

उपनायक—सज्ञा पु० [स०] नाटकों में प्रधान नायक का साथी या सहकारी।

उपनायन— सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपनयन'।

उपनायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] नाटकों में वर्णित नायिका की प्रधान सखी और सहायिका [को०]।

उपनासिक—सज्ञा पुं० [सं०] नासिका के पास का भाग। नाक का निकटवर्ती भाग [को०]।

उपनाह—सज्ञा पु० [सं०] १ सितार की खूँटी जिसमें तार बँधे रहते हैं। २ फोडे या घाव पर लगाने का लेप। मरहम। ३ आँख का एक रोग। बिलनी। गुहाजनी। ४ गठरी। बडल (को०)।

उपनाहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मरहम या लेप लगाना। २ पलस्तर करना [को०]।

उपनिक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ धरोहर। २ खुली धरोहर। ३ मुहरबद धरोहर [को०]।

उपनिधाता—वि० [स०उपनिधातृ] धरोहर रखनेवाला [को०]।

उपनिधान—सज्ञा पुं० [स०] धरोहर रखना [को०]।

उपनिधायक—वि० [स०] दे० 'उपनिधाता' [को०]।

उपनिधि—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० औपनिधिक] धरोहर। अमानत।

उपनिधिभोक्ता—सज्ञा पु० [स० उपनिधिभोक्तृ] वह मनुष्य जिसने दूसरे की रखी धरोहर का स्वय प्रयोग किया हो।

विशेष—चद्रगुप्त के समय में ऐसे लोग देश काल के अनुसार उसका बदला या भोगवेतन देने के लिये बाध्य किए जाते थे।

उपनिपात—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य मत से राजा, चोर, आग और पानी आदि से माल का खराब या नष्ट होना। वि० दे० 'दोष'।

उपनिपातन—सज्ञा पुं० [सं०] १ सहसा घट जाना। २ सहसा आक्रमण करना (को०)।

उपनिबंधक—सज्ञा पुं० [स० उपनिबन्धक] निबधक का सहायक। सहायक निबधक [को०]।

उपनियम—सज्ञा पुं० [सं०] १. नियम के अतर्गत रहनेवाला छोटा नियम। २ गौण नियम [को०]।

उपनिविष्ट—वि० [स०] [सज्ञा उपनिवेश] दूसरे स्थान से आकर बसा हुआ।

उपनिविष्ट (सैन्य)—वि० [स०] सुशिक्षित और अनुभवी (सैन्य)।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपनिविष्ट तथा समाप्त (एक ही ढग की लडाई जाननेवाली) सेना में उपनिविष्ट सेना ही उत्तम है, क्योंकि उपनिविष्ट को भिन्न भिन्न स्थानों में लड़ना आता है और वह छावनी के अतिरिक्त भी लडाई कर सकती है।

उपनिवेश—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपनिवेशित, उपनिविष्ट] १ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा बसना। २. अन्य स्थान से आए हुए लोगों की बस्ती। एक देश के लोगों की दूसरे देश में आबादी। कालोनी (अं०)।

उपनिवेशित—वि० (स०) दूसरे स्थान से आकर बसा हुआ।

उपनिवेशी—वि० [स० उपनिवेशिन्] १ उपनिवेश में निवास करनेवाला। २ विदेश में बस जानेवाला। ३ बसानेवाला [को०]।

उपनिषद्—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पास बैठना। २ ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये गुरु के पास बैठना। ३ वेद की शाखाओं के ब्राह्मणों के वे अतिम भाग जिसमें ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मा, परमात्मा आदि का निरूपण रहता है।

विशेष—कोई कोई उपनिषदें संहिताओं में भी मिलती हैं, जैसे ईश, जो शुक्ल यजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय माना जाता है। प्रधान उपनिषदें ये हैं—ईश या वाजसनेय, केन या तवल्कार, कठ, प्रश्न, मुडक, माडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छादोग्य, बृहदारण्य। इनके अतिरिक्त कौषीतकी, मैत्रायणी, और श्वेताश्वतर भी आर्ष मानी जाती हैं। उपनिषदों की सख्या कोई १८, कोई, ३४, कोई ५२ और कोई १०८ तक मानते हैं पर इनमें से बहुत सी बहुत पीछे की बनी हुई हैं। ४ वेदव्रत ब्रह्मचारी के ४० सस्कारों में से एक जो गोदान अर्थात् केशात सस्कार के पहले होता है। ५ निर्जन स्थान। ६. धर्म।

उपनिषादी—वि० [स० उपनिषादिन्] १ गुरु के पास रहनेवाला। २ वशीकृत। वश में लाया हुआ [को०]।

उपनिष्कर—सज्ञा पुं० [स०] राजपथ। सडक [को०]।

उपनिष्क्रमण—सज्ञा पुं० [स०] १ बाहर जाना। २ एक सस्कार जिसमें नवजात शिशु को पहले पहल घर के भीतर से बाहर निकालते हैं। ३ राजमार्ग। प्रधान सडक [को०]।

उपनिहित—वि० [स०] उपधान या धरोहर के रूप में रखा हुआ [को०]।

उपनीत—वि० [स०] १ लाया हुआ। २ जिसका उपनयन सस्कार हो गया हो।

उपनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपनयन' [को०]।

उपनुन्न—वि० [स०] वायु द्वारा धीरे धीरे प्रेरित। हवा से धीरे धीरे ले जाया गया [को०]।

उपनृत्य—सज्ञा पुं० [स०] नृत्यशाला। नाचघर [को०]।

विशेष—प्रधान धातुओं के समान उपधातु भी सात गिनाई गई हैं—सोनामक्खी, रूपामाखी, तूतिया, काँसा, मुर्दासंख, सिंदूर, शिलाजतु या गेरू (भावप्रकाश) पर किसी किसी के मत से सात उपधातु ये हैं—सोनामाखी, नीलाथोथा, हरताल, सुरमा, अवरक, मैनसिल और खपरिया।

२ शरीर के रस, रक्त आदि सात धातुओं से बने हुए दूध, चरबी, पसीना आदि पदार्थ।

उपधान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपहित] १. ऊपर रखना या ठहराना। २ वह जिसपर कोई वस्तु रखी जाय। सहारे की चीज।

यौ०—पादोपधान।

३ तकिया गड़ुआ। बालिश। उ०—विविध वसन उपधान तुराई, छीर फेन मृदु विसद सुहाई।—मानस, २। ९१। ४ मंत्र जो यज्ञ की ईंट रखते समय पढा जाता है। ५ विशेषता। ६. प्रणय। प्रेम।

—संज्ञा पुं० [सं०] १ बालिश। तकिया। शिरोपधान। २ एक व्रत। ३ प्रेम। ४. विष [को०]।

उपधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पादपीठ। पैर रखने की चौकी। २. तकिया। ३ गद्दा [को०]।

उपधानीय[1]—वि० [सं०] पास रखने योग्य [को०]।

उपधानीय[2]—संज्ञा पुं० तकिया। उपबर्ह [को०]।

उपधायी वि० [सं० उपधायिन्] १ तकिया की भाँति प्रयुक्त। २ तकिया का व्यवहार करनेवाला [को०]।

उपधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर रखी हुई किसी वस्तु को लग्गी आदि से खींचना। २ चिंतन। विमर्श (को०)।

उपधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगमन। २. विचारण। चिंतन। ३ भक्ति। पूजा। अनुगामी। अनुचर [को०]।

उपधि—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० औपधिक] १ जानबूझकर और का और कहना। छल। कपट। २. चक्र या पहिया (को०)। ३. (बौद्ध मत के अनुसार) आधार या नींव (को०)।

उपधिक—वि० (सं०) १ धूर्त। विश्वासघाती। २ झिड़की और धूर्तता से काम लेनेवाला [को०]।

उपधियुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह माल जो असली या खालिस न हो। मिलावटी माल।

उपधूपित—वि० [सं०] १ धूप के धुएँ मे सुवासित। २. मृत्यु के निकट पहुँचा हुआ। ३ कठिन और असह्य पीडा से पीडित [को०]।

उपधूमित योग—संज्ञा पुं० [सं०) फलित ज्योतिष मे वह योग जिसमे यात्रा तथा और शुभ कर्मो का निषेध है, जैसे प्रत्येक दिन का पहला पहर ईशान कोण की यात्रा के लिये, दूसरा पूर्व के लिये, तीसरा अग्निकोण के लिये, चौथा दक्षिण के लिये उपधूमित है।

उपधृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किरण। २. ग्रहण। पकड़ना [को०]।

उपध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओठ। साँस लेना। मुँह से फूँकना [को०]।

उपध्मानी—वि० [सं० उपध्मानिन्] हवा करनेवाला। जोर से फूँकनेवाला [को०]।

उपध्मानीय—संज्ञा [सं०] 'प' वर्ग अर्थात् प्, फ्, ब्, भ्, म्, के पहले आनेवाला महाप्राण विसर्ग जिसका उच्चारण ओठ से होता है [को०]।

विशेष—'प्' और 'फ' के पहले आनेवाला विसर्ग महाप्राण हो जाता है, और ब्, भ्, म्, के पहले आनेवाला विसर्ग 'रेफ' या 'ओत्व' मे बदल जाता है।

उपध्वस्त—वि० [सं०] १ नष्ट या बरबाद किया हुआ। २ मिश्रित। घुला मिला [को०]।

उपनंद—संज्ञा पुं० (सं० उपनन्द) १ व्रज के अधिकारी नंद के छोटे भाई। २. वसुदेव के एक पुत्र। ३ गर्गसंहिता के अनुसार वह जिसके पास पाँच लाख गाएँ हों।

उपनक्षत्र—संज्ञा पुं०[सं०]सहायता नक्षत्र। गौण नक्षत्र या तारा [को०]।

उपनख—संज्ञा पुं० [सं०] अँगुली के नखो मे होनेवाला एक प्रकार का रोग। गलका [को०]।

उपनगर—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का बाहरी भाग। नगर के आसपास बसा हुआ हिस्सा [को०]।

उपनत—वि० [सं०] १ पास आया हुआ। २.पास लाया हुआ। ३. प्राप्त। ४. उपस्थित। ५ विनत। नम्र। ६ (शरणागत के लिये) आश्रित। ७. पास का या सन्निकट का (समय या स्थान) (को०)।

उपनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समीप आना। २ नमन। नमस्कार। ३ प्रणय [को०]।

उपनद्ध—वि० [सं०] बँधा हुआ। २ नधा हुआ। नद्ध।

उपनना(पु)—क्रि० अ० [सं०] पैदा होना। उत्पन्न होना। उपजना। उ०—बन बन वृच्छ न चंदन होई, तन तन बिरह न उपनै सोई।—जायसी (शब्द०)।

उपनय—संज्ञा पुं० [सं०] १ समीप ले जाना। २ बालक को गुरु के पास ले जाना। ३. उपनयन संस्कार। ४. न्याय मे वाक्य के चौथे अवयव का नाम। कोई उदाहरण लेकर उस उदाहरण के धर्म को फिर उपसंहार रूप से साध्य मे घटाना। जैसे,—उत्पत्ति धर्मवाले अनित्य हैं, जैसे, घट (उत्पत्ति धर्मवाला होने से) अनित्य है, वैसे ही शब्द भी अनित्य हैं (उपनय)। उपनय वाक्य के चिह्न 'वैसे ही', 'उसी प्रकार' आदि शब्द हैं। 'उपनय' को 'उपनीति' भी कहते हैं।

उपनयन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपनीत,उपनेता, उपनेतव्य] १. निकट लाना। पास ले जाना। २ यज्ञोपवीत संस्कार। व्रतबंध। जनेऊ।

उपनहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह कपडा जिसमे कोई चीज बँधी हो। २. एक दूसरे को बंधनयुक्त करना [को०]।

उपदर्शक—वि० [सं०] १ राह बतानेवाला । २ द्वाररक्षक । ३ साक्षी । देखनेवाला [को०] ।

उपदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] टीका । भाष्य । व्याख्या [को०] ।

उपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भेंट जो बडे लोगो को दी जाय । नजर । २ घूस । उत्कोच (को०) ।

उपदाग्राहक—वि० [सं०] घूस लेनेवाला । रिशवत लेनेवाला । रिशवती ।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि न्यायाधीश के चरित्र की परीक्षा के लिये खुफिया पुलिश का कोई आदमी उससे जाकर कहे कि एक मेरा मित्र राज्यापराध मे फँस गया है । आप कृपाकर उसको छोड दीजिए और यह धन ग्रहण कीजिए । यदि वह उपदा ग्रहण कर ले तो राज्य उसको 'उपदाग्राहक' समझकर राज्य के बाहर निकाल दे (को०) ।

उपदाता—वि० [सं० उपदातृ] दान करनेवाला [को०] ।

उपदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । २ घूस । उत्कोच [को०] ।

उपदानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपदान' [को०] ।

उपदानवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वृषपर्वा दानव की पुत्री और दुष्यत की माता का नाम । २ वैश्वानर की कन्या का नाम [को०] ।

उपदिग्ध—वि० [सं०] १ दिया हुआ । ढका हुआ । २ घब्बेदार [को०] ।

उपदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो दिशाओं की बीच की दिशा । कोण ।

उपदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसे उपदेश दिया गया हो । २ जिसके विषय मे उपदेश दिया गया हो । जिसके विषय मे कुछ कहा गया हो । ज्ञापित । ३. जिसे दीक्षा दी गई हो (को०) । ४. निर्दिष्ट । निर्देश दिया हुआ (को०) ।

उपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वदाक । बाँदा नामक पौधा [को०] ।

उपदीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक लघु कीट । एक प्रकार का चींटा [को०] ।

उपदीक्षी—वि० [सं० उपदीक्षिन्] १ किसी आरभ या अन्य धार्मिक कार्यों मे समिलित होनेवाला । २ निकट सबधी [को०] ।

उपदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्य वस्तु । प्रत्यक्ष विषय [को०] ।

उपदेव—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष, गधर्व किन्नर आदि छोटे देव [को०] ।

उपदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपदेव' [को०] ।

उपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपदेश्य, उपदिष्ट, उपदेशी, औपदेशिक] १ शिक्षा । सीख । नसीहत । हित की बात का कथन । २ दीक्षा । गुरुमत्र ।

उपदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उपदेशिका] उपदेश करनेवाला । शिक्षा देनेवाला । अच्छी बात बतलानेवाला । उ०—इकबाल बडा उपदेशक है, मन बातो से मोह लेता है । गुफ्तार का गाजी बन तो गया, किर्दार का गाजी बन न सका ।—बाँगेदरा ।

उपदेशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपदेश का भाव या अवस्था । २ सीख । ३ नियम या सिद्धात [को०] ।

उपदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेश की क्रिया । शिक्षा देना [को०] ।

उपदेशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सिद्धात या नियम । २ उपदेश । शिक्षा [को०] ।

उपदेशी—वि० [सं० उपदेशिन्] [वि० स्त्री० उपदेशिनी] उपदेश देनेवाला । शिक्षा देनेवाला । उ०—कहाँ सो गुरु पाऊँ उपदेसी, अगम पथ कर होय सँदेसी ।—जायसी (शब्द०) ।

उपदेश्य—वि० [सं०] १ उपदेश के योग्य । जिसे उपदेश देना उचित हो । २. जिस (बात) का उपदेश करना उचित हो । सिखाने योग्य (बात) ।

उपदेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० उपदेष्टृ] [स्त्री० उपदेष्ट्री] उपदेश देनेवाला शिक्षक ।

उपदेस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उपदेश' । उ०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु ।—मानस, ५१ ।

उपदेसना—क्रि० स० [सं० उपदेश] उपदेश करना । शिक्षा देना । नसीहत करना । उ०—द्विरदहि बहुरि बुलाइ नरेसा, सौंपि गयद यूथ उपदेसा ।—सबल (शब्द०) ।

उपदेहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक ।

उपदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १ गाय का थन । गाय की छीमी । २ वह पात्र जिसमे दूध दुहा जाता है [को०] ।

उपद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपद्रवी] १ उत्पात । आकस्मिक बाधा । हलचल । विप्लव । २ ऊधम । दगा । फसाद । गड़बड ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—खडा करना ।—मचाना ।

३ किसी प्रधान रोग के बीच मे होनेवाले दूसरे विकार या पीड़ाएँ जैसे,—ज्वर मे प्यास सिर की पीडा आदि । जैसे,—यह दवा दो, दाह, आदि सब उपद्रव शात हो जायँगे ।

उपद्रवी—वि० [सं० उपद्रविन्] १ उपद्रव मचानेवाला । हलचल मचानेवाला । दगा करनेवाला । ऊधम मचानेवाला । २. फसादी । बखेडिया ।

उपद्रष्टा[1]—वि० [सं० उपद्रष्ट्] देखनेवाला । दर्शन [को०] ।

उपद्रष्टा[2]—संज्ञा पुं० गवाह । साक्षी [को०] ।

उपद्रुत—वि० [सं०] १. उपद्रवग्रस्त । जहाँ या जिसपर उपद्रव हुआ हो । २ (ज्योतिष के अनुसार) ग्रहणयुक्त [को०] ।

उपद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े द्वार के अतिरिक्त बना हुआ छोटा दरवाजा । लघु द्वार [को०] ।

उपद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा द्वीप [को०] ।

उपधरना—क्रि० अ० [सं० उपधार, अपनी और खींचना] ग्रहण करना । अगीकार करना । अपनाना । शरण मे लेना । सहारा देना । उ०—जिनको साँई उपधरा, तिन्ह बाँका नहिं कोई । सब जग रूसा का करै राखन हारा सोई ।—दादू० (शब्द०) ।

उपधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य धर्म के अतिरिक्त गौण या अमुख्य धर्म [को०] ।

उपधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] संज्ञा १ छल । कपट । २. राजा द्वारा मंत्री, पुरोहित आदि की परीक्षा । ३ व्याकरण मे किसी शब्द के अतिम अक्षर के पहले का अक्षर । ४ उपाधि ।

उपधातु—संज्ञा पुं० [सं०] २ अप्रधान धातु जो या तो लोहे, ताँबे आदि धातुओ के विकार या मैल हैं या उनके योग से बनी हैं अथवा स्वतत्र खानो से निकलती हैं ।

उपजीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जीविका या साधन। उपजीवन। २. रोजी [को०]।

उपजीवी—वि० [सं० उपजीविन्] [स्त्री० उपजीविनी] दूसरे के आधार पर रहनेवाला। दूसरे के सहारे पर गुजर करनेवाला।

उपजीव्य[1]—वि० [सं०] १ जीविका या रोजी देनेवाला। २ संरक्षण देनेवाला [को०]।

उपजीव्य[2]—संज्ञा पुं० १. आश्रयदाता। संरक्षक। २ आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने का साधन। ३ आश्रय। आधार [को०]।

उपजुष्ट—वि० [सं०] १ प्राप्त। गृहीत। २ सेवित [को०]।

उपजोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छा। २ प्रेम। ३ उपभोग। ४. सेवन [को०]।

उपजोपण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपजोप' [को०]।

उपजोपण[2]—क्रि० वि० [सं०] १ स्वेच्छया। इच्छानुसार। २ हर्षपूर्वक। ३ चुपचाप [को०]।

उपज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आत्मोपार्जित ज्ञान। सहज ज्ञान। प्रकृतिदत्त प्रतिभा। २ आविष्कार। ३ नए सिरे से किसी नई वस्तु का निर्माण [को०]।

उपज्ञात—वि० [सं०] १ बिना किसी दूसरे के बताए स्वत ज्ञात। अपने आप जाना हुआ। २ जिसे पहले जाना नहीं गया। नए सिरे से निर्मित। आविष्कृत [को०]।

उपटन[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

उपटन[2]—संज्ञा पुं० [सं० उत्पतन=ऊपर उठना] अंक या चिह्न जो आघात पहुँचाने, दबाने या लिखने से पड जाय। निशान। साँट।

उपटना—क्रि० अ० [सं० उत्पतन=ऊपर उठना] १ आघात, दाब या लिखने का चिह्न पडना। निशान पडना। साँट पडना। जैसे, (क) इस स्याही से लिखे अक्षर उपटे नहीं हैं। (ख) उसने ऐसा तमाचा मारा कि गाल पर उँगलियाँ (उँगलियों के चिह्न) उपट आईं। २ उखडना। (ग) मनमोहन की बतियों में छूटी उपटी यह वेनी दिखा परी है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

उपटा[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उत्पतन=ऊपर आना] १ पानी की बाढ। करार पर पानी का चढना। २ ठोकर।

उपटा[2]—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उखड़वाना। उखाडना। उ०—द्विरद को दंत उपटाय तुम लेत हौ उहै बल आज काहे न सँभारयो २—सूर० (शब्द०)।

विशेष—यह प्रयोग उन प्रयोगों में से है जहाँ सकर्मक रूप अकर्मक के स्थान पर लाया जाता है।

उपटानाⓅ—क्रि० स० [सं० उद्वर्तन, प्रा० उघट्टण] उबटन लगवाना।

उपटारनाⓅ—क्रि० स० [सं० उत्पाटन] उच्चाटन करना। उठाना। हटाना। उ०—कोकिल हरि को बोल सुनाव, मधुवन तें उपटारि श्याम को यह ब्रज लै करि आव।—सूर (शब्द०)।

उपट्टनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उत्पतन] ऊपर की ओर चढ़ना। ऊपर की ओर उठना। उ०—दोउ फौज निजर दिठाल मिलि, उपट्टं सिंधु जनु, लहरि जलि।—पृ० रा०, १। ४४८।

उपडना—क्रि० अ० [सं० उत्पाटन प्रा० उप्पाडन] १ उखडना। २ उपटना। अंकित होना। निशान पडना। उ०—देखा कि उन चरण चिह्नों के पास एक नारी के पाँव भी उपडे हुए हैं।—लल्लू० (शब्द०)।

उपढौकन—संज्ञा पुं० [सं०] उपहार। उ०—सकल को उपढौकन आदि ले, उचित है चलना मथुरापुरी।—प्रि० प्र० १२।

उपडवाना—क्रि० स० [हिं० 'उपडना' का प्रे० रूप] उखडवाना। उत्पाटन कराना [को०]।

उपड़ाना—क्रि० स० [हिं० 'उपडना' क्रिया का प्रे० रूप] दे० 'उपडवाना' [को०]।

उपतपन—वि० [सं० उप+तपन] कष्टकारक। दुःख देनेवाला [को०]।

उपतप्त—वि० [सं०] १ व्यथित। दुःखी। २ जला हुआ या झुलसा हुआ। ३ रोगी [को०]।

उपतप्ता[1]—वि० [सं० उपतप्त] १. दुःख या व्यथा पहुँचानेवाला। २ जलानेवाला [को०]।

उपतप्ता[2]—संज्ञा पुं० १ असाधारण गर्मी या उष्णता। २ गर्मी या जलन का कारण। ३ एक प्रकार का रोग [को०]।

उपतल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १ मकान का ऊपरी तल्ला। भवन की छत पर बना हुआ कक्ष या कमरा। २ बैठने की चौकी [को०]।

उपताप—सं० पुं० [सं०] १ गर्मी। उष्णता। ऊमस। २ व्यथा। पीडा। मनस्ताप। ३ दुर्भाग्य। दुर्दैव। ४ बीमारी। आघात। चोट। ५ शीघ्रता। त्वरा [को०]।

उपतापक—वि० [सं०] १ जलानेवाला। दुःखद। ३ कष्टसहिष्णु [को०]।

उपतापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट पहुँचाना। २ ताप देना। तपाने की क्रिया [को०]।

उपतापी—वि० [सं० उपतापिन्] दे० 'उपतापक' [को०]।

उपतारक—वि० [सं०] सीमा या तट को लाँघकर बहता हुआ [को०]।

उपतिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्लेषा नक्षत्र। २ पुनर्वसु नक्षत्र [को०]।

उपतुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वास्तु विद्या (घर बनाना) में खंभे के नौ बराबर भागों में तीसरा भाग।

उपत्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के पास की भूमि। तराई।

उपदंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ गरमी। आतशक। फिरंग रोग। २. मद्य के ऊपर चखनेवाली वस्तु। गजक। चाट। उ०—राधिका हरि अतिथि तुम्हारे, अधर सुधा उपदंश सौंफ शुचि, विधु-पूरन-मुखवास सचारे।—सूर (शब्द०)। ३. वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पुरुष की लिंगेंद्रिय पर नाखन या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है।

उपदर्शित—वि० [सं०] प्रसंग। अवतरण। सप्रसंग कही गई (बात) [को०]।

उपदंशी—वि० [सं० उपदंशिन्] उपदंश रोग का रोगी। जिसे उपदंश हुआ हो [को०]।

कैसे जग को अपना सकती, कैसे उसके मन को जँचती।—प्रलय सृजन पृ० १२।

विशेष—व्यक्त चेतना को दो भागो मे विभाजित किया जाता है।—केंद्रीय भाग और सीमात भाग अथवा चेतना की कोर। सीमात भाग या चेतना की कोर का ही नाम उपचेतन या अवचेतन है। इस भाग मे विचार भाव और अनुभव रहते हैं। जिनके विषय मे हमे अभी, इस स्थल पर तो कोई ज्ञान नही है, पर चेष्टा करते ही हमे उसका ज्ञान हो सकता है।

उपचेतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंत सज्ञा। अंतश्चेतना। ऊपरी चेतना के भीतर स्थित चेतन शक्ति [को०]।

उपचेय—वि० [सं०] इकट्ठा करने योग्य। सग्रह करने योग्य [को०]।

उपच्छद—संज्ञा पुं० [सं० उपच्छन्द] १ फुसलाना। वहकाना। २ मेल करना। ३ आवरण। ढक्कन। ४ प्रार्थना [को०]।

उपच्छदन—संज्ञा पुं० [सं० उपच्छन्दन] १ फुसलाने या बहलाने की क्रिया या भाव। २ निमत्रित करना। ३ अपनी राय मे मिलाना [को०]।

उपच्छदित—वि० [सं० उपच्छन्दित] १ लालच दिखाकर फुसलाया हुआ। २ अपने मत मे मिलाया हुआ [को०]।

उपच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] ढक्कन। आवरण। चद्दर [को०]।

उपच्छन्न—वि० [सं०] ढका हुआ। छिपाया हुआ [को०]।

उपज—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्त+पद् या उत्पाद्य प्रा० उप्पज्ज] १ उत्पत्ति। उदभव। पैदावार। जैसे, इस खेत की उपज अच्छी है।

विशेष—इसका प्रयोग बड़े जीवों के सबध मे नही होता, विशेषकर वनस्पति के सबध में होता है।

२ मन में आई हुई नई बात। नई उक्ति। उद्भावना। सूझ। जैसे, यह सब कवियो की उपज है। ३ मन मे गढी हुई बात। मनगढत।

मुहा०—उपज की लेना = नई उक्ति निकालना। ४ गाने मे राग की सुदरता के लिये उसमे बँधी हुई तानो के सिवा कुछ तान अपनी ओर से मिला देना। सितार बजानेवाले इसे मिजराव कहते हैं। उ०—धरे अधर उपग उपजै लेत हैं गिरिधारि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

उपजगती—संज्ञा स्त्री० त्रिष्टप् छद का एक भेद या प्रकार, जिसके तीन चरणो मे ग्यारह की जगह बारह वर्ण होते हैं [को०]।

उपजत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] उपज। पैदावार [को०]।

उपजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि। सवर्धन। २ मनुवध। सबध। ३. किसी शब्द के निर्माणार्थ एक अक्षर और जोड देना। ४. सयुक्त वर्ण। ५. शरीर। देह [को०]।

उपजनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पन्न करना। पैदा करना। प्रजनन [को०]।

उपजना—क्रि० अ० [सं० 'उत्पद्यते,' विकरयुक्त 'उत्पद्य' से प्रा० उपज्ज, उपज्ज, उपज+ना] उत्पन्न होना। उगना। उ०—जेहि जल उपजे सकल सरीरा, सो जल भेद न जान कबीरा।—कबीर (शब्द०)। (ख) खेत मे उपजै सब कोई खाय, घर मे उपजे घर बहि जाय।—पहेली (शब्द०)। बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसग सुसग।—मानस। ४। दो० १५।

विशेष—गद्य मे इस शब्द का प्रयोग बड़े जीवो के लिये नहीं होता है। जड़ और वनस्पति के लिये होता है। पर पद्य मे इसका व्यवहार सबके लिये होता है। उ०—जिमि कुपूत के उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं।—मानस, ४। दो० १५।

उपजप्त—वि० [सं०] १ कानाफूसी से बहकाया हुआ। २ कान मे धीरे से बुद्ध भेद की बात कहकर विद्रोह के लिये उकसाया गया [को०]।

उपजाऊ—वि० [हिं० उपज+आऊ (प्रत्य०)] जिसमे अच्छी उपज हो। जिसमे पैदावार अच्छी हो। उर्वर। जरखेज।

यौ०—उपजाऊ भूमि।

उपजाऊपन—संज्ञा पुं० [हिं० उपजाऊ+पन] उर्वरता। उपजाऊ होने का भाव [को०]।

उपजात—वि० [सं०] १ उत्पन्न किया हुआ। २ क्रुद्ध किया हुआ। आविष्ट किया हुआ [को०]।

उपजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वे वृत्त जो इद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा तथा इद्रवशा और वशस्थ के मेल से बनते हैं। इद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मेल से १४ वृत्त बनते हैं—कीर्ति, वाणी, माला शाला हँसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि और सिद्धि। कहीं कही शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा के योग से भी उपजाति बनती है।

उपजाना—क्रि० स० [हिं० उपजना का सकर्मक रूप] उत्पन्न करना। पैदा करना।

विशेष—गद्य मे इसका प्रयोग विशेषत जड और वनस्पति के लिये होता है, बड़े जीवों के लिये नही। पर पद्य मे सबके लिये होता है। उ०—(क) भलेउ पोच सब विधि उपजाए। मानस १। दो० ६। (ख) पिय पिय रटै पपिहुरा रे हिय दुख उपजाव।—विद्यापति, पृ० ५४४।

उपजाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहस्य की बात जो धीरे धीरे कान मे कही जाय। २ विरोध का बीज बोना। ३ भडकाना। ४ पृथक्त्व। अलगाव [को०]।

उपजापक—वि० [सं०] १ नायक या नेता के कान मे भेद की बात डालकर उसे विद्रोह के लिये भडकानेवाला। २ देशद्रोही। विश्वासघात करनेवाला [को०]।

उपजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जिह्वा के मूल मे स्थित छोटी जिह्वा। लोला। लोकर। घटी। जीभ का भीतरी या वर्धित भाग [को०]।

उपजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपजिह्वा' [को०]।

उपजीवक—वि० [सं०] १ किसी उद्यम से जीविका उपार्जित करनेवाला। २. आश्रित। ३ अनुचर। सेवक [को०]।

उपजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपजीवी, उपजीवक] १ जीविका। रोजी। दूसरे का सहारा। निर्वाह के लिये दूसरे का अवलब।

की क्रिया। २. इंद्रियों का अपने अपने काम में असमर्थ होना। अशक्ति। ३ रोग। व्याधि। ४ इन पाँच पातकों का समूह- उपपातक, जातिभ्रंशीकरण, संकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण।—स्मृति। ५ आघात। प्रहार (को०)। ६ आक्रमण। हमला (को०)।

उपघातक—वि० [सं०] [स्त्री० उपघातिका] १ नाशकारक। २ पीडा देनेवाला।

उपघाती—वि० [सं० उपघातिन्] [स्त्री० उपघातिनी] १ नाश- कारी। १ पीडा पहुँचानेवाला।

उपघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय। सहारा। २ शरण (को०)।

उपच—संज्ञा स्त्री० दे० 'उपज'। उ०—क्या आखिर हुआ क्या, फिर कोई उपच की ली। सैर०, पृ० १३।

उपचय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपचयित, उपचित] १ वृद्धि। उन्नति। बढती। २ संचय। जमा करना। ३ कुडली मे लग्न से तीसरा, छठा, दसवाँ या ग्यारहवाँ स्थान। ४ चुनना। चयन (को०)। ५ ढेर। राशि। अबार (को०)।

उपचर—संज्ञा पुं० [सं०] उपचार। दवा। इलाज (को०)।

उपचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपचारित, उपचर्य] १ पास जाना। पहुँचना। २ सेवा पूजा करना। ३ चिकित्सा करना। शुश्रूषा करना (को०)।

उपचरित—वि० [सं०] १ सेवित। पूजित। लक्षण से जाना हुआ।

उपचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा (रोगी की)। २ चिकित्सा।

उपचायी—वि० [सं० उपचायिन्] उपचय करनेवाला। बढानेवाला। (को०)।

उपचाय्य—पुं० [सं०] १ यज्ञ की अग्नि। यज्ञाग्नि के संग्रह करने का कुड (को०)।

उपचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपचारक, उपचारी, उपचारित, औपचारिक] १ व्यवहार। प्रयोग। विधान। २. चिकित्सा। दवा। इलाज। उ०—ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार। ताहि पियाइअ बारुनी, कहहु कौन उपचार।— मानस, २। दो० १८०। ३ सेवा। तीमारदारी। ४. धर्मा- नुष्ठान। ५ पूजन के अग या विधान जो प्रधानत सोलह माने गए हैं जैसे,—आवाहन, आसन, अर्घपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गध, (चदन), पुष्प, धूप दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा, वदना। उ०—कै पूजन को उपचार लै चाहति मिलन मन मोहई।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ४५५।

यौ०—षोडशोपचार।

६ किसी को सतुष्ट करने के लिये उसके मुँह पर झूठ बोलना। खुशामद। ७ घूस। रिश्वत। ८ एक प्रकार की सधि जिसमें विसर्ग के स्थान पर श या स हो जाता है जैसे,—नि छल से निश्छल। नि सन्देह से निस्सदेह। ९. सामवेद का एक परिशिष्ट।

उपचारना(पु)—क्रि० स० [सं० उपचार] १. व्यवहार में लाना। काम मे लाना। २ विधान करना। उ०—घर घर तें आई व्रजसुदरि मगल साज सँवारे। हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मत्र उपचारे।—सूर० (शब्द०)।

उपचारक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० उपचारिका] १ उपचार करने- वाला। सेवा करनेवाला। २ विधान करनेवाला। चिकित्सा करनेवाला। दवा करनेवाला।

उपचारक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आजिजी। विनीतता। नम्रता (को०)।

उपचारच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय मे विकल्प या विरुद्ध कार्य के निदर्शन द्वारा सद्भाव या अभिप्रेत अर्थ का निषेध करना। जैसे,—वादी ने कहा कि 'गद्दी से हुकुम हुआ'; इस पर प्रतिवादी कहे कि 'गद्दी जड है, वह कैसे हुकुम दे सकती है?' तो यह उसका उपचारच्छल है।

उपचारछल—संज्ञा पुं० [सं०] वादी के कहे वाक्य मे जान बूझकर अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ की कल्पना कर दूषण निकालना, जैसे,—किसी ने कहा कि 'ये नव (नौ) कवल हैं' इसपर दूसरा कहे कि 'वाह ये नए कहा हैं?'

उपचारना(पु)—क्रि० स० [सं० उपचार से नाम०] १. व्यवहार मे लाना। काम मे लाना। २ विधान करना। उ०—घर घर ते आई व्रजसुदरी मगल साज सँवारे, हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मत्र उपचारे।—सूर (शब्द०)।

उपचारी—वि० [सं० उपचारिन्] [वि० स्त्री० उपचारिणी] १. उपचार करनेवाला। सेवा करनेवाला। २ चिकित्सा या इलाज करनेवाला।

उपचार्य[1]—वि० [सं०] १ उपचार या सेवा के योग्य। २ चिकित्सा के योग्य।

उपचार्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा।

उपचित[1]—वि० [सं०] १. बढा हुआ। समृद्ध। २. सचित। इकट्ठा। ३ शक्तिमान् (को०)। ४ ढका हुआ। आवरण मे लिपटा हुआ (को०)। ४ जला हुआ। दग्ध (को०)।

उपचिति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सग्रह। राशि। २. वृद्धि। ३ प्रतिष्ठा। ४ लाभ (को०)।

उपचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त समवृत्त जिसके विषम चरणो मे तीन सगण और एक लघु तथा एक गुरु हो एव सम चरणो मे तीन भगण और दो गुरु हो। जैसे,—करुणानिधि माधव मोहना। दीनदयाल सुनो हमारी जू। कमलापति यादव सोहना। मैं शरणागत हौं तुम्हारी जू।—छद०, पृ० ३६९।

उपचित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चित्रा नक्षत्र के पास के नक्षत्र, हस्त और स्वाती। २ दती वृक्ष। ३ मूसाकानी का पौधा। ४. १६ मात्राओं का एक छंद जिसमे आठ मात्रा के बाद एक गुरु होता है और अत मे भी गुरु होता है। यह एक प्रकार की चौपाई है। जैसे, मोरी सुनु चित दै रघुबीरा, करु दाया मो पै बलबीरा।—छद०, पृ० ४५।

उपचूलन—संज्ञा पुं० [सं०] गर्म करना। जलाना (को०)।

उपचेतन—संज्ञा पुं० [सं० उपचेतना] मन का एक भाग। चेतन और अचेतन से भिन्न मानस के बीच की एक अवस्था। उ०— यह क्षितिज पार के स्वर्ण स्वप्न, यह कला अछूती उपचेतन।

दुःख । २ क्लेशों का कारण (को०) । उ०—इस प्रकार समाहित, परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्मल विगत उपक्लेश चित से पूर्वभय की अनुस्मृति का ज्ञान प्राप्त किया ।—हिंदू० सभ्यता —२४० ।

उपक्वरण—सं० पुं० [सं०] वीणा वाद्य की ध्वनि [को०] ।

उपक्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] देखो 'उपक्वरण' [को०] ।

उपक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] धीरे धीरे होनेवाला क्षय । क्रमश क्षीण होना [को०] ।

उपक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिनय के आरंभ मे नाटक के समस्त वृत्तांत का संक्षेप मे कथन । २ आक्षेप । ३ आरंभ (को०) । ४ चर्चा (को०) । ५ फेंकना । उल्लेख या चर्चा (को०) ।

उपक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] १ फेंकने की क्रिया या भाव । २ आक्षेप या कटाक्ष करना । ३ संकेत । ४ उपेक्षा । ५ शूद्र का अन्न पकाने के लिये ब्राह्मण के घर देना [को०] ।

उपखंड—संज्ञा पुं० [सं० उपखण्ड] १ खंड का लघु खंड । २ किसी धारा अथवा उपधारा का छोटा भाग ।

उपखान(पु)—दे० 'उपख्यान' । उ०—यह उपखान साँच है भाई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२७ ।

उपगंता—संज्ञा पुं० [सं० उपगन्तृ] १ पहुँचनेवाला । २ स्वीकार करनेवाला । ३ जानकार । जाननेवाला । ४ ज्ञान रखनेवाला (को०) ।

उपगत—वि० [सं०] १ प्राप्त । उपस्थित । सामने आया हुआ । २ ज्ञात । जाना हुआ । ३ स्वीकार किया हुआ । अंगीकार किया हुआ । ४ जो हुआ हो । घटित (को०) । ५ मिला हुआ । प्राप्त (को०) । ६ गया हुआ (को०) । ७ दिवगत । मृत (को०) ।

उपगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राप्ति । स्वीकार । २ ज्ञान ३ पास जाना । समीप गमन (को०) ।

उपगम—संज्ञा पुं० [सं०] १ पास जाना । २ परिचय । ज्ञान । ३ प्राप्ति । ४ संभोग । ५ साथ । समागम । ६ अनुभूति । ७ वचन । वादा । ८ स्वीकृति । ९ सपन्न करना [को०] ।

उपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपगतृ] १ पास जाना । २ स्वीकार । ३ ज्ञान । ४ जाना । गमन करना (को०) ।

उपगाता—संज्ञा पुं० [सं० उपगातृ] यज्ञ के ऋत्विजों मे से एक, जो गाने मे उद्गाता का साथ देता है ।

उपगामी—वि० [सं० उपगामिन्] जो उपगमन करे [को०] ।

उपगार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उपकार = सहायता, प्रा० उवयार, भलाई हित करना] दे० 'उपकार' उ०—दादू सतगुरु सहज मैं, कीया वह उपगार, निरधन धनवंत करि लिया, गुरु मिलिया दातार ।—दादू० पृ० २ ।

उपगारी(पु)—वि० [सं० उपकारी, प्रा० उवयार] दे० 'उपकारी' [को०] ।

उपगिरि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बाहरी शृंखला या उपत्यका । बाह्य शृंखला ।

विशेष—इस चौड़ाई मे फैले पहाड पहाड़ियाँ नीचे से ऊपर तीन दर्जों में बाँटे जाते हैं, जिन्हे क्रम से बाहरी शृंखला, भीतरी शृंखला और गर्भशृंखला अथवा उपत्यका, छोटा हिमालय और बडा हिमालय कहते हैं । हमारे पुरखे भी इस भेद को पहचानते थे और इन शृंखलाओं को क्रम से उपगिरि, बहिर्गिरि और अंतर्गिरि कहते थे ।—भारत० नि०, पृ० ११० ।

उपगिरि[2]—क्रि० वि० [सं०] पर्वत के निकट [को०] ।

उपगीति—संज्ञा स्त्री० [सं] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम पदों मे १२ और सम पदों मे १५ मात्राएँ होती हैं । अंत मे एक गुरु होता है । विषम गणों मे जगण न होना चाहिए । इसका दूसरा नाम 'गाहू' भी है । उ०—रामा रामा रामा आठों जामा जपें रामा । छाडो सारे कामा पैहो अंतै सुविश्रामा ।—छंद०, पृ० ९६ ।

उपगुप्त—वि० [सं०] गुप्त किया हुआ । छिपाया हुआ [को०] ।

उपगुरु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक अध्यापक [को०] ।

उपगुरु[2]—क्रि० वि० अध्यापक के पास या समीप [को०] ।

उपगूढ[1]—वि० [सं० उपगूढ़] १ छिपा हुआ । २ आलिंगित । मिला हुआ । ३ पकडा हुआ । गृहीत । ४ दबाया हुआ [को०] ।

उपगूढ[2]—संज्ञा पुं० आलिंगन [को०] ।

उपगूहन—संज्ञा पुं० [सं०] १ आलिंगन । उ०—तरंगों ने अपने हाथों मे उपगूहन कर लिया ।—श्यामा०, पृ० १४२ ।

उपग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १ गिरफ्तारी । २ कैद । ३ बंधुआ । कैदी । ४ अप्रधान ग्रह । छोटा ग्रह ।

विशेष—ग्रहों की पुरानी गणना मे राहु केतु आदि उपग्रह माने गए हैं । ५ फलित ज्योतिष मे सूर्य जिस नक्षत्र के हों उससे पाँचवाँ (विद्युन्मुख), आठवाँ (शून्य), चौदहवाँ (सन्निपात) अठारहवाँ (केतु), इक्कीसवाँ (उल्का), बाईसवाँ (कप), तेईसवाँ (वज्रक), और चौबीसवाँ (निर्घात) नक्षत्र भी उपग्रह कहलाता है ।

६ वह छोटा ग्रह जो अपने बडे ग्रह के चारो ओर घूमता है । जैसे,—पृथ्वी का उपग्रह चंद्रमा । ७. वहुयान्त्रिक ग्रह जिसे रॉकेट की सहायता से अंतरिक्ष मे पहुँचाते हैं एवं जो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की सीमा के बाहर एक स्वतंत्र कक्षा मे भ्रमण करने लगता है । ७ रार । पराजय (को०) । ८ कृपा । अनुग्रह (को०) । ९ बढावा । प्रोत्साहन (को०) । १० कुश की राशि (को०) ।

उपग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हथेली मे ली हुई चीज को गिरने या टपकने से बचाने के लिये उसके नीचे दूसरी हथेली लगा देना । २ गिरफ्तार करना । कैद करना । ३ सस्कारपूर्वक अध्ययन । पढना । २ सँभालने का कार्य (को०) ।

उपग्रहसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० उपग्रह सन्धि] सर्वस्व देकर विजेता से की जानेवाली सधि [को०] ।

उपग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपहार । २ उपहार या भेंट देना [को०] ।

उपग्राह्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेंट । उपहार । २ राजा अथवा किसी महापुरुष को दिया जानेवाला उपहार । नजराना [को०] ।

उपघात—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपघातक, उपघाती] १. नाश करने

(शब्द०) । ३ समारंभ । तैयारी (को०) । ४. आभूषण । अलंकार (को०) । ५. पर्व या उत्सव के अवसर पर द्वारशोभा के लिये वंदनवार बनाना, विशेषतया फूलों और मालाओं द्वारा (को०) ।

उपकारक—वि० [सं०] [स्त्री० उपकारिका] १. उपकार करनेवाला । भलाई करनेवाला । २. लाभप्रद (को०) ।

उपकारिका¹—वि० [सं०] उपकार करनेवाली ।

उपकारिका²—संज्ञा स्त्री० १ राजभवन । २ खेमा । तंबू । पटगृह । शिविर । ३ उपकार करनेवाली स्त्री । ४. मिष्टान्न विशेष [को०]।

उपकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भलाई । २. प्रयोजन की सिद्धि ।

उपकारी¹—वि० [सं० उपकारिन्] [स्त्री० उपकारिणी] १. उपकार करनेवाला । भलाई करनेवाला । २. लाभ पहुँचानेवाला । फायदा पहुँचानेवाला । उ०—ससि सपन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै संपति जैसी ।—मानस, ४।१५ ।

उपकारी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपकारिका' [को०] ।

उपकार्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उपकार्या] उपकार किए जाने योग्य । जिसके साथ उपकार करना उचित हो ।

उपकार्या¹—वि० [सं० उप-कार्या] जिस (स्त्री) के साथ उपकार करना उचित हो ।

उपकार्या²—संज्ञा स्त्री० १. खेमा । तंबू । पटगृह । २ राजभवन । शाही-महल [को०] ।

उपकिरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ विकीर्ण करना । फैलाना । छितरा देना । २ फेंक देना । ३ ढकना । ४ गाड़ना [को०] ।

उपकिरण²—क्रि० वि० किरणों के पास (को०) ।

उपकीर्ण—वि० [सं०] १ ढका हुआ । २ फैला हुआ । विकीर्ण [को०] ।

उपकुंचि—संज्ञा स्त्री० [सं० उपकुञ्चि] दे० 'उपकुंचिका' [को०] ।

उपकुंचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० उपकुञ्चिका] १. छोटी इलायची । २ कालाजीरा [को०] ।

उपकुर्वाण¹—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचारियों के दो भेदों में से एक । वह ब्रह्मचारी जो स्वाध्याय पूरा कर गुरु दक्षिणा देकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, अर्थात् यावज्जीवन ब्रह्मचारी न रहे ।

उपकुर्वाण²—वि० उपकार करनेवाला [को०] ।

उपकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खाईं । परिखा । २ नहर । ३. पिप्पली या पीपरि [को०] ।

उपकुश—संज्ञा पुं० [सं०] मसूड़ों का एक रोग, जिसमें दाँत हिलने लगते हैं, उनमें मंद मंद पीड़ा होती है ।

उपकूजित—वि० [सं०] १ प्रतिध्वनित । २. प्रतिध्वनिपूर्ण [को०] ।

उपकूप—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा कुँआ । वह कुँआ जो ईंट पत्थर से नहीं बँधा होता, कच्चा ही रहता है । पोंडा (देश०) [को०] ।

उपकूल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ किनारा । तट । २ तट के पास की भूमि । तीर के पास की जमीन ।

उपकूल²—क्रि० वि० तट पर स्थित । तट के पास [को०] ।

उपकृत—वि० [सं०] १ जिसके साथ उपकार किया गया हो । जिसके साथ भलाई की गई हो । उपकारप्राप्त २ । कृतज्ञ । एहसान-मंद ।

उपकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपकार । भलाई ।

उपकृती—वि० [सं० उपकृतिन्] उपकारी । दूसरे का हित करनेवाला [को०] ।

उपक्रंता—वि० [सं० उपक्रन्तृ] शुरू करनेवाला । आरंभ करनेवाला [को०] ।

उपक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १ कार्यारंभ की पहली अवस्था । प्रथमारंभ । अनुष्ठान । उठान । २. किसी कार्य को आरंभ करने के पहले का आयोजन । योजना । तैयारी ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. भूमिका । तमहीद ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

४ चिकित्सा । इलाज । ५. समीप जाना (को०) । ६ प्रस्तावना । पूर्ववचन (को०) । ७ शुश्रूषा (को०) । ८ सत्य का परीक्षण या सचाई की जाँच (को०) । ९ वह संस्कार जो वेदारंभ के पूर्व किया जाता था [को०] ।

उपक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उपक्रमणी] १. आरंभ । अनुष्ठान । २. आयोजन । तैयारी ३. भूमिका । तमहीद । ४. चिकित्सा । इलाज (को०) । ५ समीप जाना (को०) ।

उपक्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी पुस्तक के आदि में दी हुई विषयसूची । किसी पुस्तक के विषयों का संक्षिप्त विवरण । २ एक पुस्तक जिसमें वेद के मंत्रों और सूक्तों के ऋषि, छंद और देवता लिखे रहते हैं ।

उपक्रमणीय—वि० [सं०] १. पास जाने योग्य । २ आरंभ करने योग्य । ३. रोगी के परिचारक से संबंधित । औषधि विषयक काम [को०] ।

उपक्रमिता—वि० [सं० उपक्रमितृ] उपक्रम करनेवाला । १ आरंभ करनेवाला । २ चिकित्सा करनेवाला । पास जानेवाला । ३ सत्यता की परख या मौलिकता की जाँच करनेवाला । ४. विहित संस्कार करनेवाला [को०] ।

उपक्रांत—वि० [सं० उपक्रान्त] १ शुरू किया हुआ । आरब्ध । २ जिसके पास जाया जा चुका है । ३. दया किया हुआ । चिकित्सित । [को०] ।

उपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपकार । हित । भलाई [को०] ।

उपक्रीडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेल का मैदान । खेलने का स्थान [को०] ।

उपक्रीत—वि० [सं०] पोष्य । पालन पोषण किया हुआ (पुत्र) ।

उपक्रुष्ट¹—वि० [सं०] १ निंदित । २ झिड़की खाया हुआ । फटकारा हुआ [को०] ।

उपक्रुष्ट²—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नीच जाति । २ बढ़ई [को०] ।

उपक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. निंदा । २. झिड़की [को०] ।

उपक्रोशन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा करना । २ झिड़कना । कोसना [को०] ।

उपक्रोष्टा¹—वि० [सं० उपक्रोष्टृ] निंदक । दोष लगानेवाला [को०] ।

उपक्रोष्टा²—संज्ञा पुं० गधा । गर्दभ [को०] ।

उपक्लिन्न—वि० [सं०] १ भीगा हुआ । गीला । २ सड़ा हुआ [को०]

उपक्लेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्ध धर्मानुसार लघु क्लेश । हलका

उन्हांला⑮—संज्ञा पुं० [स० उष्णकाल, प्रा० उण्हाल] दे० 'उन्हाला' [को०]।

उन्हानि⑮—संज्ञा स्त्री० [हिं० उनहारि] समता। बराबरी। उ०—इंदु, रवि, चंद्र न, फणींद्र न, मुनींद्र न, नरेंद्र न, नगेंद्र गति जानैं जग जैनी की। देव, व्रज दंपति सुहाग भाग संपति की सुख की उन्हानि ये करैं न एक रैनी की।—देव (शब्द०)।

उन्हार⑮†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुहार'। उ०—इसलिये हुआ कि इस बालक की ग्रोर तुम्हारी उन्हार बहुत मिलती है। शकु०, पृ० १०१।

उन्हारि⑮—संज्ञा स्त्री० [स० अनुहार] १. समता। तुल्यता। आकृतिगत एकता। २ किसी वस्तु या व्यक्ति के समान बनी हुई वस्तु या व्यक्ति [को०]।

उन्हारी† —संज्ञा स्त्री० [बुंदेलखंडी—हिं० उन्हांला] फागुन, चैत और वैशाख मे तैयार होनेवाली फसल, जिसे 'रवी' कहते हैं।

उन्हाला⑮—संज्ञा पुं० [स० उष्णकाल, प्रा० उण्हाल] गर्मी का मौसम। ग्रीष्मकाल।

उपंग —संज्ञा पुं० [स० उपाङ्ग या उप+अंग] १ एक प्रकार का बाजा। नसतरंग। उ०—(क) चंग उपंग नाद सुर तूरा। मुहर बस बाजे भल तूरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उघटत स्याम नृत्यति नारि। धरे ग्रधर उपंग उपजें लेत हैं गिरिधारि।—सूर० १०।१०५६। २ उद्धव के पिता।

उपत⑮—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उत्पन्न हिं० उपन] उत्पन्न, पैदा। उ०—तरवर झरहिं, झरहिं वन ढाखा। भई उपत फूल कर साखा॥ जायसी (शब्द०)।

उपंग⑮— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उपंग[२]'। उ०—हरि गोकुल की प्रीति चलाई, सुनहु उपँग सुत मोहिं न विसरत व्रजवासी सुखदाई।—सूर०, १०।३४२२।

उप—उप० [स०] यह उपसर्ग जिन शब्दो के पहले लगता है उनमे इन अर्थों की विशेषता करता है समीपता, जैसे—उपकूल, उपनयन, उपगमन। सामर्थ्य (वास्तव मे ग्राधिक्य) जैसे—उपकार, गौणता या न्यूनता, जैसे—उपमंत्री, उपसभापति। उपपुराण, व्याप्ति, जैसे—उपकीर्ण।

उपइया†—संज्ञा पुं० [स० उपाय—देश० उपैया या उपइया] ढंग। तरीका। उपाय।

उपकंठ[१]—संज्ञा पुं० [स० उपकण्ठ] १ समीपता। निकटता। २ गाँव का छोर। ३. घोडे की एक चाल, जिसे सरपट चाल कहते हैं। इस चाल मे वेग की ग्रधिकता और त्वरा दर्शनीय होती है। किसी दूरस्थ स्थान पर शीघ्र पहुँचने के लिये सवार घोड़े को इसी चाल से दौड़ाता है।

उपकंठ[२]—वि० १ पास का। समीप रहनेवाला। २. निकट [को०]।

उपकथन—संज्ञा पुं० [स०] १ प्रत्युत्तर। किसी के कथन के उत्तर में कही गई बात। २ अपने पूर्वकथन के समर्थन मे कही गई बात। ३ आलोचना [को०]।

उपकथा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रासंगिक कथा। मुख्य कथा के प्रसंग मे ग्रा जानेवाली गौण कथा जो मुख्य कथा को और सजीव बना देने का कार्य करती है। २ लघु आख्यायिका। छोटी कहानी [को०]।

उपकनिष्ठिका—संज्ञा स्त्री० [स०] सबसे छोटी उँगली के पास की उँगली। अनामिका।

उपकन्या—संज्ञा स्त्री० [स०] पुत्री की सखी।

उपकन्यापुर—सं० पुं० [स०] अंत पुर के समीप। जनानखाने के पास [को०]।

उपकरण— संज्ञा पुं० [स०] १ साधक वस्तु। सामग्री। सामान। २ राजाओ के छत्र चँवर आदि राजचिह्न। ३ राजसेवक। राजा के नौकर चाकर (को०)। ४ दूसरे का हित करना। सेवा करना। सहायता देना (को०)। ५ उपकार या भलाई करना (को०)। ६ यत्र। और (को०)। ७ आजीविका। साधन (को०)। ८ राजा के छत्र चामर आदि (को०)। ९ राजा के सेवक या अनुचर (को०)।

उपकरना⑮—क्रि० स० [स०] उपकार करना। भलाई करना। उ०—(क) युक्ते साँठ गाँठ जो करे, साँकर परे सोइ उपकरे।—जायसी (शब्द)। (ख) जहाँ परस्पर उपकरत तहाँ परस्पर नाम। वरनत सब ग्रथनि मते कवि कोविद मतिराम।—मतिराम (शब्द०)।

उपकर्ण[१]—संज्ञा पुं० [स०] सुनना [को०]।

उपकर्ण[२]—क्रि० वि० कान के पास। कान मे [को०]।

उपकर्तन—संज्ञा पुं० [स०] १ श्रवण करना। २ कान देना [को०]।

उपकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [स०] लोकवाद। जनश्रुति। अफवाह [को०]।

उपकर्ता—संज्ञा पुं० [स० उपकर्तृ] [स्त्री० उपकर्त्री] उपकार करनेवाला। भलाई करनेवाला।

उपकर्म—संज्ञा पुं० [स० उपकर्मन्] उपनयन संस्कार मे बटु का सिर सूँघने का शास्त्रविहित कृत्य [को०]।

उपकर्या—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपकार्या' [को०]।

उपकर्षण—संज्ञा पुं० [स०] समीप खीचना। पास लाना [को०]।

उपकल्प—संज्ञा पुं० [स०] १ आभूषण। २ धन संपत्ति। ३ सामग्री। साज सामान [को०]।

उपकल्पन—संज्ञा पुं० [स०] १ बनाना। प्रस्तुत करना। २ तैयारी करना। आयोजन [को०]।

उपकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय करना। मन मे स्थिर करना। २. बनाना। आविष्कार करना। ३ तैयार करना [को०]।

उपकल्पित—वि० [स०] १ प्रस्तुत। तैयार। २ परिकल्पित। आयोजित [को०]।

उपकार—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उपकारक, उपकारी, उपकार्य, उपकृत] १ भलाई। हितसाधन। नेकी।

क्रि० प्र०—करना, मानना=की हुई भलाई को याद रखना।—कृतज्ञ होना।

यौ०—कृतोपकार। परोपकार।

२ लाभ। फायदा। जैसे—इस औषधि ने बड़ा उपकार किया

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकों के अनुसार जीवन के झंझट, विश्राम के अभाव, मादक द्रव्यों के सेवन, कुत्सित भोजन, घोर व्याधि, अधिक संतानोत्पत्ति, अधिक विषय भोग, सिर की चोट आदि से उन्माद होता है। डाक्टरों ने उन्माद के दो विभाग किए हैं एक तो वह मानसिक विपर्यय जो मस्तिष्क के अच्छी तरह बढ़कर पुष्ट हो जाने पर होता है, दूसरा वह जो मस्तिष्क की वाढ के रुकने के कारण होता है। उन्माद प्रत्येक अवस्था के मनुष्यों को हो सकता है, पर स्त्रियों को २५ और ३५ के बीच और पुरुषों को ३५ और ५० के बीच अधिक होता है। २. रस के ३३ संचारी भावों में से एक, जिसमें वियोग आदि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

यौ०— उन्मादग्रस्त।

उन्मादक—वि० [सं०] १ चित्तविभ्रम उत्पन्न करनेवाला। पागल करनेवाला। २ नशा करनेवाला।

उन्मादन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ उन्मत्त करने का कार्य। मतवाला करने की क्रिया। २ कामदेव के पाँच वाणों में से एक।

उन्मादन[2]—वि० उन्मत्त करनेवाला [को०]।

उनमादी—वि० [सं० उन्मादिन्] [वि० स्त्री० उन्मादिनी] जिसे उन्माद हुआ हो। उन्मत्त। पागल। बावला।

उन्मान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ नापने या तौलने का कार्य। २ नाप। तौल। ३ द्रोण नाम की पुरानी तौल जो ३२ सेर की होती थी।

उन्मान(पु)[2]—संज्ञा पुं० दे० 'अनुमान'।

उन्मार्ग[1]—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उन्मार्गी] १ कुमार्ग। बुरा रास्ता। २ बुरा ढंग। बुरी चाल। निकृष्ट आचरण।

उन्मार्ग[2]—वि० [सं०] कुमार्ग पर चलनेवाला। बुरे चाल चलनेवाला [को०]।

उन्मार्गी—वि० [सं० उन्मार्गिन्] [स्त्री० उन्मार्गिनी,] कुमार्गी। बुरी राह पर चलनेवाला। बुरे चाल चलन का।

उन्मार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ रगड़कर साफ करना। २ किसी दाग या धब्बे को मिटाना [को०]।

उन्मार्जित—वि० [सं०] १ रगड़कर साफ किया हुआ। २ मलकर और धोकर धब्बा मिटा हुआ। शुद्ध। साफ [को०]।

उन्मित—वि० [सं०] २ तौला हुआ। २ जिसकी माप की गई हो [को०]।

उन्मिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नापा हुआ। २ तौला हुआ [को०]।

उन्मिष[1]—वि० [सं०] १ खिला हुआ। विकसित। २ खुला हुआ (नेत्र) [को०]।

उन्मिष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ खोलना (आँखों का)। २ विकसित होना। खिलना। (जैसे, कमल के फूल का)। ३ उठना या उगना। ४ चमकना। उद्दीप्त होना [को०]।

उन्मिषित—वि० [सं०] १ खुला हुआ। २ फूला हुआ। विकसित।

उन्मीलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उन्मीलक, उन्मीलनीय, उन्मीलित] १ खुलना (नेत्र का)। २ विकसित होना। खिलना।

उन्मीलना(पु)—क्रि० स० [सं० उन्मीलन] १ खोलना २ विकसित करना। खिलाना [को०]।

उन्मीलित[1]—वि० [सं०] खुला हुआ।

उन्मीलित[2]—संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं के बीच इतना अधिक सादृश्य वर्णन किया जाय कि केवल एक ही बात के कारण उनमें भेद दिखाई पड़े। उ०—डीठि न परत, सयान-दुति कनकु कनक सें गात। भूषन कर करकस लगत परसि पिछाने जात। विहारी र०, दो० ३३३। यहाँ सोने के गहनें और सोने के ऐसे शरीर के बीच केवल छूने से भेद मालूम होता है।

उन्मुक्त—वि० [सं०] खुला हुआ। अच्छी तरह मुक्त। स्वच्छंद।

उन्मुख—वि० [सं०] [स्त्री० उन्मुखी] १ ऊपर मुँह किए। ऊपर ताकता हुआ। २ उत्कंठा से देखता हुआ। ३ उत्कंठित। उत्सुक। ४ उद्यत। तैयार। जैसे, गमनोन्मुख। प्रसवोन्मुख। ५ शब्द करता हुआ। ध्वनित (को०)। ६ मुख से बाहर आता हुआ [को०]।

उन्मुखर—वि० [सं०] बहुत मुखर। बहुत शोर मचानेवाला। अति-वाचाल [को०]।

उन्मुग्ध—वि० [सं०] १ अत्यंत आसक्त। २ अतिशय मूर्ख। ३ व्यग्र। व्याकुल [को०]।

उन्मुद्र—वि० [सं०] १ मुद्रारहित। जिसपर मुहर न लगी हो। २ नियंत्रणविहीन। ३. खिला हुआ [को०]।

उन्मूलक—[सं०] उखाड़नेवाला। समूल नष्ट करनेवाला। ध्वस्त करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

उन्मूलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उन्मूलक, उन्मूलनीय, उन्मूलित] १ जड़ से उखाड़ना। समूल नष्ट करना। ध्वस्त करना। मटियामेट करना।

उन्मूलनीय—वि० [सं०] १ उखाड़ने योग्य। २ नष्ट करने योग्य।

उन्मूलित—वि० [सं०] १ उखाड़ा हुआ। २. नष्ट किया हुआ।

उन्मृष्ट—वि० [सं०] १ रगड़कर साफ किया हुआ। २ मिटाया हुआ। ३ शुद्ध किया हुआ [को०]।

उन्मेदा —संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थूलता। मोटापन [को०]।

उन्मेष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उन्मिषित] १. खुलना (आँख का)। २ विकास। खिलना। उ०—समस्त चराचर में सामान्य हृदय की अनुभूति का जैसा तीव्र और पूर्ण उन्मेष करुणा में होता है वैसा किसी और भाव में नहीं।—चिंतामणि, भाग २, पृ० ५७। ३. थोड़ा प्रकाश। थोड़ी रोशनी।

उन्ह(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'उन' उ०—ता मधि पुरी ऐसी सोभा मानो भँवर लपटात, उन्ह मधि उड़ि परे रंग मँजीठे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६४। (ख) उन दूत देखें पायऊँ दरस गोसाईं केर।—जायसी ग्रं०, पृ० ८।

उन्हाँलागम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उष्णकालागम प्रा० उण्हाल+सं० आगम] ग्रीष्म ऋतु। जेठ और असाढ़।—डिं०।

कल से कुछ उन्नीस अवश्य है। (मात्रा के सबध मे इस मुहावरे का प्रयोग केवल दशा सूचित करने के लिये होता है, जिसमे गुण का कुछ भाव आ जाता है।) **उन्नीस बीस होना**=(१) मात्रा मे कुछ कम होना। थोडा घटना। जैसे, कहिए इस दवा से आपका दर्द कुछ उन्नीस बीस है। (मात्रा के सबध मे इस मुहावरे का प्रयोग केवल दशा सूचित करने के लिये होता है जिसमे गुण का कुछ भाव आ जाता है) (२) गुण मे घटकर होना। जैसे, यह कपडा उससे किसी तरह उन्नीस नही है। (३) आपत्ति आना। बुरी घटना का होना। ऐसी वैसी बात न होना। भला बुरा होना। जैसे, क्यो पराए लडके को अपने घर रखते हो कुछ उन्नीस बीस हो जाय तो मुश्किल हो। **(दो वस्तुओ का परस्पर) उन्नीस बीस होना**=एक का दूसरे से कुछ अच्छा होना। जैसे मैंने दोनो धोतियाँ देखी हैं। कुछ उन्नीस बीस जरूर हैं। **उन्नीस बीस का फर्क**=बहुत ही थोडा अतर।

उन्नीसवाँ--वि० [हिं० उन्नीस+वाँ (प्र०)] गिनती मे उन्नीस के स्थान पर पडनेवाला। अठारहवें के बाद का।

उन्नेता[1]—सज्ञा पुं० [स०] यज्ञ करनेवाले सोलह ऋत्विजो मे से चौदहवाँ, जो तैयार सोमरस को ग्रहो या पात्रो मे ढालता है।

उन्नेता[2]--क्रि० १ उत्कर्ष या अभ्युदय करनेवाला या लानेवाला। २ ऊपर ले जानेवाला [को०]।

उन्नैना(पु)—क्रि० अ० [स० उन्नयन] झुकना। नत होना। उ०—लागि सुहाई हरफारयोरी। उन्नै रही केरा की घौरी।—जायसी (शब्द०)।

उन्मथी—सज्ञा पुं० [स० उन्मन्थ] कान का एक रोग जिसमे कान की लवें सूज आती हैं और उनमे खाज होती है। यह रोग कान के लव के छेद को आभूषण आदि पहनने के निमित्त बहुत बढाने से होता है।

उन्मथक[1]--वि० [स० उन्मन्थक] १ मथनेवाला। २. गति देनेवाला [को०]।

उन्मथक[2]—सज्ञा पुं० कान का फूलना [को०]।

उन्मथक[3]—वि० १ मथन करनेवाला। २. गति देनेवाला [को०]।

उन्मकर—सज्ञा पुं० [स०] मकर की आकृतिवाला कान का एक आभूषण [को०]।

उन्मज्जक[1]—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का तपस्वी [को०]।

उन्मज्जक[2]—वि० [स०] पानी मे डुबकी लगानेवाला। पानी से बाहर आनेवाला [को०]।

उन्मज्जन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्मज्जनीय, उन्मज्जित] मज्जन या डूबने का उल्टा। निकलना। उठना।

उन्मत्त[1]—वि० [स०] [सज्ञा उन्मत्तता] १ मतवाला। मदाध। २ जो आपे मे न हो। ३ पागल। बावला। सिडी। विक्षिप्त।

यौ०--**उन्मत्तप्रलपित, उन्मत्त प्रलाप**=पागलो की बातचीत। अडबड और निरर्थक वचन।

उन्मत्त[2]—सज्ञा पुं० १ धतूरा। २ मुचकुद का पेड।

यौ०—**उन्मत्त पचक**=धतूरा, बकुची, भाँग, जाविनी और खसखास इन पाँच मादक द्रव्यो का समुच्चय। **उन्मत्तरस**=पारा, गधक, सोठ, मिर्च और पीपल के सयोग से बनी हुई एक रसोषध जिसे नाक मे नास देने से सन्निपात दूर होता है।

उन्मत्तक—वि० [स०] उन्मत्त। पागल [को०]।

उन्मत्तकीर्ति—सज्ञा पुं० [स०] शिव। महादेव [को०]।

उन्मत्तलिगी—वि० [स० उन्मत्तलिङ्गिन्] उन्मत होने या पागलपन का बहाना करनेवाला [को०]।

उन्मत्तवेश—सज्ञा स० [स०] शिव। रुद्र [को०]।

उन्मत्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] मतवालापन। पागलपन।

उन्मथन—सज्ञा पु०[स०] १ मथना। बिलोना। २ क्षुभित करना। ३ हिलाना। ४. मारण। ५ फेंकना [को०]।

उन्मथित—वि० [स०] १ मथा हुआ। २ क्षुभित। ३ मिलाया हुआ। मिश्रित [को०]।

उन्मद[1]—वि० [स०] १ पागल करनेवाला। उन्मत्त बनानेवाला [को०]।

उन्मद[2]--सज्ञा पु० १ उन्माद। पागलपन। २ नशा [को०]।

उन्मदन—सज्ञा पु० [स०] कामपीडित। प्रेम मे मत्त। गभीर प्रेम मे अपने को भूला हुआ [को०]।

उन्मदिष्णु—वि० [स०] १ मत्त। मतवाला। २ मद चुआता हुआ (हाथी) [को०]।

उन्मन--वि० [स०] अनमना। उदास। अन्यमनस्क।

उन्मनस्क— वि० [स०] १ खोए हुए मनवाला। अन्यमनस्क। २ व्याकुल। व्यग्र। ३ लालायित। ४ शोकमग्न [को०]।

उन्मना--वि० स्त्री० [स० उन्मनस्] दे० 'उन्मन'। उ०—शकाएँ थी विकल करती काँपता था कलेजा, खिन्ना दीना परम मलिना उन्मना राधिका थी—प्रिय०, पृ० ५१।

उन्मनी--सज्ञा स्त्री० [स०] खेचरी, भूचरी आदि हठयोग की पाँच मुद्राओ मे से एक। इसमे दृष्टि को नाक की नोक पर गडाते हैं और भौं को ऊपर चढाते हैं।

उन्मयूख—वि० [स०] चमकता हुआ। प्रकाशवान्। तेजस्वी [को०]

उन्मर्द—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उन्मर्दन' [को०]।

उन्मर्दन—सज्ञा पुं० [स०] १. मलना। २ रगडना। ३. एक सुगधित द्रव्य जिसे शरीर मे मलते हैं। ४ वायु का शुद्धीकरण [को०]।

उन्माद—स० पुं० [स० उद्+मद्, 'चित्तविभ्रमे'] [वि० उन्मादक, उन्मादी] १ पागलपन। बावलापन। विक्षिप्तता। चित्तविभ्रम। वह रोग जिसमे मन और बुद्धि का कार्यक्रम बिगड जाता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार भाँग, धतूरा आदि मादक द्रव्यो तथा प्रकृतिविरुद्ध पदार्थों के सेवन तथा भय, हर्ष, शोक, आदि की अधिकता से मन वातादि दोषयुक्त हो जाता है और उसकी धारणा शक्ति जाती रहती है। बुद्धि ठिकाने न रहना, शरीर का बल घटना, दृष्टि स्थिर न रहना आदि उन्माद के पूर्वरूप कहे गए हैं। उन्माद के छह मुख्य भेद माने गए हैं—वातोन्माद, पित्तोन्माद, कफोन्माद, सन्निपातोन्माद, शोकोन्माद और विषोन्माद।

अंगन मे यौवन सुभग लसत कुसुम उनहार ।—शकुतला, पृ० ५५।

उनहारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुहार] समानता । सादृश्य । एकरूपता । उ०—(क) अपनी स्त्री की उनहारि सो हरिदास को पहिचाने ।—दो सौ बावन, भा० १, पृष्ठ २७० । (ख) गिरा गग उनहारि काव्य रचना प्रेमाकर ।—श्रीभक्ति० पृ० ५५५ । (ग) रचक कहि वलि पिय उनहारी ।—नद० ग्र०, पृ० १२८ ।

उनाना(पु)—क्रि० स० [स० अव+नम, प्रा० श्रोणम=नमाना, अवनत करना] १ झुकाना । २. लगाना ।

मुहा०—कान उनाना=सुनने के लिये कान लगाना । उ०—पामा सारि कुँअर सब खेलहिं श्रीनद गीत उनाहिं, चैन चाव तस देखा जनु गढ छेंका नाहिं ।—जायसी (शब्द०) ।

३ सुनना । ध्यान देना । उ०—लाख करोरहि वस्तु बिकाई, सहसन केर न कोउ उनाई ।—जायसी (शब्द०) । ४ आज्ञा मानना । कहने पर कोई काम करना ।

उनारना(पु)—क्रि० स० [हिं० उनरना] १ बढाना । २ खिसकाना । ३ उठाना ।

उनासी(पु)—वि० [सं० ऊनाशीती] दे० 'उन्नासी' ।

उनि(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'उन' । उ०—नहि निकसत लाई वारा, उनि आवत ही फुफकारा ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० १४२ ।

उनिहार(पु)—वि०[स० अनुहार]दे० 'उनहार' । उ०—इनमे कृष्ण की उनिहार है ।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १३ ।

उनीदा—वि० [स० उन्निद्र] [स्त्री० उनींदी] बहुत जागने के कारण अलसाया हुआ । नींद से भरा हुआ । नींद मे माता हुआ । ऊँघता हुआ । उ०—(क) श्याम उनींदे जानि मातु रचि सेज विछायो, तापै पौढे लाल अतिहि मन हरख बढ़ायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन, सिय रघुवर के भए उनींदे नैन ।—तुलसी ग्र०, पृ० २० । (ग) लटपटी पाग सिर साजत, उनींदे अग द्विजदेव ज्यों त्यों कै सँभारत सवै वदन ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

उनैना(पु)—क्रि० अ० दे० [स० अवनमन या अवलम्बन] १ झुकना । २ छा जाना । उ०—आई उनै मुह मे हँसी, कोहि तिया पुनि चाप सी भौंहु चढाई ।—इतिहास, पृ० २५४ ।

उन्नईस(पु)—वि०, संज्ञा पु० [स० ऊनविंश, प्रा० अउणवीस] दे० 'उन्नीस' ।

उन्नत—वि० [स०] १. ऊँचा । ऊपर उठा हुआ । २ वृद्धिप्राप्त । वढा हुआ । समृद्ध । ३. श्रेष्ठ । वडा । महत् ।

उन्नतकोकिला—संज्ञा स्त्री० [स०] एक वाद्ययंत्र [कौ०] ।

उन्नतांश—संज्ञा पु० [स०] दूज के चद्रमा का वह छोर जो दूसरे से ऊँचा हो ।

विशेष—फलित ज्योतिष मे इसका विचार होता है कि चद्रमा का वॉया छोर उन्नत है या दाहिना ।

उन्नति—संज्ञा स्त्री० [स०] १. ऊँचाई । चढाव । २ वृद्धि । समृद्धि । तरक्की । बढ़ती ।

उन्नतिशील—वि० [स०] उन्नति के लिये प्रयत्न करनेवाला । जिसके उन्नति करने की पूरी पूरी आशा हो [कौ०] ।

उन्नतोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १ चाप या वृत्तखड के ऊपर का तल । २ वह पदार्थ जिसका वृत्तखड ऊपर की ओर उठा हुआ हो । जैसे, उन्नतोदर शीशा ।

उन्नद्ध—वि० [सं०] १. खूब बँधा हुआ । २ फूला हुआ । ३. बढ़ा हुआ । ४. अभिमानी । ५. अत्यत [कौ०] ।

उन्नवी—संज्ञा पु० [स०] सकीर्ण राग का एक भेद ।

उन्नमन—संज्ञा पु० [सं०] १ उठाने का कार्य । उठाना । ऊपर ले जाना । २ उन्नयन । उत्कर्ष । अभ्युदय [कौ०] ।

उन्नमित—वि० [स०]१ उत्कर्षित । उन्नति किया हुआ । २ वढाया हुआ । वर्धित [कौ०] ।

उन्नम्र—वि० [सं०] उठा हुआ । ऊँचा । उच्च [कौ०] ।

उन्नयन—वि० [सं०] १ आँखें ऊपर को करनेवाला । २ उन्नतिशील । नेतृत्व करनेवाला [कौ०] ।

उन्नस—वि० [स०] ऊँची नासिकावाला । ऊँची नाकवाला [कौ०] ।

उन्नाद—संज्ञा पु० [सं०] १ उत्कर्ष । विकास । उन्नति । २ ऊपर ले जाना । उठाना । ३ जोर का नाद या शब्द [कौ०] ।

उन्नहन—वि० [स०] निर्बाध । अबाध [कौ०] ।

उन्नाव—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का बेर जो अफगानिस्तान से सूखा हुआ आता है और हकीमी नुस्खों मे पडता है ।

उन्नावी—वि० [अ० उन्नाव+हिं० ई (प्रत्य०)] १ उन्नाव के रग का । कालापन लिए हुए लाल । स्याही लिए हुए सुर्ख । लालो ।

उन्नाय—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्नाय] १ उच्चता । उत्थान । २. वितर्क । सोच विचार । ३ निष्कर्ष । परिणाम । ४. सादृश्य । सामान्यता । तद्रूपता [कौ०] ।

उन्नायक—वि० [स०] [स्त्री० उन्नायिका] १. ऊँचा करनेवाला । उन्नत करनेवाला । २. बढानेवाला । तरक्की देनेवाला ।

उन्नासी[1]—वि० [स० ऊनाशीति, प्रा० अउणासीति] सत्तर और नौ । एक कम अस्सी ।

उन्नासी[2]—संज्ञा पु० सत्तर और नौ की सख्या या अक ।

उन्नाह—संज्ञा पु० [सं० उत्+नह] १ उभार । अग्रभाग की ओर बढाव । अतिवृद्धि । जैसे—स्तनोन्नाह । अतिशयता । आधिक्य । २ आगे की ओर निकला हुआ । ३ बाँधना । ४ अभिमान । घमड । भाजी [कौ०] ।

उन्निद्र[1]—वि० [स०] १ निद्रारहित । २. जिसे नींद न आई हो । जैसे—उन्निद्ररोग । ३ विकसित, खिला हुआ ।

उन्निद्र[2]—संज्ञा पुं० नींद न आने का रोग [कौ०] ।

उन्नीस[1]—वि० [स० एकोनविंशति या ऊनविंश प्रा० एकोनवीसा, एकूनवीसा प्रा० अउणवीस] एक कम बीस । दस और नौ ।

उन्नीस[2]—संज्ञा पुं० दस और नौ की सख्या या अक ।

मुहा०—उन्नीस विस्वे (१) एक बीवे, वीस विस्वे का उन्नीस भाग । (२) अधिकतर बहुत अधिक सभव । उ०—उन्नीस बिस्वे तो उनके आने की आशा है । (३) अधिकाश । प्राय । जैसे, यह वात उन्नीस विस्वे ठीक है । उन्नीस होना=(१) मात्रा मे कुछ कम होना । थोडा घटना जैसे, उसका दर्द

अगाध, पचम दिशा है अलख की जानैगा कोइ साध।--कबीर (शब्द०)। (घ) कहिबे मे न कछू सक राखी। बुधि विवेक उनमान आपने मुख आई सो भाखी।—सूर (शब्द०)। २ अटकल। अदाज। उ०—आगम निगम नेति करि गायो। शिव उनमान न पायो, सूरदास बालक रस लीला मन अभिलाख बढायो।—सूर (शब्द०)।

उनमान(पु)[2]—सज्ञा पुं० [स० उद्+मान या उन्मान] १ परिमाण। नाप। तौल। थाह। उ०—रूप समुद छवि रस भरो अति ही सरस सुजान, तामें तें भरि लेत दग अपने घट उनमान।—रसनिधि (शब्द०)। २ शक्ति। सामर्थ्य। योग्यता। उ०—जो जैसा उनमान का तैसा तासो बोल, पोता को गाहक नही हीरा गाँठि न खोल।--कबीर (शब्द०)।

उनमान[3](पु)—वि० [हिं०] तुल्य। समान। उ०—तुव नासा पुट गात मुक्त फल अधरबिंब उनमान, गुजा फल सबके सिर धारत प्रगटी मीन प्रमान।—सूर (शब्द०)।

उनमानना(पु)—क्रि० स० [हिं० उनमान] अनुमान करना। खयाल करना। सोचना। समझना।

उनमाना(पु)—क्रि० स० [स० उन्मादन] १ उन्मत्त होना। २ मस्त-हो जाना। भावमुग्ध होना।

उनमानि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उनमान'[3]।

उनमीलन(पु)—सज्ञा पु० [स० उन्मीलन] दे० 'उन्मीलन'।

उनमुना(पु)†—वि० [स० अन्यमनस्क, हिं० अनमना] [स्त्री० उनमुनी] मौन। चुप चाप। उ०—हँसै न बोलै उनमुनी चचल मेल्या मार, कह कबीर अतर बिधा सतगुरु का हथियार।—कबीर (शब्द०)।

उनमुनी(पु)--सज्ञा स्त्री० [स० उन्मनी] १ उन्मनी मुद्रा। उ०–निराकाश औ लोक निराश्रय निर्णय ज्ञान विसेखा। सूक्ष्म वेद है उनमुनि मुद्रा उनमुन बानी लेखा।—कबीर (शब्द०)। २ आत्मविस्मृति। मोहावस्था (को०)।

उनमूलना(पु)—क्रि० स० [स० उन्मूलन] उखाडना। उ०—(क) मद परे रिपुगन तारा सम जन-मय-तम उनमूले।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २७२। (ख) हरीचद छविरासि प्रिया-पिय दरसत ही जिय दुख उनमूलै।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५००।

उनमेख(पु)—सज्ञा पु० [स० उन्मेष] १ आँख का खुलना। २ फूल का खुलना या खिलना। विकास। उ०—सखि, रघुबीर-मुख-छवि देखु। नयन सुखमा निरखि नागरि सुफल जीवन लेखु। मनहुँ विधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन भेखु। भृकुटि भाल बिशाल राजत रुचिर कुकुमि रेखु। भ्रमर है रवि किरन लाए करन जनु उनमेखु --तुलसी (शब्द०)। ३ प्रकाश।

उनमेखना(पु)—क्रि० स० [हिं० 'उनमेख' से नाम०] १ आँख का खुलना। उन्मीलित होना। २ विकसित होना (फूल आदि का)।

उनमेद(पु)—सज्ञा पुं० [स० उद्=जल+मेद=चरबी] पहली वर्षा से उठा हुआ जहरीला फेन जिसके खाने से मछलियाँ मर जाती हैं। माजा। उ०--योरो जीवन बहुत न भारो। कियो न साधु समागम कबहूँ लियो न नाम तिहारो। अति उनमत्त मोह माया बस नहिं कफ बात बिचारो। करत उपाय न पूछत काहू गनत न खाए खारो। इद्री स्वाद विवस निसि बासर आपु अपुनपो हार्‌यो। जल उनमेद मीन ज्यो बपुरो पाव कुहारो मार्‌यो।--सूर (शब्द०)।

उनमोचन(पु)—सज्ञा पुं० [स० उन्मोचन] छोडना। बधन दूर कर देना।

उनयना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] १ झुकना। लटकना। उ०--उनै रही केरा कै घोरी।--जायसी ग्र०, पृ० १३। २ छा जाना। घिर आना। उ०—(क) उनई बदरिया परिगै साँझा, अनुआ भूले बनखँड माँझा।—कबीर (शब्द०)। (ख) उनई घटा चहूँ दिसि आई, छूटहिं बान मेघ झरि लाई।—जायसी (शब्द०)। (ग) उनई आइ घटा चहूँ फेरी, कत उबारु मदन हौ घेरी।—जायसी (शब्द०)।

उनरना(पु)—क्रि० अ० [स० उन्नरण=ऊपर जाना या उन्नत्र या हिं०] १ उठना। उमडना। उ०—प्रहिरिन हाथ दहेंडी सगुन लेइ आवइ हो, उनरत जोवन देखि नृपति मन भावइ हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ४। २ कूदते हुए चलना। उछलते हुए जाना। उ०—मेरो कह्यो क्यिन मानती, मानिनि आपुही तें उतको उनरोगी।—देव (शब्द०)।

उनवना(पु)†—क्रि० अ० [स० अवनमन प्रा० ओणम] १ झुकना। लटकना। २ छाना। घिर जाना। उ०—उनवत आव सैंन सुलतानी, जानहु परलय आव सुलानी।—जायसी (शब्द०)। ३ टूटना। ऊपर पडना। उ०—देखि सिंगार अनूप विधि विरह चला सब भाग। काल कष्ट वह उनवा सब मोरैं जिउ लाग।—जायसी (शब्द०)।

उनवर(पु)—वि० [स० ऊन=कम+वर हिं० (प्रत्य०)] न्यून। कम। तुच्छ। उ०—जहँ कटहर की उनवर पूछी, वर पीपर का बोलहिं छूछी।--जायसी (शब्द०)।

उनवान[1](पु)—सज्ञा पुं०[स० अनुमान, मि० उनमान] अनुमान। सोच। ध्यान। समझ।

उनवान[2]—सज्ञा पुं० [अ०] शीर्षक। नाम [को०]।

उनसठ[1] —वि० [स० एकोनषष्ठि या ऊनषष्ठि, प्रा० अउणसट्ठि।] पचास और नौ।

उनसठ[2]--सज्ञा पुं० पचास और नौ की सख्या या अक जो इस तरह लिखा जाता है–'५९'।

उनसठि—वि०, सज्ञा पु० [स० ऊनषष्ठि प्रा० अउणसट्ठि] दे० 'उनसठ'।

उनहत्तर[1]—वि०[स० एकोनसप्तति, प्रा० अउणसत्तरि, अउणहत्तरि] साठ और नौ।

उनहत्तर[2]—सज्ञा पुं० साठ और नौ की सख्या या अक जो इस तरह लिखा जाता। है—'६९'।

उनहत्तरि(पु)–वि०, सज्ञा पु० [हिं० उनहत्तर] दे० 'उनहत्तर'।

उनहानि(पु)—सज्ञा स्त्री० [स०अनुहरण] दे० 'उन्हानि'।

उनहार(पु)— वि० [सं० अनुसार या अनुहार] सदृश। समान। उ०—

कभी रियासत हाथ आएगी, इसी बात पर तो वे उधार खाए बैठे हैं। २ किसी की मृत्यु के आसरे में रहना। किसी का नाश चाहना। जैसे,—वह बहुत दिनों से तुमपर उधार खाए बैठा है (महापात्र लोग इस आशा पर उधार लेते हैं कि अमुक धनी आदमी मरेगा तो खूब रुपया मिलेगा)।

२ मँगनी। किसी एक की वस्तु का दूसरे के पास केवल कुछ दिनों के व्यवहार के लिये जाना। जैसे,—हलवाई ने बरतन उधार लाकर दुकान खोली है।

क्रि० प्र०—देना।—पर लेना।—लेना

३ उद्धार। छुटकारा।

उधारक(पु)—वि० [स० उद्धारक] दे० 'उद्धारक'।

उधारन(पु)—वि० [स० उद्धार] उद्धार करनेवाला। उ०—सगर-सुवन सठ सहन परस जल मात्र उधारन।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८२।

उधारना(पु)—क्रि० स० [स० उद्धरण] उद्धार करना। मुक्त करना। छुटकारा करना। निस्तार करना। उ०—माया तिमिर मिटाय कै खल कोटि उधारे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४४४।

उधारा(पु)—वि० [स० उद्धारिन्] [स्त्री० उधारिनी] उद्धारक। उद्धार करनेवाला।

उधारो(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उधार'। उ०—द्रव्य कौ सौ कार्य न होइ तोऊ उधारो लाइ कै करनो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८७।

उधेडना—क्रि० स० [स० उद्धरण=उन्मूलन, उखाड़ना] १ मिली हुई पर्त को अलग करना। उचाड़ना।—जैसे, मारते मारते चमड़ा उधेड लूँगा। २ टाँका खोलना। सिलाई खोलना। ३ छितराना। बिखराना।

उधेडबुन—सज्ञा पुं० [हिं० उधेडना+बुनना] १ सोचविचार। ऊहापोह। उ०—पड़ गए हो उधेड़बुन मे क्यों।—चुभते०, पृ० ४२। २ युक्ति बाँधना। जैसे,—किस उधेडबुन मे हो जो कही हुई बात नहीं सुनते।

उधेर(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उधेड'।

उधेरना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उधेडना'।

उनत(पु)—वि० [सं० अनुन्नत या अवनत] झुका हुआ। नत। उ०—कोप जस दारिव दाखा। भई उनत प्रेम कै साखा।—जायसी ग्र०, पृ० २४।

उन—सर्व० [हिं०] 'उस' का बहुवचन।

विशेष—'वह' का किसी विभक्ति के साथ सयोग होने से 'उस' रूप हो जाता है।

उनइस(पु)†—वि० [स० ऊनविंश] दे० 'उन्नीस'।

उनका—सज्ञा पुं० [अ० अन्का] एक पक्षी जिसे आज तक किसी ने नहीं देखा है। यह यथार्थ मे एक कल्पित प्राणी है।

यौ०—उनका सिफत=उनका की तरह कभी न दिखाई देनेवाला। जैसे, आप तो आज कल उनका सिफत हो रहे हैं। कभी आपकी सूरत ही नहीं दिखाई पड़ती (शब्द०)।

उनचास¹—वि० [सं० एकोनपञ्चाशत्, प्रा० एगुणपचास,(पु) उनचास या स० ऊनपञ्चाशत्] चालीस और नौ। उ०—लाग डाँट सम विसम तान उनचास कूटि वट।—हम्मीर रा०, पृ० ३३।

उनचास²—सज्ञा पुं० चालीस और नौ की सख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'४९'।

उनतीस¹—वि० [स० एकोनत्रिंशत्, प्रा० अउणतीस या स० ऊनत्रिंशत्] एक कम तीस। बीस और नौ।

उनतीस²—सज्ञा पुं० बीस और नौ की सख्या या अक जो इस तरह लिखा जाता है—'२९'।

उनदा(पु)—वि० [स० उन्निद्र] उनींदा। नींद से भरा। उ०—पारचौ भोर सुहाग की इन बिनही पिय नेह, उनदी ही अँखियाँ ककै कै अलसौंही देह।—बिहारी (शब्द०)।

उनदौंही(पु)—वि० स्त्री० [स० उन्निद्र, हिं० उनींदा, स्यो० 'उनदौंही'] नींद से भरा हुआ। ऊधता हुआ। उनींदा।

उनविसत(पु)—वि० [स० ऊनविंशति] उन्नीस। उ०—सुनै जु कोऊ हरिचरित उनविंसत अध्याइ, पाप न परसै नद तिहि पदमिनि दल जल न्याइ।—नद० ग्र०, पृ० २८८।

उनमत(पु)—वि० [स० उन्मत्त] दे० 'उन्मत्त'। उ०—इहि विधि बँन घँन बूझि ढूँढि उनमत की नाईं।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३८७।

उनमद(पु)—वि० [स० उन्मद] १ उन्मत्त। मतवाला। मदमस्त। उ०—बाजत सुबैन रहै, उनमद मैन रहै, चित्त मे न चैन रहै चातकी के रव सो।—पद्माकर ग्र०, पृ० १८७।

उनमन(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० उन्मनी] दे० 'उन्मनी'। उ०—एता कीजै आपकैं, तनमन उनमन लाइ। पच समाधी राखिए, दूजा सहज सुभाइ।—दादू० बानी, पृ० १५।

उनमना(पु)—वि० [स० उन्मनस्क] [स्त्री० उनमनी] दे० 'अनमना'।

उनमाथना(पु)—क्रि० स० [स० उदमथ या उन्मथन] [वि० उनमाथी] मथना। विलोडन करना।

उनमाथी(पु)—वि० [स० उन्माथिन् या हिं० उनमाथना] मथनेवाला। विलोडन करनेवाला। उ०—जल तें सुथल पर, थल तें सुजल पर उथल पथल जल थल उनमाथी को। बरस कितेक बीते जुगुति चली न कछु बिना दीनबधु होत साँकरे मे साथी को? मन वच करम, पुकारत प्रगट 'बेनी' नाथन के नाथ औ अनाथन सनाथी को। बन करि हारे हाथा हाथी सब हाथी, तब हाथा हाथी हरखि उबारि लीनो हाथी को।—बेनी (शब्द०)।

उनमाद(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० 'उन्माद'। उ०—आनदघन लीला रस चाखें बढ़ै प्रेम उनमाद।—घनानद, पृ० ४३६।

उनमादना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उनमाद] उन्मत्त होना।

उनमादी—वि० [स० उनमाद+ई (प्रत्य०) या उन्मादिन्] पागल करनेवाला। उन्मत्त करनेवाला। उ०—कान्ह की बसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग।—घनानद, पृ० ४८५।

उनमान¹(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अनुमान] १ अनुमान। खयाल। ध्यान। समझ। उ०—(क) तीन लोक उनमान मे चौथा अगम

उद्वाही—वि० [सं० उद्वाहिन्] १ ढोनेवाला। २ दूर ले जानेवाला। ३ ऊपर ले जानेवाला। ४ विवाहेच्छु (पुरुष) [को०]।

उद्विग्न—वि० [सं०] १ उद्वेगयुक्त। आकुल। घबराया हुआ। २ व्यग्र। ३ आतंकित [को०]।

उद्विग्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकुलता। घबराहट। व्यग्रता।

उद्विद्ध—वि० [सं०] १ क्षुब्ध। २ ऊपर उठा हुआ। उछलता हुआ [को०]।

उद्वीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर देखना। २ दृष्टि। आँख। ३ अवलोकन। देखना।

उद्वीजन—संज्ञा पुं० [सं०] पंखा डुलाना। पंखा झलना [को०]।

उद्वृत्त—वि० [सं०] १ असभ्य। २ अभिमानी। ३ वृद्धिप्राप्त। ४ क्षोभ से भरा हुआ। ५ उठा हुआ [को०]।

उद्वेग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्विग्न] १ चित्त की आकुलता। घबराहट। २ मनोवेग। चित्त की तीव्र वृत्ति। आवेश। जोश। जैसे,—मन के उद्वेगों को दबाए रखना चाहिए। ३ झोंक जैसे,—क्रोध के उद्वेग में उसने यह काम किया है। ४ रस की दस दशाओं में से एक। वियोग समय की वह व्याकुलता जिसमें चित्त एक जगह स्थिर नहीं रहता। ५ विस्मय, आश्चर्य (को०)। ६ भय। डर। (को०)। ७. सुपारी। पूंगीफल (को०)।

उद्वेग—वि० १ शांत। २ धैर्यवान्। धीर। ३ दे० 'उद्वाहु'। ४ शीघ्र जानेवाला। ५ आरोहणकर्ता [को०]।

उद्वेगजनक—वि० उद्वेग पैदा करनेवाला। बेचैन करनेवाला।

उद्वेगी—वि० [सं० उद्वेगिन्] १ पीड़ा या कष्ट में पड़ा हुआ। दुखी। २ चिंताजनक [को०]।

उद्वेजक—वि० [सं०] उद्वेग करनेवाला। उद्वेगजनक।

उद्वेजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्वेजक, उद्वेजनीय, उद्वेजित] उद्वेग में होने या करने की क्रिया। आकुल होने या करने का काम। घबराना।

उद्वेजयिता—वि० [सं० उद्वेजयितृ] उद्वेग उत्पन्न करनेवाला। क्षोभकारी [को०]।

उद्वेप—संज्ञा पुं० [सं०] कँपकँपी। कंपन [को०]।

उद्वेल—वि० [सं०] तट या किनारा छापकर बहनेवाला। मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाला। अतिशय। उ०—उद्वेल हो उठो भाटे से, बढ़ जाओ घाटे घाटे से।—आराधना, पृ० २।

उद्वेलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उफान। किनारा लाँघकर बहना। २ मर्यादा लाँघ जाना [को०]।

उद्वेलित—वि० [सं०] १ अमर्यादित। २ बाँध या तट को पारकर बहता हुआ [को०]।

उद्वेल्लित—वि० [सं०] उफनता हुआ। सीमा को लाँघकर बहता हुआ [को०]।

उद्वेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाढ़ या घेरा। २. घेरने की क्रिया या भाव। ३ पीठ की ओर होनेवाला दर्द [को०]।

उद्वेष्टनीय—वि० [सं०] खोलने योग्य। मुक्त करने योग्य [को०]।

उद्वेष्टित—वि० [सं०] घिरा हुआ [को०]।

उद्वोढा—संज्ञा पुं० [सं० उद्वोढृ] पति। भर्ता [को०]।

उधड़ना—क्रि० अ० [सं० उद्धरण = उन्मूलन, उखड़ना] खुलना। उखड़ना। बिखरना, तितर बितर होना। जैसे,—(क) कुछ दिन में इस कपड़े का सूत उधड़ जायगा। (ख) इस पुस्तक के पन्ने पन्ने उधड़ गए।

यौ०—सिलाई उधड़ना = सिलाई का टाँका टूट जाना या खुल जाना।

२ उचड़ना। पर्त से अलग होना जैसे,—पानी में भीगने से दफ्ती के ऊपर का कागज उधड़ गया।

यौ०—चमड़ा उधड़ना = शरीर से चमड़े का अलग होना। जैसे,—ऐसी मार मारेंगे कि चमड़ा उधड़ जायगा।

उधम(पु)—संज्ञा पुं० (हिं० ऊधम) दे० 'ऊधम'।

उधर—क्रि० वि० [सं० उत्तर अथवा पु० हिं० ऊ (वह)+धर (प्रत्य० सं० त्रल्)] उस ओर। उस तरफ। दूसरी तरफ। जैसे,—उधर भूलकर भी मत जाना।

उधरना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० उद्धरण] १ उद्धार पाना। मुक्त होना। छुटकारा पाना। उ०—पाव्‌ जन समार में शीतल चंदन वास, दादू केते उधरे जे आए उन पास।—दादू० बानी, पृ० २९१। २ दे० 'उधड़ना'।

उधरना[2]—क्रि० स० उद्धार करना मुक्त करना। उ०—सोक कनक-लोचन, मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जग जोनी॥ भरत विवेक वराह विसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥—मानस, । २। २९६। (ख) छीर समुद्र मध्य ते यों कहि दीरघ बचन उचारा हो। उधरौं धरनि असुर कुल मारौं धरि नर तनु अवतारा हो।—सूर। (शब्द०)।

उधराना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्धरण] १ हवा के कारण छितराना। खड खड होकर इधर उधर उड़ना। तितर बितर होना। बिखराना। जैसे,—(क) रूई हवा में मत रखो, उधरा जायगी। उ०—मन कै भेद नैन गए माई। लुब्धे जाइ श्याम सुंदर-रस करी न कछू भलाई। व्याकुल फिरति भवन बन जहँ तहँ तूल आक उधराई।—सूर०, १०। २८४७। २ मदांध होना। ऊधम मचाना। सिर पर दुनिया उठाना।

उधाड़—संज्ञा पुं० [सं० उद्धार] कुश्ती का एक पेंच। उखाड़।

विशेष—जब दोनों लड़नेवालों के हाथ दोनों की कमर पर रहते हैं और पेंच करनेवाले की गर्दन विपक्षी के कंधे पर होती है, जब वह (पेंच करनेवाला) अपना बाँया हाथ अपनी गरदन पर से ले जाता है और उससे विपक्षी का लंगोट पकड़ता है और दाहिना पैर बढ़ाकर उसको बगल में फेंक देता है। इस पेंच को उधाड़ या उखाड़ कहते हैं।

उधार[1]—संज्ञा पुं० [सं० उद्धार = बिना ब्याज का ऋण] १ कर्ज। ऋण। जैसे,—उसने मुझसे १००) उधार लिए।

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—वह १०) बनिए का उधार कर गया है।—खाना = ऋण लेना। ऋण लेकर काम चलाना।—देना।—लेना।

मुहा०—उधार खाए बैठना = (१) किसी अपने अनुकूल होनेवाली बात के लिये अत्यंत उत्सुक रहना। जैसे,—कभी न

चालुक्य और वंगदेश के राजाओं को जीतने की अपेक्षा बढ़कर दिखाया गया है। २ जहाँ गुण से दोषों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—बैठत जल, पैठत पुहुमि ह्वै निमि प्रन उद्योत। जगत प्रकाशकता तदपि रवि मे हानि न होत। यहाँ जल मे बैठ जाने और रात मे प्रकाशरहित रहने की अपेक्षा सूर्य मे जगत् को प्रकाशित करने के गुण की अधिकता दिखाई गई है। ३ जहाँ दोष से दोषों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—निरखत बोलत हँसत नहिं नहिं आवत पिय पास। मो इन सबसों अधिक दुख, सौतिन के उपहास। ४ जहाँ दोष से गुणों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—गिरि हरि लोटत जतु लों पूर्ण पतालहि कीन्ह। परग्यो गौरव सिंधु को मुनि इक अंजुलि पीन्ह। यहाँ समुद्र मे विष्णु और पर्वत के लोटने और पाताल को पूर्ण करने के गुणों की अपेक्षा उसके अगस्त्य मुनि द्वारा पिए जाने के दोष का उद्रेक है।

उद्रेका—सज्ञा स्त्री० [स०] बकायन। महानिंब (को०)।

उद्रेचक—वि० [सं०] बहुत अधिक बढ़ा देनेवाला। अत्यधिक वृद्धि करनेवाला (को०)।

उद्वत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] साल। वर्ष (को०)।

उद्वपन—सज्ञा पु० [स०] १. हिलाकर गिराना। उडेलना। २ दान (को०)।

उद्वर्त¹—सज्ञा पु० [स०] १. उबटन। २ उबटन लगाने का कार्य। ३. बचा हुआ या अतिरिक्त अंश। ४ अतिशयता। प्राचुर्य। आधिक्य। ५ विनाश काल। प्रलय काल (को०)।

उद्वर्त²—वि० अतिरिक्त। शेष। फालतू (को०)।

उद्वर्तक—वि० [स०] १ उबटन लगानेवाला। मालिश करनेवाला। २ उठानेवाला।

उद्वर्तन—सज्ञा पु० [स०] १ किसी वस्तु को शरीर मे लगाने की क्रिया। व्यवहार। अभ्यंग। जैसे—तेल लगाना, चदन लगाना, उबटन लगाना। २ उबटन। ३ उद्दंडता। उजड्डपन (को०)। ४ ऐश्वर्य अभ्युदय (को०)। ५ तार खीचने का काम। तारकशी (को०)। ६ चूर्ण करना। पीसना (को०)।

उद्वर्तित—वि० [स०] १ जिसकी मालिश की गई हो। जिसे उबटन लगाया गया हो। उठाया हुआ। ३ बहिष्कृत। निकाला हुआ। ४ सुगंधित (को०)।

उद्वर्धन—सज्ञा पुं० [स०] १ बढाव। वृद्धि। २ धीमी या दबाई हुई हँसी (को०)।

उद्वर्हित—वि० [स०] १. आकर्षित। खीचा हुआ। २ नष्ट किया हुआ। उन्मूलित (को०)।

उद्वस¹—सज्ञा पुं० [सं०] जनशून्य स्थान (को०)।

उद्वस²—वि० १ समाप्त। २ गत। गया हुआ। लुप्त। ३ जिससे शहद निकल लिया गया हो (छत्ता)। ४ खाली। शून्य (को०)।

उद्वह¹—सज्ञा पुं० [सं०] (स्त्री० उद्वहा) १. पुत्र। बेटा।

यौ०—रघूद्वह।

२. सात वायुओं मे से एक जो तृतीय स्कंध पर है। ३ उदान वायु जिसका स्थान कठ मे माना गया है। वि० दे० 'उदान'। ४. ब्याह। विवाह। ५ अग्नि की एक जिह्वा (को०)। ६. परिवार या घर का प्रधान व्यक्ति (को०)।

उद्वह²—वि० १ ले जानेवाला। २ निरतर चालू रहनेवाला (को०)।

उद्वहन—सज्ञा पु० [स०] १ ऊपर खिचना। उठना। २ विवाह। ३ ऊपर उठाना या उठा ले जाना। (को०)। ४ चढना। सवार होना (को०)। ५ युक्त होना। सपन्न होना (को०)। ६ रक्षण। सँभालना (को०)।

उद्वहा—सज्ञा स्त्री० [स०] कन्या। पुत्री।

उद्वात¹—सज्ञा पुं० [स० उद्वान्त] १ वमन। कै।

उद्वात²—वि० उगला हुआ। कै किया हुआ। वमित।

उद्वान—सज्ञा पुं० [स०] १ अग्निस्थान। चूल्हा। २. वमन (को०)।

उद्वाप—सज्ञा पु० [स०] १ खेती फसल।

विशेष—चद्रगुप्त के समय मे राज्य का यह नियम था कि यदि कृषक खेती न करे तो उनको राज्यकर इकट्ठा करनेवाले समाहर्ता के कारिंदे बाध्य करते थे कि वे गर्मी की फसल तैयार करें।

२ दूर करना। हटाना। फेकना (को०)। ३ मुडन कराना (को०)। ४ ऊपर उठाना या खीचना (को०)।

उद्वापन—सज्ञा पु० [स०] (अग्नि को) बुझावने या शात करने की क्रिया।

उद्वास—सज्ञा पुं० (स०) १ निकाल बाहर करना। २ भगा देना। ३. त्याग। ४ मारने के लिये जाना। ५ वध। ६ छोड देना (को०)।

उद्वासन—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उद्वासनीय, उद्वासक, उद्वासित, उद्वास्य] १ स्थान छुडाना। हटाना। भगाना। खदेडना। २ उजाडना। वासस्थान नष्ट करना। ३. मारना। वध। ४. एक सस्कार। यज्ञ के पहले आसन बिछाने, यज्ञपात्रों को साफ करके यथास्थान रखने और उनमे घृत आदि डाल रखने का काम। ५ प्रतिमा की प्रतिष्ठा के एक दिन पहले उसे रात भर ओषधि मिले हुए जल मे डाल रखना।

उद्वाह—सज्ञा पु० [स०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहिक, उद्वाहित, उद्वाही, उद्वाह्य] १ विवाह। २ उठाना। सँभालना (को०)।

उद्वाहन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहनीय, उद्वाही, उद्वाहित, उद्वाह्य] १ ऊपर ले जाना। ऊपर चढाना। उठाना। २ ले जाना। हटाना। ३. विवाह करना। ४ एक बार जोते हुए खेत को फिर से जोतना। एक बाँह जोते हुए खेत को दूसरी बाँह जोतना। चास लगाना। ५ व्यग्रता। चिंता। परेशानी (को०)।

उद्वाहनी—सज्ञा स्त्री० (पु०) १. रस्सी। उबहनी या उबहन जिसे घडे मे बाँधकर कुएँ से पानी खीचा जाता है। २ कौडा (को०)।

उद्वाहर्क्ष—सज्ञा पु० [स०] वे नक्षत्र जिनमे विवाह होते है, जैसे तीनो उत्तरा, रेवती, रोहिणी, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त।

उद्वाहिक—वि० [स०] उद्वाह से सबधित। वैवाहिक (को०)।

नमस्कार करने के बहाने से प्रिय को देखने के लिये नायिका खिडकी पर गई पर छिपाने की चेष्टा करने पर भी मुसकान और कटाक्ष द्वारा उसका गुप्त प्रेम प्रकट हो ही गया। ४ मुत्र। उत्स। स्रोत (को०)। ५ पुलक। रोमांच (को०)। ६ तोड़ना। खंडन (को०)।

उद्भेदन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्भेदक, उद्भेदनीय, उद्भिन्न] १ तोडना। फोडना। २ फोडकर निकलना। ऊपर आना। दे० 'उद्भेद'।

उद्भ्रम —संज्ञा पुं० [सं०] १ चक्कर काटना। भूलभुलैया मे पड जाना। चकराना। २. भ्रमण। पर्यटन ६ पश्चात्ताप। ८ उद्वेग (को०)।

उद्भ्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ भ्रमण करना। घूमना। ३ उदित होना। उगना [को०]।

उद्भ्रांत¹—वि० [सं० उदभ्रान्त] १ घूमता हुआ। चक्कर मारता हुआ। २ भ्रांतियुक्त। भूला हुआ। ३ चकित। भौचक्का।

उदभ्रांत²—संज्ञा पुं० तलवार के ३२ हाथों मे से एक जिसमे ऊँचा हाथ करके तलवार चारो ओर घुमाते हैं। इससे दूसर के किए हुए वार को रोकते या व्यर्थ करते हैं।

उद्यत¹—वि० [सं०] १ तैयार। तत्पर। प्रस्तुत। मुस्तैद। उतारू। उ०—प्रजा काजे राजा नित सुकृत पर उद्यत रहै।—शकुतला पृ० १५४।

यौ०—वधोद्यत। गमनोद्यत।

२ उठाया हुआ। ताना हुआ। ३ शिक्षित। अनुशासित (को०)। ४ श्रम करनेवाला। परिश्रमी (को०)।

उद्यत²—संज्ञा पुं० १ सगीत मे ताल। २. अध्याय। परिच्छेद। उल्लास (को०)।

उद्यति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तैयारी। २ प्रयत्न। उद्योग। ३ उठाना [को०]।

उद्यम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्यत] १ प्रयास। प्रयत्न। उद्योग। मेहनत। उ०—विफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह-निरत-मनसा के।—मानस। ६।६१। २ कामधधा। रोजगार। व्यापार। उ०—किसी उद्यम मे लगो तब रुपया मिलेगा। ३. उठाना (को०)। तैयारी (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उद्यमी—वि० [सं० उद्यमिन्] मेहनती। उद्यम करनेवाला। यत्नशील (को०)।

उद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १ बगीचा। उपवन। २ उद्देश्य। अभिप्राय। (को०)। ३ भारत के उत्तर स्थित देश विशेष (को०)। ४ घूमना। टहलना (को०)।

यौ०— उद्यानपाल, उद्यानपालक, उद्यानरक्षक = बगीचे की देखभाल करनेवाला माली।

उद्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] बगीचा। उपवन [को०]।

उद्यानकव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसके चारों अग ससहत हो।

उद्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्रत की समाप्ति पर किया जानेवाला हवन, जेंवे, दान, गोदान इत्यादि।

उद्यापित—वि० पुं० [सं० [उद्यापन किया हुआ। विधिवत् पूर्ण किया हुआ [को०]।

उद्याव—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिलाना। मिश्रण करना। जोडना(को०)।

उद्युक्त—वि० [सं०] १ उद्योग मे रत। तत्पर। तैयार। मुस्तैद।

उद्योग—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्योगी, उद्युक्त] १ प्रयत्न। प्रयास। कोशिश। मिहनत। २ उद्यम। कामधधा।

यौ०—उद्योगधधा = उत्पादक का कार्य। उत्पादन का काम। उद्योगपति = अनेक उद्योगो का स्वामी। कारखानो का मालिक। उद्योगशाला = उद्योग का स्थान। कारखाना।

उद्योगी—वि० [सं० उद्योगिन्] [स्त्री० उद्योगिनी] उद्योग करनेवाला। प्रत्यनवान्। मेहनती।

उद्योगीकरण— संज्ञा पुं० [सं०] उद्योग के अभाव को दूर करने के लिये उद्योग की स्थापना करना। आधुनिक ढग के कल कारखाने चालू करना।

उद्योत--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उद्द्योत'। उ० —ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरु वचन धरि जोग सग्राम के खेत आवै।—गुलाल० बानी, पृ० १०६।

उद्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्योतक, उद्योतनीय, उद्योतित] १ प्रकाशित करने या होने की क्रिया। चमकने या चमकाने का कार्य। २ प्रकट करने की क्रिया। व्यक्त करने का कार्य।

उद्रक, उद्रग—संज्ञा पुं० [सं०उद्रङ्क, उद्रङ्ग] १ के 'उद्ग्रथ' तथा 'उद्ग्राह' (सारस्वत कोष)। २ वह अन्न जो राजा के अश के रूप मे गाँवो से इकट्ठा किया गया हो (बुहलर)।

उद्र¹ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० उदर] १ दे० 'उदर'। उ०—भयो गाफिल भूलि माया, नहिं उद्र अघात।—जग० बानी, पृ० ५५।

उद्र²--संज्ञा पुं० [सं०] १ जल मार्जार। ऊदबिलाव। २ जल [को०]।

उद्रथ—संज्ञा सं० १ अरुणशिखा। मुर्गा। २ गाडी के पहिए की धुरी की किल्ली [को०]।

उद्राव—संज्ञा पुं० [सं०] शोरगुल। हल्ला [को०]।

उद्रिक्त—वि० [सं०] [संज्ञा स्त्री० उद्रिक्ति] १ बढा हुआ। अधिक। अतिशय। २ स्पष्ट। प्रत्यक्ष [को०]।

यौ०—उद्रिक्तचित्त, उद्रिक्तचेता = (१) उदारहृदय। उच्चाशय। (२) मादकता से प्रभावित।

उद्रुज—वि० [सं०] १ विध्वस करनेवाला। समूल नष्ट करनेवाला। २ तोड डालनेवाला [को०]।

उद्रेक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्रिक्त] १ वृद्धि। बढ़ती। अधिकता। ज्यादती। २ आरभ। उपक्रम (को०)। ३ ऐश्वर्य (को०)। एक काव्यालकार जिसमे कई, सजातीय वस्तुओ की किसी एक जातीय या विजातीय वस्तु की अपेक्षा तुच्छता दिखाई जाय अर्थात् जिसमे वस्तु के कई गुणो या दोषो का किसी एक गुण, या दोष के आगे मंद पड जाना वर्णन किया जाय।

विशेष—इसके चार भेद हो सकते हैं—(क) जहाँ गुण से गुणों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—जयो नृपति चालुक्य को, नयो वगपति कध। परगहि अठ सुलतान सथ, किय अपूर्व जयचद। यहाँ जयचद का आठ सुलतानो को एक साथ पकड़ना,

उद्वल—वि० [सं०] शक्तिशाली । मजबूत । ताकतवर [को०] ।

उद्वाष्प—वि० [सं०] अश्रुपूर्ण । वाष्पपूरित [को०] ।

उद्वाहु—वि० [सं०] हाथ ऊपर उठाए हुए । उर्ध्वबाहु (को०) ।

उद्वुद्ध—वि० [सं०] १ विकसित । फूला हुआ । २. प्रबुद्ध । चैतन्य । जिसे बोध या ज्ञान हो गया हो । ३. जगा हुआ । ४ स्मृत । स्मरण किया हुआ (को०) । ५ उद्दीप्त (को०) ।

उद्वुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी ही इच्छा से उपपति से प्रेम करनेवाली परकीया नायिका ।

उद्वोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. थोडा बहुत ज्ञान । २ जागना । प्रबुद्ध होना [को०] । ३ स्मरण होना । याद आना (को०) ।

उद्वोधक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० उद्वोधिका] १. बोध करानेवाला । चेतानेवाला । खयाल रखनेवाला । २ प्रकाशित करनेवाला । प्रकट करनेवाला । सूचित करनेवाला । ३ उद्दीप्त करनेवाला । उत्तेजित करनेवाला । ४ जगानेवाला ।

उद्वोधक[2]—संज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।

उद्वोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदवोधनीय, उद्वोधक, उद्वोधित] १ बोध कराना । चेताना । खयाल रखना । २. उद्दीपन करना । उत्तेजित करना । ३. जगाना ।

उद्वोधिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो उपपति के चतुराई द्वारा प्रकट किए हुए प्रेम को समझकर प्रेम करे ।

उद्भट[1]—वि० [सं०] [संज्ञा उद्भटता] १ प्रबल । प्रचंड ।

यौ०—रणोद्भट ।

२ श्रेष्ठ । असाधारण । जैसे,—ईश्वरचंद्र संस्कृत के एक उद्भट विद्वान् थे । ३. उच्चाशय ।

उद्भट[2]—संज्ञा पुं० १ सूप । २ कच्छप । ३ मुक्तक । स्फुट रचना । फुटकल छंद । उ०—मुक्तक या उद्भट में जो रस की रस्म अदा की जाती है उसमें शील दशा का समावेश नहीं होता ।—रस०, पृ० १८६

उद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्भूत] १. उत्पत्ति । जन्म । सृष्टि ।

यौ०—उद्भवकर=उत्पादक । पैदा करनेवाला । उद्भव क्षेत्र, उद्भवस्थान=उत्पत्तिस्थान ।

२ वृद्धि । बढती । जैसे—हम दूसरे के उद्भव को देख क्यों जलें । ३ मूल । उद्गम । बुनियाद ।(को०) । ४ विष्णु का नाम (को०) ।

उद्भार—संज्ञा पुं० [सं०] बादल । मेघ [को०] ।

उद्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उद्भव । उत्पत्ति । २ कल्पना । उद्भावना । ३ उदारता [को०] ।

उद्भावक—वि० [सं०] १ उत्पन्न करनेवाला । २. कल्पना या उद्भावना करनेवाला [को०] ।

उद्भावन—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० उद्भावना, वि० उद्भावनीय, उद्भावित, उद्भाव्य] १ कल्पना करना । मन मे लाना । २ उत्पन्न होना । उत्पादन । ३ कहना । बोलना (को०) । ४. उपेक्षा या तिरस्कार करना (को०) ।

उद्भावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कल्पना । मन की उपज ।

यौ०—दोषोद्भावना ।

२ उत्पत्ति ।

उद्भावयिता—वि० [सं० उद्भावयितृ] दे० 'उद्भावक' [को०] ।

उद्भास—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उद्भासनीय, उद्भासित, उद्भासुर] १. प्रकाश । दीप्ति । आभा । २ हृदय मे किसी बात का उदय । प्रतीति ।

उद्भासित—वि० [सं०] १ प्रकाशित । उद्दीप्त । २. प्रकट । जैसे,—उसकी आकृति से क्रूरता उद्भासित होती है । ३ प्रतीत । विदित । जैसे,—हमे तो ऐसा उद्भासित होता है कि इस वर्ष वृष्टि कम होगी ।

उद्भासी—वि० [सं० उद्भासिन्] [वि० स्त्री० उद्भासिनी] १. दमकवाला । चमकीला । २ प्रकट होनेवाला । ३ प्रकट करने या चमकानेवाला [को०] ।

उद्भासुर—वि० [सं०] ज्योतिष्मान् । तेजवान् । चमकीला [को०] ।

उद्भिज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उद्भिज्ज' ।

उद्भिज्ज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोडकर निकलते हैं । वनस्पति ।

विशेष—सृष्टि मे ये चार प्रकार के प्राणियो मे से हैं । मनु इत्यादि ने वृक्षों को अंतःसंज्ञ कहा है अर्थात् उनमें ऐसी चेतना या संवेदना बतलाई है जिन्हें वे प्रकट नहीं कर सकते । आधुनिक वैज्ञानिको का भी यही मत है ।

उद्भिज्ज[2]—वि० भूमि फोडकर बाहर निकलनेवाला (पौधा आदि) [को०] ।

उद्भिद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदभिद' ।

उद्भिद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोडकर निकलते हैं । वनस्पति । २ अँखुआ । कल्ला । ३. समुद्री नमक ।

उद्भिद[2]—वि० उगनेवाला । उठने या निकलनेवाला । दे० 'उद्भिज्ज[2]' [को०] ।

उद्भिन्न—वि० [सं०] १ तोडकर कई भागो मे किया हुआ । फोडा हुआ । २. उत्पन्न । व्यक्त । खुला या निकला हुआ (को०) । ४. विकसित । खिला हुआ (को०) । ५ जिससे विश्वासघात किया गया हो (को०) ।

उद्भुज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्भिज] दे० 'उद्भिज' । उ०—उद्भुज सतेज जेरज अंडा, सुपनरूप वरतै ब्रह्मंडा ।—दरिया० बानी, पृ० २७ ।

उद्भूत—वि० [सं०] १ उत्पन्न । निकला हुआ । २ गोचर । युक्त (को०) । ऊँचा । उच्च (को०) ।

उद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ फोड़कर निकलना (पौधों के समान) । २ प्रकाशन । उद्घाटन । ३ प्राचीनों के मत से एक काव्यालकार जिसमे कौशल से छिपाई हुई किसी बात का किसी हेतु से प्रकाशित या लक्षित होना वर्णन किया जाय । जैसे—वातायन गत नारि प्रति नमस्कार मिस भान, सो कटाच्छ मुसुकान सो जान्यो सखी सुजान । यहाँ सूर्य को

उद्धर्ता²—संज्ञा पुं० १ विध्वंसक या नाशक व्यक्ति। २. रक्षा करनेवाला। त्राता [को०]।

उद्धर्ष—संज्ञा पुं० [सं० उद + हृष] १ प्रसन्नता। आनंद। अति हर्ष। २ व्रतादि का उत्सव। ३ किसी कार्य को करने का साहस। ४. उद्रेक। अविक्य [को०]।

उद्धर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तेजना। २ रोमांच। ३ हर्षित करना [को०]।

उद्धव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्सव। पर्व। २ यज्ञ की अग्नि। ३ कृष्ण के चाचा और सखा एक यादव।

उद्धव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

उद्धस्त—वि० [सं०] जिसके हाथ ऊपर उठे हों [को०]।

उद्धांत¹—वि० [वि० उद्धान्त] दे० 'उद्धान¹'।

उद्धांत²—संज्ञा पुं० मदरहित हाथी [को०]।

उद्धान¹—वि० [सं०] १ उगला हुआ। वमन किया हुआ। २ स्थूलकाय। पीन। फूला हुआ। ३ ऊपर गया या निकला हुआ। उद्गत [को०]।

उद्धान²—संज्ञा पुं० १ उन्नटी। वमन। २ अग्निस्थान। चूल्हा [को०]।

उद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्धारक, उद्धारित] १ मुक्ति। छुटकारा। त्राण। निस्तार। दु:खनिवृत्ति। जैसे,—(क) इस दु:ख से हमारा उद्धार करो। (ख) इस ऋण से तुम्हारा उद्धार जल्दी न होगा। २ बुरी दशा से अच्छी दशा में आना। सुधार। उन्नति। अभ्युदय।

यो०—जीर्णोद्धार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ ऋणमुक्ति। कर्ज से छुटकारा। ४ संपत्ति का वह अंश जो बराबर बाँटने के पहले किसी विशेष क्रम से बाँटने के लिये निकाल लिया जाय।

विशेष—मनु के अनुसार पैतृक संपत्ति का २०वाँ भाग सबसे बड़े के लिये, ४०वाँ उससे छोटे के लिये, ८०वाँ उससे छोटे के लिये इत्यादि निकालकर तब बाकी को बराबर बाँटना चाहिए।

५ युद्ध की लूट का छठा भाग जो राजा लेता है। ६ ऋण, विशेषकर वह जिसपर ब्याज न लगे। ७ चूल्हा। ८ अनुकंपा। कृपा (को०)। ९ जाना। गमन करना (को०)। १० उद्धरण (को०)।

उद्धारक—वि० [सं०] निस्तार करनेवाला। वि० दे० 'उद्धर्ता'।

उद्धारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ त्राण करना। २ ऊपर उठाना। ३ विश्लेष या विभाग करना [को०]।

उद्धारना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्धारण] उद्धार करना। मुक्त करना। छुटकारा देना।

उद्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड्ची। गिलोय [को०]।

उद्धारित—वि० [सं०] उद्धार किया, बचाया हुआ [को०]।

उद्धित—वि० [सं०] उठाया हुआ। ऊपर उठाया हुआ [को०]।

उद्धुर—वि० [सं०] १ विजेता। २ हिम्मती। साहसी। ३ आज़ाद। मुक्त। स्वतंत्र। ४ भार से मुक्त। ५ मोटा। ६. प्रसन्न। सुंदर। ७ उच्च (स्वर)। ८ योग्य। अनुकूल। [को०]।

उद्धूत—वि० [सं०] १ ऊपर उछाला हुआ। २ उन्नत। ऊँचा। ३ हिलाया हुआ। कंपित [को०]।

उद्धूनन—संज्ञा पुं०[सं०] १ ऊपर उछालना या फेंकना। २ हिलाना। ३ उठाना [को०]।

उद्धूपन—संज्ञा पुं० [सं०] धूपयुक्त करना। वासित करना [को०]।

उद्धूलन—संज्ञा पुं० [सं०] धूलि या भस्म आदि से युक्त करना। [को०]।

उद्धूषण—संज्ञा पुं० [सं०] रोंगटे खड़े होना। रोमांच। पुलक [को०]।

उद्धृत¹—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के वे वृद्ध जन जो गाँव संबंधी पुरानी घटनाओं से परिचित तथा समय पर उनको प्रकाशित करनेवाले हों।

विशेष—मध्यकाल में सीमा संबंधी झगड़ों का इन्हीं लोगों के साक्ष्य के अनुसार निर्णय किया जाता था। आजकल पटवारी (लेखपाल) ही इन लोगों का स्थानपन्न है।

उद्धृत²—वि० [सं०] १ उगला हुआ। २ ऊपर उठाया हुआ। ३ अन्य स्थान से ज्यों का ज्यों लिया हुआ। जैसे,—(क) यह लेख उसका लिखा नहीं है कहीं से उद्धृत है। (ख) इन उद्धृत वाक्यों का अर्थ बतलाओ। ४ वांत। वमित (को०)। ५ खुला हुआ। अनावृत्त (को०)। ६ अलग या पृथक् किया हुआ (को०)। ७ उन्मूलन। उत्पाटित (को०)। ८ विकीर्ण (को०)। ९ चुना हुआ। छाँटा हुआ (को०)। १० अलग अलग हिस्सों में विभक्त (को०)। ११ बचाया हुआ। रक्षित (को०)।

उद्धृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उद्धार। निकालना, बचाना या रक्षा करना। २ उद्धरण देना। ३ हटाना। दूर करना [को०]।

उद्धौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्धव] कृष्ण के चाचा और सखा एक यादव। उ०—पुनि तिनकी पद पंकज रज अज अजहूँ छिछैं। उद्धौ शुद्धि विशुद्धनु सौं पुनि सो रज इछैं।—नंद० ग्रंथ, पृ० ४१।

उद्ध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] चूल्हा। सिगड़ी [को०]।

उद्ध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाश। उच्छेद। कर्कशता। कठोरता (वाणी की)। (रोग से) ग्रस्त होना [को०]।

उद्ध्वस्त—वि० [सं०] ध्वस्त। गिरा पड़ा हुआ। टूटा हुआ। भग्न। नष्ट।

उद्बंध¹—वि० [सं० उद्बन्ध] बंधनमुक्त। छूटा हुआ [को०]।

उद्बंध²—संज्ञा पुं० १ फाँसी लगा लेना। २ लटकाना [को०]।

उद्बंधक¹—वि० [सं० उद्बन्धक] छुड़ानेवाला। मुक्त करनेवाला। [को०]।

उद्बंधक²—संज्ञा पुं० एक मिश्रित जाति। जातिविशेष जो कपड़ा धोने का काम करती है [को०]।

उद्बंधन—संज्ञा पुं० [सं० उद्बन्धन] १ दे० 'उद्बंध²'। २ छोड़ना। मुक्त करना [को०]।

उद्बंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुक। काँटी। खूँटी [को०]।

उद्देशक[2]—संज्ञा पुं० १ दृष्टांत । उदाहरण । २ निर्देशक व्यक्ति । ३. प्रश्न (गणित) ।

उद्देशन—संज्ञा पुं० [सं०] दिखलाने या बताने की क्रिया [को०] ।

उद्देश्य[1]—वि० [सं०] १ लक्ष्य इष्ट । २ स्पष्ट करने योग्य (को०) ।

उद्देश्य[2]-संज्ञा पुं० १ वह वस्तु जिसपर ध्यान रखकर कोई बात कही या की जाय । अभिप्रेत अर्थ । इष्ट । जैसे,–किस उद्देश्य से तुम यह कार्य कर रहे हो । २ वह जिसके विषय में कुछ विधान किया जाय । वह जिनके संबंध में कुछ कहा जाय । विशेष्य । विधेय का उल्टा । जैसे,–'वह पुरुष बड़ा वीर है' इस वाक्य में 'वह पुरुष' या 'पुरुष' उद्देश्य है और 'वीर है' या 'वीर' विधेय है ।

यौ०—उद्देश्य-विधेय-भाव = उद्देश्य और विधेय का संबंध । विशेषण विशेष्य का भाव ।

उद्देष्टा– वि० [सं० उद्देष्टृ] १ संकेत करनेवाला । २ किसी लक्ष्य के अनुसार काम में प्रवृत्त होनेवाला [को०] ।

उद्देस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्देश] दे० 'उद्देश्य' । उ०—कवन सु फल काके उद्देस । कवन देवता सेस सुरेस ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०५ ।

उद्देहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक [को०] ।

उद्दोत[1](पु)-वि० [सं० उद्योत] प्रकाश । उ०—वन ते घर आवै नहीं घर ते वन नहिं जाइ, सुंदर रवि उद्दोत तें तिमिर कहाँ ठहराइ ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८११ ।

उद्दोत[2]— वि० १ प्रकाशित । चमकीला । २ उदित । उत्पन्न । उ०—काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत, पुर पैठत श्रीराम के भयो मित्र उद्दोत ।—केशव (शब्द०) ।

उद्दोतिताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्योतित + हिं० आई (प्रत्य०)] चमकीलापन । प्रकाश ।

उद्द्योत[1]-वि० [सं० उद्द्योत] प्रकाशित । ज्योतियुक्त । कांतियुक्त [को०] ।

उद्द्योत[2]—संज्ञा पुं० १ प्रकाश । उजाला । उ०— ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरु वचन धरि जोग संग्राम के खेत आवैं ।—गुलाल०, बानी पृ० १०६ । २ चमक । झलक । आभा । ३ प्रकाशन । व्यक्तीकरण । आविष्करण (को०) । ४ ग्रंथ का विभाग । अध्याय या परिच्छेद (को०) । ५ महाभाष्य, काव्यप्रदीप और रत्नावली की टीका का नाम (को०) ।

उद्द्योतन-संज्ञा पुं० [सं० उद्द्योतन] [वि० उद्योतक, उद्योतनीय, उद्योतित] १ प्रकाशित करने या होने की क्रिया । चमकने या चमकाने का कार्य । २ प्रकट करने की क्रिया । व्यक्त करने का कार्य ।

उद्द्योतित-वि० [सं० उद्द्योतित] प्रकाशित । प्रज्वलित । द्योतित । [को०] ।

उद्द्राव[1]— वि० [सं०] दौड़ता या भागता हुआ [को०] ।

उद्द्राव[2]— वि० पुं० अपसरण । पलायन [को०] ।

उद्द्रुत—वि० [सं०] पलायनशील । भागनेवाला [को०] ।

उद्ध(पु)—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्व, पा० प्रा०, उद्ध = ऊँचा] ऊपर । उ०—मिली परस्पर डीठ वीर पग्गिय रिस लग्गिय । जग्गिय जुद्ध विरुद्ध उद्ध पलचर खग खग्गिय ।—सूदन (शब्द०) ।

उद्धत[1]—वि० [सं०] [संज्ञा औद्धत्य] १. उग्र । प्रचंड । अक्खड़ । अविनीत । जैसे,–वह उद्धत स्वभाव का मनुष्य है । २. प्रगल्भ । जैसे, वह अपने विषय का उद्धत विद्वान् है ३ अभिमानी । गरवीला (को०) । ४ क्षुब्ध । उत्तेजित (को०) । ५ अत्यधिक । अतिशय (को०) । ६. ऊपर उठा हुआ (को०) । ७ राजसी । राजकीय (को०) ।

उद्धत[2]—संज्ञा पुं० १ ४० मात्राओं का एक छंद जिसमें प्रत्येक दसवीं मात्रा पर विराम होता है और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे— विभु पूरन रघुवर, सुंदर हरि नरवर, विभु परम धुरंधर, राम जू सुख सार । मम आशय पूरन, वहु दानव मारन, दीनन जन तारन, कृष्ण जू हर भार । २ राजा का पहलवान । राजमहल ।

उद्धतपन—संज्ञा पुं० [सं० उद्धत + हिं० पन (प्रत्य०)] उजड्डपन । उग्रता ।

उद्धतमनस्क—वि० [सं०] दे० 'उद्धतमना' ।

उद्धतमना—वि० [सं० उद्धतमनस्] गर्विष्ठ । अभिमानी [को०] ।

उद्धति-संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अक्खड़पन । उजड्डपन । २ अभिमान । गर्व । ३ उत्थान । उठान । ४ आघात । चोट । मारना [को०] ।

उद्धना(पु)– क्रि० अ० [सं० उद्धरण] ऊपर उठना । उड़ना । छितराना । बिखरना । उ०—जरै बाँस औ काँस उद्धै फुलंगा । नचै भूमि को पूत कै कोटि अंगा ।—सूदन (शब्द०) ।

उद्धम— संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनित करना । बजाना । २ जोर जोर से साँस लेना [को०] ।

उद्धरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्धरणीय, उद्धृत] १ ऊपर उठना । २ मुक्त होने की क्रिया । छुटकारा । ३ बुरी अवस्था से अच्छी अवस्था में आना । ४ पढ़े हुए पिछले पाठ का अभ्यास के लिये फिर फिर पढ़ना । ५ किसी पुस्तक या लेख के किसी अंश को दूसरी पुस्तक या लेख में ज्यों का त्यों रखना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

६ उन्मूलन । उखाड़ना । ७ उठाना । उत्थापन । ८ परोसना । ९ वमन । १० निकालना । भीतर से बाहर करना (को०) । ११ वमन किया हुआ पदार्थ (को०) ।

उद्धरणी— संज्ञा स्त्री० [सं० उद्धरण + हिं० ई (प्रत्य०)] पढ़े हुए पिछले पाठ को अभ्यास के लिये बार बार पढ़ना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उद्धरना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० उद्धरण] उद्धार करना । उबारना । उ०—अब ह्याँ कौन जतन अनुसरौं, इहि मारौं अपनेन उद्धरौं ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६१ ।

उद्धरना[2]—क्रि० अ० बचना । छूटना । मुक्त होना । उ०—सूम सदा ही उद्धरै दाता जाय नरक, कहै कबीर ये साख सुनि मति कोइ जाय सरक ।—कबीर (शब्द०) ।

उद्धर्ता[1]—वि० [सं० उद्धर्तृ] १ उद्धार करनेवाला । संकट से बचानेवाला । उठानेवाला । २ जायदाद में हिस्सेदार । ३ संपत्ति को बचानेवाला । ४ उद्धरणी करने या दुहरानेवाला । ५. उद्धरण देनेवाला [को०] ।

बल सों करिहै ग्रास कह —'। (नेपथ्य में) हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रास कर सकता ? सूत्र०— जेहि बुध रच्छत ग्राप'। भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १३८। यहाँ सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किंतु चाणक्य ने 'चंद्र' शब्द का अर्थ चंद्रगुप्त प्रकट करके प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्घातक प्रस्तावना हुई।

उद्घाती—वि० [सं० उद्घातिन्] [स्त्री० उद्घातिनी] १ ठोकर मारनेवाला। धक्का पहुँचानेवाला। २ ऊँचा नीचा। ऊबड़ खाबड़।

उद्घुष्ट¹—वि० [सं०] घोषित। जिसकी घोषणा हो चुकी हो [को०]।

उद्घुष्ट²— संज्ञा पुं० कोलाहल। शोरगुल [को०]।

उद्घोष—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोषणा। डौंडी पीटना। २ चर्चा। प्रवाद। ३ निनाद। गर्जन [को०]।

उद्दंड—वि० [सं०उद्दण्ड] [संज्ञा उद्दंडता] १ जिसे दंड इत्यादि का कुछ भी भय न हो। अक्खड़। निडर। उजड्ड। प्रचंड। उद्धत। २ जिसका डंडा ऊँचा हो।

उद्दंडपाल—संज्ञा पुं० [सं० उद्दण्डपाल] १ दंडनायक। दंडाधिकारी। २ एक प्रकार की मछली। ३ एक तरह का साँप [को०]।

उद्दंतुर—वि० [सं० उद्दन्तुर] १ बड़े दाँतोंवाला। २ ऊँचा। ३ डरावना [को०]।

उद्दंश—संज्ञा पुं० [सं०] १ मच्छड़। २ खटमल। ३ जूँ [को०]।

उद्दत(पु)—वि० [सं० उद्यत] दे० 'उद्यत'।

उद्दम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ वशीकरण। वश में करना। २ दमन करना। नीचा दिखाना [को०]।

उद्दम²(पु)† —संज्ञा पुं० [सं० उद्यम] दे० 'उद्यम'।

उद्दर्शन संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्टीकरण। साफ करना। द्रष्टव्य बनाना [को०]।

उद्दांत – वि० [सं० उद्दान्त] १ विनीत। नम्र। २ उत्साहवान् [को०]।

उद्दान-संज्ञा पुं० [सं०] १ बंधन। बाँधना। २ उद्यम। ३ बड़वानल। ४ चूल्हा। ५ लग्न। ६ मध्य। कमर [को०]।

उद्दाम¹— वि० [सं०] १ बंधनरहित। २ निरंकुश। उग्र। उद्दंड। बेकहा। ३. स्वतंत्र। ४ महान्। गंभीर। ५ गर्वयुक्त। अभिमानी (को०)। ६ भयदायक। भयंकर (को०)। ७ बड़ा। विशाल (को०)।

उद्दाम²—संज्ञा पुं० १ वरुण। २ दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और १३ रगण होते हैं। ३ यम (को०)।

उद्दाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ उद्दालक ऋषि २ बहुवारक नाम का पौधा [को०]।

उद्दालक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वनकोदव नाम का अन्न। २ एक ऋषि का नाम। ३ एक प्रकार का मधु (को०)। ४ जिसकी सावित्री पतित हो गई हो, अर्थात् १६ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी जिसको गायत्री दीक्षा न मिली हो, उसके लिये कर्तव्य एक व्रत।

विशेष—इस व्रत में दो महीने जो, एक महीना सिखरन (दही, दूध और चीनी का शरबत), आठ रात घी और छह रात बिना माँगे मिले हुए पदार्थ पर निर्वाह करना चाहिए। इसके पीछे तीन रात केवल जल पीकर एक दिन रात उपवास करना चाहिए।

उद्दित¹(पु)—वि० [सं० उद्यत, उदित, उद्धत] दे० १ 'उद्यत'। २ दे० 'उदित'। ३ दे० 'उद्धत'।

उद्दित²—वि० [सं०] बँधा हुआ। प्रतिबद्ध [को०]।

उद्दिन – संज्ञा पुं० [सं०] दोपहर। मध्याह्न [को०]

उद्दिम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यम] दे० 'उद्यम'। उ०—मघवा है मेघनि कौ राजा, यह उद्दिम सब उनके काजा।—नंद० ग्रं०, पृ० १९०।

उद्दिष्ट¹—वि० [सं०] १ दिखाया हुआ। इंगित किया हुआ। २ लक्ष्य। अभिप्रेत। ३ बताया अथवा कहा हुआ (को०)। ४ ख्यात। प्रसिद्ध। मशहूर (को०)।

उद्दिष्ट²—संज्ञा पुं० १ पिंगल में वह क्रिया जिससे यह बतलाया जाता है कि दिया हुआ छंद मात्राप्रस्तार का कौन सा भेद है। २ लाल चंदन। ३ किसी वस्तु का वह भोग जो मालिक से आज्ञा प्राप्त करके किया जाय।

उद्दीप—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रज्वालन। जलाना। २ उत्तेजित या उद्दीप्त करना। ३ एक प्रकार की लसदार चीज (जैसे गोंद)। ४ गुग्गुल [को०]।

उद्दीपक¹—वि० [सं०] [स्त्री० उद्दीपिका] १. उद्दीपन करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला। उभाड़नेवाला। २ जलानेवाला [को०]।

उद्दीपक²—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया [को०]।

उद्दीपका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चींटी का एक भेद [को०]।

उद्दीपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्दीपनीय, उद्दीपक, उद्दीपित, उद्दीप्त, उद्दीप्य] १ उत्तेजित करने की क्रिया। उभाड़ना। बढ़ाना। जगाना। २ उद्दीपन करनेवाली वस्तु। उत्तेजित करनेवाला पदार्थ। ३ काव्य में वे विभाव जो रस को उत्तेजित करते हैं जैसे शृंगार रस का उद्दीपन करनेवाले सखा, सखी, दूती, ऋतु, पवन, वन, उपवन, चाँदनी आदि हैं। ४ ज्वलित करना। जलाना। (को०)। ५ मृत व्यक्ति को जलाना। शवदाह (को०)।

उद्दीपित—वि० [सं०] १ उद्दीप्त किया हुआ। २ जागरित किया हुआ [को०]।

उद्दीप्त—वि० [सं०] १ जगाया हुआ। २ उत्तेजित। चमकीला। दीप्त [को०]।

उद्दीप्ति—संज्ञा। स्त्री० [सं०] १ जागरण। २ उत्तेजन [को०]।

उद्दीप्र¹—वि० [सं०] चमकता हुआ। उद्दीप्त [को०]।

उद्दीप्र²—संज्ञा पुं० गुग्गुल [को०]।

उद्देश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्दिष्ट, उद्देश्य उद्देशित] १ अभिलाषा। चाह।। इष्ट। मंशा। मतलब। अभिप्राय। २ हेतु। कारण। ३ अनुसंधान। ४ न्याय में प्रतिज्ञा। ५ स्पष्टीकरण [को०]। ६ निश्चयन। निर्धारण (को०)। ७ उच्च स्थान। ऊँचा पद (को०)। ८ स्थान। जगह (को०)।

उद्देशक¹—वि० [सं०] उदाहरणस्वरूप [को०]।

वमन। ३. वेग से बाहर निकला हुआ तरल पदार्थ। ४. वमन की हुई वस्तु। कै। ५ थूक। कफ। ६. डकार। खट्टी डकार। ७ बाढ। अत्रविक्रय। ८ घोर शब्द। तुमुल शब्द। घरघराहट। ९ किसी के विरुद्ध बहुत दिनों से मन में रखी हुई बात को एकबारगी कहना। जैसे, उनकी बातें सुनकर न रह गया, मैंने भी अपने हृदय का उद्गार खूब निकाला।

यौ०—उद्गारचूडक = एक पक्षी।

उद्गारकमणि—संज्ञा पुं० [सं०] विद्रुम। प्रवाल [को०]।

उद्गारी¹—वि० [सं० उद्गारिन्] [वि० स्त्री० उद्गारिणी] १. उगलने वाला। बाहर निकालनेवाला। २ प्रकट करनेवाला।

उद्गारी²—संज्ञा पुं० ज्योतिष में बृहस्पति के १२वें युग का दूसरा वर्ष। इसमें राजक्षय और असमान वृष्टि होती है। इसका दूसरा नाम रक्तोद्गारी भी है।

उद्गिरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्गीर्ण] १ उगलना। बाहर निकलना। २ वमन। ३. डकार [को०]।

उद्गीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम पदों में १२ और दूसरे में १५ तथा चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं। इसके विषम चरणों में जगण नहीं होता। इसे विगाथा और विगाहा भी कहते हैं। जैसे-राम भजहु मनलाई तन मन धन के सहित मीता। रामहिं निसि दिन ध्यावौ, राम भजहिं तवहिं जग जीता। २. जोर से गाना गाना (को०)। ३. साम का गान (को०)।

उद्गीथ—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के गाने का एक भेद। सामवेद का द्वितीय खंड। एक प्रकार का सामगान। उ०—जिसमें शीतल पवन गा रहा पुलकित हो पावन उद्गीथ।—कामायनी, पृ० ३४। २ ओंकार। ३ सामगान।

उद्गीरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ बाहर निकाल देना। २ उगलना। थूकना। ४ वमन करना (को०)।

उद्गीर्ण—वि० [सं०] १ उगला हुआ। मुँह से निकला हुआ। २ निकला हुआ। बाहर किया हुआ। ३ वमन किया हुआ।

उद्गूर्ण—वि० [सं०] १ उठाया हुआ। २ उत्तेजित। क्षुब्ध [को०]।

उद्गेय—वि० १. [सं०] गाए जाने योग्य। २ गाया जानेवाला [को०]।

उद्गेही—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चींटी। उदेही [को०]।

उद्ग्रंथ¹—वि० [सं० उद्ग्रन्थ] बिना बंधन का। बंधनमुक्त। ढीला [को०]।

उद्ग्रंथ²—संज्ञा पुं० पुस्तक का एक अध्याय या विभाग [को०]।

उद्ग्रंथि—वि० [सं० उद्ग्रन्थि] १. खुला हुआ। मुक्त। २. विरक्त। माया के बंधन से मुक्त [को०]।

उद्ग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर के लिये एकत्र धन। २. प्रतिवाद। ३ ऊपर उठाना या ले लेना। ४. उन्नति की ओर बढ़ना। ऊँचे जाना। ५. प्रातिशाख्य में कथित एक प्रकार की स्वरसंधि। इसे 'उद्ग्राह पदवृत्ति' भी कहते हैं [को०]।

उद्ग्राहित—वि० [सं०] १ हटाया हुआ। लिया हुआ। २ उपन्यस्त। रखा हुआ। ३. बँधा हुआ। ४ स्मरण किया हुआ। स्मृत। ५. कथित। जिसका उल्लेख किया गया हो। ६. श्रेष्ठ [को०]।

उद्ग्रीव—वि० [सं०] १. गर्दन उठाए हुए। उन्नतशिर। उ०—हींस रहे थे उधर अश्व उद्ग्रीव हो, मानो उसका उडा जा रहा जीव हो।—साकेत, पृ० १२७। २ उत्कंठित। उ०—गौर से सुननेवाले जमाने को उद्ग्रीव छोडकर यह महान कलाकार खुद ही सो गया।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १२५।

उद्ग्रीवी—वि० [सं० उद्ग्रीविन्] दे० 'उद्ग्रीव'।

उद्घ—संज्ञा पुं० [सं०] १ श्रेष्ठता। महत्ता। जैसे, ब्राह्मणोद्घ = श्रेष्ठ या उत्तम ब्राह्मण। २. प्रसन्नता। ३ रिक्त हस्त। ४. अग्नि। ५ आदर्श। नमूना। ६ प्राणवायु [को०]।

उद्घटित—संज्ञा पुं० [सं०] इशारा। संकेत [को०]।

उद्घट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेद में से एक।

उद्घट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० उद्घट्टना] १. मुक्त करना। खोलना। २. फैलना। छिडकना। ३ रगड। संघर्ष [को०]।

उद्घट्टित—वि० [सं०] १ उन्मुक्त। खोला हुआ। २ पृथक् किया हुआ [को०]।

उद्घन—संज्ञा पुं० [सं०] बढई के काम करने की वह लकडी जिसपर रखकर वह लकडियों को गढता है। ठीहा [को०]।

उद्घर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड। २. घोटने की क्रिया। ३ मारना। आहनन। ४. डंडा। सोंटा [को०]।

उद्घस—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।

उद्घाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोलने या दिखाने का कार्य (दाँत संबंधी)। २. वह स्थान जहाँ राज्य की ओर से माल को खोलकर जाँच हो। चौकी।

उद्घाटक¹—वि० [सं०] उद्घाटन करनेवाला [को०]।

उद्घाटक²—संज्ञा पुं० १ ताली। कुंजी। २ कुएँ पर लगी हुई पानी खींचने की चरखी [को०]।

उद्घाटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्घाटक, उद्घाटनीय, उदघाटित, उद्घाट्य] १. खोलना। उघाडना। २ प्रकट करना। प्रकाशित करना। ३ किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा किसी कार्य का प्रारंभ।

उद्घाटित—वि० [सं०] १ खोला हुआ। २ ऊपर उठाया हुआ। ३ शुरू किया हुआ।

उद्घात—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्घाटक, उद्घातकी,] १. ठोकर। धक्का। आघात। २ आरंभ। ३ हवाला। विवरण। उल्लेख (को०)। ४ शस्त्र। आयुध (को०)। ५ हिलना। डगमगाना (को०)। ६ गदा या परिघ (को०)। ७. प्राणायाम (को०)। ८. ग्रंथ का विभाग। अध्याय (को०)।

उद्घातक¹—वि० [सं०] [स्त्री० उद्घातिका] १. धक्का मारनेवाला। ठोकर लगानेवाला। २. आरंभकर्ता [को०]।

उद्घातक²—संज्ञा पुं० नाटक में प्रस्तावना का एक भेद।

विशेष—इसमें सूत्रधार और नटी आदि की कोई बात सुनकर उसका अर्थ लगाता हुआ कोई पात्र प्रवेश करता है या नेपथ्य से कुछ कहता है। जैसे,—सूत्रधार-प्यारी, मैंने ज्योतिषशास्त्र के चौंसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो, रसोई तो होने दो। पर आज ग्रहण है, यह तो किसी ने तुम्हें धोखा ही दिया है क्योंकि 'चंद्रबिंब पूर न भए क्रूर केतु हठ दप।

उदीर्ण–वि० [स०] १. कथित । २ विकसित । ३ पैदा किया हुआ । ४ आविष्ट । उत्तेजित । ५ उदार । उत्तम । ६ प्रस्तुत । तत्पर (अस्त्रसधानार्थ) । ७ महान् । श्रेष्ठ । ८ अभिमानी । गर्विष्ठ [को०] ।

उदुंबर–सज्ञा पुं० [स० उदुम्बर] [वि० औदुंबर] १ गूलर । २ देहली । ड्योढ़ी । नपुसक । ४ एक प्रकार का कोढ़ । ५ तांबा । ६ अस्सी रत्ती की एक तौल ।

पर्या०—उडुबर । उदुंबल ।

उदुंबरपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स० उदुम्बरपर्णी] दती । दांती । एक वृक्ष ।

उदुंबल – वि० [सं० उदुम्बल] शक्तिशाली । ताकतवर [को०] ।

उदुआ—सज्ञा पुं० [सं० ऋतु, पा० प्रा० उतु = एक प्रकार का भोजन] एक प्रकार का मोटा जडहन ।

उदुष्ट—वि० [स०] लाल [को०] ।

उदूखल—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उलूखल' ।

उदूढ—वि० [स०] १ विवाहित । २ प्राप्त । स्वायत्त । ३ लबा । ऊँचा । ४ भारी । वजनी । ५ स्थूल । पीन । ६ सारवान् । सारयुक्त । ७ बहुत अधिक ।

उदूल—सज्ञा पुं० [अ०] अवज्ञा । नाफर्मानी । अवहेलना [को०] ।

उदूलहुक्मी—सज्ञा स्त्री० [अ० उदूल + हुक्म + फा० ई (प्रत्य०)] आज्ञा न मानना । आज्ञा का उल्लघन ।

उदेग(पु)—सज्ञा पुं० [स० उद्वेग] उद्वेग । उचाट । उ०—देश काल बल ज्ञान लोभ करि हीन है । स्वामि काम मैं लीन सुसील कुलीन है । बहु विधि बरने बानि हिये नहि भै रहै । पर उर करै उदेग दूत तासों लहै ।—सूदन (शब्द०) ।

उदेजय—वि० [स०] १ कपित करनेवाला कँपानेवाला । २ भयकर । डरावना । [को०] ।

उदेल—सज्ञा पुं० [अ० ऊद] लावान ।

उदेस(पु)¹—सज्ञा पुं० [स० उद्देश] खोज । अनुसधान । उ०—पिय के उदेश न पायो कैसे क जिय ठहराय ।—गुलाल० बानी पृ० ८२ ।

उदेश²(पु)—सज्ञा पुं० [स० विदेश, प्रा० विएस, विदेस(पु) बिदेस अथवा स० उत् = उद्गत + देश] अन्य देश । परदेश । उ०—कमर बाँधि खोजन चले, पलटू फिरे उदेस । षट दरसन सब पचि मुए, कोऊ न कहा सदेस ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ११५ ।

उदै(पु)—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय'। उ०—पूरन ससि प्राची उदै विहरनि रुचि कीनी ।—घनानद, पृ० ४५५ ।

उदैही(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० उद्देहिका] दीमक । उ०—बाँकी फिर अगह बली, अग उदैंही जाम ।—पृ० रा० १।११० ।

उदो(पु)– सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० उदय' ।

उदोत¹(पु), उदोति(पु)– सज्ञा पुं० [स० उद्योत] प्रकाश । दीप्ति । उ०—गग नीर विधु रुचि झलक मृदु मुसुकानि उदोति । कनक भौन के दीप लौं जगमगाति तन जोति ।—मति० ग्र०, पृ० ४२१ । २ अभिवृद्धि । बढती । उन्नति ।

यौ०– उद्योतकर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उदोत²(पु)—वि० १ प्रकाशित । दीप्त । उ०—कबहुँ न मूर्ति विलग दोउ होती । दिन दिन करती कला उदोती ।—रघुनाथ (शब्द०) । २ शुभ्र । उत्तम । उ०—एक ब्राह्मणी रचै एक धोती । वर्ष दिवस महँ अतिहि उदोती ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

उदोतकर(पु)—वि० [स० उद्योतकर] १ प्रकाश करनेवाला । प्रकाशक । २ चमकानेवाला । उज्वल करनेवाला । उ०—प्रोपधि बर वश उदोतकर सूर सूरता लोप रत । गोपाल (शब्द०) ।

उदोती(पु)—वि० [स० उद्योत] [स्त्री० उदोतिनी] प्रकाश करनेवाला । उदय करनेवाला । विकासक । उ०—अट्टहास की रोरनि चिंतित मन की द्योतिनि, कलित किलकिला मिंत मोद उर भाव उदोतिनि ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

उदौ(पु)—सज्ञा पु० [स० उदय] दे० 'उदय' ।

उद्गंध—वि० [स० उद्गन्ध] १ तीखी गधवाला । २ सुगध युक्त [को०] ।

उद्गत–वि० [स०] १ निकला हुआ । उद्भूत । उत्पन्न । २ प्रकट । जाहिर । ३ फैला हुआ । व्याप्त । ४ वमन किया हुआ । छर्दित । ५ प्राप्त । लब्ध । ६ गया हुआ । गमित (को०) ।

उद्गता—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वृत्त का नाम [को०] ।

उद्गतार्थ—सज्ञा पुं० [स०] वह पदार्थ या धरोहर जिसका पड़े पड़े ही भोग आदि बढ़ने से दाम चढ गया हो ।

उद्गतासु—वि० [सं०] निष्प्राण । मृत [को०] ।

उद्गति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ऊपर की ओर जाना । आरोह । २. वमन । छर्दि । ३ उदय । ४ उत्स । मूल [को०] ।

उद्गम—सज्ञा पुं० [स०] १ उदय । आविर्भाव । २ उत्पत्ति का स्थान । उद्भवस्थान । निकास । मखरज । ३. वह स्थान जहाँ से कोई नदी निकलती हो । ४ वमन (को०) । ५ जाना । निकलना । जैसे, प्राणोद्गम (को०) । ६ खडा होना । भरभराना । जैसे, रोमोद्गम (को०) । ७. अकुर । अँखुआ (को०) । ८. जन्म । पैदाइश । उत्पत्ति (को०) । ९ अवलोकन । दृष्टि (को०) ।

उद्गमन—सज्ञा पुं० [स०] उगना । प्रकट होना [को०] ।

उद्गमनीय—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्वच्छ या धुले हुए वस्त्रों का जोडा । २ धुला वस्त्र [को०] ।

उद्गाढ—वि० [सं०] १ गहरा २ अतिशय । अधिक । ३ प्रचड [को०] ।

उद्गाता—सज्ञा पुं० [स० उद्गातृ] यज्ञ मे चार प्रधान ऋत्विजों मे एक जो सामवेद के मत्रो का गान करता है और सामवेद सबधी कृत्य कराता है ।

उद्गातृ—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्गाता' । उ०—एक उद्गातृ चाहिए था जो सोम गाए ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ४२ ।

उद्गाथा—सज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या या गाथा छद का एक प्रकार [को०] ।

उद्गार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्गारी, उद्गारित] १ तरल पदार्थ के वेग से बाहर निकलने या ऊपर उठने की क्रिया । उबाल । उफान २. मुँह से निकल पड़ने की क्रिया ।

उदासीवाजा—संज्ञा पुं० [हिं० उदासी+फा० बाजा] एक प्रकार का भोंपा या फूँककर बजाया जानेवाला बाजा।

उदास्थित¹—वि० [सं०] नियुक्ति। काम पर लगाया हुआ [को०]।

उदास्थित²—संज्ञा पुं० १ द्वारपाल। २ चर। ३ अधीक्षक। निरीक्षक। ४. सन्यास आश्रम का त्यागकर गुप्तचर का काम करनेवाला व्यक्ति [को०]।

उदाहट – संज्ञा पु० [हिं० ऊदा+हट (प्रत्य०)] ललाई मिला हुआ नीलापन। ऊदापन।

उदाहरण—संज्ञा पु० [सं०][वि० उदाहरणीय, उदाहार्य, उदाहृत]१. दृष्टांत। मिसाल। न्याय मे वाक्य के पाँच अवयवों में से तीसरा जिसके साथ साध्य का साधर्म्य या वैधर्म्य होता है।

विशेष—उदाहरण दो प्रकार का होता है, एक 'अन्वयी' और दूसरा 'व्यतिरेकी'। जिससे साध्य के साथ साधर्म्य होता है वह अन्वयी है, जैसे—शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से घट की तरह। यहाँ घट अन्वयी उदाहरण है। व्यतिरेकी वह है जिसका साध्य के साथ वैधर्म्य हो, जैसे—शब्द अनित्य है उत्पत्ति धर्मवाला होने से। जो उत्पत्ति धर्मवाला नहीं होता, वह नित्य होता है, जैसे, आकाश, आत्मा आदि।

३ आरंभ (को०)। ४. एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमे प्रस्तुतार्थ के समर्थन के लिये उसी की समता के अप्रस्तुत को उदाहरणस्वरूप उपस्थित कर देते हैं (को०)।

उदाहार—संज्ञा पु० [सं०] १ उदाहरण। दृष्टांत। २ वक्तव्य का आरंभ [को०]।

उदाहृत—वि० [सं०] ऊपर उठाया हुआ [को०]।

उदाहृत—वि० [सं०] १ कथित। उक्त। २ उदाहरण या दृष्टांत के रूप में प्रयुक्त [को०]।

उदाहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का उत्कर्षयुक्त वचन कहना, जो गर्भसंधि के १३ अंगों में से एक है। जैसे—रत्नावली में विदूषक का यह कथन—(हर्ष से) आज मेरी बात सुनकर प्रिय मित्र को जैसा हर्ष होगा, वैसा तो कौशांबी का राज्य पाने से भी न हुआ होगा। अच्छा, अब चलकर यह शुभ संवाद सुनाऊँ २ उदाहरण। दृष्टांत [को०]।

उदिआन(पु)—संज्ञा पु० [सं० उद्यान] दे० 'उद्यान'।

उदिआना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्विग्न] उद्विग्न होना। घबड़ाना। हैरान होना। उ०—मन रे कौन कुमति तैं लीनी। परदारा निंदिया रस रचि, और रामभगति नहिं कीन्ही। ... ना हरि भज्यो न गुरुजन सेयो नहिं उपज्यो कछु ज्ञाना। घट ही माँहि निरंजन तेरे तैं खोजत उदिआना।—तेगबहादुर (शब्द०)।

उदित¹—वि० [सं०] [स्त्री० उदिता] १ जो उदय हुआ हो। निकला हुआ। २ प्रकट। जाहिर। ३ उज्वल। स्वच्छ। ४ प्रफुल्लित। प्रसन्न। ५ कहा हुआ। कथित। ६ उच्च। ऊँचा (को०)। ७ उत्पन्न। पैदा हुआ (को०)। ८. तत्पर। सन्नद्ध। तैयार (को०)।

उदित²—संज्ञा पु० १. एक प्रकार की सुगंध। २ एक प्रकार का उच्चारण [को०]।

उदितयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका के सात भेदों में से एक जिसमे तीन हिस्सा यौवन और एक हिस्सा लड़कपन हो। उ०—तीन अंश जोबन जहाँ लरिकाई इक अंस। उदितयौवना सो तहाँ बरनत कवि अवतंस।—रघुनाथ (शब्द०)।

उदिताचल– संज्ञा पु० [सं०] दे० 'उदयाचल'।

उदिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ (सूर्य का) चढ़ना या ऊपर उठना। २ संनिवेश। निवेशन। ३ अस्त होना। ४ वक्तव्य [को०]।

उदिम(पु)—संज्ञा पु०[सं० उद्यम]दे० 'उद्यम'। उ०—दादू उदिम औगुण को नहीं, जे करि जाणै कोइ। उदिम मैं आनद है, जे साँई सेती होइ।—दादू० बानी, पृ० ३३६।

उदियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उदयान] दे० 'उद्यान'।

उदियाना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद्विग्न] घबड़ाना। उद्विग्न होना।

उदीक्षण—संज्ञा पु० [सं०] १ देखना। तजवीजना। २ ऊपर की ओर देखना [को०]।

उदीची—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उदीचीन, उदीच्य, औदिच्य] उत्तर दिशा।

उदीचीन—वि० [सं० तुल० अवे० उदीचीन (=उत्तरी)] १. उत्तर दिशा का। उत्तर का। २ उत्तर की ओर। उत्तराभिमुख [को०]।

उदीच्य¹–वि० [सं०] १ उत्तर दिशा का रहनेवाला। २ उत्तर दिशा का। उत्तर की ओर का।

उदीच्य²—संज्ञा पु० १ एक देश जो सरस्वती के उत्तर पश्चिम ओर है। २ किसी यज्ञ आदि कर्म के पीछे दान दक्षिणादि कृत्य। ३ एक सुगंधित पदार्थ (को०)। ४ ब्राह्मणों की एक शाखा।

उदीच्य³—संज्ञा पु० [सं०] वैताली छंद का एक भेद जिसके विषम अर्थात् पहले और तीसरे चरणों में दूसरी और तीसरी मात्राएँ मिलकर एक गुरु वर्ण हो जाएँ। जैसे—हरिहिं भज जाम आठहू। जजालहिं तजिकै करौ यही। तनें मनें दे लगा सबै पाइहौ परम धाम ही सही।

उदीतना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्दीप्त, प्रा०उद्दित्त] प्रकाशित करना। उ०—दादू जी दयाल गुर अंतर उदीत्यौ है।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६०।

उदीप¹—वि० [सं०] बाढ़ के जल से प्लावित [को०]।

उदीप²—संज्ञा पु० पानी की बाढ। जलप्लावन [को०]।

उदीपन(पु)—संज्ञा पु० [सं० उद्दीपन] दे० 'उद्दीपन'।

उदीपित(पु)—वि० [सं० उद्दीपित] दे० 'उद्दीपित', 'उद्दीप्त'।

उदीयमान—वि० [सं०] १ उगता हुआ। २ विकासोन्मुख। होनहार [को०]।

उदीरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन। उच्चारण। २. बोलना। कहना। ३. फेंकना। क्षेपण (अस्त्र का) [को०]।

उदीरित–वि० [सं०] १. कथित। कहा हुआ। २ सक्षुब्ध। प्रयमित। उत्तेजित। ३ विकसित। प्रफुल्लित। ४. अभिवृद्धि। समुन्नत [को०]।

यौ०—उदीरितधी=कुशाग्रबुद्धि। तीक्ष्णबुद्धि।

उदारघी[२]—संज्ञा स्त्री० उत्तम गुण। उत्कृष्ट बुद्धि [को०]।

उदारना—क्रि० स० [स० उद्दारण] १ फाडना। विदीर्ण करना। उ०—भनै रघुराज तैसे अतिथि से आदर को, आसु ही अनादर उदार्यो करि पीर को।—रघुराज (शब्द०)। २ गिराना। तोडना। ढाना। छिन्न भिन्न करना। उ०—रावण से गहि कोटिक मारो। कहहु तो जननि जानकी ल्याऊँ कहो तो लक उदारो। कहो तो अबही पैठि सुभट हति अनत सकल पुर जारो।—सूर (शब्द०)।

उदाराशय-वि० [स०] उदार आशय का। जिसका उद्देश्य उच्च हो। जिसके विचार सकुचित न हो।

उदावत्सर—संज्ञा पुं० [स०] वर्षविशेष। कालविशेष का निर्णय करने वाले पाँच वर्षो मे से एक [को०]।

उदावर्त-संज्ञा पुं० [स०] गुदा का एक रोग जिसमे काँच निकल आती है और मलमूत्र रुक जाता है। गुदाग्रह। काँच।

विशेष-वैद्यक शास्त्र के अनुसार यह रोग वायु के बिगडने से होता है। यह वायु अधोवायु, मल, मूत्र, जँभाई, आँसू (रोवाई), छींक, डकार, वमन, काम, भूख, प्यास, नीद के वेगों को रोकने से तथा श्वासरोग से कुपित हो जाती है।

उदावर्ता—संज्ञा स्त्री० [स०] स्त्रियो का एक रोग जिसमे रजोधर्म रुक जाता है और ऋतुकाल मे पीड़ा के साथ योनि से फेनयुक्त रुधिर या रज निकलता है।

उदावसु—संज्ञा पुं० [स०]विदेहराज जनक के एक पुत्र का नाम [को०]।

उदास[१]—वि० [स० उत्+आस]१ जिसका चित्त किसी पदार्थ से हट गया हो। विरक्त। उ०—(क) घरही महँ रहु भई उदासा। अंचल खप्पर शृगी खासा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तेहि के वचन मानि विश्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा। मानस, १।७६। (ग) निकिचन जन मैं मम वास। नारि सग तें रहौं उदास।—सूर, १०।४१६५। २ झगडे से अलग। निरपेक्ष। तटस्थ। जो किसी के लेन देन मे न हो। उ०—(क) एक भरत कर समत कहही। एक उदास भाय सुनि रहहीं। —मानस, २।४८। ३ खिन्नचित्त। दुखी। रजीदा। उ०—(क) साधू, भँवरा जग कली, निसि दिन फिरैं उदास। टुक इक तहाँ बिलबिया जहँ शीतल शब्द निवास।—कबीर (शब्द०)। (ख) हाड जरैं ज्यो लाकडी केश जरैं ज्यो घास। यह सब जलता देखि के भया कबीर उदास।—कबीर (शब्द०)। रामचद्र अवतार कहत हैं सुनि नारद मुनि पास। प्रकट भयो निश्चर मारन को सुनि वह भयो उदास। —सूर (शब्द०)।

उदासⓅ[२]—संज्ञा पुं० १ दुख। खेद। रज। उ०—कहहि कबीर दासन के दास। काहुहि सुख दे काहुहि उदास।—कबीर (शब्द०)।

उदास[३]—संज्ञा पुं० [स०] १ ऊपर उठना। उठना। २ तटस्थता। विरक्ति। सन्यास [को०]।

उदासना—क्रि० अ० [स० उदास से नामिक धातु] खिन्न या विरक्त होना। दुखयुक्त होना।

उदासनाⓅ—क्रि० स० [स० उद्वासन] १ उजाडना। नष्ट करना। उ०—केशव अफल अकाश वायु बिल देश उदासे।—केशव (शब्द०)। २ (बिस्तर) समेटना या बटोरना। (फैला-हुआ बिस्तर) उठाना।

उदासिता—वि० [स० उदासितृ] उदासीन। तटस्थ। निरपेक्ष [को०]।

उदासिलⓅ—वि० [स० उदास+हिं० इल (प्रत्य०)] उदासीन। उदास। उ०—देवता तुमको चहैं निज प्राण सो मरमाइ कै। आप ही उनते उदासिल कौन सो गुण पाइ कै।—गुमान (शब्द०)।

उदासी[१]—वि० [स० उदासिन्] तटस्थ। अलग। निरपेक्ष [को०]।

उदासी[२]—संज्ञा पुं० [सं० उदास+हिं० ई (प्रत्य०)] [स्त्री० उदासिन] १ विरक्त पुरुष। त्यागी पुरुष। सन्यासी। उ०—(क) होय गृही पुनि होय उदासी। अतकाल दोनो विश्वासी।—जायसी (शब्द०)। (ख) ओहि पथ जाइ जो होय उदासी। जोगी जती तपा सन्यासी।—जायसी ग्र०, पृ० ५०। (ग) प्रमुदित तीरथराज निवासी। वैखानस, बटु गृही उदासी।—मानस, २।२०५। २ नानकशाही साधुओं का एक भेद। ये साधु शिखा नही रखते। ये सन्यासियो के समान सिर घुमाते और लँगोट पहनते हैं।

उदासी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० उदास+हिं० ई (प्रत्य०)] १ खिन्नता। उत्साह या आनद का अभाव। दुख। जैसे—(क) नादिरशाह के आक्रमण के बाद दिल्ली मे चारो ओर उदासी बरसती थी। (ख) राम के वनवास से अयोध्या मे उदासी छा गई। उ०—बिनु दशरथ सब चले तुरत ही कोशल पुर के वासी। आए रामचद्र मुख देख्यो तबकी मिटी उदासी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—छाना। टपकना। बरसना।—होना।

उदासीन[१]—वि० [स०][वि० स्त्री० उदासीना, संज्ञा उदासीनता] १ विरक्त। जिसका चित्त हट गया हो। प्रपचशून्य। २ झगडे बखेडे से अलग। जो किसी के लेने देने मे न हो। ३ जो दो विरोधी पक्षों मे से किसी की ओर न हो। निष्पक्ष। तटस्थ। ४ रूखा। उपेक्षायुक्त। जैसे,—हम उनसे मिलने गए पर उन्होंने बडा उदासीन भाव धारण किया।

उदासीन[२]—संज्ञा पुं० १ बारह प्रकार के राजाओ मे वह राजा जो दो राजाओ के बीच युद्ध होते समय किसी की ओर न हो, किनारे रहे। २ वह पुरुष जिसे किसी अभियोग या मामले मे दो पक्षो मे से किसी के सबध मे न हो। ३ पच। तीसरा। ४. कौटिल्य के अनुसार दूरवर्ती राष्ट्र का वह राजा जो शक्तिशाली तथा निग्रह अनुग्रह मे समर्थ हो। ५ अजनबी (को०)।

उदासीनता—संज्ञा स्त्री० [स०] १ विरक्ति। त्याग। निरपेक्षता। निर्द्वंद्वता। ३ उदासी। खिन्नता।

उदासीन मित्र—संज्ञा पुं० [स०] वह मित्र राजा जिसके सबध मे यह निश्चय न हो कि वह सहायता मे कुछ करने का कष्ट उठाएगा।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार जिस राजा के पास बहुत अधिक उपजाऊ जमीन होगी, जो बलवान सतुष्ट तथा आलसी होगा और कष्ट से दूर भागनेवाला होगा, उसे सहायता के लिये कुछ करने की कम परवा होगी।

उदरिक—वि० [सं०] तोदवाला । तुंदिल । बड़े पेटवाला [को०] ।

उदरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी नारी । अंतर्वत्नी [को०] ।

उदरिल—वि० [सं०] दे० 'उदरिक' [को०] ।

उदरी—वि० [सं० उदरिन्] [वि०स्त्री० उदरिणी] दे० 'उदरिक' [को०] ।

उदर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. धतूरा । मदन वृक्ष । २ गुंबद । मीनार । ३ भविष्यत् काल । ४. भावी फल । अभिवृद्धि । वर्धन । बढ़ना । अंत या समाप्ति [को०] ।

उदर्चि[1]—संज्ञा पुं० [सं० उदर्चिस्] १ शिव । २ अग्नि । ३ कामदेव [को०] ।

उदर्चि[2]—वि० ऊपर की ओर ज्वाला या प्रकाश फेंकनेवाला । जिसकी किरणें ऊपर की ओर जाती हों [को०] ।

उदर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जो शिशिर ऋतु में होता है । ददोरा । जुड़पित्ती ।

विशेष—इसमें शरीर पर ददोरे निकलते हैं । ये ददोरे बीच में गहरे और किनारों पर ऊँचे होते हैं । इनका रंग लाल होता है और इनमें खजली होती है । वैद्यक के अनुसार यह रोग कफ की अधिकता से होता है ।

उदर्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर [को०] ।

उदर्य—वि० [सं०] १ उदर संबंधी । २ उदर के भीतर का [को०] ।

उदवना(पु)—क्रि० अ० [सं० उदयन] उगना । निकलना । प्रकट होना । उ०—दमयती महराइ, उठी देखि आयो नृपति । उदवत शशि नियराइ सिंधु प्रतीची बीच ज्यों ।—गुमान (शब्द०) ।

उदवसित—संज्ञा पुं० [सं०] घर । भवन [को०] ।

उदवाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्वाह] दे० 'उद्वाह' ।

उदवेग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० 'उद्वेग' ।

उदश्रु—संज्ञा पुं० [सं०] रोता हुआ या रोनेवाला । [को०] ।

उदसन—संज्ञा पुं० [सं०] १ निरसन । खंडन । २ फेंकना । निकाल देना । ३ उठाना [को०] ।

उदसना(पु)—क्रि० अ० [सं० उदसन (=नष्ट करना) या उद्+व्वसन अथवा उद्वासन] १ उजड़ना । उ०—तिन इन देसन आनि उजार्‌यो । उदसि देश यह मो वन मार्‌यो ।—पद्माकर (शब्द०) । २ बेतरतीब होना । अड बंड होना । उड़सना ।

उदस्त—वि० [सं०] १ उदसन किया हुआ । २ उजाड़ा हुआ । ३ फेंका हुआ । ४ अपमानित । ५ उठा हुआ [को०] ।

उदात्त[1]—वि० [सं०] १ ऊँचे स्वर से उच्चारण किया हुआ । २ दयावान् । कृपालु । ३ दाता । उदार । ४ श्रेष्ठ । बड़ा । ५ स्पष्ट । विशद । ६ समर्थ । योग्य । ७ प्रिय । प्यारा (को०) । ८ ऊँचा । उच्च (को०) ।

उदात्त[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ वेद के स्वरों के उच्चारण का एक भेद जो तालु आदि के ऊपरी भाग की सहायता से होता है । २ उदात्त स्वर । ३ एक काव्यालंकार जिसमें संभाव्य विभूति का वर्णन खूब बढ़ा चढ़ाकर किया जाता है । जैसे—कुंदन की भूमि कोट काँगरे सुकंचन दिवार द्वार विद्रुम अशेष के । लसत पिरोजा के किवार खंभ मानिक के हीरामय छात छाजैं पन्ना छवि वेश के । जटिल जवाहिर झरोखा पै सिम्याने तास तास आसपास मोती उडुगन भेष के । उन्नत सुमंदिर से सुंदर पुरंदर के मंदिर तें सुंदर ये मंदिर वृजेश के । (शब्द०) । ४ दान । ५ एक आभूषण । ६ एक प्रकार का बाजा । बड़ा ढोल । नायक का एक भेद । दे० 'धीरोदात्त' (को०) ।

उदात्तराघव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक नाटक ।

उदात्तश्रुति—वि० [सं०] जो उदात्त स्वर में उच्चरित या कहा हुआ हो (वर्ण) [को०] ।

उदान—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणवायु का एक भेद जिसका स्थान कंठ है । इसकी गति हृदय से कंठ और तालु तक और सिर से भ्रूमध्य तक है । इससे डकार और छींक आती है । २ श्वास । साँस (को०) । ३ पक्ष्म । बरौनी (को०) । ४ नाभि (को०) । ५ प्रशंसा या आनंद की व्यंजना (बौद्ध) (को०) । ६ एक प्रकार का सर्प (को०) ।

उदाम(पु)—वि० [सं० उद्दाम] दे० 'उद्दाम' ।

उदायन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यान] बाग । वाटिका । उपवन । उ०—तुम श्याम गौर सुनो दोउ लालन आयो कहाँ से उदायन में ।—रघुराज (शब्द०) ।

उदार[1]—वि० [सं०] [संज्ञा उदारता] १ दाता । दानशील । २ महान् । बड़ा । श्रेष्ठ । ३ जो संकीर्णचित्त न हो । ऊँचे दिल का । ४ सरल । सीधा । शीलवान् । शिष्ट । ५ दक्षिण । अनुकूल । ६ सुंदर । उत्कृष्ट । उम्दा (को०) । ७ प्रभूत । प्रचुर (को०) । ८ उचित । ठीक (को०) । धैर्यशील । धीर (को०) । १० विस्तृत । बड़ा । विशाल (को०) । ११ ईमानदार (को०) ।

उदार[2]—संज्ञा पुं० [देश०] गुजू नाम का वृक्ष । (अवध) ।

उदार[3]—संज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्लेश अपने पूर्ण रूप में वर्तमान रहता हुआ अपने विषय का ग्रहण करता रहता है ।

उदारचरित—वि० [सं०] जिसका चरित उदार हो । ऊँचे दिल का । शीलवान् ।

उदारचेता—वि० [सं० उदारचेतस्] जिसका चित्त उदार हो ।

उदारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दानशीलता । फैयाजी । २ उच्च विचार । शील ।

उदारथि[1]—वि० [सं०] १ ऊपर की ओर जाने या उठनेवाला । २ ज्ञानेंद्रियों की चेतना को जागरित करनेवाला । ३ उफनाता हुआ । भाप देता हुआ [को०] ।

उदारथि[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०] ।

उदारदर्शन—वि० [सं०] जिसे देखने से आँखों को शीतलता और हृदय को शांति मिले । देखने मात्र से तृप्ति प्रदान करनेवाला [को०] ।

उदारधी[1]—वि० [सं०] बुद्धिमान् । प्रशस्त बुद्धिवाला । प्रतिभाशाली [को०] ।

उदारधी[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०] ।

उदयन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवंती देश का राजा वत्सराज जिसका वर्णन गुणाढ्य की 'वड्ढकहा', क्षेमेंद्र की 'बृहत्कथामंजरी' और सोमदेव के 'कथासरित्सागर में है। २ एक दार्शनिक आचार्य जिसने 'न्यायकुसुमांजलि' और 'आत्मतत्वविवेक' आदि ग्रंथ रचे हैं। ३ गौड़ देश का एक पंडित जिसे शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। ४ ऊपर की ओर उठना। उगना (को०)। ५ फल। परिणाम (को०)। ६. समाप्ति। परिणति (को०)।

उदयनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह दिखाई पड़े वह नक्षत्र उस ग्रह का उदयनक्षत्र कहलाता है।

उदयना(पु)—क्रि० अ० [सं० उदय] उदय होना। उ०—(क) जोबन भानु नहीं उनयो ससि सैसव हूँ को प्रकाश न ऊनो। ज्यों हरदी महँ की पियराई जुन्हाई को तेज भयो मिलि चूनो।—देव (शब्द०)। (ख) सहौं बालपन में तबहिं उदए भाग अपाप।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २८५।

उदयपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयगिरि' (को०)।

उदयपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मेवाड़ की पुरानी राजधानी का नाम।

उदयशैल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयगिरि' (को०)।

उदयाचल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पूर्व दिशा का एक पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है।

उदयातिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसमें सूर्योदय हो।

विशेष—शास्त्र में स्नान, दान और अध्ययन आदि कर्म इसी तिथि में करना लिखा है।

उदयाद्रि(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल। उदयगिरि।

उदयान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्यान] दे० 'उद्यान'। उ०—(क) गिरह उदयान एक सम लेखैं।—कबीर श०, पृ० ७२। (ख) जस गृह जस उदयाना। वै सदा अहैं निरवाना।—जग० बानी, पृ० ५२।

उदयास्त—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्ष और अपकर्ष। उत्थान और पतन। वृद्धि और ह्रास (को०)।

उदयी—वि० [सं० उदयिन्] उदयोन्मुख। विकासशील।

उदरंभर—वि० [सं० उदरम्भर] दे० 'उदरंभरि'।

उदरंभरि—वि० [सं० उदरम्भरि] अपना पेट भरनेवाला। पेटू। पेटार्थी।

उदरंभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उदरम्भरि+हिं० ई (प्रत्य०)] पेटार्थीपन। पेटूपन।

उदर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट। जठर।

मुहा०—उदर जिलाना=पेट पालना। पेट भरना। खाना। उ०—माँगत बार बार शेष ग्वालन को पाऊँ। आप लियो कछु जानि भक्ष करि उदर जियाऊँ।—सूर (शब्द०)। उदर भरना=पेट भरना। खाना। उ०—भिक्षावृत्ति उदर नित भरै, निसिदिन हरि हरि सुमिरन करै।—सूर (शब्द०)।

यौ०—जलोदर। वृकोदर।

२ किसी वस्तु के बीच का भाग। मध्य। पेटा। जैसे, यवोदर। ३ भीतर का भाग। अंतर। जैसे—पृथ्वी के उदर में अग्नि है। ४ विभिन्न विकारों के कारण पेट का फूलना (को०)।

उदरक—वि० [सं०] उदर से संबद्ध। पेट संबंधी (को०)।

उदरकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेट में होनेवाला कीड़ा। २ क्षुद्र या निम्न व्यक्ति (को०)।

उदरगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] प्लीहा रोग का एक प्रकार (को०)।

उदरग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० उदरग्रन्थि] दे० 'उदरगुल्म' (को०)।

उदरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जठराग्नि। २ भूख।

उदरत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] पेट अथवा शरीर के सामने के हिस्से की रक्षा के निमित्त बाँधा जानेवाला कवच (को०)।

उदरथि—संज्ञा पुं० [सं० उदरथिन] १ सागर। सिंधु। २. सूर्य (को०)।

उदरदास—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से दास या दास का पुत्र हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य को छोड़ दूसरे किसी मनुष्य को बेचना अपराध माना जाता था।

उदरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवदारण, हिं० उदारना] १ फटना। विदीर्ण होना। उ०—अमित अविद्या राक्षसी प्रेत सहित पाखंड। रामनिरंजन रटत मुख उदरि गई सत खंड।—केशव (शब्द०)। २ छिन्न भिन्न होना। ढहना। नष्ट होना। जैसे—पानी से उसका कोठिला उदर गया। ३ गिरना। उखड़ना। उ०—देखत ऊँचाई उदरत पाग सूधी राह द्यौस हू में चढ़े ते जे साहसनिकेत है।—भूषण ग्रं०, पृ० ७८।

उदरपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत खानेवाला आदमी। पेटू।

उदररेख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उदररेखा] दे० 'उदररेखा'।

उदररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लकीर जो बैठने में पेट में पड़ जाती है। त्रिवली।

उदरवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें पेट बढ़ आता है और उसमें पानी भर जाता है। जलोदर। जलधर।

उदरशय—वि० [सं०] पेट के बल सोनेवाला। पट सोनेवाला (को०)।

उदरसर्पी—वि० [सं० उदरसर्पिन] पेट के बल सरकनेवाला (को०)।

उदरसर्वस्व—वि० [सं०] पेट को ही सब कुछ माननेवाला। भोजन के लिये ही जीनेवाला। बहुत खानेवाला (को०)।

उदरस्थ[1]—वि० [सं०] खाया हुआ। भक्षित (को०)।

उदरस्थ[2]—संज्ञा पुं० जठराग्नि (को०)।

उदराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] जठरानल। भोजन को पचानेवाली पेट के भीतर स्थित अग्नि (को०)।

उदराट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदरकृमि' (को०)।

उदराध्मान—संज्ञा [सं०] अपच का रोग। अजीर्ण। पेट का फूल जाना (को०)।

उदरामय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदरामयी] पेट का रोग। उदररोग

उदरावरण—संज्ञा पुं० [सं०] पेट को घेरनेवाली झिल्ली (को०)।

उदरावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि। ढोंढ़ी।

उदरावेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कब्ज। अपच (को०)।

उदवर्तन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्वर्तन] दे० 'उद्वर्तन'।

उदवस(पु)—वि० [सं० उद्वास = निर्जन, उजाड़ वा सं० उद्वासन = स्थान से हटाना] १ उजाड़। सूना। उ०—(क) उदवस अवध नरेश बिनु देश दुखी नर नारि। राजभगु कुसमाज बड़ गतग्रह चालि बिचारि। तुलसी (शब्द०)। (ख) उदवस अवध अनाथ सब अंब दशा दुख देखि।—तुलसी ग्र०, पृ० ६१। २ उद्वासित। स्थान से निकाला हुआ। एक स्थान पर न रहनेवाला। खानाबदोश। उ०—(क) अब तौ बान परी पहरन की ज्यौं उदवस की भीत्यौ। सूर स्याम दासी सुख सोवहु, भयौ उभै मनचीत्यौ। सूर०, १०। ४००१। (ख) चचल निशि उदवस रहैं करत प्रात बसि राज। अरविंदनि मे इदिरा सुदर नैननि लाज। मतिराम (शब्द०)।

उदवासना—क्रि० स० [सं० उद्वासन] १. स्थान से हटाना। उठा देना। भगा देना। २ उजाड़ना।

उदवेग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० 'उद्वेग।' उ०—(क) गुन वर्नन, उदवेग पुनि कहि प्रलाप, उन्माद।—मतिराम ग्र०, पृ० ३५३। (ख) 'मुनि उदवेगु न पावइ कोई'।—मानस, २।१२६।

उदभट(पु)†—वि० [सं० उद्भव] दे० 'उद्भट'। उ०—उदभट भूप मकर—केतन को, आग्या होत नई।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २३८।

उदभव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद्भव] दे० 'उद्भव'।

उदभौत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्भुत] अद्भुत वस्तु या घटना। अचभा।

उदभौति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्भुत] दे० 'उदभौत'। उ०—अखियनि तैं मुरली अति प्यारी- वै बैरिनि यह सौति। सूर परस्पर कहति गोपिका, यह उपजी उदभौति।—सूर०, १०।३०२७।

उदमद(पु)—संज्ञा० पुं० [सं० उद् + मद] १ दे० 'उदमाद'। उ०—(क) गुरु अकुस मानै नहीं उदमद माता अध। दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फध।—दादू०, पृ० १६। मदाधिक्य। मद की अधिकता। उ०—छिन एकै मनवो उदमदि मातौ स्वोदै लागौ खाए रे।—दादू०—पृ० ६२२।

उदमदना(पु)—क्रि० अ० [सं० उद् + मद] पागल होना। उन्मत्त होना। आपे को भूलना। उ०—(क) अपने अपने टोल कहत व्रजवासी आई। आव भगति ले चले सुदपति आसी आई। शरद काल ऋतु जानि दीपमालिका बनाई। गोपन के उदमादै फिरत उदमदे कन्हाई। सूर० (शब्द)।

उदमाती†—वि० स्त्री० [हिं० उदमादी] मद से भरी हुई। मतवाली।

उदमाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उद् + माद] उन्मत्तता। पागलपन। उ०—(क) गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हाई।—सूर (शब्द०)। (ख) दोऊ उमिरि अराक दुहुन उदमाद रारि हित। दोउ जानत जीति हारि जानत न दुहुँ चित।—सूदन (शब्द०)। (ग) सुदर यह मन मीन है बंधैं जिह्वा स्वाद। कटक काम न सूझई करत फिरै उदमाद।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७७२।

उदमादी(पु)†—वि० [सं० उन्मादिन्] उन्मत्त। मतवाला। बावला।

उदमान(पु)—वि० [सं० उन्मत्त] [स्त्री० उदमानी] उन्मत्त। उ०—साल्व परधान उदमान मारी गदा प्रद्युमन मुरछित भए सुधि बिसारा।—सूर (शब्द)।

उदमानना(पु)—क्रि० अ० [सं० उन्मादन] उन्मत्त होना। उ०—मैं तुम्हरे मन की सब जानी। आपु सबै इतराति हौ दूपन हेतु स्याम को आनी। मेरे हरि कहुँ दसहि बरस को तुमही जोबन मद उदमानीं। लाज नहीं आवत इन लँगरन कैसे धौं कहि आवत बानी।—सूर (शब्द०)।

उदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदित] १ ऊपर आना। निकलना। प्रकट होना। जैसे—(क) सूर्य के उदय से अधकार दूर हो जाता है। (ख) न जाने हमारे किन बुरे कर्मों का उदय हुआ?

विशेष—ग्रहो और नक्षत्रो के सबध मे इस शब्द का प्रयोग विशेष होता है।

क्रि० प्र०—करना (अकर्मक प्रयोग) = उगना। निकलना। प्रकट होना। उ०—जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा। औ रवि उदय पछिउँ दिसि कीन्हा। जायसी ग्र०, पृ० ८५। करना— (सकर्मक प्रयोग) = प्रकट करना। प्रकाशित करना। उ०—तिलक भाल पर परम मनोहर गोरोचन को दीनो। मानो तीन लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो।—सूर (शब्द०)। लेना = उगना। निकलना। उ०—जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा। जायसी ग्र०, पृ० ८५।—होना = उगना।

मुहा०—उदय से अस्त तक या लौ = पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक। सारी पृथ्वी में। उ०—(क) हिरनकश्यप बढ्यो उदय अरु अस्त लौं हठी प्रहलाद चित चरन लायौ। भीर के परे तें धार सबहिन तजी खभ तें प्रकट ह्वै जन छुडायौ।—सूर—(शब्द०)। (ख) चारिहु खड भीख का बाजा। उदय अस्त तुम ऐस न राजा।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—सूर्योदय। चद्रोदय। शुक्रोदय। कर्मोदय।

२ वृद्धि। उन्नति। बढ़ती। जैसे—किसी का उदय देखकर जलना नहीं चाहिए।

क्रि० प्र०—देना(पु) [सकर्मक प्रयोग] उन्नति करना। बढती करना। उ०—प्रबोधो उदै देइ श्रीबिंदुमाधव।—केशव (शब्द०)।—होना।

यौ०—भाग्योदय।

३ उद्गम। निकलने का स्थान। ४ उदयाचल। ५ व्यक्त होना। प्रकट होना। प्रादुर्भाव (को०)। ६ सृष्टि (को०)। ७ परिणाम। परिणति (को०)। ८ कार्य का पूर्णत्व (को०)। ९. लाभ (को०)। १० सूद। ब्याज (को०)।

उदयगढ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उदय + हिं० गढ़] उदयाचल। उ०—सूर उदयगढ चढत भुलाना, गहने गहा कमल कुभिलाना।—जायसी (शब्द०)।

उदयगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल। उ०—उदित उदयगिरि मच पर रघुबर बाल पतग।—मानस, १।२५४।

उगगगल—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषशास्त्र के अतर्गत वह विद्या जिससे यह ज्ञान प्राप्त हो कि अमुक स्थान मे इतने हाथ की दूरी पर जल है। यह भूगर्भ विद्या के अतर्गत है।

उदगार(पु)–संज्ञा पु० [स०उद्गार] दे० 'उद्गार'। उ०—रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते ज्ञान-गुन गौरव के अति उदगार मैं।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १५६।

उदगारना(पु)—क्रि० स० [स उद्गरण] १ बाहर निकलना। डकार लेना। २ बाहर फेंकना। उगलना। ३ खोदकर उखाडना। भडकाना। प्रज्वलित करना। उत्तेजित करना। जैसे—क्रोध उदगारना। उ०—पीवत प्याला प्रेम सुधारस मतवाले सतसगी। अरध उरध लै भाठी रोपी ब्रह्म अगिन उदगारी।—कबीर (शब्द०)।

उदगारी(पु)–वि० [स० उद्गारी या हिं० उदगारना] १ उगलनेवाला। २ बाहर निकालनेवाला। डकार लेनेवाला। ३. उखाडनेवाला।

उदग्ग(पु—वि० [स० उदग्र, प्रा० उदग्ग] १ ऊँचा। उन्नत। उ०—सुडन फटिकै उलट्टत उदग्गगिरि पद्दत सुसद्दवल किमत निहद्द है।—सुजान०, पृ० ८। २ प्रचड। उग्र। उद्धत। उ०—(क) सत एक हयदनु लै उदग्ग हरिनारायन जिहिं प्रवल खग्ग।—सूदन (शब्द०)। (ख) औरौ उदग्ग कर खग्ग धरि अग्ग पग्ग धर धरिय रन।—सुजान०, पृ० २२। (ग) मालव भूप उदग्ग चल्यो कर खग्ग जग्ग जित।—गोपाल (शब्द०)।

उदग्गति—संज्ञा स्त्री० [स०] उत्तरायण (कौ०)।

उदग्द्वार—वि० [स०] उत्तराभिमुख दरवाजेवाला (कौ०)।

उदग्भूमि—संज्ञा स्त्री० [स०] उपजाऊ भूमि (कौ०)।

उदग्र—वि० [स०] [वि० स्त्री० उदग्रा] १ ऊँचा। उन्नत। २ बढा। परिवर्धित। ३ प्रचड। उद्धत। उग्र। भयकर। प्रबल। शक्तिशाली (कौ०)। ५ उदार (कौ०)। ६ आयुवृद्ध। वयोवृद्ध (कौ०)। ७ असह्य। जो सहन न हो सके (कौ०)।

उदग्रदत्[1]–वि०[स०]जिसके दाँत निकले हुए हो। बडे दाँतवाला (कौ०)।

उदग्रदत्[2]—संज्ञा पु० बडे दाँतोवाला हाथी (कौ०)।

उदग्रनख—संज्ञा पु० [स०] जुडे हुए हाथ। अजलि (कौ०)।

उदग्रप्लुतत्व—संज्ञा पु० [स०]ऊँचे कूदने का भाव या क्रिया (कौ०)।

उदग्रशिर—वि० [स०] १ ऊँचे शिरवाला। ऊँची चोटीवाला २ अभिमानी (कौ०)।

उदघटना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्घटन=सचालन] प्रकट होना। उदय होना। उ०—कुमि रति अटत विमूढ लट घट उदघटत न ग्यान। तुलसी रटत हटत नही अतिसय गत अभिमान।—स० सप्तक, पृ० ३०।

उदघाटन(पु)—संज्ञा पु० [स० उद्घाटन] दे० 'उद्घाटन'।

उदघाटना(पु)—क्रि० स० [स० उद्घाटन] प्रकट करना। प्रकाशित करना। खोलना। उ०—(क) तव भुज वल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी।—मानस, १।२३९। (ख) तहौ सुधन्वा सब शर काटी। उदघाटी अपनी परिपाटी।—सबल (शब्द०)।

उदघोष—संज्ञा पु० [स०] जलीय गर्जन (कौ०)।

उदङ्मुख—वि० [स०उदक्+मुख] उत्तर की ओर जिसका मुख हो (कौ०)।

उदङ्मृत्तिक—संज्ञा पु० [स०उदक्+मृत्तिका] उर्वरा भूमि। उपजाऊ धरती (कौ०)।

उदचमस—संज्ञा पु० [स०] जल पीने का पात्र (कौ०)।

उदज–संज्ञा पु० [स०] १ जल मे उत्पन्न या जलीय पदार्थ। २ कमल (कौ०)।

उदय–संज्ञा पु० [स०उदयगिरि=सूर्य] सूर्य। उ०—जिन अवनव कलिकानि ग्रामभान मैं हूं होत विनराम नहीं इदु और उदय को। भूषण ग्र०, पृ० ६५।

उदधान—संज्ञा पुं० [स०] १ मेघ। बादल। २ घडा (कौ०)।

उदधि[1]—संज्ञा पुं० [स०] २ समुद्र।

यौ०—उदधिजा। उदधितनय। उदधितिय। उदधिमल। उदधिमेखला। उदधिवस्त्रा। उदधिसुत।

२ घडा। ३ मेघ। ४ झील या जलाशय (कौ०)। ५ चार और सात की सख्या का वाचक (शब्द०) (कौ०)। ६ नदी (कौ०)।

उदधि[2]—वि० चार। वि० दे० 'समुद्र'।

उदधिकन्या–संज्ञा स्त्री० [स०] लक्ष्मी (कौ०)।

उदधिकुमार—संज्ञा पुं० [स०] जैन मत के अनुसार एक देवता जो भुवनपति नामक देवगण मे हैं।

उदधिक्रम,उदधिक्राम—संज्ञा पुं० [स०] केवट। माँझी। नाविक (कौ०)।

उदधितनय—संज्ञा पुं० [स०] चद्रमा। उ०—उदधितनयवाहन सुनौ तासम तुल्य बखानिये। यौं सुदर सदगुर गुण अकथ तास पार नहिं जानिये।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १११।

उदधितनया—संज्ञा स्त्री० [स०] समुद्र की पुत्री। लक्ष्मी (कौ०)।

उदधिमल—संज्ञा पुं० [स०] समुद्रफेन (कौ०)।

उदधिमेखला—संज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी (कौ०)।

उदधिवस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी।

उदधिसभव—संज्ञा पुं० [स० उदधिसम्भव] समुद्र के पानी से तैयार नमक (कौ०)।

उदधिसुत—संज्ञा पुं० [स०] १ वह पदार्थ जो समुद्र से उत्पन्न हो या समझा जाता हो। २ चद्रमा। ३. अमृत। ४ शख। ५ कमल।

उदधिसुता–संज्ञा स्त्री० [स०] १ समुद्र से उत्पन्न वस्तु। २ लक्ष्मी ३ द्वारिकापुरी (कौ०)। ४ सीप।

उदधीय—वि० [स०] १ समुद्र सबधी।

उदन्य—वि० [सं०] १ प्यासा। तृषित। २. जल सबधी (कौ०)।

उदन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तृषा। प्यास। जल की इच्छा (कौ०)।

उदन्यु—वि० [स०] १ प्यासा। २ जलदायी (कौ०)।

उदन्वान्—संज्ञा पुं० [स० उदन्वत्] समुद्र। सिंधु (कौ०)।

उदपान–संज्ञा पुं० [स०] १ कूएँ के समीप का गड्ढा। कूल। खाता। २ कमडलु। उ०—मुद्रा स्रवन कठ जपमाला, कर उदपान काँध बघछाला।—जायसी ग्र०, पृ० ५३। ३ तालाब के आसपास की भूमि या टीला।

उद[1]—उप० [स०] ऐक उपसर्ग जो शब्दो के पहले लगकर उनमे इन अर्थो की विशेपता उत्पन्न करता है—ऊपर, जैसे—उद्गमन, अतिक्रमण, जैसे,—उत्तीर्ण, उत्क्रात, उत्कर्प, जैसे—उद्बोधन, उद्गति, प्राबल्य, जैसे—उद्वेग, उद्बल, प्राधान्य, जैसे—उद्देश, अभाव जैसे—उत्पथ, उद्वासन, प्रकाश, जैसे—उच्चारण, दोप, जैसे—उन्मार्ग ।

उद[2]—सज्ञा पुं० १. मोक्ष । २ ब्रह्म । ३ सूर्य । जल ।

उद[3]—संज्ञा पु० [सं०] जल । पानी । समास आदि या अत मे प्रयुक्त, जैसे अच्छोद, क्षीरोद,उदकुभ, उदकोष्ठ, उदपात्र=जलपूर्ण घट।

उदउ(पु) सज्ञा पु० [स० उदय] दे० 'उदय' । उ०—उदउ करहु जनि रवि रघुकुल गुर, अवध विलोकि सूल होइहि उर ।—मानस, २।३७ ।

उदक्[1]—सज्ञा पु० [स०] उत्तर दिशा ।

उदक्[2]—क्रि० वि० [स०] १ ऊपर की ओर । २ उत्तर की ओर [को०] ।

उदक्[3]—वि० [स०] [अन्य रूप-उदङ्, उदच्] [वि० स्त्री० उदीची] १ ऊपर की ओर गतिशील । २ उत्तर का । उत्तरी । ३. परवर्ती । वाद का । ४. ऊँचा [को०] ।

उदक—सज्ञा पु० [स०] १. उत्तर दिशा । २ जल । पानी ।

यौ०—उदककार्य । उदककुभ । उदकक्रीड़न । उदकक्रीड़ा । उदक ग्रहण=जल लेना । उदकद । उदकदानिक=दे० 'उदकदाता' । उदकघर=मेघ । उदक प्रतीकाश=उदकविंदु । उदकशाक । उदकाद्रि । गगोदक ।

विशेप—समस्त पदो के आदि मे कभी कभी उदक के स्थान मे उत् हो जाता है, जैसे—उत्कुभ ।

उदक अद्रि(पु)—सज्ञा पु० [स० उदगद्रि] दे० 'उदगद्रि' ।

उदककर्म—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उदकक्रिया' ।

उदकक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ तिलाजलि । जलदान । उदकदान । प्रेत का तर्पण ।

विशेप—यह क्रिया मृतक के शव का दाह हो जाने पर उसके गोत्रवालो को दस दिन तक करनी पडती है ।

२ तर्पण ।

उदककृच्छ्—सज्ञा पु० [स०] विष्णुस्मृति के अनुसार एक व्रत जिसमे एक मास तक जो का सत्तू और जल पीने का विधान है ।

उदकगाह—सज्ञा पु० [स०] स्नान करना । नहाना [को०] ।

उदकगिरि—सज्ञा पु० [स०] जलाशयो से पूर्ण पर्वत [को०] ।

उदकचरण-सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार वह चोर या घातक जो स्नान करते हुए मनुष्य को पानी के भीतर खीच ले जाय । पनडुव्वा । बुडुआ ।

उदकदाता—सज्ञा पु० [स० उदकदातृ] १ वह व्यक्ति जो पितरो का तर्पण करता हो । २ उत्तराधिकारी । हकदार [को०] ।

उदकदान—सज्ञा पु० [स०] जलदान । तर्पण ।

उदकना—क्रि० अ० [स० उद्=ऊपर+क=उदक या उद्+√मज्ज्] कूदना । उछलना । छटकना । उ०—भक्षण करत देखि लोगन को हन्यो कुलिश सुरराई । गड्यो न तनु मे उदकि गयो मुरि शक्र भज्यो भय पाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

उदकपरीक्षा—सज्ञा पु०[स०] प्राचीन काल मे शपथ का एक भेद जिसमे शपथ करनेवाले को जल मे अपने वचन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये डूबना पडता था ।

उदकप्रमेह—सज्ञा पु० [स०] प्रमेह रोग का एक भेद ।

विशेप—इसमें वीर्य अत्यंत पतला हो जाता है और मूत्र के साथ निकला करता है । मूत्र सफेद रग का चिकना गाढा गधरहित और ठढा होता है । इस रोग मे पेशाव वहुत होता है ।

उदकमेह—संज्ञा पु० [स०] दे० 'उदक प्रमेह' ।

उदकल—वि० [स०] जलवाला । जलसवधी [को०] ।

उदकशाति—सज्ञा स्त्री० [स० उदकशान्ति] व्याधि दूर करने के लिये रोगी पर अभिमंत्रित जल छिडकना [को०] ।

उदकशुद्ध—वि० [स०] स्नात । नहाया हुआ [को०] ।

उदकस्पर्श—संज्ञा पु० [स०] १ शरीर के विभिन्न अगो को जल से स्पर्श करना । २ शपथ, दान, प्रतिज्ञा आदि के समय जल का स्पर्श करना ।

उदकहार—सज्ञा पु० [स०]पनिहार [को०] ।

उदकात—सज्ञा पु० [स० उदकान्त] किनारा । पुलिन [को०] ।

उदकाधार—सज्ञा पु० [स०] कूआँ । हौज [को०] ।

उदकार्थी—वि० [स० उदकार्थिन्] तृपित । प्यासा । जल चाहनेवाला [को०] ।

उदकीर्य—सज्ञा पु० [स०] करज का वृक्ष और फल [को०] ।

उदकेचर—सज्ञा पु० [स०] जलचर । पानी का जतु ।

उदकेविशीर्ण-वि० [स०] जल मे सुखाया हुआ अर्थात कभी न सुना हुआ । असभव [को०] ।

उदकोदचन—सज्ञा पु० [स० उदकोदञ्चन] जल भरने का घडा ।

उदकोदर—सज्ञा पु० [स०] जलोदर ।

उदकौदन-सज्ञा पु०[स० उदक+ओदन]पानी मे पकाया हुआ चावल । भात [को०] ।

उदक्त—वि० [सं०] १ ऊपर की ओर मोडा या उठाया हुआ । २. ऊपर जाता हुआ । ३ कथित [को०] ।

उदक्य[1]-वि० [सं०] १ जलवाला । जलीय । २ जिसको पवित्रता के लिये स्नान की आवश्यकता हो । अपवित्र । अशुचि । ३. जलेच्छु (को०) ।

उदक्य[2]—सज्ञा पु० पानी मे होने वाला अन्न, जैसे, धान ।

उदक्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला नारी ।

उदग्—सज्ञा पु० [सं०] 'उदक्' शब्द का समास प्रयुक्त रूप ।

उदगद्रि—सज्ञा पु० [स०] हिमालय ।

उदगयन—संज्ञा पु० [स०] उत्तरायण ।

उदगरना†—क्रि० अ०[स० उद्गरण]१ उगरना । निकलना । बाहर होना । २. प्रकाशित होना । खुल पडना । प्रकट होना । ३. उभड़ना । भडकना ।

उत्सूर— संज्ञा पुं० [सं०] सायंकाल । संध्या ।

उत्सृष्ट—वि० [सं०] त्यागा हुआ । छोड़ा हुआ ।

उत्सृष्ट पशु-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के समय छोड़ा गया गाय का बछड़ा जिसे छोड़ने के पहले विशेष चिह्न से दाग देते हैं । साँड़ [को०] ।

उत्सृष्टवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] फेंके हुए अन्न को लेना । यह एक वृत्ति है जिसके दो भेद हैं--शिल और उंछ ।

उत्सृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग । उत्सर्जन [को०] ।

उत्सेक-संज्ञा पुं० [सं०] १ अभिमान । गर्व । २. छिड़काव । ऊपर को बढ़ाना । उफान [को०] ।

उत्सेकी-वि० [सं० उत्सेकिन्] १ अभिमानी । घमंडी । २ बढ़कर । बहनेवाला । ३ उफानवाला [को०] ।

उत्सेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ सींचने की क्रिया । २ उफान [को०] ।

उत्सेध¹--संज्ञा पुं० [सं०] १ बढ़ती । उन्नति । २ ऊँचाई । ३ शोथ ४ सहनन ।

उत्सेध²—वि० १ ऊँचा । २ श्रेष्ठ । उ०—जहाँ कहीं निज बात को समुझि करत प्रतिषेध । तहाँ कहत आक्षेप हैं कवि जन मति उत्सेध । (शब्द०) ।

उत्स्मय—संज्ञा पुं० [सं०] स्मित । मुस्कान [को०] ।

उत्स्य—वि० [सं०] १ उत्स या सोते से निकला हुआ । सोते मे होनेवाला । २ उत्ससबंधी [को०] ।

उथपनथापन—वि० [सं० उत्थापन+हिं० थापन] उत्थापित को स्थापित करनेवाला । उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन्ह मोहि आपन, रघुकुल तिलक सदा तुम्ह उथपन थापन ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६१ ।

उथपना—क्रि० स० [सं० उत्थापन] उठाना । उखाड़ना । उजाड़ना उ०—(क) तेरे थपे उथपै न महेश थपै थिर को कपि जे घर घाले ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उथपै तेहि को जेहि राम थपै थपिहै पुनि को जेहि वे टरिहैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

उथप्पन— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्थापन' । उ०-नृपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सत्रु साल-सुत करै करतूति चित्त चाह की । — मतिराम ग्रं०, पृ० ३७२ ।

उथराना—क्रि० अ० [सं० उत्+स्थिर] उठना । किंचित उठना । उ०—नैननि बोरति रूप के औरै अचभे भरी छतिया उथराई । —घनानंद, पृ० १०६ ।

उथलना—क्रि० अ० [सं० उत्+हिं० √हिल] १ चलना । हिलना । उ०—ये हृदयविदारक वचन कहने को मेरी जीभ नहीं उथलती । –श्रीनिवास ग्रं०,पृ० १३१।२ । डगमगाना । डावाँडोल होना । चलायमान होना । उ०—राजा शिशुपाल जरासंध समेत सब असुर दल लिए इस धूमधाम से आया कि जिसके बोझ से लगे शेषनाग और पृथ्वी उथलने ।—लल्लू (शब्द०) ।

यौ०—उथलना पुथलना = (१) नीचे ऊपर होना । इधर का उधर होना । (२) उलटना । उलट पुलट होना । नीचे ऊपर होना । (३) पानी का कम होना । पानी का छिछला होना ।

उथलपुथल¹—संज्ञा पुं० [हिं० उथलना] उलट पुलट । अडबड । विपर्यय । क्रमभंग ।

उथलपुथल²—संज्ञा वि० उलट पुलट । अड का बड । इधर का उधर ।

उथला—वि० [सं० उत्+स्थल] कम गहरा । छिछला । ओछा ।

उथापना¹†—क्रि० स० [सं० उत्थापन] १ ऊपर उठाना या खड़ा करना । २ उखाड़ना । उ०— एकन उथापि एकै थापत जगतहित अनघ अन्य रिपु फिरे चक्र चक्कवर ।—अकबरी०, पृ० ६६ ।

उथापना²—क्रि० स० दे० 'थापना' ।

उथुराना† – क्रि० अ० [हिं० उथला] उथला होना । उ०—जिमि जिमि सैसव जल उथुराने । तिमि तिमि नैन-मीन इतराने ।—नंद ग्रं०, पृ० १२२ ।

उदक—संज्ञा पुं० [सं० उदङ्क] चमड़े का बना तेलपात्र । कुप्पी [को०]।

उदगल—संज्ञा पुं० [फा० दगल] हंगामा । शोरगुल । उ०--इस ही बीच नगर में सोर । भयो उदगल चारिहु ओर—अर्ध०, पृ० २४ ।

उदचन--संज्ञा पुं० [सं० उदञ्चन] १ आवरण । ढकना । २ ऊपर की ओर फेंकना । ३ चढ़ना । ४ डोल । घड़ा । बालटी । जल रखने का बड़ा बरतन [को०] ।

उदचित--वि० [सं० उदञ्चित] १ आदृत । पूजित । २ ऊपर की ओर उठाया हुआ । ३. कथित । उक्त । ४ प्रतिध्वनि [को०]।

उदचु वि० [सं० उदञ्चु] ऊपर की ओर जानेवाला [को०] ।

उदजरस्थान—संज्ञा पुं० [सं० उदञ्जर स्थान] पानी रखने का स्थान या गुसलखाना ।

उदड¹—वि० [सं० उद्दण्ड] दे० 'उद्दंड' । उ०—है बलमार उदड भरे हरि के भुजदंड सहायक मेरे ।—इतिहास, पृ० २४३ ।

उदड²--वि० स्त्री० [सं० उदण्ड] अनेक अंडे देनेवाली । जैसे, मत्स्य, सर्प आदि [को०] ।

उदडपाल--संज्ञा पुं० [सं० उदण्डपाल] १ मछली । २ एक प्रकार का साँप [को०] ।

उदडी—वि० [हिं०] दे० 'उद्दंड' । उ०—उदंडी भुसुंडी लिये हृत्य केते, चलै चाल उत्ताल आतंक देते ।—सुजान०, पृ० २६ ।

उदत¹—वि० [सं० अ+दन्त] जिसके दाँत न जमे हों । बिना दाँत का । अदत ।

विशेष—इसका प्रयोग चौपायों के लिये होता है । वह बैल या गाय अथवा भैंस जो तीन साल से कम अवस्था की होती है तथा जिसके दूध के दाँत न जमे हों उसे 'उदत' कहते हैं ।

उदत²--वि० [सं० उदन्त] किसी वस्तु की समाप्ति या सीमा तक पहुँचानेवाला [को०] ।

उदत³--संज्ञा पुं० १ वार्ता । वृत्तांत । समाचार । लेखाजोखा । विवरण । २ साधु । सज्जन (को०) । ३ यज्ञ आदि द्वारा जीविका प्राप्त करनेवाला व्यक्ति (को०) । ४ वह जो व्यापार एवं कृषि के द्वारा जीविकार्जन करता हो (को०) ।

उदतक—संज्ञा पुं० [सं० उदन्तक] समाचार । वृत्तांत । वार्ता ।

उदतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० उदन्तिका] संतोष । तृप्ति [को०] ।

उदत्य—वि०[सं० उदन्त्य]सीमांत या सीमा के बाहर रहनेवाला[को०] ।

नज़रानें के रूप से प्राप्त धन। ६ नाडी व्रण का आतरिक भाग। ७ शिखर। चोटी। ८ मतह। ९ ढाल। १० बगल। ११ वितान।

उत्सगक—सज्ञा पु० [स० उत्सङ्गक] हाथ की एक मुद्रा का नाम [को०]।

उत्सगित—वि० [स० उत्सङ्गित] १. संमिलित। युक्त। संयुक्त। २ गोद मे लिया हुआ। आलिंगित [को०]।

उत्सगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० उत्सङ्गिन्] फुसी जो पलक के नीचे हो जाती है [को०]।

उत्सगी¹—वि० [स० उत्सङ्गिन्] १ साहचर्य मे रहनेवाला। २ गहरे पहुँचा हुआ (व्रण)।

उत्सगी²—सज्ञा पुं० व्रण। गहरा घाव [को०]।

उत्स—सज्ञा पुं० [स०] १. स्रोत। २ झरना। जलधारा। ३ जलमय स्थान।

उत्सन्न—वि० [स०] १ उच्छिन्न। उखाडा हुआ। २. बढा हुआ। ३ पूरा किया हुआ। ४ ऊपर उठा हुआ [को०]।

उत्सर—सज्ञा पुं० [स०] एक वृत्त का नाम [को०]।

उत्सर्ग—सज्ञा पु० [स०] [वि० उत्सर्गी, औत्सर्गिक, उत्सर्ग्य] १ त्याग। छोड़ना।

यौ०—वृषोत्सर्ग। व्रतोत्सर्ग।

२ दान। न्योछावर। ३ समाप्ति। एक वैदिक कर्म।

विशेष—यह पूस महीने की रोहिणी और अष्टका को ग्राम से बाहर जल के समीप अपने गृह सूत्र की विधि के अनुसार किया जाता है। उसके बाद दो दिन एक रात वेद की पढ़ाई बंद रहती है।

४ व्याकरण का कोई साधारण सा नियम।

उत्सर्गत—क्रि० वि० [स०] साधारणत। नियमत। सामान्य रूप से [को०]।

उत्सर्गी—वि० [सं० उत्सर्गिन्] त्यागनेवाला। निछावर करनेवाला [को०]।

उत्सर्जन—वि० [सं०] [वि० उत्सर्जित, उत्सृष्ट] १. त्याग। छोडना। दान। ३. एक वैदिक गृहकर्म जो वर्ष मे दो बार होता है, एक पूस मे, और दूसरा श्रावण मे।

उत्सर्प—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उत्सर्पण'।

उत्सर्पण—सज्ञा पु० [स०] १. ऊपर चढना। चढ़ाव। उल्लघन। लाँघना। २ फूलना। ३ फैल जाना।

उत्सर्पिणी—सज्ञा पुं० [स०] जैनमतानुसार काल की वह गति या अवस्था जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श इन चारो की क्रम से वृद्धि होती है।

उत्सर्पी—वि० [स० उत्सर्पिन्] १ ऊपर चढनेवाला। २. उत्तम। श्रेष्ठ [को०]

उत्सर्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भयोग्य अवस्था को पहुँचती हुई गाय [को०]।

उत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] १ उछाह। मंगल कार्य। धूमधाम। जलसा। २. मंगल समय। त्योहार। पर्व। समैया। आनद। विहार। जैसे, रामुत्सव।

उत्साद—सज्ञा पुं० [स०] विनाश। संहार [को०]।

उत्सादक—वि० [सं०] विनाशकारी। आततायी। उ०—क्षमा नहीं है खल के लिये भली। समाज उत्सादक दंड योग्य है।—प्रि० प्र०, पृ० १८३।

उत्सादन—सज्ञा पु० [स०] १ नाश। क्षय। २ बाधा देना। रोकना। ३ उबटन या सुगधित लेप लगाना। ४ घाव का पूरा होना। ५ ऊपर चढना। ६ उठाना। ७ भली भाँति खेत जोतना या दुबारा खेत जोतना [को०]।

उत्सादनीय—वि० [स०] १ नाश करने योग्य। २ चढने योग्य [को०]।

उत्सादित—वि० [स०] १ नष्ट किया हुआ। २ सुगध द्रव्य से शुद्ध किया हुआ। ३ चढाया हुआ। ४ उठाया हुआ [को०]।

उत्सारक—सज्ञा पु० [स०] द्वारपाल। चोबदार।

उत्सारण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्सारणीय] १ दूर हटाना। निकालना। २ अतिथि का स्वागत करना। ३ गति देना। चलाना। ४ भाव या दर को कम कर देना [को०]।

उत्साह—संज्ञा पु० [स०] [वि० उत्साहित, उत्साही] १ वह प्रसन्नता जो किसी आनेवाले सुख को सोचकर होती है और मनुष्य को कार्य मे प्रवृत्त करती है। उमग। उछाह। जोश। हौसला। २. साहस। हिम्मत।

विशेष—उत्साह वीर रस का स्थायी माना जाता है।

उत्साहक—वि० [स०] १ उत्साह देनेवाला। २ कर्म मे रुचि लेनेवाला [को०]।

उत्साहन—सज्ञा पु० [स०] १ उत्साह देना। कर्म की प्रेरणा देना। अध्यवसाय। उद्यम [को०]।

उत्साहवर्धन—सज्ञा पु० [स०] १. उत्साह की वृद्धि। २ शक्ति का अधिक हो जाना। ३ वीर रस [को०]।

उत्साहवृत्तांत—सज्ञा पुं० [स० उत्साहवृत्तान्त] उत्साह को बढाने की युक्ति या कौशल। युद्ध के लिये उत्तेजित करने की क्रिया [को०]।

उत्साहशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] चढाई तथा युद्ध करने की शक्ति।

उत्साहसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] वह कार्य जो उत्साहशक्ति (लडने भिड़ने के साहस) से सिद्ध हो।

उत्साहहेतुक—वि० [स०] उत्तेजित या उत्साहित करनेवाला [को०]।

उत्साही—वि० [सं० उत्साहिन्] उत्साहयुक्त। उमगवाला। हौसलेवाला।

उत्सिक्त—वि० [स०] १ जिसका उत्सेक हुआ हो। अभिषिक्त। सिंचित २ घमडी। गर्वोन्मत्त। ३. चलचित्त। अस्थिर चित्तवाला [को०]।

उत्सुक—वि० [स०] १ उत्कठित। अत्यंत इच्छुक। चाह से आकुल। उ०—वे यह पुस्तक देखने के लिये बडे उत्सुक है। (शब्द०)। २. चाही हुई बात मे देर न सहकर उसके उद्योग मे तत्पर।

उत्सुकता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आकुल इच्छा। २. किसी कार्य मे विलब न सहकर उसमे तत्पर होना। यह रस मे एक सचारी भाव है।

उत्सूत्र—वि० [स०] १ सूत्र से मुक्त। नियमविहीन। २. धागे से पृथक् [को०]।

उत्प्रबंध—वि० [सं० उत्प्रबन्ध] १ निरंतर। अनवरत। अविराम [को०]।

उत्प्रभ¹—वि० [सं०] प्रभा से भरा हुआ। प्रभापूर्ण। प्रकाश फैलानेवाला [को०]।

उत्प्रभ²—संज्ञा पुं० बड़ी तीव्र आग। तेज आग। दहकता हुआ अंगारा [को०]।

उत्प्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ गिराना। गर्भपात होना [को०]।

उत्प्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १ लड़खड़ाना। लुढ़कना। २ फेंकना। ३ हास विनोद। हँसी मजाक। ४ अट्टहास। ५ तीक्ष्ण वचन। कटुवचन। व्यंग्यवचन। ६ आधिक्य [को०]।

उत्प्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्प्रास' [को०]।

उत्प्रेक्षक—वि० [सं०] उत्प्रेक्षा करनेवाला। अनुमान करनेवाला। समझनेवाला। विचार करनेवाला [को०]।

उत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्प्रेक्ष्य] १ उद्भावना। आरोप। २ एक अर्थालंकार जिसमें भेद-ज्ञान-पूर्वक उपमेय में उपमान की प्रतीति होती है। जैसे, मुख मानो चंद्रमा है। मानो, जानो, मनु, जनु, इव, मेरी जान, इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक हैं। पर कहीं ये शब्द लुप्त भी रहते हैं जैसे गम्योत्प्रेक्षा में।

विशेष—इस अलंकार के पाँच भेद हैं—(१) वस्तूत्प्रेक्षा, (२) हेतूत्प्रेक्षा, (३) फलोत्प्रेक्षा, (४) गम्योत्प्रेक्षा और (५) सापह्नवोत्प्रेक्षा। (१) वस्तूत्प्रेक्षा में एक वस्तु दूसरी वस्तु के तुल्य जान पड़ती है। इसको स्वरूपोत्प्रेक्षा भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं—'उक्तविषया' और 'अनुक्तविषया'। जिसमें उत्प्रेक्षा का विषय कह दिया जाय वह उक्तविषया है। जैसे, सोहत ओढ़ैं पीतु पटु स्याम, सलोने गात, मनो नीलमनि सैल पर आतपु परयो प्रभात।—बिहारी र०, दो० ६८९। यहाँ 'श्यामतनु,' जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह कह दिया गया है। जहाँ विषय न कहकर उत्प्रेक्षा की जाय तो उसे 'अनुक्तविषया उत्प्रेक्षा' कहते हैं। जैसे, 'अंजन बरषत गगन यह मानो अथये भानु (शब्द०)। अंधकार, जो उत्प्रेक्षा का विषय है, उसका उल्लेख यहाँ नहीं है। (२) हेतूत्प्रेक्षा—जिसमें जिस वस्तु का हेतु नहीं है, उसको उस वस्तु का हेतु मानकर उत्प्रेक्षा करते हैं। इसके भी दो भेद हैं—'सिद्धविषया' और 'असिद्धविषया'। जिसमें उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध हो उसे 'सिद्धविषया' कहते हैं। जैसे, 'अरुण भये कोमल, चरण भुवि चलिव ते मानु। (शब्द०)।—यहाँ नायिका का भूमि पर चलना सिद्धविषय है परंतु भूमि पर चलना चरणों के लाल होने का कारण नहीं है। जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय असिद्ध अर्थात् असंभव हो उसे 'असिद्धविषया' कहते हैं। जैसे, अजहुँ मान रहिवो चहत थिर तिय-हृदय-निकेत, मनहुँ उदित शशि कुपित ह्वै अरुण भयो एहि हेत (शब्द०)। स्त्रियों का मान दूर न होने से चंद्रमा को क्रोध उत्पन्न होना। सर्वथा असंभव है। इसलिये 'असिद्धविषया' है। (३) फलोत्प्रेक्षा जिसमें जो जिसका फल नहीं है वह उसका फल माना जाय। इसके भी दो भेद हैं—सिद्धविषया और असिद्धविषया। 'सिद्धविषया' जैसे, कटि मानो कुच धरन को किसी कनक की दाम (शब्द०)। 'असिद्धविषया' जैसे, जो कटि समता लहन मनु सिंह करत बन वास (शब्द०)। (४) गम्योत्प्रेक्षा जिसमें उत्प्रेक्षावाचक शब्द न रखकर उत्प्रेक्षा की जाय। जैसे, तोरि तीर तरु के सुमन बर सुगंध के भौन, यमुना तव पूजन करत वृंदावन के पौन (शब्द०)। (५) 'सापह्नवोत्प्रेक्षा' जिसमें अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा की जाय। यह भी वस्तु, हेतु और फल के विचार से तीन प्रकार की होती है—(क) 'सापह्नव वस्तूत्प्रेक्षा' जैसे, तैसी चाल चाहन चलति उतसाहन सों, जैसो विधि गाहन विराजत बिजैठो है। तैसो भृकुटी को ठाट तैसो ही दिपै ललाट तैसो ही त्रिलोकिन को पीको प्रान पैंठो है। तैसियै तरुनताई नीलकंठ आई उर शैशव सहाई तासो फिरै ऐंठो ऐंठो है। नागी लट भाल पर छूटै गोरे गाल पर मानत न पयनाग पर व्याल ऐंठ बैठो है। (शब्द०)। यहाँ गौरवर्ण कपोल पर छूटी हुई अलकों का निषेध करके रूपमाना पर सर्प के बैठने की संभावना की गई है। अत 'सापह्नव वस्तूत्प्रेक्षा' है। (ख) सापह्नव हेतूत्प्रेक्षा' जैसे फूलन के मग में परत पग डगमगे मानो सुकुमारता की बेलि विधि नई है। गोरे गरे घँघरा लसन पीक लीक नीकी मुख ओप पूरण छपेश छबि छई है। उन्नत उरोज औ नितंब भीर श्रीपति जू टूटि जिन परै लंक शंका चित्त भई है। याते रोममाल मिस मारग छरी दै त्रिवली की डोरि गाढि काम बागवान दई है (शब्द०)। यहाँ 'मिस' शब्द के कथन से कैतवापह्नुति से मिली हुई हेतूत्प्रेक्षा है, क्योंकि त्रिवली रूप रस्सी बाँधते कुच और नितंब भार से कटि न टूट पड़े इस अहेतु को हेतु भाव से कथन किया गया है। (ग) 'सापह्नव फलोत्प्रेक्षा' जैसे, कमलन को तिहि मित्र लखि मानहु हृतवे काज, प्रविशहि सर नहि स्नानहित रवितापित गजराज (शब्द०)। यहाँ सूर्यतापित होकर गज का सरोवर में प्रवेश स्नान के लिये न बताकर यह दिखाया गया है कि वह कमलों को, जो सूर्य के मित्र हैं, नष्ट करने के लिये आया है।

उत्प्रेक्षोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु के गुण का बहुतों में होना पाया जाना वर्णन किया जाता है। उ०—न्यारो ही गुमान मन मीननि के मानियत जानियत सबही सुकैसे न जताइये। गर्व बाढ्यो परिमाण पचबाण बाणनि को आन आन भाँति बिनु कैसे कै बताइये। केसोदास सविलास गीत रंग रंगनि कुरंगअ गनानि हू के आँनसनि गाइये। सीता जी के नयन की निकाई हमही में है सु झूठे हैं कमल खजरीट हू मे पाइये।—केशव (शब्द०)।

उत्प्लव—संज्ञा पुं० [सं०] उछालना। कूदना [को०]।

उत्प्लवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ कूदना। उछलना। २ तेल, घी आदि का मैल कुश से निकालना [को०]।

उत्फाल—संज्ञा पुं० [सं०] १ छलाँग मारना। उछलना [को०]।

उत्फुल्ल—वि० [सं०] १ विकसित। फूला हुआ। प्रफुल्लित। खिला हुआ। २ उत्तान। चित्त।

उत्संग—संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग] १ गोद। क्रोड। कोरा। अंक। २ मध्य भाग। बीच। ३ ऊपर का भाग। ४ निर्लिप्त। विरक्त। ५ राजकुमार के जन्म पर प्रजा तथा करद राजाओं से

उत्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड की गोद। २. ऊपर पहनने का कपडा। उपरना। दुपट्टा।

उत्पत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

उत्पतन—संज्ञा पुं० [सं०][वि० उत्पतनीय, उत्पतित] १ ऊपर उठना। २ उडना (को०)। ३. उछलना। कूदना (को०)। ४ उछालना (को०)। ५ उत्पन्न करना (को०)।

उत्पातक-वि० [सं०] १ झडे ऊँचा किए हुए। २ विप्लवकारी (को०)।

उत्पति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—(क) नृप प्रश्न करिय यह उये वात। सव कहो वस उत्पति सुतात।—हम्मीर रा० पृ० ३। (ख) उत्पति प्रलय होत जग माई, कहौ सुनौ सो नृप चित लाई।—सूर (शब्द०)।

उत्पती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—नीर पवन की उत्पती, कहैं कवीर विचार, जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार।—कवीर सा०, पृ० ६६४।

उत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्पन्न] १ उद्गम। पैदाइश। जन्म। उद्भव। २ सृष्टि। ३ आरंभ। शुरू।

उत्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा रास्ता। विकट मार्ग। २ कुमार्ग। बुरा आचरण।

यौ०—उत्पथगामी।

उत्पथिक—संज्ञा पुं० [सं०] वे लोग जो नगर में इधर उधर आ जा रहे हों।

उत्पन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उत्पन्न'।

उत्पन्न—वि० [सं०] [स्त्री० उत्पन्ना] पैदा। जन्मा हुआ।

उत्पन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहनवदी एकादशी।

उत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल। २ नीलकमल।

उत्पलगंधिक—संज्ञा पुं० [सं० उत्पलगन्धिक] एक प्रकार का चदन [को०]।

उत्पलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की पत्ती। २ नाखून से चमडे। का हल्का छिल जाना। नखक्षत। ३ चदन का तिलक। ४ चौडे फलवाला चाकू [को०]।

उत्पलपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्पलपत्र-४' [को०]।

उत्पलशारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा लता [को०]।

उत्पलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमल फूलों का समूह। २. फूल सहित कमल का पौधा। ३ वृत्त [को०]।

उत्पवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ साफ करना। पवित्र करना। २ शुद्ध या साफ करने का यंत्र। ३ कुश द्वारा अग्नि पर घृत छिड-कना [को०]।

उत्पाचित—वि० [सं०] अच्छी तरह उवाला हुआ। अच्छी तरह पकाया हुआ [को०]।

उत्पाट—संज्ञा पुं० [सं०] कान मे पीडा होना। २ दे० 'उत्पाटन [को०]।

उत्पाटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्पाटित] उखाडना।

उत्पाटिका[1]—वि० [सं०] उखाडनेवाली [को०]।

उत्पाटिका[2]—संज्ञा स्त्री० पेड की छाल [को०]।

उत्पात—संज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट पहुँचानेवाली आकस्मिक घटना। उपद्रव। आफत। २. अशांति। हलचल। ३ ऊधम। दंगा। शरारत।

उत्पातक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कान का एक रोग। लोलक के छेद मे भारी गहना पहनने से अथवा किसी प्रकार के खिंचाव से लोलक मे सूजन, दाह और पीडा उत्पन्न होती है।

उत्पातक[2]—वि० उपद्रव या उत्पात करनेवाला।

उत्पातिक—वि० [सं०] अपर प्रकृतिवाला। प्राकृतिक सत्ता से परे (जैन) [को०]।

उत्पाती—संज्ञा पुं० [सं० उत्पातिन्] [स्त्री० हिं० उत्पातिन] उत्पात मचानेवाला। उपद्रवी। नटखट। शरारती। दंगा मचानेवाला। अशांति उत्पन्न करनेवाला। उ०—पोथी पाठ पढ़े दिन राती, ये केवल भ्रम के उत्पाती। कवीर सा०, पृ० ८४०।

उत्पाद[1]—वि० [सं०] जिसके पैर ऊपर उठे हों [को०]।

उत्पाद[2]—संज्ञा पुं० जन्म। उत्पत्ति [को०]।

उत्पादक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उत्पादिका] उत्पन्न करनेवाला।

उत्पादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्पादित] उत्पन्न करना। पैदा करना।

उत्पादशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ वालक। २. टिट्टिभ पक्षी [को०]।

उत्पादिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक फतिंगी। एक तरह का कीडा। २ माता [को०]।

उत्पादिका[2]—वि० पैदा करनेवाली [को०]।

उत्पादित—वि० [सं०] उत्पन्न किया हुआ।

उत्पादी—वि० [सं० उत्पादिन्] [स्त्री० उत्पादिनी] उत्पन्न करनेवाली।

उत्पाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती [को०]।

उत्पिंज—संज्ञा पुं० [सं० उत्पिञ्ज] १ षड्यंत्र। २ अराजकता। विद्रोह [को०]।

उत्पिंजर—वि० [सं० उत्पिञ्जर] १ मुक्त किया हुआ। २ अव्यवस्थित ३ व्याकुल [को०]।

उत्पिंजल—वि० [सं० उत्पिञ्जल] दे० 'उत्पिंजर' [को०]।

उत्पीड—संज्ञा पुं० [सं० उत्पीड] १. वहना। २ फेन। ३ घाव (को०)। ४. दे० 'उत्पीडन' (को०)।

उत्पीड़क—वि० [सं० उत्पीडक] त्रासप्रद। पीडा पहुँचानेवाला। उ०—किंतु अविवेक उन्हें उत्पीडक वना देता है।—रस क०, पृ० ४।

उत्पीडन—संज्ञा पुं० [सं० उत्पीडन] [वि० उत्तपीड़ित] १ दवाना। तकलीफ देना। २ पीडा पहुँचाना।

उत्पुच्छ—वि० [सं०] ऊपर पूँछ किए रहनेवाला [को०]।

उत्पुट—वि० [सं०] खिला हुआ। विकसित [को०]।

उत्पुटक—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग [को०]।

उत्पुलक—वि० [सं०] १ पुलकित। रोमांचित। २ प्रसन्न। खुश। [को०]।

उत्तारक[२]—संज्ञा पुं० शिव। महादेव [को०]।

उत्तारण—संज्ञा पुं० [सं०] १ उद्धार करना। २ पार ले जाना या उतारना। ३ विष्णु [को०]।

उत्तारी—वि० [सं० उत्तारिन्] १ पार करने या उतारनेवाला। २ अस्थिर। ३ अस्वस्थ [को०]।

उत्तार्य—वि० [सं०] १ पार करने योग्य। नौका से पार करने योग्य। २ वमन करने योग्य [को०]।

उत्ताल[१]—वि० [सं०] १ अशांत। क्षुब्ध। उ०—मदर थका, थके असुरासुर, थका रज्जु का नाग, थका सिंधु उत्ताल शिथिल हो उगल रहा है झाग।—धूप और धुआँ, पृ० ७१। २ प्रबल। विकराल। प्रचंड [को०]। ३ उन्नत [को०]। ४ कठिन [को०]। ५ प्रत्यक्ष [को०]।

उत्ताल[२]—संज्ञा पुं० १ वनमानुष १ एक विशेष संख्या [को०]।

उत्ताव(पु)—संज्ञा पुं० [सं उत्ताप] दे० 'उत्ताप'। उ०—पप्प पच पंथह गवन, आतुर खरि उत्ताव,।—पृ० रा०, ५८।५०।

उत्तिम—वि० [हिं०] दे० 'उत्तम'। उ०—सब संसार परथमैं आए सातौं दीप। एकौ दीप न उत्तिम सिंहल दीप समीप।—जायसी ग्र० (गुप्त) २५।

उत्तिर—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] वह पट्टी जो खंभे में गले के ऊपर और कप के नीचे होती है।

उत्तीर्ण—वि० [सं] १ पार गया हुआ। पारगत। २ मुक्त। ३ परीक्षा में कृतकार्य। पासशुद।

उत्तुंग—वि० [सं० उत्तुङ्ग] १ ऊँचा। बहुत ऊँचा। उ०—हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह।—कामायनी, पृ० ३। २ तीव्र लहरवाला।

उत्तुंडित—संज्ञा पुं० [सं० उत्तुण्डित] काँटे की नोक। काँटे का सिरा [को०]।

उत्तुप—संज्ञा पुं० [सं०] भूसी निकाला हुआ या भुना हुआ चना [को०]।

उत्तू[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] १ वह औजार जिसको गरम करके कपड़े पर बेल बूटों तथा चुन्नट के निशान डालते हैं। २ बेलबूटे का काम जो इस औजार से बनता है।

क्रि० प्र०—करना।—का काम बनना।

मुहा०—उत्तू करना = (१) गाली देना। २ कपड़े पर बेल बूटे की छाप या चुन्नट डालना। मारकर उत्तू बनाना = किसी को इतना मारना की उसके बदन मे दाग पड जायँ तो कुछ दिन तक बने रहे।

उत्तू[२]—वि० बदहवाश। नशे में चूर।

क्रि० प्र०—करना —होना। जैसे, उसने इतनी भाँग पी ली कि उत्तू हो गया (शब्द०)।

उत्तूकश—संज्ञा पुं० [हिं० उत्तू + फा० कश] उत्तू का काम बनानेवाला।

उत्तूगर—संज्ञा पुं० [हिं० उत्तू + फा० गर] दे० 'उत्तूकश'।

उत्तेजक—वि० [सं०] १ उभाड़नेवाला। बढ़ानेवाला। उकसानेवाला। प्रेरक। २ वेगों को तीव्र करनेवाला।

उत्तेजन—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ावा। उत्साह। प्रेरणा।

उत्तेजना—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्तेजित, उत्तेजक] १ प्रेरणा। बढ़ावा। प्रोत्साहन। २ वेगों को तीव्र करने की क्रिया।

यौ०—उत्तेजनाजनक = भड़कानेवाला। क्रोध उत्पन्न करनेवाला।

उत्तेजित—वि० [सं०] १ क्षुब्ध। आविष्ट। २, प्रेरित। प्रोत्साहित। उ०—जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है।—कायाकल्प, पृ० १८३।

उत्तोरण—वि० [सं०] तोरण से सजाया हुआ [को०]।

उत्तोलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर को उठाना। ऊँचा करना। तानना। २ तौलना। वजन करना।

यौ०—झंडोत्तोलन, ध्वजोत्तोलन = झंडा फहराना या ऊँचा करना।

उत्त्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक भय। २ आतंक [को०]।

उत्थ—वि० [सं०] उत्पन्न या निकाला हुआ। निकला हुआ।

विशेष—इसका प्रयोग पदांत में होता है—जैसे, आनंदोत्थ [को०]।

उत्थप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] उठान। उत्थान। उ०—वहँ कोइ रिद्धि न सिद्धि है वहँ नहिं पुण्य न पाप, हरिया विषय न वासना वहँ उत्थप नहिं थाप।—राम० धर्म०, पृ० ६१।

उत्थवना(पु)—क्रि० स० [सं० उत्थापन] अनुष्ठान करना। आरंभ करना। उ०—राजा सुकृत यज्ञ उत्थयऊ। तेहिठाँ एक अचंभा भयऊ।—सबल सिंह (शब्द०)।

उत्थाँ—क्रि० वि० [प०] वहाँ। इधर। उधर। उ०—इत्था उत्था जित्था कित्थाँ, हूँ जीवाँ तो नाल वे।—दादू बानी, पृ० ५१३।

उत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १ उठने का कार्य। २ उठान। आरंभ। ३ उन्नति। समृद्धि। बढ़ती। ४ जागना [को०]। ५ खुशी। [को०]। ६. लड़ाई [को०]। ७ आँगन [को०]। ८ सेना [को०]। ९ सीमा। हद [को०]। १० पुरुषत्व [को०]। ११ किताब [को०]। १२ माल्यार्पण [को०]। १३ प्रबंध। व्यवस्था [को०]। १४ रोग होने का कारण [को०]।

यौ०—उत्थान एकादशी = कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी। देवोत्थान। उत्थानपतन = उन्नति अवनति।

उत्थानक—वि० [सं०] १ ऊपर उठानेवाला। २ उन्नत करानेवाला। [को०]।

उत्थापक—वि० [सं०] उन्नत करनेवाला। उभारनेवाला। २ उठानेवाला जगानेवाला। ३ प्रेरणा देनेवाला [को०]।

उत्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर उठाना। २ हिलानाडुलाना। ३ जगाना। उ०—तब स्नान करि कै श्री गिरिराज ऊपर पधारे। सो श्री गोवर्धननाथ जी को उत्थापन किए।—दो सौ बावन०, भा० २ पृ० २३।

उत्थापनभोग—संज्ञा पुं० [सं०] जागरण का भोग। जागरणकालीन भोग। उ०—भावप्रकाश क्यो? जो, उत्थानभोग में मेवा अवश्य चाहिए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०३।

उत्थित—वि० [सं०] उठा हुआ। उ०—जलप्रपात के उत्थित जल सी।—इत्यलम्, पृ० २७। २ बचाया हुआ। ३ उत्पन्न। ४ बढ़नेवाला। घटित होनेवाला। ६ फैलाया हुआ [को०]।

उत्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उत्थान' [को०]।

व्यस्तपद, जैसे, रुपए के अभियोग के उत्तर में कोई कहे कि वादी ने हमें मारा है। (७) अव्यापी, अर्थात् जिसके उत्तर का कोई ठौर ठिकाना न हो। (८) निगूढ़ार्थ, जैसे, रुपए के अभियोग में अभियुक्त कहे कि हाँ, क्या मुझपर चाहते हैं?' अर्थात् मुझ पर नहीं, किसी और पर चाहते होंगे। (९) आकुल, जैसे, 'मैंने रुपए लिए हैं, पर मुझपर चाहिए नहीं।' (१०) व्याख्यागम्य, जिन उत्तर में कठिन या दोहरे अर्थ के शब्दों के प्रयोग से व्याख्या की आवश्यकता हो। (११) असार, जैसे किसी ने अभियोग चलाया कि अमुक ने ब्याज तो दे दिया है पर मूलधन नहीं दिया है। और वह कहे कि हमने ब्याज तो दिया है पर मूलधन लिया ही नहीं।

उत्तरायण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य की मकर रेखा से उत्तर, कर्क रेखा की ओर, गति। २ वह छह महीने का समय जिसके बीच सूर्य मकर रेखा से चलकर बराबर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है।

विशेष—सूर्य २२ दिसम्बर को अपनी दक्षिणी अयनसीमा मकर-रेखा पर पहुँचता है फिर वहाँ से मकर की अयनसंक्रांति अर्थात् २३-२४ दिसंबर से उत्तर की ओर बढ़ने लगता है और २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरी अयनसीमा पर पहुँच जाता है।

उत्तरायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में एक मूर्छना जिसका स्वरग्राम यों है—ध, नि, से, ग, म, प, स, रे, ग, म, प,।

उत्तरराणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उत्तरारणी' (को०)।

उत्तरारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निमंथन की दो लकड़ियों में से ऊपर की लकड़ी।

उत्तरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पिछला आधा। पीछे का अर्ध भाग।

उत्तराषाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २१वाँ नक्षत्र।

उत्तरासंग—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरासङ्ग] दे० 'उत्तरवस्त्र' (को०)।

उत्तरी¹—वि० [सं० उत्तरीय] उत्तर दिशा से संबंधित। उत्तर का (को०)।

उत्तरी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्नाटकी पद्धति की एक रागिनी (संगीत) (को०)।

उत्तरी ध्रुव—संज्ञा पुं० [हिं० उत्तरी + ध्रुव] पृथ्वी का ऊपरी सिरा। सुमेरु (को०)।

उत्तरीय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपरना। दुपट्टा। चद्दर। ओढ़नी। २ एक प्रकार का बहुत बड़ा सन जो बड़ा मजबूत होता है और सहज में काता जा सकता है। यह बड़ा मुलायम और चमकीला होता है तथा सब सनों से अच्छा समझा जाता है।

उत्तरीय²—वि० १ ऊपर का। ऊपरवाला। २ उत्तर दिशा का। उत्तर दिशा संबंधी।

यौ०—उत्तरीय पट।

उत्तरीयक¹—संज्ञा पुं० दे० 'उत्तरीय¹' (को०)।

उत्तरीयक²—वि० दे० 'उत्तरीय²' (को०)।

उत्तरेतर—वि० [सं०] उत्तरदिशा से भिन्न। दक्षिणी (को०)।

उत्तरोत्तर—क्रि० वि० [सं०] आगे आगे। एक के पीछे एक। एक के अनंतर दूसरा। क्रमश:। लगातार। दिनों दिन।

उत्तर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रचंड तर्जन। २ भयंकर तर्जन (को०)।

उत्तलित—वि० [सं०] ऊपर की तरफ उछाला या फेंका हुआ (को०)।

उत्तश्रृंखल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उच्छृंखल'। उ०—ऊनश्रृं खल प्रज्ञान जिते अन ईश्वरवादी।—भक्तमाल, पृ० ६६१।

उत्तसुमग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्तमांग'। उ०—माउन मुकुट उत्तसुमंग, रचि बहु भाँत मौन सुरग।—पृ० रा०, १८।६६।

उत्ता¹—वि० [हिं० उतना] (स्त्री० उत्ती) उतना।

उत्ता²—वि [हिं० उतरा] उतरा हुआ। उ०—भिड़का ज्यों डाले टुटता। सबही के मन सूँ उत्ता।—चरण० बानी पृ० २८।

उत्तान¹—वि० [सं०] पीठ को जमीन पर लगाए हुए। चित। सीधा।

यौ०—उत्तानपाणि। उत्तानपाद।

उत्तान²—संज्ञा पुं० चरक के मत से वात रक्त का एक भेद। इसका प्रभाव त्वचा और मांस पर होता है। उ०—वात रक्त चरक ने दो प्रकार का कहा है—एक तो उत्तान, दूसरा गंभीर।—माधव नि०, पृ १५१।

उत्तानक—संज्ञा पुं० [सं०] उच्चटा नामक घास (को०)।

उत्तानकमर्क—संज्ञा पुं० [सं०] बैठने की मुद्रा (को०)।

उत्तानपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] लाल एरंड (को०)।

उत्तानपात(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्तानपाद'। उ०—उत्तानपात सुत ध्रुव जेम, रहि जाय अत इव अचलतम।—पृ० रा० ६६।६०५।

उत्तानपाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जो स्वायंभुव मनु के पुत्र और प्रसिद्ध भक्त ध्रुव के पिता थे। उ०—नृप उत्तानपाद सुत तासू, ध्रुव हरिभगत भएउ सुत जासू।—मानस०, १।१४२।

उत्तानपादज—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्रुवतारा। २ ध्रुव (को०)।

उत्तानशय¹—वि० [सं०] ऊपर की तरफ मुँह करके लेटा हुआ (को०)।

उत्तानशय²—संज्ञा पुं० दुधमुँहा बच्चा (को०)।

उत्तानहृदय—वि० [सं०] १ निश्छल। निष्कपट। साफ दिलवाला। २ उदार (को०)।

उत्तानित—वि० [सं०] १ ऊपर उठाया या फैलाया हुआ। २ ऊपर की तरफ मुँह किए हुए (को०)।

उत्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्तप्त और उत्तापित] १. गर्मी। तपन। २ कष्ट। वेदना। ३ दुःख। शोक। उ०—जो कुकार्य में अभिमत द्रव्य, फूँक दिखाते निज सामर्थ्य। तो अपनी करनी पर आप, पछताते पाकर उत्ताप।—सरस्वती (शब्द०)। ४. क्षोभ। उग्रभाग। उ०—उठे विविध उत्ताप प्रबल अवरुद्ध भाव गर्जनकारी, त्यों उन्नत अभिलाष प्रपूरित करै यत्न साधन भारी॥—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

उत्तापित—वि० [सं०] १ गर्म। तपाया हुआ। संतापित। २ क्षुब्ध। दुःखी क्लेशित।

उत्तापी—वि० [सं० उत्तापिन्] १ बहुत गरम। उत्तप्त। उत्तापयुक्त। २ दुःखी किया हुआ। दुःखयुक्त (को०)।

उत्तार¹—वि० [सं०] १. सबसे बड़ा। श्रेष्ठ (को०)।

उत्तार²—संज्ञा पुं० १. उद्धार करना। २ पार करना। किनारे पर उतारना। ३ मुक्त करना। ४ वमन। ५ स्थानांतरण (को०)।

उत्तारक¹—वि० [सं०] उद्धार करनेवाला (को०)।

उत्तरक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह के अनंतर मृतक के निमित्त होनेवाला विधान।

उत्तरगुण—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वे गुण जो मूल गुण की रक्षा करें।

उत्तरग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरग्रन्थ] रचना का परिशिष्ट [को०]।

उत्तरच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १ आवरण। २ बिछावन के ऊपर बिछाई जानेवाली चादर [को०]।

उत्तरज्योतिप—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा का एक देश।

उत्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] उतरना। नाव आदि के द्वारा जलाशय पार करना [को०]।

उत्तरतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरतन्त्र] सुश्रुत या किसी वैद्यक ग्रंथ का पिछला भाग।

उत्तरदाता[1]—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरदातृ] [स्त्री० उत्तरदात्री] वह जिससे किसी कार्य के बनने बिगड़ने पर पूछताछ की जाय।

उत्तरदाता[2]—वि० जवाबदेह। जिम्मेदार।

उत्तरदायित्व—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर+दायित्व, फा० जवाबदेही का हिं० रूप] जवाबदेही। जिम्मेदारी। उ०—गुप्त साम्राज्य की भावी शासक को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं।—स्कंद०, पृ० ८।

उत्तरदायी—वि० [सं० उत्तरदायिन्] [वि० स्त्री० उत्तरदायिनी] उत्तर देनेवाला। जवाबदेह। जिम्मेदार।

उत्तरदायी सरकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० उत्तरदायी+सरकार] उत्तरदायी शासन। उत्तरदायित्वपूर्ण शासन। वह शासन जिसमें शासक वर्ग के व्यक्ति अपने कार्यों के लिये जनता या जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हों। उ०—यद्यपि केंद्र और प्रांतों दोनों में उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था की गई थी।—भा० रा० शा० वि०, पृ० ३।

उत्तरनाभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में उत्तर की ओर का कुंड।

उत्तरपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रार्थ में वह सिद्धांत जिसमें पूर्व पक्ष अर्थात् पहले किए हुए निरूपण या प्रश्न का खंडन या समाधान हो। जवाब की दलील।

उत्तरपट—संज्ञा पुं० [सं०] १ उपरना। दुपट्टा। चादर। २. बिछाने की चद्दर।

उत्तरपथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान।

उत्तरपद—संज्ञा पुं० [सं०] किसी यौगिक शब्द का अंतिम शब्द। जैसे, रवि-कुल-कमल-दिवाकर' में 'दिवाकर' (शब्द०)।

उत्तरपाद—संज्ञा पुं० [सं०] चुनौती का जवाब [को०]।

उत्तरप्रदेश—संज्ञा पुं० [सं०] भारत संघ का एक राज्य [को०]।

उत्तरप्रोष्ठपदयुग—संज्ञा पुं० [सं०] नंदन, विजय, जय, मन्मथ और दुर्मुख, इन वर्षों का समूह।

उत्तरप्रोष्ठपदा—संज्ञा० स्त्री० [सं०] उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र।

उत्तरभोगी—वि० [सं० उत्तरभोगिन्] उपभुक्त, त्यक्त या बची हुई वस्तु का उपभोग करनेवाला [को०]।

उत्तरमंद्र—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरमन्द्र] संगीत में एक मूर्च्छना का नाम। इसका स्वरग्राम यों है।—स, रे, ग, म, प, ध, नि, ध, नि, स, रे, ग, म प, ध, नि, स, रे, ग।

उत्तरमानस—संज्ञा पुं० [सं०] गया तीर्थ में एक सरोवर।

उत्तरमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत दर्शन।

उत्तरलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] जवाब का उपयुक्त संकेत [को०]।

उत्तरवय—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्तरवयस' [को०]।

उत्तरवयस—संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ापा। वृद्धावस्था।

उत्तरवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवृत्ति' [को०]।

उत्तरवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पिचकारी [को०]।

उत्तरवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर पहना जानेवाला वस्त्र। २ दुपट्टा आदि [को०]।

उत्तरवादी—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरवादिन्] वह जो वाद में न्याय की माँग करता है प्रतिवादी। मुद्दालेह [को०]।

उत्तरसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में से एक। वह साक्षी जो औरों के मुँह से मामले का हाल सुनसुनाकर साक्षी दे।

उत्तरसाधक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक [को०]।

उत्तरसाधक[2]—वि० १ शेष भाग को पूरा करनेवाला। २ उत्तर (जवाब) को सिद्ध करनेवाला [को०]।

उत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ राजा विराट की कन्या और अभिमन्यु की स्त्री जिससे परीक्षित उत्पन्न हुए थे। २ उत्तरी दिशा [को०]। ३ एक नक्षत्र [को०]।

उत्तराखंड—संज्ञा पुं० [सं० उत्तराखण्ड] भारतवर्ष का वह उत्तरी हिस्सा जो हिमालय के आसपास में पड़ता है [को०]।

उत्तराधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के मरने के पीछे उसके धनादि का स्वत्व। वरासत।

उत्तराधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० उत्तराधिकारिन्] [स्त्री० उत्तराधिकारिणी] वह जो किसी के मरने के पीछे उसकी संपत्ति का मालिक हो। वारिस।

उत्तरापेक्षी—वि० [सं० उत्तरापेक्षिन्] अपने कथन का जवाब चाहनेवाला [को०]।

उत्तराफाल्गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारहवाँ नक्षत्र।

उत्तराभाद्रपद—संज्ञा स्त्री० [सं०] छब्बीसवाँ नक्षत्र।

उत्तराभास—संज्ञा पुं० [सं०] झूठा जवाब। अंडबंड जवाब (स्मृति)।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है—(१) संदिग्ध, जैसे, किसी पर सौ मुद्रा का अभियोग है और वह पूछने पर कहे कि हमें याद नहीं कि हमने १०० स्वर्णमुद्राएँ ली या रजत मुद्राएँ। (२) प्रकृति से अन्य, जैसे, किसी पर गाय का दाम न देने का अभियोग है और वह पूछने पर कहे कि गाय तो नहीं घोड़ा अलबत्त इनसे लिया था। (३) अत्यल्प, जैसे, १००) के स्थान पर पूछने पर कोई कहे कि मैंने पाँच ही रुपए लिए थे। (४) अत्यधिक। (५) पक्षैकदेशव्यापी, जैसे किसी पर सोने और कपड़े का दाम न देने का अभियोग है और वह कहे कि हमने कपड़ा लिया था, सोना नहीं। (६)

उत्तमवेश— संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

उत्तमश्रुत - वि० [सं०] बहुश्रुत । बडा विद्वान् [को०]।

उत्तमश्लोक[1]—वि० [सं०] यशस्वी । कीर्तिमान [को०]।

उत्तमश्लोक[2] संज्ञा पुं० १ सुयश । उत्तमकीर्ति । पुण्य । यश । २ भगवान । नारायण । विष्णु [को०]।

उत्तमसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमसङ्ग्रह] परस्त्री से लगाव [को०]।

उत्तमसाहस—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक हजार पण के जुर्माने का दंड । २ कोई बडा दंड, जैसे—शूली, फांसी, जायदाद का जब्त होना अगभंग, देशनिकाला इत्यादि।

उत्तमांग—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमाङ्ग] सिर । शीर्ष । मस्तक ।

उत्तमांभस—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमाम्भस] सांख्यमतानुसार नौ प्रकार की तुष्टियों में एक जो हिंसा के त्याग से होती है। योग की परिभाषा मे उसे सार्वभौम महाव्रत कहते हैं।

उत्तमा[1]—वि० [सं० उत्तम का वि० स्त्री०] अच्छी । भली ।

उत्तमा[2]—संज्ञा स्त्री० १ पुरी विशेष । २. शूक रोग के १८ भेदो मे से एक जिसमे अजीर्ण तथा रक्तपित्त के प्रयोग से इंद्रिय पर मूँग या उर्द की सी लाल फुंसियाँ हो जाती हैं। ३ दूधी । दुद्धी दुग्धिका । ४. इंदीवरा । युग्मफल । ५ हिंदी साहित्य संमेलन की एक परीक्षा का नाम ।

उत्तमादूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दूती जो नायक या नायिका को मीठी बातों से समझा बुझाकर मना लावे ।

उत्तमानायिका— संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्वकीया नायिका जो पति के प्रतिकूल होने पर भी अनुकूल बनी रहे ।

उत्तमारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंदीवरी नाम का एक पौधा [को०]।

उत्तमार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वार्द्ध की एक अपेक्षा सुंदर उत्तरार्द्ध। वह जिसका उत्तरार्द्ध अच्छा हो । २ उत्तरार्द्ध [को०]।

उत्तमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्तमार्द्ध' [को०]।

उत्तमाह— संज्ञा पुं० [सं०] १ अच्छा दिन । सौभाग्यवाला दिन । अंतिम दिन [को०]।

उत्तमीय—वि० [सं०] सबसे ऊपर । सबसे अच्छा । सबसे ऊँचा । प्रधान [को०]।

उत्तमोत्तम— वि० [सं०] अच्छे से अच्छा । सर्वोत्तम ।

उत्तमोत्तमक— संज्ञा पुं० [सं०] लास्य के दस अंगों मे से एक। कोप अथवा प्रसन्नताजनक, आक्षेपयुक्त, रसपूर्ण, हाव और भाव से संयुक्त विचित्र पद्य-रचना-युक्त । (नाट्यशास्त्र)।

उत्तमौजा[1]—वि० [सं० उत्तमौजस्] जिसका बल या तेज उत्तम हो।

उत्तमौजा[2]—संज्ञा पुं० १. मनु के दस लडको मे से एक । २ युधामन्यु का भाई एक राजा जो पाडवो का पक्षपाती था ।

उत्तरंग[1]— संज्ञा पुं० [सं० उत्तरङ्ग] काठ का मेहराब जो चौखट के ऊपर उगाया जाता है [को०]।

उत्तरंग[2]—वि० १ आनद से भरा हुआ । २ लहराता हुआ । ३ कांपता हुआ । उछलता हुआ [को०]।

उत्तर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ दक्षिण दिशा के सामने की दिशा । ईशान और वायव्य कोण के बीच की दिशा । उदीची । २ किसी बात को सुनकर उसके समाधान के लिये कही हुई बात । जवाब । उ०—लघु आनन उत्तर देत बड़ो लरिहै मरिहै करिहै कुछ साको । गोरो, गरूर गुमान भरो कहो कौसिक, छोटो सो ढोटो है काको ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६० । जैसे, हमारे प्रश्न का उत्तर अभी नहीं आया । ३ प्रतिकार । बदला । जैसे, हम गालियों का उत्तर घूसों से देंगे। ४ एक वैदिक गीत। ५ राजा विराट का पुत्र । ६ एक काव्यालंकार जिसमें उत्तर के सुनते ही प्रश्न का अनुमान किया जाता है अथवा प्रश्नो का ऐसा उत्तर दिया जाता है जो अप्रसिद्ध हो । जैसे – (क) धेनु धूमरी रावरी ह्याँ कित है जदुवीर, वा तमाल तरुवर तरे, तरनि तनूजा तीर (शब्द०)। इन उदाहरण मे 'तुम्हारी गाय यहाँ कहाँ है' इस उत्तर के सुनने से हमारी गाय यहाँ कहाँ है ?' इस प्रश्न का अनुमान होता है। (ख) 'कहा विषम है ? दैवगति, सुख कह ? तिय गुनगान । दुर्लभ कह ? गुन गाहकहि, कहा दुख ? खल जान' (शब्द०)। इस उदाहरण मे 'दुख क्या है' आदि प्रश्नो के 'खल' आदि अप्रसिद्ध उत्तर होता है। उ० —(क) को कहिए जल सो सुखी का कहिए पर श्याम, को कहिए जे रस बिना को कहिए सुख बाम (शब्द०)। यहाँ 'जल से कौन सुखी है ?' इस प्रश्न का उत्तर इसी प्रश्न-वाक्य आदि का शब्द 'कोक (कमल)' है। इसी प्रकार और भी है। (ख) गाउ, पीठ पर लेहु, अंग राग अरु हार करु, गृह प्रकाश करि देहु कान्ह कह्यो सारंग नहीं (शब्द०)। यहाँ गाओ, पीठ पर चढ़ाओ, आदि सब बातो का उत्तर 'सारंग (जिसके अर्थ वीणा, घोड़ा, चदन, फूल और दीपक आदि हैं) नहीं' से दिया गया है। (ग) प्रश्न—घोडा क्यो अडा, पान क्यो सडा, रोटी क्यो जली ? उत्तर—'फेरा न था'।

यौ०—उत्तर प्रत्युत्तर ।

उत्तर[2]— वि० १ पिछला । बाद का । उपरांत का । उ०—(क) दैहहूँ दाग स्वकर इत आछे । उत्तर क्रियहि करहुँगो पाछे ।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—उत्तर भाग । उत्तर काल ।

२. ऊपर का । जैसे,उत्तरदंत । उत्तरहनु । उत्तरारणी ३. बढ़कर । श्रेष्ठ । जैसे,—लोकोत्तर ।

उत्तर[3]—क्रि० वि० पीछे । बाद । जैसे, उत्तरोत्तर ।

उत्तरकल्प —संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा कल्प जिसमे खनिज पदार्थों एव पर्वतो की सृष्टि हुई थी [को०]।

उत्तरकांड—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरकाण्ड] रामायण का सातवाँ या अंतिम कांड (अध्याय) [को०]।

उत्तरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का ऊपरी भाग [को०]।

उत्तरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भविष्यकाल [को०]।

उत्तरकाशी—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान जो हरिद्वार के उत्तर मे है और बदरीनारायण के मार्ग मे पडता है।

उत्तरकुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जबूद्वीप के नौ वर्षों या खडो मे से एक।

उत्तरकोशल—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के आसपास का देश । अवध।

उत्तरकोशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयोध्या नगरी ।

उत्तरकोसल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्तरकोशल' [को०]।

उत्क्रोशपात—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य [को०]।

उत्क्लेद—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उत्क्लेदन' [को०]।

उत्क्लेदन—संज्ञा पुं० [स०] तर या गीला।

यौ०—उत्क्लेदनवस्ति=तरी पहुँचाने की इच्छा से उपयुक्त ओषधियों के क्वाथ पिचकारी द्वारा वस्ति में पहुँचाना।

उत्क्लेश—संज्ञा पुं० [स०] १ शरीर का स्वस्थ न रहना। २ बेचैनी। ३ कलेजे के समीप जलन [को०]।

उत्क्षिप्त—वि० [स०] १ ऊपर उछाला हुआ। ऊपर फेंका हुआ [को०]।

उत्क्षेप—संज्ञा पुं० [स०] १ ऊपर की तरफ उछालना। ऊपर की तरफ फेंकना [को०]।

उत्क्षेपक—संज्ञा पुं० [स०] १ वस्त्रादि का चोर।—(स्मृति)। २ वह जो उछालता या फेंकता है [को०]। ३ वह जो भेजता है [को०]।

उत्क्षेपण—संज्ञा पुं० [स०] १ चुराना। चोरी। २ ऊपर की ओर फेंकना। ३ सोलह पण की एक माप। ४ पखा। ५ किसी वस्तु का ढकना। पिहान। ६ मूसल, मुँगरी या पिटना इत्यादि जिससे अन्न पीटा जाता है। ७ सूप।

उत्खनन—संज्ञा पुं० [स०] खोदना। खनना। गड़ी वस्तु को बाहर निकालना।

उत्खला—संज्ञा स्त्री० [स०] मुरा नामक एक सुगधित द्रव्य [को०]।

उत्खात—वि० [स०]उखाड़ा हुआ। २ खोदकर निकाला हुआ। [को०]। ३ खोदा हुआ [को०]।

उत्खाता—वि० [स० उत्खातृ] १ खोदनेवाला। २ उखाड़नेवाला [को०]।

उत्खाती—वि० [स० उत्खातिन्] १ ऊबड़ खाबड़। जो सम न हो। २ नष्ट करनेवाला। विनाशकारी [को०]।

उत्खान—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उत्खनन' [को०]।

उत्खेद—संज्ञा पुं० [स०] १ खोदना। खनना। २ बाहर निकालना। ३ छेदना [को०]।

उत्तक—संज्ञा पुं० [स० उत्तङ्क] दे० 'उतक' [को०]।

उत्तग(पु)—वि० दे० 'उत्तुग'। उ०—उत्तग मरकत मदिरन मधि बहु मृदग जु बाजही। घन-समै मानहु घुमरि करि घन घन पटल गल गाजही।—भूषण ग्र०, पृ० ४।

उत्तभ—संज्ञा पुं० [स० उत्तम्भ] १ आधार देना। सहारा देना। २ रोकना [को०]।

उत्तभन—संज्ञा पुं० [स० उत्तम्भन] दे० 'उत्तभ' [को०]।

उत्तस—संज्ञा पुं० [स०] १ मुकुट। किरीट। २ मुकुट पर धारण की हुई माला। ३ कान का एक गहना। कर्णपूर। कनफूल। ४ एक प्रकार का अलकार (साहित्य)। उ०—उत्तस—गौण भाव से कही उक्ति को प्रधानता देना।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० २६३।

उत्त[१](पु)—संज्ञा पुं० [उत्] आश्चर्य। सदेह। उ०—मेरे मन उत्त री तू कैसे उतरी है, मुदरी तू कैसे करि उतरी समुद री।—हनुमान (शब्द०)।

उत्त[२](पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० उत। उ०—कहा किया हम आइ कहा करेंगे जाइ, इत के भये न उत्त के चले मूल गँवाइ।—कबीर ग्र०, पृ० २३।

उत्त[३](पु)—अव्य० उधर।

उत्तट—वि० [स०] किनारे तक छलकता हुआ [को०]।

उत्तपन—संज्ञा पुं० [स०] एक विशेष प्रकार की आग [को०]।

उत्तप्त—वि० [स०] १ खूब तपा हुआ। २ दुःखी। क्लेशित। पीड़ित। सतप्त। ३ क्रोधित। कुपित। ४. स्नान किया हुआ। धोया हुआ।

उत्तप्त[२]—संज्ञा पुं० १ सुखाया हुआ मास। २ अधिक गर्म [को०]।

उत्तब्ध—वि० [स०] १ ऊपर उठाया हुआ। २ उत्तेजित किया गया [को०]।

उत्तभित—वि० [सं०] दे० 'उत्तब्ध' [को०]।

उत्तम[१]—वि० [स०] [वि० स्त्री० उत्तमा] १ श्रेष्ठ। सबसे अच्छा। सबसे भला।

उत्तम[२]—संज्ञा पुं० [स०] छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र। ध्रुव का सौतेला भाई।

उत्तमगधा—संज्ञा स्त्री० [स० उत्तमगन्धा] चमेली। मालती। उ०—सुमना जाती मल्लिका, उत्तमगधा आस, कछु इक तुव तन बास सो मिलति जासु की बात।—नद० ग्र०, पृ० १०९।

उत्तमतया—क्रि० वि० [स०] उत्तमतापूर्वक। उत्तमता से। अच्छी तरह से। भली भाँति।

उत्तमता—सं० स्त्री० [स०] श्रेष्ठता। उत्कृष्टता। खूबी। भलाई। उ०—इसमे तो सब जाक की उत्तमता निकल सकती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० १६।

उत्तमताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [स० उत्तमता+हिं० ई (प्रत्य०)] भलाई। बड़ाई। बड़प्पन। उ०—बनिक लहत सुनि घन अधिकाई। लहत सूद्रकुल उत्तमताई।—पद्माकर (शब्द०)।

उत्तमत्व—संज्ञा पुं० [स०] अच्छापन। भलाई।

उत्तमन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधैर्य। २ साहस छूटना। दिल खोना [को०]।

उत्तमपुरुष—संज्ञा पुं० [स०] व्याकरण मे वह सर्वनाम जो बोलनेवाले पुरुष को सूचित करता है, जैसे,—'मैं', 'हम'।

उत्तमफलिनी—संज्ञा स्त्री० [स०] दुद्धी या दुग्धिका नाम का पौधा।

उत्तमर्ण—संज्ञा पुं० [स०] ऋण देनेवाला व्यक्ति। महाजन। अधमर्ण का उलटा।

उत्तमर्णिक—संज्ञा पुं० [स०] दे० 'उत्तमर्ण' [को०]।

उत्तममित्र—संज्ञा पुं० [स०] वह जो राष्ट्र या राज्य के लिये सबसे उत्तम मित्र हो। उत्तम मित्र के कौटिल्य ने छह भेद दिए हैं—(१) नित्यमित्र (२) वश्यमित्र, (३) लघूत्थानमित्र, (४) पितृपैतामह मित्र, (५) महतमित्र, (६) अद्वैध्यमित्र [को०]।

उत्तमवयस—संज्ञा पुं० [स०] जीवन की अंतिम अवस्था। जीवन का शेष भाग [को०]।

उत्तमवर्ण—वि० [स०] १. सुवर्ण। अच्छे रगवाला। उत्तम जाति का [को०]।

यौ०—उत्कलखंड = स्कंदपुराण का एक भाग।
२—बहेलिया। ३ बोझा ढोनेवाला। ४. ब्राह्मण का एक भेद [को०]।

उत्कलाप—वि० [स०] ऊपर की तरफ पूँछ फैलाए हुए [को०]।

उत्कलिका—संज्ञा स्त्री० [स०] १ उत्कंठा। २ फूल की कली। ३ तरंग। लहर। ४ वह गद्य जिसमे बड़े बड़े समासवाले पद हों।

उत्कलित—वि० [स०] मुक्त। प्रस्फुटित। उ०—हर पिता कठ की दृप्त धार, उत्कलित रागिनी की बहार।—ग्रनामिका, पृ० १२३।

उत्कर्पण—संज्ञा पु० [स०] १ चीरना। फाड़ना। २. हल से जोतना [को०]।

उत्का—वि० स्त्री० [स०] दे० 'उत्कंठिता'। उ०—ग्राप जाय संकेत मे, पीव न ग्रायो होय। ताकी मत चिंता करै उत्का कहिए सोय।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३०४।

उत्काका—संज्ञा स्त्री० [स०] वह गाय जो प्रति वर्ष बच्चा दे। बरसाइन गाय।

उत्कार—संज्ञा स्त्री० [स०] १ ग्रनाज फटकना या पछोरना। २. ग्रनाज की राशि लगाना। ३. वह जो बीज बोता है [को०]।

उत्कारिका—संज्ञा स्त्री० [स०] लोवा। पुलटिस। लेप [को०]।

उत्काशन—संज्ञा पुं० [स०] ग्राज्ञा देना [को०]।

उत्कास—संज्ञा पु० [स०] गला साफ करना। खखारना [को०]।

उत्कासन—संज्ञा पुं० दे० 'उत्कास' [को०]।

उत्कासिका—संज्ञा स्त्री० दे० 'उत्कासन' [को०]।

उत्कीर्ण—वि० [स०] लिखा हुग्रा। खुदा हुग्रा। छिदा हुग्रा। बिधा हुग्रा। उ०—गवर्नमेंट ने पंडित जी की विद्वत्ता की प्रशंसा उत्कीर्ण कराकर एक सोने का पदक पुरस्कार मे दिया।—सरस्वती (शब्द०)।

उत्कीर्णकर्ता—वि० [स०] लिखने या लिखवानेवाला। उ०—ग्रागे के पल्लव ग्रभिलेख संस्कृत मे हैं जिसके ग्रध्ययन से पता चलता है कि उनके लेखक तथा उत्कीर्णकर्ता पाँचवीं तथा छठी शताब्दी मे हुए थे।—ग्रा० भा०, पृ० ५६१।

उत्कीर्तन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उत्कीर्तित] १. प्रसंशा। स्तुति करना। २ चिल्लाना। जोर से पुकारना। ३ घोषणा करना।

उत्कुट—संज्ञा पु० [स०] चित्त सोना। [को०]।

उत्कुटक—वि० [स०] ऊपर मुँह करके सोया हुग्रा [को०]।

उत्कुण—संज्ञा पुं० [स०] १. मत्कुण। खटमल। उडस। २ बालों का कीड़ा। जूँ।

उत्कूज—संज्ञा पु० [सं०] कोयल का गान करना। कोयल का कूकना [को०]।

उत्कूट—संज्ञा पु० [स०] छाता या छतरी [को०]।

उत्कूर्दन—संज्ञा पुं० [स०] कूदना। उछलना [को०]।

उत्कूल—वि० [स०] १ ऊपर जानेवाला (पर्वत या नदी)। २ किनारे पर पहुँचानेवाला। ३. किनारे की तरफ बढ़नेवाला [को०]।

उत्कृति[१]—संज्ञा पुं० [स०] २६ वर्ण के वृत्तों का नाम। सुख ग्रौर भुजग विजृंभित इत्यादि इन्ही के ग्रतर्गत हैं।

उत्कृति[२]— वि० छब्बीस (संख्या)।

उत्कृष्ट—वि० [स०] १ उत्तम। श्रेष्ठ। ग्रच्छे से ग्रच्छा। सर्वोत्तम। २ ऊपर से उठाया हुग्रा (को०)। ३ जोता हुग्रा। (को०)। ४. तोड़ा हुग्रा। काटा हुग्रा (को०)।

उत्कृष्टवेदन—संज्ञा पुं० [स०] ग्रपने से उच्च जाति के व्यक्ति से विवाह करना [को०]।

उत्कृष्टता—संज्ञा स्त्री० [स०] बड़ाई। श्रेष्ठता। ग्रच्छापन। बड़प्पन। उत्कृष्ट होने की स्थिति। उ०—यह मनुष्य जिससे वेनिस के प्रत्येक निवासियों को घृणा है, जिसके निकट महत्व ग्रौर पानिप कोई उत्कृष्टता नही रखता, जो वृद्ध ग्रौर युवा सब पर कराघात करने को उद्यत है।—ग्रयोध्या (शब्द०)।

उत्केंद्र—वि० [स० उत्केन्द्र] १ केंद्र से निकाला या ग्रलग किया हुग्रा। २ बिना नियमवाला [को०]।

उत्केंद्रक—वि० [स० उत्केन्द्रक] केंद्र से ग्रलग या बाहर करनेवाला [को०]।

उत्केंद्रकशक्ति—संज्ञा स्त्री० [स० उत्केन्द्रकशक्ति] केंद्र से दूर फेंकनेवाली शक्ति। यह शक्ति जोर से चक्कर मारती हुई वस्तुग्रों मे उत्पन्न हो जाती है, जिससे उस वस्तु का कोई खंडित ग्रंश ग्रथवा ऊपर रखी हुई कोई ग्रौर चीज उसके केंद्र से बाहर की ग्रोर वेग से जाती है, जैसे, पहिए से लगा हुग्रा कीचड गाडी चलते समय दूर जा पड़ता है।

उत्केंद्रता—संज्ञा स्त्री० [स० उत्केन्द्रता] केंद्र से च्युत होना। धुरीहीनता। उ०—दुर्बोधता, प्राचुर्य ग्रौर उत्केंद्रता शास्त्रीय संपूर्णता के विरुद्ध है।—पा० सा०, पृ० १७१।

उत्कोच—संज्ञा पु० [स०] घूस। रिश्वत।
यौ०—उत्कोचग्राही। उत्कोचजीवी।

उत्कोचक[१]—वि० [स०] [वि० स्त्री० उत्कोचिका] घूसखोर। रिश्वत खानेवाला।

उत्कोचक[२]—संज्ञा पु० रिश्वत खाना। रिश्वत लेना [को०]।

उत्कोटि—वि० [स०] नोकवाला। नोकदार [को०]।

उत्क्रम—संज्ञा पुं० [स०] १ उलटपलट। क्रमभंग। विपर्यय। २. ग्रसमान होना।

उत्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्क्रमणीय] १. क्रम का उल्लंघन। २ मरण। मृत्यु। ३ बाहर या ऊपर जाना [को०]। ३ वृद्धि होना। बढ़ना [को०]।

उत्क्रांति—संज्ञा स्त्री० [स० उत्क्रान्ति] क्रमश उत्तमता ग्रौर पूर्णता की ग्रोर बढती हुई प्रवृत्ति। दे० 'ग्रारोह'। उ०—मनोमंदिर की मेरी शांति। बनी जाती है क्यों उत्क्रांति?—साकेत, पृ० ३२।
यौ०—उत्क्रांतिवाद। उ०—भाषाविज्ञान ग्रौर उत्क्रांतिवाद ने भी बहुत सी ऐतिहासिक घटनाग्रों मे तार्किक संबद्धता दिखाई।—पा० सा०, पृ० ६।

उत्क्रोश—संज्ञा पुं० [स०] १. शोरगुल। हल्ला। चिल्लाना। जोर की ग्रावाज। २. घोषणा। राजाज्ञापत्र द्वारा प्रकाशन। ३ कुररी पक्षी [को०]।

बोलाइ। सूर स्याम दुहि देन कह्यो, सुनि राधा गई मुसुकाइ। —सूर०, १०। ७२८। (क) आजु अकेली उतावली हौं पहुँची तट लौं तुम आई करार मे। बालसखीन के हा हा किए मन कैहूँ दियो जल केलि विहार मे।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०)।

उताहल¹(पु)—क्रि० वि० [हिं० उतावल] शीघ्रता से। तेजी से। चपलता से। उ०—गुरु मेहदी सेवक मैं सेवा, चलै उताहल जेहिकर खेवा।—जायसी (शब्द०)।

उताहल²(पु)—वि० उतावला।

उताहिल(पु)†—[हिं०] दे० 'उतावल'।

उतिपत्ति(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—दीपमालिका उतिपत्ति सब कहै सुनाऊँ तोहि।—पृ० रा० २३।२।

उतिम(पु)—वि० [सं० उत्तम] दे० 'उत्तम'। उ०— एहि रे दगध हुँत उतिम मरीजै।—जायसी ग्र०, पृ० १०८।

उतिमाहाँ(पु)—क्रि० वि० [स० उत्तम] उत्तम। श्रेष्ठ। उ०— चपावति जो रूप उतिमाहाँ, पदमावति कि जोति मन छाहाँ। —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५३।

उतू—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उत्तू'। उ०—चोली चुनावट चीन्हे चुभै चपि होत उजागर दाग उतू के।—घनानद, पृ० ४७।

उतृण(पु)†— वि० [सं० उद्+तीर्ण] १ ऋणमुक्त। उऋण। अनृण। उ०—हाय किस भाँति उस पिता के धर्म ऋण से उतृण होऊँ।—सीताराम (शब्द०)। २ जिसने उपकार का बदला चुका दिया हो। उ०—आप अपना आधा धन भी उसको दे देवें तब भी उसके ऋण से उतृण नही। हो सकते।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

उतृन(पु)†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उतृण'। उ०—पलटू मैं उतृन भया, मोर दोस जिन देय।—पलटू० बानी०, भा० १, पृ० ६।

उतै(पु)†—क्रि० वि० [हिं० उत] वहाँ। उधर। उस ओर। उ०— खेलत खेल सखीनि मे उतै घूरि अवगाहि, पलक न लागत एक पल इतै नाह मुख चाहि।—मतिराम ग्र०, पृ० ४४९।

उतैला¹(पु)-क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उतावला'।

उतैला²—सज्ञा पुं० [देश०] उर्ज। माप।

उत्कठ¹— वि० [सं० उत्कण्ठ] १ ऊपर गर्दन किए हुए। २ तैयार। उद्यत। ३ उत्कठायुक्त। उत्कठित [को०]।

उत्कठ²—सज्ञा पुं० रतिकर्म का एक आसन [को०]।

उत्कठा—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कण्ठा] १ प्रबल इच्छा। तीव्र अभिलाषा। लालसा। चाव। २ रस मे एक सचारी का नाम। किसी काम मे विलब न सहकर उसे चटपट करने की अभिलाषा। जैसे, फिरि फिरि बूझति, कहि कहा कह्यो साँवरे गात, कहा करत देखे, कहाँ आली चली क्यों बात।—बिहारी र०, दो० २१६।

उत्कठातुर—वि० [सं० उत्कण्ठा+आतुर] तीव्र इच्छा की पूर्ति के लिये आतुर।

उत्कठित—वि० [स० उत्कण्ठित] उत्कठायुक्त। उत्सुक। उत्साहित। चाव से भरा हुआ।

उत्कठिता—सज्ञा स्त्री० [स० उत्कण्ठिता] सकेत स्थान मे प्रिय के न आने पर वितर्क करनेवाली नायिका। जैसे, नभ लाली चाली निसा, चटकीली धुनि कीन, रति पाली आली, अनत आए वनमाली न —बिहारी र०, दो ११५।

उत्कदक—सज्ञा पुं० [स० उत्कन्दक] एक प्रकार का रोग [को०]।

उत्कधर¹—वि० [स० उत्कन्धर] ऊपर गर्दन किए हुए [को०]।

उत्कधर²—सज्ञा पुं० गर्दन ऊपर करना [को०]।

उत्कप— सज्ञा पुं० [स० उत्कम्प] कँपकँपी।

उत्क¹—वि० [स०] १ इच्छा रखनेवाला। २ दुखद। कष्टप्रद। ३ भूलनेवाला [को०]।

उत्क²—सज्ञा पुं० १ इच्छा अवसर [को०]।

उत्कच¹— सज्ञा पुं० [स०] १ हिरण्याक्ष के नौ पुत्रो मे से एक। २ परावसु गन्धर्व के नौ पुत्रो मे से एक।

उत्कच²—वि० १ खडे बालोवाला। २ गजा [को०]।

उत्कट¹—वि० [स०] तीव्र। विकट। कठिन। उग्र। प्रचड। दुसह। प्रबल। उ०— तथापि दूसरो की उत्कट कीर्ति से इसमे ईर्षा होती है।—भारतेंदु ग्रथ, भा० १, पृष्ठ २८३।

उत्कट²—सज्ञा पुं० [स०] १ मूँज। २ ईख। गन्ना। ३ दालचीनी ४ तज। तेजपात्ता।

उत्कटा—सज्ञा स्त्री० [स०] सेंही लता [को०]।

उत्कर—सज्ञा पुं० [स०] राशि। ढेर [को०]।

उत्कर्कर—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का बाजा [को०]।

उत्कर्ण—वि० [स०] १ कान खडे हुए। २ उत्सुक। (किसी बात को सुनने के लिये) [को०]।

उत्कर्णता—सज्ञा स्त्री० [स० उत्कर्ण] उत्सुकता। उ०—देख भावप्रवणता, वरवर्णता, वाक्य सुनने को हुई उत्कर्णता —साकेत, पृ० ६६।

उत्कर्तन- सज्ञा पुं० [स०] १ काटना। २ फाड डालना। ३ उन्मूलन [को०]।

उत्कर्ष—सज्ञा पुं० [स०] १ बडाई। प्रशसा। २ श्रेष्ठता। उत्तमता। अधिकता। बढ़ती। उ०—भले की भलाई और बुरे की बुराई दिखलाकर एक का उत्कर्ष और दूसरे का पतन दिखलाया जाता है —रस क०, पृ० २७।

उत्कर्षक—वि० [स०] उत्कर्ष की ओर से ले जानेवाला। उत्कर्षदायक [को०]।

उत्कर्षता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ श्रेष्ठता। बडाई। उत्तमता। २ अधिकता। प्रचुरता। ३ समृद्धि।

उत्कर्षित—वि० [स०] उत्कर्षप्राप्त। उत्कर्ष को पहुँचा हुआ। उ०— उसे ज्ञात था, लोहे को है गुण विधि से अर्पित। निम्न सार से यह सुवर्ण मे हो सकता उत्कर्षित।—दैनिकी, पृ० २३।

उत्कर्षी—वि० [स० उत्कर्षिन्] दे० 'उत्कर्षक' [को०]।

उत्कल—सज्ञा पुं० [स०] १ एक देश जिसे अब उडीसा कहते हैं।

साथ उतार जाओ। १४ जन्म देना। उत्पन्न करना। उ०—दियो शाप भारी, बात सुनी न हमारी, घटि कुल मे उतारी, देह सोई याको जानिए।—प्रिया (शब्द०)। १५ किसी ऐसी वस्तु का तैयार करना जो सूत या उसी प्रकार की और किसी अखड सामग्री के बराबर बैठाते जाने से तैयार हो। सुई तागे आदि मे बननेवाली चीजो का तैयार करना। जैसे, जुलाहे ने कल चार थान उतारे। १६. ऐसी वस्तु का तैयार करना जो खराद, साँचे या चाक आदि पर चढाकर बनाई जाय। जैसे, चाक पर से बरतन उतारना, कालिब पर से टोपी उतारना। उ०-(क) कुम्हार ने दिन भर मे १०० हँडियाँ उतारीं। (ख) केशोदास कुदन के कोश ते प्रकाशमान चितामणि ओपनी सों ओपि कै उतारी सी। (शब्द०)। १७ बाजे आदि की कसन को ढीला करना। जैसे, सितार और ढोल को उतारकर रख दो।—केशव (शब्द०)। १८. भभके से खीचकर तैयार करना। खौलते पानी मे किसी वस्तु का सार उतारना। जैसे, (क) वह शराब उतारता है। (ख) हम कुसुम का रग अच्छी तरह उतार लेते हैं। १९. शतरज मे प्यादे को बढाकर कोई बडा मोहरा बनाना। २ स्त्री का सभोग करना। (अशिष्टो की भाषा)। २१ तौल मे पूरा कर देना। जैसे, वह तौल मे सेर का सवा सेर उतार देता है। २२ आग पर चढाई जानेवाली वस्तु का पककर तैयार करना। जैसे, पूरी उतारना। पाग उतारना।

सयो०क्रि० —डालना।—देना—लेना।

उतारना[२]—क्रि० स० [स० उत्तारण] पार ले जाना। नदी नाले के पार पहुँचाना। उ०—बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं। तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं।—मानस, २। १००।

उतारा[१] —सज्ञा पुं० [हिं० उतरना] १ डेरा डालने या टिकाने का कार्य। उ०—बाग ही मे पथिक उतारो होत आयो है।—दूलह (शब्द०)। २ उतरने का स्थान। पडाव। उ०—गरजत क्रोध लोभ को नारो, सूझत कहूँ न उतारो।—सूर० १।२०९। ३ नदी पार करने की क्रिया।

यौ०—उतारे का झोपडा=सराय। धर्मशाला।

उतारा[२]—सज्ञा पुं० [हिं० उतारना] १ प्रेतबाधा या रोग की शांति के लिये किसी व्यक्ति के शरीर के चारो ओर खाने पीने आदि की कुछ सामग्री को घुमाकर चौराहे या और किसी स्थान पर रखना। उ०—कहुँ रूसत रोवत नहिं सोवत रगवाये न रगाहीं, घी के तुला करावहिं जननी विविध उतार कराहीं।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।

२. उतारे की सामग्री या वस्तु।

उतारू[१]—[हिं० उतरना] उद्यत। तत्पर। सन्नद्ध। तैयार। मुस्तैद। जैसे, इतनी ही सी बात के लिये वे मारने पर उतारू हुए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उतारू[२]—सज्ञा पुं० [हिं०] मुसाफिर।—(लश०)।

उताल[१]Ⓟ—क्रि० वि० [प्रा० उत्ताल, जल्दी, शीघ्र] जल्दी। शीघ्र। उ०—(क) कहै न जाइ उताल जहाँ भूपति तिहारो। हौं वृदावन चद्र कहा कोउ करै हमारो?।—सूर (शब्द०)। (ख) कहै धाय मिनाय कै आव उताल तू गाय गोपाल की गाइन मे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) सो राजा जो अगमन पहुँचै सूर सु भवन उताल।—सूर०, १०। २२३।

उताल[२]Ⓟ—सज्ञा स्त्री० शीघ्रता। जल्दी। उ०—(क) ज्यों ज्यों आवति निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल, झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटै बाल।—बिहारी र०, दो ५४३। (ख) कहै शिव कवि दबि काहे को रही है बाम, घाम ते पसीना भयो ताको सियराय ले, बात कहिबे मे नदलाल की उताल कहा? हाल तो, हरिननैनी! हफनि मिटाय ले।—शिव (शब्द०)।

उताली[१]Ⓟ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उताल] शीघ्रता। जल्दी। उतावली। चपलता। फुर्ती। उ०—गोपी ग्वाल माली जुरे आपुस मे कहैं आली कोऊ जसुदा के औतरयो जो इद्रजाली है, कहै पद्माकर करै को यों उताली जापै रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है।—पद्माकर ग्र०, पृ० २३१।

उताली[२]—क्रि० वि० शीघ्रता के साथ। जल्दी से। उ०—रूसि कहू कढि माली गयो गई ताहि मनावन सासु उताली।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६१।

उतावल[१]Ⓟ—क्रि० वि० [प्रा० उत्तावल] जल्दी जल्दी। शीघ्रता से उ०—(क) कौउ गावत कोउ बेनु बजावत कोऊ उतावल धावत। हरिदर्शन की आसा कारन विविध मुदित सब आवत। —सूर०, १०।४२८२ (ख) मोको श्री गोकुल उतावल ही जानो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४।

उतावलⓅ—वि० दे० 'उतावला'।

उतावला—वि० [प्रा० उत्तावल+आ (प्रत्य०)] [स्त्री० उतावली] १ जल्दी मचानेवाला। जिसे जल्दी हो। जल्दबाज। चंचल। उ०—(क) पानी हू ते पातरा धूँआँ हू ते झीन, पवनहुँ वेग उतावला दोस्त कबीरा कीन।—कबीर (शब्द०)। अरे मन, तू उतावला न हो, धीरज धर, तेरे हित की अनसूया पूछ रही है।—शकुतला, पृ० २०। ८. व्यग्र। घबराया हुआ। उत्सुक। उ०—क्या जाने उतावला होकर जी बहलाने के लिये उसने बाजे मे कुजी दे रखी हो।—अयोध्या (शब्द०)।

उतावलिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उतावली'। उ०—सो जनेऊ तोरि कै बुहारि उतावलि गो बाँधी।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ८५।

उतावली[१]—संज्ञा स्त्री० [प्रा० उत्तावल—ई (प्रत्य०)] १. जल्दी। शीघ्रता। जल्दबाजी। हडबडी। उ०—(क) बसन शुक्र तनया के लीन्हे, करत उतावलि परे न चीन्हे।—सूर०, ६। १७४। (ख) उनको कई तीर्थों मे जाना है इसलिये वह उतावली कर रहे हैं। अयोध्या शब्द०। २ व्यग्रता। चचलता।

उतावली[२]—वि० स्त्री० जिसे जल्दी हो। जो जल्दी मे हो। शीघ्रता करनेवाली। उ०—तबहिं गई मे ब्रज उतावली आई ग्वाल

उतलाना㉦†—क्रि॰ अ॰ [प्रा॰ उत्तावल, उतावल = शीघ्रता] जल्दी करना। उ॰—चली तब धाई लछमन पाँव छुए जाई। बोली मुसकाय एक बात कहौं भावती। बरवे के काज राम तुम पै पठाई हौं गजानन मनाय आई ताते उतलावती।—हनुमान (शब्द॰)

उतल्ला—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'उतायल'।

उतवग㉦—संज्ञा पुं॰ [सं॰ उत्तमांग] मस्तक। सिर।—डिं॰।

उतसहकंठा㉦—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ उत्कण्ठा] प्रबल इच्छा। उत्कंठा। उ॰—सरद सुहाई आई राति, दहूँ दिस फूल रही बन जाति, ... उतसहकंठा हरि सों बढ़ी।—सूर (शब्द॰)।

उताइल㉦—वि॰ [प्रा॰ उत्तावल] दे॰ 'उतायल'। उ॰—(क) गुरु मोहदा सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर सेवा। जायसी ग्र॰ पृ॰ ८। (ख) दधि सुत अरि अख सुत सुभाव चल तहाँ उताइल आई। देखि ताहि सुर लिख कुबेर को वित्त तुरत समुझाई।—साहित्य॰, १६६।

उताइली㉦—संज्ञा स्त्री॰ [प्रा॰ उत्तावल] दे॰ 'उतायली'।

उतान—वि॰ [सं॰ उत्तान = उत् + तान, प्रा॰ उत्ताण = उन्मुख] १ पीठ को जमीनपर लगाकर लेटे हुए। चित। सीधा। उ॰—उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।—मानस, ६।३६। २ तना हुआ। फैला हुआ।

क्रि॰ प्र॰—चलना।

उतामला‡—वि॰ [हिं॰] 'उतावला'।

उतायल㉦—वि॰ [प्रा॰ उत्तावल = उतावली] जल्दी। शीघ्र। तेज। उ॰—जब सुमिरत रघुबीर सुभाऊ, तब पथ परत उतायल पाऊ।—तुलसी (शब्द॰)।

उतायली㉦—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ उतायल] जल्दी। शीघ्रता। उ॰—स्याम सकुच प्यारी उर जानी। करत कहा पिय अति उतायली मैं कहुँ जात परानी।—सूर (शब्द॰)।

उतार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अव + √तृ, प्रा॰ उत्तार, हिं॰ उतरना] १ उतरने की क्रिया। २ क्रमश नीचे की ओर प्रवृत्ति। ढाल। जैसे,—पहाड़ का उतार। (शब्द॰)।

यौ॰—उतार चढ़ाव = ऊँचाई निचाई। उतार सुतार = गौं। सुबीता।

मुहा॰—उतार चढ़ाव बताना = (१) ऊँचा नीचा समझाना। (२) धोखा देना। ३ उतरने योग्य स्थान। जैसे, (क) पहाड़ के उस तरफ उतार नहीं है, मत जाओ। ४ किसी वस्तु की मोटाई या घेर का क्रमश कम होना। जैसे, इस छड़ी का चढ़ाव उतार बहुत अच्छा है। किसी क्रमश बढ़ी हुई वस्तु का घटना। घटाव। कमी। जैसे नदी अब उतार पर है। ६ नदी मे हलकर पार करने योग्य स्थान। हिलान। जैसे—यहाँ उतार नहीं है, और आगे चलो। ७ समुद्र का भाटा। ८ दरी के करघे का पिछला बाँस जो बुननेवाले से दूर और चढ़ाव के समानांतर होना है। ९ उतारन। निकृष्ट। उ॰—प्रगत उतार, अपकार को अगार जग जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाँध को।—तुलसी ग्र॰, पृ॰ २१३। १० उतारा। न्योछावर। सदका।

११ परिहार। उस वस्तु का प्रयोग जिससे विष आदि का दोष या और कोई प्रभाव दूर हो। जैसे, (क) हींग अफीम का उतार है। (ख) इस मंत्र का उतार क्या है। १२ वह अभिचार जो अपने मंगल के लिये किसान करते हैं। इसमे वे एक दिन गाँव के बाहर रहते हैं। १३ कुश्ती का एक दाँव। उ॰—दस्ती, उतार, लोकान, पट, ढाक, कालाजंग, घिस्से आदि दाँव चले और कटे।—काले॰ पृ॰ ४१।

उतारन—संज्ञा पुं॰ [प्रा॰ उत्तारण, हिं॰ उतारना] उतारा हुआ कपड़ा। वह पहिरावा जो धारण करते करते पुराना हो गया हो। जैसे, आपकी उतारन पुतारन मिल जाय। २ न्योछावर। उतारा। ३ निकृष्ट वस्तु।

यौ॰—उतारन पुतारन।

उतारना¹—क्रि॰ स॰ [सं॰ अवतारण, प्रा॰ उत्तारण] १ ऊँचे स्थान से नीचे स्थान मे लाना। उ॰—अहे, दहेडी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि, नीकें है छीकें छुवै ऐसैं ई रहि नारि।—बिहारी र॰, दो॰ ६१९। २ किसी वस्तु का प्रतिरूप कागज इत्यादि पर बनाना। (चित्र) खीचना। जैसे, यह मनुष्य बहुत अच्छी तसवीर उतारता है। ३ लेख की प्रतिलिपि लेना। लिखावट की नक्ल करना। जैसे, इस पुस्तक की एक प्रतिलिपि उतारकर अपने पास रख लो। ४ लगी या लिपटी वस्तु का अलग करना। सफाई के साथ काटना। उचाड़ना। उधेड़ना। उ॰—(क) अस्वत्थामा निसि तहँ आए, द्रौपदि सुत तहँ सोवत पाए। उनके सिर लै गयौ उतारि, कह्यौ पाडवनि आयौ मारि।—सूर॰, १।२८६। (ख) सिर सरोज निज करन्हि उतारी, पूजेऊ अमित बार त्रिपुरारी।—मानस ६।२५। (ग) बकरे की खाल उतार लो। (घ) दूध पर से मलाई उतार लो। (शब्द॰)। ५ किसी धारण की हुई वस्तु को दूर करना। पहनी हुई चीज को अलग करना। जैसे, (क) कपड़े उतार डालो। (ख) अँगूठी कहाँ उतारकर रखी? ६ ठहराना। टिकाना। डेरा देना। जैसे, इन लोगो को धर्मशाले में उतार दो। ७ आदर के निमित्त किसी वस्तु को शरीर के चारो ओर से घुमाना। जैसे,—आरती उतारना। ८ उतारा करना। किसी वस्तु को मनुष्य के चारो ओर घुमाकर भूत प्रेत की भेंट के रूप मे चौराहे आदि पर रखना। ९ न्योछावर करना। वारना। उ॰—वारिए गौन मे सिंधुर सिंहिनी, आयद नीरज नैनन वारिए। वारिए मत्त महा वृष ओजहिं चद्रघंटा मुसुकान उतारिए।—रघुराज (शब्द॰)। १० चुकाना। अदा करना। जैसे, पहले अपने ऊपर से ऋण तो उतार लो। तब तीर्थयात्रा करना। ११ वसूल करना। जैसे, (क) पुस्तकालय का सब चंदा उतार लाओ तब तनखाह मिलेगी। (ख) हम अपना सब लहना उतार लेंगे तब यहाँ से जाएँगे। (ग) उसने इधर से उधर की बातें करके १००) उतार लिए। १२. किसी उग्र प्रभाव का दूर करना जैसे,—नशा उतारना, विष उतारना। १३ निगलना। जैसे, इस दवा को पानी के

का तैयार होना। जैसे, मोजा उतरना, थान उतरना, कसीदा उतरना। जैसे, चार दिनों के बाद यह मोजा उतरा है। (८) ऐसी वस्तु का तैयार होना जो खराद या साँचे पर चढ़ाकर बनाई जाय। (९) भाव का कम होना। जैसे, गेहूँ का भाव आजकल उतर गया है। (१०) डेरा करना। ठहरना। टिकना। जैसे, जब आप बनारस आइए तब मेरे यहाँ उतरिए। ११ नकल होना। खिंचना। अंकित होना। जैसे, (क) तुम्हारी तसवीर कहाँ उतरेगी। (ख) ये सब कविताएँ तुम्हारी कापी पर उतरी हैं। १२ बच्चों का मर जाना। जैसे, उसके बच्चे हो होकर उतर जाते हैं। १३ भर आना। संचारित होना। जैसे, नजला उतरना। दूध उतरना। फोते में पानी उतरना। जैसे, उसकी माँ के थनों में दूध ही नहीं उतरता १४ फलों का पकने पर तोड़ा जाना। जैसे, तुम्हारी ओर खरबूजे उतरने लगे या नहीं? १५ भभके में खिंचकर तैयार होना। खौलते हुए पानी में किसी चीज का सार उतरना। जैसे, यहाँ अर्क किस जगह उतरता है? (ख) अभी कुसुम का रंग अच्छी तरह नहीं उतरा है, और खौलाओ। (ग) अभी चाय अच्छी तरह नहीं उतरी। १६ लगी या लिपटी वस्तु का अलग होना। सफाई के साथ कटना। उचड़ना। उघड़ना। जैसे, कलम बनाते हुए उसकी उँगली उतर गई (ख) एक ही हाथ में बकरे का सिर उतर गया (ग) बकरे की खाल उतर गई। १७ धारण की हुई वस्तु का अलग होना। जैसे, उसके शरीर पर से सब कपड़े लत्ते उतर गए। १८ तौल में ठहरना। जैसे, देखें यह चीज तौल में कितनी उतरती है। १९ किसी बाजे की कसन का ढीला होना जिससे उसका स्वर विकृत हो जाता है। जैसे, सितार उतरना, पखावज उतरना, ढोल उतरना। २० जन्म लेना। अवतार लेना। जैसे,—तुम क्या सारे संसार की विद्या लेकर उतरे हो? २१. सामने आना। घटित होना, जैसा तुम करोगे वैसा तुम्हारे आगे उतरेगा। २२ कुश्ती या युद्ध के लिये अखाड़े या मैदान में आना। जैसे, (क) अखाड़े में अच्छे अच्छे पहलवान उतरे हैं। (ख) यदि हिम्मत हो तो तलवार लेकर उतर आओ। २३ आदर के निमित्त किसी वस्तु का शरीर के चारों, तरफ घुमाया जाना। जैसे, आरती उतरना, न्योछावर उतरना। २४ शतरंज में किसी प्यादे का कोई बड़ा मोहरा बन जाना। जैसे, फरजी उतरा और मात हुई। २५—वसूल होना। जैसे,—(क) कितना चंदा उतरा? (ख) हमारा सब लहना उतर आया। २६—स्त्रीसंभोग करना (अशिष्टों की भाषा)। २७—आग पर चढाई जानेवाली चीज का पककर तैयार होना। जैसे, पूरी उतरना। पाग उतरना।

मुहा०—उतरकर = निम्न श्रेणी का। नीचे दरजे का। उ०—वह जाति में मुझसे उतरकर है।—ठेठ हिंदी० पृ० ६। गले में उतरना या गले के नीचे उतरना = (१) निगल जाना। जैसे,—क्या करें, दवा गले के नीचे उतरती ही नहीं। (२) मन में धँसना। चित में असर करना। जैसे, हमारी कही बातें तो उसके गले के नीचे उतरती ही नहीं। चित से उतरना = (१) विस्मृत होना। भूल जाना। (२) नीचा जँचना। अप्रिय लगना। अश्रद्धाभाजन होना। जैसे—उसकी चाल ऐसी है कि वह सबके चित्त से उतर जाएगा। चेहरा उतरना = मुख मलिन होना। मुख पर उदासी छाना। जैसे, उनका चेहरा आज हमने उतरा देखा। चेहरे का रंग उतरना -दे० 'चेहरा उतरना'।

उतरना²—क्रि० स० [स० उत्तरण] नदी, नाले या पुल को पार करना। उ०—लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।—मानस २।१३३।

उतरवाना—क्रि० स० [हिं० उतरना का प्रे० रूप] किसी को उतारने के कार्य में प्रवृत्त करना।

उतरहा—वि० [हिं० उत्तर + हा (प्रत्य०)], [स्त्री० उतरही] उत्तरवाला। उत्तर का।

उतराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना] १ ऊपर से नीचे आने की क्रिया। २ नदी के पार आने का महसूल या मजूरी। उ०—कहेउ कृपाल लेहि उतराई, केवट चरन गहे अकुलाई।—मानस २।१०२। ३ नाव आदि पर से उतरने का स्थान। ४ नीचे की ओर ढलती हुई जमीन। उतार। ढाल।

उतराना¹—क्रि० अ० [सं० उत्तरण] १ पानी के ऊपर आना। पानी की सतह पर तैरना। जैसे,—काग इतना हल्का होता है कि पानी में डालने से उतराता रहता है। २ उबलना। उफान खाना। उ०—ताही समय दूध उतराना, दौरी तुरत उतार न जाना।—विश्राम (शब्द०) ३ पीछे पीछे लगे फिरना। जैसे—यह बच्चा कहना नहीं मानता साथ ही साथ उतराता फिरता है। ४ प्रकट होना। हर जगह दिखाई देना। इधर उधर बहका फिरना। जैसे, आजकल शहर में काबुली बहुत उतराए हैं। (ख) घायल ह्वै करसायल ज्यों मृग त्यों उतही उतरायल घूमै। देव (शब्द०)।

उतराना²—क्रि० स० [उतारना क्रिया का प्रे० रूप] उतारने का काम अन्य से कराना 'उतारना'।

उतरायल(पु)—वि० [हिं० उतारना] उतारा हुआ व्यवहार किया हुआ। पुराना। जैसे,—उतरायल कपड़े (शब्द०)।

उतरारी(पु)†—वि० [सं० उत्तर + हिं० आरी प्रत्य०) उत्तर की (हवा)।

उतराव—संज्ञा पुं० [हिं० उतरना] उतार। ढाल। उ०—शिमला मसूरी इत्यादि स्थानों में जहाँ सरकार ने पत्थर काटकर सड़कें निकाल दी हैं वहाँ चढ़ाव उतराव तो अवश्य रहता है, पर लोग बेखटके घोड़ा दौड़ाते चले जाते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

उतरावना(पु)—वि० स० [हिं० उतारना क्रिया का प्रे० रूप] उतारने का काम किसी और से कराना।

उतराहां†—क्रि० वि० [सं० उत्तर + हिं० हा० (प्रत्य०)] उत्तर की ओर। उ०—मिथुन तुला कुंभ पछाहाँ, करक मीन बिरछिक उतराहा।—जायसी (शब्द०)।

उतरिन(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'उऋण'।

उतरिबो(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तरना'। उ०—तरपा सी लागी निसि बासर बिलोचननि, याही परवाह भयो नावनि उतरिबो।—मतिराम ग्र०, पृ० ३५८।

तब लेवै निसक, इहि विधान पूजै गिरिहि नर वर बुद्धि उतक ।— गोपाल (शब्द०) ।

उतग(पु)—वि० [सं० उत्तुङ्ग, प्रा० उत्तग] १ ऊँचा । बलद । उ०—अति उतग जलनिधि चहुँ पासा, कनक कोट कर परम प्रकासा । —मानस ५।३ ।

उतगा—वि० [सं० उत्तुङ्ग, प्रा० उत्तग [दे० 'उतग' । उ०—सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भक्ति उतगा ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६१ ।

उतत(पु)—वि० [सं० उन्नत या उत्तत = ऊँचा] सयाना । जवान । बडा । उ०—भइ उतत पदमावति बारी, रचि रचि विधि सब कला सँवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

उतस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्तस] दे० 'उत्तस' ।

उतसक(पु)—वि० [सं० उत्तस+क (प्रत्य०)] दे० 'अवतस' उ०—जब जब जो उद्गार होइ अति प्रेम विध्वसक । सोइ सोइ करै निरोध गोपकुल केलि उतसक । नद ग्र०, पृ० ४४ ।

उतँग—वि० [सं० उत्तुङ्ग] दे० 'उत्तुग' । उ०—उतँग जँभीर होइ रखवारी, छुइ को सकै राजा कै बारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ४६ ।

उतथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] अगिरस गोत्र के एक ऋषि ।

विशेष—यह बृहस्पति के बडे भाई थे । इनके बनाए बहुत से मत्र वेदो मे हैं ।

यौ०—उतथ्यानुज = बृहस्पति । उतथ्यतनय = गोतम ।

उतन(पु)—क्रि० वि० [हिं० उ = उत+तन (प्रत्य०)] उस तरफ । उस ओर । उ०—उतन ग्वालि तू कित चली ये उनये घनघोर । हौं आयौं लखि तुव घरै पैठत कारो चोर । (शब्द०) ।

उतना¹—वि० [हिं० उस+तन (हिं० प्रत्य० सं० 'तावान्' से) या हिं० उत+ना (प्रत्य०)] उस मात्रा का । उस कदर । जैसे,—बालको को जितना आराम माता दे सकती है उतना और कोई नही ।

उतना²—क्रि० वि० उस परिमाण से । उस मात्रा से । जैसे,—अरे भाई उतना ही चलना जितना चल सको ।

उतना³—संज्ञा पुं० [सं उत्तस अथवा देशज] एक प्रकार की बाली जो कान के ऊपरी भाग मे पहनी जाती है ।

उतपति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ । भूतल तें निकसति कहूँ विज्जुछटा की लोइ ।—शकुतला, पृ० २१ ।

उतपत्ति—(पु)†संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—कर्महिं ते उतपत्ति है कर्महिं ते सब नास । कर्म किए ते मुक्ति होइ परब्रह्मपुर वास ।—नद० ग्र०, पृ० १७६ ।

उतपथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्पथ] विपथ । कुपथ । उ०—अँधरो करै बधिर पुनि करहीं । उतपथ चलत विचार न टरही ।—नद०, ग्र०, पृ० २१८ ।

(पु)—क्रि० अ० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न होना । उ०—सुन्न का बुदबुदा सुन्न उतपत भया सुन्नहीं माहि फिर गुप्त होई ।—कबीर रे०, पृ० २७ ।

उतपन्न(पु)†—वि० [सं० उत्पन्न] दे० 'उत्पन्न' ।

उतपात(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० उत्पात] दे० 'उत्पात' । उ०—प्रमन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग ।—मानस, १।४१ ।

उतपानना(पु)¹—क्रि० स० [सं० उत्पादन या उत्पन्न या प्रा० उप्पायण] उत्पन्न करना । उपजाना । पैदा करना । उ०—तासों मिलि नृप बहु सुख माने, पष्ट पुत्र तासों उतपाने ।—सूर (शब्द०) ।

उतपानना²(पु)—क्रि० अ०—उत्पन्न होना ।

उतमग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्तमाङ्ग] दे० 'उत्तमाग' ।

उतरग—संज्ञा पुं० [सं० उत्तरङ्ग] लकडी या पत्थर की पटरी जो दरवाजो मे साहु के ऊपर बैठाई जाती है ।

उतर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर' । उ०—(क) उतर देत छोडौं बिनु मारे, केवल कौसिक सील तुम्हारे ।—मानस, १।२७५ । (ख) पुनि धनि कनक पानि मसि माँगी, उतर लिखत भीजी तन आँगी ।—जायसी ग्र० पृ० ६६ ।

उतरन¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना] २ पहने हुए पुराने कपडे ।

उतरन²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उतरग' ।

उतरन पुतरन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उतरना + अनु०] उतारे हुए पुराने वस्त्र ।

उतरना¹—क्रि० अ० [सं० अवतरण या प्रा० उत्तरण] [क्रि० स० उतारना । प्रे० उतरवाना] १. अपनी चेष्टा से ऊपर से नीचे आना । ऊँचे स्थान से सँभलकर नीचे आना । जैसे, घोडे से उतरना, कोठे पर से उतरना इत्यादि । २ ढलना । अवनति पर होना । घटाव पर होना । ह्रासोन्मुख होना । जैसे,—(क) उसकी अब उतरती अवस्था है । (ख) नदी अब उतर गई है । ३ शरीर मे किसी जोड, नस या हड्डी का अपनी जगह से हट जाना । जैसे, (क) उसका कूल्हा उतर गया । (ख) यहाँ की नस उतर गई है । ४ काति या स्वर का फीका पडना, बिगडना या धीमा पडना । जैसे, (क) धूप खाते खाते उसका रग उतर गया है । (ख) ये आम अब उतर गए है, खाने योग्य नही है । (ग) उसका चेहरा उतर गया है । (घ) देखो स्वर कैसा उतरता चढता है । ५ किसी उग्र प्रभाव या उद्वेग का दूर होना । जैसे, नशा उतरना । विष उतरना । (६) किसी निर्दिष्ट कालविभाग जैसे, वर्ष, मास या नक्षत्रविशेष का समाप्त होना । जैसे, (क) आषाढ़ उतरते उतरते वे आएँगे । (ख) शनि की दशा अब उतर रही है ।

विशेष—दिन या उससे छोटे कालविभाग के लिये 'उतरना' का प्रयोग नही होता, जैसे—यह नही कहा जाता कि 'सोमवार उतर गया ।' या 'एकादशी उतर गई' ।

७. किसी ऐसी वस्तु का तैयार होना, जो सूत या उसी प्रकार की और किसी अखड सामग्री के थोडे थोडे अश बराबर बैठाते जाने से तैयार हो । सुई तागे आदि से बननेवाली चीजों

उडूस—संज्ञा पुं० [देशज] खटमल ।

उड़ेंच†—संज्ञा पुं० [हिं० उड+पेंच] १. कुटिलता । कपट । २. वैर । अदावत । दुश्मनी ।

क्रि० प्र०—रखना ।—निकालना ।

उड़ेदड—संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना+दड] एक प्रकार का दड (कसरत) जिसमें सपाट खींचते हुए दोनों पैरों को ऊपर फेंकते हैं ।

उड़ेरना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उडेलना' ।

उड़ेलना—क्रि० स० [सं० उद्धारण=निकालना अथवा, उदीरण=फेंकना] १ किसी तरल पदार्थ को एक पात्र से दूसरे पात्र में डालना । ढालना । जैसे,—दूध इस गिलास में उड़ेल दो । २ किसी द्रव पदार्थ को गिराना या फेंकना । जैसे,—पानी को जमीन पर उडेल दो ।

क्रि० प्र०—देना । लेना ।

उड़ैनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ना] जुगुनू । खद्योत । उ०—(क) कौधत रहि जस भादों रैनी । श्याम रैन जनु चलै उड़ैनी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) चमक बीज जस भादों रैनी । जगत दिप्टि भरि रही उड़ैनी । जायसी (शब्द०) ।

उडौंहाँ†—वि० [हिं० उडना+औंहाँ (प्रत्य०)] उडनेवाला । उ०—करे चाह सों चुटकि कै खरै उडौहैं मैन । ताज नवाएँ तरफरत करत खूँद सी नैन ।—बिहारी र०, दो० ५४२ ।

उड्डयन—संज्ञा पुं० [सं०] उडना । उडान ।

उड्डामर—वि० [सं०] १ असामान्य । श्रेष्ठ । आदरणीय । २ प्रचड । शक्तिशाली । अत्युग्र । दुर्धर्ष [को०] ।

यौ०—उड्डामर तंत्र=एक तंत्र का नाम ।

उड्डामरी—वि० [सं० उड्डामरिन्] तीव्र कोलाहल या घोष करनेवाला [को०] ।

उड्डीयान—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की उँगलियों की एक प्रकार की मुद्रा [को०] ।

उड्डीन¹—वि० [सं०] उड़ा हुआ । उडान करता हुआ । उडता हुआ [को०]

उड्डीन²—सं० पुं० [सं०] १ उडान । उडना । २ पक्षियों की विशेष प्रकार की उडान [को०] ।

उड्डीयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हठयोग का एक बंध या क्रिया जिसके द्वारा योगी उड़ते हैं । कहते हैं इसमें सुषुम्ना नाडी में प्राण को ठहराकर पेट को पीठ में सटाते हैं और पक्षियों की तरह उडते हैं । १. उड़ना । उडान । उ०—स्वनित उड्डीयन-ध्वनित गतिजनित अनहद नाद से यह—दिग्दिगंताकाश वक्षस्थल, रहा है गूँज अहरह ।—क्वासि, पृ० १०१ ।

उड्डीयमान—वि० [सं० उड्डीयमत्] [स्त्री० उड्डीयमती] उडनेवाला । उडता हुआ ।

क्रि० प्र०—होना । उडना ।

उड्डीश—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । २. एक प्रकार का तंत्रग्रंथ [को०] ।

उड्यान—संज्ञा पुं० [सं० उड्डयन] हठयोग का एक आसन, जिसमें दोनों जानुओं को मोडकर पैरों के तलवों को परस्पर मिलाकर बैठा जाता है । उ०—उड्यान बंध सु मूल बंधहि बंध जालंधर करी ।—सुंदर ग्रं० भा० १, पृ० ५० ।

उढ़ा†—संज्ञा पुं० [बोल० हिं० ऊढ़] वह घास फूस या चिथड़े का पुतला जो फसल को चिड़ियों से बचाने के लिये खेत में गाड दिया जाता है । पुतना । बिजूखा ।

उढ़कन—संज्ञा पुं० [हिं० उढ़कना] १. ठोकर । रोक । २ सहारा । वह वस्तु जिसपर कोई दूसरी वस्तु अड़ी रहे ।

उढकना--क्रि० अ० [हिं० अड़ुकना] १. अड़ना । ठोकर खाना । जैसे,—देखो उढककर गिरना मत । २. रुकना । ठहरना ३. सहारा लेना । टेक लगाना । जैसे,—वह दीवार से उढ़ककर बैठा है ।

उढकाना—क्रि० स० [हिं० उढ़कना] किसी के सहारे खडा करना । जैसे,—हल को दीवार से उढकाकर रख दो । उ०—असमसान की भूमि तें गुरु को घर लै आय । गिरदा में उढकाय कै देत भये बैठाय ।—रघुराज (शब्द०) ।

उढरना†—क्रि० अ० [सं० ऊढ़ा=विवाहिता+हरण] विवाहिता स्त्री का किसी अन्य पुरुष के साथ निकल जाना । उ०—मुए चाम से चाम कटावै भुइँ सँकरी में सोवै । घाघ कहैं ये तीनो भकुआ उढरि जाय औ रोवैं ॥ (शब्द०) ।

उढ़री—संज्ञा स्त्री० [हिं० उढ़रना] १ वह स्त्री जो विवाहिता न हो । रखुई । सुरैतिन । २ वह स्त्री जिसे कोई निकाल ले गया हो । उ०—जनम लेत उढ़री अबला के लें छीर पियाई । कबीर श०, भा० १, पृ० ५३ ।

उढाना—क्रि० स० [हिं० ओढ़ाना] दे० 'ओढाना' उ०—कहूँ जो उढावो यहाँ बैठि मोही ।—हम्मीर रा०, पृ० ३८ ।

उढ़ारना—क्रि० स० [हिं० उढ़रना] किसी अन्य की स्त्री को निकाल लाना । दूसरे की स्त्री को ले भागना ।

उढ़ावनि—(पु), उढावनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उढाना] चद्दर । ओढनी । उ०—उन्होंने आते ही रुक्मिणी को राता चोला उढावनि बनाय बिठाया ।—लल्लू (शब्द०) ।

उढकन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० "उढकन" ।

उढ़ुकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० "उढकना" ।

उढकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० "उढकाना" ।

उढौनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० उढ़ावनि] दे० 'ओढ़नी' ।

उढ्ढ(पु)—वि० [सं० उर्ध्व, प्रा० उड्ड] उर्ध्व । ऊपर । ऊँचा । उ०—ऊन सिंधार झुपभार । उढ्ढ वढ्ढा उच्चारे ।—पृ० रा० ६१। ५४४ ।

उणती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्नति] दे० "उन्नति" । उ०—जन रज्जब उणती उठै, दुख दारिद्र सु दूरि ।—रज्जब०, पृ० ५ ।

उणहारि†—वि० [सं० अनुहार, प्रा० अणुहार, राज० उणिहार] दे० 'उनहार' । उ०—पुरुष विदेसि कामणि किया, उसही के उणहारि । कारज को सीझै नही, दादू माथै मारि ।—दादू० बानी, पृ० २८७ ।

उतंक(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० उत्तङ्क] १. एक ऋषि जो वेद ऋषि के शिष्य थे । २ एक ऋषि, जो गौतम के शिष्य थे ।

उतंक(पु)²—वि० [सं० उत्तुङ्ग] ऊँचा । उ०—देवै पावर भर पुरट

वाले जीवों को भगाना या हटाना। जैसे–चिड़ियों को खेत में से उडा दो। ४ झटके के साथ अलग करना। चट से पृथक् करना। काटना। गिराकर दूर फेंकना। जैसे—(क) उसने चाकू से अपनी अंगुली उडा दी। (ख) मारते मारते खाल उडा देंगे। (क) सिपाहियों ने गोलों से बुर्ज उडा दिए। उ०—असि रन धारत जदपि तदपि वह सिर न उड़ावत।—गोपाल (शब्द०)। ५ हटाना। दूर करना। गायब करना। जैसे,–बाजीगर ने देखते देखते रूमाल उडा दिया। ६ चुराना। हजम करना। जैसे,—चोर ने यात्री की गठरी उडाई। ७ दूर करना मिटाना। नष्ट करना। खारिज करना। जैसे, (क) गुरु ने लडके का नाम रजिस्टर से उडा दिया। (ख) उसने सब अक्षर उडा दिए। ८ खर्च करना। बरबाद करना। जैसे—उसने अपना धन थोडे ही दिनों मे उडा दिया। ९. खाने पीने की चीज को खूब खाना पीना। चट करना। जैसे,—लोग शराब कबाब उड़ा रहे हैं। १० किसी भोग्य वस्तु को भोगना। जैसे,—स्त्रीसभोग करना। ११ आमोद प्रमोद की वस्तु का व्यवहार करना। जैसे,—लोग वहाँ ताश या शतरज उडाते हैं। (ख) थोडी देर रह उसने तान उडाई। १२ हाथ या हलके हथियार से प्रहार करना। लगाना। मारना। जैसे–चपत उडाना। बेंत उड़ाना, जूते उडाना, डडे उडाना इत्यादि। १३ भुलावा देना। बात काटना। बात टालना। प्रसग बदलना। जैसे,–हमें बातों ही में मत उडाओ, लाओ कुछ दो। (च) हम उसी के मुँह से कहलाना चाहते थे, पर उसने बात उडा दी। ११ झूठ मूठ दोष लगाना। झूठी अपकीर्ति फैलाना। जैसे,—व्यर्थ क्यों किसी को उड़ाते हो। १५. किसी विद्या या कला कौशल को इस प्रकार चुपचाप सीख लेना कि उसके आचार्य या धारणकर्ता को खबर न हो। जैसे,–जब कि उसने तुम्हें सिखाने से इनकार किया तब उसने वह विद्या कैसे उड़ाई। १६ दौडना। वेग से भगाना। जैसे,—उसने अपना घोडा उडाया और चलता हुआ।

उडाना२Ⓟ–क्रि० स० [हिं० उढ़ाना] दे० 'ओढाना]। उ०–कोई दिन सर पर छतर उड़ावे।—दक्खिनी०, पृ० ६८।

उडायकⓅ—वि० सज्ञा पुं० [स उड्डायक] दे० 'उडाइक'।

उडाल—सज्ञा पुं० [प०] १ कचनार की छाल। २ कचनार की छाल की बटी हुई रस्सी जिसमे पजाब मे छप्पर छाते हैं।

उडावनी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उडाना] ओसाई। ओसाने का कार्य।

उडासⓅ—सज्ञा स्त्री० [स उद्वास] रहने का स्थान। वासस्थान। महल। उ०—(क) सात खड धौराहर तासू। सो रानी कहँ दीन्ह उडासू।—जायसी (शब्द०)। (ख) और नखत वहि के चहुँ पासा। सब रानिन्ह की अहै उड़ासा।–जायसी (शब्द०)।

उडासना–क्रि० स० [स० उद्वासन] १ बिछौने को समेटना। बिस्तर उठाना। जैसे,—बिस्तर उडास दो। Ⓟ २ किसी चीज को तहस नहस करना। उजाडना। उ०–भनै रघुराज राज सिंहन की वासिनी है शासिनी अघिन की यमपुर की उड़ासिनी।—रघुराज (शब्द०)। ३ किसी के बैठने या सोने मे विघ्न डालना। किसी को स्थान से हटाना। जैसे,–चिडियों ने यहाँ बसेरा लिया है, उन्हें मत उड़ासो।

उडिगनⓅ—सज्ञा पुं० [स० उडुगण] दे० 'उडुगण'। उ०—चाँद सुरुज नाहिं तहवाँ नाहिं उडिगन की जाति।—स० दरिया, पृ० १।

उडिया१—वि० [हिं० उडीसा [उडीसा देश का रहनेवाला।

उडिया२—सज्ञा स्त्री० [उत्कल प्रा॰उडिया] उडीसा की भाषा और उसकी लिपि। जैसे, उडिया भाषा। उड़िया लिपि।

उडियाना–सज्ञा पुं० [देश०] एक मात्रिक छद जिसमें १२ और १० के विश्राम से २२ मात्राएँ होती हैं और अत में एक गुरु होता है। १२ मात्राएँ इस क्रम से हों कि या तो सब द्विकल या त्रिकल हों अथवा दो त्रिकल के पीछे तीन द्विकल अथवा तीन द्विकल के पीछे दो त्रिकल हों। जैसे—ठुमुकि चलत रामचद्र बाजत पैजनियाँ। धाय मातु गोद लेति दशरथ की रनियाँ।–तुलसी (शब्द०)।

उडियानीⓅ†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उड + इयानी (प्रत्य०)] उडान। कल्पना। विचार। उ०—उहज गुमायँ बापर ल्याई, मोरे मन उडियानी माई।—गोरख०, पृ० १०८।

उडिल—सज्ञा पुं० [स० ऊर्ण + इल (प्रत्य०)] वह भेड जिसका बाल मूडा न गया हो। मूडिन का उलटा।

उडी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उड से] १ मालखभ की एक प्रकार की कसरत जिससे शरीर में फुरती आती है। इसके तीन भेद हैं–सशस्त्र, सचक्र और साधारण। २ कलैया। कलाबाजी।

उडीकना—क्रि० स० [स० उद्वीक्षण] बाट जोहना। राह देखना। प्रतीक्षा करना। उ०—(क) भभी भभी यारी बाँट उडीकों यों बिन बिरहा अधिक सतावै।—घनानद, पृ० ३३४। (ख) रही उडीक द्वार पर मैं हूँ अत घडी जीवन की, पूर्ण करो हे नाथ! शेष है एक साध दर्शन की।—पथिक, पृ० ५२।

उडीश—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बँवर जिससे बोझ बाँधते हैं और झूले का पुल और टोकरा बनाते हैं।

उडीसा—सज्ञा पुं० [स० ओड्र + देश] भारतवर्ष का एक समुद्रतटस्थ प्रदेश जो छोटा नागपुर के दक्षिण पडता है। उत्कल प्रदेश।

उडुबर—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदुबर'।

उडु—सज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा।

यौ०—उडुपति। उडुराज।

२ पक्षी। चिडियाँ। ३ केवट। मल्लाह। ४ पानी। जल।

उडुप१–सज्ञा पुं० [सं० [१ चद्रमा। उ०–कन स्वेद भयो सु विराजत यों उडुपो नभ तारनि सग भयो।—घनानद, पृ० १८४। २. नाव। ३ घडनई या घडई। ४ भिलावाँ। ५ बडा गरुड। ६ चर्म से ढँका हुआ एक प्रकार का पानपात्र (कौ०)।

उडुप२—सज्ञा पुं० [हिं० उडना] एक प्रकार का नृत्य। उ०—वहु वर्ण त्रिविधि आलाप कानि। मुखचालि चारु अरु शब्द-चालि। वहु उडुप, तिर्यगगति, पति, अडाल। अरु लाग, धाउ रापउरंगाल।—केशव (शब्द०)।

उडुपति—सज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा। १ सोमलता।

उडुपथ—सज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

उडुराज—सज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा उ०–ताही छिन उडुराज उदित रस-रास सहायक।—नद० ग्र०, पृ० ७।

ड़ना + असभव कार्य करना । उ०—अब तो वह उडती चिडियाँ पकडती है ।—सँर कु०, पृ० २९ । उड़ खाना = (१) उड उड़ के काटना । घर खाना । (२) अप्रिय लगना । न सुहाना । उ०—ता ऊपर लिखि योग पठावत खाहु नीव तजि दाख । सूरदास ऊधो की बतियाँ उडि उड़ि बैठी खात ।—सूर (शब्द०) ।

उडप¹—सज्ञा पुं० [हिं० उड़ना] नृत्य का एक भेद ।

उड़प²—सज्ञा पुं० [स० उडुप] दे० 'उडप' । उ०—जब ही नँदनदनमन भयो, तब ही उडप उदय है लयो ।—नद० ग्र०, पृ० २१६ ।

उडपति(पु)—सज्ञा [स० उडुपति] दे० 'उडुपति' ।

उडपाल—सज्ञा पु० [सं० उडुपाल] दे० 'उडुपाल' ।

उडराज—सज्ञा पु० [स० उडुराज] दे० 'उडुराज' ।

उड़रो—सज्ञा स्त्री० [हिं० उडद + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का उरद जो छोटा होता है ।

उडव—सज्ञा पुं० [स० ओडव] १. रागो की एक जाति जिसमे केवल पाँच स्वर लगें और कोई दो स्वर न लगें । जैसे,—मधुमास सारग, वृदावनी सारग, इन दोनों मे गाधार और धैवत नही लगते, भूपाली जिसमे मध्यम और निषाद नही है तथा मालकोश और हिंडोल जिनमे ऋषभ और पचम नही लगते । २. मृदग के बारह प्रबधो मे से एक ।

उडवना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उडाना' । उ०—उडवत धूरि धरे काँकरी । सवनि के दृगनि परी साँकरी ।—नद० ग्र०, पृ० २४२ ।

उडवाना(पु)—क्रि० स० [हिं० उड़ाना का प्रे० रूप] उडाने मे प्रवृत्त करना ।

उडसना†—क्रि० अ० [स० वि + ध्वसन > विढसन > उड़ँसना अथवा स० उद् + √वस्] भग होना । नष्ट होना । उ०—उडसा नाच नचनियाँ मारा । रहसे तुरुक बजाइ के तारा ।—जायसी (शब्द०) ।

उडाक†—वि० [हिं० उड + आक (प्रत्य०), उड़ + आका (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । उडाकू । २. जिसमे उडने की योग्यता हो । जो उड सकता हो । उ०— छपन छा के रवि इव भा के दड उतग उडाके । विविधि कता के, बँधे पताके, छुवैं जे रवि रथ चाके ।—रघुराज (शब्द०) ।

उडाकू—वि० [हिं० उड + आकू (प्रत्य०) दे० 'उडाक' ।

उडा—सज्ञा पु० [हिं० ओटना] रेशम खोलने का एक औजार । यह एक प्रकार का परेता है जिसमे चार परे और छह तीखियाँ होती हैं । तीखियाँ मथानी के आकार की होती है । तीखियो के बीच मे छेद होता है जिसमें गज डाला जाता है ।

उडाइक(पु)— वि०, सज्ञा पु० [स० उड्डायक] वह जो (गुड्डी आदि) उडाता हो । उडानेवाला । उडायक । उ०— कहा भयो, जो बिछुरे, मो मनु तो मन साथ । उडी जाउँ कितहूँ, तऊ गुडी उडाइक हाथ ।—बिहारी र०, दो० ५७ ।

उडाई—सज्ञा स्त्री० [उड + आई (प्रत्य०)] १ उडने की क्रिया या भाव ।

उड़ाऊ—वि० [हिं० उड् + आऊ (प्रत्य०)] १. उडनेवाला । उडकू । २ खर्च करनेवाला । खरची । अमितव्ययी । फजूलखर्च । जैसे,—वह बड़ा उडाऊ है, इसी से उसे अँटता नही ।

उड़ाका—सज्ञा पुं० [हिं० उड् + आका (प्रत्य०)] १ वह जो उड सकता हो । २. वह जो वायुयान आदि पर उड़ता हो । हवाई जहाज पर उड़नेवाला । ३. विमानचालक ।

उडाका दल- सज्ञा पुं० [हिं० उड़ाका + स० दल] पुलिस का वह विशेष दल जो दुर्घटना की सूचना मिलते ही तुरत दुर्घटना स्थल की ओर रवाना हो जाता है ।

उडाकू—वि० [हिं० उड + आकू (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । उडकू । २ जो उड़ सकता हो । जिसमे उडने की योग्यता हो ।

उडान¹—सज्ञा स्त्री० [स० उड्डयन] १. उडने की क्रिया । उ०—पखि न कोई होय सुजानू । जानै भुगति कि जान उडानू ।—जायसी ग्र०, पृ० ३१ ।

यौ०—उड़ानघाई , उड़नफल' = दे० 'उडनघाई', उडनफल । वैं उडान फर तहियैं खाए । जब भा पखि पाँख तन आए ।—जायसी ग्र०, पृ० २६ । उडान पर्दा ।

२. छलाँग । कुदान । जैसे-(क) हिरन ने कुत्तो को देखते ही उडान मारी । (ख) चार उडान मे घोडा २० मील गया ।

क्रि० प्र०—भरना । मारना ।

३ उतनी दूरी जितनी एक दौड मे तै कर सकें । जैसे उ०—काशी से सारनाथ दो उडान है । ४ कल्पना । उक्ति । विचार ।

मुहा०—उडान भरना = कल्पना करना । विचार करना । विचारना । उ०—किंतु वहाँ से यो ही उडान भरना नही होता—चिंतामणि, भा० २, पृ० २ । उड़ान मारना = बहाना करना । बातो मे टालना । जैसे—तुम इतनी उडानें क्यो मारते हो, साफ साफ कह क्यो नही डालते ? उड् उड् होना = (१) दुर दुर होना । (२) चारो ओर से बुरा होना । कलकित होना । बदनाम होना । नक्कू बनना ।

उडान²(पु)—सज्ञा पुं० [देश०] १ कलाई । गट्टा । उ०—गोरे उडान रही खुभिकै चुभिकै चित माँह बडी चटकीली ।—गुमान (शब्द०) । २. मालखभ की एक कसरत जिसमे एक हाथ मे बेत दबाकर उसे हाथ से लपेटकर पकडते हैं और दूसरे हाथ से ऊपर का भाग पकडकर पावँ पृथ्वी से उठा लेते हैं और एक बार आजमाकर बेत पर उसी प्रकार चढ जाते हैं जैसे गडे हुए मालखभ पर ।

उडानघाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० उड़ान + घाई = उँगलियो के बीच की सधि] धोखा । जुल । चालाकी ।

विशेष—यह शब्द जुआरियो का है । जुआरी जुआ खेलते समय उँगुलियो की घाई या गवा मे छोटी कौडियाँ छिपाए रखते हैं जिसमे फेंकते समय यथेष्ट कौडियाँ पड़ें ।

उडानपर्दा—सज्ञा पुं० [हिं० उडान + फा० पर्दह] बैलगाड़ी का पर्दा । वह पर्दा जो बैलगाडी पर डाला जाता है ।

उडानफर—(पु), ऊडानफल(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उडनफल' । उ०—'वैं उडानफर तहियैं खाए । जब भा पखि पाँख तन आए ॥—जायसी ग्र०, पृ० २६ ।

उडाना¹—क्रि० स० [हिं० उडना का सक० रूप] १. किसी उड़नेवाली वस्तु को उड़ने मे प्रवृत्त करना । जैसे,—वह कबूतर उडाता है । २ हवा मे फैलाना । हवा मे इधर उधर छितराना । जैसे,—सुगध उडाना । धूल उडाना । अबीर उडाना । उ०—(क) जेहि मारुत गिरि मेरु उडाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माही ।—मानस, १।१२ । (ख) जानि कै सुजान कही लै दिखाओ लाल प्यारेलाल नैंसुक उघारे पर सुगध उड़ाइए ।—प्रिया० (शब्द०) ३. उड़ने-

उडन—संज्ञा स्त्री० [हिं० उडना] उडने की क्रिया । उडान ।
यौ०—उडनखटोला । उडनछू । उड़नझाईं ।

उडनखटोला—संज्ञा पुं० [हिं० उडन + खटोला] उडनेवाला खटोला । विमान ।

उडनगोला—संज्ञा पुं० [हिं० उडन + गोला] बदूक की गोली जो बिना निशाना ताके चलाई जाय ।

उडनघाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उडना + हिं० घाई = घात] धोखा । जुल चालाकी । चकमा । उ०—मगर जिस शै को साफ साफ अपनी आँखो देखा, उसमे तुम क्या उडनघाइयाँ बताओगे । सैर कु०, पृ० २० ।
विशेष—यह शब्द जुआरियो का है, वि० दे० 'उडानघाई' ।

उडनछू—वि० [हिं० उडना] चपत । गायब ।
क्रि० प्र०—होना ।

उडनझाँईं-संज्ञा स्त्री० [हिं० उडन + झाँईं] चकमा । धुत्ता । बहाली ।
क्रि० प्र०—बताना ।

उडनतश्तरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० उडन + तश्तरी] तश्तरी के तरीके का ज्योतिर्मय यान्त्रिक उपकरण जो कभी कभी आकाश मे यान की तरह उडता हुआ दिखाई देता है ।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि ये वैज्ञानिक उपकरण अन्य ग्रहवासियो के हैं, जिसमे वैठकर वे पृथ्वी की ओर आते हैं और फिर अपने ग्रहो को चले जाते हैं ।

उडनफल—संज्ञा पुं० [हिं० उडन + फल] वह फल जिसके खाने से उडने की शक्ति उत्पन्न हो ।

उडनफाखता-वि० [हिं० उड़न + फा० फाखतह] सीधा सादा । मूर्ख ।

उड़ना¹—क्रि० अ० [सं० उड्डीयन] १ चिडियो का आकाश या हवा मे होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । जैसे—चिडियाँ उडती हैं । उ०—सुआ जो उतर देत रह पूछा । उडिगा पिंजर न बोलै छूछा ।—जायसी (शब्द०) १ आकाश-मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । हवा मे होकर जाना । निराधार हवा मे ऊपर फिरना । जैसे,—गर्द उडना, पत्ती उडना । उ०—अधकूप भा आवइ उडत आव तस छार । ताल तालाब औ पोखरा धूरि भरी ज्योनार ।—जायसी (शब्द०) । ३ हवा मे ऊपर उठना । जैसे—गुड्डी उड रही है । उ०—लहर झकोर उडहिं जल भीजा तौहू रूप रग नहिं छीजा । जायसी (शब्द०) । हवा मे फैलना । जैसे—छीटा उडना, सुगध उडना, खबर उडना । ५ वायु से चीजो का इधर उधर हो जाना । छितराना । फैलना । जैसे,— एक ऐसा झोंका आया कि सब कागज कमरे भर मे उड गए । ६ किसी ऐसी वस्तु का हवा मे इधर उधर हिलना जिसका कोई भाग किसी आधार से लगा हो । फहराना । फरफराना । जैसे—पताका उड रही है । ७ तेज चलना । वेग से चलना । भागना । जैसे— (क) चलो उडो, अब देर मत करो । (ख) घोडा सवार को लेकर उ ा । उ०—कोइ बोहित जग पवन उडाही । कोई चमकि बीच पर जाही ।—जायसी (शब्द०) । ८. झटके के साथ अलग होना । कटना । गिरकर दूर जा पड़ना । जैसे,—(क) एक हाथ मे बकरे का सिर उड गया । (ख) सँभालकर चाकू पकडो नही तो उँगली उड जायगी । उ०—फूटा कोट फूट जनु सीसा । उडहिं बुर्ज जाहि सब पीसा ।—जायसी (शब्द०) ६ पृथक् होना । उचडना । छितराना । जैसे—किताब की जिल्द उड गई । उ०—बहिके गुण सँवरत भइ माला । अबहूँ न बहुरा उडिगा छाला ।—जायसी (शब्द०) १०. जाता रहना । गायब होना । लापता होना । दूर होना । मिटना । नष्ट होना । उ०—(क) घर वद का वद और सारा माल उड गया । (ख) अभी तो वह स्त्री यही बैठी थी, कहाँ उड गई । (ग) देखते देखते दर्द उड गया । (घ) इस पुरानी पुस्तक के अक्षर उड गए हैं, पढ़े नहीं जाते । (ङ) रजिस्टर से लडके का नाम उड गया । ११ खाने पीने की चीज का खर्च होना । आनद के साथ खाया पीया जाना । जैसे,—कल तो खूब मिठाई उडी । १२ किसी योग्य वस्तु का भोगा जाना । जैसे, स्त्री न भोग होना । १३ आमोद प्रमोद की वस्तु का व्यवहार होना । जैसे—(क) वहाँ तो ताश उड रहा है । (ख) यहाँ दिन रात तान उडा करती है । १४. रग आदि का फीका पडना । धीमा पडना । जैसे—(क) इस कपडे का रग उड गया । (ख) इस वरतन की कलई उड गई । १४ किसी पर मार पडना । लगना । जैसे—उसपर स्कूल मे खूब बेंत उडे । १६ बातों में बहलाना । भुलावा देना । चकमा देना । धोखा देना । जैसे—भाइ उडते क्यो हो, साफ साफ बताओ । १७ घोडे का चौफाल कूदना । घोडे का चारो पैर उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बडी शान से रखना । जमना । १८ फर्लांग मारना । फलागना । कूदना । (कुश्ती) ।

उडना²— क्रि० स० फर्लांग मारकर किसी वस्तु को लाँघना । कूदकर पार करना । जैसे—(क) वह घोडा खाईं उडता है । (ख) अच्छे सिखाए हुए घोडे सात सात टट्टियाँ उडते हैं । (ग) वह घोडा बात की बात मे खदक उड गया ।

मुहा०—उड आना—(१) किसी स्थान से वेग से आना । झटपट आना । भाग आना । जैसे—इतने जल्द तुम वहाँ से उड आए । उ०—बहुत व्यास कह ठाकुर काही । उडि अइहै ठाकुर ब्रज माँही ।—रघुराज (शब्द०) । (२) इतनी जल्दी आना कि किसी को खबर न हो । चुपके से भाग आना । उ०—(क) करी खेचरी सिद्ध जनु उडि सी आई ग्वारि । बाहिर जनु मदमत्त विधु दियो अमी सब डारि ।—व्यास (शब्द०) । उड चलना—(१) तेज दौडना । सरपट भागना । (२) शोभित होना । भला लगना । अच्छा लगना । फबना । जैसे,—टोपी देने से वह उड चलता है । (३) मजेदार होना । स्वादिष्ट बनना । जैसे—तरकारी मसाले से उड चलती है । (४) कुमार्ग स्वीकार करना । बदराह बनना । जैसे,—अब तो वह भी उड चला । (५) इतराना । मर्यादा को छोड चलना । बढ़कर चलना । घमड करना । जैसे,— नीच आदमी थोडे ही मे उड़ चलते हैं । उडता होना या बनना = भाग जाना । चलता होना । चल देना । जैसे-वह सारा माल लेकर उडता हुआ । उडती खबर = वह खबर जिसकी सचाई का निश्चय न हो । बाजारू खबर । किंवदती । उड़ती चिड़िया पक-

१४. भोग करना। अनुभव करना। भोगना। जैसे—दु ख उठाना, सुख उठाना। उ०—इतना कष्ट आप ही के लिये उठाया है। १५ शिरोधार्य करना। सादर स्वीकार करना। मानना। उ०—करै उपाय जो विरथा जाई। नृप की आज्ञा लियो उठाई।—सूर (शब्द०)। १६. जगाना। जैसे,—उसे सोने दो, मत उठाओ। १७ किसी वस्तु को हाथ में लेकर कसम खाना। जैसे, गंगा उठाना, तुलसी उठाना।

मुहा०—उठा धरना = बढ जाना। जैसे—उसने तो इस बात मे अपने बाप को भी उठा धरा। उठा रखना = छोडना, बाकी रखना। कसर छोडना। जैसे,—तुमने हमे तंग करने के लिये कोई बात उठा नही रखी। उठा ले जाना = (१) किसी वस्तु को इस प्रकार लेकर चल देना कि किसी को पता न लगे। चोरी से वस्तु को उठा ले जाना। चोरी करना। (२) बलपूर्वक किसी वस्तु को ले जाना।

विशेष—कहीं कहीं जिस वस्तु या विषय की सामग्री के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है वहाँ उस वस्तु या विषय के करने का आरभ सूचित होता है। जैसे—कलम उठाना = लिखने के लिये तैयार होना। डंडा उठाना = मारने के लिये तैयार होना। झोली उठाना = भीख माँगने जाने के लिये तैयार होना, इत्यादि। उ०—(क) अब बिना तुम्हारे कलम उठाए न बनेगा। (ख) जब हमसे नहीं सहा गया, तब हमने छडी उठाई।

उठाव—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] १ उन्नत अंश। उठान। २. मेहराव के पाट के मध्यबिंदु और झुकाव के मध्यबिंदु का अंतर।

उठावना पुं०—क्रि० स० [सं० उत्थापन प्रा० उट्ठावण] दे० 'उठाना'।

उठावनी—संज्ञा स्त्री० हिं० [उठावना] दे० उठौनी।

उठेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] धक्का। उ०—अरिवर सिलाही बहु गिराए सक्ति की जु उठेल सो।—पद्माकर ग्र० पृ० २०।

उठौआ वि० [हिं० उठ + औआ (प्रत्य०)] दे० 'उठौवा'।

उठौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उठ + औनी (प्रत्य०)] १.उठाने की क्रिया। २ उठाने की मजदूरी या पुरस्कार। ३ वह रुपया जो किसी फसल की पैदावार या और किसी वस्तु के लिये पेशगी दिया जाय। अगौहा। बेहरी। दादनी। ४ बनियों या दूकानदारो के साथ उधार का लेन देन। ५ वह दक्षिणा जो पुरोहित या ज्योतिषी को विवाह का मुहूर्त विचारने पर दी जाती है। पुरहत। ६.वह धन या रुपया आदि जो निम्न जातियो में वर की ओर से कन्या के घर विवाह करने से पहले उसे दृढ बनाने के लिये भेजा जाता है। लगन धरौआ। ७ वह रुपया पैसा या अन्न जो संकट पडने पर किसी देवता की पूजा के उद्देश्य से अलग रखा जाय। ८ वैश्यो के यहाँ की एक रीति जो किसी के मर जाने पर होती है। इसमे मरने के दूसरे या तीसरे दिन बिरादरी के लोग इकट्ठे होकर मृतक के परिवार के लोगो को कुछ रुपया देते हैं और पुरुषो को पगडी बाँधते हैं। ९. एक रीति जो किसी के मरने के तीसरे दिन होती है। इसमे मृतक की अस्थि संचित करके रख दी जाती है। १० एक लकडी जिसमे जुलाहे पाई की लुगदी लपेटते हैं। ११. धान के खेत की हलके हल की दूर दूर जोताई। यह दो प्रकार की होती है—बिदहनी और धुरहनी। अधिक पानी होने पर जोतने को बिदहनी कहते हैं और सूखे में जोतने को धुरहनी कहते हैं। गाहना। १२. प्रसूता की सेवा सुश्रूषा।

उठौवा¹—वि० [हिं० उठ + औवा (प्रत्य०)] जिसका कोई स्थान नियत न हो। जो नियत स्थान पर न रहता हो।

यौ०—उठौवा चूल्हा = वह चूल्हा जिसे हम जहाँ चाहे उठा ले जायँ। उठौवा पायखाना = वह पायखाना जिसे भंगी नित्य प्रति या प्राय आकर उठाता है।

उठौवा²—संज्ञा स्त्री० प्रसूता की सेवा सुश्रूषा जो दाई करती है। उठौनी।
क्रि० प्र०—कमाना।

उडंड¹(पु)—वि० [सं० उद्दण्ड] दे० 'उद्दण्ड'। उ०—हे मन चेतनि बुद्धि हू चेतनि चित्त हू चेतनि आहि उडंडा।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६४६।

उडंड²(पु)—वि० [हिं० उडना] उडनेवाला। उडता हुआ। उ०—समह बन रूव बधन्न दुन। न फिरै तिन हथ्थन मीस पिन। अति उच उतग तुरग तुरं। धरि चप्पि गिलद उडद पुरं।—पृ० रा० १२। ३५।

उडगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उडुगण] नक्षत्रसमूह। उडुगन। उ०—श्रवन बिराजत स्वाति सुत करत न बनै बखान।। मनु कमल पत्र अग्रज रहै। ओस उडगन आन।—पृ० रा०, १।५५३।

उडियन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उडुगण, प्रा० उडिगण] उडुगन। नक्षत्रसमूह। तारे। उ०—इक्क कहै आकास तास हो उड़ियन तुट्टो। इक्क कहै सुरलोक तास कोई नर लुट्टो।—पृ० रा०,४। ३।

उडीयण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उडुगण] नक्षत्रसमूह। तारे। उ०—राजति राजकुँअरि राय अंगरम उडीयण बीरज अबहरि।—वेलि, दू० १४।

उड़ंकू—वि० [हिं० उड़ाकू = उड + आकू, अंकू (प्रत्य०)] १ उडनेवाला। २ उडने की योग्यता रखनेवाला। जो उड सके। ३ चलने फिरनेवाला। डोलनेवाला।

उड़ंत—संज्ञा पुं० [हिं० उड़ + अंत (प्रत्य०)] कुश्ती का एक पेंच या ढंग जिसमें खिलाडी एक दूसरे की पकड को बचाने के लिये इधर से उधर हुआ करते हैं।

उड़ंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उडुम्बर] एक पुराना बाजा जिसमे बजाने के लिये तार लगे रहते हैं।

उड(पु)—संज्ञा पु० [सं० उडु] दे० 'उडु'। उ०—तनक जु बाम चरन यौ कर्यौ। उडि कै जाय उडनि में रर्यौ।—नंद० ग्र०, पृ० २४१।

उडचक्का—संज्ञा पुं० [हिं० उड़ना] चोर। उचक्का।

उड़तक—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] दे० 'उठतक'।

उड़ती बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० उडना + बैठक] दोनो पावो को समेटकर उठते बैठते हुए आगे बढना या पीछे हटना। बैठक का एक भेद।

उडदा—संज्ञा पुं० [हिं० उरद] दे० 'उरद'।

उड़ध(पु)—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊँचा। उ०—प्रकासे उडध न अचवै आतम तत्त बिचारी।—रामानंद, पृ० १२।

अक या चिह्न का स्पष्ट होना । उभड़ना । जैसे—इस पृष्ठ के अक्षर अच्छी तरह उठे नहीं हैं । ११ पाँस बनना । खमीर आना । सड़कर उफनाना । जैसे,—(क) ताड़ी धूप मे रखने से उठने लगती है । (ख) ईख का रस जब धूप खाकर उठता है तब छानकर सिरका बनाने के लिये रख लिया जाता है । १२ किसी दुकान या सभा समाज का बद होना । किसी दुकान या कार्यालय के कार्य का समय पूरा होना । जैसे,—अगर लेना है तो जल्दी जाओ, नही तो दुकानें उठ जायगी । उ०—दास तुलसी परत धरनि धर धकनि धुक हाटसी उठत जबुकनि लूट्यो । तुलसी (शब्द०) । १३ किसी दुकान या कारखाने का काम बद होना । किसी कार्यालय का चलना बद हो जाना । उ०—यहाँ बहुत से चीनी के कारखाने थे, सब उठ गए । १४ हटना । अलग होना । दूर होना । स्थान त्याग करना । प्रस्थान करना । जैसे,—(क) यहाँ से उठो । (ख) बारात उठ चुकी । १५ किसी प्रथा का दूर होना । किसी रीति का बद होना । जैसे—सती होने की रीति अब हिंदुस्तान से उठ गई । १६ खर्च होना । काम मे लगना । जैसे,—(क) आज सवेरे से इस समय तक १० रुपए उठ चुके । (ख) तुम्हारे यहाँ कितने का घी रोज उठता होगा ।

सयो० क्रि०—जाना ।

७ बिकना । भाड़े पर जाना । लगान पर जाना । जैसे,—(क) —ऐसा सौदा दुकान पर क्यों रखते हो जो उठता नही । (ख) उनका घर कितने महीने पर उठा है ? १८ याद आना । ध्यान पर चढ़ना । स्मरण आना । जैसे,—वह श्लोक मुझे उठता नहीं है । १९ किसी वस्तु का क्रमश जुड जुडकर पूरी ऊँचाई पर पहुँचना । मकान या दीवार आदि का तैयार होना । जैसे (क) तुम्हारा घर अभी उठा या नही । (ख) नदी के किनारे बाँध उठ जाय तो अच्छा है । उ०—उठा बाँध तस सब जग बाँधा ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ मे उठना का प्रयोग उन्ही वस्तुओ के सबध मे होता है जो बराबर ईंट मिट्टी आदि सामग्रियो को नीचे ऊपर रखते हुए कुछ ऊँचाई तक पहुँचाकर तैयार की जाती हैं । जैसे—मकान, दीवार, बाँध, भीटा इत्यादि ।

२ गाय, भैंस या घोडी आदि का मस्ताना या अलग पर आना ।

विशेष—'उठना' उन कई क्रियाओ मे से है जो और क्रियाओ के पीछे सयोज्य क्रियाओ की तरह लगती हैं । यह अकर्मक क्रिया धातु के पीछे प्राय लगता है । केवल कहना, बोलना आदि दो एक सकर्मक क्रियाएँ हैं जिनकी धातु के साथ भी यह देखा जाता है । जिस क्रिया के पीछे इसका सयोग होता है, उसमे आकस्मिक का भाव आ जाता है । जैसे, रो उठना, चिल्ला उठना, बोल उठना ।

उठल्लू—वि० [स० उत्+हिं० ठल्लू या हिं० उठ+लू (प्रत्य०)] १. एक स्थान पर न रहनेवाला । आसनदगधी । आसनकोपी । २ आवारा । वेठिकाने का ।

मुहा० —उठल्लू का चूल्हा या उठल्लू चूल्हा =बेकाम इधर उधर फिरनेवाला । निकम्मा । आवारागर्द । उ०—दो तीन उम्मेदवार और दस बीस उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ८१४ ।

उठवाना—क्रि० स० [हिं० उठना का प्रे० रूप] उठाने के लिये किसी को तत्पर करना ।

उठवैया—वि० [हिं० प्रे० उठवा+ऐया (प्रत्य०)] १ उठवानेवाला । २ उठानेवाला । ३ उठनेवाला ।

उठाँगन—सज्ञा पुं० [हिं० उठ+आँगन] बड़ा आँगन । लबा चौड़ा सहन ।

उठाईगीर, उठाईगीरा—वि० [हिं० उठाना+फा० गीर] १ आँख बचाकर छोटी मोटी चीजो को चुरा लेनेवाला । उचक्का । जेबकतरा । चाई । २ बदमाश । लुच्चा । उ०—ऐसे उठाईगीरो के मुँह क्यो लगते हो । मान०, भा० १, पृ० ३१० ।

उठान—सज्ञा स्त्री० [स० उत्थान, उट्ठान प्रा० उट्ठाण] १ उठना । उठने की क्रिया । २ ऊँचाई । ३ रोह । बाढ़ । बढ़ने का ढंग । वृद्धिक्रम । जैसे—इस लडके की उठान अच्छी है । ३ गति की प्रारभिक अवस्था । आरभ । जैसे, इस ग्रथ का उठान तो अच्छा है, इसी तरह पूरा उतर जाय तो कहे । उ०—सरस सुमिलि चित तुरग की करि करि अमित उठान । गोइ निबाहे जीतिए प्रेम खेल चौगान ।—बिहारी (शब्द०) । ४ खर्च । व्यय । खपत । जैसे—गल्ले की उठान यहाँ बहुत नही होती है ।

उठाना—क्रि० स० [हिं० उठना का सक० रूप] १ नीची स्थिति से ऊँची स्थिति मे करना । जैसे, लेटे हुए प्राणी को बैठाना या बैठे हुए प्राणी को खडा करना । किसी वस्तु को ऐसी स्थिति मे लाना जिसमे उसका विस्तार पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे । ऊँचा या खडा करना । जैसे—(क) दूहने के लिये—गाय को उठाओ । (ख) कुरसी गिर पड़ी है, उसे उठा दो । २ नीचे से ऊपर ले जाना । निम्न आधार से उच्च आधार पर पहुँचना । उपर ले जाना । जैसे,—(क) कलम गिर पडी है, जरा उठा दो । (ख) वह पत्थर को उठाकर ऊपर ले गया । ३ धारण करना । कुछ काल तक ऊपर लिए रहना । जैसे,—(क) उतना ही लादो जितना उठा सको । (ख) ये कडियाँ पत्थर का बोझ नही उठा सकती । ४ स्थान त्याग कराना । हटाना । दूर करना । जैसे,—(क) इसको यहाँ से उठा दो । (ख) यहाँ से अपना डेरा डडा उठाओ । ५ जगाना । ६ निकालना । उत्पन्न करना । सहसा आरभ करना । एकबारगी शुरू करना । अचानक उभाडना । छेडना जैसे—बात उठाना, झगड़ा उठाना । उ०—जब से हमने यह काम उठाया है, तभी से विघ्न हो रहे हैं । ७ तैयार करना । उद्यत करना । सन्नद्ध करना । जैसे, इन्हे इस काम के लिये उठाओ तो ठीक हो । ८ मकान या दीवार आदि तैयार करना । जैसे, घर उठाना, दीवार उठाना । १०. नित्य नियमित समय के अनुसार किसी दूकान या कारखाने को बद करना । ११ किसी प्रथा का बद करना । जैसे—अग्रेजो ने यहाँ से सती की रीति उठा दी । १२ खर्च करना । लगाना । व्यय करना । जैसे,—रोज इतना रुपया उठाओगे तो कैसे काम चलेगा ? १३ किसी वस्तु को भाड़े या किराए पर देना ।

उटडपा—संज्ञा पुं० [हिं० उठना या ऊँट] दे० 'उटडा' ।

उटडा—संज्ञा पुं० [देशज] एक टेढ़ी लकडी जो गाडी के अगले भाग में, जहाँ हर से मिलते हैं, जूए के नीचे लगी रहती है । इसी के बल पर गाडी का अगला भाग जमीन पर टिकाया जाता है । उटहूपा । उटहुडा ।

उटपटाँग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ऊटपटाँग' । उ०—दूसरी कसर निकालने के लिये व्यर्थ उटपटाँग बातें बक चलते हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५३ ।

उटहुडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उटडा' ।

उटारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उठना] वह लकडी जिस पर रखकर चारा काटा जाता है । निठा । निहटा ।

उटेव—संज्ञा पुं० [हिं० उ+टेव] छाजन की धरन के बीचोबीच ठोंकी हुई डेढ़ हाथ की दो खड़ी लकड़ियाँ जिनपर एक बेडी लकडी या गदारी बैठाकर उसके ऊपर धरन रखते हैं ।

उट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० ओटना] दे० 'ओटनी' ।

उट्ठना(पु)—क्रि० अ० [स० उत्+स्था, प्रा० उट्ठण] दे० 'उठना' उ०—सोई घाव तन पर लगै उट्ठ सँभालै साज ।—दरिया० बानी, पृ० १२ ।

उट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० उठना] किसी प्रतियोगिता मे पराजय या उससे हट जाने की स्थिति, भाव या क्रिया ।

क्रि० प्र०—उट्ठी बोलना=पूरी तरह से हार स्वीकार कर लेना । उ०—इस अर्थयुग मे सब सवार जिसका है वही उट्ठी बोल गया ।—इद्र०, पृ० ६६ ।

विशेष—बच्चे अपने खेल में इस शब्द का प्रयोग करते हैं ।

उठंगल—वि० [देश०] १ बेढगा । भोडा । २. बेशऊर । अशिष्ट ।

उठँगन—संज्ञा पुं० [स० *उत्थिताङ्ग > * उठअग *उठँग से बना] १ आड । टेक । २ उठँगने की वस्तु । बैठने मे पीठ को सहारा देनेवाली वस्तु ।

उठंगना—क्रि० अ० [स० उत्थित+अङ्ग] १ किसी ऊँची वस्तु का कुछ सहारा लेना । टेक लगाना । जैसे–वह दीवार से उठँगकर बैठ गया । २ लेटना । पड रहना । कमर सीधी करना । जैसे– बहुत देर से जग रहे हो, जरा उठँग तो लो ।

उठँगाना—क्रि० स० [हिं० उठँगना का सक० रूप] १ किसी वस्तु को पृथ्वी या और किसी आधार पर खडा रखने के लिये उसे तिरछा करके उसके किसी भाग को किसी दूसरी वस्तु से लगाना । भिडाना । २. (किवाड) भिडाना या बद करना । ३ शयन करना । लिटा देना ।

उठकना—क्रि० अ० [हिं० उठँगना] दे० 'उठँगना' ।

उठतक—संज्ञा पुं० [हिं० उठना] १ वह चीज जो पीठ लगे हुए घोड़े की पीठ को बचाने के लिये जीन या काठी के नीचे रखी जाय । उडतक । २ उचकन । आड । टेक ।

उठना—क्रि० अ० [स० उत्थान, पा० उट्ठान, प्रा० उट्ठाण, उटठण] १ नीची स्थिति से और ऊँची स्थिति मे होना । किसी वस्तु का ऐसी स्थिति मे होना जिसमे उसका विस्तार पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे । जैसे, लेटे हुए प्राणी का खडा होना । ऊँचा होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पडना ।

मुहा०—उठ खडा होना=चलने को तैयार होना । जैसे, अभी आए एक घटा भी नहीं हुआ और उठ खडे हुए । उठ जाना=दुनिया से उठ जाना । मर जाना । जैसे,—इस ससार मे कैसे कैसे लोग उठ गए । उ०—जो उठि गयो बहुरि नहिं आयो मरि मरि कहाँ समाही ।—कबीर (शब्द०) । उठती कोपल=नवयुवक । गभरू । उठती जवानी=युवावस्था का आरभ । उठती परती=आजमगढ (उत्तर प्रदेश) मे प्रचलित जोत का एक भेद जिसके अनुसार किसानों को केवल उन खेतो का लगान देना पडता है जिनको वे उस वर्ष जोतते हैं और परती खेतो का नहीं देना पडता । उठते बैठते=प्रत्येक अवस्था मे । हर घडी । प्रतिक्षण । जैसे—किसी को उठते बैठते गालियाँ देना ठीक नहीं । उठने जूती और बैठने लात=परस्पर मेल न होना । आराम से न बनना । उठना बैठना=आना जाना । सग साथ । मेल जोल । जैसे—इनका उठना बैठना बडे लोगो मे रहा है । उठ बैठ=दे० 'उठाबैठी' । उठाबैठी=(१) हैरानी । दौड धूप । २ बेकली । बेचैनी । ३ उठने बैठन की कसरत । बैठक ।

२ ऊँचा होना । और ऊँचाई तक बढ जाना । जैसे—लहर उठना । उ०—लहरैं उठी समुद उलथाना । भूला पथ सरग नियराना —जायसी (शब्द०) । ३ ऊपर जाना । ऊपर चढना । ऊपर होना । जैसे–बादल उठना, धूँआँ उठना, गर्द उठना । टिड्डी उठना । उ०—(क) उठी रेनु रवि गयऊ छपाई । मरुत थकित वसुधा अकुलाई ।—मानस, ६।७८ । (ख) खनै उठइ खन बूडइ, अस हिय कमल सँकेत । हीरामनहि बुलावहि सखी कहत जिव लेत ।—जायसी (शब्द०) । ४ कूदना । उछलना । उ०—उठहि तुरग लेहि नहि बागा । जानौ उलटि गगन कहँ लागा —जायसी (शब्द०) । ५ बिस्तर छोडना । जागना । जैसे,—देखो कितना दिन चढ आया, उठो । उ०—प्रातकाल उठिकै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहि माथा ।—तुलसी (शब्द०) ।

सयो० क्रि०—पडना ।—बैठना ।

६. निकलना । उदय होना । उ०—बिहँसि जगावति सखी सयानी । सूर उठा, उठु पदुमिनि रानी ।—जायसी (शब्द०) । ७. निकलना । उत्पन्न होना । उद्भूत होना, जैसे—विचार उठना, राग उठना । जैसे,—मेरे मन मे तरह तरह के विचार उठ रहे हैं । उ०—(क) छुद्रघट कटि कचन तागा । चलतै उठहि छतीसो रागा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जो धनहीन मनोरथ ज्यो उठि बीचहि बीच बिलाइ गयो है ।—(शब्द०) । ८. सहसा आरभ होना । एकबारगी शुरू होना । अचानक उमडना । जैसे—बात उठना, दर्द उठना, आँधी उठना, हवा उठना । उ०—आगे समुद आय सो नाहीं । उठी बाड आँधी उपराही ।—जायसी (शब्द०) । ९ तैयार होना । सन्नद्ध होना । उद्यत होना । जैसे,—अब आप उठे हैं, वह काम चटपट हो जाएगा ।

मुहा०—मारने उठना=मारने के लिये उद्यत होना । १०. किसी

उ०—ग्रौह छुंए उझकै विझुकै न घरै पलिका पग ज्यो रतिभीति है।—सेवक (शब्द०)।

२ ऊपर उठना। उभडना। उमडना। उ०—नेह उझके से नैन देखिव को विरुझे से विझुकी सी भौहे उझके से डर जात हैं।—केशव (शब्द०)। ३ ताकने के लिये ऊँचा होना। झाँकने के लिये सिर उठाना। झाँकने के लिये सिर बाहर निकालना। उ०—(क) जहँ तहँ उझकि झरोखा भाँकति जनक नगर की नार। चितवनि कृपा राम अवलोकत दीन्हो सुख जो अपार।—सूर (शब्द०)। (ख) सूने भवन अकेली में ही नीके उझकि निहारयो।—सूर०, १०।२६६३। (ग) मोहिं भरोसो रीझिहै उझकि झाँकि इक बार।—विहारी र०, दो० ६८२। (घ) फिरि फिरि उझकति, फिर दुरति, दुरि, दुरि उझकति जाइ।—विहारी र०, दो० ५२७। (ङ) अचरज करै भूलि मन रहै। फेरि उझककर देखन चहै।—लल्लू० (शब्द०)। ४ चंचल होना। सजग होना। चौंकना। उ०—(क) देखि देखि मुगलन की हरमैं भवन त्यागें उझकि उझकि उठै वहत वयारी के। भूषण (शब्द०)। (ख) हेरत ही जाके छके पलहू उझकि सकै न। मन गहनै घरि मीत पै छवि मद पीवत नैन।—रसनिधि (शब्द०)।

उझकुन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उचकन'।

उझपना—क्रि० अ० [हिं० झपना] खुलना। पलकों का वद न होना।

उझर(पु)—वि० [देशी० उज्झल = प्रवल] = वनिष्ठ। उ०—है हन्यो जाम उद्दव उझर मिलि विहु चपिय वड भर।—पृ० रा० ६।२०३।

उझरना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० उत् + सरण] ऊपर की ओर उठाना। ऊपर खिसकाना। उ०—कर उठाइ घूँघटु करत उझरत पट गुझरौट, सुख मोटै लूटी ललन लखि ललना की लौट।—विहारी र०, दो ५२८।

उझरना(पु)[2]—क्रि० अ० [हिं० उजडना] उजडना। समाप्त होना। उ०—कहु कबीर नट नाटिक थाके मदना कौन बजावै। गये पपनियाँ उझरी बाजी, को काहू के आवै।—कबीर ग्रं थ० पृ० ११७।

उझलना[1]—क्रि० स० [सं० उज्झरण] ढालना। किसी द्रव पदार्थ को ऊपर से गिराना।

उझलना(पु)[2]—क्रि० अ० उमडना। बढ़ना। उ०—वह सेन दरेरन देति चली। मनु सावन की सरिता उझली। सूदन (शब्द०)।

उझाँकना—क्रि० स० [हिं० उ + झाँकना] झाँकना। उचककर देखना। उ०—होऊ खडो द्वार कोउ ताकै। दौरी गलियन फिरत उझाँकै।—लल्लू० (शब्द०)।

उझाँटना(पु)—क्रि० स० [सं० उज्झ] छोडना। गिराना। उ०—गऊ पय प्रोटिय धार उझाँटि। धरे भरि भाजन मिश्रिय वाँटि।—पृ० रा० ६३।१०६।

उझालना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उझलना'।

उझिल(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रोज्ज्वल्य] कांति। दीप्ति। उ०—रूप की उझिलं आछे आनन पै नई नई तैसी तरुनई तेहु ओपी अरुनई है।—घनानद, पृ० ३१।

उझिलना[1]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उझलना'।

उझिला—संज्ञा स्त्री० [हिं० उझिलना] १ उबटन के लिये उबाली हुई सरसों। उबटन का सुगंधित सामान जिसमे तिल, सरसों, नागरमोथा आदि पडता है। २ खेत के ऊँचे स्थानों से खोदी हुई मिट्टी जो उसी खेत के गड्ढों या नीचे स्थानों मे खेत चौरस करने के लिये भरी जाती है। ३ अदाव या टपके हुए महुए को पिसे हुए पोस्ते के दाने के साथ उबालकर बनाया हुआ एक प्रकार का भोजन।

उझीना—संज्ञा पुं० [देश०] जलाने के लिये उपले जोडने की क्रिया। अहरा।

क्रि० प्र०—लगाना।

उटंग[1], उटुंग[1]—वि० [सं० उत्तुङ्ग] वह कपडा जो पहनने मे ऊँचा या छोटा हो। वह कपडा जो नीचे वहाँ तक न पहुँचता हो जहाँ तक पहुँचना चाहिए। ओछा कपडा।

उटंगन—संज्ञा पुं० [सं० उट = घास + अग्न] एक घास।

विशेष—यह ठंडी जगहों मे नदी के कछारों मे उत्पन्न होती है। और तिनपतिया के आकार की होती है, पर इसमे चार पत्तियाँ होती हैं। इसका साग खाया जाता है। यह शीतल, मलरोधक, त्रिदोषघ्न, हलकी, कसैली और स्वादिष्ट होती है और ज्वर, श्वास तथा प्रमेह आदि को दूर करती है।

पर्या०—सुनिषक। शिरिआरि। चौपतिया। गुठुआ। [?]सना।

उटंगा—वि० [हिं०] दे० 'उटंग'।

उट—संज्ञा पुं० [सं०] पत्ती। घास। तृण। [को०]।

उटकना[1](पु)—क्रि० स० [देसज] अनुमान करना। अटकल लगाना। अदाजना। उ०—भूखन वसन विलोकत सिय के। वरने तेहि अवसर वचन विवेक वीर रस पिय के। धीर वीर सुनि समुझि परसपर वल उपाय उटकत निज हिय के—तुलसी (शब्द०)।

उटकना[2][1]—क्रि० अ० [हिं० अटकना] गाय भैंस आदि का दूध देते देते बीच मे रुक जाना।

उटक नाटक—वि० [हिं० उठना] ऊँचानीचा। ऊबड खावड अडवड।

उटक्कर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'टक्कर'। उ०—सीमन को टक्कर लेत उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैं।—पद्मा ग्रं०, पृ०, २६। [?] २ मनमाना। इधर उधर का।

यौ०—उटक्कर फातिहा = दे० 'उटक्करलैस'।

उटक्करलैस—वि० [हिं० अटकल + लसना] अटकलपच्चू। मनमाना। अडवड। विना समझा बूझा। जैसे,—तुम्हारी सब बातें उटक्करलैस हुआ करती हैं। उ०—निदान विना किसी ठौर ठिकाने उटक्करलैस इधर से उधर और उधर से इधर। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

उटज—संज्ञा पुं० [सं०] झोंपड़ी। कुटी।

हार काजु नहिं आवैं जैसे उज्ज्वल ओरे।—नंद० ग्र०, पृ० २०५।

उज्जागरी(पु)—वि० स्त्री० [हिं० उजागर] उजागर करनेवाली। प्रकाशित करनेवाली। उ०—मध्य ब्रजनागरी, रूप रस आगरी, घोप उज्जागरी, स्याम प्यारी।—सूर० १०।१७५१।

उज्जारना(पु)- क्रि० स० [स० उज्ज्वालन, प्रा० उज्जालण] जलाना। ध्वस्त करना। उजाड़ना। उ०—जागीरैं भोपति किय जारिय, तनुज मारि वरती उज्जारिय।—प० रा०, पृ० १२३।

उज्जासन—संज्ञा पुं० [सं०] मारण। वध।

उज्जित—वि० [स०] विजित। जीता हुआ। पराजित [को०]।

उज्जिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय। जीत [को०]।

उज्जिहान—संज्ञा पुं० [स०] वाल्मीकीय रामायण में वर्णित एक देश का नाम।

उज्जीवन—संज्ञा पुं० [स०] फिर से या दुबारा प्राप्त होनेवाला जीवन। नष्ट होने पर फिर से अस्तित्व में आने का भाव। पुनर्जीवन [को०]।

उज्जीवित—वि० [सं०] पुन: जीवनप्राप्त। फिर से अस्तित्व में आया हुआ [को०]।

उज्जीवी—वि० [स० उज्जीविन्]फिर से जीवनप्राप्त। जिसे फिर से जीवन प्राप्त हो सकता हो। [को०]।

उज्जू—संज्ञा पुं० [अ० 'वज़ू' हिं० उजू] दे० 'वज़ू' उ०—क्या उज्जू पाक किया मुँह धोया क्या मसीति सिर लाया।—कबीर ग्र० पृ० ६२३।

उज्जृंभ—[1] संज्ञा पुं० [स उज्जृम्भ] १ उबासी। जँभाई लेना। २ फैलना। प्रसरित होना। ३. खिलना। विकसित होना। ४ टूटना। अलग होना [को०]।

उज्जृंभ[2]—वि० १. खिला हुआ। स्फुटित। २ खुला हुआ। [को०]।

उज्जृंभण—संज्ञा पुं० [स० उज्जृम्भण] दे० 'उज्जृंभ'।

उज्जैन—संज्ञा पुं०[स० उज्जयिनी]मालवा देश की प्राचीन राजधानी।

उज्जैनि—संज्ञा स्त्री० [स० उज्जयिनी] दे० 'उज्जयिनी'। उ०—ता समै उज्जैनि के वोहोत वैष्णव नाम पाइवे को आए हते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१४।

उज्ज्वल[1]—वि०[सं०]१ दीप्तिमान्। प्रकाशमान्। २ शुभ्र। विशद। स्वच्छ। निर्मल। उ०—नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८२। ३ वेदाग। ४ श्वेत। सफेद। ५ शानदार। भव्य। वैभवपूर्ण। उ०—उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातो की।—लहर, पृ० ५। ६ पवित्र। शुचि। उ०—तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।—लहर पृ० ७। ८ सुदर। सौंदर्यपूरित (को०)। ६ खिला हुआ। विकसित (को०)।

उज्ज्वल[2]—संज्ञा पुं० १. प्रीति। अनुराग। प्यार। २. स्वर्ण [को०]।

उज्ज्वलता—संज्ञा स्त्री० [स०] १. काति। दीप्ति। चमक। आभा। आब। २. स्वच्छता। निर्मलता। उ०—क्या होगी इतनी उज्ज्वल इतना वदन अभिनदन।—प्रपरा, पृ०७४। ३. सफेदी।

उज्ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। दीप्ति। २. जलना। वलना। ३ स्वच्छ करने का कार्य। ४ अग्नि। (को०)। ५ स्वर्ण। सोना (को०)।

उज्ज्वला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वारह अक्षरों का एक वृत्त जिसमें दो नगण, एक भगण और एक रगण होते हैं। उ०—न नम रघुवरा कहु भूसुरा। लसत तरणि तेज मनौं फुरा॥ धरनि तल जदै मित ना थला। गगन भरति कीरति उज्ज्वला। (शब्द०)। २ काति। प्रकाश। ज्योति। चमक (को०)। ३. स्वच्छता। सफाई (को०)।

उज्ज्वलित—वि० [स०] १ प्रकाशित किया हुआ। प्रदीप्त २ स्वच्छ किया हुआ। साफ किया हुआ। झलकाया हुआ।

उज्झ—वि० [सं०] त्यक्त। छोड़ा हुआ [को०]।

उज्झक—संज्ञा पुं० [स०] १ बादल। मेघ। भक्त [को०]।

उज्झटित—वि० [सं०] घबड़ाया हुआ। उलझन में पड़ा हुआ। परेशान [को०]।

उज्झड—वि०[स० उद्](=बहुत) + जड(=मूर्ख)]भक्की। झक्कड़। मनमौजी। आगा पीछा न सोचनेवाला। उद्धत। मूर्ख।

उज्झन—संज्ञा पुं० [स०] छोड़ना। हटाना। परित्याग (को०)।

उज्झित—वि० [सं०] छोड़ा या त्याग हुआ। परित्यक्त [को०]।

उज्यारा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उजियारा] दे० 'उजाला'। उ०—मृदु मुसकानि मुखचंद चारु चाँदनी सौं राख्यौ कै उज्यारो अभिराम द्वार भौन को।—मति० ग्र०, पृ० ३४५।

उज्यारी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियारी] दे० 'उजाली'। उ०—भूषन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी।—भूषण ग्रं०, पृ० २८।

उज्यास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उजास] दे० 'उजास'।

उज्र—संज्ञा पुं० [अ० उज्र] १ बाधा। विरोध। आपत्ति। २ वक्तव्य। जैसे—(क) हमको इस काम को करने में कोई उज्र नहीं है। (ख) जिसे जो उज्र हो, वह अभी पेश करे। ३. बहाना (को०)। २ कारण। हेतु (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—पेश करना।—लाना।

५. विवशता। लाचारी(को०)। ६. बहाना। हेतु। कारण (को०)।

उज्रख्वाही—संज्ञा स्त्री० [अ० उज्र + फा० ख्वाह + ई० (प्रत्य०)] क्षमाप्रार्थना। क्षमायाचना [को०]।

उज्रत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'उजरत'।

उज्रदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० उज्र + फा० दार] किसी ऐसे मामले में उज्र पेश करना जिसके विषय में अदालत से किसी ने कोई आज्ञा प्राप्त की हो या प्राप्त करने की दरखास्त दी हो। जैसे, दाखिल खारिज, बँटवारा, नीलाम आदि के विषय में।

उझटना(पु)—क्रि० स० [सं० उज्झ] छोड़ना। उछालना। झटकना। उ०—भयो जग में जग आवैं न वटैं, उभैं सीस ईस दुग्यारैं उझटैं।—पृ० रा०, ६१।२२०३।

उझकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० उचकना] १ उचकना। उछलना। कूदना। उ०—वरज्यो नाहिं मानत उझकत फिरत हो कान्ह घर घर।—सूर (शब्द०)।

यौ०—उझकना बिझुकना = उछलना कूदना। उछलना पड़कना।

उजियाना†—क्रि० स० [सं० उज्जीवन, प्रा० उज्जीवरण, उज्जीयरण] उत्पन्न करना। पैदा करना। प्रकट करना।

उजियार¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। उ०—(क) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार, तुलसी भीतर बाहिरेहुँ जो चाहसि उजियार।—मानस १।२१। क्रि० प्र०—करना। उ०—जोति अयन को कियो उजियार, जैसे कोऊ गेह सवार।—सूर (शब्द०)। होना।

उजियार²Ⓟ†—वि० १ प्रकाशमान्। दीप्तिमान्। कांतिमान्। उज्ज्वल। उ०—(क) जस अचल महँ छिपै न दीया, तस उजियार दिखावै हीया।—जायसी (शब्द०)। २ चतुर। बुद्धिमान। उ०—आगे आउ पखि उजियारा। कहू सुदीप पतग किय मारा।—जायसी (शब्द०)।

उजियारनाⓅ†—क्रि० सं० [हिं० उजियारा] १ प्रकाशित करना। २. बालना। जलाना। उ०—सरस सुगधन सो आँगन सिचावै करपूरमय बातिन सों दीप उजियारनी।—व्यग्यार्थ (शब्द०)।

उजियारा¹Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] [स्त्री० उजियारी] १ उजाला। प्रकाश। चाँदना। उ०—देखि घराहर कर उजियारा। छिपि गए चाँद सुरुज औ तारा।—जायसी (शब्द०)। २ प्रतापी और भाग्यशाली पुरुष। वश को उज्ज्वल या गौरवान्वित करनेवाला पुरुष। उ०—(क) तू राजा दुहु कुल उजियारा अस कै चरच्यो मरम तुम्हारा। (ख) तेहि कुल रतन सेन उजियारा धनि जननी। जनमा अस बारा।—जायसी। (शब्द०)।

उजियारा²Ⓟ†—वि० १ प्रकाशमान्। उ०—सैयद असरफ पीर पियारा, जेहि मोहि पथ दीन्ह उजियारा। जायसी ग्र०, पृ० ७। २ कातिमान्। द्युतिमान्। उज्ज्वल। उ०—ससि चौदह जो दई सँवारा। ताहू चाहि रूप उजियारा। जायसी (शब्द०)।

उजियारीⓅ†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियारा] १ चाँदनी। चद्रिका। उ०—आय सरद ऋतु अधिक पियारी। नव कुआर कातिक उजियारी।—जायसी (शब्द०)। प्रकाश। रोशनी। उ०—और नखत चहुँ दिसि उजियारी। ठाँवहिं ठाँव दीप अस बारी।—जायसी (शब्द०)। ३ वश को उज्ज्वल करनेवाली स्त्री। सती साध्वी स्त्री। उ०—(क) माई मैं दूनो कुल उजियारी। बारह खसम नैहरे खायो सोरह खायो ससुरारी।—कबीर (शब्द०)। (ख) सो पदमावती ताकरि बारी, औ सब दीप माहि उजियारी।—जायसी (शब्द०)।

उजियारी²—वि० प्रकाशयुक्त। उजेली। उ०—कबहुक रतन महल चित्रसारी सरद निसा उजियारी। बैठे जनक सुता सँग बिलसत मधुर केलि मनुहारी।—सूर (शब्द०)।

उजियाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उजाला'। उ०—द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला।—साकेत, पृ० २४५।

उजिहिराⓅ—वि० [सं० उज्ज्वल] ज्योतिर्मय। प्रकाशयुक्त। चमकता हुआ। उ०—हीरा मोती लाल जवहिरा। पान चढ़े पुनि देहु उजिहिरा।—कबीर सा०, पृ० ५५७।

उजीता¹—वि० [सं० उत्+ज्योति+प्रा० *उज्जइति > उजीता अथवा उद्युति, प्रा० उज्जोम] प्रकाशमान। रोशन।

उजीता²—संज्ञा पुं० चाँदनी। प्रकाश। उजाला।

उजीरⓅ†—संज्ञा पुं० [अ० वजीर] दे० 'वजीर'। उ०—(क) पाप उजीर कह्यो सोइ मान्यो, धर्म सु धन लुटयो। सूर०, १।६४। (ख) खिज्यो देखि पतिसाह को कियो उजीर सुबोध।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

उजुर—संज्ञा पुं० [अ० उज्र] दे० 'उज्र'। उ०—चाकर ह्वै उजुर कियो न जाय, नेक पै कछू दिन उबरते तौ घने काज करते।—भूषण ग्र०, पृ० ४०।

उजू—संज्ञा पुं० [अ० वजू] दे० 'वजू'।

उजूबा¹—संज्ञा पुं० [अ० उजूबा] बैंगनी रग का एक पत्थर जिसमें चमकदार छींटे पडे रहते हैं।

उजूबा²†—वि० [अ० उजूबह] दे० 'अजूबा'।

उजेणीⓅ,— उजेनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० उज्जयिनी, प्रा० उज्जयिणी उज्जेणी] दे० 'उज्जयिनी'। उ०—(क) हाडा बूदी का धरणी नग्र उजेणी आई दीयो मेल्हाण।—वीसल० रास०, पृ० १८। (ख) गयेऊँ उजेनी सुनु उरगारी।—मानस, ७। १०५।

उजेरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। उ०—मारग हुत जो अँधेरा सूझा, भा उजेर सब जाना बूझा।—जायसी (शब्द०)।

उजेरना†—क्रि० स० [हिं० उजेर से नाम०] दे० 'उजालना'। उ०—पुनि कहि उठी जसोदा मैया उठहु कान्ह रवि किरनि उजेरत।—सूर०, १०।४०५।

उजेरा¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश।

उजेरा²—वि० प्रकाशमान्।

उजेरा³—संज्ञा पुं० [अव–उ=नहीं+जेर=रहट] बैल जो हल इत्यादि मे जोता न गया हो।

उजेला¹—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। चाँदनी। रोशनी।

उजेला²—वि० [स्त्री० उजेली] प्रकाशमान्।

यौ०—उजेली रात=चाँदनी रात। उजेला पाख=शुक्ल पक्ष।

उजोरा—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। रोशनी। चाँदनी।

उज्जनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उदय] उदित होना प्रकट। होना। उपस्थित होना। उ०—लाज सरस चहुआन जोग उज्जै जुध मुत्तम।—पृ० रा० २६। ५०।

उज्जयत—संज्ञा पुं० [सं० उज्जयन्त] रैवतक पर्वत जो विंध्य श्रेणी का एक भाग है [को०]।

उज्जयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालवा देश की प्राचीन राजधानी।

विशेष—यह सिप्रा नदी के तट पर है। विक्रमादित्य यहाँ के बडे प्रतापी राजा हुए हैं। यहाँ महाकाल नाम का शिव का एक अत्यत प्राचीन मदिर है।

उज्जर—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'।

उज्जल¹—क्रि० वि० [सं० उद्=ऊपर+जल=पानी] बहाव से उलटी ओर। नदी के चढ़ाव की ओर। भाटा का उलटा। उजान। जैसे, यह नाव उज्जल जा रही है।

उज्जल²Ⓟ—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—

हुआ तो क्या हुआ जो रे वडा मति नाहिं। जैसे फूल उजाड़ का मिथ्या ही झरि जाहिं।—जायसी (शब्द०)।

उजाड़[2]—वि० १ ध्वस्त। उच्छिन्न। गिरा पडा।
क्रि० प्र०—करना।—होना। उ०—अवहूँ दृष्टि मया करु नाथ निठुर घर आव, मदिर उजाड होत है नव कै आई बसाव।—जायसी (शब्द०)।
२ जो आबाद न हो। निर्जन। जैसे—उस उजाड गाँव मे क्या था जो मिलता।

उजाड़ना—क्रि० स० [हिं० उजडना] १ ध्वस्त करना। तितर बितर करना। गिराना पड़ाना। उधेडना। २ उखाडना। उच्छिन्न करना। नष्ट करना। खोद फेंकना। ३ नष्ट करना। बिगाडना। जैसे—मैंने तेरा क्या बिगाडा है जो तू मेरे पीछे पडा है।

उजाड—वि० [हिं० उजाड़ना] उजाडनेवाला। नष्ट करनेवाला।

उजाथर(पु)†—वि० [स० युद्ध+स्थिर या ओजस्+स्थिर] वीर। बहादुर। उ०—एक ऊजाथर कलहि एहवा साथी सहु आखाढ-सिध।—वेलि०, दू० ७४।

उजान—क्रि० वि० [स० उद्=ऊपर+यान=जाना] धारा से उलटी ओर। चढाव की ओर। भाटा का उल्टा। जैसे—नाव इस समय उजान जा रही है।

उजार(पु)†—वि० सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उजाड'। उ०—फलानो परगनो उजार पर्यो है।—दो सौ बावन०, भा०१, पृ० २०६।

उजारना[1](पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उजाड़ना'। उ०—(क) नाथ एक आवा कपि भारी। जेहि अशोक वाटिका उजारी।—मानस, ५।१८ (ख) जारि डारौं लकहि उजारि डारौं उपवन फारि डारौं रावन को तो मैं हनुमत हौं।—पद्माकर (शब्द०)।

उजारना[2]†—क्रि० स० [हिं० उजालना] जलाना (दीपक)। प्रकाश करना।

उजारा[1](पु)†—सज्ञा पुं० [हिं० उजाला] उजाला। प्रकाश।

उजारा[2]†—वि० प्रकाशमान। कातिमान। उ०—(क) जौं न होत अस पुरुष उजारा। सूझि न परत पथ अँधियारा।—जायसी ग्र, पृ० ४। (ख) हरि के गर्भवास जननी को बदन उजारयो लाग्यो हो। मानहुँ सरद चद्रमा प्रगटयो सोच तिमिर तनु भाग्यो हो।—सूर (शब्द०)।

उजारी[1](पु)†—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उजाली'।

उजारी[2]†—सज्ञा स्त्री० कटी हुई फसल का थोडा सा अन्न जो किसी देवता के लिये अलग निकाल दिया जाता है। अगऊँ।

उजारी[3](पु)†—वि० [हिं०] दे० 'उजाड़'। उ०—मोर वसत सो पदमिनि बारी। जेहि बिनु भयउ बसत उजारी। जायसी ग्र०, पृ० ८७।

उजालना—क्रि० स० [स० उज्ज्वालन, प्रा० उज्जालण] १ गहना और हथियार आदि साफ करना। मैल निकालना। चमकाना। निखारना। २. प्रकाशित करना। उ०—उन्होने हिंगोट के तेल से उजाली हुई, भीतर पवित्र मृगचर्म के बिछौनेवाली कुटी उसको रहने के लिये दी।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। ३ बालना। जलाना। जैसे, दिया उजालना।

उजाला[1]—सज्ञा पुं० [स० उज्ज्वल] [स्त्री० उजाली] १. प्रकाश। चाँदनी। रोशनी। जैसे, (क) उजाले मे आओ तुम्हारा मुँह तो देखें। (ख) उजाले से अँधेरे मे आने पर थोडी देर तक कुछ नहीं सुझाई पडता।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
२ वह पुरुष जिससे गौरव हो। अपने कुल और जाति मे श्रेष्ठ। जैसे—वह लडका अपने घर का उजाला है।
मुहा०—उजाला होना=(१) दिन निकलना। प्रकाश होना। (२) सर्वनाश होना। उजाले का तारा=शुक्र ग्रह।

उजाला[2]—वि० [स्त्री० उजाली] प्रकाशमान। अँधेरा का उलटा।
यौ०—उजाली रात=चाँदनी रात। उजाला पाख, उजाले पाख=शुक्ल पक्ष। सुदी।

उजालिका(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० उज्ज्वालिका] उजियाली रात। चाँदनी रात। उ०—मानहु सिसुमार चक्र उडुगन सह लसत गगन। उदित मुदित पसरित दस दिसि उजालिका।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २९८।

उजाली—सज्ञा स्त्री० [हिं० उजाला] चाँदनी। चद्रिका। उ०—उस प्रसन्न मुख मे और खिली उजाली के चद्रमा मे दोनों मे नेत्र धारियो की प्रीति समान रस लेनेवाली हुई।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

उजास—सज्ञा पुं० [स० उद्युति प्रा० उज्जोअ, अथवा सं० उद्भास प्रा० उज्भास (=देदीप्यमान)] १ चमक। प्रकाश। उजाला। उ—पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतर भया उजास, सुख करि सूती महल मे बानी फूटी बास। कबीर (शब्द०)। (ख) पत्रा ही तिथि पाइए वा घर कैं चहुँ पास, नित प्रति पूनोई रहै आनन ओप उजास।—बिहारी र०, दो० ७३।
क्रि० प्र०—पाना=झलक मिलना। उ०—जालरंध्र मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ। पीठि दिऐ जग सौ रह्यौ डीठि झरोखैं लाइ।—बिहारी र०, दो० २९३।—रहना।—होना।

उजासना—क्रि० स० [सं० उद्भासन, प्रा० उज्भासण, हिं० उजास से नाम०] १ प्रकाशित करना। बालना। जलाना। प्रज्व-लित करना। २ उज्वल या स्वच्छ करना।

उजासी(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० उजास+ई (प्रत्य०)] उजाला प्रकाश। द्युति। छटा। उ०—हासी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी हैं।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, २८१।

उजिअरि(पु)†—वि० स्त्री० [स० उज्ज्वल] उजली। गोरी। कातिमती। उ०—चाँद जैस धन उजिअरि अही, भा पिउ रोस गहन अस गही।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७८।

उजियर(पु)†—वि० [सं० उज्ज्वल] उजला। सफेद। उ०—छालहिं माडा औ घी पोई। उजियर देखि पाप गए धोई।—जायसी (शब्द०)।

उजयरिया(पु)†—सज्ञा स्त्री० [सं० उज्ज्वल] चाँदनी। प्रकाश। उजेला। उ०—(क) लै पौढी आँगन ही सुत को छिटकि रही आछी उजियरिया। सूर स्याम कछु कहत कहत ही बस करि लीन्हे आइ निंदरिया—सूर०, १०।२८६। (ख) गगन भवन मौं मगन भइउँ में, बिनु दीपक उजियरियाँ रे।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

उखड़ा पुखड़ा हुआ। ध्वस्त। २ जिसका घरवार उजड़ गया हो। ३ नष्ट। निकम्मा (स्त्रि०)।

उजड्ड--वि० [सं० उत् (=बहुत)+जड (=मूर्ख) १ वज्र मूर्ख। अशिष्ट। असभ्य। जगली। गवाँर। १ उद्दंड। निरकुश। जिसे बुरा काम करने मे कुछ आगा पीछा न हो।

उजड्डपन—संज्ञा पुं० [हिं० उजड्ड+पन (प्रत्य०)] उद्दडता। अशिष्टता। असभ्यता। वेहूदापन।

उजबक¹—संज्ञा पुं० [तु० उजवेक] तातारियो की एक जाति।

उजबक²—वि० उजड्ड। वेवकूफ। अनाडी। मूर्ख।

उजवकपन—संज्ञा पुं० [तु० उजवेक+हिं० पन (प्रत्य०)] वेवकूफी। मूर्खता। उ०--वौद्धिक उजवकपन (इटेलेक्चुअल वल्गेरिज्म) भी एक बड़ा बुरा दोष है।—कुकुम (भू०), पृ० १८।

उजवेग—वि० [तु० उजवेक] तातारियो की जाति से सबधित। तातारियो की जाति का। उ०--तैमूरी और उजवेग वादशाहो के साथ इतने युद्ध किए और सकट झेले।--हुमायूँ, पृ० ३।

उजम्मत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वडाई। प्रतिष्ठा। समान। उ०—मनमानी अपनी उजम्मत और तारीफ लिखी।=प्रेमघन० भा० २, पृ० १५७।

उजर†Ⓟ—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा०उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—उजर नयन नलिना काजरे न कर मलिना।--विद्यापति, पृ० ७७।

उजरत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १ मजदूरी। २ किराया। भाडा। उ०—अच्छा, तो क्या आप समझते हैं कि अपनी उजरत छोड दूँगी।—मान० भा०, पृ० ३६।

मुहा०—उजरत पर देना=किराये पर देना। भाडे पर देना।

उजरनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० उजडन] दे० 'उजडना'। उ०—नारद बचन न मै परिहरऊँ। बसो भवनु उजरो नहिं डरऊँ।—मानस, १।८०।

उजरनिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजरना] उजडने का भाव। वीरानापन। उ०—उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखो, सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हो।--घनानद, पृ० ७१।

उजराⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'उजला'।

उजराईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०उज्जर] १ उज्वलता। सफेदी। २ स्वच्छता। सफाई। काति। दीप्ति। उ०--कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखें आँखि ऊजरी होति।—विहारी र०, दो० १२।

उजरानाⓅ†—क्रि० स० [सं० उज्वलन] उज्वल कराना। उजलवाना। साफ कराना। उ०—(क) अजन दै नैननि, अतर मुख मजन कै, नीन्हें उजराइ कर गजरा जराइ के।--देव (शब्द०)। (ख) तन कचन, हीरा हँसनि विद्रुम अधर बनाय, तिन मनि स्याम जडे तहाँ विधि जरिया उजराय।—मुबारक (शब्द०)।

उजलⓅ—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्वल'। उ०—मृदुल उजल गग जन पहिरें उठन जु तन तें छवि की लहरें।—नद० ग्र०, पृ० २८८।

उजलत—संज्ञा स्त्री० [अ०] उतावली। जल्दी।

यौ०—उजलत प्रसद, उजलतबाज=उतावली करनेवाला। उजलतबाजी=शीघ्रता। उतावली।

उजलवाना—क्रि० स० [हिं० उजालना का प्रे० रूप] १ गहने या अस्त्र आदि का साफ करवाना। मैल निकलवाना। निखरवाना। २ उज्वलित करना। जलाना।

उजला¹—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] [स्त्री० उजली] १ श्वेत। धौना। सफेद। २ स्वच्छ। साफ। निर्मल। झक। दिव्य।

मुहा०—उजला मुँह करना=गौरवान्वित करना। महत्व वढ़ाना। जैसे, उसने अपने कुल भर का मुँह उजला किया। उजला मुँह होना=(१) गौरवान्वित होना। जैसे, उनके इस कार्य से सारे भारतवासियो का मुँह उजला हुआ। (२) निष्कलंक होना। जैसे, लाख करो, तुम्हारा मुँह उजला नही हो सकता। उजली समझ=उज्वल बुद्धि, स्वच्छ विचार।

उजला²—संज्ञा पुं० [हिं० उजली=धोविन] धोवी।

उजलापन—संज्ञा पुं० [हिं० उजला+पन (प्रत्य०)] सफेदी। स्वच्छता। निर्मलता।

उजली--संज्ञा स्त्री० [हिं० उजला] धोविन (स्त्री०)।

विशेष—मुसलमान स्त्रियाँ रात को धोविन का नाम लेना बुरा समझती हैं, इसे वे उसे 'उजली' कहती हैं।

उजवनाⓅ—क्रि० अ० [सं० उद्यम, प्रा० उज्जम, सं० उद्+यत्, प्रा० उज्जव] प्रयत्न करना। उद्यत होना। उद्यम करना। उ०—हौं उजऊ सू अज्ज, करौ राजन अकथ क्रम।--पृ० रा०, ६।१३३।

उजवालनाⓅ—क्रि० स० [सं० उज्ज्वल] उज्वलित करना। प्रकाशित करना। जलाना। उ०—(क) पंखो घर मैं पवण सूँ, बचै दीप दुतिवत। घर मै उजवालो घणो दीप हूँत दरसत।—वाँकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६८। (ख) लवा माग अचमा भारी श्वास वेग ततकालू। प्रकट इकीसू मणिया छेद्या सुरति शब्द उजवालू।—राम०, धर्म०, पृ० ३६८।

उजवास—संज्ञा पुं० [सं० उद्यास=प्रयत्न]। प्रयत्न। चेष्टा। तैयारी।

उजागर¹—वि० [उद्=ऊपर, अच्छी तरह+जागर=जागना, जलना, प्रकाशित होना। जैसे, उद्बुद्ध्य स्वाग्ने प्रति जागृहीय। प्रा० उज्जागर=जागरण अथवा सं० उद्योतकर, प्रा० उज्जोअगर। स्त्री० उजागरी] १ प्रकाशित। जाज्वल्यमान्। दीप्तिमान्। जगमगाता हुआ। २ प्रसिद्ध। विख्यात। उ०—(क) जाववान जो बली उजागर सिंह मारि मणि लीन्ही। पर्वत गुफा वैठि अपने गृह जाय सुता को दीन्ही॥—सूर (शब्द०) (ख) सोई विजई विनई गुनसागर। तासु सुजसु उजागर॥ –तुलसी (शब्द०)। (ग) क्यो गुन रूप उजागरि अवलोक नागरि भूखन धारि उतारन लागी॥—मतिराम (शब्द०)। उ०—बधु बस तें कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुखसागर।--मानस। ६। ३३।

क्रि० प्र०—करना होना।

उजाड़¹—संज्ञा पुं०[सं० उत्+जड या जर अथवा उज्ज्वाल>उजार>उजाड़] १. उजडा हुआ स्थान। ध्वस्त स्थान। गिरी पडी जगह। २ निर्जन स्थान। शून्य स्थान। वह स्थान जहाँ वस्ती न हो। ३. जगल। वियावान। उ०—वडा

विस्तार।—विश्राम (शब्द०)। ४ उछलता हुआ कण। छीटा। उ०—आई खेलि होरी ब्रजगोरी वा किसोरी संग अग अग रगीन अनग सरसाइगो। कुकुम की मार वापै रगिनि उछार उड़ै बुक्का औ गुलाल लाल लाल वरसाइगो। रसखान (शब्द०)। ५ वमन। कै।

उछारना—क्रि० स० [हिं० 'उछरना' का प्रे० रूप] दे० 'उछालना'।

उछाल¹—संज्ञा स्त्री० [स० उच्छाल] १ सहसा ऊपर उठने की क्रिया २ फलाँग। चौकड़ी। कुदान। जैसे, हिरन की उछाल सबसे अधिक होती है।

क्रि० प्र०—भरना। मारना। लेना।

३ ऊपर उठने की हद या ऊँचाई।

उछाल²—संज्ञा पुं० [सं० छर्दि, प्रा० छड्डि] उलटी। कै। वमन।

उछालछक्का—वि० [हिं० उछाल + छक्का] व्यभिचारिणी। छिनाल।

उछालना—क्रि० स० [स० उच्छालन] १ ऊपर की ओर फेंकना। उचकाना। २ प्रकट करना। प्रकाशित करना। उजागर करना। जैसे, तुम अपनी करनी से अपने पुरखों का खूब नाम उछाल रहे हो। ३. कलकित करना। वदनाम करने की चेष्टा करना। (व्यग्य)।

उछाला—संज्ञा पुं० [प्रा० उच्छाल, हिं० उछाल] जोश। उबाल। दे० 'उछाल'।

उछाव(पु)—संज्ञा पुं० [स उत्साह, प्रा० उच्छाह] उत्सव। उछाह। उ०—देश मालगिर हुवउ हो उछाव राजमती कउ रचउ वीवाह।—वी० रासो, पृ० १५।

उछावा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उछाव] उत्साह। हर्ष। आनद। उ०—देखि दरश होय अधिक उछोव। कवीर सा०, पृ० ५६१।

उछाह—संज्ञा पुं० [स० उत्साह प्रा० उत्ताह] [वि० उछाही] १ उत्साह। उमग। हर्ष। प्रसन्नता। आनद। उ० (क) छकहि कुँवर मन करहि उछाहू। आगे घाल जिनै नहिं काहू।—जायसी (शब्द०)। (ख) ओर सबै हरखी हँसति गावति भरी उछाह। तुम्हीं वहू विलखी फिरै क्यो देवर कै व्याह।—विहारी र० ६०३। (ग) नाह के व्याह की चाह सुनी हिय माहिं उछाह छवीली के छायो। पौढि रही पट ओढ़ि अटा दुख को मिस कै मुख वाल छिपायो।—मतिराम (शब्द०)। २ उत्सव। आनद की धूम। ३. जैन लोगों की रथयात्रा। उत्कठा। इच्छा। उ०—लकादाहु देखे न उछाह रह्यो काहुन को कहैं सब सचिव पुकारे पाँव रोपिहैं।—तुलसी ग्र० पृ० १८०।

उछाहित(पु)—वि० [स० उत्सहित, प्रा० उच्छाहिय, हिं० उछाह उछाह + इत (प्रत्य०)] उत्साही। उछाह से युक्त। उछाह भरा। उत्साह करनेवाला। उ०—वीर विजय दिन वीर भूमि के वीर उछाहित। प्रेमघन० भा० १, पृ० ३४६।

उछाहो(पु)—वि० [हिं० उछाह] उत्साह करनेवाला। आनद मनानेवाला।

उछिन्न(पु)†—वि० [स उच्छिन्न] दे० 'उच्छिन्न'।

उछिष्ट(पु)†—वि० [स० उच्छिष्ट—दे० 'उच्छिष्ट'।

उछीड़†—संज्ञा पुं० [हिं० छोर = किनारा] जगह। छेद। अनावृत स्थान।

उछीनना(पु)—क्रि० स० [स० उच्छिन्न] उच्छिन्न करना। उखाड़ना। नष्ट करना। उ०—बने मीर वनबीर उछीने। पेलि मतग घाट उन लीने।—लाल (शब्द०)।

उछीर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० छोर = किनारा] अवकाश। जगह। रध्र। अनावृत स्थान। उ०—देखि द्वार भीर पगदासी कटि वाँधी धीर कर नो उछीर करि चाहैं पद गाइए। देखि लीनो वेई, काहू दीनी पाँच सात चोट, कीनी धकाधकी, रिस मन मे न आइए।—प्रियादास (शब्द०)।

उछेद(पु)—संज्ञा पुं० [स० उच्छेद] दे० 'उच्छेद'। उ०—निराकार तें वेद आदि भेद जाने नहीं, पडित करत उछेद, मने वेद के जग चले।—कवीर सा०, पृ० १४।

उछेदना(पु)—क्रि० स० [स० उच्छेदन] उच्छेद करना। नष्ट करना। प्रभावित करना। उ०—सत्य शब्द मन देइ उछेदी। मन चीन्हे कोई विरले भेदी।—कवीर सा०, पृ० २१६।

उछोह(पु)—संज्ञा पुं० [स० उत्सव] उत्सव। उछाह। आनद। उ०—वावा मगलदास का रामचद्र परमोह, पधराए गुरु पादुका कीये वहुत उछोह। सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १२३।

उछ्छ(पु)—वि० [स० उच्छ, पा० उच्छ = हीन] दे० ओछा। उ०—वहु दिवस सोम नृप हुअ सुपग। क्रिम उछ्छ वत्त कढ्ढी सुपंग।—पृ० रा० ८।४।

उछ्छप(पु)†—संज्ञा पुं० [स० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव'।

उछ्छरना—क्रि० अ० [हिं] दे० 'उछलना'। उ०—मनो तरक्क विछ्छुरे मिलत चद उछ्छुरे। पृ० रा० २५।१४५।

उछ्छारना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उछारना'। उ०—वीर मत्र उच्चार लोह ऊछ्छिन उछ्छारै।—पृ० रा० २४। १८१।

उजक—संज्ञा पुं० [तु० उज़ुक] शाही जमाने की वड़ी मुहर।

उजका†—संज्ञा पुं० [हिं० उझकना] चिथडे और घास फूस का पुतला जो खेत मे चिड़ियों को दूर रखने के लिये रखा जाता है। विजखा।

उजगी(पु)—वि० [उज्जागृत] जागी हुई। जागती रहनेवाली। उ०—वच उच्चरै वैन निसि की उजगी। मनो कोकिला भाप संगीत लग्गी।—पृ० रा० ६१।४२८।

उजट(पु)—संज्ञा पुं० [स० उटज] झोपड़ा। पर्णशाला।

उजड़ना—क्रि० अ० [स० अव—उ = नहीं + जड़ना = जमाना अथवा देशी उज्जड] [वि० उजाड़] १ उखड़ना पुखड़ना। उच्छिन्न होना। ध्वस्त होना। २ गिर पड जाना। विखरना। तितर वितर होना। जैसे,—यह घर एक ही वरसात मे उजड़ जायगा। ४ वरवाद होना। तवाह होना। नष्ट होना। वीरान होना। उ०—(क) कई प्राणियों के मर जाने से उनका घर उजड़ गया। (ख) यह गाँव उजड गया।

उजड़वाना—क्रि० स० [हिं० उजड़ना का प्रे० रूप] किसी को उजाड़ने मे प्रवृत्त करना।

उजड़ा—वि० [हिं० उजड़ना] [वि० स्त्री० उजड़ी] १. उजड़ा हुआ।

उच्छ्वासी--वि० [सं० उच्छ्वासिन्] [वि० स्त्री० उच्छ्वासिनी] १ साँस लेनेवाला । २ ग्राह भरनेवाला । ३ मरने, विलीन होने या मुरझानेवाला (को०) । ४ रुकनेवाला (को०) । ग्रागे ग्रानेवाला (को०) । विभक्त (को०) ।

उछक(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्संग, प्रा० उच्छंग] दे० 'उत्संग'। देटी राजा भोज की उठइ उछकि लेई अकमाय ।--बी० रासो, पृ० ५० ।

उछंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्साङ्ग प्रा० उच्छंग] २ गोद । क्रोड । कोरा । उ०—(क) स्तुति करि वे गए स्वर्ग को ग्रभय हाथ करि दीन्हो, बंधन छोरि नंदबालक को लै उछंग करि लीन्हो ।—सूर (शब्द०) (ख) जननी उमा बोलि तब लीन्ही, लेइ उछंग सुंदर सिख दीन्ही । तुलसी (शब्द०) । २ समीप । ग्रतिनिकट । उ०—जानि कुग्रवरु प्रीति दुराई, सखि उछंग बैठी पुनि जाई ।—मानस १।६८ । ३ हृदय ।

मुहा०—उछंग लेना = ग्रालिंगन करना । हृदय से लगना । उ०—मैं हारी त्यों ही तुम हारो चरन चापि स्रम मेटौंगी । सूर स्याम ज्यों उछंग लई मोहिं त्यों मैं हूँ हँसि भेटौंगी ।—सूर० १० । ११४७ ।

उछछल(पु)—वि०[सं० उत्+चंचल=उच्चंचल] उछलनेवाला । उ०—ग्रलबेला सु उछछला ग्रनभी ग्रबनंदा ।--पृ० रा० २५।५३६ ।

उछकना(पु)—क्रि० ग्र० [हिं० उचकना, उझकना=चौंकना] चौंकना । चेतना । चेत में ग्राना । उ०—डर न टरै, नींद न परै, हरै न काल बिपाकु, छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ विषमु छबि छाकु ।—बिहारी र०, दो० ३१८ ।

उछक्का†—वि० पुं० स्त्री० [हिं० उचकना] १ जगह जगह उछलता फिरनेवाला । २ कुलटा । दुश्चरित्रा ।

उछटना-क्रि० ग्र० [सं० उत्+√चाट्या√चल्] छूटना । गिरना । छटककर गिरना । उ०-हैजाम हुज्ज सिर उच्छटी, बीजलि कै ग्रबर ग्ररी । झनान भजि पु परि पला, मही ग्रग्गि उछटी परी ।-पृ० रा०, १२ । १४८ ।

उछरंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० उछाह] उत्साह । उमंग । उ०—सब्रत जली झलहल ग्रप सगे, ग्रष्ट निकट गायण उछरंगे ।-रा० रू०, पृ० १८ ।

उछरना¹(पु)—क्रि० ग्र० [सं० उच्छलन] दे० 'उछलना' । उ०--जमत उड्त ऐंडत उछरत पैंजनी बजावत ।--प्रेमघन०, भा० १ पृ० ११ ।

उछरना²†—क्रि० स० [हिं० उछाल+ना (प्रत्य०)] वमन या उल्टी करना ।

उछल कूद—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछलना+कूदना] १. खेलकूद । २ हलचल । ग्रधीरता । चंचलता ।

मुहा०—उछल कूद करना = ग्रावेग ग्रौर उत्साह दिखाना । बढ़ बढकर बातें करना । जैसे,-बहुत उछल कूद करते थे, पर इस समय कुछ करते नहीं बनता ।

उछलना—क्रि० ग्र० [सं० उच्छलन] १ नीचे ऊपर होना । वेग से ऊपर उठना ग्रौर गिरना । जैसे-समुद्र का जल पुरसों उछलता है । २ झटके के साथ एकबारगी शरीर को क्षण भर के लिये इस प्रकार ऊपर उठा लेना जिसमें पृथ्वी का लगाव छूट जाय । कूदना । जैसे—उस लड़के ने उछलकर पेड़ से फल तोड़ लिया ।

विशेष—ग्रत्यंत प्रसन्नता के कारण भी लोग उछलते हैं । जैसे, यह बात सुनते ही वह खुशी के मारे उछल पड़ा ।

३ ग्रत्यंत प्रसन्न होना । खुशी से फूलना । जैसे, जब से उन्होंने यह खबर सुनी है तभी से उछल रहे हैं । ४ चिह्न पड़ना । उपटना । उभड़ना । जैसे, (क) उसके हाथ में जहाँ जहाँ बेंत लगा है, उछल ग्राया है । (ख) तुम्हारे माथे में चंदन उछला नहीं । (ग) इस मोहर के ग्रक्षर ठीक उछले नहीं । उ०--बैठ भँवर कुच नारँग बारी, लागे नख उछरैं रंग धारी ।-जायसी (शब्द०) । ५ उतराना । तरना । उ०—(क) चोर चुराई तूँबड़ी गाड़ी पानी माहिं । वह गाड़े ते ऊछलै यों करनी छपनी नाहिं । कबीर (शब्द०) । (ख) बैरी बिन काज बूडि बूडि उछरत वह बड़े बस बिरद बड़ाई सो बड़ायती । निधि है निधान की परिधि प्रिय प्रान की सुमन की ग्रवधि वृषभान की लड़ायती ।—देव (शब्द०) ।

उछलवाना--क्रि० स० [हिं० उछलना का प्रे० रूप] उछालने में प्रवृत्त करना ।

उछला—वि० [हिं० उथला] उथला । छिछला । कम गहरा ।

उछलाना-क्रि० स० [हिं० उछालना का प्रे० रूप] दे० 'उछलवाना' ।

उछलित(पु)—वि० [सं० उच्छलित] दे० 'उच्छलित' । उ०—ग्रति रसमत्त बदत नहिं काहू उछलित रस ग्रावेसा । —भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३२ ।

उछव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव' । उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज है गै दिप्पत लगि, दुतिय जाम संगीत, उछव रस किति काव्य जगि ।--पृ० रा०, ६ । ११ ।

उछहना-क्रि० ग्र० [हिं० उछाह से नाम०] दे० 'उछलना' । उ०—जत गरल कंठ दीसदुति नीय, जिम चित प्रगट संसार नीय । सारंग उछह तिन पान पानि, दिव तुंग जाल जब जवनि मानि ।—पृ० रा०, ७ । ६ ।

उछाँट—संज्ञा पुं० [सं० उच्चाट] दे० 'उजाट' । उ०—जिस वक्त ग्रादमी का दिल उछाँट होता है उस वक्त उनको किसी की बात ग्रच्छी नहीं लगती ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५८ ।

उछाँटना¹—क्रि० स० [सं० उच्चाटन, हिं० उचाटना] उचाटना । उदासीन करना । विरक्त करना । उ०--हर किशोर ने हरगोविंद की तरफ से ग्रापका मन उछाँटने के लिये यह तदबीर की हो तो भी कुछ ग्राश्चर्य नहीं ।—परीक्षागुरु (शब्द०) । २ उखाड़ना । उपाटना ।

उछाँटना²(पु)—क्रि० स० [हिं० छाँटना] छाँटना । चुनना । उ०—ग्रकिल ग्ररग सो ऊनरी विधिना दीन्ही बाँटि, एक ग्रभागी रह गया एक न लई उछाँटि ।—कबीर (शब्द०) ।

उछार(पु)—स्त्री० पुं० [सं० उच्छाल] सहसा ऊपर उठने की क्रिया । उछाल । २ ऊपर उठने की हद । ऊँचाई जहाँ तक कोई वस्तु उछल सकती है । ३ ऊँचाई । उ०—एक लख योजन भानु तें, है शशि लोक उछार । योजन ग्रड़तालिस सहस में ताको

जैसे—यहाँ के पौधे सब उच्छिन्न कर दिए गए। ३ निर्मूल। नष्ट। जैसे—चार पीढ़ी के पीछे वह वंश ही उच्छिन्न हो गया। उ०—यदि नियम न हों, उच्छिन्न सभी हो कबके। —साकेत, पृ० २१३।

उच्छिन्नसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्छिन्नसन्धि] वह संधि जो उपजाऊ या खनिज पदार्थों से परिपूर्ण भूमि का दान करके की जाय।

उच्छिलींध्र—संज्ञा पुं० [सं० उच्छिलीन्ध्र] कुकुरमुत्ता या रामछाता जो बरसात में भूमि फोड़कर निकलता है। छत्रक।

उच्छिष्ट[1]—वि० [सं०] १ किसी के खाने से बचा हुआ। जिसमें खाने के लिये किसी ने मुँह लगा दिया हो। किसी के आगे का बचा हुआ (भोजन)। जूठा। जैसे—वह किसी का उच्छिष्ट भोजन नहीं खा सकता।

विशेष—धर्मशास्त्र में उच्छिष्ट भोजन का निषेध है।

२ दूसरे का बर्ता हुआ। जिसे दूसरा व्यवहार कर चुका हो। ३ जूठे मुँहवाला। जिसके मुख में जूठन लगी हो (को०)। ४ परित्यक्त। छोड़ा हुआ (को०)। ५. एक दिन पूर्व का। बासी (को०)।

उच्छिष्ट[2]—संज्ञा पुं० १ जूठी वस्तु। २ मधु। शहद।

उच्छिष्ट गणेश—संज्ञा पुं० [सं०] गणपति का एक तंत्रोक्त रूप (को०)।

उच्छिष्ट चांडालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मातंगी देवी (को०)।

उच्छिष्ट भोक्ता—वि० [सं० उच्छिष्टभोक्तृ] उच्छिष्ट या परित्यक्त वस्तु खानेवाला। नीच (व्यक्ति) (को०)।

उच्छिष्ट भोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ जूठी वस्तु का भक्षण। जूठन खाना। २. देवार्पित प्रसाद या पंचमहायज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन (को०)।

उच्छिष्टभोजी—वि० [सं० उच्छिष्ट भोजिन्] [वि० स्त्री० उच्छिष्ट-भोजिनी] उच्छिष्ट खानेवाला। जूठन खानेवाला।

उच्छिष्टमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] मोम (को०)।

उच्छीर्षक[1]—वि० [सं०] उन्नत या उठे हुए सिरवाला (को०)।

उच्छीर्षक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिरोपधान। तकिया। २. उत्तमांग सिर (को०)।

उच्छुल्क[1]—वि० [सं० उत्+शुल्क] कौटिल्य के अनुसार बिना चुंगी या महसूल का (माल, वस्तु)।

उच्छुल्क[2]—क्रि० वि० बिना चुंगी या महसूल दिए।

उच्छुष्क—वि० [सं०] शुष्क। सूखा हुआ (को०)।

उच्छू—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्+श्वस् > उच्छ्वस् > उच्छ्, उच्छ्व प० उत्थू] एक प्रकार की खाँसी जो गले में पानी इत्यादि के रुकने से आने लगती है। सुनसुनी।

उच्छून—वि० [सं०] १ बढ़ा हुआ। २ फूला हुआ। सूजा हुआ। स्थूल। ३ भारी ऊँचा (को०)।

उच्छृंखल—वि० [सं० [सं० उच्छृङ्खल] १ जो शृंखलाबद्ध न हो। क्रमविहीन। अंडबंड। २ बंधनविहीन। निरंकुश। स्वेच्छाचारी। मनमाना काम करनेवाला। उ०—अंग अंग में नवयौवन उच्छृंखल, किंतु बँधा लावण्यपाश से नम्र सहास अचंचल। —अनामिका, पृ० ५०। ३ उद्दंड। अक्खड़। किसी का दबाव न माननेवाला।

उच्छृंखलता—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्छृङ्खलता] उच्छृंखल होने का भाव। निरंकुशता। उ०—वह अविकार गहन-सुख-दुख-गृह, वह उच्छृंखलता उद्दाम।—अपरा, पृ० ११०।

उच्छेतव्य—वि० [सं०] उच्छेद के योग्य। उखाड़ने के योग्य। निर्मूल करने के योग्य।

विशेष—राजनीति और धर्मशास्त्र में राजाओं के चार प्रकार के शत्रु माने गए हैं। उनमें से उच्छेतव्य वह है जो व्यसनी और सेना दुर्ग से रहित हो तथा जिसके वश में न हो।

उच्छेत्ता—वि० [सं० उच्छेत्तृ] उच्छेद करनेवाला। नाशक। विध्वंसक।

उच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १ उखाड़ पखाड़। विश्लेषण। खंडन। २ नाश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—मूलोच्छेद।

उच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उच्छेद'।

उच्छेदवाद—संज्ञा पुं० [सं० उच्छेद+वाद=सिद्धांत] [वि० उच्छेदवादी] आत्मा के अस्तित्व को न माननेवाला दार्शनिक सिद्धांत।

उच्छेदित—वि० [सं० उच्छेद+इत (प्रत्य०)] १ खंडित। २ उत्पाटित। ३ विनाशित। उ०—हम उन्मूलित हैं, उच्छेदित इस जगती के।—रजत०, पृ० ३२।

उच्छेदी—वि० [सं० उच्छेदिन्] उच्छेद या विनाश करनेवाला।

उच्छेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवशिष्ट। बचा हुआ। २ भोजन का बचा हुआ अंश (को०)।

उच्छेषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उच्छेष'।

उच्छोषण[1]—वि० [सं०] शुष्क करनेवाला। सुखानेवाला। शोषक (को०)।

उच्छोषण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सुखाना। रस खींचना (को०)।

उच्छ्रय उच्छ्राय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उदय। उगना। २ उन्नयन। उत्थान। ३ उच्चता। ऊँचाई। प्रकर्ष। उत्कर्ष। ४ विकास वृद्धि। ५ घमंड। गर्व। ६ एक प्रकार का स्तन (को०)।

उच्छ्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] १ साँस लेना। गहरी साँस लेना। आह भरना। ३ शिथिलीकरण (को०)।

उच्छ्वसित—वि० [सं०] १ उच्छ्वासयुक्त। २ जिसपर उच्छ्वास का प्रभाव पड़ा हो। ३ विकसित। प्रफुल्लित। फूला हुआ। ४ जीवित। ५. बाहर गया हुआ। ६. आशा या भरोसे से भरा हुआ। ढाढ़स बँधाया हुआ (को०)। ७ निश्चित। संतुष्ट। (को०)।

उच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्छ्वासित, उच्छ्वासित, उच्छ्वासी] १. ऊपर को खींची हुई साँस। उसास। २ साँस। श्वास। उ०—घूम उठे हैं शून्य में, उमड़ घुमड़ घनघोर, ये किसके उच्छ्वास से छाए हैं सब ओर।—साकेत, पृ० २७१।

यौ०—शोकोच्छ्वास।

३ ग्रंथ का विभाग। प्रकरण। ४ सांत्वना (को०)। ५ प्रोत्साहन (को०)। ६ मरण (को०)। ७ हवा की नलिका (को०)। ८. फैलाव। वृद्धि (को०)। ९ भाग।

उच्छ्वासित—वि० [सं०] १ थका हुआ। श्रांत। २ विपुल। अधिक। ३ दे० 'उच्छ्वसित' (को०)।

और व्यजनयुक्त शब्द निकालना। जैसे (क) वह लडका शब्दो का ठीक ठीक उच्चारण नहीं कर सकता। (ख) बहुत से लोग वेद के मत्रो का उच्चारण सबके सामने नही करते।

विशेष—गद्य मे मनुष्य ही की वोली के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। मानव शब्द के उच्चारण के स्थान से सवद्ध मनुष्य हैं—उर, कठ, मूर्द्धा, जिह्वा, स्वरतत्री, काकल, अभिकाकल, जिह्वामूल, वर्त्स, दांत, नाक, ओठ और तालु।

२ यावर्णो शब्दो को वोलने का ढग। तलफ्फुज। जैसे—बगालियो का सस्कृत उच्चारण अच्छा नही होता।

उच्चारणीय—वि० [सं०] उच्चारण करने योग्य। वोलने लायक। मुँह से निकालने लायक।

उच्चारना(पु)— क्रि० स० [स० उच्चारण] (शब्द) मुँह से निकालना। उच्चारण करना। वोलना। उ०—कै मुख करि भृ गन मिस अस्तुति उच्चारत। भारतेंदु ग्र०,भा० १।पृ०४५५।

उच्चारित—वि० [स०] जिसका उच्चारण किया गया हो। वोला हुआ। कहा हुआ।

उच्चार्य—वि० [स०] दे० 'उच्चारणीय'।

उच्चार्यमाण—वि० [स०] जिसका उच्चारण किया जाय। वोला जानेवाला।

उच्चावच—वि० [स०]१ ऊँचा नीचा। २ ऊवड खावड। विषम। ३ छोटा वडा। ४ अनेक रूप या प्रकार का। विभिन्न। विविध [को०]।

उच्चिगट—सज्ञा पुं० [स० उच्चिगट] १ भावाविष्ट या क्रुद्ध व्यक्ति। २ एक प्रकार का केकडा। ३ एक जाति का झिंगुर [को०]।

उच्चित—वि० [स०] चुना हुआ। एकत्र किया हुआ। पु जीकृत।

उच्चित्र—वि० [स०] स्पष्ट रूप से वने हुए, विशेषत उभरे हुए, चित्रो के साथ [को०]।

उच्चूड, उच्चूल—सज्ञा पुं० [स०] १ ध्वज या उसका ऊपर का भाग। २ ध्वज के ऊपरी हिस्से की सजावट [को०]।

उच्चे(पु)—वि० [स० उच्च वा उच्चै] ऊँचा। उ०—जल जत्र-छुटे उच्चे सवध। हम्मीर रा०, पृ० ६३।

उच्चै—अव्य० [स०] १ ऊँचा। नीचा का उलटा। २ ऊँचे स्वर से। जोर से। ३. बहुत अधिक। ज्यादा [को०]।

विशेष—समास मे या स्वतत्र रूप मे इसका विशेषण की तरह भी प्रयोग होता है।

उच्चैश्रवा[1]—सज्ञा पुं०[स० उच्चै श्रवस्]इद्र का सफेद घोडा जिसके खडे खडे कान और सात मुँह थे। यह समुद्र मे से निकले हुए चौदह रत्नो मे था। उ०—एक वेर सूर्यपुत्र उच्चैश्रवा अश्वारूढ होकर विष्णु के दर्शनार्थ वैकुठ को गया। कवीर ग्र०, पृ० १८८।

उच्चैश्रवा[2]—वि० ऊँचा सुननेवाला। वहरा।

उच्छटना(पु)—क्रि० अ० [स०] उत्क्षिप्ति > प्रा०* उच्छग्रड > हिं० उच्छड, उच्छल या उत् + शल] उछलना। छूटना। पड़ना। गिरना। उ०—हैजाम हुज्ज सिर उच्छटी। बीजलि के अबर अरी। कनान भजि पुप्परि पला। मही अगिग उछटी परी॥—पृ० रा०, १३। १४८।

उच्छन्न[1]—वि० [स०]१ दवा हुआ। लुप्त। २. ढका हुआ। आवरण रहित। अनावृत (को०)। ३ नष्ट। विध्वस्त। उच्छिन्न। काटा हुआ [को०]।

उच्छरना(पु)—क्रि० अ० [सं० उच्छेलन] दे० 'उछरना' और 'उछलना'। उ०—के वहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४५६।

उच्छल—वि० [सं०] ऊपर की ओर उछलनेवाला। आगे की ओर वढनेवाला २ लहरानेवाला। तरगायित। उ०—कुछ माँग रही इठला इठला, निज उच्छल गरिमा से निकला, चचल कपोल की नृत्य कला।—इत्यलम्, पृ० ६६।

उच्छलन—सज्ञा पु० [सं०] उछलने या तरगायित होने की क्रिया या भाव। उ०—परम प्रेम उच्छलन इक, वढ्यो जु तन मन मैन। व्रज वाला विरहिन भई, कहति चंद सौं वैन॥—नद० ग्र०, पृ० १६२।

उच्छलना(पु)—क्रि० अ० [स० उच्छलन] दे० 'उछलना'। उ०—सिंधु जल उच्छल्यो गिरे पर्वत शिखर वृक्ष जड सो सर्व दिये उजारी। भारतेंदु ग्र०, २ पृ ४३७।

उच्छलित—वि० [सं०] १ उछलता हुआ। छलकता हुआ। तरगायित। २ हिलता डुलता हुआ। कपित [को०]। ३ गया हुआ। गत (को०)।

उच्छव(पु)—सज्ञा पुं० [स० उत्सव, प्रा० उच्छव] उत्सव। उ०—वोलि सवै गोकुल की वाला। उच्छव कियो महा तत्काला।—नद० ग्र०, पृ० २४१।

उच्छवृति(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० उच्छवृत्ति] दे० 'उछवृत्ति'।

उच्छादन—सज्ञा पुं० [स० अवच्छादन] १ आच्छादन। ढकना। २. सुगधित द्रव्यो को शरीर पर मलना। लेपना।

उच्छाव(पु)—सज्ञा पु० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] १. उत्साह। उमग। २ धूमधाम।

उच्छास(पु)—सज्ञा पुं० [स० उच्छ्वास, प्रा० उच्छास, ऊसास] दे० 'उच्छ्वास'।

उच्छासन—वि० [स०] प्रतिवध शासन मे न रहनेवाला। अनियत्रित। निरकुश [को०]।

उच्छ्वासित—वि० [स०] १ उच्छवासयुक्त। २ जिसपर साँस का प्रभाव पडा हो। ३ प्रफुल्लित।

उच्छास्त्र—वि० [स०] १ शास्त्रविरुद्ध। नियम या समाजविरुद्ध। २ शास्त्रविरोधी आचरण करनेवाला (को०)।

यौ०—उच्छास्त्रवर्ती = शास्त्रानुकूल आचरण न करनेवाला।

उच्छाह(पु)—सज्ञा पु० [स० उत्साह प्रा० उच्छाह] दे० 'उछाह'। उत्साह। उ०—उच्छाह सहित उठि सेख तव, आनद मगल वधियउ।—हमीर रा०, पृ० ५३।

उच्छिघन—सज्ञा पुं० [स० उच्छिड् घन] नाक से साँस लेना। खर्राटे भरना [को०]।

उच्छिख—वि० [स०] १ चूडायुक्त, शिखासहित। २ जिसकी लपट ऊपर की ओर जा रही हो। ३. चमकीला। प्रकाशमान [को०]।

उच्छित्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] विनाश। उच्छेद [को०]।

उच्छिन्न—वि० [स०] १. कटा हुआ। खडित। २. उखाड़ा हुआ।

यौ०--उच्चाशय । उच्चकुल । उच्चकोटि । उच्चपद ।

विशेष--ज्योतिष में मेष का सूर्य उच्च (दश अंशों के भीतर परम उच्च) वृष का चंद्रमा उच्च (६ अंशों के भीतर परम उच्च), मकर का मंगल उच्च (२८ अंशों के भीतर परम उच्च), कन्या का बुध उच्च (१५ अंशों के भीतर परम उच्च), कर्क का बृहस्पति उच्च (५ अंशों के भीतर परम उच्च), मीन का शुक्र उच्च (२७ अंशों के भीतर परम उच्च), तुला का शनि उच्च (२७ अंशों के भीतर परम उच्च), इसी प्रकार उच्चराशि से सातवीं राशि पर होने से वह नीच होता है, जैसे, मेष का सूर्य उच्च और तुला का नीच होता है ।

उच्चक--वि० [सं० उच्च+क] उच्चतम । सबसे अधिक ऊँचा ।

उच्चकित--वि० [सं०] दे० 'चकित' ।

उच्चक्षु--वि० [सं० उच्चक्षुस्] १ उपर की ओर देखनेवाला । २ अंधा । बिना आँख का [को०]

उच्चगिर--वि० [सं०] जोर से बोलनेवाला । जिसकी आवाज बुलंद हो [को०] ।

उच्चघन--संज्ञा पुं० [सं०] छिपी हँसी । वह हँसी जो चेहरे पर व्यक्त न हो ([को०]) ।

उच्चटा--संज्ञा स्त्री० (सं०) १. एक प्रकार की घास । २ घमंड (को०) । ३ अभ्यास । परंपरा (को०) । ४. गुंजा (को०) । ५. एक प्रकार का लहसुन (को०) । ६ चूडाला (को०) । ७ भूम्यामलकी (को०) । ८. नागरमुस्ता । नागरमोथा (को०) ।

उच्चतम[1]--वि० [सं०] सबसे ऊँचा ।

उच्चतम[2]--संज्ञा पुं० संगीत में एक बनावटी सप्तक जो 'तार' से भी ऊँचा होता है और केवल बजाने के काम में आता है ।

उच्चतर--वि० [सं०] अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा ।

उच्चतरु--संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँचा या लंबा पेड । २. नारियल का पेड [को०] ।

उच्चता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊँचाई । २ श्रेष्ठता । बडाई । बडप्पन । ३ उत्तमता ।

उच्चताल--संज्ञा पुं० [सं०] भोज या पान गोष्ठी के अवसर पर होनेवाला नाच, गाना [को०] ।

उच्चल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उच्चना' । उ०--और जब सावन लुनावन बरस धाया, उन्हें निज उच्च पर जब तरस आया ।--हिम० पृ० २ ।

उच्चन्यायालय--संज्ञा पुं० [सं०उच्च+न्यायालय=अं० हाईकोर्ट] राज्य का सर्वोच्च न्यायालय जिसमें उन मुकदमों पर विचार होता है, जिनपर जिले का न्यायालय निर्णय दे चुकता है। गंभीर महत्व के कुछ अन्य मुकदमे भी इसमें ले जाए जाते हैं।

उच्चय[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ समुंज । समूह । ढेर । २. (पुष्पादि) चुनने की क्रिया । ३ नीवीबंध । ४ अभिवृद्धि । अभ्युदय ५. नीवार धान्य । ६. त्रिभुज का उलटा भाग (को०) ।

उच्चय[2]⑭--वि० [सं० उच्चौ] दे० 'ऊँचा '। उ०--कबहुँ हृदय उमगि बहुत उच्चय स्वर गावैं--सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३६ ।

उच्चयापचय--संज्ञा पुं० [सं०] उत्थान और पतन [को०] ।

उच्चरण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्चरणीय, उच्चरित] १ कंठ, तालु, जिह्वा आदि के प्रयत्न से शब्द निकलना । मुँह से शब्द फूटना । २ उपर या बाहर आना (को०) ।

उच्चरना⑭--क्रि० स० [सं० उच्चरण] उच्चारण करना । बोलना । उ०--वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ।--मानस, १।१०१ ।

उच्चरित[1]--वि०[सं०] १ कथित । कहा हुआ । २ बाहर आया हुआ [को०] ।

उच्चरित[2]--संज्ञा पुं० मल । विष्ठा [को०] ।

उच्चल[1]--वि० [सं०] गतिवान । चलायमान । उ०--तोता मारू माँहि गुण, जेता तारा अभ्भ । उच्चलचित्ता साजणाँ, कहि क्यउँ दाखउँ सम्भ ।--ढोला०, दू० ४८७ ।

उच्चल[2]-- संज्ञा पुं० मन [को०] ।

उच्चलन--संज्ञा पुं० [सं०] गमन । रवाना होना । जाना [को०] ।

उच्चलित--वि० [सं०] १ जाने के लिये उद्यत । प्रस्थान करनेवाला । २ गया हुआ । ३ फटका हुआ [को०] ।

उच्चस्रव-- संज्ञा पुं० [सं० उच्चैःश्रवा] दे० 'उच्चैःश्रवा' । उ०--मनु उच्चस्रव के बधु, आवर्त चक्र सु कधु ।--हम्मीर रा० पृ० १२४ ।

उच्चाट--संज्ञा पुं० [सं०] १ उखाडने या नोचने की क्रिया । २. चित्त का न लगना । अनमनापन । विरक्ति । उदासीनता ।

उच्चाटन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्चाटनीय, उच्चाटित] १. लगी या सटी हुई चीज को अलग करना । विश्लेषण २. उचाडना । उखाडना । नोचना । ३ किसी के चित्त को कहीं से हटाना । तंत्र के ६ अभिचारों या प्रयोगों में से एक । उ०--मारन मोहन उच्चाटन और स्तंभन इत्यादि सब वन वेदमंत्रों मे है ।--कबीर ग्र०, पृ० ३४ । ४ चित्त का न लगना । अनमनापन । विरक्ति । उदासीनता ।

उच्चाटनीय--वि० [सं०] १ उखाडने योग्य । उचाडने के लायक । २. उच्चाटन प्रयोग के योग्य । जिसपर उच्चाटन प्रयोग हो सके ।

उच्चाटित--वि० [सं०] १ उखाडा हुआ । उचाडा हुआ । २ जिसपर उच्चाटन प्रयोग किया गया हो ।

उच्चना⑭--क्रि० स० [हिं उचाना] दे० 'उचाना' । उ०--दौरि राज पृथ्वीराज सु आयो, पमापमा अर्घ उच्चायो ।--पृ० रा०,४।८।

उच्चार--संज्ञा पुं० [सं०] १ कथन । शब्द मुँह से निकालना । बोलना । उ०-- सकल सुख दैनहार तातें करो उच्चार कहत हों बार बार जिनि भुलावो । नंद० ग्र०, पृ० ३२८ ।

क्रि० प्र० --करना । होना ।

यौ०--गोत्रोच्चार । मंत्रोच्चार । शाखोच्चार ।

२. मल पुरीष ।

उच्चारक--वि० [सं०] उच्चार करनेवाला । कहनेवाला [को०] ।

उच्चारण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्चारणीय, उच्चारित, उच्चार्य, उच्चार्यमाण] १ कंठ, तालु, ओष्ठ, जिह्वा आदि के प्रयत्न द्वारा मनुष्यों का व्यक्त और विभक्त ध्वनि निकालना । मुँह से स्वर

उचराई- संज्ञा स्त्री० [हिं० उचर+आई (प्रत्य०)] १ उच्चारण करने की क्रिया या भाव। २ उच्चारण करने या कुछ बतलाने का पारिश्रमिक।

उचलना†- क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उचड़ना'।

उचाई— संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ऊँचाई'। उ०—सागर मैं गहिराई, मेरु मैं उचाई, रतिनायक मे रूप की निकाई निरधारिए।—मति० ग्र०, पृ० ३७२।

उचाकु(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० उचाट या सं० उत्चक=भ्रांति] उचाट। उ०—नीदौ जाइ, भूखी जाइ, जियहू मे जाइ जाइ, उरहू मे आइ आइ लागत उचाकु सो। —गग०, पृ० १३।

उचाट—संज्ञा पुं० [सं० उच्चाट] १ मन का न लगना। विरक्ति। उदासीनता। अनमनापन। उ०—(क) न जाने क्यो आजकल चित्त उचाट रहता है। (क) सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु। रचि प्रपंच माया प्रवल, भय, भ्रम, अरति उचाटु॥ —मानस, २।२६४। (ख) प्रथम कुमति करि कपट सकेला। सो उचाट सब के सिर मेला।—तुलसी (शब्द०)। (ग) मोहन लला को सुन्यो चलत विदेस भयो मोहनी को चारु चित निपट उचाट मे।—मतिराम (शब्द०)।

उचाटन(पु)— संज्ञा पुं० [सं० उच्चाटन] दे० 'उच्चाटन'। उ०—मारन मोहन उचाटन वसिकरन मनहिं माहिं पछिताई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८।

उचाटना—क्रि० स० [सं० उच्चाटन] उच्चाटन करना। हटाना। ध्यान तोडना। विरक्त करना। जैसे—उसने हमारा चित्त उचाट दिया।

उचाटी—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्चाट, हिं० उचाट+ई (प्रत्य०)] उचाट। उदासीनता। अनमनापन। विरक्ति। उ०—दामरथी लिखमण सुत दशरथ, दोऊ सुणे सिधारे दसरथ। दीह उचाटी कीधे दशरथ, दीधो प्राण पठाडी दशरथ॥—रघु० रू०, पृ० ११२।

उचाटू—वि० [हिं० उचाट+ऊ (प्रत्य०)] १ उचाट करनेवाला। मन को उदास करनेवाला। २ उदास। अनमना।

उचाडना—क्रि० स० [हिं० उचडना] १ लगी या सटी हुई चीज को अलग करना। नोचना। २ उखाडना।

उचाढो(पु)—वि० स्त्री० [सं० उच्चटित] उचाट। उदासीन। अनमना। विरक्त। उ०—सखी सग की निरखति यह छवि भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी। सूरदास प्रभु के रसवस सब भवन काज तें भईं उचाढी॥—सूर०, १०।७३६।

उचान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ऊँचान'।

उचाना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] १ उठाना। 'उँचाना'। उ०—मोहन मोहनी रस भरे। दरकि कचुकि, तरकि माला, रही धरणी जाइ। सूर प्रभु करि निरखि करुणा तुरत लई उचाइ।—सूर (शब्द०)। २ ऊपर उठाना। ऊँचा करना। उ०—सुनि यह श्याम विरह भरे। मखिन तब भुज गहि उचाए बावरे कत होत। सूर प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो अपने गोत।—सूर (शब्द०)।

उचापत†, उचापति†—संज्ञा पुं० [देश०] १ वनिए का हिसाब किताब। उठान। लेखा। उ०—मूल दास सौं बहुत कृपाल। करै उचापति सौंपै माल—अर्ध०, पृ० २। जो चीज वनिए के यहाँ से उधार ली जाय।

उचार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्चार] कथन। उच्चारण। उ०—मानुस देही पाप का, किया न नाम उचार।—दरिया० बानी, पृ० ८।

उचारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्चारण] दे० 'उच्चारण'।

उचरना¹(पु)—क्रि० स० [सं० उच्चारण] उच्चारण करना। मुँह से शब्द निकालना। बोलना। उ०—पकरि लियो छन माँझ असुर बल डारयो नखन बिदारी। रुधिर पान करि माल आँत धरि जय जय शब्द उचारी।—सूर (शब्द०)।

उचरना²—क्रि० स० [सं० उच्चाटन] उखाडना। नोचना। उ०—(क) वृक्ष उचारि पेडि सो लीन्ही। मस्तक झार तार मुख दीन्ही।—जायसी (शब्द०)। (ख) ऋषी क्रोध करि जटा उचारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।—सूर (शब्द०)।

उचालना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उचाडना'।

उचावा—संज्ञा पुं० [सं० उच्चावच] सपने मे बकना। बर्राना।

उचास—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँचा+आस (प्रत्य०)] उँचाई। ऊँचास उ०—जण अपणाय गया तारण जग चित्रकूट गिर सिखर उचास।—रघु० रू०, पृ० १३०।

उचित—वि० [सं०] [संज्ञा औचित्य] १ योग्य। ठीक। उपयुक्त। मुनासिव। वाजिव। २ परपरित (को०)। ३ सामान्य (को०)। ४ प्रशसनीय (को०)। ५ आनदकर (को०)। ६ अनुकूल (को०)। ७ ज्ञात (को०)। ८ विश्वसनीय (को०)। ९ ग्राह्य (को०)। १० सुविधाजनक (को०)।

यौ०—उचितज्ञ=उचित या विहित का ज्ञाता।

उचिष्ट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उच्छिष्ट] दे० 'उच्छिष्ट'। उ०—(क) अनेक ग्रथ तिन वरन वत यौं उचिष्ट मति मैं लहिए।—पृ० रा०, १।१५। (ख) सत उचिष्ट वार मन झेरा। दुरलभ दीन दुहेला।—घट०, पृ० २०१।

उचेडना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उचाडना'।

उचेरना, उचेलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकेलना', 'उचाडना'। उ०—देह आप करि मानिया महा अज्ञ मतिमद। सुदर निकसै छीलकै जबहि उचेरे कद॥—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७८०।

उचैहा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'उचौंहा'।

उचौंहा, उचौंहा(पु)—वि० [हिं० ऊँचा+औंहा (प्रत्य०)] [स्त्री० उँचौंही] ऊँचा उठा हुआ। उभडा हुआ। उ०—आजु कालि दिन द्वैक तें भई और ही भाँति। उरज उचौहैं दै उरू तनु तकि तिया अन्हाति।—पदमाकर (शब्द०)।

उच्चड—वि० [सं० उच्चण्ड] १. प्रचड। उग्र। २ तेज। तीव्र। ३ अत्यत क्रुद्ध। ४ उतावला (को०)।

उच्चंद्र—संज्ञा पुं० [सं० उच्चन्द्र] रात्रि का अतिम भाग जब चद्रमा नही रहता। रात्रिशेप (को०)।

उच्च—वि० [सं०] १ ऊँचा। २. श्रेष्ठ। वडा। महान। उत्तम। जैसे,—(क) यहाँ पर उच्च और नीच का विचार नही है। (ख) उनके विचार बहुत उच्च हैं। ३ तार नाम का सप्तक जो शेप दोनो सप्तको से ऊँचा होता है (सगीत)। ४ प्रभावशील। ५. उच्चपदासीन (को०)।

उचकन—संज्ञा पुं० [सं० उच्च+कृत्>हिं० उचक से उचकन] ईंट, पत्थर आदि का वह टुकड़ा जिसे नीचे देकर किसी चीज को ऊँची करते हैं। जैसे, चूल्हे पर चढे हुए बरतन के पेंदे के नीचे दिया हुआ खपड़ैल का टुकड़ा अथवा खाते समय थाली को एक ओर ऊँचा करने के लिये पेंदी के नीचे रखी हुई लकड़ी।

उचकना¹—क्रि० अ० [सं० उच्च=ऊँचा+करण=करना] १. ऊँचा होने के लिये पैर के पंजों के बल एँड़ी उठाकर खड़ा होना। कोई वस्तु लेने या देखने के लिये शरीर को उठाना और सिर ऊँचा करना। जैसे,—(क) दीवार की आड़ से क्या उचक उचककर देख रहे हो। (ख) वह लड़का टोकरे में से आम निकालने के लिये उचक रहा है। उ०—सुठि ऊँचे देखत वह उचका। दृष्टि पहुँच पर पहुँच न सका।—जायसी (शब्द०)। २. उछलना। कूदना। उ०—यों कहिकै उचकी परजक ते पूरि रही दृग वारि की बूँदे।—देव (शब्द०)।

उचकना²—क्रि० स० उछलकर लेना। लपककर छीनना। उठाकर चल देना। जैसे—जो चीज होती है तुम हाथ से उचक ले जाते हो।
संयो० क्रि०—ले जाना।

उचकना³—संज्ञा पुं० उचकने की क्रिया या भाव।

उचका(पु)—क्रि० वि० [हिं० औचक या अचाका] अचानक। सहसा। उ०—ज्यों हरनिन की होत हुँकाई, उचका उठै बाघ बिरझाई।—लाल (शब्द०)।

उचकाना—क्रि० स० [हिं० 'उचकना'] उठाना। ऊपर करना। उ०—स्याम लियो गिरिराज उठाइ। सत्य वचन गिरि देव कहत हैं कान्ह लेहि मोहि कर उचकाइ।—सूर०, १०। ८७१।

उचकैयाँ(पु)—वि० [हिं० उचक+ऐया (प्रत्य०)] उछलयुक्त। उचकता हुआ। उ०—जा गिर तें चढि कुलाँच लीनी उचकैयाँ।—नंद० ग्र०, पृ० ३२९।

उचकौंही(पु)—वि० [हिं० उचक+औंहीं (प्रत्य०)] उचकनेवाली। उ०—लचकौंहीं सो लक उर, उचकौंही सो ऐन, विहसौंहे से वदन मैं, लसत नचौंहैं नैन।—मति० ग्र०, पृ० ४४६।

उचक्का—संज्ञा पुं० [हिं० उचकना से] [स्त्री० उचक्की] १. उचककर चीज ले भागनेवाला। चाई। ठग। जैसे, मेलों में चोर उचक्के बहुत जाते हैं। २ बदमाश। लुच्चा। उठाईगीरा। उ०—बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकट, लठबाँसी।—सूर०, १। १८६।

उचटना—क्रि० अ० [सं० उच्चाटन] १ उचड़ना। जमी हुई वस्तु का उखड़ना। उ०—लक लगाई दई हनुमत विमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै। पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि रानी रटै पानी पानी दुखी ह्वै।—केशव (शब्द०)। २ अलग होना। पृथक होना। छूटना। उ०—अति अगिनि झार भभार धुधार करि उचटि अगार झझार छायो।—सूर, १०।५९६। ३. भड़कना। बिचकना। जैसे,—तुम्हारा गाहक उचट गया। ४ विरक्त होना। हटना। जैसे—जी उचटना (शब्द०) ५. खुलना। उ०—जागहु जागहु नदकुमार। रवि बहु चढ्यो रैंनि सब निघटी उचटे सकल किवार।—सूर०, १०। ४०८।

उचटाना(पु)—क्रि० स० [सं० उच्चाटन] १ उचाड़ना। अलग करना। बिखेरना। नोचना। २. पृथक् करना। छुड़ाना ३ उदासीन करना। खिन्न करना। विरक्त करना। उ०—नैननि हरि कौं निठुर कराए। चुगली करी जाइ उन आगैं हमतें वे उचटाए।—सूर०, १०। २३३४। ४ भड़काना। बिचकाना। उ०—चहती उचटायो, सोर मचायो, सब मिलि यासो बीचु हरैं।—गुमान (शब्द०)।

उचटावना(पु)—क्रि० स० [हिं० उचटाना]। दे० 'उचटाना'।

उचड़ना—क्रि० अ० [सं० उच्चारण, प्रा० उच्चाडण] १. सटी या लगी हुई चीज का अलग होना। पृथक् होना। २ किसी स्थान से हटना या अलग होना। जाना। भागना। जैसे—कौआ, यदि हमारे भैया आते हो तो उचड़ जा (स्त्री०)।

विशेष—जब घर का कोई विदेश मे रहता है तब स्त्रियाँ शकुन द्वारा उसके आने का समय विचारा करती हैं। जैसे, यदि कौआ खपड़ैल पर आकर बैठता है तो उससे कहती हैं कि यदि 'अमुक आते हो तो उचड़ जा'। यदि कौआ उड़ गया तो समझती हैं कि विदेश गया हुआ व्यक्ति शीघ्र आएगा।

उचना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० उच्च से नामिक धातु] १ ऊँचा होना। ऊपर उठना। उचकना। उ०—अँगुरिन उचि, भरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल, रुचि सो दुहूँ दुहूँनु के चूमे चारु कपोल।—बिहारी र०, दो० ५०५। २. उठना। उ०—(क) इतर नृपति जिहि उचत निकट करि देत न मूठ रिती।—सूर० (शब्द०)। (ख) औचक ही उचि ऐंचि लई गहि गोरे बड़े कर कोर उचाइकै।—देव (शब्द०)।

उचना²—क्रि० स० [सं० उच्च] ऊँचा करना। ऊपर उठाना। उठाना। उ०—(क) हँसि ओठनु बिच, करु उचै, किये निचौंहैं नैन, खरैं अरैं प्रिय कै प्रिया लगी बिरी मुख दैन। बिहारी र०, दो० ६२७। (ख) भौंह उचै आँचर उलटि मोरि मोरि मुहँ मोरि। नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सों जोरि।—बिहारी (शब्द०)।

उचनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्च] उभाड़। उठान। उ०—(क) परी दृष्टि कुच उचनि पिया की वह सुख कह्यो न जाई। अगिया नील माँडनी राती निरखत नैन चुराई। सूर० (शब्द०)। (ख) चिबुक तर कठ श्रीमाल मोतीन छवि कुच उचनि हेम गिरि अतिहि लाजै। सूर० (शब्द०)।

उचरंग†—संज्ञा पुं० [हिं० उछरना+अग] उड़नेवाला कीड़ा। पतग। फतिंगा।

उचरना¹(पु)—क्रि० स०[सं० उच्चारण] उच्चारण करना। बोलना। मुँह से शब्द निकालना। उ०—चढि गिरि शिखर शब्द इक उचरयो गगन उठ्यो आघात, कपत कमठ शेष वसुधा नभ रवि-रथ भयो उतपात।—सूर० (शब्द०)।

उचरना²—क्रि० अ० १. शब्द होना। मुँह से शब्द निकालना।

उचरना³—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उचड़ना'।

उचरना³(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उछलना'। उ०—आँसु धरन हित दुष्ट मँजारी, मो परि उचरि परी दइमारी।—नंद० ग्र०, पृ० १४८।

उघटा[1]—वि० [हिं० उघटना] उघटनेवाला। किए हुए उपकार को बार बार कहनेवाला। एहसान जतानेवाला। जैसे—नकटे का खाइए उघटे का न खाइए।

उघटा[2]—संज्ञा पुं० [स०] उघटने का कार्य।

उघडना—क्रि० अ० [स० उद्घाटन प्रा० उग्घाडण] १ खुलना। आवरण का हटना। (आवरण के संबंध मे)। २ खुलना। आवरण रहित होना। (आवृत्त के संबंध मे)। उ०—सुपन मे हरि दरस दीन्हो, मैं न जाएयो हरि जात। नैन म्हारा उघड आया, रही मन पछतात। —संतवाणी०, पृ० ७०। ३ नंगा होना।

मुहा०—उघडकर नाचना = खुल्लमखुल्ला लोकलज्जा छोडकर मनमाना काम करना।

४ प्रगट होना। प्रकाशित होना। ५ भडा फूटना।

मुहा०— उघड पडना = खुल पडना। अपने असल रूप को खोल देना। भेद प्रकट कर देना। दे० 'उघटना'।

उघन्नी†— संज्ञा [स० उद्घाटिनी, हिं० उघारिनी] ताली। कुंजी। चाभी।

उघरना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्घाटन, पा० उग्घाडण] १ खुलना। आवरण का हटना (आवरण के संबध मे)। उ० (क) जैसे—सपनो सोइ देखियत तैसो यह संसार। जात विलय ह्वै छिनक मात्र मे उघरत नैन किवार।—सूर० (शब्द०)। (ख) सूरदास जसुमति के आगे उघरि गई कलई।—सूर० (शब्द०)। २ खुलना। आवरणरहित होना (आवृत के संबध मे)। उ०—उघरहिं विमल विलोचन ही के।—मानस, १।१ नंगा होना।

मुहा०—उघरकर नाचना = लोकलज्जा छोडकर खुल्लमखुल्ला मनमाना काम करना। उ०—(क) अब हौं उघरि नच्यो चाहत हौं तुमहि विरद विन करिहौं।—सूर०, (विनय) १३४। (ख) दुविधा उर दूरि भई गई मति वह काँची। राधा तें आपु विवस भई उघरि नाँची।—सूर, १०। १९१०। ४ प्रकट होना। प्रकाशित होना। उ०—(क) छतो नेहु कागर हियें भई लखाइ न टाँकु। विरह तचें उघरचौ सु अब सेंहुड कैसो आँकु।—विहारी र०, दो० ४५७। (ख) ज्यो ज्यो मद लाली चढ़ै त्यो त्यो उघरत जाय।—विहारी (शब्द०)। ५ असली रूप मे प्रकट होना। असलियत का खुलना। भडा फूटना। उ०—(क) चरन चोच लोचन रगौ चलौ मराली चाल। छीर नीर विवरन समय वक उघरत तेहि काल।—तुलसी (शब्द०)। (ख) उघरहिं अंत न होइ निवाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥—मानस, १।७। (ग) दाई आगें पेट दुरावति, वाकी बुद्धि आजु मैं जानी। हम जानहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी—सूर०, १०।१७२३।

उघरनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उघन्नी'।

उघरानी‡—संज्ञा स्त्री० [स० उदग्रहण *अप० उगहरण] दे० 'उगाही'। उ०—म्हारी'। गगरी उघराणी डूब जासी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५७।

उघरारा[1](पु)†-संज्ञा पुं० [हिं० उघड़ना, उघरना] [स्त्री० उघरारी] खुला हुआ स्थान। उ०—(क) पावस वरषि रहे उघरारें, सिसिर समय बसि नीर मझारें।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) रग गयो उखरि कुरग भयो परे परे, डारे उघरारे मारे फूक के उडत है। काशी राम राम सो परशुराम ऐसो कहतो तोरते धनुष ऐसे ऐसे वलकत है।—हनुमन्नाटक (शब्द०)।

उघरारा(पु)†[2]—वि० खुला हुआ। खुला रहनेवाला।

उघरावना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उगाहना'। उ०—अटक गोपी मही दाण उघरावजै पावजै अधर रस गोरधन पास।—बाँकी ग्र० अ० ३, पृ० ११९।

उघाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उगाही] दे० 'उगाही'। उ०—माडे और उघाई आदि की भूली भुलाई रस्मो को लोग ऊपर चट कर जाते थे।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० ३७४।

उघाडना—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडण, उघाडण] १ खोलना। आवरण का हटाना (आवरण के संबध मे)। २ खोलना। आवरणरहित करना (आवृत के संबध मे)। ३ नंगा करना। ४ प्रकट करना। प्रकाशित करना। ५ गुप्त वात को खोलना। भडा फोडना।

उघाना†(पु)—क्रि० स० [सं० उद्ग्रहण] 'उगाहना'। उ०—सो तहाँ वैष्णवन सो जाइकै मिलैगो तब वैष्णव तोको भेंट उघाय देइँगे।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ११९।

उघार[1]—संज्ञा पु० [हिं० उघारना] उघारने की क्रिया या भाव।

उघार[2]— संज्ञा पु० [हिं० ओहार] परदा। आवरण।

उघारना(पु)—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडण] १ खोलना। ढाँकनेवाली चीज को दूर करना (आवरण के संबध मे)। उ०—आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहि कपाट उघारी॥—मानस, ७।११८। २ खोलना। आवरणरहित करना। नंगा करना (आवृत के संबध मे)। उ०—(क) तव शिव तीसर नयन उघारा, चितवत काम भयेउ जरि छारा। —मानस, १।८७। (ख) विदुर शस्त्र सब तहीं उतारी, चल्यो तीरथनि मुंड उघारी।—सूर० (शब्द०)। (ग) मनहुँ काल तरवारि उघारी।—तुलसी (शब्द०)। ३ प्रकट करना। प्रकाशित करना। ४ कुआँ खोदने के लिये जमीन की पहली खोदाई।

उघारा—वि० [हिं० उघारना] उघडा हुआ। आवरणहीन। नंगा। निर्वस्त्र।

उघेडना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उघाडना'।

उघेलना(पु)—क्रि० स० [हिं० उघारना] खोलना। उ०-कित तीतिर वन जीभ उघेला। सो कित हेकरि फाँद गिउँ मेला। —जायसी ग्र०, पृ० २८।

उचत—संज्ञा पु० [हिं० उचाना = उठाना, लेना] ऊपर ही ऊपर लेन देन करना। ऊपर ही ऊपर सामान्य लिखापढ़ी पर धन लेना।

उचतखाता—संज्ञा पु० [हिं० उचत + खाता] वही या पंजी मे वह खाता जिसमे उचत मे दिया गया धन लिखा जाता है।

उच(पु)— वि० [स० उच्च] दे० 'उच्च'। उ०—कसे कचुकी मैं दुवौ उच कुच करत विहार, गुमज के गजकुंभ के गरभ गिरावनहार —सं० सप्तक, पृ० ३५३।

उगैरा†—अव्य० [हिं०] दे० 'वगैरह'। उ०—भारी अगै उगैरा भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा।—बांकीदास ग्रं०, ३। १०३।

उग्ग(पु)—वि० [स० उग्र, प्रा० उग्ग] दे० 'उग्र'। उ०—तजो अब उग्ग असेप सुभाव। करो सब उप्पर क्षोभ सुचाव॥—हम्मीर रा०, पृ० ८।

उग्गना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्गमन, प्रा० उग्गमण, उग्गवण, उग्गण] दे० 'उगना'। उ०—पच्छिम सूरज उग्गवै, उलटि गंग वह नीर।—हम्मीर रा०, पृ० ५७।

उग्गरना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्गरण] दे० 'उगरना' उ०—इते उग्गरे कदल चद कव्वी। पृ० रा०, २५। ७६४।

उग्गार(पु)—संज्ञा पुं० [स० उद्गार, प्रा० उग्गार] दे० 'उद्गार'।

उग्गाहा—सज्ञा पु० [स० उद्गाथा, प्रा० उग्गाहा] आर्या छंद के भेदो में से एक। इसका दूसरा नाम गीति भी है। इसके विषम चरणों में १२-१२ मात्राएँ और सम चरणों मे १८-१८ मात्राएँ होती हैं। विषम गणों मे जगण न होना चाहिए। उ०—रामा रामा रामा, आठो जामा जपौ यही नामा। त्यागो सारे कामा पैहौ अतं हरी जु को धामा (शब्द०)।

उग्र¹—वि० [स०] १ प्रचड। उत्कट। २ तेज। तीव्र। ३. कडा। प्रबल। ४ घोर। रौद्र। ५ कोपनशील। उ०—कोई उग्र कोई क्षुद्र कहावै कोई जीव कोई नरिपर खावै।—कबीर सा०, पृ० ६।३। ६ उच्च (को०)। ७ परिश्रमी (को०)।

उग्र²—सज्ञा पु० [स्त्री० उग्रा] १ महादेव। रुद्र। २ वत्सनाग विष। बच्छनाग जहर। ३ क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न एक सकर जाति। ४ उग्र सज्ञक पांच नक्षत्र अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी। ५ सहजन का पेड। मुनगा। ६ केरल देश। ७ एक दानव का नाम। ८ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९ विष्णु। १०। सूर्य। ११। रौद्र रस (को०)। १२ वायु। पवन (को०)।

उग्रक—वि० [स०] वीर। शक्तिशाली (को०)।

उग्रकर्मा—वि० [स० उग्रकर्मन्] भयकर काम करनेवाला। क्रूरकर्मा (को०)।

उग्रकांड—सज्ञा पु० [स० उग्रकाण्ड] करैला।

उग्रगंध¹—सज्ञा पुं० [स० उग्रगन्ध] १. लहसुन। २. कायफल। ३. हींग। ४ बर्बरी। ममरी। ५. चपा।

उग्रगंध²—वि० [स०] तीव्र गधवाला। तेज महकनेवाला।

उग्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० उग्रगन्धा] १ अजवायन। २ आजमोदा ३ वच। ४ नकछिकनी।

उग्रचंडा—सज्ञा स्त्री० [स० उग्रचण्डा] दुर्गा (को०)।

उग्रचारिणी—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा (को०)।

उग्रज—सज्ञा पुं० [सं०] कस (को०)।

उग्रजाति—वि० [स०] नीच वश मे उत्पन्न। जारज (को०)।

उग्रता-संज्ञा स्त्री० [स०] तेजी। प्रचडता। उद्दडता। उत्कटता। उ०—इधर उग्रों को उग्रता की टेव सी पड गई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०६।

उग्रतारा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक देवी (को०)।

उग्रतेजा—वि० [स० उग्रतेजस्] प्रचड तेजस्वी। भीषण तेज से युक्त (को०)।

उग्रदंड—वि० [स० उग्रदण्ड] कठोरतापूर्वक शासन करनेवाला। कठोर। क्रूर। निर्दयी (को०)।

उग्रदर्शन—वि० [स०] जो देखने मे भयकर या डरावना हो (को०)।

उग्रधन्वा—सज्ञा पुं० [स० उग्रधन्वन्] १ इंद्र। २ शिव।

उग्रनासिक—वि० [स०] जिसकी नाक बडी हो (को०)।

उग्रपंथी- वि० [सं० उग्र + हिं० पंथी] उग्र विचारोवाला। क्रांतिकारी विचारोवाला।

उग्रपुत्र¹—वि० [स०] शक्तिशाली वश मे उत्पन्न होनेवाला (को०)।

उग्रपुत्र²—सज्ञा पुं० [स०] कार्तिकेय (को०)।

उग्ररेता—सज्ञा पुं० [स० उग्ररेतस्] रुद्र का एक रूप (को०)।

उग्रवादी—वि० [स० उग्र + वादिन्] दे० 'उग्रपंथी'।

उग्रवीर्य—सज्ञा पुं० [स०] हीग।

उग्रशेखरा—सज्ञा स्त्री० [स०] शिव के मस्तक पर रहनेवाली गगा।

उग्रसेन—सज्ञा पु० [स०] १ मथुरा का राजा, कंस का पिता। २ राजा परीक्षित का एक पुत्र।

उग्रह—सज्ञा पु० [स० उद्ग्रह] ग्रहण से मुक्त होने का भाव। मोक्ष।

उग्रहना(पु)—क्रि० स० [हिं० उग्रह] छोडना। मुक्त करना। त्यागना। उगलना।

उग्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गा। महाकाली। २ अजवायन। ३. वच। ४ नकछिकनी। ५ उग्र स्वभाव की स्त्री। ६ धनिया। ७ कर्कशा स्त्री। ८ निषाद स्वर की दो श्रुतियो मे से पहली श्रुति।

उघटना—क्रि० अ० [स० पा० उत्कथन, उक्कथन अथवा उद्घाटन, पा० उग्घाटन] १ सगीत मे ताल की जाँच के लिये मात्राओं की गणना करके किसी प्रकार का शब्द या सकेत करना। तान देना। सम पर तान तोडना। उ०—(क) सग गोप गोधन-गन लीन्हें, नाना गति कौतुक उपजावत। कोउ गावत कोउ नृत्य करत कोउ उघटत कोउ करताल बजावत। सूर०, १०। ४७९। (ख) उघटत स्याम नृत्यति नारि। धरे अधर अपंगउपजें लेत हैं गिरधारि।—सूर०, १०। १०५९। २ गई बीती बात को उठाना। दबी दबाई बात को उभाडना। कभी के किए अपने उपकार या दूसरे के अपराध को बार बार कहकर ताना देना। जैसे (क) नकटे का खाइए उघटे का न खाइए। (ख) जो बात भूल चूक से एक बार हो गई उसे क्या बार बार उघटते हो। ४ किसी को भला बुरा कहते कहते उसके बाप दादे को भी भला बुरा कहने लगना। उ०—सब दिन कौ भरि लेउँ आजु ही तब छाडौं मैं तुमको। उघटति हौ तुम मातु पिता लौं नहिं जानति हौ हमको। सू० १०।१५०८।

होना । उ०—उगरीय जीय मानिक्क तन्न ।—पृ० रा० ५७ । २१७ ।

उगलना—क्रि० स० [सं० उदगरण, पा० प्रा० उग्गिलन] १. पेट मे गई हुई वस्तु को मुँह से बाहर निकालना । कै करना । जैसे—जो खाया पिया था सो सब उगल दिया । २ मुँह मे गई वस्तु को बाहर थूक देना जैसे—देखो निगलना मत, उगल दो । ३ पचाया माल विवश होकर वापस करना । जैसे, यार माल तो पच गया था, पर ऐसे फेर मे पड गए कि उगल देना पडा । ४ किसी बात को पेट मे न रखना । जो बात छिपाने के लिये कही जाय उसे प्रकट कर देना । जैसे—यह बडा दुष्ट मनुष्य है, जो कुछ यहाँ देखता है सब जाकर शत्रुओ के सामने उगलता है । ५ विवश होकर कोई भेद खोल देना । दबाव या सकट मे पडकर गुप्त बात बता देना । जैसे—जब अच्छी मार पडेगी, तब आप ही सब बातें उगल देगा ।

स० क्रि०—देना ।—पडना ।

६ बाहर निकालना । जैसे—ज्वालामुखी पहाड आग उगलते हैं ।

मुहा०—जहर उगलना = ऐसी बात मुँह से निकलना जो दूसरे को बहुत बुरी लगे या हानि पहुँचावे ।

उगलवाना—क्रि० स० [हिं० गलना] दे० 'उगलाना' ।

उगलाना—क्रि० स० [हिं० 'उगलना' का उ० रूप] १ मुख से निकलवाना । २ इकबाल कराना । दोष को स्वीकार कराना । ३ पचे हुए माल को निकलवाना । ४ डर, दबाव आदि से विवश कर भेद खुलवाना ।

उगवनाⓅ—क्रि० स० [हिं० उगना] १ उगाना । उदय करना । २ उत्पन्न करना ।

उगसानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकसाना' ।

उगसारनाⓅ—क्रि० स० [हिं० उकसाना] बयान करना । कहना । प्रकट करना । खोलना । उ०—सगै राजा दुख उगसारा । जियत जीव ना करौ निरारा ।—जायसी (शब्द०) ।

उगहनⓅ—सज्ञा पुं० [हिं० उगना] उदित या प्रकट होने का भाव । उ०—अगहन गहन समान, गहिमत मोर शरीर ससि । दीजै दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यबल ।—नद० ग्र०, पृ० १६६ ।

उगहना[1]†—क्रि० अ० [सं० उग्रह] दे० 'उगना' । उ०—मारू सी देखी नही, अरणमुख दोय नयणाँह । थोड़ो सो भोले पडइ, दरणयर उगहनाँह ।—ढोला०, दू० ४७८ ।

उगहना[2]—क्रि० स० [हिं०] "उगाहना" ।

उगहनी†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाहना] उगाहने मे प्राप्त किया गया द्रव्य या वस्तु । चदा । उगाही ।

उगाना[1]—क्रि० स० [हिं० उगना] १ जमाना । अकुरित करना । (पौधा या अन्न आदि) उत्पन्न करना । २ उदय करना । प्रकट करना । उ०—ज्यो जल मधि सो लहिर उगाई, तिमि परमातम आतम आई ।—कबीर सा०, पृ० १००० ।

उगाना[2]†—क्रि० स० [सं० उद्घात प्रा० उग्घाग्र] मारने के लिये कोई वस्तु उठाना । तानना । उम्राना ।

उगारⓅ—सज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'उगाल' । २ धीरे धीरे निचुडकर इकट्ठा हुआ पानी । ३ निचोड़ा हुआ पानी । ४. कपड़ा रँगने पर बचा हुआ रग जो फेक दिया जाता है । ५ मुख मे चबाई हुई वस्तु । उ०—सो ताही समै श्री गुसाई जी आप अपनो चर्वित उगार हरिजी को दिए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५० ।

उगारना[1]—क्रि० स० [सं० उद्धार] उद्धार करना । रक्षा करना । उबारना । बचाना । उ०—सबै दुष्ट भजे सुसेवक उगारे । करे काम निज धाम नरहर पधारे ।—पृ० रा०, २।२१२ ।

उगारना[2]—क्रि० स० [सं० उद्गलन] कुएँ की मिट्टी या खराब पानी आदि निकालकर सफाई करना ।

उगारना[3]†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकासना' ।

उगाल—सज्ञा पुं० [सं० उद्गाल, पा० उग्गाल] १ पीक । थूक । खखार । उ०—अभी उगाल दास को दीजे, जन को परम कल्यान ।—धरम०, पृ० ३० । २ पुराने कपडे (ठगो की बोली) ।

उगालदान—सज्ञा पुं० [हिं० उगाल + फा० दान (प्रत्य०)] थूकने या खखार आदि गिराने का बरतन । पीकदान । उ०—आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अनजान कुत्ते को मारता है ।—भारतेंदु ग्र०, १, पृ० ५६७ ।

उगाला[1]—सज्ञा पुं० [हिं० उगाल] एक प्रकार का कीडा जो अनाज की फसल को हानि पहुँचाता है ।

उगाला[2]†—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाल] वह जमीन जो सर्वदा पानी से तर रहे । पनमार ।

उगाहना—क्रि० स० [सं० उद्ग्रहण, प्रा० उग्गाहण] १ वसूल करना । बहुत से आदमियो से स्वीकृत नियमानुसार अलग अलग धन आदि लेकर इकट्ठा करना । उ०—(क) वह चपरासी चदा उगाहने गया है । (ख) लेखौ करि लीजै मनमोहन दूध दही कछु खाहु । सद माखन तुम्हरेहि मुखलायक, लीजै दान उगाहु ।—सूर०, १० । १५६५ । २ चदा करना । सार्वजनिक कार्य के लिये द्रव्य एकत्रित करना ।

संयो क्रि०—डालना । —देना ।—लेना ।

उगाही—सज्ञा स्त्री० [हिं० उगाहना] १ भिन्न भिन्न लोगो से उनके स्वीकृत नियमानुसार अन्न धन आदि लेकर इकट्ठा करने का कार्य । रुपया पैसा वसूल करने का काम । वसूली । २ वसूल किया हुआ रुपया पैसा । ३. जमीन का लगान । ४ एक प्रकार का रुपए का लेन देन जिसमे महाजन कुछ रुपए देकर ऋणी से तब तक महीने महीने या सप्ताह सप्ताह कुछ वसूल करता रहता है जब तक उसका रुपया ब्याज सहित वसूल न हो जाए । ५ चदा आदि के रूप मे एकत्रित किया गया द्रव्य ।

उगिलनाⓅ†—क्रि० स० [सं० उद्गिरण प्रा० उग्गिरण] दे० 'उगलना' उ०—ब्राह्मन ज्यो उगिल्यो उरगारि हौं त्यो ही तिहारे हिये न हितैंहौं ।—तुलसी ग्र०, पृ० २२२ ।

उगिलवानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० उगिलना का० प्रे० रूप] दे० उगलवाना ।

उगिलानाⓅ—क्रि० स० [हिं० उगिलना का प्रे० रूप] दे० 'उगलाना' ।

दाहिने पैर को अपने दाहिने पैर मे फँसाकर कमर तक ऊपर उठाते हैं और अपना दाहिना हाथ विपक्षी की पसलियों से ले जाकर उसकी गर्दन पर चढाते हैं और दबाकर चित करते हैं।

४. विपक्षी को गिराने के लिये उसकी टाँगों मे घुस जाना।

मुहा०—उखाड पछाड़=(१) अदल बदल। इधर का उधर। उलट पलट। उ०-इसका उखाड पछाड ठीक नहीं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २११ (२) इधर की उधर लगना। लगाई लुतरी चुगलखोरी।

उखाडना—क्रि० स० [हिं० उखडना] किसी जमी, गडी या बैठी वस्तु को स्थान मे पृथक् करना। उत्पाटन करना। जैसे (क) हाथी ने बाग के कई पेड उखाड डाले। (ख) उसने मेरी अँगूठी का नगीना उखाड़ दिया। २ अग के जोड से अलग करना। जैसे कुश्ती में एक पहलवान ने दूसरे की कलाई उखाड दी। ३ जिस कार्य के लिये जो उद्यत हो उसका मन सहसा फेर देना। भडकाना। बिचकाना। जैसे तुमने आकर हमारा गाहक उखाड दिया। ४. तितर बितर कर देना। जैसे, उस दिन मेह ने मेला उखाड दिया। ५. हटाना। टालना। जैसे, उसे यहाँ से उखाडो तब तुम्हारा रग जमेगा। ६ नष्ट करना। ध्वस्त करना। उ०-भुजाओं से वैरियों को उखाड़नेवाले दिलीप। —लक्ष्मण (शब्द०)।

मुहा०—कान उखाडना=(१) किसी अपराध के दड मे जोर से कान मलना या खींचना। कान गरम करना। (२) धमकाना।

विशेष—विशेषकर शिक्षक और माँ बाप नटखट लड़कों के कान मलते हैं।

गड़े मुर्दे उखाड़ना=पुरानी बातों को फिर से छेड़ना। गई बीती बात को उभाडना। पैर उखाड देना=स्थान से विचलित करना। हटाना। भगाना। जैसे—सिक्खों ने पठानों के पैर उखाड दिए।

उखाडू—वि० [हिं० उखाड़ना] १ उखाडनेवाला। २ चुगलखोर। इधर की उधर लगानेवाला।

उखारना(पु)—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना] दे० 'उखाडना'। उ०—लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलब न लायो। तुलसी ग्र ०, पृ० १९६।

उखारी—सज्ञा स्त्री० [हिं० ऊख] ईख का खेत। उ० तपै मृगसिरा बिलखैं चारि। बन बालक औ भैंस उखारि। (शब्द०)।

उखालिया—सज्ञा पुं० [स० उष +काल] प्रातःकाल का भोजन। सहरगही। सरगही।

उखाव—सज्ञा पुं० [हिं० उख] दे० उखारी।

उखेड—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उखाड'।

उखेड़ना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उखाडना'। उ० (क) मेरे सैयाद जालिम ने उखेडे बालोपर अपने। कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६६२। (ख) काम हो कान के उखेड़े जो। तो घुमेडें न पेट मे छूरी। चुभते०, पृ० ५४।

उखेड़वाना—क्रि० स० [हिं० उखड़ना का प्रेर० रूप] उखडने के लिये नियुक्त करना। उखड़वाना।

उखेरना(पु)—क्रि० स० [हिं० उखेड़ना] नोचकर अलग करना। उ०—(क) इतनी सुनत जसोदानदन गोवर्धन तन हेरो। लियो उठाइ, सैल भुज गहि कै, महि तैं पकरि उखेरो सूर०, १०। ८६८। (ख) ज्यौं दिवाल गीली पर काँकर डारत ही जु गडे रे। सूर लटकि लागे अँग छवि, पर निठुर न जात उखेरे। सूर०, १०। २२२३।

उखेरा†—सज्ञा पुं० [सं० ईक्षु] ईख। ऊख।

उखेलना(पु)—क्रि० स० [सं० उल्लेखन] उरेहना। लिखना। (तस्वीर) खींचना। उ०—चचा चित्र रचो बहु भारी चित्रही छोडि चेतु चित्रकारी। जिन यह चित्र विचित्र उखेला। चित्र छोडि तू चेत चितेला।—कबीर (शब्द०)।

उख्य—सज्ञा पुं० [स०] हाँडी मे पकाया मास जिनकी आहुतियाँ यज्ञों मे दी जाती थी।

उगजोग्रा—संज्ञा पुं० [देश०] परतेले के रंग मे कपडे को बार बार डुबाने की क्रिया।

उगटना(पु)—क्रि० अ० [स० उद्घाटन] १ उघटना। बार बार कहना। उ०—उगटहि छद प्रबंध गीत पद राग तान बधान। सुनि किन्नर गधर्व सराहत बिथकहि बिबुध बिमान।—तुलसी (शब्द०)। २ ताना मारना। बोली बोलना।

उगदना†—क्रि० अ० [स० उद्+गद=कहना, हिं० उकटना] कहना। बोलना। (दलाल)।

उगना—क्रि० अ० [स० उद्गमन, पा० उग्गवन] १ निकलना। उदय होना। प्रकट होना। जैसे—वह देखो सूरज उगा। उ०—भन विद्यापति उगत सेविग्र मदन चितयु आउ।—विद्यापति, पृ० २२७। २. जमाना। अकुरित होना। जैसे—खेत में धान उग आए।

संयो०—क्रि० आना।—उठना।—जाना।—पड़ना।

३. उपजना। उत्पन्न होना। उ०—बिछुरता जब भेटै सो जानै जेहि नेह। सुक्ख सुहेला उगवै दुःख झरै जिमि मेह। जायसी (शब्द०)। ४. अधिक आकर्षक प्रतीत होना। शोभित होना। सुदर लगना।

उगनीस—वि० [सं० एकोनविंशति, प्रा० अउणवीस, एगूणवीस, हिं० उन्नीस] उन्नीस। एक कम बीस। उ०—नव गज दस गज गज उगनीसा, पुरिया एक तनाई। सात सूत दे गड बहत्तरि, पाट लगी अधिकाई॥—कबीर ग्र ०, पृ० १५३।

उगमना†—क्रि० अ० [स० उद्गमन प्रा० ऊग्गमण] उगना। उदित होना। उ०—सूरज पछिम किम उगमई।—बी० रासो०, पृ० ६०।

उगमन—सज्ञा पुं० [स० उद्गमन] पूर्व दिशा, जिधर से सूरज निकलता है।

उगरना¹†—क्रि० अ० [स० अग्र या उद्गरण] १ सामने आना। निकलना। उ०—गवन करै कहँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बड़ होई।—जायसी (शब्द०)। २. कुएँ के स्रोत के पानी का बाहर आना। जैसे कुआँ उगरना।

उगरना²†—क्रि० अ० [हिं० उबरना] बचना। रक्षा होना। सुरक्षित

उक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ भिन्न भिन्न देवताओं के वैदिक स्तोत्र। २ यज्ञ मे वह दिन जब उक्थ का पाठ होता है। ३ प्राण। ४ ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

उक्थी—वि० [सं० उक्थिन्] स्तोत्रो का पाठ करनेवाला [को०]।

उक्दा—संज्ञा पुं० [अ० उक्दह्] १ ग्रंथि। गाँठ। २ भेद। रहस्य। उ०— यह वह उक्दा है जो किसी से अब तक नही खुला प्यारे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०२।

उक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १ जल छिडकने की क्रिया। २. जल से अभिषेक करना [को०]।

उक्षा—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २. बैल। ३. सोम (को०)। ४ मरुत (को०)। ५ अग्नि (को०)। ६ ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि (को०)।

उक्षाल[1]—वि० [सं०] १ तेज। क्षिप्र। वेगयुक्त। २ विशाल। श्रेष्ठ [को०]।

उक्षाल[2]—संज्ञा पुं० कपि। बदर [को०]।

उक्षाल[3]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० उछाल] उछाल। छलाँग। कूद। उ०—पलानैं तहाँ तेज ताजी तुरगा। परैं उच्च उक्षाल मानो कुरगा।—प० रा०, पृ० १६७।

उखटना[1]—क्रि० अ० [सं० उत्कर्षण] १ लडखडाना। चलने मे इधर उधर पैर रखना।

उखटना[2]—क्रि० स० [उत्खण्डन, प्रा० उक्खडण] खोटना। कुतरना।

उखडना—क्रि० अ० [सं० उत्कृष्ट, पा० उक्कक्ख अथवा सं० उत्खनन, पा० उक्खडन] १ किसी जमी या गडी हुई वस्तु का अपने स्थान से अलग हो जाना। जड सहित अलग होना। खुदना। जमना का उलटा। जैसे—आँधी आने से यह पेड जड से उखड गया। २ किसी दृढ स्थिति से अलग होना। जैसे—अँगूठी से नगीना उखड गया। ३ जोड से हट जाना। जैसे—कुश्ती मे उसका एक हाथ उखड गया। ४ (घोडे के सबध मे) चाल मे भेद पडना। तार या सिलसिले का टूटना। जैसे—यह घोडा थोडी ही दूर मे उखड जाता है। ५ सगीत मे बेताल और बेसुर होना। जैसे—वह अच्छा गवैया नही है, गाने मे उखड जाया करता है। ६ ग्राहक का भडक जाना। जैसे—दलालो के लगने से गाहक उखड गया। ७. एकत्र या जमा न रहना। तितर बितर हो जाना। उठ जाना। जैसे—वर्षा के कारण मेला उखड गया। ८ हटना। अलग होना। जैसे—जब वह वहाँ से उखडे तब तो किसी दूसरे की पहुँच वहाँ हो। ९ टूट जाना। जैसे—तुक्कल हत्थे पर से उखड गई। १० सीवन या टाँके का खुलना।

सयो० क्रि०—आना।—जाना।—पडना।

११ परस्पर की बातचीत में क्रोध या आवेश मे आना (बोल०)

मुहा०—उखड़ी उखडी बातें करना=बेलौस बातें करना। उदासीनता दिखाते हुए बात करना। विरक्तिसूचक बात करना। उखडी पुखड़ी सुनाना=ऊँचा नीचा सुनाना। अडबड सुनाना। उखाड़ी उखड़ना=कुछ किया हो सकना। जैसे—यहाँ तुम्हारी कुछ भी उखाड़ी न उखड़ेगी। तबीयत या मन का उखडना=किसी की ओर से उदासीनता होना। विरक्ति होना। दम उखडना=(१) बँधी हुई साँस टूटना। (२) गाते गाते या बात करते करते स्वरभग होना। (३) दम निकलना। प्राण निकलना। पैर या पाँव उखडना=(१) ठहर न सकना। एक साथ पैर जमा न रहना। जैसे—नदी के बहाव से पाँव उखडे जाते हैं। लडने के लिये सामने न खडा रहना। भागना। जैसे—वैरियो के धावे से उनके पाँव उखड गए

उखडवाना—क्रि० स० [हिं० उखाड़ना का प्रे० रूप] किसी को उखाडने मे प्रवृत्त करना।

उखदⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि, हिं० ओखध] दे० 'ओषधि'। उ०—चतुरविध वेद प्रणीत चिकित्सा। ससत्र उखद मंत्र तंत्र सुवि।—वेलि०, दू० २८८।

उखना†—संज्ञा स्त्री० [सं० उषण] मिरच। काली मिरच [को०]।

उखभोज†—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख+सं० भोज] ईख की बोआई का पहला दिन। इस दिन किसान उत्सव मनाते हैं।

उखमⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ऊष्म] गरमी। ताप।

उखमजⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० ऊष्मज] १ ऊष्मज जीव। क्षुद्र कीट। उ०—पिंडज ब्रह्म न लीन्ह बनाई। उखमज सब विश्नू ते आई।—सं० दरिया, पृ० ८। २ झगडा, बखेडा या उपद्रव करने के लिये मन मे आनवाला कुविचार (बोल०)।

उखरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख] ईख बो जाने के पीछे हल पूजने की रीति। हरपुजी।

उखरनाⓅ†—क्रि अ० [हिं० उखड़ना] दे० 'उखडना'।

उखराज†—संज्ञा पुं० [हिं० ऊख+राज] ईख की बोआई का पहला दिन। इस दिन किसान उत्सव मनाते हैं।

उखरैयाⓅ—[हिं० उखरना+ऐया (प्रत्य०)] उखाडनेवाला। उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमिधरनि के विधि बिरचे प्रभाउ जाको जमजई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१२।

उखर्वल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास [को०]।

उखली—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्‌खल, उलूखल, पा० उक्खल, प्रा० उक्खल ऊखल, ऊहल] मोढ़े के आकार का लकडी का बना हुआ एक पात्र। ओखली। काँडी।

विशेष—इसके बीच मे एक हाथ से कुछ कम गहरा गड्ढा होता है। इस गड्ढे मे डालकर भूसीवाले अनाजो की भूसी मूसल से कूटकर अलग की जाती है। कही कही ऊखली पत्थर की भी बनती है जो जमीन मे एक जगह गाड दी जाती है।

उखा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] देग। बटलोई।

उखा[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उषा] दे० 'उषा'।

उखाड—संज्ञा पुं० [हिं० उखाडना] १ उखाड़ने की क्रिया। उत्पाटन। २ कुश्ती के पेंच का तोड। वह युक्ति जिससे कोई पेंच रद किया जाता है। ३ कुश्ती का एक पेंच। उखेड। ऊचकाव।

विशेष—यह उस समय काम मे लाया जाता है जब विपक्षी पट होकर हाथ और पैर जमीन मे अड़ा लेता है। इसमें विपक्षी के

उकाव उड़ रही है कि महाराज साहेब जापान जानेवाले हैं। —(शब्द०)।

उकार—संज्ञा पुं० [सं०] १ 'उ' स्वर। २. शिव (को०)।

उकारांत—वि० [सं० उकारान्त] वह शब्द जिसके अंत मे उ हो, जैसे साधु।

उकालना ⓟ—क्रि० सं० [हिं० उकलना] दे० 'उकेलना'।

उकास†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकासना] उकासने की क्रिया या भाव।

उकासना ⓟ—क्रि० स० [हिं० उकसाना] उभाड़ना। ऊपर को फेंकना। ऊपर को खींचना। उ०—गैयाँ बिडरि चलीं जित तित को सखा जहाँ तहँ घेरें। वृषभ शृंग सो धरनि उकासत बल मोहन तन हेरें।—सूर० (शब्द०)।

उकासी ⓟ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसना] सामने से परदे का हट जाना। खुल जाना। उ०—राखी ना रहत जऊ हाँसी कसि राखी देव नैंकुक उकासी मुख ससि से उलसि उठै।—देव (शब्द०)।

उकासी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अवकाश] छुट्टी। फुरसत।

उकिठा ⓟ†—वि० [हिं० उकठा] दे० 'उकठा'। उ०—उकिठा वन फूलै हरियाय।—कबीर श०, भा० १, पृ० १२।

उकिडना†—क्रि० अ० [हिं० उकलना] दे० 'उकलना'।

उकिरना ⓟ—क्रि० अ० [सं० उत्कीर्ण] उमड़ना। ऊपर होना। उ०—रम सरस कुच कहि चद। उर उकिर आनँद कद॥—पृ० रा०, १४।१५२।

उकिलना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकलना'।

उकिलवाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'उकलवाना'।

उकिसना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकसना'।

उकीरना—क्रि० स० [सं० उत्√कृ > उत्किरण = ऊपर फेंकना, उभारदार लिखना] १ उभाड़ना। उखाड़ना। २. उचाड़ना उकेलना। ३. खोदना। ४ नक्काशी करना। उकेरना। उ०—इदु के उदोत तें उकीरी ऐसी काढ़ी सब सारस सरस सोभासार तें निकारी सी।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १६०।

उकील—संज्ञा पुं० [अ० वकील] दे० 'वकील'। उ०—प्रबल उकील नूँ जी आदर कुरब दे अवधेस।—रघु० रू०, पृ० ८१।

उकुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उकुण' (को०)।

उकुति ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—भनहि विद्यापति एहो रस गाव। अभिनव कामिनि उकुति बुझाव।—विद्यापति, पृ० २१०।

उकुति जुगुति ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति युक्ति] दे० 'उक्ति युक्ति'।

उकुरु—संज्ञा पुं० [सं० उत्कुटुक, प्रा० उक्कुडुय] दे० 'उकडूँ'।

उकुरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उकुडूँ'। उ०—झूलत पाट की डोरी गहे पटुली पर बैठन ज्यों उकुरू की।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३६१।

उकुसना ⓟ—क्रि० स० [हिं० उकासना] उजाड़ना। उधेड़ना। उ०—उकुसि कुटी तेहि छन तृण काटी। मूरति चढ़ै कित पाथर पाटी॥—रघुराज (शब्द०)।

उकेरना—क्रि० स० [सं० उत् + √कृ > किर, प्रा० उक्किरइ] लकड़ी, पत्थर लोहा आदि कड़ी चीजों पर छेनी इत्यादि से नक्काशी करना। चित्र बनाना। विशेष रूप से वेलबूटे इत्यादि बनाना।

उकेलना—क्रि० स० [हिं० उकलना, दे० उक्केल्लाविय]१ उचाडना। तह या पर्त से अलग करना। नोचना। जैसे—वहाँ का चमडा मत उकेलो, पक जायगा। २ लिपटी हुई चीज को छुडाना या अलग करना। उधेड़ना। जैसे—चारपाई की पटिया से रस्सी उकेल लो।

उकेला[1]—संज्ञा पुं० [देश०] वाना।

विशेष—गडरिए कवल बुनने मे वाना को उकेला बोलते हैं।

उकेला[2]—क्रि० स० [हिं० उकेलना] 'उकेलना' क्रिया का भूतकालिक रूप।

उकौथ,† उकौथा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उकवथ'।

उकौना†—संज्ञा पुं० [सं० उत्क + औना (प्रत्य०); देशी० ओक्किय, हिं० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री मे होनेवाली अनेक प्रकार की प्रबल इच्छाएँ। दोहद।

क्रि० प्र०—उठना।

उक्कत ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—पग मुक्कत उक्कत लिपिय। न्निप निय नयन निहारि॥—पृ० रा० ६६।२४०।

उक्कती† ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—उर भरम छेह लैणो अगम असकस उद्यम उक्कती। कर भाव पार गुण सर करण माची नामें सरस्वती॥—रा० रू०, पृ० ६।

उक्त[1]—वि० [सं०] कथित। कहा हुआ।

उक्त[2] ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—कहै मछ कवि जिकरणनूँ उक्त सदाहिज आंण।—रा० रू०, पृ० ३८।

उक्तनिर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी कही हुई बात की रक्षा या समर्थन (को०)।

उक्तप्रत्युक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ लास्य के दस अंगों मे से एक। २ (नाट्य शास्त्र के अनुसार) उक्ति प्रतियुक्ति से युक्त, उपालभ के सहित,—अलीक (अप्रिय या मिथ्या) सा प्रतीत होनेवाला और विलासपूर्ण अर्थ से सुसपन्न गान।

उक्तवाक्य[1]—वि० [सं०] जो अपना विचार या कथन कह चुका हो (को०)।

उक्तवाक्य—संज्ञा पुं० निर्णय। फैसला (को०)।

उक्तानुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] आदेशप्राप्त व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसको आदेश मिला हो (को०)।

उक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कथन। वचन। २ अनोखा वाक्य। जैसे—कवियों की उक्ति। उ०—काव्य का सारा चमत्कार उक्ति मे ही है, पर कोई उक्ति काव्य तभी है जब उसके मूल मे भाव हो।—रस०, पृ० ३। ३. महत्वपूर्ण कथन (को०)। ४. घोषणा (को०)। ५ अभिव्यक्ति (को०)।

उक्तियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] समति और उपाय। सलाह और तदबीर।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

उकठना—क्रि० अ० [सं० अव = अपवृष्ट, सूखा + < काष्ठ = लकडी)। जैसे कठियाना = कड़ा होना] सूखना। सूखकर कड़ा या चीमड हो जाना। सूखकर ऐंठ जाना। उ०—(क) कीन्हेसि कठिन पढाइ कुपाठू। जिमि न नवइ पुनि उकठि कुकाठू॥—मानस, २।२०। (ख) मधुवन तुम कत रहत हरे? कौन काज ठाढ़े रहे बन मे काहे न उकठि परे।—सूर (शब्द०)।

उकठा—वि० [अव = बुरा + काष्ठ = लकडी] शुष्क। सूखा। सूखकर ऐंठा हुआ। उ०—छोहू ते पलुहहिं उकठे रूखा। कोहू ते महि सायर सब सूखा॥—जायसी (शब्द०)।

यौ०—उकठा काठ।

मुहा०—उकठे काठ को हरा भरा बना देना = मरे हुए को जिला देना। मुर्दे को जिंदा कर देना।

उकड़ूँ—संज्ञा पुं० [सं० उत्कुटुक, प्रा० उक्कुडुग, उक्कुडुय = आसनविशेष] घुटने मोडकर बैठने की एक मुद्रा जिसमे दोनो तलवे जमीन पर पूर बैठते हैं और चूतड एँडियो से लगे रहते हैं।

क्रि० प्र०—उकडूँ बैठना।

उकढना—क्रि० अ० [सं० उत्कृष्ट > उकड्ढ + ना] दे० 'कढ़ना'। उ०—तुरग कुदाइ आगे उकढ़ि अरिगन मे गयो।—पद्माकर यह कहि ग्र०, पृ० १९।

उकत[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—याकी मत लखत न वनत जाकी मखी विचित्र। वनत न मन और उकत चुकत चितेरे चित्र।—स० सप्तक, ३७१।

उकत[२]—संज्ञा पुं० [सं० उक्ति] डिंगल मे एक प्रकार की वर्णनपद्धति। उ०—मिश्रत माँहो माँहि मिल, बाँधे उकत विशेष।—रघु० रू०, २।८८।

उकताना—क्रि० अ० [सं० अवकुलन पू० हिं० अकुताना] १ ऊबना। उ०—रोज पूडी खाते खाते जी उकता गया। (शब्द०)। २ घबडाना। आकुल होना। जल्दी मचाना। उतावली करना। उ०—उकताते क्यो हो, ठहरो, थोडी देर में चलते हैं।

सयो० क्रि०—उठना। जाना। पडना।

उकताहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकताना] अधीरता। व्याकुलता। जल्दबाजी।

उकति—संज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति'। उ०—तन सुवरन सुवरन वरन सुवरन उकति उछाह। धनि सुवरनमय ह्वै रही सुवरन ही की चाह।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०६।

उकवा—संज्ञा पुं० [अ० उकवह्] प्रलय का दिन। उ०—करामत कश्फ हक तुमना देवेगा भोत कुछ न्यामतां दर रोजे उकवा। भरे॥—दक्खिनी० पृ० ११५।

उकरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० उकडूँ'। उ०—उकरू नहिं बैठत भुमि—हम्मीर रा०, पृ० ४५।

उकलना—क्रि० अ० [सं० उत्कलन = खुलना] [क्रि० स० उकेलना, प्रे० क्रि० उकलवाना] १. तह से अलग होना। उचड़ना। पृथक् होना। २ लिपटी हुई चीज का खुलना। उधड़ना। बिखरना। उ०—ग्रीष्म ऋतु क्रीडत सुजान। पिति उकलत पेहु नम साजन॥—पृ० रा०, २५।२।

उकलवाना—क्रि० स० [हिं० उकेलना का रूप] दूसरे को उकेलने के लिये नियुक्त करना।

उकलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्गिरण, प्रा० उग्गाल] कै। उलटी। वमन। मचली।

उकलाना[१]—क्रि० अ० [हिं० उकलाई] उल्टी करना। वमन करना। कै करना।

उकलाना[२]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अकुलाना'।

उकलेसरी—संज्ञा पुं० [सं० उत्कल अथवा हिं० अकलेश्वर] उकलेसर (अकलेश्वर) का बना हुआ कागज। (उकलेसर दक्षिण में है)।

उकलैदिस—संज्ञा पुं० [अ० यू०] १ एक यूनानी गणितज्ञ जिसने रेखागणित निकाला था। २. रेखागणित।

उकवत—संज्ञा पुं० [सं० उत्कोथ] दे० 'उकवथ'।

उकवथ—संज्ञा पुं० [सं० उत्कोथ] एक प्रकार का चर्मरोग जो प्राय पैर मे घुटने के नीचे होता है। इसमे दाने निकलते हैं जिनमे खाज होती है और जिनमे से चेप बहा करता है।

उकसना—क्रि० अ० [सं० उत्कषण] १ उभरना। ऊपर को उठना। उ०—(क) पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सेज सो उकसि वाम स्याम सो लपटि गई होति रति रीति विपरीति रस तार की।—रघुनाथ (शब्द०) २ निकलना। अंकुरित होना। उ०—लाग्यो आनि नवेलियहि मनसिज बान। उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान॥—रहीम (शब्द०)। ३ सीवन का खुलना। उघडना। ४ दूसरे के द्वारा प्रेरित होना (को०)।

उकसनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसना] उभाड। उ०—दृग लागे तिरछे चलन पग मद लागे, उर मे कछूक उकसनि सी कढ़ै लगी।—(शब्द०)।

उकसवाना†—क्रि० स० [हिं० 'उकासना' का प्रे० रूप] किसी दूसरे से उकासने की क्रिया कराना।

उकसाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकासना] १ उकासने की क्रिया या भाव। २ उकासने की मजदूरी।

उकसाना—क्रि० स० [हिं० 'उकसना' का प्रे० रूप] १ ऊपर को उठाना। २ उभाडना। उत्तेजित करना। उ०—ये लोग तुम्हारे ही उकसाए हुए हैं।—(शब्द०)। ३ उठा देना। हटा देना। उ०—गाढ़ै ठाढ़ै कुचनु ढिलि पिय हिय को ठहराइ। उकसौंहैं ही तो हियैं दई सबै उकसाइ॥—बिहारी र० दो० ४६२। ४. दिए की बत्ती बढ़ाना या खसकाना।

उकसाहट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उकसाना] १. उकसाने का भाव या क्रिया। २ उत्तेजना।

उकसौंहाँ—वि० [हिं० उकसना + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० उकसौंहीं] उभडता हुआ। उठता हुआ। उ०—उर उकसौंहैं उरज लखि धरत क्यो न धनि धीर। इनहिं बिलोकि बिलोकियतु सौतिन के उर पीर।।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८५।

उकाव[१]—संज्ञा पुं० [अ० उकाव] बडी जाति का एक गिद्ध। गरुड़।

उकाव[२]—संज्ञा स्त्री० अफवाह। उड़ती खबर। उ०—आजकल ऐसी

उंमरा—संज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'। उ०—बोलि उमरा मीर सब। यौं जप्यौ सुरतान। अब कै पग गढ्ढे गहो। भजो येत परान।—पृ० रा०, १३।३८।

उं—अव्य०—एक प्राय अव्यक्त शब्द जो प्रश्न, अवज्ञा क्रोध तथा स्वीकृति सूचित करने के लिये व्यवहृत होता है। इसका प्रयोग उस अवसर पर होता है जब बोलनेवाला आलस्य से, अथवा मुँह फँसे रहने या और किसी कारण से नहीं खोल पाता।

उंखारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊख] दे० 'उखारी'।

उंगनी—संज्ञा स्त्री० [दे० ओंगना] बैलगाडी के पहिए मे तेल देने की क्रिया।

उंगलाना(पु)—क्रि० स० [हिं० उँगली से नाम०] हैरान करना। सताना।

उंगली—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] हथेली के छोरो से निकले हुए फलियों के आकार के पाँच अवयव जो वस्तुओ को ग्रहण करते हैं और जिनके छोरो पर स्पर्शज्ञान की शक्ति अधिक होती है। उँगलियो की गणना अगुष्ठ से आरंभ करते हैं। अगुष्ठ के उपरात तर्जनी, फिर मध्यमा, फिर अनामिका और अत मे कनिष्ठिका है। अनामिका इन पाँचो उँगलियो मे निर्बल होती है।

मुहा०—(पाँचो) **उँगलियाँ घी में होना**=सब प्रकार से लाभ ही लाभ होना। जैसे—तुम्हारा क्या, तुम्हारी तो पाँचो उँगलियाँ घी में हैं। **उँगलियाँ चमकाना**=बातचीत या लडाई करते समय हाथ और उँगलियो को हिलाना या मटकाना।

विशेष—यह विशेषकर स्त्रियो और जनखो की मुद्रा है।

उँगलियाँ नचाना=दे० 'उँगलियाँ चमकाना'। **उँगलियाँ फोडना**=दे० 'उँगलियाँ चटकाना।' **(पाँचों) उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं**=एक जाति की सब वस्तुएँ समान गुणवाली नहीं होतीं। **(सीधी) उँगलियों घी न निकलना**=सिधाई के साथ काम न निकलना। भलमंसाहत से कार्य सिद्ध न होना। **उँगलियों पर दिन गिनना**=उत्सुकता से किसी (दिन) की प्रतीक्षा करना। उ०—दिन फिरेंगे या फिरेंगे ही नहीं। ऊब दिन हैं उँगलियो पर गिन रहे।—चुभते०, पृ० ३। **उँगलियों पर नचाना**=जिस दशा में चाहे उस दशा में करना, अपनी इच्छा के अनुसार ले चलना। अपने वश में रखना। तग करना। जैसे—अजी तुम्हारे ऐसों को तो मैं उँगलियो पर नचाता हूँ। **(किसी पर या किसी की ओर) उँगली उठाना**=(किसी का) लोगो की निंदा का लक्ष्य होना। निंदा होना। बदनामी होना। **(किसी पर या किसी की ओर) उँगली उठाना**=(१) निंदा का लक्ष्य बनाना। लाछित करना। दोषी बताना। उ०—चाहे काम किसी का हो पर लोग उँगली तुम्हारी ही ओर उठाते हैं। (२) तनिक भी हानि पहुँचाना। टेढी नजर से देखना। उ०—मजाल है कि हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई उँगली उठा सके। **उँगली करना**=हैरान करना। सताना। दम न लेने देना। आराम न करने देना। उ०—जितना काम करो उतना ही वे और उँगली किए जाते हैं। **उँगली चटकाना**=(१) उँगलियों को इस प्रकार खींचना या दबाना कि उनसे चट चट शब्द निकले। (२) शाप देना। (स्त्री०)।

विशेष—जब स्त्रियाँ किसी पर बहुत कुपित होती हैं तब उलटे पजो को मिलाकर उँगलियाँ चटकाती हैं और इस प्रकार के शाप देती हैं—'तेरे बेटे मरें, भाई मरें' इत्यादि।

उँगली दिखाना=धमकाना। डराना। उ०—जो तुम्हें उँगली दिखाए मैं उसकी आँखें निकलवा लूँ। **(हलक में) उँगली देकर (माल) निकालना**=बडी छानबीन और कडाई के साथ किसी हजम की हुई वस्तु को प्राप्त करना। जैसे—वे रुपए मिलनेवाले नही थे, मैंने हलक मे उँगली देकर उन्हें निकाला। **(कानों मे, उँगली देना**–किसी बात से विरक्त या उदासीन होकर उसकी चर्चा बचाना। किसी विषय को न सुनने का प्रयत्न करना। अनसुनी करना। जैसे—हमने तो अब कानो मे उँगली दे ली है, जो चाहे सो हो। **(दाँतो में) उँगली देना या दबाना, दाँत तले उँगली दबाना**=चकित होना। अचभे मे आना। जैसे—उस लडके का साहस देख लोग दाँतो मे उँगली दबाकर रह गए। **उँगली पकडते पहुँचा पकडना**=किसी व्यक्ति से किसी वस्तु का थोडा सा भाग पाकर साहसपूर्वक उसकी सारी वस्तु पर अधिकार जमाना। थोडा सा सहारा पाकर विशेष की प्राप्ति के लिये उत्साहित होना। जैसे—मैंने तुम्हें बरामदे मे जगह दी अब तुम कोठरी मे भी अपना असबाब फैला रहे हो। भाई, उँगली पकडते पहुँचा पकडना ठीक नहीं। **उँगली पर पहाड़ उठाना**=असभव कार्य कर दिखाना। उ०—सिर उठाना उन्हे पहाड हुआ। जो उठाते पहाड उँगली पर।—चुभते०, पृ० २५। **(किसी कृति पर) उँगली रखना**=दोष दिखलाना। ऐब निकालना। जैसे—भला आपकी कविता पर कोई उँगली रख सकता है। **उँगली लगाना**=(१) छूना। जैसे—खबरदार, इस तसवीर पर उँगली मत लगाना। (२) किसी कार्य मे हाथ लगाना। किसी कार्य मे थोडा भी परिश्रम करना। जैसे—उन्होंने इस काम मे उँगली भी न लगाई पर नाम उन्ही का हुआ।

उंगलीमिलाव—संज्ञा पुं० [हिं० उँगली+मिलाव] नाच की एक गत। इसमें दोनो हाथ सिर के ऊपर उठाकर उनकी उगलियाँ मिला दी जाती हैं।

उंघाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊँघना] १ ऊँघने की क्रिया या भाव। २. निद्रागम। झपकी।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

उंच†—वि० [हिं० ऊँच] दे० 'ऊँच'। उ०—'तुका' 'सूदा' बहुत कहावे लडत बिरला कोय। एक पावे ऊँच पदवी एक खोंसो जोय। दक्खिनी०, पृ० १०८।

उंचनाव—संज्ञा पु० [देश०] एक किस्म का चारखाने का कपडा।

उंचाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्च, हिं० ऊँच+आई (प्रत्य०)] १ बलदी। ऊँचापन। उ०—हिय न समाई दीठि नहिं आनहुँ ठाढ़ सुमेर। कहँ लगि कहौं उँचाई कहँ लगि बरनौं फेर।—जायसी ग्र०, पृ० १५। २ बडप्पन। महत्व।

उंचान(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० उँचा+आन (प्रत्य०)] उँचाई। बलदी।

हिंदी शब्दसागर

उ

उ—१ हिंदी वर्णमाला का पाँचवाँ अक्षर। इसका उच्चारणस्थान ओष्ठ है। यह तीन मुख्य स्वरों में है। इसके ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से १८ भेद होते हैं। 'उ' को गुण करने से 'ओ' और वृद्धि करने से 'औ' होता है।

उंकुण—संज्ञा पुं० [सं० उङ्कुण] खटमल [को०]।

उंगल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि] दे० 'अगुल'।

उंगलि—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि] दे० 'अगुल'। उ०—मैसत उंगलि वाई खेलु। मनि सचु अहार करि (तासो) मेलु।—प्राण०, १।६६।

उंच(पु)—वि० [हिं० ऊँचा] १ ऊँची। अधिक। २. उपयुक्त। ३. योग्य। उ०—यो वरप्प दुग्र विति गय। भइअ वंस वर उंच।—पृ० रा०, २५।१७६।

उंचन—संज्ञा स्त्री०[सं० उदञ्चन = ऊपर खींचना या उठाना]अदवायन। अदवान। वह रस्सी जो खाट के पायताने की तरफ बुनावट से छूटे हुए स्थान को भरती है और जिसको खीचकर कसने से बुनावट तनकर कड़ी हो जाती है।

उंचना—क्रि० स० [सं० उदञ्चन] अदवान तानना। उंचन कसना। अदवान खींचना।

उंचास—वि० [हिं० उनचास] दे० 'उनचास'।

उंच्छाहे(पु)—वि० [सं० उत्साह] उत्साहपूर्वक। उत्साह से। उ०—वीर पुरुष कइ जमअइ नाह न जपइ नाम। जइ उच्छाहे फुर कहमि हवो आकण्डन काम।—कीर्ति०, पृ० ६।

उंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० उञ्छ] मालिक के ले जाने के पीछे खेत मे पड़े हुए अन्न के एक एक दाने को जीविका के लिये चुनने का काम। सीला बीनना।

यौ०—उंछवर्ती। उंछवृत्ति। उंछशील।

उंछन—संज्ञा पुं० [सं० उञ्छन] गल्ले की मंडी में भूमि पर गिरे हुए दानो को बीनने का कार्य [को०]।

उंछवृत्ति संज्ञा स्त्री० [सं० उञ्छवृत्ति] खेत में गिरे हुए दानों को चुनकर जीवननिर्वाह करने का कर्म।

उंछशिल—संज्ञा पुं० [सं० उञ्छशिल] उंछवृत्ति।

उंछशील—वि० [सं० उञ्छशील] उंछवृत्ति पर निर्वाह करनेवाला।

उंझट—संज्ञा पुं० [देशी०] दे० 'झंझट'। उ०—सौ उंझट में उलझों को कैसे कै सुलझाऊँ।—प्रेमघन०, १।१६१।

उंट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ऊँट] दे० 'ऊँट'। उ०—सै पचदिन्न अति उंट अच्छ। कत्तार भार फक्कार कच्छ॥ दोइ सै दिन्न दासो सुचग। झनकत। ताम द्रप्पन सुअग॥—पृ० रा०, ४।११।

उंड(पु)—[सं० उण्डुक] शरीर का अंग—पेट। उ०—पंड हथ्थ नर उंड। अष्ट अंगुल अर्ध वपु।—पृ० रा०, १।२४४।

उंडले(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उण्डुक] १. शरीर का एक भाग—पेट। उ०—उचाय धाय उडले। हिरन्नकस्य खडले॥ छुटत कट्ठि ठुम्मर। उठत मुछ्छ घुम्मरं॥—पृ० रा०, २।१७३। २. मच। मचान। उच्चासन। ३ आँत का आवरण।

उंडुक—संज्ञा पुं० [सं० उण्डुक] १ कुष्ठ रोग का एक भेद। २ जाल। ३ शरीर का हिस्सा—पेट [को०]।

उंदन—संज्ञा पुं० [सं० उन्दन] गीला करना। भिगोना [को०]।

उंदर—संज्ञा पुं० [सं० उन्दुर] दे० 'उंदुर'। उ०—ज्यो उरगह मुष उदर परै। यो सुदेह नाहर कहै॥ भवतव्य बात मिट्टै नही। नाम एक जुगजुग रहै॥—पृ० रा०, ७।१५०।

उंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्दुर] चुहिया। उ०—स्यध बैठा पान कतरै, घूँस गिलौरा लावे। उंदरी बपुरी मगल गावै कछू एक आनद सुनावै।—कबीर ग्र०, पृ० ६२।

उंदुर—संज्ञा पुं० [सं० उन्दुर] चूहा। मूसा। उ०—(क) उंदुर राजा टीका बैठे विपहर करै खवासी। श्वान बापुरो धरनि ठाकुरो बिल्ली घर में दासी॥—कबीर (शब्द०)। (ख) कीन्हेसि लोवा उँदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहिं खनि माटी॥—जायसी (शब्द०)।

उंदुरकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्दुरकर्णिका] दे० 'उंदुरकर्णी'।

उंदुरकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्दुरकर्णी] एक प्रकार की लता (को०)।

उंनंगनो(पु)—क्रि० अ० [सं० उल्लघन] दे० 'उलघना'। उ०—उँनगे सुरतान दल। सारु है चतुरग॥—पृ० रा०, १३।६२।

उंपत(पु)—क्रि० अ० दे० 'ओपना'। उ०—चालुक चातु वीर वर। जिन उंपत मुदव पानि॥—पृ० रा०, ५।३०।

उंबर उंबुर—संज्ञा पुं० [सं० उम्बर, उम्बुर] चौखट की ऊपरी लकड़ी जिसे भरेठा भी कहते हैं [को०]।

उंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] गीली घास की आग पर पकाई हुई जौ गेहूँ की बाल। चिकित्सा में इसका प्रयोग किया जाता है [को०]।

यो०	यौगिक	सक० रूप	सकर्मक रूप
राज०	राजस्थानी	सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
लश०	लश्करी	स्पे०	स्पेनी भाषा
ला०	लाक्षणिक	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
लै०	लैटिन	स्त्री०	स्त्रीलिंग
व० कृ०	वर्तमान कृदंत	हिं०	हिंदी
वि०	विशेषण	Ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक	>	व्युत्पन्न
वै०	वैदिक	†	प्रांतीय प्रयोग
व्या०	व्याकरण	‡	ग्राम्य प्रयोग
शब्द०	शब्दसागर	√	धातुचिह्न
सं०	संस्कृत	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
संयो०	संयोजक अव्यय	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति
संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया		
स०	सकर्मक		

हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०	हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	तु०	तुर्की
अ०	अरबी	दू०	दूहा या दूहला
अक० रूप	अकर्मक रूप	दे०	देखिए
अनु०	अनुकरण शब्द	देश०	देशज
अनुध्व	अनुध्वन्यात्मक	देशी	देशी
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक	धर्म०	धर्मशास्त्र
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	नाम०	नामधातु
अप०	अपभ्रंश	ना० धा०	नामधातुज क्रिया
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी	नामिक धातु	नामिक धातु
अल्पा०	अल्पार्थक	ने०	नेपाली
अव्य०	अव्यय	न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
इब०	इबरानी	पं०	पंजाबी
उ०	उदाहरण	परि०	परिशिष्ट
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	पा०	पाली
उडि०	उड़िया	पुं०	पुंलिंग
उप०	उपसर्ग	पुर्त०	पुर्तगाली
उभ०	उभयलिंग	पु० हि०	पुरानी हिंदी
एकव०	एकवचन	पू० हि०	पूर्वी हिंदी
कहावत	कहावत	पृ०	पृष्ठ
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	प्रत्य०	प्रत्यय
[को०], (को०)	अन्य कोश	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
कोंक०	कोंकणी	प्रा०	प्राकृत
क्रि०	क्रिया	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	फ०	फरासीसी भाषा
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	फकीर०	फकीरों की बोली
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	फा०	फारसी
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	बंग०	बंगला भाषा
क्व०	क्वचित्	बरमी०	बरमी भाषा
गीत	लोकगीत	बहुव०	बहुवचन
गुज०	गुजराती	बुं० ख०	बुंदेल खण्ड की बोली
ची०	चीनी भाषा	बोल०	बोलचाल
छं०	छंद	भाव०	भाववाचक संज्ञा
जापा०	जापानी	भू०	भूमिका
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	भू० कृ०	भूत कृदंत
जी०, जीवन०	जीवनचरित्	मरा०	मराठी
ज्या०	ज्यामिति	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
ज्यो०	ज्योतिष	मला०	मलायम भाषा
डिं०	डिंगल	मि०	मिलाइए
त०	तमिल	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
तर्क०	तर्कशास्त्र	मुहा०	मुहावरा
		यू०	यूनानी

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलालसिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १६०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स०
सुधाकर (शब्द०)	सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सं० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं० ।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर (राधा०)	सूरसागर, सं० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं

सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १६३४ ई०
सौ अजान०	सौ अजान और एक सुजान
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार-लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, ० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० सं० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हम्मीर०	हम्मीरहठ, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
ह० रासो	हम्मीर रासो, सं० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा काशी, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली, १६४६ ई०
हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १६५३ ई०
हालाहल	हलाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १६४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिं० आ० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १६३६ ई०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, सं० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १६४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०

संक्षेप	स्रोत
रस क०	रसकलस, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, सं० बा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०	रसरतन, सं० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, सं० मोती लाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
राम चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, सं० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सं० मालचंद्र जी शर्मा चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह सं० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ारामद्वारा, बीकानेर।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सं० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०।
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
लक्ष्मण सिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लूलाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, सं० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, त० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगर वधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
श० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर०	शंकरसर्वस्व, सं० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शार्ङ्ग० ध० सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रण लय, सं० १९७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, सं० १९८५
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत० सार०	संतवाणी-सार-संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी,	संन्यासी इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, सं० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, न० सं० ।
भारत० नि०, भा० भू०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० स० १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रथावली [४ भाग], सपा० व्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम एँड सस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रथावली[दो भाग],सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी प्र० स० ।
भीखा श०	भीखा शब्दावली
भूषण ग्र०	भूषण ग्रथावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० स०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना प्र० स०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रथावली, कृष्णविहारी मिश्र, गगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० स०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवशराय 'वच्चन', सुषमा निकुज, इलाहावाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहावाद, द्वि० स०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवश राय 'वच्चन', सुषमा निकुज, इलाहावाद, प्र० सं०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहावाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, वम्वई, चतुर्थ स०
माधवानल०	माधवानल, कामकदला, वोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०, १८९४ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हस प्रकाशन, इलाहावाद
मानव०	मानवसमाज, राहुल साकृत्यायन, किताव महल, इलाहावाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, सपा० शभुनारायण चौवे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहावाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवश राय 'वच्चन' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० स०, १९५० ई०
मुशी अभि० ग्र०	मुशी अभिनदन ग्रथ, सं० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मृग०	मृगनयनी, वृ दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैलाआँचल,फणीश्वर नाथ 'रेणु',समता प्रकाशन, पटना–४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, स० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहावाद ला जर्नल प्रेस, प्र० स०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा०	यामा, महादेवी वर्मा, किताविस्तान, प्रयाग, प्र० स०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहावाद, प्र० स०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगात	युगात, सुमित्रानदन पत, इद्र प्रिंटिंग प्रेस, अलमोडा, प्र० स०
रगभूमि	रगभूमि, प्रेमचंद, गगा ग्रथागार, लखनऊ,प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीताँरो, स० महतावचद्र खारैड, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानदन पत, लीडर प्रेस, इलाहावाद, २००८ वि०
रज्जव०	रज्जव जी की वानी, ज्ञानसागर प्रेस, ववई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी प्र० स०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताव महल, इलाहावाद, द्वि० स०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रतनसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० स०
रस०	रसमीमासा, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय व्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, सं० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की,	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग] प० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्र० बाँकीदास ग्र०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
वंदन०	वंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाशदर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, सं० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, सं० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, सं० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०,	ब्रजनिधि ग्रंथावली, सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई १९५३ वि०
भक्तमाल, (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९६०
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राज़ मेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०

दादू०	श्री दादूदयाल की वानी, स० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्र०	दादूदयाल ग्र थावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १६४५ ई०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्र थावली, सपा० श्याम-सु दरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र०सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताविस्तान, इलाहावाद, प्र० सं०, १६४२ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्र०	देव ग्र थावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १६६६ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता [दो भाग] शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरौली, प्रथम सं०
द्वद्व०	द्वद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्र थ, ना० प्र० सभा वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की वानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहावाद, १६११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारी सिंह दिनकर' अजता प्रेस लि०, पटना ४
नद ग्र०, नददास ग्र०	नददास ग्रंथावली, सं० वजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताव महल, इलाहावाद प्र० सं०, १६५३,
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णविहारी मिश्र इडियन प्रेस, इलाहावाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन दिल्ली, प्र० स०, १६५१ ई०
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे वाजपेयी विद्यामदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम स०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० स०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, १६६१ वि०
पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत-जीवन यत्रालय, काशी, प्र० स०
पदमावत	पदमावत, स० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, स० सूर्यकात शास्त्री, पंजाव विश्वविद्यालय, लाहौर, १६३४ ई०
पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्र थावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, स० श्यामसुन्दरदास, ना० प्र० सभा- प्र० स०
परमानन्द०	परमानदसागर
परिमल	परिमल, 'निराला', गगा ग्र थागार, लखनऊ, प्र० स०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचद्र जोशी, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहावाद, प्र० स० १६६६ वि०
पलटू०	पलटू साहब की वानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहावाद, १६०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानदन पत, इडियन प्रस लि० प्रयाग, प्र० स०
पाणिनि०	पाणिनीकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० स०
परिजात०	परिजातहरण,
पार्वती	पार्वती, रामानन्द तिवारी शास्त्री, भारती-नदन, मगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १६५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धात, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहावाद, प्र० स०, १६५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उडान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १६४६ ई०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहावाद, प्र० स०, २००६ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खड], स० मोहनलाल विष्णुलाल पड्या, श्यामसु दरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

चंद०	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारीसिंह, 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्रशुक्ल, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०—	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, २०१२
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जनानी०	जनानी ड्योढी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, सं० रामचंद्रशुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, सं० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४३ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, सं० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, सं० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद

कठ० उप० (शब्द०) कठवल्ली उपनिषद्
कढी० कढी मे कोयला, पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० स०
कबीर ग्र ० कबीर ग्र थावली, सपा० श्यामसु दरदास, ना० प्र० सभा०, काशी
कबीर बानी कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक कबीर बीजक, कबीर ग्र थप्रकाशन समिति, बारावकी, २००७ वि०
कबीर बी० कबीर बीजक, सपा० हसदास, कबीर ग्र थ प्रकाशन समिति, बारावकी, २००७ वि०
कबीर म० कबीर मसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बवई, सन् १६०३ ई०
कबीर रे० कबीर साहब की ज्ञानगुदडी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर श० कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग]
कबीर (शब्द०) कबीरदास
कबीर सा० कबीरसागर [४ भा०] सपा० स्वा० श्री युगलानद बिहारी, वेंकश्टेवर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बवई
कबीर सा० स० कबीर साखी सग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १६१२ ई०
करुणा० करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०
कर्ण० सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० स०
कविता कौ० कविता कौमुदी [१-४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मदिर, प्रयाग, तृ० स०
कवित्त० कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन० काननकुसुम, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पचम स०
कामायनी कामायनी, जयशकर प्रसाद, नवम स०
काया० कायाकल्प, प्रेमचद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ स०
काले० काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबध काव्य और कला तथा अन्य निबध, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ स०
काव्य० य० प्र० काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०
काश्मीर० काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इडियन प्रेस, इलाहाबाद
किन्नर० किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इडिया पब्लिसर्स, प्रयाग, प्र० स०
कीर्ति० कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० स०
कुकुर० कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमदिर, उन्नाव
कुणाल कुणाल, मोहनलाल द्विवेदी
कृषि० कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०) केशवदास
केशव ग्र ० केशव ग्र थावली, सपा० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र०स०
केशव० अमी० केशवदास की अमीघूँट
कौटिल्य अ० कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बवई, १६५३ ई०
खानखाना (शब्द०) अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक० खालिकबारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना खिलौना (मासिक)
खुदाराम खुदाराम और चद हसीनो के खतूत, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ स०
गग ग्र ० गग कवित्त [ग्र थावली], सपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
गदाधर० श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन गबन, प्रेमचद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ स०
गालिब० गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड, वाराणसी
गि० दा०, गि० दास (शब्द०) गिरिधरदास (बा० गोपालचद्र)
गिरिधर (शब्द०) गिरधर राय (कुडलियावाले)
गीतिका गीतिका, 'निराला', भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०,
गुजन गुजन, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
गुमान (शब्द०) गुमान मिश्र
गुलाल० गुलाल बानी, बेलवेडिर प्रेस, इलाहाबाद, १६१० ई०
गोदान गोदान, प्रेमचद सरस्वती प्रेस बनारस, प्र० स०
गोपाल० (शब्द०) गिरिधर दास (गोपालचद्र)
गोरख० गोरखबानी, स० डा० पीताबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० स०
ग्राम० ग्राम साहित्य, स० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या० ग्राम्या, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
घट० घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०
घनानद घनानद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ० घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

संकेतिका

[उद्धरणो मे प्रयुक्त संदर्भग्रथो के इस विवरण मे क्रमश ग्रथ का सकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशकर प्रसाद, १६वाँ स०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', युग मदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानदन पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' प्र० स०
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमजरी और नाममाला, सपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० स०
अपरा	अपरा, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०
अभिशप्त,	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, २०१४
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', कलामदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र [५ खड], सपा० आर० शाम शास्त्री, गवर्नमेंट ब्राच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रथ रत्नाकर कार्यालय, बबई, प्र० सं०
अष्टाग (शब्द०)	अष्टाग योगसहिता
आँधी	आँधी, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पचम स०
आकाश०	आकाशदीप, जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, पंचम स०
आचार्य०	आचार्य रामचद्र शुक्ल, चद्रशेखर शुक्ल, वाणी-वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनदघन (शब्द०)	कवि आनदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० स०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यो ०	आर्यों का आदिदेश, सपूर्णानद, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० स०
इद्र०	इद्रजाल, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
इद्रा०	इद्रावती, सपा० श्यामसुदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
इशा०	इशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, सपा० व्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
इतिहास०	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ स० ।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इरा०	इरावती, जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० प०सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पचम, स०
एकात०	एकातवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० स०, १८८६ वि०
ककाल	ककाल, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम स०

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव मे वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने मे हमे सकोच नही कि अद्यतन प्रकाशित कोशो में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशो में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र मे काम करनेवाले प्राय सभी क्षेत्रीय भाषाओ के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदी जगत् को यह भी नम्रता पूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और और सशोधन के लिये कोशशिल्प सबधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप मे शब्दों की सख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, सत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रथ इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खड में प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दो की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह सशोधित परिवर्धित सस्करण कुल दस खडों मे पूरा होगा। इसका पहला खड पौष, सवत् २०२२ वि० मे छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतत्र के प्रधान मत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, स० २०२२ वि० (१८ दिसबर, १९६५) को बडे ही भव्य रूप से सजे हुए पडाल मे काशी, प्रयाग एव अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियो, पत्रकारो तथा गण्यमान्य नागरिको की उपस्थिति मे सपन्न हुआ। समारोह मे उपस्थित महानुभावो में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान सपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री प० सुमित्रानदन जी पत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि प्रमुख हैं। इस सशोधित सवर्धित सस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त सपादकों को एक एक फाउटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलो द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने सक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियो की चर्चा की और कहा 'सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढग की अकेली सस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी सस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयो पर जो पुस्तकें इस सस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढग के अनूठे ग्रथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितात आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे यह सभा अप्रतिम है'।

संपादक मडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण मे योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड नियामित रूप से नित्य सभा में पधार कर इसकी प्रगति की गति विशेष गभीरतापूर्वक देते रहे हैं और प० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन मे प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य सपन्न होना सभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। सभव है हम सबके प्रयत्न मे त्रुटियाँ हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ग्रथ का कार्य अस्थायी नही सनातन है।

अत में शब्दसागर के मूल सपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुन दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया सस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी
१७ पौष, स० २०२३

सुधाकर पाडेय

प्रकाशन मत्री

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशकों तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुन अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदी जगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों मे इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। 'हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है।''' आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी मे बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणत पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों मे बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम मे अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुन संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ। ४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुन संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुन उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ मे पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है। इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उप

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाओं का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, सशोधित, नवीन सस्करण स० २०२३ [illegible] १९६७ ई० मे निकला था। इसके भाग [illegible] थ क रूप में इसका मूल्य लागो [illegible] क्रमस अनुपलब्ध हो [illegible] स्थिति में अभाव [illegible] प्रेषित [illegible] सभा ने यह सकल्प लिया कि इसका दूसरा सस्करण प्रकाशित [illegible] गत हिंदी [illegible] एफ। ४—३।५४ इसकी निरतर उपलब्धता बनी रहे। द्वितीय भाग का यह [illegible] पाँच वर्षों मे, प्रति व[illegible] मे उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके (प्र[illegible]) भागो के [illegible] इस कार्य की गरिम[illegible] गा, इस संबंध में [illegible] भारत सरकार ने रु०१,६६,६५७-५० [illegible] हुई [illegible] सहायता प्रस्तुत की, [illegible] लिये सभा भारत सरकार की आभारी है। यह सहयोग यदि भारत सरकार से न मिलता तो इसे प्रस्तुत करा सकना सभा के लिये सभव नहीं था। एतदर्थ सरकार के हम आभारी हैं।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत् निरतर करता रहेगा।

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री
ना० प्र० सभा, वाराणसी।

दीपावली
स० २०४४ वि०

भारत सरकार की वित्तीय सहायता से प्रकाशित

परिवर्धित, स... संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द ... सं० २० ... वि० १९८७ ई०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी भागो का ६७८)७५
मूल्य 250)

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक—श्रीनारायण, नागरी मुद्रण, ना० प्र० सभा, वाराणसी
प्रतियाँ—३१००

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

द्वितीय भाग

"उ" से "क्वैलिया" तक, शब्दसंख्या—२०,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट — रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह — जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन — रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद — कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री — धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़ — रामधन शर्मा
हरवंशलाल शर्मा — शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र — गोपाल शर्मा
भोलाशंकर व्यास (सह० संयो०) — सुधाकर पांडेय
करुणापति त्रिपाठी (संयोजक, संपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री — विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी